

Published by
Sri Satguru Publications
Indological and Oriental Publishers
A Division of
INDIAN BOOKS CENTRE
40/5, SHAKTI NAGAR
DELHI - 110007
(INDIA)

First Edition 1912
Second Edition: 1941
Third Edition 1990

ISBN 81-7030-206-4

Printed in India at
D K. Fine Art Press, DELHI

Foreword

It is indeed a great pleasure that Indian Books Centre, is bringing out this reprint of *Premeyakamala-Mārtanḍa* of Prabhācandraśāstri edited by Pandit Mahendra Kumar Śāstri and published by Satyabhamabai Panduranga at Nirmayasagar Press, Bombay in the year 1941. This text has remained out of Print for a long time. I am confident that scholars of Indian philosophy will be extremely happy to have this reprint.

Premeyakamalamārtanḍa is an encyclopaedic work on Indian Philosophy. It is treasure house of Indian rational thoughts. It not only elaborates Jaina rationale but also considers the opinions of all other systems of Indian Philosophy. Prabhācandra systematically presents the Pūrvaśākhya-views and gives thorough and authentic exposition of their views and thus helps a reader grasp the doctrine of those systems in a lucid and better way. By reading this single text one can master almost all related systems of Indian Philosophy. This text has the character of that of the *Nyāyamāñjarī* of Jayanta Bhaṭṭa, which is also an encyclopaedic work of Indian Philosophy.

If one simply puts a glance at the contents of this text, he will find it nothing but amazing. Right from the general definition of Pramāṇa, the nature of individual Pramāṇa's, the nature of Śabda-dvāita of Bhāṭṭarī, akhyātivāda, prasiddhāntakhyātivāda, atmakhyātivāda, anurvacantya-khyātivāda, smṛtipramoṣa of Prabhākaras, Brāhmadvāita, Citrādvāita, Śūnyavāda, śakārajñānavāda of the Buddhists, Bhūtaśāntavāda of the Cāravakas, Ātmapratyakṣatva, Pramāṇyavāda, Nature of Śakti, Abhāvavicāra, Yogyatā-vicāra, sarvajñāta-vāda. Nature and role of God, nature of liberation, anekāntavāda, smṛti-pramāṇyavāda, anvītabhīdhanavāda, relations and fallacies, and a host of similar topics have been discussed here and while discussing them all the views on the respective issues available at Prabhācandra's time have been taken note of and thoroughly examined. This plan of presentation has made the text encyclopaedic in character. After thoroughly examining the views of others, he establishes the Jaina view. Thus, while discussing the nature of general definition of Pramāṇa, Prabhācandra considers Jayanta's view of Samagri as Pramāṇa and refutes it. Similarly he sets aside the aphovāda of the Buddhist and hundred of other theories held by other systems.

In the history of development of Indian Philosophical thought the era upto Udayana has been a golden era. The respective systems reached their peaks and all this happened because of the freedom of thought and speech granted to them. Every system enjoyed the freedom of severely criticising other's views. But the criticism was never aimed at mere criticism, but it was always directed towards arriving at the truth. As a matter of fact, it was this healthy culture of constructive criticism and freedom of speech that enriched Indian thought and gave solid basis to each philosophical system of that time. Unorganised thoughts got organised and what looked irrational became rational.

Had there not been Buddhist and Jaina logicians and the Cāravakas, the Brahmanical system of philosophy could not have reached the height which they reached. The entire Prācīna Nyāya is a development caused by the free dialogue between the Naiyāyikas and the Nāstikas. The Brahmanical system were left with no other alternative than to give solid grounds for their philosophical and metaphysical assumptions.

The *Prameyakamalamārtāṇḍa*, is a specimen of the survey of that healthy tradition. It has involved the Nyaya System, the Mīmāṃsā system, the Buddhist system, the philosophy of Bhartṛhari, the Advaitins and the Sāṃkhya. It has references to almost all the prominent philosophical literature available at that time. At times, we find direct quotations from a number of texts. While discussing relations, Prabhācandra has quoted twenty two verses from the *Sambandhaparikṣā* of Dharmakīrti and has added his own commentary to them. I have translated these verses along with the Commentary of Prabhācandra and it has appeared in my work *The Philosophy of Relations*, published by Indian Books Centre, Delhi, published in 1990, in the Sri Garib Dass Oriental series. Dharmakīrti's *Sambandhaparikṣā* is thus, presented in the *Prameyakamalamārtāṇḍa*, which was otherwise lost in origin, Sanskrit. such is the importance of this reprint.

The editor Pandit Mahendra Kumar Sastri, has given a very elaborate and informative introduction to the text in Hindi. I have extensively used that introduction for writing this foreword. The editor has supplied studied grounds for the date of Prabhācandra 990 and 1020 AD. The editor has also shown the relationship of Prabhācandra with his predecessors and contemporary Philosophers and the access of the author of *Prameyakamalamārtāṇḍa*, to the Sanskrit Literature available at his time through the identification of the quotations is well demonstrated. The Hindi introduction is indeed very much informative.

Thus, the Indian Books Centre unreservedly deserves our appreciation for bringing out the reprint of this excellent text on Indian Philosophy in general and Jaina Philosophy and logic in particular. Every scholar in the field should have a copy of this text in his library.

V.N. Jha
Director
Centre of Advanced Study in Sanskrit
University of Poona,
Poona.



“न्यायेऽकुतोभयतयोन्नतकन्धरस्य,
जीवन्धरस्य चरणार्चनतोऽर्जितेन ।
संशोष्य संप्रति मयाद्य नवीकृतेन,
भक्त्या प्रमेयकमलेन तमर्चयामि ॥”

तदन्यतमशिष्योऽहं
—महेन्द्रकुमारः ।



१ सम्पादकीयम्	१-३
२ भूमिका	४-७८
१ ग्रन्थकार	४-६७
२ ग्रन्थ	६७-७८
३ परीक्षासुखसूत्राणां तुलना	७९-८३
४ मूलग्रन्थस्य विषयावृत्तयः	१-७२
५ मूलग्रन्थ	१-६९४
६ परिशिष्टानि	६९७-७५५
१ परीक्षासुखसूत्रपाठः	६९७-७०३
२ प्रमेयकमलमार्तण्डगतवतरणसूचिः	७०४-७२०
३ परीक्षासुखगतलाक्षणिकशब्दसूचिः	७२१
४ प्रमेयकमलमार्तण्डगतलाक्षणिकशब्दसूचिः	७२२-७२३
५ प्रमेयकमलमार्तण्डनिर्दिष्टाः ग्रन्थाः ग्रन्थकृतश्च	७२४
६ प्रमेयकमलमार्तण्डस्य केचिद्विशिष्टाः शब्दाः	७२५-७३३
७ आराप्रते. पाठान्तराणि	७३४-७४८
८ मूलदिप्पण्युपयुक्तग्रन्थसूचिः	७४९-७५३
९ छुद्दिद्विपत्रम्	८, ७५४-७५५

शुद्धिपत्रम् ।

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
२१	१५	तदनन्तर-	तदन्तर-
६६	६	विद्यास-	अविद्यास-
७०	१४	-पर्यायाचेत-	-पर्यायचेत-
८७	८	-ल्लिङ्गाङ्गिनि	-ल्लिङ्गाङ्गिनि
११५	१५	-तत्त्वा (तस्मात्त्वा)न्त-	-तत्त्वान्त-
११७	६	-तम्	-तन्यम्
१६९	४	शुद्धिच्छे-	तृद्धिच्छे
१७१	७,८	-चेतना-	-चेतना-
१९२	१२	-थैकलक्षि-	-थैकलक्षणलक्षि-
२०१	१६	-स्वाभानार्थ-	-स्वाभानार्थ-
२१७	२	प्रति (तीं) यतो	प्रतियतो
३१७	१३	अज्ञानस्य	अज्ञातस्य
३४७	११	-पर्ययानं	-पर्ययानं
३६६	२३	-तो दृष्टं	-तोऽदृष्टं
४५६	२९	-णामपि	-णामपि
५१०	२	सम्बन्धौ	सम्बन्धो
६९४	१०	-ताद्वारितै-	-ताद्वारितै-

सम्पादकीय

जब न्यायकुमुदचन्द्रका सम्पादन चल रहा था तब श्रीयुत कुन्दनलालजी जैन तथा पं० सुखलालजी के आग्रह से मुझे प्रमेयकमलमार्तण्ड के पुनःसम्पादन का भी भार लेना पड़ा ।

इसके प्रथमसंस्करण के संपादक पं० बंशीधरजी धाली सोलापुर थे । मैंने उन्हींके द्वारा सम्पादित प्रति के आधार से ही इस संस्करण का सम्पादन किया है । मैंने मूलपाठ का शोधन, विषयवर्गीकरण, अवतरणनिर्देश तथा विरामचिह्न आदि का उपयोग कर इसे कुछ सुन्दर बनाने का प्रयत्न किया है । प्रथम तो यही विचार था कि न्यायकुमुदचन्द्र की ही तरह इसे तुलनात्मक तथा अर्थबोधक टिप्पणों से पूर्ण समृद्ध बनाया जाय, और इसी संकल्प के अनुसार प्रथम अव्याय में कुछ टिप्पण भी दिए हैं । ये टिप्पण अंग्रेजी अंकों के साथ चाहे टिप्पण के नीचे पृथक् मुद्रित कराए हैं । परन्तु प्रकाशक की मर्यादा, प्रेस की दूरी आदि कारणों से उस संकल्प का दूसरा परिच्छेद प्रारम्भ नहीं हो सका और वह प्रथम परिच्छेद के साथ ही समाप्त हो गया । आगे तो यथासंभव पाठशुद्धि करके ही इसका संपादन किया है ।

श्री पं० बंशीधरजीसा० ने, जब वे काशी आए थे, कहा था कि—“प्रमेयकमलमार्तण्ड में मुद्रित टिप्पण एक प्रति से ही लिया गया है” और यही बात उन्होंने पं० नाथूरामजी त्रेमी से भी कही थी । इसलिए मुद्रित टिप्पण जो कहीं कहीं अस्वव्यत्यय या अशुद्ध था, जैसा कि तैसा रहने दिया है । प्राचीन टिप्पण की मौलिकता के संरक्षण के च्येचने ही उसे जैसे के तैसे रूप में छपाने को प्रेरित किया है । इस संस्करण के टाइप, साइज, कागज आदि की पसन्दगी प्रकाशकजीने अपनी सुविधाके ही अनुसार की है । यदि मेरी पसन्द के अनुसार इसकी प्रकाशनव्यवस्था हुई होती तो अवश्य ही यह अपने सहोदर न्यायकुमुदचन्द्र की ही तरह प्रकाशित होता ।

संस्करणपरिचय—

इस संस्करण में प्रथमसंस्करण की अपेक्षा निम्नलिखित सुधार किए हैं—

१ सूत्रयोजना—प्रमेयकमलमार्तण्ड परीक्षामुखसूत्र की विस्तृत व्याख्या है और इसका परीक्षामुखालङ्कार नाम भी है । अतः इसमें सूत्रों का यथास्थान विनिवेश किया है जिससे प्रत्येक सूत्रकी व्याख्या का पृथक्करण होजाय । इसलिए सूत्राङ्क भी पेजके ऊपरी काने में दे दिए हैं ।

२ पाठशुद्धि—प्रकरण तथा अर्थ की दृष्टि से जो अशुद्धियाँ प्रथम

१ देखो रत्नकरण्डमानकाचार की प्रस्तावना पृ० ६० की टिप्पणी ।

संस्करण में भी उनका यथालुभन सुधार किया है और खास खास स्थानों में ऐसी अशुद्धियों को [] ऐसे या () ऐसे ब्रेकिट में ही सुधित कराया है। प्रफसम्बन्धी कुछ अशुद्धियाँ यदि प्रथम संस्करण की सुधारी गई हैं तो कुछ नई अशुद्धियाँ भी दृष्टिदोष और प्रेसकी बुरी के कारण हो गई हैं जिनका स्थूल शुद्धिपत्र ग्रन्थके अन्त में लगा दिया है।

३ अवतरणनिर्देशा-मूलग्रन्थ में जितने ग्रन्थान्तरीय अवतरण आए हैं, उन्हें डबलइन्वर्टेड कामा “ ” के साथ छपाया है और अवतरण के बाद ही [] इस ब्रेकिट में उनके मूलग्रन्थों के नाम दे दिए हैं। जिन अवतरणवाचनों के मूलस्थल नहीं मिल सके हैं उनका [] ब्रेकिट खाली छोड़ दिया है। कुछ अवतरणों के स्थल ग्रन्थ के छप जाने पर खोजे जा सके हैं ऐसे अवतरणों के मूलस्थल परिशिष्ट (अवतरणसूची) में दे दिए हैं।

४ विषयसूची-यह ग्रन्थ बहुतदिनों से गवर्नमेन्ट संस्कृत कालेज काशी, कलकता, और बम्बई के जैन परीक्षालय के परीक्ष्य ग्रन्थक्रम में नियत है। अतः छात्रों की, तथा ग्रन्थगत प्रत्येक प्रकरण की मुख्य मुख्य दलीलों को संक्षेप में समझने के अभिलाषी इतर जिज्ञासु पाठकों की सुविधा के लिए प्रत्येक प्रकरण के पूर्वपक्ष और उत्तरपक्ष की युक्तियों की क्रमबद्ध विस्तृत विषयसूची बनाई है। छात्रों के लिए तो यह सूची नोट्स का काम देगी। इसके आचार से प्रत्येक प्रकरण सहज ही याद किया जा सकता है।

५ पाठान्तर-परिशिष्ट नं० ७ में जैनसिद्धान्तभवन आरा की प्रति के पाठान्तर दिए हैं। ये पाठान्तर ग्रन्थ छप जाने के बाद लिये गए हैं, अतः इन्हें ग्रन्थके अन्त में ही प्रबन्ध सुधित कराया है। यद्यपि यह प्रति पूर्ण शुद्ध नहीं है; फिर भी इसके पाठभेद कहीं कहीं मेरे द्वारा सुधारे गए मूलपाठ के संवाचक और कहीं कहीं स्वतन्त्ररूपसे शुद्धपाठ के निर्देशक हैं। यह प्रति अधिक पुरानी नहीं है। इसमें “१४५८३” साइज के २४९ पत्र हैं। पत्र के एक ओर १५ पंक्तियाँ और प्रत्येक पंक्ति में ४९-५० अक्षर हैं।

६ परिशिष्ट-इस ग्रन्थ में निम्नलिखित ७ परिशिष्ट लगाए गए हैं—१ परीक्षामुख सूत्रपाठ। २ प्रमेयकमलमार्तण्डगत अवतरणों की सूची। ३ परीक्षामुख के लाक्षणिकशब्दों की सूची। ४ प्रमेयकमलमार्तण्ड के लाक्षणिकशब्दों की सूची। ५ प्रमेयकमलमार्तण्ड में निर्दिष्ट ग्रन्थ और ग्रन्थकारों की सूची। ६ प्रमेयकमलमार्तण्डगत विशिष्ट शब्दों की सूची। ७ आराकी प्रति के पाठान्तर।

७ परीक्षामुखसूत्रतुलना-यह तुलना प्रस्तावना के अनन्तर सुधित है। इसमें परीक्षामुख के पूर्ववर्ती दिग्भाग, धर्मकीर्ति और अकलङ्क के ग्रन्थ तथा उत्तरवर्ती वादिदेवसूरी और हेमचन्द्रके सूत्र ग्रन्थों से परीक्षामुखसूत्रों की तुलना की गई है। इससे सूत्रों के विन्म-प्रतिविन्म भाव का स्पष्ट बोध हो सकेगा।

८ तुलनात्मक टिप्पण-ग्रन्थके प्रथम अध्याय में अन्य जैन जैनेतर दर्शनग्रन्थों से प्रमेयकमलमार्तण्ड की तुलना करने में सहायक टिप्पण दिए हैं। ऐसे टिप्पण न केवल तुलना में ही उपयोगी होते हैं, किन्तु भावोद्घाटन में भी उनसे पर्याप्त सहायता मिलती है। प्रकाशक की मर्यादा के अनुसार मैंने इन टिप्पणों का प्रथम परिच्छेद लिखकर ही सन्तोष कर लिया है।

९ प्रस्तावना-यद्यपि निर्णयसागर से प्रकाशित ग्रन्थों की प्रस्तावनाएँ संस्कृत में लिखी जाती हैं परन्तु राष्ट्रभाषा की यत्किञ्चित् सेवा करने के विचार से मैं अपने सम्पादित ग्रन्थों की प्रस्तावनाएँ हिन्दी में ही लिखता आया हूँ। इसी-विचारने इस ग्रन्थ की प्रस्तावना को भी हिन्दी में लिखाया है। प्रस्तावना में प्रस्तुत ग्रन्थ और ग्रन्थकारों के समय आदिका उपलब्ध सामग्री के अनुसार विवेचन किया है। प्रभाचन्द्राचार्य का द्वितीय न्यायग्रन्थ न्यायकुसुमदचन्द्र है। उसके द्वितीयभाग की प्रस्तावना का “आचार्य प्रभाचन्द्र” अंश इसमें ज्यों का त्यों दे दिया गया है।

आभार-श्रीमान् पं० सुखलालजी तथा श्री कुन्दनलालजी जैन की प्रेरणा से मैं इस ग्रन्थ के सम्पादन में प्रवृत्त हुआ।

भाषिकचन्द्र ग्रन्थमालाके मन्त्री, सुप्रसिद्ध इतिवृत्तज्ञ पं० नाथूरामजी त्रेमानी न्यायकुसुमदचन्द्र द्वि० भाग की प्रस्तावना को इस ग्रन्थ में भी प्रकाशित करने की उदारतापूर्वक अनुमति दी है। जैन सिद्धान्त भवन आरा के पुस्तकाध्यक्ष श्री पं० भुजबलीजी शास्त्री आराने प्रमेयकमलमार्तण्ड की लिखित प्रति मेजी। श्री पं० सुखलालचन्द्रजी M. A. साहित्याचार्यने शिलालेख का मूल-पाठ पढ़कर सहायता की।

प्रियशिष्य श्री गुलाबचन्द्रजी न्याय-सांख्यतीर्थ और श्री केशरीमलजी न्यायतीर्थने पाठान्तर लेने में तथा परिशिष्ट बनाने में सहायता पहुँचाई।

निर्णयसागर प्रेसके मालिक ने अपनी मर्यादा के अनुसार ही सही, इसका द्वितीय संस्करण निकालने का उत्साह किया। मैं इन सब का हार्दिक आभार मानता हूँ।

भाषकृष्ण पंचमी
वीरनि० संवत् २४६७
१७१११९४१ ई०

सम्पादक—
न्यायाचार्य महेंद्रकुमार
स्या० वि० काशी

॥ प्रस्तावना ॥

सूत्रकार माणिक्यनन्दि

जैनन्यायशास्त्र में माणिक्यनन्दि आचार्य का परीक्षामुखसूत्र आद्य सूत्रग्रन्थ है। प्रमेयरत्नमालाकार अनन्तवीर्याचार्य लिखते हैं कि—

“अकलङ्कवचोम्मोघेः ब्रह्मे येन धीमता ।
न्यायविद्यामृतं तस्यै नमो माणिक्यनन्दिने ॥”

अर्थात्—जिस धीमान् ने अकलङ्क के वचनसागर का म्रषण करके न्याय-विद्यामृत निकाला उस माणिक्यनन्दि को नमस्कार हो। इस उल्लेख से स्पष्ट है कि माणिक्यनन्दि ने अकलङ्कन्याय का मन्थन कर अपना सूत्रग्रन्थ बनाया है। अकलङ्कदेवने जैनन्यायशास्त्र की रूपरेखा बाँधकर तदनुसार दार्शनिकपदार्थों का विवेचन किया है। उनके लघीयलघय, न्यायविनिश्चय, सिद्धिविनिश्चय, प्रमाण-संग्रह आदि न्यायप्रकरणों के आचार से माणिक्यनन्दि ने परीक्षामुखसूत्र की रचना की है। गौखदर्शन में हेतुमुख, न्यायमुख जैसे ग्रन्थ थे। माणिक्यनन्दि जैनन्याय के कोषागार में अपना एकमात्र परीक्षामुखरूपी माणिक्य को ही जमा करके अपना अमरस्थान बना गए हैं। इस सूत्रग्रन्थ की संक्षिप्त पर विषयदसारवाली विदोष शैली अपना अनोखा स्थान रखती है। इसमें सूत्रका यह लक्षण—

“अत्याक्षरमसन्दिग्धं सारवद्विश्रुतो मुख्यम् ।
अस्तोभमनवद्यच्च सूत्रं सूत्रमिदो विदुः ॥”

सर्वाक्षतः पाया जाता है। अकलङ्क के ग्रन्थों के साथही साथ विभाग के न्याय-प्रवेश और धर्मकीर्ति के न्यायबिन्दु का भी परीक्षामुख पर प्रभाव है। उत्तरकालीन वादिदेवसूरी के प्रमाणनयतत्त्वालोकालङ्कार और हेमचन्द्र की प्रमाण-मीमांसा पर परीक्षामुख सूत्र अपना अमिट प्रभाव रखता है। वादिदेवसूरी ने तो अपने सूत्र ग्रन्थके बहु भाग में परीक्षामुख को अपना आदर्श रखा है। उन्होंने प्रमाणनयतत्त्वालोकालङ्कार में नय, सप्तमंगी और नाद का विवेचन बढ़ाकर उसके आठ परिच्छेद बनाए हैं जबकि परीक्षामुख में मात्र प्रमाण के परिकर का ही वर्णन होत्रे से ६ परिच्छेद ही हैं। परीक्षामुख में प्रज्ञाकरगुप्त के भाविकारण-वाद और अतीतकारणवाद की समालोचना की गई है। प्रज्ञाकर गुप्त के चार्तिकालङ्कार का भिष्मवदर राहुलसांकृत्यायन के अद्वैत साहस परिभ्रम के फलस्वरूप उद्भूत हुआ है। उनकी प्रेसकापी में भाविकारणवाद और भूतकारण-वाद का निम्नलिखित शब्दों में समर्थन किया गया है—

“अविद्यमानस्य कारणमिति कोऽर्थः ? तदनन्तरभाविनी तस्य सत्ता, तदेतदा

जन्तुसुभयापेक्षयापि समानम्—यथैव भूतापेक्षया तथा भाव्यपेक्षयापि । नचान्तर्गतेषु तत्त्वे निबन्धनम्, व्यवहितस्य करणत्वात्—

गाढसुप्तस्य विज्ञानं प्रबोधे पूर्ववेदनात् ।
जायते व्यवधानेन कालेनेति विनिश्चितम् ॥
तस्मादन्वयव्यतिरेकाशुविधायित्वं निबन्धनम् ।
कार्यकारणभावस्य तद् भाविन्यपि विद्यते ॥

भावेन च भावो भाविनापि लक्ष्यत एव । मत्सुप्रयुक्तमरिष्टमिति लोके व्यवहारः, यदि मृत्युर्न भाविष्यन्न भवेदेवम्भूतमरिष्टमिति ।”—प्रमाणवार्तिकालङ्कार पृ० १७६ । परीक्षामुख के निम्नलिखित सूत्र में प्रज्ञाकरगुप्त के इन दोनों सिद्धान्तों का खंडन किया गया है—

“भाव्यतीतयोः मरणजाग्रद्वोधयोरपि नारिष्टोद्बोधौ प्रति हेतुत्वम् । तथाप्याराश्रितं हि तद्भावनभावित्वम् ।”—परीक्षामु० ३।६२,६३ ।

छठे अध्याय के ५७ वें सूत्र में प्रभाकर की प्रमाणसंख्या का खंडन किया है । प्रभाकर शुरु का समय ईसा की ८ वीं सदी का प्रारम्भिक भाग है ।

माणिक्यनन्दि का समय—प्रमेयरत्नमालाकार के उल्लेखालुसार माणिक्यनन्दि आचार्य अकलंकदेव के अनन्तरवर्ती हैं । मैं अकलङ्कप्रन्थत्रय की प्रस्तावना में अकलंकदेव का समय ई० ७२० से ७८० तक सिद्ध कर आया हूँ । अकलङ्कदेव के उद्योगक्षय और न्यायविनिश्चय आदि तर्कग्रन्थों का परीक्षामुख पर पर्याप्त प्रभाव है, अतः माणिक्यनन्दि के समयकी पूर्वावधि ई० ८०० निर्वाचनी जा सकती है । प्रज्ञाकरगुप्त (ई० ७२५ तक) प्रभाकर (८ वीं सदी का पूर्वभाग) आदि के मतों का खंडन परीक्षामुख में है, इससे भी माणिक्यनन्दि की उक्त पूर्वावधि का समर्थन होता है । आ० प्रभाचन्द्र ने परीक्षामुख पर प्रमेयकमलमार्तण्डनामक व्याख्या लिखी है । प्रभाचन्द्र का समय ई० की ११ वीं शताब्दी है । अतः इनकी उत्तरावधि ईसा की १० वीं शताब्दी समझना चाहिए । इस लम्बी अवधि को संकुचित करने का कोई निश्चित प्रमाण अभी दृष्टि में नहीं आया । अधिक संभव यही है कि ये विद्यानन्द के समकालीन हों और इसलिए इनका समय ई० ९ वीं शताब्दी होना चाहिए ।

आ० प्रभाचन्द्र

आ० प्रभाचन्द्रके समयविषयक इस निबन्धको वर्गीकरणके ध्यानसे तीन स्थल आगों में बाँट दिया है—१ प्रभाचन्द्र की इतर आचार्यों से तुलना, २ समय-विचार, ३ प्रभाचन्द्र के ग्रन्थ ।

१. प्रभाचन्द्र की इतर आचार्यों से तुलना—

इस तुलनात्मक भागको प्रलेख परम्पराके अपने क्रमविकासको लक्ष्यमें रख-

कर निम्नलिखित उपभागोंमें क्रमशः विभाजित कर दिया है । १ वैदिक दर्शन—वेद, उपनिषद्, स्मृति, पुराण, महाभारत, वैयाकरण, सांख्य योग, वैशेषिक न्याय, पूर्वमीमांसा, उत्तरमीमांसा । २ अवैदिक दर्शन—बौद्ध, जैन-दिगम्बर, श्वेताम्बर ।

(वैदिकदर्शन)

वेद और प्रभाचन्द्र—आ० प्रभाचन्द्रने प्रमेयकमलमार्तण्डमें पुरातनवेद ऋग्वेदसे “पुरुष एवेदं यद्भूतं” “हिरण्यगर्भः समवर्तताम्रे” आदि अनेक वाक्य उद्धृत किये हैं । कुछ अन्य वेदवाक्य भी न्यायकुसुमचन्द्र (पृ० ७२६) में उद्धृत हैं—“प्रजापतिः सोमं राजानमन्वष्टजत्, ततस्त्रयो वेदा अन्वष्टज्यन्त” “रुद्रं वेदकर्तारम्” आदि । न्यायकुसुमचन्द्र (पृ० ७७०) में “आदौ ब्रह्मा मुखतो ब्राह्मणं ससर्ज, बाहुभ्या ऋत्रियमुरुभ्या वैश्यं पश्या शूद्रम्” यह वाक्य उद्धृत है । यह ऋग्वेद के “ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्” आदि सूक्तकी छाया रूप ही है ।

उपनिषत् और प्रभाचन्द्र—आ० प्रभाचन्द्रने अपने दोनों न्यायग्रन्थोंमें ब्रह्मद्वैतवाद तथा अन्य प्रकरणोंमें अनेकों उपनिषदों के वाक्य प्रमाणरूपसे उद्धृत किये हैं । इनमें बृहदारण्यकोपनिषद्, छान्दोग्योपनिषद्, कठोपनिषत्, श्वेताश्वतरोपनिषत्, तैत्तिर्युपनिषत्, ब्रह्मसिन्धुपनिषत्, रामतामिन्धुपनिषत्, जाबालोपनिषत् आदि उपनिषत् मुख्य हैं । इनके अवतरण अवतरणसूची में देखना चाहिये ।

स्मृतिकार और प्रभाचन्द्र—महर्षि मनुकी मनुस्मृति और याज्ञवल्क्यकी याज्ञवल्क्यस्मृति प्रसिद्ध हैं । आ० प्रभाचन्द्रने कारकसाकल्यवादके पूर्वपक्ष (प्रमेयक० पृ० ८) में याज्ञवल्क्यस्मृति (२।२२) का “लिखित साक्षिणो भुक्तिः” वाक्य कुछ शाब्दिक परिवर्तनके साथ उद्धृत किया है । न्यायकुसुमचन्द्र (पृ० ५७५) में मनुस्मृतिका “अशुर्वैर् विहितं कर्म” श्लोक उद्धृत है । न्यायकुसुमचन्द्र (पृ० ६३४) में मनुस्मृतिके “यस्मार्थं पशवः स्रष्टाः” श्लोकका “न हिंस्यात् सर्वा भूतानि” इस कर्मपुराणके वाक्यसे विरोध दिखाया गया है ।

पुराण और प्रभाचन्द्र—प्रभाचन्द्रके प्रमेयकमलमार्तण्ड तथा न्यायकुसुमचन्द्रमें मत्स्यपुराणका “प्रतिमन्वतरश्चैव श्रुतिरन्या विधीयते ।” यह श्लोकंश उद्धृत मिलता है । न्यायकुसुमचन्द्र (पृ० ६३४) में कर्मपुराण (अ० १६) का “न हिंस्यात् सर्वा भूतानि” वाक्य प्रमाणरूपसे उद्धृत किया गया है ।

व्यास और प्रभाचन्द्र—महाभारत तथा गीताके प्रणेता महर्षि व्यास माने जाते हैं । प्रमेयकमलमार्तण्ड (पृ० ५८०) में महाभारत वनपर्व (अ० ३०।२८) से “अज्ञो जन्तुरनीशोऽयमालम्बः सुखदुःखयोः....” श्लोक उद्धृत किया है । प्रमेयकमलमार्तण्ड (पृ० ३६८ तथा ३०९) में भगवद्गीताके निम्नलिखित श्लोक ‘व्यासवचन’ के नामसे उद्धृत हैं—“यथैवास्ति समिद्धोऽग्निः....” [गीता ४।३७] “द्वाविमौ पुरुषौ लोके, उत्तमपुरुषस्तन्यः....” [गीता

१५१६, १७] इसी तरह न्यायकुमुदचन्द्र (पृ० ३५८) में गीता (२१६) का “नामावो विद्यते सतः” अंश प्रमाणरूपसे उद्धृत किया गया है ।

पतञ्जलि और प्रभाचन्द्र—पाणिनिस्त्रके ऊपर महाभाष्य लिखनेवाले ऋषि पतञ्जलिका समय इतिहासकारोंने ईसवी सन् से पहिले माना है । आ० प्रभाचन्द्रने जैनेन्द्रव्याकरणके साथ ही पाणिनिव्याकरण और उसके महाभाष्यका गभीर परिशीलन और अध्ययन किया था । वे शब्दान्मोजभास्करके प्रारम्भमें स्वयं ही लिखते हैं कि—

“शब्दानामनुशासनानि निखिलन्याष्यायताऽहर्निशम्”

आ० प्रभाचन्द्रका पातञ्जलमहाभाष्यका तलस्पर्शा अध्ययन उनके शब्दान्मो-जभास्करमें पद पद पर अलुभूत होता है । न्यायकुमुदचन्द्र (पृ० २७५) में वैयाकरणोंके मतसे गुण शब्दका अर्थ बताते हुये पातञ्जलमहाभाष्य (५११११९) से “यस्य हि गुणस्य भावात् शब्दे द्रव्यविनिवेशः” इत्यादि वाक्य उद्धृत किया गया है । शब्दोंके साधुलासाधुल-विचारमें व्याकरणकी उपयोगिता का समर्थन भी महाभाष्यकी ही शैलीमें किया है ।

भर्तृहरि और प्रभाचन्द्र—ईसाकी ७ वीं शताब्दीमें भर्तृहरि नामके प्रसिद्ध वैयाकरण हुए हैं । इनका वाक्यपदीय ग्रन्थ प्रसिद्ध है । ये शब्दाद्वैतदर्शनके प्रतिष्ठाता माने जाते हैं । आ० प्रभाचन्द्रने प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्याय-कुमुदचन्द्रमें शब्दाद्वैतवादके पूर्वपक्षको वाक्यपदीय की अनेक कारिकाओंको उद्धृत करके ही परिपुष्ट किया है । शब्दोंके साधुल-असाधुल विचार से पूर्वपक्षका खुलासा करनेके लिए वाक्यपदीयकी सरणीका पर्याप्त सहारा लिया है । वाक्य-पदीयके द्वितीयकाण्डमें आए हुए “आख्यातशब्दः” आदि द्वाविध या अष्टविध वाक्यलक्षणोंका सविस्तर खण्डन किया है । इसी तरह प्रभाचन्द्रकी छति जैनेन्द्र-न्यासके अनेक प्रकरणोंमें वाक्यपदीयके अनेक श्लोक उद्धृत मिलते हैं । शब्दा-द्वैतवादके पूर्वपक्षमें वैखरी आदि चतुर्विधवाणीके स्वरूपका निरूपण करते समय प्रभाचन्द्रने जो “स्थानेषु विवृते वायौ” आदि तीन श्लोक उद्धृत किये हैं वे मुद्रित वाक्यपदीयमें नहीं हैं । टीकामें उद्धृत हैं ।

व्यासभाष्यकार और प्रभाचन्द्र—योगसूत्र पर व्यासश्रुति का व्यास-भाष्य प्रसिद्ध है । इनका समय ईसाकी पञ्चम शताब्दी तक समझा जाता है । आ० प्रभाचन्द्रने न्यायकुमुदचन्द्र (पृ० १०९) में योगदर्शनके आधारसे ईश्वरवादका पूर्वपक्ष करते समय योगसूत्रके अनेक उद्धरण दिए हैं । इसके विवेचनमें व्यासभाष्यकी पर्याप्त सहायता ली गई है । अणिमादि अष्टविध ऐश्वर्यका वर्णन योगभाष्यसे मिलता झुलता है । न्यायकुमुदचन्द्रमें योगभाष्यसे “चैतन्यं पुरुषस्य स्वरूपम्” “विच्छक्तिरपरिणामिन्यप्रतिसङ्गमा” आदि वाक्य उद्धृत किये गये हैं ।

ईश्वरकृष्ण और प्रभाचन्द्र—ईश्वरकृष्णकी सांख्यसप्तति या सांख्यकारिका

प्रसिद्ध है। इनका समय ईसाकी दूसरी शताब्दी समझा जाता है। सांख्यदर्शनके मूलसिद्धान्तों का सांख्यकारिकामें संक्षिप्त और स्पष्ट विवेचन है। आ० प्रभाचन्द्रने सांख्यदर्शनके पूर्वपक्षमें सर्वत्र सांख्यकारिकाओंका ही विशेष उपयोग किया है। न्यायकुसुमद्वयमें सांख्यके कुछ वाक्य ऐसे भी उद्धृत हैं जो उपलब्ध सांख्यग्रन्थोंमें नहीं पाये जाते। यथा—“बुद्ध्यवसितमर्थं पुरुषश्चेतयते” “आसर्ग-प्रत्ययदेना बुद्धिः” “प्रतिनियतदेशा दृष्टिरभिव्यज्येत” “प्रकृतिपरिणामः शुद्धं कृष्यान्न कर्म” आदि। इससे ज्ञात होता है कि ईश्वरकृष्णकी कारिकाओंके सिवाय कोई अन्य प्राचीन सांख्य ग्रन्थ प्रभाचन्द्रके सामने था जिससे ये वाक्य उद्धृत किये गए हैं।

माठराचार्य और प्रभाचन्द्र—सांख्यकारिकाकी पुरातन टीका माठर-द्वृति है। इसके रचयिता माठराचार्य ईसाकी चौथी शताब्दीके विद्वान् समझे जाते हैं। प्रभाचन्द्रने सांख्यदर्शनके पूर्वपक्षमें सांख्यकारिकाओंके साथ ही साथ माठरद्वृतिको भी उद्धृत किया है। जहाँ कहीं सांख्यकारिकाओं की व्याख्याका प्रसङ्ग आया है, माठरद्वृतिके ही आचारसे व्याख्या की गई है।

प्रशस्तपाद और प्रभाचन्द्र—ऋणादसूत्र पर प्रशस्तपाद आचार्यका प्रशस्तपादभाष्य उपलब्ध है। इनका समय ईसाकी पाँचवीं शताब्दी माना जाता है। आ० प्रभाचन्द्रने प्रशस्तपादभाष्यकी “एवं चर्मोर्विना धर्मिणामेव निर्देशः कृतः” इस पङ्क्तिको प्रमेयकमलमार्तण्ड (पृ० ५३१) में ‘पदार्थप्रवेशकग्रन्थ’ के नामसे उद्धृत किया है। न्यायकुसुमद्वय तथा प्रमेयकमलमार्तण्ड दोनोंकी षट्-पदार्थपरिष्ठाका यावत् पूर्वपक्ष प्रशस्तपादभाष्य और उसकी पुरातनटीका व्योमवतीसे ही स्पष्ट किया गया है। प्रमेयकमलमार्तण्ड (पृ० १७०) के ईश्वरवादके पूर्वपक्षमें ‘प्रशस्तमतिना च’ लिखकर ‘सर्गादी पुरुषाणां व्यवहारो’ इत्यादि अनुमान उद्धृत है। यह अनुमान प्रशस्तपादभाष्यमें नहीं है। तरवसंप्रह की पङ्क्ति (पृ० ४३) में भी यह अनुमान प्रशस्तमतिके नामसे उद्धृत है। ये प्रशस्तमति, प्रशस्तपादभाष्यकारसे भिन्न मादम होते हैं, पर इनका कोई ग्रन्थ अद्यावधि उपलब्ध नहीं है।

व्योमशिव और प्रभाचन्द्र—प्रशस्तपादभाष्यके पुरातन टीकाकार आ० व्योमशिवकी व्योमवती टीका उपलब्ध है। आ० प्रभाचन्द्रने अपने दोनों ग्रन्थोंमें, न केवल वैशेषिकमतके पूर्वपक्षमें ही व्योमवतीको अपनाया है किन्तु अनेक मतोंके लक्षणमें भी इसका पर्याप्त अनुसरण किया है। यह टीका उनके विशिष्ट अर्थ-यनकी वस्तु थी। इस टीकाके तुलनात्मक अंशोंको न्यायकुसुमद्वयकी टिप्पणीमें देखना चाहिए। आ० व्योमशिवके समयके विषयमें विद्वानोंका मतभेद बला आ रहा है। डॉ० क्रीय इन्हें नवमशताब्दी का कहते हैं तो डॉ० दासगुप्ता इन्हें छठी शताब्दीका। मैं इनके समयका कुछ विस्तार से विचार करता हूँ—

राजशेखरने प्रशस्तपादभाष्यकी ‘रुन्दली’ टीकाकी ‘पंजिका’ में प्रशस्तपाद-

भाष्यकी चार टीकाओंका इस क्रमसे निर्देश किया है—सर्वप्रथम 'व्योमवती' (व्योमशिवाचार्य), तत्पश्चात् 'न्यायकन्दली' (श्रीधर), तदनन्तर 'किरणवली' (उदयन) और उसके बाद 'लीलावती' (श्रीवत्साचार्य)। ऐतिहासपर्यालोचनसे भी राजशेखरका यह निर्देशक्रम संगत जान पड़ता है। यहाँ हम व्योमवतीके रचयिता व्योमशिवाचार्यके विषयमें कुछ विचार प्रस्तुत करते हैं।

व्योमशिवाचार्य शैव थे। अपनी शुद्ध-परम्परा तथा व्यक्तिके विषयमें स्वयं उन्होंने कुछ भी नहीं लिखा। पर रणिपदपुर रानोद, वर्तमान नारोद ग्राम की एक वापी प्रशस्ति * से इनकी गुरुपरम्परा तथा व्यक्तिल-विषयक बहुतसी बातें मात्स्य होती हैं, जिनका कुछ सार इस प्रकार है—

“कदम्बगुहाधिवासी मुनीन्द्रके शंखमठिकाधिपति नामक शिष्य थे, उनके तेर-म्बिपाल, तेरम्बिपालके आमर्दकतीर्थनाथ और आमर्दकतीर्थनाथके पुरन्दरगुरु नामके अतिशय प्रतिभाशाली तार्किक शिष्य हुए। पुरन्दरगुरुने कोई अन्य अवश्य लिखा है; क्योंकि उसी प्रशस्ति-शिलालेखमें अत्यन्त स्पष्टतासे यह उल्लेख है कि—“इनके वचनोंका खण्डन आज भी बड़े बड़े नैयायिक नहीं कर सकते।”† स्वाहादरजाकर आदि ग्रन्थोंमें पुरन्दरके नामसे कुछ वाक्य उद्धृत मिलते हैं, सम्भव है वे पुरन्दर थे ही हों। इन पुरन्दरगुरुको अवन्तिवर्मा उपेन्द्रपुरसे अपने देशको ले गया। अवन्तिवमनि इन्हें अपना राज्यभार सौंप कर वैवरीसा चारण की और इस तरह अपना जन्म सफल किया। पुरन्दरगुरुने मत्तमथूरमें एक बड़ा मठ स्थापित किया। दूसरा मठ रणिपदपुरमें भी इन्होंने स्थापित किया था। पुरन्दरगुरुका कवचशिव और कवचशिवका सदाशिव नामक शिष्य हुआ, जो कि रणिपदपुरके तापसाश्रम में तपःसाधन करता था। सदाशिवका शिष्य हृदयेश और हृदयेशका शिष्य व्योमशिव हुआ, जोकि अच्छा प्रभावशाली, उत्कृष्ट प्रतिभासम्पन्न और समर्थ विद्वान् था।” व्योमशिवाचार्यके प्रभावशाली होनेका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि इनके नामसे ही व्योममन्त्र प्रचलित हुए थे।‡ ये सद्-बुद्धानुपरायण, सुदु-मितभाषी, विजय-नय-संयमके अद्भुत स्थान तथा अग्रतिम प्रतापशाली थे। इन्होंने रणिपदपुरका तथा रणिपदमठका उद्धार एवं सुधार किया था और वहीं एक शिवमन्दिर तथा वापीका भी निर्माण कराया था। इसी वापीपर उक्त प्रशस्ति खरी है।

इनकी विद्वत्ताके विषयमें शिलालेखके ये श्लोक पर्याप्त हैं—

“सिद्धान्तेषु महेष एव नियतो न्यायेऽक्षपादो मुनिः ।
गन्मीरे च कणाकिनस्तु कणभुञ्जशास्त्रे क्षुती जैमिनिः ॥

* प्राचीन लेखपाला दि० भाग शिलालेख नं १०८

† “यसाधुनापि शिषुभैरविक्रमसंति व्याहृत्ये न वचनं नयमार्गविद्धिः ॥”

‡ “अस्य व्योमपदादिमन्त्ररचनाख्याताविधानस्य च ।”-वापीप्रशस्तिः

सांख्येऽनल्पमतिः स्वयं स कपिलो लोकप्रियते सद्गुरुः ।
 बुद्धो बुद्धमते जिनोक्तिषु जिनः को वाय नार्यं कृती ॥
 यद्भूतं यदनागतं यत्पुना किंनित्कचिद्वर्षं (ते) ते ।
 सम्यग्दर्शनसम्पदा तदक्षि परयन् प्रमेयं महत् ॥
 सर्वज्ञः स्फुटमेव कोपि भगवानन्यः क्षितौ सं(शं)करः ।
 वृते किन्तु न शान्तधीर्विषमदप्रौढं वपुः केवलम् ॥”

इन श्लोकोंमें बतलाया है कि ‘व्योमशिवाचार्य शैवसिद्धान्तमें स्वयं शिव, न्यायमें अक्षपाद, वैशेषिक शास्त्रमें कणाद, भीर्मासामें जैमिनि, सांख्यमें कपिल, चार्वाकशास्त्रमें बृहस्पति, बुद्धमतमें बुद्ध तथा जिनमतमें स्वयं जिनदेवके समान थे । अधिक क्या; अतीतानागतवर्तमानवर्ती यावत् प्रमेयोंको अपनी सम्यग्दर्शनसम्पत्तिसे स्पष्ट देखने जानने वाले सर्वज्ञ थे । और ऐसा मात्स्य होता था कि मात्र विषमनेत्र (तृतीयनेत्र) तथा रौद्रशरीर को धारण किए बिना वे पृथ्वी पर दृष्टरे शंकर भगवान् ही अवतारे थे । इनके गगनेश, व्योमशम्भु, व्योनेश, गगन-शक्तिमौलि आदि भी नाम थे ।

शिलालेखके आधारसे समय—व्योमशिवके पूर्ववर्ती चतुर्थगुरु पुरन्दरको अवन्तिवर्मा राजा अपने नगरमें ले गया था । अवन्तिवर्मा के चौबीसे सिकों पर “विजितानिखनिपतिः श्री अवन्तिवर्मा दिवं जयति” लिखा रहता है तथा संवत् २५० पढ़ा गया है * । यह संवत् संभवतः शुभ संवत् है । डॉ० फ्लीड्के मतानुसार शुभ संवत् ई० सन् ३२० की २६ फरवरी को प्रारम्भ होता है † । अतः ५७० ई० में अवन्तिवर्माका अपनी शुद्राको प्रचलित करना इतिहाससिद्ध है । इस समय अवन्तिवर्मा राज्य कर रहे होंगे । तथा ५७० ई० के आसपास ही वे पुरन्दरगुरुको अपने राज्यमें लाए होंगे । ये अवन्तिवर्मा मोखरीबंशीय राजा थे । शैव होने के कारण शिवोपासक पुरन्दरगुरुको अपने यहाँ लाना भी इनका ठीक ही था । इनके समयके सम्बन्ध में दृष्टरा प्रमाण यह है कि—वैसवंशीय राजा हर्षवर्द्धनकी छोटी बहिन राज्यश्री, अवन्तिवर्माके पुत्र प्रहलवर्माको विवाही गई थी । हर्षका जन्म ई० ५९० में हुआ था । राज्यश्री उससे १ या २ वर्ष छोटी थी । प्रहलवर्मा हर्षसे ५-६ वर्ष बड़ा जरूर होगा । अतः उसका जन्म ५८४ ई० के करीब मानना चाहिए । इसका राज्यकाल ई० ६०० से ६०६ तक रहा है । अवन्तिवर्माका यह इकलौता लड़का था । अतः मात्स्य होता है कि ई० ५८४ में अर्थात् अवन्तिवर्माकी उलती अवस्थामें यह पैदा हुआ होगा । अस्तु यहाँ तो इतना ही प्रयोजन है कि ५७० ई० के आसपास ही अवन्तिवर्मा पुरन्दरको अपने यहाँ ले गए थे ।

* देखो, भारतके प्राचीन राजवश, द्वि० भाग पृ० ३७५ ।

† देखो, भारतके प्राचीन राजवश, द्वितीय भाग पृ० २२९ ।

यद्यपि संन्यासियोंकी शिष्य-परम्पराके लिए प्रत्येक पीढीका समय २५ वर्ष मानना आवश्यक नहीं है; क्योंकि कमी कमी २० वर्षमें ही शिष्य-प्रशिष्यों की परम्परा चल जाती है। फिर भी यदि प्रत्येक पीढीका समय २५ वर्ष ही मान लिया जाय तो पुरन्दरसे तीन पीढी के बाद हुए व्योमशिवका समय सन् ६७० के आसपास सिद्ध होता है।

दार्शनिकग्रन्थोंके आधारसे समय—व्योमशिव स्वयं ही अपनी व्योमवती टीका (पृ० १९२) में श्रीहर्षका एक महत्त्वपूर्ण टंगसे उल्लेख करते हैं। यथा—

“अत एव मदीयं शरीरमित्यादिप्रत्ययेष्वात्मानुरागसद्भावेऽपि आत्मनोऽवच्छेदकत्वम् । अहर्षं देवकुलमिति ज्ञाने श्रीहर्षस्येव उभयत्रापि बाधकसद्भावात्, यत्र ह्यनुरागसद्भावेऽपि विशेषणत्वे बाधकमस्ति तत्रावच्छेदकत्वमेव कल्प्यते इति । अस्ति च श्रीहर्षस्य विद्यमानत्वम् । आत्मनि कर्तृत्वकरणत्वयोरसम्भव इति बाधकम्... ।”

यद्यपि इस सन्दर्भका पाठ कुछ छूटा हुआ माख्य होता है फिर भी ‘अस्ति च श्रीहर्षस्य विद्यमानत्वम्’ यह वाक्य खास तौरसे ध्यान देने योग्य है। इसके साफ माख्य होता है कि श्रीहर्ष (605-647 A. D. राज्य) व्योमशिवके समयमें विद्यमान थे। यद्यपि यहाँ यह कहा जा सकता है कि व्योमशिव श्रीहर्षके बहुत बाद होकर भी ऐसा उल्लेख कर सकते हैं; परन्तु जब शिलालेखसे उनका समय ई० सन् ६७० के आसपास है तथा श्रीहर्षकी विद्यमानताका वे इस तरह जोर देकर उल्लेख करते हैं तब उक्त कल्पनाको स्थान ही नहीं मिलता।

व्योमवतीका अन्त परीक्षण—व्योमवती (पृ० ३०६, ३०७, ६६०) में धर्मकीर्तिके प्रमाणवार्तिक (२-११, १२ तथा १-६६, ७२) से कारिकाएँ उद्धृत की गई हैं। इसी तरह व्योमवती (पृ० ६१७) में धर्मकीर्तिके हेतुबिन्दु प्रथमपरिच्छेदके “छिम्बिकरागं परित्यज्य असिणी निमील्य” इस वाक्यका प्रयोग पाया जाता है। इसके अतिरिक्त प्रमाणवार्तिककी और भी बहुतसी कारिकाएँ उद्धृत देखी जाती हैं।

व्योमवती (पृ० ५९१, ५९२) में कुमारिलके भीमांश-श्लोकवार्तिककी अनेक कारिकाएँ उद्धृत हैं। व्योमवती (पृ० १२९) में उद्योतकरका नाम लिया है, ‘मर्तुहरिके शब्दाद्वैतदर्शनका (पृ० २० व) खण्डन किया है और प्रभाकरके स्युतिप्रमोषवादका भी (पृ० ५४०) खंडन किया गया है।

इनमें मर्तुहरि, धर्मकीर्ति, कुमारिल तथा प्रभाकर ये सब प्रायः समसामयिक और ईसाकी सातवीं शताब्दीके विद्वान् हैं। उद्योतकर छठी शताब्दीके विद्वान् हैं। अतः व्योमशिवके द्वारा इन समसामयिक एवं किञ्चित्पूर्ववर्ती विद्वानोंका उल्लेख तथा समालोचनका होना संगत ही है। व्योमवती (पृ० १५) में बाणकी

कादम्बरीका उल्लेख है। वाण हर्षकी समाके विद्वान् ये, अतः इसका उल्लेख भी होना ठीक ही है।

व्योमवती टीकाका उल्लेख करनेवाले परवर्ती ग्रन्थकारोंमें शान्तरक्षित, विश्वानन्द, जयन्त, वाचस्पति, सिद्धर्षि, श्रीधर, उदयन, प्रमाचन्द्र, वादिराज, वादिदेवसूत्रि, हेमचन्द्र तथा गुणरत्न, विशेषरूपसे उल्लेखनीय हैं।

शान्तरक्षितने वैज्ञानिक-सम्मत षट्पदायोंकी परीक्षा की है। उसमें वे प्रशस्त-पादके साथ ही साथ शंकरस्वामी नामक नैयायिकका मत भी पूर्वपक्षरूपसे उपस्थित करते हैं। परंतु अब हम ध्यानसे देखते हैं तो उनके पूर्वपक्षमें प्रशस्त-पादव्योमवतीके शब्द स्पष्टतया अपनी छाप मारते हुए नजर आते हैं। (तुलना-तत्त्वसंग्रह पृ० २०६ तथा व्योमवती पृ० ३४३।) तत्त्वसंग्रहकी पंजिका (पृ० २०६) में व्योमवती (पृ० १२९) के स्वकारणसमवाय तथा सत्तासमवायरूप उत्पत्तिके लक्षणका उल्लेख है। शान्तरक्षित तथा उनके शिष्य कमलशीलका समय ई० की आठवीं शताब्दिका पूर्वार्द्ध है। (देखो, तत्त्वसंग्रहकी भूमिका पृ० xovi)

विद्यानन्द आचार्यने अपनी आप्तपरीक्षा (पृ० २६) में व्योमवती टीका (पृ० १०७) से समवायके लक्षणकी समस्त पदकृत्य उद्धृत की है। 'द्रव्यलोप-लक्षित समवाय द्रव्यका लक्षण है' व्योमवती (पृ० १४९) के इस मन्तव्यकी समालोचना भी आप्तपरीक्षा (पृ० ६) में की गई है। विद्यानन्द ईसाकी नवम-शताब्दीके पूर्वार्द्धवर्ती हैं।

जयन्तकी न्यायमंजरी (पृ० २३) में व्योमवती (पृ० ६२१) के अनर्थ-जलात् स्मृतिको अप्रमाण माननेके सिद्धान्तका समर्थन किया है, साथही पृ० ६५ पर व्योमवती (पृ० ५५६) के फलविशेषणपक्षको स्वीकारकर कारकसामग्रीको प्रमाणमाननेके सिद्धान्तका अनुसरण किया है। जयन्तका समय हम आगे ईसाकी ९ वीं शताब्दीका पूर्वभाग सिद्ध करेंगे।

वाचस्पति मिश्र अपनी तात्पर्यटीकामें (पृ० १०८) प्रत्यक्षलक्षणसूत्रमें 'यत्त' पदका अव्याहार करते हैं तथा (पृ० १०२) लिंगपरामर्श ज्ञानको उपादानबुद्धि कहते हैं। व्योमवतीटीकामें (पृ० ५५६) 'यत्त' पदका प्रयोग प्रत्यक्षलक्षणमें किया है तथा (पृ० ५६१) लिंगपरामर्शज्ञानको उपादानबुद्धि भी कहा है। वाचस्पति मिश्रका समय ८४१ A.D. है।

प्रमाचन्द्र आचार्यने मोक्षनिरूपण (प्रमेयकमलमार्तण्ड पृ० ३०७) आत्म-स्वरूपनिरूपण (न्यायकुसुमचन्द्र पृ० ३४९, प्रमेयकमलमा० पृ० ११०) समवाय-लक्षण (न्यायकुसुम० पृ० २९५, प्रमेयकमलमा० पृ० ६०४) आदिमें व्योमवती (पृ० २०, ३९३, १०७) का पर्याप्त सहारा लिया है। स्वसंवेदनसिद्धिमें व्योमवतीके ज्ञानान्तरवेद्यज्ञानवादका खंडन भी किया है।

श्रीधर तथा उदयनाचार्यने अपनी कन्दली (पृ० ४) तथा किरणावलीमें

व्योमवती (पृ० २० क) के "नवानामात्मविशेषगुणानां सन्तानोऽत्यन्तसुच्छिद्यते सन्तानत्वात्.....यथा प्रथीपसन्तानः ।" इस अनुमानको 'तार्किकः' तथा 'आचार्यः' शब्दके साथ उद्धृत किया है। कन्दली (पृ० २०) में व्योमवती (पृ० १४९) के 'द्रव्यलौपलक्षितः समवायः द्रव्यत्वेन योगः' इस मतकी आलोचना की गई है। इसी तरह कन्दली (पृ० १८) में व्योमवती (पृ० १२९) के 'अनित्यत्वं तु प्रागभावप्रध्वंसाभावोपलक्षिता वस्तुत्वात् ।' इम अनित्यत्वके लक्षणका खण्डन किया है। कन्दली (पृ० २००) में व्योमवती (पृ० ५९३) के 'अनुमान-लक्षणमे विद्याके सामान्यलक्षणकी अनुश्रुति करके संशयादिका व्यवच्छेद करना' तथा स्मरणके व्यवच्छेदके लिये 'द्रव्यादिषु उत्पद्यते' इस पदका अनुवर्तन करना' इन दो मतोंका समालोचन किया है। कन्दलीकार श्रीधरका समय कन्दलीके अन्तमें दिए गए "अधिकदशोत्तरनवशतशकाब्दे" पदके अनुसार ९१३ शक अर्थात् ९९१ ई० है। और उदयनाचार्यका समय ९८४ ई० है।

वादिराज अपने न्यायविनिश्चय-विवरण (लिखित पृ० १११ B. तथा १११ A.) में व्योमवतीसे पूर्वपक्ष करते हैं। वादिदेवसूरि अपने स्याद्वाद्दर्शना-कर (पृ० ३१८ तथा ४१८) में पूर्वपक्षरूपसे व्योमवतीका उद्धरण देते हैं।

सिद्धार्थि न्यायावतारश्रुति (पृ० ९) में, हेमचन्द्र प्रमाणमीमासा (पृ० ७) में तथा गुणरत्न अपनी पददर्शनसमुच्चयकी श्रुति (पृ० ११४ A.) में व्योमवतीके प्रसन्न अनुमान तथा आगम रूप प्रमाणत्रिलकी वैशेषिकपरम्पराका पूर्वपक्ष करते हैं। इन तरह व्योमवतीकी सक्षिप्त तुलनासे ज्ञात हो सकता है कि व्योमवतीका जैनग्रन्थोंसे विशिष्ट सम्बन्ध है।

इस प्रकार हम व्योमशिवका समय शिलालेख तथा उनके ग्रन्थके उल्लेखोंके आधारसे इसी सातवीं शताब्दीका उत्तर भाग अनुमान करते हैं। यदि ये आठवीं या नवमी शताब्दीके विद्वान् होते तो अपने समसामयिक शंकराचार्य और शान्तरक्षित जैसे विद्वानोंका उल्लेख अवश्य करते। हम देखते हैं कि-व्योमशिव शाकरवेदान्तका उल्लेख भी नहीं करते तथा विपर्यय ज्ञानके विषयमें अलौकिका-धर्मत्यागि, सृष्टिप्रमोष आदिका खण्डन करने पर भी शंकरके अनिर्वचनीयार्थ-स्थायित्वावका नाम भी नहीं लेते। व्योमशिव जैसे बहुश्रुत एवं सैकड़ों मतमतान्तरोंका उल्लेख करनेवाले आचार्यके द्वारा किसी भी अष्टमशताब्दी या नवम शताब्दीवर्ती आचार्यके मतका उल्लेख न किया जाना ही उनके सप्तमशताब्दी-वर्ती होनेका प्रमाण है।

अतः डॉ० क्रीचका इन्हें नवमी शताब्दीका विद्वान् लिखना तथा डॉ० एस० एन० दामशुभाका इन्हें छठी शताब्दीका विद्वान् बतलाना ठीक नहीं जँचता।

श्रीधर और प्रभाचन्द्र-प्रशस्तपाद भाष्यकी टीकाओंमें न्यायकन्दली टीकाका भी अपना अच्छा स्थान है। इसकी रचना श्रीधरने शक ९१३

(ई० १९१) में की थी। श्रीधराचार्य अपने पूर्व टीकाकार ज्योमशिवका शब्दा-
खरपरण करते हुए भी उनसे मतभेद प्रदर्शित करनेमें नहीं चूकते। ज्योमशिव
बुद्धपादि विशेष शृणोंकी सन्ततिके असन्तोच्छेदको मोक्ष कहते हैं और उसकी
सिद्धिके लिए 'सन्तानलात्' हेतुका प्रयोग करते हैं (प्रघ० व्यो० पृ० २० क)।
श्रीधर आख्यानिक अद्वैतनिष्ठतिको मोक्ष मानकर भी उसकी सिद्धिके लिए
प्रयुक्त होनेवाले 'सन्तानलात्' हेतुको पार्थिवपरमाणुकी रूपादिसन्तानसे व्यभिचारी
बताते हैं (कन्दली पृ० ४)। आ० प्रभाचन्द्रने भी वैशेषिकोंकी मुक्तिका खंडन
करते समय न्यायकमुद० (पृ० ८२६) और प्रमेयकमल० (पृ० ३१८) में
'सन्तानलात्' हेतुको पाकजपरमाणुओंकी रूपादिसन्तानसे व्यभिचारी बताया है।
इसी तरह और भी एकाधिकस्थलोंमें हम कन्दलीकी आमा प्रभाचन्द्रके ग्रन्थों
पर देखते हैं।

वात्सायन और प्रभाचन्द्र-न्यायसूत्रके ऊपर वात्सायनकृत न्यायभाष्य
उपलब्ध है। इनका समय ईसाकी तीसरी-चौथी शताब्दी समझा जाता है।
आ० प्रभाचन्द्रने प्रमेयकमलमार्तण्ड तथा न्यायकमुदचन्द्रमें इनके न्यायभाष्यका
कहीं न्यायभाष्य और कहीं भाष्य शब्दसे उल्लेख किया है। वात्सायनका नाम न
लेकर सर्वत्र न्यायभाष्यकार और भाष्यकार शब्दोंसे ही इनका निर्देश
किया गया है।

उद्योतकर और प्रभाचन्द्र-न्यायसूत्रके ऊपर न्यायवार्तिक ग्रन्थके
रचयिता आ० उद्योतकर ई० ६ वीं सदी, अन्ततः सातवीं सदीके पूर्वपादके
विद्वान् हैं। इन्होंने दिव्नागके प्रमाणसमुच्चयके खंडनके लिए न्यायवार्तिक
रचाना था। इनके न्यायवार्तिकका खंडन धर्मकीर्ति (ई० ६३५ के बाद) ने
अपने प्रमाणवार्तिकमें किया है। आ० प्रभाचन्द्रने प्रमेयकमलमार्तण्डके सृष्टिकर्तृत्व
प्रकरणके पूर्वपक्षमें (पृ० २६८) उद्योतकरके अनुमानोंको 'वार्तिककारेणापि'
शब्दके साथ उद्धृत किया है। प्रमेयकमलमार्तण्डमें एकाधिकस्थानोंमें 'उद्योतकर'
का नामोल्लेख करके न्यायवार्तिकसे पूर्वपक्ष किए गए हैं। न्यायकमुदचन्द्रके षोड-
शपदार्थवादका पूर्वपक्ष भी उद्योतकरके न्यायवार्तिकसे पर्याप्त पुष्टि पाया है।
'पूर्ववच्छेषवत्' आदि अनुमानसूत्रकी वार्तिककारकृत विविध व्याख्याएँ भी
प्रमेयकमलमार्तण्डमें खंडित हुई हैं। वार्तिककारकृत साधकतमसका "भावा-
भावयोस्तद्वत्ता" यह लक्षण प्रमेयकमलमार्तण्डमें प्रमाणरूपसे उद्धृत है।

महज्जयन्त और प्रभाचन्द्र-महज्जयन्त जरमैयाधिकके नामसे
प्रसिद्ध थे। इन्होंने न्यायसूत्रोंके आधारसे न्यायकलिका, और न्यायमञ्जरी ग्रन्थ
लिखे हैं। न्यायमञ्जरी तो कतिपय न्यायसूत्रोंकी विशद व्याख्या है। अब हम
महज्जयन्तके समयका विचार करते हैं—

जयन्तकी न्यायमञ्जरीका प्रथम संस्करण विजयनगर सीरीजमें सन १८९५
में प्रकाशित हुआ है। इसके संपादक म० म० रंगाधर शास्त्री मानवर्ती हैं।

उन्होंने भूमिकामें लिखा है की—“जयन्तभट्टका गंगेशोपाध्यायने उपमान-चिन्तामणि (पृ० ६१) में जरुशैयायिक शब्दसे उल्लेख किया है, तथा जयन्त-भट्टने न्यायमंजरी (पृ० ३१२) में वाचस्पति मिश्रकी तात्पर्य-टीकासे “जातं च सम्बद्धं चैत्येकः कालः” यह वाक्य ‘आचार्यैः’ करके उद्धृत किया है। अतः जयन्तका समय वाचस्पति (841 A. D.) से उत्तर तथा गंगेश (1175 A. D.) से पूर्व होना चाहिये।” इन्हींका अनुसरण करके न्यायमंजरीके द्वितीय संस्करणके सम्पादक पं० सूर्यनारायणजी शुकुने, तथा ‘संस्कृतसाहित्यका संक्षिप्त इतिहास’के लेखकोने भी जयन्तको वाचस्पतिका परवर्ती लिखा है। ख० डॉ० शतीशचन्द्र विद्याभूषण भी उक्त वाक्यके आधार पर इनका समय ९ वीं से ११ वीं शताब्दी तक मानते थे*। अतः जयन्तको वाचस्पतिका उत्तरकालीन माननेकी परम्पराका आधार म० म० गंगाधर शास्त्री-द्वारा “जातं च सम्बद्धं चैत्येकः कालः” इस वाक्यको वाचस्पति मिश्रका लिख देना ही मालूम होता है। वाचस्पति मिश्रने अपना समय ‘न्याय-सूची निबन्ध’ के अन्तमें स्वयं दिया है। यथा—

“न्यायसूचीनिबन्धोऽयमकारि सुधियां मुदे ।

श्रीवाचस्पतिमिश्रेण वसंकवसुवत्सरे ॥”

इस श्लोकमें ८९८ वत्सर लिखा है ।

म० म० विन्ध्येश्वरीप्रसादजीने ‘वत्सर’ शब्दसे शकसंवत् लिया है†। डॉ० शतीशचन्द्र विद्याभूषण विक्रम संवत् लेते हैं‡। म० म० गोपीनाथ कविराज लिखते हैं§ कि ‘तात्पर्यटीकाकी परिशुद्धिटीका बनानेवाले आचार्य उदयनने अपनी ‘लक्षणवली’ शक सं० ९०६ (984 A. D.) में समाप्त की है। यदि वाचस्पतिका समय शक सं० ८९८ माना जाता है तो इतनी जल्दी उस पर परिशुद्धि जैसी टीकाका बन जाना संभव मालूम नहीं होता ।

अतः वाचस्पतिमिश्रका समय विक्रम संवत् ८९८ (841 A. D.) प्रायः सर्वसम्मत है। वाचस्पतिमिश्रने वैशेषिकदर्शनको छोड़कर प्रायः सभी दर्शनों पर टीकाएँ लिखीं हैं। सर्वप्रथम इन्होंने मंडनमिश्रके विधिविवेक पर ‘न्यायकणिका’ नामकी टीका लिखी हैं, क्योंकि इनके दूसरे ग्रन्थोंमें प्रायः इसका निर्देश है। उसके बाद मंडनमिश्रकी ब्रह्मसिद्धिकी व्याख्या ‘ब्रह्मतत्त्वसमीक्षा’ तथा ‘तत्त्वविन्दु’, इन दोनों ग्रन्थोंका निर्देश तात्पर्य-टीकामें मिलता है, अतः इनके बाद ‘तात्पर्य-टीका’ लिखी गई। तात्पर्य टीकाके साथही ‘न्यायसूची-निबन्ध’ लिखा

* हिस्ट्री ऑफ दि इण्डियन लॉजिक, पृ० १४६ ।

† न्यायवास्तिक-भूमिका, पृ० १४५ ।

‡ हिस्ट्री ऑफ दि इण्डियन लॉजिक, पृ० १३३ ।

§ हिस्ट्री पब्लिशिंग हाउस ऑफ न्यायवैशेषिक लिटरेचर Vol. III, पृ० १०१ ।

होगा; क्योंकि न्यायसूत्रोंका निर्णय तात्पर्य-टीकामें अत्यन्त अपेक्षित है । 'साख्यतत्त्वकौमुदी' में तात्पर्य-टीका उद्धृत है, अतः तात्पर्य-टीकाके बाद 'साख्य-तत्त्वकौमुदी' की रचना हुई । योगभाष्यकी तत्त्ववैशारदी टीकामें 'साख्यतत्त्व-कौमुदी' का निर्देश है, अतः निर्दिष्ट कौमुदीके बाद 'तत्त्ववैशारदी' रची गई । और इन सभी ग्रन्थोंका 'भामती' टीकामें निर्देश होनेसे 'भामती' टीका सबके अन्तमें लिखी गई है ।

जयन्त वाचस्पति मिश्रके समकालीन वृद्ध हैं—वाचस्पतिमिश्र अपनी आद्यकृति 'न्यायकणिका' के मङ्गलाचरणमें न्यायमञ्जरीकारको बड़े महत्त्व-पूर्ण शब्दोंमें गुरुरूपसे स्मरण करते हैं । यथा—

“अज्ञानतिमिरशमनीं परदमनीं न्यायमञ्जरीं शचिराम् ।
प्रसवित्रे प्रभवित्रे विद्यातरवे नमो गुरुवे ॥”

अर्थात्—जिनने अज्ञानतिमिरका नाश करनेवाली, प्रतिवाधियोंका दमन करने-वाली, शचिर न्यायमञ्जरीको जन्म दिया उन समर्थ विद्यातरु गुरुको नमस्कार हो ।

इस श्लोकमें स्मृत 'न्यायमञ्जरी' भट्ट जयन्तकृत न्यायमञ्जरी जैसी प्रसिद्ध 'न्यायमञ्जरी' ही होनी चाहिये । अभी तक कोई दूसरी न्यायमञ्जरी तो छुनने में भी नहीं आई । जब वाचस्पति जयन्तको गुरुरूपसे स्मरण करते हैं तब जयन्त वाचस्पति के उत्तरकालीन कैसे हो सकते हैं । यद्यपि वाचस्पतिने तात्पर्य-टीकामें 'त्रिलोचनगुरुजीत' इत्यादि पद देकर अपने गुरुरूपसे 'त्रिलोचन' का उल्लेख किया है, फिर भी जयन्तको उनके गुरु अथवा गुरुसम होने में कोई वाधा नहीं है; क्योंकि एक व्यक्तिके अनेक गुरु भी हो सकते हैं ।

अभी तक 'जातश्च सम्बद्धं चेत्येकः कालः' इस वचनके आधार पर ही जयन्तको वाचस्पतिका उत्तरकालीन माना जाता है । पर, यह वचन वाचस्पतिकी तात्पर्य-टीकाका नहीं है, किन्तु न्यायवार्तिककार श्री उद्योतकरका है (न्यायवार्तिक पृ० २३६), जिस न्यायवार्तिक पर वाचस्पतिकी तात्पर्य-टीका है । इनका समय धर्मकीर्तिसे पूर्व होना निर्भिबाद है ।

म० म० गोपीनाथ कविराज अपनी 'हिस्ट्री एण्ड विब्लोग्राफी ऑफ न्यार्य वैशेषिक लिटरेचर' में लिखते हैं* कि—“वाचस्पति और जयन्त समकालीन होने चाहिए, क्योंकि जयन्तके ग्रन्थों पर वाचस्पतिका कोई असर देखने में नहीं आता ।” “जातश्च” इत्यादि वाक्यके विषय में भी उन्होंने सन्देह प्रकट करते हुए लिखा है कि—“यह वाक्य किसी पूर्वाचार्य का होना चाहिये ।” वाचस्पतिके पहले ही शंकरस्वामी आदि नैयायिक हुए हैं, जिनका उल्लेख तत्त्व-संग्रह आदि ग्रन्थोंमें पाया जाता है ।

म० म० गङ्गाधर शास्त्रीने जयन्तको वाचस्पतिका उत्तरकालीन मानकर

* सरस्वती भवन सीरीज III पार्ट ।

न्यायमञ्जरी (पृ० १२०) में उद्धृत 'यज्ञेनानुमितोऽप्यर्थः' इस पद्यको टिप्पणीमें 'भामती' टीकाका लिख दिया है। पर वस्तुतः यह पद्य वाक्यपदीय (१-३४) का है और न्यायमञ्जरी की तरह भामती टीकामें भी उद्धृत ही है, मूलका नहीं है।

न्यायसूत्रके प्रत्यक्ष-रक्षणसूत्र (१-१-४) की व्याख्यामें वाचस्पति मिश्र लिखते हैं कि—'व्यवसायात्मक' पदसे सविकल्पक प्रत्यक्षका ग्रहण करना चाहिये तथा 'अव्यपदेश्य' पदसे निर्विकल्पक ज्ञानका। संशयज्ञानका निराकरण तो 'अव्यभिचारी' पदसे हो ही जाता है, इसलिये संशयज्ञानका निराकरण करना 'व्यवसायात्मक' पदका मुख्य कार्य नहीं है। यह बात मैं 'गुरुकीर्त मार्ग' का अनुगमन करके कह रहा हूँ। इसी तरह कोई व्याख्याकार 'अयमश्वः' इत्यादि शब्दसंज्ञा ज्ञानको उभययज्ञान कहकर उसकी प्रत्यक्षताका निराकरण करनेके लिये अव्यपदेश्य पदकी सार्थकता बताते हैं। वाचस्पति 'अयमश्वः' इस ज्ञानको उभययज्ञान न मानकर ऐन्द्रियक कहते हैं। और वह भी अपने शुकके द्वारा उपदिष्ट इस गाथाके आधार पर—

शब्दजत्वेन शब्दञ्ज्ञेत् प्रत्यक्षं चाक्षजत्वतः ।

स्पष्टग्रहरूपत्वात् युक्तमैन्द्रियकं हि तत् ॥

इसलिये वे 'अव्यपदेश्य' पदका प्रयोजन निर्विकल्पका संग्रह करना ही बतलाते हैं।

न्यायमञ्जरी (पृ० ७८) में 'उभययज्ञानका व्यवच्छेद करना अव्यपदेश्यपदका कार्य है' इस मतका 'आचार्याः' इस शब्दके साथ उल्लेख किया गया है। उसपर व्याख्याकारकी अनुपपत्ति दिखाकर न्यायमञ्जरीकारने उभययज्ञानका खंडन किया है।

म० म० गंगाधरशास्त्रीने इस 'आचार्याः' पदके नीचे 'तात्पर्यटीकायां वाचस्पतिमिश्राः' यह टिप्पणी की है। यहाँ यह विचारणीय है कि—यह मत वाचस्पति मिश्र का है या अन्य किसी पूर्वोक्तकार्यका ? तात्पर्य-टीका (पृ० १४८) में तो स्पष्ट ही उभययज्ञान नहीं मानकर उसे ऐन्द्रियक कहा है। इसलिये वह मत वाचस्पतिको तो नहीं है। व्योमवती* टीका (पृ० ५५५) में

* "न, इन्द्रियसहकारिणा शब्देन यत्कल्पते तस्य व्यवच्छेदाद्यत्वात्, तथा अक्षय-समयो रूप पश्यन्मपि चक्षुषा रूपमिति न जानीते रूपमिति शब्दोच्चारणान्तर प्रतिपद्यत इत्युभयं शक्यं; चक्षु च शब्देन्द्रिययोरेकस्मिन् काले व्यापाराऽसम्भवाद्बुद्धमेतत् । तथाहि-मनसाऽभिषिक्त न श्रोत्र शब्दं शृणोति धुनः क्रियाक्रमेण चक्षुषा सम्बन्धे सति रूपग्रहणम् । न च शब्दज्ञानस्यैतावत्कालमवसान सम्भवतीति कथमुभयं शक्यम् ? अत्रैका श्रोत्रसन्धेः मनसि कियोपज्ञा विभागभारभवे...ततः स्वज्ञानसहायशब्दसहकारिणा चक्षुषा रूपज्ञानश्रुतयत्ते इत्युभयं शक्यम् । यदि वा...भवत्येवमयं शक्यम्"।

ग्रन्थ० व्यो० पृ० ५५५ ।

उभयजज्ञानका स्पष्ट समर्थन है, अतः यह मत व्योमशिवाचार्यका हो सकता है। व्योमवतीमें न केवल उभयजज्ञानका समर्थन ही है किन्तु उसका व्यवच्छेद भी अव्यपदेश्य पदसे किया है। हाँ, उसपर जो व्याख्याकार की अनुपपत्ति है वह कदाचित् वाचस्पतिकी तरफ लग सकती है; सो भी ठीक नहीं; क्योंकि वाचस्पतिने अपने गुरुकी जिस गाथाके अनुसार उभयजज्ञानको ऐन्द्रियक माना है, उससे साफ मालूम होता है कि वाचस्पतिके गुरुके सामने उभयजज्ञानको भान-नेवाले आचार्य (संभवतः व्योमशिवाचार्य) की परम्परा थी, जिसका खण्डन वाचस्पतिके गुरुने किया। और जिस खण्डनको वाचस्पतिने अपने गुरुकी गाथाका प्रमाण देकर तात्पर्य-टीकामें स्थान दिया है।

इसी तरह तात्पर्य-टीकामें (पृ० १०२) 'यद्वा ज्ञानं तदा हानोपादानोपेक्षाद्वन्द्वयः फलम्' इस भाष्यका व्याख्यान करते हुए वाचस्पति मिश्रने उपादेयताज्ञानको 'उपादान' पदसे लिया है और उसका क्रम भी 'तोयालोचन, तोयविकल्प, दृष्टतज्जातीयसंस्कारोद्बोध, स्मरण, 'तज्जातीयं चैदम्' इत्याकारकपरामर्श' इत्यादि बताया है।

न्यायमञ्जरी (पृ० ६६) में इसी प्रकरणमें शङ्का की है कि—'प्रथम आलोचन-ज्ञानका फल उपादानादिवृद्धि नहीं हो सकती, क्योंकि उसमें कई क्षणोंका व्यवधान पड़ जाता है' ? इसका उत्तर देते हुए मञ्जरीकारने 'आचार्याः' शब्द लिखकर 'उपादेयताज्ञानको उपादानवृद्धि कहते हैं' इस मतका उल्लेख किया है। इस 'आचार्याः' पद पर भी म० म० गङ्गाधर शास्त्रीने 'न्यायवार्तिक-तात्पर्यटीकायां वाचस्पतिमिश्राः' ऐसा टिप्पण किया है। न्यायमञ्जरीके द्वितीय संस्करणके संपादक पं० सूर्यनारायणजी न्यायाचार्यने भी उन्हींका अनुसरण करके उसे बड़े टाइटनीमें हेडिंग देकर छपाया है। मञ्जरीकारने इस मतके बाद भी एक व्याख्याताका मत दिया है। जो इस परामर्शात्मक उपादेयता-ज्ञानको नहीं मानता। यहाँ भी यह विचारणीय है कि—यह मत स्वयं वाचस्पतिक है या उनके पूर्ववर्ती उनके गुरुका ? यद्यपि यहाँ उन्होंने अपने गुरुका नाम नहीं लिया है, तथापि जब व्योमवती* जैसी प्रशस्तपादकी प्राचीन टीका (पृ० ५६१) ने इसका स्पष्ट समर्थन है, तब इस मतकी परम्परा भी प्राचीन ही मानना होगी और 'आचार्याः' पदसे वाचस्पति न लिए जाकर व्योमशिव जैसे कोई प्राचीन आचार्य लेना होंगे। मालूम होता है म० म० गङ्गाधर शास्त्रीने "जातञ्च स्मथर्द्धं चैत्येकः फालः" इस वचनको वाचस्पतिका माननेके कारण ही एक दो स्थलों में 'आचार्याः' पद पर 'वाचस्पतिमिश्राः' ऐसी

* "द्रव्यादिजातीयस पूर्वं सुखदुःखसाधनत्वोपलब्धेः तन्मानानन्तर यथा द्रव्यादिजातीयं तत्तत्सुखसाधनमित्त्वविनाभावस्मरणम्, तथा चैव द्रव्यादिजातीयमिति परं-मर्शानन्द, तस्मात् सुखसाधनमिति निमित्तव्ययः तत् उपादेयज्ञानम्" —अश० व्यो० पृ० ५६१।

टिप्पणी कर दी है, जिसकी परम्परा चलती रही। हाँ, म० म० गोपीनाथ कविराजने अवश्य ही उसे सन्देह कोटिमें रखा है।

भट्ट जयन्तकी समयावधि-जयन्त मंजरीमें धर्मकीर्तिके मतकी समा-लोचनाके साथ ही साथ उनके टीकाकार धर्मोत्तरकी आदिवाक्यकी चर्चाको स्थान देते हैं। तथा प्रज्ञाकरगुप्तके 'एकमेवेदं हर्षविषादाद्यनेकाकार-विवर्त्तं पद्म्यामः तत्र यथेष्टं संज्ञाः क्रियन्ताम्' (भिन्न राहुल्लीकी वार्तिकालंकारकी प्रेसकॉपी पृ० ४२९) इस वचनका खंडन करते हैं, (न्यायमंजरी पृ० ७४)।

भिन्न राहुल्लीने टिचेटियन गुप्तपरम्पराके अनुसार धर्मकीर्तिका समय ई० ६२५, प्रज्ञाकरगुप्तका ७००, धर्मोत्तर और रविगुप्तका ७२५ ईस्वी लिखा है। जयन्तने एक जगह रविगुप्तका भी नाम लिया है। अतः जयन्तकी पूर्वावधि ७६० A. D. तथा उत्तरावधि ८४० A. D. होनी चाहिए। क्योंकि वाचस्पतिका न्यायसूचीविबन्ध ८४१ A. D. में बनाया गया है, इसके पहिले भी वे ब्रह्मसिद्धि, तत्त्वविन्दु और तात्पर्यटीका लिख चुके हैं। संभव है कि वाचस्पतिने अपनी आद्यकृति न्यायकणिका ८१५ ई० के आसपास लिखी हो। इस न्याय-कणिकामें जयन्तकी न्यायमंजरीका उल्लेख होनेसे जयन्तकी उत्तरावधि ८४० A. D. ही मानना समुचित ज्ञात होता है। यह समय जयन्तके पुत्र अभिनन्द द्वारा भी गई जयन्तकी पूर्वजावलीसे भी संगत बैठता है। अभिनन्द अपने कादम्बरीकथासारमें लिखिते हैं कि-

“भारद्वाज कुलमें शक्ति नामका गौड़ ब्राह्मण था। उसका पुत्र मित्र, मित्रका पुत्र शक्तिस्वामी हुआ। यह शक्तिस्वामी कर्कोटवंशके राजा मुकापीड ललिता-दिलके मंत्री थे। शक्तिस्वामीके पुत्र कल्याणस्वामी, कल्याणस्वामीके पुत्र चन्द्र तथा चन्द्रके पुत्र जयन्त हुए, जो नवशक्तिकारके नामसे मशहूर थे। जयन्तके अभिनन्द नामका पुत्र हुआ।”

कादम्बरीके कर्कोट वंशीय राजा मुकापीड ललितादिलका राज्य काल ७३३ से ७६८ A. D. तक रहा है*। शक्तिस्वामी के, जो अपनी श्रौढ़ अवस्थामें मञ्जी होंगे, अपने मन्त्रितलकालके पहिले ही ई० ७२० में कल्याणस्वामी उत्पन्न हो चुके होंगे। इसके अनन्तर यदि प्रत्येक पीढीका समय २० वर्ष भी मान लिया जाय तो कल्याण स्वामिके ईस्वी सन् ७४० में चन्द्र, चन्द्रके ई० ७६० में जयन्त उत्पन्न हुए और उन्होंने ईस्वी ८०० तकमें अपनी 'न्यायमंजरी' बनाई होगी। इसलिये वाचस्पतिके समयमें जयन्त वृद्ध होंगे और वाचस्पति इन्हें आबर की दृष्टिसे देखते होंगे। यही कारण है कि उन्होंने अपनी आद्यकृतिमें न्यायमंजरीकारका स्मरण किया है।

* देखो, संस्कृतसाहित्यका इतिहास, परिशिष्ट (ख) पृ० १५।

जयन्तके इस समयका समर्थक एक प्रबल प्रमाण यह है कि-हरिभद्रसूरिने अपने षड्वर्षानसमुच्चय (श्लो० २०) में न्यायमंजरी (विजयानगर सं० पृ० १२९) के—

“गम्भीरगर्जितारम्भनिर्मिन्नगिरिगह्वराः ।
रोलम्बगवलव्यालतमालमलिनत्विषः ॥
त्वङ्गच्छदिल्लतासङ्गपिशङ्गोत्तुङ्गविग्रहाः ।
वृष्टिं व्यभिचरन्तीह नैवंप्रायाः पयोमुचः ॥”

इन दो श्लोकोंके द्वितीय पादोंको जैसाक्य तैसा शामिल कर लिया है । प्रसिद्ध इतिवृत्तज्ञ मुनि जिनविजयजीने ‘जैन साहित्यसंशोधक’ (भाग १ अंक १) में अनेक प्रमाणोंसे, खासकर उद्योतनसूरिकी कुवलयमाला कथामें हरिभद्रका पुरुषरूपसे उल्लेख होनेके कारण हरिभद्रका समय ई० ७०० से ७७० तक निर्धारित किया है । कुवलयमाला कथाकी समाप्ति शक ७०० (ई० ७७८) में हुई थी । मेरा इस विषयमें इतना संशोधन है कि उस समयकी आयु-स्थिति देखते हुए हरिभद्रकी निर्धारित आयु स्वल्प मालूम होती है । उनके समयकी उत्पत्ति ई० ८१० तक माननेसे वे न्यायमंजरीको देख सकेंगे । हरिभद्र जैसे सैकड़ों प्रकरणोंके रचयिता विद्वानके लिए १०० वर्ष जीना अस्वाभाविक नहीं हो सकता । अतः ई० ७१० से ८१० तक समयवाले हरिभद्रसूरिके द्वारा न्यायमंजरीके श्लोकोंका अपने प्रन्थमें शामिल किया जाना जयन्तके ७६० से ८४० ई० तकके समयका प्रबल साधकप्रमाण है ।

आ० प्रभाचन्द्रने वात्सायनभाष्य एवं न्यायवार्तिककी अपेक्षा जयन्तकी न्यायमंजरी एवं न्यायकलिका ही अधिक परिशीलन एवं समुचित उपयोग किया है । षोडशपदार्थके निरूपणमें जयन्तकी न्यायमंजरीके ही शब्द अपनी आभा दिखाते हैं । प्रभाचन्द्रको न्यायमंजरी स्वभ्यस्त थी । वे कहीं कहीं मंजरीके ही शब्दोंको ‘तथा चाह भाष्यकारः’ लिखकर उद्धृत करते हैं । भूतनैतन्ववादके पूर्वपक्षमें न्यायमंजरी में ‘अपि च’ करके उद्धृत की गई १७ कारिकाएँ न्यायकुसुमदन्त्रमें भी ज्योंकी त्यों उद्धृत की गई हैं । जयन्तके कारकसाकल्यका सर्वप्रथम खण्डन प्रभाचन्द्रने ही किया है । न्यायमंजरीकी निम्नलिखित तीन कारिकाएँ भी न्यायकुसुमदन्त्रमें उद्धृत की गई हैं ।

(न्यायकुसुमद० पृ० ३३६) “ज्ञातं सम्यगसम्यग्वा यन्मोक्षाय भवाय वा ।

तत्प्रमेयमिदानीं न प्रमाणार्थमात्रकम् ॥” [न्यायमं० पृ० ४४७]

(न्यायकुसुमद० पृ० ४९१) “भूयोऽवयवसमान्ययोगे यद्यपि मन्थते ।

सादृश्यं तस्य तु ज्ञातिः पृथीते प्रतियोगिनि ॥” [न्यायमं० पृ० १४६]

(न्यायकुसुमद० पृ० ५११) “नन्वस्तेषु ग्रहद्वारवर्तिनः संगतिग्रहः ।

भावेनाभावसिद्धौ तु कथमेतद्भविव्यति ॥” [न्यायमं० पृ० ३८]

इस तरह न्यायकुमुदचन्द्रके आधारभूत ग्रन्थोंमें न्यायमंजरीका नाम लिखा जा सकता है ।

वाचस्पति और प्रभाचन्द्र-बह्दर्शनटीकाकार वाचस्पतिने अपना न्यायसूचीनिबन्ध ई० ८४१ में समाप्त किया था । इनने अपनी तात्पर्यटीका (पृ० १६५) में सांख्यों के अनुमान के मात्रामात्रिक आदि सात भेद गिनाए हैं और उनका खंडन किया है । न्यायकुमुदचन्द्र (पृ० ४६२) में भी सांख्योंके अनुमानके इन्हीं सात भेदोंके नाम निर्दिष्ट हैं । वाचस्पतिने शाकरभाष्यकी भामती टीकामें अविद्यासे अविद्याके उच्छेद करने के लिए “यथा पयः पयोऽन्तरं जरयति स्वयं च जीर्यति, विषं विपान्तरं ज्ञमयति स्वयं च ज्ञाम्यति, यथा वा कतकरजो रजोऽन्तराविले पाथसि प्रक्षिप्तं रजोन्तराणि भिन्दत् स्वयमपि भिद्यमानमनाविलं पाथः करोति...” इत्यादि दृष्टान्त दिए हैं । प्रभाचन्द्रने प्रमेयकमलमार्तण्ड (पृ० ६६) में इन्हीं दृष्टान्तों को पूर्वपक्ष में उपस्थित किया है । न्यायकुमुदचन्द्रके विधिवादके पूर्वपक्षमें विधिविद्वेकके साथही साथ उसकी वाचस्पतिकृत न्यायकणिका टीकाका भी पर्याप्त सादृश्य पाया जाता है । वाचस्पतिके उक्त ई० ८४१ समयका साधक एक प्रमाण यह भी है कि इन्होंने तात्पर्यटीका (पृ० २१७) में शान्तरक्षितके तत्त्वसमूह (श्लो० २००) से निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किया है—“नर्तकीभ्रूलताक्षेपो न ह्येकः पारमार्थिकः । अनेकाणुसमूहत्वात् एकलं तस्य कल्पितम् ॥” शान्तरक्षितका समय ई० ७६२ है ।

शाबर ऋषि और प्रभाचन्द्र-जैमिनिस्वर पर शाबरभाष्य लिखने वाले महर्षि शाबरका समय ईसाकी तीसरी सदी तक समझा जाता है । शाबरभाष्यके ऊपर ही कुमारिल और प्रभाकर ने व्याख्याएँ लिखी हैं । आ० प्रभाचन्द्रने शब्द-निसलवाद, वेदापौरुषेयलवाद, आदिमें कुमारिल के श्लोकवार्तिकके साथ ही साथ शाबरभाष्य की दलीलों को भी पूर्वपक्षमें रखा है । शाबरभाष्य से ही “गौरिल्लजकः शब्दः ? गकारौकारविसर्जनीया इति भगवानुपवर्ष” यह उपवर्ष ऋषि का मत प्रमेयकमलमार्तण्ड (पृ० ४६४) में उद्धृत किया गया है । न्यायकुमुदचन्द्र (पृ० २७५) में शब्दको बायवीय माननेवाले विद्वान्कार भीमांसकोंका मत भी शाबरभाष्यसे ही उद्धृत हुआ है । इसके सिवाय न्यायकुमुदचन्द्र में शाबरभाष्यके कई वाक्य प्रमाणरूपमें और पूर्वपक्ष में उद्धृत किए गए हैं ।

कुमारिल और प्रभाचन्द्र-भट्ट कुमारिलने शाबरभाष्य पर भीमांशालोकवार्तिक, तन्त्रवार्तिक और टुप्टीका नामकी व्याख्या लिखी है कुमारिलने अपने तन्त्रवार्तिक (पृ० २५१-२५३) में वाक्यपदीयके निम्नलिखित श्लोककी समालोचना की है—

“अस्वर्थः सर्वशब्दानामिति प्रत्याप्यलक्षणम् ।

अपूर्वदेवतास्वैः सममाहूर्णवादिषु ॥” [वाक्यप० २।१२१]

इसी तरह तन्त्रवार्तिक (पृ० २०५-१०) में वाक्यपदीय (१।७) के

“तत्त्वावबोधः शब्दानां नास्ति व्याकरणादते” अंश उद्धृत होकर खंडित हुआ है। भीर्मांशांश्लोकवार्तिक (वाक्याधिकरण श्लो० ५१) में वाक्यपदीय (१११-२) ने निर्दिष्ट दशविध या अष्टविध वाक्यलक्षणोंका समालोचन किया गया है। भर्तृहरिके स्फोटवादकी आलोचना भी कुमारिल्लने भीर्मांशांश्लोकवार्तिकके स्फोटवादमें बड़ी प्रखरतासे की है। चीनी यात्री इत्सिंगने अपने यात्राविवरणमें भर्तृहरिका मृत्युसमय ई० ६५० बताया है अतः भर्तृहरिके समालोचक कुमारिल्लका समय ईस्वी ७ वीं शताब्दी का उत्तर भाग मानना समुचित है। आ० प्रभाचन्द्रने प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्यायकुसुमदण्डमें सर्वज्ञवाद, शब्दनित्यत्ववाद, वेदापौरुषेयत्ववाद, आगमादिप्रमाणोंका विचार, प्रामाण्यवाद आदि प्रकरणोंमें कुमारिल्लके श्लोकवार्तिकसे पचासों कारिकाएँ उद्धृत की हैं। शब्दनित्यत्ववाद आदि प्रकरणोंमें कुमारिल्लकी युक्तियोंका तिलतिलेवार सप्रमाण उत्तर दिया गया है। कुमारिल्लने आत्माको व्यावृत्त्यनुगमात्मक या नित्यानित्यात्मक माना है। प्रभाचन्द्रने आत्माकी नित्यानित्यात्मकताका समर्थन करते समय कुमारिल्लकी “तस्मादुभयद्वानेन व्यावृत्त्यनुगमात्मकः” आदि कारिकाएँ अपने पक्षके समर्थनमें भी उद्धृत की हैं। इसी तरह सृष्टिकर्तृत्वखंडन, ब्रह्मवादखंडन, आदिमें प्रभाचन्द्र कुमारिल्लके साथ साथ चलते हैं। सारांश यह है कि प्रभाचन्द्रके सामने कुमारिल्लका भीर्मांशांश्लोकवार्तिक एक विशिष्ट ग्रन्थके रूप में रहा है। इसीलिए इसकी आलोचना भी जमकर की गई है। श्लोकवार्तिक की मष्ट उन्मेषकृत तात्पर्यटीका असी ही प्रकाशित हुई है। इस टीकाका आलोचन भी प्रभाचन्द्रने सूच किया है। सर्वज्ञवादमें कुछ कारिकाएँ ऐसी भी उद्धृत हैं जो कुमारिल्लके मौजूदा श्लोकवार्तिकमें नहीं पाई जाती। संभव है ये कारिकाएँ कुमारिल्लकी बृहटीका या अन्य किसी ग्रन्थ की हों।

मंडनमिश्र और प्रभाचन्द्र-आ० मंडनमिश्रके भीर्मांशांश्लोकमणी, विधिविवेक, भावनाविवेक, नैष्कर्म्यसिद्धि, ब्रह्मसिद्धि, स्फोटसिद्धि आदि ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। इनका समय ईसाकी ८ वीं शताब्दीका पूर्वभाग है। आचार्य विद्यानन्दने (ई० ९ वीं शताब्दी का पूर्वभाग) अपनी अष्टसहस्रीमें मण्डनमिश्र का नाम लिया है। अतः मण्डनमिश्र अपने ग्रन्थोंमें सप्तमशतकनर्ती कुमारिल्लका नामोल्लेख करते हैं। अतः इनका समय ई० की सप्तमशताब्दीका अन्तिमभाग तथा ८ वीं सदी का पूर्वार्ध सुनिश्चित होता है। आ० प्रभाचन्द्र ने न्यायकुसुमदण्ड (पृ० १२९) में मंडनमिश्रकी ब्रह्मसिद्धिका “आहुर्विधात् प्रत्यक्षं” श्लोक उद्धृत किया है। न्यायकुसुमदण्ड (पृ० ५७२) में विधिवादके पूर्वपक्षमें मंडनमिश्रके विधिविवेकमें वर्णित अनेक विधिवादियोंका निर्देश किया गया है। उनके मतनिरूपण तथा समालोचन ने विधिविवेक ही आधारभूत माध्यम होता है।

प्रभाकर और प्रभाचन्द्र-शाबरभाष्यकी बृहती टीकाके रचयिता प्रभाकर करीब करीब कुमारिलके समकालीन थे। मद्र कुमारिलका शिष्य परिवार भाट्टके नामसे ख्यात हुआ तथा प्रभाकर के शिष्य प्रभाकर या शुद्धमताजुषयी कहलाए। प्रभाकर विपर्ययज्ञानको सृष्टिप्रमोष या विवेकाख्याति रूप मानते हैं। ये अभावको स्वतन्त्र प्रमाण नहीं मानते। वेदवाक्योंका अर्थ नियोगपरक करते हैं। प्रभाचन्द्रने अपने ग्रन्थोंमें प्रभाकरके सृष्टिप्रमोष, नियोगवाद आदि सभी सिद्धान्तों का विस्तृत खंडन किया है।

शालिकनाथ और प्रभाचन्द्र-प्रभाकरके शिष्योंसे शालिकनाथका अपना विशिष्ट स्थान है। इनका समय ईसाकी ८ वीं शताब्दी है। इन्होंने बृहतीके ऊपर ऋजुविमला नाम की पञ्जिका लिखी है। प्रभाकरगुरुके सिद्धान्तोंका विवेचन करनेके लिए इन्होंने प्रकरणपञ्जिका नामका स्वतन्त्र ग्रन्थ भी लिखा है। ये अन्वकारको स्वतन्त्र पदार्थ नहीं मानते किन्तु ज्ञानानुत्पत्तिको ही अन्वकार कहते हैं। आ० प्रभाचन्द्रने प्रमेयकमलमार्तण्ड (पृ० २३८) तथा न्यायकुमुदचन्द्र (पृ० ६६६) में शालिकनाथके इस मतकी विस्तृत समीक्षा की है।

शाङ्कराचार्य और प्रभाचन्द्र-भाय शाङ्कराचार्यके ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्य, गीताभाष्य, उपनिषद्भाष्य आदि अनेकों ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। इनका समय ई० ७८८ से ८२० तक माना जाता है। शाङ्करभाष्यमें धर्मकीर्तिके 'सहोपलम्भनियमात्' हेतुका खण्डन होनेसे यह समय समर्थित होता है। आ० प्रभाचन्द्रने शाङ्करके अनिर्वचनीयार्थख्यातिवादकी समालोचना प्रमेयकमलमार्तण्ड तथा न्यायकुमुदचन्द्रमें की है। न्यायकुमुदचन्द्रके परमब्रह्मवादके पूर्वपक्षमें शाङ्करभाष्यके आधार से ही वैषम्य नैर्घृण्य आदि दोषोंका परिहार किया गया है।

सुरेश्वर और प्रभाचन्द्र-शाङ्कराचार्यके शिष्योंमें सुरेश्वराचार्यका नाम उल्लेखनीय है। इनका नाम विश्वरूप भी था। इन्होंने तैत्तिरीयोपनिषद्भाष्यवार्तिक, बृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यवार्तिक, मानसोद्धार, पञ्चीकरणवार्तिक, काशीसृष्टिमोक्षविचार, नैष्कर्म्यसिद्धि आदि ग्रन्थ बनाए हैं। आ० विद्यानन्द (ईसाकी ९ वीं शताब्दी) ने अष्टसहस्री (पृ० १६२) में बृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यवार्तिकसे "ब्रह्मविद्यावदिष्टं चैकान्तु" इत्यादि कारिकाएँ उद्धृत की हैं। अतः इनका समय भी ईसाकी ९ वीं शताब्दीका पूर्वभाग होना चाहिए। ये शाङ्कराचार्य (ई० ७८८ से ८२०) के साक्षात् शिष्य थे। आ० प्रभाचन्द्रने प्रमेयकमलमार्तण्ड (पृ० ४४-४५) तथा न्यायकुमुदचन्द्र (पृ० १४१) में ब्रह्मवादके पूर्वपक्षमें इनके बृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यवार्तिक (३१।५।३-४४) से "यथा विशुद्धमाकाशं" आदि दो कारिकाएँ उद्धृत की हैं।

१ प्रष्टव्य-अच्युतपत्र वर्ष ६ अह् ४ में म० म० गोपीनाथ कविराज का लेख।

भामह और प्रभाचन्द्र-भामहका काव्यालङ्कार ग्रन्थ उपलब्ध है । शान्तरक्षितने तत्त्वसंग्रह (पृ० २९१) में भामहके काव्यालङ्कारकी अपोह-खण्डन वाली "यदि गौरिलयं अब्दः" आदि तीन कारिकाओंकी समालोचना की है । ये कारिकाएँ काव्यालङ्कारके ६ वे परिच्छेद (श्लो० १७-१९) में पाई जाती हैं । तत्त्वसंग्रहकारका समय ई० ७०५-७६२ तक सुनिर्णीत है । चौदसमत्त प्रत्यक्षके लक्षणका खण्डन करते समय भामहने (काव्यालङ्कार ५।६) दिङ्नागके मात्र 'कल्पनापोड' पदवाले लक्षणका खण्डन किया है, धर्मकीर्तिके 'कल्पनापोड और अप्रान्त' उभयविशेषणवाले लक्षणका नहीं । इससे ज्ञात होता है कि भामह दिङ्नागके उत्तरवर्ती तथा धर्मकीर्तिके पूर्ववर्ती हैं । अन्ततः इनका समय ईसाकी ७ वीं शताब्दी का पूर्वभाग है । आ० प्रभाचन्द्रने अपोहवादका खण्डन करते समय भामहकी अपोहखण्डनविषयक "यदि गौरिलयं" आदि तीनों कारिकाएँ प्रमेयकमलमार्तण्ड (पृ० ४३२) में उद्धृत की हैं । यह भी संभव है कि ये कारिकाएँ सीधे भामहके ग्रन्थसे उद्धृत न होकर तत्त्वसंग्रहके द्वारा उद्धृत हुई हों ।

वाण और प्रभाचन्द्र-प्रसिद्ध गद्यकाव्य कादम्बरीके रचयिता वाणभट्ट, सम्राट् हर्षवर्धन (राज्य ६०६ से ६४८ ई०) की सभाके कविरत्न थे । इन्होंने हर्षचरितकी भी रचना की थी । वाण, कादम्बरी और हर्षचरित दोनों ही ग्रन्थोंको पूर्ण नहीं कर सके । इनकी कादम्बरीका आद्यश्लोक "रजोऽप्ये जन्मनि सत्त्ववृत्तये" प्रमेयकमलमार्तण्ड (पृ० २९८) में उद्धृत है । आ० प्रभाचन्द्रने वैदापीरूपेयत्नप्रकरणमें (प्रमेयक० पृ० ३९३) कादम्बरीके कर्तृत्वके विषयमें सन्देहात्मक उल्लेख किया है-"कादम्बरीवीना कर्तृविशेषे विप्रतिपत्तेः"- अर्थात् कादम्बरी आदिके कर्ताके विषयमें विवाद है । इस उल्लेखसे ज्ञात होता है कि प्रभाचन्द्रके समयमें कादम्बरी आदि ग्रन्थोंके कर्ता विवादप्रस्त थे । हम प्रभाचन्द्रका समय आगे ईसाकी ग्यारहवीं शताब्दी सिद्ध करेंगे ।

माघ और प्रभाचन्द्र-शिष्टपालवध काव्यके रचयिता माघ कविका समय ई० ६६०-६७५-के लगभग है । माघकविके पितामह सुप्रमदेव राजा वर्मलातके मञ्जी थे । राजा वर्मलात का उल्लेख ई० ६२५ के एक शिलालेखमें विद्यमान है अतः इनके नाती माघ कविका समय ई० ६७५ तक मानना ससुचित है । प्रभाचन्द्रने माघकाव्य (१।२३) का "युगान्तकालप्रतिसंहतात्मनो..." श्लोक प्रमेयकमलमार्तण्ड (पृ० ६८८) में उद्धृत किया है । इससे ज्ञात होता है कि प्रभाचन्द्रने माघकाव्यको देखा था ।

(अवैदिकदर्शन)

अश्वघोष और प्रभाचन्द्र-अश्वघोषका समय ईसाका द्वितीय शतक माना जाता है । इनके बुद्धचरित और सौन्दरनन्द दो महाकाव्य प्रसिद्ध हैं ।

सौन्दरनन्दनमें अश्वघोषने प्रसङ्गतः बौद्धदर्शनके कुछ पदार्थोंका भी सारगर्भ विवेचन किया है। आ० प्रभाचन्द्रने शून्यानिर्वाणवादका खंडन करते समय पूर्वपक्षमें (प्रमेयक० पृ० ६८७) सौन्दरनन्दकाव्यसे निम्नलिखित दो श्लोक उद्धृत किए हैं—

“धीपी यथा निर्धृतिमभ्युपेतो नैवावर्ति गच्छति नान्तरिक्षम् ।
दिशं न काश्चिद् विदिशं न काश्चित् सेहक्षयात् केवलमेति शान्तिम् ॥
जीवस्तथा निर्धृतिमभ्युपेतो नैवावर्ति गच्छति नान्तरिक्षम् ।
दिशं न काश्चिद्विदिशं न काश्चित्सेहाक्षयात् केवलमेति शान्तिम् ॥”

[सौन्दरनन्द १६।२८,२९]

नागार्जुन और प्रभाचन्द्र—नागार्जुन की माध्यमिककारिका और विग्रहव्यावर्तिनी दो ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। ये इसीकी तीसरी शताब्दीके विद्वान् हैं। इन्होंने शून्यवादके प्रस्थापक होनेका श्रेय प्राप्त है। माध्यमिककारिकामें इन्होंने विस्तृत परीक्षाएँ लिखकर शून्यवादको दार्शनिक रूप दिया है। विग्रहव्यावर्तिनी भी इसी तरह शून्यवादका समर्थन करनेवाला छोटा प्रकरण है। प्रभाचन्द्रने न्याय-कुसुमचन्द्र (पृ० १३२) में माध्यमिकके शून्यवादका खंडन करते समय पूर्वपक्षमें प्रमाणवार्तिककी कारिकाओंके साथ ही साथ माध्यमिककारिकासे भी ‘न खतो नापि परतः’ और ‘यथा मया यथा खमो...’ ये दो कारिकाएँ उद्धृत की हैं।

वसुबन्धु और प्रभाचन्द्र—वसुबन्धुका अभिधर्मकोश ग्रन्थ प्रसिद्ध है। इनका समय ई० ४०० के करीब माना जाता है। अभिधर्मकोश बहुत अंशोर्ध्व बौद्धदर्शनके सूत्रग्रन्थका कार्य करता है। प्रभाचन्द्रने न्यायकुसुमचन्द्र (पृ० ३५०) में वैभाषिक सम्मत द्वादशाङ्ग प्रतीत्यसमुत्पादका खंडन करते समय प्रतीत्यसमुत्पादका पूर्वपक्ष वसुबन्धुके अभिधर्मकोशके आधारसे ही लिखा है। उसमें यथावसर अभिधर्मकोशसे २।३ कारिकाएँ भी उद्धृत की हैं। देखो न्याय-कुसुमचन्द्र पृ० ३९५।

विह्वलाग और प्रभाचन्द्र—आ० विभागका स्थान बौद्धदर्शनके विभिन्न संस्थापकोंमें है। इनके न्यायप्रवेश, और प्रमाणसमुच्चय प्रकरण सुप्रसिद्ध हैं। इनका समय ई० ४२५ के आसपास माना जाता है। प्रमाणसमुच्चयमें प्रत्यक्षका कल्पनापोह लक्षण किया है। इसमें अभ्रान्तपद धर्मकीतिने जोड़ा है। इन्हींके प्रमाणसमुच्चय पर धर्मकीतिने प्रमाणवार्तिक रचा है। मिश्र राहुलजीने विभाग के आलम्बनपरीक्षा, त्रिकालपरीक्षा, और हेतुचक्रमह आदि ग्रन्थोंका भी उल्लेख किया है। आ० प्रभाचन्द्रने प्रमेयकमलमार्गण्ड (पृ० ८०) में ‘स्तुतश्च अद्वैतादिप्रकरणानामादौ विभागादिभिः सद्भिः’ लिखकर प्रमाणसमुच्चयका

‘प्रमाणभूताय’ इत्यादि मंगलश्लोकांश उद्धृत किया है। इसी तरह अनोहवादके पूर्वपक्ष (प्रमेयक० पृ० ४३६) में दिग्गोत्रके नामसे निम्नलिखित गयांश भी उद्धृत किया है—“दिग्गोत्रे विशेषणविशेष्यभावसमर्थनार्थम् ‘नीलोत्पलादिशब्दा अर्थान्तरनिवृत्तिविशिष्टानर्थानाहुः’ इत्युक्तम्।”

धर्मकीर्ति और प्रभाचन्द्र-बौद्धदर्शनके युगप्रधान आचार्य धर्मकीर्ति इसाकी ७ वीं शताब्दीमें नालन्दाके बौद्धविद्यापीठके आचार्य थे। इनकी लेखनीने भारतीय दर्शनशास्त्रोंमें एक युगान्तर उपस्थित कर दिया था। धर्मकीर्तिने वैदिकसंस्कृति पर दृढ़ प्रहार किए हैं। यद्यपि इनका उद्धार करनेके लिए व्योमविच, जयन्त, वाचस्पतिमिश्र, उदयन आदि आचार्योंने कुछ उठा नहीं रखा। पर बौद्धोंके खंडनमें जितनी कुशलता तथा सतर्कतासे जैनाचार्योंने लक्ष्य दिया है उतना अन्यने नहीं। यही कारण है कि अकलङ्क, हरिभद्र, अनन्तवीर्य, विद्यानन्द, प्रभाचन्द्र, अमयदेव, वादिदेवसूरी आदिके जैनन्यायशास्त्रके ग्रन्थोंका बहुभाग बौद्धोंके खंडनने ही रोक रखा है। धर्मकीर्तिके समयके विषयमें मैं विशेष ऊहापोह “अकलङ्कग्रन्थत्रय” की प्रस्तावना (पृ० १८) में कर आया हूँ। इनके प्रमाणवार्तिक, हेतुचिन्तु, न्यायचिन्तु, सन्तानान्तरसिद्धि, वादन्याय, सम्बन्धपरीक्षा आदि ग्रन्थोंका प्रभाचन्द्रको गहरा अभ्यास था। इन ग्रन्थों की अनेकों कारिकाएँ, खासकर प्रमाणवार्तिक की कारिकाएँ प्रभाचन्द्रके ग्रन्थोंमें उद्धृत हैं। मालूम होता है कि सम्बन्धपरीक्षाकी अथ से इति तक २३ कारिकाएँ प्रमेयकमलमार्तण्डके सम्बन्धवादके पूर्वपक्ष में ज्यों की त्यों रखी गई हैं, और खण्डित हुई हैं। विद्यानन्दके तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक में इसकी कुछ कारिकाएँ ही उद्धृत हैं। वादन्यायका “हसति हसति स्वामिनि” आदि श्लोक प्रमेयकमलमार्तण्डमें उद्धृत है। संवेदनाद्वैतके पूर्वपक्षमें धर्मकीर्तिके ‘सहोपलम्भनियमात्’ आदि हेतुओंका निर्देश कर बहुविध विकल्पजालोंसे खण्डन किया गया है। वादन्यायकी “असाधनाप्रवचनमदोषोद्भावनं द्वयोः” कारिकाका और इसके विविध व्याख्यानोंका सद्युक्तिक उत्तर प्रमेयकमलमार्तण्डमें दिया गया है। इन सब ग्रन्थोंके अवतरण और उनसे की गई तुलना न्यायकुमुदचन्द्रके टिप्पणोंमें देखनी चाहिए।

प्रज्ञाकरगुप्त और प्रभाचन्द्र-धर्मकीर्तिके व्याख्याकारोंमें प्रज्ञाकरगुप्तका अपना खास स्थान है। उन्होंने प्रमाणवार्तिक पर प्रमाणवार्तिकालङ्कार नामकी विस्तृत व्याख्या लिखी है इनका समय भी ईसाकी ७ वीं शताब्दीका अन्तिम भाग और आठवींका प्रारम्भिक भाग है। इनकी प्रमाणवार्तिकालङ्कार टीका वार्तिकालङ्कार और अलङ्कारके नामसे भी प्रख्यात रही है। इन्हींके वार्तिकालङ्कारसे भावना विधि नियोगकी विस्तृत चर्चा विद्यानन्दके ग्रन्थों द्वारा प्रभाचन्द्रके न्यायकुमुदचन्द्रमें अवतीर्ण हुई है। इतना विशेष है कि-विद्यानन्द और प्रभाचन्द्रने प्रज्ञाकरगुप्तकृत भावना विधि आदिके खंडनका भी स्थान स्थान पर विशेष समालोचन किया है। प्रमेयकमलमार्तण्ड (पृ० ३८०) में प्रज्ञाकरके

भाषिकारणवाद और भूतकारणवादका उल्लेख प्रज्ञाकरका नाम देकर किया गया है। प्रज्ञाकरगुप्तने अपने इस मतका प्रतिपादन प्रमाणवार्तिकालङ्कार में किया है^१। मिश्र राहुलसांख्यस्यायनके पास इसकी हस्तलिखित कापी है। प्रभाचन्द्रने धर्मकीर्तिके प्रमाणवार्तिककी तरह उनके शिष्य प्रज्ञाकरके वार्तिकालङ्कारका भी आलोचन किया है।

प्रभाचन्द्रने जो ब्राह्मणलजातिका चण्डन लिखा है, उसमें शान्तरक्षितके तत्त्वसंग्रहके साथ ही साथ प्रज्ञाकरगुप्त के वार्तिकालङ्कारका भी प्रभाव मालूम होता है। ये बौद्धाचार्य अपनी संस्कृतिके अनुसार सदैव जातिवाद पर खड्गहस्त रहते थे। धर्मकीर्तिने प्रमाणवार्तिकके निम्नलिखित श्लोकमें जातिवादके मदको जड़ताका विश्व बताया है—

“वेदप्रामाण्यं कस्यचित्कर्तृवादः ज्ञाने धर्मेच्छा जातिवादावलेपः ।
सन्तापारम्भः पापहानाय चेति ध्वस्तप्रज्ञानां पथं लिङ्गानि जाञ्छे ॥”

उत्तराख्ययनसूत्रमे ‘कम्मुणा बभूणो होइ कम्मुणा होइ खतिओ’ लिखकर कर्मणा जातिका स्पष्ट समर्थन किया गया है।

दि० जैनाचार्योंने धराप्रचरित्रके कर्ता जटासिंहनन्दिने बराहचरितके २५ वें अध्यायमें ब्राह्मणलजातिका निरास किया है। और श्री रविपेण, अमितगति आदिने जातिवादके खिलाफ बोद्धा बहुत लिखा है पर तर्कन्यायोंमें सर्वप्रथम हम प्रभाचन्द्रके ही ग्रन्थोंमें जन्मना जातिका सयुक्तिक खण्डन यथेष्ट विस्तारके साथ पाते हैं।

कर्णकगोमि और प्रभाचन्द्र—प्रमाणवार्तिकके तृतीयपरिच्छेद पर धर्मकीर्तिकी खोपज्ञश्रुति भी उपलब्ध है। इस दृष्टिपर कर्णकगोमिकी विस्तृत टीका है। इस टीकामें प्रज्ञाकर गुप्तके प्रमाणवार्तिकालङ्कारका ‘अलङ्कार’ शब्दसे उल्लेख है। इसमें मण्डनमिश्रकी ब्रह्मसिद्धिका ‘आहुर्विधातु’ श्लोक उद्धृत है। अतः इनका समय ई० ८ वीं सदीका पूर्वार्ध संभव है। न्यायकुसुमचन्द्रके सन्दर्भित्यलवाद, वेदापौरुषेयलवाद, स्फोटवाद आदि प्रकरणों पर कर्णकगोमिकी खण्डितटीका अपना पूरा असर रखती है। इसके अवतरण इन प्रकरणोंके टिप्पणोंमें देखना चाहिये।

शान्तरक्षित, कमलशील और प्रभाचन्द्र—तत्त्वसंग्रहकार शान्तरक्षित तथा तत्त्वसंग्रहपत्रिकाके रचयिता कमलशील नालन्दाविश्वविद्यालयके आचार्य थे। शान्तरक्षितका समय ई० ७०५ से ७६२ तथा कमलशीलका समय ई० ७१३ से ७६३ है। शान्तरक्षितकी अपेक्षा कमलशीलकी प्रावाहिक प्रसाद-

१ इसके अवतरण अकलक ग्रन्थत्रयीकी प्रस्तावना पृ० २७ में देखना चाहिये।

२ इन आचार्योंके ग्रन्थोंके अवतरणके लिए देखो न्यायकुसुमचन्द्र पृ० ७७८ टि० १ ।

३ देखो तत्त्वसंग्रहकी प्रस्तावना पृ० Xovi

शुभमयी भाषाने प्रभाचन्द्रको अत्यधिक आकृष्ट किया है। वहाँ तो प्रभाचन्द्रके प्रायः प्रत्येक प्रकरणपर कमलशीलकी पत्रिका अपना उन्मुख प्रभाव रखती है। पर इसके लिए षट्पदार्थपरीक्षा, शब्दवृत्तपरीक्षा, ईश्वरपरीक्षा, प्रकृतिपरीक्षा, स्रन्दनिलालपरीक्षा आदि परीक्षाएँ खास तौरसे दृष्टव्य हैं। तत्त्वसंग्रहकी सर्वज्ञ-परीक्षामें कुमारिलकी पचासों कारिकाएँ उद्धृत कर पूर्वपक्ष किया गया है। इनमेंसे अनेकों कारिकाएँ ऐसी हैं जो कुमारिलके श्लोकवार्तिकमें नहीं पाई जातीं। कुछ ऐसी ही कारिकाएँ प्रभाचन्द्रके प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्याय-कुसुमदन्धमें भी उद्धृत हैं। संभव है कि ये कारिकाएँ कुमारिलके ग्रन्थसे न लेकर तत्त्वसंग्रहसे ही ली गई हों। तात्पर्य यह कि प्रभाचन्द्रके आधारभूत ग्रन्थोंमें तत्त्वसंग्रह और उसकी पत्रिका अप्रत्यान पानेके योग्य है।

अर्चट और प्रभाचन्द्र-धर्मकीर्तिके हेतुविन्दु पर अर्चटकृत टीका उपलब्ध है। इसका उल्लेख अनन्तवीर्यने अपनी सिद्धिविनिश्चयटीकमें अनेकों स्थलोंमें किया है। 'हेतुलक्षणसिद्धि' में तो धर्मकीर्तिके हेतुविन्दुके साथही साथ अर्चटकृत विवरणका भी स्रण्डन है। अर्चटका समय भी करीब ईसाकी ९ वीं शताब्दी होना चाहिये। अर्चटने अपने हेतुविन्दुविवरणमें सहकारिल दो प्रकारका बताया है—१ एकार्यकारिल, २ परस्परतिशयाघायकल। आ० प्रभा-चन्द्रने प्रमेयकमलमार्तण्ड (पृ० १०) में कारकसाकल्यवादकी समीक्षा करते समय सहकारिलके यही दो विकल्प किये हैं।

धर्मोत्तर और प्रभाचन्द्र-धर्मकीर्तिके न्यायविन्दु पर आ० धर्मोत्तरने टीका रची है। भिखू राहुलजी द्वारा लिखित टिबेटियन गुरुपरम्पराके अनुसार इनका समय ई० ७२५ के आसपास है। आ० प्रभाचन्द्रने अपने प्रमेयकमल-मार्तण्ड (पृ० २) तथा न्यायकुसुमदन्ध (पृ० २०) में सम्बन्ध, अभिधेय, शब्दयातुघानिष्ठप्रयोजनरूप अनुबन्धत्रयकी चर्चामें, जो उन्मत्तवाक्य, काकदन्त-परीक्षा, मातृविवाहोपदेश तथा सर्वज्वरहरतक्षकचूडारमालह्वारोपदेशके उदाहरण दिए हैं वे धर्मोत्तरकी न्यायविन्दुटीका (पृ० २) के प्रभावसे अछूते नहीं हैं। इनकी शब्दरचना करीब करीब एक जैसी है। इसी तरह न्यायकुसुमदन्ध (पृ० २६) में प्रत्यक्ष शब्दकी व्याख्या करते समय अज्ञाश्रितत्वको प्रत्यक्ष-शब्दका व्युत्पत्तिनिमित्त बताया है और अज्ञाश्रितत्वोपलक्षित अर्थसाक्षात्कारिक को प्रवृत्तिनिमित्त। ये प्रकार भी न्यायविन्दुटीका (पृ० ११) से अक्षरशः मिलते हैं।

ज्ञानश्री और प्रभाचन्द्र-ज्ञानश्रीने क्षणमंगाध्याय आदि अनेक प्रकरण लिखे हैं। उदयनाचार्य ने अपने आलतत्त्वविवेकमें ज्ञानश्रीके क्षणमंगाध्यायका नामोल्लेखपूर्वक आनुपूर्वी से खंडन किया है। उदयनाचार्यने अपनी लक्षणावली तर्काम्बरां (१०६) शक, ई० ९८४ में समाप्त की थी। अतः ज्ञानश्रीका

समय ई० १८४ से पहिले तो होना ही चाहिए । मिश्र राहुल सांख्यसायनजीके जोट्स देखनेसे ज्ञात हुआ है कि-ज्ञानश्रीके अणमंगाध्याय या अपोहसिद्धि(६)के प्रारम्भमें यह कारिका है-

“अपोहः शब्दलिङ्गाभ्यां न वस्तु विधिनोच्यते ।”

विद्यानन्दकी अष्टसहस्रीमें भी यह कारिका उद्धृत है । आ० प्रभाचन्द्रने भी अपोहवाद के पूर्वपक्षमें “अपोहः शब्दलिङ्गाभ्यां” कारिका उद्धृत की है । वाचस्पतिमिश्र (ई० ८४१) के ग्रन्थों में ज्ञानश्रीकी समालोचना नहीं है पर उदयनाचार्य (ई० १८४) के ग्रन्थोंमें है, इसलिए भी ज्ञानश्रीका समय ईसाकी १० वीं शताब्दीके बाद तो नहीं जा सकता ।

जयसिंहराशिभट्ट और प्रभाचन्द्र-मठ श्री जयसिंहराशिका तत्त्वोपप्लवसिंह नामक ग्रन्थ गायकवाड सीरीजमें प्रकाशित हुआ है । इनका समय ईसाकी ८ वीं शताब्दी है । तत्त्वोपप्लवग्रन्थ में प्रमाण प्रमेय आदि सभी तत्त्वोंका बहुविध विकल्पजालसे खंडन किया गया है । आ० विद्यानन्दके ग्रन्थोंमें सर्वप्रथम तत्त्वोपप्लववादीका पूर्वपक्ष देखा जाता है । प्रभाचन्द्रने संशयज्ञानका पूर्वपक्ष तथा वाधकज्ञानका पूर्वपक्ष तत्त्वोपप्लव ग्रन्थसे ही किया है और उसका उत्तरे ही विकल्पों द्वारा खंडन किया है । प्रमेयकमलमार्तण्ड (पृ० ६४८) में ‘तत्त्वोपप्लववादि’ का दृष्टान्त भी दिया गया है । न्यायकुसुमदचन्द्र (पृ० ३३९) में भी तत्त्वोपप्लववादिका दृष्टान्त पाया जाता है । तात्पर्य यह कि परमतके खंडनमें क्वचित् तत्त्वोपप्लववादिप्रकृत विकल्पोंका उपयोग कर लेने पर भी प्रभाचन्द्रने स्थान स्थान पर तत्त्वोपप्लववादिके विकल्पोंकी भी समीक्षा की है ।

कुन्दकुन्द और प्रभाचन्द्र-दिगम्बर आचार्यों में आ० कुन्दकुन्दका विशिष्ट स्थान है । इनके सारत्रय-प्रवचनसार, पञ्चास्तिकायसमयसार और समयसार-के सिवाय चारसअणुवेक्खा अष्टपाहुड आदि ग्रन्थ उपलब्ध हैं । प्रो० ए० एन० उपाध्येने प्रवचनसारकी भूमिकामें इनका समय ईसाकी प्रथमशताब्दी सिद्ध किया है । कुन्दकुन्दाचार्यने बोधपाहुड (गा० ३७) में केवलीको आहार और विहारसे रहित वृताकर कवलाहारका निषेध किया है । सूत्रप्राश्रुत (गा० २३-३६) में लीको प्रव्रज्याका निषेध करके लीमुक्तिका निरास किया है । कुन्दकुन्दके इस मूलमार्गका दार्शनिकरूप हम प्रभाचन्द्रके ग्रन्थोंमें केवलिकवलाहारवाद तथा लीमुक्तिवादके रूपमें पाते हैं । यद्यपि शाकटायनने अपने केवलिभुक्ति और लीमुक्ति प्रकरणोंमें दिगम्बरोंकी मान्यताका विस्तृत खंडन किया है, जिससे ज्ञात होता है कि शाकटायनके सामने दिगम्बराचार्योंका उक्त सिद्धान्तद्वयका समर्थक विकसित साहित्य रहा है । पर आज हमारे सामने प्रभाचन्द्रके ग्रन्थ ही इन दोनों मान्यताओंके समर्थकरूपमें समुपस्थित हैं । आ० प्रभाचन्द्रने न्यायकुसुमदचन्द्रमें प्रवचनसारकी ‘जिबहु अ मरदु य’ शाय, भावपाहुडकी ‘एगो मे सस्तदे’

गाथा, तथा प्रा० सिद्धमक्तिकी 'पुवेदं वेदन्ता' गाथा उद्धृत की है। प्राकृत दशमक्तिर्षी श्री कुन्दकुन्दाचार्यके नामसे प्रसिद्ध हैं।

समन्तभद्र और प्रभाचन्द्र-आद्यस्तुतिकार स्वामि समन्तभद्राचार्यके बृहत्स्यम्भूस्तोत्र, आत्ममीमांसा, युक्त्यनुशासन आदि ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। इनका समय विक्रमकी दूसरी शताब्दी माना जाता है। किन्हीं विद्वानोंका विचार है कि इनका समय विक्रमकी पाचवीं या छठवीं शताब्दी होना चाहिए। प्रभाचन्द्रने न्यायकुमुदचन्द्रमें बृहत्स्यम्भूस्तोत्रसे "अनेकान्तोऽप्यनेकान्तः" "मातुर्षी प्रकृतिमभ्यतीतचान्" "तदेव च स्यान्न तदेव" इत्यादि श्लोक उद्धृत किए हैं।

आ० विद्यानन्दने आत्मपरीक्षाका उपसंहार करते हुए यह श्लोक लिखा है कि-

"श्रीमत्तत्त्वार्थशास्त्राद्भुतसलिलनिघेरिद्धरजोद्भवस्य
प्रोत्थानारम्भकाले सकलमलभिदे शालकारैः कृतं यत् ।
स्तोत्रं तीर्थोपमानं प्रथितप्रशुष्यं स्वामिमीमांसितं तत्
विद्यानन्दैः खण्डत्सा कथमपि कथितं सत्यवाक्यार्थसिद्धौ ॥ १२३ ॥"

अर्थात् तत्त्वार्थशास्त्ररूपी अद्भुत समुद्रसे धीतरजोके उद्भवके प्रोत्थानारम्भ-काल-प्रारम्भिक समयमें, शालकारने, पापोंका नाश करनेके लिए, मोक्षके प्रयत्नको बतानेवाला, तीर्थस्वरूप जो स्तवन किया था और जिस स्तवनकी स्वामीने मीमांसा की है, उसीका विद्यानन्दने अपनी खल्पशक्तिके अनुसार सत्यवाक्य और सत्यार्थकी सिद्धिके लिए विवेचन किया है। अथवा, जो धीतरजों के उद्भव-उत्पत्ति का स्थान है उस अद्भुत सलिलनिधि के समान तत्त्वार्थशास्त्र के प्रोत्थानारम्भकाल-उत्पत्तिका निमित्त बताते समय या प्रोत्थान-उत्पत्तिका भूमिका बांधने के प्रारम्भिक समय में शालकारने जो मंगलस्तोत्र रचा और जिस स्तोत्र में वर्णित आत्मकी स्वामीने मीमांसा की उसीकी मैं (विद्यानन्द) परीक्षा कर रहा हूँ।

वे इस श्लोकमें स्पष्ट सूचित करते हैं कि स्वामी समन्तभद्रने 'मोक्षमार्गस्य नेतारम्' मंगलश्लोकमें वर्णित जिस आत्मकी मीमांसा की है उसी आत्मकी मैंने परीक्षा की है। वह मंगलस्तोत्र तत्त्वार्थशास्त्ररूपी समुद्रसे धीतरजोंके उद्भवके प्रारम्भिक समयमें या तत्त्वार्थशास्त्र की उत्पत्तिका निमित्त बताते समय शालकारने बनाया था। यह तत्त्वार्थशास्त्र यदि तत्त्वार्थसूत्र है तो उसका मथन करके रजोंके निकालनेवाले या उसकी उत्पत्तिका बांधनेवाले-उसकी उत्पत्ति का निमित्त बतानेवाले आचार्य पूज्यपाद हैं। यह 'मोक्षमार्गस्य नेतारं' श्लोक स्वयं सूत्रकारका तो नहीं गाल्हा होता; क्योंकि पूज्यपाद, भट्टकलहदेव और विद्यानन्दने सबवार्थसिद्धि, राजवार्तिक और श्लोकवार्तिकमें इसका व्याख्यान नहीं किया है। यदि विद्यानन्द इसे सूत्रकारकृत ही मानते होते तो वे अवश्य

ही श्लोकवार्तिकमें उसका व्याख्यान करते। परन्तु यही विद्यानन्द आत्मपरीक्षा (पृ० ३) के प्रारम्भमें इसी श्लोकको सूत्रकारकृत भी लिखते हैं। यथा—

“किं पुनस्तत्परमेष्ठिनो गुणस्तोत्रं शास्त्रादौ सूत्रकाराः प्राहु-
रिति निगद्यते—भोक्षमार्गस्य नेतारं”... इस पंक्तिमें यही श्लोक सूत्रका-
रकृत कहा गया है। किन्तु विद्यानन्दकी शैलीका ध्यानसे समीक्षण करने परे,
वह स्पष्टरूपसे विदित हो जाता है कि वे अपने ग्रन्थोंमें किसी भी पूर्वाचार्यको
सूत्रकार और किसी भी पूर्वग्रन्थको सूत्र लिखते हैं। तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक (पृ०
१८४) में वे अकलङ्कदेवका सूत्रकार शब्दसे तथा राजवार्तिकका सूत्र शब्दसे
उल्लेख करते हैं—“तेन इन्द्रियानिन्द्रियानपेक्षमतीतव्यभिचारं साकारग्रहणम्” इत्ये-
तत्सूत्रोपात्तमुक्तं भवति। ततः, प्रत्यक्षलक्षणं प्राहुः स्पष्टं साकारमज्ञता। द्रव्यप-
र्यायसामान्यविशेषार्थात्मवेदनम् ॥ ४ ॥ सूत्रकार इति ह्येयमाकलङ्कावबोधने”
इस अवतरणमें “इन्द्रियानिन्द्रियानपेक्षं वाक्य राजवार्तिक (पृ० ३८) का है
तथा “प्रत्यक्षलक्षणं” श्लोक न्यायविनिश्चय (श्लो० ३) का है। अतः मात्र
सूत्रकारके नामसे ‘भोक्षमार्गस्य नेतारं’ श्लोकको उद्धृत करनेके कारण हम ‘विद्या-
नन्दका ह्मकाव इसे मूल सूत्रकारकृत माननेकी ओर है’ यह नहीं समझ सकते।
अन्यथा वे इसका व्याख्यान श्लोकवार्तिकमें अवश्य करते। अतः इस पंक्तिमें
सूत्रकार शब्दसे भी इन्द्रजनोंके उद्भवकर्ता या तत्त्वार्थशास्त्र की भूमिका बोधनेवाले
आचार्यका ही ग्रहण करना चाहिए। आत्मपरीक्षा के

“इति तत्त्वार्थशास्त्रादौ मुनीन्द्रस्त्रोत्रगोचरा।

प्रणीतात्मपरीक्षेयं कुविवाचनिवृत्तये ॥”

इस अनुष्टुप् श्लोक में तत्त्वार्थशास्त्रादौ पद ‘प्रोत्थानारम्भकाले’ पद के अर्थमें ही
प्रयुक्त हुआ है। ३२ अक्षरवाले इस संक्षिप्त श्लोक में इससे अधिक की गुंजाइश
ही नहीं है। ‘भोक्षमार्गस्य नेतारं’ श्लोक वस्तुतः सर्वार्थसिद्धिका ही मंगलश्लोक
है। यदि पूज्यपाद स्वयं भी इसे सूत्रकारकृत मानते होते तो उनके द्वारा उसका
व्याख्यान सर्वार्थसिद्धि में अवश्य किया जाता। और जब समन्तभद्रने इसी
श्लोकके ऊपर अपनी आत्ममीमांसा बनाई है, जैसा कि विद्यानन्दका उल्लेख है,
तो ममन्तभद्र कमसे कम पूज्यपादके समकालीन तो सिद्ध होते ही हैं।
पं० सुखलालजी का यह तर्क कि—“यदि समन्तभद्र पूज्यपादके प्राक्कालीन होते
तो वे अपने इस युगप्रधान आचार्य की आत्ममीमांसा जैसी अनूठी कृतिका उल्लेख

१ भा० विद्यानन्द अष्टसहस्री के मंगलश्लोक में भी लिखते हैं कि—

“शास्त्रावताररन्वितस्तुतिगोचरात्ममीमांसितं कृतिरलङ्कितयते भयाडल ॥”

अर्थात्—शास्त्र तत्त्वार्थशास्त्रके अवतार—अवतरणिका—भूमिका के समय रची गई
स्तुति में वर्णित आत्म की मीमांसा करनेवाले आत्ममीमांसा नामक प्रथका व्याख्यान
मिया जाता है। यहाँ ‘शास्त्रावताररन्वितस्तुति’ पद आत्मपरीक्षा के ‘प्रोत्थानारम्भकाल’
अद का समानार्थक है।

किए बिना नहीं रहते” हृदयको लगता है । यद्यपि ऐसे नकारात्मक प्रमाणों से किसी आचार्यके समयका स्वतन्त्र भावसे साधन बाधन नहीं होता फिर भी विचार की एक स्पष्ट कोटि तो उपस्थित हो ही जाती है । और जब विद्यानन्द के उल्लेखों के प्रकाश में इसका विचार करते हैं तब यह पर्याप्त पुष्ट मालूम होता है । समन्तभद्रकी आत्ममीमांसाके चौथे परिच्छेदमें वर्णित “विरूपकार्यारम्भाय” आदि कारिकाओंके पूर्वपक्षों की समीक्षा करनेसे ज्ञात होता है कि समन्तभद्रके सामने संभवतः दिग्भागके ग्रन्थ भी रहे हैं । बौद्धदर्शन की इतनी स्पष्ट विचारधाराकी सम्भावना दिग्भागेसे पहिले नहीं थी जा सकती ।

हेतुविन्दुके अर्चटकृत विवरणमें समन्तभद्रकी आत्ममीमांसाकी “द्रव्यपर्याय-योरैक्यं तयोरव्यतिरेकतः” कारिकाके खंडन करनेवाले ३०-३५ श्लोक उद्धृत किए गए हैं । ये श्लोक दुर्बेकमिश्र की हेतुविन्दुटीकाजुटीका के लेखानुसार सर्व अर्चटने ही बनाए हैं । अर्चटका समय ९ वीं सदी है । कुमारिकके भीमांसा-श्लोकवार्तिकमें समन्तभद्रकी “घटमौलिषुवर्णायां” कारिकासे समानता रखनेवाले निम्न श्लोक पाये जाते हैं—

“वर्धमानकमग्ने च रुचकः क्रियते यदा ।
तदा पूर्वार्थिनः शोक-प्रीतिधाप्युत्तरार्थिनः ॥
हेमार्थिनस्तु माप्यस्थं तस्माद्भस्तु त्रयात्मकम् ।
न नाशेन विना शोको नोत्पाद्येन विना सुखम् ॥
स्थित्या विना न माप्यस्थं तेन सामान्यनित्यता ॥”

[गी० श्लो० पृ० ६१९]

कुमारिका समय इसकी ७ वीं सदी है । अतः समन्तभद्रकी उत्तरावधि सातवीं सदी मानी जा सकती है । पूर्वावधिका नियामक प्रमाण दिग्भागका समय होना चाहिए । इस तरह समन्तभद्रका समय इसकी ५ वीं और सातवीं शताब्दीका मध्यभाग अधिक संभव है । यदि विद्यानन्दके उल्लेखमें ऐतिहासिक दृष्टि भी निविष्ट है तो समन्तभद्रकी स्थिति पूज्यपादके बाद या समसमय में होनी चाहिए ।

पूज्यपाद के जैनेन्द्रव्याकरण के अमयनन्दसम्मत प्राचीनसूत्रपाठ में “चतुष्टयं समन्तभद्रस्य” सूत्र पाया जाता है । इस सूत्र में यदि इन्होंने समन्तभद्र का निर्देश है तो इसका निर्वाह समन्तभद्रको पूज्यपाद का समकालीनबुद्ध मानकर भी किया जा सकता है ।

पूज्यपाद और प्रभाचन्द्र—आ० देवनन्दिका अपर नाम पूज्यपाद था । ये विक्रम की पांचवीं और छठी सदीके ख्यात आचार्य थे । आ० प्रभाचन्द्रने पूज्यपादकी सर्वार्थसिद्धि पर तर्त्तार्यद्विपठविवरण नामकी लघुवृत्ति लिखी है । इसके सिवाय इन्होंने जैनेन्द्रव्याकरण पर शब्दान्मोजभास्करं नामका व्यास

१ देखो अनेकान्त वर्ष १ पृ० १९७। प्रेमी जी सूचित करते हैं कि इसकी प्रती संशुद्धके डेढ़क पत्रालयसरसवी भवनमें मौजूद है ।

लिखा है। 'पूज्यपादकी संस्कृत सिद्धभक्तिसे 'सिद्धिः स्वात्मोपलब्धिः' पद भी न्यायकुमुदचन्द्रने प्रमाणरूपसे उद्धृत किया गया है। प्रमेयकमलमार्तण्ड तथा न्यायकुमुदचन्द्रमें जहा कहीं भी व्याकरणके सूत्रोंके उद्धरण देनेकी आवश्यकता हुई है वहां प्रायः जैनेन्द्रव्याकरणके अभयनन्दिसम्मत सूत्रपाठसेही सूत्र उद्धृत किए गए हैं।

धनञ्जय और प्रभाचन्द्र—'संस्कृतसाहित्यका संक्षिप्त इतिहास' के लेखक-द्वयने धनञ्जयका समय ई० १२ वे शतकका मध्य निर्धारित किया है (पृ० १७३)। और अपने इस मतकी पुष्टिके लिए के० वी० पाठक महाशयका यह मत भी उद्धृत किया है कि—“धनञ्जयने द्विसन्धान महाकाव्यकी रचना ई० ११३३ और ११४० के मध्यमें की है।” डॉ० पाठक और उक्त इतिहास के लेखकद्वय अन्य कई जैन कवियोंके समय निर्धारणकी भांति धनञ्जयके समयमें भी झान्ति कर बैठे हैं। क्योंकि विचार करनेसे धनञ्जयका समय ईसाकी ८ वीं सदीका अन्त और नवींका प्रारम्भिक भाग सिद्ध होता है—

१ जल्हण (ई० द्वादशशतक) विरचित सूक्तिसुकावलीमें राजशेखरके नामसे धनञ्जयकी प्रशंसामें निम्न लिखित पद्य उद्धृत है—

“द्विसन्धाने निपुणतां सतां चके धनञ्जयः।

यथा जातं फलं तस्य स ता चके धनञ्जयः ॥”

इस पद्यमें राजशेखरने धनञ्जयके द्विसन्धानकाव्यका मनोमुग्धकर सरणिसे निर्देश किया है। संस्कृत साहित्यके इतिहासके लेखकद्वय लिखते हैं कि—“यह राजशेखर प्रबन्धकोशका कर्ता जैन राजशेखर है। यह राजशेखर ई० १३४८ में विद्यमान था।” आशय है कि १२ वीं शताब्दीके विद्वान् जल्हणके द्वारा विरचित ग्रन्थमें उल्लिखित होने वाले राजशेखरको लेखकद्वय १४ वीं शताब्दीका जैन राजशेखर बताते हैं। यह तो मोटी बात है कि १२ वीं शताब्दीके जल्हणने १४ वीं शताब्दीके जैन राजशेखरका उल्लेख न करके १० वीं शताब्दीके प्रसिद्ध काव्यमीमांसाकार राजशेखरका ही उल्लेख किया है। इस उल्लेखसे धनञ्जयका समय ९ वीं शताब्दीके अन्तिम भागके बाद तो किसी भी तरह नहीं जाता। ई० ९६० में विरचित सोमदेवके यशस्तिलकम्भूममें राजशेखरका उल्लेख होनेसे इनका समय करीब ई० ९१० ठहरता है।

३ वादिराजसूरी अपने पार्श्वनाथचरित (पृ० ४) में धनञ्जयकी प्रशंसा करते हुए लिखते हैं—

“अनेकमेदमन्धानाः खनन्तो हृदये सुहुः।

बाणा धनजयोन्मुक्ताः कर्णस्येय प्रियाः कथम् ॥”

इस छिद्र श्लोकमें 'अनेकमेदसन्धानाः' पदसे धनञ्जयके 'द्विसन्धानकाव्य' का उल्लेख बड़ी कुशलतासे किया गया है। वादिराजसूरीने पार्श्वनाथचरित ९४७ शक

(ई० १०१५) में समाप्त किया था । अतः धनञ्जयका समय ई० १० वीं शताब्दीके बाद तो किसी भी तरह नहीं जा सकता ।

३ आ० वीरसेनने अपनी धवलटीका (अमरावतीकी प्रति पृ० ३८७) में धनञ्जयकी अनेकार्थनाममालाका निम्न लिखित श्लोक उद्धृत किया है—

“हेतावेवं प्रकारादौ व्यवच्छेदे विपर्यये ।

प्रादुर्भावे समाप्तौ च इतिशब्दं विदुर्बुधाः ॥”

आ० वीरसेनने धवलटीकानी समाप्ति शक ७३८ (ई० ८१६) में की थी । श्रीमान् प्रेमीजीने धनारसीविलास की उत्थानिका में लिखा है कि “ध्वन्या-लोक के कर्ता आनन्दवर्धन, हरचरित्र के कर्ता रत्नाकर और जल्लण ने धनञ्जय की स्तुति की है ।” संस्कृत साहित्य के संक्षिप्त इतिहास में आनन्दवर्धन का समय ई० ८४०-७०, एवं रत्नाकर का समय ई० ८५० तक निर्धारित किया है । अतः धनञ्जयका समय ८ वीं शताब्दीका उत्तरभाग और नवीं शताब्दीका पूर्व-भाग सुनिश्चित होता है । धनञ्जयने अपनी नाममालाके—

“प्रमाणमकलङ्कस्य पूज्यपादस्य लक्षणम् ।

धनञ्जयऋतेः कार्ण्यं रत्नत्रयमपश्चिमम् ॥”

इस श्लोकमें अकलङ्कदेवका नाम लिया है । अकलङ्कदेव ईसाकी ८ वीं सदीके आचार्य हैं अतः धनञ्जयका समय ८ वीं सदीका उत्तरार्ध और नवींका पूर्वार्ध मानना सुसंगत है । आचार्य प्रभाचन्द्रने अपने प्रमेयकमलमार्चण्ड (पृ० ४०१) में धनञ्जयके द्विसन्धानकाव्यका उल्लेख किया है । न्यायकुसुमद्वन्द्वमें इसी स्थल पर द्विसन्धानकी जगह त्रिसन्धान नाम लिया गया है ।

रविभद्रशिष्य अनन्तवीर्य और प्रभाचन्द्र—रविभद्रपादोपजीवि अनन्तवीर्याचार्यकी सिद्धिविनिश्चयटीका समुपलब्ध है । ये अकलङ्कके प्रकरणोंके तल्लघ्ना, विवेचयिता, व्याख्याता और मर्मज्ञ थे । प्रभाचन्द्रने इनकी उक्तियोंसे ही डुरवगाह अकलङ्कवाख्ययका सुष्ठु अभ्यास और विवेचन किया था । प्रभाचन्द्र अनन्तवीर्यके प्रति अपनी ऊदङ्गताका भाव न्यायकुसुमद्वन्द्वमें एकाधिक बार प्रदर्शित करते हैं । इनकी सिद्धिविनिश्चयटीका अकलङ्कवाख्ययके टीकासाहित्यका विरोरत्न है । उसमें सैकड़ों मतमतान्तरोंका उल्लेख करके उनका समिस्तर निरास किया गया है । इस टीकामें धर्मकीर्ति, अर्चद, धर्मोत्तर, प्रज्ञाकरगुप्त, आदि प्रसिद्ध प्रसिद्ध धर्मकीर्तिसाहित्यके व्याख्याकारोंके मत उनके ग्रन्थोंके लम्बे लम्बे अवतरण देकर उद्धृत किए गए हैं । यह टीका प्रभाचन्द्रके ग्रन्थों पर अपना विचित्र प्रभाव रखती है । शान्तिस्मरिने अपनी जैनतर्कवार्तिकरूपि (पृ० ९८) में “एके अनन्तवीर्यादयः” पदसे संभवतः इन्हीं अनन्तवीर्यके मतका उल्लेख किया है ।

विद्यानन्द और प्रभाचन्द्र—आ० विद्यानन्दका जैनतार्किकोंमें अपना विशिष्ट स्थान है। इनकी श्लोकवार्तिक, अष्टसहस्री, आप्तपरीक्षा, प्रमाणपरीक्षा, पत्रपरीक्षा, सत्यशासनपरीक्षा, युक्त्यनुशासनटीका आदि तार्किककृतियों इनके अतुल्य तलस्पर्शी पाण्डित्य और सर्वतोमुख अध्ययन का पदे पदे अनुभव कराती हैं। इन्होंने अपने किसी भी ग्रन्थमें अपना समय आदि नहीं दिया है। आ० प्रभाचन्द्रके प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्यायकुमुदचन्द्र दोनों ही प्रमुखग्रन्थों पर विद्यानन्दकी कृतियोंकी सुनिश्चित अभिष्ट छाप है। प्रभाचन्द्रको विद्यानन्दके ग्रन्थोंका अनूठा अभ्यास था। उनकी शब्दरचना भी विद्यानन्दकी शब्दभंगीसे पूरी तरह प्रभावित है। प्रभाचन्द्रने प्रमेयकमलमार्तण्डके प्रथमपरिच्छेदके अन्तमें—

“विद्यानन्दसमन्तभद्रगुणतो निसं मनोनन्दनम्”

इस श्लोकमें श्लिष्टरूपसे विद्यानन्दका नाम लिया है। प्रमेयकमलमार्तण्डमें पत्रपरीक्षासे पत्रका लक्षण तथा अन्य एक श्लोक भी उद्धृत किया गया है। अतः विद्यानन्दके ग्रन्थ प्रभाचन्द्रके लिए उपजीव्य निर्दिवादरूपसे सिद्ध हो जाते हैं।

आ० विद्यानन्द अपने आप्तपरीक्षा आदि ग्रन्थोंमें ‘सत्यवाक्यार्थसिद्धौ’ ‘सत्यवाक्याधिपः’ विशेषणसे तत्कालीन राजाका नाम भी प्रक्षरान्तरसे सूचित करते हैं। बाबू कमताप्रसादजी (जैनसिद्धान्तमास्कर भाग ३ किरण ३ पृ० ८७) लिखते हैं कि—“बहुत संभव है कि उन्होंने गंगवाड़ि प्रदेश में बहुवास किया हो, क्योंकि गंगवाड़ि प्रदेशके राजा राजमल्लने भी गंगवंशमें होनेवाले राजाओंमें सर्वप्रथम ‘सत्यवाक्य’ उपाधि या अपरनाम धारण किया था। उपर्युक्त श्लोकोंमें यह संभव है कि विद्यानन्दजीने अपने समयके इस राजाके ‘सत्यवाक्याधिप’ नामको ध्वनित किया हो। युक्त्यनुशासनालंकारमें उपर्युक्त श्लोक प्रशस्ति रूप है और उसमें रचयिता द्वारा अपना नाम और समय सूचित होना ही चाहिए। समयके लिए तत्कालीन राजाका नाम ध्वनित करना पर्याप्त है। राजमल्ल सत्यवाक्य विजयादित्यका लड़का था और वह सन् ८१६ के लगभग राज्याधिकारी हुआ था। उनका समय भी विद्यानन्दके अनुकूल है। युक्त्यनुशासनालंकारके अन्तिम श्लोकके “प्रोक्तं युक्त्यनुशासनं विजयिभिः श्रीसत्यवाक्याधिपैः” इन अंशमें सत्यवाक्याधिप और विजय दोनों शब्द हैं, जिनसे गंगराज सत्यवाक्य और उसके पिता विजयादित्यका नाम ध्वनित होता है।” इस अनन्तरणसे यह सुनिश्चित हो जाता है कि विद्यानन्दने अपनी कृतियों राजमल्ल सत्यवाक्य (८१६ ई०) के राज्यकालमें बनाई हैं। आ० विद्यानन्दने सर्वप्रथम अपना तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक ग्रन्थ बनाया है, तदुपरान्त अष्टसहस्री और विद्यानन्दमहोदय, इसके अनन्तर अपने आप्तपरीक्षा आदि परीक्षान्तनामवाले लघु प्रकरण तथा युक्त्यनुशासनटीका; क्योंकि अष्टसहस्रीमें तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकका, तथा आप्तपरीक्षा आदिमें अष्टसहस्री और विद्यानन्दमहोदयका उल्लेख पाया जाता

है। विद्यानन्दने तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक और अष्टसहस्रीमें, जो उनकी आद्य रचनाएँ हैं, 'सत्यवाक्य' नाम नहीं लिया है, पर आसपरीसा आदिमें 'सत्यवाक्य' नाम लिया है। अतः मालूम होता है कि विद्यानन्द श्लोकवार्तिक और अष्टसहस्रीको सत्यवाक्यके राज्यसिंहासनासीन होनेके पहिले ही बना चुके होंगे। विद्यानन्दके ग्रन्थोंमें मंडनमिश्रके मतका खंडन है और अष्टसहस्रीमें सुरेश्वरके सम्बन्धवार्तिकसे ३।४ कारिकाएँ भी उद्धृत की गई हैं। मंडनमिश्र और सुरेश्वरका समय ईसाकी ८ वीं शताब्दीका पूर्वभाग माना जाता है। अतः विद्यानन्दका समय ईसाकी ८ वीं शताब्दीका उत्तरार्ध और नवींका पूर्वार्ध मानना सयुक्तिक मालूम होता है। प्रभाचन्द्रके सामने इनकी समस्त रचनाएँ रही हैं। तत्त्वोपलब्धवादका खंडन तो विद्यानन्दकी अष्टसहस्रीमें ही विस्तारसे मिलता है, जिसे प्रभाचन्द्रने अपने ग्रन्थोंमें स्थान दिया है। इसी तरह अष्टसहस्री और श्लोकवार्तिकमें पाई जानेवाली भावना विधि नियोगके विचारकी दुरवगाह चर्चा प्रभाचन्द्रके न्याय-कुमुदचन्द्रमें प्रसन्नरूपसे अवतीर्ण हुई है। आ० विद्यानन्दने तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक (पृ० २०६) में न्यायदर्शनके 'पूर्ववत्' आदि अनुमानसूत्रका निरास करते समय केवल भाष्यकार और वार्तिककारका ही मत पूर्वपक्ष रूपसे उपस्थित किया है। वे न्यायवार्तिकतात्पर्यटीकाकारके अभिप्रायको अपने पूर्वपक्षमें शामिल नहीं करते। वाचस्पतिमिश्रने तात्पर्यटीका ई० ८४१ के लगभग बनाई थी। इससे भी विद्यानन्दके उक्त समयकी पुष्टि होती है। यदि विद्यानन्दका ग्रन्थरचना-काल ई० ८४१ के बाद होता तो वे तात्पर्यटीका उल्लेख किये बिना न रहते।

अनन्तकीर्ति और प्रभाचन्द्र—लघीयलयादि संग्रहमें अनन्तकीर्तिकृत लघुसर्वज्ञसिद्धि और बृहत्सर्वज्ञसिद्धि प्रकरण सुप्रित हैं। लघीयलयादिसंग्रहकी प्रस्तावनामें पं० नाथूरामजी प्रेमीने इन अनन्तकीर्तिके समयकी उत्तरावधि विक्रम संवत् १०८२ के पहिले निर्धारित की है, और इस समयके समयमें धादिराजके पार्श्वनाथचरितका यह श्लोक उद्धृत किया है—

“आत्मनैवाद्दितीयेन जीवसिद्धिं निबभ्रता ।

अनन्तकीर्तिना मुफिरात्रिमारगेव लक्ष्यते ॥”

धादिराजने पार्श्वनाथचरित की रचना विक्रम संवत् १०८२ में की थी। संभव तो यह है कि इन्हीं अनन्तकीर्तिने जीवसिद्धिकी तरह लघुसर्वज्ञसिद्धि और बृहत्सर्वज्ञसिद्धि ग्रन्थ बनाये हों। सिद्धिविनिश्चयटीकामें अनन्तवीर्यने भी एक अनन्तकीर्तिका उल्लेख किया है। यदि पार्श्वनाथ चरितमें स्पष्ट अनन्तकीर्ति और सिद्धिविनिश्चयटीकामें उल्लिखित अनन्तकीर्ति एक ही व्यक्ति हैं तो मानना होगा कि इनका समय प्रभाचन्द्रके समयसे पहिले है; क्योंकि प्रभाचन्द्रने अपने ग्रन्थोंमें सिद्धिविनिश्चयटीकाकार अनन्तवीर्यका समुहमान स्मरण किया है। अस्तु। अनन्तकीर्तिके लघुसर्वज्ञसिद्धि तथा बृहत्सर्वज्ञसिद्धि ग्रन्थोंका और प्रमेयकमलमार्तण्ड तथा न्यायकुमुदचन्द्रके सर्वज्ञसिद्धि प्रकरणोंका आभ्यन्तर

परीक्षण यह स्पष्ट बताता है कि इन ग्रन्थोंमें एकका दूसरेके ऊपर पूरा पूरा प्रभाव है।

बृहत्सर्वज्ञसिद्धि—(पृ० १८१ से २०४ तक) के अन्तिम पृष्ठ तो कुछ ओड़ेसे हेरफेरसे न्यायकुसुमदचन्द्र (पृ० ८३८ से ८४७) के मुक्तिवाद प्रकरणके साथ अपूर्व सादृश्य रखते हैं। इन्हें पढ़कर कोई भी साधारण व्यक्ति कह सकता है कि इन दोनोंमेंसे किसी एकने दूसरेका मुख्य सामने रखकर अनुसरण किया है। मेरा तो यह विश्वास है कि अनन्तकीर्तिष्ठत बृहत् सर्वज्ञसिद्धिका ही न्याय-कुसुमदचन्द्र पर प्रभाव है। उदाहरणार्थ—

“किन्तु अज्ञो जनः दुःखानुषक्तसुखसाधनमपश्यन् आत्मज्ञेहात् सांसारिकेषु दुःखानुषक्तसुखसाधनेषु प्रवर्तते । हिताहितविवेकज्ञस्तु तादात्मिकसुखसाधनं क्वादिकं परित्यज्य आत्मज्ञेहात् आत्मन्तिकसुखसाधने मुक्तिमार्गे प्रवर्तते । यथा पथ्यापथ्यविवेकमजानन्नातुरः तादात्मिकसुखसाधनं व्याधिविवृद्धिनिमित्तं दध्यादिकं मुपादत्ते, पथ्यापथ्यविवेकज्ञस्तु तत्परित्यज्य पेयादौ आरोग्यसाधने प्रवर्तते । उदात्त-तदात्मसुखसंज्ञेषु भावेष्वज्ञोऽनुरज्यते । हितमेवानुरच्यन्ते प्रपरीक्ष्य परीक्षकाः ॥”-न्यायकुसुमदचन्द्र पृ० ८४२ ।

“किन्तु तज्ज्ञो जनो दुःखानुषक्तसुखसाधनमपश्यन् आत्मज्ञेहात् संसारान्तः-पतिवेधे दुःखानुषक्तसुखसाधनेषु प्रवर्तते । हिताहितविवेकज्ञस्तु तादात्मिकसुख-साधनं क्वादिकं परित्यज्य आत्मज्ञेहादात्मन्तिकसुखसाधने मुक्तिमार्गे प्रवर्तते । यथा पथ्यापथ्यविवेकमजानन्नातुरः तादात्मिकसुखसाधनं व्याधिविवृद्धिनिमित्तं दध्यादिकं मुपादत्ते, पथ्यापथ्यविवेकज्ञस्तु आतुरस्तादात्मिकसुखसाधनं दध्यादिकं परित्यज्य पेयादावारोग्यसाधने प्रवर्तते । तथा च कस्यचिद्विदुषः सुभाषितम्-तदात्मसुखसंज्ञेषु भावेष्वज्ञोऽनुरज्यते । हितमेवानुरच्यन्ते प्रपरीक्ष्य परीक्षकाः ॥”-बृहत्सर्वज्ञसिद्धि पृ० १८१ ।

इस तरह यह समूचा ही प्रकरण इसी प्रकारके शब्दानुसरणसे ओत-प्रोत है।

शाकटायन और प्रभाचन्द्र—राष्ट्रकूटवंशीय राजा अमोघवर्षके राज्यकाल (ईसी ८१४-८७७) में शाकटायन नामके प्रसिद्ध वैयाकरण हो गए हैं । ये थापनीय संघके आचार्य थे। थापनीयसंघका वास्तु आचार बहुत कुछ दिगम्बरोंसे मिलता जुलता था। ये नम रहते थे। श्वेताम्बर आगमोंकी आदरकी दृष्टिसे देखते थे। आ० शाकटायनके अमोघवर्षके नामसे अपने शाकटायनव्याकरण पर ‘अमोघवृत्ति’ नामकी टीका बनाई थी। अतः इनका समय भी लगभग ई०

१ देखो—प० नाम्दारमश्रीका ‘थापनीय साहित्यकी खोज’ (अनेकान्त वर्ष ३ किरण १) तथा प्रो० प० यन्त्र० उपाध्यायका ‘थापनीयसंघ’ (जैनदर्शन वर्ष ४ अंक ७) कैब ।

८०० से ८७५ तक समझना चाहिए। यापनीयसंघके अनुयायी दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायोंकी कुछ कुछ बातोंको स्वीकार करते थे। एक तरहसे यह संघ दोनों सम्प्रदायोंके जोड़नेके लिए शृंखलाका कार्य करता था। आचार्य मलयगिरिने अपनी नन्दीसूत्रकी टीका (पृ० १५) में शाकटायनको 'यापनीय-यतिप्रामाप्रणी' लिखा है—“शाकटायनोऽपि यापनीययतिप्रामाप्रणीः खोपज्ञशब्दानु-शासनवृत्तौ”। शाकटायन आचार्यने अपनी अमोघवृत्तिमें छेदसूत्र निर्युक्ति कालि-कसूत्र आदि श्रे० ग्रन्थोंका बड़े आदरसे उल्लेख किया है। आचार्य शाकटायनने केवलिकवलाहार तथा ज्ञीमुक्तिके समर्थनके लिए ज्ञीमुक्ति और केवलिमुक्ति नामके दो प्रकरण बनाए हैं^१। दिगम्बर और श्वेताम्बरोंके परस्पर बिलगावमें ये दोनों सिद्धान्त ही मुख्य माने जाते हैं। यों तो दिगम्बर ग्रन्थोंमें कुन्दकुन्दाचार्य पूज्यपाद आदिके ग्रन्थोंमें ज्ञीमुक्ति और केवलिमुक्तिका सूत्ररूपसे निरसन किया गया है, परन्तु इन्हीं विषयोंके पूर्वोत्तरपक्ष स्थापित करके शास्त्रार्थका रूप आ० प्रभाचन्द्रने ही अपने प्रमेयकमलमार्तण्ड तथा न्यायकुमुदचन्द्रमें दिया है। श्वेता-म्बरोंके तर्कसाहित्यमें हम सर्वप्रथम हरिभद्रसूरिकी छलितविस्तरामें ज्ञीमुक्तिका संक्षिप्त समर्थन देखते हैं, परन्तु इन विषयोंको शास्त्रार्थका रूप सन्मतटीकाकार अभयदेव, उत्तराध्ययन पाइयटीकाके रचयिता शान्तिसूरि, तथा स्याद्वादरत्नाकर-कार वादिदेवसूरिने ही दिया है। पीछे तो यशोविजय उपाध्याय, तथा मेघवि-जयगणि आदिने पर्याप्त साम्प्रदायिक रूपसे इनका विस्तार किया है। इन विवादप्रसक्त विषयोंपर लिखे गए अभयपक्षीय साहित्यका ऐतिहासिक तथा तार्त्तिक-दृष्टिसे सूक्ष्म अध्ययन करने पर यह स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि ज्ञीमुक्ति और केवलिमुक्ति विषयोंके समर्थनका प्रारम्भ श्वेताम्बर आचार्योंकी अपेक्षा यापनीयसंघ-वालोंने ही पहिले तथा दिलचस्पी के साथ किया है। इन विषयोंको शास्त्रार्थका रूप देनेवाले प्रभाचन्द्र, अभयदेव, तथा शान्तिसूरि करीब करीब समकालीन तथा समदेशीय थे। परन्तु इन आचार्योंने अपने पक्षके समर्थनमें एक दूसरेका उल्लेख या एक दूसरेकी दलीलोंका साक्षात् खंडन नहीं किया। प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्यायकुमुदचन्द्रमें ज्ञीमुक्ति और केवलिमुक्तिका जो विस्तृत पूर्वपक्ष लिखा गया है वह किसी श्वेताम्बर आचार्यके ग्रन्थका न होकर यापनीयाग्रणी शाक-टायनके केवलिमुक्ति और ज्ञीमुक्ति प्रकरणोंसे ही लिया गया है। इन ग्रन्थोंके उत्तरपक्षमें शाकटायनके उक्त दोनों प्रकरणोंकी एक एक दलीलका शब्दश-पूर्वपक्ष करके सयुक्तिक निरास किया गया है। इसी तरह अभयदेवकी सन्मतितर्कटीका, और शान्तिसूरिकी उत्तराध्ययन पाइयटीका और जैततर्कवार्तिकमें शाकटायनके इन्हीं प्रकरणोंके आधारसे ही उक्त बातोंका समर्थन किया गया है। हाँ, वादिदे-वसूरिके रत्नाकरमें इन मतभेदोंमें दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सामने सामने आते हैं। रत्नाकरमें प्रभाचन्द्रकी दलीलें पूर्वपक्ष रूपमें पाई जाती हैं। तार्त्त्यर्ष यह कि—प्रभाचन्द्रने ज्ञीमुक्तिवाद तथा केवलिकवलाहारवादमें श्वेताम्बर आचा-

१ ये प्रकरण जैनसाहित्यसंघोषक खड २ अंक ३-४ में मुद्रित हुए हैं।

गौकी वजाय शाकटायनके केवलिमुक्ति और ज्ञीमुक्ति प्रकरणोंको ही अपने खंडनका प्रधान उद्देश्य बनाया है । न्यायकुमुदचन्द्र (पृ० ८९९) के पूर्व-प्रश्नोंमें शाकटायनके ज्ञीमुक्ति प्रकरणकी यह कारिका भी प्रमाण रूपसे उद्धृत की गई है—

“गार्हस्थ्येऽपि सुसत्त्वा विख्याताः शीलवत्या जगति ।

सीतादयः कथं तास्तपसि विशीला विसत्त्वाश्च ॥” [ज्ञीमु० श्लो० ३१]

अभयनन्दि और प्रभाचन्द्र—जैनेन्द्रव्याकरणपर आ० अभयनन्दिकृत महावृत्ति उपलब्ध है । इसी महावृत्तिके आधारसे प्रभाचन्द्रने ‘शब्दाम्मोजभास्कर’ नामका जैनेन्द्रव्याकरणका महान्यास बनाया है । पं० नाथरामजी प्रेमीने अपने ‘जैनेन्द्रव्याकरण और आचार्य देवनन्दी’ नामक लेखमें जैनेन्द्रव्याकरणके प्रचलित दो सूत्र पाठोंमेंसे अभयनन्दिसम्मत सूत्रपाठको ही प्राचीन और पूज्य-पादकृत सिद्ध किया है । इसी पुरातनसूत्रपाठ पर प्रभाचन्द्रने अपना न्यास बनाया है । प्रेमीजीने अपने उक्त गवेषणापूर्ण लेखमें महावृत्तिकार अभयनन्दिको चन्द्रप्रमचरित्रकार वीरनन्दिका शुरु बताया है और उनका समय विक्रमकी ग्यारहवीं शताब्दीका पूर्वभाग निर्धारित किया है । आ० नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तिके शुरु भी यही अभयनन्दि थे । गोम्मतसार कर्मकाण्ड (गा० ४३६) की निम्नलिखित गायत्रि-श्री यही बात पुष्ट होती है—

“जस्य य पायपसाएुषणं तर्त्सारजलहिमुतिष्णो ।

वीरिदणं दिवच्छो णमामि तं अभयणं दिगुर्ह ॥”

इस गायत्रि तथा कर्मकाण्डकी गायत्रि नं० ७८४, ८९६ तथा लघिसार गा० ६४८ से यह सुनिश्चित हो जाता है कि वीरनन्दिके शुरु अभयनन्दि ही नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तिके शुरु थे । आ० नेमिचन्द्रने तो वीरनन्दि, इन्द्रनन्दि और इन्द्रनन्दिके शिष्य कनकनन्दि तकका शुरुरूपसे स्मरण किया है । इन सब उल्लेखों से ज्ञात होता है कि अभयनन्दि, उनके शिष्य वीरनन्दि और इन्द्रनन्दि, तथा इन्द्रनन्दिके शिष्य कनकनन्दि सभी प्रायः नेमिचन्द्रके समकालीन बृद्ध थे ।

चादिराजसूरिने अपने पार्श्वचरितमें चन्द्रप्रमचरित्रकार वीरनन्दिका स्मरण किया है । पार्श्वचरित शकसंवत् ९४७, ई० १०२५ में पूर्ण हुआ था । अतः वीरनन्दिकी उत्तराधि ई० १०२५ तो सुनिश्चित है । नेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्तिने गोम्मतसार ग्रन्थ चासुण्डरायके सम्बोधनार्थ बनाया था । चासुण्डराय गंगवंशीय महाराज मारसिंह-द्वितीय (९७५ ई०) तथा उनके उत्तराधिकारी राजमहल द्वितीयके मन्त्री थे । चासुण्डरायने श्रवणवेल्लुल्लख बाहुवलि गोम्मतेश्वरकी मूर्तिकी प्रतिष्ठा ई० ९८१ में कराई थी, तथा अपना चासुण्डपुराण

१ इसका परिचय ‘प्रभाचन्द्रके ग्रन्थ’ शीर्षका सन्मामें देखना चाहिए ।

२ जैन साहित्यसंशोधक माग १ अंक ३ ।

३ देखो त्रिलोकसार की प्रस्तावना ।

ई० ९७८ में समाप्त किया था। अतः आ० नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तीका समय ई० ९८० के आसपास अनुनिश्चित किया जा सकता है। और लगभग यही समय आचार्य अभयनन्दि आदिका होना चाहिए। इन्होंने अपनी महावृत्ति (लिखित पृ० २२१) में मर्तुहरि (ई० ६५०) की वाक्यपदीयका उल्लेख किया है। पृ० ३९३ में माघ (ई० ७ वीं सदी) काव्यसे 'सदाच्छटाभिर्न' श्लोक उद्धृत किया है। तथा ३।२।५५ की वृत्तिमें 'तत्त्वार्यवार्तिकमधीयते' प्रयोगसे अकलङ्कदेव (ई० ८ वीं सदी) के तत्त्वार्यराजवार्तिकका उल्लेख किया है। अतः इनका समय ९ वीं शताब्दीसे पहिले तो नहीं ही है। यदि यही अभयनन्दि जैनेन्द्र महावृत्तिके रचयिता हैं तो कहना होगा कि उन्होंने ई० ९६० के लगभग अपनी महावृत्ति बनाई होगी। इसी महावृत्ति पर ई० १०६० के लगभग आ० प्रभाचन्द्रने अपना शब्दाम्भोजभास्कर न्यास बनाया है; क्योंकि इसकी रचना न्यायकुमुदचन्द्रके बाद की गई है और न्यायकुमुदचन्द्र जयसिंहदेव (राज्य १०५६ से) के राज्य के प्रारम्भकाल में बनाया गया है।

मूलाचारकार और प्रभाचन्द्र—मूलाचार ग्रन्थके कर्ताके विषयमें विद्वान् मतभेद रखते हैं। कोई इसे कुन्दकुन्दकृत कहते हैं तो कोई बहूकेरिंकृत। जो हो, पर इतना निश्चित है कि मूलाचारकी सभी गाथाएँ स्वयं उसके कर्ताने नहीं रची हैं। उसमें अनेकों ऐसी प्राचीन गाथाएँ हैं, जो कुन्दकुन्दके ग्रन्थोंमें, भगवती आराधनामें तथा आवस्यकनिर्युक्ति, पिण्डनिर्युक्ति और सम्मतितर्क आदि में भी पाई जाती हैं। संभव है कि गोम्मटसार की तरह यह भी एक संग्रह ग्रन्थ हो। ऐसे संग्रहग्रन्थोंमें प्राचीन गाथाओंके साथ कुछ संग्रहकाररचित गाथाएँ भी होती हैं। गोम्मटसारमें बहुभाग खरचित है जब कि मूलाचारमें खरचित गाथाओंका बहुभाग नहीं मात्स्य होता। आ० प्रभाचन्द्रने न्यायकुमुदचन्द्र (पृ० ८४५) में "एगो मे सस्सदो" "सञ्चोगमूलं जीवेन" ये दो गाथाएँ उद्धृत की हैं। ये गाथाएँ मूलाचारमें (२।४८, ४९) दर्ज हैं। इनमें पहिली गाथा कुन्दकुन्दके भावपाहुड तथा नियमसारने भी पाई जाती है। इसी तरह प्रमेयकमलमार्तण्ड (पृ० ३३१) में "आचेलकुहेसिय" आदि गाथांश्च दशविच स्थितिकल्पका निर्देश करने के लिए उद्धृत है। यह गाथा मूलाचार (गाथा नं० ९०९) में तथा भगवती आराधनामें (गाथा ४२१) विद्यमान है। यहाँ यह बात खास ध्यान देने योग्य है कि प्रभाचन्द्रने इस गाथाको श्वेताम्बर आगममें आचेलक्यके समर्थनका प्रमाण बताने के लिए श्वेताम्बर आगमके रूपमें उद्धृत किया है। यह गाथा जीतकल्पभाष्य (गा० १९७२) में पाई जाती है। गाथाओं की इस संक्रान्त स्थितिको देखते हुए यह सहज ही कहा जा सकता है कि—कुछ प्राचीन गाथाएँ परम्परासे चली आई हैं, जिन्हें दिग० और श्वेता० दोनों आचार्योंने अपने ग्रन्थोंमें स्थान दिया है।

नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती और प्रभाचन्द्र—आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती वीरसेनापति श्री चामुण्डरायके समकालीन थे। चामुण्डराय वंगव-

श्रीय महाराज मारसिंह द्वितीय (१७५ ई०) तथा उनके उत्तराधिकारी राज-महल द्वितीयके मन्त्री थे । इन्हींके राज्यकालमें चासुण्डरायने गोम्मटेश्वरकी प्रतिष्ठा (सन् १८१) कराई थी । आ० नेमिचन्द्रने इन्हीं चासुण्डरायको सिद्धान्त परिज्ञान करानेके लिए गोम्मटसार ग्रन्थ बनाया था । यह ग्रन्थ प्राचीन सिद्धान्तग्रन्थोंका संक्षिप्त संस्करण है । न्यायकुमुदचन्द्र (पृ० २५४) में 'लोयाया-सपण्णे' गाथा उद्धृत है । यह गाथा जीवकांड तथा द्रव्यसंग्रह में पाई जाती है । अतः आपाततः यही निष्कर्ष निकल सकता है कि यह गाथा प्रभाचन्द्रने जीवकांड या द्रव्यसंग्रहसे उद्धृत की होगी, परन्तु अन्वेषण करने पर मालूम हुआ कि यह गाथा बहुत प्राचीन है और सर्वार्थसिद्धि (५।३९) तथा श्लोक-वार्तिक (पृ० ३९९) में भी-यह उद्धृत की गई है । इसी तरह प्रमेयकम-लमार्तण्ड (पृ० ३००) में 'विमाहगहमावण्णा' गाथा उद्धृत की गई है । यह गाथा भी जीवकांड में है । परन्तु यह गाथा भी वस्तुतः प्राचीन है और धव-लदीका तथा उमास्वातिकृत भावकप्रशस्तिमें मौजूद है ।

प्रमेयरत्नमालाकार अनन्तवीर्य और प्रभाचन्द्र-रविभद्रके शिष्य अनन्तवीर्य आचार्य, अकलंकके प्रकरणोंके ख्यात टीकाकार विद्वान् थे । प्रमेयरत्न-मालाके टीकाकार अनन्तवीर्य उनसे पृथक् व्यक्ति हैं; क्योंकि प्रभाचन्द्रने अपने प्रमेयकमलमार्तण्ड तथा न्यायकुमुदचन्द्रमें प्रथम अनन्तवीर्यका स्मरण किया है, और द्वितीय अनन्तवीर्य अपनी प्रमेयरत्नमालामें इन्हीं प्रभाचन्द्र का स्मरण करते हैं । वे लिखते हैं कि प्रभाचन्द्रके बचनोंको ही संक्षिप्त करके यह प्रमेयरत्नमाला बनाई जा रही है । प्र० ए० एन्० सपाध्यायने^३ प्रमेयरत्नमालाकार अनन्तवीर्यके समयका अनुमान ग्यारहवीं सदी किया है, जो उपयुक्त है । क्योंकि आ० हेम-चन्द्र (१०८८-११७३ ई०) की प्रमाणनीमांसा पर शब्द और अर्थ दोनों दृष्टिसे प्रमेयरत्नमालाका पूरा पूरा प्रभाव है । तथा प्रभाचन्द्रके प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्यायकुमुदचन्द्रका प्रभाव प्रमेयरत्नमाला पर है । आ० हेमचन्द्रकी प्रमाण-नीमांसाने प्रायः प्रमेयरत्नमालाके द्वारा ही प्रमेयकमलमार्तण्ड को पाया है ।

देवसेन और प्रभाचन्द्र-देवसेन श्रीविमलसेन गणीके शिष्य थे । इन्होंने धारानगरीके पार्श्वनाथ मन्दिरमें माघ सुषी दशमी विक्रमसंवत् ९९०

१ प्रमेयकमलमार्तण्डके प्रथम संस्करणके संपादक प० बशीपरजीषाणी सोलापुरने प्रमेयक० की प्रस्तावनामें यही निष्कर्ष निकाला भी है ।

२ "प्रमेन्दुवचनोदारचन्द्रिकाप्रसरे सति ।
माहृशाः नव नु गण्यन्ते ज्योतिरिङ्गणसक्तिमाः ॥
तथापि तद्वचोऽपूर्वरचनास्तिरे सताम् ।
चेतोहर मूर्तं यद्ब्रह्मा नवषटे जलम् ॥"

३ देखो जैनदर्शन वर्ष ४ अंक ९ ।

४ नयचक्री प्रस्तावना पृ० ११-१ ।

(ई० ९३३) में अपना दर्शनसार ग्रन्थ बनाया था । दर्शनसारके बाद इन्होंने भावसंग्रह ग्रन्थकी रचना की थी; क्योंकि उसमें दर्शनसारकी अनेकों गाथाएँ उद्धृत मिलती हैं । इनके आराधनासार, तत्त्वसार, नयचक्रसंग्रह तथा आत्मपद्धति ग्रन्थ भी हैं । आ० प्रभाचन्द्रने प्रमेयकमलमार्तण्ड (पृ० ३००) तथा न्यायकसुन्दर (पृ० ८५६) के कवलाहारवादमें देवसेनके भावसंग्रह (गा० ११०) की यह गाथा उद्धृत की है—

“गोकम्मकम्महारो कवलाहारो य लेप्पमाहारो ।
ओज मणोवि य कमसो आहारो छन्विहो पेयो ॥”

यद्यपि देवसेनसरिने दर्शनसार ग्रन्थके अन्तमें लिखा है कि—

“पुब्बायरियक्याई गाहाई संचिळण एयत्थ ।
सिरिदेवसेणगणिणा चाराए संवसेण ॥
रइयो दंसणसारो हारो भव्वाण णवसए णवए ।
सिरिपासणाहणेहे सुविमुद्धं माहसुद्धदसमीए ॥”

अर्थात् पूर्वार्च्यकृत गाथाओंका संचय करके यह दर्शनसार ग्रन्थ बनाया गया है । तथापि बहुत खोज करने पर भी यह गाथा किसी प्राचीन ग्रंथमें नहीं मिल सकी है । देवसेन धारानगरीमें ही रहते थे, अतः धारानिवासी प्रभाचन्द्रके द्वारा भावसंग्रहसे भी उक्त गाथाका उद्धृत किया जाना असंभव नहीं है । चूंकि दर्शनसारके बाद भावसंग्रह बनाया गया है, अतः इसका रचनाकाल संभवतः विक्रम संवत् ९९७ (ई० ९४०) के आसपास ही होगा ।

श्रुतकीर्ति और प्रभाचन्द्र-जैनेन्द्रके प्राचीन सूत्रपाठपर आचार्य श्रुतकीर्तिकृत पंचवस्तुप्रक्रिया उपलब्ध है^१ । श्रुतकीर्तिने अपनी प्रक्रियाके अन्तमें श्रीमहृत्तिशब्दसे अभयनन्दिकृत महावृत्ति और न्यासशब्दसे संभवतः प्रभाचन्द्रकृत न्यास, दोनोंका ही उल्लेख किया है । यदि न्यासशब्द न्यासपादके जैनेन्द्र-न्यासका निर्देशक हो तो ‘टीकामाल’ शब्दसे तो प्रभाचन्द्रकी टीकाका उल्लेख किया ही गया है । यथा—

“सूत्रस्तम्भसमुद्धृतं प्रविलसत्त्यासोरजाश्रिति,
श्रीमहृत्तिकपाठसंपुटसुतं भाव्यौषधव्यातलम् ।
टीकामालमिहारसुखरचितं जैनेन्द्रशब्दागमम्,
प्रासारं पृथुपञ्चवस्तुकमिदं सोपानमारोहतात् ॥”

कनकी भाषाके चन्द्रप्रभचरित्रके कर्ता अगलकविने श्रुतकीर्तिको अपना गुरु बताया है—

“इति परमपुरुषाथकुलभूसुत्समुद्धृतप्रवचनसरित्सरिञ्चायश्रुतकीर्तित्रैविद्यचक्रव-

१ देखो प्रेमीजीका ‘जैनेन्द्र व्याकरण और आचार्यदेवगन्धी’ केस जैनसा० सं० भाग १ अंक २ ।

तिपदपद्यानिधानदीपवर्तिश्रीमदमालदेवविरचिते चन्द्रप्रभवचरिते” । यह चरित्र शक संवत् १०११, ई० १०८९ में बनकर समाप्त हुआ था । अतः श्रुतकीर्तिका समय लगभग १०८० ई० मानना युक्तिसंगत है । इन श्रुतकीर्तिनि न्यासको जैनेन्द्र व्याकरण रूपी प्रासादकी रत्नभूमिकी उपमा दी है । इससे चन्द्राम्भोज-भास्करका रचनासमय लगभग ई० १०६० समर्थित होता है ।

श्रे० आगमसाहित्य और प्रभाचन्द्र-भ० महावीरकी अर्धभागवी दिव्यजनिको गणघरों ने द्वादशांगी रूपमें रूँया था । उस समय उन अर्धभागवी भाषामय द्वादशांग आगमोंकी परम्परा श्रुत और स्मृत रूपमें रही, लिपिवद्ध नहीं थी । इन आगमोंका आखरी संकलन वीर सं० ९८० (वि० ५१०) में श्वेताम्बरार्च्य देवर्दिगणि क्षमाश्रमणने किया था । अंगग्रन्थोंके सिवाय कुछ अंगबाह्य या अर्नगाल्मक श्रुत भी है । छेदसूत्र अर्नगश्रुतमें शामिल है । आ० प्रभाचन्द्रने न्यायकुमुदचन्द्र (पृ० ८६८) के ज्ञीमुक्तिवादके पूर्वपक्षमें कल्पसूत्र (५१२०) से “नो कम्पह गिरगंधीए अचेलाए होत्तए” यह सूत्रवाक्य उद्धृत किया है ।

तत्त्वार्थभाष्यकार और प्रभाचन्द्र-तत्त्वार्थसूत्रके दो सूत्रपाठ प्रचलित हैं । एक तो वह, जिस पर स्वयं वाचक समाखातिका खोपज्ञभाष्य प्रसिद्ध है, और दूसरा वह जिस पर पूज्यपादकृत सचार्थसिद्धि है । दिगम्बर परम्परामें पूज्यपादसम्मत सूत्रपाठ और श्वेताम्बरपरम्परामें भाष्यसम्मत सूत्रपाठ प्रचलित है । समाखातिके खोपज्ञभाष्यके कर्तृत्वके विषयमें आज कल विवाद चल रहा है । गुप्तरसा० आदि कुछ विद्वान् भाष्यकी समाखातिकर्तृत्वताके विषयमें सन्दिग्ध हैं । आ० प्रभाचन्द्रने प्रमेयकमलमार्तण्ड तथा न्यायकुमुदचन्द्रमें दिगम्बरसूत्रपाठसे ही सूत्र उद्धृत किए हैं । उन्होंने न्यायकुमुदचन्द्र (पृ० ८५९) के ज्ञीमुक्तिवादके पूर्वपक्षमें तत्त्वार्थभाष्यकी सम्बन्धकारिकाओंमेंसे “श्रूयन्ते भानन्ताः सामाधिकमानसंसिद्धाः” कारिकाएँ उद्धृत किया है । तत्त्वार्थ-राजवार्तिक (पृ० १०) में भी “अर्नताः सामाधिकमात्रसिद्धाः” वाक्य उद्धृत मिलता है । इसी तरह तत्त्वार्थभाष्यके अन्तमें पाई जाने वाली ३२ कारिकाएँ राजवार्तिकके अन्तमें ‘सफ़ल’ लिखकर उद्धृत हैं । पृ० ३६१ में भाष्यकी ‘वृत्ते वीजे’ कारिका उद्धृत की गई है । इसादि प्रमाणोंके आधारसे यह नि सङ्कोच कहा जा सकता है कि प्रस्तुत भाष्य अकलङ्कदेवके सामने भी था । उनने इसके कुछ मन्तव्योंकी समीक्षा भी की है ।

सिद्धसेन और प्रभाचन्द्र-आ० सिद्धसेनके सन्मतिवर्क, न्यायावतार, द्वात्रिंशत् द्वात्रिंशतिका ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं । इनके सन्मतिवर्क पर अभयदेवसूरिने विस्तृत व्याख्या लिखी है । डॉ. जैकोबी न्यायावतारके प्रत्यक्ष लक्षणमें अज्ञान्त-

पद देखकर इनको धर्मकीर्तिका समकालीन, अर्थात् ईसाकी ७ वीं शताब्दीका विद्वान् मानते हैं। पं० मुखलाल जी इन्हें विक्रमकी पांचवीं सदीका विद्वान् सिद्ध करते थे। पर अब उनका विश्वास है कि "सिद्धसेन ईसाकी छठीं या सातवीं सदीमें हुए हों और उन्होंने संभवतः धर्मकीर्तिके ग्रन्थोंको देखा हो।" न्यायावतारकी रचनामें न्यायप्रवेशके साथ ही साथ न्यायविन्दु भी अपना यत्किञ्चिद् स्थान रखता ही है। आ० प्रभाचन्द्रने न्यायकुसुदचन्द्र (पृ० ४३७) में पक्षप्रयोगका समर्थन करते समय 'धानुष्क' का दृष्टान्त दिया है। इसकी तुलना न्यायावतारके श्लोक १४-१६ से भलीभांति की जा सकती है। न केवल मूलश्लोकसे ही, किन्तु इन श्लोकोंकी सिद्धपिंकृत व्याख्या भी न्यायकुसुदचन्द्रकी शब्दरचनासे तुलनीय है।

धर्मदासगणि और प्रभाचन्द्र—श्रे० आचार्य धर्मदासगणिका उपदेश-माला ग्रन्थ प्राकृतगाथानिबद्ध है। प्रसिद्धि तो यह रही है कि ये महावीरस्वामीके वीक्षित शिष्य थे। पर यह इतिहासविरुद्ध है, क्योंकि इन्होंने अपनी उपदेश-मालामें वज्रसूरि आदिके नाम लिए हैं। अस्तु। उपदेशमाला पर सिद्धपिंसूरिकृत प्राचीन टीका उपलब्ध है^३। सिद्धपिंने उपमितिभवप्रपञ्चाकथा वि० सं० ९६२ ज्येष्ठ शुद्ध पंचमीके दिन समाप्त की थी। अतः धर्मदासगणिकी उत्तरावधि विक्रम की ९ वीं शताब्दी माननेमें कोई बाधा नहीं है। प्रभाचन्द्रने प्रमेयकमल-मार्त्तण्ड (पृ० ३३०) में उपदेशमाला (गा० १५) की 'वरिससयदिवस्त्रयाए अजाए अज दिविस्त्रयो साहू' इत्यादि गाथा प्रमाणरूपसे उद्धृत की है।

हरिभद्र और प्रभाचन्द्र—आ० हरिभद्र श्रे० सम्प्रदायके युगप्रधान आचार्योंमेंसे हैं। कहा जाता है कि इन्होंने १४०० के करीब ग्रन्थोंकी रचना की थी। मुनि श्री जिनविजयजीने अनेक प्रबल प्रमाणोंसे इनका समय ई० ७०० से ७७० तक निर्धारित किया है। मेरा इसमें इतना संशोधन है—कि इनके समयकी उत्तरावधि ई० ८१० तक होनी चाहिए; क्योंकि जयन्त भट्टकी न्यायमंजरीका 'गम्भीरगर्जितारम्भ' श्लोक षड्दर्शनसमुच्चयमें शामिल हुआ है। मैं विस्तारसे लिख चुका हूँ कि जयन्तने अपनी मंजरी ई० ८०० के करीब बनाई है अतः हरिभद्रके समयकी उत्तरावधि कुछ और लम्बानी चाहिए। उस युगमें १०० वर्षकी आयु तो साधारणतया अनेक आचार्यों की देखी गई है। हरिभद्रसूरिके दार्शनिक ग्रन्थोंमें 'षड्दर्शनसमुच्चय' एक विशिष्ट स्थान रखता है। इसका—

"प्रत्यक्षमनुमानत्र शब्दश्लोपमया सह ।

अर्थोपतिरभावश्च षट् प्रमाणानि जैमिनेः ॥ ७२ ॥"

यह श्लोक न्यायकुसुदचन्द्र (पृ० ५०५) में उद्धृत है। यद्यपि इसी भावका

१ इंग्लिश सन्मतितर्क की प्रस्तावना ।

२ जैनसाहित्यको इतिहास पृ० ३८६ ।

एक श्लोक—“प्रत्यक्षमनुमानश्च शब्दशोपमया सह । अर्थापत्तिरभावश्च षडेते साध्यसाधकम् ॥” इस शब्दावलीके साथ कमलशीलक्री तत्त्वसंग्रहपत्रिका (पृ० ४५०) में मिलता है और उससे संभावना की जा सकती है कि जैमिनीकी षट्प्रमाणसंख्याका निदर्शक यह श्लोक किसी जैमिनिमतानुयायी आचार्यके ग्रन्थसे लिया गया होगा । यह संभावना हृदयको लगती सी है । परन्तु जबतक इसका प्रसाधक कोई समर्थ प्रमाण नहीं मिलता तबतक उसे हरिभद्रकृत माननेमें ही लाजव है । और बहुत कुछ संभव है कि प्रभाचन्द्रने इसे षड्दर्शनसमुच्चयसे ही उद्धृत किया हो । हरिभद्रने अपने ग्रन्थोंमें पूर्वपक्षके पल्लवन् और उत्तरपक्षके पोषणके लिए अन्यग्रन्थकारोंकी कारिकाएँ, पर्याप्त मात्रामें, कहीं उन आचार्योंके नामके साथ और कहीं बिना नाम लिए ही शामिल की हैं । अतः कारिकाओंके विषयमें यह निर्णय करना बहुत कठिन हो जाता है कि ये कारिकाएँ हरिभद्रकी स्वरचित हैं या अन्यरचित होकर संगृहीत हैं ? इसका एक और उदाहरण यह है कि—

“विज्ञानं वेदना संज्ञा संस्कारो रूपमेव च ।
समुचेति यतो लोके रागादीना गणोऽखिल ॥
आत्मात्मीयस्वभावाख्यः समुदायः स सम्मत ।
क्षणिका सर्वसंस्कारा इत्येवं वासना यत्र ॥
स मार्ग इति विज्ञेयो निरोधो मोक्ष उच्यते ।
पञ्चेन्द्रियाणि शब्दाद्या विषया पञ्च मानसम् ॥
धर्मापसनमेतानि द्वादशायतनानि च....”

ये चार श्लोक षड्दर्शनसमुच्चयके बौद्धदर्शनमें मौजूद हैं । इसी आनुपूर्वीसे ये ही श्लोक किञ्चित् शब्दभेदके साथ जिनसेनके आदिपुराण (पक्ष ५ श्लो० ४२-४५) में भी विद्यमान हैं । रचनासे तो ज्ञात होता है कि ये श्लोक किसी बौद्धाचार्यने बनाए होंगे, और उसी बौद्धग्रन्थसे षड्दर्शनसमुच्चय और आदिपुराणमें पहुँचे हों । हरिभद्र और जिनसेन प्रायः समकालीन हैं, अत यदि ये श्लोक हरिभद्रके होकर आदिपुराणमें आए हैं तो इसे उससमयके असम्प्रदायिक भावकी महत्त्वपूर्ण घटना समझनी चाहिए । हरिभद्रने तो शालवार्तासमुच्चयमें समन्तभद्रकी आत्मपीमांसाके श्लोक उद्धृत कर अपनी षड्दर्शनसमुच्चयक बुद्धिके प्रेरणा बीजको ही मूर्तरूपमें अङ्कुरित किया है । यदि न्यायप्रवेशाष्टिकाकार हरिभद्र ये ही हरिभद्र हैं तो उस वृत्ति (पृ० १३) में पाई जाने वाली पक्षशब्दकी ‘पच्यते व्यचीक्रियते योऽर्थः सः पक्षः’ इस व्युत्पत्तिकी अस्पष्ट छाया न्यायकुसुदचन्द्र (पृ० ४३८) में की गई पक्षकी व्युत्पत्ति पर आभासित होती है ।

सिद्धार्थि और प्रभाचन्द्र—श्रीसिद्धार्थिगणि श्लो० आचार्य दुर्गेश्वामीके शिष्य थे । इन्होंने ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी, विक्रम संवत् १६२ (१ मई ९०६ ई०) के दिन उपसिद्धिभवप्रस्था कथाकी समाप्ति की थी । सिद्धसेन दिवाकरके न्यायावता-

रपर भी इनकी एक टीका उपलब्ध है। न्यायावतार (खो० १६) में पक्षप्रयोगके समर्थनके प्रसंगमें लिखा है कि—“जिस तरह लक्ष्यनिर्देशके बिना अपनी धनुर्विद्याका प्रदर्शन करने वाले धनुर्धारीके गुण-दोषोंका यथावत् निर्णय नहीं हो सकता, गुण भी दोषरूपसे तथा दोष भी गुणरूपसे प्रतिभासित हो सकते हैं, उसी तरह पक्षका प्रयोग किए बिना साधनवादीके साधन सम्बन्धी गुण-दोष भी विपरीत रूपमें प्रतिभासित हो सकते हैं, प्राश्रिक तथा प्रतिवादी आदिको उनका यथावत् निर्णय नहीं हो सकता।” न्यायकुमुदचन्द्र (पृ० ४३७) के ‘पक्षप्रयोगविचार’ प्रकरणमें भी पक्षप्रयोगके समर्थनमें धनुर्धारी का दृष्टान्त दिया गया है। उसकी शब्दरचना तथा भावव्यञ्जनामें न्यायावतारके मूलश्लोकके साथ ही साथ सिद्धिर्षिकृत व्याख्याका भी पर्याप्त शब्दसादृश्य पाया जाता है। अवतार-णोंके लिए देखो—न्यायकुमुदचन्द्र पृ० ४३७ टि० १।

अभयदेव और प्रभाचन्द्र—चन्द्रगच्छमें प्रद्युम्नसूरि बड़े ख्यात आचार्य थे। अभयदेव सूरि इन्हीं प्रद्युम्नसूरिके विष्ये थे। न्यायवनसिंह और तर्कप्रधानन इनके विरुद्ध थे। सन्मतिदर्शकी गुजराती प्रस्तावना (पृ० ८३) में श्रीमान् पं० सुखलालजी और पं० बेचरदासजीने इनका समय विक्रमकी दशवीं सदीका उत्तरार्ध और ग्यारहवींका पूर्वार्ध निश्चित किया है। उत्तराध्ययनकी पाइयटीकाके रचयिता शान्तिस्वरिने उत्तराध्ययनटीकाकी प्रशस्तिमें एक अभयदेव को प्रमाणविद्याका गुरु लिखा है। पं० सुखलालजीने शान्तिस्वरिके गुरुरूपमें इन्हीं अभयदेव-सूरिकी संभावना की है। प्रभाषकचरित्रके उल्लेखानुसार शान्तिस्वरिका खर्गवास वि० सं० १०९६ में हुआ था। इन्हीं शान्तिस्वरिने धनपालकविकी तिलकमजरी आख्यायिका का संशोधन किया था, और उस पर एक टिप्पण लिखा था। धनपाल कवि मुञ्ज तथा भोज दोनोंकी राजसभाओं में सम्मानित हुए थे। इन सब घटनाओंको मद्दे नजर रखते हुए अभयदेव सूरिका समय विक्रमकी ग्यारहवीं शताब्दी के अन्तिम भाग तक मान लेने में कोई बाधा प्रतीत नहीं होती। अभयदेव सूरिकी प्रामाणिकप्रकाण्डताका जीवन्त रूप उनकी सन्मतिटीका में पद पद पर मिलता है। इस सुविस्तृत टीका की ‘वादमहार्णव’ के नामसे भी प्रसिद्धि रही है।

प्रभाचन्द्रके न्यायकुमुदचन्द्रकी अपेक्षा प्रमेयकमलमार्तण्डका अकल्पित सादृश्य इस टीका में पाया जाता है। अभयदेवसूरिने सन्मतिटीका में त्रीशुक्ति और केवलिकवलहाहारका समर्थन किया है। इसमें धी गईं दलीलोंमें तथा प्रभाचन्द्रके द्वारा किए गए उक्त वादोंके खण्डन की युक्तियोंमें परस्पर कोई पूर्वोत्तरपक्षता नहीं देखी जाती। अभयदेव, शान्तिस्वरि, और प्रभाचन्द्र करीब करीब समकालीन और समदेशीय थे। इसलिए यह अधिक संभव था कि त्रीशुक्ति और केवलिशुक्ति जैसे साम्प्रदायिक प्रकरणोंमें एक दूसरेका खंडन करते। पर हम इनके प्रयोगों परस्पर खंडन नहीं देखते। इसका कारण मेरी समझमें तो यही आता है कि उस समय दिगम्बर आचार्य यापनीयोंके साथ ही इस विषयकी

चरचा करते होंगे। यही कारण है कि जब प्रभाचन्द्रने शाकटायनके क्रीडुक्ति और केवलमुक्ति प्रकरणोंका ही शब्दशः खंडन किया है तब श्वेताम्बराचार्य अमयदेव और शान्तिसूरिने शाकटायनकी दलीलोंके आधारसे ही अपने ग्रन्थोंके उक्त प्रकरण पुष्ट किए हैं। वादिदेवसूरिने अवश्य ही प्रभाचन्द्रके ग्रन्थोंके उक्त प्रकरणोंको पूर्वपक्षमें प्रभाचन्द्रका नाम लेकर उपस्थित किया है।

सन्मतितर्कके सम्पादक श्रीमान् पं० मुखलाळी और नेचरदासजीने सन्मतितर्क प्रथम भाग (पृ० १३) की गुजराती प्रस्तावनामें लिखा है कि—“जो के आ टीकामां सैकड़ों दार्शनिकग्रन्थोंं तु दोहन जणाय छे, छतां सामान्यरीते मीमांसकमुमारिलभइतुं श्लोकवार्तिक, नालन्दाविश्वविद्यालयना आचार्य शान्तरक्षितकृत तत्त्वसंग्रह ऊपरनी कमलशीलकृत पंजिका अने दिगम्बराचार्य प्रभाचन्द्रना प्रमेयकमलमार्तण्ड अने न्यायकुसुदचन्द्रोदय विगेरे ग्रंथोंं प्रतिविम्ब मुख्यपणे आ टीकामां छे।” अर्थात् सन्मतितर्कटीका पर मीमांसाश्लोकवार्तिक, तत्त्वसंग्रहपंजिका प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्यायकुसुदचन्द्र आदि ग्रन्थोंका प्रतिविम्ब पड़ा है। सन्मतितर्कके विद्वद्रूप सम्युदकोंकी उक्त बातसे सहमति रखते हुए भी मैं उसमें इतना परिवर्धन और कर देना चाहता हूँ कि—“प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्यायकुसुदचन्द्रका सन्मतितर्कसे शब्दसादृश्य मात्र साक्षात् विम्ब-प्रतिविम्बभाव होनेके कारण ही नहीं हैं, किन्तु तीनों ग्रन्थोंके बहुभागमें जो अकल्पित सादृश्य पाया जाता है वह तृतीयराशिमूलक भी है। ये तृतीय राशिके ग्रंथ हैं—भट्टलवसिंहराशिका तत्त्वोपप्लवसिंह, व्योमक्षिवकी व्योमवती, जयन्तकी न्यायमञ्जरी, शान्तरक्षित और कमलशीलकृत तत्त्वसंग्रह और उसकी पंजिका तथा विद्यानन्दके अष्टसहस्री, तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक, प्रमाणपरीक्षा, आत्मपरीक्षा आदि प्रकरण। इन्हीं तृतीयराशिके ग्रन्थोंका प्रतिविम्ब सन्मतितर्कटीका और प्रमेयकमलमार्तण्डमें आया है।” सन्मतितर्कटीका, प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्यायकुसुदचन्द्रका तुलनात्मक अध्ययन करने से यह स्पष्ट साक्ष्य होता है कि सन्मतितर्कका प्रमेयकमलमार्तण्डके साथ ही अधिक शब्दसादृश्य है। न्यायकुसुदचन्द्रमें जहाँ भी यत्किंचिद् सादृश्य देखा जाता है वह प्रमेयकमलमार्तण्डप्रयुक्त ही है साक्षात् नहीं। अर्थात् प्रमेयकमलमार्तण्डके जिन प्रकरणों के जिस सन्दर्भसे सन्मतितर्कका सादृश्य है उन्हीं प्रकरणोंमें न्यायकुसुदचन्द्रसे भी शब्दसादृश्य पाया जाता है। इससे यह तर्कणा की जा सकती है कि—सन्मतितर्ककी रचनाके समय न्यायकुसुदचन्द्रकी रचना नहीं हो सकी थी। न्यायकुसुदचन्द्र जयसिंहदेवके राज्यमें सन् १०५७ के आसपास रचा गया था जैसा कि उसकी अन्तिम प्रशस्तिले विदित है। सन्मतितर्कटीका, प्रमेयकमलमार्तण्ड तथा न्यायकुसुदचन्द्रकी तुलनाके लिए देखो प्रमेयकमलमार्तण्ड प्रथम अध्यायके टिप्पण तथा न्यायकुसुदचन्द्रके टिप्पणमें दिए गए सन्मतितर्क के अवतरण।

वादि देवसूरि और प्रभाचन्द्र-देवसूरि श्रीमुनिचन्द्रसूरिके शिष्य थे। प्रभावक चरित्रके लेखानुसार मुनिचन्द्रने शान्तिपुरसे प्रमाणविद्याका अध्ययन किया था। ये प्रागवाटवर्गके राज थे। इन्होंने वि० सं० ११४३ में गुर्जर देशको अपने जन्मसे पूत किया था। ये भदोच नगरमें ९ वर्षकी अल्पवयमें वि० सं० ११५२ में धीक्षित हुए थे तथा वि० सं० ११७४ में इन्होंने आचार्यपद पाया था। राजर्षि कुमारपालके राज्यकालमें वि० सं० १२२६ में इनका स्वर्गवास हुआ। प्रसिद्ध है कि-वि० सं० ११८१ वैशाख शुद्ध पूर्णिमाके दिन सिद्धराजकी सभामें इनका दिगम्बरवाची कुसुदचन्द्रसे वाद हुआ था और इसी वादमें विजय पानेके कारण देवसूरि वादि देवसूरि कहे जाने लगे थे। इन्होंने प्रमाणनयतत्त्वा-लोकालङ्कार नामक सूत्र ग्रन्थ तथा इसी सूत्रकी स्याद्वादरत्नाकर नामक विस्तृत व्याख्या लिखी है। इनका प्रमाणनयतत्त्वालोकालङ्कार माणिक्यनन्दिकृत परीक्षा-मुखसूत्रका अपने ढंगसे किया गया बृहारा संस्करण ही है। इन्होंने परीक्षामुखके ६ परिच्छेदोंका विषय ठीक उसी क्रमसे अपने सूत्रके आद्य ६ परिच्छेदोंमें यत्किञ्चित् शब्दभेद तथा अर्थभेदके साथ प्रयित किया है। परीक्षामुखसे अतिरिक्त इसमें नयपरिच्छेद और वादपरिच्छेद नामक दो परिच्छेद और जोड़े गए हैं। माणिक्यनन्दिके सूत्रोंके सिवाय अकलङ्कके खविद्यतिपुत्र लघीयज्ञय, न्यायविनिश्चय तथा विद्यानन्दके तत्त्वार्थलोकनार्तिकका भी पर्याप्त साहाय्य इस सूत्रग्रन्थमें लिया गया है। इस तरह मिथ मिथ ग्रन्थोंमें विशकलित जैन-पदायोंका शब्द एवं अर्थदृष्टिसे सुन्दर संकलन इस सूत्रग्रन्थमें हुआ है।

परीक्षामुखसूत्रपर प्रभाचन्द्रकृत प्रमेयकमलमार्तण्ड नामकी विस्तृत व्याख्या है तथा अकलङ्कदेवके लघीयज्ञयपर इन्हीं प्रभाचन्द्रका न्यायकुसुदचन्द्र नामका बृहत्काय टीकाग्रन्थ है। प्रभाचन्द्रने इन मूल ग्रन्थोंकी व्याख्याके साथही साथ मूलग्रन्थसे सम्बद्ध विषयोंपर विस्तृत लेख भी लिखे हैं। इन लेखोंमें विविध विकल्पजालोंसे परपक्षका खंडन किया गया है। प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्याय-कुसुदचन्द्रके तीक्ष्ण एवं आह्लादक प्रकाशमें जब हम स्याद्वादरत्नाकरको तुलनात्मक दृष्टिसे देखते हैं तब वादिदेवसूरिकी शुण्माहिणी संग्रहदृष्टिकी प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकते। इनकी संग्रहक वीजशुद्धि प्रमेयकमलमार्तण्ड तथा न्यायकुसुद-चन्द्रसे अर्थ शब्द और भावोंको इतने चेतस्वमत्कारक ढंगसे जुन लेती है कि अकेले स्याद्वादरत्नाकरके पढ़ लेनेसे न्यायकुसुदचन्द्र तथा प्रमेयकमलमार्तण्डका यावादिषय विषय रीतिसे अवगत हो जाता है। वस्तुतः यह रत्नाकर उच दोनों ग्रन्थोंके शब्द-अर्थरत्नोंका सुन्दर धारक ही है। यह रत्नाकर मार्तण्डकी अपेक्षा चन्द्र (न्यायकुसुदचन्द्र) से ही अधिक उद्भूत हुआ है। प्रकरणोंके क्रम और पूर्वपक्ष तथा उत्तरपक्षके जमानेकी पद्धतिमें कहीं कहीं तो न्यायकुसुदचन्द्रका इतना अधिक शब्दसादृश्य है कि दोनों ग्रन्थोंकी पाठशुद्धिमें एक दूसरेका मूलप्रतिकी तरह उपयोग किया जा सकता है।

प्रतिबिम्बवाद नामक प्रकरणमें वादि देवसूरिने अपने रत्नाकर (पृ० ८६५) में न्यायकुसुमदचन्द्र (पृ० ४५५) में निर्दिष्ट प्रभाचन्द्रके मतके खंडन करनेका प्रयास किया है। प्रभाचन्द्रका मत है कि—प्रतिबिम्बकी उत्पत्तिमें जल आदि श्रुत्य उपादान कारण हैं तथा चन्द्र आदि बिम्ब निमित्तकारण। चन्द्रादि बिम्बोंका निमित्त पाकर जल आदिके परमाणु प्रतिबिम्बाकारसे परिणत हो जाते हैं।

वादि देवसूरि कहते हैं कि—मुख्यादिबिम्बोंसे छायापुद्गल निकलते हैं और वे जाकर दर्पण आदिमें प्रतिबिम्ब उत्पन्न करते हैं। यहाँ छायापुद्गलोंका मुख्यादि बिम्बोंसे निकलनेका सिद्धान्त देवसूरिने अपने पूर्वार्च्य श्रीहरिभद्रसूरिके धर्म-सारप्रकरणका अनुसरण करके लिखा है। वे इस समय यह भूल जाते हैं कि हम अपनेही ग्रन्थमें नैयायिकोंके चक्षुसे रश्मियोंके निकलनेके सिद्धान्तका खंडन कर चुके हैं। जब हम भासुररूपवाली आंखसे भी रश्मियोंका निकलना युक्ति एवं अनुभवसे विरुद्ध बताते हैं तब मुख आदि मलिन बिम्बोंसे छायापुद्गलोंके निकलनेका समर्थन किस तरह किया जा सकता है? मनेदार बात तो यह है कि इस प्रकरणमें भी वादि देवसूरि न्यायकुसुमदचन्द्रके साथही साथ प्रमेयकमल-मार्तण्डका भी शब्दशः अनुसरण करते हैं, और न्यायकुसुमदचन्द्रमें निर्दिष्ट प्रभाचन्द्रके मतके खंडनकी धुनमें स्वयं ही प्रमेयकमलमार्तण्डके उसी आशयके शब्दोंको सिद्धान्त मान बैठते हैं। वे रत्नाकरमें (पृ० ६९८) ही प्रमेयकमल-मार्तण्ड का शब्दानुसरण करते हुए लिख जाते हैं कि—“स्वच्छताविशेषादि जलदर्पणादयो मुख्यादित्वादिप्रतिबिम्बाकारविकारधारिणः सम्भवन्ते।”—अर्थात् विशेष स्वच्छताके कारण जल और दर्पण आदि ही मुख और सूर्य आदि बिम्बोंके आकारवाली पर्यायों को धारण करते हैं। कवलहारके प्रकरणमें इन्होंने प्रभाचन्द्रके न्यायकुसुमदचन्द्र और प्रमेयकमलमार्तण्डमें दी गई दलीलोंका नामोल्लेख पूर्वक पूर्वपक्षमें निर्देश किया है और उनका अपनी दृष्टिसे खंडन भी किया है। इस तरह वादि देवसूरिने जब रत्नाकर लिखना प्रारम्भ किया होगा तब उनकी आंखोंके सामने प्रभाचन्द्रके ये दोनों ग्रन्थ धरावर नाचते रहे हैं।

हेमचन्द्र और प्रभाचन्द्र—विक्रमकी १२ वीं शताब्दीमें आ० हेमचन्द्रसे जैनसाहित्यके हेमयुगका प्रारम्भ होता है। हेमचन्द्रने व्याकरण, काव्य, छन्द, योग, न्याय आदि साहित्यके सभी विभागोंपर अपनी श्रौढ़ संप्राहक लेखनी चलाकर भारतीय साहित्यके भंडारको खूब समृद्ध किया है। अपने बहुमुख शालिङ्ग्यके कारण ये ‘कलिकालसर्वज्ञ’ के नामसे भी ख्यात हैं। इनका जन्म-समय क्रांतिकी पूर्णिमा विक्रमसंवत् ११४५ है। वि० सं० ११५४ (ई० सन् १०९७) में ८ वर्षकी लघुवयमें इन्होंने धीसा धारण की थी। विक्रमसंवत् ११६६ (ई० सन् १११०) में २१ वर्षकी अवस्थामें ये सूरिपद पर प्रतिष्ठित हुए। ये महाराज जयसिंह सिद्धराज तथा राजर्षि कुमारपालकी राजसभाओंमें सबहुमान लब्धप्रतिष्ठ थे। वि० सं० १२२९ (ई० ११७३) में ८४ वर्षकी आयुमें ये दिवंगत हुए। इनकी न्यायविषयक रचना प्रमाणमीमांसा जैनन्यायके

अन्वयोंमें अपना एक विशिष्ट स्थान रखती है। प्रमाणमीमांसाके निग्रह-स्थानके निरूपण और खंडनके समूचे प्रकरणमें तथा अनेकान्तमें दिए गए आठ दोषोंके परिहारके प्रसंगमें प्रभाचन्द्रके प्रमेयकमलमार्तण्डका शब्दशः अनुसरण किया गया है। प्रमाणमीमांसाके अन्य स्थलोंमें प्रभाचन्द्रके प्रमेयकमलमार्तण्डकी छाप साक्षात् न पड़कर प्रमेयरत्नमालाके द्वारा पड़ी है। प्रमेयरत्नमालाकार अनन्तवीर्यने प्रमेयकमलमार्तण्डको ही संक्षिप्त कर प्रमेयरत्नमालाकी रचना की है। अतः मध्यकदवाली प्रमाणमीमांसामें बृहत्काय प्रमेयकमलमार्तण्डका सीधा अनुसरण न होकर अपने समान परिमाणवाली प्रमेयरत्नमालाका अनुसरण होना ही अधिक संगत मालूम होता है। प्रमाणमीमांसाके प्रायः प्रत्येक प्रकरण पर प्रमेयरत्नमालाकी शब्दरचनाने अपनी स्पष्ट छाप लगाई है। इस तरह आ० हेमचन्द्रने कहीं साक्षात् और कहीं परम्परया प्रभाचन्द्रके प्रमेयकमलमार्तण्डको अपनी प्रमाणमीमांसा बनाते समय मद्देनजर रखा है। प्रमेयरत्नमाला और प्रमाणमीमांसाके स्थलोंकी तुलनाके लिए सिंधी सीरिजसे प्रकाशित प्रमाणमीमांसाके भाषा टिप्पण देखना चाहिए।

मलयगिरि और प्रभाचन्द्र-विक्रमकी १२ वीं शताब्दीका उत्तरार्ध तथा तेरहवीं शताब्दीका प्रारम्भ जैनसाहित्यका हेमयुग कहा जाता है। इस युगमें आ० हेमचन्द्रके सहविहारी, प्रख्यात टीकाकार आचार्य मलयगिरि हुए थे। मलयगिरिने भावव्यकनिर्युक्ति, ओषनिर्युक्ति, नन्दीसूत्र आदि अनेकों आगमिकग्रन्थों पर संस्कृत टीकाएँ लिखी हैं। भावव्यकनिर्युक्ति की टीका (पृ० ३७१ A.) में वे अकलङ्कदेवके 'नयवाक्यमें भी स्यात्पदका प्रयोग करना चाहिए' इस मतसे असहमति जाहिर करते हैं। इसी प्रसंगमें वे पूर्वपक्षरूपसे लघीयल्लयखविद्युति (का० ६२) का 'नयोऽपि तथैव सम्यगेकान्तविवयः स्यात्' यह वाक्य उद्धृत करते हैं। और इस वाक्यके साथ ही साथ प्रभाचन्द्रकृत न्यायकुमुदचन्द्र (पृ० ६११) से उक्त वाक्यकी व्याख्या भी उद्धृत करते हैं। व्याख्याका उद्धरण इस प्रकारसे लिया गया है—“अत्र टीकाकारेण व्याख्या कृता नयोऽपि नयप्रतिपादकमपि वाक्यं न केवलं प्रमाणवाक्यमित्यपिशब्दार्थः, तथैव स्यात्पदप्रयोगप्रकारेणैव सम्यगेकान्तविवयः स्यात्, यथा स्यादस्त्येव जीव इति स्यात्पदप्रयोगाभावे तु मिथ्यैकान्तगोचरतया दुर्नय एव स्यादिति।”—इस अवतरणसे यह निश्चित हो जाता है कि मलयगिरिके सामने लघीयल्लयकी न्यायकुमुदचन्द्र नामकी व्याख्या थी।

अकलङ्कदेवने प्रमाण, नय और दुर्नयकी निम्नलिखित परिभाषाएँ की हैं—अनन्तधर्मोत्पन्न वस्तुको अखंडभावसे ग्रहण करनेवाला ज्ञान प्रमाण है। एकधर्मको मुख्य तथा अन्यधर्मोंको शौण करनेवाला, उनकी अपेक्षा रखनेवाला ज्ञान नय है। एकधर्मको ही ग्रहण करके जो अन्य धर्मोंका निषेध करता है—उनकी अपेक्षा नहीं रखता वह दुर्नय कहलाता है। अकलङ्कने प्रमाणवाक्यकी तरह नयवाक्यमें भी नयान्तरसापेक्षता दिखानेके लिए 'स्यात्' पदके प्रयोगका विधान किया है।

आ० मलयगिरि कहते हैं कि—जब नयवाक्यमें स्यात्प्रदका प्रयोग किया जाता है तब 'स्यात्' शब्दसे सूचित होनेवाले अन्य अशेषधर्मोंको भी विषय करनेके कारण नयवाक्य नयरूप न होकर प्रमाणरूप ही हो जायगा। इनके मतसे जो नय एक धर्मको अवधारणपूर्वक विषय करके इतरनयसे निरपेक्ष रहता है वही नय कहा जा सकता है। इसीलिए इन्होंने सभी नयोंको मिथ्यावाद कहा है। मलयगिरिके कोषमें सुनय नामका कोई शब्द ही नहीं है। जब स्यात्प्रदका प्रयोग किया जाता है तब वह प्रमाणकोटिमें पहुँचेगा तथा जब नयान्तरनिरपेक्ष रहेगा तब वह नयकोटिमें जाकर मिथ्यावाद हो जायगा। इन्होंने अकलंकदेवके इस तत्त्वको मद्देनजर नहीं रखा कि—नयवाक्यमें स्यात् शब्दसे सूचित होनेवाले अशेषधर्मोंका मात्र सङ्काव ही जाना जाता है, सो भी इसलिए कि कोई बाधी उनका ऐकान्तिक निषेध न समझ ले। प्रमाणवाक्यकी तरह नयवाक्यमें स्याच्छब्दसे सूचित होनेवाले अशेषधर्म प्रधानभावसे विषय नहीं होते। यही तो प्रमाण और नयमें भेद है कि—जहाँ प्रमाणमें अशेष ही धर्म एकरूपसे—अखण्डभावसे विषय होते हैं वहाँ नयमें एकधर्म मुख्य होकर अन्य अशेषधर्म गौण हो जाते हैं, 'स्यात्' शब्दसे मात्र उनका सङ्काव सूचित होता रहता है। दुर्नयमें एकधर्म ही विषय होकर अन्य अशेषधर्मोंका तिरस्कार हो जाता है। अतः दुर्नयसे सुनयका पार्थक्य करनेके लिए सुनयवाक्यमें स्यात्प्रदका प्रयोग आवश्यक है। मलयगिरिके द्वारा की गई अकलंककी यह समालोचना उन्हीं तक सीमित रही। हेमचन्द्र आदि सभी आचार्य अकलंकके उक्त प्रमाण, नय और दुर्नयके विभागको निर्विवादरूपसे मानते आए हैं। इतना ही नहीं, उपाध्याय यशोविजयने मल्लगिरिकी इस समालोचनाका सयुक्तिक उत्तर गुरुतत्त्वविनिश्चय (पृ० १७ B.) में दे ही दिया है। उपाध्यायजी लिखते हैं कि यदि नयान्तरसापेक्ष नयका प्रमाणने अन्तर्भाव किया जायगा तो व्यवहारनय तथा शब्दनय भी प्रमाण ही हो जायेंगे। नयवाक्यमें होनेवाला स्यात्प्रदका प्रयोग तो अनेक धर्मोंका मात्र द्योतन करता है, वह उन्हें विवक्षितधर्मकी तरह नयवाक्यका विषय नहीं बनाता। इसलिए नयवाक्यमें मात्र स्यात्प्रदका प्रयोग होनेसे वह प्रमाण कोटिमें नहीं पहुँच सकता।

देवभद्र और प्रभाञ्जन्द्र—देवभद्रसूरि मल्लधारिण्यके श्रीचन्द्रसूरिके शिष्य थे। इन्होंने न्यायावतारटीका पर एक टिप्पण लिखा है। श्रीचन्द्रसूरिने वि० संवत् ११९३ (सन् ११३६) के दिवालीके दिन 'मुनिमुद्रतचरित्र' पूर्ण किया था। अतः इनके साक्षात् शिष्य देवभद्रका समय भी करीब सन् ११५० से १२०० तक सुनिश्चित होता है। देवभद्रने अपने न्यायावतार टिप्पणमें प्रभाञ्जन्द्रकृत न्यायकुसुमद्वन्द्वके निम्नलिखित दो अवतरण लिए हैं—

१—“परिमण्डलः परमाणवः तेषां भावः...पारिमण्डल्यं वर्तुल्लम्, न्यायकुसुमद्वन्द्वे प्रभाञ्जन्नेणाप्येवं व्याख्यातत्वात्।” (पृ० ३५)

२—“प्रभाचन्द्रस्तु न्यायकुमुदचन्द्रे विभाषा सद्धर्मप्रतिपादको ग्रन्थविशेषः तां विदन्ति अधीयते वा वैभाषिकाः इत्युवाच ।” (पृ० ७९)

ये दोनों अवतरण न्यायकुमुदचन्द्रमें क्रमशः पृ० ४३८ पं० १३ तथा पृ० ३९० पं० १ में पाए जाते हैं । इसके सिवाय न्यायावतारटिप्पणमें अनेक स्थानोंपर न्यायकुमुदचन्द्रका प्रतिबिम्ब स्पष्टरूपसे झलकता है ।

मल्लिषेण और प्रभाचन्द्र—आ० हेमचन्द्रकी अन्ययोग्यवच्छेदिकाके रूपर मल्लिषेण की स्याद्वादमंजरी नामकी छन्दर टीका सुदृष्ट है । ये श्वेताम्बर सम्प्रदायके नागेन्द्रगच्छीय श्रीउदयप्रभसूरिके शिष्य थे । स्याद्वादमंजरीके अन्तमें भी हुई प्रशस्तिसे ज्ञात होता है कि—इन्होंने शक संवत् १२१४ (ई० १२९३) में श्रीप्रमालिका शनिवारके दिन जिनप्रभसूरिकी सहायतासे स्याद्वादमंजरी पूर्ण की थी । स्याद्वादमंजरीकी शब्दरचनापर न्यायकुमुदचन्द्रका एक विलक्षण प्रभाव है । मल्लिषेणने का० १४ की व्याख्यामें विधिवादकी चर्चा की है । इसमें उन्होंने विधिवादीयोंके आठ मतोंका निर्देश किया है । साथही साथ अपनी ग्रन्थमर्यादाके विचारसे इन मतोंके पूर्वपक्ष तथा उत्तरपक्षोंके विशेष परिज्ञानके लिए न्यायकुमुदचन्द्र ग्रन्थ देखनेका अनुरोध निम्नलिखित शब्दोंमें किया है—

“एतेषा निराकरणं सपूर्वोत्तरपक्षं न्यायकुमुदचन्द्रादवसेयम् ।”^१ इस वाक्यसे स्पष्ट हो जाता है कि मल्लिषेण न केवल न्यायकुमुदचन्द्रके विशिष्ट अभ्यासी ही थे किन्तु वे स्याद्वादमंजरीमें अचर्चित या अल्पचर्चित विषयोंके ज्ञानके लिए न्यायकुमुदचन्द्रको प्रमाणभूत आकरग्रन्थ मानते थे । न्यायकुमुदचन्द्रमें विधिवादकी विस्तृत चर्चा पृ० ५७३ से ५९८ तक है ।

गुणरत्न और प्रभाचन्द्र—विक्रमकी १५ वीं शताब्दीके उत्तरार्धमें तपागच्छमें श्रीदेवसुन्दरसूरि एक प्रभावक आचार्य हुए थे । इनके पट्टशिष्य गुणरत्नसूरिने हरिभद्रकृत ‘षड्दर्शनसमुच्चय’ पर तर्करहस्यबीपिका नामकी बृहद्दृष्टि लिखी है । गुणरत्नसूरिने अपने कियारत्नसमुच्चय ग्रन्थकी प्रतियोंका लेखनकाल विक्रम संवत् १४६८ दिया है । अतः इनका समय भी विक्रमकी १५ वीं शताब्दीके उत्तरार्ध में स्थित है । गुणरत्नसूरिने षड्दर्शनसमुच्चय टीकाके जैनमत निरूपणमें मोक्षतत्त्वका सविस्तर विशद विवेचन किया है । इस प्रकरणमें इन्होंने स्वाभिमत मोक्षस्वरूपके समर्थनके साथही साथ वैशेषिक, सांख्य, वेदान्ती तथा बौद्धोंके द्वारा माने गए मोक्षस्वरूपका बड़े विस्तारसे निराकरण भी किया है । इस परब्रह्मणके भागमें न्यायकुमुदचन्द्रका मात्र अर्थ और भावकी दृष्टिसे ही नहीं, किन्तु शब्दरचना तथा युक्तियोंके फोटिक्रमकी दृष्टिसे भी पर्याप्त अनुसरण किया गया है । इस प्रकरणमें न्यायकुमुदचन्द्रका इतना अधिक शब्दसादृश्य है^१ कि इससे न्यायकुमुदचन्द्रके पाठकी शब्दशुद्धि करनेमें भी पर्याप्त सहायता मिली है । इसके

१ देखो—न्यायकुमुदचन्द्र पृ० ८१६ मे ८४७ तकके टिप्पण ।

सिवाय इस दृष्टिके अन्य स्थलोंपर खासकर परपक्षखंडनके भागोंपर न्यायकुमुद-चन्द्रकी शुभ्रज्योत्स्ना जहाँ तहाँ छिटक रही है ।

यशोविजय और प्रभाचन्द्र—उपाध्याय यशोविजयजी विक्रमकी १८ वीं सदीके युगप्रवर्तक विद्वान् थे । इन्होंने विक्रम संवत् १६८८ (ईस्वी १६३१) में पं० नयविजयजीके पास धीमा प्रहण की थी । इन्होंने काशीमें नव्यन्यायका अध्ययन कर बादमें किसी विद्वान् पर विजय पानेसे 'न्यायविशारद' पद प्राप्त किया था । श्रीविजयप्रभसूरिने वि० सं० १७१८ में इन्हें 'बन्धक-उपाध्याय' का सम्मानित पद दिया था । उपाध्याय यशोविजय वि० सं० १७४३ (सन् १६८६) में अनशन पूर्वक स्वर्गस्थ हुए थे । दशवीं शताब्दीसे ही नव्य-न्यायके विकसने भारतीय दर्शनशास्त्रमें एक अपूर्व क्रान्ति उत्पन्न कर दी थी । यद्यपि दसवीं सदीके बाद अनेकों बुद्धिशाही जैनाचार्य हुए पर कोई भी उस नव्यन्यायके शब्दजालके जटिल अध्ययनमें नहीं पड़ा । उपाध्याय यशोविजय ही एकमात्र जैनाचार्य हैं जिन्होंने नव्यन्यायका समग्र अध्ययन कर उसी नव्यपद्धतिसे जैनप्रदायोंका निरूपण किया है । इन्होंने सैकड़ों ग्रन्थ बनाए हैं । इनका अध्ययन अत्यन्त तलस्पर्शी तथा बहुमुख था । सभी पूर्ववर्ती जैनाचार्योंके ग्रन्थोंका इन्होंने विधिवत् पारायण किया था । इनकी तीक्ष्ण दृष्टिसे धर्मभूषण-शैतिकी छोटीसी पर सुविशद रचनावाली न्यायदीपिका भी नहीं छूटी । जैनतर्क-माधर्मों अनेक जगह न्यायदीपिकाके शब्द आनुपूर्वसे ले लिए गए हैं । इनके शास्त्रवार्तासमुच्चयदीका आदि बृहद्ग्रन्थोंके परपक्ष खंडनवाले अंशोंमें प्रभाचन्द्रके विविध शिकल्पजाल स्पष्टरूपसे प्रतिविम्बित हैं । इन्होंने प्रभाचन्द्रका केवल अनु-सरण ही नहीं किया है किन्तु साम्प्रदायिक क्रीमुक्ति और कवलाहार जैसे प्रकर-णोंमें प्रभाचन्द्रके मन्तव्योंकी समालोचना भी की है ।

उपरिलिखित वैदिक-अवैदिकदर्शनोंकी तुलनासे प्रभाचन्द्रके अगाध, तलस्पर्शी, सूक्ष्म दार्शनिक अध्ययनका यत्किञ्चित् आभास हो जाता है । बिना इस प्रकारके बहुमुक्त अवलोकनके प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्यायकुमुदचन्द्र जैसे जैनदर्शनके प्रतिनिधि ग्रन्थोंके प्रणयनका उल्लास ही नहीं हो सकता था । जैनदर्शनके मध्य-युगीन ग्रन्थोंमें प्रभाचन्द्रके ये ग्रन्थ अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं । ये पूर्वयुगीन ग्रन्थोंका प्रतिविम्ब लेकर भी पारदर्शी दर्पणकी तरह उत्तरकालीन ग्रन्थोंके लिए आधारभूत हुए हैं, और यही इनकी अपनी विशेषता है । बिना इस आदान-प्रदानके दार्शनिक साहित्यका विकास इस रूपमें तो हो ही नहीं सकता था ।

प्रभाचन्द्रका आयुर्वेदज्ञान—प्रभाचन्द्र शुष्क तार्किक ही नहीं थे; किन्तु उन्हें जीवनोपयोगी आयुर्वेदका भी परिज्ञान था । प्रमेयकमलमार्तण्ड (पृ० ४२४) में वे बधिरता तथा अन्य कर्णरोगोंके लिए बलातैलका उल्लेख करते हैं । न्यायकुमुदचन्द्र (पृ० ६६९) में छाया आदिको पौद्गलिक सिद्ध करते समय

उनमें गुणोंका सङ्गाव दिखानेके लिए उनने वैयकशास्त्रका निम्नलिखित श्लोक प्रमाणरूपसे उद्धृत किया है—

“आतपः कटुको रसः छाया मधुरशीतला ।

कषायमधुरा ज्योत्स्ना सर्वव्याधिहरं(करं) तमः ॥

यह श्लोक राजनिघण्टु आदिमें कुछ पाठभेदके साथ पाया जाता है । इसी तरह वैशेषिकोंके गुणपदार्थका खंडन करते समय (न्यायकु० पृ० २७५) वैयक-तन्त्रमें प्रसिद्ध विशद, स्थिर, खर, पिच्छल आदि गुणोंके नाम लिए हैं । प्रमेयकमलमार्तण्ड (पृ० ८) में नङ्गलोदक-तृणविशेषके जलसे पादरोषकी उत्पत्ति बताई है ।

प्रभाचन्द्रकी कल्पनाशक्ति—सामान्यतः वस्तुकी अनन्तात्मकता या अनेकधर्माधारताकी सिद्धिके लिए अकलंक आदि आचार्योंने चित्रज्ञान, सामान्य-विशेष, मेचकज्ञान और नरसिंह आदिके दृष्टान्त दिए हैं । पर प्रभाचन्द्रने एक ही वस्तुकी अनेकरूपताके समर्थनके लिए न्यायकुसुदचन्द्र (पृ० ३६९) में ‘उमेश्वर’ का दृष्टान्त भी दिया है । वे लिखते हैं कि जैसे एक ही शिव वामाङ्गमें रुमा-पार्वतीरूप होकर भी दक्षिणाङ्गमें विरोधी शिवरूपको धारण करते हैं और अपने अर्धनाश्वररूपको दिखाते हुए अखंड बने रहते हैं वसी तरह एक ही वस्तु विरोधी दो या अनेक आकारोंको धारण कर सकती है । इसमें कोई विरोध नहीं होना चाहिए ।

उदारविचार—आ० प्रभाचन्द्र सचे तार्किक थे । उनकी तर्कशास्त्रिकी और उदार विचारोंका स्पष्ट परिचय ब्राह्मणल जातिके खण्डनके प्रसङ्गमें मिलता है । इस प्रकरणमें उन्होंने ब्राह्मणल जातिके नित्यल और एकलका खण्डन करके उसे सदृशपरिणमन रूप ही सिद्ध किया है । वे जन्मना जातिका खण्डन बहुविध विकल्पोंसे करते हैं और स्पष्ट शब्दोंमें उसे गुणकर्मानुसारीणी मानते हैं । वे ब्राह्मणलजातिनिमित्तक वर्णाश्रमव्यवस्था और तप दान आदिके व्यवहारको भी क्रियाविशेष और यज्ञोपवीत आदि चिह्नोंसे उपलक्षित व्यक्ति-विशेषमें ही करनेकी सलाह देते हैं—

“ननु ब्राह्मणलादिसामान्यानभ्युपगमे कथं भवतां वर्णाश्रमव्यवस्था तन्निबन्धनो वा तपोदानादिव्यवहारः स्यात् ? इत्यप्यचोचम् ; क्रियाविशेषयज्ञोपवीतादिचिह्नो-पलक्षिते व्यक्तिविशेषे तद्व्यवस्थायां तद्व्यवहारस्य चोपपत्तेः । तत्र भवत्कल्पितं नित्यादिस्वभावं ब्राह्मण्यं कुतश्चिदपि प्रमाणात् प्रसिद्ध्यतीति क्रियाविशेषनिबन्धन एवायं ब्राह्मणादिव्यवहारो भुक्तः ।”

[न्यायकुसुदचन्द्र पृ० ७७८ । प्रमेयकमलमार्तण्ड पृ० ४८६]

“प्रश्न—यदि ब्राह्मणल आदि जातियों नहीं हैं तब जैनमतमें वर्णाश्रमव्यवस्था और ब्राह्मणल आदि जातियोंसे सम्बन्ध रखनेवाला तप दान आदि व्यवहार कैसे होगा ? उत्तर—जो व्यक्ति यज्ञोपवीत आदि चिह्नोंको धारण करें तथा

ब्राह्मणोंके योग्य विशिष्ट क्रियाओंका आचरण करें उनमें ब्राह्मणल जातिसे सम्बन्ध रखनेवाली वर्णाश्रमव्यवस्था और तप दान आदि व्यवहार भी भोंति किये जा सकते हैं। अतः आपके द्वारा माना गया निख आदि स्वभाववाला ब्राह्मणल किसी भी प्रमाणसे सिद्ध नहीं होता, इसलिये ब्राह्मण आदि व्यवहारों को क्रियासुसार ही मानना युक्तिसंगत है।”

वे प्रमेयकमलमार्तण्ड (पृ० ४८७) में और भी स्पष्टतासे लिखते हैं कि-
“ततः सदृशक्रियापरिणामादिनिवन्धनैवेयं ब्राह्मणक्षत्रियादिव्यवस्था-इसलिये यह समस्त ब्राह्मण क्षत्रिय आदि व्यवस्था सदृश क्रिया रूप सदृश परिणमन आदिके निमित्तसे ही होती है।”

बौद्धोंके धम्मपद और खे० आगम उत्तराध्ययनसूत्रमें स्पष्ट शब्दोंमें ब्राह्मणल जातिके गुण और कर्मके अनुसार बताकर उसको जन्मना माननेके सिद्धान्तका खण्डन किया है-

“न जटाहिं न गोत्तेहिं न जच्चा होति ब्राह्मणो ।

जम्हि सच्चं न धम्मो न सो सुची सो न ब्राह्मणो ॥

न चाहं ब्राह्मणं ब्रूमि योनिजं मत्तिसंभवं ।” [धम्मपद गा० ३९३]

“कम्मणा बंभणो होइ कम्मणा होइ खत्तियो ।

वइसो कम्मणा होइ सुदो हवह कम्मणा ॥” [उत्तरा० २५।३३]

दिगम्बर आचार्योंमें ब्राह्मणचरित्रके कर्ता श्री जटासिंहनन्दि कितने स्पष्ट शब्दोंमें जातिके क्रियानिमित्तक लिखते हैं-

“क्रियाविशेषाद् व्यवहारमात्राद् दयाभिरसाङ्गविश्लेषमेदात् ।

शिष्टाश्च वर्णाश्रमदुरो वदन्ति न चान्यथा वर्णचतुष्टयं स्यात् ॥”

[ब्राह्मणचरित २५।११]

“शिष्टजन इन ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंको ‘अहिंसा आदि व्रतोंका पालन, रक्षा करना, खेती आदि करना, तथा शिल्पवृत्ति’ इन चार प्रकारकी क्रियाओंसे ही मानते हैं। यह सब वर्णव्यवस्था व्यवहार मात्र है। क्रियाके सिवाय और कोई वर्णव्यवस्थाका हेतु नहीं है।”

ऐसे ही विचार तथा उद्धार पद्मपुराणकार रविषेण, आदिपुराणकार जिजसेन, तथा धर्मपरीक्षाकार अमितगति आदि आचार्योंके पाए जाते हैं। आ० प्रभाचन्द्रने, इन्हीं वैदिक संस्कृति द्वारा अनभिभूत, परम्परागत जैनसंस्कृतिके विशुद्ध विचारोंका, अपनी प्रखर तर्कधारासे परित्यक्त कर पोषण किया है। यद्यपि ब्राह्मणलजातिके खण्डन करते समय प्रभाचन्द्रने प्रधानतया उसके निलल और ब्रह्मप्रभवल आदि अशोंके खण्डनके लिए इस प्रकरणको लिखा है और इसके लिखनेमें प्रज्ञाकर गुप्तके प्रमाणवार्तिकालङ्कार तथा शान्तरक्षितके तत्त्वसंग्रहने

प्राप्त प्रेरणा ही है परन्तु इससे प्रभाचन्द्रकी अपनी जातिविषयक स्वतन्त्र चिन्तनशक्तिमें कोई कमी नहीं आती। उन्होंने उसके हर एक पहलू पर विचार करके ही अपने उक्त विचार स्थिर किए।

§ २. प्रभाचन्द्रका समय—

कार्यक्षेत्र और गुरुकुल—आ० प्रभाचन्द्रने प्रमेयकमलमार्तण्ड, न्यायकुमुदचन्द्र आदिकी प्रशस्तिमें 'पद्मनन्दि सैद्धान्त' को अपना गुरु लिखा है। श्रवणवेल्लोलके शिलालेख (नं० ४०) में गोलाचार्यके शिष्य पद्मनन्दि सैद्धान्तिकका उल्लेख है। और इसी शिलालेखमें आगे चलकर प्रथिततर्क-ग्रन्थकार, शब्दाम्भोरुहभास्कर प्रभाचन्द्रका शिष्यरूपसे वर्णन किया गया है। प्रभाचन्द्रके प्रथिततर्कग्रन्थकार और शब्दाम्भोरुहभास्कर ये दोनों विशेषण यह स्पष्ट बतला रहे हैं कि ये प्रभाचन्द्र न्यायकुमुदचन्द्र और प्रमेयकमलमार्तण्ड जैसे प्रथित तर्कग्रन्थोंके रचयिता थे तथा शब्दाम्भोजभास्करनामक जैनैन्द्रन्यासके कर्ता भी थे। इसी शिलालेखमें पद्मनन्दि सैद्धान्तिकको अविद्वकर्णादिक और कौमारदेवव्रती लिखा है। इन विशेषणोंसे ज्ञात होता है कि—पद्मनन्दि सैद्धान्तिकने कर्मवेध होनेके पहिले ही धीक्षा धारण की होगी और इसीलिए ये कौमारदेवव्रती कहे जाते थे। ये मूलसंघान्तर्गत मन्दिगणके प्रमेयरूप देशीगणके श्रीगोलाचार्यके शिष्य थे। प्रभाचन्द्रके सधर्मा श्रीकुलभूषणमुनि थे। कुलभूषण मुनि भी सिद्धान्त धारणोंके पारगामी और चारित्रसागर थे। इस शिलालेखमें कुलभूषणमुनिकी शिष्य-परम्पराका वर्णन है, जो दक्षिणदेशमें हुई थी। तात्पर्य यह कि आ० प्रभाचन्द्र मूलसंघान्तर्गत मन्दिगणकी आचार्यपरम्परामें हुए थे। इनके गुरु पद्मनन्दि सैद्धान्त थे और सधर्मा थे कुलभूषणमुनि। मान्य होता है कि प्रभाचन्द्र पद्मनन्दिसे शिक्षा-धीक्षा लेकर धारानगरीमें चले आए, और यहीं उन्होंने अपने ग्रन्थों की रचना की। ये धाराधीशा भोजके मान्य विद्वान् थे। प्रमेयकमलमार्तण्डकी "श्रीभोज-देवराज्ये धारानिवासिना" आदि अन्तिम प्रशस्तिसे स्पष्ट है कि—यह ग्रन्थ धारानगरीमें भोजदेवके राज्यमें बनाया गया है। न्यायकुमुदचन्द्र, आराधनागण-कथाकोश और महापुराणटिप्पणकी अन्तिम प्रशस्तिमें "श्रीजयसिंहदेवराज्ये श्रीमह्यारानिवासिना" शब्दोंसे इन ग्रन्थोंकी रचना भोजके उत्तराधिकारी जयसिंह-देवके राज्यमें हुई ज्ञात होती है। इसलिए प्रभाचन्द्रका कार्यक्षेत्र धारानगरी ही मान्य होता है। संभव है कि इनकी शिक्षा-धीक्षा दक्षिणमें हुई हो।

श्रवणवेल्लोलके शिलालेख नं० ५५ में मूलसंघके देशीगणके देवेन्द्रसैद्धान्त-देवका उल्लेख है। इनके शिष्य चतुर्मुखदेव और चतुर्मुखदेवके शिष्य गोपनन्दि थे। इसी शिलालेखमें इन गोपनन्दिके सधर्मा एक प्रभाचन्द्रका वर्णन इस प्रकार किया गया है—

“अवर सचमैद-

श्रीधाराधिपभोजराजमुकुटप्रोताम्बरदिमच्छटा-
च्छयाकुङ्कुमपङ्कलितचरणाम्भोजातलक्ष्मीधवः ।
न्यायाब्जाकरमण्डने दिनमणिदशन्दाब्जरोदोमणिः,
स्थेयात्पण्डितपुण्डरीकतरणिः श्रीमान् प्रभाचन्द्रमाः ॥ १७ ॥
श्रीचतुर्मुखदेवानां शिष्योऽवृष्यः प्रवादिभिः ।
पण्डितश्रीप्रभाचन्द्रो रुद्रवादिगजाङ्कवाः ॥ १८ ॥”

इन श्लोकोंमें वर्णित प्रभाचन्द्र भी धाराधीश भोजराजके द्वारा पूज्य थे, न्यारूप कमलसमूह (प्रमेयकमल) के दिनमणि (मार्तण्ड) थे, शब्दरूप अब्ज (शब्दाम्भोज) के विकास करनेको रोदोमणि (भास्कर) के समान थे। पंडित रूपी कमलोंके प्रफुल्लित करने वाले सूर्य थे, रुद्रवादि गर्जोंको वध करनेके लिए अंकुशके समान थे तथा चतुर्मुखदेवके शिष्य थे। क्या इस शिलालेखमें वर्णित प्रभाचन्द्र और पद्मनन्दि सैद्धान्तके शिष्य, प्रथिततर्कग्रन्थकार एवं शब्दाम्भोजभास्कर प्रभाचन्द्र एक ही व्यक्ति हैं? इस प्रश्न का उत्तर ‘हाँ’ में दिया जा सकता है, पर इसमें एक ही बात नहीं है। वह है-शुद्धरूपसे चतुर्मुखदेवके उल्लेख होनेकी। मैं समझता हूँ कि-यदि प्रभाचन्द्र धारामें आनेके बाद अपने ही देशीयगणके श्री चतुर्मुखदेवकी आदर और शुक्की दृष्टिसे देखते हों तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। पर यह सुनिश्चित है कि प्रभाचन्द्रके आद्य और परमादरणीय उपास्य शुद्ध पद्मनन्दि सैद्धान्त ही थे। चतुर्मुखदेव द्वितीय शुद्ध या गुरुसम हो सकते हैं। यदि इस शिलालेखके प्रभाचन्द्र और प्रमेयकमलमार्तण्ड आदि के रचयिता एक ही व्यक्ति हैं तो यह निश्चितरूपसे कहा जा सकता है कि प्रभाचन्द्र धाराधीश भोजके समकालीन थे। इस शिलालेखमें प्रभाचन्द्रको गोपनन्दिक्रम सधर्मा कहा गया है। हल्केलंगो-लके एक शिलालेख (नं० ४९२, जैनशिलालेखसंग्रह) में होप्लनरेश परेयज्ञ द्वारा गोपनन्दि पण्डितदेवको दिए गए दानका उल्लेख है। यह दान पौष शुद्ध १३, संवत् १०१५ में दिया गया था। इस तरह सन् १०९४ में प्रभाचन्द्रके सधर्मा गोपनन्दिकी स्थिति होनेसे प्रभाचन्द्रका समय सन् १०६५ तक माननेका पूर्ण समर्थन होता है।

समयविचार-आचार्य प्रभाचन्द्रके समयके विषयमें डॉ० पाठक, प्रेमीजी*

* श्रीमान् प्रेमीजीका विचार अब बदल गया है। वे अपने “श्रीचन्द्र और प्रभाचन्द्र” लेख (जनेकान्त वर्ष ४ अंक १) में महापुराणटिप्पणकार प्रभाचन्द्र तथा प्रमेयकमलमार्तण्ड और यथकथाकोश आदिके कर्ता प्रभाचन्द्रका एक ही व्यक्ति होना सूचित करते हैं। वे अपने एक पत्रमें मुझे लिखते हैं कि-“हम समझते हैं कि प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्यायकुसुमचन्द्रके कर्ता प्रभाचन्द्र ही महापुराणटिप्पणके कर्ता हैं। और तत्सार्धचतुपद (सर्वार्थसिद्धिके पदोंका प्रकटीकरण), समाधितत्रयीका, शालानुशासन-शिल्पक, क्रियाकलापटीका, प्रवचनसारसरोजभास्कर (प्रवचनसारकी टीका) आदिके कर्ता, और शायद रत्नकरण्डवीकाके कर्ता भी वही है।”

तथा मुह्यतार सा० आदिका प्रायः सर्वसम्मत मत यह रहा है कि आचार्य प्रभाचन्द्र इसकी ८ वीं शताब्दीके उत्तरार्ध एवं नवीं शताब्दीके पूर्वार्धवर्ती विद्वान् थे । और इसका मुख्य आधार है जिनसेनकृत आदिपुराण का यह श्लोक-

“चन्द्रांशुशुभ्रयशसं प्रभाचन्द्रकविं स्तुवे ।

कृत्वा चन्द्रोदयं येन शश्वदाह्लादितं जगत् ॥”

अर्थात्-“जिनका यज्ञ चन्द्रमाकी किरणोंके समान धवल है उन प्रभाचन्द्रकविकी स्तुति करता हूँ । जिन्होंने चन्द्रोदयकी रचना करके जगत् को आह्लादित किया था ।” इस श्लोकमें चन्द्रोदयसे न्यायकुमुदचन्द्रोदय (न्यायकुमुदचन्द्र) ग्रन्थका सूचन समझ गया है । आ० जिनसेनने अपने गुरु वीरसेनकी अधूरी जयधवला टीकाको शक सं० ७५९ (ईसवी ८३७) की फाल्गुन शुक्ला दशमी तिथिको पूर्ण किया था । इस समय अमोघवर्षका राज्य था । जयधवलाकी समाप्तिके अनन्तर ही आ० जिनसेनने आदिपुराणकी रचना की थी । आदिपुराण जिनसेनकी अन्तिम कृति है । वे इसे अपने जीवनमें पूर्ण नहीं कर सके थे । उसे इनके शिष्य गुणभद्रने पूर्ण किया था । तात्पर्य यह कि जिनसेन आचार्यने ईसवी ८४० के लगभग आदिपुराणकी रचना प्रारम्भ की होगी । इसमें प्रभाचन्द्र तथा उनके न्यायकुमुदचन्द्रका उल्लेख मानकर डॉ० पाठक आदिने निर्विवादरूपसे प्रभाचन्द्रका समय ईसाकी ८ वीं शताब्दीका उत्तरार्ध तथा नवीं का पूर्वार्ध निश्चित किया है ।

सुहृद्वर पं० कैलाशचन्द्रजी शास्त्रीने न्यायकुमुदचन्द्र प्रथमभाग की प्रस्तावना (पृ० १२३) में डॉ० पाठक आदिके मतका निरास करते हुए प्रभाचन्द्रका

† प० कैलाशचन्द्रजीने आदिपुराणके ‘चन्द्रांशुशुभ्रयशसं’ श्लोकमें चन्द्रोदयकार किसी अन्य प्रभाचन्द्रकविका उल्लेख बताया है, जो ठीक है । पर उन्होंने आदिपुराणकार जिनसेनके द्वारा न्यायकुमुदचन्द्रकार प्रभाचन्द्रके स्रष्ट होनेमें बाधक जो अन्य चीज हेतु दिए हैं वे बलवत् नहीं मालूम होते । यतः (१) आदि-पुराणकार इसके लिए बाध्य नहीं माने जा सकते कि यदि वे प्रभाचन्द्रका स्मरण करते हैं तो उन्हें प्रभाचन्द्रके द्वारा स्रष्ट अनन्तवीर्य और विद्यानन्दका स्मरण करना ही चाहिए । विद्यानन्द और अनन्तवीर्यका समय ईसाकी नवीं शताब्दीका पूर्वार्ध है, और इसलिये वे आदिपुराणकारके समकालीन होते हैं । यदि प्रभाचन्द्र भी ईसाकी नवीं शताब्दीके विद्वान् होते, तो भी वे अपने समकालीन विद्यानन्द आदि आचार्योंका स्मरण करके भी आदिपुराणकार द्वारा स्रष्ट हो-सकते थे । (२) ‘जयन्त और प्रभाचन्द्र’ की तुलना करते समय मैं जयन्तका समय ई० ७५० से ८४० तक सिद्ध कर आया हूँ । अतः समकालीनवृद्ध जयन्त से प्रभावित होकरभी प्रभाचन्द्र आदिपुराणमें उल्लेख्य हो सकते हैं । (३) गुणभद्रके आत्मानुशासन से ‘अन्धादर्यं महाबन्धः’ श्लोक उद्धृत किया जाना अवश्य ऐसी बात है जो प्रभाचन्द्रका आदिपुराणमें उल्लेख होनेकी बाधक हो सकती है । क्योंकि आत्मानुशासनके “जिनसेनाचार्यपादस्मरणाचीनचेतसाद् । गुणभद्रभद्रन्तानां कृतिरात्मानुशासनम् ॥”

समय ई० १५० से १०२० तक निर्धारित किया है। इस निर्धारित समयकी शताब्दियाँ तो ठीक हैं पर दशकोंमें अन्तर है। तथा जिन आधारोंसे यह समय निश्चित किया गया है वे भी अग्रान्त नहीं हैं। पं० जीने प्रभाचन्द्रके ग्रन्थोंमें व्योमशिवचार्यकी व्योमवती टीकाका प्रभाव देखकर प्रभाचन्द्रकी पूर्वावधि १५० ई० और पुष्पदन्तकृत महापुराणके प्रभाचन्द्रकृत टिप्पणको वि० सं० १०८० (ई० १०९३) में समाप्त मानकर उत्तरावधि १०२० ई० निश्चित की है। मैं 'व्योमशिव और प्रभाचन्द्र' की तुलना करते समय (पृ० ८) व्योमशिवका समय ईसाकी सातवीं शताब्दीका उत्तरार्ध निर्धारित कर आया हूँ। इसलिए मात्र व्योमशिवके प्रभावके कारण ही प्रभाचन्द्रका समय ई० १५० के बाद नहीं जा सकता। महापुराणके टिप्पणकी वस्तुस्थिति तो यह है कि—पुष्पदन्तके महापुराण पर श्रीचन्द्र आचार्यका भी टिप्पण है और प्रभाचन्द्र आचार्यका भी। बलात्कारणके श्रीचन्द्रका टिप्पण भोजदेवके राज्यमें बनाया गया है। इसकी प्रशस्ति निम्न लिखित है—

इस अन्तिमश्लोकसे ध्वनित होता है की यह ग्रन्थ जिनसेन स्वामीकी मृत्युके बाद बनाया गया है, क्योंकि वही समय जिनसेनके पादोंके स्मरणके लिए ठीक जँचता है। अतः आत्मानुशासनका रचनाकाल सन् ८५० के करीब माहस होता है। आत्मानुशासन पर प्रभाचन्द्रकी एक टीका उपलब्ध है। उसमें प्रथम श्लोकका उत्थान वाक्य इस प्रकार है—
 “बृहद्भर्मात्तुलोकसेनस्य विषयव्यासुग्धनुद्वेः सम्बोधनव्याजेन सर्वैस्सर्वोप-
 कारकं सम्मार्गसुपदर्शयितुकाभो गुणभद्रदेवः” अर्थात्—गुणभद्र स्वामीने विषयोकी ओर चचल चित्तवृत्तिवाले बड़े भर्माई (!) लोकसेनको समझानेके बहाने आत्मानुशासन ग्रन्थ बनाया है। ये लोकसेन गुणभद्रके मित्रशिष्य थे। उत्तरपुराणकी प्रशस्तिमें इन्हीं लोकसेनको स्वयं गुणभद्रने 'विदितसकलशास्त्र, मुनीश, कवि अविक्ल-
 वृत्त' आदि विशेषण दिए हैं। इससे इतना अनुमान तो सहज ही किया जा सकता है कि आत्मानुशासन उत्तरपुराणके बाद तो नहीं बनाया गया; क्योंकि उस समय लोकसेन मुनि विषयव्यासुग्धनुदि न होकर विदितसकलशास्त्र एवं अविक्लवृत्त हो गए थे। अतः लोकसेनकी प्रारम्भिक अवस्थामें, उत्तर पुराणकी रचनाके पहिले ही आत्मानुशासनका रचा जाना अधिक संभव है। पं० नाथूरामजी प्रेमीने विद्वद्रत्नमाला (पृ० ७५) में यही संभावना की है। आत्मानुशासन गुणभद्रकी प्रारम्भिक कृति ही माहस होती है। और गुणभद्रने इसे उत्तरपुराणके पहिले जिनसेन की मृत्युके बाद बनाया होगा। परन्तु आत्मानुशासनकी आन्तरिक जाँच करने से हम इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि इसमें अन्य कवियोंके सुभाषितोंका भी यथावसर समावेश किया गया है। उदाहरणार्थ—
 आत्मानुशासनका ३२ वाँ पद्य 'नेता यस्य बृहस्पतिः' भरद्वाजके नीतिज्ञतत्त्वका ८८ वाँ श्लोक है, आत्मानुशासनका ६७ वाँ पद्य 'यदेतत्स्वच्छन्दं' वैराग्यशतकका ५० वाँ श्लोक है। ऐसी स्थितिमें 'अन्धादयं महानन्धः' सुभाषित पद्य भी गुणभद्रका स्वरचित ही है यह निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते। तथापि किसी अन्य प्रबल प्रमाणके अभावमें अभी इस विषयमें अधिक कुछ नहीं कहा जा सकता।

“श्री विक्रमादित्यसंवत्सरे वर्षाणामशील्यधिकसहस्रे महापुराणविषमपदविवरणं सागरसेनसैद्धान्तान् परिज्ञाय मूलटिप्पणिकाशालोक्य कृतमिदं समुच्चयटिप्पणम् अज्ञपातमीतेन श्रीमद्बला [त्कार] गणश्रीसंघान्चार्यसत्कविशिष्येण श्रीचन्द्रमुनिना निजदोर्दण्डाभिभूतरिपुराज्यविजयिनः श्रीभोजदेवस्य ॥ १०२ ॥ इति उत्तरपुराण-टिप्पणकं प्रभाचन्द्राचार्य (?) विरचितं समाप्तम् ।”

प्रभाचन्द्रकृत टिप्पण जयसिंहदेवके राज्यमें लिखा गया है। इसकी प्रशस्तिके श्लोक रत्नकरण्डभावकाचारकी प्रस्तावनासे न्यायकुमुदचन्द्र प्रथम भागकी प्रस्तावना (पृ० १२०) में उद्धृत किये गये हैं। श्लोकोंके अनन्तर—“श्रीजयसिंहदेवराज्ये श्रीमद्भारानिवासिना परापरपरमेष्ठिप्रणामोपाजितामलपुष्यनिराकृताखिलमलककङ्केन श्रीप्रभाचन्द्रपण्डितेन महापुराणटिप्पणके शतत्रयधिकसहस्रत्रयपरिमाणं कृतमिति” यह पुष्पिकालेख है। इस तरह महापुराण पर दोनों आचार्योंके पृथक् पृथक् टिप्पण हैं। इसका खूबसा प्रेमीजीके लेखसे स्पष्ट हो ही जाता है। पर टिप्पण-लेखकने श्रीचन्द्रकृत टिप्पणके ‘श्रीविक्रमादित्य’ वाले प्रशस्तिलेखके अन्तमें अम-वश ‘इति उत्तरपुराणटिप्पणकं प्रभाचन्द्राचार्यविरचितं समाप्तम्’ लिख दिया है। इसी लिए डॉ० पी० एल० वैद्य, प्रो० हीरालालजी तथा पं० कैलाशचन्द्रजीने अमवश प्रभाचन्द्रकृत टिप्पणका रचना काल संवत् १०८० समझ लिया है। अतः इस भ्रान्त आधारसे प्रभाचन्द्रके समयकी उत्तरावधि सन् १०२० नहीं ठह-राई जा सकती। अब हम प्रभाचन्द्रके समयकी निश्चित अवधिके साधक कुछ प्रमाण उपस्थित करते हैं—

१—प्रभाचन्द्रने पहिले प्रमेयकमलमार्तण्ड बनाकर ही न्यायकुमुदचन्द्रकी रचना की है। मुद्रित प्रमेयकमलमार्तण्डके अन्तमें “श्री भोजदेवराज्ये श्रीमद्भारानिवा-सिना परापरपरमेष्ठिप्रणामोपाजितामलपुष्यनिराकृतनिखिलमलककङ्केन श्रीमत्प्रभा-चन्द्रपण्डितेन निखिलप्रमाणप्रमेयस्वरूपोद्योतिपरीक्षामुखपदमिदं विवृतमिति ।” यह पुष्पिकालेख पाया जाता है। न्यायकुमुदचन्द्रकी कुछ प्रतियोंमें उक्त पुष्पिकालेख ‘श्रीभोजदेवराज्ये’ की जगह ‘श्रीजयसिंहदेवराज्ये’ पदके साथ जैसाका तैसा उपलब्ध है। अतः इस स्पष्ट लेख से प्रभाचन्द्रका समय जयसिंहदेवके राज्यके कुछ वर्षों तक, अन्ततः सन् १०६५ तक माना जा सकता है। और यदि प्रभाचन्द्रने ८५ वर्षकी आयु पाई हो तो उनकी पूर्वावधि सन् ९८० मानी जानी चाहिए।

श्रीमान् सुखारसौ० तथा पं० कैलाशचन्द्रजी प्रमेयकमल० और न्यायकुमुद-चन्द्रके अन्तमें पाए जानेवाले उक्त ‘श्रीभोजदेवराज्ये और श्री जयसिंहदेवराज्ये’ आदि प्रस्तिलेखनोंको स्वयं प्रभाचन्द्रकृत नहीं मानते। सुखारसौ० इस प्रशस्ति-वाक्यको टीकाटिप्पणकार द्वितीय प्रभाचन्द्रका मानते हैं तथा पं० कैलाशचन्द्रजी

१ देखो पं० नाथूरामजी प्रेमी लिखित ‘श्रीचन्द्र और प्रभाचन्द्र’ शीर्षक लेख अनेकान्त वर्ष ४ क्रि.पू १। २ महापुराणकी प्रस्तावना पृ० XIV। ३ रत्नकरण्ड-प्रस्तावना पृ० ५९-६०। ४ न्यायकुमुदचन्द्र प्रथमभागकी प्रस्तावना पृ० १२१।

इसे पीछेके किसी व्यक्तिकी करतूत बताते हैं । पर प्रशस्तिवाक्य को प्रभाचन्द्र-कृत नहीं माननेमें दोनोंके आधार छुदे छुदे हैं । सुख्तारसा० प्रभाचन्द्रको जिनसेन के प्रहिलेका विद्वान् मानते हैं, इसलिए 'भोजदेवराज्ये' आदिवाक्य वे स्वयं उन्हीं प्रभाचन्द्रका नहीं मानते । पं० कैलाशचन्द्रजी प्रभाचन्द्रको ईसाकी १० वीं और ११ वीं शताब्दीका विद्वान् मानकर भी महापुराणके टिप्पणकार श्रीचन्द्रके टिप्पणके अन्तिमवाक्यको अथवा प्रभाचन्द्रकृत टिप्पणका अन्तिमवाक्य समझ लेनेके कारण उक्त प्रशस्तिवाक्योंको प्रभाचन्द्रकृत नहीं मानना चाहते । सुख्तारसा० ने एक हेतु यह भी दिया है कि—अथेयकमल-मार्त्तण्डकी कुछ प्रतियों में यह अन्तिमवाक्य नहीं पाया जाता । और इसके लिए भाण्डारकर इन्स्टीट्यूटकी प्राचीन प्रतियोंका हवाला दिया है । मैंने भी इस ग्रन्थका पुनः सम्पादन करते समय जैनसिद्धान्तमवन आराकी प्रतिके पाठान्तर लिए हैं । इसमें भी उक्त 'भोजदेवराज्ये' वाला वाक्य नहीं है । इन्हीं तरह न्यायकुमुदचन्द्रके सम्पादनमें जिन आ०, व०, भ०, और भा० प्रतियोंका उपयोग किया है, उनमें आ० और व० प्रतियोंमें 'श्रीजयसिंहदेवराज्ये' वाला प्रशस्ति लेख नहीं है । हाँ, भा० और भ० प्रतियों, जो ताड़पत्र पर लिखी हैं, उनमें 'श्रीजयसिंहदेवराज्ये' वाला प्रशस्तिवाक्य है । इनमें भा० प्रति शालिवाहनशक १७६४ की लिखी हुई है । इस तरह अथेयकमलमार्त्तण्डकी किन्हीं प्रतियोंमें उक्त प्रशस्तिवाक्य नहीं है, किन्हींमें 'श्रीपद्मनन्दि' श्लोक नहीं है तथा कुछ प्रतियोंमें सभी श्लोक और प्रशस्ति वाक्य हैं । न्यायकुमुदचन्द्रकी कुछ प्रतियोंमें 'जयसिंह-

१ रत्नकरण्ड० प्रस्तावना पृ० ६० । २ देखो इनका परिचय न्यायकु० प्र० भाग के सम्पादकीयमें ।

३ प० नाथुरामजी प्रेमी अपनी नोटबुकके आधारसे उचित करते हैं कि—'भाण्डारकर इन्स्टीट्यूटकी न० ८३६ (सन् १८७५-७६) की प्रतियोंमें प्रशस्तिका 'श्रीपद्मनन्दि' वाला श्लोक और 'भोजदेवराज्ये' वाक्य नहीं । वहीं की न० ६३८ (सन् १८७५-७६) वाली प्रतियोंमें 'श्री पद्मनन्दि' श्लोक है पर 'भोजदेवराज्ये' वाक्य नहीं है । पहिली प्रति सन् १४८९ तथा दूसरी सन् १७९५ की लिखी हुई है ।' वीरबाणीबिलास भवनके अध्यक्ष पं० लोकनाथ पार्थनाथशास्त्री अपने यहाँ की ताड़पत्रकी दो पूर्ण प्रतियोंको देखकर लिखते हैं कि—'प्रतियोंकी अन्तिम प्रशस्तिमें मुद्रितपुस्तकानुसार प्रशस्ति श्लोक पूरे हैं और 'श्री भोजदेवराज्ये श्रीमद्भारगुणिसिना' आदि वाक्य हैं । अथेयकमलमार्त्तण्डकी प्रतियोंमें बहुत शैथिल्य है, परन्तु करीब ६०० वर्ष पहिले लिखित होगी । उन दोनों प्रतियोंमें शकसन्वत् नहीं है ।' सोलापुरकी प्रतियोंमें 'श्रीभोजदेवराज्ये' प्रशस्ति नहीं है । दिल्लीकी आधुनिक प्रतियों भी उक्तवाक्य नहीं है । अनेक प्रतियोंमें प्रथम अध्यायके अन्तमें पाए जानेवाले "सिद्ध सर्वजनप्रबोध" श्लोककी व्याख्या नहीं है । इन्दौरकी सुकोणववाली प्रतियोंमें प्रशस्तिवाक्य है और उक्त श्लोककी व्याख्या भी है । सुर्यकी प्रतियोंमें 'भोजदेवराज्ये' प्रशस्ति नहीं है, पर चारों प्रशस्तिश्लोक हैं ।

देवराज्ये' प्रशस्तिवाक्य नहीं है। श्रीमान् मुख्तारसा० प्रायः इसीसे उक्त प्रशस्तिवाक्योंको प्रभाचन्द्रकृत नहीं मानते।

इसके विषयमें मेरा यह वक्तव्य है कि—लेखक प्रमादवश प्रायः मौजूद पाठ तो छोड़ देते हैं पर किसी अन्यकी प्रशस्ति अन्यग्रन्थमें लगानेका प्रयत्न कम करते हैं। लेखक आखिर नकल करनेवाले लेखक ही तो हैं, उनमें इतनी बुद्धि-मानीकी भी कम संभावना है कि वे 'श्री भोजदेवराज्ये' जैसी सुन्दर गद्य प्रशस्तिको खकपोलकल्पित करके उसमें जोड़ दें। जिन प्रतियोंमें उक्त प्रशस्ति नहीं है तो समझना चाहिए कि लेखकोंके प्रमादसे उनमें वह प्रशस्ति लिखी ही नहीं गई। जब अन्य अनेक प्रमाणोंसे प्रमाचन्द्रका समय करीब करीब भोजदेव और जयसिंहके राज्यकाल तक पहुँचता है तब इन प्रशस्तिवाक्योंको टिप्पणकारकृत या किसी पीछे होनेवाले व्यक्तिकी करतूत कहकर नहीं ढाला जा सकता। मेरा यह विश्वास है कि 'श्रीभोजदेवराज्ये' या 'श्रीजयसिंहदेवराज्ये' प्रशस्तियाँ सर्वप्रथम प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्यायकुमुदचन्द्रके रचयिता प्रमाचन्द्रने ही बनाई हैं। और जिन जिन ग्रन्थोंमें ये प्रशस्तियाँ पाई जाती हैं वे प्रसिद्ध तर्कग्रन्थकार प्रमाचन्द्र के ही ग्रन्थ होने चाहिए।

२-यापनीयसंघाप्रणी शाकटायनाचार्यने शाकटायन व्याकरण और अमोचवृत्तिके सिन्धु केवलभुक्ति और क्षीभुक्ति प्रकरण लिखे हैं। शाकटायनने अमोचवृत्ति, महाराज अमोचवर्षके राज्यकाल (ई० ८१४ से ८७७) में रची थी। आ० प्रमाचन्द्रने प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्यायकुमुदचन्द्रमें शाकटायनके इन दोनों प्रकरणोंका खंडन आनुपूर्वसि किया है। न्यायकुमुदचन्द्रमें क्षीभुक्तिप्रकरणसे एक कारिका भी उद्धृत की है। अतः प्रमाचन्द्रका समय ई० ९०० से पहिले नहीं माना जा सकता।

३-सिद्धसेनदिवाकरके न्यायावतारपर सिद्धविंशतिकी एक वृत्ति उपलब्ध है। हम 'सिद्धविंशति' और प्रमाचन्द्र की तुलना में बता आए हैं कि प्रमाचन्द्रने न्यायावतारके साथ ही साथ इस वृत्तिको भी देखा है। सिद्धविंशति ई० ९०६ में अपनी उपसंहारिकप्रपञ्चाकथा बनाई थी। अतः न्यायावतारवृत्तिके द्रष्टा प्रमाचन्द्रका समय सन् ९१० के पहिले नहीं माना जा सकता।

४-भासवैज्ञका न्यायसार ग्रन्थ उपलब्ध है। कहा जाता है कि इसपर भासवैज्ञकी खोपज्ञ न्यायभूषणा नामकी वृत्ति थी। इस वृत्तिके नामसे उत्तरकालमें इनकी भी 'भूषण' रूपमें प्रसिद्धि हो गई थी। न्यायलीलावतीकारके कथनसे ज्ञात होता है कि भूषण क्रियाको संयोग रूप मानते थे। प्रमाचन्द्रने न्यायकुमुदचन्द्र (पृ० २८२) में भासवैज्ञके इस मतका खंडन किया है। प्रमेयकमलमार्तण्डके छठवें अध्यायमें जिन विशेष्यासिद्ध आदि हेलाभासोंका निरूपण है वे सब न्यायसारसे ही लिए गए हैं। ख० डॉ० श्यामचन्द्र वैद्याभूषण इनका समय

ई० १०० के लगभग मानते हैं। अतः प्रभाचन्द्रका समय भी ई० १०० के नाद ही होना चाहिए।

५-आ० देवसेनने अपने दर्शनसार ग्रंथ (रचनासमय ९९० वि० ९३३ ई०) के बाद भावसंग्रह ग्रंथ बनाया है। इसकी रचना संभवतः सन् ९४० के आसपास हुई होगी। इसकी एक 'नोकम्मकम्महारो' गाथा प्रमेयकमलमूर्ति तथा न्यायकुमुदचन्द्रमें उद्धृत है। यदि यह गाथा स्वयं देवसेनकी है तो प्रभाचन्द्रका समय सन् ९४० के बाद होना चाहिए।

६-आ० प्रभाचन्द्रने प्रमेयकमल० और न्यायकुमुद० बनानेके बाद शब्दा-म्भोजभास्कर नामका जैनेन्द्रन्यास रचा था। यह न्यास जैनेन्द्रमहावृत्तिके बाद इसीके आधारसे बनाया गया है। मैं 'अभयनन्दि और प्रभाचन्द्र' की तुलना (पृ० ३९) करते हुए लिख आया हूँ कि नेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्तिके शुद्ध अभयनन्दिने ही यदि महावृत्ति बनाई है तो इसका रचनाकाल अनुमानतः ९६० ई० होना चाहिए। अतः प्रभाचन्द्रका समय ई० ९६० से पहिले नहीं माना जा सकता।

७-पुष्पदन्तकृत अपभ्रंशभाषाके महापुराण पर प्रभाचन्द्रने एक टिप्पण रचा है। इसकी प्रशस्ति राजकरण्डभावकाचार की प्रस्तावना (पृ० ६१) में दी गई है। यह टिप्पण जयसिंहदेवके राज्यकालमें लिखा गया है। पुष्पदन्तने अपना महापुराण सन् ९६५ ई० में समाप्त किया था। टिप्पणकी प्रशस्तिये तो यही माह्य होता है कि प्रसिद्ध प्रभाचन्द्र ही इस टिप्पणकर्ता हैं। यदि यही प्रभाचन्द्र इसके रचयिता हैं, तो कहना होगा कि प्रभाचन्द्रका समय ई० ९६५ के बाद ही होना चाहिए। यह टिप्पण इन्होंने न्यायकुमुदचन्द्रकी रचना करके लिखा होगा। यदि यह टिप्पण प्रसिद्ध तर्कग्रन्थकार प्रभाचन्द्रका न माना जाय तब भी इसकी प्रशस्तिके श्लोक और पुष्पिकालेख, जिनमें प्रमेयकमलमूर्तिशब्द और न्यायकुमुदचन्द्रके प्रशस्तिश्लोकका एवं पुष्पिकालेखका पूरा पूरा अनुकरण किया गया है, प्रभाचन्द्रकी उत्तरावधि जयसिंहके राज्य कालतक निश्चित करनेमें साधक तो हो ही सकते हैं।

८-श्रीधर और प्रभाचन्द्रकी तुलना करते समय हम बता आए हैं कि प्रभाचन्द्रके ग्रन्थों पर श्रीधरकी कन्दली भी अपनी आभा दे रही है। श्रीधरने कन्दली टीका ई० सन् ९९१ में समाप्त की थी। अतः प्रभाचन्द्रकी पूर्वावधि ई० ९९० के करीब मानना और उनका कार्यकाल ई० १०२० के लगभग मानना संगत माह्य होता है।

९-श्रवणनेलोलाके लेख नं० ४० (६४) में एक पद्मनन्दिसैद्धान्तिकका उल्लेख है और इन्हींके विषय कुलभूषणके सधर्मा प्रभाचन्द्रको शब्दा-म्भोजभास्कर और प्रथिततर्कग्रन्थकार लिखा है-

१ देखो महापुराणकी प्रस्तावना।

“अविद्वकणादिकपद्मनन्दिसैद्धान्तिकाख्योऽजनि यस्य लोके ।
 कौमारदेवव्रतिताप्रसिद्धिर्जीयान्तु सो ज्ञाननिधिस्स धीरः ॥ १५ ॥
 तच्छिष्यः कुलभूषणाख्ययतिपथ्वारित्रघारानिधिः,
 सिद्धान्ताम्बुधिपारगो नतविनेयस्तत्सधर्मो महात् ।
 शब्दान्मोहहमास्करः प्रथिततर्कग्रन्थकारः प्रमा-
 चन्द्राख्यो मुनिराजपण्डितवरः श्रीकृष्णकुन्दान्वयः ॥ १६ ॥”

इस लेखमें वर्णित प्रमाचन्द्र, शब्दान्मोहहमास्कर और प्रथिततर्कग्रन्थकार विद्वेषणोंके बलसे शब्दान्मोजमास्कर नामक जैनेन्द्रन्यास और प्रमेयकमल-मार्तण्ड न्यायकुमुदचन्द्र आदि ग्रन्थोंके कर्ता प्रस्तुत प्रमाचन्द्र ही हैं । धवल-टीका पु० २ की प्रस्तावनामें ताडपत्रीय प्रतिका इतिहास बताते हुए प्रो० हीरा-लालजीने इस शिलालेखमें वर्णित प्रमाचन्द्रके समय पर सयुक्तिक ऐतिहासिक प्रकाश डाला है । उसका सारांश यह है—“उक्त शिलालेखमें कुलभूषणसे आगेकी शिष्यपरम्परा इस प्रकार है—कुलभूषणके सिद्धान्तवारानिधि सहज कुलचन्द्र नामके शिष्य हुए, कुलचन्द्रदेवके शिष्य माघनन्दि मुनि हुए, जिन्होंने कोल्लापुरमें तीर्थ स्थापन किया, । इनके श्रावक शिष्य थे—सामन्तकेदार नाकरस, सामन्त निम्बदेव और सामन्त कामदेव । माघनन्दिके शिष्य हुए—गण्डविमुक्तदेव, जिनके एक छात्र सेनापति भरत थे, व दूसरे शिष्य भाद्रकीर्ति और देवकीर्ति, आदि । इस शिलालेखमें बताया है कि महामण्डलानार्य देवकीर्ति पंडितदेवने कोल्लापुरकी रूपनारायण वसदिके अधीन केल्लंगरेय प्रतापपुरका पुनरुद्धार कराया था, तथा जिननाथपुरमें एक दानघाला स्थापित की थी । उन्हीं अपने गुरुकी परोक्ष विनयके लिए महाप्रधान सर्वाधिकारि हिरिय भंडारी, अभिनवगण्डवनायक श्री हुल्लराजने उनकी निषया निर्माण कराई, तथा गुरुके अन्य शिष्य लक्ष्मणनन्दि, माघव और त्रिभुवनदेवने महादान व पूजाभिषेक करके प्रतिष्ठा की । देवकीर्तिके समय पर प्रकाश डालने वाला शिलालेख नं० ३९/है । इसमें देवकीर्तिकी प्रशस्तिके अतिरिक्त उनके स्वर्गवासका समय शक १०८५ सुभाद्र संवत्सर आषाढ शुक्ल ९ बुधवार सूर्योदयकाल बतलाया गया है । और कहा गया है कि उनके शिष्य लक्ष्मणनन्दि माघवचन्द्र और त्रिभुवनमल्लने गुरुमूर्तिसे उनकी निषयाकी प्रतिष्ठा कराई । देवकीर्ति पद्मनन्दिसे पाँच पीढी तथा कुलभूषण और प्रमाचन्द्रसे चार पीढी बाद हुए हैं । अतः इन आचार्योंको देवकीर्तिके समयसे १००-१२५ वर्ष अर्थात् शक ९५० (ई० १०२८) के लगभग हुए मानना अनुचित न होगा । उक्त आचार्योंके कालनिर्णयमें सहायक एक और प्रमाण मिलता है—कुलचन्द्र मुनिके उत्तराधिकारी माघनन्दि कोल्लापुरीय कहे गए हैं । उनके गृहस्थ शिष्य निम्बदेव सामन्तका उल्लेख मिलता है जो शिलाहारनरेश गंडरादित्यदेवके एक सामन्त थे । शिलाहार गंडरादित्यदेवके उल्लेख शक सं० १०३० से १०५८ तक के लेखों में पाए जाते हैं । इससे भी पूर्वोक्त काल-निर्णयकी पुष्टि होती है ।”

यह विवेचन शक सं० १०८५ में लिखे गए शिलालेखोंके आधारसे किया गया है। शिलालेखकी वस्तुओंका ध्यानसे समीक्षण करने पर यह प्रश्न होता है कि जिस तरह प्रभाचन्द्रके सघर्मा कुलभूषणकी शिष्यपरम्परा दक्षिण प्रान्तमें खली उस तरह प्रभाचन्द्रकी शिष्य परम्पराका कोई उल्लेख क्यों नहीं मिलता? मुझे तो इसका संभाव्य कारण यही मालूम होता है कि पद्मनन्दिके एक शिष्य कुलभूषण तो दक्षिणमें ही रहे और दूसरे प्रभाचन्द्र उत्तर प्रांतमें आकर धारा नगरीके आसपास रहे हैं। यही कारण है कि दक्षिणमें उनकी शिष्य परम्पराका कोई उल्लेख नहीं मिलता। इस शिलालेखीय अंक्रगणनासे निर्विवाद सिद्ध हो जाता है कि प्रभाचन्द्र भोजदेव और जयसिंह दोनोंके समयमें विद्यमान थे। अतः उनकी पूर्वावधि सन् ९९० के आसपास माननेमें कोई बाधक नहीं है।

१०-वादिराजसूरिने अपने पार्श्वचरितमें अनेकों पूर्वाचार्योंका स्मरण किया है। पार्श्वचरित शक सं० ९४७ (ई० १०२५) में बनकर समाप्त हुआ था। इन्होंने अकलंकदेवके न्यायविनिश्चय प्रकरण पर न्यायविनिश्चयविवरण या न्याय-विनिश्चयतात्पर्यावद्योतनी व्याख्यानरत्नमाला नामकी विस्तृत टीका लिखी है। इस टीकामें पचासों जैन-जैनैतर आचार्योंके ग्रन्थोंसे प्रमाण उद्धृत किए गए हैं। संभव है कि वादिराजके समयमें प्रभाचन्द्रकी प्रसिद्धि न हो पाई हो, अन्यथा तर्कशास्त्रके रसिक वादिराज अपने इस यशस्वी ग्रन्थकारका नामोल्लेख किए बिना न रहते। यद्यपि ऐसे नकारात्मक प्रमाण स्वतन्त्रमानसे किसी आचार्यके समयके साधक या बाधक नहीं होते फिर भी अन्य प्रबल प्रमाणोंके प्रकाशमें इन्हें प्रसन्नसाधनके रूपमें तो उपस्थित किया ही जा सकता है। यही अधिक संभव है कि वादिराज और प्रभाचन्द्र समकालीन और सम-व्यक्तित्वशाली रहे हैं अतः वादिराजने अन्य आचार्योंके साथ प्रभाचन्द्रका उल्लेख नहीं किया है।

अब हम प्रभाचन्द्रकी उत्तरावधिके नियामक कुछ प्रमाण उपस्थित करते हैं-

१-ईसाकी चौदहवीं शताब्दीके विद्वान् अभिज्ञवर्धमभूषणने न्यायधीपिका (पृ० १६) में प्रमेयकमलमार्तण्डका उल्लेख किया है। इन्होंने अपनी न्याय-धीपिका वि० सं० १४४२ (ई० १३०५) में बनाई थी*। ईसाकी १३ वीं शताब्दीके विद्वान् मल्लिषेणने अपनी स्याद्वाच्यजरी (रचना समय ई० १२९३) में न्यायकुसुमदचन्द्रका उल्लेख किया है। ईसाकी १२ वीं शताब्दीके विद्वान् आ० मलयगिरिने आवश्यकरिच्युक्तिटीका (पृ० ३७१ A.) में लघीयज्ञयकी एक कारिकाका व्याख्यान करते हुए 'टीकाकारके' नामसे न्यायकुसुमदचन्द्रमें की गई उक्त कारिकाकी व्याख्या उद्धृत की है। ईसाकी १२ वीं शताब्दीके विद्वान् देवभद्रने न्यायावतारटीकाटिप्पण (पृ० २१,७६) में तथा माणिक्यचन्द्र ने काव्यप्रकाश की टीका (पृ० १४) में प्रभाचन्द्र और उनके न्याय-कुसुमदचन्द्रका नामोल्लेख किया है। अतः इन १२ वीं शताब्दी तकके

* स्वामी समन्तभद्र पृ० २२७।

विद्वानों के उल्लेखों के आधारसे यह प्रामाणिकरूपसे कहा जा सकता है कि प्रभाचन्द्र ई० १२ वीं शताब्दीके बाद के विद्वान् नहीं हैं ।

२-रत्नकरण्डश्रावकाचार और समाधितन्त्र पर प्रभाचन्द्रकृत टीकाएँ उपलब्ध हैं । पं० जुगलकिशोर जी मुख्तार *ने इन दोनों टीकाओंको एक ही प्रभाचन्द्रके द्वारा रची हुई सिद्ध किया है । आपके मतसे ये प्रभाचन्द्र प्रमेयकमलमार्तण्ड आदिके रचयितासे भिन्न हैं । रत्नकरण्डटीकाका उल्लेख पं० आशाधरजी द्वारा अनागारधर्मासृत टीका (अ० ८ खो० ९३) में किये जाने के कारण इस टीकाका रचना काल वि० सं० १३०० से पहिलेका अनुमान किया गया है; क्योंकि अनागारधर्मासृत टीका वि० सं० १३०० में बनकर समाप्त हुई थी । अन्ततः मुख्तारसा० इस टीकाका रचनाकाल विक्रमकी १३ वीं शताब्दीका मध्यभाग मानते हैं । अस्तु, फिलहाल मुख्तारसा० के निर्णयके अनुसार इसका रचनाकाल वि० १२५० (ई० ११९३) ही मान कर प्रस्तुत विचार करते हैं ।

रत्नकरण्डश्रावकाचार (पृ० ६) में केवलकवलाहारके खंडनमें न्यायकुसुदचन्द्रगत शब्दावलीका पूरा पूरा अनुसरण करके लिखा है कि—“तदलमतिप्रसङ्गेन प्रमेयकमलमार्तण्डे न्यायकुसुदचन्द्रे प्रपद्यतः प्ररूपणात् ।” इसी तरह समाधितन्त्र टीका (पृ० १५) में लिखा है कि—“यैः पुनर्योगसांख्यैः मुक्तौ तत्प्रच्युतिरालनोऽभ्युपगता ते प्रमेयकमलमार्तण्डे न्यायकुसुदचन्द्रे च मोक्षविचारे विस्तरतः प्रत्याख्याताः ।” इन उल्लेखोंसे स्पष्ट है कि प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्यायकुसुदचन्द्र ग्रन्थ इन टीकाओंसे पहिले रचे गए हैं । अतः प्रभाचन्द्र ईसा की १२ वीं शताब्दीके बादके विद्वान् नहीं हैं ।

३-वादिदेवसरिका अन्म वि० सं० ११४३ तथा खर्गवास वि० सं० १२२२ में हुआ था । ये वि० सं० ११७४ में आचार्यपद पर प्रतिष्ठित हुए थे । संभव है इन्होंने वि० सं० ११७५ (ई० १११८) के लगभग अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ स्याद्वावरजाकरकी रचना की होगी । स्याद्वावरजाकरमें प्रभाचन्द्रके प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्यायकुसुदचन्द्रका न केवल शब्दार्थानुसरण ही किया गया है किन्तु कवलाहारसमर्थन-प्रकरणमें तथा प्रतिबिम्ब चर्चामें प्रभाचन्द्र और प्रभाचन्द्रके प्रमेयकमलमार्तण्डका नामोल्लेख करके खंडन भी किया गया है । अतः प्रभाचन्द्रके समयकी उत्तरावधि अन्ततः ई० ११०० सुनिश्चित हो जाती है ।

४-जैनेन्द्रव्याकरणके अभयनन्दिसम्मत सूत्रपाठ पर श्रुतकीर्तिने पंचवस्तु-प्रक्रिया बनाई है^१ । श्रुतकीर्ति कनड़ीचन्द्रप्रभचरित्रके कर्ता अगलकविके गुरु थे । अगलकविने शक १०११ ई० १०८९ में चन्द्रप्रभचरित्र पूर्ण किया था । अतः श्रुतकीर्तिके समय भी लगभग ई० १०७५ होना चाहिए । इन्होंने अपनी प्रक्रियामें एक न्यास ग्रन्थका उल्लेख किया है । संभव है कि यह प्रभाचन्द्रकृत

* रत्नकरण्डश्रावकाचार भूमिका पृ० ६६ से ।

१ देखो-वही प्रस्तावनाका ‘श्रुतकीर्ति और प्रभाचन्द्र’ अंश, पृ० ४९ ।

शब्दाभ्योजभास्कर नामका ही न्यास हो। यदि ऐसा है तो प्रभाचन्द्रकी उत्तरावधि ई० १०७५ मानी जा सकती है। शिमोगा जिलेके शिलालेख नं० ४६ से ज्ञात होता है कि पूज्यपादने भी जैनेन्द्रन्यासकी रचना की थी। यदि श्रुतकीर्तिने न्यास पदसे पूज्यपादकृत न्यासका निर्देश किया है तब 'टीकामाल' शब्दसे सूचित होनेवाली टीकाकी मालामें तो प्रभाचन्द्रकृत शब्दाभ्योजभास्करको पुरोया ही जा सकता है। इस तरह प्रभाचन्द्रके पूर्ववर्ती और उत्तरवर्ती उल्लेखोंके आधारसे हम प्रभाचन्द्रका समय सन् ९८० से १०६५ तक निश्चित कर सकते हैं। इन्हीं उल्लेखोंके प्रकाशमें जब हम प्रमेयकमलमार्तण्डके 'श्री भोजदेवराज्ये' आदि प्रशस्ति-लेख तथा न्यायकुमुदचन्द्रके 'श्री जयसिंहदेवराज्ये' आदि प्रशस्ति-लेखको देखते हैं तो वे अत्यन्त प्रामाणिक मालूम होते हैं। उन्हें किसी टीका टिप्पणकारका या किसी अन्य व्यक्तिकी करतूत कहकर नहीं टाला जा सकता।

उपर्युक्त विवेचनसे प्रभाचन्द्रके समयकी पूर्वावधि और उत्तरावधि करीब करीब भोजदेव और जयसिंह देवके समय तक ही आती है। अतः प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्यायकुमुदचन्द्रमें पाए जाने वाले प्रशस्ति लेखोंकी प्रामाणिकता और प्रभाचन्द्रकर्तृतामें सन्देहको कोई स्थान नहीं रहता। इसलिये प्रभाचन्द्रका समय ई० ९८० से १०६५ तक माननेमें कोई बाधा नहीं है*।

§ ३. प्रभाचन्द्र के ग्रन्थ-

आ० प्रभाचन्द्रके जितने ग्रन्थोंका अभी तक अन्वेषण किया गया है उनमें कुछ खतत्र ग्रन्थ हैं तथा कुछ व्याख्यात्मक। उनके प्रमेयकमलमार्तण्ड (परीक्षा-मुख्याख्या), न्यायकुमुदचन्द्र (लघीयलज्य व्याख्या), तत्त्वार्थवृत्तिपदविवरण (सर्वाथसिद्धि व्याख्या), और शाकटायनन्यास (शाकटायनव्याकरणव्याख्या) इन चार ग्रन्थोंका परिचय न्यायकुमुदचन्द्रके प्रथमभागकी प्रस्तावनामें दिया जा चुका

* प्रमेयकमलमार्तण्डके प्रथमसंस्करणके सम्पादक प० वशीधरजी शास्त्री सोलापुरने उक्त संस्करण के उपोद्घातमें श्रीभोजदेवराज्ये प्रशस्तिके अनुसर प्रभाचन्द्रका समय ईसाकी ग्यारहवीं शताब्दी सूचित किया है। और आपने इसके समर्थनके लिये 'नेमिचन्द्र सिद्धान्तकवर्तीकी गाथाओंका प्रमेयकमलमार्तण्डमें उद्धृत होना' यह प्रमाण उपस्थित किया है। पर आपका यह प्रमाण अमान्य नहीं है; प्रमेयकमलमार्तण्डमें 'विनाइगहमावण्णा' और 'लोमायासपपेसे' गाथाएँ उद्धृत हैं। पर ये गाथाएँ नेमिचन्द्रकृत नहीं हैं। पहिली गाथा धवलपीका (रचनाकाल ई० ८१६) में उद्धृत है और उमास्तातिहृत भावकप्रशस्तिमें भी पाई जाती है। दूसरी गाथा पूज्यपाद (ई० ६ वीं) कृत सर्वाथसिद्धिमें उद्धृत है। अतः इन प्राचीन गाथाओंको नेमिचन्द्रकृत नहीं माना जा सकता। अवश्य ही इन्हें नेमिचन्द्रने जीवकाण्ड और द्वयसंग्रहमें संयुहीत किया है। अतः इन गाथाओंका उद्धृत होना ही प्रभाचन्द्रके समयको ११ वीं सदी नहीं साध सकता।

है। यहाँ उनके शब्दान्मोजभास्कर (जैनेन्द्रव्याकरण महान्यास) ; प्रवचनसारस-
रोजभास्कर (प्रवचनसारटीका) और गद्यकथाकोश का परिचय दिया जाता है।
महापुराणटिप्पण आदि भी इन्हींके ग्रन्थ हैं। इस परिचयके पहिले हम 'शाकट्या-
यनन्यास' के कर्तृत्व पर विचार करते हैं-

- भाई पं० कैलाशचन्द्रजी शालीने शिलालेख तथा किंवदन्तियोंके आधारसे
शाकट्यायनन्यासको प्रभाचन्द्रकृत लिखा है* । शिमोगा जिलेके नगरतालुकके
शिलालेख नं० ४६ (एपि० फर्ना० पु० ८ भा० २ पृ० २६६-२७२) में
प्रभाचन्द्रकी प्रशंसापरक ये दो श्लोक हैं-

“भाषिव्यनन्दिजिनराजवाणीप्राणाधिनाथः परवादिमर्दा ।

चित्रं प्रभाचन्द्र इह क्षमायां मार्त्तण्डवृद्धौ नितरां व्यरीपित ॥

† सुखि...न्यायकुमुदचन्द्रोदयकृते नमः ।

शाकट्यायनकृतसूत्रन्यासकर्त्रे प्रतीन्दवे ॥”

जैनसिद्धान्तभवन धारमि वर्धमानमुनिकृत दशमस्त्यादिमहाशास्त्र है। उसमें
भी ये श्लोक हैं। उनमें 'सुखि...' की जगह 'सुखीने' तथा 'प्रतीन्दवे' के
स्थानमें 'प्रमेन्दवे' पाठ है। यह शिलालेख १६ वीं शताब्दीका है और वर्ध-
मानमुनिकृत समय भी १६ वीं शताब्दी ही है। शाकट्यायनन्यासके प्रथम दो
अध्यायोंकी प्रतिलिपि स्याद्वादविद्यालयके सरस्वतीभवनमें मौजूद है। उसको
सरसरी तौर से पलटने पर मुझे इसके प्रभाचन्द्रकृत होनेमें निम्नलिखित कारणों
से सन्देह उत्पन्न हुआ है-

*-न्यायकुमुदचन्द्र प्रथमभागकी प्रस्तावना पृ० १२५ ।

† इस शिलालेखके अनुवादमें 'रास सा० ने आ० पूज्यपादको ही न्यायकुमुद-
चन्द्रोदय और शाकट्यायनन्यासका कर्ता लिख दिया है। यह गलती आपसे इसलिये हुई
कि इस श्लोकके बाद ही पूज्यपादकी प्रशंसा करनेवाला एक श्लोक है, उसका अन्वय
आपने भूलसे "सुखि" इत्यादि श्लोकके साथ कर दिया है। वह श्लोक यह है-

“न्यासं जैनेन्द्रसंज्ञं सकलबुधनुतं पाणिनीयस्य सूत्रो

न्यासं शब्दावतारं मनुजवतिहितं वैद्यशास्त्रं च कृत्वा ।

यस्तत्त्वार्थस्य टीकां व्यरचयदिह तां भाल्यसौ पूज्यपाद-

स्वामी भूपालबन्धः स्वपरहितवचः पूर्णदृग्बोधवृत्तः ॥”

योही ही सावधानीसे विचार करने पर यह स्पष्ट मालूम होता जाता है कि 'सुखि'
इत्यादि श्लोकके चतुर्थान्त पदोंका 'न्यास' बाले लोकसे कोई भी सम्बन्ध नहीं है। न०
शीतलप्रसादजीने 'मद्रास और मैसूरप्रान्तके सारक' में तथा प्रो० हीरालालजीने 'जैन-
शिलालेख संग्रह' की भूमिका (पृ० १४१) में भी रास सा० का अनुसरण करने
इसी गलतीको दुहराया है।

१-इस ग्रन्थमें मंगलश्लोक नहीं है जब कि प्रभाचन्द्र अपने प्रत्येक ग्रन्थमें मंगलचरण नियमित रूपसे करते हैं* ।

२-सन्धिर्षोके अन्तमें तथा ग्रन्थमें कहीं भी प्रभाचन्द्रका नामोल्लेख नहीं है जब कि प्रभाचन्द्र अपने प्रत्येक ग्रन्थमें 'इति प्रभाचन्द्रविरचिते' आदि पुष्पिकाके या 'प्रमेन्दुर्जिनः' आदि रूप से अपना नामोल्लेख करनेमें नहीं चूकते ।

३-प्रभाचन्द्र अपनी टीकाओंके प्रमेयकमलभार्तण्ड, न्यायकुमुदचन्द्र, शब्दा-म्भोजभास्कर आदि नाम रखते हैं जब कि इस ग्रन्थके इन श्लोकोंमें इसका कोई खास नाम सूचित नहीं होता-

"शब्दानां शासनाख्यस्य शास्त्रस्यान्वर्थनामतः ।

प्रसिद्धस्य महाभोगवृत्तेरपि विशेषतः ॥

सूत्राणां च विवृतिर्लिख्यते च यथामति ।

ग्रन्थस्यास्य च न्यासेति (?) क्रियते नामनामतः ॥"

४-शाकटायन यापनीयसंघके आचार्य थे और प्रभाचन्द्र थे कट्टर दिगम्बर । इन्होंने शाकटायनके लीप्तुक्ति और केवलिभुक्तिप्रकरणोंका खंडन भी किया है । अतः शाकटायनके व्याकरणपर प्रभाचन्द्रके द्वारा न्यास लिखा जाना कुछ समझमें नहीं आता ।

५-इस न्यासमें शाकटायनके लिए प्रयुक्त 'संघाधिपति, महाभ्रमणसंघप' आदि विशेषणों का समर्थन है । यापनीय आचार्यके इन विशेषणोंके समर्थनकी आज्ञा प्रभाचन्द्र द्वारा नहीं की जा सकती । यथा-

"एवंभूतमिदं शास्त्रं चतुरध्यायरूपतः, संघाधिपतिः श्रीमानाचार्यः शाकटायनः ।

महत्तारभते तत्र महाभ्रमणसंघप, भ्रमेण शब्दतरुं च विशदं च विशेषतः ॥

महाभ्रमणसंघाधिपतिरित्यनेन मनःसमाधानमाख्यायते । विषयेषु विक्षिप्तचेतसो न मन समाधि...असमाहितचेतसश्च कि नाम शास्त्रकरणम्, आचार्य इति तु शब्दविधायया गुरुत्वं शाकटायन इति अन्वयवृद्धिप्रकर्षः, विशुद्धान्वयो हि विद्वैरुप-
लीयते । महाभ्रमणसंघाधिपतेः सन्मार्गांशुशासनं युक्तमेव..."

६-प्रभाचन्द्रने अपने प्रमेयकमलभार्तण्ड और न्यायकुमुदचन्द्रमें जैनेन्द्रव्याकरणात्ते ही सूत्रोंके उद्धरण दिए हैं जिसपर उनका शब्दाम्भोजभास्कर न्यास है ।

* मैसूर सूक्ति ० में न्यासग्रन्थकी दूसरे अध्यायके चौथे पादके १२४ सूत्र तक की कापी है (नं० A. 605) । उसमें निम्नलिखित मंगलश्लोक है-

"प्रणम्य जयिनः प्राप्तविश्वव्याकरणाश्रियः । शब्दांशुशासनस्यैवं वृत्तेर्विव-
रणोद्यमः ॥ अस्मिन् भाष्याणि भाष्यन्ते वृत्तयो वृत्तिमाश्रिताः । न्यासा न्यस्ताः
कृताः टीकाः पारं पारायणान्ययुः ॥ तत्र वृत्ता (स्या) दावयं मंगलश्लोकः
श्रीवीरमस्तुतमित्यादि ।"

परन्तु इन श्लोकोंकी रचनाशैली प्रभाचन्द्रके न्यायकुमुदचन्द्र आदि के मंगलश्लोकोंसे अत्यन्त विकल्प है ।

यदि शाकटायनपर भी उनका न्यास होता तो वे एकाध स्थानपर तो शाकटायनव्याकरणके सूत्र उद्धृत करते ।

७-प्रभाचन्द्र अपने पूर्वग्रन्थोंका उत्तरग्रन्थोंमें प्रायः उल्लेख करते हैं । यथा न्यायकुमुदचन्द्रमें तत्पूर्वकालीन प्रमेयकमलमार्तण्डका तथा शब्दाम्भोजभास्करमें न्यायकुमुदचन्द्र और प्रमेयकमलमार्तण्ड दोनोंका उल्लेख पाया जाता है । यदि शाकटायनन्यास उन्होंने प्रमेयकमलमार्तण्ड आदिके पहिले बनाया होता तो प्रमेयकमलमार्तण्ड आदिमें शाकटायनव्याकरणके सूत्रों के उद्धरण होते और इस न्यासका उल्लेख भी होता । यदि यह उत्तरकालीन रचना है तो इसमें प्रमेयकमल आदिका उल्लेख होना चाहिये था जैसा कि शब्दाम्भोजभास्करमें देखा जाता है ।

८-शब्दाम्भोजभास्करमें प्रभाचन्द्रकी भाषाकी जो प्रसन्नता तथा प्राबाहिकता है वह इस दुरुद्ध न्यासमें नहीं देखी जाती । इस शैलीवैचित्र्यसे भी इसके प्रभाचन्द्रकृत होनेमें सन्देह होता है । प्रभाचन्द्रने शब्दाम्भोजभास्कर नामका न्यास बनाया था और इसलिए उनकी न्यासकारके रूपसे भी प्रसिद्धि रही है । मालूम होता कि वर्धमानमुनिने प्रभाचन्द्रकी इसी प्रसिद्धिके आधार से इन्हें शाकटायनन्यासका कर्ता लिख दिया है । मुझे तो ऐसा लगता है कि यह न्यास स्वयं शाकटायनने ही बनाया होगा । अनेक वैयाकरणोंने अपने ही व्याकरण पर न्यास लिखे हैं ।

शब्दाम्भोजभास्कर-श्रवणवेल्लोलके शिलालेख नं० ४० (६४) में प्रभाचन्द्रके लिये 'शब्दाम्भोजदिवाकर' विशेषण भी दिया गया है । इस अर्थ-गर्भ विशेषणसे स्पष्ट ज्ञात होता है कि प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्यायकुमुदचन्द्र जैसे प्रथिततर्क ग्रन्थोंके कर्ता प्रथिततर्कग्रन्थकार प्रभाचन्द्रही शब्दाम्भोजभास्कर नामक जैनेन्द्रव्याकरण महान्यासके रचयिता हैं । ऐलक पत्रालाल दि० जैन सरस्वतीभवनकी अधूरी प्रतिके आधारसे इसका ठुक परिचय यहाँ दिया जाता है । यह प्रति संवत् १९८० में देहलीकी प्रतिसे लिखाई गई है । इसमें जैनेन्द्रव्याकरणके मात्र तीन अध्यायका ही न्यास है सो भी बीचमें जगह जगह शुद्धित है । ३९ से ६७ नं० पत्र इस प्रतिमें नहीं हैं । प्रारम्भके २८ पत्र किसी वृत्तरे लेखकने लिखे हैं । पत्रसंख्या २२८ है । एक पत्रमें १३ से १५ तक पंक्तियाँ और एक पंक्तिमें ३९ से ४३ तक अक्षर हैं । पत्र बड़ी साइजके हैं ।

मंगलाचरण-

“श्रीपूज्यपादमकलङ्कमनन्तबोधम्, शब्दार्थसंघायहरं विखिलेषु बोधम् ।

सच्छब्दलक्षणमज्ञेयमतः प्रसिद्धं वक्ष्ये परिस्फुटमलं प्रणिपत्य सिद्धम् ॥ १ ॥

सवित्तरं यद् गुह्यभिः प्रकाशितं महामतीनामभिधानलक्षणम् ।

मनोहरैः खल्पपदैः प्रकाश्यते महद्भिरुपदिष्टि याति सर्वापिमात्रे-(-१)

***तदुक्तं कृतशिक्ष (?) श्लाघ्यते तदि तस्य ।-

किमुक्तमखिलज्ञैर्भाषमाणे गणेत्रो विविक्तमखिलार्थं श्लाघ्यतेऽतो मुनीन्द्रैः ॥३॥

शब्दानामनुशासनानि निखिलान्याध्यायताहर्निशम्,
यो यः सारतरो विचारचतुरस्रलक्षणांशो गतः ।
तं स्त्रीकृत्य तिलोत्तमेव विदुषां चेतश्चमत्कारकः,
सुव्यक्तैरसमैः प्रसन्नवचनैर्यासः समारभ्यते ॥ ४ ॥

श्रीपूज्यपादस्वामि (श्री) विनेयानां शब्दसाधुलासाधुलविवेकप्रतिपत्त्यर्थं शब्द-
लक्षणप्रणयनं कुर्वाणो निर्विघ्नतः शास्त्रपरिसमाप्त्यादिकमभिलषाधिदैवतास्तुतिविविधं
नमस्कृष्टवाह-रक्ष्मीरात्यन्तिकी यस्य....”

यह न्यास अभयनन्दिकृत जैनैन्द्रमहावृत्तिके बाद बनाया गया है। इसमें
महावृत्तिके शब्द आनुपूर्वसे ले लिए गए हैं और कहीं उनका व्याख्यान भी
किया है। यथा—

“सिद्धिरनेकान्तात्—प्रकृत्यादिविभागेन व्यवहाररूपा श्रोत्रप्राप्यतया परमार्थतो-
पेता प्रकृत्यादिविभागेन च शब्दानां सिद्धिरनेकान्ताद् भवतीत्यर्थाधिकार आशा-
स्त्रपरिसमाप्तेर्वेदितव्यः । अस्तित्वनास्तित्वनित्यत्वसामान्यसामानाधिकरण्यविशेषणवि-
शेष्यादिकोऽनेकः अन्तः स्वभावो यस्मिन् भावे सोऽयमनेकान्तः अनेकाल्पा
इत्यर्थः”—महावृत्ति पृ० २ ।

“द्विविधा च शब्दाना सिद्धिः व्यवहाररूपा परमार्थरूपा चेति । तत्र प्रकृ-
तीत्य (?) विकारागमादिविभागेन रूपा तत्सिद्धिः तद्भेदस्यात्र प्राधान्यात् । श्रोत्र-
प्राप्तौ (ध्याः) परमार्थतो ये प्रकृत्यादिविभागाः प्रमाणनयादिभिरभिगमोपायैः
शब्दानां तत्त्वप्रतिपत्तिः परमार्थरूपा सिद्धिः तद्भेदस्यात्र प्राधान्यात्, सामयितेषां
सिद्धिरनेकान्ताद्भवतीत्येषोऽधिकारः आशास्त्रपरिसमाप्तेर्वेदितव्यः । अथ कोऽयमने-
कान्तो नामेत्याह—अस्तित्वनास्तित्वनित्यत्वानित्यत्वसामान्यसामानाधिकरण्यविशेषण-
विशेष्यादिकोऽनेकान्तः स्वभावो यस्यार्थस्यासावनेकान्तः अनेकान्तात्मक इत्यर्थः”—
शब्दाम्भोजभास्कर पृ० २ A ।

इस तुलनासे तथा तृतीयाध्यायके अन्तमें लिखे गए इस श्लोके अत्यन्त
स्पष्ट हो जाता है कि यह न्यास जैनैन्द्रमहावृत्तिके बाद बनाया गया है—

“नमः श्रीवर्धमानाय महते देवनन्दिने ।

प्रभाचन्द्राय गुरवे तस्मै चाभयनन्दिने ॥”

इस श्लोकमें अभयनन्दिको नमस्कार किया गया है । प्रत्येक पादकी समाप्तिमें
“इति प्रभाचन्द्रविरचिते शब्दाम्भोजभास्करे जैनैन्द्रव्याकरणमहान्यासे द्विती-
याध्यायस्य तृतीयः पादः” इसी प्रकारके पुष्पिकालेख हैं ।

तृतीय अध्यायके अन्तमें निम्नलिखित पुष्पिका तथा श्लोक है—

“इति प्रभाचन्द्रविरचिते शब्दाम्भोजभास्करे जैनैन्द्रव्याकरणमहान्यासे तृती-
याध्यायस्य चतुर्थः पादः समाप्तः ॥ श्रीवर्धमानाय नमः ॥

सन्मार्गप्रतिबोधको शुभजनैः संस्तूयमानो ब्रूवात् ।

अज्ञानान्धतमोपहः क्षितितले श्रीपूज्यपादो महान् ॥

सार्वः सन्ततसत्रिसन्धिनियतः पूर्वापरानुक्रमः ।

शब्दाम्भोजदिवाकरोऽस्तु सहसा नः श्रेयसे यं च वै ॥

नमः श्रीवर्धमानाय महते देवनन्दिने ।

प्रभाचन्द्राय गुरुवे तस्मै चामयनन्दिने ॥ छ ॥

श्री वासुपूज्याय नमः । श्री वृषतिविक्रमादित्यराज्येन संवत् १९८० मासोत्तममासे चैत्रशुक्लपक्षे एकादश्यां ११ श्री महावीर संवत् २४४९ । हस्ताक्षर छाजूराम जैन विजेश्वरी लेखक पालम (सूबा देहली)”

जैनेन्द्रव्याकरणके दो सूत्र पाठ प्रचलित हैं—एक तो वह जिस पर अभयनन्दिने महावृत्ति, तथा ध्रुतकीर्तिने पञ्चवस्तु नामकी प्रक्रिया बनाई है; और दूसरा वह जिस पर सोमदेवसुरिकृत शब्दार्णवचन्द्रिका है । पं० नाथूरामजी प्रेमीने^१ अनेक पुष्ट प्रमाणोंसे अभयनन्दिसम्मत सूत्रपाठको ही प्राचीन तथा पूज्यपादकृत मूलसूत्रपाठ सिद्ध किया है । प्रभाचन्द्रने इसी अभयनन्दिसम्मत प्राचीन सूत्रपाठ पर ही अपना यह शब्दाम्भोजभास्कर नामका महान्यास बनाया है ।

आ० प्रभाचन्द्रने इस ग्रन्थको प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्यायकुमुदचन्द्रकी रचनाके बाद बनाया है जैसा कि उनके निम्नलिखित वाक्यसे सूचित होता है—

“तदात्मकत्वं चार्थस्य अध्यक्षतोऽनुमानादेश्च यथा सिद्ध्यति तथा प्रपञ्चतः प्रमेयकमलमार्तण्डे न्यायकुमुदचन्द्रे च प्ररूपितमिह द्रष्टव्यम् ।”

प्रभाचन्द्र अपने न्यायकुमुदचन्द्र (पृ० ३२९) में प्रमेयकमलमार्तण्ड ग्रन्थ देखनेका अनुरोध इसी तरहके शब्दोंमें करते हैं—“एतच्च प्रमेयकमलमार्तण्डे सप्रपञ्चं प्रपञ्चितमिह द्रष्टव्यम् ।”

व्याकरण जैसे शुष्क शब्दविषयक इस ग्रन्थमें प्रभाचन्द्रकी प्रसन्न लेखनीसे प्रसूत दर्शनशास्त्रकी क्वचित् अर्थप्रधान चर्चा इस ग्रन्थके गौरवको असाधारणतया बढ़ा रही है । इसमें विधिविचार, कारकविचार, लिंगविचार जैसे अनूठे प्रकरण हैं जो इस ग्रन्थको किसी भी दर्शनग्रन्थकी कोटिमें रख सकते हैं । इसमें समन्तभद्रके युक्त्यनुशासन तथा अन्य अनेक आचार्योंके पद्योंको प्रमाण रूपसे

१ देखो—‘जैनेन्द्रव्याकरण और आचार्य देवनन्दी’ लेख, जैनसाहित्य संशोधक भाग १ अंक २ ।

२ पंक्ति नाथूलाल शास्त्री इन्दौर सूचित करते हैं कि तुकोमल इन्दौरके ग्रन्थ-अण्डारमें भी शब्दाम्भोजभास्करके वीन ही अध्याय हैं । उसका मंगलाचरण तथा अन्तिम प्रशस्ति-लेख बर्नार्डकी प्रतिके ही समान है । पं० अजबलीजी शास्त्रीके पत्रसे ज्ञात-हुआ है कि कारकलके मठमें भी इसकी प्रति है । इस प्रति में भी वीन अध्यायका न्यास है । प्रेमीजी सूचित करते हैं कि बर्नार्डके मवनमें- इसकी एक प्राचीन प्रति है उसमें चतुर्थ अध्यायके तीसरे पादके २११ में सूत्र तकका न्यास है, आगे नहीं । हाँ सक्ता है कि यह प्रभाचन्द्रकी अन्तिमकृति ही हो और इसलिये पूर्ण न हो सकी हो ।

उद्धृत किया है। पृ० ९१ में 'विश्वरूपाऽस्य पुत्रो जनिता' प्रयोगका हृदयमाहो व्याख्यान किया है। इस तरह क्या भाषा, क्या विषय और क्या प्रसन्नशैली, हर एक दृष्टिसे प्रभाचन्द्रका निर्मल और श्रौढ़ पाण्डित्य इस ग्रन्थमें उदात्तभावसे निहित है।

प्रवचनसारसरोजभास्कर—यदि प्रभाचन्द्रने प्रमेयकमलको विकसित करनेके लिए मार्तण्ड बनानेके पहिले प्रवचनसारसरोजके विकासार्थ भास्करका उदय किया हो तो कोई अनहोनी बात न होकर अधिक संभव और निश्चित बात मान्य होती है। (प्रमेय) कमलमार्तण्ड, (न्याय) कुमुदचन्द्र, (शब्द) अम्भोजभास्कर जैसे सुन्दर नामोंकी कल्पित प्रभाचन्द्रीय छुविने ही (प्रवचन-सार) सरोजभास्करका उदय किया है। इस ग्रन्थकी संवत् १५५५ की लिखी हुई जीर्ण प्रति हमारे सामने है। यह प्रति ऐलक पञ्जालाल सरस्वती भवन बम्बईकी है। इसका परिचय संक्षेपमें इस प्रकार है—

पत्रसंख्या ५३, श्लोकसंख्या १७४६, साइज १३×६। एक पत्रमें १२ पंक्तियां तथा एक पंक्तिमें ४२-४३ अक्षर हैं। लिखावट अच्छी और शुद्धप्राय है। प्रारम्भ—

“ओं नमः सर्वज्ञाय विध्याशयः ।

वीरं प्रवचनसारं निखिलार्थं निर्मलजनानन्दम् ।

वक्ष्ये सुखावबोधं निर्वाणपदं प्रणम्यासम् ॥

श्रीकुन्दकुन्दाचार्यः सकललोकोपकारकं मोक्षमार्गमन्वयनसचिविनेयाशयवशेनो-
पदर्शयितुकामो निर्विघ्नतः शास्त्रपरिसमाप्त्यादिकं फलमभिलषन्निष्ठदेवताविशेषं
शास्त्रस्यादौ नमस्कृत्यैवाह ॥ ७ ॥ एष सुरासुर...”

अन्त—“इति श्रीप्रभाचन्द्रदेवविरचिते प्रवचनसारसरोजभास्करे शुभोपयोगा-
धिकारः समाप्तः ॥ ७ ॥ संवत् १५५५ वर्षे माघमासे शुक्लपक्षे पूर्ण्य(र्णि)मायां तिथौ
शुक्लासरे गिरिपुरे .व्या० पुरुषोत्तम लि० ग्रन्थसंख्या पद्मस्यारिचन्द्राधिकानि
सप्तदशशतानि ॥ १७४६ ॥”

मध्यकी सन्धियोंका पुष्पिकालेख—“इति श्री प्रभाचन्द्रदेवविरचिते प्रवचन-
सारसरोजभास्करे...” है।

इस टीका में जगह जगह उद्धृत दार्शनिक अवतरण, दार्शनिक व्याख्यापद्धति एवं सरल प्रसन्नशैली इसे न्यायकुमुदचन्द्रादिके रचयिता प्रभाचन्द्रकी कृति सिद्ध करनेके लिए पर्याप्त हैं। अवतरण—(गा० २।१०) “नाशोत्पादौ समं यद्वशा-
मोक्षौमौ तुलान्तयोः” (गा० २।२८) “स्वोपात्तकर्मवशाद् भवाद् भवान्तर-
वाप्तिः संसारः” इनमें दूसरा अवतरण राजवार्तिक का तथा प्रथम किसी बौद्ध

ग्रन्थका है। ये दोनों अनंतरण प्रमेयकमल० और न्यायकुमुद० में भी पाए जाते हैं। इस व्याख्याकी दार्शनिक शैलीके नमूने—

(गा० २।१३) “यदि हि द्रव्यं स्वयं सदात्मकं न स्यात् तदा स्वयमसदात्मकं सत्तातः पृथग्वा ? तत्रायः पक्षो न भवति; यदि सत् सद्रूपं द्रव्यं तदा असद्रूपं द्रुवं निश्चयेन न तं तत् भवति । कथं केन प्रकारेण द्रव्यं खरविषाणवत् । हवदिपुणो अणं वा । अय सत्तातः पुनरन्वद्वा पृथग्भूतं द्रव्यं भवति तदा अतः पृथग्भूतस्यापि सत्त्वे सत्ताकल्पना व्यर्था । सत्तासम्बन्धात्सत्त्वे चान्योन्याभयः—सिद्धिं हि तत्सत्त्वे सत्तासम्बन्धसिद्धिः तस्याम्ब सम्बन्धसिद्धौ सत्तां तत्सत्त्वसिद्धिरिति । तत्सत्त्वसिद्धिमन्तरेणापि सत्तासम्बन्धे स्वपुल्यादेरपि तत्प्रसङ्गः । तस्मात् द्रव्यं स्वयं सत्ता स्वयमेव सदभ्युपगन्तव्यम् ।” (गा० २।१६) “...तथाहि—द्रवति द्रोष्यत्सद्रुद्रवत्तांस्तान् गुणपर्यायान् गुणपर्यायैर्वा द्रोष्यते द्रुतं वा द्रव्यमिति । गम्यते उपलभ्यते द्रव्यमनेनेति गुणः । द्रव्यं वा द्रव्यान्तरात् येन विशिष्यते स गुणः । इत्येतस्मादर्थ-विज्ञेयात् यद् द्रव्यस्य गुणरूपे गुणरूपेण गुणस्य वा द्रव्यरूपेणामवर्ण एव हि अतद्भावः ।” इन गाथाओंकी असृतचन्द्रीय और जयसेनीय टीकाओंसे इस टीकाकी तुलना करने पर इसकी दार्शनिकप्रसूतता अपने आप झलक मारती है। इस टीकाका जयसेनीयटीका पर प्रभाव है और जयसेनीयटीकासे यह निश्चय ही पूर्वकालीन है।

असृतचन्द्राचार्यने प्रवचनसारकी जिन ३६ गाथाओंकी व्याख्या नहीं की है प्रायः वे गाथाएँ प्रवचनसारसरोजभास्करमें यथास्थान व्याख्यात हैं। जयसेनीय-टीकामें प्रभाचन्द्रका अनुसरण करते हुए इन गाथाओंकी व्याख्या की गई है। हाँ, जयसेनीयटीकामें दो तीन गाथाएँ अतिरिक्त भी हैं। इस टीकाका लक्ष्य है गाथाओंका संक्षेपसे खूलासा करना। परन्तु प्रभाचन्द्र प्रारम्भसे ही दर्शनशास्त्रके विशिष्ट अभ्यासी रहे हैं इसलिए जहाँ खास अवसर आया वहाँ उन्होंने संक्षेपसे दार्शनिक मुद्दोंका भी निर्देश किया है।

प्रो० ए० एन० उपाध्येने प्रवचनसारकी भूमिकामें भावत्रिभंगीकर श्रुतजुनिके ‘सारत्रयनिपुण प्रभाचन्द्र’ के उल्लेखसे प्रवचनसारसरोजभास्करके कर्ताका समय १४ वीं सदीका प्रारम्भिक भाग सूचित किया है। परन्तु यह संभावना किसी दृढ़ आधार से नहीं की गई है।

जयसेनीय टीकापर इसका प्रभाव होनेसे ये उनसे प्राकालीन तो हैं ही। आ० जयसेन अपनी टीका में (पृ० २९) केवलिकवलहारके खंडनका उपसंहार करते हुए लिखते हैं कि—“अन्येपि पिण्डशुद्धिकथिता बहवो दोषाः ते चान्यत्र तर्कशास्त्रे ज्ञातव्या अत्र चाप्यात्मग्रन्थलाभोच्यन्ते ।” सम्भव है यहाँ तर्कशास्त्रसे प्रभाचन्द्रके प्रमेयकमलमार्तण्ड भादिकी विवक्षा हो। अस्तु, उसे तो यह संक्षिप्त पर विशद टीका प्रभाचन्द्राचार्यकी प्रारम्भिककृति मान्य होती है।

गद्यकथाकोश—यह ग्रन्थ भी इन्हीं प्रभाचन्द्रक मालूम होता है । इसकी प्रतियें ८९ वीं कथाके बाद “श्रीजयसिंहदेवराज्ये” प्रस्तावित है । इसके अगल्लि श्लोकका प्रभाचन्द्रकृत न्यायकुमुदचन्द्र आदिके अगल्लि श्लोकसे पूरा पूरा सादृश्य है । इसका मंगलश्लोक यह है—

“प्रणम्य मोक्षप्रदमस्तदोषं प्रकृष्टपुण्यप्रभवं जिनेन्द्रम् ।
वक्ष्येऽत्र भव्यप्रतिबोधनार्थमारधनासत्सुकथाप्रबन्धः ॥”

८९ वीं कथाके अनन्तर “जयसिंहदेवराज्ये” अगल्लि लिखकर ग्रन्थ समाप्त कर दिया गया है । इसके अनन्तर भी कुछ कथाएँ लिखीं हैं । और अन्तमें “सुकोमलैः सर्वसुखावबोधैः” श्लोक तथा “इति भट्टारकप्रभाचन्द्रकृतः कथाकोशः समाप्तः” यह पुष्पिकाश्लेष है । इस तरह इसमें दो स्थलों पर ग्रन्थसमाप्तिकी सूचना है जो खासतौरसे विचारणीय है । हो सकता है कि प्रभाचन्द्रने प्रारम्भकी ८९ कथाएँ ही बनाई हों और बादकी कथाएँ किसी दूसरे भट्टारकप्रभाचन्द्रने । अथवा लेखकने भूलसे ८९ वीं कथाके बाद ही ग्रन्थसमाप्तिसूचक पुष्पिकाश्लेष लिख दिया हो । इसको खासतौरसे जाँचे बिना अभी विशेष कुछ कहना शक्य नहीं है ।

मेरे विचारसे प्रभाचन्द्रने तत्त्वार्थश्रुतिपदविवरण और प्रवचनसारसरोजभास्कर भोजदेवके राज्यसे पहिले अपनी प्रारम्भिक अवस्थानें बनाए होंगे यही कारण है कि उनमें ‘भोजदेवराज्ये’ या ‘जयसिंहदेवराज्ये’ कोई अगल्लि नहीं पाई जाती और न उन ग्रन्थोंमें प्रमेयकमलमार्तण्ड आदिका उल्लेख ही पाया जाता है । इस तरह हम प्रभाचन्द्रकी ग्रन्थरचनाका क्रम इस प्रकार समझते हैं—तत्त्वार्थश्रुतिपदविवरण, प्रवचनसारसरोजभास्कर, प्रमेयकमलमार्तण्ड, न्यायकुमुदचन्द्र, शब्दा-

१ न्यायकुमुदचन्द्र प्रथमभागकी प्रस्तावना पृ० १२२—

“शैराप्य चतुर्विधामनुपभाभारणनां निरीकाम् ।
प्राप्तं सर्वसुखास्पदं निरुपम स्वर्गापवर्गप्रदा (१) ।
तेषा धर्मकथाप्रपञ्चरचनासाधारणता संसिता ।
सेवाय कर्मविशुद्धिहेतुरमला चन्द्रार्कतारावपि ॥ १ ॥
सुकोमलैः सर्वसुखावबोधैः पदैः प्रभाचन्द्रकृतः प्रबन्धः ।
कल्याणकालेऽत्र विनैश्वर्यां सुरेन्द्रवन्तीव विराजतेऽतौ ॥ २ ॥

श्रीजयसिंहदेवराज्ये श्रीमदारानिवासिना परदारपञ्चपरमैष्टिप्रणामोपाजितामकुपुण्य-
निराकृतनिखिलमलकलङ्केन श्रीमत्प्रभाचन्द्रपण्डितेन आराधनासत्सुकथाप्रबन्धः कृतः ।”

२ योगसूत्रपर भोजदेवकी राजमार्तण्ड नामक टीका पाई जाती है । संभव है प्रमेय-
कमलमार्तण्ड और राजमार्तण्ड नाम परस्पर प्रभावित हों ।

म्नोजभास्कर, महापुराणटिप्पण और गद्यकथाकोश । श्रीमान् प्रेमीजीने रत्नकरण्ड-

१ पं० जुगलकिशोर जी सुस्तारने रत्नकरण्डश्रावकाचार की प्रस्तावनामें रत्नकरण्ड-
श्रावकाचारकी टीका और समाधितत्रदीकाको एकही प्रभाचन्द्र द्वारा रचित सिद्ध किया
है; जो ठीक है । पर आपने इन प्रभाचन्द्रको प्रमेयकमलमार्त्तण्ड आदिके रचयिता
तर्कग्रन्थकार प्रभाचन्द्रसे भिन्न सिद्ध करनेका जो प्रयत्न किया है वह वस्तुतः बृहत् प्रमाणों
पर अवलम्बित नहीं है । आपके मुख्यप्रमाण हैं कि—“प्रभाचन्द्रका आदिपुराणकारने
सरण किया है इस लिये ये ईसाकी नवमशताब्दीके विद्वान् हैं, और इस टीकामें
यशस्विलकचम्पू (ई० ९५९) वसुनन्दिश्रावकाचार (अनुमानतः वि० की १३ वीं
शताब्दीका पूर्व भाग) तथा पद्मनन्दि उपासकाचार (अनुमानतः वि० सं० ११८०)
के श्लोक उद्धृत पाए जाते हैं, इसलिये यह टीका प्रमेयकमलमार्त्तण्ड आदिके रचयिता
प्रभाचन्द्रकी नहीं हो सकती ।” इनके विषयमें मेरा यह वक्तव्य है कि—जब प्रभा-
चन्द्र का समय अन्य अनेक पुष्ट प्रमाणोंसे ईसाकी ग्यारहवीं शताब्दी सिद्ध होता है तब
यदि ये टीकाएँ भी उन्हीं प्रभाचन्द्रकी ही हों तो भी इनमें यशस्विलकचम्पू और
नीतिवाक्यामृतके वाक्योंका उद्धृत होना अस्वाभाविक एवं अनैतिहासिक नहीं है ।
वसुनन्दि और पद्मनन्दिका समय भी विक्रमकी १२ वीं और तेरहवीं सदी अनुमान-
मात्र है, कोई बृहत् प्रमाण इसके साथक नहीं दिए गए हैं । पद्मनन्दि शुभचन्द्रके शिष्य
ये यह बात पद्मनन्दिके ग्रन्थसे तो नहीं मालूम होती । वसुनन्दिकी ‘पडिगहसुचद्वय’
गाथा स्वयं उन्हीं की बनाई है या अन्य किसी आचार्यकी यह भी अभी निश्चित नहीं
है । पद्मनन्दिश्रावकाचारके ‘अधुनाशरणे’ आदि श्लोक भी रत्नकरण्डटीकामें पद्मनन्दिका
नाम लेकर उद्धृत नहीं हैं और न इन श्लोकोंके पहिले ‘उक्त च, तथा चोक्तम्’ आदि
कोई पद ही दिया गया है जिससे इन्हें उद्धृत ही माना जाय । तालपर्यं यह कि सुस्तार
सा० ने इन टीकाओंके प्रसिद्ध प्रभाचन्द्ररूप न होने में जो प्रमाण दिए हैं वे बृहत् नहीं
हैं । रत्नकरण्डटीका तथा समाधितत्रदीकामें प्रमेयकमलमार्त्तण्ड और न्यायकुसुदचन्द्रका
एक साथ विशिष्टशैलीसे उल्लेख होना इसकी सूचना करता है कि ये टीकाएँ भी प्रसिद्ध
प्रभाचन्द्रकी ही होनी चाहिए । वे उल्लेख इस प्रकार हैं—

“तद्वदलमतिप्रसङ्गेन प्रमेयकमलमार्त्तण्डे न्यायकुसुदचन्द्रे प्रपञ्चतः प्ररूप-
णात्”—रत्नक० टी० पृ० ६ । “यैः पुनर्योगसांध्यैर्मुक्ती तत्पञ्चुतिरारमनोऽ-
म्युपगता ते प्रमेयकमलमार्त्तण्डे न्यायकुसुदचन्द्रे च भोक्षविचारे विस्तरतः
प्रत्याख्याताः ।”—समाधितत्रदी० पृ० १५ ।

इन दोनों अवतरणोंकी प्रभाचन्द्रकृत शब्दान्मोजभास्करके निम्नलिखित अवतरणसे
सुलना करने पर स्पष्ट मालूम हो जाता है कि शब्दान्मोजभास्करके कर्तारने ही उक्त
टीकाओंको बनाया है—

“तदात्मकत्वं चार्थस्य अभ्यक्षतोऽनुमानादेश्च यथा सिद्ध्यति तथा प्रमेयकमल-
मार्त्तण्डे न्यायकुसुदचन्द्रे च प्ररूपितमिह द्रष्टव्यम् ।”—शब्दान्मोजभास्कर ।

प्रभाचन्द्रकृत गद्यकथाकोशमें पाई जानेवाली अज्ञानचौर आदिकी कथाओंसे रत्न-
करण्डटीकागत कथाओंका अक्षरशः सादृश्य है । इति ।

टीका, समाधितन्त्रटीका क्रियाकलापटीका*, आत्मानुशासनतिलका आदि ग्रन्थोंकी

* क्रियाकलापटीकाकी एक लिखित प्रति बम्बईके सरस्वती भवनमें है। उसके मंगल और प्रशस्ति श्लोक निम्नलिखित हैं—

मंगल—“जिनेन्द्रमुन्मूलितकर्मबन्धं प्रणम्य सन्मार्गकृतस्वरूपम् ।

अनन्तबोधादिभवं शुण्ठीघं क्रियाकलापं प्रकटं प्रवक्ष्ये ॥”

प्रशस्ति—“बन्दे मोहतमोविनाशनपटुश्लैलोक्यदीपप्रभुः

संच्छद्वर्तिसमन्वितस्य निखिलजेहस्य संशोषकः ।

सिद्धान्तादिसमस्तशास्त्रकिरणः श्रीपद्मनन्दिप्रभुः

तच्छिल्प्याप्रकटार्थतां स्तुतिपदं प्राप्तं प्रभाचन्द्रतः ॥ १ ॥

यो रात्रौ द्विघसे पृथि प्रयतां (?) दोषा यतीनां कुतो प्योपाताः (?)

प्रलये तु...रमलक्षेपां महाद्विषितः ।

श्रीमद्गौतमनाभिभिर्गणधरैर्लोकत्रयोद्घोतकैः, सव्यहृ (?)

सकलोऽप्यसौ यतिपतेर्जातः प्रभाचन्द्रतः ॥ २ ॥

यः (यत्) सर्वात्महितं न वर्णसहितं न स्पन्दिताष्टद्वयम्,

नो वान्छाकलितञ्ज दोषमलिनं न श्वासतुद्ग (रुद्) क्रमम् ।

शान्तामर्थविषयैः (मर्षविषैः) समं परशु (पशु) गणैराकर्णितं कर्णतः,

तद्वत् सर्वविदुः प्रणष्टविपदः पायादपूर्वं वचः ॥ ३ ॥”

इन प्रशस्तिश्लोकोंसे ज्ञात होता है कि जिन प्रभाचन्द्रने क्रियाकलापटीका रची है वे पद्मनन्दिस्वैदान्तिकके शिष्य थे। न्यायकुमुदचन्द्र आदिके कर्ता प्रभाचन्द्र भी पद्मनन्दि स्वैदान्तिकके ही शिष्य थे, अतः क्रियाकलापटीका और प्रमेयकमलमार्तण्ड आदिके कर्ता एक ही प्रभाचन्द्र है इसमें कोई सन्देह नहीं रह जाता। प्रशस्तिश्लोकोंकी रचनाशैली भी प्रमेयकमल० आदिकी प्रशस्तियोंसे मिलती जुलती है।

† आत्मानुशासनतिलकाकी प्रति श्री प्रेमीजीने मेजी है। उसका भगल और प्रशस्ति इस प्रकार है—

मंगल—“वीरं प्रणम्य भवचारिनिधिप्रपोतमुद्घोतिताखिलपदार्थमनल्पपुण्यम् ।

निर्वाणमार्गमनवद्यगुणप्रबन्धमात्मानुशासनमहं प्रवरं प्रवक्ष्ये ॥”

प्रशस्ति—“मोक्षोपःयमनल्पपुण्यममलज्ञानोदर्यं निर्मलम् ।

अव्यर्थं परमं प्रमेन्दुकृतिना व्यक्तैः प्रसन्नैः पदैः ।

व्याख्यां धरमात्मशासनमिदं व्यामोहविच्छेदतः ।

सूक्तार्थेषु कृतादरैरहरहश्चेतस्यलं चिन्त्यताम् ॥ १ ॥

इतिश्री आत्मानुशासन(नं) सतिलक(कं) प्रभाचन्द्राचार्य-

विरचित(तं) सम्पूर्णम् ।”

सी अभावान्द्रुत होनेकी संभावना की है, वह खास तौरसे विचारणीय है ।
 यथावसर इन ग्रन्थोंके विषयमें विशेष प्रकाश डाला जायगा । अन्तमें मैं उन
 सब ग्रन्थकार विद्वानोंके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ जिनके
 ग्रन्थोंसे इस प्रस्तावनामें सहायता मिली है ।

फाल्गुनशुक्ल द्वादशी
 आष्टादिकपर्व
 वीर नि० सं० २४६७ }

न्यायाचार्य महेन्द्रकुमार शास्त्री.
 स्याद्वानु विद्यालय काशी.



परीक्षामुखसूत्राणां तुलना ।

- न्यायप्र०—न्यायप्रवेशः [बह्वैवा सीरिज्]
 न्यायवि०—न्यायविन्दुः [चौखम्बा सीरिज्]
 न्यायविनि०—न्यायविनिश्चयः [अकलङ्कप्रमथप्रयान्तरगतः सिंधी सीरिज् कलकत्ता]
 न्यायसा०—न्यायसारः [एशियाटिक सो० कलकत्ता]
 न्याया०—न्यायावतारः [खे० कार्नेस बम्बई]
 प्रमाणनय०—प्रमाणनयतत्वालोकालङ्कारः [यद्यो० काशी]
 प्रमाणप०—प्रमाणपरीक्षा [जैनसिद्धान्तप्र० कलकत्ता]
 प्रमाणमी०—प्रमाणमीमांसा [सिंधी जैन सीरिज् कलकत्ता]
 प्रमाणसं०—प्रमाणसंप्रहः [सिंधी जैन सीरिज्]
 लघी० खट्ट०—लघीयस्रयं खट्टतियुतम् [सिंधी जैन सीरिज् कलकत्ता]

परीक्षामु०

- १११.—प्रमाणनय० ११२. प्रमाणमी० १११२.
 ११२.—लघी० पृ० २१ पं० ६. प्रमाणनय० ११३.
 ११३.—प्रमाणनय० ११६.
 ११६, ७, ८.—प्रमाणनय० ११९६.
 ११११.—प्रमाणनय० १११७.
 १११३.—प्रमाणनय० ११२०. प्रमाणमी० ११११८.
 २११, २.—लघी० का० ३. प्रमाणनय० २११. प्रमाणमी० ११११९, १०.
 २१३.—न्याया० का० ४. लघी० का० ३. प्रमाणनय० २१३. प्रमाणमी० १११११३.
 २१४.—लघी० का० ४. प्रमाणनय० २१३. प्रमाणमी० १११११४.
 २१५.—लघी० ख० का० ६१. प्रमाणमी० ११११२०.
 २१६.—लघी० खट्ट० का० ५५. प्रमाणमी० ११११२५.
 २१७.—लघी० का० ५५.
 २१११.—न्याया० का० २७. लघी० खट्ट० का० ४. प्रमाणनय० २१२४.
 प्रमाणमी० १११११५.
 ३११.—न्याया० का० ३१. लघी० का० ३. प्रमाणनय० ३११. प्रमाणमी० ११२११.
 ३१२.—लघी० का० १०. प्रमाणनय० ३११. प्रमाणमी० ११२१२.
 ३१३, ४.—प्रमाणप० पृ० ६९. प्रमाणनय० ३११, २. प्रमाणमी० ११२१३.
 ३१५-१०.—प्रमाणप० पृ० ६९. प्रमाणनय० ३१४. प्रमाणमी० ११२१४.
 ३१११, १२, १३.—प्रमाणसं० का० १२. प्रमाणप० पृ० ७०. प्रमाणनय० ३१५, ६.
 प्रमाणमी० ११२१५.

- ३११४.—न्याया० का० ५, लघी० का० १२, न्यायविनि० का० १७०.
प्रमाणप० पृ० ७०, प्रमाणमी० ११२१७.
- ३११५.—न्यायविनि० का० २६९, प्रमाणसं० का० २१, प्रमाणप० पृ० ७०,
प्रमाणनय० ३१९.
- ३११६.—प्रमाणमी० ११२१०.
- ३११९.—न्यायविनि० का० ३२९, प्रमाणमी० ११२१११.
- ३१२०.—न्यायप्र० पृ० १ पं० ७, न्यायवि० पृ० ७९ पं० ३, १२, न्यायविनि०
का० १७२, प्रमाणसं० का० २०, प्रमाणनय० ३११२, प्रमाणमी० ११२११३.
- ३१२१.—प्रमाणनय० ३११३.
- ३१२२.—प्रमाणनय० ३११४, १५.
- ३१२५.—प्रमाणमी० ११२११५.
- ३१२७.—न्यायप्र० पृ० १ पं० ६, प्रमाणनय० ३११८, प्रमाणमी० ११२११६.
- ३१२८—३०.—प्रमाणनय० ३११९, २०, प्रमाणमी० ११२११७.
- ३१३२.—प्रमाणनय० ३११६.
- ३१३४, ३५.—प्रमाणनय० ३१२२, प्रमाणमी० २१११८.
- ३१३६.—प्रमाणनय० ३१२३.
- ३१३७.—न्यायवि० पृ० ११७ पं० ११, प्रमाणनय० ३१२६, प्रमाणमी० ११२११८.
- ३१३८.—प्रमाणनय० ३१३१.
- ३१३९.—प्रमाणनय० ३१३२.
- ३१४०.—प्रमाणनय० ३१३३.
- ३१४१.—प्रमाणनय० ३१३४.
- ३१४४.—प्रमाणनय० ३१३७.
- ३१४५.—प्रमाणनय० ३१३८.
- ३१४६.—प्रमाणनय० ३१३९, प्रमाणमी० २११११०.
- ३१४७.—न्यायप्र० पृ० १ पं० १५, प्रमाणनय० ३१४१, प्रमाणमी० ११२१११.
- ३१४८.—न्यायप्र० पृ० १ पं० १६, न्याया० का० १८, प्रमाणनय० ३१४२, ४३,
प्रमाणमी० ११२१२२.
- ३१४९.—न्यायप्र० पृ० २ पं० २, न्याया० का० १९, प्रमाणनय० ३१४४, ४५,
प्रमाणमी० ११२१२३.
- ४१५०.—प्रमाणनय० ३१४६, ४७, प्रमाणमी० २११११४.
- ३१५१.—प्रमाणनय० ३१४८, ४९, प्रमाणमी० २११११५.
- ३१५२, ५३.—न्यायवि० २११, २, न्याया० का० १०, न्यायसा० पृ० ५ पं० १०,
प्रमाणनय० ३१७, प्रमाणमी० ११२१८.
- ३१५४.—न्यायवि० २१३, प्रमाणनय० ३१८, प्रमाणमी० ११२१९.
- ३१५५, ५६.—न्यायवि० ३११, २, न्याया० का० १०, १३, प्रमाणनय० ३१२१,
प्रमाणमी० २११११, २.

- ३१५७.—प्रमाणनय० ३१५१.
 ३१५८.—प्रमाणनय० ३१५२.
 ३१५९.—प्रमाणनय० ३१६४, ६५.
 ३१६०.—प्रमाणनय० ३१६६.
 ३१६१.—प्रमाणनय० ३१६७.
 ३१६२.—प्रमाणनय० ३१६८.
 ३१६३.—प्रमाणनय० ३१६९, ७०.
 ३१६४.—प्रमाणनय० ३१७२.
 ३१६५.—प्रमाणनय० ३१७३.
 ३१६७.—प्रमाणप० पृ० ७२.
 ३१६८.—छयी० का० १४. प्रमाणप० पृ० ७३. प्रमाणनय० ३१७६.
 ३१६९.—प्रमाणप० पृ० ७३. प्रमाणनय० ३१७७.
 ३१७०.—प्रमाणनय० ३१७८.
 ३१७१.—प्रमाणनय० ३१८२.
 ३१७२, ७३.—न्यायवि० पृ० ४९, ५०. प्रमाणप० पृ० ७३.
 ३१७५.—प्रमाणप० पृ० ७३. प्रमाणनय० ३१८६.
 ३१७६.—प्रमाणप० पृ० ७३. प्रमाणनय० ३१८७.
 ३१७८.—प्रमाणनय० ३१९०, ९१.
 ३१७९.—प्रमाणनय० ३१९२.
 ३१८०.—न्यायवि० पृ० ४९. प्रमाणप० पृ० ७४. प्रमाणनय० ३१९३.
 ३१८१.—न्यायवि० पृ० ४८. प्रमाणनय० ३१९४.
 ३१८३.—न्यायवि० पृ० ५३. प्रमाणप० पृ० ७४. प्रमाणनय० ३१९६.
 ३१८४.—प्रमाणप० पृ० ७४. प्रमाणनय० ३१९७.
 ३१८७.—प्रमाणनय० ३१९०१.
 ३१८८.—प्रमाणनय० ३१९०२.
 ३१८९.—प्रमाणनय० ३१९०३.
 ३१९४, ९५.—न्यायवि० पृ० ६२-६३. न्याया० का० १७. प्रमाणनय० ३१२७-
 ३०. प्रमाणसी० २११३-६.
 ३१९८.—न्याया० का० १४. प्रमाणसी० २११७.
 ३१९९.—प्रमाणनय० ४११.
 ३१९००.—प्रमाणनय० ४१११.
 ३१९०१.—प्रमाणनय० ४१३.
 ४११.—न्याया० खो० २९. छयी० का० ७. प्रमाणप० पृ० ७९. प्रमाणनय०
 ५११. प्रमाणसी० १११३०.
 ४१२.—प्रमाणनय० ५१२. प्रमाणसी० १११३३.

- ४१३.—प्रमाणनय० ५१३.
 ४१४.—प्रमाणनय० ५१४.
 ४१५.—प्रमाणनय० ५१५.
 ४१८.—प्रमाणनय० ५१८.
 ४१९.—लघी० खट्ट० का० ६७.
 ५११.—आप्तमी० का० १०२. न्याया० का० २८. न्यायविनि० का० ४७६.
 प्रमाणप० पृ० ७९. प्रमाणनय० ६१३-५. प्रमाणमी० १११३८,४०.
 ५१३.—प्रमाणनय० ६१०. प्रमाणमी० १११४१.
 ६११.—प्रमाणनय० ६१२३.
 ६१२.—प्रमाणनय० ६१२४.
 ६१३,४.—प्रमाणनय० ६१२५,२६.
 ६१६.—प्रमाणनय० ६१२७,२९.
 ६१८.—प्रमाणनय० ६१३१.
 ६१९.—प्रमाणनय० ६१३३,३४.
 ६११०.—प्रमाणनय० ६१३५.
 ६१११.—प्रमाणनय० ६१३७.
 ६११२.—न्यायप्र० पृ० २ पं० १३. प्रमाणनय० ६१३८.
 ६११३.—प्रमाणनय० ६१४६.
 ६११४.—न्यायप्र० पृ० ३ पं० ४.
 ६११५.—न्यायप्र० पृ० २ न्यायवि० पृ० ८४,८५. प्रमाणनय० ६१४०. प्रमा-
 णमी० ११२१७४.
 ६११६.—न्यायप्र० पृ० २ पं० १७. न्यायवि० पृ० ८४. प्रमाणनय० ६१४१.
 ६११७.—न्यायप्र० पृ० २ पं० १८. न्यायवि० पृ० ८४. प्रमाणनय० ६१४२.
 ६११८.—न्यायप्र० पृ० २ पं० १९. प्रमाणनय० ६१४३.
 ६११९.—न्यायप्र० पृ० २ पं० २०. प्रमाणनय० ६१४४.
 ६१२०.—न्यायप्र० पृ० २ पं० २१. प्रमाणनय० ६१४५.
 ६१२१.—न्यायप्र० पृ० ३ पं० ८. न्याया० का० २२. न्यायविनि० का० ३६६.
 प्रमाणनय० ६१४७. प्रमाणमी० २११११६.
 ६१२२.—न्याया० का० २३. प्रमाणनय० ६१४८. प्रमाणमी० २११११७.
 ६१२३.—न्यायप्र० पृ० ३ पं० १२. न्यायवि० पृ० ८९. न्यायविनि० का० ३६५.
 प्रमाणनय० ६१५०.
 ६१२५.—न्यायप्र० पृ० ३ पं० १४. न्यायवि० पृ० ९१.
 ६१२९.—न्यायप्र० पृ० ५ पं० ६. न्याया० का० २३. प्रमाणनय० ६१५२.
 प्रमाणमी० २११२०.
 ६१३०.—न्यायवि० पृ० १०५. न्याया० का० २३. प्रमाणनय० ६१५४.
 प्रमाणमी० २११२१.

- ६१३१.—प्रमाणनय० ६१५६.
 ६१३३.—प्रमाणनय० ६१५७.
 ६१३५.—न्यायविधि० का० ३७०.
 ६१४०.—न्यायप्र० पृ० ५ पं २०, न्यायवि० पृ० ११९, न्याया० का० २४,
 न्यायविधि० का० ३८०, प्रमाणनय० ६१५८, प्रमाणमी० २११२२.
 ६१४१.—न्यायप्र० पृ० ६ पं० १, न्यायवि० पृ० १२२, प्रमाणनय० ६१६०—
 ६२, प्रमाणमी० २११२३.
 ६१४२.—न्यायप्र० पृ० ६, पं० १२, न्यायवि० पृ० १२४, प्रमाणनय० ६१६८,
 प्रमाणमी० २११२६.
 ६१४४.—न्यायप्र० पृ० ६ पं० १४, न्यायवि० पृ० १२५, न्याया० का० २५,
 प्रमाणनय० ६१६९, प्रमाणमी० २११२४.
 ६१४५.—न्यायप्र० पृ० ७ पं० ७, न्यायवि० पृ० १३०, प्रमाणनय० ६१७९,
 प्रमाणमी० २११२६.
 ६१५१.—प्रमाणनय० ६१८३,
 ६१५२.—प्रमाणनय० ६१८४,
 ६१५५.—प्रमाणनय० ६१८५,
 ६१६१.—प्रमाणनय० ६१८६,
 ६१६६.—प्रमाणनय० ६१८७.
-

प्रमेयकमलमार्त्तण्डस्य विषयालुक्रमः ।

विषयाः	१०
मङ्गलाचरणम्	१
परीक्षामुखस्य आदिश्लोकः	२
सम्बन्धानिघेयादिविचारः	३
प्रमाणतदाभासयोर्लक्षणस्याभिधेयता	३
प्रत्यतदभिधेययोः प्रतिपाद्यप्रतिपादकलक्षणः सम्बन्धः ...	३
साक्षात्प्रयोजनं लक्षणव्युत्पत्तिः हानोपादानादिकं तु परम्परया ...	३
प्रमाणशब्दस्य कर्तृकरणभावसाधनता	३
अव्यपयोग्ययोः भेदाभेदविवक्षायां प्रमाणशब्दस्य त्रिषु कर्तृकरण- भावसाधनेषु व्युत्पत्तिः	४
भेदाभेदात्मकत्वे विरोधपरिहारः	४
अर्थस्य हेयोपादेयभेदात् द्वैविध्यम्	४
उपेक्षणीयस्य हेयेऽन्तर्भावः	४
असत्प्रादुर्भाषाऽभिलषितप्राप्तिभावज्ञप्तिभेदेन सिद्धेऽद्वैविध्यम् ...	५
ज्ञापकप्रकरणद्वयं भावज्ञप्तिरूपैव सिद्धिः विवक्षिता	५
जातिप्रकृत्यादिभेदेन उपकारकार्यसिद्धिरपि युज्यते	५
तदाभासपदस्य व्युत्पत्तिः	५
सिद्धान्तपदयोः सार्वक्यम्	६
'लक्षणीयसः' इत्यत्र काल-क्षरीरपरिणाम-मतिक्रान्तत्रिविधत्वप्रवेशे मतिक्रान्तस्यैव लक्षणस्य ग्रहणम्	६
नमस्कारस्य विषयः मनोवाक्यायकारणभेदात्	७
आदिश्लोकस्य नमस्कारपरत्वम्	७
प्रमाणसामान्यलक्षणसूत्रम्	७
अरञ्जैयायिकमद्भुजयन्ताभिमतकारकसाकल्यस्य नि- रासः	७-१३
अव्यभिचारादिविशेषणविक्षिप्तमपि कारकसाकल्यं अज्ञानरूपत्वेन प्रमितौ साधकतमत्त्वाभावात् प्रमाणम्	७
प्रतीपादीनामुपचारत एव परिच्छिन्तौ साधकतमव्यपवेशः ...	८
प्रमितिं प्रति बोधेन व्यवचानात् कारकसाकल्यस्य प्रमाणता ...	८
किं सकलान्येव कारकाणि साकल्यस्वरूपं तद्भ्रमो वा तत्कार्यं वा पदार्थान्तरं वा ?	९
प्रथमविकल्पे साकल्यस्य कर्तृकर्मरूपत्वे करणत्वात्प्रपत्तिः ...	९
यथैव संयोगरूपः अन्यो वा ?	९

विषयाः	५०
धर्मः कारकेभ्यो भिन्नोऽभिधो वा ?	९
तत्कार्यपक्षे नित्यानां जनकत्वे सर्वदा तदुत्पत्तिप्रसक्तिः	१०
सहकारिसव्यपेक्षया कार्ये देशादिप्रतिनियमे किं विशेषाधायित्वेन सहकारित्वमेकार्थकारित्वेन वा ?	११
विशेषाधायित्वपक्षे विशेषः भिन्नोऽभिधो वा ?	११
साहित्येऽपि भावानां स्वरूपेणैव कार्यकारिता न तु पररूपेण ...	११
किं सकलानि कारकाणि साकल्योत्पादने प्रवर्तन्तेऽसकलानि वा ?	१२
वैशेषिकाद्यभिमतसन्निकर्षस्य विचारः... ..	१४-१८
सन्निकर्षो न प्रमाणं प्रमित्युत्पत्तौ साधकतमत्त्वाभावात्	१४
योग्यता च शक्तिः, प्रतिपत्तुः प्रतिबन्धापायो वा ?	१५
शक्तिरपि अतीन्द्रिया सहकारिसन्धिधिरूपा वा ?	१५
सहकारिकारणं च द्रव्यं गुणः कर्म वा ?	१५
द्रव्यमपि व्यापिद्रव्यमव्यापि द्रव्यं वा ?	१५
अव्यापि द्रव्यमपि मनो नयनमालोको वा ?	१५
गुणोऽपि प्रमेयगतः प्रमातृगतः सम्भगतो वा सहकारी स्यात् ?	१५
कर्माप्यर्थान्तरगतमिन्द्रियगतं वा सहकारि स्यात् ?	१५
भावेन्द्रियलक्षणा योग्यतापि प्रमाणम्	१६
प्रमातृप्रमेयाभ्यामर्थान्तरस्य प्रमाणस्य प्रतिविधानम्	१६
सन्निकर्षस्य प्रामाण्ये च सर्वज्ञाभावः	१७
इन्द्रियस्य योगजधर्मानुप्रदोऽपि किं स्वविषये प्रवर्तमानस्य अति- शयाधानरूपं सहकारित्वमात्रं वा ?	१७
अणुमनसोऽपि नाशेषार्थैः साक्षात्परम्परया वा सम्बन्धः ...	१८
सांख्य-यौगाभिमतैन्द्रियवृत्तिवादः	१९
इन्द्रियेभ्यो वृत्तिर्व्यतिरिक्ताऽव्यतिरिक्ता वा ?	१९
व्यतिरिक्तत्वे तेषां धर्मः अर्थान्तरं वा ?	१९
प्रभाकराभिमतज्ञातृव्यापारविचारः	२०-२५
ज्ञातृव्यापारस्य अज्ञानरूपस्य लपचारत एव प्रामाण्यं युक्तम् ...	२०
ज्ञातृव्यापारस्वरूपग्राहकं प्रत्यक्षमनुमानमन्यद्वा ?	२०
प्रत्यक्षमपि स्वसंवेदनं बाह्येन्द्रियजं मनःप्रभवं वा ?	२०
अनुमानप्रयोजकोऽविनाभावसम्बन्धः किमन्वयनिश्चयद्वारेण प्रती- यते व्यतिरेकनिश्चयद्वारेण वा ?	२१
अन्वयनिश्चयोऽपि प्रत्यक्षेण अनुमानेन वा ?	२१
दानुपलम्भाक्षिप्तये किं दृश्यानुपलम्भोऽभिप्रेतः अदृश्यानुपलम्भो वा ?	२१

विषयाः	५०
दृश्यानुपलम्भोऽपि स्वभावकारणव्यापकानुपलम्भविरुद्धोपलम्भमेवैव चतुर्धा भिद्यते	२१
विरुद्धोपलम्भो द्विधा विरोधस्य द्वैविध्यात्	२२
ज्ञातृव्यापारः कारकैर्जन्योऽजन्यो वा ?	२३
अजन्यत्वे अभावरूपो भावरूपो वा ?	२३
भावरूपत्वे नित्यः अनित्यो वा ?	२३
अनित्यत्वे कालान्तरस्थायी क्षणिको वा ?	२३
अन्यत्वे क्रियात्मकोऽक्रियात्मको वा ?	२३
अक्रियात्मकत्वे बोधरूपोऽबोधरूपो वा ?	२३
असौ ज्ञातृव्यापारः धर्मस्वभावः धर्मस्वभावो वा ?	२४
ज्ञातृव्यापारजनने प्रवर्तमानानि कारकाणि किमपरव्यापारसापेक्षाणि न वा ?	२४
ज्ञातृव्यापारोऽपि प्रकृतकार्ये व्यापारान्तरसापेक्षो निरपेक्षो वा ? ...	२४
अर्थप्राकट्यं ज्ञातृव्यापारकल्पकमर्थाद् भिन्नमभिन्नं वा ? ...	२४
अर्थप्राकट्यमन्यथालुपपन्नत्वेन निश्चितं न वा ?	२५
ज्ञानस्वभावज्ञातृव्यापारसुररीकुर्वाणस्य भाद्रस्य निरासः	२५
प्रमाणस्य ज्ञानात्मकत्वस्वसमर्थनम्	२५
अर्थक्रियाप्रसाधकार्यप्रदर्शकत्वमेव प्रापकत्वम्	२५
प्रवृत्तिमूल्य तृपादेयार्थप्राप्तिर्न प्रमाणाधीना	२६
अप्रवर्तकत्वेऽपि ज्ञानस्य चन्द्रार्कादिज्ञानवत् प्रामाण्यम्	२६
सुपतज्ञानं व्याप्तिज्ञानं सुखसंवेदनं वा न स्वविषयेऽर्थिनं प्रवर्तयन्ति प्रवृत्तेर्विषयः भावी वर्तमानो वा ?	२६
बौद्धाभिमतनिर्विकल्पकप्रत्यक्षवाद्ः	२७-३८
सविकल्पकं ज्ञानं प्रमाणं समारोपविरुद्धत्वात्, प्रमाणत्वाद्वा ...	२७
निर्विकल्पकं नीलाचंशे नीलमिदमिति विकल्पस्य क्षणक्षयादौ च नीलं क्षणिकं सत्त्वादित्यनुमानस्यापेक्षणाच्च प्रमाणम्	२७
असव्यापारानन्तरं विशदविकल्पस्वीवानुभवः न तु निर्विकल्पस्य सुगुपद्वृत्तेर्विकल्पाविकल्पयोरैकलाध्यवसायाधिर्विकल्पकवैशयास्य विकल्पे प्रतिभासानुपगमे दीर्घशष्कुलीमक्षणादौ रूपादिज्ञान- पक्षकस्य अनेदाध्यवसायः स्यात्	२८
लघुवृत्तेरनेदाध्यवसाये स्वररटितादौ अनेदाध्यवसायप्रसङ्गः ...	२८
सविकल्पाविकल्पयोः सादृश्याद् सेदेनानुपलम्भोऽभिमवाद्वा ? ...	२८
सादृश्यं विषयाभिदकृतं ज्ञानरूपताकृतं वा ?	२८
अभिमवो विकल्पेनाविकल्पस्य बलीयस्त्वात्	२९

विषयाः	५०
कृतो विकल्पस्य बलीयस्त्वं बहुविधयात् निश्चयात्मकत्वाद्वा ? ...	२९
निश्चयात्मकत्वं स्वरूपेऽर्थरूपे वा ?	२९
एकलाभ्यवसायः किमेकविषयत्वम् अन्यतरस्यान्यतरेण विषयी- करणं परत्रेतरस्याप्यारोपो वा ?	३०
दृश्ये विकल्पन्यसारोपश्च किं गृहीतयोरगृहीतयोर्वा तयोः स्यात् ?	३०
निर्विकल्पे विकल्पसारोपो विकल्पे निर्विकल्पस्य वा ?	३०
विकल्पेन निर्विकल्पस्याभिभवः सहभावमात्रात् अभिन्नविषयत्वा- दभिन्नसामग्रीजन्यत्वाद्वा स्यात् ?	३१
अनयोरैकत्वं निर्विकल्पकमप्यवस्यति विकल्पो वा ज्ञानान्तरं वा ?	३१
संज्ञतसकलविकल्पावस्थायां रूपादिदर्शनस्य निर्विकल्पस्य न संभवः किन्तु स्थिरस्थूलार्थग्राहिणः विकल्परूपस्यैव	३२
अनिश्चयात्मनो निर्विकल्पस्य न प्रामाण्यम्	३२
निश्चयहेतुत्वादिपि न निर्विकल्पस्य प्रामाण्यम्	३२
निर्विकल्पस्य विकल्पोत्पादकत्वमपि दुर्घटम्	३३
विकल्पवासनापेक्षस्यापि निर्विकल्पस्य अर्थवन्न विकल्पोत्पादकत्वम्	३३
निर्विकल्पस्य अनुभवमात्रेण विकल्पजनकत्वे नीलादाविच क्षण- क्षयादावपि विकल्पजनकत्वप्रसङ्गः	३३
क्षणक्षयादौ अभ्यासप्रकरणद्विपाटवार्थित्वाभावाच्च निर्विकल्पकं विकल्पवासनाप्रबोधकम्	३३
अभ्यासो हि भूयोदर्शनं बहुशो विकल्पोत्पत्तिर्वा ?	३३
पाटवं तु विकल्पोत्पादकत्वं स्फुटतरानुभवो वा अविद्यावासना- विनाशादान्मलानो वा ?	३४
अर्थित्वमभिलषितत्वं जिज्ञासितत्वं वा ?	३४
सविकल्पकप्रत्यक्षवादिनां अवग्रहादिसङ्गावेऽपि अभ्यासात्मकधार- णामावात् न खोच्छ्वासादिसंख्यायाः सकलवर्णपदादेर्वा स्मृतिः	३५
तदन्वयानुसृत्या निर्विकल्पे अभ्यासानभ्यासकल्पनं न युक्तिसङ्गतम् विकल्पस्य शब्दार्थविकल्पवासनाप्रभवत्वे ततोऽभ्यक्षस्य रूपादि-	३५
विषयत्वनियमो न स्यात्	३५
विकल्पः प्रमाणं संवादकत्वात्, अर्थपरिच्छिन्नौ साधकतमत्वात् अनिश्चितार्थनिर्द्धारकत्वात् प्रतिपन्नपेक्षणीयत्वाच्चानुमानवत्	३६
स्पष्टाकारविकल्पत्वाद्विकल्पस्याप्रामाण्ये दूरपादपादिदर्शनस्याप्रामा- ण्यप्रसङ्गः	३७
गृहीतग्राहित्वादप्रामाण्ये अनुमानस्याप्यप्रामाण्यम्	३७
असति प्रवर्तनादप्रामाण्ये प्रत्यक्षादीनामपि तत्प्रसङ्गः	३७

विषयाः	५०
हिताहितप्राप्तिपरिहारसामर्थ्यं तु विकल्पस्यैव	३७
कदाचिद्विसंवादस्तु प्रत्यक्षादावपि समानः	३७
समारोपनिषेधकत्वं तु विकल्पेऽस्त्यैव	३७
व्यवहारयोग्यश्च विकल्प एव	३७
खलक्षणगोचरत्वाद्विकल्पस्याप्रामाण्ये अनुमानस्याप्यप्रामाण्यं स्यात्	३७
शब्दसंसर्गयोग्यप्रतिभासत्त्वमनुमानेऽपि तुल्यम्	३७
आद्यार्थं विना शब्दमात्रप्रभवत्वं तु विकल्पेऽसिद्धमेव	३८
विकल्पाभिधानयोः कार्यकारणभावे किञ्चित्पश्यतः पूर्वानुभूत- तत्सदृशस्मृत्यादि न स्यात्	३८
पदस्य वर्णानां वा नामान्तरस्मृतावसत्यामध्यवसायः सत्यां वा ?	३८
भर्तृद्वयं भिमतशब्दाद्वैतत्वाद्:	३९-५७
शब्दानुविद्धत्वेनैव सकलज्ञानानां अविकल्पकता	३९
सकलं वाच्यवाचकतत्त्वं शब्दब्रह्मण एव विवर्तः	३९
शब्दानुविद्धत्वं ज्ञाने ऐन्द्रियेण प्रत्यक्षेण प्रतीयेत स्वसंवेदनेन वा ?	३९
किमिदं शब्दानुविद्धत्वमर्थस्य अभिन्नदेशे प्रतिभासः तादात्म्यं वा ?	४०
मिथिषेन्द्रियजनज्ञानप्राद्यत्वाच्च शब्दार्थयोस्त्वादात्म्यम्	४०
रूपमिदमिति ज्ञानेन वाप्रुताप्रतिपक्षाः पदार्थाः प्रतिपद्यन्ते मिथ- वाप्रुताविशेषणविविध्या वा ?	४०
अर्थस्याभिधानानुषङ्गता किमर्थज्ञाने तत्प्रतिभासः, अर्थदेशे तद्वेदनं वा, तत्काले तत्प्रतिभासो वा ?	४१
लोचनाभ्यक्षं श्रोत्रप्राप्त्या वैखरीम् अन्तर्जल्परूपां मध्यमां वा वार्चं न संस्पृष्टति	४१
पश्यन्ती अन्तर्ज्योतीरूपा च वागेव न भवति अर्थात्मदर्शनलक्षणत्वात्	४१
चतुर्विधवाचो लक्षणम्	४२
नाप्यनुमानाच्छब्दब्रह्मसिद्धिः	४३
जगतः शब्दमयत्वं प्रत्यक्षवाधितत्वात्	४३
शब्दपरिणामरूपत्वात् जगतः शब्दमयत्वं शब्दानुत्पत्तौ वा ? ...	४३
शब्दब्रह्म नीलादिरूपं परिणमत् शब्दरूपतां परित्यजति न वा ?	४३
शब्दात्मा परिणामं गच्छन् प्रतिपदार्थमेदं प्रतिपद्येत न वा ? ...	४४
कार्यसमूहः ब्रह्मणोऽर्थान्तरमनर्थान्तरं वा उत्पद्येत ?	४४
योगिनोऽपि न ब्रह्म पश्यन्ति	४५
अविद्याऽपि ब्रह्मव्यतिरिक्ता नास्ति	४५
अनुमानं कार्यलिङ्गं स्वभावादिलिङ्गं वा ब्रह्मसाधकं स्यात् ? ...	४५
शब्दाकारानुस्यूतत्वं जगतोऽसिद्धम्	४६

विषयाः	५०
सर्वाणां शब्दात्मकत्वे सङ्केताग्राहिणोऽपि शब्दाद् अर्थबोधः स्यात्	४६
ऋद्धिपाषाणादिशब्दध्वनात् श्रोत्रस्य दाहाभिघातादिप्रसङ्गः ...	४६
आगमस्य शब्दब्रह्मणो भेदे द्वैतापत्तिः अमेदे प्रतिपाद्यप्रतिपादक-	
भावाभावः	४६
अपूर्वार्थविशेषणेन धारावाहिकविपर्यययोः निरासः	४७
अथवा व्यवसायात्मकविशेषणेन विपर्ययस्य निरासः	४७
संशयस्वरूपविचारः	४७-४८
(तत्त्वोपलब्धवादिनः पूर्वपक्षः) संशयज्ञाने धर्मोऽधर्मो वा	
प्रतिभासते ?	४७
धर्मो तात्त्विकः अतात्त्विको वा ?	४७
धर्मः स्थाणुलक्षणः पुरुषलक्षणः उभयं वा ?	४७
सन्दिग्धोऽर्थः विद्यते न वा ?	४७
(उत्तरपक्षः) संशयः चलितप्रतिपत्त्यात्मकत्वेन स्वात्मसंबन्धः ...	४७
धर्मविषयो धर्मविषयो वेत्यादिप्रदना अपि संशयस्वरूपा एव ...	४८
उत्पादककारणभावात् संशयस्य निरासः, असाधारणस्वरूपाभावात्	
विषयाभावाद्वा ?	४८
अख्यातिचाद् :	४८-४९
(चार्वाकादीनां पूर्वपक्षः) जलादिविपर्यये जलं जलाभावः मरीचयो	
वा न प्रतिभासन्ते अतः निर्विषयमेव जलादिविपर्ययज्ञानम्	४८
तोयाकारेण मरीचिग्रहणमपि न संभाव्यते	४९
(उत्तरपक्षः) विरालम्बनत्वे जलादिविपर्ययस्य विशेषतोव्यपदेशा-	
भावप्रसङ्गः	४९
आन्तिमुद्रुप्यवस्थयोरविशेषप्रसङ्गश्च	४९
बौद्धाद्यभिमतोऽसत्ख्यातिचाद् :	४९
असतः खपुष्पादिवत् प्रतिभासामावः	४९
आन्तिवैचित्र्याभावप्रसङ्गश्च	४९
प्रसिद्धार्थख्यातिचाद् :	४९-५०
(सांख्यस्य पूर्वपक्षः) प्रतिभासमानस्य असत्त्वं नोपपद्यते ...	४९
यद्यप्युत्तरकालमर्थो नास्ति तथापि यदा प्रतिभाति तदाऽस्त्यैव	४९
(उत्तरपक्षः) यथावस्थितार्थग्रहणे आन्ताऽऽन्तव्यवहाराभावः	५०
प्रतिभासकालेऽर्थस्य सत्त्वे न तत्कालेऽर्थस्यानुपलब्धावपि तच्चिह्नस्य	
भूत्विषयतादेः पन्थादुपलम्भः स्यात्	५०
प्रसिद्धार्थख्याती बाध्यबाधकमाशङ्क न स्यात्	५०
आत्मख्यातिचाद् :	५०-५१
(योगाचारस्य पूर्वपक्षः) अनादिविचित्रवासनावशाज्ज्ञानसैवाय-	
माकारः बहिः स्थितत्वेन भासते	५०

विषयाः	५०
(उत्तरपक्षः) सर्वज्ञानानां स्वाकारमानप्राहित्वे भ्रान्ताभ्रान्तविवेको	
चाध्यबाधकभावश्च न स्यात्	५०
रजताकारस्य आत्मस्थितत्वेन चङ्घिःस्वरूपेण प्रतीतिर्न स्यात् ...	५०
प्रतिपत्ता च तदुपादानार्थं न प्रवर्तते	५१
अविद्यावशात् बहिःस्थ-स्थिरत्वेन भाने विपरीतख्यातिरेव ...	५१
अनिर्वचनीयार्थख्यातिवादः	५१-५२
(वेदान्तिनः पूर्वपक्षः) न ज्ञानस्य विषय उपदेशगम्यः अनुमान- साध्यो वा येन विपरीतार्थकल्पना	५१
प्रतिभासमानश्च जल्यर्थः सदसदुभयात्मको न भवति अतोऽ- निर्वचनीयः	५१
(उत्तरपक्षः) जलदिभ्रान्तौ नियतदेशकालस्वभावो जल्यर्थ एव सद्रूपेण प्रतिभासते	५२
विचार्यमाणस्यासत्त्वे विपरीतख्यातिः	५२
पुरुषविपरीते स्थाणौ पुरुषोऽयमिति ख्यातिः विपरीतख्यातिः	५२
स्मृतिप्रमोषवादः	५३-५८
(प्राभाकराणां पूर्वपक्षः) इदं रजतमिति नैकं ज्ञानं कारणाभावात् न हि दोषैः चक्षुरादीनां शक्तेः प्रतिबन्ध- प्रवृत्तौ वा क्रियते तथा सति कार्यानुत्पादकत्वमेव स्यात् न विपरीतकार्योत्पादकत्वम्	५३
अगृहीतरजतस्य नेदं ज्ञानम्, गृहीतस्य च तद्रजतमिति स्यात्	५३
ततो ज्ञानद्वयमेतत्-इदमिति हि पुरोव्यवस्थितार्थप्रतिभासनं रजत- मिति च स्मरणं प्रमुष्टतदंशत्वात् स्मृतिप्रमोषोऽभिधीयते ...	५४
प्रवृत्तिश्च मेदाग्रहणसन्निवाद्भ्रजतज्ञानात् संजायते	५४
(उत्तरपक्षः) दोषसमवधाने चक्षुरादिभिः विपरीतं ज्ञानमुत्पाद्यते नैवमसरख्यातिः; सादृश्यहेतुकत्वात्	५५
नापि ज्ञानख्यातिः संस्कारहेतुकत्वात्	५५
नापि मेदाग्रहणात् प्रवृत्तिः किन्तु घटोऽयमित्याद्यमेदज्ञानात् ...	५५
गुणदोषयोः एकज्ञानजनकत्वमेव	५५
स्वप्रकाशवादिप्रभाकरमते इदं रजतम् इति ज्ञानयोः मेदाग्रहणम- संभाव्यम्	५६
विवेकख्यातेः प्रागभावरूपापि अख्यातिः अभावानभ्युपगन्तृणां प्राभाकराणां न संभवति	५६
कक्षायं स्मृतिप्रमोषः किं स्मृतेरभावः अन्यावभासः विपरीताकार- वैदिल्यम् अतीतकालस्य वर्तमानतया ग्रहणम् अनुभवेन सह क्षीरोदकवदविवेकेनोत्पादो वा ?	५६

अभेयकमलमार्त्तण्डस्य

विषयाः	५०
द्विचन्द्रादिविपर्ययस्य स्मृतिरूपत्वे इन्द्रियान्वयव्यतिरेकानुविधा- यित्वं न स्यात्	५८
स्मृतिप्रभोषपक्षे बाधकप्रत्ययो न स्यात्	५८
स्मृतिप्रभोषाभ्युपगमे स्वतःप्रामाण्यव्याघातः	५८
प्रमाणसद्भावश्च परिच्छित्तिविशेषसद्भाव एवाभ्युपगम्यते ...	५९
अनिश्चितस्य अपूर्वार्थत्वम्	५९
दृष्टोऽपि समारोपाद्पूर्वार्थः	५९
मीमांसकाभिमतस्य तत्रापूर्वार्थविज्ञानमित्यादिप्रमाण- लक्षणस्य विचारः... ..	६०-६४
बलान्वयविगतेऽनविगते वाऽन्यविचारिप्रमां जनयतो ज्ञानस्य प्रामा- ण्यमनिवार्यमेव	६०
एकान्ततोऽनविगताथविगन्तुत्वे प्रमाणस्य प्रामाण्यमपि ज्ञातुं न शक्यते	६०
प्रामाण्यं हि तदर्थोत्तरज्ञानश्रुतिसंवादादवसीयते	६०
सामान्यविशेषयोस्त्वादात्म्येऽनविगताथविगन्तुत्वमसंभाव्यमेव ...	६०
प्रतिपत्तिविशेषसद्भावादेकविषयाणामपि आगमानुमानाध्यक्षाणां प्रमाणता	६१
अनविगताथप्राहित्वे प्रत्यभिज्ञानस्य प्रमाणत्वं न स्यात्	६१
व्यतिज्ञानगृहीतार्थप्राहिणोऽनुमानस्य च प्रामाण्यं न स्यात् ...	६२
कथञ्चिदपूर्वार्थत्वे तु स्मृतितर्कावीनामपि पृथक् प्रामाण्यं स्यात्	६२
अपूर्वार्थप्राहिणः प्रामाण्ये द्विचन्द्रवेदनस्य प्रामाण्यं स्यात् ...	६२
बाधाविरहस्वत्कालभावी उत्तरकालभावी वा प्रामाण्यहेतुः स्यात् ?	६२
उत्तरकालभावी च ज्ञातः अज्ञातो वा ?	६२
ज्ञातश्चेत् पूर्वज्ञानेन उत्तरज्ञानेन वा ?	६३
बाधाविरहस्य ज्ञायमानत्वेऽपि कथं सत्यत्वम् ?	६३
कथित् कदाचित्कस्यचिद्बाधाविरहो विज्ञानप्रमाणाहेतुः सर्वत्र सर्वदा सर्वस्य वा ?	६३
अदुष्टकारणारब्धत्वमपि ज्ञातमज्ञातं वा तद्वैतुः ?	६३
अदुष्टकारणारब्धः ज्ञानान्तरात् संवादप्रत्ययाद्वा ?	६३
जैनमते च अदुष्टकारणारब्धत्वादि अभ्यासदशायां स्वतः प्रति- भासते अनभ्यासदशायाञ्च परत इति	६४
ब्रह्माद्वैतवादः	६४-७७
(वेदान्तिनां पूर्वपक्षः) अविकल्पकप्रत्यक्षेण हि सर्वत्र एकत्वमेव अन्यानपेक्षतया प्रतिभासते	६४

विषयाः	५०
मेदो नार्थस्वरूपम् अन्यापेक्षतया अविद्यासंकेतस्मरणजनितविकल्प-	
प्रतीत्या भासमानत्वात्... ..	६४
प्रतिभासमानत्वात् सर्वेषां प्रतिभासान्तःप्रविष्टत्वसिद्धेरपि ब्रह्मसिद्धिः	६४
सर्वं वै खल्विदमित्याद्यागमादपि ब्रह्मसिद्धिः	६४
प्रत्यक्षं विधातु न निषेद्ध अतः प्रत्यक्षं सद्ब्रह्मसाधकमेव ...	६५
अंशुनाम् ऊर्णनाम इव ब्रह्म सर्वजन्मिनां हेतुः	६६
मेदवर्धिनो निन्दा च श्रूयते मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव	
पश्यति इति	६५
अर्थानां मेदो देशमेवात् कालमेवाद् आकारमेदाद्वा स्यात् ? ...	६५
ब्रह्मणो विद्यास्वभावत्वेऽपि शास्त्रादीनां न वैयर्थ्यम् अविद्याव्या-	
पारनिवर्तनफलत्वात्तेषाम्	६६
अनादित्वेऽपि प्रागभाववदविद्याया उच्छेदो घटते	६६
भिन्नाभिजादिविकल्पस्य अवस्तुभूताऽविद्यायामप्रवृत्तिरैव ...	६६
यथैव रजो रजोऽन्तराणि शमयति स्वयं च शाम्यति विषं वा	
विधान्तरं प्रक्षमयत् शाम्यति तथैव श्रवणमननाविमेदात्मि-	
काऽविद्या अविद्यां शमयन्ती स्वयं शाम्यति	६६
समारोपितमेदाद्द्वैते बन्धमोक्षसुखदुःखादिव्यवस्था सुघटा ...	६७
(उत्तरपक्षः) मेदस्य प्रमाणबाधितत्वादमेदः साध्यते अमेदे	
साधकप्रमाणसङ्गात्वाद्वा ?	६७
मेदमन्तरेण प्रमाणेतरव्यवस्थान्यसंभाव्या	६७
निर्विकल्पकप्रत्यक्षेण एकव्यक्तिगतमेकत्वम् अनेकव्यक्तिगतं व्यक्ति-	
मात्रगतं वा प्रतीयेत ?	६७
एकव्यक्तिगतं तु साधारणमसाधारणं वा ?	६७
अनेकव्यक्तिगतं सत्तासामान्यं व्यक्त्यधिकरणतया प्रतिभासनाधि-	
करणतया वा ?	६८
तथा एकव्यक्तिग्रहणद्वारेण तत्प्रतीयते सकलव्यक्तिग्रहणद्वारेण वा ?	६८
एकत्वं व्यक्तिभ्यो भिन्नमभिन्नं वा ?	६८
एकत्वं नानालमन्तरेण न सिध्यति	६८
मेदव्यवहारो हि अन्यापेक्षो न तु मेदस्य स्वरूपं तस्य प्रत्यक्षादेव	
प्रतीतेः	६८
कल्पना च किं ज्ञानस्य स्मरणान्तरभावित्वं शब्दाकारानुविद्यत्वं	
वा जाल्याद्युल्लेखो वा असदर्थविषयत्वं वा अन्यापेक्षतयाऽर्थ-	
स्वरूपावधारणं वा उपचारभारं वा ?	६९
किं शब्दजनितो मेदप्रतिभासः मेदप्रतिभासजनितो वा शब्दः ?	६९

विषयाः	पृ०
प्रथमपक्षे शब्दादेव भेदप्रतिभासः ततोऽसौ भवत्येव वा ? ...	६९
शब्दादानेकलप्रतिभासे 'एकं ब्रह्मणो रूपम्' इति आगमस्यापि भेदप्रतिभासजनकत्वं स्यात्	६९
अनुमानाद् ब्रह्माद्वैतसाधने किं स्वतः प्रतिभासमानत्वं हेतुः परतो वा ?	७०
आगमाद्ब्रह्मसाधने प्रतिपाद्यप्रतिपादकरूपेण द्वैतं स्यात्	७०
ब्रह्मणः सकललोकसर्गस्थितिप्रलयहेतुत्वसंभाव्यं कार्यकारणभाव- तया द्वैतप्रसङ्गात्	७०
व्यसनितयाऽस्य जगद्वैचित्र्यविधाने अपेक्षापूर्वकारित्वम् ...	७१
तद्व्यतिरेकेण परस्यासत्त्वाच्च कृपया परोपकारार्थमपि तद्विधानम्	७१
अनुकम्पावशाच्च सृष्टिविधाने सदा सुखितमेव जगत् कुर्यात् प्रलयश्च न करणीयः	७१
स्वतन्त्रस्य प्राण्यदृष्टापेक्षणमनुपपन्नम्	७१
अदृष्टवशाच्च सृष्टिसंभावनाया किं ब्रह्मणा	७१
ऊर्णनाभश्च न स्वभावतया जालादिविधाने प्रवर्तते किन्तु प्राणि- भक्षणलाम्पव्यात्	७२
प्रत्यक्षस्य विधातृत्वं किं सत्तामात्रावबोधः असाधारणवस्तुस्वरूप- परिच्छेदो वा ?	७२
आकारभेदस्यैव सर्वत्र अर्थभेदकत्वम्	७२
अभेदोऽप्यर्थानां देशभेदात् काल्यभेदादाकारभेदाद्वा ? ...	७३
यद्यविद्या अवस्तुसती कथं प्रयत्ननिवर्तनीया	७३
तत्त्वतः सद्भावेऽपि अविद्यायाः निवृत्तिः संभवत्येव घटादिवत्	७३
घटादीनामविद्यानिर्मितत्वेन असत्त्वे अन्योन्याश्रयः	७३
अभेदस्य विद्यानिर्मितत्वेऽपि परस्परश्रयः	७३
अविद्यायाः तत्त्वज्ञानप्रागभावरूपत्वे भेदज्ञानलक्षणकार्योत्पाद- कत्वाभावः	७३
भेदज्ञानस्वभावात्मिकायामविद्यार्यां प्रागभावस्य भावात्मकत्वापत्तिः	७४
न ज्ञानस्य भेदाभेदग्रहणकृता विद्येतरव्यवस्था अपि तु संवाद्द्विसं- वादाधीना	७४
अविद्यायाः अवस्तुलाद्विचारागोचरत्वं विचारागोचरत्वाद्वाऽवस्तुत्वम्	७४
भिन्नाभिचादिविचारः प्रमाणसंप्रमाणं वा ?	७४
बाध्यबाधकमावाभावे कथं श्रवणमननादिलक्षणाऽविद्या अविद्या प्रशमयेत्	७४
बाध्यबाधकमावश्च सतोरेव न लसतोः सदसतोर्वा	७५
न च भेदस्योच्छेदो भवति वस्तुधर्मत्वादस्य	७५

विषयाः	५०
स्वप्नावस्थायां मेदस्य बाध्यमानत्वादसत्त्वेऽपि जाग्रद्दशायामबाध्य- मानत्वात्सत्त्वमसु	७५
बाधकेन ज्ञानमपह्नियते विषयो वा फलं वा, बाधकमपि ज्ञानमर्थो वा ? ज्ञानमपि समानविषयं भिन्नविषयं वा ? अर्थोऽपि प्रतिभा- तोऽप्रतिभातो वा ? कश्चित्कदाचिद्बाधकादसत्यत्वं सर्वत्र सर्वदा वा इत्यादि दूषणमसत्; यतो हि रजतप्रत्ययस्य उत्तरकाल- भाविना द्रुतिप्रत्ययेन एकविषयतया बाध्यत्वोपलम्भात् ...	७५-७६
विपरीतार्थत्वयापकं ज्ञानं बाधकम्	७६
मिथ्याज्ञानस्येदमेव बाध्यत्वं यदस्मिन् मिथ्यात्वात्पादनम्, क्वचि- त्प्रवृत्तिप्रतिषेधोऽपि फलम्	७६
बाध्यबाधकभावभावे कथं विद्या अविद्या वाषेत ?	७७
निरक्षे आत्मनि समारोपिता सुखदुःखादिव्यवस्थाप्यसम्भाव्या ...	७७
यौगाचार्यमिमत्तविज्ञानाद्वैतवादः	७७-९४
किमविभागज्ञानस्वरूपावेदकप्रमाणसद्भावतो विज्ञप्तिमात्रं तत्त्वम- भ्युपगम्यते बहिरर्थसद्भावबाधकप्रमाणावष्टम्भेन वा ? ...	७७
प्रत्यक्षश्च न अर्थोभावनिश्चयमन्तरेण विज्ञप्तिमात्रमेवेत्यधिगन्तुं समर्थम्	७७
न च प्रत्यक्षेणाऽर्थोभावः प्रतीयते	७७
नाप्यनुमानेन अर्थोभावो वेद्यते	७८
अर्थोभावप्रादुर्भूतं चानुमानं स्वभावलिङ्गं कार्यहेतुसमुत्थमनुपलब्धि- प्रसृतं वा स्यात् ?	७८
अदृश्यानुपलब्धिर्बर्थाभावसाधिका दृश्यानुपलब्धिर्वा	७८
अर्थसविदोः सहोपलम्भनियमात् अमेदसाधनमप्यसत्; पक्षस्य प्रत्यक्षबाधितत्वात्	७९
बाह्यार्थमन्तरेण द्विचन्द्रदर्शनस्यासम्भवात् द्विचन्द्रदृष्टान्तोऽपि साध्यविकलः	७९
सहोपलम्भनियमश्चासिद्धः अर्थसविदोः विवेकेन प्रतीतेः ...	८०
अनैकान्तिकश्च सहोपलम्भः रूपालोकयोः भिन्नयोरपि सहोप- लम्भात्	८०
सर्वज्ञज्ञानस्य तज्ज्ञेयस्य चेत रजनचित्तस्य सहोपलम्भेऽपि मेदाह्ला- सिचारः	८०
सहोपलम्भस्य युगपदुपलम्भार्थकत्वे विरुद्धत्वम्	८०
क्रमेणोपलम्भाभावश्च असिद्धः	८०
क्रमेणोपलम्भाभावाद् अमेदः साध्यते मेदाभावो वा ?	८१

विषयाः	५०
एकोपलम्भरूपसहोपलम्भे किम् एकत्वेनोपलम्भः एकोपलम्भः	
एकेनैव दोपलम्भः एकलोलीभावेन चोपलम्भः, एकस्यैवोप-	
लम्भो वा ?	६१
एकस्यैवोपलम्भे किं ज्ञानस्योपलम्भः अर्थस्य वा ?	६२
नीलादिकमहं वेदि इति नीलादिभ्यो भिजेनाहम्प्रत्ययेन तत्प्रति-	
भासाभ्युपगमात् अस्मिद्ः स्वतोऽवभासनलक्षणो हेतुः ...	६३
अहम्प्रत्ययो गृहीतोऽगृहीतो वा निर्वापारः सव्यापारो वा निरा-	
कारः साकारो वा भिन्नकालः समकालो वा नीलादेर्ग्राहकः ?	
गृहीतत्वेत् स्वतः परतो वा, व्यापारवत्त्वे व्यतिरिक्तो व्यापारः	
अव्यतिरिक्तो वा, अर्थमहं वेदि इत्यादि कर्तृकरणादिप्रतीतिः	
द्विचन्द्रादिवद्भ्रान्ता इति पूर्वपक्षीयविकल्पाः	६४-६६
अहम्प्रत्ययो गृहीत एव ग्राहकः तद्गृह्य स्वत एव	६६
स्वपरप्रकाशस्वभावता एव च ज्ञानस्य व्यापारः	६६
नीलादेर्ज्ञानरूपत्वे सप्रतिधादिरूपतास्थूलरूपता च न स्यात् ...	६६
अन्तर्बहिः प्रतिभासमेदेन च ज्ञानार्थयोः भेदः	६६
निराकारमेव ज्ञानमर्थग्राहकम् योग्यताप्रतिनियमाच्च नाशेवार्थग्रह-	
प्रसङ्गः	६६
भिन्नकालस्य समकालस्य वा योग्यस्यैवार्थस्य ग्रहणम्	६७
अनुमानेऽप्ययं विकल्पजालः समानः—किं लिङ्गं भिन्नकालं सदनुमा-	
नस्य जनकं समकालं वैत्यादि	६७
एकसामभ्यधीनरूपाधीनां समसमयत्वेऽपि यथा स्वरूपप्रतिनियमा-	
दुपादानेतरव्यवस्था तथा ग्राह्यग्राहकव्यवस्थापि स्यात् ...	६८
स्वार्थग्रहणैकस्वभावत्वाद्विज्ञानस्य न 'ज्ञानं येन स्वभावेन स्वर्णं	
विषयीकरोति तेनैव अर्थं स्वभावान्तरेण वा' इत्यादि दोषाः	६९
रूपाधीनां यथा सजातीयेतरकर्तृत्वं स्वभावप्रतिनियमात्तथा ज्ञानं	
स्वपरग्राहकम्	६९
स्वरूपस्य स्वतोऽवगतावपि भिन्नकालसमकालदिविकल्पः समानः	९०
परतः प्रतिभासमानत्वञ्च वादिनोऽस्मिद्धम्	९०
यदवभासते तज्ज्ञानमिति साध्यसाधनयोः व्याप्तिश्चास्मिद्धा ...	९१
जडस्य प्रतिभासायोगश्च प्रतिपन्नस्य अप्रतिपन्नस्य वा जडस्याभि-	
धीयते	९१
नैयायिकस्य सुखादौ ज्ञानरूपत्वाऽसिद्धेः साध्यविकल्पे दृष्टान्तः ...	९२
सुखादेरज्ञानत्वे पीडानुप्रहाद्यभावे किं सुखाथेव पीडानुग्रहौ ततो	
भिन्नौ वा	९२

विषयाः	५०
जैनमते शुद्धादर्शनरूपत्वेऽपि नीलद्यौ स्वप्रकाशत्वमसिद्धमेव ...	६३
कर्तृकर्मकरणादिप्रतीतेः अनाधितत्वात् द्विचन्द्रादिप्रत्ययवद् भ्रान्त- ता युष्मा	६३
अद्वैतप्रसाधकप्रमाणसद्भावे च द्वैतापत्तिः, प्रमाणमन्तरेण च न द्वैतप्रसिद्धिः	६४
अद्वैतमित्यत्र प्रसज्यप्रतिषेधः, पशुदासो वा ?	६४
द्वैतादद्वैतस्य व्यतिरेकोऽव्यतिरेको वा ?	६४
प्रज्ञाकरगुप्ताभिमतचित्राद्वैतवादस्य निरासः... ..	९५-९६
अशक्यविवेचनत्वं साधनं किं बुद्धेरभिन्नत्वं सहोत्पन्नानां नील- दीनां बुद्ध्यन्तरपरिहारेण विवक्षितबुद्ध्यवानुभवः मेदेन विवेच- नाभावमात्रं वा ?	९५
बहिरन्तर्देशसम्बन्धित्वेन ज्ञानार्थयोः विवेचनं शक्यमेव ...	९६
चित्रज्ञानस्य युगपदनैकाकारव्यापित्ववत् क्रमेणाप्यनेकाकारव्यापित्- मात्मनः किञ्चेभ्यते ?	९६
माध्यमिकाभिमतशून्यवादस्य निरासः	९६-९७
एकस्य चित्रज्ञानस्य अनेकाकारव्यापित्वाभावे नीलज्ञानमप्येकं न स्यात् तत्रापि प्रतिपरमाणुज्ञानमेदकरूपनात्	९७
प्रामाराभादीनां प्रतिभासमानत्वात् कथं सकलज्ञान्यताभ्युपगमः श्रेयान्	९७
अखिलज्ञान्यतायाः प्रमाणतः सिद्धिः प्रमाणमन्तरेण वा ? ...	९७
ज्ञानस्य स्वव्यवसायात्मकत्वसमर्थनम्	९७
सांख्याभिमतप्रकृतिपरिणामात्मक-अचेतनज्ञानवाद- स्य निरसनम्	९८-१०३
प्रधानविवर्तत्वाच्चैतनं ज्ञानं न स्वव्यवसायात्मकमिति; तच्च; आत्मविवर्तत्वाज्ज्ञानस्य	९८
ज्ञानविवर्तमानात्मा प्रकृत्वात्	९८
चेतनोऽहमित्यनुभवाच्चैतन्यस्वभावतावत् ज्ञाताहमित्यनुभवाज्ज्ञान- स्वभावताप्यस्तु	९९
ज्ञानसंसर्गात् पुरुषस्य श्रुत्वे चैतन्यादिसंसर्गादिव चेतनः शुद्धः उदासीनश्च पुरुषः स्यात् न तु स्वतः	९९
आत्मनो ज्ञानस्वभावत्वेऽनित्यत्वापत्तिः प्रधानेऽपि समाना ...	९९
बुद्धेः स्वसर्वेदनप्रत्यक्षभावे प्रतिनियतार्थव्यवस्थापकत्वं न स्यात्	१००
बुद्धिः स्वव्यवसायात्मिका कारणान्तरनिरपेक्षतयाऽर्थव्यवस्थाप- कत्वात्	१००

विषयाः	पृ०
अर्थव्यवस्थितौ बुद्धेः पुरुषानुभवापेक्षलभयुक्तम्; बुद्धिचैतन्ययोः मेदानुपलम्बेः १००	१००
एकमेवेदं हर्षविषादाद्यनेकाकारं चैतन्यम्, तस्यैव बुद्ध्यध्यवसाया- दयः पर्यायाः १००	१००
तत्तायोगोलके यथा अयोगोलकाभ्योः संसर्गादभेदः तथा बुद्धिचै- तन्ययोः मेदानवधारणमयुक्तम्; अयोगोलकाभ्योरपि मेदा- भावात् १०१	१०१
बुद्धेरचेतनत्वे विषयव्यवस्थापकत्वं न स्यात् १०२	१०२
आदर्शादिवदचेतनस्य आकारवत्त्वेऽपि नार्थव्यवस्थापकत्वम् ... १०२	१०२
अन्तःकरणल-पुरुषोपभोगप्रत्यासन्नहेतुलक्षरूपबुद्धिलक्षणयोः मनो- ऽशादिनाऽनैकान्तिकता १०२	१०२
अन्तःकरणमन्तरेण अर्थप्रत्यक्षात्ताऽभावे कथमन्तःकरणस्य प्रत्यक्षता ? १०२	१०२
विषयाकारधारिता च अमूर्त्या बुद्धेरनुपपन्ना १०३	१०३
बौद्धाभिमतसाकारज्ञानवादस्य निरासः १०३-११०	१०३-११०
प्रत्यक्षेण विषयाकाररहितं ज्ञानमनुभूयते १०३	१०३
विषयाकारधारित्वे ज्ञानस्यार्थे दूरनिकटादिव्यवहाराभावः ... १०३	१०३
ज्ञानं यथा नीलतामनुकरोति तथा जडतामपि तदा जडं स्यात् ... १०४	१०४
जडताननुकरणे कथं तस्या ग्रहणम् ? १०४	१०४
ज्ञानान्तरेण केवल्य जडता प्रतीयते तद्वन्नीलताऽपि वा ? ... १०५	१०५
ज्ञानं प्रतिनियतसामर्थ्यवशात् प्रतिनियतार्थव्यवस्थापकम् ... १०५	१०५
नीलाकारवज्जडाकारस्य अदृष्टेन्द्रियायाकारस्य वाऽनुकरणप्रसङ्गः ... १०५	१०५
पुत्रस्य पित्रोरन्यतराकारानुकरणवज्ज्ञानस्य नीलाकारस्यैवानुकरणे निराकारत्वेऽपि प्रतिनियतार्थव्यवस्थापकत्वं किञ्च स्यात् ? ... १०५	१०५
सकलं वस्तु निखिलज्ञानस्य कारणं स्वाकारार्पकं च किञ्च स्यात् ? १०६	१०६
प्रमाणत्वाज्ज्ञानस्य नार्थाकारानुकरणम् १०६	१०६
यतो घटयति विषक्षितं ज्ञानमर्थरूपता, अर्थसम्बद्धं वा ज्ञानं निश्चाययति ? १०७	१०७
विशिष्टविषयोत्पाद एव च ज्ञानस्यार्थेन सम्बन्धः १०७	१०७
साकारं ज्ञानं किमिति सञ्जिहितं नीलायाकारमेवानुकरोति न विप्र- कृष्टार्थाकारम् ? १०८	१०८
ज्ञाने साकारता साकारेण ज्ञानेन प्रतीयते निराकारेण वा ? ... १०८	१०८
साकारस्यैवदनस्य अखिलसमानार्थसाधारणत्वेनानियतार्थैर्घटन- प्रसङ्गः १०८	१०८

विषयाः	५०
तदुत्पत्तेरिन्द्रियादिना व्यभिचारः	१०८
तद्वयस्य समानार्थसमनन्तरप्रत्ययेन व्यभिचारः	१०८
पुत्रस्य पित्रानुकरणवत् अर्थेन्द्रिययोः अर्थाकारसैवानुकरणे	
स्वोपादानमात्रानुकरणप्रसङ्गः	१०९
उपादानभूतस्य पूर्वज्ञानस्याप्यनुकरणे तस्यापि विषयतापत्तिः ...	१०९
तत्त्वन्मादित्रयस्य कामलिनः शुद्धे शंखे पीताकारज्ञानेन व्यभिचारात्	१०९
ज्ञानगताञ्जीलाद्याकारात् क्षणिकलाद्याकारो भिन्नोऽभिन्नो वा ? ...	१०९
यस्मिन्शंखे संस्कारपाटवाभिश्चयोत्पत्तिस्तत्रैव प्रामाण्येऽभ्युपगम्य-	
माने स निश्चयः साकारो निराकारो वा स्यात् ?	११०
चार्वाकामिमतभूतचैतन्यवादस्य निरासः ११०-१२०	११०-१२०
भूतपरिणामत्वे हि ज्ञानस्य बाह्येन्द्रियप्रत्यक्षप्रसङ्गः	११०
सूक्ष्मो भूतविशेषः चैतन्यजातीयो विजातीयो वा चैतन्योपादानं	
स्यात् ?	११०
असाधारणलक्षणत्वाच्चैतन्यं पृथिव्यादिभ्यस्त्वान्तरम्	१११
सुखदुःखमित्यादिरूपतया प्रतीयमानत्वात् प्रत्यक्षेणैव आत्मनः सिद्धिः	१११
नचाहम्प्रत्ययः क्षरीरालम्बनो बहिःकरणनिरपेक्षाऽन्तःकरण-	
व्यापारेणोत्पत्तेः	११२
अहमिति प्रत्ययस्यैव च जीवस्वस्वभावता... ..	११३
लक्षणभेदेन च एकस्यैवात्मनः कर्तृत्वं कर्मत्वं चाविरुद्धम् ...	११३
ओत्रादिकरणं कर्तृप्रयोज्यं करणत्वादित्यनुमानेनापि आत्मसिद्धिः	११३
रूपाद्युपलब्धिः करणकार्या क्रियात्वात्	११३
शब्दादिज्ञानं क्वचिदाभितं गुणत्वाद्द्रुपादिवत् इत्यनुमानादपि आत्म-	
सिद्धिः	११३
ज्ञानं न क्षरीरगुणं सति क्षरीरे निवर्तमानत्वात्	११४
क्षरीरं न चैतन्यगुणाश्रयो भूतविकारत्वात्	११४
न इन्द्रियं चैतन्यवत् करणत्वाद्भूतविकारत्वाद्वा वास्यादिवत् ...	११४
स्मरणादिचैतन्यमिन्द्रियगुणो न भवति तद्विनाशेऽप्युत्पद्यमानत्वात्	११४
न चैतन्यगुणवन्मनः करणत्वात्	११५
नापि विषयगुणः तदसाक्षिण्ये तद्विनाशे च अनुस्मृत्त्यादिदर्शनात्	११५
तेभ्यश्चैतन्यमित्यत्र 'अभिव्यज्यते' इति क्रियाध्याहारे सतोऽभि-	
व्यक्तिचैतन्यस्य असतो वा सदसद्रूपस्य वा ?	११६
सर्वथाऽसतोऽभिव्यक्तौ व्यञ्जककारकयोः नैदाभावः स्यात् ...	११६
पिष्टोदकादिष्वपि शक्तिरूपेण मादकलस्य अवस्थानम्	११७
चैतन्यमुत्पद्यते इत्यत्र भूतानां चैतन्यं प्रति उपादानकारणत्वं सद-	
कारिकारणत्वं वा ?	११७

विषयाः	पृ०
भूतोपादानत्वे धारणेरेणादिभूतस्वभावानां चैतन्येऽनुवृत्तिः स्यात् प्राणिनामार्थं चैतन्यं चैतन्यकारणकं चिद्विषयत्वात् मध्यचिद्विषय- वत् इत्यनुमानाच्चैतनतत्त्वसिद्धिः	११७
अन्त्यचैतन्यपरिणामश्चैतन्यकार्यः चिद्विषयत्वात्	११८
भूतानां सहकारिकारणत्वे उपादानमन्यद्वाच्यमनुपादानकार्यानुत्पत्तेः गोमायादेर्न वृक्षिकचैतन्यमुत्पद्यते अपि तु वृक्षिकशरीरम् ...	११८
प्रथमपथिकाम्रेः अनभ्युपादानत्वे जलदेरप्यजलाद्युपादानत्वापत्तेः तत्त्वचतुष्टयव्याघातः	११८
अनाद्येकानुभविच्यतिरेकेण जन्मादौ बालस्य स्वन्यपानादौ स्मर- णामिलाषादयो न स्युः	११९
‘अहं जानामि’ इत्यत्र कर्तृत्वेन आत्मनः प्रतिभासो भवत्येव ...	११९
अनाद्यनन्त आत्मा द्रव्यत्वात्	१२०
द्रव्यमसौ गुणपर्ययवत्त्वात्	१२०
शरीररहितस्य आत्मनः प्रतिभासः स्यादित्यत्र किं शरीरस्वभाववि- कलस्य शरीरदेशपरिहारेण अन्यदेशावस्थितस्य वा ? ...	१२०
शरीरप्रदेशादन्यत्रानुपलम्भादन्यत्र तदभावः शरीर एव वा ? ...	१२०
शरीरादात्मनोऽन्यत्वाभाषः किं तत्स्वभाषत्वात् तद्गुणत्वात् तत्कार्य- त्वाद्वा स्यात् ?	१२०
मीमांसकामिमत्परोक्षज्ञानवादस्य निरासः	१२१-१२८
कर्मलस्य प्रत्यक्षतां प्रत्यक्षत्वे आत्मनोऽप्रत्यक्षत्वप्रसङ्गः	१२१
आत्मनः प्रत्यक्षत्वे परोक्षज्ञानकल्पना किमर्थिका ?	१२१
भावेन्द्रियमनसोः लब्धिरूपयोः न परोक्षता	१२२
उपयोगरूपस्य तु प्रत्यक्षतैव	१२२
करणज्ञानस्य करणत्वेनानुभूयमानत्वात् फलज्ञान-आत्मवत् प्रत्यक्ष- ताऽस्तु	१२२
आत्मफलज्ञानार्थ्यां करणज्ञानस्य कथञ्चिद्भेदे प्रत्यक्षतैव स्यात् ...	१२३
आत्मज्ञानयोः सर्वथा कर्मत्वासिद्धिः कथञ्चिद्वा ?	१२३
प्रत्यक्षता अर्थधर्मैः ज्ञानधर्मो वा ?	१२४
अस्वसंवेदनज्ञानवादिनः न प्रत्यक्षाज्ज्ञानसद्भावसिद्धिः अतद्विष- यत्वात्	१२५
अनुमानाज्ज्ञानसद्भावसिद्धौ अर्थज्ञप्तिः लिङ्गं स्यात् इन्द्रियार्थो वा तत्सहकारिप्रगुणं मनो वा ?	१२५
अर्थज्ञप्तिः किं ज्ञानस्वभावा अर्थस्वभावा वा ?	१२५
इन्द्रियार्थो च न लिङ्गम् ज्ञानाविनाभावाभावात्	१२६

विषयाः	५६
मनोऽपि न लिङ्गं तत्सद्भावासिद्धेः	१२६
युगपज्ज्ञानानुत्पत्तेरपि न मनःसद्भावासिद्धिः	१२६
ज्ञानस्याप्रत्यक्षतैकान्तैवेन लिङ्गस्याविनाभावो न प्रहीदुं शक्यः	१२७
फलत्वेन प्रतिभासनात् प्रमितेः प्रत्यक्षतावत् आत्मनोऽपि कर्तृत्वेन	
प्रतिभासनात् प्रत्यक्षताऽस्तु	१२८
शब्दानुच्चारणेऽपि स्वस्य प्रतिभासः अर्थवत्	१२८
आत्मप्रत्यक्षत्वसिद्धिः	१२८-१३२
सुखाद्यैः संवेदनादर्थान्तरस्याऽप्रतिभासनात्, आह्लादनाकारपरिणत-	
ज्ञानविशेषस्यैव सुखत्वात् तस्य च प्रत्यक्षत्वात्	१२९
सुखस्य परोक्षत्वे अन्यप्रत्यक्षज्ञानप्राप्त्यत्वे वा अनुग्रहोपघातकारि-	
रित्सारसम्भवः	१२९
न पुत्रसुखाद्युपलम्भमात्रादात्मनोऽनुग्रहः अपि तु सौमनस्यादि-	
जनित्वाभिमानिकपरिणतेः	१२९
न खलु सुखादि अविदितस्वरूपं पूर्वसुत्पन्नं पश्चात् तस्य ग्रहणम्	
अपि तु स्वरूपकारुण्यस्यैव सुखाद्यैरुदयः	१२९
विभिन्नप्रमाणप्राज्ञाणां सुखादीनामनुग्रहादिकारित्वविरोधः ...	१३०
आत्मनः सुखादेरस्वन्तमेदे आत्मीयेतरविभागाभावः	१३०
आत्मीयत्वं हि सुखादीनां तद्गुणत्वात्, तत्कार्यत्वात् तत्र समवा-	
यात्, तदाधेयत्वात्, तददृष्टनिष्पाद्यत्वात्	१३०
तदाधेयत्वं च किं तत्र समवायः तादात्म्यं तत्रोत्कलितत्वमात्रं वा ?	१३१
अदृष्टादेरपि भेदैकान्ते न आत्मीयत्वनिवयः	१३२
नैयायिकाभिमत्त्वानान्तरवेद्यज्ञानवाद्स्य निरासः ... १३२-१४२	
प्रमेयत्वात् ज्ञानस्य ज्ञानान्तरवेद्यत्वे सुखसंवेदनेन हेतोर्यभिचारो	
महेश्वरज्ञानेन च	१३२
ज्ञानस्य ज्ञानान्तरवेद्यत्वे अनवस्था	१३३
नच ज्ञानद्वयमीश्वरैः समानकालयावद्भव्यभाविज्जातीयगुणद्वयस्य	
एकत्राभावात्	१३३
द्वितीयज्ञानं च प्रत्यक्षमप्रत्यक्षं वा ?	१३३
प्रत्यक्षं चेत् स्वतो ज्ञानान्तराह्ला ?	१३३
अनयोर्ज्ञानयोर्महेश्वरज्ञेदे कथं तवीयत्वसिद्धिः ?	१३३
ज्ञानस्य ईश्वरे समवेतत्वं नेश्वरेण प्रतीयते, स्वसंवेदित्वप्रसङ्गात्	
नापि ज्ञानेन 'महेश्वरेऽहं समवेतम्' इति प्रतीतिः	१३४
ज्ञानज्ञानस्य अप्रत्यक्षत्वे च कथं महेश्वरस्य सर्वज्ञत्वम् ?	१३४
अप्रत्यक्षेण ज्ञानेन अशेषज्ञतायामीश्वरानीश्वरविभागाभावः ...	१३४
ज्ञानसामान्यस्य स्वपरप्रकाशकत्वं धर्मो न तु विशिष्टस्य ज्ञानस्य ...	१३५

विप्रयाः	६०
धर्मिणो ज्ञानस्यासिद्धेः आश्रयासिद्धः प्रमेयत्वादिति हेतुः ...	१३५
धर्मिज्ञानस्य सिद्धिः किं प्रत्यक्षादनुमानतो वा ?	१३५
न मानसप्रत्यक्षादपि धर्मिज्ञानसिद्धिः	१३५
घटादिज्ञानज्ञानमिन्द्रियार्थसन्निकर्षेण प्रत्यक्षत्वे सति ज्ञानत्वादि- त्यनुमानादपि न मनःसिद्धिः	१३६
स्वात्मनि क्रियाविरोधाच्च स्वसंवेदनं ज्ञानस्यैवात्र हि स्वात्मा किं क्रियायाः स्वरूपं क्रियावदात्मा वा ?	१३६
स्वात्मनि उत्पत्तिलक्षणा वा क्रिया विरुद्ध्यते परिस्पन्दात्मिका धालर्यरूपा ज्ञतिरूपा वा ?	१३७
ज्ञानक्रियायाः कर्मतयाऽपि न स्वात्मनि विरोधः	१३७
ज्ञानान्तरापेक्षया तत्र कर्मत्वविरोधः स्वरूपापेक्षया वा ? ...	१३७
कर्मत्ववच्च ज्ञानक्रियातोऽर्थान्तरस्यैव करणत्वदर्शनात् करणत्वस्यापि विरोधोऽस्तु	१३८
युगपज्ज्ञानोत्पत्तिप्रतीतिः न तदनुत्पत्त्या मनःसिद्धिः	१४०
'चक्षुरादिकं क्रमवत्कारणापेक्षं कारणान्तस्साकल्ये सत्यनुत्पाद्योत्पा- दकत्वात्' इत्यनुमानादपि न मनःसिद्धिः	१४०
अनुत्पाद्योत्पादकत्वं क्रमेण युगपद्वा ?	१४०
मनसोऽपि प्रतिनियतात्मीयत्वं तत्कार्यत्वात् तदुपक्रियमाणत्वात् तत्संयोगात् तददृष्टप्रेरितत्वात् तदात्मप्रेरितत्वाद्वा ?	१४१
ईश्वरस्य स्वसविदितज्ञानानभ्युपगमे 'सदसद्द्वर्गः एकज्ञानालम्बन- मनेकत्वात्' इत्यस्य व्यभिचारिता	१४२
आथे ज्ञाने सति द्वितीयज्ञानमुत्पद्यतेऽसति वा ?	१४२
तज्ज्ञानान्तरमस्मदावीनां प्रत्यक्षमप्रत्यक्षं वा ?	१४२
'प्रयोजनाभावाच्चतुर्थादिज्ञानकल्पनाऽभावाज्ज्ञानवस्था' इत्ययुक्तम्; ज्ञानस्य जिज्ञासाप्रभवत्त्वाभ्युपगमात्	१४५
अर्थजिज्ञासायामहं समुत्पन्नमिति तज्ज्ञानादेव प्रतीतिः ज्ञानान्तराद्वा ?	१४५
'अर्थज्ञानमर्थमात्मानं च प्रतिपद्य अज्ञातमेव मया ज्ञानमर्थपरिच्छे- दकम्' इति ज्ञानान्तरं प्रतीत्यादप्रतिपद्य वा ?	१४५
नापि शक्तिक्षयात् ईश्वरात् विषयान्तरसञ्चाराददृष्टाद्वा अनवस्था- वारणम्	१४६
स्वपरप्रकाशश्च स्वपरोद्योतनरूपोऽभ्युपगम्यते	१४७
स्वपरप्रकाशयोः कथञ्चिद्भेदाभेदात्मकत्वाऽभ्युपगमाच्च स्वभावत- द्वत्पक्षभाविनो दोषा.	१४८
प्रामाण्यत्वाद्ः	१४९-१७६
स्वतःप्रामाण्यं किमुत्पत्तौ ज्ञप्तौ स्वकार्ये वा ?	१५०

विषयाः	४७
प्रमाणस्य किं कार्यं यत्र स्वयं प्रवृत्तिः किं यथावैपरिच्छेदः प्रमाण- सिद्धमित्यवधारयो वा ?	१६५
अनुमानोत्पादकहेतौस्तु साध्याविनाभाविल्लनेव गुणः	१६५
आगमस्यापि गुणवत्पुरुषप्रणीतत्वेनैव प्रामाण्यम्	१६५
अपौरुषेयत्वं नीलोत्पलादिषु दहनादीनां वितयप्रतीतिजनकलोपल- भाद् व्यभिचारि	१६५
ज्ञप्तिश्च निर्निमित्ता सनिमित्ता वा ?	१६६
सनिमित्तत्वे स्वनिमित्ता अन्यनिमित्ता वा ?	१६६
अन्यनिमित्तत्वे तर्कि प्रत्यक्षमनुमानं वा ?	१६६
अनुमाने च' अर्थप्रकट्यं लिङ्गं किं यथावैल्लविशेषणविक्षिप्तं निर्विशेषणं वा ?	१६७
संवादश्च संवादरूपलादेव न संवादान्तरमपेक्षते	१६८
अर्थक्रियाज्ञानमपि न अर्थक्रियान्तराद् प्रामाण्यमभिप्राप्नोति यतः अनवस्था अपि तु स्वत एव	१६८
अर्थक्रियाहेतुज्ञानमिति प्रमाणलक्षणं कथं फलभूतायामर्थक्रियाया- भाष्यज्ञाते ?	१७०
भिन्नदेशवर्तिमणिप्रभायां अणिज्ञानस्य अप्रामाण्यमेव	१७१
कतिपर्यायक्रियादर्शनाच्च ज्ञानं प्रमाणम्	१७१
अस्तिनाभाव एव संवाद्यसंवादकभावनिमित्तं न समानजातीयत्वे- तरादि	१७१
बाधकाभावात्प्रामाण्ये किं बाधकाभावो बाधकाग्रहणे तदभाव- निश्चये वा ?	१७२
बाधकाभावनिश्चयोऽपि सम्यग्ज्ञानप्रवृत्तेः प्राक् उत्तरकालं वा ? ...	१७२
बाधकाभावनिश्चयेऽनुपलब्धिः किं प्राक्काला उत्तरकाला वा ? ...	१७२
अनुपलब्धिः स्वसम्बन्धिनी आत्मसम्बन्धिनी वा स्यात् ? ...	१७३
त्रिभूतुरज्ञानमात्रोत्पत्तेः स्वतस्त्वस्वीकारे कथं न पंचमज्ञाने षड्वापेक्षा ?	१७३
चोदनाप्रभवज्ञानेन गुणवद्द्रुकूकलाभावात्कथं निःशंका प्रवृत्तिः ?	१७५
इति प्रथमः परिच्छेदः ।	
प्रत्यक्षैकप्रमाणत्वाद्ः	१७७-८०
(नार्वाकस्य पूर्वपक्षः) प्रत्यक्षमेकमेव प्रमाणम् अगौणत्वाद् ...	१७७
अनुमानाद्यर्थनिश्चयः	१७७
सामान्ये सिद्धसाध्याता विशेषेऽनुगमभावावः	१७७
ज्याप्तिग्रहण-पक्षधर्मतावयवस्य असंभवाद्वा अनुमानप्रवृत्तिः	१७७
(उत्तरपक्षः) अविस्वादाकलादनुमानं प्रमाणम्	१७८
अनुमानस्य कृतो गौणत्वं गौणार्थविषयत्वाद् प्रत्यक्षपूर्वकलाद्वा ? ...	१७८
ज्याप्तिग्रहणं तु तर्कप्रमाणेन	१७८

विषयाः	५०
सर्कमन्तरेण प्रत्यक्षप्रामाण्यस्य अगौणत्वादिल्लिगेनापि व्याप्तिप्रहण- सहाक्यमेव	१७८
अनुमानमात्रस्याप्रामाण्यम् अतीन्द्रियार्थानुमानस्य वा ?	१७९
अनुमानं विना न प्रत्यक्षस्य प्रामाण्यनिश्चयः, नापि परलोकाद्यभावः साधयितुं शक्यः	१८०
बौद्धाभिमतस्य प्रमेयद्वैविध्यात् प्रमाणद्वैविध्यस्य नि- रासः	१८०-८२
एक एव सामान्यविशेषात्माऽर्थः प्रमेय इति द्वैविध्यमसिद्धमेव ...	१८०
अनुमानस्य सामान्यमात्रविषयत्वे विशेषेष्वप्रवृत्तिरेव	१८०
व्यापकं गम्यम्, व्यापकं च कारणं कार्यस्य स्वभावो भावस्य अतः स्वलक्षणमेव गम्यम्	१८१
प्रमेयद्विल्लं प्रमाणद्विल्लस्य ज्ञातमज्ञातं वा ज्ञापकम् ?	१८१
ज्ञातं चेत् किं प्रत्यक्षादनुमानाद्वा ?	१८१
ज्ञान्यां प्रमेयद्विल्लस्य ज्ञाने प्रमेयद्विल्लस्य प्रमाणद्विल्लज्ञापकलक्ष- स्यात्	१८१
अन्यदपि ज्ञानम् एकमनेकं वा स्यात् ?	१८२
प्रत्यक्षसिद्धं प्रमेयद्वित्वं तु न युज्यते प्रमेयस्य सामान्यविशेषा- त्मकत्वात्	१८२
नैयायिकादिभिः आगमस्य पृथक् प्रामाण्यसमर्थनम्	१८२-८५
यथापि शब्दः परोक्षार्थं सम्बद्धमपि गमयति तथापि प्रत्यक्षादिवत् मिथसामग्रीजन्यतया पृथगेव प्रमाणम्	१८३
शाब्दं ज्ञानं न प्रत्यक्षं सविकल्पास्पष्टस्वभावत्वात्	१८३
नाप्यनुमानं त्रिरूपलिङ्गाप्रभवत्वादननुमेयार्थविषयत्वाच्च	१८३
न शब्दस्य पक्षधर्मैर्लं धर्मिणोऽयोगात्	१८३
नान्यथो धर्मो	१८३
शब्दोऽर्थवान् शब्दत्वादित्यत्र प्रतिज्ञार्थैकदेशासिद्धो हेतुः ...	१८३
न अर्थस्य शब्देनान्वयः	१८४
न हि यत्र देशे काले वा शब्दः तत्र अवश्यमर्थो विद्यते ...	१८४
मीमांसकादिभिरुपमानस्य पृथक् प्रामाण्यसमर्थनम्	१८५-८६
इदमनादू यदन्यत्र साहचर्योपाधितो ज्ञानं तदुपमानम् ...	१८५
तस्य विषयः साहचर्यविक्षिप्तो गौः गोविक्षिप्तं वा साहचर्यम् ...	१८५
अनधिगतार्थोधिगन्तुतया तस्य प्रामाण्यम्	१८५
नैदं प्रत्यक्षम्	१८६
नान्यनुमानं हेतुभावात्	१८६

विषयाः	पृ०
गोर्गतं गवयर्गतं वा सादृश्यमत्र हेतुः स्यात्	१८६
मीमांसकैः अर्थार्थपत्तेः पृथक् प्रामाण्यसमर्थनम् ...	१८७-१८८
प्रत्यक्षादिप्रमाणप्रसिद्धार्थेन यदविनामृताऽदृष्टार्थकल्पना साऽर्थापत्तिः	१८७
प्रत्यक्षपूर्विका-दाहाद्गहनक्षक्तिसम्बन्धः	१८७
अनुमानपूर्विका-सूर्ये गमनाद्गमनक्षक्तिसम्बन्धः	१८७
श्रुतार्थापत्तिः पीनो दिवा न भुङ्क्ते इति श्रवणाद् रात्रिमोजन- प्रतिपत्तिः	१८८
अर्थार्थपत्त्यर्थार्थपत्तिः शब्दे अर्थार्थपत्तिप्रबोधितवाचकसामर्थ्यान्निस्सल- ज्ञानम्	१८८
उपमानार्थापत्तिः-गवयोपमितायाः गोः तज्ज्ञानप्राप्तताक्षक्तिः	१८८
अभावार्थापत्तिः-अभावप्रमित्तचैत्राभावविशिष्टशृङ्गाचैत्रवह्निर्भाव- सिद्धिः	१८८
मीमांसकैः अभावप्रमाणसमर्थनम्	१८९-१९२
अभावप्रमाणं निवेष्ट्याघारादिसामग्रीतः उत्पन्नं कश्चित् घटादीना- मभावं विभावयति	१८९
अध्यक्षेण नाभावज्ञानम्	१८९
नानुमानेन हेतोरभावात्	१८९
यद्यभावो न स्यात्तदा कारणादिविभागतः प्रतीतस्य लोकव्यवहा- रस्याभावः स्यात्	१९०
प्रागभावादिभेदान्यथानुपपत्तेः वस्तुलभभावस्य	१९०
अनुवृत्तिव्यावृत्तिबुद्धिप्राप्त्याश्च वस्त्वभावः	१९०
प्रागभावादिभेदेन चतुर्विधोऽभावः	१९०
वस्त्वसङ्घरसिद्ध्यर्थमभावस्य प्रमाणता	१९०
सदसदात्मके वस्तुनि असदंशग्रहणाय अभावस्य प्रामाण्यम् ...	१९१
वस्तुभिन्नेऽपि सदसतोः धर्मयोः भेदः	१९१
नचाभावस्य भावरूपेण प्रमाणेन परिच्छेदः	१९२
जैनमतापेक्षया आगमादीनां परोक्षेऽन्तर्भावः	१९२
आगमादयः परोक्षम् अविशदस्तात्	१९२
उपमानस्य प्रत्यभिज्ञानेऽन्तर्भावः	१९३
अर्थार्थपत्तेरनुमानेऽन्तर्भावसमर्थनम्	१९३-१९५
अर्थार्थपत्त्युत्पापकोऽर्थोऽन्यथानुपपन्नत्वेनानवगतः अवगतो वा ? ...	१९३
अस्य अन्यथानुपपन्नत्वावगमः अर्थार्थपत्तेरेव प्रमाणान्तराद्वा ? ...	१९३
प्रमाणान्तरादविनाभावावगमे तत्किं भूयोदर्शनम् विपक्षेऽनु- पलम्भो वा ?	१९४

विषयाः	पृ०
दृष्टान्ते प्रवृत्तं भूयोदर्शनं दृष्टान्त एव अविनाभावं निश्चाययति साध्यधर्मिणि वा ?	१९४
'लिङ्गस्य दृष्टान्तेऽविनाभावग्रहणम्, अर्थापत्तौ तु पक्ष एव' इत्यपि नानयोः मेदं साधयति	१९४
लिङ्गस्य न सपक्षानुगमाद्भक्तता अपि तु अन्तर्व्याप्तिवलेन ...	१९४
सपक्षानुगमानुगमरूपेण अनुमानाऽर्थापत्त्योर्मेदं पक्षधर्मैलसहि- तायाः अर्थापत्तेः तद्वह्निताऽर्थापत्तिः पृथक् प्रमाणं स्यात् ...	१९५
विपक्षेऽनुपलम्बस्य सर्वात्मसम्बन्धिनोऽसिद्धानैकान्तिकत्वात् ...	१९५
शक्तिस्वरूपविचारः	१९५-२०२
(नैयायिकस्य पूर्वपक्षः) निष्ठा हि शक्तिः पृथिवीत्वादिकम् ...	१९६
अन्त्या तु चरमसहकारिरूपा	१९६
शक्तिर्नित्या अनित्या वा ?	१९६
अनित्या चेत् ; किं शक्तिमतः शक्ताभ्यायते अशक्ताद्वा ?	१९६
शक्तिः शक्तिमतो भिन्ना अभिन्ना वा ?	१९६
शक्तिः किमेका अनेका वा ?	१९७
(उत्तरपक्षः) ग्राहकप्रमाणाभावाच्छेफेरभावः अतीन्द्रियत्वाद्वा ? प्रतिनियतसामग्र्याः प्रतिनियतकार्यकारित्वमतीन्द्रियशक्तिसद्भा- वमन्तरेणानुपपन्नम्	१९७
शक्यत्वाभावे कथं प्रतिबन्धकमण्यादिसभिधानेऽप्यभिः स्वकार्यं न कुर्यात् ?	१९७
प्रतिबन्धकेन हि अभेः स्वरूपं प्रतिहन्यते सहकारिणो वा ? ...	१९७
प्रतिबन्धकेन स्वभावनिवृत्तौ उत्तम्भकसभिधाने कार्यानुत्पत्ति- प्रसङ्गात्	१९८
प्रतिबन्धकोत्तम्भकमणिमन्त्रयोरभावेऽभिः स्वकार्यं करोति न वा ? आद्ये कस्याभावः सहकारी ; तयोरन्यतरस्य उभयस्य वा ? ...	१९८
अन्यतरस्य चेत् ; किं प्रतिबन्धकस्य उत्तम्भकस्य वा ? ...	१९८
कस्याभावः कार्योत्पत्तौ सहकारी-किमितरेतरभावः प्रागभावः प्रभ्वंसो वा अभावमात्रं वा	१९८
यदि शक्तिर्नास्ति तदा मन्त्रादिना कंचित्प्रति प्रतिबन्धोऽप्यभिः स एवान्यस्य स्फोटोदिकं कार्यं कथं करोति ?	१९९
स्वरूपसहकारिव्यतिरेकेण शक्तेः प्रतीत्यभावे अदृष्टादेरपि अभावः स्यात्	१९९
पृथिवीलस्य शक्तिस्वरूपे मृत्पिण्डादपि पटोत्पत्तिः स्यात्	१९९
द्रव्यशक्तिस्तु नित्या पर्यायशक्तिस्त्वनित्या	२००
शक्तादेव शक्तिप्रादुर्भावः स्वीक्रियते	२००

विषयाः	५०
शक्तिः शक्तिमता कथञ्चिद्भिन्नाऽभिन्ना च	२०१
अर्थानां च अनेकैव शक्तिः कार्यभेदान्ध्यायानुपपत्तेः	२०१
अभावार्थापत्तिनिराकरणम्	२०२
गृहे यत्तस्य जीवनं तदेव गृहे चैत्रामावस्य विशेषणमुत अन्यत्र	२०२
पश्चाद्यवसंभवादसावर्थ्यापत्तिरनुमानरूपैव	२०३
अभावस्य प्रत्यक्षादावन्तर्भावः -	२०३-१६
द्विवैध्याधारो वस्तुन्तरं प्रतियोगिसंघट्टं प्रतीयते असंघट्टं वा ?	२०३
प्रतियोगिनोऽपि वस्तुन्तरसंघट्टस्य स्वरूपसंघट्टस्य वा ?	२०४
अभावांशो भावांशवत् प्रत्यक्षः	२०४
कचित् प्रत्यभिज्ञानरूपोऽप्यभावः	२०४
अनुपलब्धिर्लिंगतः प्रबोधने अनुमानस्वरूपोऽभावः	२०५
प्रतियोगिनिवृत्तिः प्रतियोगिस्वरूपसम्बद्धा असम्बद्धा वा ?	२०५
प्रमाणपक्षकाभावो नीरूपत्वात्कथमभावपरीच्छेदकः स्यात् ?	२०५
न च यत्र प्रमाणपक्षकाभावस्तत्रावश्यम् अभावज्ञानं भवति ...	२०६
प्रमाणपक्षकाभावश्च ज्ञातोऽज्ञातो वा तज्ज्ञानहेतुः ?	२०६
अन्यवस्तुनो भूतलस्य ज्ञानं तु प्रत्यक्षमेव	२०६
आत्मा च किं सर्वथा ज्ञाननिर्मुक्तः कथञ्चिद्वा ?	२०६
भावरूपेणापि प्रत्यक्षेणामावो वेद्यते	२०७
अभावादपि च भावस्य प्रतीतिः भावादपि चाभावस्येति ...	२०७
इतरैतरभावविचारः	२०६-२११
यदि चैतरैतरभाववशाद् घटः पटादिभ्यो व्यावर्तेत तर्हि इतरै-	
तरभावोऽपि भावादभावान्तरात् स्वतो व्यावर्तेत अन्यतो वा ?	२०८
अन्यतश्चेत् किमितरैतरभावान्तरात् असाधारणवर्माद्वा ?	२०८
इतरैतरभावोऽपि असाधारणवर्मेणाव्यावृत्तस्य भेदको व्यावृत्तस्य वा ?	२०८
इतरैतरभावेन घटे पटः प्रतिविध्यते पटलसामान्यं वा समर्थं वा ?	२०९
किं पटविधिष्ठे घटे पटः प्रतिविध्यते पटविधिष्ठे वा ?	२०९
इतरैतरभावादन्त्या पटविधिरुक्ता स एव वा विधिरुक्ताद्यब्दाभिव्येयः ?	२०९
'घटे पटो नास्ति' इति पटरूपताप्रतिषेधः सा किं प्राप्ता प्रतिवि-	
ध्यते अप्राप्ता वा ?	२०९
'अन्यत्र प्रातं पटरूपमन्यत्र प्रतिविध्यते' इत्यत्र किं सनवायप्रति-	
षेधः संयोगप्रतिषेधो वा ?	२०९
इतरैतरभावप्रतिपत्तिपूर्विका घटप्रतिपत्तिः, घटग्रहणपूर्वकत्वं चैत-	
रैतरभावग्रहणस्य ?	२०९
घटश्च गृह्यमाणः पटादिभ्यो व्यावृत्तो गृह्यतेऽव्यावृत्तो वा ?	२१०

विषयाः	५०
व्याहृतस्य ग्रहणे किं कतिपयपटादिव्यक्तिभ्योऽसौ व्यावर्तते सकल- पटादिव्यक्तिभ्यो वा ?	२१०
घटंश्च घटान्तरार्थिकं घटरूपतया व्यावर्ततेऽन्यथा वा ?	२१०
यद्यघटरूपतया; तत्किमघटरूपता पटादिवद् घटेऽप्यस्ति न वा ?	२१०
घटासम्भविभूतलगतसाधारणधर्मोपलक्षितं हि भूतलं घटाभावः	२११
प्रागभावविचारः	२११-२१४
सत्प्रत्ययविलक्षणत्वस्य हेतोः 'प्रागभावादौ नास्ति प्रध्वंसादिः' इति प्रत्ययेनानैकान्तिकत्वात्	२११
न प्रागभावः प्रध्वंसादौ इत्यादेरभावविशेषणस्याप्यभावस्य प्रतिषेधः	२१२
प्रागभावः सादिः सान्तः परिकल्प्यते सादिरनन्तः अनादिः सान्तो वा अनाद्यनन्तो वा ?	२१२
अनन्ताश्च प्रागभावाः किं खतञ्चाः भावतञ्चा वा ?	२१२
भावतञ्चाश्चेत् किमुत्पन्नभावतञ्चाः उत्पत्त्यमानभावतञ्चा वा ? ...	२१२
विशेषणमेदात् प्रागभावस्य भेदे एक एवाभावः स्वीकार्यः तस्यैव विशेषणमेदाच्चातुर्विध्यं स्यात्	२१३
सतैकत्वेऽपि यथा विशेषणवशाद्विभिन्नप्रत्ययास्तथा अभावस्यैक- त्वेऽपि प्रागभावादि प्रत्ययमेदाः भविष्यन्ति	२१३
प्रागभावोऽपि भावान्तररूप एव, प्रागनन्तरपरिणामविशिष्टं नृद्- ध्यमेव घटप्रागभावः	२१४
गुच्छत्वभावत्वे हि सहोत्पत्तिवतां सम्यत्तरगोविषाणादीनामुपादान- सांकर्यं स्यात्	२१४
प्रध्वंसाभावविचारः	२१४-१६
यदभावे नियमतः कार्यविपत्तिः स प्रध्वंसो यथा नृद्भव्यानन्तरो- त्तरपरिणामः	२१५
प्रध्वंसस्य गुच्छरूपत्वे मुद्गरादिव्यापारवैयर्थ्यं स्यात्	२१५
प्रध्वंसो हि घटादिव्यापारेण घटादेर्मिथः विधीयते भविष्यो वा ?	२१५
विनाशसम्बन्धाद्विनष्टप्रत्यये विनाशतद्गतोः किं तादात्म्यं तद्दुत्पत्तिः विशेषणविशेष्यभारो ज्ञा सम्बन्धः स्यात् ?	२१५
प्रध्वंसस्य उत्तरपर्यायात्मकत्वे तद्विनाशे न पूर्वस्य पुनरुत्थानम् ; कारणस्य कार्योपमर्दानात्मकत्वात्	२१५
विभिन्नधामिप्रभवतयाऽपि न कपाङ्गभ्योऽभावस्य अर्थान्तरत्वं किन्तु एकेनैव मुद्गरादिव्यापारेण घटविनाश-कपालोत्पादयो- रुत्पत्तौः	२१६
प्रत्यक्षस्य स्वरूपम्	२१६

विषयाः

५७

अकस्माद्भूमदर्शनाद्बहिरत्रेति ज्ञानं व्याप्तिज्ञानं वा न प्रत्यक्षम- स्पष्टत्वात् २१६	२१६
अकस्माद्भूमदर्शनजनितवह्निज्ञाने सामान्यं प्रतिभासेत विशेषो वा ? अस्पष्टत्वं किं ज्ञानधर्मः अर्थधर्मो वा ? २१७	२१६
संवेदनस्यैव हि अस्पष्टताधर्मः स्पष्टतावत् २१७	२१७
नचास्पष्टसंवेदनं निर्विषयं संवादकत्वात् २१८	२१८
ततः उत्पन्नाया अतदाकारबुद्धेः अस्पष्टत्वे द्विचन्द्रबुद्धावपि अस्प- ष्टव्यवहारः स्यात् २१८	२१८
स्पष्टज्ञानावरणवीर्यान्तरायक्षयोपशमादेव क्वचिज्ज्ञाने स्पष्टता ... न हि अक्षात् स्पष्टता २१८	२१८
वैशद्यस्य लक्षणम् २१९	२१९
ईहावीनामपरापरेन्द्रियव्यापारादेवोत्पद्यमानत्वात् तत्र प्रतीत्यन्तर- व्यवधानम् २१९	२१९
परोक्षज्ञानानां स्वसंवेदनस्य प्रत्यक्षत्वात् २२०	२२०
बहिरर्थग्रहणापेक्षया हि विज्ञानानां प्रत्यक्षेतरव्यपदेशः न स्वरूप- ग्रहणापेक्षया २२०	२२०
नैयायिकाद्यभिमतचक्षुःसन्निकर्षवादनिरासः ... २२०-२२१	२२०-२२१
बाह्येन्द्रियत्वेन प्राप्यकारित्वे कियिदं बाह्येन्द्रियत्वं किं बहिरर्थमि- शुक्त्यं बहिर्देशावस्थायित्वं वा ? २२१	२२१
न च बाह्यविशेषणेन मनो व्यवच्छेद्यं तस्यापि संयुक्तसमवाय- सन्निकर्षबलेनैव सुखादौ ज्ञानजनकत्वात् २२१	२२१
चक्षुश्च धर्मित्वेनोपात्तं गोलकस्वभावं रदिमरूपं वा ? २२१	२२१
न च रदिमरूपचक्षुषः इन्द्रियेण सन्निकर्षोऽस्ति येन तस्य प्रत्यक्षता अनुमानाग्रदिमसाधने किमत एव अनुमानान्तराद्वा तत्सिद्धिः ई यदि च रश्मयः चक्षुःशब्दवाच्याः तदा गोलकस्योन्मीलनमञ्ज- नादिना संस्कारश्च वृथैव २२२	२२२
गोलकादिलमस्य च कामलादेः प्रकाशकत्वं स्यात् तत्र व्यक्तिरू- पस्य शक्तिरूपस्य च चक्षुषः सम्बन्धसङ्गावात् २२२	२२२
शक्तिरूपं च चक्षुः व्यक्तिरूपचक्षुषो मित्तदेशमभिन्नदेशं वा ? ... अभिन्नदेशं चेत्, तत्तत्र सम्बद्धमसम्बद्धं वा ? २२२	२२२
गोलकाग्निःसरन्ति चेद्रश्मयस्तदा तेषां रूपस्पर्शावतां प्रत्यक्षेणैवो- पलब्धिः स्यात् २२३	२२३
अनुद्भूतरूपस्पर्शस्य तेजोद्रव्यस्याप्रतीतेः २२३	२२३
तेजसत्त्वाद्भेदोः किं चक्षुषो रश्मयः साध्यन्ते, अन्यतः सिद्धानां तेषां ग्राह्यार्थसम्बन्धो वा ? २२४	२२४

विषयाः	५०
स्वत उत्पद्यते इति किं कारणमन्तरेण उत्पद्यते स्वसामग्रीतो विज्ञानसामग्रीतो वा ?	१५०
(मीमांसकस्य पूर्वपक्षः) गुणविशेषणविशिष्टेभ्यः चक्षुरादिभ्यो न प्रामाण्यमुत्पद्यते प्रत्यक्षतोऽनुमानतो वा गुणानामप्रतीतेः	१५१
गुणानुमानमपि स्वभावलिङ्गात् कार्यात् अनुपलब्धेषु भवेत् ? ...	१५१
यथार्थोपलब्धिस्तु स्वरूपमात्रानुमापिका न गुणानुमापिका ...	१५२
नैर्मल्यं च स्वरूपमेव न गुणः	१५२
अर्थतयात्प्रकाशानलक्षणप्रामाण्यस्य चक्षुरादिभ्योऽनुत्पत्तौ ततः प्राक् विज्ञानस्य स्वरूपं वक्तव्यम्	१५२
अर्थतयात्परिच्छेदरूपा शक्तिः प्रामाण्यम्, शक्यश्च स्वत एवोत्पद्यन्ते	१५३
ज्ञप्तिरपि प्रामाण्ये कारणगुणानपेक्षते संवादप्रत्ययं वा ?	१५४
संवादज्ञानमपि समानजातीयं भिन्नजातीयं वा ?	१५४
समानजातीयमपि एकसन्तानप्रभवं भिन्नसन्तानप्रभवं वा ? ...	१५४
एकसन्तानप्रभवमपि अभिन्नविषयं भिन्नविषयं वा ?	१५४
भिन्नजातीयं च किमर्थक्रियाज्ञानमुत्तान्यत् ?	१५४
अर्थक्रियाज्ञानस्य च अन्यार्थक्रियाज्ञानात् प्रामाण्यनिश्चयः प्रथमप्रमाणाद्वा ?	१५५
समानकालमर्थक्रियाज्ञानं प्रामाण्यव्यवस्थापकं भिन्नकालं वा ? ...	१५५
यथैककालं पूर्वज्ञानविषयं तदविषयं वा ?	१५५
अप्रामाण्ये बाधकारणदोषज्ञानयोरवश्यंभावित्वात् परतोऽप्रामाण्यनिश्चयः	१५६
चोदनावृद्धिस्तु अपौरुषेयत्वात् स्वतःप्रमाणम्	१५६
स्वकार्यं च संवादप्रत्ययमपेक्षेत कारणगुणान् वा ?	१५६
कारणगुणाश्च गृहीताः अगृहीता वा सहकारिणः स्युः ?	१५६
(उत्तरपक्षः) शक्तिरूपे इन्द्रिये गुणानामभावात् साध्यते व्यक्तिरूपे वा ?	१५९
आतमात्रस्य नैर्मल्यप्रतीतेः तस्य गुणरूपत्वाभावे तिमिरादिदोषस्य दोषरूपत्वमपि न स्यात्	१५९
घटादीनां च रूपादिगुणस्वभावता न स्यात्	१६०
नैर्मल्यत्वादेर्मल्यभावरूपत्वेपि न गुणरूपताशक्तिः	१६०
दोषाभावस्यैव गुणत्वात्	१६१
शक्तिरूपप्रामाण्यस्य स्वतो भावे अप्रामाण्यघकेरपि स्वतो भावोऽस्तु संवेदनस्वरूपस्य आत्मलाभे कारणापेक्षितायां नान्या कान्चित् प्रवृत्तियां स्वयं स्यात्	१६४

विषयाः

पृ०

मार्कारादिचक्षुषो मासुररूपदर्शनात् तैजसत्वे गवादिलोचनयोः कृष्णलस्य नारीनयनयोः घावत्यस्य चोपलम्भात् पार्थिवत्वमा- प्यत्वं च स्यात्	२२४
रूपादीनां मध्ये रूपस्यैव प्रकाशकत्वादिति हेतोरपि न चक्षुषस्तैज- सत्वसिद्धिः माणिक्यादिना व्यभिचारात्	२२५
न तैजसं चक्षुः तमःप्रकाशकत्वात्	२२५
रूपादीनां मध्ये रूपस्यैव प्रकाशकत्वादिति हेतुः जलाञ्जनचन्द्रमाणि- क्यादिभिरनैकान्तिकः	२२५
द्रव्यं रूपप्रकाशकं मासुररूपमभासुररूपं वा ?	२२६
संयुक्तसमवायवशाच्चक्षुर्यथा रूपप्रकाशकं तथा रसादिप्रकाशक- मपि स्यात्	२२७
कथं च चक्षुषा स्फटिकाद्यन्तरितार्थस्य ग्रहणम् ?	२२७
यदि रश्मयः स्फटिकं भिन्दन्ति तदा तैः समलजलान्तरितार्थस्यो- पलम्बिः स्यात्	२२८
नीरेण नाशितत्वाच्च समलजलान्तरितस्योपलम्बिश्चेत् कथं स्वच्छ- जलान्तरितस्योपलम्बिः	२२८
चक्षुरग्राप्तार्थप्रकाशकम् अस्यासन्नार्थाप्रकाशकत्वात्	२२८
न च साध्यावशिष्टलम् ; असन्नसाधनत्वादस्य	२२८
न च स्पर्शनेन आभ्यन्तरज्ञरीरावयवस्पर्शाऽप्रकाशकेन व्यभि- चारः ; स्वकारणव्यतिरिक्तार्थप्रकाशकत्वस्य विवक्षितत्वात्	२२८
चक्षुर्गला नार्थेन सम्बन्धते इन्द्रियत्वात् स्पर्शानादीन्प्रयवदिस्यजु- मानादप्राप्यकारिलसिद्धिः	२२९
सांख्यवह्नारिकप्रत्यक्षस्य लक्षणम्	२२९
द्रव्येन्द्रियं पुद्गलात्मकम्	२२९
भावेन्द्रियं लब्धुपयोगात्मकम्	२२९
लब्धुपयोगयोः लक्षणम्	२२९
यौगाभिमतस्य इन्द्रियाणां प्रतिनियतभूतकार्यत्वस्य- निरासः	२३०
गन्धस्यैवाभिव्यञ्जकत्वात् पार्थिवं प्राणमिति सूर्यरश्मिमिरुदकसेकेन च व्यभिचारि	२३०
रसस्यैवाभिव्यञ्जकत्वाद्द्रव्यनभाप्यमिति च लवणेनानैकान्तिकम्	२३०
रूपस्यैवाभिव्यञ्जकत्वात् तैजसं चक्षुरिति माणिक्यादिना व्यभिचारि	२३०
स्पर्शस्यैवाभिव्यञ्जकत्वाद्वायव्यं स्पर्शनमिति कर्पूरादिनाऽनैकान्तिकम्	२३०
अर्थालौकौ न कारणं परिच्छेद्यत्वात्	२३१

विषयाः	५०
बौद्धनैयायिकाद्याभिमतया अर्थकारणताया निरासः	२३२-२७
अर्थकार्यतया ज्ञानं प्रत्यक्षतः प्रतीयते प्रमाणान्तराद्वा ? ...	२३२
प्रत्यक्षत्वेत्; तत एव प्रत्यक्षान्तराद्वा ? ...	२३२
प्रमाणान्तरं च किं ज्ञानविषयम्, अर्थविषयम्, उभयविषयं वा स्यात् ? ...	२३२
नानुमानादर्थकार्यतावसायः अन्वयव्यतिरेकानुविधानामावात् केशो- ण्डकादिज्ञानवत् ...	२३३
केशोण्डकज्ञाने हि केशोण्डकस्य व्यापारः नयनपक्षादेर्वा तत्के- शानां वा कामलादेर्वा ? ...	२३३
संशयज्ञानेन च व्यभिचारः, नहि तदर्थे सति भवति ...	२३४
संशयविपर्यययोः सामान्यं वा हेतुः विशेषो वा द्वयं वा ? ...	२३४
कारणमेव परिच्छेद्यमित्यभ्युपगमे योमिनः अतीतज्ञलमेव स्थल वर्तमानानागतज्ञलम् ...	२३५
भावस्योत्पद्यमानता किमुत्पद्यमानार्थसमसमयभाविना ज्ञानेन प्रती- येत पूर्वभाविना उपरकालभाविना वा ? ...	२३६
निलेश्वरज्ञानपक्षे च सिद्धमकारणस्याप्यर्थस्य परिच्छेद्यत्वम् ...	२३६
नन्वर्थाभावे ज्ञानसद्भावे अतीतानागतादावपि ज्ञानं स्यादित्यत्र किं तत्रोत्पद्येत तद्ग्राहकं वा भवेदिति ? ...	२३७
बौद्धनैयायिकाभिमतया आलोककारणताया निरासः	२३७-२३९
अखनादिसंस्कृतचक्षुषां नक्षत्राणां च आलोकभावेऽपि ज्ञानोत्पत्तेः	२३७
अन्धकारेऽपि अन्धकारस्य ज्ञानमस्त्येव ...	२३८
न ज्ञानाद्युत्पत्तिमात्रमन्धकारः ...	२३८
आलोकज्ञानस्य च अत एवालोकाद्वैशद्यम् आलोकान्तरादन्यतो वा कृतञ्चित् ? ...	२३८
प्रवीपादयश्च आवरणापनयनद्वारेण अर्थे प्राप्यताम् इन्द्रियमनसोर्वा प्राहकताद्युत्पादयन्ति ...	२३८
योग्यतालक्षणम् ...	२४०
योग्यताबलादेव प्रतिनियतार्थव्यवस्था ...	२४०
कारणस्य परिच्छेद्यत्वनियमे इन्द्रियादिना व्यभिचारः	२४०
मुख्यप्रत्यक्षलक्षणम् ...	२४१
आवरणविचारः ...	२४१-४४
आवरणं हि घरीरं रगादयः देशकालादिकं वा ? ...	२४१
न घरीरादिकमावरणं किन्तु पौडूलिकं कर्म ...	२४२
कर्मेणां सद्भावसिद्धिः ...	२४२

विषयाः	पृ०
त्राविवैष्य आवरणम्; अदिरादिना मूर्तेनापि अमूर्तस्य ज्ञानादेरा- वरणदर्शनात्	२४३
कर्मणात्मगुणत्वे हि आत्मपारतन्त्र्यनिमित्तत्वं न स्यात् ...	२४३
आत्मो परतन्त्रः हीनस्थानपरिग्रहवत्त्वात्	२४३
कर्म पौद्गलिकमात्मनः पारतन्त्र्यनिमित्तत्वात्	२४३
नापि प्रधानविवर्तः कर्म; आत्मपारतन्त्र्यनिमित्तत्वाभावे कर्म- लायोगात्	२४४
संस्वरनिर्ज्वरयोः सिद्धिः	२४४-४६
सम्यग्दर्शनादिभ्यः संस्वरो निर्ज्वरा च भवतः	२४५
विपाकान्तत्वात् निर्ज्वरा कर्मणाम्	२४५
कारतन्त्र्यप्रकर्षदर्शनात् क्वचित् सम्यग्दर्शनादेः परमः प्रकर्षः संभवति	२४५
आवरणहानिः क्वचित्प्रकृत्यते आवरणहानित्वात्	२४६
नागमद्वारेण अक्षोषार्थयोचरं ज्ञानं विवक्षितम्	२४६
भावनाप्रकर्षपर्यन्तजलाद्योगिज्ञानस्य आवरणक्षयहेतुकत्वमिति चेत्; न; भावनाप्रतिबन्धकामावे भावनावत् ज्ञानप्रतिबन्धकपापे सर्वज्ञता भवत्येव	२४७
सर्वज्ञत्वत्त्वात्	२४७-२५६
(नीमांसकस्य पूर्वपक्षः) नास्ति सर्वज्ञः सद्गुणलम्बकप्रमाणपक्ष- क्योचरचारित्वाभावात्	२४७
न प्रत्यक्षेण अतीन्द्रियसर्वज्ञसद्भावः प्रतीयते	२४७
नाप्यनुमानेन; अविनाभावग्रहणासंभवात्	२४७
सर्वज्ञसत्तासाधने भावाभावोभयघर्माणां हेतूनामसिद्धविरुद्धावैका- न्तिकत्वम्	२४८
अविशेषेण सर्वज्ञः साध्यते विशेषेण वा ?	२४८
'कस्यचित्प्रत्यक्षाः' इत्यत्र हि एकज्ञानप्रत्यक्षत्वं सूत्रार्थार्थानामभि- प्रेतमनेकज्ञानप्रत्यक्षत्वं वा ?	२४८
प्रमेयत्वञ्च किमशेषज्ञेयव्यापिप्रमाणविषयत्वरूपम्, असदादिप्रमाण- विषयत्वरूपं वा, उभयव्यक्तिसाधारणसामान्यत्वमार्थं वा ? ...	२४९
भाग्यो हि नित्यः अनित्यो वा सर्वज्ञप्रतिपादकः ?	२४९
नाप्युपमानात् सर्वज्ञतासिद्धिः	२४९
साध्यर्थापत्तितः सर्वज्ञसिद्धिः	२५०
देशान्तरे कालान्तरे वा नान्यदक्षप्रमाणसंभावना, येन देशकाला- न्तरे सर्वज्ञतासिद्धिः स्यात्	२५१
इन्द्रियादीनां स्वार्थात्तिलङ्घनेन नास्तिद्यो भवितुमर्हति	२५१

विषयाः	पृ०
प्रसङ्गविपर्ययाभ्यां च सर्वज्ञत्वं बाध्यते	२५२
सर्वज्ञस्य ज्ञानं चक्षुरादिजनितं धर्मादिग्राहकम्, अभ्यासजनितं वा, शब्दप्रभवं वा, अनुमानाविर्भूतं वा ?	२५३
अखिलार्थग्रहणं सर्वज्ञस्य, प्रधानभूतकतिपर्यायग्रहणं वा ? ...	२५४
आद्यपक्षे क्रमेण तद्ग्रहणं युगपद्वा ?	२५४
एकक्षण एवाशेषार्थग्रहणात् द्वितीयक्षणे अकिञ्चिद्भङ्गः स्यात् ...	२५४
परस्थरागादिसाक्षात्करणाच्च रागादिमत्त्वम्	२५४
कथञ्चातीतानागतग्रहणं तत्स्वरूपामावात्	२५४
तद्ग्राह्याखिलार्थाग्रहणे तत्कालेपि सर्वज्ञः कथं ज्ञातुं शक्य इति ?	२५४
(उत्तरपक्षः) सर्वज्ञसाधकमनुमानम्	२५५
न चात्र सर्वज्ञो धर्मा किन्तु कश्चिदात्मा	२५५
सत्तासाधने दोषत्रयं धूमादभ्यनुमानेऽपि समानम्	२५५
सामान्यत एव सर्वज्ञः साध्यते, विशेषतः पुनर्दृष्ट्याविरुद्धवाक्या- दर्शनेव सेत्स्यति	२५६
प्रत्यक्षसामान्येन च सूक्ष्माद्यर्थानां कस्यचित्प्रत्यक्षत्वं साध्यते ...	२५६
योगिप्रत्यक्षमिन्द्रियाद्यनपेक्षं सूक्ष्माद्यर्थविषयत्वात्	२५६
एवं साध्यविकल्पे सर्वानुमानोच्छेदः—साध्यधर्मिषमोऽभिः साध्य- त्वेनाभिप्रेतः दृष्टान्तधर्मिषमो वा उभयधर्मो वा ?	२५६
तथा धूमोऽपि साध्यधर्मिषमो हेतुः दृष्टान्तधर्मिषमो वा उभय- गतसामान्यरूपो वा ?	२५७
न च प्रत्यक्षत्वसत्सम्प्रयोगजलवियमानोपलम्बनस्य धर्माद्यनिमित्त- त्वानां व्याप्यव्यापकभावः सिद्धो येन प्रसङ्गविपर्ययाभ्यां सर्वज्ञत्वं बाध्येत	२५७
धर्मादेरतीन्द्रियत्वाच्चक्षुरादिनाऽनुपलम्बः अनिश्चयमानत्वाद्वा अवि- शेषणत्वाद्वा ?	२५८
सामान्यतः उत्पाददियुक्तं सदिति ज्ञानसम्भवात् अभ्यासो युक्त एव	२५९
आगमादिज्ञानेनाभ्यासप्रतिबन्धकापायादिसामग्रीसद्भावेन सर्वज्ञ- साविर्भाव्यते	२५९
सकलचरणक्षये सहस्रकिरणवद् युगपदशेषार्थप्रकाशकस्य भावत्वं सर्वज्ञज्ञानस्य	२६०
परस्परविरुद्धशीतोष्णाद्यर्थानामभावादप्रतिभासः ज्ञानस्यासाम- र्थ्याद्वा ?	२६०
द्वितीयक्षणे हि नार्थानां न च ज्ञानस्याभावो येन अज्ञता स्यात् ...	२६०
रागिण्यकारणं हि रागरूपतया परिणमनं न तु रागस्य ज्ञानमात्रम्	२६०

विषयाः

पृ०

अतीतादेः स्वत्पासंभवः किमतीतादिकालसम्बन्धिबलेन तज्ज्ञानकालसम्बन्धिबलेन वा ?	२६१
ज्ञानस्य किमिदं विश्रान्तत्वं नाम—किं किञ्चित्परिच्छेद्यापरस्यापरिच्छेदः, विषयदेशकालगमनासामर्थ्याद्वान्तरेऽवस्थानं वा, क्वचिद्विषये उत्पद्य विनाशो वा ?	२६१
असर्वज्ञोऽपि सर्वज्ञं ज्ञातुं समर्थः, कथमन्ययाऽवेदज्ञः जैमिनिं वेदार्थज्ञत्वेन जानीयात् ?	२६२
सुनिश्चितासम्भवद्वाचकप्रमाणत्वाच्च सर्वज्ञस्य संसिद्धिः	२६२
सर्वज्ञाभावः प्रत्यक्षेणाधिगम्यः प्रमाणान्तरेण वा ?	२६२
नापि निवर्तमानं प्रत्यक्षं सर्वज्ञाभावसाधकम्	२६२
वक्तुं हि हेतुः संवादिबहुलरूपं विपरीतं वा वक्तुमत्रं वा ?	२६३
वचनस्य असर्वज्ञत्वधर्मानुविधानाभावात्	२६४
व्यागमोऽपि तत्प्रणीतः अन्यप्रणीतो वाऽपौरुषेयो वा सर्वज्ञस्य वाचकः ?	२६४
नाप्युपमानात् सर्वज्ञाभावः साधयितुं शक्यः	२६५
नाऽन्यभावप्रमाणं सर्वज्ञाभावसाधकं तत्सामग्रीस्वरूपयोरसंभवात्	२६५
ईश्वरवादः	२६६-२६८
(बौगस्य पूर्वपक्षः) ईश्वरोऽनादिमुक्तः आनादिक्रियादिपरम्परयाः कर्तृत्वात्	२६६
क्रियादिकं बुद्धिमद्भेदकं कार्यत्वात्	२६६
क्रियादिगतकार्यत्वात् प्रासादादिगतकार्यत्वस्य वैलक्षण्यं व्युपपत्तिप्रतिपत्तौ प्रति उच्यते अव्युत्पन्नात् वा ?	२६६
न च अकृष्टप्रभवस्थावरादिषु कर्त्रभावो निश्चितः किन्त्वग्रहणम् क्रियादिमात्रान्वयव्यतिरेकोपलम्भात् तन्मात्रस्यैव कारणत्वे अदृष्टस्यापि कारणत्वं न स्यात्	२६७
न च स्थावरादिषु बुद्धिमतोऽभावादग्रहणं भावेऽप्यनुपलब्धिबलप्रसङ्गाद्धेति सन्दिग्धो व्यतिरेकः; सर्वानुमानोच्छेदप्रसङ्गात्	२६७
न च शरीराभावे कर्तृत्वाभावः	२६७
ज्ञानेच्छाप्रयत्नत्रयस्य कारकप्रयौक्त्यम्	२६८
सर्वज्ञता च अशेषकार्यकरणात्	२६८
वेदस्य कार्यवत् स्वरूपेऽपि प्रामाण्यमेव	२६८
भगवान् करुणया सृष्टिं कुरुते	२६९
अदृष्टसहकारिणश्च कर्तृत्वाच्च बुद्धिनामेव प्राणिनां विधानम् ...	२६९
अदृष्टश्च चेतनाधिष्ठितत्वेव अवर्ततेऽचेतनत्वात्	२६९

विप्रयाः	५०
महाभूतादिव्यकं चेतनाधिष्ठितं रूपादिमत्त्वात् अनित्यत्वादिति वार्ति-	
ककारोक्तं प्रमाणे	२६९
अविद्धकर्णोक्तं च प्रमाणं रूपादिमत्त्वादिति	२६९
सर्गादौ पुरुषव्यवहारः परोपदेशपूर्वक इत्यादि प्रथममत्सुक्तं	
प्रमाणम्	२७०
स्थित्वा प्रवृत्तेः इति उद्योतकरोक्तं प्रमाणम्	२७०
(उत्तरपक्षः) किमिदं सावयवत्वं येन कार्यत्वं साध्यते; किम्	
सहावयवैर्वर्तमानत्वम्, तैर्जन्यमानत्वं वा, सावयवमिति बुद्धि-	
विषयत्वं वा ?	२७०
प्रागसतः स्वकारणसमवायात् सत्तासमवायाद्वा कार्यत्वसिद्धौ कृतः	
प्राक् ?	२७१
कारणसमवायाच्चेत्, तत्समवायसमये प्राग्निवात्य स्वरूपसर्वस्या-	
भावो न वा ?	२७१
सत्ता सती असती वा ?	२७२
क्षित्यादेः कथञ्चित्कार्यत्वं सर्वथा वा ?	२७२
बुद्धिमत्कारणमित्यत्र हि बुद्धिः बुद्धिमतो भिन्ना अमिन्ना वा ?...	२७३
बुद्धिश्च ईश्वरे व्याप्त्या वर्तते अव्याप्त्या वा ?	२७३
ईश्वरबुद्धिः क्षणिका अक्षणिका वा ?	२७४
कार्यत्वं च अक्रियादर्शिनोऽपि कृतबुद्ध्युत्पादकत्वलक्षणं क्षित्यादौ	
नास्ति इत्यसिद्धौ हेतुः	२७४
न चैतत्कार्यसमं नाम जात्युत्तरम्	२७५
स्थावरादौ कर्त्रभावानिश्चये गगनादौ रूपाद्यभावानिश्चयः स्यात्	२७६
शरीराभावे ज्ञानचिकीर्षाप्रयत्नाधारत्वस्याप्यसंभवात्	२७६
अचेतनं चेतनाधिष्ठितमित्यस्य निरासः	२७६
न च कारकशक्तिपरिज्ञानाविनाभावि तत्प्रयोक्तृत्वम् तस्यानेकघोष-	
लम्भात्	२८०
कार्यमात्रादि कारणमात्रानुमाने विशेषविरुद्धताऽसम्भवः न पुनर्बु-	
द्धिमत्कारणानुमाने	२८०
कारणत्वात् सर्गविधाने सुखोत्पादकस्यैव शरीरादिसर्गस्य उत्पादकत्वम्	२८१
धर्माधर्मयोरपि ईश्वरायत्तत्वात्	२८१
अपवर्गविधानार्थं च सृष्टिविधाने कथमपूर्वसम्बन्धकर्तृत्वम्... ..	२८१
न ह्यर्थं नियमो यन्नितिलकार्यमेकेनैव कर्तव्यं नाप्येकनियतैर्बहु-	
भिरिति अनेकथा कार्यकर्तृत्वोपलम्भात्	२८३
समर्थस्वभावस्यैश्वरस्य सहकार्यपेक्षाप्यनुष्ण	२८३
सहकारिणोऽपि तद्वायत्तोत्पत्तयः अतदायत्तोत्पत्तयो वा ? ...	२८३

विषयाः	पृ०
वार्तिककारोक्तप्रमाणस्य रूपादिमरवादेः निरासः	२८३
'सर्गादौ पुनश्चाणां व्यवहारः' इत्यत्र उत्तरकालं प्रशुद्धानामिति विशेष- षणमसिद्धम्	२८३
स्थित्वाप्रवृत्तेरिति तु ईश्वरेणैव व्यभिचारि	२८४
क्षित्वादिकं नैकस्वभावमाद्यपूर्वकं विभिन्नदेशकालाकारत्वाद् इत्य- नेन ईश्वरनिरासः	२८५
प्रकृतिकर्तृत्वत्वाद्ः	२८५-२८७
(सांख्यस्य पूर्वपक्षः) निखिलजगत्कर्तृत्वाद् प्रकृतेरेव व्यक्षेपज्ञता	२८५
प्रकृतेर्महान् ततोऽहंकारः इत्यादि सृष्टिप्रक्रिया	२८५
प्रकृत्यात्मका एवेते महदादिभेदाः	२८६
त्रिगुणमित्यादि प्रधानस्य लक्षणम्	२८६
व्यक्ताऽव्यक्तयोः लक्षणम्	२८६
प्रधानात्मनि च महदादीनाम् असदकरणादुपादानग्रहणादिहेतुपक्ष- कात् सद्भावः	२८७
भेदानां परिमाणात् समन्वयात् शक्तिः प्रवृत्तेरित्यादिहेतुपक्षकात् कारणभूतस्य प्रधानस्य सिद्धिः	२८८
(उत्तरपक्षः) प्रकृत्यात्मकत्वे महदादीनां ततः कार्यतया प्रवृत्ति- विरोधः	२८९
न च निख्यस्य कारणभावोऽस्ति	२९०
परिणामश्च भवन् पूर्वरूपस्यागाद्धा भवेदस्यागाद्धा ?	२९०
सर्वथा पूर्वरूपस्यागः कथञ्चिद्वा ?	२९०
प्रवर्तमानो निवर्तमानश्च धर्मो धर्मिणोऽर्थान्तरभूतोऽनर्थान्तर- भूतो वा ?	२९१
यच्च सत्कार्यवादसमर्थनाय हेतुपक्षकं तदसत्कार्यवादेऽपि समानम्	२९१
सर्वथा सत्कार्यं कथञ्चिद्वा ?	२९१
शक्तिरूपेण सत् चेत्; तच्छक्तिरूपं दृष्यादेर्मिथमभिन्नं वा ? ...	२९२
अभिव्यक्तौ कारणानां व्यापारे अभिव्यक्तिः पूर्वं सती असती वा ?	२९२
एतेषां हेतूनां संशयविनाशानं निश्चयोत्पादनं च सत्कार्यवादे दुर्घटम्	२९३
निश्चयस्य अभिव्यक्तिः किं स्वभावातिशयोत्पत्तिः, तद्विषयज्ञानम्, तदुपलम्भावरणविगमो वा ?	२९३
अतिशयश्च सन् असन्वा क्रियेत ?	२९३
बन्धमोक्षामावश्च सत्कार्यवादिनाम्	२९४
नहि यदसत् तत्क्रियते एवेति व्याप्तिः, किन्तु यत्क्रियते तत्प्रा- शुत्पत्तेः कथञ्चिदसदेव	२९४
भेदानां परिमाणस्य अनेककारणपूर्वकत्वेऽप्यविरोधः	२९५

विषयाः	पृ०
सुखादिसमन्वयश्च चान्दादिष्वसिद्ध एव	२९५
प्रसादतापादिकाद्यौपलम्भात् प्रधानान्वितत्वम् अनैकान्तिकमेव चेतनत्वादिधर्मैः पुरुषाणां नित्यत्वादिधर्मैश्च प्रधानपुरुषाणां समन्व- येऽपि नैककारणपूर्वकत्वम्	२९५
प्रेक्षावत्कारणमेतेभ्यो हेतुभ्यः साध्यत्वे कारणमात्रं वा ? ...	२९६
प्रधानात्मनि महदादीनामविभागव्यायुक्तः; प्रलयकालस्याभावात् महदादीनां लयश्च पूर्वस्वभावप्रच्युतौ भवेत्प्रच्युतौ वा ? ...	२९७
सैश्वर्यसांख्यवादिमतनिरासः	२९७-२९९
(पूर्वपक्षः) प्रधानं हि ईश्वरपक्षं कर्तुं	२९७
प्रधानगतं सत्त्वरजस्तमोगुणानाश्रित्य ईश्वरः स्थित्युत्पत्तिप्रलयहेतुः	२९८
(उत्तरपक्षः) प्रकृतेश्वरयोः सर्गाद्यन्यतमकार्यकाले तदपरकार्यद्वय- सामर्थ्यमस्ति न वा ?	२९८
प्रधानवृत्तिसत्त्वादीनामुद्भूतवृत्तित्वं नित्यमनित्यं वा ?	२९९
अनित्यं चेत्; किं प्रकृतेश्वरादेव, अन्यतो, वा हेतोः, स्वतन्त्रो वा प्रादुर्भावः स्यात् ?	२९९
भाव आत्मानं जनयति निष्पन्नोऽनिष्पन्नो वा ?	२९९
सितपटाभिमत्तस्य केवलिकवलाहारस्य निरासः ...	२९९-३०७
कवलाहारकारिणः केवलिनः अनन्तचतुष्टयस्वभावाभावः ...	२९९
अस्मदादिमुखादेः कादान्तिकतया भोजनादिभ्यः समुत्पादः न तु मगवत्सुखस्य अनन्तस्य	२९९
केवली न भुङ्क्ते रागद्वेषाभावाऽनन्तवीर्यसद्भावादन्यथाऽनुपपत्तेः	३००
भोजनं कुर्वतां साधूनां परमार्थतो वीतरागत्वाभावः	३००
कवलाहारित्वे च सरागलप्रसङ्गः	३००
कवलाहारागवैपि नो कर्मकर्मादानलक्षणाहारसद्भावात् देहस्थि- तिरविरुद्धा	३००
कवलाहारं विनापि त्रिदशाण्डजादीनामाहारित्वं भवति	३००
केवलिनः औदारिकवृत्तरीस्थितिर्हि परमौदारिकरूपा अतः आहा- रमावेऽपि तत्स्थितिः	३०१
केशादिबुद्ध्यभाववत् भुक्त्यभावोऽपि केवल्यवस्थायामभ्युपगन्तव्यः	३०१
तपोमाहात्म्याच्चतुरासलादिवत् अमुक्तिपूर्वकत्वेऽपि देहस्थितौ को विरोधः	३०२
आयुःकर्मैव हि प्रधानं देहस्थितिनिमित्तम्	३०२
वैदनीयकर्मसद्भावाच्च सत्फलमात्रं सिद्ध्येच्च पुनर्मुक्तिः	३०२
असातवेदनीयं च मोहकर्माभावात् सामर्थ्यविकलं न स्वकार्यकारि	३०३

विषयाः	पृ०
मोहनीयाभावेऽपि यदि अन्यकर्मोदयः कार्यकारी तदा परमातोद- यात् परात् तावद्येत् परैस्ताव्येत वा	३०३
यदि मोहनीयनिरपेक्षः कर्मोदयः कार्यकारी तदा अप्रमत्तादिषु वेदोदयात् मैथुनादिकं स्यात्	३०३
नामादीनां शुभप्रकृतीनां केवळिनि अप्रतिबद्धत्वात् स्वकार्यकारिता शुभुक्ता च न मोहनीयानपेक्षस्य वेदनीयस्यैव कार्यम्	३०४
भोजनाकांक्षा च प्रतिपक्षभावनातो निवर्तते स्याद्याकाङ्क्षात्	३०४
शुभुक्षार्यां केवली किं समवशरणास्थित एव भुङ्क्ते, चर्यामार्गेण वा गत्ता ?	३०५
'देवा आहारं सम्पादयन्ति' इति च निष्प्रमाणकम्	३०५
चर्यामार्गेण चेत्; किं गृहं गृहं गच्छति एकस्मिन्नेव वा गृहे भिक्षालाभं ज्ञात्वा प्रवर्तते ?	३०५
भोजनं च किमेकाकी करोति शिष्यैर्वा परिवृतः ?	३०६
केवली भुङ्क्ता प्रतिक्रमणादिकं करोति वा न वा ?	३०६
किमर्थं चासौ भुङ्क्ते-शरीरोपचयार्थं ज्ञानध्यानसंयमसिद्ध्यर्थं शुद्धेद- नाश्रुतीकारार्थं प्राणप्राणार्थं वा ?	३०६
'एकादश जिने' इति भागमस्य च एकेन अधिका न दश इत्यर्थ- कत्वेन परीपहृतिपे वपरलमेव	३०६
'भोजनं कुर्वाणो भगवान् नावलोकयते' इत्यत्रादर्शनेऽयुक्तसेविलादे- कान्तमाश्रित्य भुङ्क्ते इति कारणम्, बहुलान्वकारस्थितभोजनं वा, विद्याविशेषेण स्वस्य तिरोधानं वा ?	३०७
कथञ्चादस्याय दालुभिः भोजनं दीयते	३०७
मोक्षस्वरूपविचारः	३०७-३२८
(नैयायिकस्य पूर्वपक्षः) बुद्ध्यादिविशेषशुणोच्छेदरूपो मोक्षः बुद्ध्यादिसन्तानस्य अत्यन्तसुच्छिद्यमानत्वात्	३०७
आरब्धशरीरेन्द्रियविषयकार्ययोः कर्माधर्मयोः फलोपभोगात् प्रक्षयः	३०८
नाशुक्तं क्षीयते कर्म	३०८
'यथैवास्ति' इत्यागमोऽपि फलोपभोगद्वारैव कर्मक्षयं समर्थयति	३०९
अन्ये तु मिथ्याज्ञानजनितसंस्काराख्यसहकारिणोऽभावाद्द्विद्यमाना- न्यपि कर्माणि न जन्मान्तरे फलादानसमर्थानि इति मन्यन्ते; तेषां कर्मणा निलसत्तापत्तिः	३०९
निलसनेभित्तिकाशुभ्रानं च प्रत्यवायपरिहारार्थम्	३०९
जैदान्त्यभिमतता आनन्दरूपता इव मोक्षस्याशुष्का; यतो हि शुद्धं मोक्षे निलसनिर्वाणं वा ?	३१०

विध्याः	५०
नित्यवेदः तत्सर्ववेदनं नित्यमनित्यं वा ?	३१०
स्रींसारिकसुखेन सह नित्यसुखस्वावस्थानात् सुखद्वयोपलम्भः स्यात्	३११
अनित्यं हि सुखं न योगजधर्मानुग्रहीतान्तःकरणसंयोगात्; शुची	
योगजधर्माभावात्	३११
यदि सुखवस्थायां सुखं नित्यं तदा देहादिकमपि नित्यं कल्पनीयम्	३१२
सुखस्वभावत्वं च किं सुखस्वजातिसम्बन्धित्वं सुखाधिकरणत्वं वा ?	३१२
अत्यन्तप्रियबुद्धिविषयत्वमनन्यपरतयोपासीयमानत्वं च साधनम-	
सिद्धम्; दुःखितायामात्मन्यप्रियबुद्धेरपि भावात्	३१२
आनन्दं ब्रह्मणो रूपमित्यत्र आनन्दशब्दो हि दुःखामाने प्रयुक्त-	
त्वात्तौणः	३१३
आत्मस्वरूपात्तत्रिणं सुखमव्यतिरिक्तं व्यतिरिक्तं वा ?	३१३
बौद्धाभिमतो विद्वद्विज्ञानोत्पत्तिरूपोऽपि मोक्षो न युक्तः	३१३
रागादिमतो ज्ञानात् तद्वहितस्य उत्पत्त्ययोगात्	३१३
बोधोद्बोधरूपत्वे हि पूर्वकालमवित्यं समानजातीयत्वमेकसन्तानत्वं	
वा न हेतुः व्यभिचारात्	३१३
सुषुप्तावस्थायां ज्ञानाभ्युपगमे जाग्रदवस्थातो न कश्चिद्विज्ञेयः ...	३१४
अभ्यासाप्रागादिविनाशो न युक्तः; सौगतमते विनाशस्य निर्हेतु-	
कत्वात् अभ्यासानुपपत्तेश्च	३१४
जैनाभिमतोऽनेकान्तभावनातोऽपि न मोक्षः	३१५
अनेकान्तज्ञानं सिध्यैव विरोधादिदोषात्	३१५
स्वदेशादिषु सत्त्वं परदेशादिषु असत्त्वमितरेतरभावादिष्वप्यत एव	
शुक्तावपि अनेकान्तः स्यात्तथा च स एव युक्तः संसारी चेति	
प्राप्तम्	३१५
आत्मैकत्वज्ञानात् परमात्मलयरूपो मोक्षोऽपि न युक्तः ...	३१५
आत्मैकत्वज्ञानस्य सिध्यारूपत्वात्	३१५
शब्दाद्वैतज्ञानमपि सिध्यारूपत्वाच्च निःश्रेयससाधनम्	३१६
सांख्य्याभिमतप्रकृतिपुरुषविनेकोपलम्भमात्मस्वरूपे चैतन्यमात्रेऽव-	
स्थानं मोक्षः इत्यपि असङ्गतमेव	३१६
अचानं हि पुरुषत्वं निमित्तमपेक्ष्य पुरुषार्थसाधनाय प्रवर्तते अन-	
पेक्ष्य वा ?	३१६
यद्यपेक्ष्य प्रवर्तते तदा किमपेक्ष्यं विवेकानुपलम्भोऽदृष्टं वा ? ...	३१६
चिद्रूपेऽवस्थानमिति न युक्तम्; चिद्रूपताया अनित्यत्वात् ...	३१६
चिद्रूपता आत्मनोऽभिज्ञा भिज्ञा वा ?	३१७
(उत्तरपक्षः) बुद्ध्याधीनामात्मनः सर्वथा भिज्ञानाम् आत्मगुणत्व-	
मेव असिद्धम् ... ' ... ' ... ' ... '	३१७

विषयाः	५०
सन्तानस्य हेतुः सामान्यरूपो विशेषरूपो वा ?	३१७
विशेषरूपमपि उपादानोपादेयभूतबुद्ध्यादिलक्षणविशेषरूपम्, पूर्वापरसमानजातीयक्षणप्रवाहमात्ररूपं वा ?	३१७
शब्दप्रचीपावीनामस्यन्तोच्छेदाभावात् साध्यविकलो दृष्टान्तः ...	३१८
बुद्ध्यादिसन्तानो नास्यन्तोच्छेदवान् तथातुपलभ्यमानत्वादिति सप्र- तिपक्षश्च	३१८
तरवज्ञानस्य विपर्ययादिव्यवच्छेदक्रमेण धर्माधर्मादिनाशहेतुत्वैऽपि न बुद्ध्यादिविनाशहेतुता	३१८
इन्द्रियजनानां तु बुद्ध्यावीनां नाशोऽस्माभिरप्यभ्युपगम्यत एव ...	३१८
उपयोगात्कर्मणां प्रक्षये तदुपयोगकाले समुत्पन्नाऽभिल्लाषादपूर्वक- र्मप्रादुर्भावोऽवश्यम्भावी	३१९
आवन्दरूपता तु मोक्षे स्वीक्रियते एव किन्तु सा परिणामिनी नैकान्तगित्सा	३२०
तत्संबेदनस्योत्पत्तिकारणश्च ज्ञानावरणादिप्रतिबन्धकक्षय एव ...	३२०
विशुद्धज्ञानोत्पत्तिरूपोऽपि मोक्षोऽसीष्ट एव, परन्तु चित्तसन्तानः सान्त्वयोऽभ्युपगन्तव्यः	३२०
सन्तानैक्याद्ब्रह्मस्यैव मोक्षे यदि सन्तानार्थः परमार्थः सन् तदा आत्मैव नामान्तरेण उक्तः	३२१
सान्त्वयचित्तसन्तत्यभावे च प्रत्यभिज्ञानादिप्रादुर्भावो न स्यात् ...	३२१
सुषुप्तावस्थार्यां ज्ञानसद्भावेऽपि न जाग्रदवस्थातोऽविशेषः; तदानीं ज्ञानस्य भिद्वेनाभिभूतत्वात्	३२२
भिद्वेनाभिभवश्च स्वरूपसामर्थ्यप्रतिबन्धलक्षणोऽभ्युपगम्यते । ...	३२३
स्वापलक्षणार्थनिरूपणमप्यस्ति 'एतावत्कालं निरन्तरं सुप्तः एताव- त्कालश्च सान्तरम्' इत्यादिरूपम्	३२३
यावोऽहं तदा सुप्त इति स्मरणमेव च तादात्मिकाज्जन्मवे प्रमाणम् सुषुप्तावस्थार्यां विज्ञानाभावं स एवात्मा प्रतिपद्यते पार्श्वस्थो वा ?	३२३
श्रान्तान्तरासदभावगतौ; किं तत्कालमाविनः जाग्रदप्रबोधकाल- माविनो वा ?	३२३
'चैतन्यप्रभवप्राणादिः जाग्रदवस्थार्यां प्राणादिप्रभवप्राणादिश्च सुषु- प्तावस्थार्याम्' इत्यपि न युक्तम्; सुषुप्तेतरावस्थयोः प्राणादेर्विशो- षामावात्	३२४
सुषुप्तादौ चाद्यः प्राणादिः कृतो जायताम् ?	३२५
स्वापसुखसंबेदनं चात्र सुप्रतीतयेव	३२५

विषयाः	४७
अनेकान्तज्ञानमेव वस्तुतोऽबाधितं प्रतीयमाने विरोधाद्यनवकाशात्	३१६
इतरैतराभावात् स्वपरदेशादिषु सत्त्वासत्त्वे नाभ्युपगन्तुं युक्ते	
इतरैतराभावस्य प्रतिक्षेपात्	३१६
स हि घटाद्भिर्बोधोऽभिज्ञो वा ई	३१६
द्विविधोऽनेकान्तः क्रमानेकान्तः अक्रमाऽनेकान्तश्च	३१६
अनेकान्तेऽपि अनेकान्तः, प्रमाणपरिच्छिन्नानेकान्तस्य नयपरि- च्छेदैकान्ताऽविनाभावित्वात्	३१७
चैतन्यविशेषे धनन्तज्ञानादावस्थानस्यैव वस्तुतः भोक्षलम् ...	३१७
उत्पत्तिभत्त्वाज्ज्ञानस्य अचेतनत्वे धनुमवेन व्यभिचारः	३१७
ज्ञानादीनां चेतनसंसर्गाच्चैतनत्वे धारीरादीनामपि चैतन्यप्रसङ्गः ...	३१७
ततो नाऽचेतना ज्ञानादयः स्वसंबन्धत्वात्	३१८
सुखात्मको भोक्षः चेतनात्मकत्वे सखखिलदुःखविवेकात्मकत्वात्	३१८
अनन्तं तत् आत्मस्वभावत्वे सति अपेतप्रतिबन्धकत्वात् ...	३१८
श्वेतपटाभिर्मतायाः स्त्रीमुक्तेः निरासः	३२८-३३४
भोक्षहेतुः ज्ञानादिपरमप्रकर्षः स्त्रीषु नास्ति परमकर्षत्वात्	३२८
अयं नियमः-यद्वेदस्य भोक्षहेतुपरमप्रकर्षः तद्वेदस्य सप्तमपृथिवी- गमनकारणपापप्रकर्षोऽप्यस्ति	३२८
परमप्रकर्षत्वाद्वा हेतोः स्त्रीणां भोक्षहेतुपरमप्रकर्षाभावः	३२९
स्त्रीणां मायानाहुल्यमस्ति न तु तत्परमप्रकर्षः	३२९
स्त्रीणां संयमो न भोक्षहेतुः नियमेनर्दिविशेषाहेतुत्वात्	३३०
सचेत्संयमत्वाच्च न स्त्रीणां संयमः भोक्षहेतुः	३३०
स्त्रियो न भोक्षहेतुसंयमवत्सः साधूनामवन्थत्वात्	३३०
वाङ्माभ्यन्तरपरिग्रहवत्त्वाच्च न स्त्रियो भोक्षहेतुसंयमवत्सः ...	३३०
गृहीतेऽपि वस्त्रे जन्तूपघातस्तदवस्थ एव	३३१
वाङ्माभ्यन्तरपरिग्रहत्यागरूपः संयमः कथं याचनसीवनाद्युपाधि- मति वस्त्रे गृहीते स्यात्	३३१
जन्तुरक्षागण्डादिप्रतीकारार्थं पिच्छीषधादिग्रहणं न परिग्रहो ममे- दम्भावासूचकत्वात्	३३२
बुद्धिपूर्वकं हि पतितं वस्त्रं हस्तेनादाय परिदधानोऽपि कथं मूर्च्छा- रहितः स्यात् ई... ..	३३३
पुंवेदं वेदन्ता इत्यागमः भाववेदापेक्षयैव प्राणः	३३३
स्त्रीलान्यथानुपपत्तौ च न तासां भोक्षप्राप्तिः	३३३
नास्ति स्त्रीणां भोक्षः पुरुषादन्यत्वात्	३३३
नास्ति स्त्रीणां भोक्ष उच्छृष्ट्यान्फलत्वात् सप्तमनरकगमनवत् ...	३३४

इति, द्वितीयः परिच्छेदः ।

अथ तृतीयः परिच्छेदः (उत्तरार्धम्)



विषयाः	पृ०
परोक्षस्य लक्षणम्	३३५
परोक्षस्य भेदाः	३३५
स्मृतिलक्षणम्	३३५
स्मृतिप्रामाण्यवादः	३३६-३३८
स्मृतिः प्रमाणं संवादकत्वात्	३३६
(चौद्वितीनां पूर्वपक्षः) किं ज्ञानमात्रं स्मृतिः अनुभूतार्थविषयं वा विज्ञानम् ?	३३६
'अनुभूते जायमानम्' इति केन प्रतीयते अनुभवेन स्मृत्या वा ?	३३६
नचानुभूतता प्रत्यक्षगम्या यतस्त्वा अनुभवानुसारिस्मृतिर्जानीयात् (उत्तरपक्षः) न ज्ञानमात्रं स्मृतिः किन्तु तद्विलाकारं प्रागनुभूत-वस्तुविषयं विज्ञानम्	३३६
'अनुभूते स्मृतिः' इति अनुभवस्मरणपर्यायव्यापिना आत्मना प्रतीयते	३३६
परिच्छित्तिविशेषसद्भावश्च गृहीतप्राहितया स्मृतिरप्रमाणम् ...	३३६
विद्यदं भावनाज्ञानं तु न प्रमाणम्	३३७
अनुभूतविषयत्वात्स्मरणस्याप्रामाण्ये अनुमानाधिगते बहौ प्रवर्त-मानं प्रत्यक्षमप्यप्रमाणं स्यात्	३३७
असत्यतीतेऽर्थे प्रवर्तनं तु प्रत्यक्षेऽप्यविशिष्टम्	३३७
सम्बन्धाभावात्तस्याः विसंवादकत्वं कल्पितसम्बन्धविषयत्वाद्वा यतोऽप्यस्य अनया विषयीकर्तृमशक्यत्वाद्वा ?	३३७
लिंगलिङ्गिसम्बन्धः किं सत्तामात्रेण अनुमानप्रवृत्तिहेतुः तद्दर्शनात् तत्स्मरणाद्वा ?	३३८
व्याप्तिस्मरणस्य प्रामाण्यमनुमानप्रामाण्यवादिना तु स्वीकर्तव्यमेव समारोपव्यवच्छेदकत्वाच्च प्रमाणं स्मृतिः	३३८
प्रत्यभिज्ञानस्य लक्षणम्	३३८
न प्रत्यभिज्ञानं प्रत्यक्षम्; इन्द्रियान्वयव्यतिरेकानुविधानाभावात् स्मृतिनिरपेक्षता च प्रत्यक्षस्य सुप्रतीता	३३९
प्रत्यभिज्ञा हि पूर्वोत्तरविवर्तवर्त्येकत्वविषया	३३९
अर्थं स इति प्रत्यक्षस्मरणव्यतिरेकेणाप्यस्ति पूर्वोत्तरविवर्तवर्त्येक-द्रव्यविषयं प्रत्यभिज्ञानम्	३४०
प्रत्यभिज्ञानानभ्युपगमे यत्सत्त्वसर्वं क्षणिकमित्यनुमानं व्यर्थम् ...	३४१

विषयाः	पृ०
प्रत्यभिज्ञाऽभावे 'यद्दृष्टमनुमितं वा तदेव प्राप्तम्' इत्येकलाप्यव- सायाभावे प्रत्यक्षानुमानयोः प्रामाण्यं न स्यात्	३४१
प्रत्यभिज्ञाभावे नैरात्म्यभावनाभ्यासश्च निष्फलः... ..	३४१
नीलाद्यनेकाकाराकान्तं चित्रज्ञानमभ्युपगच्छद्भिः 'स एवायम्' इति आकारद्वयाकान्तं प्रत्यभिज्ञानमप्यभ्युपगन्तव्यम्	३४१
स एवायमिति आकारद्वयं कथञ्चित्परस्परानुप्रवेशेन आत्माधिकर- णतया आत्मन्थेव प्रतिभासते	३४२
छन्दपुनर्जातनखकेशादिवत् न निर्विषया प्रत्यभिज्ञा	३४२
प्रत्यभिज्ञानविलोपे अनुमानस्याप्रवृत्तिरेव	३४३
प्रत्यभिज्ञानस्याप्रामाण्यं हि गृहीतप्राहिल्यात् स्मरणानन्तरमावि- त्वात्, शब्दाकारधारित्वाद्वा बाध्यमानत्वाद्वा ?	३४३
'गोसदृशो गवयः' इति सादृश्यप्रत्यभिज्ञानं प्रमाणम्	३४४
न सादृश्यप्रत्यभिज्ञानमनुमानरूपम्; अनवस्थाप्रसङ्गात्	३४५
सदृशाकारे च कृतः सदृशव्यवहारः ?	३४५
सादृश्यप्रतीतेः सङ्कलनात्मकत्वात् प्रत्यभिज्ञानत्वमेव नोपमानत्वम् सादृश्यज्ञानस्य उपमानत्वे वैलक्षण्यज्ञानं किञ्चामकं प्रमाणम् ?	३४६
संज्ञासंज्ञिसम्बन्धज्ञानरूपमुपमानं नैयायिककल्पितमपि न शुक्लम्, इदमस्माद्दूरं वृक्षोऽयमिति ज्ञानयोरपि पृथक् प्रमाणता स्यात्	३४७
तर्कस्य लक्षणम्	३४८
उपलम्भानुपलम्भशब्देन सङ्कल्पुनः पुनर्वा दृढतरं निश्चयानिश्चयो प्राप्तौ न तु प्रत्यक्षाऽप्रत्यक्षे	३४८
तर्कस्याप्रामाण्यं किं गृहीतप्राहिल्यात्, विसंवादिताद्वा, प्रमाणविषय- परिशोधकत्वाद्वा ?	३४९
न बौद्धाभिमतप्रत्यक्षदृष्टभाविनो विकल्पाद् व्याप्तिप्रतिपत्तिः	३४९
नानुमानेनापि व्याप्तिग्रहणम्	३५१
योगिप्रत्यक्षस्यापि अविचारकतया न व्याप्तिग्राहकता	३५१
योगिज्ञानं किं विकल्पमात्राभ्यासात् अनुमानाभ्यासाद्वा जायते ?	३५१
योगी परार्थानुमानेन गृहीतव्याप्तिकमगृहीतव्याप्तिकं वा परं प्रति- पादयेत् ?	३५१
नापि मानसप्रत्यक्षाऽप्याप्तिप्रतिपत्तिः	३५१
साध्यं च किमभिसामान्यम्, अभिविशेषः, अभिसामान्यविशेषो वा ?	३५१
ऊहापोहविकल्पज्ञानस्य प्रत्यक्षफलत्वेऽपि अनुमानलक्षणफलहेतु- त्वात्प्रामाण्यम्	३५२
समारोपव्यवच्छेदकत्वात् प्रमाणं तर्कः	३५२

विषयाः	५०
प्रमाणं तर्कः प्रमाणविषयपरिशोधकत्वात्	३५२
प्रमाणं तर्कः प्रमाणानामनुप्राहकत्वात्	३५३
तर्कस्योत्पत्तौ न सम्बन्धग्रहणापेक्षा येन अनवस्था	३५३
अनुमानस्य लक्षणम्	३५४
हेतुलक्षणम्	३५४
चौद्धाभिमतत्रैरूप्यस्य निरासः	३५४-५६
त्रैरूप्यमात्रं हेतुर्लक्षणं विशिष्टं वा त्रैरूप्यम्	३५४
उदेप्यति शकटं कृत्तिकोदयादित्यत्र त्रैरूप्याभावेऽपि गमकत्वम्	३५५
न भावणत्वस्य हेतोरसाधारणानैकान्तिकता	३५५
सपक्षविपक्षयोर्हि हेतुरसत्त्वेन निश्चितोऽसाधारणः संशयितो वा ?	३५५
नैयायिकाभिमतपाञ्चरूप्यस्य खण्डनम्	३५७-३६२
साध्याविनाभावित्वव्यतिरेकेण नापरमबाधितविषयत्वमसत्प्रतिपक्षत्वं वा समस्ति	३५७
बाधाविनाभावयोर्विरोधात्	३५७
अध्यक्षागमयोः कृतो हेतुविषयबाधकत्वम् ?	३५८
एकसाक्षात्प्रभवत्वानुमानं कृतो भ्रान्तम्-अध्यक्षवाप्यत्वात् त्रैरूप्य- वेकत्वाद्वा ?	३५८
अबाधितविषयत्वं निश्चितमनिश्चितं वा हेतुर्लक्षणम् ?	३५८
बाधामावनिश्चयनिबन्धनं हि अनुपलम्भः संवादो वा ?	३५८
सत्प्रतिपक्षे हि प्रतिपक्षस्तुल्यबलोऽतुल्यबलो वा स्यात् ?	३५९
अतुल्यबलत्वं हि पक्षधर्मत्वादिमावाभावकृतमनुमानबाधाजवितं वा ?	३५९
अनुपलम्ब्यमाननित्यधर्मकत्वं शब्दे तत्त्वतोऽप्रसिद्धं न वा ?	३५९
साध्यधर्मान्विते धर्मिणि तत्प्रसिद्धं तद्रहिते वा ?	३५९
नित्यधर्मानुपलब्धिः प्रसज्यप्रतिषेधरूपा पर्युदासरूपा वा ?	३६१
एकस्य हेतोः यदि पक्षधर्मत्वायनेकरूपतेष्यते तदा अनेकान्तसिद्धिः	३६१
परैः सामान्यरूपो हेतुरुपाधीयते विशेषरूपो वा उभयमनुभयं वा ?	३६१
सामान्यरूपश्चेत् ; तर्हि व्यक्तिभ्यो भिन्नमभिन्नं वा ?	३६१
अभिन्नश्चेत् ; कथञ्चित् सर्वथा वा ?	३६२
परैः किं साध्यते सामान्यं विशेषो वा उभयमनुभयं वा ?	३६२
नैयायिकाभिमतपूर्ववदादि-अनुमानत्रैविध्यस्य निरासः	३६२-६८
पूर्ववच्छेषवत् केवलान्वयि	३६२
पूर्ववत्सामान्यतोऽदृष्टं केवलव्यतिरेकि	३६२
पूर्ववच्छेषवत्सामान्यतोऽदृष्टमन्यव्यतिरेकि	३६२

विषयाः	५०
अविनाभावस्य अन्वयेन व्याप्त्यभावात् नान्वयौ गमकलाङ्गम् ...	३६३
'सदसद्गर्गः' इत्यनुमानेऽनेकलादिति हेतुः किं व्यतिरेकाभावात्	
केवलान्वयी विपक्षाभावाद्वा ?	३६३
विपक्षाभावस्यैव विपक्षता	३६४
त्रिधा व्याप्तिः बहिर्व्याप्तिः, साकल्यव्याप्तिरन्तर्व्याप्तिश्चेति ...	३६४
सकलव्याप्तिश्चेदन्वयः, सा कुतः प्रतीयते प्रत्यक्षादनुमानाद्वा ?	३६५
साध्यलक्षणासतः करणम्, सतो ज्ञापनं वा ?	३६६
सात्मकं जीवच्छरीरं प्राणादिमत्त्वादित्यत्र हेतुः कुतः केवलव्यति-	
रेक्ती ?	३६६
व्यतिरेकश्च क्वचित् कदाचित् सर्वत्र सर्वदा वा ?	३६७
पूर्ववत् कारणात्कार्यानुमानं शेषवत् कार्यात् कारणानुमानम् सामा-	
न्यतो दृष्टम्-अकार्यकारणादकार्यकारणानुमानं सामान्यतोऽवि-	
नाभावादिति व्याख्यानमपि न युक्तम्	३६७
पूर्ववत् पूर्वं व्याप्तिं गृहीत्वा यदनुमानम्, शेषवत्परिशेषानुमानं	
सामान्यतो दृष्टं विशिष्टव्यक्तौ सम्बन्धाग्रहणात् सामान्येन दृष्ट-	
मिति च व्याख्यानम् असङ्गतम्	३६८
न चायं पूर्ववदादिभेदः युक्तः; परिशेषाद्यनुमानस्यापि पूर्ववत्त्वात्	
अविनाभावस्य लक्षणम्	३६९
सहभावस्य स्वरूपम्	३६९
क्रमभावस्य स्वरूपम्	३६९
साध्यस्य लक्षणम्	३६९
असिद्धेऽप्रावाचितानां साध्यविशेषणानां सार्थक्यम्	३६९-७०
असिद्धविशेषणं प्रतिवाद्यपेक्षया इष्टञ्च चादिनः ...	३७०
क्वचिद् धर्मः साध्यः क्वचिच्च तद्विशिष्टो धर्मो ...	३७१
धर्मिणो लक्षणम्	३७१
विकल्पसिद्धे सत्तत्परयोः साध्यता	३७२
व्याप्तिकाले धर्मः साध्यम्	३७२
प्रतिज्ञाप्रयोगस्य सार्थकता	३७३
प्रतिज्ञाया धवचनं किं साध्यसिद्धिप्रतिबन्धकत्वात् प्रयोजना-	
भावाद्वा ?	३७३
प्रतिज्ञाहेतु एव अनुमानाङ्गम्	३७४
उदाहरणस्य अनुमानावयवत्वनिरासः... ..	३७४-७६
तद्वि किं साध्यप्रतिपत्त्यर्थमुपादीयते साध्याविनाभावनिश्चयार्थं वा	
व्याप्तिस्मरणार्थं वा	३७४

विषयाः	५०
अनादिसत्त्वरूपत्वापौरुषेयत्वं कथं प्रलक्षम् ?	३९१
अनुमानश्च कर्त्रस्मरणहेतुप्रभवम्, वेदाध्ययनशब्दवाच्यलक्षण- जनितं वा कालत्वसाधनसमुत्पत्तं वा ?	३९२
कर्तुरस्मरणश्च किं कर्तृस्मरणाभावः अस्मर्यमाणकर्तृकत्वं वा ? ...	३९२
नित्यं हि वस्तु अकर्तृकं भवति न स्मर्यमाणकर्तृकं नाप्यस्मर्यमाण- कर्तृकम्	३९२
सम्प्रदायाविच्छेदे सति अस्मर्यमाणकर्तृकत्वमपि अनैकान्तिकम्	३९२
स्मृतिपुराणादिवत् ऋषिनामाहिताः काण्वमाध्यन्दिनादिशाखाभेदाः कथमस्मर्यमाणकर्तृकाः ?	३९२
एतास्तत्कृतत्वात्तन्नामभिरङ्किताः तद्गुणत्वात् तत्प्रकाशितत्वाद्वा ? ...	३९३
कर्तृस्मरणं हि अध्यक्षेणानुभवमाभावात् छिन्नमूलं प्रमाणान्तरेण वा ?	३९३
'वेदार्थानुष्ठानसमये कर्तुः स्मरणयोग्यत्वे सत्यप्यस्मर्यमाणकर्तृक- त्वात्' इत्यपि अनैकान्तिकम्	३९४
न च पौरुषेयत्वेन सह कर्तुः स्मरणयोग्यत्वस्य विरोधो येन तदेत- विशेषणं स्यात्	३९४
न चायं नियमो यदनुष्ठानसमये कर्ता अवश्यमेव स्मर्तव्य इति अस्मर्यमाणकर्तृकत्वं वादिनः प्रतिवादिनः सर्वस्य वा ?	३९५
अतः स्वातन्त्र्येण अपौरुषेयत्वं साध्यते पौरुषेयत्वसाधनमनुमानं वा बाध्यते ?	३९५
अपौरुषेयत्वस्य स्वातन्त्र्येण साधनं प्रसङ्गो वा ?	३९५
बाधापक्षे किमनेन पौरुषेयत्वसाधकानुमानस्य स्वरूपं बाध्यते विषयो वा ?	३९६
वेदाध्ययनवाच्यत्वं किं निर्विशेषणं कर्त्रस्मरणविशेषणविशिष्टं वा अपौरुषेयत्वं साध्यते ?	३९६
अपौरुषेयत्वं किमन्यतः प्रमाणात् प्रतिपन्नमत एव वा ? ...	३९७
कर्त्रस्मरणं विशेषणं किमभावाख्यं प्रमाणम् अर्थापत्तिरनुमानं वा ?	३९८
कालशब्दाभिधेयत्वाद्देतोरपि न अपौरुषेयत्वसिद्धिः	३९९
नापि आगमतोऽपौरुषेयत्वम्	३९९
समानादपि नापौरुषेयत्वसिद्धिः	३९९
अपौरुषेयत्वं विनानुपपत्तमानोऽर्थः किमप्राप्त्याभावलक्षणः, अतीन्द्रियार्थप्रतिपादनस्वभावो वा, परार्थशब्दोच्चारणरूपो वा ?	३९९
अपौरुषेयत्वं प्रसज्यप्रतिषेधरूपं पशुदासस्वभावं वा ?	४००
पशुदासपक्षे सत्त्वं किं निर्विशेषणम् अनादिविशेषणविशिष्टं वाऽपौ- रुषेयशब्दाभिधेयं स्यात् ?	४००

विषयाः	पृ०
वेदः व्याख्यातः अन्व्याख्यातो वा स्वार्थप्रतीतिं कुर्यात् ? ...	४००
व्याख्यानमपि स्वतः, पुरुषाद्वा ?	४००
व्याख्याता चात्तीन्द्रियार्थद्रष्टा तद्विपरीतो वा ?	४०१
मन्वाचीना प्रज्ञातिशयश्च स्वतः, वेदार्थाभ्यासात्, अदृष्टात्, प्रज्ञाणो वा स्यात् ?	४०१
अधृतकाव्यादिवत् वेदार्थस्य संवादित्वे व्याचिख्यासितार्थनियमो न स्यात् अनेकार्थत्वाच्छब्दानाम्	४०२
नररन्वितरचनाविशिष्टत्वात् पौरुषेयो वेदः	४०२
शब्दनित्यत्ववादः	४०४-२७
(मीमांसकस्य पूर्वपक्षः) शब्दस्य निवृत्तं स्वार्थप्रतिपादकत्वान्य- थानुपपत्तेः	४०४
सम्बन्धावगमश्च प्रमाणत्रयसम्पाद्यः	४०४
सादृश्यादर्थाप्रतिपत्तेः	४०५
सादृश्यादर्थप्रतीतो ज्ञान्तः शाब्दः प्रत्ययः स्यात्	४०५
गलाचीना वाचकत्वं गादिव्यक्तीनां वा ?	४०५
व्यक्तीना वाचकत्वे किं गादिव्यक्तिविशेषो वाचको व्यक्तिमात्रं वा ?	४०५
व्यक्तिमात्रश्च सामान्यान्तःपाति व्यत्यन्तभूतं वा ?	४०५
न विभक्तदेशादितयोपलभ्यमानत्वाद् गकाराचीनां नानात्वम्; अनेकप्रतिपत्तुभिः भिन्नदेशादितयोपलभ्यमानादित्येनानेकान्तात्	४०६
विभिन्नदेशादितयोपलम्भश्च व्यञ्जकध्वन्यधीनः	४०६
नाप्येकैव भिन्नदेशोपलम्भात् षटादिवज्ज्ञानात्वम्; आदित्येनैवाने- कान्तात्	४०७
ऊमारिलोका प्रतिविम्बनिराकरणपरा चर्चा	४०८
प्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्षेण च एक एव शब्दः प्रतीयते	४०९
(उत्तरपक्ष) धूमादिवदनित्यस्यापि शब्दस्यावगतसम्बन्धस्य सादृश्यतोऽर्थप्रतिपादकत्वसम्भवात्	४०९
सादृश्यस्य स्वरूपं व्यक्तिभ्यो भिन्नमभिज्ञश्च प्रतीयते	४११
लक्षितलक्षणया विशेषप्रतिपत्तिश्च अयुक्ता	४११
सामान्याद्विशेषः प्रतिनियतेन रूपेण लक्ष्येत साधारणेन वा ? ...	४११
जातिव्यक्तयोश्च सम्बन्धस्तदा प्रतीयते पूर्वं वा ?... ..	४१२
जातिर्व्यक्तिनिष्ठेति प्रत्यक्षेण प्रतीयते अनुमानेन वा ?	४१२
वर्णेष्वपि अनुगतप्रत्ययस्य भावात् वर्णत्वमस्ति	४१३
अनेको गोशब्दः एकेनैकदा विभिन्नदेशादितयोपलभ्यमानत्वात् षटादिवत्	४१३

विषयाः	५०
न सदात्तादयो व्यञ्जकधर्मा अपि तु शब्दधर्मा एव	४१४
शुद्धितीमल्लक्ष किं-महत्स्वरहितस्वार्थस्य महत्त्वेनोपलम्भः, यथाव- स्थितस्याख्यन्तस्फटता वा ग्रहणम् ?	४१६
तात्वादीनां व्यञ्जकत्वे तदर्थोपेतस्य शब्दस्य नियमेनोपलब्धिर्न स्यात्	४१५
ध्वनयः श्रोत्रप्राप्त्या न वा ?	४१५
किं कारणानुविधायिलमल्पलमहत्त्वयोः स्वभावसिद्धत्वादसिद्धम्, स्वभावतस्तद्ग्रहितत्वात् कारणकृते ते न स्तः ?	४१६
ध्वनयश्च प्रत्यक्षेण अनुमानेन अर्थोपत्त्या वा प्रतिपन्नाः ? ...	४१८
विशिष्टसंस्कृतस्यन्यथानुपत्तेः ध्वनयः सन्ति इत्यपि न युक्तम् ...	४१८
शब्दसंस्कारपक्षे कोऽयं शब्दसंस्कारः-शब्दस्योपलब्धिः, तस्या- त्मभूतः क्वचिदतिशयः, अनतिशयव्यावृत्तिः, स्वरूपपरिपोषः, व्यक्तिसमवायः, तद्ग्रहणापेक्षग्रहणता, व्यञ्जकसक्तिमानमात्रम्, आवरणविगमो वा ?	४१९
व्यञ्जकैः किं कियते येन ते तैर्निर्यमेनापेक्षते-भोग्यता; किमात्मनः, शब्दस्य, इन्द्रियस्य वा ?	४२०
न हि दिगाद्यपेक्षया ग्रहणमिष्यते अपि तु श्रवणान्तर्गतत्वेन ...	४२१
आवरणविगमः संस्कारस्तु तदा स्यात् यदि आवरणं कृतचित्तप्र- सिञ्चेत्	४२१
व्योमव्यापिनः बहुवक्षेदावारकाः; ते किं सान्तरा निरन्तरा वा ?	४२१
क्वचिदावरणविगमे सर्वत्र आवरणविगमात् सर्वशब्दश्रुतिः स्यात्	४२३
अभिज्ञदेवोऽभिज्ञेन्द्रियप्राधेयावार्थे आवरणभेदस्याभिव्यञ्जकमे- दस्य चाप्रतीतेः,	४२३
जलसेकादयो न भूमिगन्धस्य व्यञ्जका अपि तूत्पादका एव ...	४२३
इन्द्रियसंस्कारपक्षे सकृत्संस्कृतं श्रोत्रं युगपच्चिखिलवर्णान् शृणुयात्	४२४
उभयसंस्कारपक्षे उभयदोषः	४२५
जले च उपलभ्यमानान्नामादिस्यप्रतिबिम्बानामनेकत्वात् ...	४२५
जलादिस्यादिलक्षणसामग्रीवशात् सुखादिप्रतिबिम्बं समुत्पद्यते ...	४२५
शब्दस्य गमनागमनपक्षभाविनो दोषाः व्यञ्जकनाम्नागमनेऽपि समानाः	४२७
सहजयोग्यतावशात् शब्दस्य अर्थप्रतिपादकत्वम्	४२८
हस्तसंज्ञादिबन्धुव्यवहारसम्बन्धस्य अनित्यत्वेऽपि अर्थप्रतिपत्ति- हेतुता	४२८
शब्दार्थसम्बन्धस्य नित्यत्वेऽपि तदभिव्यक्तौ अनवस्थादोषस्तुल्यः	४२९

विषयाः	पृ०
संकेतश्च अतीन्द्रियज्ञानविकल्पपुरुषाभितः, स चान्यथापि संकेतं कुर्यात् ४३०	४३०
वेदः नित्यसम्बन्धवशादिकार्यनियतः अनेकार्थनियतो वा ? ...	४३०
एकार्थनियतश्च किमेकदेशेन सर्वात्मना वा ४३०	४३०
एकदेशेन चेत्; सकिमेकदेशः अभिमतैकार्यनियतः अनभिमतै- कार्यनियतो वा ? ४३०	४३०
अभिमतार्थैकनियतश्चेत् किं पुरुषात्स्वभावाद्वा ? ४३०	४३०
सम्बन्धश्च ऐन्द्रियः अतीन्द्रियः अनुमानगम्यो वा ? ४३०	४३०
अनुमानगम्यत्वे लिङ्गम्-ज्ञानम्, अर्थः, शब्दो वा स्यात् ? ...	४३०
चौख्यभिममतस्य अपोहस्य त्रिरासः ४३१-४५१	४३१-४५१
अर्थवन्तः शब्दाः नार्थाभावे हृदयन्ते अतो न अन्यापोहमात्राभि- धायकाः ४३१	४३१
यत्नतः परीक्षितः शब्दोऽर्थवत्त्वेतरतां न व्यभिचरति ४३१	४३१
अन्यापोहामिधायित्वे प्रतीतिविरोधः गवादिशब्देभ्यो हि विधि- रूपेण प्रत्ययः समुत्पद्यते ४३१	४३१
एकेन गोशब्देन च विधिनियेधद्वयं न स्यात् ४३१	४३१
प्रथमश्च गोशब्दश्रवणादगौरिति प्रतीयेत ४३२	४३२
अपोहलक्षणं सामान्यं पर्युदासरूपं प्रसज्यरूपं वा वाच्यं स्यात् ?	४३२
अन्नादिनिवृत्तिलक्षणश्च को भावोऽभिप्रेतः ? ४३३	४३३
अपोहनादिनां मते विभिन्नसामान्यवाचिनां शब्दानां शावलेयादि- विशेषशब्दानाश्च पर्यायवाचिन् स्यात् ४३३	४३३
अपोहमेवादपि न शब्दभेदः प्रमेयाभिधेयादिशब्दानामप्रवृत्ति- प्रसङ्गात् ४३४	४३४
कथञ्च सदृशपरिणामाभावे शावलेयादीनामेव अगोपोहाश्रयत्वं न स्तु कर्काद्यशब्दव्यचीनामिति ४३४	४३४
न चापोहे संकेतः संभवति ४३५	४३५
अपोहप्रतिपत्तौ च इतरेतराश्रयः ४३५	४३५
अपोहपक्षे च नीलोत्पलादौ विशेषणविशेष्यभावो न स्यात् ? ...	४३६
अपोहश्च न कस्यचिद्विशेषणं स्थाकारानुरक्तवृत्त्यनुत्पादकत्वात् ...	४३७
चस्तुभूतं सामान्यं शब्दविषयः ४३८	४३८
अपोहो वस्तु अपोहत्वात् ४३९	४३९
अपोहानां परस्परतो वैलक्षण्यमवैलक्षण्यं वा स्यात् ? ४३९	४३९
विभिन्नसामान्यवाचिनां शब्दानां परस्परतोऽपोहभेदः वासनाभेद- निमित्तः वाच्यापोहभेदनिमित्तो वा ? ४३९	४३९

विषयाः	पृ०
अतः अपोहयोः न गम्यगमकभावः अवस्तुत्वात्	४४०
अपोहः वाच्योऽवाच्यो वा ?	४४०
वाच्योऽपि विभिरूपेण अन्यव्यावृत्त्या वा ?	४४०
नान्यापोहः अनन्यापोह इत्यत्र विधिरूपमेव वाच्यमुपलभ्यते ...	४४१
विजातीयव्यावृत्तार्थानुभवक्रमेण जायमानविकल्पप्रतिबिम्बेऽन्यापो- हसंज्ञाकरणेऽपि स विकल्पः पारमार्थिकार्थप्राप्तिं अभ्युपगन्तव्यः	४४१
शब्दादर्थे प्रतिपत्तिप्रवृत्तिप्राप्तिप्रतीतिः स एव शब्दायो न तु विकल्पप्रतिबिम्बमात्रम्	४४२
शब्दानां प्रतिनियतार्थे प्रवर्तकत्वात् वस्तुभूतार्थविषयता ...	४४२
शब्दस्य अर्थवाचकत्वम्	४४२-४५१
(बौद्धस्य पूर्वपक्षः) अकृतसमया च्चनयोऽर्थाभिधायकाः कृत- समया वा ?	४४२
द्वितीयपक्षे संकेतः—स्वलक्षणे, जातौ, तद्योगे, जातिमल्यर्थे, बुद्ध्या- कारे वा ?	४४२
समयः उत्पन्नेषु क्रियते अनुत्पन्नेषु वा ?	४४३
(उत्तरपक्षः) सामान्यविशेषात्मन्यर्थे सङ्केतोऽभ्युपगम्यते न जात्यादिमात्रे	४४४
समानपरिणामापेक्षया व्यक्तियु संकेतः संभवति	४४५
सदृशपरिणामाभावे अन्यव्यावृत्तरेव नियमयितुमशक्यत्वात् ...	४४५
शब्देन चार्थस्य अस्पष्टाक्षरतया प्रतिभासः, अतः स्पष्टप्रति- पत्त्यर्थं चक्षुरादीनामुपयोगः	४४६
अतीतानागताद्यपि स्वकाले सत्त्ववस्तुसंवादात् शब्दस्य प्रामाण्यम्	४४६
सामग्रीभेदादेव विशद्वेतरप्रतिभासमेदो न तु विषयमेवाद ...	४४७
अन्यदेवेन्द्रियप्राप्त्यमिति शब्देन कश्चिदर्थोऽभिधीयते न वा ? ...	४४७
साक्षादिन्द्रियागोचरत्वे यदि पारम्पर्येण तद्विषयता तदा तज्जा प्रतीतिः किमिन्द्रियजप्रतीतिवृत्त्या, तद्विलक्षणा वा ? ...	४४८
दाहशब्देन च किमग्निः उष्णस्पर्शः रूपविशेषः स्फोटः तदुत्खं वाऽभिप्रेतम् ?	४४८
यदि चाभावोऽभिधीयते भावो नाभिधीयते तदा कथम् अपूर्वे सर्गोदौ घर्नादौ वा युगतवाक्यात् प्रतिपत्तिः	४४८
कम्पस्य अर्थवाचकत्वे सत्वेतरव्यवस्थाऽभावः	४४९
पारार्थानुमानवाक्यस्य अर्थगोचरत्वे कथं ततोऽमिताथेतिद्विः ? ...	४४९
उदन्वषणो विवक्षामात्रविषयत्वे सर्वं शब्दविज्ञानं प्रमाणं स्यात्	४४९

विषयाः	५०
अर्थव्यभिचारवत् निवक्षान्यभिचारस्यापि दर्शनात् कथं शब्दाः निवक्षामपि प्रतिपादयेयुः	४४९
बहिरर्थे प्रतिपत्तिप्रवृत्तिप्राप्त्यादिप्रतीतेः न निवक्षायाम्बुदधिरुद्धार्थस्य वा वाचकः शब्दः	४४९
किं शब्दोच्चारणेच्छामात्रं निवक्षा, अनेन शब्देनामुमर्थं प्रतिपाद- यामि इत्याभिप्रायो वा निवक्षा ?	४५०
किं समयानपेक्षं वाक्यं निवक्षा गमयति समयसापेक्षं वा ? ...	४५०
स्वल्पगणस्य अनिर्देश्यत्वं हि तच्छब्देनाप्रतिपाद्य उच्येत प्रतिपाद्य वा? विकल्पप्रतिभास्यन्यापोद्गता वाच्यता वस्तुनि प्रतिषिध्यते वस्तुपता वा वाच्यता ?	४५०
स्फोटवाद्:	४५१
(वैयाकरणानां पूर्वपक्षः) वर्णा हि समस्ता व्यक्ता वा तद्वाचकाः ?	४५१
न अन्त्यवर्णस्य पूर्ववर्णानुपृहीतस्य अर्थप्रतिपादकत्वम्	४५२
अन्त्यवर्णानुग्रहो हि अन्त्यवर्णं प्रति जनकत्वम् अर्थज्ञानोत्पत्तौ सहकारित्वं वा ?	४५२
संवेदनप्रभवसंस्काराश्च स्तोत्रादकविज्ञानविषयस्मृतिहेतवो नार्था- न्तरस्मृतिविधातारः	४५२
न च पूर्ववर्णानपेक्षस्यैव अन्त्यवर्णस्य वाचकता	४५२
श्रोत्रविज्ञाने चासौ स्फोटः निरवयवोऽकमश्च प्रतिभासते ...	४५२
निलश्वसौ स्फोटोऽभ्युपगन्तव्यः	४५३
(उत्तरपक्षः) पूर्ववर्णेष्वंसविशिष्टादन्त्यवर्णादर्थप्रतीतिः... ..	४५३
पूर्ववर्णविज्ञानाभावविशिष्टः तद्वनितसंस्कारसम्बन्धो वाऽन्त्यवर्णो वाचकः	४५३
पूर्ववर्णविज्ञानप्रभवसंस्काराणाम् अन्त्यवर्णं प्रति सहकारित्वस्य प्रणाली	४५३
क्षयोपसमवशाच्च अविनष्टा एव पूर्ववर्णसविदः तत्संस्काराश्च अन्त्यवर्णसंस्कारं कुर्वन्ति	४५३
पूर्वस्मृतिसम्बन्धो वाऽन्त्यो वर्णो वाचकः	४५४
वर्णा हि किं समस्ताः स्फोटं व्यञ्जयन्ति व्यक्ता वा ?	४५४
पूर्ववर्णः स्फोटस्य संस्कारः किं वेगरूपः, वासनारूपः, स्थितस्था- पकाख्यो वा विधीयते ?	४५४
संस्कारश्च स्फोटस्वरूपः तद्वर्णो वा ?	४५५
पूर्ववर्णः स्फोटसंस्कारः एकदेशेन क्रियते सर्वात्मना वा ? ...	४५६
स्फोटसंस्कारश्च स्फोटविषयसंवेदनोत्पादनम् आवरणपानयनं वा ?	४५६

विषयाः	पृ०
निदात्मव्यतिरेकेण अन्यस्य स्फोटस्याप्रतीतिः, पदवाक्यावरण- क्षयोपशमविक्षिप्तश्चिदात्मैव पदवाक्यस्फोटः	४५६
वायुभ्योऽपि न स्फोटाभिव्यक्तिः	४५६
एवञ्च शब्दस्फोटवद् गन्वादिस्फोटोऽप्यभ्युपगन्तव्यः	४५७
हस्तपादकरणमात्रिकान्नहारादिस्फोटोऽपि स्वीकार्यः	४५७
शब्दस्फोटवत् पद-वाक्यलक्षणविचारः	४५८-६०
परस्परपेक्षवर्णानां निरपेक्षः समुदायः पदम्	४५८
निराकाङ्क्षं हि प्रतिपदधर्मः वाक्येष्वध्यारोप्यते	४५८
परस्परपेक्षपदानां निरपेक्षः समुदायो वाक्यम्	४५८
प्रकरणादिगम्यपदान्तरसापेक्षस्यापि वाक्यत्वम्	४५८
'आख्यातशब्दः संघातः' इत्यादि दशविधमपि वाक्यञ्च घटते	४५९
आख्यातशब्दः पदान्तरनिरपेक्षः सापेक्षो वा वाक्यम् ? ...	४५९
सापेक्षत्वे कचिन्निरपेक्षो न वा ?	४५९
संघातोऽपि देशकृतः कालकृतो वा ?	४५९
कालकृतपक्षेऽसौ वर्णभ्यः अभिन्नः भिन्नो वा ?	४५९
अभेदे सर्वथा कथञ्चिद्वा ?	४५९
सुद्धिरपि भाववाक्यं द्रव्यवाक्यं वा स्यात् ?	४६०
अनुसंहृतेः अनुभवरूपतया भाववाक्यत्वमिष्टमेव	४६०
प्राभाकराभिमत-अन्विताभिधानवादस्य निरासः ...	४६१-६३
यदि देवदत्तपदेनैव हृतरार्थान्वितदेवदत्तस्य प्रतीतिः तदा द्विती- यादिपदोच्चारणं व्यर्थम्	४६१
यावन्ति वा पदानि तावतां वाक्यत्वम्	४६१
गम्यमानस्यापि अभिधीयमानवत् पदार्थत्वात्	४६२
पदप्रयोगः पदार्थप्रतिपत्त्यर्थः वाक्यार्थप्रतिपत्त्यर्थो वा विधीयते ?	४६२
विशेष्यपदं विशेषणसामान्येनान्वितं विशेष्यमभिधत्ते, विशेषण- विशेषेण तदुभयेन वाऽन्वितम् ?	४६३
भाट्टाभिमत-अभिहितान्वयवादस्य निरासः	४६४
पदैरभिहिता अर्थाः शब्दान्तरादन्वीयन्ते बुद्ध्या वा ?	४६४

इति तृतीयः परिच्छेदः ।

सामान्यविशेषात्माऽर्थः प्रमाणस्य विषयः	४६६
अनुवृत्तव्याहृतप्रत्ययगोचरत्वात् उत्पादव्ययप्रौढ्यलक्षणपरिणामेना- र्थक्रियोपपत्तेश्च	४६६

विषयाः	पृ०
तिर्यगूर्ध्वताभेदात् द्विविधं सामान्यम्	४६६
सदृशपरिणामस्य तिर्यक्सामान्यता	४६७
बौद्धाभिमतसामान्यस्य निरासः	४६७
एकेन्द्रियाध्यवसेयत्वात्तिव्यक्त्सोरभेदे वातातपादावप्यभेदप्रसङ्गः	४६७
दूरादूर्ध्वतासामान्यमेव च प्रतिभासते न स्थाणुपुरुषविशेषौ ...	४६८
अदूरेऽपि सामान्यस्य विशदप्रतिभासो भवति	४६८
अनुगतप्रत्ययस्य प्रतिनियतस्य वहिःसाधारणनिमित्तव्यतिरेकेणा- नुपपत्तेः	४६८
अतत्कार्यकारणव्यावृत्तिरपि सदृशपरिणामाभावे न क्वचिदेव निय- मयितुं शक्यते	४६९
अनुगतप्रत्ययस्य सामान्यमन्तरणैव भावे व्यावृत्तप्रत्ययोऽपि विशे- षव्यतिरेकेणैव स्यात्	४६९
नाप्येककार्यतासादर्येण व्यचीनभेकत्वाध्यवसायः	४६९
नाप्यनुभवानभेकपरामर्शप्रत्ययहेतुलमुज्जैकलं तद्वेतुत्वाच्च व्यची- नाभेकतेत्युपचरितोपचारः घटते	४६९
सामान्यं हि अनित्यासर्वगतस्वरूपं न तु सर्वगत- नित्यैकस्वभावम्	४७०
नित्यसर्वगतत्वे अर्थक्रियाऽयोगात्	४७०
स्वविषयज्ञानजनने केवलसामान्यस्य व्यापारः व्यक्तिघहितस्य वा ?	४७०
व्यक्तिघहितस्य चेत्; प्रतिपक्षाखिलव्यक्तिघहितस्य अप्रतिपक्षाखिल- व्यक्तिघहितस्य वा ?	४७०
प्रथमपक्षे तस्य तामिरुपकारः क्रियते न वा ?	४७१
सामान्येन सहैकज्ञानजनने व्यचीनां किमालम्बनभावेन व्यापारोऽ- धिपतित्वेन वा ?	४७१
सामान्यं सर्वसर्वगतं स्वव्यक्तिसर्वगतं वा ?	४७१
व्यत्यन्तराखेऽनुपलम्भः किमव्यक्तत्वात् व्यवहितत्वात् दूरस्थितत्वात् अदृश्यत्वात् स्वाश्रयेन्द्रियसम्बन्धविरहात् आश्रयसमवेतरूपा- भावाद्वा ?	४७२
स्वव्यक्तिसर्वगतत्वे अनेकलप्रसङ्गः	४७२
एकत्र वर्तमानस्यान्ध्र दृष्टिः तद्देशे गमनात् पिण्डेन सहोत्पादात् तद्देशे सद्भावादंशचक्षता वा स्यात् ?	४७३
पूर्वपिण्डपरित्यागेन तत्तत्र गच्छेत् अपरित्यागेन वा ?	४७३
सामान्यविशेषयोस्तादात्म्यवादिनो भाट्टस्य निरासः	४७३
व्यक्तिवत्सामान्यस्यापि असाधारणत्वमुत्पादादियोगित्वाच्च स्यात् ...	४७३

विषयाः	पृ०
अनुगतप्रत्ययस्य सदृशपरिणामहेतुकतया व्यवस्थितत्वात् ...	४७४
सामान्यस्य नित्यैकरूपस्य सर्वात्मना बहुषु परिसमाप्तत्वे सर्वव्यपत्ती- नामेकत्वं सामान्यस्य वाऽनेकत्वं स्यात्	४७५
उद्योतकरोक्तस्य विशेषकत्वादिति हेतोः निरासः	४७६
किं यत्रानुगतज्ञानं तत्र सामान्यं यत्र वा सामान्यं तत्रानुगत- ज्ञानमिति ?	४७६
न चाभावे सत्ताक्षयं महासामान्यम्	४७७
पाचकादिषु सामान्याभावेऽपि अनुगतज्ञानोपलम्भात्	४७७
पाचके निमित्तान्तरश्च किं कर्म कर्मसामान्यं शक्तिव्यक्तिर्वा स्यात् ? कर्मापि नित्यमनित्यं वा ?	४७७
कर्मसामान्यं हि कर्माश्रितं कर्माश्रयाश्रितं वा ?	४७८
शक्तिश्च पाचकादन्या अवन्या वा ?	४७८
पाचकत्वश्च द्रव्योत्पत्तिकाले व्यक्तमव्यक्तं वा ?	४७८
पाचकत्वस्य पाकक्रियातः प्राक् द्रव्यसमवायधर्मः अस्ति न वा ?	४७९
अभिव्यक्तिश्च द्रव्येण क्रियया उभाभ्यां वा ?	४७९
किं गोष्वेव गोत्वं गोषु गोलनेव गोषु गोत्वं वर्तत एव ? ...	४७९
विभिन्नं हि प्रतिव्यक्ति सदृशपरिणामलक्षणं सामान्यम्	४७९
द्विविधो हि वस्तुधर्मः परापेक्षः, परानपेक्षश्च	४८०
सादृश्येऽपि सामान्ये शबलं दृष्ट्वा धवले स एवायं गौरिति प्रत्ययः एकत्रोपचारात् षट्ते	४८१
विभिन्नसामान्यत्रादिनः तेन समानोऽयमिति प्रत्ययो न स्यात् ...	४८१
समानपरिणामे नान्यः समानपरिणामः येनाऽनवस्था	४८१
नित्यैकब्राह्मणत्वजातिनिरासः	४८२-८७
(नैयायिकादीनां पूर्वेपक्षः) ब्राह्मणोऽयं ब्राह्मणोऽयमिति प्रत्यक्षत एवास्य प्रतिपत्तिः	४८२
पित्रादिब्राह्मण्यज्ञानपूर्वकोपदेशसहाया व्यक्तिश्चास्य व्यञ्जिका ...	४८२
पदत्वात् हेतोः व्यक्तिव्यतिरिक्तनिमित्ताभिधेयसम्बद्धं ब्राह्मण- पदम्	४८२
वर्णविशेषयज्ञोपवीतादिव्यतिरिक्तनिमित्तनिवन्धनं ब्राह्मण इति ज्ञानं तन्निमित्तबुद्धिविलक्षणत्वात्	४८२
'ब्राह्मणेन यष्टव्यम्' इत्याद्यागमाच्चासौ प्रतीयते	४८२
(उत्तरपक्षः) प्रत्यक्षाद्धि निर्विकल्पकात्, अविक्ल्पाद्वा तत्प्रतीतिः ?	४८२
पित्रादिब्राह्मण्यज्ञानश्च प्रमाणमप्रमाणं वा ?	४८३
ब्राह्मणशब्दस्योपाधिकस्य किं पित्रोरविद्वत्त्वं निमित्तं ब्रह्मप्रभवत्वं वा ?	४८३,

विषयाः	५०
क्रियाविलोपात् शूद्राभादेश्च जातिलोपाभ्युपगमे तद्विलोपादिनिब-	
न्धनैव ब्राह्मण्यजातिः स्त्रीकरणीया	४८३
ब्राह्मव्यासविश्वामित्रादीनां ब्राह्मणपित्रजन्मत्वात् कथं ब्राह्मण्यं स्यात् ?	४८४
ब्राह्ममुखाज्जातो ब्राह्मणः इत्यपि न युक्तम्	४८४
ब्राह्मणो ब्राह्मण्यमस्ति वा न वा ?	४८४
अस्ति चेत् किं सर्वत्र मुखप्रदेश एव वा ?	४८४
ब्राह्मण एव तन्मुखाज्जायते तन्मुखादेवासी जायेत ?	४८४
ब्राह्मण्यजातिनिश्चये हि आकारविशेषो निमित्तमध्ययनादिकं वा ?	४८५
पदत्वादिति हेतुश्च कालाख्यापदिष्टः	४८५
अप्रसिद्धविशेषणश्च पक्षः व्यक्तिव्यतिरिक्तनिमित्तस्य अस्तित्वेः ...	४८५
पदत्वादिति हेतुः आकाशादिपदेनानैकान्तिकः	४८५
नगरादौ च व्यक्तिव्यतिरिक्तनिमित्ताभावेऽपि अनुगतज्ञानोप-	
लक्ष्येः	४८५
ततः क्रियाविशेषयज्ञोपवीतादिचिह्नोपलक्षिते व्यक्तिविशेषे एव	
तपोदानादिव्यवहारः, तन्निमित्तैव च वर्णाश्रमव्यवस्था ...	४८६
आदेः पवित्रताहेतुत्वे वेद्यापादकादिप्रविष्टानां ब्राह्मणानां चिन्दा	
न स्यात्	४८६
क्रियाप्रंशात् जातिविलोपे क्रियात् एव ब्राह्मण्यम् सिद्धम् ...	४८६
ब्राह्मणर्त्नं जीवस्य शरीरस्य उभयस्य वा संस्कारस्य वा वेदाध्यय-	
नस्य वा ?	४८७
संस्कारात् प्राग्ब्राह्मणबालस्य ब्राह्मणत्वमस्ति न वा ?	४८७
ऊर्ध्वैतास्त्रामान्यस्य स्वरूपम्	४८८
क्षणभङ्गत्वाद्ः	४८८-५०४
प्रत्यक्षेणैव अर्थानामन्वयिरूपस्य प्रतीतिः	४८८
सुद्धेः क्षणिकत्वेऽपि प्रतिपन्नुरक्षणिकत्वात् कालत्रयानुयायिरूपान्याः	
स्थितेः प्रतिपत्तिः	४८८
न च द्रव्यग्रहणे अतीताद्यवस्थाना ततोऽभिन्नत्वाद्ग्रहणप्रसंगः;	
अभेदस्य ग्रहणं प्रत्यनङ्गत्वात्	४८९
आत्मनो नित्यत्वाभावे मध्यक्षणस्य पूर्वोत्तरक्षणयोरभावरूपस्य	
क्षणिकत्वस्य प्रतीतिरपि न स्यात्	४९०
स्थास्यता हि पूर्वोत्तरयोः मध्ये मध्यस्य वा पूर्वोत्तरयोः सङ्गावः,	
अतः सा तत्तत्क्षणप्राप्तिज्ञानेनैव प्रतीयते	४९०
व हि त्रिकालेन नित्यता क्रियते अपि तु वस्तुत्वमावैव सा ...	४९०
अतीतादिसमयस्य च स्वत एव अतीतादिरूपता तत्सम्बन्धाच्च	
अर्थानामतीतादिसंस्काररूपत्वम्	४९१

विषयाः	४०
अनुवृत्ताकारे प्रतिपक्षे अप्रतिपक्षे वा विशेषप्रतिभासः तद्वाचकः ?	४९१
न हि प्रत्यक्षेण क्षणक्षयावभासः	४९२
नापि सदृशापरापरोत्पत्तिविप्रलम्भादेकलभानम्	४९३
क्षणक्षयावगमे स्वभावहेतोर्व्यापारः कार्यहेतोर्वा ?	४९३
विनाशं प्रत्यन्यानपेक्षत्वादिति हेतुश्चासिद्धः; मुद्गराद्यपेक्षत्वात् घट- नाशस्य	४९३
अन्यानपेक्षलभानं हेतुः तत्स्वभावत्वे सति अन्यानपेक्षलं वा ? ...	४९३
अहेतुकोपि विनाशः मुद्गरादिव्यापारानन्तरमुपलभ्यमानः तदैवा- भ्युपगन्तव्यो नोदयानन्तरम्	४९३
उदयानन्तरध्वंसिलं भावानामन्येन ध्वंसस्यासंभवादिमिधीयते प्रमाणान्तराद्वा ?	४९३
भावहेतोरेव तत्प्रच्युतिहेतुत्वे किमसौ भावजननात्प्राक् तत्प्रच्युतिं जनयति उत्तरकालं वा समकालं वा ?	४९४
न च मुद्गरादीनां कपालोत्पादे व्यापारः किन्तु विनाश एव ...	४९४
घटादेः मुद्गरादिकमपेक्ष्य असमर्थ-तर-तमक्षणोत्पादने मुद्गरादिना घटस्य कश्चित् सामर्थ्यविघातो निधीयते न वा ?	४९५
विनाशकहेतुव्यापारानन्तरं शत्रुस्मिन्नध्वंसे सुखदुःखानुभवनादति- रिक्तो विनाशः सहेतुक एव स्वीकार्यः	४९५
अभावस्थार्थान्तरत्नानभ्युपगमे किं घट एव प्रध्वंसः, कपालानि, पदार्थान्तरं वा ?	४९२
कपालकाले 'सः न' इति ध्वन्द्वयोः मिथार्थलभमिथार्थलं वा ? ...	४९५
अन्यानपेक्षतया च स्थितिरपि स्वभावत एव किञ्च स्यात् ? ...	४९६
अहेतुकविनाशाभ्युपगमे उत्पादस्याप्यहेतुकत्वं किञ्च स्यात् ? ...	४९६
कार्यकारणयो उत्पादविनाशौ न सहेतुकाहेतुकौ कारणानन्तरं सह- भावाद्गोपादिवत्	४९७
'सत्त्वात्' हेतोरपि न क्षणिकत्वसिद्धिः	४९७
नापि विद्युदादेः निरन्वया सन्तानोच्छिष्टिः	४९७
विपक्षे नित्ये सत्त्वस्य बाधकं प्रत्यक्षमनुमानं वा ?	४९६
क्रमयौगपद्याभ्यामर्थक्रियाविरोधादपि न नित्यात् सत्त्वव्यावृत्तिः सत्त्वनित्यत्वयोर्हि सहानवस्थानलक्षणो विरोधः स्यात् परस्परपरि- हारस्थितिरूपो वा ?	४९८
एकान्तनित्यवदनित्येऽपि क्रमाक्रम्यामर्थक्रियाविरोधात् सत्त्वा- भावः स्यात्	४९९
क्षणिकं वस्तु विनष्टं सत्कार्यमुत्पादयति अविनष्टमुभयरूपमनुभव- रूपं वा ?	४९९

विषयाः	५०
निरन्वयविनाशे उपादान-सहकारिव्यवस्थापायः	४९९
उपादानस्य हि स्वरूपं किं स्वसन्ततिनिवृत्तौ कार्यजनकत्वम् अनेकसाधुत्पद्यमाने कार्ये स्वगतविशेषाधायकत्वं समनन्तर- प्रत्ययत्वं नियमवदन्वयव्यतिरेकाजुविधानं वा ?	५००
प्रथमपक्षे कथञ्चित्सन्ताननिवृत्तिः सर्वथा वा ?	५००
द्वितीये स्वगतकतिपयविशेषाधायकत्वं सकलविशेषाधायकत्वं वा ?	५००
कार्ये कारणस्य सर्वात्मना समलमेकदेशेन वा ?	५०१
अनन्तरत्वस्य देशकृतं कालकृतं वा ?	५०१
निरन्वयविनाशेऽन्वयव्यतिरेकाजुविधानमपि न घटते	५०२
अर्धक्रियालक्षणं सत्त्वमित्यत्र लक्षणशब्दः कारणार्थः स्वरूपार्थः ज्ञापकार्यो वा स्यात् ?	५०३
सत्त्वात् हि क्षणस्थायितारूपं क्षणिकत्वं साध्येत क्षणादूर्ध्वमभावो वा ?	५०४
कृतकलादपि न क्षणिकत्वसिद्धिः	५०४
सम्बन्धसद्भावत्वाद् :	५०४-५२०
(बौद्धानां पूर्वपक्षः) सम्बन्धोऽर्थानां पारतन्त्र्यलक्षणः रूपश्लेष- स्वभावो वा स्यात्	५०४
आद्ये किमसौ निष्पन्नयोरनिष्पन्नयोर्वा ?	५०४
नैरन्तर्यस्य अन्तरालाभावरूपतया सम्बन्धत्वविरोधात्	५०५
रूपश्लेषः सर्वात्मना एकदेशेन वा स्यात् ?	५०५
एकदेशेन चेतः, ते देशास्वस्य आत्मभूताः परभूता वा ? ...	५०५
परापेक्षेन सम्बन्धः, यथापेक्षते भावः स्वयं सन् असन्वा ? ...	५०५
सम्बन्धः सम्बन्धिभ्यां भिन्नोऽभिन्नो वा ?	५०५
एकेन सम्बन्धेन सह तयोः सम्बन्धिनोः कः सम्बन्धः ? ...	५०५
कार्यकारणभावोऽपि कार्यकारणयोरसहभावतत्त्वभिन्नो न संभवति नापि कार्ये कारणे वा क्रमेणासौ कार्यकारणभावः वर्तते... ..	५०६
नापि एकार्थोऽसम्बन्धात् कार्यकारणता	५०७
अन्वयव्यतिरेकादेव कार्यकारणता; ताभ्यां तत्प्रसाधनं तु संकेत- करणाय	५०८
कार्यकारणभूतोऽर्थो भिन्नः अभिन्नो वा ?	५०८
संयोग्यादीनामपि परस्परपकार्यकारकभावाभावाच्च संयोगादि- सम्बन्धाः घटन्ते	५०९
कार्यकारणभावस्य प्रतिपन्नस्य अप्रतिपन्नस्य वा सत्त्वं सिद्धेत् ?... ..	५११
आद्ये प्रत्यक्षेण प्रत्यक्षाजुपलम्भाभ्याम् अनुमानेन वा तत्प्रतिपत्तिः ?	५११

विषयाः	४०
प्रत्यक्षेण चेत्; अमिस्वरूपग्राहिणा, धूमस्वरूपग्राहिणा, उभय- स्वरूपग्राहिणा वा ?	५११
नापि स्मरणापेक्षामिन्द्रियं कार्यकारणभावग्राहकम्	५११
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां कार्यकारणभावनित्यये षक्तुलस्य असर्वज्ञत्वेन व्याप्तिः स्यात्	५१२
कार्यकारणभावः अखिलधूमामिनिष्ठतया ज्ञानुं न शक्यते ...	५१३
कारणत्वं हि कार्योत्पादनशक्तिविक्षिप्तं न च शक्तिः प्रत्यक्षावसेया (उत्तरपक्षः) सम्बन्धस्य तन्तुपटादौ प्रत्यक्षत एव प्रतीतेः ...	५१४
रज्जुवंसदण्डादीनामाकर्षणायान्ययानुपपत्तेर्वास्ति सम्बन्धः ...	५१४
विक्षिप्तरूपतापरिस्त्रागेन संक्षिप्तरूपतया परिणतिः हि सम्बन्धः स च सम्बन्धः क्वचिदन्योन्यप्रदेशानुप्रवेशतः, क्वचिच्च प्रदेश- संक्षिप्ताभावेण	५१५
परमाणुनाभंशवत्त्वे अंशशब्दः स्वभावार्थः अवयवार्थो वा स्यात् ?	५१५
कथं विक्षिप्पक्षयोश्च सम्बन्धोऽभ्युपगम्यते	५१५
पारतन्त्र्याभावे सम्बन्धस्याभावे पारतन्त्र्येण व्याप्तः सम्बन्धः क्वचित् प्रसिद्धो न वा ?	५१५
अज्ञानव्यविवेचनस्वरूपः कथं विदेकत्वापत्तिरूपो वा रूपक्षेपोऽभ्यु- पगम्यते	५१६
कारणं हि किञ्चित्सहभावि किञ्चित्तु क्रमभावि	५१६
कार्यकारणभावनित्ययस्य क्षयोपक्षमविशेषरूप-तद्भावभावित्वाभ्या- सात्मकबाह्यान्तःकारणप्रभवत्वात्	५१७
अकार्यकारणभावेऽपि च सर्वे विकल्पा समानाः	५१९
विशेषो द्विधा	५२०
पर्यायस्य स्वरूपम्	५२०
अन्वयव्यात्मनः सिद्धिः	५२०-२४
त्रिजसवेदनवदनेकपर्यायव्यापिन आत्मनः स्वयमनुभवत्वात् ...	५२०
सुखादीनामत्यन्तभेदे प्रागहं सुक्यासं सम्प्रति दुःखी वर्तते इत्यनु- सन्धानप्रत्ययो न स्यात्	५२१
न हि अनुसन्धानवासनातः प्रत्यभिज्ञानम्	५२१
नापि सुखादीनामेकसन्ततिपतितत्वेन प्रत्यभिज्ञानहेतुता ...	५२१
आत्मनोऽनभ्युपगमे कृतनाशाऽकृताभ्यागमप्रसङ्गः	५२१
अहमेव ज्ञातवानहमेव वेद्मि इत्येकप्रमातृविषयकप्रत्यभिज्ञानावात्म- सिद्धिः	५२१
'अहमेव ज्ञातवान्' इति प्रत्यभिज्ञाने प्रमाता विषयो भवन् आत्मा वा भवेज्ज्ञानं वा ?	५२२

विषयाः	५०
ज्ञानयेत् स ज्ञानक्षणः अतीतो वर्तमानः उभौ सन्तानो वा ...	५२२
आत्मा हि स्वयमेव सुखादिरूपतया परिणमते न तु घृणक्तु सिद्धैः सुखादिभिस्त्वस्य सन्बन्धः	५२३
नीलाद्यनेकाकारव्यापिन्नित्रज्ञानवत् स्वपरग्रहणशक्तिद्वयात्मकैकविज्ञान- नवद्वा स्वयमात्मनः सुखादिपरिणामः... ..	५२३
व्यतिरेकस्य लक्षणम्	५२४
पदपदार्थवादः	५२४
(वैशेषिकस्य पूर्वपक्षः) अर्थस्य सामान्यविशेषात्मकत्वमयुक्तम् ; प्रतिभासमेवेन सामान्यविशेषयोरत्यन्तमेवात्	५२४
भिन्नप्रमाणप्राप्त्याश्च सामान्यविशेषावत्यन्तभिन्नौ	५२५
विरुद्धधर्माभ्यासाद्य अवयव-अवयविनावपि अत्यन्तभिन्नौ	५२५
विभिन्नकर्तृकलाद्य अवयवावयविनोरत्यन्तमेदः	५२५
पूर्वोत्तरकालभावित्वात् विभिन्नशक्तिरूपाद्य तयोर्भेदः	५२५
तन्तुपटयोस्तादात्म्ये पटस्तन्तव इति वचनभेदः, पटस्य भावः पटत्वमिति पटो तद्वितोत्पत्तिश्च न स्यात्	५२५
तादात्म्यमित्यत्र च विग्रहस्य अनुपपत्तिः	५२५
तन्तुपटादीनां भेदाभेदात्मकत्वे च संशयविरोधवैयधिकरण्योभय- दोषसद्भव्यतिकरानवस्थाऽप्रतिपत्त्यभावाख्याः दोषाः प्रसज्यन्ते	५२६
अतः परस्परभिन्नाः इव्यगुणादयः पद पदार्थाः	५२६
नव इत्याणि	५२६
चतुर्विंशतिर्गुणाः	५२७
पंच कर्माणि	५२७
सामान्यं द्विविधं	५२७
(उत्तरपक्षः) वास्तवानेकधर्मात्मकोऽर्थः विभिन्नार्थक्रियाकारित्वात् प्रत्यक्षानुमानाभ्या विभिन्नप्रमाणप्राप्त्येऽपि नात्मनो भेदः	५२८
अवयवावयव्यादीनां विभिन्नप्रमाणप्राप्त्याश्चासिद्धम्	५२९
दृष्टान्तश्च साध्यसाधनविकलो घटादीनामपि सद्रूपेणामेवात्	५२९
विरुद्धधर्माभ्यासोऽपि स्वसाध्येतरापेक्षया गमकलागमकत्वधर्मोपेतैर्न घूमादिना व्यभिचारी	५३०
अप्राप्तपटावस्थेभ्यः तन्तुभ्यः पटस्य भेदः साध्येत पटावस्थाभा- विभ्यो वा ?	५३०
'तन्तवः, पटः' इति संज्ञाभेदोऽवस्थाभेदनिबन्धनः	५३०
'धर्णां पदार्थानामस्तित्वम्' इत्यत्र भेदाभावोऽपि पटो भवत्येव अस्तित्वादेः पदपदार्थैः ग्रह संयोगः समवायो वा ?	५३१

विषयाः	४०
'अस्तित्वम्' इत्यत्राऽपरास्त्रिजाभावात्कथं षष्ठी भावप्रत्ययो वा ?	५३१
'स्वस्य भावः स्वत्वम्' इत्यत्रामेदेऽपि तद्धितोत्पत्तिः भवत्येव ...	५३२
तस्य बन्धुनः आत्मानौ द्रव्यपर्यायौ सत्त्वासत्त्वादिधर्मौ वा तदा- त्मानौ तयोर्भावस्त्वादात्म्यम्	५३२
ते तन्तव आत्मा यथेति विग्रहे पटस्य किमनेकावयवात्मकत्वं स्यात् प्रवितन्तु पटत्वप्रसङ्गो वा स्यात् ?	५३२
भेदाभेदप्रतीती हि न संशयः	५३२
कथञ्चिदपि तयोः सत्त्वासत्त्वयोः विरोधोऽपि नास्ति	५३२
न च स्वरूपेण भाव एव पररूपेणाभावः; तदपेक्षणीयनिमित्तभेदात् एकलद्विजादिसंख्यावत्	५३३
विरोधश्चात्र सहानवस्थालक्षणः परस्परपरिहारस्थितिलक्षणः वच्य- चातकभावो वा ?	५३३
विरोधो हि धर्मयोः धर्मधर्मिणोर्वा स्यात् ?	५३३
विरोधः स्रवेथा कथञ्चिद्वा ?	५३४
भावेभ्यो भिन्नोऽभिन्नो वा विरोधः ?	५३४
विरोधस्य द्रव्यादौ सम्बन्धे सति विशेषणत्वम् असम्बन्धे वा ?	५३५
सम्बन्धश्चेत्; संयोगेन समवायेन विशेषणभावेन वा ?	५३५
नापि वैयधिकरण्यदोषः	५३५
नाप्युभयदोषः सङ्करव्यतिकरौ अनवस्थाऽभावौ वा	५३६
नित्यैकरूपे ह्यात्मनि कर्तृत्वभोक्तृत्वजीवनहिंसकत्वादिव्यपदेशा- भावः तेषामनेकान्ते एव संभवात्	५३६
सर्पस्य कुण्डलेतरावस्थापेक्षया व्यावृत्त्यनुगमात्मकत्ववत् आत्म- नोऽपि उभयस्वभावता	५३७
परमाणुरूपनित्यद्रव्यविचारः	५३७-४०
एकान्तनित्ये परमाणौ क्रमयौगपथाभ्यामर्थक्रियाविरोधात् ...	५३७
अथूनां नित्यत्वेन संयोगादीनामपेक्षाऽनुपपत्तेः	५३८
संयोग एवातिज्ञयश्चेत्; स किं नित्यः अनित्यो वा ?	५३८
अनित्यश्चेत्तदुत्पत्तौ कोऽस्तिशयः संयोगः क्रिया वा ?	५३८
संयोगो हि परमाण्वाद्याधितः तदन्याधितः अनाधितो वा ?	५३८
प्रथमपक्षे तनुत्पत्तौ आश्रयः उत्पद्यते न वा ?	५३८
संयोगः सर्वात्मना एकदेशेन वा ?	५३९
परमाणूनां स्करन्धावयविविनाशकारणकत्वेन अकारणवत्त्वादिभेदः	५३९
शौगाभिमत्त-अवयविद्रव्यस्य निरासः	५४०-५४७
तन्हावयवयवेभ्यो भिन्नस्यावयविविनः अनुपलम्भाद्सत्त्वम् ...	५४०

विषयाः	५०
अवयवानवयविनोः धातुयदेशापेक्षया समानदेशत्वं लौकिकदेशा- पेक्षया वा ?	५४०
कतिपयावयवप्रतिभासे अवयविनः प्रतिभासो निरित्त्ववयवप्रति- भासे वा ?	५४०
नापि भूयोऽवयवग्रहणेऽवयविनः प्रतिभासः	५४०
अर्वागभागभाव्यवयवग्राहिणा प्रत्यक्षेण परभागस्य तेन वाऽर्वागभा- गस्याग्रहणात् न पूर्वापरभागव्यापी अवयवी गृहीतुं शक्यते	५४०
नापि स्मरणेन प्रत्यभिज्ञानेन वा पूर्वापरवयवभागव्याप्यवयवी गृह्यते	५४०-४१
न च निरंशावयविनोऽनेकवयवेषु वृत्तिः	५४२
अवयविनोऽवयवेषु वृत्तिः सर्वात्मना एकदेशेन वा ?	५४२
एकदेशेन चेत् किमेकावयवकोटीकृतेन स्वभावेनैव अन्यत्र वृत्तिः स्वभावान्तरेण वा ?	५४२
यद्यवयवी निरंशस्तदा एकदेशावारणे रागे च सर्वत्रावारणं रागश्च स्यात्	५४३
संयोगस्याव्याप्यवृत्तित्वं किं सर्वद्रव्याव्यापकत्वम् एकदेशवृत्तित्वं वा ? अवयविनिरासे च प्रमङ्गसाधनमेव अभ्युपगम्यते	५४४
कथञ्चिदवयवरूपस्यावयविनः सिद्धिः	५४५
एकस्य रूपादिमतोऽवयविनोऽसिद्धिः किं विरुद्धधर्माध्यसेनैकत्र एतल्लानेकत्वयोः तादात्म्यविरोधात् तद्ग्रहणोपायासंभवाद्वा ?	५४६
इदं स्वभाविष्यपदेश्यं रूपम् क्रमेकं प्रत्येकम्, अनेकानंशपर- माणुमध्यमात्रं वा ?	५४६
जातिभेदेन पृथिव्यादीनान्योन्यं भेदस्त्वयुक्तः जलादीनां परस्पर- मुपादानोपादेयभावदर्शनात्	५४७
आकाशाद्रव्यविचारः	५४८
(वैशेषिकस्य पूर्वपक्षः) शब्दलिङ्गादात्मज्ञसिद्धिः	५४८
शब्दाः क्वचिदाधिताः गुणत्वात्	५४८
शब्दो गुणः प्रतिपिभ्यमानद्रव्यकर्मभावरूपे सति सत्तासम्बन्धित्वात्	५४८
शब्दो द्रव्यं न भवलेकद्रव्यत्वात्	५४८
कर्मापि न भवत्यसौ सयोगविभागाकारणत्वाद्गुणादिवदिति ...	५४८
यद्येवामाश्रयः तत्पारिज्ञेय्यादाकाशम्	५४९
शब्दलिङ्गाविज्ञेयाद्विशेषलिङ्गाभावाच्चकम्	५४९
विभुच सर्वत्रोपलभ्यमानगुणत्वात्	५४९
(उत्तरपक्षः) शब्दानां सामान्येनाश्रितत्वं साध्यते निलैकामूर्त- विभुद्रव्याश्रितत्वं वा ?	५५०

विषयाः	५०
द्रव्यं शब्दः स्पर्शाल्पलमहत्त्वपरिमाणसंख्यासंयोगगुणाश्रयत्वात्	५५०
स्वसम्बन्धार्थाभिधातहेतुत्वात् स्पर्शवान् शब्दः	५५०
अल्पलमहत्त्वप्रतीतिविषयत्वात् अल्पलमहत्त्वपरिमाणाश्रयः शब्दः	५५०
न भन्दतीव्रतानिवन्धनोऽयम् अल्पलमहत्त्वप्रत्ययः	५५२
एकः शब्द इत्यादिप्रतीत्या संख्याश्रयः शब्दः	५५२
उपचारेऽपि कारणगता विषयगता वा संख्या शब्दे उपचर्येत ...	५५२
वाप्यादिनाऽभिहन्यमानत्वात् संयोगाश्रयः शब्दः	५५२
क्रियावत्त्वाच्च द्रव्यं शब्दः	५५३
निष्क्रियत्वे शब्दस्य श्रोत्रेण ग्रहणं न स्यात्	५५३
सम्बन्धकल्पने श्रोत्रं वा शब्दोत्पत्तिदेशं गच्छेत् शब्दो वा श्रोत्र- प्रदेशमागच्छेत् ?	५५३
वीचीतरङ्गन्यायेन हि अपरापरशब्दोत्पत्तिर्न युक्ता प्रत्यभिज्ञाना- च्छन्दस्यैकत्वनिश्चयात्	५५३
अस्मदादिप्रत्यक्षत्वे सति विभुद्रव्यविशेषगुणत्वात्तेतोर्न शब्दक्षणि- कत्वसिद्धिः	५५५
वीचीतरङ्गन्यायेन प्रथमतो वक्तव्यापारादेकः शब्दः प्रादुर्भवति अनेको वा ?	५५८
आद्यःशब्दोऽनेकोऽस्तु, तथाप्यसौ स्वदेशे शब्दान्तराण्यारभते देशान्तरे वा ?	५५८
देशान्तरेऽपि; तद्देशे गत्वा स्वदेशस्य एव वा ?	५५९
आकाशगुणत्वे शब्दस्य अस्मदादिप्रत्यक्षता न स्यात्	५५९
सत्तासम्बन्धित्वञ्च स्वरूपभूतया सत्तया, अर्थान्तरभूतया वा ? ...	५५९
अनेकद्रव्यः शब्दः अस्मादादिप्रत्यक्षत्वे सत्यपि स्पर्शवत्त्वात् ...	५६०
नाऽकारणगुणपूर्वकः शब्दः अस्मदादिवाद्येन्द्रियग्राह्यत्वे सति गुण- त्वात् पदरूपादिवत्	५६१
अथावद्द्रव्यभावित्वञ्च शब्दस्य विरुद्धम्	५६१
आकाशस्य समवायिकारणत्वे शब्दे नित्यत्वं विशुद्धञ्च स्यात् ...	५६२
कर्यं वा शब्दस्य विनाशः ? नाशयविनाशाच्चापि विरोधिगुण- प्रादुर्भावात्	५६२
पौद्गलिकत्वेऽपि शब्दस्य अतुल्यरूपादिमत्त्वञ्च चक्षुरादिभि- रुपलम्भः	५६२
पौद्गलिकः शब्दः अस्मदादिप्रत्यक्षत्वेऽचेतनत्वे च सति क्रियाव- त्त्वात् नागादिवत्	५६३
आकाशस्य तु युगपद्विखिलद्रव्यावगाहकार्यान्यथानुपपत्त्या सिद्धिः	५६३

विषयाः	पृ०
कालद्रव्यवादः	५६४-६८
(वैशेषिकस्य पूर्वपक्षः) परापरादिप्रत्ययलिङ्गात् कालद्रव्यस्य सिद्धिः	५६४
परापरव्यतिकरादपि कालानुमानम्	५६४
न च परापरादिप्रत्ययस्य आदिसाक्षिवादयो निमित्तम्	५६४
(उत्तरपक्षः) काल एकद्रव्यमनेकद्रव्यं वा ?	५६४
न च व्यवहारकालो मुख्यकालद्रव्यमन्तरेण घटते	५६४
प्रत्याकाशदेशं विभिन्नो व्यवहारकालः कुरुक्षेत्रलङ्कादिषु दिवसादि- भेदान्यथानुपपत्तेः	५६५
निरवयवैकद्रव्यत्वे कालस्य अतीतादिव्यवहारः किमतीताद्यर्थक्रिया- सम्बन्धात् स्वतो वा ?	५६५
कालैकत्वे च योगपद्यादिव्यवहाराभावः	५६५
नाप्युपाधिभेदात् कालभेदः	५६६
न हि परापरादिप्रत्ययाः निर्निमित्ताः	५६७
नाप्यादिसादिक्रिया परापरादिप्रत्ययनिमित्तम्	५६७
आपि कर्तृकर्मणी एव योगपद्यादिप्रत्ययनिमित्तम्	५६७
लोकव्यवहाराय कालद्रव्यस्य सिद्धिः	५६८
दिग्द्रव्यवादः	५६८-७०
(वैशेषिकस्य पूर्वपक्षः) अत इदं पूर्वेणैसादिप्रत्ययेभ्यः दिग्द्रव्य- सिद्धिः	५६८
दिग्द्रव्यस्यैकत्वेऽपि सवितुर्नेचं प्रदक्षिणमावर्तमानस्य लोकपालयुद्धो- त्तदिकप्रदेशैः सयोग्यद् प्राच्यादिव्यवहारो घटते	५६८
(उत्तरपक्षः) उक्तप्रत्ययानामाकाशहेतुकत्वेन आकाशादिशोऽर्था- न्तरत्वासिद्धेः	५६९
सवितुर्नेचं प्रदक्षिणमावर्तमानस्यैसादिन्यायेन आकाशे एव प्राच्या- दिव्यवहारः कर्तव्यः	५६९
दिग्द्रव्यवत् देशद्रव्यमपि पृथक् कल्पनीयं स्यात्	५६९
आत्मद्रव्यविचारः	५७०-५८६
प्रत्यक्षेण हि आत्मा स्वदेहे एवानुभूयते	५७०
नात्मा परममहापरिमाणः द्रव्यान्तरसाधारणसामान्यवत्त्वे सति अनेकत्वात्	५७०
नात्मा व्यापकः दिक्कालाकाशान्यत्वे सति द्रव्यत्वात् घटवत्	५७०
नात्मा व्यापकः क्रियावत्त्वात्	५७०
आत्मा अणुपरममहापरिणामानधिकरणः चेतनत्वात्	५७१
अणुपरिमाणानधिकरणत्वमित्यत्र किं नचर्थः पर्युदासः प्रसज्यो वा ?	५७१

विषयाः	पृ०
असज्यपक्षे असौ तुच्छाभावः साध्यस्य स्वभावः कार्यं वा ? ...	५७१
निस्त्रद्रव्यधात्मा कथञ्चित् सर्वथा वा ?	५७२
देवदत्ताङ्गनाङ्गादिकार्यस्य कारणत्वेनाभिमतता देवदत्तात्मगुणाः ज्ञानदर्शनादयो धर्माधर्मौ वा ?	५७२
धर्माधर्मयोरुत्तमगुणत्वमेव नास्ति	५७२
न धर्माधर्मौ आत्मगुणौ अचेतनत्वात्	५७२
आसादिवदिति दृष्टान्ते च आत्मनः को गुणः धर्मादिः प्रयत्नो वा ? एकद्रव्यत्वे सति क्रियाहेतुगुणत्वाद्देतोर्नादृष्टस्य स्वाश्रयसंयुक्ते आश्रयान्तरे क्रियाजनकत्वसिद्धिः	५७३
अदृष्टस्य एकद्रव्यत्वं हि एकस्मिन् द्रव्ये संयुक्तत्वात् समवायेन वर्तनात् अन्यतो वा स्यात् ?	५७४
द्वीपान्तरवर्तिमण्यादिद्रव्यक्रियाहेत्वदृष्टं किं देवदत्तशरीरसंयुक्तात्म- प्रदेशे वर्तमानं सत् क्रियाकारणम् उत द्वीपान्तरवर्तिद्रव्य- संयुक्तात्मप्रदेशो, किं वा सर्वत्र ?	५७४
तथाऽदृष्टं स्वयमुपसर्पत् अन्येषां मण्यादीनां क्रियाहेतुः, उत द्वीपा- न्तरवर्तिद्रव्यसंयुक्तात्मप्रदेशस्थमेव ?	५७५
प्रथमे स्वयमेवादृष्टं तं प्रत्युपसर्पति अदृष्टान्तराद्वा ?	५७५
यथा प्रथमस्य वैचित्र्यं तथाऽदृष्टस्याप्यस्तु	५७५
सर्वत्र चादृष्टस्य कृतौ सर्वद्रव्यक्रियाहेतुत्वं स्यात्	५७६
'पश्चादयः अज्ञनादिसधर्मणा समाकृष्टाः' इत्यपि वक्तुं शक्यत्वात् 'देवदत्तं प्रत्युपसर्पन्तः' इत्यत्र किं शरीरं देवदत्तसन्देहाच्च्यम् आत्मा तत्संयोगो वा आत्मसंयोगविशिष्टं शरीरं शरीरसंयोग- विशिष्ट आत्मा वा शरीरसंयुक्त आत्मप्रदेशो वा ?	५७७
आत्मप्रदेशाश्च काल्पनिकाः पारमार्थिका वा ?	५७८
पारमार्थिकाश्चेदभिन्नाः भिन्ना वा ?	५७८
स्वशरीर एव सर्वत्रोपलभ्यमानगुणत्वं विवक्षितम् उत स्वशरीरवत् परशरीरे अन्यत्र च	५७९
मनुष्यजन्मवत् जन्मान्तरेऽप्युपलभ्यमानगुणत्वं किं क्रमेण युगपद्वा ? सक्रियत्वे आत्मनः मूर्तिमत्त्वं स्यात्' इत्यत्र कीदृक् मूर्त्तत्वं विव- क्षितं किं रूपादिमत्त्वम् अ सर्वगतद्रव्यपरिमाणात्मकत्वं वा ?	५७९
आत्मनः अनित्यत्वं च सर्वथा कथञ्चिद्वा आपायते ?	५७९
आत्मनो निष्क्रियत्वे संसाराभावः ?	५८०
संसारो हि शरीरस्य मनसः आत्मनो वा स्यात् ?	५८०

विषयाः	५०
अचेतनं च मनः कथमिष्टे स्वर्गादौ प्रवर्तत—किं स्वभावतः ईश्वरात् तदात्मनः अदृष्टाद्वा ?	५८०
आत्मना प्रेरणे अज्ञातं मनस्त्वेन प्रेर्येत ज्ञातं वा ?	५८०
आकाशस्य च को गुणः सर्वत्रोपलभ्यते शब्दो महत्त्वं वा ?	५८१
अमूर्तत्वं च मूर्तत्वाभावः, तत्र किं रूपादिमत्त्वं मूर्तत्वम् असर्व- गतद्रव्यपरिमाणात्मकं वा ?	५८२
अमूर्तत्वादित्यत्र किं नवर्थः पर्युदासः प्रसज्यो वा ?	५८२
प्रसज्यपक्षे तद्ग्रहणोपायः प्रसक्तमनुमानं वा न युज्यते	५८२
मनोऽन्वये सति अस्पष्टवद्द्रव्यत्वादिति हेतुः सन्निदर्धानैकान्तिकः सर्वगतत्वे सर्वपरमाणुभिः संयोगात् सर्वद्रव्यक्रियाहेतुत्वे न जाने क्रियत्परिमाणं शरीरं स्यात्	५८४
संयोगानामदृष्टापेक्षत्वे केयमदृष्टापेक्षा किमेकार्थसमवायः उपकारः सहायकमैजजननं वा ?	५८४
सावयवत्वेन मिश्रावयवारब्धत्वस्य व्याप्त्यभावात्	५८५
आत्मनो मिश्रावयवारब्धत्वम् आदौ मध्यावस्थायां वा साध्येत ? सावयवशरीरव्यापिलेपि आत्मनः शरीरच्छेदे कथञ्छेदो भवत्येव	५८६
गुणपदार्थत्वाद्:	५८७-६००
(वैशेषिकस्य पूर्वपक्षः) रूपरसगन्धादयश्चतुर्विंशतिर्गुणाः	५८७
संख्या एकद्रव्या अनेकद्रव्या च	५८७
महदणुषीर्षहस्त्रमेदेन चतुर्धा परिमाणम्... ..	५८७
संयोगादीनां लक्षणानि	५८७
वैगो भावना स्थितस्थापकश्चेति त्रिविधः संस्कारः	५८८
(उत्तरपक्षः) नहि रूपं प्रयिव्यादित्रयवृत्त्येव चायोरपि रूपवत्त्वात् जल्वनकयोरपि गन्धरसादिमत्ता	५८९
संख्यापि न संख्यैकार्थमिच्छोपलभ्यते	५८९
एको गुणः बहवो गुणाः इत्यत्र यथा संख्याभावेपि एकत्वादिवृद्धिः स्वरूपमात्रनिबन्धनैव घटते तथैव घटादिष्वपि भविष्यति	५८९
नाभ्युपचारात् गुणेषु संख्याप्रतीतिः; यतः आश्रयगता विषयगता वा संख्योपचर्येत ?	५८९
मेदवदस्याः संख्यायाः असमवायिकारणत्वासंभवात्	५९०
अपेक्षावृद्धित्वात् घटपटादौ प्रतिनियतसंख्या प्रतीयते	५९१
संख्याव्यवहारस्य स्वरूपमात्रनिबन्धनत्वे षट्पञ्चविंशतिभिः सार्धं ज्ञतमित्यादिव्यवहारोऽपि युज्यते स्यात्	५९१
परिमाणस्यापि घटाद्यर्थव्यतिरेकेण प्रतीत्यभावात्	५९२

विषयाः	पृ०
असत्यपि महत्त्वादौ प्रासादमालादिषु महती प्रासादमालेत्यादि- प्रत्ययप्रतीतेः	५९२
न हि माला द्रव्यस्वभावा जातिस्वभावा वा युज्यते	५९३
आपेक्षिकलाष परिमाणस्य न गुणरूपता	५९३
अतो न हस्तादि परिमाणं संस्थानविशेषाद्भिन्नम्	५९३
पृथक्त्वमपि न भिन्नतयोत्पन्नपदार्थस्वरूपादपरम्	५९३
रूपादिगुणेष्वपि च पृथगिति प्रत्ययः प्रतीयते	५९३
पृथग्भूतेभ्योऽर्थेभ्यः पृथग्भूता भिन्ना अभिन्ना वा कियेत ?	५९३
संयोगोऽपि निरन्तरोत्पन्नपदार्थद्वयव्यतिरेकेण नापरः	५९४
संयुक्तौ प्रासादौ ह्यत्र संयोगगुणाभावेऽपि संयुक्तबुद्धिः भवत्येव विभागस्य च संयोगाभावरूपत्वाच्च गुणरूपता	५९५
संयोगनिवृत्तिश्च क्रियात् एव स्यात्	५९५
विभागजविभागो विभागस्वरूपाद्भापरः, स च क्रियात् एव	५९५
परत्वापरत्वेऽपि नार्थान्तरम्	५९६
रूपादिषु तदभावेऽपि परापरप्रत्ययोत्पत्तेः	५९६
अतः विकृष्टसंश्लिष्टवैव परत्वापरत्वे नापरे	५९६
एवं च मध्यममपि गुणोऽभ्युपगन्तव्यः	५९७
सुखदुःखादीनामवृद्धिरूपत्वे नात्मगुणता	५९७
शुरुत्वादयस्तु पुद्गलद्रव्यस्य गुणाः	५९७
नहि शुरुत्वमतीन्द्रियम्	५९७
द्रवत्वं हि अस्तु एव पृथिव्यनल्योस्तु तत्संयुक्तसमवायवशा- त्प्रतीतिः	५९७
ज्ञेहोऽम्भस्येवेत्युक्तम् ; श्रुतादावपि पार्थिवे ज्ञेहप्रतीतेः	५९८
ज्ञेहस्य गुणत्वे काठिन्यमार्दवादेरपि गुणरूपता स्यात्	५९८
न हि काठिन्यादयः संयोगविशेषा अपि तु स्पर्शविशेषाः	५९८
वेगस्य आत्मन्यपि संभवात् ; तस्य सक्रियत्वात्	५९९
न च क्रियातोऽर्थान्तरं वेगः	५९९
न च संस्कारोऽर्थात् विभिन्नः	५९९
भवनाना तु धारणारूपत्वेन स्त्रीक्रियत एव	५९९
स्थितस्थापकश्च किं स्वयमस्थिरस्वभावं भावं स्थापयति स्थिर- स्वभावं वा	५९९
धर्माधर्मादयस्तु नात्मगुणाः	६००
कर्मपदार्थवादः	६००-१
(वैशेषिकस्य पूर्वपक्षः) उत्क्षेपणादीनि पंच कर्माणि	६००

विषयाः	५०
उत्क्षेपणादीनि चत्वारि नियतदिग्देशसंयोगविभागकारणानि ...	६००
गमनं तु अनियतदिग्देशसंयोगविभागकारणम्	६००
(उत्तरपक्षः) देशादेशान्तरप्राप्तिहेतुः अर्थस्य परिणाम एव कर्म	६००
अमणरेचनस्थन्दनादीनामपि पृथक् कर्मत्वप्रसङ्गः	६००
न चैकरूपस्यार्थस्य क्रियासमावेशः	६००
नापि क्षणिकस्य क्रिया घटते	६००
नापि अर्थादर्थान्तरं कर्म	६०१
विशेषपदार्थविचारः	६०१-६०४
(वैशेषिकस्य पूर्वपक्षः) नित्यद्रव्यवृत्तयः अन्त्या विशेषाः ...	६०१
जगद्विनाशारम्भकोटिभूतेषु परमाणुषु मुक्तात्मसु मुकामनःसु	
चान्तोषु भवा अन्त्याः... ..	६०२
व्यावृत्तबुद्धिविषयत्वं विशेषाणां सद्भावसाधकं प्रमाणम् ...	६०२
(उत्तरपक्षः) अणवादीनां स्वस्वभावव्यवस्थितं स्वरूपं परस्पर-	
सङ्कीर्णस्वरूपं स्यात् सङ्कीर्णं वा	६०२
यदि विशेषपदार्थमन्तरेण न व्यावृत्तबुद्धिः तदा विशेषपदार्थेषु	
परस्परं कथं व्यावृत्तप्रत्ययः ?	६०३
विशेषेषु उपचारेण प्रत्यययोगमे कोऽयमुपचारः ? असतो विषय-	
त्वेनाक्षेपश्चेत्, स किं संशयत्वेनाक्षिप्यते विपर्ययत्वेन वा ?	६०३
अनुमानवाधितो हि विशेषसद्भावः	६०४
समवायपदार्थविचारः	६०४-६२
(वैशेषिकस्य पूर्वपक्षः) अयुतसिद्धानामाधारार्थाधारभूतानामित्यादि	
समवायस्य लक्षणम्	६०४
समवायलक्षणस्य पदसार्थत्वम्	६०४
प्रत्यक्षत एव समवायः प्रतीयते	६०५
'अवाच्यमानेहप्रत्ययत्वात्' इत्यनुमानेनापि समवायः प्रतीयते ...	६०५
नहि इह तन्नुप पट इत्यादीहेतुं प्रत्ययः तन्नुपटहेतुकः, नापि	
वासनाहेतुकः	६०६
इदमिहेति ज्ञानं हि समवायविशिष्टतन्नुपटालम्बनम्	६०६
इहेतिप्रत्ययाविशेषाद्विशेषलिङ्गाभावाच्चैकः समवायः	६०७
समवायस्यैकत्वेऽपि आधारशक्तिवशात् द्रव्यमेव द्रव्यत्वस्याभिव्य-	
ञ्जकम् न गुणादयः	६०७
समवायीनि द्रव्याणीति प्रत्ययः विशेषणपूर्वकः विशेष्यप्रत्ययत्वादि-	
त्यनुमानात् समवायसिद्धिः	६०७

विषयाः	पृ०
नानिष्पन्नयोः निष्पन्नयोर्वा समवायः; स्वकारणसत्तासम्बन्धस्यैव निष्पत्तिरूपत्वात्	६०८
(उत्तरपक्षः) अयुतसिद्धत्वं हि शास्त्रीयम् लौकिकं वा ? ...	६०९
पृथगाश्रयवृत्तित्वं युतसिद्धिलक्षणम् आकाशादावव्याप्तम् ...	६०९
नित्यानां पृथग्गतिमत्त्वमपि आकाशादिषु न संप्रदते	६०९
एकद्रव्याश्रितरूपानीनां पृथगाश्रयवृत्तेरभावात् अयुतसिद्धत्वं स्यात् युतसिद्धिलक्षणे इतरैतराश्रयश्च	६०९
समवायस्यासाधारणं स्वरूपं किम् अयुतसिद्धसम्बन्धत्वं सम्बन्ध- मात्रं वा ?	६१०
सम्बन्धरूपतया चासौ सम्बन्धबुद्धौ प्रतिभासेत, इहेति प्रत्यये वा, समवाय इत्यनुमवे वा ?	६१०
सम्बन्धश्च किं सम्बन्धलजातियुक्तः स्यात् अनेकोपादानजनितो वा अनेकाश्रितो वा सम्बन्धबुद्धुत्पादको वा सम्बन्धबुद्धि- विषयो वा ?	६१०
सर्वसमवायानुगतैकत्वभावः समवायः सम्बन्धबुद्धौ प्रतिभासेत तद्व्यावृत्तस्वभावो वा	६११
अबाध्यमानेहप्रत्ययत्वं च हेतुराश्रयासिद्धिः	६११
'पटे तन्तवः वृक्षे शाखाः' इत्यादि प्रतीयते ननु तन्तुषु पटः इत्यादि	६११
'इह प्रागभावेऽनादित्वम्' इत्यादीहेदम्प्रत्ययस्य सम्बन्धपूर्व- कत्वाभावात्	६१२
अनुमानात् सम्बन्धमात्रं साध्यते तद्विशेषो वा ?	६१२
सम्बन्धविशेषश्चैत्; संयोगः समवायो वा ?	६१२
परिशेषात्समवायसिद्धौ परिशेषः किं प्रमाणमप्रमाणं वा ? ...	६१३
प्रमाणं चेत् किं प्रत्यक्षमनुमानं वा ?	६१३
इहेदमिति प्रत्ययो हि तादात्म्यहेतुकः	६१३
संयोगस्वरूपस्वपण्डनम्	६१३
विशिष्टपरिणामापेक्षया बीजादीनाम् अङ्करोत्पादकत्वमतौ न संयो- गस्यैवापेक्षा	६१४
यदि न संयोगमात्रापेक्षा एव बीजादय अङ्कुरादिकमुत्पादयन्ति तदा प्रथमोपनिपात एव उत्पादयन्तु	६१४
न द्रव्याभ्यामर्थान्तरभूतः संयोगो विशेषणतया प्रतिभासेते ...	६१५
चैत्रकुण्डलयोः विशिष्टावस्थाप्राप्तिः हि सर्वदा न भवति अतः कुण्डलीति बुद्धिरपि न सार्वदिकी	६१५

विषयाः	पृ०
विशेषविरुद्धानुमानं च किमनुमानाभासोच्छेदकज्ञाच्च वक्तव्यम् सम्यगनुमानोच्छेदकसाक्षाद्वा ?	६१५
अनेकः समवायः विभिन्नदेशकालाकारार्थेषु सम्बन्धबुद्धिहेतुत्वात्	६१६
नाना समवायः अयुतसिद्धावयविद्वय्याश्रितत्वात् संख्यावत् ...	६१६
अनाश्रितत्वेऽपि समवायस्य अनेकत्वमेव	६१६
इहात्मनि ज्ञानसिद्ध घटे रूपादय इति विशेषप्रत्ययस्य सद्भावाद- नेकः समवायः	६१७
सत्तावदिति दृष्टान्तोऽपि साध्यसाधनविकलः	६१७
समवाय इति प्रत्ययेनानैकान्तिकोऽयं हेतुः ? स हि विशेष्यप्रत्ययो न च विशेषणमपेक्षते	६१८
किं येन सत्ता विशेष्यज्ञानमुत्पद्यते तद्विशेषणम्, किं वा यस्यानु- रागः प्रतिभासते तदिति ?	६१८
स्वकारणसत्तासम्बन्धस्य आत्मलामरूपत्वे किं सतां सत्तासमवायः असतां वा ?	६१९
सत्तासमवायात् पदार्थानां सत्त्वे तयोः कुतः सत्त्वम् ?	६१९
समवायस्य स्वरूपासिद्धौ स्वतःसम्बन्धत्वमपि न तत्र सिद्धम् ...	६२०
परतत्त्वेत् किं संयोगात्, समवायान्तरात्, विशेषणभावाददृष्टाद्वा ? विशेषणभावोऽपि समवायसमवायिभ्योऽत्यन्तं भिन्नः कुतस्तत्रैव नियान्येत ?	६२१
विशेषणभावः षट्पदार्थेभ्यो भिन्नः अभिन्नो वा ?	६२१
भिन्नत्वेत् किं भावरूपः अभावरूपो वा ?	६२१
अदृष्टश्च न सम्बन्धरूपः द्विष्टलाभावात्	६२१
न चादृष्टोऽपि असम्बद्धः सम्बन्धिप्रतिनियमहेतुः	६२१
अयं समवायः समवायिनोः परिकल्प्यते असमवायिनोर्वा ? ...	६२२
समवायिनोश्चेत्, तयोः समवायित्वं समवायात् स्वतो वा ? ...	६२२
अभिन्नं तैमानयोः समवायित्वं विधीयते भिन्नं वा ?	६२२
निरिक्तियेषु हि आघेयत्वम् अल्पपरिमाणत्वात् तत्कार्यत्वात् तथा- प्रतिभासाद्वा ?	६२२
नैयायिकाभिमतबोद्धशपदार्थानां निरासः	६२३-२४
विपर्ययानव्यवसाययोरपि बोद्धशपदार्थातिरिक्तत्वव्यवस्थितेः च पदार्थानां बोद्धशसंख्यानियमः	६२३
धर्माधर्मद्वययोश्च पृथक्सिद्धेः न बोद्धशप्रतिनियमः	६२३
सकलजीवपुद्गलगतस्थितयः साधारणबाह्यनिमित्तापेक्षाः युगपद्भा- विगतस्थितित्वाविति हेतोः धर्माधर्मद्वययोः सिद्धिः	६२३

विषयाः	५०
न गतिस्थितिपरिणामिन एवार्थाः परस्परं तदेतवः; अन्योन्याश्रय- प्रसंगात्	६२३
नापि पृथिवी नभो वा गतिस्थितिहेतुः	६२४
नाप्यदृष्टनिमित्ता गतिस्थित्योः	६२४
फलस्वरूपविचारः	६२५-२७
अज्ञाननिवृत्त्यादयः प्रमाणस्य फलम्	६२५
अज्ञाननिवृत्तिः प्रमाणादभिन्नं फलम्	६२५
अज्ञाननिवृत्ति-ज्ञानयोः सामर्थ्यसिद्धत्तमपि मेदे सत्येवोपलब्धम्	६२५
अमेदेऽपि कार्यकारणभावस्याविरोधात्	६२५
ज्ञानोपादानोपेक्षाश्च भिन्नं फलम् अज्ञाननिवृत्तिलक्षणफलेन व्यव- धानात्	६२५
आत्मनः प्रमाणफलरूपेण परिणामेऽपि लक्षणमेदात् प्रमाणफल- भावाऽविरोधः	६२६
साधनमेदाच्च प्रमाणफलयोर्मेदः	६२६
सर्वथाऽमेदे हि प्रमाणफलव्यवस्थाया अभावः स्यात्	६२७
नापि व्यावृत्तिमेदादेकत्रापि प्रमाणफलभावकल्पना युक्ता ...	६२७

इति चतुर्थः परिच्छेदः ।

तदाभासस्य स्वरूपम्	६२९
अखसंविदितादयः प्रमाणाभासाः	६२९
प्रत्यक्षाभासस्य स्वरूपम्	६२९
परोक्षाभासस्य स्वरूपम्	६३०
स्मरण-प्रत्यभिज्ञानाभासयोः लक्षणम्	६३०
अनिष्टादयः पक्षाभासाः	६३०
सिद्धः पक्षाभासः	६३१
प्रत्यक्षानुमानागमलोकस्ववचनविकल्पात् पंचधा बाधितः पक्षाभासः	६३१
असिद्धविरुद्धानैकान्तिकाकिञ्चित्करमेदेन चतुर्धा हेत्वाभासः	६३२
द्विविधोऽसिद्धहेत्वाभासः	६३२
विज्ञेय्यासिद्धादयोऽष्ट असिद्धहेत्वाभासाः अत्रैवान्तर्भवन्ति ...	६३३
व्यधिकरणस्यापि कृत्तिकोदयादेः सत्त्वतुलदर्शनाच्च व्यधिकरणासिद्धो हेत्वाभासः	६३३
भागासिद्धोऽपि अविनाभावसद्भावाद् गमक एव	६३४

विषयाः	५०
सन्दिग्धविशेषासिद्धादयः अत्रैवान्तर्भूताः	६३५
एतेऽसिद्धहेलाभासाः केचिदन्यतरासिद्धाः केचिच्च उभयासिद्धाः	६३५
अन्यतरासिद्धहेलाभासस्य समर्थनम्	६३५
विरुद्धहेत्वाभासस्य लक्षणम्	६३५
सति सपक्षे चक्षुरो विरुद्धाः असति सपक्षे च चक्षुर इति अष्टौ	
विरुद्धभेदाः अत्रैवान्तर्भवन्ति	६३६
अनैकान्तिकहेत्वाभासस्य लक्षणम्	६३७
पक्षसपक्षान्यवृत्तित्वं व्यभिचारः	६३७
निश्चितवृत्ति-सन्दिग्धवृत्तिभेदेन द्विधा अनैकान्तिकः	६३७
पक्षत्रयव्यापकादयोऽष्टौ अनैकान्तिकभेदाः अत्रैवान्तर्भावनीयाः	६३८
अकिञ्चित्करहेत्वाभासस्य लक्षणम्	६३९
अकिञ्चित्को लक्षणकाल एव दोषो न तु प्रयोगकाले	६३९
दृष्टान्ताभासनिरूपणम्	६४०-४१
अन्वयदृष्टान्ताभासविवेचनम्	६४०
व्यतिरेकदृष्टान्ताभासनिरूपणम्	६४०
थालप्रयोगाभासनिरूपणम्	६४१
आगमाभासविचारः	६४२
संख्याभासनिरूपणम्	६४२-४३
विषयाभासविवेचनम्	६४३-४४
फलाभासनिरूपणम्	६४४-४५
जयपराजयव्यवस्था	६४५-४४
बाहो विजिगीषुविषयत्वेन चतुरङ्गः	६४५
वादो नाविजिगीषुविषयः निग्रहस्थानवत्वाजल्पवितण्डावत् ...	६४६
वादस्तरबाध्यवसायसंरक्षणार्थः प्रमाणतर्कसाधनोपलम्भत्वे सिद्धा-	
न्ताविरुद्धत्वे पञ्चावयवोपपन्नत्वे च सति पक्ष-प्रतिपक्षपरिग्रह-	
वत्त्वात्	६४७
पक्षप्रतिपक्षौ च बस्तुधर्मौ एकाधिकरणौ विरुद्धवैककालावनवसितौ	६४७
वादचतुरङ्गः स्वाभिप्रेतव्यवस्थापनफलत्वात् वादलाद्वा लोकप्रसिद्ध-	
वादवत्	६४८
समापतिप्राप्तिकादिप्रतिवादिभेदेन चक्षुर्यज्ञानि	६४९
छलादीनामसदुत्तरत्वाच्च तैः जय-पराजयव्यवस्था ...	६४९
छललक्षणम्	६४९
बहि वाक्छलमात्रेण जयः	६४९
नापि सामान्यच्छलाद् जयः	६५०
नाप्युपचारच्छलाद् जयः	६५१

विषयाः	पृ०
नापि जातिप्रयोगाज्जयः	६५१
(नैयायिकस्य पूर्वपक्षः) जातेः सामान्यलक्षणम्	६५१
भाव्यकारमतेन साधर्म्यसमायाः स्वरूपम्	६५२
वार्तिककारमतेन साधर्म्यसमायाः लक्षणम्	६५२
वैधर्म्यसमायाः लक्षणम्	६५२
सत्कार्यपक्षसमयोः लक्षणम्	६५३
वर्ण्यवर्ण्यसमयोः लक्षणम्	६५३
विकल्पसमायाः लक्षणम्	६५३
साध्यसमायाः लक्षणम्	६५४
ग्राह्यप्राप्तिसमयोः लक्षणम्	६५४
प्रसङ्गसमायाः लक्षणम्	६५४
प्रतिदृष्टान्तसमायाः लक्षणम्	६५४
अनुत्पत्तिसमायाः लक्षणम्	६५५
संशयसमायाः लक्षणम्	६५६
प्रकरणसमायाः लक्षणम्	६५६
अहेतुसमायाः लक्षणम्	६५६
अर्थापत्तिसमायाः लक्षणम्	६५७
अविशेषसमायाः लक्षणम्	६५७
उपपत्तिसमायाः लक्षणम्	६५७
उपलब्धिसमायाः लक्षणम्	६५७
अनुपलब्धिसमायाः लक्षणम्	६५८
अनित्यसमायाः लक्षणम्	६५८
नित्यसमायाः लक्षणम्	६५९
कार्यसमायाः लक्षणम्	६५९
(उत्तरपक्षः) असाधौ साधने प्रयुक्ते जातीनां प्रयोगः साधनदोष- स्यानभिज्ञतया वा, तद्दोषप्रदर्शनार्थं प्रसङ्गव्याजेन वा ? ...	६५९
जातिवादी च साधनाभासमेतदिति प्रतिपद्यते वा न वा ? ...	६५९
कथम्भूतेन उत्तराप्रतिपत्त्युद्भावनेनासौ विजयते—किं स्वोपन्यस्त- जात्यपरिज्ञानोद्भावनरूपेण, परोद्भावितजात्यन्तरनिराकरणलक्ष- णेन, उत्तराप्रतिपत्तिमात्रोद्भावनाकारेण वा ?	६६१
नापि निग्रहस्थानैः जयपराजयव्यवस्था	६६३
निग्रहस्थानस्य लक्षणम्	६६३
प्रतिज्ञादानैर्लक्षणम्	६६३
वार्तिककारमतेन प्रतिज्ञादानैर्लक्षणम्	६६४
प्रतिज्ञान्तरस्य लक्षणम्	६६४

विषयाः	पृ०
प्रतिज्ञाविरोधस्य लक्षणम्	६६५
प्रतिज्ञासन्ध्यासस्य लक्षणम्	६६५
हेत्वन्तरस्य लक्षणम्	६६५
अर्थान्तरस्य लक्षणम्	६६५
निरर्थकस्य लक्षणम्	६६६
अविज्ञातार्थस्य लक्षणम्	६६६
अपार्थक्यस्य लक्षणम्	६६७
अप्राप्तकालस्य लक्षणम्	६६७
संस्कृतप्राकृतशब्दविचारः	६६७
पुनरुक्तस्य लक्षणम्	६६८
अननुभाषणस्य लक्षणम्	६६९
अज्ञानस्य लक्षणम्	६६९
अप्रतिभायाः लक्षणम्	६६९
पर्यनुयोज्योपेक्षणस्य स्वरूपम्	६६९
निरनुयोज्यानुयोगस्य लक्षणम्	६६९
विक्षेपस्य लक्षणम्	६७०
मतानुभाषाया लक्षणम्	६७०
न्यूनस्य लक्षणम्	६७०
अधिकस्य लक्षणम्	६७०
अपसिद्धान्तस्य लक्षणम्	६७१
हेलान्नासस्वरूपम्	६७१
असाधनाङ्गवचनादेः बौद्धोक्तनिग्रहस्थानस्य निरा- करणम्	६७१-७४
स्वपक्षं साधयन् चादिप्रतिवादिनोरन्यतरः असाधनाङ्गवचनाद- सौबोद्धावनाङ्गा परं निग्रहाति असाधयन् वा ?	६७१
प्रतिज्ञावचनस्य असाधनाङ्गलनिराकरणम्	६७२
'साधर्म्यवचनेऽपि वैधर्म्यवचनमसाधनाङ्गत्वात् निग्रहस्थानम्' इति स्वपक्षं साधयतो चादिनः स्यात् असाधयतो वा ?	६७२
अतः स्वपक्षसिद्धसिद्धिनिबन्धनावेव जय-पराजयौ	६७३
न स्वपक्षज्ञानाज्ञाननिबन्धनौ जय-पराजयौ वस्तुं शक्यौ	६७३
ज्ञानाज्ञानमात्रनिबन्धनायां जयपराजयव्यवस्थायां पक्षप्रतिपक्षपरि- ग्रहवैयर्थ्यं स्यात्	६७४
असौबोद्धावनस्य निराकरणम्	६७४

इति पञ्चमः परिच्छेदः ।

विषयाः	पृ०
नयनयाभासयोः लक्षणम्	६७६
नैगमस्य लक्षणम्	६७६
नैगमाभासस्य लक्षणम्	६७७
संग्रहस्य लक्षणम्	६७७
संग्रहाभासस्य स्वरूपम्	६७७
व्यवहारस्य लक्षणम्	६७७
व्यवहाराभासस्य लक्षणम्	६७८
ऋजुसूत्रनयस्य लक्षणम्	६७८
ऋजुसूत्राभासस्य स्वरूपम्	६७८
शब्दनयस्य लक्षणम्	६७८
शब्दनयाभासस्य स्वरूपम्	६७९
समभिरूढनयस्य लक्षणम्	६८०
समभिरूढनयाभासस्य लक्षणम्	६८०
एवम्भूतनयस्य स्वरूपम्	६८०
एवम्भूताभासस्य लक्षणम्... ..	६८०
चत्वारोऽर्थनयाः त्रयः शब्दनयाः	६८०
नयेषु पूर्वैः पूर्वो बहुविधयः कारणभूतश्च परः परोऽल्पविधयः	
कार्यभूतश्च	६८१
यत्रोत्तरोत्तरो नयः तत्र पूर्वैः पूर्वो भवत्येव	६८१
नयसप्तमङ्गीप्रवृत्तिप्रकारः	६८१
प्रमाण नयसप्तमङ्गयोः सकलादेशविकलादेशकृतौ विशेषः ...	६८२
सप्तैव भङ्गाः संभवन्ति प्रभादीनां सप्तविधत्वात्	६८२
न च वक्तव्यस्य धर्मान्तरता	६८४
पत्रषाक्यविचारः	६८४-९४
पत्रस्य लक्षणम्	६८४
खान्तभासितादि जैनोक्तम् अवयवद्वयात्मकं पत्रम्	६८५
चित्राद्यदन्तराणीयमित्यादि पञ्चावयवात्मकं जैनपत्रम्	६८६
सैन्यलक्ष्मण इत्यादि यौगोक्तपत्रस्य विवरणम्	६८६-६८९
यदा पत्रे विवादः स्यात्-तदैवं प्रष्टव्यः यो भवन्मनसि वर्तते स पत्रस्यार्थः, उत यो वाक्यात्प्रतीयते, अथवा यो भवन्मनसि वर्तते वाक्याच्च प्रतीयते ?	६८९
तृतीयपक्षे केनेदमवगम्यताम् वादिना प्रतिवादिना प्राश्निकैर्वा ?	६९१
इदं पत्रं तद्वातुः स्वपक्षसाधनवचनम् परपक्षदूषणवचनमुभय- वचनमनुभयवचनं वा ?	६९२
ग्रन्थकृतोऽन्तिमं वक्तव्यम्	६९३
ग्रन्थकृतप्रशस्तिः	६९४

इति षष्ठः परिच्छेदः ।



श्रीमाणिक्यनन्दाचार्यविरचित-परीक्षामुखसूत्रस्य व्याख्यारूपः

श्रीप्रभाचन्द्राचार्यविरचितः

प्रमेयकमलमार्त्तण्डः ।

श्रीस्याद्वादविधायै नमः ।

सिद्धेर्धामं महारिमोहहननं कैर्त्तैः परं मन्दिरम्,
मिथ्यात्वप्रतिपक्षमक्षयसुखं संशीतिविध्वंसनम् ।
सर्वप्राणिहितं प्रमेन्दुभवनं सिद्धं प्रमालक्षणम्,
सन्तञ्चेतसि चिन्तयन्तु सुधियः श्रीवर्द्धमानं जिनम् ॥१॥ ५

शास्त्रं करोमि धरमल्पतरावबोधि
माणिक्यनन्दिपद्पङ्कजसत्प्रसादात् ।
अर्थे न किं स्फुटयति प्रकृतं लघीयाँ-
ल्लोकस्य भानुकरविस्फुरिताद्गदाक्षः ॥ २ ॥

ये नूनं प्रथयन्ति नोऽसमर्गुणा मोहादवज्ञां जनाः, १०
ते तिष्ठन्तु न तान्प्रति प्रयतिर्तैः प्रारभ्यते प्रक्रमः ।
सन्तः सन्ति गुणानुरागमनसो ये धीधनास्तान्प्रति,
प्रायैः शास्त्रैकृतो यदत्र हृदये धृत्वं तदाख्यायते ॥ ३ ॥

१ मन्वसिद्धिं प्रति कारणं भवति अगवान्त आश्रयत्वेनाभिधीयते । २ वाण्याः ।
३ आश्रयत् । ४ शास्त्रादौ देवशास्त्रपुरवो वनस्करणीया अत एव देवनसरकृतौ
श्रीवर्द्धमानं विशेष्यं कृत्वा हेतुहेतुमद्भाषतयाऽन्वयानुसारेणान्यानि विशेषणानि योजयेत्,
नतः शास्त्रनमस्कृतौ प्रमालक्षणं विशेष्यं कृत्वा, गुरुनमस्कृतौ जिनं विशेष्यं कृत्वा,
चान्यानि विशेषणानि योजयेत् । ५ इष्टदेवतामभिष्टुत्य शास्त्रं करोमीति प्रतिष्ठां कुर्वन्ति
सुरवः । ६ अणि । ७ माहात्म्यात् । ८ दृष्टिगोचर । ९ पश्यतः (इति शेषः) ।
१० यद्यप्ययं प्रक्रमो भवद्भिः कियते, तथापि भवत्कृते प्रक्रमे केचन जना अवज्ञां विद-
धानाः सन्तीत्याह । ११ वक्रगुणाः पुरुषाः । १२ औणादिकोऽवमिकारान्तस्तत्तत्सत् ।
प्रयत्नादित्यर्थः । १३ यद्यप्ययं प्रक्रमः प्रारभ्यते—तथापि स्वहचिविरचितत्वात्सतासत्रा-
दरणीयत्वं न स्यादित्याह प्राय इति बाहुल्येनेत्यर्थः । १४ माणिक्यनन्दि-मन्दिरकस्य ।
१५ परीक्षासुखालङ्कारे । १६ अष्टुत्तं ।

त्यंजति न विदधानः कार्यमुद्दिश्य धीमान्
खलजनपरिवृत्तेः स्पर्धते किन्तु तेन ।

किमु न वितनुतेऽर्कः पद्मयोधं प्रबुद्ध-
स्तदपहृतिविधायी शीतरश्मिर्यदीह ॥ ४ ॥

- ५ अजडमदोषं दृष्ट्वा मित्रं सुश्रीकमुद्यतमनुष्यत् ।
विपरीतबन्धुसङ्गतिमुद्गिरति हि कुवलयं किं न ॥ ५ ॥

श्रीमदकलङ्कार्थोऽन्युत्पन्नप्रह्वैरवगन्तुं न शक्यत इति तद्व्यु-
त्पादनाय करतलामलंकवत् तदर्थमुद्भूत्य प्रतिपादयितुकामसै-
त्परिज्ञानानुग्रहेच्छाप्रेरितस्तदर्थप्रतिपादनप्रवर्णं प्रकरणसिद्धमा-
१० चार्यः प्राह । तत्र प्रकरणस्य सैम्बन्धाभिधेयरहितत्वाशङ्कापनोदार्थं
तदभिधेयस्य चाऽप्रयोजनवत्त्वपरिहारानभिमतप्रयोजनवत्त्वव्यु-
दासाशक्यानुष्ठानत्वनिराकरणदक्षमक्षुण्णसकलशास्त्रार्थसंग्रह-
समर्थं 'प्रमाण' इत्यादिश्लोकमाह—

प्रमाणादर्थसंसिद्धिस्तदाभासाद्विपर्ययः ।

- १५ इति वक्ष्ये तयोर्लक्ष्म सिद्धमल्पं लघीयसः ॥ १ ॥

सैम्बन्धाभिधेयशक्यानुष्ठानेऽप्रयोजनवन्ति हि शास्त्राणि प्रेक्षा-
वद्भिराद्रियन्ते नेतराणि-सम्बन्धाभिधेयरहितस्योन्मत्तादिवाक्य-
वत्; तद्वतोऽप्यप्रयोजनवतः कौकदन्तपरीक्षावत्; अनभिमत-
प्रयोजनवतो वा मातृविवाहोपदेशवत्; अशक्यानुष्ठानस्य वा
२० सूर्यञ्चरहरतक्षकचूडारत्नालङ्कारोपदेशवत् तैरनादरणीयत्वात् ।
तदुक्तम्—

१ यद्यपि सतः प्रक्रमः प्रारम्भते-तथापि दुष्टा दुष्टत्वं न मुञ्चेयुस्तत्साय प्रक्रमो
नारम्भस्य श्लुक्ते खनतीत्याह । २ उद्वेगं प्राप्य । ३ न्यापारात् । ४ मित्रं स्वर्ग,
पक्षे प्रमाणम् । ५ सुष्टिमगच्छत् । ६ बन्धु- । ७ सत्वयति । ८ कुमुद, पक्षे
भूमण्डलं (मिथ्यादृष्टिसमूहश्च) । ९ मणिवत् । १० संग्रहः । ११ तयोर्कलङ्कार्थो-
न्युत्पन्नयोः यौ परिज्ञानानुग्रहौ तयोर्था इच्छा तथा प्रेरितः । १२ दक्षम् । १३ "शास्त्र-
कदेशसम्बन्धं शास्त्रकार्यान्तरस्मितम् । आहुः प्रकरणं नाम शास्त्रमेदं विपर्ययित्" ॥
शास्त्रकदेशेत्यादिविशेषणत्वात् साकल्येन प्रतिपादकमाश्रयादेः प्रकरणत्वं परास्तम् । शास्त्र-
कार्यान्तरं तु वैशद्यं लभ्यते च । तत्रोपोद्घातप्रतिपादनभेदाद्विषयम् । तत्र प्रतिपादकमर्थं
शुद्धौ संग्रहं (आलोच्य) प्रागेव तदर्थमर्थान्तरवर्णनमुपोद्घातः । प्रतिपादकमर्थं बहिरेव
ऋषिवायु पश्चात्तिसिद्धये तद्वैतुवर्णनं प्रतिपादनम् । सकलप्रतिपादकशास्त्रकार्यात् (प्रकृत-
शास्त्रकार्यात्) अन्यकार्यं कार्यान्तरम् । १४ शास्त्रानुसारे सति । १५ प्रस्तुतत्वात्सर्वस्य
अनुरोधेनोचोत्तरस्य विधानं सम्बन्धः । १६ पूर्वोक्तलक्षणः सम्बन्धः । १७ यस्मात् ।

“सिद्धीर्थं सिद्धसम्बन्धं श्रोता श्रोतुं प्रवर्तते ।

शास्त्रादौ तेन वक्तव्यः सम्बन्धः सप्रयोजनः ॥ १ ॥

[मीमांसाश्लो० प्रतिज्ञासू० श्लो० १७]

सर्वस्यैव हि शास्त्रस्य कर्मणो वापि कस्यचित् ।

यावत्प्रयोजनं नोक्तं तावत्तत्केन गृह्यताम् ॥ २ ॥

[मीमांसाश्लो० प्रतिज्ञासू० श्लो० १२]

अनिर्दिष्टफलं सर्वं न प्रेक्षापूर्वकारिभिः ।

शास्त्रमाद्रियते तेन वाच्यमत्रे प्रयोजनम् ॥ ३ ॥

[]

शास्त्रस्य तु फले ज्ञाते तत्प्राप्त्याशावशीकृताः ।

प्रेक्षावन्तः प्रवर्तन्ते तेन वाच्यं प्रयोजनम् ॥ ४ ॥

[]

यौवत् प्रयोजनेनास्यसम्बन्धो नाभिधीयते ।

असम्बन्धप्रलापित्वाद्भवेत्तावदसंज्ञतिः ॥ ५ ॥

[मीमांसाश्लो० प्रतिज्ञासू० श्लो० २०] १५

तस्माद् व्याख्याङ्गमिच्छद्भिः सहेतुः सप्रयोजनः ।

शास्त्रावतारसम्बन्धोवाच्यो नैव्योऽस्ति निष्फलः ॥ ६ ॥” इति ।

[मीमांसाश्लो० प्रतिज्ञासू० श्लो० २५]

तत्रास्य प्रकरणस्य प्रमाणतदाभासयोर्लक्षणमभिधेयम् । अनेन च सहास्य प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावलक्षणः सम्बन्धः । शक्यानु-२०-
 श्चानेष्टप्रयोजनं तु साक्षात्तल्लक्षणव्युत्पत्तिरेव-‘इति वक्ष्ये तयो-
 र्लक्ष्म’ इत्यनेनाऽभिधीयते । ‘प्रमाणादर्थसंसिद्धिः’ इत्यादिकं तु
 परम्परयेति समुदायार्थः । अथेदानीं व्युत्पत्तिद्वारेणाऽवयवार्थोऽ-
 भिधीयते । अत्र प्रमाणशब्दः कर्तृकरणभावसाधनः-द्रव्यपर्याय-
 योर्भेदाऽभेदात्मकत्वात् स्वार्थैक्यसाधकतमत्वादिदिविधक्षापेक्षया २५

१ यदाद्रियते । २ अर्थसम्बन्धेनाभिधेयं प्रयोजनं च । ३ शास्त्रम् (इति श्लो०) ।
 ४ प्रयुज्यते प्रतिपाद्यते इति प्रयोजनमभिधेयं प्रयुक्तिः, प्रयोजनं फलं तान्या सह
 वर्तते । ५ ज्ञातफलमेवेति समर्थवते । ६ आदौ । ७ फलम् । ८ निरूपितेति फले
 प्रवर्तनं न सतिव्यतीति शङ्कायामाह । ९ कारणेन । १० सिद्धसम्बन्धमेव परं समर्प-
 यमानोऽप्येतन्नोक्ते मूढे । ११ अभिधेयेन । १२ परस्परसम्बन्धरहितं शास्त्रम् ।
 १३ सम्बन्धादिप्रत्ययम् । १४ साभिधेयः । १५ सफलः । १६ साभिधेयः सप्रयो-
 जनश्च सम्बन्धो वाच्यः । १७ सम्बन्धादिप्रत्ययः । १८ सम्बन्धादिप्रत्यये वक्तव्ये
 आदर्शवत्ये सति शास्त्रप्रारम्भकाले । १९ प्रमाणेतरलक्षणस्य व्युत्पत्तिमन्त्रेणपत्रगादिः
 प्राप्तिर्न स्वादत्तत्वं साक्षात्त्वम् । २० श्लोकस्य । २१ श्लोके । २२ आत्मद्रव्यम् ।
 २३ ज्ञानपर्यायः । २४ साक्षाद् व्यापारे । २५ मात्र ।

तद्भावाऽविरोधात् । तत्र क्षयोपशमविशेषवशात् 'स्वपरप्रमेयस्वरूपं प्रमितीते यथावज्ज्ञानाति' इति प्रमाणमात्मा, स्वपरग्रहणपरिणतस्यापरतन्त्रस्याऽऽत्मन एव हि कर्तृसाधनप्रमाणशब्देनाभिधानं स्वातन्त्र्येण विवक्षितत्वात्-स्वपरप्रकाशात्मकस्य प्रदीपादेः प्रकाशमिधानवत् । साधकतमत्वादिविवक्षायां तु—प्रमीयते येन तत्प्रमाणं प्रमितिमात्रं वा-प्रतिबन्धापाये प्रादुर्भूतविज्ञानपर्यायस्य प्राधान्येनाश्रयणात् प्रदीपादेः प्रभाभारत्मात्मकप्रकाशवत् ।

मेदांमेदयोः परस्परपरिहारेणावस्थानादन्यंतरस्यैव वास्तवत्वा-दुभयात्मकत्वमयुक्तम् ; इत्यसमीक्षिताभिधानम् ; बाधकप्रमाणा-
१० भावात् । अनुपलम्भो हि बाधकं प्रमाणम्, न चात्र सोऽस्ति-सकल-
भावेर्षुमयात्मकत्वग्राहकत्वेनैवाखिलाऽस्त्वलत्प्रत्ययप्रतीतेः । विरो-
धो बाधकः ; इत्यप्यसमीचीनम् ; उपलम्भसम्भवात् । विरोधो ह्यनु-
पलम्भसाध्यो, यथा-तुरङ्गमोत्तमाङ्गे शृङ्गस्यै, अन्यथा स्वरूपेणापि
१५ अमेदमात्रस्य मेदमात्रस्य वेर्तेरनिरपेक्षस्य वस्तुन्यप्रतीतेः । कैल्प-
यताप्यमेदमात्रं मेदमात्रं वा प्रतीतिरवश्यं प्रादुर्भूतविज्ञानपर्यायस्य
बन्धनत्वाद्द्वस्तुव्यवस्थायाः । सा चेदुभयात्मन्यप्यस्ति किं तत्र
स्वसिद्धान्तविषमग्रहनिबन्धनप्रद्वेषैर्ण-अप्रामाणिकत्वप्रसङ्गादित्य-
लमतिप्रसङ्गेन, अनेक्रान्तसिद्धिप्रक्रमे विस्तरेणोपक्रमत् ।

२० वैद्व्यमाणलक्षणलक्षितप्रमाणमेदमनैभिप्रेत्यानैन्तरसकलप्रमाण-
विशेषसाधारणप्रमाणलक्षणपुरःसरः 'प्रमाणाद्' इत्येकवचननि-
र्देशः कृतः । कौ हेतौ । अर्थ्यतेऽभिलष्यते प्रयोजनार्थिभिरित्यर्थो द्वेव
उपादेयश्च । उपेक्षणीयस्यापि परित्यजनीयत्वाद्धेयत्वम् ; उपादान-
क्रियां प्रत्यर्कर्मभावाच्चोपादेयत्वम्, हानक्रियां प्रति विपर्ययात्तत्त्व-
२५ म् । तथा च लोको वदति 'अहमैनेनोपेक्षणीयत्वेन परित्यक्तः' इति ।

१ कथनं । २ कर्तृसाधनोऽयम् । ३ भाव । ४ सम्बन्धिनः । ५ करणे भावे
चात्र धम् । ६ परः शङ्कते । ७ मेदस्याऽमेदस्य वा । ८ पदाभेदु । ९ उपलम्भो
यत्र मेदस्तत्रामेद इति । १० अभावः । ११ अभावोऽर्थवर्णयम् । १२ ज्ञानपर्यो-
यम् । १३ विरोधः । १४ पदार्थस्य । १५ भावाभावयोः । १६ मेदस्यामेदस्य
वा । १७ प्रतिवादिना । १८ अन्यवेति शेषः । १९ प्राग्व्याद । २० विषय-
प्रत्यक्षमतिशयं परोक्षमिति । २१ अविबक्षितत्वात् । २२ स्थापूर्वत्वात् । २३ पञ्चमी ।
२४ अर्थस्य । २५ हेयत्वेऽर्थेऽन्तर्भावदित्यर्थः । २६ भावविषयवृत्तं वस्तु कर्मा-
भिधीयते मध्यस्वभावेन सितत्वात्कर्मभावं न प्राप्त इत्यर्थः । २७ कर्मभावात् ।
२८ हेयत्वम् । २९ पुरुषेण ।

सिद्धिरसतः प्रादुर्भावोऽभिलषितं प्राप्तिर्माचक्ष्मिश्चोच्यते । तत्र श्लो-
पेकप्रकरणेऽसतः प्रादुर्भावलक्षणा सिद्धिर्नेह गृह्यते । समीचीना
सिद्धिः संसिद्धिरर्थस्य संसिद्धिः 'अर्थसंसिद्धिः' इति । अनेन कार-
णान्तराहितविपर्यासादिज्ञाननिबन्धनाऽर्थसिद्धिर्निरस्ता । जाति-
प्रकृत्यादिभेदेनोपकारकार्यसिद्धिस्तु संगृहीता; तथाहि-केवल-
निम्बलवणरसादावसदादीनां द्वेषबुद्धिविषये निम्बकीटोद्गादीनां
जात्याऽभिलाषबुद्धिरुपजायते अस्वदाद्यभिलाषविषये चन्दनादौ
तु तेषां द्वेषः, तथा पित्तप्रकृतेरुष्णस्पर्शं द्वेषो-घातप्रकृतेरभिलाषः-
शीतस्पर्शं तु घातप्रकृतेर्द्वेषो न पित्तप्रकृतेरिति । न चैतज्ज्ञानम-
सत्यमेव-हितोऽहितप्राप्तिपरिहारसमर्थत्वात् प्रसिद्धसत्यज्ञानवत् । १०
हिताऽहितव्यवस्था चोपकारकत्वापकारकत्वाभ्यां प्रसिद्धेति ।
तदिव स्वपरप्रमेयस्वरूपप्रतिभासिप्रमाणमिवाभासन इति तदा-
मौसम-सकलमतसर्मैताऽचबुद्ध्यक्षणिकाद्येकान्ततत्त्वज्ञानं सन्धि-
कर्षाऽविकल्पकं-ज्ञानाऽप्रत्यक्षज्ञानज्ञानान्तरप्रत्यक्षज्ञानाऽनासप्र-
णीताऽऽगंभाऽविनाभावविकललिङ्गनिबन्धनाऽभिनियोगादिकं सं- १५
शयविपर्यासानध्यवसायज्ञानं च, तस्माद् विपर्ययोऽभिलषि-
तार्थस्य स्वर्गापवर्गादेरनवद्यतत्साधनस्य वैहिकसुखदुःखादिसाध-
नस्य वा सम्प्राप्तिक्षसिलक्षणसमीचीनसिद्धयभावः । प्रमाणस्य प्रथ-
मतोऽभिधानं प्रधानत्वात् । न चैतदसिद्धम्; सम्यग्ज्ञानस्य निद्रे-
यसर्मैतेः सकलपुरुषार्थोपयोगित्वात्, निखिलप्रयासस्य प्रेक्षा- २०
वतां नदर्थत्वात्, प्रमाणेतरविवेकस्यापि तत्प्रसाध्यत्वाच्च । तदा-
भासस्य त्कप्रकाराऽसम्मवाद्प्रधान्यम् । 'इति' हेत्वर्थे । पुरु-
षार्थसिद्धयसिद्धिनिबन्धनत्वादिति हेतोः 'तयोः' प्रमाणतदाभा-
सयो'लक्ष्म' असाधारणस्वरूपं व्यैक्यभेदेन तज्ज्ञतिनिमित्तं लक्षणं

१ यथा कुलाढ्यटसिद्धिः । २ पदार्थ । ३ त्रिष्वेषु मध्ये । ४ प्रमाणद्वै-
मसिद्धिरिति । ५ षष्ठी । ६ आपकपक्षस्य प्रकरणात् प्रस्तावात् । ७ चक्षुरादिकारणा-
दन्तकारणं काचकामलादिमिथ्यात्वाद् वा कारणान्तरम् । ८ अवस्थाक्षेपकावादि वा ।
९ अन्तरसंसयोगरहित । १० उद्गादिनाला कृत्वा । ११ निम्बकीटकस्य निम्बः
कडकोऽपि हितत्वात् स यत्र रोचते । १२ वैनयिकवादिज्ञानम् । १३ सकलमतानि
सम्पत्तानि यस्य स सकलमतसम्मतो विनयवादी तस्याबुद्धिर्ज्ञानं तदामासमित्यर्थः ।
१४ निर्विकल्पकम् । १५ अपौरुषेयम् । १६ अनुमानम् । १७ लिङ्गामिसुखनियतस्य
लिङ्गिनो बोधनं वा । १८ उपमानार्थोपपत्त्यभावप्रमाणानि । १९ षट्पदे । २० मर्या-
दानां (का पञ्चमी) । २१ भेदस्य । २२ 'हेतावेवंप्रकारादौ व्यवच्छेदे विपर्यये ।
अधिकारे समाप्तौ च इतिशब्दः प्रकीर्तितः' । २३ तदामासेभ्यः । २४ व्यैक्यभेदे-
नाऽसाधारणत्वं सन्न्यस्यभेदेन साधारणत्वमिति स्याद्वादसिद्धिः ।

‘वैक्ष्ये’ व्युत्पादनार्हत्वात्तल्लक्षणस्य यथावत्तत्स्वरूपं प्रस्पष्टं कंथ-
थिष्ये । अनेन ग्रन्थकारस्य तद्व्युत्पादने स्वातन्त्र्यव्यापारोऽवसी-
यते-निखिललक्ष्यलक्षणभावावबोधोऽन्योपकारनियतचेतोवृत्ति-
त्वात्तस्य ।

- ५ ननु चेदं वैक्ष्यमाणं प्रमाणेतरलक्षणं पूर्वशास्त्राप्रसिद्धम्, तद्विपरीतं
वा ? यदि पूर्वशास्त्राऽप्रसिद्धम्-तर्हि तद्व्युत्पादनप्रयासो नारम्भ-
णीयः-स्वरुचिविरचितत्वेन सतामनादरणीयत्वात्, तत्प्रसिद्धं तु
नितरामेतन्न व्युत्पादनीयं-पिष्टपेषणप्रसङ्गादित्याह-‘सिद्धमल्पम्’ ।
प्रथमविशेषणेन व्युत्पादनवत्तल्लक्षणप्रणयने स्वातन्त्र्यं परिहृतम् ।
१० तदेव आकलङ्कमिदं पूर्वशास्त्रपरम्पराप्रमाणप्रसिद्धं लेंद्रुपायेन
प्रतिपाद्य प्रज्ञापरिपाकार्यं व्युत्पाद्यते-न स्वरुचिविरचितं-नापि-
प्रमाणानुपपन्नं-परोपकारनियतचेतसो ग्रन्थकृतो विनेयविसंवादेने
प्रयोजनाभावात् । तथाभूतं हि वदन् विसंवादेकैः स्यात् । ‘अल्पम्’
इति विशेषणेन यदन्यत्र अकलङ्कदेवैर्विस्तरेणोक्तं प्रमाणेतरलक्षणं-
१५ तदेवात्र संक्षेपेण विनेयव्युत्पादनार्थमभिधीयत इति पुनरुक्तव-
निरासः । विस्तरेणान्यत्राभिहितस्यात्र संक्षेपाभिधाने विस्तररुचि-
विनेयविदुषां नितरामनादरणीयत्वम् । को हि नाम विशेषव्युत्प-
त्यर्थी प्रेक्षावांस्तत्साधनाऽन्यैसद्भावे सत्यन्यत्राऽतत्साधने कृता-
दरो भवेदित्याह-‘लघीयसः’ । अतिशयेन लघवो हि लघीयांसः
२० संक्षेपरुचय इत्यर्थः । कालशरीरपरिमाणकृतं तु लाघवं नेह गृह्यते-
तस्य व्युत्पाद्यत्वव्यभिचारात्, क्वचित्थाविधे व्युत्पादकस्याऽ-
प्युपलम्भात् । तस्यावभिप्रायकृतमिह लाघवं गृह्यते । येषां संक्षेपेण
व्युत्पत्त्यभिप्रायो विनेयानां तान् प्रतीदमभिधीयते-प्रतिपादकस्य

१ मूय् द्विकर्मकः । २ व्युत्पत्तिकरणार्हत्वात् । ३ भा कृत्वा (दृतीयान्तं तेन
कृत्वेत्वर्थः) । ४ परः । ५ पुनरुक्तप्रसङ्गात् । ६ ईप् यथा-(व्युत्पादने यथा) ।
७ कथने । ८ प्रमाणतदभासलक्षणञ्च अकलङ्केन प्रोक्तमाकलङ्क्य । कलङ्केन दोषेण
रहितं वा । ९ पूर्वशास्त्रपरम्परा च प्रमाणं चेति पूर्वशास्त्रपरम्पराप्रमाणे तात्पर्यामिसर्थः ।
१० परम्पराप्रमाणप्रसिद्धमिति वा पाठः । ११ संक्षिप्तशब्दरूपेण । १२ प्रतारणे ।
१३ प्रतारकः । १४ प्रमाणसंग्रहादौ । १५ परीक्षासुखे । १६ प्रमाणसंग्रहादौ ।
१७ प्रमाणसंग्रहादिसद्भावे । १८ परीक्षासुखे । १९ विशेषव्युत्पत्त्यसाधने । २० न
कोपि । २१ तर्हि कान् प्रतीलासङ्कामाह । २२ निमतो व्युत्पाद्यः कालकृतलाघ-
वादित्युक्ते गर्वाऽऽद्यमवर्षादिभातमानसम्पन्नेन व्यभिचारात् । धीतः प्रतिपाद्यः कायकृत-
कायवादित्युक्ते अधीतशास्त्रेण कुन्नादिनाऽनेकान्तात् । तयोर्व्युत्पादकत्वादिति भावः ।
२३ बुद्धिः । २४ गुरोः ।

प्रतिपाद्योशयवशवर्तित्वात् । 'अकथितम्' [पाणिनि सू० ११४११] इत्यनेन कर्मसंज्ञायां सत्याकर्मणीपै ।

ननु चेष्टदेवतानमस्कारकरणमन्तरेणैवोक्तप्रकाराऽऽदिस्तोकाभिधानमाचार्यस्याऽयुक्तम् । अविज्ञेन शास्त्रपरिसमाप्त्यादिकं हि फलमुद्दिश्येष्टदेवतानमस्कारं कुर्वाणाः शास्त्रकृतः शास्त्रादौ प्रती-
यन्ते; इत्यप्यसमीक्षिताभिधानम्; वाङ्मनमस्काराऽकरणेपि काय-
मनोनमस्कारकरणात् । त्रिविधो हि नमस्कारो-अनोवाक्याकारण-
मेवात् । इदृश्यते चातिलघूपौषेण विनेयव्युत्पादनमनसां धर्म-
कीर्त्यादीनामप्येवंविधा प्रवृत्तिः-वाङ्मनमस्कारकरणमन्तरेणैव "स-
म्यग्ज्ञानपूर्विका सर्वपुरुषार्थसिद्धिः" [न्यायवि० १११] इत्यादि-
वाक्योपन्यासात् । यद्वा वाङ्मनमस्कारोऽप्यनेनैवादिस्तोकेन कृतो
अन्वयकृता; तथाहि-मा अन्तरङ्गवहिरङ्गानन्तज्ञानप्राप्तिहार्या-
दिभ्रीः, अण्यते शब्दयते येनार्थोऽसावाणः शब्दः, मा चाणश्च माणौ,
प्रकृष्टौ महेश्वराद्यसम्भविनौ माणौ यस्याऽसौ प्रमाणो भगवान्
सर्वज्ञो दृष्टेष्टाऽविरुद्धवाक् च, तस्मादुक्तप्रकारार्थसंसिद्धिर्भवति । १५
तदमासासु महेश्वरादेर्विपर्ययस्तत्संसिद्धिभावः । इति वक्ष्ये तयो-
र्लक्ष्म 'सामग्रीविशेषविश्लेषिताऽखिलावरणमतीन्द्रियम्' इत्याद्य-
साधारणस्वरूपं प्रमाणस्य । किंविशिष्टम्? सिद्धं वक्ष्यमाण-
प्रमाणप्रसिद्धम्, तद्विपरीतं तु तदाभासस्य; तच्चाऽल्पं संक्षिप्तं
यथा भवति तथा, लघीयसः प्रति वक्ष्ये तयोर्लक्ष्मेति । शास्त्रा-
२० रन्मे चाऽपरिमितगुणोदधेर्मगवतो गुणलवव्यावर्णनमेव वाङ्मनु-
तितित्यलमतिप्रसङ्गेन ॥ छ ॥

प्रमाणविशेषलक्षणोपलक्षणाकाङ्क्षायास्तत्सामान्यलक्षणोपलक्ष-
णपूर्वकत्वात् प्रमाणस्वरूपविप्रतिपत्तिनिराकरणद्वारेणाऽबाधन-
त्सामान्यलक्षणोपलक्षणायेदमभिधीयते—

२५

स्वापूर्वार्थव्यवसायात्मकं ज्ञानं प्रमाणम् ॥ १ ॥

प्रमाणत्वान्यथानुपपत्तेरित्ययमत्र हेतुर्दृष्टव्यः । विशेषणं हि व्यव-
च्छेदैर्फलं भवति । तत्र प्रमाणस्य ज्ञानमिति विशेषणेन 'अर्थ्यमि-
चार्यदिविशेषणविशिष्टार्थोपलक्षिजनकं कारकसाकल्यं साधक-

१ शिष्यः । २ छत्रेण । ३ इयं द्वितीया । ४ यतः । ५ उपायेन शब्देनेत्यर्थः ।
६ गौड्याचार्याचार्यः । ७ अथवा । ८ 'कश्चित्पुरुष' इत्यादि । ९ नवसा नमस्कार-
करणं तु तस्य संख्यानम् । १० पूर्वपक्षेण । ११ परिहान । १२ साध्यैः । १३ लक्षणं
न्यायप्रतिफलं तदाभासात्परिहारफलमित्यर्थः । १४ अविपर्ययः व्यभिचारो. नाम
कतिप्यासिः । १५ अन्वयस्यतिन्यायसमवादिरहितविशेषणसंभवसंज्ञायादिन्यभिचारः ।
१६ प्रतीतिः । १७ जरत्रेयायिका जात्याकाशादीनां साकल्यं प्रमाणमित्याहुः ।

तमत्वात् प्रमाणम्' इति प्रत्याख्यातम्; तस्याऽज्ञानरूपस्य प्रमे-
यार्थवत् स्वपरपरिच्छित्तौ साधकतमत्वाभावतः प्रमाणत्वायो-
गात्-तत्परिच्छित्तौ साधकतमत्वस्याऽज्ञानविरोधिना ज्ञानेन
व्याप्तत्वात् । छिदौ परश्वादिना साधकतमेन व्यभिचार इत्ययुक्तम् ;
५ तत्परिच्छित्ताविति विशेषणात्, न खलु सर्वत्र साधकतमत्वं
ज्ञानेन व्याप्तं परश्वादेरपि ज्ञानरूपताप्रसङ्गात् । अज्ञानरूपस्यापि
प्रदीपादेः स्वपरपरिच्छित्तौ साधकतमत्वोपलम्भात्तेन तस्याऽ-
व्याप्तिरित्यप्ययुक्तम् ; तस्योपचारात्तत्र साधकतमत्वव्यवहारात् ।
साकल्यस्याप्युपचारेण साधकतमत्वोपगमे न किञ्चिदनिर्दिष्टम्-
१० मुख्यरूपतया हि स्वपरपरिच्छित्तौ साधकतमस्य ज्ञानस्योत्पादक-
त्वात् तस्यापि साधकतमत्वम् ; तस्माच्च प्रमाणं कारणे कार्यो-
पचारात्-अन्नं वै प्राणा इत्यादिवत् । प्रदीपेन मया दृष्टं चक्षुषाऽ-
र्षगतं धूमेन प्रतिपन्नमिति लोकव्यवहारोऽप्युपचारतः ; यथा
ममाऽयं पुरुषश्चक्षुरिति-तेषां प्रमितिं प्रति बोधेन व्यवर्धनात्,
१५ तस्य त्वपरेणैव्यवर्धनात्तन्मुख्यम् । न च व्यपदेशमात्रात्पार-
मार्थिकवस्तुव्यवस्था 'नैर्द्वलौदकं पादरोगः' इत्यादिवत् । ततो
यद्बोधाऽबोधरूपस्य प्रमाणत्वाभिधानकम्—

'लिखितं साक्षिणो मुक्तिः प्रमाणं त्रिविधं स्मृतम्' [] इति
नत्प्रत्याख्यातम् ; ज्ञानस्यैवाऽनुपचरितप्रमाणव्यपदेशार्हत्वात् ।
२० तथाहि-यद्यत्राऽपरेण व्यवहितं न तत्तत्र मुख्यरूपतया साधक-

१ ज्ञानन्तं प्रति निरस्तम् । २ घटवत् । ३ व्याप्यस्य । ४ परः । ५ अज्ञान-
रूपेण । ६ कारणत्वेनाभिप्रेते वस्तुनि । ७ अन्वया । ८ परः । ९ यद्यदज्ञान-
विरोधिज्ञानेन व्याप्तं तत्तत्स्वपरपरिच्छित्तौ साधकतममतोऽज्ञानरूपस्य स्वपरपरिच्छित्तौ
साधकतमस्य तेन ज्ञानेनाव्याप्तिः । १० न परमार्थतः । ११ प्रदीपस्य स्वपरप्रकाशक-
रूपेण साधकतमत्वं न तु स्वपरपरिच्छित्तरात्मकत्वेनेति भावः । १२ परैः ।
१३ जैनानाम् । १४ ज्ञानजनकत्वेन । १५ अज्ञानरूपत्वादित्यस्य हेतोरनैकान्तिकत्वे ।
१६ प्रदीपादेः प्रामाण्यम् । १७ वस्तुरूपं षड्भिः । १८ ज्ञानधर्मसाधकतमस्य ।
१९ अग्निस्वरूपम् । २० साधकतमज्ञानहेतुत्वेन । २१-साधकतमत्वेन । २२ साध-
कतमज्ञानस्य हेतुत्वेन । २३ प्रमितिक्रियां प्रति । २४ परिच्छित्तिं प्रति प्रदीपादेः
साधकतमत्वं न मुख्यम् । २५ प्रदीपादेसाधकतमत्वमिति व्यपदेशमात्रात् । २६ प्रदी-
पादेः प्रामाण्यम् । २७ 'शाङ्ख्यं हरितं प्रोक्तं । नद्वलं नद्वसंशुतम्' (क) दृगसंशुत-
मुदकं नद्वलं कथ्यते । २८ पादरोगकारणतया व्यपदिश्यमानं नद्वलौदकं यथा पाद-
बोगत्वेन न पारमार्थिकं तथा प्रकृतमपि । २९ ज्ञानस्यैव साधकतमत्वं यतः ।
३० नैयायिकस्य वैशेषिकस्य च । ३१ आसनादिलोके पत्रादि, तत्प्रमाणम् । ३२ पुरुषाः
प्रमाणम् । ३३ अनुभवः प्रमाणम् ।

तमव्यपदेशार्हम्, यथा हि च्छिदिक्रियायां कुठारेण व्यवहितोऽ-
यस्कारः, स्वपरपरिच्छिद्यौ विज्ञानेन व्यवहितं च परपरिकल्पितं
साकल्यादिकैमिति । तस्मात् कारकसाकल्यादिकं साधकतम-
व्यपदेशार्हं न भवति ।

किंच; स्वरूपेण प्रसिद्धस्य प्रमाणत्वादिव्यवस्था स्यान्नान्यथा-^५
अतिप्रसङ्गात् न च साकल्यं स्वरूपेण प्रसिद्धम् । तत्स्वरूपं हि
सकलान्येव कारकाणि, तद्धर्मो वा स्यात्, तत्कार्यं वा, पदार्थान्तरं
वा गत्यन्तराभावात् ? न तावत्सकलान्येव तानि साकल्यस्व-
रूपम्; कर्तृकर्मभावे तेषां कर्णत्वानुपपत्तेः । तद्भावे वा—अन्येषां
कर्तृकर्मरूपता, तेषामेव वा ? न तावदन्येषाम्, सकलकारकव्यति-^{१०}
रेकेणान्येषामभावात्, भावे वा न कारकसाकल्यम् । नापि तेषा-
मिव कर्तृकर्मरूपता; कारणत्वाभ्युपगमात् । न चैतेषां कर्तृकर्म-
रूपाणामपि कारणत्वं-परस्परविरोधात् । कर्तृता हि ज्ञानचिकीर्षा-
प्रयत्नाधारता स्वातन्त्र्यं वा, निर्वैत्यत्वादिधर्मयोगित्वं कर्मत्वम्,
करणत्वं तु प्रधैनक्रियाऽनौधारत्वमित्येतेषां कथमेकत्र सम्भवः ?^{१५}
तत्र सकलकारकाणि साकल्यम् ।

नापि तद्धर्मः-स हि संयोगः, अन्यो वा ? संयोगश्चेन्न; आस्या-
ऽनन्तरं-विस्तरतो निषेधात् । अन्यश्चेत्; नास्य साकल्यरूपपता
अतिप्रसङ्गात्-व्यस्तैर्धर्मैर्मपि तत्सम्भवात् । किं चाऽसौ कारक-
भ्योऽव्यतिरिक्तः, व्यतिरिक्तो वा ? यद्यव्यतिरिक्तः, तदा धर्ममात्रं^{२०}
कारकमात्रं वा स्यात् । व्यतिरिक्तश्चेत्सम्बन्धाऽसिद्धिः । सम्बन्धे-
ऽपि वा सकलकारकेषु युगपत्तस्य सम्बन्धेऽनेकदोषदुष्टसामौ-

१ प्रदीपादि लिखितादि ॥ तथाहीत्यत्र कारकसाकल्यादिकं धर्मि, मुख्यरूपतया
साधकतमव्यपदेशार्हं न भवतीति धर्मैः, स्वपरपरिच्छिद्यौ विज्ञानेन व्यवहितत्वाद्
प्रदीपादिवद् । २ ज्ञातस्य । ३ साधकतमत्वं । ४ स्वविषाणादेः । ५ अत्र वधासंख्य
स्वार्थे भावे कर्मणि ध्वण् । ६ प्रमाणरूपसाकल्यस्य करणस्वरूपत्वं यतः । ७ कारका-
णाम् । ८ मीमांसकानां कर्वादीना लक्षणमिदम् । ९ “व्याप्यं विषयमूर्तं च निर्वह्य
विक्रियात्मकम् । कर्तृश्च क्रियया व्याप्तमीप्सितानीप्सितेतरत्” । १० छेदनम् ।
उत्क्षेपणापक्षेपणसैव आधारत्वं न तु च्छिदेति लभ्यैः । ११ कर्मकारेव छिदि प्रमिते-
लक्षणप्रधानक्रियाधारत्वं न तु करणस्य । १२ विरुद्धधर्मोणात् । १३ साकल्ये ।
१४ प्रमेयत्वप्रमातृत्वसत्त्वादि । १५ साक्षिकर्मः । १६ साधारणमिदमत्रे । १७ अन्य-
धर्मः । १८ कारकाणा द्विग्यादीनाम् । १९ धर्मो वा कारकरूपधर्मो वा स्याद् कार-
केभ्योऽन्यधर्मस्यान्वयव्यतिरिक्तत्वाद् । २० एकसमावेनानेकत्वमावेन च वृष्टौ सामान्या-
नवसादयः स्युः । २१ सामान्यादौ ये दोषास्तेऽत्रापि स्युरित्यर्थः । एकत्वमावेन
समाधयेदेन च वृष्टौ सामान्यत्वानवसादयः ।

न्यादिरूपतापत्तिः। क्रमेण सम्बन्धे सकलकारकधर्मता साकल्यस्य न स्यात्-यदैव हि तस्यैकेन हि सम्बन्धो न तद्वाऽन्येनेति ।

नापि तत्कार्यं साकल्यम्—नित्यानां तज्जननस्वभावत्वे सर्वदा तदुत्पत्तिप्रसक्तिः, एकप्रमाणोर्त्यत्तिसमये सकलतदुत्पाद्यप्रमाणो-
 ५ त्यत्तिश्च स्यात् । तथाहि—यदा यज्जनकमस्ति-तत्तदोत्पत्तिमत्प्रसि-
 द्धम्, यथा तत्कालाभिमतं प्रमाणम्, अस्ति च पूर्वोत्तरकालभाविनां
 सर्वप्रमाणानां तदा नित्याभिमतं जनकमात्मादिकं कारणमिति ।
 आत्मादिकारणे सत्यपि तेषामनुत्पत्तौ ततः कदाचनाप्युत्पत्तिर्न
 स्यादिति सकलं जगत् प्रमाणविकलमापद्येत । आत्मादौ तत्क-
 १० रणसमर्थे सत्यपि स्वयमेव तेषां यथाकालं भावे तत्कार्यता-
 विरोधः-तस्मिन् सत्यप्यभावात्-स्वयमेवान्यदा भावात् । न च
 स्वकालेपि तत्सङ्गावे भावात्तत्कार्यता; गंगनादिकार्यताप्रसक्तेः ।
 न च तस्यापि तत्प्रति कारणत्वस्येष्टरदोषोयमिति वक्तव्यम्;
 आत्माऽनात्मविभागाभावप्रसङ्गात् । यत्र प्रमितिः समवेता
 १५ सोऽत्रात्मा नार्थे इत्यप्यनालोचितवचनम्; समवर्थाऽसिद्धौ सम-
 वेतत्वाऽसिद्धेः । यदा यत्र यथा यद्भवति तदा तत्र तथाऽऽत्मा-
 देस्तत्करणसमर्थत्वात्तदा सकलप्रमाणोत्पत्तिप्रसक्तिरित्यप्यस-
 म्भाव्यम्; तत्स्वभावभूतसामर्थ्यमेदमन्तरेण कार्यस्य कालौदि-
 भेदायोगात्, अन्यथा दृष्टस्य पृथिव्यादिकार्यनानात्वस्याऽदृष्ट-
 २० पार्थिव्यादिपरिमाणौदिकारणानुर्विध्यं किमर्थं समर्थ्यते ? नित्य-
 स्वभावमेकमेव हि किञ्चित्समर्थनीयम् । यथा च कारणजातिभेद-
 मन्तरेण कार्यभेदो नोपपद्यते तथा तच्छक्तिभेदमन्तरेणापि । न च

१ अवयवी । २ रूपमिव रूपं यस्य तद्धर्मस्य सामान्ये ये दोषास्तोऽत्रापि स्युः ।
 ३ कारकेण । ४ नेत्रोद्वाटनयोग्यदेशगमनादि । ५ आत्माकाशकालदिग्मनसाम् ।
 ६ कार्यलक्षणसाकल्यप्रमाणस्य । ७ सकलपदार्थपरिच्छेदकार्यलक्षणसाकल्यप्रमाणाना-
 नुत्पत्तिः स्यात् । ८ कारणाऽवीनानि कार्याणि यतः । ९ उपनयः । १० विवक्षित-
 कालाऽभिमतकार्योत्पत्तिसमये । ११ कार्यविकलम् । १२ युगपद प्रमाणकार्यस्य ।
 १३ अन्यथा । १४ परः । १५ गगनादिः । १६ चतुर्थपरिच्छेदेऽयं निराकरोष्यते ।
 १७ परः । १८ आत्मादि । १९ नानाकार्याणि विभिन्नशक्तिहेतुकानि विभिन्नकार्य-
 त्वात् पृथ्व्यादिभेदकार्यवत् । २० सर्वेषां कार्याणां युगपदुत्पत्तिवत्तः । २१ देश-
 स्वभावः । २२ तत्सामर्थ्यमेदं विनापि कार्यस्य कालादिभेदो भविष्यतीति चेत् ।
 २३ भ्रमस्तस्य । २४ आप्यतैजसवायवीव । २५ इन्द्रगुणादि । २६ प्रज्ञादि ।
 २७ कारणम् । २८ पार्थिव्यादिव्यति । २९ अत्राभिप्रायस्तु योग्यतावच्छिन्नस्वरूप-
 सदकारणसमवधानमेव शक्तिरिति गौतमीयन्यायैकदेशे द्रव्याच्छक्तिरूपवत्ते चेति नैना
 बदन्तीति मत्वा द्रुपदं बदलपरःतद्द्रव्यपरिनिहीर्षया न चेत्साह ।

ययैकयाशक्त्यैकमेकाः शक्तीर्विभर्ति तत्राप्यनेकशक्तिपरिकल्प-
नेऽनवस्थाप्रसङ्गात्, तयैव तदनेकं कार्यं करिष्यतीति वाच्यम् ;
यतो न भिन्नाः शक्तीः कयाविच्छत्तया कश्चिद्धारयतीति जैनो
मन्यते-स्वकारणकलापात्तदात्मैकस्यैवाऽस्योत्पादात् ।

संहकारिसव्यपेक्षाणां जनकत्वादेशकालस्वभावभेदः कार्यं न
विरुध्यतइत्यपि वार्तम् ; नित्यस्यानुपकार्यतया सहकार्येऽपेक्षया
अयोगात् । सहकारिणो हि भावाः किं विशेषार्थोपित्वेन, एकार्थकौ-
रित्वेन वाभिधीयन्ते ? प्रथमपक्षे किमसौ विशेषस्तेभ्यो भिन्नः,
अभिन्नो वा तैर्विधीयते ? भेदे सम्बन्धासिद्धेस्तदवस्थमेवाकारक-
त्वमेतेषां पूर्ववस्थायामिव पश्चादप्यनुपज्यते । तदैसिद्धिश्च सम- १०
वायादिसम्बन्धस्याग्रे निराकरिष्यमाणत्वात् सुप्रसिद्धा । विभि-
न्नातिशयात् कार्योत्पत्तौ चात्र कौरकव्यपदेशोऽपि कल्पनाशिल्पि-
कल्पित एव-अतिशयस्यैव कारकत्वात् । द्वितीयपक्षे तु कथमेतेषां
नित्यता उत्पादविनाशात्मकातिशयादभिन्नत्वात्तत्स्वरूपवत् ?
एकार्यकारित्वेन त्वेषां सहकारित्वं नौत्सामिः प्रतिक्षिप्यते, किंत्व- १५
परिणामित्वे तेषां भ्रौंक् पश्चात् पुंश्रग्भावावस्थायामपि कार्यकारि-
त्वप्रसङ्गतः 'संहैव कुर्वन्ति' इति नियमो न घटते । न खलु सैहि-
त्येऽपि भौवाः परैरूपेण कार्यकारिणः । स्वयमकारैकाणामन्यसन्नि-
धानेऽपि तत्कारित्वासम्भवात्, सम्भवे वा पर एव परमार्थतः
कार्यकारको भवेत् स्वात्मनि तु कारकव्यपदेशो विकल्पकल्पितो २०
भवेत् । तैथा चान्यस्यानुपकौरिणो भौवमनपेक्ष्यैव कार्यं तद्विकै-
लेभ्य एव सहकारिभ्यः समुत्पद्येत । तेभ्योऽपि वा न भवेत्,
स्वैवं तेषामप्यकारकत्वात् परैरूपेणैव कारकत्वात् । अतः सर्वेषां

१ आत्मादिधारण । २ अनेकशक्तिधारणे । ३ कारणस्य । ४ हे जैन तव
हेतोः । ५ आत्मादि । ६ परेण । ७ आत्मा । ८ आत्मादि । ९ पुण्यपाप ।
१० नानाशक्त्यात्मकस्य । ११ आत्मादेः । १२ परः । १३ आत्मादीना । १४ कार-
णानां । १५ कार्यस्य । १६ अतिशय उपकार । १७ कारकविशेषः क्रियते तैः ।
१८ कारकाणां विशेषाप्यारोपकत्वेन । १९ एककार्यकरणत्वेनोभयोरपि । २० कार-
केभ्यः । २१ सहकारिरहितानस्यामिव । २२ जनकत्वेन ? [सम्बन्धासिद्धिश्च] ।
२३ आत्मादेः । २४ आत्मादीना । २५ अतिशयस्वरूपवत् । २६ सहकारिणा ।
२७ जैनैः । २८ सहकारिभ्यः । २९ भिन्नभावावस्थानां । ३० सहकारिभिः ।
३१ सहकारिणां । ३२ आत्मादयः । ३३ सहकारिरूपेण । ३४ आत्मादीना ।
३५ सहकारि । ३६ आत्मादी । ३७ एवं सति । ३८ आत्मनः । ३९ जनकत्वेन ।
४० सद्भावं । मुख्यकारकस्य स्वरूप । ४१ आत्मादिक । ४२ सहकारिकारकेभ्यः ।
४३ स्वरूपेण । ४४ आत्मादिरूपेण ।

स्वयमकारकत्वे पररूपेणाप्यकारकत्वात् तद्वातौच्छेदतो न कुतश्चित् किञ्चिदुत्पद्येत । ततः स्वरूपेणैव भावाः कार्यस्य कर्तार इति न कदाचित्त्तिक्रियोपरतिः स्यात् ।

ननु कार्याणां सामग्रीप्रभवस्वभावत्वात् तस्याश्चापरापरप्रत्यय-
५ योगरूपत्वात्प्रत्येकं नित्यानां तत्किंयास्वभावत्वेऽप्यनुत्पत्तिस्तेषा-
मिति, तदप्यसाम्प्रतम् ; यतोऽयमेकोऽपि भावः क्रमभाविकार्यो-
त्पादने समर्थोऽतः कथमेषां भिन्नकालापरापरप्रत्यययोगैलक्षणोऽ-
नेकसामग्रीप्रभवस्वभावता स्यात् ? एकेर्नापि हि तेन तज्जनन-
सामर्थ्यं विभाषेण तान्युत्पादयितव्यानि, कथमन्यथा केवलस्य
१० तज्जननस्वभावता सिद्धेत् ? तस्याः कार्यप्रादुर्भावानुभूयमानस्वरू-
पत्वात् प्रयोगः—यो यन्न जनयति नासौ तज्जननस्वभावः यथा
गोधूमो यवाङ्कुरमजनयन्न तज्जननस्वभावः, न जनयति तैयं
केवलः कदाचिदप्युत्तरोत्तरकालभावीनि प्रत्ययान्तरापेक्षाणि
कार्याणीति । ननु प्रत्ययान्तरमपेक्ष्य कार्यजननस्वभावत्वाभासौ
१५ केवलस्तज्जनयति, न च सहकारिसहितासहितावस्थयोरस्य स्वभा-
वभेदः; प्रत्ययान्तरापेक्षस्वकार्यजननस्वभावतायाः सर्वदा भावात्,
तदप्यपेशलम् ; यतः प्रत्ययान्तरसन्निधानेऽपि स्वरूपेणैवैतस्य
कार्यकारिता, तच्च प्रौढप्यस्तीति प्रागेवैतः कार्योत्पत्तिः स्यात् ।
प्रत्ययान्तरभ्यश्चास्यातिशयसम्भवे तदपेक्षा स्यादुपकारैरेकेष्वे-
२० वास्याः सम्भवात्, अन्यथाऽतिप्रसङ्गात् । तैसन्निधानस्यासन्नि-
धानतुल्यत्वाच्च केवल एवासौ कार्यं कुर्यात्, अकुर्वच्च केवलः
सहितावस्थया च कुर्वन् कथमेकस्वभावो भवेद्विरुद्धधर्माध्या-
सतः स्वभावभेदानुषङ्गात् ?

किञ्च सकलानि कारकाणि सौकल्योत्पादने प्रवर्तन्ते, असक-
२५ लानि वा ? न तावत्सकलानि साकल्यासिद्धौ तैसकलत्वासिद्धेः ।

१ आत्मादिरूपेणापि । २ कारक । ३ कार्य । ४ स्थायीनतया । ५ कार्य ।
६ करण । ७ विश्रामः । ८ परः । ९ कारण । १० कदाचित् रूपभिन्नकालक्रम-
भाविकारणयोरुत्पत्त्वात् । ११ केवलं । १२ करण । १३ निलः । १४ कारण ।
या । १५ नित्यञ्च । १६ केवलेन । १७ परिणामित्वं । १८ न तथा । *प्रत्येक-
मात्मादिर्धर्मो (*केवलः) तदजनकत्वादिति हेतुः तज्जननस्वभावो न भवतीति साध्यम् ।
१९ हेतुः । २० धर्मैः । २१ अयमेवोपनयः । २२ तस्यादात्मादिः प्रत्येक्युत्तरोत्तर-
निगमनम् । २३ परः । २४ कारणान्तर । २५ सहकारिलक्षणकारणान्तर । २६ निलस्य ।
२७ सहकारिसन्निधानात् । २८ आत्मादिकारकत्वात् । २९ कारकस्य । ३० उपकार-
काणामेवापेक्षा भवति नाऽन्येषामित्यर्थः । ३१ अनुपकारकेवैव सम्भवे । ३२ पदोत्पत्तौ
कुम्भेन्दस्य . ऋषिण्डे अपेक्षा भवेत् । ३३ अनुपकारकप्रत्ययान्तर । ३४ प्रमाण ।
३५ यतोऽद्यापि विचार्यमाणं (ततः) । ३६ विद्याणामपि प्राप्नोति ।

अन्योऽन्याश्रयश्च-सिद्धे हि साकल्ये तेषां सकलरूपतासिद्धिः, तत्सिद्धौ च साकल्यसिद्धिरिति । नाप्यसकलान्यतिप्रसक्तैः । किञ्च यथा प्रत्यासत्यां तथाविधान्येतानि साकल्यमुत्पादयन्ति तथैव प्रमामप्युत्पादयिष्यन्तीति व्यर्था साकल्यकल्पना । करण-मन्तरेण प्रमोत्पत्त्यभावे साकल्येऽप्यन्यत् करणं कल्पनीयमित्यन-५ वस्था । न चाप्यक्षसिद्धत्वात्साकल्यस्यादोषोऽयम् ; आत्मान्तः-करणसंयोगादेरतीन्द्रियस्याध्यक्षाऽविपयत्वात् । केवलं विशि-ष्टार्थोर्पलब्धिलक्षणकार्यस्याऽध्यक्षसिद्धस्य करणमन्तरेणानुपपत्ते-स्तत्परिकल्पना, तच्च मनोऽलक्षणकरणसद्भावे साकल्यमेवेत्यव-धारयितुं न शक्यम् । तन्न सकलकारककार्यं साकल्यम् । १७

नापि पैदार्थान्तरं सर्वस्य पदार्थान्तरस्य साकल्यरूपताप्रस-ङ्गात् । तथा च तत्सद्भावे सर्वत्र सर्वदा सर्वैस्यार्थोर्पलब्धिरिति सर्वैः सर्वदर्शा स्यात् । ततः कारकसाकल्यस्य स्वरूपेणाऽसिद्धेः सिद्धौ वा ज्ञानेन व्यवधानात् प्रामाण्यम् ॥ छ ॥

१ स्वभावेन । प्रलासत्तिः स्वभावः । २ कारकाणि । ३ परः । ४ साकल्यस्य । ५ पुनः । ६ ज्ञान । ७ अर्थापत्तिप्रमाणम् । ८ श्रेयसी (मन्यते) । ९ अर्थापत्ति-प्रमाणप्रसिद्धं करणं । १० भावमनो । ११ प्रमितिरूपः पदार्थः । १२ नुः । १३ सर्वपदार्थान्तरसाकल्यरूपप्रमाणत्वात् ।

I कारकसाकल्यस्य स्वरूपं तावत् सामग्रीप्रमाणवादी जयन्तभट्टः इत्थं निरूपयति 'अन्यभिचारिणीमसन्दिग्धामर्थोपलब्धिं विदधती बोधाबोधस्वभावा सामग्री प्रमाणम् । बोधाऽबोधस्वभावा हि तस्य स्वरूपम् अन्यभिचारादिविशेषणार्थोपलब्धिसाधनत्वं लक्षणम्' (न्यायमं० पृ० १२)

सामग्री च कारकसाकल्यस्यैव व्यपदेशान्तरम्, अतएवार्थं कारकसाकल्यवादः 'सामग्रीप्रमाणवादः' इति शब्देनापि व्यपदिश्यते । तस्य च साधिका मुख्या युक्तिः इत्थम्—'यत् एव साधकतमं कारणम् कारणसाधनश्च प्रमाणशब्दः, तत् एव सामग्र्याः प्रमाणत्वं युक्तम्, तद्यतिरेकेण कारकान्तरे क्वचिदपि तमवर्थसस्पृशानुपपत्तेः । अनेक-कारकसाधनाने कार्यं घटमानम् अन्यतरव्यपगमे च विघटमानं कसौ अतिशयं प्रयच्छेत् ? नचातिशयः कार्यजन्यमि कस्यचिदवधार्यते सर्वेषां तन्न व्याभियमाणत्वात्' (न्याय मं० पृ० १३)

सामग्रीप्रमाणत्वादस्य द्विधा छेदो न्यायमंनया दृश्यते । एकस्तान्त् पूर्वोक्त एव द्वितीयस्तु प्रकारः, 'कर्तृकर्मविलक्षणासम्भवविपर्ययद्विवाऽवबोधविधायिनी बोधाऽबोध-स्वभावा सामग्री प्रमाणम्' इत्यादिरूपः 'अपरे पुनराचक्षते' इति कृत्वा तत्रैव (पृ० १४) निर्दिष्टो दृश्यते ।

प्र० क० मा० २

मा भूत् कारकसाकल्यस्यासिद्धस्वरूपत्वात् प्रामाण्यं सन्निकर्षादेस्तु सिद्धस्वरूपत्वात्प्रमित्युत्पत्तौ साधकतमत्वाच्च तत्त्वात् । सुप्रसिद्धो हि चक्षुषो घटेन संयोगो रूपादिना (संयुक्तसमवायः रूपत्वादिना) संयुक्तसमवेतसमवायो ज्ञानजनकः । साधकतमत्वं च प्रमाणत्वेन व्याप्तं न पुनर्ज्ञानत्वमहानत्वं वा संशयादिवत्प्रमेयार्थवच्च, इत्यसमीक्षिताभिधानम् ; तस्य प्रमित्युत्पत्तौ साधकतमत्वाभावात् । यद्भावे हि प्रमितेर्भाववत्ता यद्भावे चाभाववत्ता तैस्तत्र साधकतमम् ।

“भावाभावयोस्तद्वत्ता साधकतमत्वम्” []

१० इत्यभिधानात् ।

न चैतत्सन्निकर्षादौ सम्भवति । तद्भावेऽपि क्वचित्प्रमित्युत्पत्तेः; न हि चक्षुषो घटवदाकाशे संयोगो विद्यमानोऽपि प्रमित्युत्पादकः, संयुक्तसमवायो वा रूपादिवच्छब्दरसादौ, संयुक्तसमवेतसमवायो वा रूपत्ववच्छब्देत्वादौ । तद्भावेऽपि च विशेषणज्ञानाद्विशेष्यप्रमितेः सद्भावोपगमात् । योग्यताभ्युपगमे सैवास्तु किमनेनैतर्गतगङ्गुनी ?

१ परः । २ लिङ्गशब्दः । ३ द्रव्यत्वकर्मसामान्य । ४ शुणत्वकर्मत्व । ५ प्रमितौ । ६ सतोः । ७ यस्य तस्य तत्र । ८ आदिपदेन शब्दलिङ्ग । ९ नयति । १० गगनमिति प्रमितेः । ११ कर्म । १२ रसत्वस्पर्शत्वादि । १३ सन्निकर्ष । १४ दण्ड । १५ दण्डोऽस्वास्तीति तस्मिन् दण्डिनि । १६ सन्निकर्षस्य शक्ति । १७ यद्यपि घटाकाशयोरविशिष्टश्चक्षुषः सन्निकर्षोऽस्ति तथापि योग्यत्वावशात् घट एव प्रमितिं जनयेत्काशे इति सन्निकर्षवत्त्वभ्युपगमे । १८ सन्निकर्षेण । १९ अन्विता (अणेन) ।

अस्य च सामर्थ्यपरनामकस्य कारकसाकल्यस्य विविचरीत्या खंडनं निम्नग्रन्थेषु द्रष्टव्यम्—न्यायकु० पं० लि० परि० २ । सन्मति० टी० पृ० ४७३ । स्वा० रत्नाकर पृ० ६५ ।

प्रस्तुतार्थगतखंडने (पृ० ११ पं० ८) आभासस्य ‘सहकारिणो हि भावाः किं विशेषाधाधिवत्वेन एकार्यकारित्वेन वाऽभिधीयन्ते’ इत्याद्यंशस्य तुलना जर्चट्टक-हेतु-विन्दुटीकायाः—‘नैयायिकास्तु मन्यन्ते भावानां सहकारिसन्धिषानाऽसन्धिषानापेक्षया कारकस्य भावव्यवसा...’ (पृ० १५०) इत्याद्यंशेन विवेया ।

१ यद्यपि सन्निकर्षस्य सामान्यतो निर्देशः कणाद-न्यायसूत्रे तद्भावयोरपि समस्ति तथापि तस्य प्रक्रियानन्दं विवरणं षोढा तद्वेदनिरूपणं च न्यायवा० पृ० ३१ तथा पृ० ३७३ । न्यायवा० वा० टी० पृ० ११६ तथा पृ० ५२० । न्यायमं० पृ० ४७७ । प्रश्न० कन्द० पृ० २३ तथा १९५ । इत्यादिषु द्रष्टव्यम् ।

२ ‘कः चक्षुसाधकतमार्थः ? साधकतमं प्रमाणमिति केवलं वाक्यमभिधीयते भावः इति ? भावाऽभावयोस्तद्वत्ता’ न्यायवा० पृ० ६ ।

योग्यता च शक्तिः, प्रतिपत्तुः प्रतिबन्धापायी वा ? शक्तिश्चेत् ; किमतीन्द्रिया, सहकारिसाभिध्यलक्षणा वा ? न तावदतीन्द्रिया; अनभ्युपगमात् । नापि सहकारिसाभिध्यलक्षणा; कारकसांकल्य-पक्षोक्ताशेषदोषानुषङ्गात् । सहकारिकारणं चात्र द्रव्यम्, गुणः, कर्म वा स्यात् ? द्रव्यं चेत् ; किं व्यापि द्रव्यम्, अव्यापि द्रव्यं वा ? ५ न तावद् व्यापिद्रव्यम् ; तत्साभिध्यस्याकाशादीन्द्रियसन्निकर्षेऽप्यविशेषात् । कथमन्यथा दिक्कालाकाशात्मनां व्यापिद्रव्यता ? अथाऽव्यापि द्रव्यम् ; तर्कि मनः, नयनम्, आलोको वा ? त्रितय-स्याप्यस्य साभिध्यं घटादीन्द्रियसन्निकर्षवदाकाशादीन्द्रियसन्नि-कर्षेऽप्यस्त्येव । गुणोऽपि तत्सहकारी प्रमेयगतः, प्रमातृगतो वा १० स्यात्, उभयगतो वा । प्रमेयगतश्चेत् ; कथं नाकाशस्य प्रत्यक्षता द्रव्यत्वतोऽस्यापि गुणसद्भावाविशेषात् ? अमूर्तत्वात्प्रत्यक्ष-तेऽत्यप्ययुक्तम् ; सामान्यादेरप्यप्रत्यक्षत्वप्रसङ्गात् । प्रमातृगतोऽप्येदृष्टोऽभ्यो वा गुणो गगनेन्द्रियसन्निकर्षसमयेऽस्त्येव । न खलु तैनास्यं विरोधो येनानुत्पत्तिः प्रध्वंसो वा तत्सद्भावेऽस्य १५ स्यात् । उभयगतपक्षेऽप्युभयपक्षोपक्षिसदोषानुषङ्गः । कर्माऽप्यर्थो-न्तरगतम्, इन्द्रियगतं वा तत्सहकारि स्यात् ? न तावदर्थान्तर-गतम् ; विज्ञानोत्पत्तौ तैस्थानङ्गत्वात् । इन्द्रियगतं तु तत्तत्रास्त्येव ; आकाशेन्द्रियसन्निकर्षे नयनोन्मीलनौदिकर्मणः सद्भावात् । प्रति-बन्धापायरूपयोग्यतोपगमे तु सर्वे सुस्थम्, यस्य यत्र यथाविधो २० हि प्रतिबन्धापायस्तस्य तत्र तथाविधार्थपरिच्छित्तैर्पद्यते । प्रतिबन्धापायश्च प्रतिपत्तुः सर्वज्ञसिद्धिप्रस्तावे प्रसाधयिष्यते ।

न च योग्यताया एवार्थपरिच्छित्तौ साधकतमत्वतः प्रमाण-त्वानुषङ्गात् 'ज्ञानं प्रमाणम्' इत्यस्य विरोधः ; अर्थोः स्वार्थग्रहण-शक्तिलक्षणभावेन्द्रियस्वभावायाः 'यैर्दसन्निकर्षाने कौरकान्तरसन्नि- २५

१ सन्निकर्षस्य । २ ऐन्द्रिया चेद् घटवद्भवेत् न च दृश्यते इत्यतोऽतीन्द्रिया । ३ परैः । ४ धर्मकार्यपक्षयोः धर्मरूपे पक्षे । ५ सन्निकर्षे । ६ क्रिया । ७ रूपरूपत्व । ८ ज्ञेयपदार्थः । ९ परः । १० गन्धादेः । ११ पुण्यपापरूपः । १२ इच्छादिः । १३ नमो-नयनसन्निकर्षेण । १४ सहकारिगुणस्य । १५ सन्निकर्षे । १६ गुणस्य । १७ प्रमेय । १८ सन्निकर्षे । १९ अन्यथा सिरार्थानामप्रतीतिप्रसङ्गात् । २० निमीलन । २१ आव-रणोपाय । २२ घटादौ प्रमोत्पद्यते नाकाशादाविति । २३ नुः । २४ अर्थे । २५ शानं । २६ नरस्य । २७ लक्षणस्य । २८ न च विरोधो कुतः । सामग्रीत्वत इति पर्यन्तमस्य हेतुर्द्रव्यः । २९ भावेन्द्रिय । ३० अनुमानम् । यदभावसन्निकर्षादिसद्भावौ प्रतिगौ । स्वार्थसवेदनजननी न भवत इति साभ्यो धर्मः । अदनुपपन्नमानत्वात् । ३१ सन्निकर्षे ।

१ सु०—यदसन्निकर्षाने कारकान्तरसन्निकर्षाने इत्यादि प्रमाणं सू० ५१ ।

धानेऽपि यत्रोत्पद्यते तत्त्त्करणकम्, यथा कुठारासन्निधाने कुठार-
र(काष्ठ)च्छेदनमनुत्पद्यमानं कुठारकरणकम्, नोत्पद्यते च भावे-
न्द्रियासन्निधाने स्वार्थसंवेदनं सन्निकर्षादिसङ्गावेऽपीति तद्भावे-
न्द्रियकरणकम् इत्यनुमानतः प्रसिद्धस्वभावायाः स्वार्थावभासिज्ञा-
नलक्षणप्रमाणसामग्रीत्वतः तदुत्पत्तावेव साधकतमत्वोपपत्तेः ।
ततोऽर्थनिरपेक्षतया स्वार्थपरिच्छिन्नौ साधकतमत्वाद्ज्ञानमेव
प्रमाणम् । तच्चेत्तत्त्वात्सन्निकर्षादेरपि प्रामाण्यम्, इत्यप्यसमीची-
नम्; छिदिक्रियायां करणभूतकुठारस्य हेतुत्वादयस्कारादेरपि
प्रामाण्यप्रसङ्गात् । उपचारमात्रेणाऽस्य प्रामाण्ये च आत्मादेरपि
१० तत्प्रसङ्गसंज्ञेनुत्त्वाविशेषात् ।

ननु चात्मनः प्रमातृत्वाद् घटादेश्च प्रमेयत्वाच्च प्रमाणत्वं
प्रमातृप्रमेयाभ्यामर्थान्तरस्य प्रमाणत्वाभ्युपगमात् इत्यप्यसङ्-
तम्; न्यैयप्रसत्याभ्युपगममात्रेण प्रतिषेधायोगात्, अन्यथा
'अचेतनादर्थान्तरं प्रमाणम्' इत्यभ्युपगमात्सन्निकर्षादेरपि तन्न
१५ स्यात् । किञ्च प्रमेयत्वेन सह प्रमाणत्वस्य विरोधेप्रमाणप्रमेय-
मेव स्यात्, तथा चैसात्त्वप्रसङ्गः संविधिहेतुवैङ्ग्यवस्थितैः,
इत्ययुक्तमित्य-

'प्रमाता प्रमाणं प्रमेयं प्रमितिरिति चतसृष्वेवंविधास्तु तैस्त्वं

१ तस्मात् । २ वा । ३ बोध्यता । ४ ज्ञाने साधकतमत्वसामर्थ्यं । ५ भावेन्द्रियात् ।
६ सन्निकर्षं । कारकान्तर । ७ परः । ८ तत्प्रसङ्गादिति पाठान्तरम् । ९ प्रमातुः ।
१० मुख्यज्ञान । ११ परः । १२ करतृत्वात् । १३ भिन्नस्य । १४ परेणाम् । १५ युक्त्या
प्राप्तस्य प्रमाणत्वस्य । १६ युक्त्या रहिताभ्युपगमेन । १७ चेतनं । १८ परैः जैतैः ।
१९ अचेतनत्वात् । २० प्रामाण्यं । २१ इत्तुनि । २२ प्रमितिविषयाः प्रमेया इति
बचनानुज्ञानविषयत्वाद्भावस्य व्यवस्थितैः प्रमितिविषयप्रमेयत्वे सत्त्वेन चतसृष्ववस्थिति-
स्तत्तु प्रमाणो नास्त्वेषांप्रमेयरूपत्वादिति भावः । २३ अप्रमेयत्व सादृश्यत्वं च न
स्यादिति (हेतोः) सन्निधानैकान्तिकत्वे सत्याह । २४ परिच्छिन्नं ज्ञानं । २५ प्रमाणं
सन्न भवति अप्रमेयत्वात्कारविषाणवत् । २६ सत्ता । २७ यदायं । २८ तत्रम् ।
२९ परमार्थः ।

१ 'ननु प्रमातृप्रमेययोरपि उपलब्धिहेतुत्वात् प्रमाणत्वं प्रसज्येत विज्ञेयो वा वक्तव्यः
इति । अयं विज्ञेयः—प्रमातृप्रमेययोरपरिसाधेत्वात्—प्रमाणे प्रमाता प्रमेयं च चरितान्-
वन्त्वं' अंचरितार्थं च प्रमाणम् अतस्तदेव उपलब्धिसाधनमिति' न्याय बा० पृ० ५ ।

२ 'यत्संसाधिज्ञासाप्रयुक्तस्य प्रवृत्तिः स प्रमाता, चेनार्थं प्रमितोति तत्प्रमाणम्,
योऽर्थः प्रमीयते तत्प्रमेयम्, यत् अर्थविज्ञानं सा प्रमितिः, चतसृषु चैवंविधास्तु तस्य
परिसमाप्यते' न्यायुक्ता० पृ० १ ।

परिसमाप्यत ईति" [] । कथं वा सर्वज्ञज्ञानेनाप्यस्या-
प्रमेयत्वे तस्य सर्वज्ञत्वम् ? किञ्च प्रमाणवत् प्रमातुरपि प्रमेय-
त्वधर्माधारत्वं न स्यात्तस्य तद्विरोधोविशेषात् । तथा चाश्वविपा-
णस्येवास्यासत्त्वानुषङ्गः । तद्धर्माधारत्वे वा प्रमात्रा ततोऽर्थान्तर-
भूतेन भवितव्यं प्रमाणवत् । तस्यापि प्रमेयत्वे ततोऽप्यर्थान्तरभू-
तेनैत्येकत्रात्मनि प्रमेयेऽनन्तप्रमातृमालाप्रसक्तिः । यदि धर्ममे-
वैदेकत्रात्मनि प्रमातृत्वं प्रमेयत्वं चाविरुद्धं तर्हि प्रमाणत्वमप्य-
विरुद्धमनुमन्यताम् । ततो निराकृतमेतत्-“प्रमातृप्रमेयाभ्याम-
र्थान्तरं प्रमाणम्” इति ।

चक्षुषश्चाप्राप्यकारित्वेनाग्रे समर्थनात्कथं घटेन संयोगस्तदभा- १०
वात्कथं रूपदिना संयुक्तसमर्थायादिः ? इत्यन्येतिः सन्निकर्ष-
प्रमाणवादिनाम् । सर्वज्ञाभावश्चेन्द्रियाणां परमाण्वादिभिः साक्षा-
त्सम्बन्धाभावात् ; तथाहि-नेन्द्रियं साक्षात्परमाण्वादिभिः स-
म्बध्यते इन्द्रियत्वाद्सादादीन्द्रियवत् ।

योगजधर्मानुग्रहोत्स्य तैः साक्षात्सम्बन्धश्चेत् ; कोऽयमिन्द्रि- १५
यस्य योगजधर्मानुग्रहो नाम-स्वविषये प्रवर्तमानस्यातिशयाधै-
नम्, सहकारित्वमात्रं वा ? प्रथमपक्षोऽयुक्तः ; परमाण्वादौ स्वय-
मिन्द्रियस्य प्रवर्तनाभावाद्, भावे तदनुग्रहवैयर्थ्यम् । तैत्र एवास्य
तत्रैव प्रवृत्तौ परस्परश्रयः-सिद्धे हि योगजधर्मानुग्रहे तत्र तस्य
प्रवृत्तिः, तस्यां च योगजधर्मानुग्रह इति । द्वितीयपक्षोप्यस- २०

१ परिपूर्णता याति अत्रैवान्तं प्रामोदीत्यर्थः । २ इति यदुक्तं तच्चतुर्थसख्यापूरकस्य
प्रमाणसाधनाभावद्वयकमेव प्रामाण्यस्य । ३ सति । ४ प्रमेयत्वेन प्रमातृत्वस्य ।
५ प्रमातृः । ६ प्रमात्रन्तरस्यापि । ७ स्वभाव । ८ प्रमित्याशयः प्रमाता । ९ प्रमाविषयः
प्रमेयः । १० प्रमितिक्रिया प्रति करणत्वम् । ११ आत्मनः । १२ प्रमाणहेतुत्वात् ।
१३ प्रमात्रन्तर्गतत्वात्प्रमाणस्य । १४ आदिपदेन रूपत्वादिर्माद्यः । १५ (संयुक्त-
समवेतसमवायादिः) । १६ लक्ष्यैकदेशवृत्तिरन्यासिरिति बचनाच्चस्य स्पष्टोद्विचित्राधि-
न्द्रियेषु प्राप्यकारित्वं चक्षुष्यप्राप्यकारित्वमित्यन्यासिः । १७ समाधिः । १८ ईश्व-
रस्य । १९ परः । २० अदृष्ट । २१ उपकारात् । २२ करणं । २३ धर्मात् ।
२४ परमाण्वादी ।

1 'असाक्षिशिष्टानां तु योगिनां शुक्लानां योगवधर्मानुग्रहीतेन मनसा सारभान्त-
राकाशदिकं काळपरमाणुवायुमनस्सु तत्समवेतशुण्यकर्मसामान्यविशेषेषु समवाये चाऽवितर्कं
स्वरूपदर्शनमुत्पद्यते । विद्युत्कानां पुनः चतुष्टयसन्निकर्षाद् योगवधर्मानुग्रह-
सामर्थ्यात् सङ्गमव्यवहितविप्रकृष्टेषु मत्सङ्गसुत्पद्यते' प्रश्न० भा० पृ० १८७ । पद-
त्सलस्य व्योमवती कन्दली च टीकाऽनुसन्धेया ।

म्भाव्यः; स्वविषयातिक्रमेणास्य योगजधर्मसहकारित्वेनाप्यनुग्रहा-
योगात्, अन्यथैकैस्यैवेन्द्रियस्याशेषरसादिविषयेषु प्रवृत्तौ तदनु-
ग्रहप्रसङ्गः स्यात् । अथैकमेवान्तःकरणं (योगजधर्मोऽनुग्रहीतं युग-
पत्सुहृमाद्यशेषार्थविषयज्ञानजनकमिष्यते तन्न; अणुमनसोऽशेष-
५ धार्थैः संकृतसम्बन्धामावृतस्तज्ज्ञानजनकत्वासम्भवात्, अन्यथा
दीर्घशङ्कुलीभक्षणादौ सकृच्चक्षुरादिर्मित्तत्सम्बन्धप्रसक्तै रूपादि-
ज्ञानपञ्चकस्य सकृदुत्पत्तिप्रसङ्गात्-

“युगपज् ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिङ्गम्” [न्यायसू० १।१।१६] इति
विरुध्यते । क्रमशोऽन्यत्र तद्विशिष्टाद्वापि क्रमकल्पनायां योगिर्नः
१० सर्वार्थेषु सम्बन्धस्य क्रमकल्पनास्तु तैर्थादर्शनाविशेषात् । तदनु-
ग्रहसामर्थ्याद् दृष्टातिर्कमेधौ च आत्मैव समाधिविशेषोत्पत्त्यधर्म-
माहात्म्यादन्तःकरणनिरपेक्षोऽशेषार्थग्राहकोऽस्तु किमदृष्टपरि-
कल्पनया ? तन्नाणुमनसोऽशेषार्थैः साक्षात्संकृतसम्बन्धो घटते ।

अथ परम्परया, तथा हि—मनो महेश्वरेण सम्बद्धं तेन च
१५ घटादयोऽर्थास्तेषु रूपादय इति, अत्रार्थशेषार्थज्ञानासम्भवः ।
सम्बन्धसम्बन्धोऽपि हि तैस्याशेषार्थैर्वर्तमानैरेव नानुत्पन्नैविनष्टैः ।
तैर्काले तैरपि सह सोऽस्तीति चेन्न; तदा वर्तमानार्थसम्बन्ध-
सम्बन्धस्यासम्भवात् । ततोऽयमन्य एवेति चेत्, तर्हि तज्जनितज्ञान-
मपि अनुत्पन्नविनष्टार्थकालीनसम्बन्धसम्बन्धजनितज्ञानादन्य-
२० दिति एकज्ञानेनाशेषार्थज्ञत्वासम्भवः । बहुमिरेव ज्ञानैस्तदिति
चेत्, तेषां किं क्रमेण भावः, अक्रमेण वा ? क्रमभावे; नानन्तेनापि
कालेनानन्तता संसारस्य प्रतीयेत—य एव हि सम्बन्धसम्बन्ध-
वशाज् ज्ञानजनकोऽर्थः स एव तज्जनितज्ञानेन गृह्यते नान्य
इति । अक्रमभावेस्तु नोपपद्यते विनष्टानुत्पन्नार्थज्ञानानां वर्तमा-
२५ नार्थज्ञानकालेऽसम्भवात् । न हि कारणाभावे कार्ये नामात्तिप्र-
सङ्गात् । न च बौद्धानामिव यौगानां विनष्टानुत्पन्नस्य कारणत्वं
सिद्धान्तविरोधात् । नित्यत्वादीश्वरज्ञानस्योक्तदोषानवकाश

१ इन्द्रियस्य । २ विषयान्तरेऽपि सहकारित्वरूपाणुग्रहत्वेत् । ३ योगजधर्मस्य ।
४ परः । ५ परैः । ६ युगपत् । ७ परमते । ८ तदर्थैः सकृत्सम्बन्धसम्बन्धनसः ।
९ मनसः । १० परप्रत्ययः ॥ ११ परः । १२ घटादौ । १३ मनःसम्बन्धः ।
१४ सर्वज्ञस्य । १५ मनसः । १६ क्रमेण मनःसम्बन्ध । १७ परः । १८ क्रमेण
मनःसम्बन्धस्य । १९ युगपदशेषार्थग्राहणमितीदौ । २० परः । २१ अशेषार्थैरणुमनसो
हि सम्बन्धः । २२ सर्वगतत्वात् (महेश्वरस्य) । २३ सम्बन्धसम्बन्धे । २४ मनसः ।
२५ तेषामसङ्गात् । २६ परः । २७ अनुत्पन्नविनष्टार्थकाले । २८ अनुत्पन्नविन-
ष्टार्थसम्बन्धसम्बन्धात् परः । २९ नृणां । ३० ईश्वरेण । ३१ युगपत् । ३२ परः ।
३३ असर्वज्ञत्वज्ञानासम्भवं ।

इत्यप्यवाच्यम्; तन्नित्यत्वस्येश्वरनिराकरणप्रसङ्गके निराकरिष्य-
माणत्वात् । तन्न सन्निकर्षोप्यनुपचरितप्रमाणव्यपदेशभाक् ॥ छ ॥

एतेनेन्द्रियवृत्तिः प्रमाणमित्यभिधानः साहच्यः प्रत्याख्यातः ।
ज्ञानस्वभावमुख्यप्रमाणकरणत्वात् तत्राप्युपचारतः प्रमाणव्यव-
हाराभ्युपगमात् । न चेन्द्रियेभ्यो वृत्तिर्व्यतिरिक्ता, अव्यतिरिक्ता^५
वा घटते । तेभ्यो हि र्थव्यतिरिक्तसौ; तदा श्रोत्रादिमात्रमेवासौ,
तच्च सुप्ताद्यवस्थायामप्यस्तीति तदाप्यर्थपरिच्छित्तिप्रसङ्गेः सुप्ता-
दिव्यवहारोच्छेदः । अथ व्यतिरिक्ता; तदाप्यसौ किं तेषां धर्मः,
अर्थान्तरं वा ? प्रथमपक्षे वृत्तेः श्रोत्रादिभिः सह सम्बन्धो वैकल्यः-
स हि तादात्म्यम्, सैमवायादिर्वा स्यात् ? यदि तादात्म्यम्; १०
तदा श्रोत्रादिमात्रमेवासाविति पूर्वोक्त एव दोषोऽनुषज्यते । अथ
सैमवायः; तदास्य र्थापिनः सम्भवे व्यापिश्रोत्रादिसद्भावे च ।

“प्रतिनियतदेशावृत्तिरभिधेय्यते” [] इति सूचते ।
अथ संयोगः, तदा र्द्रव्यान्तरत्वप्रसङ्गेन तद्धर्मो वृत्तिर्भवेत् ।
अर्थान्तरमसौ; तदा नासौ वृत्तिरर्थान्तरत्वात् पदार्थान्तरवत् । १५
अर्थान्तरत्वेऽपि प्रतिनियतविशेषसद्भावात्तेषामसौ वृत्तिः; नन्वसौ
विशेषो यदि तेषां विषयप्राप्तिरूपः; तदेन्द्रियादिसन्निकर्ष एव
नामान्तरेणोक्तः स्यात् । स चानन्तरमेव प्रतिव्यूहः । अथाऽर्था-
कारपरिणतिः; न; असौ बुद्धावेवाभ्युपगमात् । १६ च श्रोत्रा-

१ प्रस्तावे । २ सन्निकर्षप्रमाणनिराकरणेन । ३ नेत्रादीनामुच्छ्रानादिः । ४ अभिन्ना ।
५ मूर्च्छागतप्रमत्तादि । ६ हेतोः । ७ जाग्रद्वाया यथा । ८ प्रमुद्ग । ९ मित्रा ।
१० स्वरूपं । ११ परैः । १२ आदिपदेन संयोगः । १३ वृत्तेः श्रोत्रादिभिः ।
१४ नित्य पक्षो व्यापि समवायः । १५ इन्द्रियाणां व्यक्तिक्रियते । १६ सम्बन्धतं
नश्यति । १७ द्वयोर्द्रव्ययोः संयोगः इतिहेतोः संयोगित्वात् । १८ इन्द्रियवृत्तेः ।
१९ परः । २० अर्थे । २१ परः । २२ वृत्तिः । २३ परिणतेः । २४ अर्थाकार-
परिणतिः किम् । २५ साहच्यैः । २६ किंच ।

१ प्रस्तुतदिक्षा सन्निकर्षस्य संबन्धनत्वार्थको० पृ० १६५ । प्रमाणप० पृ०
५२ । न्यायकु० चं० लि० परि० १ । स्या० रत्नाकर पृ० ५४ । इत्यादिषु
द्रष्टव्यं प्रुत्तनीर्यच ।

२ ‘इन्द्रियप्रणालिकया बाह्यवत्परागात् सामान्यविशेषात्मनोऽर्थस्य विशेषावधारण-
प्रणानावृत्तिः प्रत्यक्षम्’ । योगद० व्यासमा० पृ० २७ ।

‘अत्रेयं प्रक्रिया इन्द्रियप्रणालिकया अर्थसन्निकर्षेण लिंगज्ञानादिना ’ वा आदौ पुच्छेः
कार्याकारावृत्तिः जायते’ । सांख्यप्र० भा० पृ० ५७ ।

विषयैश्चिसंसयोगाद् बुद्धीन्द्रियप्रणालिकात् ।

प्रत्यक्षं सांप्रतं ज्ञानं विशेषस्यावधारकम् ॥ २३ ॥ योगकारिका ।

दिस्वभावा तद्धर्मरूपा अर्थान्तरस्वभावा चा तत्परिणतिर्घटते; प्रतिपादितदोषानुपज्ञात् । न च परंपक्षे परिणामः परिणामिने भिन्नोऽभिन्नो वा घटते इत्यग्रे विचारयिष्यते ॥ छ ॥

एतेन प्रभाकरोपि 'अर्थतथात्वप्रकाशको ज्ञातृव्यापारोऽज्ञानरूपोऽपि प्रमाणम्' इति प्रतिपादयन् प्रतिव्यूढः प्रतिपत्तव्यः; सर्वज्ञानस्योपचारादेव प्रसिद्धेः । न च ज्ञातृव्यापारस्वरूपस्य किञ्चित्प्रमाणं ग्राहकम्-तद्धि प्रत्यक्षम्, अनुमानम्, अन्यद्वा ? यदि प्रत्यक्षम्; तर्कि स्वसंवेदनम्, बाह्येन्द्रियजम्, मनःप्रभवं वा ? न तावत्स्वसंवेदनम्; तस्याज्ञाने विरोधादर्नभ्युपगमाच्च । १० नापि बाह्येन्द्रियजम्; इन्द्रियाणां स्वस्वबन्धेऽर्थे ज्ञानजनकत्वोपगमात् । न च ज्ञातृव्यापारेण सह तेषां सम्बन्धः; प्रतिनियतरूपादिविपर्यत्वात् । नापि मनोजन्यम्; तेषांप्रतीत्यभावादनभ्युपगमादितिर्प्रसङ्गाच्च । नाप्यनुमानम्;

“ज्ञातिसम्बन्धस्यैकदेशदर्शनादर्सन्निकृष्टेऽर्थे बुद्धिः” [शाबर- १५ भा० १।१।५] इत्येवंलक्षणत्वात्तस्य । सम्बन्धश्च कार्यकारण-भार्वादिनिराकरणेन निर्यमलक्षणोऽभ्युपगम्यते । तदुक्तम्-

१ साङ्ख्य । २ इन्द्रियस्य । ३ इन्द्रियवृत्तिः प्रमाणमित्येतिराकरणेन । ४ चैतना-समवायाच्चेतन आत्मा न स्वरूपतोऽतस्तथापारोऽपि (अज्ञानरूपः) । ५ (निराकृतः) । ६ मते । ७ स्यात् । ८ अर्थापत्तिरूपम् । ९ अनुभूतिः प्रत्यक्षमिदमाश्रित्य । १० ज्ञातृव्यापारे अग्रवृत्तिः । ११ प्राभाकरैः । १२ ज्ञातृव्यापारसाऽलन्तं परोक्षत्वाच्च । १३ अत्यन्तपरोक्षतया ज्ञातृव्यापारग्राहकत्वप्रकारेण मनोजन्यप्रत्यक्षस्य । १४ परः । १५ भर्मादेरप्यतीन्द्रियस्य मनःप्रत्यक्षत्वं स्यात् परमाण्वादेरपि ग्राहकत्वं मनसः स्यात् । १६ ज्ञुः । १७ इन्द्रियैः । १८ तादात्म्यादि । १९ अविनाशान् । २० परेण ।

१ इन्द्रियवृत्ति-प्रमाणत्वादस्य खंडनं विविधरीत्या निम्नप्रयेषु अवलोकनीयम् न्यायवा० ता० टी० पृ० २३३ । न्यायम० पृ० २६ । तत्त्वाभेदो० पृ० १८७ । न्यायकु० च० लि० परि० १ । स्या० रत्नाकर पृ० ७२ ।

२ 'तेन जन्मैव विषये बुद्धेर्वापार इत्येते ।

तदेव च प्रमाकर्यं तद्वती कर्णं च षीः ॥ ६१ ॥

व्यापारो न यदा तेषां तदा नोत्पद्ये फलम् ॥ ६१ ॥ मीमां० श्लो० पृ० १५२ ।

'अथवा ज्ञानक्रियाद्वारको यः कर्तृभूतस्य आत्मनः कर्मभूतस्य च अर्थस्य परस्पर सम्बन्धो व्याप्तृव्याप्यत्वलक्षणः स मानसप्रत्यक्षत्वगतो विज्ञानं कल्पयति' शास्त्रदी० पृ० २०२ ।

३ 'ज्ञातिसम्बन्धस्यैकदेशदर्शनात् एकदेशान्तरेऽसन्निकृष्टे बुद्धिः' शाबर भा० पृ० ८ ।

कार्यकारणभावादिसम्बन्धानां द्वयी गतिः ।

नियमानियमाभ्यां स्यादनियेमादनङ्गता ॥ १ ॥

सर्वेऽप्यनियमा ह्येते नानुमोत्पत्तिकारणम् ।

नियमात्केवलमेव न किञ्चिन्नानुमीयते ॥ २ ॥

एवं परोक्तसम्बन्धप्रत्याख्याने कृते सति ।

नियमो नाम सम्बन्धः स्वैमतेनोच्यतेऽधुना ॥ ३ ॥ []

इत्यादि ।

स च सम्बन्धः किमन्वयनिश्चयद्वारेण प्रतीयते, व्यतिरेक-
निश्चयद्वारेण वा ? प्रथमपक्षे किं प्रत्यक्षेण, अनुमानेन वा तन्नि-
श्चयः ? न तावत्प्रत्यक्षेण; उर्मयरूपग्रहणे ह्यन्वयनिश्चयः, न च १०
शाव्यापारस्वरूपं प्रत्यक्षेण निश्चीयते इत्युक्तम् । तदभावे च- न
तत्प्रतिबद्धत्वेनार्थप्रकाशनलक्षणहेतुरूपमिति । नाप्यनुमानेन;
अस्य निश्चितान्वयहेतुप्रभवत्वाभ्युपगमात् । न च तस्यान्वयनि-
श्चयः प्रत्यक्षसमधिगम्यः पूर्वोक्तदोषानुषङ्गात् । नाप्यनुमान-
गम्यः; तदन्तरेण प्रथमानुमानाभ्यां तन्निश्चयेऽनवस्थेतरैराश्रया- १५
नुषङ्गात् । नापि व्यतिरेकनिश्चयद्वारेण; व्यतिरेको हि साध्याभावे
हेतोरभावः । न च प्रकृतसाध्याभावः प्रत्यक्षाधिगम्यः; तस्य
शाव्यापाराविषयत्वेन तद्भाववत्तदभावेऽपि प्रवृत्तिविरोधात् ।
समर्थितं चास्य तद्विषयत्वं प्राणिति । नाप्यनुमानाधिगम्यः;
अर्त एव । २०

अथानुपलम्भनिश्चयः अत्रापि किं दृश्यानुपलम्भोऽभिप्रेतः,
अदृश्यानुपलम्भो वा ? यद्यदृश्यानुपलम्भः; नासौ गमकोऽतिप्रस-
ङ्गात् । दृश्यानुपलम्भोऽपि चतुर्धा भिद्यते स्वभाव-कारण-व्याप-
कानुपलम्भविद्व्योपलम्भमेवात् । तत्र न तावदाद्यो युक्तः; स्वैमा-

१ एव सति च किम् । २ गोपालघटिकादौ व्यभिचारात् । ३ अनुमान प्रति ।
४ सौगतायुक्त । ५ प्रमाकरमतेन । ६ साध्यसाधनयोरभिनाभावलक्षणः । ७ शाव-
व्यापारे सति अर्थप्रकाशलक्षणो हेतुर्न षट्ते । ८ साध्यसाधनरूप । ९ पूर्वम् ।
१० शाव्यापारस्य । ११ सम्बद्ध । १२ अर्थप्रकाशो शाव्यापारहेतुकस्तस्मिन्
सत्येनोपनायमानत्वादित्यनुमानेन । १३ हेतोः । १४ द्वितीयानुमान । १५ अर्थ-
प्रकाशान्वधानुपपत्तिशाव्यापारयो(र्)रन्वय । तस्मिन्ननुमानं । तत्स्वयमेव चानासि
अनुमानान्तरेण वा । प्रथमस्येतरैराश्रयः । द्वितीयेऽनवस्था । १६ शाव्यापारलक्षण ।
१७ यदि यद्भाववत्तदभावे तदेव तद्भाववत्तदभावेऽपि प्रवृत्ति-
विरोधात् । १९ व्यतिरेकः शाव्यापार आत्मनि नासि अनुपलम्भमानत्वात् खर-
शुक्रवदित्यनुपलम्भस्वरूपम् । २० पदार्थानां । २१ पिशाचपरमाप्त्वादेरपि गमकत्वं
स्यात् । २२ शुद्धभूतलोपलम्भ एव स्वभावानुपलम्भः ।

वानुपलम्भस्यैवविधे विषये व्यापाराभावात्, एकज्ञानसंसर्गिण्यै-
र्यान्तरोपलम्भरूपत्वात्तस्य । न च ज्ञातव्यापारेण सह कैस्यविदे-
कज्ञानसंसर्गित्वं सम्भवतीति । नापि द्वितीयः; सिद्धे हि कार्य-
कारणभावे कारणानुपलम्भः कार्याभावनिश्चायकः । न च ज्ञात-
व्यापारस्य केनचित् सह कार्यत्वं निश्चितम्; तस्यादृश्यत्वात् ।
अत्यक्षानुपलम्भनिबन्धनश्च कार्यकारणभावः । तत एव केनचित्सह
व्याप्यव्यापकभावस्यासिद्धेर्न व्यापकानुपलम्भोऽपि तैश्चिन्हायकः ।
विरुद्धोपलम्भोपि द्विधा भिद्यते विरोधस्य द्विविधत्वात्; तथा
हि-को(एका) विरोधोऽविकलकारणस्य भवतोऽर्थभावेऽभावा-
त्सहानवस्थालक्षणः शीतोष्णयोरिव, विशिष्टात्प्रत्यक्षाभिधीयते ।
न च प्रकृतं साध्यमविकलकारणं कैस्यचिद्भावे निवर्त्तमानमुपल-
भ्यते; तस्यादृश्यत्वात् । द्वितीयस्तु परस्परपरिहारस्थितिलक्षणः ।
सोप्युपलम्भस्वभावभावनिष्ठत्वात्प्रकृतविषये न सम्भवति ।

किञ्चानुपलम्भोऽभावप्रमाणं प्रमाणपञ्चकविनिवृत्तिरूपम् । तच्च
ज्ञातमेवाभावसाधकम्; कृतयज्ञस्यैव प्रमाणपञ्चकविनिवृत्तेरभा-
वसाधकत्वोपगमात् । तदुक्तम्-

गत्वा गत्वा तु तान्देशान् यद्यथो नोपलभ्यते ।

तैदान्यकारणाभावात्सन्नित्यवगम्यते ॥

[सीमांश्लो० वा० अर्था० श्लो० ३८]

२० तज्ज्ञानं चान्यस्माद्भावप्रमाणात्, प्रमेयाभावाद्वा ? तत्राद्य-
पक्षेऽनवस्यैप्रसङ्गः-तस्याप्यन्यस्माद्भावप्रमाणात्परिज्ञानात् । प्रमे-
याभावात्तज्ज्ञाने च-इतरेतराश्रयैत्वम् ।

१ अलन्तपरोक्षे । २ घटेन सह प्रतिषेध्याधारभूतभूतलम् । ३ यदि भूतलाधार-
तयापि विधेत् तदा प्रत्यक्षेणैव लभ्येत । ४ आत्मनः । ५ ज्ञातव्यापारलक्षण ।
६ कारणेन । ७ अन्यः व्यतिरेकः (प्रत्यक्षेणान्वयव्यतिरेकनिबन्धनः) । ८ ज्ञात-
व्यापारस्यादृश्यत्वादेव । ९ आत्मादिव्यापारस्य । १० ज्ञातव्यापाराभाव । ११ ता ।
१२ शीतकालादेः । १३ जायमानस्य । १४ बहिः । १५ ज्ञातव्यापाररूप । १६ विरो-
धिनः । १७ ज्ञातव्यापारस्य । १८ विरोधः । १९ कैश्च । २० अर्थानुपलम्भकाले ।
२१ इन्द्रियाभावस्यालोकभावस्य च कारणस्य । २२ आद्यप्रमाणपञ्चकभावस्य प्रथम-
प्रमाणपञ्चकविषयप्रमाणपञ्चकाभावात् परिज्ञानं तस्यापि प्रमाणात्.....
.....द्वितीयस्याद्वितीयप्रमाणपञ्चकविषयप्रमाणपञ्चकाभावात् परिज्ञानं तस्याप्येव-
मित्यादि प्रकारेण । २३ सिद्धे हि प्रमेयाभावे अभावप्रमाणपरिज्ञानं सिध्दात् तस्मिन्
त्र प्रमेयाभावसिद्धिरिति ।

किञ्चासौ ज्ञातृव्यापारः कारकैर्जन्यः, अजन्यो वा ? यद्यजन्यः, तदासावभावरूपः, भावरूपो वा ? प्रथमपक्षोऽयुक्तः; तस्याभावरूपत्वेऽर्थप्रकाशनलक्षणफलजनकत्वविरोधात् । विरोधे वा फलार्थिनः कारकान्वेषणं व्यर्थम्, तत एवाभिमतफलसिद्धेर्विभ्रंमद्विद्रं च स्यात् । अथ भावरूपोऽसौ; तत्रापि किं नित्यः, अनित्यो वा ? ५ न तावन्नित्यः; अन्धादीनामप्यर्थदर्शनप्रसङ्गात् सुप्तादिव्यवहाराः भावः सर्वसर्वज्ञताप्रसङ्गः कारकान्वेषणवैर्यर्थ्यं च स्यात् । अथानित्यः; तदयुक्तम्; अजन्यस्वभावभावस्यानित्यत्वेन केनचिद्व्यनभ्युपगमात् । भवतु वाऽनित्यः; तथाप्यसौ कालान्तरस्थायी, क्षणिको वा ? न तावत्कालान्तरस्थायी; १०

“क्षणिका हि सा न कालान्तरभवतिष्ठते” [शाबरभा०] इति वचसो विरोधप्रसङ्गात् । कारकान्वेषणं चापार्थक्यम्-तत्कालं यावत्तत्फलस्यापि निष्पत्तेः । क्षणिकत्वे; विभ्रं निखिलार्थप्रतिभासरहितं स्यात् क्षणानन्तरं तस्यासत्त्वेनार्थप्रतिभासाभावात् । द्वितीयादिक्षणेपु स्वत एवात्मनो व्यापारान्तरोत्पत्तेर्भायं दोषः; ११ इत्यप्यसङ्गतम्; कारकानाथर्त्तस्य देशकालस्वरूपप्रतिनियमायोगात् । किञ्च; अनवरतव्यापाराभ्युपगमे तज्जन्यार्थप्रतिभासस्यापि तथा भावात् तदवस्थः सुप्ताद्यभावदोषानुषङ्गः । तन्नाऽजन्योऽसौ ।

नापि जन्यः; यतोऽसौ क्रियात्मकः, अक्रियात्मको वा ? प्रथमपक्षे किं क्रिया परिस्पन्दात्मिका, तद्विपरीता वा ? तत्राद्यः पक्षोऽयुक्तः; निश्चलस्यात्मनः परिस्पन्दात्मकक्रियाया अयोगात् । नापि द्वितीयः; तथाविधक्रियायाः परिस्पन्दाभावरूपतया फलजनकत्वायोगात्, अभावस्य फलजनकत्वविरोधात् । न चासौ परिस्पन्दात्मिका तद्विपरीता वा-कारकफलान्तरालवैत्तिनी प्रमाणतः प्रतीयते । तत्र क्रियात्मको व्यापारः । नापि तद्विपरीतः; अक्रियात्मको २५ हि व्यापारो बोधरूपः, अबोधरूपो वा ? बोधरूपत्वे; प्रमादवत्प्रमा-

- १ स्वरविषाणादी । २ आकाशादी । ३ किञ्च । ४ अभावरूपव्यापारादेव । ५ वगत् । ६ सहकारिकारणैर्नित्यस्यानुपकार्यत्वात् । ७ प्रागभावाद् व्यभिचारमाशङ्क्य भावशब्दः प्रयुक्तः । ८ पदार्थस्य । ९ वादिना नरेण । १० ज्ञातृव्यापाररूपा क्रिया । ११ ज्ञातृव्यापार । १२ परः । १३ पुरुषस्य । १४ ज्ञातृव्यापारस्य । १५ परैः । १६ सर्वदाभावात् । १७ किञ्च । १८ प्रमाता । १९ अर्थप्रकाश । २० ज्ञातृव्यापारलक्षणा ।

र्णान्तरगम्यता न स्यात् । अवोधरूपता तु व्यापारस्यायुक्ता; चिद्रूपस्य ज्ञातुरचिद्रूपव्यापारायोगात् । 'जानाति' इति च क्रिया ज्ञातृव्यापारो भवताभिधीयते, स च बोधात्मक एव युक्तः ।

किञ्चासौ धर्मिस्वभावः, धर्मस्वभावो वा ? प्रथमपक्षे-ज्ञातृवन्न
५ प्रमार्णान्तरगम्यता । द्वितीयेपि पक्षे-धर्मिणो ज्ञातुर्व्यतिरिक्तो
व्यापारः, अव्यतिरिक्तो वा, उभयम्, अनुभयं वा ? व्यतिरिक्तत्वे-
सम्बन्धाभावः । अव्यतिरेके-ज्ञातैर्वै तत्स्वरूपवत् । उभयपक्षे तु-
विरोधः । अनुभयपक्षोऽप्ययुक्तः; अन्योन्यव्यवच्छेदरूपाणां सङ्घट्ट
प्रतिषेधायोगात् एकनिषेधेनापरविधानात् ।

- २० किञ्च, व्यापारस्य कारकजन्यत्वोपगमे तज्जनने प्रवर्तमानानि
कारकाणि किमपरव्यापारसापेक्षाणि, न वा ? तत्राद्यपक्षे अन-
वस्था; व्यापारान्तरस्याप्यपरव्यापारान्तरसापेक्षैस्तैर्जननात् । व्या-
पारनिरपेक्षाणां तज्जनकत्वे-फलजनकत्वमेवास्तु किमद्वष्टव्यापार-
कल्पनाप्रयासेन ? अस्तु वा व्यापारः; तथाप्यसौ प्रकृतकार्ये
१५ व्यापारान्तरसापेक्षः, निरपेक्षो वा ? न तावत्सापेक्षः; अपरापर
व्यापारान्तरापेक्षायामेवोपेक्षीणशक्तिकत्वेन प्रकृतकार्यजनकत्वा-
भावप्रसङ्गात् । व्यापारान्तरनिरपेक्षस्य तज्जनकत्वे कारकाणामपि
तथा तदस्तु विशेषाभावात् । अथैवं पर्यनुयोगः सर्वभौवस्वभाव-
व्यावर्तकः; तथाहि-वहेर्दाहकस्वभावत्वे गगनस्यापि तस्यात् इत-
२० रथा वहेरपि न स्यात्, तदसमीक्षिताभिधानम्; प्रत्यक्षसिद्धत्वे-
नात्र पर्यनुयोगस्यानवकाशात्, व्यापारस्य तु प्रत्यक्षसिद्धत्वाभा-
वाच्च तथैवस्वभावावलम्बनं युक्तम् ।

अर्थप्राकट्यं व्यापारमन्तरेणानुपपद्यमानं तं कल्पयतीत्यर्थाप-
पत्तितस्तत्सिद्धिरित्यपि फलुप्रायम्; अर्थप्राकट्यं हि ततो भिन्नम्,
२५ अभिन्नं वा ? यद्यभिन्नम्; तदाऽर्थ एवेति यावदर्थं तत्तद्भा-
वात्सुप्तार्थभावः । भेदे-सम्बन्धासिद्धिरनुपकारात् । उपकारेऽन-
वस्था । किञ्च, एतदर्थंथानुपपद्यमानत्वेनाविधितं तं कल्पयति,

१ ज्ञातृव्यापारोक्ति अर्थप्राकट्यान्वयानुपपत्तेरित्यर्थापत्तिरूप । २ अक्रियात्मक-
त्वात् । ३ अभिन्नत्वात् । ४ धर्मरूपत्वात् । ५ वस्तुधर्माणां । ६ परैः । ७ कार-
काणां । ८ अर्थप्रकाश । ९ अर्थप्रकाशलक्षणे । १० जह । ११ निरपेक्षत्वप्रकारेण ।
१२ प्रश्नः । १३ पदार्थं । १४ व्यापारान्तरनिरपेक्षत्वप्रकारेण कार्यजनकत्वलक्षणे ।
१५ अन्यद्वा इत्यमुं तृतीय विकल्पं शोधयति । १६ अर्थप्राकट्यस्य सर्वदा भावात् ।
१७ उपकारस्याप्यनुपकारकरणे सम्बन्धो न सादित्युपकारकल्पने । १८ ज्ञातृव्यापार-
मन्तरेण । १९ अर्थप्राकट्य । २० व्यापार ।

निश्चितं वा? न तावदनिश्चितम्; अतिप्रसङ्गात्-तथाभूतं हि तद्यथा तं कल्पयति तथा येन विनाप्युपपद्यते तदपि किं न कल्पयत्यविशेषात्? निश्चितं चेत्; क तस्यान्यथानुपपन्नत्वनिश्चयः-दृष्टान्ते, साध्यधर्मिणि वा? दृष्टान्ते चेत्; लिङ्गस्यापि तत्र साध्यनिश्चयत्वनिश्चयोऽस्तीत्यनुमानमेवार्थापत्तिरिति प्रमाणसंख्याव्या-^५घातः। साध्यधर्मिण्यपि कुतः प्रमाणात्तस्य तन्निश्चयः? विपक्षेऽनुपलम्भाच्चेत्; न; तस्य सर्वात्मसम्बन्धिनोऽसिद्धानैकान्तिकत्वादित्युक्तम्। ततः प्रमाणतोऽचेतनस्वभावज्ञातृव्यापारस्या-प्रतीतिः कथमर्थतथात्वप्रकाशकोऽसौ यतः प्रमाणं स्यात् ॥ छ ॥

ज्ञानस्वभावस्य ज्ञातृव्यापारस्यार्थतथात्वप्रकाशकतया प्रमाण-^{१०}ताभ्युपगमात्त भट्टस्यानन्तरोक्ताशेषदोषानुषङ्गः, इत्यप्यसमीक्षितामिधानम्; सर्वथा परोक्षज्ञानस्वभावस्यास्यासत्त्वेन प्रतिपादयिष्यमाणत्वात्। सकलज्ञानानां स्वपरव्यवसायात्मकत्वेन व्यवस्थितेः इत्यलं प्रपञ्चेन। 'तन्नाज्ञानं प्रमाणमन्यत्रोपच रात्' इत्यभिप्रायवान् प्रमाणस्य ज्ञानविशेषणत्वं समर्थयमानः प्राह— ^{१५}

हिताऽहितप्राप्तिपरिहारसमर्थं हि प्रमाणं ततो ज्ञानमेव तत् ॥२॥

हितं सुखं तत्साधनं च, तद्विपरीतमहितम्, तयोः प्राप्तिपरिहारौ। प्राप्तिः खलुर्पादेयभूतार्थक्रियाप्रसाधकार्यप्रदर्शकत्वम्। अर्थक्रियार्थी हि पुरुषस्तन्निष्पादनसमर्थं प्राप्तुकामस्तत्प्रदर्शकमेव प्रमाणमन्वेपत इत्यस्य प्रदर्शकत्वमेव प्रोक्तम्। न हि तेन प्रद-^{२०}शितेऽर्थे प्राल्यभावः। न च क्षणिकस्य ज्ञानस्यार्थप्राप्तिकालं यावदवस्थांनाभावात्कथं प्रापकतेति वौच्यम्? प्रदर्शकत्वव्यतिरेकेण तस्यास्तर्जासम्भवात्। न चान्यस्य ज्ञानान्तरस्यार्थप्राप्तौ संश्लिष्टत्वात्तदेव प्रापकमित्याशङ्कनीयम्; यतो यद्यप्यनेकसाज्ज्ञानक्षणात्पूर्ववृत्तार्थप्राप्तिस्तथापि पर्यालोच्यमानमर्थप्रदर्शकत्वमेव ^{२५}

१ क्व तथाहि। २ सम्भावभावेन। ३ ज्ञातृव्यापारेण सह। ४ अर्थप्राक-
व्यस्य। ५ अविनाभावः। ६ ज्ञातृव्यापाराभावे स्तम्भदौ प्राकव्यस्य। ७ परः।
८ ज्ञातृव्यापारस्य निराकरणेन। ९ ज्ञानपानादि। १० जलादि। ११ जलादिकं।
१२ प्राप्तिनिवन्धनत्वं। १३ वौद्धो वदति। १४ स्थिति। १५ परेण। १६ अर्थ-
ज्ञाने। १७ समीपत्वात्। १८ पुरुषस्य।

1 ज्ञातृव्यापारविचाररूपप्रमाणस्य समीक्षा निम्नप्रवेपु समवलोक्य तुलनीया
न्याययं० पृ० १६। न्यायकु० खं० लि० परि० १। सन्मति० टी० पृ० २०।

2 तु०—'प्रवर्तकत्वमपि प्रवृत्तिविषयप्रदर्शकत्वमेव' न्यायवि० टी० पृ० ५।
प्र० क० सा० ३

ज्ञानस्य प्रापकत्वम्-नान्यत् । तच्च प्रथमत एव ज्ञानक्षणे सम्पन्न-
मिति नोत्तरोत्तरज्ञानानां तदुपैयोगि(त्वम्), तद्विशेषांशप्रदर्शक-
त्वेन तु तत् तेषामुपपन्नमेव । प्रवृत्तिमूला तूपादेयार्थप्राप्तिर्न
प्रमाणाधीर्ना-तस्याः पुरुषेच्छाधीनप्रवृत्तिप्रभवत्वात् । न च प्रवृ-
५ र्त्यभावे प्रमाणस्यार्थप्रदर्शकत्वलक्षणव्यापाराभावो वाच्यः, प्रती-
तिविरोधात् । न खलु चन्द्रार्कादिविषयं प्रत्यक्षमप्रवर्तकत्वान्न तत्प्र-
दर्शकमिति लोके प्रतीतिः । कथं चैवंवादिनः सुगतज्ञानं प्रमाणं
स्यात् ? न हि हेयोपादेयतत्त्वज्ञानं कैचित् तस्य प्रवर्तकं कृतार्थ-
त्वात्, अन्यथा कृतार्थता न स्यादितरजनवत् । सुखादिस्वसंवेदनं
१० वाँ; न हि कैचित्तत्पुरुषं प्रवर्तयति फलात्मकत्वात्, अन्यथा प्रवृ-
त्यनवस्था । व्याप्तिज्ञानं वाँ न खलु स्वैविषयेऽर्थिनं तत्प्रवर्तयति
अनुमानवैफल्यप्रसङ्गात् । तैतः प्रवृत्त्यभावेऽपि प्रवृत्तिविषयोपद-
शकित्वेन ज्ञानस्य प्रामाण्यमभ्युपगन्तव्यम् ।

नैतु प्रवृत्तेर्विषयो भावी, वर्तमानो धैर्यः ? भावी चेत्; नासौ
१५ प्रत्यक्षेण प्रवर्तयितुं शक्यस्तत्र तस्याप्रवृत्तेः । वर्तमानश्चेत्; न; अर्थि-
नोऽत्राऽप्रवृत्तेः, न हि कश्चिदनुभूयमान एव प्रवर्ततेऽनैवस्यैवापत्तेः;
इत्येवाम्प्रतम्; अर्थक्रियासमर्थार्थस्य अर्थक्रियायाश्च प्रवृत्तिविषय-
त्वात् । तैत्रार्थक्रियासमर्थार्थोऽध्यक्षेण प्रदर्शयितुं शक्यः । न ह्यर्थ-
क्रियावत्सोप्यनैवागतः । न चास्याध्यक्षत्वे प्रवृत्त्यभावप्रसङ्गः; अर्थ-
२० क्रियार्थत्वात्तस्याः । कैर्यादृष्टौ कथम् 'एतैस्तत्रै समर्थम्' इत्येवगमो
यतः प्रवृत्तिः स्यादिति चेत्; आस्तां तावदेतत्-कार्यकारणभाव-

१ जात । २ प्रदर्शकत्वम् । ३ फलवत् । ४ अर्थे । ५ भेद । ६ प्रदर्शकत्वं ।
७ जलादि । ८ कारणता । ९ प्रवर्तकत्वाभावे । १० नुः । ११ मा । १२ यत्र
प्रवर्तकं तत्र प्रमाणमित्येववादिनः । १३ विषये । १४ कृतार्थकमपि प्रवर्तयति चेत् ।
१५ सुगतो न सर्वत्रो ज्ञानेन प्रवर्तमानत्वाद्गोपवत् । विषये गोपस्य सर्वत्रत्वं तत्र
एव सुगतवत् । १६ कृतार्थकमपि प्रवर्तयतीति चेत् । १७ कथं प्रमाणम् (अपि तु
न स्यात् अस्ति च प्रमाणं प्रदर्शकत्वात्) । १८ अर्थे । १९ प्रवृत्तेः फलहेतुत्वात्तत्रापि
फलेन भाव्यम् । २० अनुपरमा । २१ कथं प्रमाणम् । २२ अखिलसाध्यसाधन-
लक्षणे । २३ पुरुषं । २४ यतः प्रदर्शकत्वमेव प्रापकत्वं ज्ञानस्य । २५ सज्जावे ।
२६ अर्थे । २७ प्रकाशकत्वेन । २८ परेण । २९ परः । ३० इयोरर्थे ।
३१ विषये । ३२ अन्यथा । ३३ अर्थप्राप्त्यर्थं हि प्रवृत्तिः सा प्रलम्बा जातेति ।
३४ प्रवृत्तेः फलहेतुत्वात्तत्रापि फलेन भाव्यम् । ३५ तयोर्द्वयोरर्थे । ३६ जलादिः ।
३७ अमलक्षत्वप्रसङ्गादर्थस्य । ३८ अर्थप्राप्त्यर्थं हि प्रवृत्तिः सा प्रलम्बा जायते इति ।
३९ परः । खानादि । ४० जलं । ४१ अर्थक्रियाया । ४२ निश्चयः ।

विचारप्रस्तावे विस्तरेणाभिधानात् । प्रतीयते च 'इदमभिमतार्थ-
क्रियाकारि न त्विदम्' इत्यर्थमात्रप्रतिपत्तौ प्रवृत्तिः पशूनामपि ।
तस्मादर्थक्रियासमर्थ्यप्रदर्शकत्वमेव प्रमाणस्य हितप्रापणम् ।
अहितपरिहारोपि 'अनभिप्रेतप्रयोजनप्रसार्धनमेतत्' इत्युपदर्शन-
मेव । तयोः समर्थमव्यवधानेनार्थतथाभावप्रकाशकं हि यस्या-
त्प्रमाणं ततो ज्ञानमेव तत् । न चाज्ञानस्यैवविधं तत्रप्राप्तिपरि-
हारयोः सामर्थ्यं ज्ञानकल्पनावैयर्थ्यप्रसङ्गात् ।

ननु साधुं प्रमाणस्याज्ञानरूपतापनोदार्थं ज्ञानविशेषणमस्मा-
कमपीष्टत्वात्, तद्धि समर्थयमानैः साहाय्यमनुष्ठितम् । तत्र
किञ्चिद्विकल्पकं किञ्चित्सविकल्पकमिति मीन्यमानं प्रति अशेष- १०
स्यापि प्रमाणस्याविशेषेण विकल्पात्मकत्वविधानार्थं व्यवसाया-
त्मकत्वविशेषणसमर्थनपरं तन्निश्चयात्मकमित्याद्याह । यत्प्राक्प्र-
बन्धेन समर्थितं ज्ञानरूपं प्रमाणम्—

तन्निश्चयात्मकं समारोपविरुद्धत्वाद्नुमानवत् ॥ ३ ॥

संशयविपर्यासानध्यवसायात्मको हि समारोपः, तद्विरुद्धत्वं १५
वस्तुतथाभावग्राहकत्वं निश्चयात्मकत्वेनानुमाने व्याप्तं सुप्रसिद्धम्
अन्यत्रापि ज्ञाने तद् इत्यमानं निश्चयात्मकत्वं निश्चाययति,
समारोपविरोधिग्रहणार्थं निश्चयस्वरूपत्वात् । प्रमाणत्वाद्धौ तत्र-
दात्मकमनुमानवदेव । परं निरपेक्षतया वस्तुतथाभावप्रकाशकं हि
प्रमाणम्, न चाविकल्पकम् तथा-नीलादौ विकल्पस्य क्षणक्ष- २०
येऽनुमानस्यापेक्षणात् । ततोऽप्रमाणं तत् वस्तुव्यवस्थायामपे-
क्षितपरव्यापारत्वात् सन्निकर्षादिषु । नैवेदमनुभूयते-अक्ष-
व्यापारानन्तरं स्वार्थव्यवसायात्मनो नीलादिविकल्पस्यैव वैशद्ये-
नानुभवात् ।

१ किंच । २ वस्तु । ३ पाषाणादिकम् । ४ अहिकण्टकादि । ५ हिता-
हितप्राप्तिपरिहारयोः । ६ अव्यवधानेनार्थतथात्वप्रदर्शकत्वक्षणम् । ७ हिताहित ।
८ अन्यथा । ९ बोद्धव्यं । १० जैः । ११ कृतम् । १२ ज्ञानं । १३ नौर्द्ध ।
१४ प्रधानं । १५ सापूर्वैलादि । १६ व्यापकेन । १७ प्रत्यक्षे । १८ ज्ञानस्य ।
१९ सम्यग्ज्ञानत्वादपिसवादिवाश्रित्ययद्देनुत्वात् । २० ज्ञानविशेषणविक्रिष्टं प्रमाणं ।
२१ प्रमाणत्वं च स्वाश्रित्ययात्मकत्वं च न स्यादिति सन्दिग्धानैकान्तिकत्वे सत्याह ।
परं सविकल्पकं ज्ञानम् । २२ दर्शनं सीगताभिमतम् । २३ नीलमीदं पीतमीदम् ।
२४ सर्वं क्षणिकं सत्त्वात् इत्यस्य । २५ ज्ञानापेक्ष । २६ किञ्च । २७ निर्विकल्प-
कम् । २८ प्रत्यक्षसिद्धं न भवदीत्यर्थः । २९ नयनोन्मीलनानन्तरम् ।

नच विकल्पाविकल्पयोर्युगपद्वृत्तेर्लघुवृत्तेर्वा एकत्वाध्यवसायाद्विकल्पे वैशद्यप्रतीतिः; तद्व्यतिरेकेणापरस्याप्रतीतेः । भेदेन प्रतीतौ ह्यन्यत्रान्यस्यारोपो युक्तो मित्रे चैत्रवत् । न चाऽस्पष्टाभो विकल्पो निर्विकल्पकं च स्पष्टाभं प्रत्यक्षतः प्रतीतम् । तथाप्यनु-
५ भूयमानस्वरूपं वैशद्यं परित्यज्यानुभूयमानस्वरूपं वै(पमवैशद्यं) परिकल्पयन् कथं परीक्षको नाम ? अनवस्थाप्रसङ्गात्-ततोप्यपर-
स्वरूपं तदिति परिकल्पनप्रसङ्गात् । युगपद्वृत्तेःश्चाभेदाध्यवसाये दीर्घशङ्कुलीभक्षणादौ रूपादिज्ञानपञ्चकस्यापि सहोत्पत्तेरभे-
दाध्यवसायः किञ्च स्यात् ? भिन्नविषयत्वात्तेषां तदभावे-अत
१० एव स प्रकृतयोरपि न स्यात् क्षणसन्तीनविषयत्वेनानयोरप्यैसा-
विशेषात् । लघुवृत्तेःश्चाऽभेदाध्यवसाये-खररदितमित्यादावप्य-
भेदाध्यवसायप्रसङ्गः । कथं चैव कौपिलानां बुद्धिचैतन्ययोर्भे-
दोऽनुपलभ्यमानोपि न स्यात् ?

अथानैयोः सादृश्याद्भेदेनानुपलम्भः, अभिमवाद्भिमिधीयते ?
१५ ननु किञ्चतमनयोः सादृश्यम्-विषयाभेदेकृतम्, ज्ञानरूपताकृतं

१ क्रमसत्त्वेऽपि । २ अविकल्पविकल्पयोः स्पष्टाऽस्पष्टत्वेन भेदेन प्रत्यक्षतः प्रतील-
भावे । ३ विकल्पे । ४ अवैशद्यम् । ५ सौगतः । ६ अवैशद्यपर्यायम् । ७ पीतम् ।
८ सविकल्पकम् । ९ परः । १० अविकल्पविकल्पयोः । ११ सामान्यम् ।
१२ अविकल्पविकल्पयोः । १३ भिन्नविषयत्वम् । १४ किञ्च । १५ विकल्पाविकल्प-
योरनुपलभ्यमानभेदसम्भवप्रकारेण । १६ सादृश्यानाम् । १७ अप्रतीयमानः ।
१८ अनुपलभ्यमानत्वाच्च सिद्ध्यैत् । १९ अभ्युपगममात्रस्य तत्रापि सङ्गात्वात् ।
२० परः । २१ विकल्पेतरयोः । २२ पृथक्त्वाध्यवसायस्य । २३ पराभवात् ।
२४ परेण । २५ भा (तृतीया) ।

१ 'मनसोर्युगपद्वृत्तेः सविकल्पाऽकल्पयोः ।

विमूढः सम्प्रवृत्तेर्वा (लघुवृत्तेर्वा) तयोरैक्यं व्यवस्यति' ॥

प्रमाणवा० ३ । १३३

२ 'विकल्पज्ञानं हि संकेतकालदृष्टत्वेन वस्तुगुणद्वयस्यसतर्गयोर्न्यं गृहीत्वात् ।
संकेतकालदृष्टत्वं च संकेतकालोत्पन्नज्ञानविषयत्वम् । यथाच पूर्वोपपन्नं विनष्टं ज्ञानं
संप्रत्यसत् तद्वत् पूर्वविनष्टज्ञानविषयत्वमपि संप्रति नास्ति वस्तुनः । तदसद्रूपं वस्तुनो
गुणद्वयसन्निहिताथं प्रादित्वात्स्फुटाभम् अस्फुटाभत्वादेव च सविकल्पकम् । ततः
स्फुटाभत्वात् निर्विकल्पकम्...'
न्यायवि० टी० पृ० २१

३ गुणता—'अथ विकल्पाविकल्पयोः सादृश्यादभिमवाद्वा...'

सा० रत्नाकर पृ० ७५

वा? न तावद्विषयाभेदकृतम्; सन्तानेतरविषयत्वेनानयोर्विषयाभे-
दाऽसिद्धेः ज्ञानरूपतासादृश्येन त्वैमेदाध्यवसाये—नीलैपीतादि-
ज्ञानानामपि भेदेनोपलम्भो न स्यात्। अथाभिभवात्; केन कस्या-
भिभवः? विकल्पेनाविकल्पस्य भानुना तारानिकरस्येवेति चेत्;
विकल्पस्याप्यविकल्पेनाभिभवः कुतो न भवति? बलीयस्त्वा-
दस्येति चेत्; कुतोस्य बलीयस्त्वम्—बहुविषयात्, निश्चयात्म-
कत्वाद्वा? प्रथमपक्षोऽयुक्तः, निर्विकल्पविषय एव तत्प्रवृत्त्य-
भ्युपगमात्, अन्यथा अगृहीतार्थग्राहित्वेन प्रमाणान्तरत्वप्रसङ्गः।
द्वितीयपक्षेपि स्वरूपे निश्चयात्मकत्वं तस्य, अर्थरूपे वा? न
तावत्स्वरूपे— १०

“सर्वत्रिंशच्चैत्तानामात्मसंवेदनं प्रत्यक्षम्” [न्यायवि० पृ० १९]
इत्यस्य विरोधात्। नाप्यर्थे-विकल्पस्यैकस्य निश्चयानिश्चयसमा-
वद्वयप्रसङ्गात्। तच्च परस्परं तद्वैतश्चैकान्ततोमिच्छं चेत्; सम-
वायाचनभ्युपगमात् सम्यग्धासिद्धेः ‘बलवान्विकल्पो निश्चयात्म-
कत्वात्’ इत्यस्योसिद्धेः। अमेदैकान्तेपि—तद्वयं तद्वानेव वा भवेत्। १५
कथंचिन्नादात्म्ये-निश्चयानिश्चयस्वरूपसाधारणमात्मौनं प्रतिपद्यते
चेद्विकल्पः—स्वरूपेपि सविकल्पकः स्यात्, अन्यथा निश्चयसैरूप-
तादात्म्यविरोधः। न च स्वरूपमनिश्चिन्विकल्पोऽर्थनिश्चयायकः,
अन्यथाऽगृहीतस्वरूपमपि ज्ञानमर्थग्राहकं भवेत् तथाच—

“अप्रत्यक्षोपलम्भस्य” [] इत्येदिविरोधः; तत्स्वरूप-२०

१ क्षण। २ पुनः। ३ क्षण। ४ तिरस्कारः। ५ परैः। ६ निर्विकल्पकतोष।
७ सविकल्पक्षण। ८ निर्विकल्पकक्षण। ९ नीलमिति स्वसंवेदनेन। १० स्वसंवेद-
नम्। ११ नीलापाकारतया सविकल्पाः क्षणाः। १२ सर्वज्ञानानां स्वरूपे निर्वि-
कल्पकत्वान्भ्युपगमस्य अन्यस्य। १३ स्वरूपेऽनिश्चयात्मकत्वमर्थे निश्चयात्मकत्वम्।
१४ ततः स्वरूपनिश्चयाभावात्। १५ विकल्पात्। १६ स्वरूपम्। १७ परेण।
१८ अयाणां भेदात्। १९ सौगतान्भ्युपगतस्य हेतोः। २० स्वरूपम्। २१ विकल्पः।
२२ सति। २३ स्वरूपम्। २४ तथा चापसिद्धान्तप्रसङ्गः। २५ भा। २६ विक-
ल्पस्य। २७ किंच। २८ अज्ञात। २९ नाकारं नाम ज्ञापकम्। ३० अत्यन्त-
परोक्षज्ञानस्य। ३१ नार्थसिद्धिः प्रसिद्धयति।

१ जुलना—‘अथ विकल्पस्य बलीयस्त्वाद’—सम्प्रति० टी० पृ० ५००

स्या० रत्नाकर ४० ५०

२ ‘अप्रसिद्धोपलम्भस्य नार्थसिद्धिः प्रसिद्धयति।

तत्र आद्यस्य संविधिर्ग्राहकाजुभवाद्देवे’ ॥ १०७४ ॥ तत्सर्वं०

स्यानुभूतस्याप्यनिश्चितस्य क्षणिकत्वादिवन्नान्यनिश्चायकत्वम् । विकल्पान्तरेण तन्निश्चयेऽनवस्था ।

कैश्चानयोरेकत्वाध्यवसायः—किमेकविषयत्वम्, अन्यतरेणान्यतरस्य विषयीकरणं वा, परत्रेतरस्याध्यारोपो वा ? न तावदेक-
 ५ विषयत्वम्; सामान्यविशेषविषयत्वेनैनयोर्मिन्नविषयत्वात् । दृश्य-
 विर्कल्प(ल्प्य)योरेकत्वाध्यवसायादभिन्नविषयत्वम्, इत्यप्ययु-
 क्तम्; एकत्वाध्यवसायो हि दृश्ये विकल्पस्याध्यारोपः । स च
 गृहीतयोः, अगृहीतयोर्वा तयोर्भवेत् ? न तावद्गृहीतयोः; भिन्नस्वरू-
 रूपतया प्रतिभासमानयोर्घटपटयोरिवैकत्वाध्यवसायायोगात् ।
 १० न चान्योर्ग्रहणं दर्शनेन; अस्य विकल्प्यागोचरत्वात् । नापि
 विकल्पेन; अस्यापि दृश्यागोचरत्वात् । नापि ज्ञानान्तरेण; अस्यापि
 निर्विकल्पकत्वे विकल्पैर्मात्मकत्वे चोक्तदोषानतिक्रमात् । नाप्य-
 गृहीतयोः स सम्भवति अतिर्प्रसङ्गात् । सादृश्यनिबन्धनध्यारोपो
 दृष्टः, वैस्त्ववस्तुनोश्च नीलखरविषाणयोरिव सादृश्याभावात्-
 १५ ध्यारोपो युक्तः । तन्नैकविषयत्वम् ।

अन्यतरस्यान्यतरेण विषयीकरणमपि—समानकालर्भाविनोरपार-
 तत्त्वादन्युपपन्नम् । अविषयीकृतस्यान्यस्यान्यत्राध्यारोपोप्यस-
 म्भवी । किञ्च, विर्कल्पे निर्विकल्पकस्याध्यारोपः, निर्विकल्पके
 विकल्पस्य वा ? प्रथमपक्षे—विकल्पव्यवहारोच्छेदः निखिलज्ञानानां
 २० निर्विकल्पकत्वप्रसङ्गात् । द्वितीयपक्षेपि—निर्विकल्पकवार्तोच्छेदः—
 सकलज्ञानानां सविकल्पकत्वानुपपन्नात् ।

किञ्च, विकल्पे निर्विकल्पकधर्मारोपाद्वैशद्यव्यवहारवत् निर्वि-
 कल्पके विकल्पधर्मारोपाद्वैशद्यव्यवहारः किञ्च स्यात् ? निर्विक-
 ल्पकधर्मेणाभिभूतत्वाद्विकल्पधर्मस्य इत्यन्यत्रापि समानम् । भवतु

१ उपलम्भः स्वरूपं जानाति नवा ? न जानाति चेत्कथं सर्वं जानातीत्यभिप्रायः ।
 २ नीलनीलमिति । ३ नीलोयमिति । ४ नैयायिकं प्रति गौडेनोक्तम् । ५ विकल्प-
 स्वरूपं यथा क्षणिकत्वादिनिश्चायकं न भवति अनिश्चितत्वाच्चथाऽर्थस्यापि न निश्चायकं तत्र
 यत् । ६ अर्थः । ७ निर्विकल्पकसविकल्पकयोः । ८ आ । ९ परमाशु । १० निर्वि-
 कल्पकसविकल्पकयोः । ११ परः, स्वलक्षण । १२ नीलादि । १३ दृश्यविकल्पयोः ।
 १४ सति । १५ खरविषाणयोरप्येकत्वाध्यवसायप्रसङ्गः परमाण्वादावपि स्यात् ।
 १६ लोके । १७ दृश्यविकल्पयोः । १८ विकल्पाविकल्पयोः । १९ अविकल्पस्य ।
 २० विकल्पे । २१ इदं निर्विकल्पकमिति । २२ वैशद्य । २३ विकल्पधर्मस्यावैशद्यस्य
 निर्विकल्पके आरोपेन न (इति चेत्) । २४ विकल्पधर्मेण निर्विकल्पधर्मस्याभिभूत-
 त्वात् विकल्पे निर्विकल्पकधर्मारोपाद्वैशद्यव्यवहारो भाव्यत् ।

1 घुछनां—किमेकविषयत्वमन्यतरस्य...स्या० रत्नाकर १० ५०

वा तेनैवाभिभवः; तथाप्यसौ सहभावमात्रात्, अभिन्नविषयत्वात्, अभिन्नसामग्रीजन्यत्वाद्वा स्यात् ? प्रथमपक्षे गोदर्शनसमयेऽश्व-
विकल्पस्य स्पष्टप्रतिभासो भवेत्सहभावाविशेषात् । अधानयोर्भि-
न्नविषयत्वात् न अस्पष्टप्रतिभासमभिभूयाश्वविकल्पे स्पष्टतया
प्रतिभासः; तर्हि शब्दस्वलक्षणमध्यक्षेणानुभवता तत्र क्षणक्षयानु-
मानं स्पष्टमनुभूयतामभिन्नविषयत्वानीलादिविकल्पवत् । भिन्न-
सामग्रीजन्यत्वादानुमानविकल्पस्याध्यक्षेण तद्धर्माभिभवभावे-
सकलविकल्पानां विशदावभासिस्वसंबेदनप्रत्यक्षेणाभिन्नसामग्री-
जन्येनाभिभवप्रसङ्गः । अथ तत्राभिन्नसामग्रीजन्यत्वं नेष्यते-तेषां
विकल्पैवांसनाजन्यत्वात्, सवेदनमात्रप्रभवत्वाच्च स्वसंबेदनस्य १०
इत्यसत्; नीलादिविकल्पस्याप्यध्यक्षेणाभिभवाभावप्रसङ्गात्तत्रापि
तदविशेषात् ।

किंच, अैनयोरेकत्वं निर्विकल्पकमध्यवस्यति, विकल्पो वा,
ज्ञानान्तरं वा ? न तावच्चिर्विकल्पकम्; मध्यवसायविकलत्वात्तस्य,
अन्यथा भ्रान्तताप्रसङ्गः । नापि विकल्पः; तेनाविकल्पस्याविष-
यीकरणात्, अन्यथा स्तलक्षणगोचरताप्राप्तेः “विकल्पोऽवस्तुनि-
र्भासः” [] इत्यस्य विरोधः । न चाविषयीकृतस्यान्यत्रै-
रोपेः । न ह्यप्रतिपन्नरजैतः शुक्तिकायां रजतमारोपयति । ज्ञाना-
न्तरं तु निर्विकल्पकम्, सविकल्पकं वा ? उभयत्राप्युभयदोषानु-
पद्गतस्तदुभयविषयत्वायोगः । तदन्यतरविषयेणैनयोरेकत्वा- २०

१ निर्विकल्पकधर्मेणाभिभूत्वात् । २ दर्शनेन । ३ अवैशेष । ४ तिरस्कृत्य लोच्य
वा । ५ वैशेषेण । ६ श्रोत्रेन्द्रियदर्शनेन । ७ परेण । ८ सर्वं क्षणिकमिति । ९ परेण ।
१० नीलादिप्रतिभासो यथानुभूयते । ११ प्रत्यक्षं श्रोत्रचक्षुःआदिजनितमनुमानं च
लिङ्गजनितम् । १२ दर्शनेन । १३ अनुमान स्पष्टं जानुभूयते । १४ प्रथानादि-
विकल्पानां । १५ सर्वचित्तचैतानामभिन्नसामग्रीप्रभवत्वात् । १६ विशदतयाप्रति-
भासो भवेत्सकलविकल्पानाम् । १७ परः । १८ सर्वविकल्पेषु स्वसंबेदनेषु च ।
१९ सौगतैरस्माभिः । २० संस्कार । २१ प्रत्यक्षस्य । २२ नीलादिविकल्पे ।
२३ विकल्पेवरयोः । २४ नीलादिविकल्पवत् । २५ अवस्तुनि निर्भासः प्रतिभासो
यस्य विकल्पस्य सः । २६ प्रणवस्य । २७ निर्विकल्पकस्य । २८ विकल्पे ।
२९ षट्पदे । ३० ना । ३१ सविकल्पकनिर्विकल्पकयोः । ३२ ज्ञानेन ।

1 तुलना—‘तदेकत्व हि दर्शनमध्यवस्यति’...प्रमाणप० पृ० २३ । न्यायकुमु०
प्र० परि० । सन्मति० टी० पृ० ५०० । स्या० रत्नाकर पृ० ५२ ।

2 तु०—‘विकल्पोऽवस्तुनिर्भासात् विसंवादादुपप्लवः ।’

प्रश्न० कन्दली पृ० १२०

ध्यवसाये-अतिप्रसङ्गः-अक्षज्ञानेन त्रिविप्रकृष्टेतरयोरप्येकत्वा-
ध्यवसायप्रसङ्गात् । तन्न तयोरेकत्वाध्यवसायाद्विकल्पे वैश-
द्यप्रतीतिः, अविकल्पकस्यानेनैवैकत्वाध्यवसायस्य चोक्तन्यायेना-
प्रसिद्धत्वात् ।

५ यच्चोच्यते-संहृतसकलविकल्पावस्थायां रूपादिदर्शनं निर्वि-
कल्पकं प्रत्यक्षतोऽनुभूयते । तदुक्तम्—

“संहृत्य सर्वैतश्चिन्तांस्तिमितेनान्तरात्मना ।

स्थितोपि चक्षुषा रूपमीक्षते साऽक्षजा मतिः” ॥ १ ॥

[प्रमाणवा० ३१२४]

१० “प्रत्यक्षं कल्पनापोढं प्रत्यक्षेणैव सिद्ध्यति ।

प्रत्यात्मवेद्यः सर्वेषां विकल्पो नामसंश्रयः” ॥ २ ॥

[प्रमाणवा० ३१२३] इति ।

न चात्रार्थस्थायां नामसंश्रयतयाऽननुभूयमानानामपि विक-
ल्पानां सम्भवः-अतिप्रसङ्गादित्यप्युक्तिमात्रम्; अश्वं विकल्पयतो
१५ गोदर्शनलक्षणायां संहृतसकलविकल्पावस्थायां स्थिरस्थूलादि-
स्वभावार्थसाक्षात्कारिणो विपरीतौरोपविर्देहस्याध्यक्षस्यानिश्चया-
त्मकत्वायोगात् । तच्चे वा अश्वविकल्पाद्भ्रूतिथतचिर्सेस्य गवि
स्मृतिर्न स्यात् क्षणिकत्वादिवत् । नामसंश्रयात्मनो विकल्पस्यात्र
निषेधे तु न किञ्चिदनिर्दिष्टम् । न चाशेषविकल्पानां नामसंश्रयतैव
२० स्वरूपम्; समारोपविरोधिर्ब्रह्मणलक्षणत्वात्तेषामित्येवैतौ व्यसतो
वक्ष्यामः । न चानिश्चयात्मनः प्रामाण्यम्; गच्छन्नुपस्पर्शसंवेद-
नस्यापि तत्प्रसङ्गात् । निश्चर्यहेतुत्वात्तस्यै प्रामाण्यमित्युक्तम्;
संशयादिविकल्पजनकस्यैपि प्रामाण्यप्रसङ्गात् । स्वैलक्षणानध्य-

१ देशकालसमावयवहिताव्यवहितयोः घटादिपरमाण्वाणोः । २ विकल्पस्य ।
३ भरेण । ४ नष्ट । ५ नीलादि । ६ जातिद्रव्यगुणक्रियानिवन्धनाः । ७ सामत्येन ।
८ विकल्परूपात् । ९ स्थिरीभूतेन । १० गच्छन् वा । ११ रहितं । १२ मनसा ।
१३ प्रतिस्वरूपवेषः । १४ स्वसवेदनेन वेद्यः । १५ शब्दः संभवः कारणं यस्य
विकल्पस्य सः । १६ नष्टविकल्पाया । १७ सुप्तप्रपत्तादावपि स्यात् । १८ पुच्छस्य ।
१९ साधारणं सामान्यरूपं । २० क्षणिकादि । २१ ता (पट्टी) । २२ निर्विकल्प-
कस्य । २३ व्यापृष्ट । २४ नरस्य । २५ जैनानां । २६ ज्ञानं । २७ शब्दाद्भेद-
वादे । २८ विस्तरतः । २९ दर्शनस्य । ३० दर्शनस्य । ३१ अनुक्षणिकं ।

१ ‘अविकल्पमपि ज्ञानं विकल्पोत्पत्तिशक्तिमत् ।

निःशेषव्यवहारकं तद्वारेण भवत्यतः’ ॥ १३०६ ॥ तत्सर्वं०

वसायित्वात्तद्विकल्पस्यादोषोऽयम्, इत्यन्यत्रापि समानम् । न हि नीलादिविकल्पोपि स्वलक्षणाध्यवसायी; तदनालम्बनस्य तदध्यवसायित्वविरोधात् । 'मनोराज्यादिविकल्पः कथं तदध्यवसायी' ? इत्यप्यस्यैव दूषणं यस्यासौ राज्याद्यग्राहकस्वभावो नास्माकम्, सत्यराज्यादिविपर्ययस्य तद्ग्राहकस्वभावत्वाभ्युपगमात् । ५

न चास्य विकल्पोत्पादकत्वं घटते स्वयमविकल्पकत्वात् खलक्षणवत्, विकल्पोत्पादनसामर्थ्याविकल्पकत्वयोः परस्परं विरोधात् । विकल्पैवासनापेक्षस्याविकल्पकस्यापि प्रत्यक्षस्य विकल्पोत्पादनसामर्थ्यानि(वि)रोधे-अर्थस्यैव तैथाविधस्य सोस्तु किमन्तर्गडुना निर्विकल्पकेन ? अथाशतोर्थः कथं तज्जनकोऽतिप्रस- १० द्धात् ? दर्शनं कथमनिश्चर्यात्मकमित्यपि समानम् ? तस्यानुभूतिमात्रेण जनकत्वे-क्षणक्षयादौ विकल्पोत्पत्तिप्रसङ्गः । यत्रार्थे दर्शनं विकल्पवासनायाः प्रबोधकं तत्रैव तज्जनकमित्यप्यसाम्प्रतम् ; तस्यानुभवमात्रेण तत्प्रबोधकत्वे नीलादाविव क्षणक्षयादौ-वपि तत्प्रबोधकत्वप्रसङ्गात् । १५

तत्रार्थोत्सर्पकरणवृद्धिपाटवार्थित्वाभावाच्च तत्तस्याः प्रबोधकमिति चेत् ; अथ कोयमभ्यासो नाम-भूयोदर्शनम्, बहुशो विकल्पोत्पत्तिर्वा ? न तावद्भूयो दर्शनम् ; तस्य नीलादाविव

१ संघमादि । २ नीलादिविकल्पे । ३ स्वलक्षण । ४ विकल्पः स्वलक्षणाध्यवसायी न भवति तदनालम्बनत्वात् मनोराज्यादिना (मनोराज्याध्यवसायिनैत्यर्थः) अनेकान्तोऽस्य । ५ मनोराज्यादिसरूपालम्बनोपि राज्याध्यवसायी । ६ बौद्धस्य । ७ मनोराज्यादिविकल्पस्य । ८ किंच । ९ निर्विकल्पकदर्शनस्य । १० स्वलक्षणे यथा । ११ अविकल्पत्व च स्यादिकल्पोत्पादनसामर्थ्यं च स्यादिति सन्दिग्धानैकान्तिकत्वे सत्यात् । १२ अभिलाषससर्गयोग्यताराहित्यमविकल्पकत्वं वक्षिन्सति कथं विकल्पोत्पादनसामर्थ्यं स्यादविकल्पकस्य । १३ परः । १४ विकल्पवासनापेक्षस्य । १५ (परः) अनुभूतिः । १६ विकल्प । १७ सर्वस्य सर्वं विकल्पं जनयेत् । १८ विकल्पजनकं । १९ समपश्चापि । २० विकल्प । २१ यथा नीलमिदमिति विकल्पस्तथा क्षणिकमिदमिति विकल्पः स्यात् । २२ न क्षणक्षयादौ । २३ विकल्प । २४ स्वसवेदनेन । २५ स्वर्गप्रापणशक्ति । २६ दर्शनस्य । २७ अनुभूतिमात्राविशेषात् । २८ पश्यन्नर्थक्षणिकनेव पश्यतीति वचनात् । २९ इदं क्षणिकमिदं क्षणिकमिति । ३० प्रस्ताव । ३१ दर्शन ।

१ तुलना—'अथ मयश्-अभ्यासप्रकरणवृद्धिपाटवार्थित्वेभ्यो...'

प्रमाण प० पृ० ५४ ।

सा० रत्नाकर पृ० ५४ ।

क्षणक्षयादौवप्यविशेषात् । अथ बहुशो विकल्पोत्पत्तिरभ्यासः; तस्य क्षणाक्षयादिदर्शने कुतोऽभावः ? तस्य विकल्पवासनाप्रबोधकत्वाभावाच्चेत्; अन्योन्याश्रयः—सिद्धे हि क्षणक्षयादौ दर्शनस्य विकल्पवासनाप्रबोधकत्वाभावे तल्लक्षणाभ्यासाभावसिद्धिः, त-
 ५ त्सिद्धौ चास्य सिद्धिरिति । क्षणिकाक्षणिकविचारणायां क्षणिक-
 प्रकरणमप्यस्येव । पाटवं तु नीलादौ दर्शनस्य विकल्पोत्पाद-
 कत्वम्, स्फुटतरानुभवो वा स्यात्, अविद्यावासनाविनाशादात्म-
 लाभो वा ? प्रथमपक्षे—अन्योन्याश्रयात् । द्वितीयपक्षे तु—क्षणक्ष-
 यादावपि तैत्प्रसङ्गः स्फुटतरानुभवस्यात्राप्यविशेषात् । तृतीयप-
 १० क्षोप्ययुक्तः; तुच्छस्वभावाभावानभ्युपगमात् । अन्योत्पादककार-
 णस्वभावस्योपगमे क्षणक्षयादौ तैत्प्रसङ्गः, अन्यथा दर्शनमेव-
 स्याद्विद्वेदधर्मोऽभ्यासात् । योगिन एव चै तथाभूतं तैत्सम्भविष्यति,
 ततोऽस्यैपि विकल्पोत्पत्तिप्रसङ्गात् “विधूतकल्पनाजाल”
 [इत्यादिविरोधैः । अर्थित्वं चाभिलषितत्वम्, जिज्ञा-
 १५ सितैत्वं वा ? प्रथमपक्षोऽयुक्तः; कचिदनभिलषितेपि वस्तुनि तस्याः
 प्रबोधदर्शनात् । चैकप्रसङ्गश्च—अभिलषितत्वस्य वस्तुनिश्चय-
 पूर्वकत्वात् । द्वितीयपक्षेतु—क्षणक्षयादौ तैद्वासनाप्रबोधप्रसङ्गो
 नीलादाविवात्रापि जिज्ञासितत्वाविशेषात् ।

न चैवं सविकला(ल्प)कप्रत्यक्षवादिनामैपि प्रतिबोधुपपन्नस्तस-
 २० कलचर्णपदादीनां खोच्छ्वासौदिसंख्यायाश्चाविशेषेण स्मृतिः प्रैस-

१ पश्यन्नयं क्षणिकमेव पश्यतीति वचनात् । २ इदं क्षणिकमिदं क्षणिकमिति ।
 ३ पश्यन्नयं क्षणिकमेव पश्यतीति वचनात् । ४ क्षणिकादौ दर्शनस्य विकल्पवासनाप्र-
 बोधकत्वाभावे सिद्धे विकल्पोत्पादकत्वलक्षणपाटवानावसिद्धिसिद्धौ चास्य सिद्धिरिति ।
 ५ विकल्पवासनाप्रबोधकत्वम् । ६ सिद्धे हि विकल्पोत्पादकत्वे (पाटवे) नीलादौ
 विकल्पवासनाप्रबोधकत्वसिद्धिसिद्धतस्तदुत्पादकत्वसिद्धिरिति । ७ सौगतः । ८ बुद्धेः ।
 ९ विकल्पवासनाप्रबोधकत्वोत्पत्ति । १० अविद्यावासनातोऽन्यदिन्द्रियं वा ज्ञाना-
 न्तरं वा आत्मा वा । ११ वसः । अविद्यावासनाविनाशस्य । १२ विकल्पोत्पादकत्वम् ।
 १३ निर्विकल्पक । १४ नीलादौ पाटवं क्षणक्षयादावपाटवमिति । १५ एकक्षणस्यैव
 पाटवचावाभाव । १६ किञ्च । १७ पाटवं । १८ निम्बोत्पन्न । १९ योगिनः
 प्रत्यक्षावपि । २० विधूतकल्पनाजालं प्रत्यक्षं योगिना मतम् । २१ ग्रन्थविरोधः ।
 २२ ज्ञानुमिष्टत्वं । २३ अहिकण्टकादौ । २४ अभिकापादिकल्पवासनाप्रबोधसत्त्वाच्च
 विकल्पसत्त्वाच्च अभिलषितत्वम् । २५ विकल्प । २६ विकल्प । २७ निर्विकल्पकप्रत्यक्ष-
 वादितप्रकारेणानिश्चयात्मकस्य विकल्पानवकत्वे । २८ जैनानाम् । २९ सौगत ।
 ३० वाक्च । ३१ जैन । ३२ निश्वास । ३३ बोधस्य निश्चयात्मकत्वात् ।

Handwritten musical score on a page with a vertical margin on the right. The score consists of multiple systems of staves, each containing musical notation and lyrics in a South Asian script. The notation includes notes, rests, and other musical symbols. The lyrics are written below the staves. The page is numbered '30' at the top right. The handwriting is in black ink on aged paper.

सहकारिणो वासनाविशेषादुत्पन्नशुद्ध्यादिविकल्पान्तरं तद्विषये
 केवलशुद्धिविषयत्वेनियमान्तरं एवोच्यते । अन्यथा कथादिवि-
 ययत्त्वनियमान्तरं भा सुदुर्विज्ञेयम् । तेषाञ्च-संज्ञकशुद्धि-
 र्वत्त्वात् प्रत्यक्षस्य तद्विषयहेतुत्वात्तद्विषयत्वं । तेषाञ्चसुद्धिर्वि-
 १५ शुद्धिरस्य तद्वत्त्वात्तद्विषयत्वेनैवाभ्युपगमे-अन्यथास्यादित्येवमस्य-
 योनिं तद्वत्त्वंयथैव-यथैवस्यस्योनिं-तद्विषयत्वेनैवाभ्युपगमे-
 त्तिददयोन्वयस्योन्वयत्वं । तेषादिवदशीलस्याप्रमाणितत्वाच्च
 आत्मैवाहस्यस्योनिः । प्रतिषेधकारणैः स्यात्साधुत्वात् विक-
 लोन्वयहेतुः । किमर्थं प्रतिकल्पना ? ततो विकल्पाः प्रमा-
 २० ण्युत्पन्नादिकल्पान्, अर्थपरिच्छिन्ना साधकत्वत्वात्, अनिश्चि-
 दाद्यनिश्चायकत्वात्, प्रतिषेधैरेकैर्वापत्वाच्च अनुमानवत्, ननु
 निर्विकल्पकं तद्विषयत्वात्प्रतिकल्पनं ।

तन्वाप्तमान्यं पुनः स्वच्छाकारविकल्पत्वात्, अर्थादप्रति-
 २५ त्वात्, तेषां प्रवर्तमानं, दिवादिप्रमाणपरिच्छिन्नस्यैवैव,
 स्वच्छाकारविकल्पत्वात्, समागोपादिविकल्पत्वात्, अत्रहास्युपग-
 मोत्, अन्वयस्योन्वयत्वात्, अर्थपरिच्छिन्नस्यैवैव, अर्थपरिच्छि-
 ३० त्वात्, (आशयं चित्तात्तन्मात्रप्रसवत्वाद्वा) गन्तव्य-

- १ इतिहासः । २ अर्थपरिच्छिन्नः । ३ अर्थपरिच्छिन्नः । ४ अर्थपरिच्छिन्नः । ५ अर्थपरिच्छिन्नः ।
- ६ अर्थपरिच्छिन्नः । ७ अर्थपरिच्छिन्नः । ८ अर्थपरिच्छिन्नः । ९ अर्थपरिच्छिन्नः ।
- १० अर्थपरिच्छिन्नः । ११ अर्थपरिच्छिन्नः । १२ अर्थपरिच्छिन्नः । १३ अर्थपरिच्छिन्नः ।
- १४ अर्थपरिच्छिन्नः । १५ अर्थपरिच्छिन्नः । १६ अर्थपरिच्छिन्नः । १७ अर्थपरिच्छिन्नः ।
- १८ अर्थपरिच्छिन्नः । १९ अर्थपरिच्छिन्नः । २० अर्थपरिच्छिन्नः । २१ अर्थपरिच्छिन्नः ।
- २२ अर्थपरिच्छिन्नः । २३ अर्थपरिच्छिन्नः । २४ अर्थपरिच्छिन्नः । २५ अर्थपरिच्छिन्नः ।
- २६ अर्थपरिच्छिन्नः । २७ अर्थपरिच्छिन्नः । २८ अर्थपरिच्छिन्नः । २९ अर्थपरिच्छिन्नः ।
- ३० अर्थपरिच्छिन्नः । ३१ अर्थपरिच्छिन्नः । ३२ अर्थपरिच्छिन्नः । ३३ अर्थपरिच्छिन्नः ।
- ३४ अर्थपरिच्छिन्नः । ३५ अर्थपरिच्छिन्नः । ३६ अर्थपरिच्छिन्नः । ३७ अर्थपरिच्छिन्नः ।
- ३८ अर्थपरिच्छिन्नः । ३९ अर्थपरिच्छिन्नः । ४० अर्थपरिच्छिन्नः । ४१ अर्थपरिच्छिन्नः ।
- ४२ अर्थपरिच्छिन्नः । ४३ अर्थपरिच्छिन्नः । ४४ अर्थपरिच्छिन्नः । ४५ अर्थपरिच्छिन्नः ।
- ४६ अर्थपरिच्छिन्नः । ४७ अर्थपरिच्छिन्नः । ४८ अर्थपरिच्छिन्नः । ४९ अर्थपरिच्छिन्नः ।
- ५० अर्थपरिच्छिन्नः । ५१ अर्थपरिच्छिन्नः । ५२ अर्थपरिच्छिन्नः । ५३ अर्थपरिच्छिन्नः ।
- ५४ अर्थपरिच्छिन्नः । ५५ अर्थपरिच्छिन्नः । ५६ अर्थपरिच्छिन्नः । ५७ अर्थपरिच्छिन्नः ।
- ५८ अर्थपरिच्छिन्नः । ५९ अर्थपरिच्छिन्नः । ६० अर्थपरिच्छिन्नः । ६१ अर्थपरिच्छिन्नः ।
- ६२ अर्थपरिच्छिन्नः । ६३ अर्थपरिच्छिन्नः । ६४ अर्थपरिच्छिन्नः । ६५ अर्थपरिच्छिन्नः ।
- ६६ अर्थपरिच्छिन्नः । ६७ अर्थपरिच्छिन्नः । ६८ अर्थपरिच्छिन्नः । ६९ अर्थपरिच्छिन्नः ।
- ७० अर्थपरिच्छिन्नः । ७१ अर्थपरिच्छिन्नः । ७२ अर्थपरिच्छिन्नः । ७३ अर्थपरिच्छिन्नः ।
- ७४ अर्थपरिच्छिन्नः । ७५ अर्थपरिच्छिन्नः । ७६ अर्थपरिच्छिन्नः । ७७ अर्थपरिच्छिन्नः ।
- ७८ अर्थपरिच्छिन्नः । ७९ अर्थपरिच्छिन्नः । ८० अर्थपरिच्छिन्नः । ८१ अर्थपरिच्छिन्नः ।
- ८२ अर्थपरिच्छिन्नः । ८३ अर्थपरिच्छिन्नः । ८४ अर्थपरिच्छिन्नः । ८५ अर्थपरिच्छिन्नः ।
- ८६ अर्थपरिच्छिन्नः । ८७ अर्थपरिच्छिन्नः । ८८ अर्थपरिच्छिन्नः । ८९ अर्थपरिच्छिन्नः ।
- ९० अर्थपरिच्छिन्नः । ९१ अर्थपरिच्छिन्नः । ९२ अर्थपरिच्छिन्नः । ९३ अर्थपरिच्छिन्नः ।
- ९४ अर्थपरिच्छिन्नः । ९५ अर्थपरिच्छिन्नः । ९६ अर्थपरिच्छिन्नः । ९७ अर्थपरिच्छिन्नः ।
- ९८ अर्थपरिच्छिन्नः । ९९ अर्थपरिच्छिन्नः । १०० अर्थपरिच्छिन्नः ।

१ पुनः—इति च तद्विकल्पत्वात्—वाच्यम्... का० महाका. ६० ५७
 २—अर्थपरिच्छिन्नत्वात्—इत्यसि (अर्थपरिच्छिन्नत्वात्) इत्युत्पत्तिर्हेतुः

भावात् ? न तावत्स्पष्टाकारविकल्पत्वात्तस्याऽप्रामाण्यम् ; काचा-
 भ्रंकादिव्यवहितार्थदूरपादपौादिप्रत्यक्षस्याप्यप्रामाण्यप्रसङ्गात् । न
 चैतद्युक्तम्, अज्ञातवस्तुप्रकाशनसंवादलक्षणस्य प्रमाणलक्षणस्य
 सद्भावात् । प्रमाणान्तरत्वप्रसङ्गो वा; अस्पष्टत्वालिङ्गजत्वाभ्यां
 प्रमाणद्वयानन्तर्भूतत्वात् । नापि गृहीतग्राहित्वात्; अनुमान-^५
 स्याप्यप्रामाण्यानुषङ्गात्, व्यासिद्धानयोर्गिसंवेदनगृहीतार्थग्राहि-
 त्वात् । कथं वा क्षणक्षयानुमानस्य प्रामाण्यम्-शब्दरूपाव-
 भास्यर्ध्यक्षावगतक्षणक्षयविषयत्वात् ? नच अर्च्यक्षेण धर्मिस्व-
 रूपग्राहिणा शब्दग्रहणेपि न क्षणक्षयग्रहणम्; विवेकधर्माभ्या-
 संतस्तद्भेदप्रसङ्गः । नाप्यसतिप्रवर्तनात्; अतीतानागतयोर्विकल्प-^{१०}
 काले अस्तत्वेपि स्वकाले सत्त्वात् । तथाप्यस्याप्रामाण्ये-प्रत्यक्ष-
 स्याप्यप्रामाण्यानुषङ्गः तद्विषयस्यापि तत्कालेऽसत्त्वाविशेषात् ।
 हिताऽहितप्रसिपरिहारासमर्थत्वादित्यसम्भाव्यम्; विकल्पादेवे-
 द्यार्थप्रतिपत्तिप्रवृत्तिप्रसिदर्शनात् अनिर्द्योतार्थं निवृत्तिप्रतीतेः ।
 कदाचिदर्थप्रापकत्वाभावास्तु-प्रत्यक्षेपि समानोऽनर्थत्वादप्रवृत्त-^{१५}
 स्यादर्थप्रत्यक्षैवत् । कदाचिद्विसंवादादित्यप्यसाम्प्रतम्; प्रत्यक्षेप्य-
 प्रामाण्यप्रसङ्गात्, तिमिरैर्बुधपहतचक्षुषोऽर्थाभावेपि प्रत्यक्षप्रवृ-
 त्तिदर्शनात् । भ्रान्ताद्भ्रान्तस्य भेदोऽन्यत्रापि समानः । समारो-
 पानिषेधकत्वादित्यप्यसङ्गतम्; विकल्पविषये समारोपासम्भ-
 वात् । नापि व्यवहारायोग्यत्वात्; सकलव्यवहाराणां विकल्प-^{२०}
 मूलत्वात् । स्वलक्षणाऽगोचरत्वादित्यप्यसमीक्षिताभिधानम्;
 अनुमानेपि तत्रसंकेतः तद्वत्तस्यापि सामान्यगोचरत्वात् । न च
 तद्वाह्यस्य सामान्यरूपत्वेप्यध्यवसेयस्य स्वलक्षणरूपत्वाद् हेतु-
 विकल्पव्यवर्थाविकीर्णेत्य ततः प्रवृत्तेरनुमानस्य प्रामाण्यम्; प्रकृत-
 विकल्पेऽप्यस्य समानत्वात् । शब्दसंसर्गयोग्यप्रतिभासत्वादित्य-^{२५}

१ स्फटिकजालादि । २ पर्वतादि । ३ पारमार्थिकं लक्षणमिदम् । ४ व्याव-
 हारिकम् । ५ व्यासिद्धानं च तद्योगिसंवेदनं च । ६ सर्वज्ञ । ७ आवाणाध्यक्षगृही-
 तार्थग्राहितात् । ८ आवाणाध्यक्ष । ९ निर्विकल्पकेन । १० सर्वं वस्तु क्षणिकं
 सत्त्वात् । ११ तस्यैवग्रहणमग्रहणमिति । १२ शब्दधर्मिणः । १३ क्षणिकत्वधर्मिणः ।
 १४ धर्मिरूपस्य वस्तुनः क्षणिक(कर्त्तव्यं) न भवतीत्यर्थः । १५ रावणशङ्खचक्रवर्ति ।
 १६ जयधरोः । १७ आयमज्ञाने । १८ समकाले ग्राह्यग्राहकत्वाभावात्साम्येतर-
 गोविषाणवत् । १९ प्रत्यक्ष । २० सर्पादिः । २१ पुरुषस्य । २२ हृदं जलमिति ।
 २३ ईप् (सप्तमी, सप्तम्यर्थे मनुजित्यर्थः) । २४ रोम । २५ पुरुषस्य । २६ आन्द्र-
 विकल्पे । २७ अप्रामाण्यम् । २८ तस्य पूर्वानुभूततत्सदृशस्य । २९ सामान्यारो-
 पोऽधिकरणं स्वलक्षणमध्यवसेयम् । ३० स्वलक्षणम् । ३१ स्थूलम् । ३२ पुरुषस्य ।
 ३३ नीलम् । ३४ न्यायस्य ।

प्यसमीचीनम्; अनुमानेपि समानत्वात् । शब्दप्रभवत्वादित्य-
प्यसाम्प्रतम्; शब्दाध्यक्षस्योप्रामाण्यप्रसङ्गात् । ग्राह्यार्थे विना
तन्मात्रप्रभेवत्वं चालिङ्गम्; नीलादिविकल्पानां सर्वदार्थ्यं सत्येव
भावात् । कैस्याचित्तु तन्मन्तरेणापि भावोऽध्यक्षेपि समानः
५ द्विचन्द्रादिप्रत्यक्षस्यार्थाभावेपि भावात् । भ्रान्ताद्भ्रान्तस्यान्य-
त्वमत्रापि समानम् ।

किञ्च, विकल्पाभिधानयोः कार्यकारणत्वनियमकल्पनायाम्-
किञ्चित्प्रत्ययतः पूर्वानुभूततत्सदृशसृष्टिर्न स्यात् तन्नामविशेषा-
स्मरणौत्, तदस्मरणे तदभिधानाप्रतिपत्तिः, तदप्रतिपत्तौ तेन
२० तदयोजनम्, तदयोजनात्तदनेव्यवसाय इत्यविकल्पाभिधानं
जगदापद्येत ।

किञ्च, पदस्य वैर्णानां च नैमान्तरस्मृतावसत्यामध्यवसायः,
सत्यां वा ? तत्राद्यपक्षे-नाज्ञो नामान्तरेण विनापि स्मृतौ केवै-
लार्थाध्यवसायः किञ्च स्यात् ? 'स्वामिधानविशेषापेक्षा एवार्था
२५ निश्चयैर्निश्चीयन्ते' इत्येकान्तत्यागात् । द्वितीयपक्षे तु-अनवस्था-
वर्णपदाध्यवसायेऽप्यपरनामान्तरस्यावश्यं स्मरणौत् ॥ छ ॥

१ शब्दवन्तिप्रत्यक्षस्य । २ षटः काले तत्रास्ते इत्यादि । ३ शब्द । ४ विकल्-
पस्य । ५ विकल्पस्य । ६ वन्त्यास्तुताद्यर्थः । ७ नीलं । ८ तुः । ९ तेन दृश्येन
नीलेन सदृशं पूर्वानुभूतं च तच्च तत्सदृशं च तस्य सृष्टिः । १० सृष्टिविकल्पः ।
११ पूर्वानुभूततत्सदृशार्थस्मरणौत्पूर्वं नामविशेषस्य पूर्वानुभूततत्सदृशार्थस्मरणौत्पद-
कस्याभावात्तस्य तत्त्वार्थतया पूर्वानुभूततत्सदृशार्थनामविशेषस्यनन्तरभावित्वात् ।
१२ नामविशेषः । १३ नाम । १४ शब्देन । १५ नीलशब्देनेदं वाच्यमिति
योजनाभावः । १६ दृश्यस्य नीलस्य । १७ दृश्यमाने नीले विकल्पानुत्पत्तिः ।
१८ विकल्पाभिधानस्य । १९ गौरित्यस्य । २० गकारबौकारविषयनीयानां ।
२१ अभिधान । २२ नामनिरपेक्षः । २३ विकल्पैः ।

१ तु०—“तस्मादयं किञ्चित्प्रत्ययन् तत्सदृशं पूर्वं दृष्टं न सत्सुमर्हति तत्रामविशे-
षास्मरणौत्, तदस्मरणैव तदभिधानं प्रतिपद्यते, तदप्रतिपत्तौ तेन तत्र बोधयति,
तदयोनयन्नाध्यवसायीति न कश्चिद्विकल्पः शब्दो नैत्यविकल्पाभिधानं जगत्सात्” ।

अदृश० अदृशत् ० पू० ११९ । सा० रत्ना० पू० ७७ ।

२ तु०—“नाज्ञो नामान्तरेण विनापि स्मृतौ केवलार्थव्यवसायः किञ्च स्यात्”
तत्रामान्तरपरिकल्पनायामनवस्था” । (अदृश०) “तदुक्तं न्यायविनिश्चये (११६)
अभिधापतदंशानामभिधापविवेकतः । अप्रमाणप्रमेयत्वमनवस्थमनुभवत्येते” ॥ अदृशत् ०
पू० १२० ।

३ बौद्धमिमत्तनिरविकल्पकप्रत्यक्षस्य सण्डनमनयैवानुपूर्णा—अदृश० अदृशत् ०
पू० ११८, प्रमाणप० पू० ५३, न्यायकु० च० प्र० परि०, सम्प्रति० गी० पू० ४९५ ।
सा० रत्ना० पू० ७६ । इत्यादिषु दृश्यम् ।

येषु शब्दाद्वैतवादिनो निखिलप्रत्ययानां शब्दानुविद्धत्वेनैव साविकल्पकत्वं मन्यन्ते-तत्स्पर्शवैकल्ये हि तेषां प्रकाशरूपताया एवाभावप्रसङ्गः । वाग्रूपता हि शाश्वती प्रत्यर्वमर्शिनी च । तदभावे प्रत्ययानां नौपरं रूपमवशिष्यते । सकलं चेदं वाच्यवाचकतत्त्वं शब्दग्रहण एव विचरौ नोन्यविचरौ नापि स्वतन्त्र-५ मिति । तदुक्तम्-

न सोस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुर्गमाद्वैते ।

अनुविद्धमिर्वाभाति सर्वं शब्दे प्रतिष्ठितम् ॥ १ ॥

[वाक्यप० १।१२४]

वाग्रूपता चेदुक्तमेदवबोधस्य शाश्वती ।

१०

न प्रकाशः प्रकाशोत सा हि प्रत्यवमर्शिनी ॥ २ ॥

[वाक्यप० १।१२५]

अनादिनिधनं शब्दब्रह्मैतत्त्वं यदक्षरम् ।

विर्वैततेऽर्थभावेन प्रक्रियौ जगतो यतः ॥ ३ ॥

[वाक्यप० १।१]

१५

अनादिनिधनं हि शब्दब्रह्म उत्पादविनाशाभावात्, अक्षरं च अकाराद्यक्षरस्य निमित्तत्वात्, अनेन वैचकरूपता 'अर्थभावेन' इत्यनेन तु वैच्यरूपतास्य सूचिता । प्रक्रियेति मेदाः । शब्दब्रह्मेति नामसङ्कीर्तनमिति;

तेष्यतत्त्वज्ञाः; शब्दानुविद्धत्वस्य ज्ञानेष्वप्रतिभासनात् । तद्वि २० प्रत्यक्षेण प्रतीयते, अनुमानेन वा ? प्रत्यक्षेण चेत्किमैन्द्रियेण,

१ परः । २ ज्ञानानां । ३ ईप् । ४ तादात्म्य । ५ शब्दरूपापन्नत्वेनैव । ६ शब्दानुविद्धत्व । ७ अभ्यभिचारिणी । ८ प्रकाशहेतुभूता च । ९ परंविषयवाग्रूपताऽभावे । १० प्रकाशोपायभूत । ११ प्रपान । १२ ज्ञानं । १३ शब्दान्वय-रहितः । १४ कुतो नास्ति ? शब्दरूपापन्नमेव विधुं शब्दे विभ्रान्तं यतः । १५ अनुस्यूत । १६ यतः । १७ अपगच्छेत् । १८ तदा । १९ ज्ञानं । २० शब्द-रूपापन्नत्वेन । २१ यतः । २२ ता (यद्यी, यद्यीसमास इत्यर्थः) । २३ कर्तुं । २४ परिणमति । २५ मेदाः जनेद्युः । २६ शब्द । २७ जवै ।

१ अर्षुहरिमसूत्रयः ।

२ "न तत्प्रत्यक्षतः सिद्धमविभागमभासनात् ।

मिसानुस्यूतयोगेन कार्यलिङ्गं च तद् न" ॥ १४७ ॥ तत्त्वसं० । न्यायकु० च० प्र० परि०, सम्भति० टी० पृ० १८४, आ० रत्ना० पृ० १८ ।

स्वसंवेदनेन वा ? न तावद्वैन्द्रियेण; इन्द्रियाणां रूपादिनियतत्वेन
 ज्ञानाविषयत्वात् । नापि स्वसंवेदनेन; अस्य शब्दागोचरत्वात् ।
 अथार्थस्य तदनुविद्धत्वात् तदनुभवे ज्ञाने तदप्यनुभूयते
 इत्युच्यते; ननु किमिदं शब्दानुविद्धत्वं नाम-अर्थस्याभिन्नदेशे प्रति-
 ५ भासः, तादात्म्यं वा ? तत्राद्यविकल्पोऽसमीचीनः; तद्द्रहितस्यैवा-
 र्थस्याध्यक्षे प्रतिभासनात् । न हि तत्र यथा पुरोचस्थितो नीलादिः
 प्रतिभासते तथा तद्देशे शब्दोपि-श्रोतृश्रोत्रप्रदेशे तत्प्रति-
 भासात् । न चान्यदेशतयोपलभ्यमानोप्यर्न्देशोऽसौ युक्तः,
 अतिप्रसङ्गात् । नापि तादात्म्यम्; विभिन्नेन्द्रियजनितज्ञान-
 १० ग्राह्यत्वात् । ययोर्विभिन्नेन्द्रियजनितज्ञानग्राह्यत्वं न तयोरैक्यम्
 यथा रूपरसयोः, तथात्वं च नीलादिरूपशब्दयोरिति । शब्दा-
 काररहितं हि नीलादिरूपं लोचनज्ञाने प्रतिभाति, तद्द्रहितस्तु
 शब्दः श्रोत्रज्ञाने इति कथं तयोरैक्यम् ? रूपमिदमित्यभिधान-
 विशेषणरूपप्रतीतेस्तयोरैक्यम्; इत्यसत्; रूपमिदमिति ज्ञानेन
 १५ हि वाग्रूपतप्रतिपन्नाः पदार्थाः प्रतिपद्यन्ते, भिन्नेवाग्रूपताविशे-
 षणविशिष्टा वा ? प्रथमपक्षोऽयुक्तः; न हि लोचनविज्ञानं वाग्रू-
 पतायां प्रवर्तते तस्यास्तदविषयत्वाद्द्रसादिवत्, अन्येन्द्रिया-
 न्तरपरिकल्पनावैयर्थ्यम् तस्यैवाशेषैर्थाद्ग्राहकत्वप्रसङ्गात् । द्वितीय-
 पक्षेपि अभिधानेऽप्रवर्तमानं शुद्धरूपमात्रविषयं लोचनविज्ञानं
 २० कथं तद्विशिष्टतया स्वविषयमुद्योतयेत् ? न ह्यगृहीतविशे-
 षणा विशेष्ये बुद्धिः दण्डाग्रहणे दण्डिवत् । न च ज्ञानान्तरे तस्य
 प्रतिभासाद्विशेषणत्वम्; तथा सति अनयोर्भेदसिद्धिः सैवित्यु-
 क्तम् । अभिधानानुषङ्गकार्यस्मरणार्थविधौर्थदर्शनसिद्धिः; इत्यप्य-

१ शब्दानुविद्धार्थे । २ (शब्दग्रहण) । ३ भवता परेण । ४ अर्थस्य शब्देन
 तादात्म्यम् । ५ शब्द । ६-७ अर्थः । ८ अर्थे । ९ शब्दार्थौ नैकरूपाविति धर्मी ।
 १० साधनसमर्थनं । ११ अर्थे । १२ अर्थाकार । १३ दण्डिपुराणे व्यभिचारो
 नानुमानस्य । १४ शब्द । १५ अर्थाकार । १६ शब्दार्थयोः । पदार्थाः स्ववाच-
 काद्यभिन्नास्तद्विशेषणविशिष्टत्वात् । १७ रूपविशेषणविशिष्टत्ववत् । १८ तादात्म्येन ।
 १९ अर्थात् । २० तत्तत्सां प्रवर्तते चेत् । २१ लोचनाच्छ्रोत्रादि । २२ रसादि ।
 २३ शब्दे । २४ केवल । २५ भिन्नवाग्रूपताविशेषण । २६ शब्द । २७ अर्थे ।
 २८ श्रोत्रज्ञाने । २९ वाग्रूपताविशेषणस्य । ३० रूपरूपशब्दयोः । ३१ विभिन्ने-
 न्द्रियजनितज्ञानग्राह्यत्वादिना पूर्वमेव । ३२ परः । ३३ सम्बन्ध । ३४ पुरोवर्ति ।
 ३५ वाग्रूपार्थस्य दर्शनं तद्ग्रूपार्थस्य स्मरणमिति वचनात् ।

१ “नास्ति शब्दार्थयोस्तादात्म्यं भिन्नदेशत्वात् भिन्नकारत्वात् भिन्नाकारत्वात्
 साम्यकृमभवत्” । सा० रत्ना० पृ० ९४ ।

सारम्; अन्योन्याश्रयानुषङ्गात्-तथाविधार्थदर्शनसिद्धौ वचनपरि-
करितार्थस्वरूपसिद्धिः, ततश्च तथाविधार्थदर्शनसिद्धिरिति ।

का चैयमर्थस्याभिधानानुषक्तता नाम-अर्थज्ञाने तत्प्रतिभासः,
अर्थदेशे तद्वेदनं वा, तैत्काले तत्प्रतिभासो वा ? न तावदाद्यो
विकल्पः; लोचनाध्यक्षे शब्दस्याप्रतिभासनात् । नापि द्वितीयः;
शब्दस्य श्रोत्रप्रदेशे निरस्तशब्दसन्निधीनां च रूपादीनां स्वप्रदेशे
स्वविज्ञानेनानुभवात् । नापि तृतीयः; तुल्यकालस्याप्यभिधानस्य
लोचनज्ञाने प्रतिभासाभावात्, मित्रज्ञानवैद्यत्वे च भेदप्रसङ्ग इत्यु-
क्तम् । कथं चैवंवादिनो बालकादेरर्थदर्शनसिद्धिः, तत्राभिधाना-
प्रतीतेः, अश्वं विकल्पयतो गोदर्शनं वा ? न हि तदा गोशब्दोल्लेखं- १०
स्तज्ज्ञानस्यानुभूयते युगपद्वृत्तिद्वयानुत्पत्तेरिति । कथं वा वाग्रू-
पाऽवबोधस्य शीघ्रवती यतो 'वाग्रूपता चेदुत्क्रामेत्' इत्याद्यवति-
ष्ठेत लोचनाध्यक्षे तैस्संस्पर्शाभावात् ? न खलु श्रोत्रग्राह्यां वैखरीं
वाचं तैत् संस्पृशति तस्यास्तदविषयत्वात् । अन्तर्जल्परूपां
मध्यमां वा; तामन्तरेणापि शुद्धसंविदोर्भावात् । संहृतांशेषवर्ण- १५
दिविभागानु(तु)पदैयन्ती, सूक्ष्मा चान्तर्ज्योतीरूपा वागेव न
भवति; अनयोरर्थात्मदर्शनलक्षणत्वात् वाचस्तु वर्णपदार्थैर्लोकम-
लक्षणत्वात् । ततोऽयुक्तमेतत्तल्लक्षणप्रणयनम्-

१ वाग्रूपताविशेषणविशिष्टार्थ । २ सहित । ३ अर्थज्ञान । ४ अर्थेन सह ।
५ पूर्वमेव । ६ अभिधानानुषक्तार्थ एव प्रत्यक्षे प्रतिभासीत्वेववादिनः । ७ युक्त ।
८ अर्थदर्शने । ९ प्रतिभासः । १० नित्या । ११ श्रोत्रं बहिष्कृत्य । १२ वाग्रूपत्व ।
१३ वचनारम्भिका । १४ लोचनाध्यक्षं । १५ लोचनाध्यक्षं न संस्पृशति ।
१६ लोचनज्ञानस्य । १७ नष्ट । १८ पदवाक्य । १९ अर्थदर्शनं । २० अर्थदर्श-
नलक्षणा । २१ आत्मदर्शनलक्षणा । २२ वाक्य ।

I "वैखरीं मध्यमायाश्च पश्यन्त्याश्चेतदद्भुतम् ।

अनेकतीर्थभेदायास्त्वस्या वाचः परं पदम् ॥ १४४ ॥

यस्याः श्रोत्रविषयत्वेन प्रतिनियतं श्रुतिरूपं सा वैखरी, चिष्टवर्णसमुच्चारणप्रतिबन्धा-
भावा अष्टसंस्कारा च इन्द्रुमिनेषुकीणादिशब्दरूपा चैत्परमितभेदा । मध्यमा तु
अन्तःसन्निवेशिनी परिगृहीतकमेव । बुद्धिमान्नोपादाना सूक्ष्मा प्राणवृत्त्यनुगत प्रतिबंध-
तक्रमा सत्यप्यभेदे समाविष्टक्रमशक्तिः । पश्यन्ती तु सा चलाचला प्रतिबद्धसमाधाना
सन्निविष्टवैयाकारा प्रतिलीनाकारा निराकारा च परिच्छिन्नाथैप्रत्यवभासा संसृष्टार्थप्रत्यव-
भासा च प्रचान्तसर्गार्थप्रत्यवभासा चैत्परमितभेदा । तत्र व्यावहारिकीषु सर्वांस्तु
वागवस्थास्तु व्यवस्थितसाध्वसाधुप्रविभागा पुरुषसंस्कारादेस्तुः परन्तु पश्यन्त्या रूपमनप-

“स्थानेषु विवृते वायौ कृतवर्णपरिग्रहा ।
 वैखरी वाक् प्रयोक्तृणां प्राणवृत्तिनिवन्धना ॥ १ ॥
 प्राणवृत्तिमतिक्रम्य मध्यमा वाक् प्रवर्तते ।
 अविभागाऽनु(गा तु)पश्यन्ती सर्वतः संहतक्रमा ॥ २ ॥
 स्वरूपज्योतिरेवान्तः सूक्ष्मा चार्गनपायिनी ।
 तया व्याप्तं जगत्सर्वं ततः शब्दात्मकं जगत् ॥ ३ ॥”
 [] इत्यादि ।

१ कण्ठादिषु । २ प्रसूते सति । ३ पुरुषेण । ४ इदित्यो वायुः प्राणः ।
 ५ परित्यज्ज । ६ वर्णादिरहिता । ७ नष्टवर्णादिक्रमो यतः । ८ शाश्वती ।

अक्षमसङ्कीर्णं लोकव्यवहारातीतम् । तस्या पत्र वाचो व्याकरणेन साधुत्वज्ञानलभ्येन
 शब्दपूर्वेण योगेनाऽभिगमः इत्येकेषामागमः...” वाक्यप० टी० १।१४४

“उक्तं च—वैखरी शब्दनिष्पत्तिः मध्यमा वृत्तिगोचरा ।

धोतितार्था च पश्यन्ती सूक्ष्मा चागनपायिनी ॥”

कुमारसं० टी० २।१७ ।

१ “अस्वार्थः—स्थानेषु तास्वादिस्थानेषु, वायौ प्राणसंज्ञे, विवृते अभिघातार्थं
 निवृत्ते सति, कृतवर्णपरिग्रहेति हेतुद्वारेण विशेषणम् ततः ककारादिवर्णरूपस्वीकारात्
 वैखरी संज्ञा बहुभिनिश्चिष्टायां खरावस्याया स्पष्टरूपाया भवा वैखरीति निवृत्तेः ।
 वाक्प्रयोक्तृणां सन्निधिनी । यदा तेषां स्थानेषु तस्याश्च प्राणवृत्तिरेव निवन्धनं तत्रैव
 निवृत्ता सा तन्मयत्वादिति” स्या० रत्नाकर पृ० ८९ ।

२ “या पुनरन्तःसङ्कल्प्यमाना क्रमवती श्रोत्रप्राणवर्णरूपाऽभिव्यक्तिरहिता वाक्
 सा मध्यमेत्युच्यते ।

सङ्कल्पम्—केवलं बुष्णुपादानात् क्रमरूपानुपायिनी ।

प्राणवृत्तिमतिक्रम्य मध्यमा वाक् प्रवर्तते ॥

शुद्धां प्राणवृत्तिं हेतुत्वेन वैखरीमदनपेक्ष्य केवलं बुद्धिरेव उपादानं हेतुर्गणाः सा
 प्राणस्वात्त्वात् क्रमरूपमनुपगतति । अस्याश्च मनोभूभाववस्थानश्च वैखरीपश्यन्लोभेभ्ये
 भवात् मध्यमा वागिति ।” स्या० रत्नाकर पृ० ८९ ।

३ “या तु आश्रयेदक्रमादिरहिता स्वप्रकाशा संविद्रूपा वाक् सा पश्यन्तीत्यु-
 च्यते” । “यस्यां वाच्यवाचकयोर्विभावेनावभासो नास्ति सर्ववदश्च सजातीयविभा-
 तीयापेक्षया संहतो वाच्याना वाचकाना च क्रमो देशकालकृतो यत्र, क्रमविचरैशक्तिस्तु
 विद्यते” स्या० रत्नाकर पृ० ९० ।

४ “स्वरूपज्योतिः स्वप्रकाशा वेद्यते वेदकमेदातिक्रमात् । सूक्ष्मा दुर्लेभ्या,
 जनपायिनी कालभेदाऽस्पृशादिति ।” स्या० रत्नाकर पृ० ९० ।

५ चतुर्विधवाचां स्वरूपं तत्त्वार्थलोकवाचिकेऽपि (पृ० २४१) उचितमस्ति । यत्
 त्रयः कोकाः वाक्यपदीयटीकायां (पृ० ५६) ‘पुनश्चाह’ इति कृत्वा उभूताः वक्ष्येते ।

अनुमानात्तेषां तदनुविद्धत्वप्रतीतिरित्यपि मनोरथमात्रम्; तद्विनाभाविलिङ्गाभावात् । तत्सम्भवे वाऽध्यक्षादिवाधितपक्ष-
निर्देशानन्तरं प्रयुक्तत्वेन कालात्ययापदिष्टत्वाच्च । अथ जगतः
शब्दमयत्वात्तदुद्वर्तिनां प्रत्ययानां तन्मयत्वात्तदनुविद्धत्वं
सिद्धमेवेत्यभिधीयते; तदप्यनुपपन्नमेव; तत्तन्मयत्वस्याध्यक्षादि-
वाधितत्वात्, पदवाक्यादितोऽन्यस्य गिरितरुपुरलतादेस्तदाका-
रपराङ्मुखेणैव सविकल्पकाध्यक्षेणाल्यन्तं विशदतयोपलम्भात् ।
'ये यदाकारपराङ्मुखास्ते परमार्थतोऽतन्मयाः यथा जलाकार-
विकलाः स्थासकोशकुशूलादयस्तत्त्वतो न तन्मयाः, परमार्थत-
स्तदाकारपराङ्मुखाश्च पदवाक्यादितो व्यतिरिक्ता गिरितरुपुरल-
तादयः पदार्थाः' इत्यनुमानतोस्य तद्वैशुयसिद्धेः ।

किंच, शब्दपरिणामरूपत्वाज्जगतः शब्दमयत्वं साध्यते,
शब्दादुत्पत्तेर्वा ? न तावदाद्यः पक्षः; परिणामस्यैवात्रासम्भवात् ।
शब्दात्मकं हि ब्रह्म नीलादिरूपतां प्रतिपद्यमानं स्वाभाविकं
शब्दरूपं परित्यज्य प्रतिपद्येत, अपरित्यज्य वा ? प्रथमपक्षे-
अस्याऽनादिनिधनत्वविरोधः पौरस्त्यस्वभावविनाशात् । द्वितीय-
पक्षे तु नीलादिसंवेदनकाले बधिरस्यापि शब्दसंवेदनप्रसङ्गो
नीलादिवर्तव्यतिरेकात् । यत्तन्ननु यदव्यतिरिक्तं तत्तस्मिन्संवे-
द्यमाने संवेद्यते यथा नीलादिसंवेदनावस्थायां तस्यैव नीला-
देरात्मा, नीलाद्यव्यतिरिक्तश्च शब्द इति । शब्दस्यासंवेदने वा
नीलादेरप्यसंवेदनप्रसङ्गः तादात्म्याविशेषात्, अन्यथा विरुद्ध-
धर्माध्यासात्तस्य ततो मेदप्रसङ्गः । न ह्येकैस्यैकदा एकप्रतिपन्न-
पक्षया ग्रहणमग्रहणं च युक्तम् । विरुद्धधर्माध्यासेष्वर्थे मेदा-

१ तेषां प्रलयानां । २ शब्द । ३ सर्वे प्रलयाः शब्दानुविद्धा इत्यत्र साध्ये
साधनाभावः । ४ श्लोक । ५ भिन्नस्य । ६ शब्दानुविद्धत्वरहितस्य । ७ शब्दप्रमाणि ।
८ स्वीकृतवत् । ९ वस्तु । १० तादात्म्यसङ्गाभावात् । ११ का (पञ्चमी पञ्चमीसमास
इत्यर्थः) । १२ शब्दस्य । १३ नीलादेरेव संवेदनं न शब्दस्येति चेत् । १४ वैशा-
चेयवधर्मसाधित्वात् । १५ ग्रहणः । १६ नीलात् । १७ अभिन्नस्य शब्दलिङ्गस्य ।
१८ अन्यथा । १९ नीलनीलशब्दयोः ।

1 "अत्र कदाचिच्छब्दपरिणामरूपत्वाद्वा जगतः शब्दमयत्वं साध्यत्वेनेष्टम्,
कदाचिच्छब्दानुत्पत्तेर्वा शब्दात्मकं ब्रह्म नीलादिरूपतां प्रतिपद्यमानं कदाचिन्निर-
स्वाभाविकं शब्दरूपं परित्यज्य प्रतिपद्येत, अपरित्यज्य वा ?" तत्त्वसं० पं० पृ० ६८ ।
न्यायकु० च० प्र० परि० । सन्मति० टी० पृ० ६८० । स्वा० रत्नाकर पृ० १०० ।

संभवे हिमवद्विन्ध्यादिभेदानामप्यभेदानुषङ्गः । किंच, असौ शब्दात्मा परिणामं गच्छन्प्रतिपदार्थभेदं प्रतिपद्येत, न वा ? तत्राद्यविकल्पे-शब्दब्रह्मणोऽनेकत्वप्रसङ्गः, विभिन्नानेकार्थस्वभावात्मकत्वात्तत्स्वरूपवत् । द्वितीयविकल्पे तु-सर्वेषां नीलादीनां देशकालस्वभावव्यापारावस्थादिभेदाभावः प्रतिर्भासभेदाभावभ्रानुषङ्ग्येत-एकस्वभावाच्छब्दब्रह्मणोऽभिर्ज्ञत्वात्तत्स्वरूपवत् । तत्र शब्दपरिणामरूपत्वाज्जगतः शब्दमयत्वम् ।

नापि शब्दादुत्पत्तेः, तस्य नित्यत्वेनाविकारित्वात्, क्रमेण कार्योत्पादविरोधात् सकलकार्याणां युगपदेवोत्पत्तिः स्यात् ।
१० कारणवैकल्याद्धि कार्याणि विलम्बन्ते नान्यथा । तच्चेदविकलं किम्परं तैरपेक्ष्यं येन युगपन्न भवेयुः ? किंच, अपरापरकार्यग्रामोऽर्था-
१५ अर्थान्तरम्, अनर्थान्तरं चोत्पद्येत ? तत्रार्थान्तरस्योत्पत्तौ-कथं 'शब्दब्रह्मविवर्तमर्थरूपेण' इति घटते । न ह्यर्थान्तरस्योत्पादे अन्यस्य तत्त्वभावमनाश्रयतः तद्द्रव्येण विवर्त्तो युक्तः । तद्वदर्थान्-
१५ न्तरस्य तैर्पत्तौ-तस्यानादिनिघनत्वविरोधः ।

ननु परमार्थतोऽनादिनिघनेऽभिन्नस्वभावेपि शब्दब्रह्मणि अविवर्त्तित्तिमिरोपहतो जनः प्रादुर्भावविनाशैवत् कार्यभेदेन विचित्रैमिव मन्यते । तदुक्तम्-

“यथा विशुद्धमाकाशं तिमिरोपैभुतो जनः ।

२० संकीर्णमिव मीत्राभिश्चिन्नाभिरभिमन्यते ॥

[बृहदा० भा० वा० ३।५।४३]

१ ब्रह्मा । २ उत्पादविनाशं । ३ नीलत्वपीतत्वादि । ४ विभिन्नानेकार्थस्वरूप-
वत् । ५ पदार्थैः सहैकत्वे । ६ ज्ञान । ७ प्रमेयभेदाद् ज्ञानभेद इति वचनात् ।
८ पदार्थेभ्यः । ९ शब्दब्रह्मस्वरूपवत् । १० शब्दब्रह्मणः । ११ कार्यैः । १२ घट-
पटादि । १३ शब्दब्रह्मणः । १४ भिन्नमभिन्नं वा । १५ पूर्वशुक्तं विवर्त्ततेऽर्थ-
भावेनेति । १६ अपरापरकार्यग्रामस्य । १७ शब्दब्रह्मणः । १८ अर्थान्तर ।
१९ अर्थान्तररूपेण । २० ब्रह्म । २१ सत्तां । २२ शब्दब्रह्मणः । २३ उत्पाद-
विनाशात्मकादर्थ्यादभिन्नत्वात् । २४ जनेदरूपे भेदरूपप्रतिभासः । २५ वस्तुः इवार्थे ।
२६ घटपटादि । २७ नानारूपं । २८ उपहतः । २९ संछिन्नम् । ३० रेखाभिः ।
३१ नानारूपाभिः ।

1 “स हि शब्दात्मा परिणामं गच्छन् प्रतिपदार्थं भेदं वा प्रतिपद्येत न वा ?”
तत्त्वसं० पृ० ७० । न्यायकु० प्र० परि० । सम्प्रति० टी० पृ० १८१ । स्वा०
रत्नाकर पृ० १०१ ।

तथेदममलं ब्रह्मनिर्विकारमविद्यया ।
कलुषैत्वमिवापन्नं मेदेरूपं प्रपश्यति” ॥

[बृहदा० भा० वा० ३।५।४४] इति ।

तदप्यसाम्प्रतम्; अत्रार्थे प्रमाणाभावात् । न खलु यथोपवर्णित-
स्वरूपं शब्दब्रह्म प्रत्यक्षतः प्रतीयते, सर्वदा प्रतिनियंताथस्वरूप-
ग्राहकत्वेनैवास्य प्रतीतेः । यच्च-अभ्युदयनिभेर्यसफलधर्माद्ब्रुवही-
तान्तःकरणा योगिन एव तत्पश्यन्तीत्युक्तम्; तदप्युक्तिमात्रम्;
न हि तैद्व्यतिरेकेणान्ये योगिनो वस्तुभूताः सन्ति येन 'ते
पश्यन्ति' इत्युच्येत । यदि च तैज्ज्ञाने तैस्य व्यापारः स्यात्तदा
'योगिनस्तस्य रूपं पश्यन्ति' इति स्यात् । यौवतोक्तप्रकारेण कार्ये १०
व्यापार एवास्य न संगच्छते । अविद्ययाञ्च तैद्व्यतिरेकेणासंभवा-
त्कथं मेदप्रतिभासहेतुत्वम् ? आकाशे च विद्येतिप्रतिभासहेतुभूतं
वास्तवमेवास्ति तिमिरम् इति न द्वैद्यान्तदार्ष्टान्तिकयोः
(साम्यम्) ।

नाप्यनुमानतस्तत्रैतिपत्तिः; अनुमानं हि कार्यलिङ्गं वा भवेत्, १५
स्वभावोदिलिङ्गं वा ? अनुपलब्धेर्विधिसाधकत्वेनानभ्युपगमात् ।
तत्र न तावत्कार्यलिङ्गम्; नित्यैकस्वभावात्ततः कार्योत्पत्तिप्रतिषे-
धात्, क्रमयोगपद्याभ्यां तैस्यार्थैर्क्रियारोधात् । नापि स्वभा-

१ उत्पादविनाशरहितं । २ मेदप्रकमे इवशब्दः । ३ इव । ४ इव । ५ पुरो-
वर्ति । ६ स्वर्गः । ७ मोक्ष । ८ वसः । ९ परेण भवता । १० ब्रह्मणः ।
११ परमार्थभूताः । १२ योगिज्ञाने । १३ ब्रह्मणः । १४ अहमिति जनकत्व-
लक्षणव्यापारः । १५ सावत्येन । १६ ब्रह्मणः । १७ घटते । १८ किंच ।
१९ ब्रह्म । २० मिथ्या । २१ तिमिरविषयोः । २२ ब्रह्म । २३ कारणलिङ्गं ।
२४ (अनुपलब्धिरूपो हि हेतुर्न विधिसाधकः) । २५ शब्दब्रह्मणः । २६ मदादि ।
२७ ब्रह्मणः । २८ कार्यं । २९ स्वरूपं ।

१ “विद्युद्ब्रह्मानसन्ताना योगिनोऽपि ततो न तत् ।

विदन्ति ब्रह्मणो रूपं ज्ञाने व्यापृत्य सकृदेः ॥ १५१ ॥

यदि हि ज्ञाने योगिने तस्य व्यापारः स्यात्तदा योगिनः तस्य रूपं पश्यन्तीति स्यात्
...” तत्त्वसं० पं० पृ० ७४ ।

२ “नचापि भवतां तद्व्यतिरेकिण्यविद्याऽस्ति” तत्त्वसं० पं० पृ० ७४ । सा०
रसा० पृ० ९९ । आस्रवा० सप्रु० टी० पृ० २३७ उ० ।

३ “आकाशे च नित्यप्रतिभासहेतुभूतं वास्तवमेव तिमिरं प्रसिद्धम्, अविद्यायाश्च
अवास्तवत्वेन विचित्रप्रतिभासहेतुत्वानुपपत्तितो द्वैद्यान्तदार्ष्टान्तिकयोः साम्याऽसंभवात् ।”
न्यायक० प्र० परि० । सा० रसा० पृ० ९९ ।

बलिक्रमः; शब्दब्रह्माख्यधर्मिण एवासिद्धेः । न ह्यसिद्धे धर्मिणि तत्त्वभावभूतो धर्मः स्वातन्त्र्येण सिद्धयेत् ।

येष्वोच्यते—‘ये यदाकारानुस्यूतास्ते तन्मया यथा घटशराबो-
दञ्चनादयो मृद्विकारा मृदाकारानुगता मृन्मयत्वेन प्रसिद्धाः,
५ शब्दाकारानुस्यूताश्च सर्वे भावा इति’; तदप्युक्तिमात्रम्; शब्दा-
कारान्वितत्वस्यासिद्धेः । प्रत्यक्षेण हि नीलादिकं प्रतिपद्यमानोऽ-
नौविष्टाभिलापमेव प्रतिर्पत्ता प्रतिपद्यते । कल्पितत्वाच्चोक्त्याऽ-
सिद्धिः । शब्दान्वितरूपाधारार्थासत्त्वेपि हि तैर्तदन्वितत्वेन त्वैया
कल्पन्ते । तथाभूताश्च हेतोः कथं पारमार्थिकं शब्दब्रह्म
१० सिद्धयेत् ? साध्यसाधनविकलञ्च दृष्टान्तो घटादीनामपि सर्वथै-
कमयत्वस्यैकान्वितत्वस्य चासिद्धेः । न खलु भावानां परमार्थनै-
करूपानुगमोस्ति, सर्वार्थानां समानाऽसमानपरिणामात्मकत्वात्
किञ्च, शब्दात्मकत्वेऽर्थानाम् शब्दप्रतीतौ सङ्केतोप्राहिणोप्यर्थे
सैन्वेद्दो न स्यात्तद्वत्तस्यापि प्रतीतत्वात्, अन्यथा तादात्म्य-
१५ विरोधः । अग्निपाषाणादिशब्दभ्रवणाश्च ओषधेः दाहामिघातादि-
प्रसङ्गः । तस्मानुमानतोपि तैर्प्रतीतिः ।

नाप्यागमात्, “सर्वे खल्विदं ब्रह्म” [मैत्र्यु०] इत्याद्यागमस्य
ब्रह्मणोऽर्थान्तरभावेद्वैतप्रसङ्गात्, अनर्थान्तरभावे तु तद्वदागम-
स्याप्यसिद्धिप्रसङ्गः । तैर्देवं शब्दब्रह्मणोऽसिद्धेर्न शब्दानुविद्धत्वं
२० सविकल्पकलक्षणं किन्तु समारोपविरोधिर्ब्रह्ममिति प्रति-
पत्तव्यम् ।

१ भवता परेण । २ शब्दमयाः । ३ हेतोः । ४ पदार्थ । ५ शब्देन रहितम् ।
६ शरा । ७ शब्दान्वितत्वस्य । ८ अर्थाः । ९ शब्द । १० परेण । ११ कल्पित-
शब्दान्वितत्वरूपात् । १२ विघट्टश । १३ पुरुषस्य । १४ अर्थं घटः पदो वेलादि ।
१५ शब्दवशीलादेरपि । १६ सन्देहश्चेत् । १७ अन्वयार्थमिदंशब्दस्य ओष-
सन्मन्वित्वात् । १८ न च तथास्ति । १९ ब्रह्म । २० आगमो भिन्नो ब्रह्मणः ।
२१ तस्मात्कारणात् उक्तप्रकारेण । २२ ज्ञानम् ।

१ “शब्दार्थयोश्च तादात्म्ये क्षुराक्षिमोदकादिशब्दोच्चारणे आत्मपाठनदहनपूर्यादि-
प्रसक्तिः । सन्तति० टी० पृ० ३८६ । शास्त्रवा० टी० पृ० २३७पृ० ।

२ “ ब्रह्म खल्विदं वाच सर्वम् ” मैत्र्यु० ४।६ ।

३ शब्दब्रह्मवादास्य विविधरीत्या खण्डनं निम्नग्रन्थेषु ब्रह्मव्यन्-मीमांसासो०
प्रलङ्घन० को० १७६ । न्यायमं० पृ० ५३१ । तत्त्वसं० पृ० ६७ । तत्त्वार्थको०
पृ० २४० । न्यायज्ञ० प्र० परि० । सन्तति० टी० पृ० ३८०, ४९४ । सा०
रत्ना० पृ० ८८ ।

ननु व्यवसायात्मकविज्ञानस्य प्रामाण्ये निखिलं तदात्मकं ज्ञानं प्रमाणं स्यात्, तथा च विपर्ययज्ञानस्य धारावाहिविज्ञानस्य च प्रमाणताप्रसङ्गात् प्रतीतिसिद्धप्रमाणेतरव्यवस्थाविलोपः स्यात्, इत्याशङ्क्याऽतिप्रसङ्गापनोदार्थम् अपूर्वार्थविशेषणमाह । अतोऽनयोरनर्थविषयत्वाविशेषत्राहित्वाभ्यां व्यञ्ज्येदः सिद्धः । यद्धाने-^५ नाऽपूर्वार्थविशेषणेन धारावाहिविज्ञानमेव निरस्यते । विपर्ययज्ञानस्य तु व्यवसायात्मकत्वविशेषणेनैव निरस्तत्वात् संशयादि-स्वभावसमारोपविरोधिग्रहणत्वात्तस्य ।

ननु संशयादिज्ञानस्यासिद्धस्वरूपत्वात्कस्य व्यवसायात्मकत्व-विशेषणत्वेन निरासः ? संशयज्ञाने हि धर्मी, धर्मो वा प्रति-^{१०} भाति ? धर्मी चेत्; स तात्त्विकः, अतात्त्विको वा ? तात्त्विकश्चेत्; कथं तद्दुःखेः संशयरूपता तात्त्विकार्थगृहीतिरूपत्वात्कर-तलादिनिर्णयवत् ? अथातात्त्विकः; तथाप्यतात्त्विकार्थविषय-त्वात् केशोण्डुकादिज्ञानवद् भ्रान्तिरेव संशयः । अथ धर्म-स-^{१५} स्थाणुत्वलक्षणः, पुरुषत्वलक्षणः, उभयं वा ? यदि स्थाणुत्वल-क्षणः; तत्र तात्त्विकाऽतात्त्विकयोः पूर्ववद्दोषः । अथ पुरुषत्व-^{२०} लक्षणः; तत्राप्ययमेव दोषः । अयोभयम्; तथाप्युभयस्य तात्त्विकत्वाऽतात्त्विकत्वयोः स एव दोषः । अथैकस्य तात्त्विकत्वमन्य-^{२५} स्यातात्त्विकत्वम्; तथापि तद्विषयं ज्ञानं तदेव भ्रान्तमभ्रान्तं चेति प्राप्तम् । अथ सन्दिग्धोर्थस्तत्र प्रतिभासते; सोपि विद्यते^{३०} न वैतैादिकैकैले तदेव दूषणम् । तत्र संशयो घटते । नापि विपर्ययस्तस्यापि स्मृतिप्रमोषाद्यभ्युपगमेनाव्यवस्थितेः ।

इत्यप्यसमीचीनम्; यतः संशयः सर्वप्राणिनां अलिप्तप्रति-पत्यात्मकत्वेन स्वात्मसंवेद्यः । स धर्मविषयो वास्तु धर्मविषयो

१ परः । २ षटोऽर्थं षटोऽप्यमिति । (निश्चयानन्तरं तेनैवाकारेण पुनः पुनर्यत्नवर्तते तज्ज्ञानम्) । ३ निश्चयात्मकत्वाविशेषात् । ४ परिहारः । ५ जैनैः । ६ प्रमाकरो ज्ञे [तत्सोपपन्नवादी] । ७ पुरुषः । ८ पुरुषत्वं । ९ सशयो धर्मो सशयरूपतापन्नो न भवतीति साध्यो धर्मः तात्त्विकार्थगृहीतिरूपत्वात् । १० गृहीतिग्रहणम् । ११ वसः । (वैति शब्दैकदेशेन बहुव्रीहिस्रहणं सकारात्समासार्थबोधः) । १२ उभयप्रतिभासे । १३ स्थाणुत्वस्य । १४ स्थाणो पुरुषत्वस्य । १५ उभयम् । १६ पूर्वोक्तं । १७ एक-मेव ज्ञानं । १८ परः । १९ सशयज्ञाने । २० तात्त्विकः । २१ अतात्त्विको वा । २२ उभयं ।

1—“तस्मिन् सन्देहज्ञाने किञ्चित्प्रतिभाति आहोस्तिन्न । यदि किञ्चित् प्रतिभाति स किं धर्मो, धर्मो वा ? तत्सोप० लि० पृ० २६ । सा० रत्ना० पृ० २४३ ।

वा तात्त्विकातात्त्विकार्थविषयो वा किमेभिर्विकल्पैरस्य बालाग्र-
मपि खण्डयितुं शक्यते ? प्रत्यक्षसिद्धस्याप्यर्थस्वरूपस्यापह्नवे
सुखदुःखादेरप्यपह्नवः स्यात् । कथं च 'धर्मविषयो धर्मविषयो
वा' इत्यादि प्रश्नहेतुकसंशयादि(धि)रूढेपवायं संशयं निराकुर्यात्
५ न चेदस्वस्थः ? किंच, उत्पादककारणाभावात्संशयस्य निरासः,
असाधारणस्वरूपाभावात्, विषयाभावाद्वा ? तत्राद्यः पक्षोऽ-
शुक्तः; तदुत्पादककारणस्य सङ्गावात्, स ह्याहितसंस्कारस्य
प्रतिपक्षुः समानाऽसमानधर्मोपलम्भानुपलम्भतो मिथ्यात्वकर्मो-
दये सत्युत्पद्यते । असाधारणस्वरूपाभावोप्यसिद्धः; चलितप्रति-
१० पत्तिलक्षणस्यासाधारणस्वरूपस्य तत्र सत्त्वात् । विषयाभावस्तु
दूरोत्सारित एव; स्थाणुत्वविशिष्टतया पुरुषत्वविशिष्टतया
वाऽनवधारितस्य ऊर्ध्वतासामान्यस्य तद्विषयस्य सङ्गावात् ।

एतेन विपर्ययनिरासोपि निराकृतः । तत्राप्युत्पादककारणादेः
सङ्गावाविशेषात् । किंच, अयं विपर्ययोऽर्थव्याप्तिम्, असत्त्व्या-
१५ तिम्, प्रसिद्धार्थव्याप्तिम्, आत्मव्याप्तिम्, सदसत्त्वार्थनिर्वच-
नीयार्थव्याप्तिम्, विपर्ययार्थव्याप्तिम्, स्वैरितिर्गोषं वामिमेत्य
निराक्रियेत प्रकारान्तराऽसम्भवात् ?

अर्थव्याप्तिं चेत्; तैथा हि जलवर्मासिनि ज्ञाने तावन्न जलस-
त्तालम्बनीभूतास्ति अर्धान्तत्वप्रसङ्गात् । जलाभावस्त्वैत्रं न
२० प्रतिभात्येव; तद्विधिपरत्वेनास्य प्रवृत्तेः । अत एव मरीचयोऽपि

१ संशयज्ञानस्य । २ त्वया परेण (अपि तु न) । ३ सुखमवयविरूपं परमाणु-
रूपं वा । न तावदाद्यः पक्षोऽनभ्युपगमात् । द्वितीयपक्षे तु प्रतिभासामात्रः स्यादिति ।
४ सञ्चयः । ५ प्राभाकरः [तत्त्वोपप्लववादी] । ६ संशयः । ७ ऊर्ध्वता । ८ छिर-
पाण्यादिमस्ववक्रकोटरादिमन्त्र । ९ अनिश्चितस्य । १० सञ्चयनिरासनिराकरणपरेण
अन्येन । ११ तत्तदादिनः प्रत्युच्यते । १२ चावार्कः । १३ तौत्रान्तिकमाध्यमिकौ ।
१४ साङ्ख्यः । वैदान्तिको भास्करियः । १५ विज्ञानाद्वैतवादी योगाचारः । १६ शाङ्क-
रीयः श्रद्धाद्वैतमायावादी च । १७ समयः । १८ नैयायिकवैशेषिकभाट्टवैभाषिकज्ञानः ।
१९ ईप् । (सप्तमी) । २० प्राभाकरः । २१ अप्रवेदनं । २२ अर्थस्य । २३ परः ।
२४ अस्य ज्ञानस्य विषयः कः जलं वा तदभावो वा मरीचयो वा अन्यद्वा । २५ मरी-
चिकानलज्ञाने । २६ अन्यथा । २७ मरीचिकायां । २८ जलासितत्वप्रधानत्वेन ।

१—अन्यैव भ्रष्टया सञ्चयस्वरूपविचारः (पूर्वपक्षः) तत्त्वोप० लि० पृ० २६ ।
(सप्तमः) स्या० रत्ना० पृ० १४३ । इत्यादिषु द्रष्टव्यः ।

२ "इदं रजतमिति प्रस्तुतज्ञाने रजतसत्ता विषयभूता तावन्नास्ति अर्धान्तत्वात्-
वद्वात्" न्यायकु० चं० प्र० परि० । स्या० रत्नाकर पृ० १२४ ।

नालम्बनम्; तत्त्वे वा तद्ग्रहणस्याभ्रान्तत्वप्रसङ्गः । तोयाकारेण मरीचिग्रहणमित्यप्ययुक्तम्; तदन्यत्वात् । न खलु घटाकारेण तदन्यस्य पटादेर्ग्रहणं दृष्टम् । ततो निर्गलम्बनं जलादिविपर्ययज्ञानम्; इत्यप्यविचारितरजनीयम्; विशेषतो व्यपदेशाभावप्रसङ्गात् । यत्र हि न किञ्चिदपि प्रतिभाति तत्त्वेन विशेषेण जल-५ ज्ञानं रजतज्ञानमिति वा व्यपदिश्येत? भ्रान्तिसुषुप्तावस्थयोर-विशेषप्रसङ्गश्च । न ह्यत्र प्रतिभासमानार्थव्यतिरेकेणान्योऽस्ति विशेषः । प्रतिभासमानश्च तज्ज्ञानस्यालम्बनमित्युच्यते । तन्नाख्यातिरेव विपर्ययः ।

सैल्यमेतत्; तथापि प्रतिभासमानोऽर्थः सद्रूपो विचार्यमाणो १० नास्तीत्यसत्ख्यातिरेचासीत् । शुक्तिकाशकले हि न शुक्तिंकादिप्रतिभासः, किं तर्हि? रजतप्रतिभासः । स च रजताकारस्तत्र नास्तीति;

तदयुक्तम्; ईर्यपरः । कस्मात्? असंतः खपुष्पादिवत्प्रतिभासासम्भवात् । भ्रान्तिवैचित्र्याभावप्रसङ्गश्च; न ह्यसत्ख्यातिवा-१५ दिनोऽर्थगतं ज्ञानगतं वा वैचित्र्यमस्ति येनानेकप्रकारा भ्रान्तिः स्यात् । तस्मात्प्रमाणप्रसिद्ध एवार्थो विचित्रैस्तत्र प्रतिभाति । न चोस्य विचार्यमाणस्यासत्त्वम्; विचारस्य प्रतीतिव्यतिरेकेणाऽन्यस्यासम्भवात् । प्रतीत्यबाधितत्वाच्च; करतलादेरपि हि प्रतिभासबलेनैव सत्त्वम्, स च प्रतिभासोऽन्यत्राप्यस्ति । यद्यप्युत्तर-२० कालं तथा सोऽर्थो नास्ति, तथापि यदा प्रतिभाति तदा तावद-

१ मरीचिविषयत्वे च । २ ज्ञानस्य । ३ ज्ञानस्य सत्यार्थग्राहकत्वात् । ४ तोयात् । ५ ज्ञाने । ६ निर्विषयं । ७ ज्ञाने । ८ ज्ञानं । ९ भ्रान्तज्ञाने । १० जल । ११ स्नादादिभिरुक्तम् । १२ माध्यमिकोऽनवीर । १३ कलादिः । १४ तज्ज्ञानस्याभ्रान्तताप्रसंगत्वात् । १५ विपर्ययः । १६ जल । १७ विपर्ययस्थले । १८ साहचर्यः । १९ शुक्तिरूप्या रजतज्ञानमेकचन्द्रे द्विचन्द्रज्ञानमिलादि । २० अर्थस्याऽसत्त्वात् । २१ ज्ञानत्वेनैकाग्रत्वात् । २२ सत्यभूतः । २३ नामाप्रकारः । २४ भ्रान्तत्वेन उपगते ज्ञाने । २५ रजतापर्ययः । २६ पूर्वकालवत् ।

१ विपर्ययज्ञाने अख्यातिवादस्य अनयैवानुपूर्व्यां विचारः न्यायकु० चं० प्र० परि० तथा सा० रत्ना० पृ० १२४ शलादिषु द्रष्टव्यः ।

२ “असतः प्रत्योपाख्याविरहितस्य खपुष्पादिवत् प्रतिभासाऽसंभवात्... भ्रान्तिवैचित्र्याभावप्रसंगश्च । न्यायकु० चं० प्र० परि० । सा० रत्नाकर पृ० १९५ ।

३ असत्ख्यातेः प्रतिविधानं न्यायवा० ता० टी० पृ० ८६, न्यायचं० पृ० १७७, न्यायकु० प्र० परि०, सा० रत्ना० पृ० १२५ । शलादिषु द्रष्टव्यम् । प्र० क० सा० ५

इत्येव, अन्यथा विशुदादेरपि सत्त्वसिद्धिर्न स्यात् । तस्मात्प्रसिद्धार्थस्यातिरेव युक्ताः

इत्यप्यसाम्प्रतम् ; यथावस्थितार्थगृहीतित्वाविशेषे हि भ्रान्ताऽ-
भ्रान्तव्यवहाराभावः स्यात् । अपि चोत्तरकालमुदकादेरभावेऽपि
५ तच्चिह्नस्य भूक्तिगद्यतादेरुपलम्भः स्यात् । न खलु विशुदादिवदुद-
कादेरप्याशुभावी निरन्वयो विनाशः कचिदुपलभ्यते । सर्वतद्देश-
द्रुष्णामविसंवादेनोपलम्भश्च विशुदादिवदेव स्यात् । वैष्यबाधक-
भावश्च न प्राप्नोति; सर्वज्ञानानामवित्थार्थविषयत्वाविशेषात् ।

यदर्प्युच्यते-ज्ञानस्यैवार्थमाकारोऽनाद्यऽविद्योपप्लवसामर्थ्याद्-
१० हिरिव प्रतिभासते । अनादिविचित्रवासनाश्च क्रमविर्यौकमत्यः
पुंसां सन्ति तेर्नैर्नैर्कार्येणि ज्ञानानि स्त्रीकारमौत्रसंवेद्यानि
क्रमेण भवन्तीत्यात्मस्यैवातिरेवेति; तदप्युक्तिमात्रम् ; यतः
स्त्रीत्ममात्रसंविद्धिनिष्ठत्वे अर्थाकारत्वे च ज्ञानस्यात्मख्यातिः
सिद्धेत् । न च तत्सिद्धम्, उत्तरत्रोभयस्यापि प्रतिषेधात् । सर्व-
१५ ज्ञानानां स्वाकारग्राहित्वे च भ्रान्ताऽभ्रान्तविवेको बाध्यबाधक-
भावश्च न प्राप्नोति, तत्र व्यभिचारभावाविशेषात् । स्त्रीत्मस्यित-
त्वेन रजताद्याकारस्य संवेदनेन च सुखाद्याकारवद्दृष्टितया

१ मरीचिकार्या जलकणोऽर्थः सत्यभूतः प्रतिभासमानत्वात् षट्पद । २ सर्व-
ज्ञानानामङ्गीक्रियमाणे । ३ सति । ४ तत्र प्रवृत्तस्य पुरुषस्य । ५ उत्तरकाले ।
६ विचारिते सति । ७ सत्यभूतार्थः । ८ ज्ञानादितवादिना योगान्तरेण । ९ भूक्ति-
कादौ रजताद्याकारः । १० अथयार्थविचित्राकिः । निष्प्रान्तिः । ११ ज्ञानात् ।
१२ छद्मोपवत्यः । १३ कारणेन । १४ अनाद्यविद्यासामर्थ्येन । १५ षटादि ।
१६ ग्राह्यग्राहक । १७ संवित्तिरूपाणि । १८ ज्ञान । १९ कतः । (वदुनीधि-
समास इत्यर्थः) । २० मरीचिकार्या जलकारः ज्ञानात्मा प्रतिभासमानत्वात्
ज्ञानस्वरूपवत् । २१ ज्ञानप्रतीतिः । २२ ज्ञानस्य । २३ सिद्धे । २४ इत्थं ।
२५ नीलकैशोष्णुकादिसर्वविकल्पानां । २६ आत्मस्वरूपमात्रे । २७ तस्य ज्ञान-
स्वात्मा स्वरूपं तत्र स्थितत्वेन । २८ बहिःस्थिततया ।

१ अनयैव रीत्या प्रसिद्धार्थस्यातेर्विचारः न्यायकु० पं० प्र० परि० । स्वा०
रत्ना० पृ० १२६ । इत्यादिषु दृष्टव्यम् ।

२ आत्मख्यातेर्निरूपणं न्यायमजयमित्थं दृश्यते (पृ० १७८)

“विज्ञानमेव खल्वैतद्गुहात्मानमात्मना ।

बहिनिरुच्यमाणस्य ग्राह्यत्वानुपपत्तितः ॥

बुद्धिः प्रकाशमाना च तेन तेनात्मनां बहिः ।

तद्दृश्यार्थशून्यापि लोफ्यात्रामिदेदृशीम् ॥”

प्रतीतिर्न स्यात् । प्रतिपत्ता च तदुपादानार्थं न प्रवर्त्तत, अबहिष्ठाऽ-
स्थिरत्वेन प्रवृत्त्यविषयत्वात् । अथाविद्योपप्लववशाद्बहिष्ठ-स्थिर-
त्वेनाध्यवसायैः, कथमेवं विपरीतख्यातिरेव नेष्टा, ज्ञानादभिन्न-
स्यास्थिरस्य चार्थाकारस्यान्यथाध्यवसायाभ्युपगमादिति ?

यञ्चोर्च्यते-न ज्ञानस्य विषयं उपदेशंगम्योऽनुमानसाध्यो वै ५
येन विपरीतोऽर्थः कल्प्येत । किं तर्हि ? यो यस्मिन् ज्ञाने प्रति-
भाति स तस्य विषय इत्युच्यते । जलादिज्ञाने च जलाद्यर्थं एव
प्रतिभाति न तद्विपरीतः, जलादिज्ञानव्यपदेशाभावप्रसङ्गात् । स
च जलाद्यर्थः सन्न भवति; तद्दुर्देरभ्रान्तत्वप्रसङ्गात् । नाप्यसन्;
रूपुष्पादिवत्प्रतिभासप्रवृत्त्योरविषयत्वानुपङ्गात् । नापि सद- १०
सङ्गणः; उभयवेषानुपङ्गात्, सदसतोरैकात्म्यविरोधाच्च । तस्मा-
द्यं बुद्धिसन्दर्शितोऽर्थः सत्त्वेनासत्त्वेनान्येन वा धर्मान्तरेण
निर्वच्युं न शक्यत इत्यनिर्वचनीयार्थख्यातिः सिद्धा; इत्यपि मनो-

१ प्रमाता । २ किंच । ३ रजतादि । ४ ज्ञानस्य क्षणिकत्वात् । ५ परः ।
६ रजतादेः । ७ अनिर्वचनीयार्थख्यातिवादिना शाङ्करीयेण । ८ विपरीतार्थख्याति
दूषयन् अनिर्वचनीयार्थख्यातिं समर्थयते । ९ रजतादिः । १० विपरीत इति ।
११ रजतमिदमिति ज्ञाने किरूपोऽर्थः प्रतिभासते इति प्रश्ने पर उपदेशं करोति । क्व
शुक्तिशकलमिति रजतमिदमिति ज्ञानं पुरोवातिवस्तुविषयं तत्रैव प्रवर्तकत्वात्सम्प्रति-
पन्नज्ञानवदित्यनुमानं रजतमिदमित्येतस्मिन् ज्ञाने प्रतिभासमानार्थसोपदेशगम्यत्वेऽनु-
मानसाध्यत्वे वा विपरीतार्थख्यातिः स्यात्प्रतिभासमानार्थस्यतिरेकेणार्थान्तरस्य सङ्गात्वात्
शुक्तिशकलस्य । १२ मरीचिकाचक्रे जलकक्षणः । १३ प्रतिभासमानादिपरीतोऽर्थः
शुक्तिशकलकक्षणः । १४ अन्यथा । १५ अन्यथा । १६ चरकाले वायुकाजुत्पत्ति-
प्रसङ्गात् । १७ उभयेन । १८ निरूपयितुं । १९ विवादापन्नो जलकक्षणोऽर्थः
सत्त्वाऽसत्त्वाच्चनिर्वचनीयः प्रतिभासमानत्वे सति बाध्यमानत्वान्यथानुपपत्तेः ।

१ आत्मख्यातेर्विचित्रीया पर्यालोचनं निम्नग्रन्थेषु द्रष्टव्यम्-न्यायवा० ता० टी०
पृ० ८५, आमतौ पृ० १४, न्यायर्म० पृ० १७८, न्यायकुसु० प्र० परि०, सा०
रत्ना० पृ० १२८ ।

२ "तत्किं मरीचिषु तोयनिर्भासप्रत्ययः तस्वगोचरः, तथा च समीचीन इति न
आप्तो नापि बाध्येत । अद्या न बाध्येत यदि मरीचीनतोयात्मतत्त्वा न तोयात्मना(१)-
गृहीयात् । तोयात्मना तु गृह्यन् कथमभ्रान्तः कर्म वाऽबाध्यः ? हन्त तोयाभावात्मनां
मरीचीनां तोयभावात्फलं तावन्न सत्; तेषां तोयामावादनेदेन तोयमानात्मताऽनु-
पपत्तेः । नाप्यसत्; वस्तुन्तरत्वेन हि वस्तुन्तरत्वात्सत्त्वमासीयते 'भावान्तरमभावो-
ऽन्यो न कश्चिदनिरूपणात्' इति वदद्भिः । ...तस्माच्च सत्, नापि सदसत्; ५
परस्परविरोधात्, इत्यनिर्वाच्यमेवारोपणीयं मरीचिषु तोयमासेयम् । तदनेन क्रमेण

एथमात्रम्; अद्वैतसिद्धौ ह्येतत्सिद्ध्येत्, तच्चाद्वैतं निराकरि-
ष्यामः । वैश्वोक्तम्-न ज्ञानस्य विषय उपदेशागम्य इत्यादि;
तद्भवतामेव प्राप्तम्, तथा हि—जलादिभ्रान्तौ नियतदेशकाल-
स्वभावः सदात्मकत्वेनैव जलाद्यर्थः प्रतिभाति तद्ग्रहणेऽस्तत्रैव
५ प्रवृत्तिदर्शनात् तत्कथमसौवनिर्वचनीयः स्यात् ? न ह्येवंभूते
प्रतिभासप्रवृत्तौ अनिर्वचनीयेऽर्थे सम्भवतः । अथ विचर्यमाण
एवासौ सदसत्त्वादिभिरनिर्वचनीयः सम्पद्यते न तु भ्रान्तिकाले
तथा प्रतिभातीति; नन्वेवमन्यथाप्रतिभासाद्विपरीतख्यातिरेव
स्यात् ।

- १० ननु विपरीतख्यातिरपि प्रतिभासविरोधांश्च युकेति । क एव-
माह—‘विपरीतोऽयमर्थः’ इति ख्यातिः ? किं तर्हि ? पुरुषविपरीते
स्थाणौ ‘पुरुषोऽयम्’ इति ख्यातिर्विपरीतख्यातिः । ननु पुरुषाव-
भासिनि ज्ञाने स्थाणोरप्रतिभासमानस्य विषयत्वमर्थ्युक्तं सर्वत्रो-
प्यव्यवस्थाप्रसङ्गात्; तदयुक्तम्; यतः स्थाणुरेवात्र ज्ञाने तद्गुणस्या-
१५ नवधारणादर्थैर्मादिवशाच्च पुरुषाद्याकारेणाध्यवसीयते । बाधो-
त्तरकालं हि प्रतिसेन्धचे स्थाणुरयं मे ‘पुरुषः’ इत्येवं प्रतिभात

१ मेदेन निरूपयितुमशक्यत्वमद्वैताभितं पुरुषाद्वैतान्ने तदसम्भवादित्यर्थः ।
२ भवदुक्तम् । ३ परेण । ४ अनुमानसाध्य । ५ अर्थोऽनिर्वचनीय इति उपदेश-
गम्येनेत्यादि । ६ रजतसर्पादि । ७ इति नियतदेशादित्स्वभावस्वार्थस्य सदात्मकप्रति-
भासमानस्योपदेशादनिर्वचनीयत्वं कथं स्यात् । रजतादिभ्रान्तौ प्रतिभासमानोऽर्थः
अनिर्वचनीयः सत्त्वादिना बाध्यमानत्वे सति प्रतिभासमानत्वान्यथातुपपत्तेरित्यर्थ-
स्योपदेशागम्यत्वमनुमानबाध्यत्वं च भवतामेवाप्यातम् । ८ सदात्मकविषयतद्ग्रहणेतु
निबन्धने । ९ रजतलक्ष्मणस्य । १० यदि । ११ उत्तरकाले । १२ अनिर्वचनीय
एव तत्काले सत्त्वेन भातीति । १३ अनिर्वचनीयार्थस्य अनिर्वचनीयरूपतया प्रति-
भासनात् । १४ परः । १५ विपरीतोयमर्थ इति प्रतिभासाभावाद । १६ चेत् ।
१७ परः । १८ अन्यथा । १९ षट्पटादिप्रतिभासिनि ज्ञाने । २० अप्रतिभासमानस्य
गुरुत्वस्य विपरीतत्वं स्यात् । २१ चेत् । २२ काचादिवोच । २३ प्रलभित्वान् ।

अध्यस्तं तोयं परमार्थतोयमित्थं अत एव पूर्वदृष्टमित्थं, तत्त्वतस्तु न तोयं न च पूर्वदृष्टम्,
किन्त्वद्वैतमनिर्वाच्यम्” । मामदी ५० १३ ।

“प्रत्येकं सदसत्त्वान्म्यां विचारपदवीं न यत् ।

शादते तदनिर्वाच्यमाहुर्वैदान्तवादिनः ॥” निरुद्धौ ५० ७९ ।

I ५० ५१ पं० ५ ।

२ अनिर्वचनीयार्थख्यातेर्विचारः भङ्गान्तरेण न्यायवा० ता० टी० ५० ८५,
न्यायकुसु० प्र० परि०, स्वा० रत्ना० ५० १३३ इत्यादिषु द्रष्टव्यः ।

इति, कथमेवं विपर्ययनिरासः तस्या एव तद्रूपत्वादिति ? सृष्टि-
प्रमोषाभ्युपगमेन तु विपर्ययप्रत्याख्यानमयुक्तम्, तस्यासिद्ध-
रूपत्वात् ।

ननु श्रुतिकायाम् 'इदं रजतम्' इति प्रतिभासो विपर्ययः, न
चासौ विचार्यमाणो घटते । नहि 'इदं रजतम्' इत्येकमेवेदं ज्ञानं^५
कारणाभावात्; तथाहि-न दोषैर्बहुरादीनां शक्तेः प्रतिबन्धः
क्रियते, कार्यानुत्पत्तिप्रसङ्गात् । न हि दुष्टा यवा विपर्यीतं कार्य-
माविर्भावयन्ति । अत एव प्रब्वसोऽपि । किञ्च, "सम्बद्धं वर्तमानं
च गृह्यते चक्षुरादिना" । [नी० श्लो० प्रलक्ष० श्लो० ८४] रजतस्य
चासम्बद्धत्वाद्वर्तमानत्वाच्च चक्षुषा कथं वर्तमानरजताकारः-^{१०}
वभासः स्यात् ? किं च कस्यायमाकारः प्रथिते ? न तावद्रजतस्य;
अवर्तमानत्वात् । नापि ज्ञानस्यैव; सैसिद्धान्तविरोधात् । किञ्च, "
अंगुहीवर्तजतस्येदं विज्ञानं नोपजायते, अतिप्रसङ्गात् । गृही-
वर्तजतस्य च 'तद्रजतमिदम्' इति स्यात्, इन्द्रियसंस्कारसादृश्य-

१ विपरीतव्याख्यान्युपगमप्रकारेण । २ विपरीतव्यापैः । ३ विवेकाख्यातिमि-
श्रित विपर्ययनिरासः क्रियते इति प्रमात्रेणोक्तं तं प्रत्याह । ४ परः । ५ एकत्वेन
ज्ञानोत्पत्तौ । ६ काषकामलादिदोषैः । ७ इदं रजतमिदं जडं । ८ वषाङ्कुर-
दन्यत् शास्त्राङ्कुरादि । ९ न हि वीजप्रभवंसोऽङ्कुरं जनयति । १० कारणभावः ।
११ वस्तु । १२ श्रुतिकार्या । १३ विषयभावः । १४ चक्षुषा जिते रजतज्ञाने ।
१५ वस्तुनः । १६ प्रकाशते । १७ जैनस्य । १८ स्वरूपाभावः । १९ महात् ।
२० ज्ञः । २१ इदं रजतमिति । २२ अन्यथा । २३ भूमवनक्षितोचितस्फारीदं
रजतमिति विज्ञानं भवतु । २४ ज्ञः । २५ इन्द्रियेणेदमंगुष्ठोक्तिं ज्ञानं संस्कारेण
तद्रूपमित्यंगुष्ठोक्तिसरणं सादृश्यदोषलक्षणान्यां कारणान्यां तद्रजतमिदमिति सामानाधि-
करण्यं भवति । नापि सादृश्यादेव केवलात् सामानाधिकरण्यं पूर्वं गृहीतरजतस्य ज्ञः
इत्यमाने सत्परजते तद्रजतमिदमिति सामानाधिकरण्यप्रसङ्गात् सादृश्याविषेवात् ।
नापि दोषात्केनचित्सामानाधिकरण्यं सम्भवेति तत्प्रसङ्गात् दोषलक्षणस्य कारणस्य
सम्भवेति विद्यमानत्वात् । तस्माद्भुवनं कारणं सादृश्यदोषौ ।

1 "शुद्धं च दुष्टतायाः कार्याऽक्षमत्वं न पुनः कार्यान्तरसामर्थ्यम्" ।

इहती ६० ५३ ।

"दोषा हि कारणानां सामर्थ्यं निवृत्तिं न पुनः कार्यान्तरजननसामर्थ्यमादधति, न
खड्गं ब्रह्मकुटजबीजं न्यमोषधानायै कल्पते, किन्तु न करोति कुटजधानम् ।"
न्यायशा० ता० टी० ६० ८८ । भावती ६० १४ । न्यायसं० ६० १७६ ।

2 "रजतप्रतिपत्तिश्च नियमन्वस्य जायते ।

तेनेयमिन्द्रियापीना संशुक्ते चैन्द्रियं पियम् ॥ १२ ॥"

प्रकरणं० ६० ३३ ।

दोषैर्जन्यमानत्वात् । किञ्च, शुक्तिकायां रजतसंसर्गो न तावद-
सन् प्रतिभासते, खे खपुष्पसंसर्गवत् असत्ख्यातित्वप्रसङ्गात् ।
नापि सन्; रजतस्य तत्रासत्त्वात् । ततो ज्ञानद्वयमेतत् 'इदम्'
इति हि पुरोव्यवस्थितार्थप्रतिभासनम्, 'रजतम्' इति च पूर्वो-
५ गतरजतस्मरणं सौहार्दयादेः कुतश्चिन्मिच्छात् । तत्र स्मरणमपि
स्वरूपेण नावभासत इति स्मृतिप्रमोषोऽभिधीयते । यत्र हि
'स्मरामि' इति प्रत्ययस्तत्र स्मृतेरप्रमोषः, न पुनर्यत्र स्मृतिवत्त्वेऽपि
'स्मरामि' इति रूपाप्रवेदनम् । प्रवृत्तिश्च मेदाऽग्रहणादेवोपपन्ना ।
ननु कोऽयं तदग्रहो नाम ? न तावदेकत्वग्रहः; तस्यैव विपर्यय-
१० रूपत्वात् । नापि तद्ग्रहणैर्प्रागभावः; तस्याऽप्रवृत्तिहेतुत्वात्,
प्रवृत्तिनिवृत्त्योः प्रमाणफलत्वादिति चेत्; न; मेदाऽग्रहणस-
त्त्विष्यस्य रजतज्ञानस्य प्रवृत्तिहेतुत्वोपपत्तेरिति ।

१ अन्यथा (असत्तः प्रतिभासे) । २ शुक्तिकायां । ३ बोधात् । ४ मनोदोषः ।
५ रजतज्ञानं । ६ प्रागकारेण । ७ ज्ञाने । ८ प्रवीतिः । ९ प्रत्ययस्मरणयोर्भि-
न्नयोरेकत्वेन ग्रहणं विपर्ययः । १० सत्यासत्यज्ञानयोरित्यादि । ११ विपरीत-
ख्यातित्वप्रसङ्गादित्यर्थः । १२ मेद । १३ ज्ञानस्य । १४ नावकोत्पत्तेः पूर्वं ।
१५ सहायस्य ।

१ "विज्ञानद्वयं चैतत् इदमिति प्रत्यक्षं रजतमिति स्मरणम् ।" इहवी ५० ५१ ।
"रजतमिदमिति नैकं ज्ञानम्, किन्तु द्वे यत्ते विज्ञाने । तत्र रजतमिति स्मरणं तस्मा-
ननुभवरूपत्वाच्च प्रामाण्यप्रसङ्गः । इदमित्यपि विज्ञानमनुभवंतुर्न प्रमाणमित्यत एव ।"
प्रकरणपं० पृ० ४३ ।

२ "शुक्तिकायां रजतज्ञानं स्मरामीति प्रमोषात् स्मृतिज्ञानमुक्तं युक्तं रजतादिषु—"
इहवी ५० ५३ ।
"स्मरामीति ज्ञानशून्यानि स्मृतिज्ञानान्येतानि" इहवी ५० ५५ ।
३—"सा च रजतस्मृतिर्न तदा स्वेन रूपेण प्रकाशते स्मरामीतिप्रत्ययानामात्"
न्यायपं० पृ० १७८ ।

३ "ग्रहणस्मरणे चेने विवेकानवभासिनी ॥ ३३ ॥

सम्यग्रनतनोवापु भिन्ने यथापि तत्त्वतः ।

तथापि भिन्ने जायातः मेदाग्रहसमवयवतः ॥ ३४ ॥

सम्यग्रनतनोवक्ष्य समक्षैकार्यगोचरः ।

ततो भिन्ने जनुष्ठा तु स्मरणग्रहणे इमे ॥ ३५ ॥

समानेनैव रूपेण केनचिन्नन्वते ज्ञानः ।

अवधारोऽपि तदुच्यः तत एव प्रवर्धते ॥ ३६ ॥

ज्ञानत्वेन च संविष्टेः मेदसाग्रहणेन च ।" प्रकरणपं० पृ० ३४ ।

अत्र प्रतिविधीयते—न दोषैः शैकेः प्रतिबन्धः प्रध्वंसो वा विधीयते, किन्तु दोषसमवधाने चक्षुरादिभिरिदं विज्ञानं विधीयते । दोषाणां चेदमेव सामर्थ्यं यत्तत्सन्धिधानेऽविद्यमानेष्वर्थे ज्ञानमुत्पादयन्ति चक्षुरादीनि । न चैवमसत्ख्यातिः स्यात्; सादृश्यस्यापि तद्भेदतुत्वात् । असत्ख्यातिस्तु न तद्भेदतुका, ५ खंपुष्पज्ञानवत् । रजताकारश्च प्रतिभासमानो न ह्योनस्य; संस्कारस्यापि तद्भेदतुत्वात् । दोषाद्धि संस्कारसहायादनुभूतस्यैव रजतस्यायमाकारः पुरोवर्तिन्यर्थे प्रतिभासते । न चैवं 'तद्रजतम्' इति स्यात्; दोषवशात्पुरोव्यैवस्थितार्थे रजताकारस्य प्रतिभासनात् । कथमन्यथा भवतोऽपि तद्रजतमिति प्रतिभासो न स्यात् ? ततो १० यथा तेषु सृष्टिप्रभोषैस्तथा दोषेभ्यः सैमानाधिकरण्येन पुरोवर्तिन्यवर्तमानरजताकारावभासः किन्न स्यात् ? अनेन 'तत्संसर्गः सैन्नसन्वा प्रतिभासते' इत्यपि निरस्तम् । न च विवेकौऽख्यातिसहायाद्रजतज्ञानात् प्रवृत्तिर्घटते; 'घटोयम्' इत्याद्यभेदज्ञानात्प्रवृत्तिप्रतीतेः । विवेकाख्यातिश्च भेदे सिद्धे सिद्धेत । न १५ अत्र ह्योनभेदः कुतश्चित् सिद्धः, तथापि तत्कल्पने 'घटोयम्' इत्यादावपि ज्ञानभेदः कल्प्यतामविशेषैत् । अर्थोत्र सतो घटस्य ग्रहणात्सासौ कल्प्यते; तर्हि अन्यत्राप्यसतो ग्रहणात्तत्कल्पना माभूत् । यथैव हि गुणान्वितैश्चक्षुरादिभिः सति वस्तुन्येकं ज्ञानं जन्यते, तथा दोषान्वितैः सादृश्यवशादसत्येकं ज्ञानं जन्यते । २०

१ परोके प्रत्युत्तर दीयते जनैः । २ कानकाम्बुदिभिः । ३ नेत्रादीनां । ४ रजतं । ५ रजते । ६ पूर्वदृष्टरजतेन शुक्तिकायाः सादृश्यं । ७ अन्यथाख्यातिः । ८ विषयैवज्ञानस्य सादृश्यं हेतुः । ९ सादृश्यहेतुका । १० सादृश्यहेतुः । ११ एवं तर्हि आत्मख्यातिः स्यात् । १२ न ज्ञानस्य आकारः आत्मख्यातिप्रसङ्गात् । १३ रजतज्ञानं । १४ शुक्तिज्ञानं । १५ रजतमिदमिति ज्ञानस्य सादृश्यविनम्बनत्वेन । १६ पूर्वं रजतानुभवोऽविशेषात् । १७ परस्य । १८ अभावः । १९ तद्रजतमित्येतदभिधेद रजतमिति ज्ञानं तथा ते प्रभोषनसांभ्यायते । २० इदं रजतमिति इदंरजतपरो-काधिकरणत्वेन । २१ शुक्तिकादी । २२ सर्वथासञ्चिति वस्तुं न शक्यते सहशक्य-स्यानुभूयमानत्वात्सर्वथाऽसञ्चिति वस्तुं न शक्यते अनुभूतरजतस्य पुरोदेशे असम्भवात् कथञ्चिदनुभव इति इति भावः । २३ भेदाऽप्रहर्षणं । २४ इदं रजतमित्यत्र । २५ इदं प्रत्यक्षं रजतमिति सरणम् । २६ प्रमाणात् । २७ ज्ञानभेदसिद्ध्यावशम् । २८ परः । २९ घटोयमित्यत्र । ३० इदं रजतमित्यत्र । ३१ नैर्यन्थादि ।

१ तु०—“यतो न तैस्तस्याः प्रतिबन्धः प्रध्वंसो वा विधीयते, किन्तु सप्तभिधाने रजतमिदमिति ज्ञानमेवोत्पाद्यते”
न्यायकुसु० प्र० परी० ।

गुणदोषाणां च सद्भावं ज्ञानजनकत्वं च स्वतःप्रामाण्यप्रतिषेध-
प्रस्तावे प्रतिपादयिष्यामः । न च प्रभाकरमते विवेकौख्यातिः
सम्भवति, तत्र हि 'इदम्' इति प्रत्यक्षं 'रजतम्' इति च स्वरण-
मिति संविचिंद्ध्यं प्रसिद्धम्, तच्चाऽऽत्मैर्भाकौत्येनैवोत्पद्यते ।
५ आत्मप्राकट्यं चान्योन्यभेदग्रहणेनैव संबध्यते घटपटादिसंवि-
त्तित्वात् । किञ्च, विवेकख्यातेः प्रागभावो विवेकौख्यातिः । न
चाभावः प्रभाकरमतेऽस्ति ।

कश्चायं स्पृतेः प्रमोषः—किं स्पृतेरभावः, अर्थावभासो वा
स्यात्, विपरीताकारवैदित्वं वा, अतीतकालस्य वर्तमानतया
१० ग्रहणं वा, अंजुभवेन सह क्षीरोदकवदविवेकैर्नोत्पादो वा प्रकार-
न्तरासम्भवात् ? तत्र न तावदाद्यः पक्षः; स्पृतेरभावे हि कथं
पूर्वदृष्टरजतप्रतीतिः स्यात् ? मूर्च्छाद्यवस्थायां च स्पृतिप्रमोषव्य-
पदेशः स्यात् तदभावाविशेषात् । अथात्र 'इदम्' इति मासाम-
वाभासौ; ननु 'इदम्' इत्यत्रापि किं प्रतिभातीति वैकव्यम् ?
१५ पुरोव्यवस्थितं शुक्तिकाशकलमिति चेत्; ननु सैवसंविशिष्टत्वेन
तत्तत्र प्रतिभाति, रजतसन्निहितत्वेन वा ? प्रथमपक्षे कुतः
स्पृतिप्रमोषः ? शुक्तिकाशकले हि स्वगतधर्मविशिष्टे प्रतिभास-
माने कुतो रजतस्वरणसम्भवो यतोऽस्य प्रमोषः स्यात् ? न खलु

१ किं च । २ ता (पक्षी) । ३ भेदाप्रतिभास इत्यर्थः । ४ ज्ञानद्वयं । ५ स्वरुपं ।
६ भाविर्भाव । ७ भेदस्याप्रतिभासः । ८ अभावः । ९ सूर्यमागद्भवत्तदस्पष्टकारुण्यद्वयत्वं
शुक्तिकाशकलसावभासः । १० सूर्यमागद्भवत्तदस्पष्टकारुण्यद्वयत्वं । ११ अतीतः
कालो यस्य रजतस्य तदिदमतीतकालं तस्मातीतकालस्य रजतस्य । १२ प्रलभेन
सह स्पृतेः । १३ स्पृतेरभेदेन । १४ अन्वयात् । १५ स्पृतेः ? (मूर्च्छाद्यवस्था-
यात्) । १६ जैननामद्वये प्रामाण्यः । १७ महत्त्वात् । १८ प्रामाण्यप्रतिपादः ।
१९ नो प्रामाण्यः । २० अल्पवस्तुत्वादिः । २१ सुन्दरत्वेन । २२ न कुतोऽपि
स्पृतिप्रमोषो भवेत् । २३ व्यस्यति । २४ न कुतोऽपि ।

1 गु०—“कोऽयं विप्रमोषो नाम—किन्नुपवाक्यरत्नीकरणम्, स्वरुणकारुण्यजनो
वा, पूर्वोदगृहीतित्वं वा, इन्द्रियार्थसन्निकर्षावत्त्वं वा, इन्द्रियार्थसन्निकर्षावत्त्वं वा ।”

तस्मात्पुत्र लि० ५० २५ ।

“कोऽयं स्पृतेः, प्रमोषो नाम—विनाशः, प्रलभेन सदैकत्वान्भवत्प्राप्तः, प्रलभक-
त्वापत्तिः, तदित्यर्थस्वाऽऽनुभवः, क्षीरोलावभासं वा ।”

न्यायकुण्डु० प्र० परि० ।

सा० रत्ना० ५० १२० ।

“किं स्पृतेरभावः, यद्य अर्थावभासः, भावोत्पत्त्याकारवैदित्वम् इति निरुक्ताः”

तन्मति० वी० ५० २८ ।

घटे गृहीते पटस्तरणसम्भवः । अथ शुक्तिकारजतयोः सादृश्या-
च्छुक्तिकाप्रतिभासे रजतस्तरणम्, न; अस्याऽकिञ्चित्करत्वात् ।
यदा ह्यसाधारणैर्घर्मान्यासितं शुक्तिकास्वरूपं प्रतिभाति तदा
कथं संहशवस्तुस्तरणम्? अन्यथा सर्वत्र स्यात् । सामान्यमात्र-
ग्रहणे हि तैत् कदाचित्स्यादपि नाऽसाधारणस्वरूपप्रतिभासे । ५
द्विचन्द्रादिषु च जातितैमिरिकप्रतिभासविषये सद्दशवस्तुप्रति-
भासाभावात् कथं स्मृतेरुत्पत्तिर्यतः प्रमोषः स्यात्? नापि तैत्स-
भिहितत्वेन प्रतिभासः; रजतस्य तत्रासत्त्वेन तत्सन्निधानायो-
गात् । इन्द्रियसम्बद्धानां च तद्दर्शवर्तिनां परमाण्वादीनामपि
प्रतिभासः स्यात् तद्देशेषात् । नाप्यन्यावर्मासोऽसौ; स हि किं १०
तैत्कालभाषी, उत्तरकालभाषी वा स्यात्? तैत्कालभाषी चेत्; तर्हि
घटादिज्ञानं तैत्कालभाषि तस्याः प्रमोषः स्यात् । नाप्युत्तरकाल-
भाव्यन्यावर्मासोऽस्याः प्रमोषः; अतिप्रसङ्गात् । यदि हि उत्तरकाल-
भाव्यन्यावर्मासः समुत्पन्नस्तर्हि पूर्वज्ञानस्य स्मृतिप्रमोषत्वेनासौ
नाभ्युपगमनीयः, अन्यथा सकलपूर्वज्ञानानां स्मृतिप्रमोषत्वेना- १५
भ्युपगमनीयः स्यात् । किञ्च, अन्यावर्मासस्य सद्भावे परिस्फुट-
वर्षुः स एव प्रतिभातीति कथं रजते स्मृतिप्रमोषः? निखिला-
न्यावर्मासानां स्मृतिप्रमोषेतापत्तेः । अथ विपरीताकारवेदित्वं
तस्याः प्रमोषः; तर्हि विपरीतख्यातिरेव । कश्चासौ विपरीत
आकारः? परिस्फुटार्थावभासित्वं चेत्; कथं तस्य स्मृतिप्रमोष- २०
न्धित्वं प्रत्यक्षाकारत्वात्? तत्सम्बन्धित्वे वा प्रत्यक्षरूपतैवास्याः
स्यान्न स्मृतिरूपता । नाप्यतीतकालस्य वर्तमानतया ग्रहणं तस्याः
प्रमोषः; अन्यैस्मृतिवत्तस्याः स्पष्टवेदनाभावाज्जुपङ्गात्, न चैवम् ।

१ सादृश्यम् । २ अकिञ्चित्करत्वेन भावयन्ति । ३ स्पष्टादि । ४ शुक्ति-
काशकलम् । ५ रजतादिसद्दशवस्तु । ६ सन्निहितशुक्तिकाशकलप्रतीती वाचकोत्तर-
कालं शुक्तिकाशकलप्रतीती च घटादी वा । ७ सद्दशवस्तुस्तरणम् । ८ विशेष ।
९ स्मृतेः सादृश्यनिबन्धनत्वे इत्यत्र किं च । १० जन्मना । ११ रजत । १२ शुक्ति-
कायाम् । १३ किञ्च । १४ शुक्तिकादेशवर्तिनाम् । १५ रजतेन सन्निहितत्वम् ।
१६ परमाण्वा । १७ स्मृतिप्रमोषः । १८ रजतस्तरण । १९ रजतस्तरणम् ।
२० रजतस्तरणम् । २१ स्मृतेरभावः । २२ स्मृतेः । २३ रजतम् । २४ परेण
अभावात् । २५ शुक्तिकाशकलम् । २६ विशदस्वरूपः । २७ शुक्तिरूपम् । २८ सभावात् ।
२९ अन्यथा । ३० अभावरूपतापत्तेः । ३१ स्मृतिविपरीतम् । ३२ पदार्थानां ।
३३ स्मृतेः । ३४ परिस्फुटार्थावभासित्वाकारस्य । ३५ स्मृतेः । ३६ रजतस्य ।
३७ स्तरणम् । ३८ स्मृतेः । ३९ वेदकादिस्मृतिवत् । ४० शुक्तिकार्या रजतस्मृतेः ।

अतीतकालस्य स्पाष्टयेनाधिकस्य संवेदनं स इति चेत् । न; तत्र परमार्थतः स्पाष्ट्यसद्भावे अतीन्द्रियार्थवेदिनो निषेधो न स्यात्, तत्स्मृतिवत् अन्यस्योपीन्द्रियमन्तरेण वैशद्यसम्भवात् । अर्थात् पारस्पर्येणोन्द्रियादेव वैशद्यम्; न; तद्विशेषात्सर्वस्यास्तत्त्वस-
 ५ ज्ञात् । अथानुभवेन सह क्षीरोदकवदविवेकेनोत्पादोऽस्याः प्रमोषः; ननु कोयमविवेको नाम-भिन्नयोः सर्तोरमेदेन ग्रहणम्, संश्लेषो वा, आनन्तर्येण उत्पादो वा? प्रथमपक्षे विपरीतव्यातिरेव । संश्लेषस्तु ज्ञानयोर्न सम्भवत्येव, अस्य मूर्च्छद्वयव्येव प्रतीतेः । आनन्तर्येणोत्पादस्य स्मृतिप्रमोषरूपत्वे अनुमेयशब्दार्थेषु देवद-
 १० चादिज्ञानानां स्मरणानन्तरभाविनां स्मृतिप्रमोषताप्रसङ्गः स्यात् ।

यदि च द्विचन्द्रादिवेदनं स्मरणम्, तर्हीन्द्रियान्वयव्यतिरेकानुविधायि न स्यात्, अन्यत्र स्मरणे तद्वर्द्धेः । तदनुविधायि चेदम्, अन्यथा न किञ्चित्चतुर्विधायि स्यात् । तद्विकारविकारित्वं चैत यव दुर्लभं स्यात् । किञ्च, स्मृतिप्रमोषपक्षे बाधकप्रत्ययो न
 १५ स्यात्, स हि पुरोवर्त्तिन्यर्थे तत्प्रतिभासस्यासद्विषयतामादर्शयन् 'नेदं रजतम्' इत्युल्लेखेन प्रवर्त्तते, न तु 'रजतप्रतिभासः स्मृतिः' इत्युल्लेखेन । स्मृतिप्रमोषाभ्युपगमे च स्वतःप्रामाण्यव्याधितः, सम्यग्रजतप्रतिभासेऽपि ह्याशङ्कोत्पद्यते 'किमेष स्मृतावपि स्मृतिप्रमोषः, किं वा सत्यप्रतिभासे' इति, बाधकामावापेक्षणात्-
 २० यत्र हि स्मृतिप्रमोषस्तत्रोत्तरकालमवश्यं बाधकप्रत्ययो यत्र तु तदभावस्तत्र स्मृतेः प्रमोषासम्भवः । बाधकामावापेक्षायां चानवस्था । तस्मात् 'इदं रजतम्' इत्यत्र ज्ञानद्वयकल्पनाऽसम्भवा-

१ रजतस्मृतौ । २ सर्ववत् । ३ रजत । ४ संवेदनस्य । ५ स्मृतिविषयं रज-
 तमतीन्द्रियम् । ६ रजतस्मरणे । ७ इति चेत् । ८ प्रत्यक्षस्मरणयोः । ९ सम्भवः ।
 १० अनुमेयायोऽस्यादिः । ११ असद्विहितार्थग्राहकज्ञानस्य स्मृतिव्यतिरिक्तता
 दूषणम् । १२ किञ्च । १३ घटादौ । १४ तदप्रतीयेः । १५ घटादिज्ञानं प्रत्यक्षं ।
 १६ इन्द्रियम् । १७ काचादि । १८ ता (पक्षी) । १९ द्विचन्द्रादि । २० ज्ञानस्य ।
 २१ तस्य काचकामलादिसा द्विचन्द्रादिग्राहित्वेन परिणामित्वम् । २२ इन्द्रियान्वय-
 व्यतिरेकानुविधायित्वाभावादेव द्विचन्द्रज्ञानस्य स्मरणत्वादेव वा । २३ शुकिकाशकले ।
 २४ रजतम् । २५ उत्तरकाले । २६ परेण । २७ ज्ञाने । २८ रजतस्य । २९ घटदेव
 भाषयति । ३० ज्ञाने । ३१ किञ्च । ग्रन्थानवस्था ।

त्वसृष्टिप्रमोषामावः । ततः सूक्तम्-विपर्ययज्ञानस्य व्यवसायात्मक-
त्वविशेषणेनैव निरास इति ।

तेनापूर्वार्थविशेषणेन धारावाहिविज्ञानं निरस्यते । नैन्वेवमपि
प्रमाणसम्बन्धवादिताव्याघातः प्रमाणप्रतिपक्षेऽर्थे प्रमाणान्तरा-
प्रतिपत्तिः; इत्यचोद्यम्; अर्थपरिच्छित्तविशेषसङ्गावे तत्प्रवृत्तेर-
प्यभ्युपगमात् । प्रथमप्रमाणप्रतिपक्षे हि वस्तुन्याकारविशेषं
प्रतिपद्यमानं प्रमाणान्तरम् अपूर्वार्थमेव वृक्षो न्यग्रोध इत्यादिवत् ।
एतदेवाह-

अनिश्चितोऽपूर्वार्थः ॥ ४ ॥

स्वरूपेणाकारविशेषरूपतया चानैवगतोऽखिलोप्यपूर्वार्थः । १०

दृष्टोपि समारोपात्तादृक् ॥ ५ ॥

न केवलमप्रतिपन्न एवापूर्वार्थः, अपि तु दृष्टोऽपि प्रतिपन्नोपि
समारोपात् संशयमदिसङ्गावात् तादृगपूर्वार्थोऽधीतानभ्यस्त-
शास्त्रवत् । एवंविधैर्धर्मस्य यन्निश्चयात्मकं विज्ञानं तत्सकलं प्रमाणम् ।
तन्न अनैर्धिगतायार्थिगन्तृत्वमेव प्रमाणस्य लक्षणम् । तद्वि १५

१ यतो विपर्ययज्ञानादिक समर्थितम् । २ कारणेन । ३ भाङ्गः शङ्कते । ४ नहूनं
प्रमाणानामेकसिद्धये प्रवृत्तिः प्रमाणसम्बन्धः । ५ नैनानां विरोधः । ६ प्रत्यक्षादि ।
७ स्वच्छादिलक्षण । ८ अपूर्वः अर्थो यस्य । ९ स्वच्छादिमत्त्वेन । १० अद्यातः ।
११ दृष्टोपि समारोपात्तादृगिति सूत्रम् । १२ अपूर्वस्य । १३ पूर्वाग्रहीतार्थमादि ।
१४ सर्वथा ।

1 विवेकाख्याति-अख्यात्वपरपर्यायस्यास्य सृष्टिप्रमोषस्य विविधरीत्या मीमासा-
न्यायवा० ता० टी० पृ० ८८, भामती पृ० १४, प्रश्न० कन्दली पृ० १८०,
न्यायमं० पृ० १७६, विवरणप्रमेय सं० पृ० २८, न्यायलीलाव० पृ० ४१, तत्त्वो-
पप्लव लि० पृ० २५, न्यायकुसु० प्र० परि०, सन्मति० टी० पृ० २८, १७६ ।
स्या० रत्ना० पृ० १०४ हलादिद्वु समबलोकनीया ।

2 "प्रमातुः प्रमातव्येऽर्थे प्रमाणाणां सङ्करोऽभिसम्बन्धः ।"

न्यायमा० १।१।१ पृ० १९ ।

3 "उपयोगविशेषसामाये प्रमाणसम्बन्धवसाऽनन्युपगमात् । सति हि प्रतिपत्तु-
प्रमोषविशेषे देशादिविशेषसमवधानाद् आगमात्मप्रतिपन्नमपि हिरण्यरेतसं स पुनरनुमा-
नामतिपित्तते सप्रतिपन्नपूर्मादिविशेषसाक्षात्करणसत्प्रतिपत्तिविशेषवदनात् । पुनस्तमेव
प्रत्यक्षतो तुमुत्सवे सत्करणसम्बन्धात्तद्विशेषप्रतिभासत्तिदेः" । अदृष्टादृ० पृ० ४ ।

4 "औपचिकीरिा दोषः कारणस्य निवार्यते ।

अवाचोऽभ्यतिरेकेण स्वतत्त्वेन प्रमाणता ॥ १० ॥

सर्वस्वानुपलब्धेऽर्थे प्रामाण्यं सृष्टितिरन्यथा ।" मीमांसासौ० पृ० ११०४

वस्तुन्यधिगतेऽनधिगते वाऽव्यभिचारादिविशिष्टां प्रमां जनयन्नो-
 पालेभ्यविषयः । न चाधिगतेऽर्थे किं कुर्वत्तत्रमाणतां प्राप्नोतीति
 वक्तव्यम् ? विशिष्टप्रमां जनयतस्तस्य प्रमाणताप्रतिपादनात् । यत्र
 तु सा नास्ति तत्र प्रमाणम् । न च विशिष्टप्रमोत्पादकत्वेऽप्यधिगत-
 ५ विषयेऽस्याऽकिञ्चित्करत्वम् ; अतिप्रसङ्गात् । न चैकान्ततोऽनधि-
 गतार्थाधिगन्तुत्वे प्रामाण्यं प्रमाणस्यावसीतुं शक्यम् ; तद्व्यर्थ-
 तथाभावित्वलक्षणं संवादादवसीयते, स च तदर्थोत्तरही-
 नवृत्तिः । न चानधिगतार्थाधिगन्तुरेव प्रामाण्ये संवादप्रत्ययस्य
 तद् घटते । न च तेनाप्रमाणमृतेन प्रथमस्य प्रामाण्यं व्यवस्थापयितुं
 १० शक्यम् ; अतिप्रसङ्गात् । न च सामान्याविशेषयोस्तादात्म्याभ्युपगमे
 तस्यैकान्ततोऽनधिगतार्थाधिगन्तुत्वं सम्भवति । ईदानींतन्नास्तित्व-
 (इदानीन्तनास्तित्व)स्य पूर्वस्तित्वाद्भेदात् तस्य च पूर्वमप्य-
 धिगतत्वात् । कार्यञ्चिदनधिगतार्थाधिगन्तुत्वे त्वस्यैतन्मतप्रवेशः ।
 निश्चिते विषये किञ्चिद्व्ययान्तरेण अपेक्षावत्त्वप्रसङ्गात् ; इत्यप्यवा-

१ अर्थपरिच्छिन्ति । २ दोष । ३ निश्चिते । ४ कार्य । ५ परेण । ६ प्रामा-
 न्यतरस्य । ७ ज्ञाने । ८ विशिष्टप्रमाणनकता । ९ ज्ञानं । १० विशिष्टप्रमोत्पादकत्वे
 यद्यकिञ्चित्करत्वं तदा सर्वथाऽदृष्टेऽर्थे प्रमाणनकस्य ज्ञानस्याकिञ्चित्करत्वं सादृशिशिष्टप्रमो-
 त्पादकत्वस्याविशेषात् । ११ किञ्च । १२ सर्वथा । १३ निश्चेतुं । १४ संवादः ।
 १५ पूर्वज्ञानार्थे । १६ ईप् (सप्तमी) । १७ तदर्थव्याप्ती उत्तरज्ञानवृत्तिश्च ।
 १८ ज्ञानस्य । १९ संवादात् । २० द्वितीयज्ञानेन । २१ गृहीतार्थग्राहित्वात् ।
 २२ ज्ञानस्य । २३ न ह्यज्ञातमस्तीति वक्तुं शक्यं तस्याज्ञातत्वविरोधाच्चैवाधिकः ।
 २४ संशयादिना प्रथमज्ञानस्य प्रामाण्यप्रसङ्गात् । २५ किञ्च । २६ वृक्षवदादि ।
 २७ प्रमाणस्य । २८ वद । २९ अधिगतार्थाधिगन्तुत्वात् । ३० वृक्ष । ३१ विशेषा-
 पेक्षया । ३२ जैन । ३३ प्रयोजनं । ३४ अन्यथा ।

“यतश्च विशेषणत्रयमुपादानेन सूत्रकारेण कारणदोषबाधकरहितमगृहीतमाहि ज्ञानं
 प्रमाणमिति प्रमाणलक्षणं सूचितम् ।” शास्त्रदीपिका पृ० १५२ ।

५ तु०—“यतः प्रमाणं वस्तुन्यधिगतेऽनधिगते वाऽव्यभिचारादिविशिष्टां प्रमां जन-
 यन्नोपालेभ्यविषयः । न चाधिगते वस्तुनि.....” सम्प्रति० टी० पृ० ५६६ ।

१ “नचैकान्ततोऽनधिगतार्थाधिगन्तुत्वे प्रामाण्यं तस्यावसातुं शक्यम्...”
 सम्प्रति० टी० पृ० ५६६ ।

२ “इदानीन्तनास्तित्वस्य पूर्वस्तित्वाद्भेदात् तस्य च पूर्वमप्यधिगतत्वसंभवात्”
 सम्प्रति० टी० पृ० ५६६ ।

च्यम् । भूयो निश्चये सुखादिसाधकत्वविशेषप्रतीतेः । प्रथमतो हि वस्तुमात्रं निश्चीयते, पुनः 'सुखसाधनं दुःखसाधनं वा' इति निश्चि-
त्योपादीयते त्व्यज्यते वा, अन्यथो विपर्ययेणाप्युपादानत्यागप्रसङ्गः
स्यात् । केषाञ्चित्सकृद्दर्शनेपि तन्निश्चयो भवति अभ्यासादिति एक-
विषयाणामप्यागमानुमानाध्यक्षाणां प्रामाण्यमुपपन्नम् प्रतिपत्ति-
विशेषसद्भावात् । सामान्याकारेण हि वचनात्प्रतीयते वह्निः, अनु-
मानादेशादिविशेषविशिष्टः, अध्यक्षत्वाकारनियत इति । ततोऽ-
युक्तसुकम्-

“तत्रापूर्वार्थविज्ञानं निश्चितं बाधवर्जितम् ।

अनुष्टुकारणारब्धं प्रमाणं लोकसम्मतम् ॥” [] इति । १०
प्रत्यभिज्ञानस्यानुभूतार्थग्राहिणोऽप्रामाण्यप्रसङ्गात्, तथो च कथ-
मतेः शब्दात्मोदिर्नित्यत्वसिद्धिः ? न चानुभूतार्थग्राहित्वमस्यो-
सिद्धम् ; स्मृतिप्रत्यक्षप्रतिपत्तेऽर्थे तत्रप्रवृत्तेः । न ह्यप्रत्यक्षेऽस्यै-
माणे चार्थे प्रत्यभिज्ञानं नाम; अतिप्रसङ्गात् । पूर्वोत्तरावस्थान्ये-
कत्वे तस्य प्रवृत्तेरयमदोषः; इति चेत्; किं ताभ्यामेकत्वस्य भेदः, १५
अभेदो वा? भेदे तत्र तस्याप्रवृत्तिः । न हि पूर्वोत्तरावस्थाभ्यां भिन्ने
सर्वथैकत्वे तत्परिच्छेदिज्ञानाभ्यां जन्यमानं प्रत्यभिज्ञानं प्रवर्त्तते
अर्थान्तरैकत्वेवत्, अन्तरेप्रवेशश्च । ताभ्यामेकत्वस्य सर्वथाऽ-

१ परेण । २ ज्ञानात् । ३ निश्चयान्तरानङ्गीकारे । ४ सुखसाधनत्वदुःखसाधन-
त्वनिश्चय उत्तरज्ञानात् भवति चेत् । ५ भ्यलासेन । ६ प्रवृत्त्या । ७ एकदा ।
८ दूयादेः । ९ भाट्टेन । १० परप्रमाणलक्षणनिराकरणे च सति । ११ सर्वथा ।
१२ गृहीतग्राहित्वेन प्रत्यभिज्ञानस्याप्रामाण्ये च । १३ प्रत्यभिज्ञानात् । १४ वसः ।
१५ प्रत्यभिज्ञानस्य । १६ उत्तरप्रत्यक्ष । १७ तस्य । १८ नैर्वादी प्रत्यभिज्ञानत्व-
प्रसङ्गः । १९ पूर्वोत्तरात्परग्राहिसरणप्रत्यक्षाभ्यां । २० ईप् । २१ सर्वथामेव ।
२२ नैयायिक ।

१ “यतो भूयो भूय उपलभ्यमाने दृढतरा प्रतिपत्तिर्भवतीति सुखसाधनं तथैव
निश्चितोपादे-”

सन्मति० टी० पृ० ४६७ ।

२ “यदि चानुपलब्धार्थग्राहि मानमुपेयते ।

तदर्थं प्रत्यभिज्ञायाः स्पष्ट एव जलाजलिः ॥” न्यायमं० पृ० २२ ।

३ “नहि पूर्वोत्तरावस्थाभ्यां भिन्ने च सर्वथैकत्वे तत्परिच्छेदिज्ञानाभ्यां जन्यमानं
प्रत्यभिज्ञानं प्रवर्त्तते सरणवत् सन्तानान्तरेकत्ववदा” । तत्त्वार्थको० पृ० १७४ ।

४ “विवर्त्तमानभेदभेदेकत्वस्य कथञ्चन ।

तद्ग्राहिण्याः कथञ्च स्यात्पूर्वार्थत्वं स्मृतेरिव ॥ ७६ ॥”

तत्त्वार्थको० पृ० १७४ ।

भेदे अनुभूतग्राहित्वं प्रत्यभिज्ञानस्य स्यात् । ताभ्यां तस्य कथञ्चिद्-
भेदे सिद्धं तस्य (कथञ्चिद्) अनुभूतार्थग्राहित्वम् । न चैवंवादिनः
प्रत्यभिज्ञानप्रतिपक्षे शब्दादिनित्यत्वे प्रवर्त्तमानस्य “दर्शनस्य
परार्थत्वात्” [जैमिनिः ११८] इत्यादिः प्रमाणता घटते । सर्वेषां
५ चैतुमानानां व्याप्तिज्ञानप्रतिपक्षे विषये प्रवृत्तेरप्रमाणता स्यात् ।
प्रत्यभिज्ञानान्नित्यशब्दादिसिद्धावपि कुतश्चित्समारोपस्य प्रसूतेस्त-
द्भवच्छेदार्थत्वादस्य प्रामाण्ये चैकान्तत्वात् । स्मृत्यूहादेर्वाभि-
मतप्रमाणत्वं व्याख्याघातकृत्प्रमाणान्तरत्वप्रसङ्गः स्यात् ; प्रत्यभि-
ज्ञानवक्तृयंचिदपूर्वार्थत्वसिद्धेः । किञ्च, अपूर्वार्थप्रत्ययस्य प्रामाण्ये
१० द्विचन्द्रादिप्रत्ययोऽपि प्रमाणं स्यात् । निश्चितत्वं तु परोक्षज्ञान-
वादिनो न सम्भवतीत्यग्रे वक्ष्यामः ।

ननु द्विचन्द्रादिप्रत्ययस्य सवाचकत्वात् प्रमाणता, यत्र हि
वाधाविरहस्तत्रप्रमाणम् ; इत्यप्यसङ्गतम् ; वाधाविरहो हि तैत्काल-
भावी, उत्तरकालभावी वा विज्ञानप्रमाणताहेतुः ? न तावत्तैत्का-
१५ लभावी ; क्वचिन्मिथैवाभावेऽपि तस्य भावात् । अथोत्तरकालभावी ;
स किं ज्ञातः, अज्ञातो वा ? न तावदज्ञातः ; अस्य सत्त्वेनाप्य-

१ मकत्वस्य । २ प्रत्यभिज्ञानस्य । ३ सर्वथाऽपूर्वार्थविज्ञानं प्रमाणमित्येवंवादिनः ।
४ उच्चारणस्य । ५ शिष्यः । ६ अर्थापत्त्यादेः । ७ शब्दो नित्य उच्चारणान्मयाऽनुप-
पत्तेरिति । ७ किञ्च । ८ स प्रथमं । ९ आत्मा । १० सर्वं क्षणिकं सत्त्वादिति
क्षणिकत्वप्रतिपादकानुमानात् । ११ उत्पत्तेः । १२ व्याप्तिज्ञानेन निखिलसाम्य-
साधनानां सामान्येन ग्रहणेऽनुमानेन नियतदेशकालकारतया साध्यप्रतिपत्तेरनुमान-
प्रामाण्ये च । १३ सर्वथाऽपूर्वार्थविज्ञानमेव प्रमाणमित्येकान्तत्वात् । १४ इदमस्य-
मित्यादेः । १५ वदिति विज्ञाने । १६ स्मृत्यादीनाम् । १७ भाट्टस्य । १८ उत्तर-
काले । १९ ज्ञाने । २० तज्ज्ञानकाल । २१ विचार्यमाणप्रामाण्यविज्ञानकाल ।
२२ रजतादिज्ञाने । २३ न हि शुक्तिकायामिदं रजतमिति ज्ञानं यदा जायते तदैव
याप्यते प्रवृत्त्यादेरभावप्रसङ्गात् ।

१ “यदि पुनः प्रत्यभिज्ञानान्नित्यशब्दादिसिद्धावपि कुतश्चित्समारोपस्य.....”
तत्त्वार्थस्ये० पृ० १७४ ।

२ प्रमाणलक्षणस्य अनधिगतार्थत्वविशेषणस्य पर्यालोचनम् अक्षरशः तत्त्वार्थ-
को० पृ० १७३, सन्मति० टी० पृ० ४६६, अङ्गवन्तरेण च तत्त्वोप० लि० पृ०
३०, न्यायसं० पृ० २१, स्या० रत्ना० पृ० ३८ इत्यादिषु ग्रह्यम् ।

३ “किञ्च, अर्थसंवेदनानन्तरमेव वाशानुत्पत्तिः तत्प्रामाण्यं व्यनसापनेय,
सर्वदा वा ?” अष्टसह० पृ०, ३९ ।

“यतो वाधाविरहः तत्कालभावी, उत्तरकालभावी वा” सन्मति० टी० पृ० १९ ।

सिद्धेः । ज्ञातञ्चेत्—किं पूर्वज्ञानेन, उत्तरज्ञानेन वा ? न तावत्पूर्व-
ज्ञानेनोत्तरकालभावी बाधाविरहो ज्ञातुं शक्यः; तद्धि स्वसमान-
कालं नीलादिकं प्रतिपद्यमानं कथम् 'उत्तरकालमप्यत्र बाधकं
नोदेष्यति' इति प्रतीयात् ? पूर्वमनुत्पन्नबाधकानामप्युत्तरकालं
बाध्यमानत्वदर्शनात् । नाप्युत्तरज्ञानेनासौ ज्ञायते; तदा प्रमाण-^५
त्वाभिमतज्ञानस्य नाशात् । नष्टस्य च बाधाविरहचिन्ता गतसर्पस्य
घृष्टिकृद्हनन्यायमनुकरोति । कैयं च बाधाविरहस्य ज्ञायमानत्वेपि
सत्यत्वम्; ज्ञायमानस्यापि केशोण्डुकादेरसत्यत्वदर्शनात् ? तज्ज्ञा-
नस्य सत्यत्वाच्चेत्; तस्यापि कुतः सत्यता ? प्रमेयसत्यत्वाच्चेत्;
अन्योन्याश्रयः । अपरबाधाभावज्ञानाच्चेत्; अनवस्था । अथ संवादा-^{१०}
दुर्त्तरकालभावी बाधाविरहः सत्यत्वेन ज्ञायते; तर्हि संवादस्याप्य-
परसंवादात्सत्यत्वसिद्धिस्तस्याप्यपरसंवादादित्यनवस्था । किञ्च,
केचित्कदाचित्कस्यचिद् बाधाविरहो विज्ञानप्रमाणता हेतुः; सर्वत्र
सर्वदा सर्वस्य वा ? प्रथमपक्षे कस्यचिन्मिथ्याज्ञानस्यापि प्रमाणता-
प्रसङ्गः; क्वचित्कदाचित्कस्यचिद्बाधाविरहसद्भावात् । सर्वत्र सर्वदा^{१५}
सर्वस्य बाधाविरहस्तु नासर्वविदां विषयः ।

अदुष्टकारणारब्धत्वमप्यज्ञातम्, ज्ञातं वा तद्वैद्ये ? प्रथमपक्षो-
ऽयुक्तः; अज्ञातस्य सत्त्वसन्देहात् । नापि ज्ञातम्; कारणकुशलदे-
रतीन्द्रियस्य हृत्तेरसम्भवात् । अस्तु वा तज्ज्ञप्तिः; तथाप्यसौ
अदुष्टकारणारब्धः ज्ञानान्तरात्, संवादप्रत्ययाद्वा ? आद्यविकल्पे^{२०}
अनवस्था । द्वितीयविकल्पेपि संवादप्रत्ययस्यापि अदुष्टकारणार-
ब्धत्वं तथाविधादर्शनीतो ज्ञातव्यं तस्याप्यन्यत इति । न चानेकान्त-

१ न ज्ञातमस्तीतिवक्तुं शक्यं तस्माज्ज्ञातत्वविरोधात् । २ शुक्तिकादौ ।
३ प्रमाणं । ४ कालः । ५ ज्ञानानां । ६ पूर्वसिद्धं जलमिति ज्ञानस्य । ७ किञ्च ।
८ पूर्वकाले । ९ उत्तरकाले । १० पूर्वज्ञानापेक्षया । ११ विषये । १२ पूर्व ।
१३ पूर्वविज्ञानप्रमाणताहेतुः । १४ इन्द्रियद्वयादि । १५ परिज्ञानस्य । १६ अदुष्ट-
कारणारब्धत्व । १७ अनवस्था । १८ ज्ञानात् ।

१ "बाधाविरहः किं सर्वपुरुषापेक्षया, आहोस्तिप्रतिपन्नपेक्षया ?" तत्सोपपन्न-
सिद्धे लि० पृ० ३ । अष्टसह० पृ० ३९ । प्रमाणप० पृ० ६२ । सम्मति० टी०
पृ० १८ ।

२ "अथदुष्टकारणसन्दोहोत्पाद्यत्वेन; तदा सैव कारणामदुष्टता कुतोऽवसीयते ?
न साप्यप्रत्ययात्; नयनकुशलदेः सवेदनकारणस्य अतीन्द्रियस्याऽदुष्टतायाः प्रत्यक्षी-
कर्तुमशक्तेः । नात्रुगानात्; तदविनाश्याविलिङ्गभावात्...." अष्टसह० पृ० ३८ ।
(तत्सोपपन्न०—) सम्मति० टी० पृ० १३ ।

वादिनामप्युपालम्भः समानोऽयम्; यथावदर्थनिश्चायकप्रत्ययस्याः
भ्यासदशायां वाघवैश्वर्यस्याद्बुद्धकारणारण्यत्वस्य च स्वयं संवेद-
नात्; अनभ्यासदशायां तु परतोऽभ्यस्तविषयात् । न चैवमन-
वस्था; क्वचित्कस्यचिदभ्यासोपपत्तेरित्यलं विस्तीरेण परतः प्रामाण्य-
विचारे विचारणात् । लोकेसम्मतत्वं च यथावद्वस्तुस्वरूप-
निश्चयाच्चापरम् ।

ननु चोक्तलक्षणाऽपूर्वार्थव्यवसायात्मकं ज्ञानं प्रमाणमित्युक्त-
मुक्तम्; अर्थव्यवसायात्मकज्ञानस्य मिथ्यारूपतया प्रमाणत्वा-
योगात्, परमात्मस्वरूपग्राहकस्यैव ज्ञानस्य सत्यत्वप्रसिद्धेः ।
१० अक्षसन्निपातानन्तरोत्थाऽविकल्पकप्रत्यक्षेण हि सर्वत्रैकत्वमेवा-
ऽन्यानपेक्षतया क्षीणिति प्रतीयते इति तदेव वस्तुत्वस्वरूपम् ।
भेदः पुनरविर्धासंकेतस्वरणजनितविकल्पप्रतीत्याऽन्याऽपेक्षतया
प्रतीयते इत्यसौ नार्थस्वरूपम् । तर्था, 'यत्प्रतिभासते तत्प्रतिभा-
सान्तःप्रविष्टमेव यथा प्रतिभासस्वरूपम्, प्रतिभासते चाशेषं
१५ चेतनाचेतनरूपं वस्तु' इत्यनुमानादप्यात्माऽद्वैतप्रसिद्धिः । न
चात्राऽसिद्धो हेतुः; साक्षादसौक्षाब्धाशेषवस्तुनोऽप्रतिभासमानत्वे
सकलशब्दविकल्पगोचरातिक्रान्ततया वक्तुमशक्तेः । तैथागमोऽ-
प्यस्यै प्रतिपादकोऽस्ति ।

“सर्वं वै खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन ।

२० औरामं तस्य पश्यन्ति न तं पश्यति कश्चन ॥” [] इति ।
तैथा “पुरुष एवैतत्सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यं स एव हि सकललोक-
सैर्गस्थितिप्रलयहेतुः ।” [ऋक्सं० मण्ड० १० सू० ९० ऋ० २]
उक्तञ्च—

१ दोषः । २ ज्ञानस्य । ३ राहित्यस्य । ४ स्वरूपेण । ५ स्वयं सर्वेदनात्पाप-
मुपालम्भः । ६ अर्थे । ७ ज्ञानस्य । ८ अनवसापरिहारस्य विस्तरेण । ९ ज्ञानस्य ।
१० भास्करियः ग्राह । ११ अर्थे । १२ भेद । १३ इति । १४ अनेदे
भेदप्रतिभासो ऋषिया । १५ घटः पटाद्भिन्न इति । १६ पटस्य । १७ ब्रह्म ।
१८ ब्रह्मग्राहकप्रत्यक्षप्रकारेणानुमानमपि दर्शयति । १९ प्रतिभासमानत्वादिति ।
२० कल्पयित्वा । २१ प्रत्यक्षानुमानप्रकारेण । २२ परमात्मनः । २३ विवर्तं ।
विकारं । २४ ब्रह्मणः । २५ प्रत्यक्षानुमानागमप्रकारेण । २६ उत्पत्तिः ।

1 “सर्वं खल्विदं ब्रह्म तस्मानिति ज्ञानं उपासीताथ...” छान्दोग्योप० १।१।१।
“ब्रह्म खल्विदं वाव सर्वम्” मैत्रुप० ४।६ “मनसैनानुग्रह्यं नेह नानास्ति
किञ्चन ।” बृहदा० ४।४।१९ “मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानास्ति किञ्चन ।” कठोप०
४।११ “आराममस्य पश्यन्ति न तं पश्यति कश्चन ।” बृहदा० ४।१।१४ ।

“ऊर्णनामं इवांशूनां चन्द्रकान्त इवाम्भसाम् ।

प्ररोहाणामिव स्रुक्षः सँ हेतुः सर्वजन्मिनाम् ॥” [] मेद-
दर्शिनो निन्दा च श्रूयते—“मृत्योः सँ मृत्युमाप्नोति य ईद्व नानेव
पदेयति ।” [बृहदा० उ० ४।४।१९] इति । नँ चामेदप्रतिपादका-
स्त्रीयस्याऽध्यक्षवाधा; तस्याप्यमेदग्राहकत्वेनैव प्रवृत्तेः । तदुक्तम्—५

“आहुर्विद्यौत् प्रत्यक्षं न निषेद्ध विपश्चितः ।

नैकत्वे आगमस्तेर्न प्रत्यक्षेण प्रवाच्यते ॥” []

किञ्च, अर्थानां भेदो देशमेदात्, कालमेदात्, आकारमेदाद्वा
स्यात् ? न तावद्देशमेदात्; खंतोऽभिन्नस्याऽन्यमेदेऽपि भेदानु-
पपत्तेः । नह्यन्यभेदोऽन्यत्र संक्रामति । कथं च देशस्य भेदः ? १०
अन्यदेशमेदाच्चेदनवस्था । खंतश्चेत्, तर्हि भौवभेदोऽपि स्वत
एवास्तु किं देशमेदाद्भेदेकल्पनया ? तन्न देशमेदाद्वस्तुभेदः ।
नापि कालमेदात्; तद्भेदस्यैवाध्यक्षतोऽप्रसिद्धेः । तद्धि सच्चिहितं
चस्तुमात्रमेवाधिगच्छति नातीतादिकालभेदं तद्गतार्थभेदं वा
आकारभेदोऽप्यर्थानां भेदको व्यतिरिक्तप्रमाणात्प्रतिभाति, स्वतो १५
चा ? न तावद् व्यतिरिक्तप्रमाणात्; तस्य नीलसुखौदिव्यतिरिक्त-
स्वरूपस्याप्रतिभासमानत्वाद् । अथाहंप्रत्यये बोधात्मा तैर्ग्राहको-

१ कोलिकः (कीटविशेषः) । २ लालरूपतन्तुत्वात् । ३ वटः । ४ तथा ।
५ यथा । ६ पुत्रपः । ७ ब्रह्मणि । ८ भेदमिव । ९ ब्रह्माणं । १० किञ्च ।
११ आगमस्य । १२ विधायकं सम्भानग्राहकमित्यर्थः । १३ निषेधकं भेदग्राहक-
मित्यर्थः । १४ कारणेन । १५ स्वरूपेण । १६ स्वतोऽभिन्नस्य भास्वरस्य यथा
देशभेदाद्भेदो न घटते तथा पदार्थानामिति भावः । १७ अन्यस्य देशस्य भेदोऽभिन्ने सूर्ये
न संक्रामति । १८ अनवस्थापरिहारार्थं । १९ अर्थे । २० देशभेदादिति पदं नास्ति च
क्वचिद्बन्धे । २१ वहिर्वस्तु । २२ अन्तर्वस्तु । २३ भिन्न । २४ आकारलक्षणभेदः ।

1 “यथोर्णनाभिः स्रजते गृह्यते च यथा पृथिव्यामीषवयः संभवन्ति । यथा सतः
पुत्रपाए केशलोमानि तथाऽक्षराए संभवतीह विश्वम् ॥” मुण्डकोप० १।१।७ “स
यथोर्णनाभिः तन्तुचरेए, यथासिः क्षुद्रा विस्फुलिङ्गा व्युच्चरन्त्यैवमेव असादात्मनः सर्वे
लोकाः सर्वे देवाः सर्वाणि भूतानि व्युच्चरन्ति...” बृहदा० २।१।१० “यत्पूर्व-
नाम इव तन्तुभिः प्रधानजैः स्वभावतः । देव एकः स्वयमावृणोति स नो दषाह
ज्ज्वाऽन्ययम् ॥” मेदाथ० ६।१० “ऊर्णनाभिर्यथा तन्तुत्...” ब्राह्म० ३ ।
“ऊर्णनामीव तन्तुना...” कण्डर० ९ । “ऊर्णनामो मर्कटकः” तत्त्वसं० पं० ।

2 “यतो भेदः प्रलक्षप्रतीतिविषयत्वेनाभ्युपगम्यमानः किं देशभेदादभ्युपगम्यते,
आद्योसिए कालमेदात्, चत आकारमेदात् ?” सम्प्रति० टी० पृ० १७३ । स्वा०
स्त्रा० पृ० १९२ ।

ऽवसीयते; न; तत्रापि शुद्धबोधस्याप्रतिभासनात् । स खलु
‘अहं सुखी दुःखी स्थूलः कृशो वा’ इत्यादिरूपतया सुखादि शरीरं
चावलम्बमानोऽनुभूयते न पुनस्तद्व्यतिरिक्तं बोधस्वरूपम् ।
स्वतश्चाकाराणां भेदसंवेदने स्वप्रकाशनिर्यतत्वप्रसङ्गः, तथा
५ चान्योऽन्यासंवेदनात्कृतः स्वतोऽप्याकारभेदसंविद्धिः ।

अथैकरूपब्रह्मणो विद्यास्वभावत्वे तदर्थानां शास्त्राणां प्रवृत्तीनां
च वैयर्थ्यं निर्वर्त्यर्प्राप्तव्यस्वभावाभावात् । विद्यास्वभावत्वे चास-
त्यत्वप्रसङ्गः; तथाच “सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म” [तैत्त० २।१।
१०] इत्यस्य विरोधः; तदप्यसङ्गतम्; विद्यास्वभावत्वेऽप्यस्य शास्त्रा-
१० दीनां वैयर्थ्यासंभवात् अविद्याव्यापारनिवर्तनफलत्वात्तेषाम् ।
यत एव चाविद्या ब्रह्मणोऽर्थान्तरभूता तत्त्वतो नास्त्यत एवासौ
निवर्त्यते, तत्त्वतस्तस्याः सद्भावे हि न कश्चिन्निरर्थयितुं शक्ययाद्
ब्रह्मवत् । सर्वैरेव चातात्त्विकानाद्यविद्योच्छेदार्थो मुमुक्षुणां प्रय-
त्नोऽभ्युपगतः । न चानौदित्वेनाविद्योच्छेदासम्भवाः; प्रागर्भवि-
१५ नाऽनेकान्तात् । तत्त्वज्ञानप्रागभावरूपैव चाविद्या तत्त्वज्ञानलक्ष-
णविद्योत्पत्तौ व्यावर्तत एव घटोत्पत्तौ तदप्रागभाववत् । मित्रा-
ऽभिर्भादिविकल्पस्य च वस्तुविषयत्वात् अवस्तुभूताऽविद्यायाम-
प्रवृत्तिरेव सैवेयमविद्या माया मिथ्याप्रतिभास इति ।

न कर्मात्मश्रवणमननध्यानादीनां भेदरूपतयाऽविद्यास्वभावत्वा-
२० त्कार्यं विद्याप्राप्तिहेतुत्वमित्यभिघातव्यम् ? यथैव हि रजःसंपर्कक-
लुपोदके द्रव्यविशेषचूर्णं रजःप्रक्षिप्तं रजोऽन्तराणि प्रशमयत्स्वय-
मपि प्रशम्यमानं स्वच्छां स्वरूपावस्थामुपनयति, यथा वा विषं
विषान्तरं शमयति स्वयं च शाम्यति, एवमात्मश्रवणादिभिर्मैदाभि-
निवेशोच्छेदात्, स्वगतेऽपि भेदे समुच्छिन्ने स्वरूपे संसारी समव-

१ प्रमाण । २ पदार्थाः स्वप्रकाशनियताः । ३ भा (तृतीया) । ४ अनुष्ठानानां ।
५ अविद्या । ६ विद्या । ७ अन्यस्य । ८ मित्रा । ९ परमार्थतः । १० वादिभिः ।
११ मोक्षार्थिनां । १२ यथा गगनस्य । १३ अनादिनां । १४ उभय । १५ किञ्च ।
१६ स्वरूप । १७ अज्ञान । १८ दुराग्रह । १९ सति । २० एकत्वे ।

1 “न च कर्माऽविद्यात्मकं कथमविद्यामुच्छिनत्ति, कर्मणो वा तदुच्छेदकस्य कुत
उच्छेद इति वाच्यम्; सजातीयस्तपरिरोधिनां भावानां बहुलमुपलब्धेः । यथा
पयः पयोऽन्तरं जरयति स्वयं च जीवति, यथा विषं विषान्तरं शमयति स्वयं च
शाम्यति, यथा वा कतकरजो रजोन्तराविले पायसि प्रक्षिप्तं रजोन्तराणि भिन्दन् स्वयमपि
भिषमानमनाविलं पायः करोति एवं कर्म अविद्यात्मकमपि अविद्यान्तराण्यपगमयत्
स्वयमप्यपगच्छतीति ।” ब्रह्मसू० शां० भा० मामती ५० ३९ ।

तिष्ठते । अवर्द्धेदक्यविद्याव्यावृत्तौ हि परमात्मैकस्वरूपताव-
स्थितेः घटाद्यवच्छेकभेदव्यावृत्तौ व्योम्नः शुद्धाकाशतावत् ।

न चाद्वैते सुखदुःखबन्धमोक्षादिभेदव्यवस्थानुपपन्नाः समा-
रोपितादपि भेदात्तद्भेदव्यवस्थोपपत्तेः, यथा द्वैतिनीं 'शिरसि मे
वेदना पादे मे वेदना' इत्यात्मनः समारोपितभेदनिमित्ता^५
दुःखादिभेदव्यवस्था । पादादीनामेव तद्भेदनाधिकरणत्वात्तेषां च
भेदात्तद् व्यवस्था युक्त्यप्ययुक्तम्; यतस्तेषामङ्गत्वेन भोकृत्वा-
योगात् । भोकृत्वै वा चार्वाकमतानुषङ्गः । तदेवमेकत्वस्य प्रत्य-
क्षानुमानागमप्रमितरूपत्वात्सिद्धं ब्रह्माऽद्वैतं तत्त्वमिति ॥ छ ॥

अत्र प्रतिविधीयते । किं भेदस्य प्रमाणवाधितत्वादभेदः १०
साध्यते, अभेदे साधकप्रमाणसद्भावाद्वा ? तत्राद्यविकल्पोऽयुक्तः;
प्रत्यक्षभेदेर्भेदानुक्तलतयां तद्वाधकत्वायोगात् । न खलु भेदमन्त-
रेण प्रमाणेर्तदव्यवस्थापि सम्भाव्यते । द्वितीयपक्षोऽप्ययुक्तः;
भेदमन्तरेण साध्यसाधकभावस्यैवासम्भवात् । न चामेदसाधकं
किञ्चित्प्रमाणमस्ति । १५

यद्योक्तम्—“अविकल्पकाध्यक्षेणैकत्वमेवावसीयते” तत्र किमे-
कव्यक्तिगतम्, अनेकव्यक्तिगतम्, व्यक्तिमात्रगतं वा तत्त्वेन
प्रतीयते ? एकव्यक्तिगतं चेत्; तर्हि साधारणम्, असाधारणं
वा ? न तावत्साधारणम्; ‘एकव्यक्तिगतं साधारणं च’ इति
विप्रतिषेधात् । असाधारणं चेत्; कथं नातो भेदसिद्धिः असा-२०
धारणस्वरूपलक्षणत्वाद्भेदस्य । अथानेकव्यक्तिगतं सर्वसामान्य-

१ घटे पटस्य निषेधकः भेदोत्पादक इत्यर्थः । २ घटाकाशपटाकाश । ३ देव-
दत्तादेर्भावात् । कल्पितात् । ४ नैयायिकादीनां । ५ अन्यथा । ६ परेण भट्टेन ।
७ अनुमानागमौ । ८ आहक । ९ प्रवर्तमानत्वात् इति शेषः । १० तदाभास ।
११ सामान्य । १२ विरोधात् । १३ विशेष । १४ इदं सिद्धं सत् ।

१ “—एकस्यापि जीवात्मन सपापिभेदात् सुखदुःखानुभवो दृश्यते पादे मे वेदना,
शिरसि मे सुखं वेदनेति—” न्यायर्म० पृ० ५२८ । सा० रत्ना० पृ० १५३ ।

२ “तथाहि भेदस्य प्रमाणवाधितत्वात् किमयमभेदान्शुभगमो भवतामुत्सिद्धभेदस्यैव
प्रमाणसिद्धत्वादिति” न्यायर्म० पृ० ५२८ ।

“किं भेदस्य प्रमाणवाधितत्वादेकत्वमुच्यते, आहोसिद् भेदे प्रमाणसद्भावात् ?”
संन्यासि० टी० पृ० १८५ ।

३ “एकव्यक्तिगतं किं वाऽनेकव्यक्तिसमाधितम् ।
व्यक्तिमात्रगतं यदा तदेकत्वं प्रतीयते ॥” सा० रत्ना० पृ० १५९ ।

- रूपमेकत्वं प्रत्यक्षग्राह्यमित्युच्यते; तर्हि व्यक्त्यधिकरणतया प्रतिभाति, अनधिकरणतया वा? प्रथमपक्षे मेदप्रसङ्गः 'व्यक्तिरधिकरणं तदावेयं च सत्तासामान्यम्' इति, अयमेव हि मेदः। द्वितीयपक्षे—व्यक्तिग्रहणमन्तरेणाप्यन्तराले तत्प्रतिभासप्रसङ्गः।
- ५ तथा किमेकव्यक्तिग्रहणद्वारेण तत्प्रतीयते, सकलव्यक्तिग्रहणद्वारेण वा? प्रथमपक्षे विरोधः, एकाकारता ह्यनेकव्यक्तिगतमेकं रूपम्, तत्रैकस्मिन् व्यक्तिस्वरूपे प्रतिभातेऽप्यनेकव्यक्त्यनुयायितया कथं प्रतिभासेत? अथ सकलव्यक्तिप्रतिपत्तिद्वारेण तत्प्रतीयते; तदा तस्याऽप्रतिपत्तिरेवाखिलव्यक्तीनां ग्रहणासम्भवात्। मेदसिद्धिः-
- १० प्रसङ्गश्च—अखिलव्यक्तीनां विशेषणतया एकत्वस्य च विशेष्यत्वेन, एकत्वस्य वा विशेषणतया तासां च विशेष्यत्वेन प्रतिभासनात्। तथा तद्व्यक्तिभ्यस्तद्विभक्तम्, अभिन्नं वा? यद्यभिन्नम्; तर्हि व्यक्तिरूपतानुषङ्गोऽस्य। न च व्यक्तिर्व्यक्त्यन्तरमन्वेतीति कथं सकलव्यक्त्यनुयायित्वमेकत्वस्य। अथार्थान्तरम्; कथं नानात्वा-
- १५ ऽप्रसङ्गः? यथा चानुगतप्रत्ययजनकत्वेनैकत्वं व्यक्तिषु कैल्यते तथा व्याप्तप्रत्ययजनकत्वेनानेकत्वमप्यविशेषात्। तत्रैकत्वं नानात्वमन्तरेणावकाशं लभते। प्रयोगः विवादाप्यासितमेकत्वं परमार्थसन्नानात्वाविनाभावि एकान्तैकत्वरूपतयाऽनुपलभ्यमानत्वात्, घटादिभेदाविनाभूतमृद्भव्यैकत्ववत्। एतेनैकव्यक्तिमात्र-
- २० गतमप्येकत्वं प्रत्युक्तम्, एकानेकव्यक्तिव्यतिरेकेण व्यक्तिमात्रस्यानुपपत्तेः।

यच्चोक्तम्—“मेदस्यान्यापेक्षतया कल्पनाविषयत्वम्” तदप्युक्तिमात्रम्; एकत्वस्यैवाप्यापेक्षतया कल्पनाविषयत्वसम्भवात्। तत्रैकत्वनेकव्यक्त्याश्रितम्, मेदस्तु प्रतिनियतव्यक्तिस्वरूपोऽध्यक्षाव-
२५ सेयः। अथैकत्वं प्रत्यक्षेणैव प्रतिपन्नम्, अन्यापेक्षया तु कल्पना-

१ परेण भवता। २ वसः। ३ वसः। ४ तस्मां व्यक्तावाधीयते आरोप्यते इति तदावेयं। ५ प्रतिपत्तृव्यक्तयोर्मध्ये। ६ किञ्च। ७ किञ्च। ८ व्यक्तिस्वरूपवत्। ९ भिन्नं। १० इदं सदिदं सदिति। ११ समर्थते। १२ एतादृ घटो व्याकृत इति। १३ कल्प्यताम्। १४ सर्वथा। १५ विकल्पद्वयनिराकरणपरेण ग्रन्थेन। १६ निराकृतम्। १७ परेण। १८ पटस्य। १९ मेदः। २० प्रमीयमानत्वात्। २१ विकल्प। २२ एकत्वं। २३ घटः सन् पटः सन्नित्यादिशब्देन।

1 “यदपि गदितं मेदः पुनः परापेक्षतया प्रतीयते इत्यादि, तदपि नोपपन्नम्; एकत्वमपि हि परापेक्षतया प्रतीयते, तत्रैकत्वप्रत्ययोऽपि कल्पनाप्रत्ययरूपत्वेनाप्रमाणत्वात् कथमिवैकत्वं साधयेत्?”
सा० रत्ना० पृ० २००।

ज्ञानेनानुयायिरूपतया व्यवह्रियते, तर्हि भेदोऽप्यध्यक्षेण प्रति-
पन्नोऽन्यापेक्षया विकल्पज्ञानेन व्यञ्जितिरूपतया व्यवह्रियते
इत्यप्यस्तु ।

कां चैवं कल्पना नाम-ज्ञानस्य स्मरणानन्तरभावित्वम्, शब्दा-
कारानुविद्धत्वं वा स्यात्, जाल्याद्युल्लेखो वा, असदर्थविषयत्वं^५
वा, अन्यापेक्षतयाऽर्थस्वरूपावधारणं वा, उपचारमात्रं वा प्रका-
रान्तराऽसम्भवात् ? न तावदाद्यविकल्पः; अमेदज्ञानस्यापि स्मर-
णानन्तरमुर्पलम्बेन कल्पनात्वप्रसङ्गात् । शब्दाकारानुविद्धत्वं च
ज्ञाने प्रागेव प्रतिविहितम् । ननु सकलो भेदप्रतिभासोऽभिलाष-
पूर्वकस्तदभावे भेदप्रतिभासस्याप्यभावः स्यात्; तन्न; विकल्पामि-^{१०}
लापयोः कार्यकारणभावस्य कृतोत्तरत्वात् । अस्तु वासौ, तथापि
किं शब्दजनितो भेदप्रतिभासः, तज्जनितो वा शब्दः ? प्रथमपक्षे किं
शब्दादेव भेदप्रतिभासः, ततोऽसौ भवत्येवेति वा ? शब्दादेव
भेदप्रतिभासाभ्युपगमे^{११} प्रथमाह सञ्चिपातानन्तरं चित्रपट्यादिज्ञा-
नस्य भेदविषयस्यानुत्पत्तिप्रसङ्गः; निर्विकल्पकानुभवानन्तरं^{१५}
संकेतस्मरणविवक्षाप्रयत्नतात्वादिपरिस्पन्दक्रमेणोपजायमानश-
ब्दस्याविकल्पकप्रथमप्रत्ययावस्थायामभावात् । शब्दादनेकत्व-
प्रतिभासो भवत्येवेत्यप्युक्तमुक्तम्; 'एकं ब्रह्मणो रूपम्' इत्यादि-
शब्दस्य भेदप्रत्ययजनकत्वे सति आगमात्सत्सैकत्वप्रतिपत्तेरभावा-
नुपङ्गात् । भेदप्रतिभासाच्छब्दे(ब्दोऽ)स्तीत्यभ्युपगते च-अन्यो-^{२०}
न्याभयत्वम्—शब्दाद्भेदप्रतिभासः, भेदप्रतिभासाच्छब्द इति ।
'घटोयं पटोयम्' इत्यादिभेदप्रतिभासस्य जाल्याद्युल्लेखित्वात्कल्प-
नात्वे-अमेदज्ञानस्यापि कल्पनात्वानुपङ्गः; तस्यापि सैत्तिसामा-
न्योल्लेखित्वात् । असदर्थविषयत्वं च भेदप्रतिभासस्यासिद्धम्;
अर्थक्रियाकारिणो वस्तुभूतार्थस्य तत्र प्रतिभासनात् । विस्वादिदत्त्वं^{२५}

१ अनुत्पत्तिरूपतया । २ घटस्य । ३ पट । ४ विसृष्ट्य । ५ सर्वं खल्विदं प्रकृत्यादि-
रूपस्य सोऽभिलाषेर्वा । ६ प्रवीणा । ७ सविकल्पकसिद्धौ शब्दादेवे च । ८ परः ।
९ इति चेत् । १० सविकल्पकसिद्धौ । ११ पूर्ववधारणम् । १२ उत्तरानुधारणम् ।
१३ परेण । १४ चित्राणां पदानां समाहारः चित्रपटी । १५ भेदो विषयो यस्य ।
१६ नीलादि । १७ वस्तुमिच्छा । १८ वस्तुहा । १९ भेद । २० प्रतिभास ।
२१ इदं सदिदं सत् । २२ आत्मत्व । २३ परमाश्रित्वात् । २४ ज्ञानपानादि ।

1 "किंचान्यापेक्षया भवनमेव भेदप्रत्ययस्य कल्पनात्वं स्यात्, किंच स्मरणसम-
नन्तरभावित्वम्, यद्वा शब्दानुविद्धत्वम्, उत जाल्याद्युल्लेखित्वम्, अथासदर्थविषयत्वम्,
उपचाररूपत्वं वा ?"

आ० रत्ना० पृ० २०१ :

प्राध्यमानत्वं च कल्पनालक्षणमेतेन प्रत्युक्तम्; तस्यासदर्थविषयत्वादेर्यान्तरत्वाऽसम्भवात् । अन्यापेक्षतर्यर्थस्वरूपावधारणं चानन्तरमेव प्रत्याख्यातम्; यतो व्यवहार एवान्यापेक्षतया प्रवर्तते न स्वरूपावधारणम् । नापि भेदप्रतिभासस्योपचाररूपं कल्पनात्वम्; मुख्यैासम्भवे तस्याप्यदर्शान्माणवके सिद्धान्तोपचारवत् । न चाभेदवादिनो मुख्यं भेदाभ्युपगमोस्त्वपसिद्धान्तप्रसङ्गात् ।

यच्चानुमानादप्यात्माद्वैतसिद्धिरित्युक्तम्; तत्र स्वतःप्रतिभासमानत्वं हेतुः, परतो वा । स्वतश्चेत्; असिद्धिः । परतश्चेत्; विरुद्धोऽद्वैते साध्ये द्वैतप्रसाधनात् । 'घटः प्रतिभासते' इत्यादिप्रति-
 १० भासैसामानाधिकरण्यं तु विषये विषयिर्धर्मस्योपचारात्, न पुनः प्रतिभासात्मकत्वात् । प्रतिभासनं हि विषयिणो ज्ञानस्य धर्मः स विषये घटादावध्यारोप्यते । तद्ध्यारोपनिमित्तं च प्रतिभासनक्रियाधिकरणत्वम् । तथा च 'अर्थमहं वेत्ति' इत्यन्तःप्रकाशमानानन्तपर्यायाऽचेतनद्रव्यवद्बहिःप्रकाशमानानन्तपर्यायाऽचेतनद्र-
 १५ व्यमपि प्रतिपत्तव्यम् । 'सर्वे वै स्वद्विदं ब्रह्म' इत्याद्यागमोपि नाद्वैतप्रसाधकः; अभेदे प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावस्यैवासम्भवात् । न चांगमप्रामाण्यवादिना अर्थवादस्य प्रामाण्यमभिप्रेतमिति प्रसङ्गात् । आत्मैव हि सकललोकसर्गस्थितिप्रलयहेतुरित्यप्यसम्भाव्यम्; अद्वैतैकान्ते कार्यकारणभावविरोधात्, तस्य द्वैताविनाभावित्वात् ।
 २० निराकृतं चै नित्यस्य कार्यकारित्वं शब्दाद्वैतविचारप्रक्रमे ।

किमर्थं चासौ जगद्वैचित्र्यं विद्मति ? न तावद्भ्रसनितर्योः

१ असदर्थविषयत्वनिराकरणेन । २ अपादाने का (पञ्चमी) । ३ एकत्वप्रतिपास ।
 ४ घट । ५ पट । ६ कर्म । ७ किन्तु स्तपेक्षतया एव प्रतिभासते । ८ वा ।
 ९ भेदस्य । १० अस्ति । ११ अन्यथा । १२ परेण । १३ पदार्थानां । १४ पर-
 वाषसिद्धो हेतुः । नहि पदार्थाः स्वत एव प्रतिभासन्ते । १५ अन्यसात् । १६ ईप् ।
 १७ स्वरूपस्य । १८ विषयस्य । परेण । १९ परेण । २० अर्थसारूपस्य ।
 २१ अलक्ष्मिनि निमज्जन्ती (ः) सादेरपि प्रमाणताप्रसङ्गः । सारमिलितस्य अर्थसाधनस्य
 अलावपु सङ्गात्वात् (ः) प्रामाणः उच्यन्ते अन्यो मणिमविन्दत् । २२ किञ्च । २३ ब्रह्मा ।
 २४ फलं विना प्रवृत्तिर्वसनम् ।

१ "तत्र स्वतः प्रतिभासमानत्वं हेतुः, परतो वा ?" सा० रत्ना० पृ० १९४ ।
 प्रमेयरत्ना० २।१२ ।

२ "जगच्चाऽसृजतस्तस्य किञ्चानेह न सिद्मति ॥ ५४ ॥

प्रयोजनमनुदिश्य न मन्योऽपि प्रवर्तते ।

पद्येव प्रवृत्तिकेचैतन्येनास किं भवेत् ॥ ५५ ॥" श्री० को० पृ०

३५३ । सम्मति० टी० पृ० ७२५ । सा० रत्ना० पृ० १९८ । प्रमेयरत्ना० २।१२ ।

अपेक्षाकारित्वप्रसङ्गात्, प्रेक्षाकारिप्रवृत्तेः प्रयोजनवत्तया व्याप्त-
त्वात् । कृपया परोपकारार्थं तत् करोतीति चेत् ; न ; तद्व्यतिरेकेण
परस्याऽसत्त्वात् । सत्त्वे चानारकादिदुःखितप्राणिविधानं न
स्यात्, एकान्तसुखितमेवाखिलं जगज्जनयेत् । किञ्च, सृष्टेः प्रागनु-
कम्प्यप्राण्यभावात् किमालम्ब्य तस्यानुकम्प्या प्रवर्तते येनानुक-^५
म्पावशादयं स्रष्टा कल्पयेत् ? अनुकम्पावशाच्चालस्य प्रवृत्तौ देवमनु-
ष्याणां सदाभ्युदययोगिनां प्रलयविधानविरोधः, दुःखितप्राणि-
नामेव प्रलयविधानानुपपन्नात् । प्राण्यर्हद्व्यापेक्षोऽसौ सुखदुःखस-
मन्वितं जगत् जनयतीत्यप्यसङ्गतम् ; स्वातन्त्र्यव्याघातानुपपन्नात् ।
समर्थस्वभावस्यासमर्थस्वभावस्य वा नित्यैकरूपस्य वस्तुनोऽन्या-^{१०}
पेक्षाऽयोगाच्च । अदृष्टवशाच्च जगद्वैचित्र्यसम्भवे-किमनेनान्तर्ग-
ज्जना पीडाकारिणा ? अदृष्टापेक्षा चास्यानुपपन्ना, किं त्ववधीर-
णमेवोपपन्नम्, अन्यथा कृपालुत्वव्याघातप्रसङ्गः । न हि कृपा-
लैवः परदुःखं तद्धेतुं चाऽन्विच्छन्ति, परदुःखतत्कारणवियोगवा-
च्छयैव प्रवृत्तेः ।

१५

१ मूर्खत्व । २ ब्रह्म । ३ जगतः । ४ कुत्सितसृष्टेः किं फलम् । ५ ब्रह्मणः ।
६ किञ्च । ७ ब्रह्मणः । ८ पुण्यपाप । ९ ब्रह्मा । १० ब्रह्मणः । ११ अवकाश ।
१२ नराः ।

1 "अभावाच्चानुकम्प्यानां नानुकम्प्या प्रवर्तते ।
सृष्टेच्च शुभमेवैकमनुकम्पाप्रयोजितः ॥ ५२ ॥ मी० श्लो० पृ० ६५२ ।
"अथानुकम्पया कुर्यादेकान्तसुखितं जगत् ॥ १५६ ॥
आभिदारिप्रयोकादिविधायासपीडितम् ।
जने तु सजतस्तस्य कानुकम्प्या प्रतीयते ॥ १५७ ॥
सृष्टेः प्रागनुकम्प्यानानामसत्त्वे नोपपद्यते ।
अनुकम्पयापि यद्योपादाताऽयं परिकल्प्यते ॥ १५८ ॥
न चायं प्रलयं कुर्यात्सदाभ्युदययोगिनाम् ।" तत्त्वसं० पृ० ७६ ।
सम्मतौ टी० पृ० ७१६ । सा० रत्ना० पृ० १९८ । प्रमेयरत्न० २।१२ ।

2 "अथाऽशुभादिना सृष्टिः स्थितिर्वा नोपपद्यते ।
आत्मावीनान्भ्युपाये हि भवेत्किन्नाम दुष्करम् ॥ ५३-॥
तथाचापेक्षमाणस्य स्वातन्त्र्यं प्रतिहन्यते ।" मी० श्लो० पृ० ६५३ ।
"तददृष्टव्यपेक्षायां स्वातन्त्र्यमवहीयते ॥ १५९ ॥
पीडाहेतुमदृष्टं च किमर्थं स न्यपेक्षते ।
उपेक्षैव पुनस्तत्र दयायोगेऽस्य युज्यते ॥ १६० ॥ तत्त्वसं० पृ० ७७ ।
सम्मतौ टी० पृ० ७१६ । सा० रत्ना० पृ० १९९ । प्रमेयरत्न० २।१२ ।

नेनु यथोर्णनामो जालादिविधाने स्वभावतः प्रवर्तते, तथात्मा जगद्विधाने इत्यप्यसत्; ऊर्णनामो हि न स्वभावतः प्रवर्तते । किं तर्हि ? प्राणिभक्षणलाम्पट्यात्प्रतियतहेतुसम्भूततया कादाचित्कात् । 'मृत्योः स मृत्युमामोति य इह नानेव पश्यति' इति ५ निन्दावादोप्यनुपपन्नः; सकलप्राणिनां मेद्ब्राह्मकत्वेनैवाखिलप्रमाणानां प्रवृत्तिप्रतीतेः ।

यच्चोक्तम्—'आहुर्विधात्प्रत्यक्षम्' इत्यादि; तत्र किमिदं प्रत्यक्षस्य विधात्त्वं नाम—सत्तामात्रावबोधः, असाधारणवस्तुस्वरूपपरिच्छेदो वा ? प्रथमपक्षोऽयुक्तः, नित्यनिरंशव्यापिनो विशेष-
१० निरपेक्षस्य सत्तामात्रस्य स्वप्नेप्यप्रतीतेः स्वरविषाणवत् । द्वितीयपक्षे तु—कथं नाह्यैतप्रतिपादकागमस्याध्यक्षवाचा ? भावमेद्ब्राह्मकत्वेनैवास्य प्रवृत्तेः, अन्यथाऽसाधारणवस्तुस्वरूपपरिच्छेदकत्वविरोधः ।

यच्च मेदो देशमेदात्स्यादित्याहुँकम्; तदप्यसङ्गतम्; सर्वत्रा-
१५ कारमेदस्यैवैतमेदकत्वोपपत्तेः । यत्रापि देशकालमेदस्तत्रापि तद्रूपतयाऽऽकारमेद एवोपलक्ष्यते । स चाकारमेदः स्वसामग्रीतो जातोऽहमहमिकया प्रतीयमानेनात्मना प्रतीयते । प्रसाधधिष्यते

१ महादेतवादी । २ क्षुपा । ३ परेण । ४ विसृष्टश्च । ५ पदार्थे । ६ प्रहृत्स्वभावे । ७ परेण । ८ नदिरन्तर्वा । ९ साक्षादिमत्त्वादि । १० गवादि । ११ वस्तुनि । १२ वस्तुनि ।

१ "प्राणिनां भक्षणान्नापि तस्य जाला प्रवर्तते ।" मी० को० पृ० ६५२ ।

"प्रकृत्यैवाहुँहेतुत्वमूर्णनाभेऽपि नेष्यते ।

प्राणिभक्षणलाम्पट्याजालजालं करोति यत् ॥ १६८ ॥" तत्सर्त० पृ० ७९, न्यायकमुदचं० प्रत्य० परि०, सन्मति० टी० पृ० ७१७ । सा० रत्ना० पृ० १९९ । प्रमेयरत्नमा० २।१२ ।

२ "यदभ्युक्तम्—आहुर्विधात्प्रत्यक्षमिति, तदप्यसाधु; विधात् इति कोऽर्थः ? इदमपि वस्तुस्वरूपं शुद्धाति नान्यरूपं निषेधति प्रत्यक्षमिति चेन्मैवम्, जन्वरूपनिषेधमन्तरेण तत्स्वरूपपरिच्छेदस्याप्यसम्पत्तेः । पीतादिव्यवच्छिन्नं हि नीलं नीलमिति गृहीतं यवति नेतरथा ।" न्यायमं० पृ० ५९९ ।

"यतो विधात्त्वं किं प्रत्यक्षस्य भावस्वरूपग्राह्यत्वम्, आहोस्तिदन्त्यत् ? सन्मति० टी० पृ० २८५ ।

"तत्र किमिदं प्रत्यक्षस्य विधात्त्वं नाम सत्तामात्रावबोधः, असाधारणस्वरूपपरिच्छेदो वा ?" सा० रत्ना० पृ० २०१ ।

३ "यदि—देशकालाकारमेदमेदो न प्रत्यक्षादिभिः प्रतीयते इत्याहुँकम्; जमेद-प्रतिपत्तावप्यस्य संमानत्वात् ।" सन्मति० टी० पृ० २८६ । सा० रत्ना० पृ० २०२ ।

चात्मा सुखशरीरादिव्यतिरिक्तो जीवसिद्धिप्रघटके । कथं चामे-
द्वसिद्धिस्तत्प्रतिपत्तावप्यस्य समानत्वात् ; तथाहि—अभेदोऽर्थानां
देशाभेदात्, कालाभेदात्, आकाराभेदाद्वा स्यात् ? यदि देशाभे-
दात् ; तदा देशस्यापि कुतोऽभेदः ? अन्यदेशाभेदाच्चेद्वनवस्था ।
स्वतश्चेदर्थानामपि स्वत एवाभेदोऽस्तु किं देशाभेदादभेदकल्प-
नया ? इत्यादिसर्वमत्रापि योजनीयम् । तस्मात्सामान्यस्य विशे-
षस्य वा स्वभावतोऽभेदो भेदो धाम्युपगन्तव्यः ।

यथेदमुक्तम्—‘यत एवाविद्या ब्रह्मणोऽर्थान्तरभूता तत्त्वतो
नास्त्यत एवासौ निवर्त्यते’ इत्यादि; तदप्यसारम् ; यतो यद्यव-
स्तुसत्यविद्या कथमेषा प्रयत्ननिवर्तनीया स्यात् ? न ह्यवस्तुसन्तः १०
शशशृङ्गादयो यत्ननिवर्तनीयत्वमनुभवन्तो दृष्टाः । न चास्यास्त-
त्त्वतः सद्भावे निवृत्त्यसम्भवः ; घटादीनां सतामेव निवृत्ति-
प्रतीतेः । न चाविद्यानिर्मितत्वेन घटप्रामाण्यमादीनामपि तत्त्वतो-
ऽसत्त्वम् ; अन्योऽन्याश्रयानुषङ्गात्—अविद्यानिर्मितत्वे हि घटा-
दीनां तत्त्वतोऽसत्त्वम्, तस्माच्चाविद्यानिर्मितत्वमिति । अभेदस्य १५
विद्यानिर्मितत्वेन परमार्थसत्त्वेपि अन्योन्याश्रयो द्रष्टव्यः । न
चानाद्यऽविद्योच्छेदे प्रागभावो दृष्टान्तः ; यस्तुव्यतिरिक्तस्याना-
देस्तुच्छस्वभावस्यास्याऽसिद्धेः ।

यदपि—‘तत्त्वज्ञानप्रागभावरूपैवाविद्या’ इत्याद्यभिहितम् ; तद-
प्यभिधानमात्रम् ; प्रागभावरूपत्वे तस्या भेदज्ञानलक्षणकार्योत्पाद्- २०
कत्वाभावादानुषङ्गात्, प्रागभावस्य कार्योत्पत्तौ सामर्थ्यासम्भवात् ।

१ विचारस्य । २ अभेदपक्षे । ३ स्वरूपेण । ४ परेण । ५ आत्मजननजननादि ।
६ भेदसामिषाहेतुत्वे अभेदस्य विद्याहेतुत्वमायत्तं तत्रापि दूषणम् । ७ वचन ।
८ अभावरूपत्वात्खरविषाणवद् । ९ प्रागभावः स्यात्कार्योत्पादकत्वं च स्यादिति
सन्दिग्धानैकान्तिकत्वे सत्याह ।

१ “अनादिना प्रकृतेन प्रवृत्तावरणक्षया । यतोच्छेद्याप्यविवेकसती कथ्यते
कथम् ? अस्तित्वे क यनास्तुच्छिन्नादिति चेद् कातरसत्तासोऽयम् सतामेव हि दृष्टादी-
नास्तुच्छेदो दृश्यते नासता दृष्टाविषाणादीनाम् । तदिवयुच्छेद्यत्वादविद्या नित्या भाभूद्
सती नु भवत्येव ।” न्यायमं० पृ० ५२९ । सन्मति० टी० पृ० २९५ । सा०
रत्ना० पृ० २०३ ।

२ “न च तस्मात्प्रागभावमात्रमविद्या, संशयविपर्ययावप्यविवेक, तौ च भावस्वभाव-
स्वाकृष्यमसन्तौ भवेताम् ? प्रागभावप्रागभावोऽपि नाऽसन्निति शक्यते वक्तुम् ; अभावस्या-
प्यस्तित्वसमर्थनादिति सर्वथा नासत्यविद्या ।

असत्त्वे च विभिन्नेऽसास्तत्त्वमेव बलाद्भवेत् ।

सदस्यतिरिक्तो हि राक्षिरसन्तदुर्लभः ॥” न्यायमं० पृ० ५३० ।

प्र० क० मा० ७

न हि घटप्रागभावः कार्यमुत्पादयन्द्दृष्टः । केवलं घटवत् प्राग-
भावविनाशमन्तरेण तत्त्वज्ञानलक्षणं कार्यमेवं नोत्पद्येत । अथ न
भेदज्ञानं तस्याः कार्यम्, किं तर्हि ? भेदज्ञानस्वभावैवास्तौ, तन्न;
यैवं सति प्रागभावस्य भौवान्तरस्वभावतानुषङ्गात् । न च ज्ञानस्य
५ भेदाभेदग्रहणकृता विद्येतरव्यवस्था, संवादविसंवादकृतत्वात्तस्य
सत्येतरत्वव्यवस्थायाः । संवादश्च भेदाभेदज्ञानयोर्वस्तुभूतार्थ-
ग्राहकत्वानुसृत्य इत्युक्तम् ।

यदप्युक्तम्—‘भिन्नाभिन्नादिविचारस्य च वस्तुविषयत्वात्’
इत्यादि; तत्राविद्यायाः किमवस्तुत्वाद्विचारगोचरत्वम्, विचा-
१० रागोचरत्वाद्वाऽवस्तुत्वं स्यात् ? न तावद्यद्यदवस्तु तत्तद्विचार-
यितुमशक्यम्; इतरेतराभावादेरवस्तुत्वेऽपि ‘इदमित्थम्’ इत्या-
दिशब्दप्रतिभासलक्षणविचारविषयत्वात् । नापि विचारगोचर-
त्वेनावस्तुत्वम्; इक्षुक्षीरादिमाधुर्यतारतम्यस्य तज्जनितसुखादि-
तारतम्यस्य वा ‘इदमित्थम्’ इति परस्मै निर्देष्टुमशक्यत्वेऽपि
१५ वस्तुरूपत्वप्रसिद्धेः । किञ्च, अयं भिन्नाभिन्नादिविचारः प्रमाणम्,
अप्रमाणं वा ? यदि प्रमाणम्; तेनाविषयीकृतायाः कथमविद्यायाः
सत्त्वम् ? तदसत्त्वे च कथं मुमुक्षोस्तदुच्छिन्नस्ये प्रयासः फल-
वान् ? अथाप्रमाणम्; कथं तर्हि तस्य वस्तुविषयत्वम् ? यतो
‘भिन्नाभिन्नादिविचारस्य वस्तुविषयत्वात्’ इत्यभिधानं शोभेत ।

२० यच्चोक्तम्—‘यथा रजोरजोन्तराणि’ इत्यादि; तदप्यसमीचीनम्;
यतो वाच्यबाधकभावाभावे कथं श्रवणमननादिलक्षणाऽविद्याऽ-

१ अविद्याविनाशमन्तरेण । केवलं यथा घटप्रागभावो घटप्रागभावविनाशरूपकार्य-
मन्तरा घटपटादिरूपं कार्यं नोत्पादयितुमर्हं तथा विद्याप्रागभावरूपैवाविद्या विद्या-
प्रागभावविनाशमेव कार्यं कर्तुं समर्था न च विद्यारूपं भेदरूपं वा कार्यमुत्पादयितुं
समर्थैस्त्वर्थैः । २ अविद्याया भेदज्ञानस्वभावत्वे । ३ भेदज्ञान । ४ विकल्पस्य ।
५ खर-शृङ्गवत् । ६ इतरसिद्धिरेतरस्याभावः इतरेतराभावः । यदभावे नियमेन कार्य-
स्रोतसिः स प्रागभाव इतीदृशम् । ७ प्रतिपाद्याय । ८ यधि ।

1 “यत्पुनरविधैव विद्योपाय इत्यत्र दृष्टान्तपरम्परोद्घाटनं कृतं तदपि केशव
नार्थसिद्धये । सर्वत्र उपायस्य स्वरूपेण सत्त्वादसत्तः खण्डोपादेरुपायत्वाभावात् । रेखा-
गकारादीनां तु वर्णरूपतया सत्त्वं यद्यपि नास्ति तथापि स्वरूपतो विद्यन्त एव ।”
न्यायने० पृ० ५३० । सन्मति० टी० पृ० २९५ ।

“यच्चोक्तं यथैव हि रजःसम्पर्ककल्पयेऽन्मसि इत्यादि; तदपि फल्युः यतो वाच्य-
बाधकभावाभावे कथं श्रवणमननादिलक्षणाविद्याऽविद्यान्तरं प्रशमयेत् ?” स्वा० रत्ना०
पृ० १०४ ।

विद्यां प्रज्ञामयेत् ? बाध्यबाधकभावश्च सतोरेव अहिनकुलवत्, न त्वसंतोः शशाश्वविषाणवत् । दैवरक्तौ हि किंशुकाः केने रज्यन्ते नाम । विद्यमानमेव हि रजो रजोन्तरस्य संकार्यं कुर्वतः सामर्थ्यापनयनद्वारेण बाधकं प्रसिद्धम्, विषद्रव्यं वा उपयुक्तविषद्रव्यसामर्थ्यापनयने चरितार्थत्वाद्ब्रह्मलादिसदृशतया न कार्या-५ न्तरकरणे तत्प्रभवतीति । न च मेदस्योच्छेदो घटते, वस्तुस्वभावतयाऽमेदवत्तस्योच्छेजुमशक्तेः ।

ननु स्वभावस्थायां मेदार्भावेऽपि मेदप्रतिभासो दृष्टस्ततो न पारमार्थिको मेदस्तत्प्रतिभासो वा; इत्यमेदेषि समानम् । न खलु तदा विशेषस्यैवाभावो न पुनस्तद्व्यापकसामान्यस्य; अन्यथा कूर्म-१० रोमादीनामसत्त्वेपि तद्व्यापकस्य सामान्यस्य सत्त्वप्रसङ्गः । कथं च स्वभावस्थायां मेदस्यासत्त्वम् ? बाध्यमानत्वाच्चेत्; तर्हि जाग्रदवस्थायां तस्याबाध्यमानत्वात् सत्त्वमस्तु । एकत्रास्य बाध्यमानत्वोपलम्भात्सर्वत्रासत्त्वे च स्थाण्वादौ पुरुषप्रत्ययस्य बाध्यमानत्वेनासत्यतोपलम्भात् आत्मन्यप्यसत्यत्वप्रसङ्गः । ततोऽ५ जाग्रदवस्थायां स्वभावस्थायां वा यत्र बाधकोदयस्तदसत्यम्, यत्र नु तदभावस्तत्सत्यमभ्युपगन्तव्यम् ।

ननु बाधकेने ज्ञानमपह्नियते, विषयो वा, फलं वा ? न तावद् ज्ञानस्यापहारो युक्तः; तस्य प्रतिभातत्वात् । नापि विषयस्य; अत एव । विषयापहारश्च राज्ञां धर्मो न ज्ञानानाम् । फलस्यापि ज्ञान-२० पानावगाहनादेः प्रतिभातत्वात्प्रापहारः । बाधैकमपि ज्ञानम्, अर्थो वा ? ज्ञानं चेत् तर्किकं समानविषयम्, भिन्नविषयं वा ? तत्र

१ सपररूपअवगमननादिलक्षणोऽविषयोः । २ असत्तोरविषयोर्बाध्यबाधकभावः सादित्युक्ते आह । ३ यथा दैवरक्तः किंशुकाः केनापि न रज्यन्ते तथा असत्तोरविषयोर्बाध्यबाधकभावः केनापि कर्तुं न शक्यत इत्यभिप्रायः । ४ न केनापि । ५ काङ्क्ष्यलक्षणं सकार्यं । ६ अज्ञानजननसामर्थ्यः(र्थः) । ७ निराकरण । ८ मरण-मूर्च्छादि । ९ किञ्च । १० अयैकत्वं प्रलहेणैव प्रतिपन्नम् । ११ घटपटादीनाम् । १२ मेदज्ञानं । १३ मेदस्य । १४ विशेषभावे सामान्यसत्त्वं यदि । १५ रोमत्वस्य । १६ भरीषिकचक्रे जलमिति ज्ञाने । १७ महापदादौ । १८ प्रयागेन । १९ इदं जलमिति ज्ञानस्य । २० अलादिलक्षणम् । २१ उत्तरम् । २२ उत्तरम् ।

१ “किं पुनरत्र व्यभिचारि किमर्थः, आदौ ज्ञानमिति ?” न्यायवा० पृ० ३७ ।
“अथ बाध्यमानत्वेन मिथ्यात्वमिति चेत्; किं बाध्यते अर्थः, ज्ञानम्, उच्यते वा ?...
अथ ज्ञानं नाध्यते; तस्यापि बाधा का ? स्वरूपव्यावृत्तिरूपा, स्वरूपापह्नकरूपा, विषया-
पहाररूपा वा ?” तत्त्वोप० पृ० १९-२१ । सा० रत्ना० पृ० १३९ ।

समानविषयस्य संवादकत्वमेव न बाधकत्वम् । न खलु प्राक्तनं घटज्ञानमुत्तरेण तद्विषयज्ञानेन बाध्यते । भिन्नविषयस्य बाधकत्वे चातिप्रसङ्गः । अर्थोऽपि प्रतिभातः, अप्रतिभातो वा बाधकः स्यात् । तत्राद्यविकल्पोऽयुक्तः; प्रतिभातो ह्यर्थः खज्ञानस्य सत्य-
 ५ तामेवावस्थापयति, यथा पटः पटज्ञानस्य । द्वितीयविकल्पेऽपि 'अप्रतिभातो बाधकञ्च' इत्यन्योन्यविरोधः । न हि खरविषाणम-
 प्रतिभातं कस्यचिद्बाधकम् । किञ्च, क्वचित्कदाचित्कस्यचिद्बाध्य-
 बाधकभावाभावाभ्यां सत्येतरत्वव्यवस्थां, सर्वत्र सर्वदा सर्वस्य
 वा ? प्रथमपक्षे-सत्येतरत्वव्यवस्थासङ्करः; मरीचिकाचर्कोदौ
 १० जलादिसंवेदनस्यापि क्वचित्कदाचित्कस्यचिद्बाधकस्यानुत्पत्तेः
 सत्यसंवेदने तूत्पत्तेः प्रतीयमानत्वात् । द्वितीयपक्षे तु-सकल-
 देशकालपुरुषाणां बाधकानुत्पत्त्युत्पत्त्योः कथमसर्वविदा वेदनं
 तत्प्रतिपत्तुः सर्ववेदित्वप्रसङ्गात् ?

इत्यप्यनल्पतर्भोविलसितर्भुः, रजतप्रत्ययस्य शुक्तिकाप्रत्ययेनो-
 १५ उत्तरकालभाविनैकविषयतया बाध्यत्वोपलम्भात् । ज्ञानमेव हि
 विपरीतार्थस्यापेक्षं बाधकमभिधीयते, प्रतिपादितासदर्थस्यैव
 तु बाध्यम् । ननु चैतन्नतैसर्पस्य घृष्टिं प्रति यद्व्यभिन्ननमिवाभा-
 सते, यतो रजतज्ञानं चेदुत्पत्तिमात्रेण चरितार्थं किं तस्याऽती-
 तस्य मिथ्यात्वापादनलक्षणयापि बाधया ? तदसत्; एतदेव हि
 २० मिथ्याज्ञानस्यातीतस्यापि बाध्यत्वम्-यदस्मिन् मिथ्यात्वापेक्ष-
 नम्; क्वचित्पुनः प्रवृत्तिप्रतिषेधोऽपि फलम्, अन्यथा रजतज्ञानस्य
 बाध्यत्वासम्भवे शुक्तिकादौ प्रवृत्तिरविरता प्रामोति । कथं

१ पक्ष । २ अप्रतिभातत्वबाधकत्वयोः । ३ विषये । ४ असलत्व । ५ ज्ञानस्य ।
 ६ ज्ञानस्य । ७ पक्षप्रानेकेषां शुगपत्प्राप्तिः सङ्करः । ८ आदिपदेन शुक्तिका ।
 ९ रजतादि । १० ज्ञान । ११ प्रमानन्ददेवः पर प्रति ज्ञेय । १२ इदं रजतमिति
 ज्ञानस्य । १३ शुक्तिकैकविषयः । १४ रजतादि । १५ उत्तरस्य । १६ शुक्ति-
 शकले प्रतिभातरजतादिपरीतोऽर्थः शुक्तिशकलम् । १७ शुक्तिकैकविषयस्यापक्षम् ।
 १८ उत्तरज्ञानेन । १९ बोधित । २० बोधितमसदर्थस्यापन (प्रतिपादन)मस-
 दर्थग्रहणं यस्य पूर्वज्ञानस्य । २१ बाध्यबाधकभावलक्षणम् । २२ रजतमस्यस्य
 शुक्तिविषयप्रत्ययः उत्तरकालभावी बाधकः इति प्रतिपादनम् । २३ मिथ्याज्ञानं ।
 २४ प्रयोजनम् । २५ प्रथमज्ञाने । २६ उत्तरज्ञानेन । २७ विषये । २८ मिथ्या-
 त्वापादनाभावे ।

१ "बाधाविरहः किं सर्वयुक्तवापेक्षया आहोस्तिप्रतिपन्नपेक्षया ?"

सत्योप० ६० ३ ।

वैवं वादिनोऽविद्याविद्ययोर्बाध्यबाधकभावः स्यात् तत्राप्युक्तैर्वि-
कल्पजालस्य समानत्वात् ?

यच्च समारोपितादपि भेदादित्याद्युक्तम् ; तदप्ययुक्तम् ; आत्मनः
सांशत्वे सत्येव भेदव्यवस्थोपपत्तेर्निर्देशस्यान्तर्बहिर्वा वस्तुनः सर्व-
थाप्यप्रसिद्धेरित्यात्माद्वैताभिनिवेशं परित्यज्यान्तर्बहिर्वाणैकप्रकारं^५
वस्तु चार्त्तत्वं प्रमाणप्रसिद्धमुररीकैर्त्तव्यम् ।

ननु चाविभांगबुद्धिस्वरूपव्यतिरेकेणार्थस्याप्रतीतितोऽसत्त्वा-
द्विज्ञप्तिमात्रमेव तत्त्वमभ्युपगन्तव्यं तद्ग्राहकं च ज्ञानं प्रमाणमिति ;
तन्न ; यतोऽविभांगस्वरूपावेदकप्रमाणसद्भावतो विज्ञप्तिमात्रं तत्त्व-
मभ्युपगम्यते, बहिरर्थसद्भावबाधकप्रमाणावर्द्धमेतन् वा ? यथाद्यः १०
पक्षस्तत्रापि तथाभूतविज्ञप्तिमात्रं ग्राहकं (मात्रग्राहकं) प्रत्यक्षम्,
अनुमानं वा ? प्रमाणान्तरस्य सौगतैरनभ्युपगमात् । तत्र न ताव-
त्प्रत्यक्षं बहिरर्थसंस्पर्शरहितं विज्ञप्तिमात्रमेवेत्यधिगन्तुं समर्थम् ;
अर्थाभावनिश्चयमन्तरेण विज्ञप्तिमात्रमेवेत्यवधारणानुपपत्तेः ।

“अयमेवेति यो ह्येष भौवे भवति निर्णयः ।

१५

नैष^{१६} वस्त्वन्तैराभावसंवित्यर्जुगमादृते ॥”

[मी० श्लो० अभावपरि० श्लो० २०]

इत्यभिधानात् । न चार्थाभावः प्रत्यक्षाधिगम्यः ; बाह्यार्थप्रकाश-
कत्वेनैवास्योत्पत्तेः । न च प्रत्यक्षे प्रतिभासमानस्यार्थस्यैवाभावो

१ वाचकेन ज्ञानमपह्नयते विषयो वेत्तव्यं वादिनः । २ उक्तविकल्पैरतीतसोचर-
कालीनं न वाचकमिति । ३ अविषया किं ज्ञानमपह्नयते विषयः फलं वा । ४ सदाद्यैः
वर्तते इति साशः । ५ मुखादिस्वप्नादि च । ६ पारभाषिकम् । ७ भवता
परेण । ८ विज्ञानाद्वैतवादी योगाचार आह । ९ ग्राह्यग्राहकसंविधिकरूपो विभागः ।
१० जैनादिभिः । ११ इदं ज्ञानमयं विषय इति विभागः । १२ ह्यपक । १३ परेण ।
१४ बलेन । १५ प्रकृते विद्यासिमाये । १६ षट्ते । १७ बहिरर्थः । १८ सद्भाव-
दिना । १९ अस्तीति साध्यः ।

१ अद्याद्वैतवादस्य विविधरीत्या पत्रांलोचनं निम्नग्रन्थेषु द्रष्टव्यम्—मी० श्लोकशा०
पृ० ६६९—, तत्त्वसं० पुस्तकप० पृ० ७५—, न्यायसं० पृ० ५२६—, आशमीमांसा
अष्टम० अष्टसह० पृ० १५६—दि० परि०, न्यायकु० चं० प्रथमपरि०, सन्नति०
टी० पृ० २७७—२८५—, स्या० रत्ना० पृ० १९०— ।

२ “ननु किमविभांगबुद्धिस्वरूपावेदकप्रमाणसद्भावतो विज्ञप्तिमात्रमभ्युपगम्यते,
बाहोस्तिदर्थसद्भावबाधकप्रमाणसद्भावसङ्घट्टेति वक्तव्यम् ? तत्र यथाद्यः पक्षः स न
युक्तः ; यत्तस्मात्तथाभूतविज्ञप्तिमात्रोपग्राहकं प्रत्यक्षं वा तद्भवेदनुमानं वा... ।” सन्नति०
टी० पृ० १४९ ।

विक्रमिमात्रस्याप्यभावात्पङ्गात् । न च तैमिरिकप्रतिभासे प्रति-
भासमानेन्द्रद्वयवर्जितमनोऽक्षप्रभवप्रतिभासविषयस्याप्यसत्त्व-
मित्यभिघातव्यम् ; यतस्तैमिरिकप्रतिभासविषयस्यार्थस्य वाच्य-
मानप्रत्ययविषयत्वादसत्त्वं युक्तम्, न पुनः सत्यप्रतिभासविषय-
५ स्याऽवाध्यमानप्रत्ययविषयत्वेन सत्त्वसम्भवात् । वाच्यवाचक-
भावश्चानन्तरमेव ब्रह्माद्वैतप्रघट्टके प्रपञ्चितः । तन्नार्थाभावोऽप्य-
क्षेणाधिगम्यः ।

नाप्यनुमानेन; अर्ध्यक्षविरोधेऽनुमानस्याप्रामाण्यात् । “प्रत्यक्ष-
निराकृतो न पक्षः” [] इत्यभिधानात् । न च बाह्यार्था-
१० वेदकाध्यक्षस्य भ्रान्तत्वात् तेनानुमानवाधेत्यभिघातव्यम् ; अन्यो-
ऽन्याश्रयात्-सिद्धे ह्यर्थाभावे तत्रोहाध्यक्षं भ्रान्तं सिद्धेव, तत्सिद्धौ
चार्थाभावानुमानस्य तेनाऽधीयेति । किञ्च, तदनुमानं कार्यलिङ्ग-
प्रभवम्, स्वभावहेतुसमुत्थं वा, अनुपलब्धिप्रसूतं वा ? न ताव-
त्प्रथमद्वितीयविकल्पौ; कार्यस्वभावहेत्वोर्विधिसाधकत्वाम्युप-
१५ गमात् । “अत्र द्वौ वस्तुसाधनौ” [न्यायवि० पृ० ३९] इत्यभिधा-
नात् । तृतीयविकल्पोऽप्ययुक्तः; अनुपलब्धेरसिद्धत्वाद्वाह्यार्थस्याप्य-
क्षादिनोपलम्भात् । किञ्च, अदृश्यानुपलब्धिस्तदभावसाधिका
स्यात्, दृश्यानुपलब्धिर्वा ? प्रथमपक्षेऽतिप्रसङ्गः । द्वितीयपक्षे तु
सर्वत्र सर्वदा सर्वथार्थाभावाऽप्रसिद्धिः, प्रतिनियतदेशाद्विधा-
२० स्यास्तदभावसाधकत्वसम्भवात् ।

र्धेति न बहिरर्थसङ्गाववाचकप्रमाणत्वमनेन विक्रमिमात्रं तत्त्व-
मभ्युपगम्यत इत्येतन्निरस्तम् ; तत्सङ्गाववाचकप्रमाणस्योक्त-
प्रकारेणासम्भवात् ।

१ यद्यप्रतिभासे तदस्तीति ननेकान्तिको न । (?) २ प्रतिभासमानत्वानिधेयात् ।
३ ज्ञान । ४ बाह्यार्थस्य । ५ परेण । ६ नेनौ द्वौ बन्धौ । ७ भ्रान्तित्वादिनां
वाच्यवाचकभावो नास्तीत्युक्ते आह । ८ पूर्वं । ९ सा (तृतीया, तृतीयासमास इत्यर्थः) ।
१० परेण । ११ अनुमानात् । १२ अर्थे । १३ सिद्धौ । १४ अस्तित्वे । १५ त्रिषु
हेतुषु अन्ये । १६ शिक्षाचदिरप्यभावसाधिका । १७ काकप्रकार । १८ बहिरर्था-
भावसाधकप्रमाणनिराकरणपरेण अन्येन ।

१ “नाप्यनुमानं बाह्याभावमावेदयति, प्रलक्षणात्वे तस्यायोगात् । न च प्रलक्ष-
विरोधे अनुमानप्रामाण्यं संभवति ‘प्रलक्षनिराकृतो न पक्षः’ इति वचनात् ।”

सम्भति० टी० पृ० ३५१ ।

२ “स्वरूपेणैव स्वयमित्येऽनिराकृतः पक्ष इति । (पृ० ७९) अनिराकृत इति ।
यत्प्रलक्षणाद्योगेऽपि यः सापत्तित्यमित्येऽप्यर्थः प्रलक्षानुमानप्रतीत्यवचननिराकृतये च
स पक्ष इति प्रदर्शयार्थम् ।” न्यायवि० पृ० ७९, ८१ ।

ननु नार्थाभावद्वारेण विज्ञप्तिमात्रं साध्यते, अपितु अर्थसं-
विदोः सहोपलम्भनियमादभेदो द्विचन्द्रदर्शनवदिति विधिद्वारेणैव
साध्यते; तदप्यसौारम्; असेदपक्षस्य प्रत्यक्षेण बाधनाच्छब्दे श्राव-
(ब्देऽश्राव)णत्ववत् । दृष्टान्तोपि साध्यविकलः; विज्ञानव्यतिरिक्त-
याह्यार्थमन्तरेण द्विचन्द्रदर्शनस्याप्यसम्भवात् । कारणदोषवशात् ५
खलु बहिःस्थितमेकमपीदं द्विरूपतया प्रतिपद्यमानं ज्ञानमुत्प-
द्यते, कारणदोषज्ञानाद्वाघर्कप्रत्ययाच्चास्य भ्रान्तता । अर्थक्रिया-
कारिस्तन्माद्युपलब्धौ तु तदभावात्सत्यता । सहोपलम्भनियम-

१ इन्द्रः । २ आत्मव्यतिवादी । ३ ईप् । ४ इन्द्रिय । ५ काचकामलादि ।
६ उत्तरकाले नेमौ द्वौ चन्द्रौ । ७ षटपटादि ।

१ “यत्संवेदनमित्यादिना नीलाकाकारतद्वियोरभेदसाधनाय निराकारज्ञानवादिनं
प्रति प्रमाणयति—

यत्संवेदनमेव साधस्य संवेदनं ह्यवम् ।

तस्मादव्यतिरिक्तं तत्ततो वा न विधिष्ये ॥ २०३० ॥

यथा नीलधियः स्वात्मा द्वितीयो वा यथोद्भूतः ।

नीलधीवेदनं चेद् नीलाकारस्य वेदनात् ॥ २०३१ ॥

यदुक्तं भवति—(यत्) यस्मादपृथक् संवेदनमेव तत्तस्मादभिन्नं यथा नीलधीः
स्वस्वभावात्, यथा वा तैमिरिकज्ञानप्रतिभासी द्वितीयो उद्भूतः चन्द्रमाः, नीलधीवेदन-
श्रेदमिति पक्षधर्मोपसंहारः । धर्म्यत्र नीलाकारतद्वियौ, तयोरभिन्नत्वं साध्यधर्मः,
यथोक्तः सहोपलम्भनियमो हेतुः । ईदृशं यद् आचार्यायि सहोपलम्भनियमादित्यादौ
प्रयोगो हेत्वर्थोऽभिप्रेतः ।” तत्त्वसं० पं० पृ० ५६७ ।

२ “—असदेतत्; अमेदस्य प्रत्यक्षेण बाधनात्,....शब्देऽभावणत्ववत् पक्षस्य
प्रत्यक्षेण निराकृतैः ।” सम्प्रति० टी० पृ० ३५२ ।

३ “पुनः स यथाह—यदि सहशब्द पर्यायस्यदा हेतुरसिद्धः; तथाहि—नटचन्द्र-
मल्लप्रेक्षासु नद्येकेनैवोपलम्भो नीलादेः, ...यदा च सत्त्वं प्राणभृतां सर्वे चित्तक्षणाः
सर्वैरेवावसीयन्ते तदा कथमेकेनैवोपलम्भः सिद्धः स्यात् । नचान्योपलम्भप्रतिषेधसंभवः
स्वभावाभिप्रकृतस्य विधिप्रतिषेधाऽयोगात् । अथ सहशब्द परककारविवक्षया तदा बुद्ध-
विधेयचित्तेन चित्तचैतैश्च सर्वथाऽनैकान्तिकता हेतोः । यथा किल बुद्धस्य भगवतो
यदिद्वैतं सन्धानान्तरनिर्णयं तस्य बुद्धज्ञानस्य च सहोपलम्भनिययेऽप्यस्त्येव च नाना-
त्वम्, तथा चित्तचैतानां सत्यपि सहोपलम्भे नैकत्वमित्यतोऽनैकान्तिको हेतुः ।”
तत्त्वसं० पं० पृ० ५६७ । विधिवि० न्यायकणि० पृ० २६४ । सम्प्रति० टी० पृ०
३५३ । सा० रत्ना० पृ० १५५ ।

“यदव्यवर्णि सहोपलम्भनियमादभेदो नीलतद्वियोः तदपि बालभावेतदपि नः
प्रतिभाति; अमेदे सहार्थानुपपत्तः । अथैकोपलम्भनियमादिति हेत्वर्थो विवक्षितः; तद-
यमधिको हेतुः नीलादिप्राणमहणसमये चन्द्रादकारुपलम्भात् ।” न्यायपं० पृ० ५५४ ।

आसिद्धः; नीलाद्यर्थोपलम्भमन्तरेणाप्युपरतेन्द्रियव्यापारेण सुखा-
दिसंवेदनोपलम्भात् । अनैकान्तिकश्चायम्; रूपालोकयोर्मिन्नयो-
रपि सहोपलम्भनियमसम्भवात् । तथा सर्वज्ञज्ञानस्य तज्ज्ञेयस्य
चेतरजनचित्तस्य सहोपलम्भनियमेऽपि मेदाभ्युपगमादनेकान्तः ।
५ ननु सर्वज्ञः सन्तानान्तरं वा नेष्यते तत्कथमयं दोषः ? इत्यसत्;
सकललोकसाक्षिकस्य सन्तानान्तरस्यानभ्युपगममात्रेणाऽभावाऽ-
सिद्धेः । सुगतश्च सर्वज्ञो यदि परमार्थतो नेष्यते तर्हि किमर्थं
“प्रमाणभूताय” [प्रमाणसमु० श्लो० १] इत्यादिनासौ समर्थितः,
स्तुतश्चाद्वैतादिप्रकरणानामादौ दिग्भागादिभिः सद्भिः । न खलु
१० तेषामसति सत्त्वकल्पने बुद्धिः प्रवर्त्तते । विचार्य पुनस्त्यागाददोषं
इत्यप्यसारम्; त्यागाङ्गत्वे हि तस्य वरं पूर्वमेव नाङ्गीकरणमी-
श्वरादिवत् । अद्वैतमेव तथा स्तूयते इत्यपि वीचर्यम्; तत्र स्तोत-
व्यंस्तौत्स्तुतितत्फलानामत्यन्तासम्भवात् ।

किञ्च, सहोपलम्भः किं युगपदुपलम्भः, क्रमेणोपलम्भोभावा-
१५ वा स्यात्, एकोपलम्भो वा ? प्रथमपक्षे विरुद्धो हेतुः; ‘सह
शिष्येणागतः’ इत्यादौ यौगपद्यार्थस्य सहशब्दस्य मेदे सत्येवो-
पलम्भात् । न ह्येकस्मिन् यौगपद्यमुपपद्यते । द्वितीयपक्षेप्यसिद्धो
हेतुः; क्रमेणोपलम्भाभावमात्रस्य चादिप्रतिवादिनोरसिद्धत्वात् ।

१ प्रतीति । २ निवृत्तेन्द्रिय । ३ पुरयेण । ४ न चैकत्वम् । ५ परेण ।
६ ज्ञानान्तरं वा । ७ सौगतैः । ८ जगद्विद्वेषिणे प्रणम्य शाले सुगताय तापिने(तापिने) ।
९ असति सत्त्वकल्पने बुद्धिप्रवृत्त्यभावलक्षणो दोषः । १० फलम् । ११ दिग्भागादि ।
१२ साधनं विचार्यते । १३ प्रसज्यः । १४ विपरीतनिश्चिताभिनाभावो विरुद्धः ।
१५ उपाध्याये । १६ असत्सत्तानिश्चयोऽसिद्धः । १७ योगाचारजनान्तां दुष्क-
स्तभावप्रागभावप्रध्वंसताभावलक्षणाऽभावयोरनभ्युपगमात् । १८ दुष्करूपाभावस ।

“अथ साहाय्यं यौगपद्यं वा विवक्षितं सहोपलम्भमानत्वं तथापि तयोर्भेदेनैव व्याप्तत्वात्
विरुद्धत्वम् । तथा सर्वज्ञः स्वचित्तेन सहोपलम्भे परचित्तं न च तस्य तस्यादमेव
इति व्यभिचारः सर्वेषां सर्वज्ञताप्रसङ्गात् ।” व्योमव० पृ० ५२७ ।

१ “अथ सहोपलम्भनियम उक्तः सोऽपि विकल्पं न सहते । यदि ज्ञानार्थोः
साहित्येन उपलम्भः ततो विरुद्धो हेतुर्नाभिर्दे साधयितुमर्हति साहित्यस्य तद्विरुद्धमेद-
व्याप्तत्वात् अमेदे तदनुपपत्तेः । अथैकोपलम्भनियमः; न, यन्त्रसत्त्वावाचकः सह-
शब्दः । अपि किमेकत्वेनोपलम्भः, आदौ एक उपलम्भो ज्ञानार्थोः ? न तावदेकत्वे-
नोपलम्भ इत्याह—वह्निपलम्भेऽपि विषयस्य ।” तद्वस० शां० सा० आमतौ ३१२१८
सम्भति० टी० पृ० ३५३ । “सहोपलम्भोऽपि किं युगपदुपलम्भः, क्रमेणोपलम्भाभावः,
एकोपलम्भो वाऽभिमतो यस्य नियमो हेतुः स्यात् ?” सा० रत्ना० पृ० १५५ ।

किञ्च, असादेभेदैः—एकत्वं साध्येत, मेदाभावो वा ? तत्राद्यविकल्पोऽसङ्गतः; भोवाऽर्भावयोस्तादात्म्यतदुत्पत्तिलक्षणसम्बन्धाभावतो गर्भ्यगमकभावायोगात् । प्रसिद्धे हि धूमपावकयोः कार्यकारणभावे—शिशपात्ववृक्षत्वयोश्च तादात्म्ये प्रतिर्वन्धे गर्भ्यगमकभावो दृष्टः । द्वितीयविकल्पेपि—अभावस्वभावत्वात्साध्यसाधनयोः सम्बन्धाऽभावः, तादात्म्यतदुत्पत्त्योरर्थस्वभावप्रतिनियमात् । अनिष्टसिद्धिश्च; सिद्धेपि मेदप्रतिषेधे विज्ञप्तिमात्रस्येष्टस्यातोऽप्रसिद्धेः, मेदप्रतिषेधमात्रेऽस्य चरितार्थत्वात् । ततस्तत्सिद्धौ वै ग्राह्यग्राहकभावादिप्रसङ्गो बहिरर्थसिद्धेरपि प्रसार्थकोऽनुषज्यते ।

अथैकोपलम्भः सहोपलम्भः । ननु किमेकत्वेनोपलम्भ एको- १०
पलम्भः स्यात्, एकैनेव वोपलम्भः, एकलोलीभावेन चोपलम्भः,
एकस्यैवोपलम्भो वा ? प्रथमपक्षे—साध्यसमो हेतुर्यथाऽनित्यः
शब्दोऽनित्यत्वादिति । बहिरन्तर्मुखाकारतया च नीलतद्वियोर्भे-
दस्य सुप्रतीतत्वादे कथं तयोरेकत्वेनोपलम्भः सिद्धयेत् ? एकैने-

- १ हेतोः । २ साध्यविचारः । ३ अर्थसंविदोः । ४ प्रसज्यः । ५ साध्य ।
६ अभावो हेतुः । ७ एकत्व । ८ साध्यसाधन । ९ सम्बन्धे । १० अद्यविषा-
णायविषाणयोरिव । ११ तुच्छाभावसिद्धिः । १२ असादेतोः । १३ अभावे ।
१४ क्रमेणोपलम्भाभावमात्रात् इत्यसात्साधनात् । १५ किञ्च । १६ व्याप्यव्यापक ।
१७ यथा प्राप्तं ग्राहकमिति दैतं तथा बाह्योऽर्थः विज्ञानमिति दैतसिद्धिरपि स्वादित्यर्थः ।
१८ अर्थसंविदोस्तादात्म्यात् । १९ नीलतद्वयोः सर्वथा तादात्म्यात् । २० ज्ञानेन ।
२१ कथञ्चित्तादात्म्य । २२ किञ्च । २३ स्वरूपासिद्धौ हेतुः । २४ ज्ञानेन ।

१ “किञ्च, क्रमेणोपलम्भाभावमात्रादभेद एकत्वं साध्यते, मेदाभावो वा ?”

सा० रत्ना० पृ० १५८ ।

२ “अथैकोपलम्भः सहोपलम्भः, ननु किमेकत्वेनैवोपलम्भः एकोपलम्भः, एकैनेव वा, एकस्यैव वा, एकलोलीभावेनैव वा ?”

सा० रत्ना० पृ० १५८ ।

३ “सहोपलम्भनियमोऽव्यसिद्धः साध्यसाधनयोरविशेषात् ।” अष्टश०, अष्ट-
सह० पृ० २४३ । “नचैकस्यैवोपलम्भनियमो हेतुः; अद्यव्याप्यत्वात्, साध्यवि-
शिष्टत्वात् । तथाऽनेकरूपाद्यवयवस्य हि तस्यार्थस्योपलम्भे स्वरूपाऽसिद्धोऽपीति ।”

व्योमवती पृ० ५२७ । सा० रत्ना० पृ० १५८ ।

४ “नापि नीलतदुपलम्भयोरिकैनेवोपलम्भः; तथाहि—नीलोपलम्भेऽपि तदुपल-
म्भानामन्यत्सन्तानगतानामुपलम्भात् ।” तत्त्वदर्श० पृ० ५६७ । “अथैकैनेवोपल-
म्भमानत्वं साधनम्; न; अन्यवेदनाऽभावसाम्यसिद्धेः । अर्थस्तु तत्समानव्यपैरन्यैर-
ूपलम्भ्यते इत्येकैनेवोपलम्भमानत्वमसिद्धम् ।” व्योमवती पृ० ५२७ ।

बोपलम्भोप्यन्यवेदेनाऽभावे सिद्धे सिद्ध्येत् । न चासौ सिद्धः; नीलाद्यर्थस्य तत्समानक्षैणैरन्यवेदनैरुपलम्भप्रतीतिरित्येकेनैवोपलम्भोऽसिद्धः । परंतैनैकलोलीभावेनोपलम्भः सहोपलम्भश्चित्रज्ञानाकारवदशक्यविवेचनत्वं साधनमसिद्धं प्रतिपत्तव्यम्; नीलतद्वि-
५ योरशक्यविवेचनत्वासिद्धेः अन्तर्बहिर्देशतया विवेकेनानयोः प्रतीतेः ।

अथैकस्यैवोपलम्भः; किं ज्ञानस्य, अर्थस्य वा? ज्ञानस्यैव चेत्; असिद्धो हेतुः । न खलु परं प्रति ज्ञानस्यैवोपलम्भः सिद्धा; अर्थस्याप्युपलम्भेः । न चार्थस्याभावाद्नुपलम्भः; इतरेतराश्रया-
१० नुषङ्गात्-सिद्धे ह्यर्थाभावे ज्ञानस्यैवोपलम्भः सिद्ध्येत्, तदुपलम्भ-सिद्धौ चार्थाभावसिद्धिरिति । अथार्थस्यैवैकस्योपलम्भः; नन्वेवं कथमर्थाभावसिद्धिः? ज्ञानस्यैवाभावसिद्धिप्रसङ्गात् । उपलम्भ-निवन्धनत्वाद्भवस्तुव्यवस्थायाः । स्वर्ूपकारणभेदाच्चार्यभेदः; ग्राहकस्वरूपं हि विशानं नीलादिकं तु ग्राह्यस्वरूपम् । अमेदे च
१५ तयोर्ग्राहकता ग्राह्यता वाऽविशेषेण स्यात् । कारणभेदस्तु

१ अर्थस्य । २ उपलम्भः । ३ सन्तानान्तरवेदनेः । ४ पुरुष । ५ एकत्वेवो-पलम्भनिराकरणपरिणम्येन । ६ चित्रज्ञानाद्यथा तदाकाराणां केतादीनामशक्य-विवेचनत्वं यथा न तयात्र । ७ अयमर्थ इदं ज्ञानमिति विवेकाभावः । ८ परिण । ९ नीलनीलज्ञानयोः । १० पृथक्त्वेन । ११ अर्थसंविदोरभेदः एकस्यैवोपलम्भात् । १२ जैनं प्रति । १३ अर्थज्ञानयोर्वटपटयोरिव ।

१ “परतैनैकलोलीभावेनैवोपलम्भः सहोपलम्भनियमः चित्रज्ञानाकारवदशक्यविवे-
चनत्वं साधनमसिद्धं प्रतिपत्तव्यम्, अन्तर्बहिर्देशतया विवेकेन ज्ञानार्थयोः प्रतीतेः।”

सा० रत्ना० पृ० १५९ ।

२ “अपि च सहोपलम्भः, किं ज्ञानयोः, उत अर्थयोः, ज्ञानार्थयोर्नो?” तत्सोप०
पृ० १२५ । “किञ्च, एकस्यैवोपलम्भो ज्ञानस्य, अर्थस्य वा?”

सम्प्रति० टी० पृ० ३५३ ।

३ “अथ बाह्यार्थाभावादेकोपलम्भनियमः; तत्र; इतरेतराश्रयत्वप्रसङ्गात् । तथा
चैकोपलम्भनियमाद् बाह्यार्थाभावसिद्धिः तत्सिद्धेश्च एकोपलम्भनियमसिद्धिरित्येकाभावादि-
तराभावः ।”
व्योमवती पृ० ५२७ ।

४ “तथा ज्ञानं ग्राहकस्वरूपं नीलादि ग्राह्यस्वरूपमित्यनयोः शुक्लीयोरिव स्वभा-
वेदात् भेदः । अमेदे हि बोधोऽपि नीलस्य ग्राह्यं स्यात् नीलञ्च बोधस्य ग्राहकमिति
स्यात्, न चैतदस्ति । कारणभेदाच्च नीलाद्बोधोऽर्थान्तरम्; तथा हि-बोधाद् बोध-
रूपता, इन्द्रियादिष्वप्रतिनियमः, निषयादाकारग्रहणमिति भेदादेवा भेद एव ।”
व्योमवती० पृ० ५२७ ।

सुप्रसिद्धः, ज्ञानस्य चक्षुरादिकारणप्रभवत्वात्तद्विपरीतत्वाच्च
नीलाद्यर्थस्येति ।

यद्योच्यते—‘यद्भा(यद्वभा)सते तज्ज्ञानं यथा सुखादि, अव-
भासते च नीलादिकम्’ इति; तत्र किं स्वतोऽवभासमानत्वं हेतुः,
परतो वा, अभा(अवभा)समानत्वमात्रं वा? तत्राद्यपक्षे हेतु-
रसिद्धः । न खलु ‘परनिरपेक्षा नीलादयोऽवभासन्ते’ इति परस्य
प्रसिद्धम् । ‘नीलादिकमहं वैश्वि’ इत्यहमहमिकया प्रतीयमानेन
प्रत्ययेन नीलादिभ्यो भिन्नेन तत्प्रतिभासाभ्युपगमात् । यदि च
परनिरपेक्षावर्भासा नीलादयः परस्य प्रसिद्धाः स्युस्तर्हि किमतो
हेतोस्तं प्रति सार्ध्यम्? ज्ञानतोति चेत्; सा यदि प्रकाशता-तर्हि १०
हेतुसिद्धौ सिद्धैव न साध्या । असिद्धौ वा तस्याः-कथं नासिद्धौ
हेतुः? को हि नाम स्वप्रतिभासं तत्रेच्छन् ज्ञानतां नेच्छेत् ।

ननु चौहम्प्रत्ययो गृहीतः, अगृहीतो वा, निर्व्यापारः, सव्या-
पारो वा, निराकारः, साकारो वा, (भिन्नकालः, समकालो वा)
नीलादेर्ग्राहकः स्यात्? गृहीतश्चेत्-किं स्वतः, परतो वा? स्वत-१५

१ प्रकाश । २ प्राकृतनीलकारणप्रभवत्वात् । ३ परेण भवता । ४ तस्माद् ज्ञान-
मिति नियमनम् । ५ प्रतिवाचसिद्धः । ६ ज्ञान । ७ जैनस्य । ८ परनिरपेक्षोऽव-
भासो येषां द्वे । ९ जैनस्य । १० इष्टमवाहितमसिद्धं साध्यम् । ११ ज्ञानत्वम् ।
१२ नीलादीनाम् । १३ नीलादी ।

1 “प्रकाशमानस्तादात्म्यात्स्वरूपस्य प्रकाशकः ।
यथा प्रकाशोऽमिमत्सया चीरुत्सवेदिनी ॥” प्रमाण वा० ३।३९७ ।
“सङ्कल्पवैचमानस्य नियमेन धिया सह ।
विषयस्य ततोऽन्यत्वं केवाकारेण सिद्ध्यति ॥” प्रमाणवा० अर्क० पृ० ९१ ।

2 “यत्तु सवेदनादितं पुरुषाद्वैतवत् तद् ।
सिधेत् स्वतोऽन्यतो वाऽपि प्रमाणात् स्वेष्टहानितः ॥”
भासपरी० कारि० ५६ । न्यायकु० चं० प्रथमपरी० । सा० रत्ना० पृ० १६१ ।

3 “तथा हि-परः प्रकाशयन् सन्बदोऽसन्बदो वा, गृहीतोऽगृहीतो वा, निर्व्या-
पारः सव्यापारो वा, निराकारः साकारो वा, भिन्नकालः समकालो वा पदार्थस्य
प्रकाशकः स्यात्?” सा० रत्ना० पृ० १६१ । “प्रत्यक्षमर्थं मुख्यकालं वा प्रकाशयति,
भिन्नकालं वा?” सन्मति० टी० पृ० ३५४ ।

“अनिर्भासं समिर्भासमन्वनिर्भासमेव च ।

विज्ञानाति न च ज्ञानं बाह्यमर्थं कथञ्चन ॥ १९९९ ॥”

तत्त्वसं० पृ० ५५९ ।

ञ्चेत् । स्वरूपमात्रप्रकाशनिभत्वाद्बहिरर्थप्रकाशकत्वाभाव एव
स्यात् । परतश्चेदवस्था; तस्यापि ज्ञानान्तरेण ग्रहणात् । न च
पूर्वज्ञानाग्रहणेऽप्यर्थस्यैव ज्ञानान्तरेण ग्रहणमित्यभिधत्तव्यम्;
तस्यासन्नत्वेन जनकत्वेन च ग्राह्यलक्षणप्राप्तत्वात् । तदाह—

५ “तां ग्राह्यलक्षणप्राप्तामासन्नां जनिकां धियम् ।
अगृहीत्वोत्तरं ज्ञानं गृहीयार्दपरं कथम् ॥” [प्रमाणवा० ३५१३]

अगृहीतश्चेद्ग्राहकोऽतिप्रसङ्गः । न च निर्वापारो बोधोऽर्थग्रा-
हकः; अर्थस्यापि बोधं प्रति ग्राहकत्वानुषङ्गात् । व्यापारवत्त्वे
चैतोऽव्यतिरिक्तो व्यापारः, व्यतिरिक्तो वा? आद्यविकल्पे-बोध-

१० स्वरूपमात्रमेव नापरो व्यापारः कश्चित् । न चानयोरभेदो युक्तः;
धर्मधर्मितया भेदप्रतीतेः । द्वितीयविकल्पे तु सम्बन्धैकसिद्धिः;
तैतस्सोपकाराभावात् । उपकारे चानवस्था तन्निर्वर्तने व्यापार-
स्यापरव्यापारपरिकल्पनात् । निराकारत्वे वा बोधस्य; अतः
प्रतिकर्मव्यवस्था न स्यात् । साकारत्वे वा-बाह्यार्थपरिकल्पना-
१५ नर्थक्यं नीलाद्याकारेण बोधेनैव पर्याप्तत्वात् । तदुक्तम्—

“धियोऽ(योऽ)लादिरूपत्वे बाह्योऽर्थः किञ्चिन्धनः ।

धियोऽ(यो)नीलादिरूपत्वे बाह्योऽर्थः किञ्चिन्धनः ॥ १ ॥”

[प्रमाणवा० ३४३१]

तथा न भिन्नकालोऽसौ तैद्ग्राहकः; बोधेन स्वकालेऽविद्यमानार्थस्य
२० ग्रहणे निखिलस्य प्राणिमात्रस्याशेषसत्त्वप्रसङ्गात् । नापि सम-

१ अहमत्ययस्य । २ द्वितीयेन । ३ जनेः । ४ पूर्वज्ञानस्य । ५ उत्तरज्ञानस्य ।
६ प्राक्कीर्त्त । ७ कर्तुं । ८ नीलादिकम् । ९ नाशार्तं नापकं नाम । १० देवदत्तानं
जिनदत्तेनाशार्तं सत् जिनदत्तस्यार्थग्राहकं भवेत् । ११ अन्यथा । १२ निर्वापारत्वा
विशेषात् । १३ बोधात् । १४ बोधव्यापारयोः । १५ स्वरूप । १६ बोध ।
१७ बोधस्यार्थं व्यापार इति । १८ व्यापारात् । १९ बोधस्य । २० षट्ज्ञानस्य षटः
षट्ज्ञानस्य षटो विषयः, इति प्रतिनियतविषय । २१ ज्ञानस्य । २२ निराकारत्वे ।
२३ ग्राहकव्यवस्थापकाभावात् । २४ किञ्चिन्धनः । किं निवन्धनं निमित्तं व्यवस्थापकं
यस्य बाह्यार्थस्य सः । २५ नीलादि । २६ अन्यथा ।

१ “न च पूर्वज्ञानाग्रहणेऽपि अर्थस्यैव ग्रहणमिति वाच्यम्, तेषामासन्नत्वे सति
ग्राह्यलक्षणप्राप्तत्वात् । तदाह—तां ग्राह्यलक्षण...भ्योमवती पृ० ५२४ ।

२ “धियोऽस्तितादिरूपत्वे सा तस्यानुभवः कथम् ।

धियः स्तितादिरूपत्वे बाह्योऽर्थः किं प्रमाणकः ॥ २०५१ ॥”

उत्तरपृ० पृ० ५७४ ।

काले; समसमयभाविनोर्ज्ञानक्षेययोः प्रतिबन्धाभावतो ग्राह्य-
ग्राहकभावसम्भवात् । अन्यथाऽर्थोपि ज्ञानस्य ग्राहकः । अर्थार्थे
ग्राह्यताप्रतीतेः स च ग्राह्यः न ज्ञानम्; न; तद्व्यतिरेकेणास्याः
प्रतीत्यभावात् । स्वैरूपस्य च ग्राह्यत्वे-ज्ञानेपि तदस्तीति तत्रापि
ग्राह्यता भवेत् । अथ जडत्वाभ्यां ज्ञानग्राहकः; ननु कुतोऽस्य
जडत्वसिद्धिः? तद्ग्राहकत्वाच्चेदन्योन्याश्रयः-सिद्धे हि जडत्वे
तद्ग्राहकत्वसिद्धिः, ततश्च जडत्वसिद्धिरिति । अथ गृहीतिकर-
णादर्थस्य ज्ञानं ग्राहकम्, ननु साऽर्थादर्थान्तरम्, अनर्थान्तरं वा
तेन क्रियते? अर्थान्तरत्वे अर्थस्य न किञ्चित्कृतमिति कथं तेनास्य
ग्रहणम्? तस्येयमिति सम्बन्धासिद्धिश्च । तर्थाप्यस्य गृहीत्यन्त-१०
रकरणेऽनवस्था । अनर्थान्तरत्वे तु तत्करणेऽर्थ एव तेन क्रियते
इत्यस्य ज्ञानता ज्ञानकार्यत्वादुत्तरज्ञानवत् । अंशार्थोपादानोत्प-
त्तेर्न दोषश्चेत्, ननु पूर्वोऽर्थोऽप्रतिषेधः कथमुपादानमितिप्रस-
ङ्गो? प्रतिषेधश्चेत्; किं समानकालाद्भिन्नकालाद्वेत्यादिदोषानु-
पह्नः । किञ्च, गृहीतिरगृहीता कथमस्तीति निश्चीयते? अन्यज्ञानेन १५
चास्या ग्रहणे स एव दोषोऽनवस्थो च, ततोऽर्थो ज्ञानं गृहीतिरिति
त्रितयं स्वतन्त्रमाभातीति न परतः कस्यचिद्व्यभिचयमिति
नासिद्धो हेतुः ।

ननु च 'अर्थमहं वेधि चक्षुषा' इति कर्मकर्तृक्रियाकरणप्रतीति-

१ अर्थं प्रलयोनीकादेर्ग्राहकः । २ तदुत्पत्तिलक्षणसम्बन्ध । ३ सन्धेतरगो-
विषयान्तरम् । ४ इति न (इत्यर्थः) । ५ अर्थस्य । ६ नो जैन । ७ परिच्छिन्ति ।
८ घटादेः । ९ घटस्य करणे घटस्य किमावार्तं यथा तथा । १० प्रथमया ।
११ सम्बन्धसिद्धयर्थम् । १२ अभिन्नत्वे । १३ घृत्पिण्डादि । १४ अर्थस्य ।
१५ अज्ञातः । १६ अप्रतिपन्नत्वाविशेषात् । १७ खरविषयाणादेरप्युपादानत्वप्रसङ्गात् ।
१८ बोधात् । १९ अज्ञाता । २० भिन्नकालेन समकालेन वेत्यादि । २१ अन्यज्ञानेन
गृहीतो गृहीत्यन्तरमाद्यगृहीतेरर्थेन सम्बन्धसिद्धयर्थं क्रियते । एवं चेदन्वयज्ञानेन क्रियमाणं
गृहीतेः सा अर्थोक्तिश्चा अभिज्ञा वेति समयपक्षे उक्तदोषानुपह्नः । पुनरपि भेदपक्षे

१ "अर्थार्थे ग्राह्यताप्रतीतेः स एव ग्राह्यो न ज्ञानमित्युच्यते; तत्र; तद्व्यतिरेके-
णास्याः प्रतीत्यभावात् ।" स्था० रत्ना० ५० १६९ ।

२ "ननु तर्हि नीलमहं वेधि चक्षुषेति प्रतिभासः कथम्? तथा हि—नीलमिति
कर्म, अहमिति कर्ता, वेधीति क्रिया, चक्षुषेति करणमेतेषां परस्परव्यावृत्तव्युत्पत्ति-
भासनादेर्भेदप्रतिपादकमुन्मत्तमापितम्; नैतदेवम्; तैमिरिकस्य द्विचन्द्रदर्शनवदस्याप्यु-
पपत्तेः । यथा हि—तैमिरिकस्य अर्थाभावेऽपि तदाकारं विशानमुदेति, एवं कर्मादिभ्य-
विद्यमानेष्वपि अनादिभासनावशात्तदाकारं विशानमिति ।" व्योमवती ५० ५२५ ।

प्र० क० मा० ८

ज्ञानमात्राभ्युपगमे कथम् ? इत्यप्यपेशलम् ; तैमिरिकस्य द्विचन्द्र-
दर्शनवदस्मा अप्युपपत्तेः । यथा हि तस्यार्थामावेपि तदाकारं
ज्ञानमुदेत्येवं कर्मादिष्वविद्यमानेष्वपि अनाद्यविद्यावासनावशात्-
दाकारं ज्ञानमिति ।

५ अत्र प्रतिविधीयते । यत्तावदुक्तम्—‘अहंप्रत्ययो गृहीतोऽगृहीतो
वा’ इत्यादि; तत्र गृहीत एवार्थग्राहकोऽसौ, तन्नहैश्व स्वत एव ।
न च स्वतोऽस्य ग्रहणे स्वरूपमात्रप्रकाशनिमग्नत्वाद्ग्रहिरर्थप्रका-
शकत्वाभावः; विज्ञानस्य प्रदीपवत्स्वरूपप्रकाशस्वभावत्वात् ।

यच्चोक्तम्—‘निर्व्यापारः सव्यापारो वेत्यादि; तदप्युक्तिमात्रम् ;

१० स्वरूपप्रकाशस्वभावताव्यतिरेकेण ज्ञानस्य स्वरूपप्रकाशनेऽपरव्या-
पाराभावात्प्रदीपवत् । न खलु प्रदीपस्य स्वरूपप्रकाशस्वभावताव्य-
तिरेकेणान्यस्तत्प्रकाशनव्यापारोऽस्ति । न च ज्ञानरूपत्वे नीलादिः
सप्रतिघादिरूपता घटते । न च तद्रूपतयाऽध्यवसीयमानस्य
नीलादेः ‘ज्ञानम्’ इति नामकरणे काचिन्नैः क्षतिः । नामकरण-

१५ मात्रेण सप्रतिघत्ववाह्यरूपत्वादेरर्थधर्मस्याध्यावृत्तेः । न च तद्रूपता
ज्ञानस्यैव स्वभावः; तद्विषयत्वेनानन्यवेद्यतया चास्यान्तःप्रतिभास-
नात्, सप्रतिघात्यवेद्यस्वभावतया चार्थस्य बहिःप्रतिभासनात् ।
न च प्रतिभासमन्तरेणार्थव्यवस्थायामन्यत्रिवन्धनं पश्यीमः ।

यदप्यभिहितम्—निराकारः साकारो वेत्यादि; तदप्यभिधान-

२० मात्रम् ; साकारवादप्रतिक्षेपेण निराकारादेव प्रत्ययीत् प्रतिर्कर्म-
व्यवस्थोपपत्तेः प्रतिपादयिष्यमाणत्वात् ।

यच्चान्यदुक्तम्—न भिन्नकालोऽसौ तद्ग्राहक इत्यादि, तदप्य-
सारम् ; क्षणिकत्वानभ्युपगमात् । यो हि क्षणिकत्वं मन्यते

गृहीतरथेन सम्बन्धसिद्ध्यर्थमन्यज्ञानेनापर गृहीतान्तरं क्रियते । अपरगृहीतिरपि अर्था-
ङ्गिणा अभिन्ना वेत्यादिप्रकारेणानवस्था ।

१ परेण । २ इदमपि ज्ञानं समकारं भिन्नकालं वेत्यादि । अन्यज्ञानमपि गृहीतम-
गृहीतमित्यादिप्रकारेण । ३ ग्रहणम् । ४ परेण । ५ ज्ञान । ६ अर्थ । ७ अर्थस्य ।
८ काठिन्य । ९ छेदनाग्रहणादि । १० आस्पर्कजनाना । ११ बहिरर्थ । १२ ज्ञान ।
१३ अर्थजनानाः । १४ परेण । १५ अहम्प्रत्ययः । १६ ज्ञानात् । १७ विषय ।
१८ ज्ञानैः । १९ अहम्प्रत्ययः । २० अर्थ । २१ ज्ञानार्थयोः । २२ ज्ञानानाम् ।

१ “निराकारपक्षेऽपि भवदमित्तसाकारवादप्रतिक्षेपेण निराकारादेव प्रत्ययापथा
प्रतिर्कर्मन्यवस्था तथा प्रतिपादयिष्यते ।” सा० रत्ना० पृ० १६३ ।

२ “यथेदं ग्राह्यग्राहकयोरेककालानुभवामाभावेन दूषणम् ; तदप्यपास्तम् ; क्षणिक-
त्वानभ्युपगमात् । यो हि क्षणिकत्वं मन्यते तस्यार्थं दोषो ज्ञानकालेऽर्थसासद्भावः
अर्थकाले ज्ञानस्येति तयोर्ग्राह्यग्राहकभावानुपपत्तिरिति ।” न्योनवती पृ० ५२९ ।

तस्यायं दोषः 'बोधकालेऽर्थस्याभावादर्थकाले च बोधस्यासत्त्वे तयोर्ग्राह्यग्राह्यकभावानुपपत्तिः' इति ।

यथाविद्यमानार्थस्य ग्रहणे प्राणिमात्रस्याशेषज्ञत्वप्रसक्तिरित्युक्तम्; तदप्युक्तम्; भिन्नकालस्य समकालस्य वा योग्यस्यैवार्थस्य ग्रहणात् । इत्येते हि पूर्वोत्तरचरादिलिङ्गप्रभवप्रत्ययाद्भिन्नकाल-५ स्यापि प्रतिनिर्यतस्यैव शकटोदयाद्यर्थस्य ग्रहणम् ।

कथञ्चैवंवादिनोऽनुमानोच्छेदो न स्यात्, तथा हि—त्रिरूपा-
ल्लिङ्गाङ्गिनि ज्ञानमनुमानं प्रसिद्धम् । लिङ्गं चावभासमानत्वमन्वेद्वा
यदि भिन्नकालं तस्य जनकम्; तद्धोक्तस्यानुमानस्याद्योपमतीतम-
नागतं तैज्जनकमित्येत एवाशेषानुमेयप्रतीतेरनुमानमेदकल्पनान-१०
र्थक्यम् । अथ भिन्नकालत्वाविशेषेपि किञ्चिदेव लिङ्गं कस्यचि-
ज्जनकमित्यदोषोयम्; नन्वेवं तदविशेषेपि किञ्चिदेव ज्ञानं कस्य-
चित्तेवार्थस्य ग्राहकं किं नेष्यते? अथातीतानुत्पेक्षेऽर्थे प्रवृत्तं ज्ञानं
निर्विषयं स्यात्, तर्हि नष्टानुत्पेक्षादुपजायमानमनुमानं निर्हे-
तुकं किं न स्यात्? यथा च स्वकाले विद्यमानं स्वरूपेण जैनकम् १५
तथा ग्राह्यमपि । तत्र भिन्नकालं लिङ्गमनुमानस्य जनकम् । नापि
समकालं तस्य जनकत्वविरोधात्, अविरोधे चानुमानमप्यस्य

१ ज्ञानकाले । २ सर्वज्ञत्व । ३ परेण भवता । ४ ग्राहीषु शक्यत्व । ५ पदद्वेव
दर्शयति । ६ लोके । ७ अनुमानात् । ८ कियत एव । ९ भिन्नकालः समकालो
वा अहम्यलभः इत्यादि । १० योगाचारस्य । ११ साध्ये अग्न्यादौ । १२ सहो-
पलम्भादि । १३ लिङ्गं । १४ पनसादनुमानादेव । १५ सकलसाध्यपदार्थानां
परिगणात् । १६ लिङ्गानामतीतानागतादीनाम् । १७ अनुमानस्य । १८ लिङ्ग-
प्रकारेण । १९ परेण । २० अतीतकारणवादिपक्षे क्षणिकत्वेन नष्टादित्युच्यते
भाविकारणवादिपक्षे लिङ्गवत्तासमानत्वमनुत्पन्नं लिङ्गं चानुमानस्य कारणं तदभावे
अनुमानलक्षणकार्यानुदयात् । २१ सौगतेनोच्यते चेत् । २२ अतीतकारणवादिपक्षे
क्षणिकत्वेन । २३ भाविकारणवादिपक्षे लिङ्गवत्तासमानत्वमनुमानस्य कारणं तदभावे
कार्यानुदयात् । २४ अतीति भविष्यति काले । २५ लिङ्गम् । २६ अनुमानस्य ।
२७ वस्तु । २८ ज्ञानस्य भवति । २९ सन्धेत्तरगोविपाणवत् ।

१ "भिन्नकालस्यापि योग्यस्यैवार्थस्य ज्ञानेन ग्रहणात् । इत्येते हि—पूर्वचरादि-
लिङ्गप्रभवप्रत्ययाद्भिन्नकालस्यापि प्रतिनिर्यतस्यैव शकटोदयाद्यर्थस्य ग्रहणम् ।"

स्या० रत्ना० पृ० १६३ ।

२ "किञ्चैवंवादिनस्ते कथं भिन्नकालं किञ्चिदपि लिङ्गं साध्यस्यानुमापकं स्यात्?
अनुमापकत्वे वा किञ्चिदेकमेव भसादिलिङ्गमतीतस्य पात्रकादेरिव समस्रसाध्यतीताना-
तानुमेयस्य प्रतिपत्तिहेतुः स्याद् भिन्नकालत्वाविशेषात् ।" स्या० रत्ना० पृ० १६३ ।

जनकं भवेत्, तथा चान्योन्याभ्रयानैकस्यापि सिद्धिः । अथानु-
मानमेव जन्यम्, तत्रैव जन्यताप्रतीतेः; न; अनुमानव्यतिरेकेणार्थे
ग्राह्यतावजन्यतायाः प्रतीत्यभावात् । न च स्वरूपमेवैव जन्यता;
लिङ्गेऽपि तत्सङ्गादेन जन्यताप्रसक्तः । तथा चान्योन्यजन्यताल-
५ क्षणो दोषः स एवानुषज्यते । अर्थोनयोः स्वरूपाविशेषेऽप्यनुमान
एव जन्यता लिङ्गापेक्षया, नतु लिङ्गे तदपेक्षया सेत्युच्यते; तर्हि
ज्ञानार्थयोस्तदविशेषेपि अर्थस्यैव ज्ञानापेक्षया ग्राह्यता न तु ज्ञान-
स्यार्थापेक्षया सेत्युच्यताम् । न चोत्पत्तिकरणाद्धिङ्गमनुमानस्यो-
त्पादकम्, तस्यास्ततोऽर्थान्तरानर्थान्तरपक्षयोरसम्भवात् । सा
१० हि यद्यनुमानादर्थान्तरम्; तदानुमानस्य न किञ्चित्कृतमित्यस्या-
भावः । अनुमानस्योत्पत्तिरिति सम्बन्धासिद्धिश्चानुपकारात् ।
उपकारे वाऽनवस्था । अथानर्थान्तरभूता क्रियते; तदानुमानमेव
तेन कृतं स्यात् । तथा चानुमानं लिङ्गं लिङ्गजन्यत्वादुत्तरलिङ्गक्ष-
णवत् । न च प्राक्तनानुमानोपादानजन्यत्वाच्चानुमानं लिङ्गम्;
१५ यतस्तदप्यनुमानमन्यतो लिङ्गाब्धेर्चाहिं तदप्यनुमानं लिङ्गं तज्जन्य-
त्वादुत्तरलिङ्गक्षणवदिति तदवस्थं बोध्यम् । उत्तरमपि तदेवेति
चेत्, अनवस्था स्यात् । अथ तथैवाप्रतीतेर्लिङ्गजन्यत्वाविशेषे किञ्चि-
द्धिङ्गमपरमनुमानम्; तर्हि ज्ञानजन्यत्वाविशेषेपि किञ्चिज्ज्ञानमप-
रोऽर्थ इति किञ्च स्यात् ? तथा च 'अथो ज्ञानं ज्ञानकार्यत्वादुत्तर-
२० ज्ञानवत्' इत्युक्तम् । नै च गृहीतिविधीनादर्थस्य ग्राह्यतेर्न्यते;
स्वरूपप्रतिनियमात्तदभ्युपगमात् । यथैव ह्येकसामग्र्यधीनानां
रूपैदीनां चक्षुरादीनां समसमयेऽपि स्वरूपप्रतिनियमाद्रूपैदाने-
तेरेत्वव्यवस्था, तथार्थज्ञानयोर्ग्राह्यतेरेत्वव्यवस्था च भविष्यति ।

नैतु यथा प्रत्यासत्तया ज्ञानमात्मानं विषयीकरोति तथैव चेदर्थं

२ लिङ्गेन । २ ता (षष्ठी षष्ठ्यन्तान्मत्तुरित्थः) (१) । ३ अनुमानस्य । ४ लिङ्गा-
नुमानयोः । ५ परेण भवता । ६ परेण । ७ लिङ्गेन । ८ उत्पत्त्यन्तरेणैव ।
९ अभिज्ञा । १० लिङ्गेन । ११ ननु प्राक्तनमनुमानं लिङ्गाद्रुत्पद्यते । १२ प्राक्तनम् ।
१३ लिङ्गतया अनुमानतया । १४ अनुमानस्य । १५ उत्तरक्षणम् । १६ किञ्च ।
१७ परिच्छिन्ति । १८ कारणात् । १९ जनेनैः । २० अर्थग्राह्यतास्वरूपस्य प्रति-
नियतत्वात् । २१ पूर्वक्षणम् । २२ उत्तरम् । २३ उत्तररूपरसयोः उत्तरचक्षुरादीनयोः ।
२४ सङ्कारिकारणम् । २५ ग्राहकम् । २६ भवदभासते तज्ज्ञानमित्यनुमानस्य विषये
बाधक प्रमाणम् । २७ चक्षुः ।

1 “ननु यथा प्रत्यासत्तया ज्ञानमात्मानं विषयीकरोति तथैव चेदर्थं तथोरे-
वमम्...अथान्यथा तर्हि स्वभावद्वयाप्रतिज्ञानस्य भवेत्, तदपि स्वभावद्वयं यद्यपरेण

तयोरैक्यम् । न श्लोकस्वभाववेद्यमनेकं युक्तमन्यथैकमेव न किञ्चित्स्यात् । अथान्यथा; स्वभावद्वयापत्तिज्ञानस्य भवेत् । तदपि स्वभावद्वयं यद्यपरेण स्वभावद्वयेनाधिगच्छति तदाऽनवस्था तद्वेदनेप्यपरस्वभावद्वयापेक्षणात् । ततः स्वरूपमात्रग्राह्ये ज्ञानं नार्थग्राहि; इत्यप्यसमीचीनम् ; स्वार्थग्रहणैकस्वभावत्वाद्विज्ञानस्य । स्वभाव-५ तद्वत्पक्षोपक्षितदोषपरिहाराच्च स्वसंवेदनसिद्धौ भविष्यतीत्यलमतिप्रसङ्गेन ।

कथञ्चैवंवादिनो रूपादेः सजातीयैतरकर्तृत्वम् तत्राप्यैस्य समानत्वात् ? तथा हि—रूपादिकं लिङ्गं वा यथा प्रत्यासत्तया सजातीयज्ञानं जनयति तथैव चेद्रसादिकमनुमानं वा; तर्हि तैयो-१० रैक्यमित्यन्यैतरवेव स्यात् । अथान्यथा; तर्हि रूपादेरेकस्य स्वभावद्वयमायातं तत्र चानवस्था परापरस्वभावद्वयकल्पनात् । न खलु येन स्वभावेन रूपादिकैकेकां शक्तिं विभक्तिं तेनैवापरां तैयोरैक्यप्रसङ्गात् । अथ रूपादिकैकेकस्वभावमपि मिश्रस्वभावं कार्यद्वयं कुर्यात्तत्करणैकस्वभावत्वात्; तर्हि ज्ञानमप्येकस्वभावं स्वार्थयोः १५ सद्भव्यतिकरव्यतिरेकेण ग्राहकमस्तु तद्ग्रहणैकस्वभावत्वात् । ननु व्यवहारैर्णै कार्यकारणभावो न परमार्थतस्तेर्नैयमदोषः; तर्हि तेनैवाहमहमिकया प्रतीयमानेन ज्ञानेन नीलैर्देवैर्हणसिद्धेः कथमसिद्धः सैतोऽवभासमानत्वलक्षणो हेतुर्न स्यात् ?

१ इन्द्रः । २ स्वार्थग्रहण । ३ ज्ञान । ४ एकत्वमनवस्था च । ५ ज्ञानान्तरप्रसङ्गपक्षविक्षेपणान्ते । ६ ज्ञान । ७ ज्ञानाद्वैतपक्षे दोषपरिहारविस्तरेण । ८ स्वभावमनवस्था मुवाणस्य । ९ रसादिलिङ्गं च (१) । १० सजातीयं जनयन्विजातीयं जनयेत् (?) । ११ उत्तररूपमुत्तरलिङ्गं च । १२ अनवस्थादिदोषस्य । १३ न्यायस्य । १४ पूर्वं । १५ द्रुमादि । १६ पूर्वं । १७ स्वभावेन । १८ शक्त्या । १९ उत्तर । २० रूपलिङ्गं च । २१ विजातीयम् । २२ विजातीयं । २३ रूपरसयोर्लिङ्गानुमानयोर्वा । २४ रूपं वा रसो वा लिङ्गं वा अनुमानं वा स्यात् । २५ लिङ्गस्य । २६ कर्तृ । २७ अन्यथा । २८ लिङ्गं च । २९ रूपादेः । ३० ज्ञानस्य । ३१ रूपादेः । ३२ उपलक्षणात् । ३३ साम्यसाधनभावादि । ३४ कारणेन । ३५ पदार्थस्य । ३६ शक्ति । ३७ ज्ञानात् (ज्ञानेन) प्रकाशमानत्वात् ।

स्वभावद्वयेनाधिगच्छति तदानवस्था...; तदरमणीयम्; स्वार्थग्रहणोभयस्वभावत्वादिज्ञानस्य ।”

स्वा० रत्ना० पृ० १६५ ।

1 “कथञ्चैवंवादिनो रूपादेर्लिङ्गस्य वा सजातीयैतरकर्तृत्वं तत्राप्यस्य पर्यनुयोगस्य समानत्वात् । तथा हि—रूपादिकं लिङ्गं वा यथा प्रत्यासत्तया सजातीयज्ञानं जनयति तथैव चेद्रसादिकमनुमानं वा तर्हि तयोरैक्यमित्यन्यैतरवेव स्यात् । अथान्यथा तर्हि रूपादेरेकस्य स्वभावद्वयमायातं तत्र चानवस्था ।”

स्वा० रत्ना० पृ० १६५ ।

न चैवंवादिनः स्वरूपस्य स्वतोऽवगतिर्घटते; समकालस्यास्य प्रतिपत्तावर्थवत् प्रैर्सङ्गात् । न च स्वरूपस्य ज्ञानतादात्म्यार्थाय दोषः; तादात्म्येपि समानेतरकालविकल्पानतिर्वृत्तेः । ननु ज्ञानमेव स्वरूपम्, तत्कथं तत्र भेदभाषी विकल्पोऽवतरतीति चेत् ? कुत ५ परैतत् ? तथो प्रतिपत्तिश्चेत् ; इयं यद्यप्रमाणं कथमतस्तत्तिद्धिरतिप्रैर्सङ्गात् ? प्रमाणं चेत् ; तर्हि स्वपरग्रहणस्वरूपताप्यस्य तथैवास्त्वलं तत्रापि तद्विकल्पकल्पनया प्रैत्यक्षविरोधात् । तत्र स्वतोऽवमा-
समानत्वं हेतुरसिद्धैत्वात् ।

नापि परैतो वैद्यसिद्धत्वात् । न खलु सौगतः कस्यचित्परतोऽ-
१० वभासमानत्वमिच्छति । “नान्योऽनुभवो बुद्ध्यास्ति तस्या नानु-
भवोपरः” [प्रमाणवा० ३।३२७] इत्यभिधानात् । कथं च सौव्यसा-

१ समकालो भिन्नकालो वायो न ग्राह्य इत्येवं वादिनो योगाचारस्य । २ ज्ञानस्य ।
३ ज्ञानात् । ४ परिच्छित्तिः । ५ देशान्तरस्यमपि स्वरूपं गृहीयात्समकालत्वे
तदुत्पत्तिरक्षणसम्बन्धाभावात् । ६ देशान्तरस्यमपि स्वरूपं गृहीयात्समकालत्वात् ।
७ दूषणम् । ८ अर्धवत्प्रसङ्गलक्षणः । ९ भिन्न । १० अनतिक्रमणात् । ११ अपि
न कुतोऽपि । १२ ज्ञानस्वरूपे । १३ प्रमाणात् । १४ ज्ञानमेव स्वरूपं ।
१५ ज्ञानस्य स्वरूपतया । १६ ज्ञानमेव स्वरूपसिद्धिः । १७ संशयादेरपि तत्सिद्धिः ।
१८ ज्ञानस्य । १९ अर्धग्रहणे । २० समानेतरकाल इत्यादि । २१ अन्यथा ।
२२ जैनस्य । २३ ज्ञानात् । २४ योगाचार । २५ अर्धः । २६ ग्राह्यः ।
२७ ग्राहकः । २८ ग्राह्यग्राहकवैभूयोत्सर्वं सैव प्रकाशते । (इति उत्तरार्द्धं लोकस्य) ।
२९ सौगतैः परतः प्रतिभासानभ्युपगमे । ३० किञ्च ।

1 “नान्योऽनुभवोऽस्ति तस्या नानुभवोऽपरः ।

तस्यापि तुल्यचोद्यत्वात् स्वयं सैव प्रकाशते ॥ प्रमाणवा० ३।३२७ ।
“बुद्ध्या चोऽनुभूयते स नास्ति परः, यथा अन्योऽनुभावो नास्ति तथा निवेदिष्य ।
तस्यास्तर्हि परोऽनुभवो बुद्धेरस्तु; न; तथापि ग्राह्यग्राहकलक्षणभावः । पर इति
संवेदनस्वरूपेऽवस्थितं कथं परस्यानुभवः साक्षात्करणादिकं प्रत्याख्यातम् । तत्संवेदानु-
प्रवेशे च तद्वैरिकत्वमेव स्यात्, तथा च स्वयं सैव प्रकाशते न ततः पर इति शितम् ।”
प्रमाणवाचिकात्कार ।

२ “नच प्रकाशनलक्षणस्य हेतोः ज्ञानत्वेन व्याप्तिसिद्धिर्यतः स्वरूपमात्रपर्यवसितं
ज्ञानं सर्वमवभासनं ज्ञान (नत्त्व) व्याप्तमिति नाधिगन्तुं समर्थम् । नच सकलसम्ब-
न्धप्रतिपत्तौ सम्बन्धप्रतिपत्तिः । उक्तं च—

द्विष्टसम्बन्धसंविष्टिनैकरूपप्रवेदनात् ।

द्वयस्वरूपग्रहणे सति सम्बन्धवेदनम् ॥”

सम्भति० वी० पृ० ४८३ ।

धनयोर्व्याप्तिः सिद्धा ? यतो 'यदवभासते तज्ज्ञानम्' इत्यादि सूक्तं स्यात् । न खलु स्वरूपमात्रपर्यवसितं ज्ञानं 'निखिलमवभासमानत्वं ज्ञानत्वव्याप्तम्' इत्यधिगन्तुं समर्थम् । न चाखिलसम्बन्धप्रतिपत्तौ सम्बन्धप्रतिपत्तिः । "द्विष्टसम्बन्धसंविद्धिः" [] इत्याद्यभिधानात् । न च विवक्षितं ज्ञानं ज्ञानत्वमवभासमानत्वं^१ चार्त्तमन्येव प्रतिपद्य तयोर्व्याप्तिमधिगच्छतीत्यभिधातव्यम् ; तत्रैवानुमानप्रवृत्तिप्रसङ्गात् । तत्र च तत्प्रवृत्तेर्वैयर्थ्यं साध्यस्याध्यक्षेण सिद्धत्वात् । अथ सकलं ज्ञानमात्मन्यनयोर्व्याप्तिं प्रत्येतीत्युच्यते ; ननु सकलज्ञानाक्षौने कथमेवं चादिना प्रत्येतुं शक्यम् ? न चासिद्धव्याप्तिकलिङ्गप्रभवादनुमानात्तथागतस्य समतसिद्धिः ;^२ परंस्यापि तथैभूतार्त्कार्याद्यनुमानादीश्वराद्यभिमतसाध्यसिद्धिप्रसङ्गात् । न ज्ञानयोः कुतश्चित् प्रमाणाद्व्याप्तिः प्रसिद्धा ; ज्ञानवज्जडस्यापि परतो ग्रहणसिद्ध्या हेतोरनैकान्तिकत्वानुपपन्नात् । यदप्युक्तम्—जडस्य प्रतिभासायोगादिति, तत्राप्यप्रतिपन्नस्यास्य प्रतिभासायोगः, प्रतिपन्नस्य वा ? न तावदप्रतिपन्नस्यासौ^३

१ निश्चितम् । २ शालुं । ३ सम्बन्धिनोरवभासमानत्वज्ञानत्वयोः । ४ नैकरूपप्रवेदनात् । इयोः स्वरूपग्रहणे सति सम्बन्धवेदनम् । ५ प्रत्यक्षमनुमानं वा । ६ स्वसिद्धेव । ७ अवभासमानत्वज्ञानत्वयोः । ८ परेण । ९ अन्यथा । १० ज्ञानस्य । ११ जानाति । १२ परेण । १३ अपरिज्ञाने (सति) । १४ सकलं ज्ञानमित्यादिवादिना । १५ नीलादीना ज्ञानरूपतासिद्धिः । १६ योगादेरपि । १७ असिद्धव्याप्तिकलिङ्ग । १८ कार्यादेहेतोरुपपन्नादनुमानात् । १९ ता हेतोः सम्बन्धि । २० किञ्च । २१ अन्यथा । २२ साध्यसाधनज्ञानयोर्व्याप्तिज्ञानेन ग्रहणम् । २३ नीलादेर्वैयर्थ्य । २४ ज्ञानात् । २५ प्रतिभासमानत्वादित्यस्य । २६ परेण । २७ परेण त्ववा अथातस्य ।

१ "सद्युक्तमग्नेः—इयसम्बन्धसंविद्धिनैकरूपप्रवेदनात् । ..."

तस्वार्थेच्छे० पृ० ४२२ ।

२ "नच ज्ञानत्वस्य प्रकाशनयोः साध्यसाधनयोः कुतश्चित्प्रमाणाद् व्याप्तिसिद्धिः पारमार्थिकी; शब्दवज्जडस्यापि परतो ग्रहणसिद्धेरनैकान्तिकत्वप्रसङ्गेः ।"

संमति० टी० पृ० ४८४ ।

३ "जडस्य प्रतिभासायोगोऽप्यप्रतिपन्नस्य प्रतिपत्तुमशक्यः, शक्यत्वे वा सन्तानान्तरस्यापि स्वप्रकाशायोगः प्रतिपत्तव्यः इति तस्याप्यभावः प्रसक्तः । तथा च परप्रतिपादनार्थं प्रकृतहेतुपन्थासो व्यर्थः । अथ प्रतिपन्नस्य जडस्य प्रकाशायोगः; तथापि विरोधः—जडः प्रतीयते प्रकाशायोगश्च इति ।"

सं० दे० टी० पृ० ४८४

"यदप्युच्यते—जडस्य प्रतिभासायोगादिति; तत्राप्यप्रतिपन्नस्य प्रतिभासायोगः प्रतिपन्नस्य वा ।"

स्या० रत्ना० पृ० १६५ ।

प्रत्येतुं शक्यः, अन्यथा सन्तानान्तरस्याप्रतिपक्षस्य स्वप्रतिभासा-
योगस्यापि प्रसिद्धेस्तस्याप्यभावः । तथा च तत्प्रतिपादनार्थं
प्रकृतहेतूपन्यासो व्यर्थः । अथ सन्तानान्तरं स्वस्य स्वप्रतिभासयोगं
स्वयमेव प्रतिर्षद्यते, जडस्यापि प्रतिभासयोगं तदेव प्रत्येतीति
५ किञ्चेत्येते ? प्रतीतेरुभयत्रापि समानत्वात् । अथाऽप्रतिपक्षेपि जडे
विचारानुसङ्गयोगः, ननु तेनाप्यस्याविषयीकरणे स एव दोषो
विचारस्तत्र न प्रवर्तते । 'तैत एव वात्र तदयोगप्रतिपत्तिः' इति
विषयीकरणे वा विचारवत्प्रत्यक्षादिनाप्यस्य विषयीकरणात्प्रति-
भासायोगोऽसिद्धः । न च प्रतिपक्षस्य जडस्य प्रतिभासायोग-
१० प्रतिपत्तिरित्यभिधीयते तद्व्यम्; 'जडप्रतीतिः, प्रतिभासायोगश्चास्य'
इत्यन्योन्यविरोधात् ।

सांख्यविकल्पश्चायं दृष्टान्तः, नैयायिकादीनां सुखादौ ज्ञानरूप-
त्वासिद्धेः । अस्मादेव हेतोस्तत्रापि ज्ञानरूपतासिद्धौ दृष्टान्तान्तरं
भृग्यम् । तत्राप्येतच्चोद्ये तदन्तरान्वेषणमित्यनवस्था । नीलादेर्द-
१५ दृष्टान्तत्वे चान्योऽन्याश्रयः-सुखादौ ज्ञानरूपतासिद्धौ नीलादेस्तधि-
दर्शानात्तद्रूपतासिद्धिः, तस्यां च तन्निदर्शनात्सुखादेस्तद्रूपतासिद्धि-
रिति । न च सुखादौ दृष्टान्तमन्तरेणापि तत्सिद्धिः, नीलादावपि
तथैव तदापत्तेस्तत्र दृष्टान्तवचनमनर्थकमिति निग्रहाय जायेत ।

अर्थं सुखादेरज्ञानत्वे-तैतः पीडानुग्रहौभावो भवेत् । ननु
२० सुखाद्येव पीडानुग्रहौ, ततो भिन्नौ वा ? प्रथमपक्षे-कं ज्ञानत्वेन
व्याप्तौ तौ प्रतिपक्षौ, यतस्तदभावे न स्याताम् । व्यापकाभावे हि

१ शिष्यादिकम् । २ सौगतेः । ३ स्वरूपेण । ४ बोधनार्थं । ५ प्रतिभास-
मानत्वात् । ६ ता । ७ संबन्ध । ८ जानाति । ९ परेण । १० सौगतस्य
तत्र । ११ सन्तानान्तरप्रतिभासयोगे जडप्रतिभासयोगे च । १२ प्रतिभासायोगः ।
१३ विचारात् । १४ जडस्य विचारेण । १५ अनुमान । १६ जडस्य ।
१७ द्वितीयविकल्पस्य । १८ असम्भव । १९ परेण । २० ज्ञान । २१ सुखादिः ।
२२ प्रतिभासमानत्वादित्यस्मात् । २३ सुखादिषु ज्ञानं भवतीति साध्यं प्रतिभास-
मानत्वात् । दृष्टान्तेन साध्यं ह्यत्र । २४ यदवमासते तज्ज्ञानमित्यत्रानुमाने ।
२५ दुःख । २६ सुखादुःखात् । २७ उपकार । २८ अन्ववदृष्टान्ते । २९ परेण ।

1 "नच नैयायिकादीन् प्रति सुखादेशानता सिद्धेति साध्यविकल्पता दृष्टान्तस्य...।"

संमति० टी० पृ० ४८४ ।

सा० रत्ना० पृ० १६७ ।

2 "अथ सुखादेरज्ञानत्वे ततोऽनुग्रहाभावो भवेत्, ननु किं सुखमेवाऽनुग्रहः,
नत ततो भिन्नम् ?..."

संमति० टी० पृ० ४८५ ।

नियमेन व्याप्याभावो भवति । अन्यथा प्राणादेः सात्मकत्वेन कैचिद्व्याप्तिसिद्धावप्यात्माऽभावे स न भवेत् ततः केवलव्यतिरेकि-
हेत्वर्थमकत्वप्रदर्शनमयुक्तम् । तन्नाद्यर्थक्षः । नापि द्वितीयो यतो
यदि नाम सुखादुःखयोर्ज्ञानत्वाभावेः, अर्थान्तरभूतानुग्रहाद्यभावे
किमायातम् ?' न खलु यद्बदत्तस्य गौरत्वाभावे देवदत्ताभावो ५
दृष्टः । ननु सुखादौ जैनस्य प्रकाशमानत्वं ज्ञानरूपतया व्याप्तं
प्रसिद्धमेवेत्यप्यसारम् ; यतः स्वतः प्रकाशमानत्वं ज्ञानरूपतया
व्याप्तं यत्तस्यात्र प्रसिद्धं तन्नीलीद्यर्थे(र्थे) नास्तीत्यसिद्धो हेतुः । यत्तु
परतः प्रकाशमानत्वं तत्र प्रसिद्धं तत्र ज्ञानरूपतया व्याप्तम् ।
प्रकाशमानत्वमात्रं च नीलादाद्युपलभ्यमानं जडत्वेनाविरुद्धत्वं १०
नैकीन्ततो ज्ञानरूपतां प्रसाधयेत् ।

यदप्युक्तम्-तैमिरिकस्य द्विचन्द्रादिवत्कर्त्रादिकमविद्यमानमपि
प्रतिभातीति, तदपि स्वैमनोरथमात्रम् ; अत्र धौघकप्रमाणाभा-
वात् । द्विचन्द्रादौ हि विपरीतार्थख्यापकस्य बाधकप्रमाणस्य

१ ज्ञानत्वेन पीठानुग्रहयोर्व्याप्तिसिद्धावपि ज्ञानाभावे पीठानुग्रहयोरभावो यदि ।
२ उच्छ्वासदेः । ३ अन्यदृष्टान्ते । ४ वटादौ । ५ सौगवस्य । ६ भेयान् ।
७ तर्हि । ८ पीडा । ९ दूषणम् । १० दृष्टान्ते । ११ दाद्यन्तिके । १२ सुवीयो
विकल्पः । १३ ज्ञायमानं । १४ सर्वथा । १५ परेण । १६ पुरुषस्य । १७ सौगतः ।
१८ घटमहामात्मना वेधीति कर्त्रादौ । १९ नेदं कर्त्रादिकमिति । २० पकचन्द्र ।

1 "सम्प्रति ह्यपरेण सन्देहे अनैकान्तिकत्वं वक्तुमाह अनवोरेण अन्नव-व्यति-
रेकरूपयोः सन्देहात् संशयहेतुः । उदाहरणम्—

'सात्मकं जीवच्छरीर प्राणादिमत्त्वादिति ।' (५० १०५)

कस्मादनैकान्तिकः ?

'साध्येतरयोरतो निश्चयान्नावात्'

साध्यस्य इतरस्य च विरुद्धस्य सन्दिग्धान्वयव्यतिरेकाभिश्चयान्नावात् । सपक्षविपक्ष-
योर्हि सपदस्य (सदसस्य) सन्देहेन साध्यस्य न विरुद्धस्य सिद्धिः । नच सात्मक-
नात्मकान्यां च परः प्रकारः संभवति । ततः प्राणादिमत्त्वात् धर्मिणि जीवच्छरीरे सहायः
आत्मसावाभावयोरित्यनैकान्तिकः प्राणदिरिति ।"

न्यायविन्दु ५० ११० ।

2 "यद्येदम् 'नीलमहं वेधि' इति ज्ञानं तैमिरिकस्य द्विचन्द्रदर्शनवद्भ्रान्तमिति;
असदेतत् ; अनाध्यमानत्वात् । तथाहि-तैमिरिकस्य तिमिरविनाशादूर्ध्वमेकत्वज्ञाने
सति द्विचन्द्रदर्शनं भ्रान्तमिति प्रतिभाति अनुत्पन्नतैमिरस्यान्वस्य, नैवं नीलमिलादिज्ञाने
विपरीतार्थग्राहकप्रमाणानुपपत्तेर्मिथ्यात्वमिति ।"

प्रश्न० व्योमवती ५० ५३० ।

सद्भावाद्युक्तमसत्यतिभासनम्, न पुनः कर्त्रादौ; तत्र तद्विपरी-
ताद्वैतप्रसाधकप्रमाणस्य कस्यचिदसम्भवेनाऽऽघकैत्वात् । प्रति-
पादितैश्च बाध्यबाधकभावो ब्रह्माद्वैतविचारे तदलमतिप्रसङ्गेन ।
अद्वैतप्रसाधकप्रमाणसद्भावे च द्वैतापत्तितो नाद्वैतं भवेत् । प्रमाणा-
५ भावे चाद्वैताप्रसिद्धिः प्रमेयप्रसिद्धेः प्रमाणसिद्धिनिवन्धनत्वात् ।

किञ्चाद्वैतमित्यत्र प्रसज्यप्रतिषेधः, पर्युदासो वा ? प्रसज्यपक्षे
नाद्वैतसिद्धिः । प्रतिषेधमात्रपर्यवसितत्वात्तस्य । प्रधानोपसर्जन-
भावेनाङ्गान्गिर्भावकल्पनायामपि द्वैतप्रसङ्गः । पर्युदासपक्षेपि द्वैत-
प्रसक्तिरेव प्रमाणप्रतिपन्नस्य द्वैतलक्षणवस्तुनः प्रतिषेधेनाऽद्वैत-
१० प्रसिद्धेरन्युपगमात् । द्वैतादद्वैतस्य व्यतिरेके च द्वैतानुपपन्न-
एव । अव्यतिरेकेपि द्वैतप्रसक्तिरेव भिन्नावभिन्नस्यामेदे(दं)विरो-
धात् ॥ छ ॥

१ एकत्व । २ कर्त्रादेः । ३ जनेन मया । ४ बाध्यबाधकभावसमवेनेन ।
५ किञ्च । ६ प्रमाणमेकमद्वैतमेकं चेति द्वैतापत्तिः । ७ प्रसक्तस्य प्रतिषेधः प्रसज्यः ।
८ सद्ब्रह्मसाक्षी पर्युदासः । ९ द्वैतनिषेधस्य प्रधानभावेन अद्वैतविषेरप्रधानत्वेन ।
१० गौण । ११ कृत्वा । १२ विशेषण । १३ विशेष्य । १४ हृदं विशेष्यमिदं च
विशेषणमित्यनेन प्रकारेण द्वैतप्रसङ्गः । १५ यिञ्चत्वे । १६ किञ्च । १७ द्वैतात् ।
१८ अद्वैतस्य । अन्यतिरिक्तस्य । १९ प्रकारेण ।

1 हेतोरद्वैतसिद्धिश्चेद् द्वैतं साहेतुसाध्ययोः ।
हेतुना चेदिना सिद्धिर्द्वैतं बाध्यात्रतो न किञ्च ॥”

आसमीमांसा का० २६ । अष्टसह० पृ० १६० ।

“अद्वैतप्रतिपादकस्य प्रमाणस्य सद्भावे द्वैतापत्तितो नाद्वैतम् । प्रमाणाभावे अद्वैता-
सिद्धिः ॥” समति० टी० पृ० ४२८ ।

2 “अद्वैतं न विना द्वैतादहेतुरिव हेतुना ।

सन्निः प्रतिषेधो न प्रतिषेध्यादृते कश्चिद् ॥”

आसमीमांसा का० २७ । अष्टसह० पृ० १६१ ।

“किञ्च, अद्वैतमित्यत्र प्रसज्यप्रतिषेधः, पर्युदासो वा ?...द्वैतादद्वैतस्य व्यतिरेके
च द्वैतप्रसक्तिरेव, परस्परव्यावृत्तस्वरूपान्यावृत्तात्मकत्वे तस्य हिरूपताप्रसक्तोः । अव्यतिरेके
पुनर्द्वैतप्रसक्तिः ॥” समति० टी० पृ० ४२८ ।

३ अस्य च विज्ञानाद्वैतवादस्य विविधरीत्या खण्डनं निम्नग्रन्थेषु ब्रह्मव्यख-
शाबरभा० बृहती, पञ्जिका, शास्त्रदीपिका १।१।५। मीमांसाश्लो० निरालम्बनवाद ।
योगसू०, व्यासभा०, तत्त्ववे० ४।२।४। ब्रह्मसू० श्लो० भा० नामती २।२।२५।
विधिवि० पृ० २५४ । न्यायसं० पृ० ५२६ । आसमी०, अष्टसह०, अष्टसह०
पृ० २४२ । न्यायकुरु० पृ० ११९ । चत्स्यनु० पृ० ४५ । तत्त्वार्थश्लो० पृ० ३६ ।
संमतिटी० पृ० ३४९ । सा० रत्ना० पृ० १४९ । सा० मं० का० २६ ।

एतेन “चित्रप्रतिभासाप्येकैव बुद्धिर्वाह्यचित्रविलक्षणत्वात्, शक्यविवेचनं हि वाह्यं चित्रमशक्यविवेचनास्तु बुद्धेरनीलादय आकारः” इत्यादिना चित्राद्वैतमर्त्युपवर्णयन्नपाकृतः; अशक्य-विवेचनत्वस्यासिद्धेः । तच्छि बुद्धेरभिन्नत्वं वा, सहोत्पन्नानां नीलादीनां बुद्ध्यन्तरपरिहारेण विवक्षितबुद्ध्यैवानुभवो वा, मेदेन ५ विवेचनाभावमात्रं वा प्रकारान्तरासम्भवात् ? तत्राद्यपक्षे साध्य-समो हेतुः; तथाहि—यदुक्तं भवति—‘बुद्धेरभिन्ना नीलादयस्ततोऽ-भिन्नत्वात्’ तदेवोक्तं भवति ‘अशक्यविवेचनत्वात्’ इति । द्विती-यपक्षेप्यनैकान्तिको हेतुः; सचराचरस्य जगतः सुगतज्ञानेन सहोत्पन्नस्य बुद्ध्यन्तरपरिहारेण तज्ज्ञानस्यैवं ग्राह्यस्य तेन सहै- १० कत्वाभावात् । एकत्वे वा संसारी सुर्गतः संसारिणो वा सर्वे सुगता भवेयुः, संसारेतररूपता चैकस्य ब्रह्मवादं समर्थयते । अथ सुगतसत्ताकालेऽन्यस्योत्पत्तिरेव नेष्यते तत्कथमयं दोषः ? नन्वेवं “प्रमाणभूताय” [प्रमाणसमु० १।१] इत्यादिना केनोसौ स्तूयते ? कथं चापराधीनोऽसौ येनोच्यते—

१५

“तिष्ठन्स्येव पराधीना येषां च महती कृपा” [प्रमाणवा० २।१९९] इत्यादि । न खलु वन्द्यासुताधीनः कश्चिद्भूवितुमर्हति ।

१ शानाद्वैतनिराकरणपरेण ग्रन्थेन । २ नानाप्रकार । ३ पूर्ववादे शानगतानां नीलायाकाराणां अन्तत्त्वम् । अत्र (चित्राद्वैतवादे) शानगताकाराणां सत्त्वम् । ४ विसदृश । ५ असिद्धो हेतुरित्युक्ते सत्याह । ६ षटपदसम्भादि । ७ इयं बुद्धिरमी नीलादय आकारा इति विभागः कर्तुं न शक्यते । ८ योगाचारः । ९ नीलादीनाम् । १० बुष्ठा सह प्रादुर्भूतानाम् । ११ स्वरूपम् । १२ साध्येन समं हेतुं दर्शयति । १३ साध्यमेवोक्तं भवति । १४ साध्यमेवोक्तं भवति । १५ नान्यज्ञानस्य । १६ जग-दभिन्नत्वात् । १७ सुगताभिन्नत्वात्सुगतस्वरूपवत् । १८ असंसार । १९ सुगतस्य । २० परेण मया । २१ पुरुषेण । २२ भवता । २३ सुगताः । २४ (निर्वाणोपि- (षेऽपि) परप्राप्तेः (परे प्राप्ते) कृपादीकृतचेतस इत्यलोत्तरमर्थं शक्यम्) । २५ ना ।

1 “किमिदमशक्यविवेचनत्वं नाम—शानाभिन्नत्वम्, सहोत्पन्नानां नीलादीनां शानान्तरपरिहारेण तज्ज्ञानेनैवानुभवः, मेदेन विवेचनाभावमात्रं वा ?”

न्यायकुसु० पृ० १२७ ।

2

“अकल्पकल्पासङ्गथेयभावनापरिवर्द्धिताः ।

तिष्ठन्स्येव पराधीना येषां तु महती कृपा ॥”

अभिसमयालंकारालोक पृ० १३४ ।

“तदुक्तम्—निर्वाणेषु परे प्राप्ते कृपादीकृतचेतसान् ।

तिष्ठन्स्येव पराधीना येषां तु महती कृपा ॥” न्यायकुसु० पृ० ५ ।

मार्गोपदेशोपि व्यर्थो विनेयाऽसत्त्वात् । नापि ततः कश्चित्सौगती-
गतिं गन्तुमर्हति । सुगतसत्ताकालेऽन्यस्यानुत्पत्तेस्तत्कालध्यात्य-
न्तिक इति । बुद्ध्यन्तरपरिहारेण विवक्षितबुद्ध्यैवानुभवध्यासिद्धः,
नीलादीनां बुद्ध्यन्तरेणाप्यनुभवात् । ज्ञानरूपत्वात्तत्सिद्धौ चान्यो-
५ न्याश्रयः—सिद्धे हि ज्ञानरूपत्वे नीलादीनां बुद्ध्यन्तरपरिहारेण
विवक्षितबुद्ध्यैवानुभवः सिद्ध्येत्, तत्सिद्धौ च ज्ञानरूपत्वमिति ।
भेदेन विवेचनाभावमात्रमप्यसिद्धम्; धहिरन्तर्देशसम्बन्धित्वेन
नीलतज्ज्ञानयोर्विवेचनप्रसिद्धेः । एकस्याक्रमेण नीलाद्यनेका-
कारव्यापित्ववत् क्रमेणाप्यनेकपुखाद्याकारव्यापित्वसिद्धेः सिद्धः
१० कथञ्चिदक्षणीको नीलाद्यनेकार्थव्यवस्थापकः प्रमातेत्यद्वैताय दत्तो
जलाशलिः ॥ छ ॥

ननु चाक्रमेणाप्येकस्यानेकाकारव्यापित्वं नेष्यते ।

“किं स्यात्सौ चित्रतैकस्यां न स्यात्तस्यां भेदावपि ।

यदीदं स्वयमर्थस्यो रोचते तत्र के वयम् ॥”

१५

[प्रमाणवा० ३२१०]

१ अन्योत्पत्तिरहिता (१) । २ सत्सारिणामेवोत्पत्तिरहितः (१) । ३ किञ्च । ४ एकस्य
बोधस्य । ५ चित्रादित्नादिनः । ६ युगपत् । ७ आहकः । ८ पुरुषः । ९ जैनं
प्रति माध्यमिको ब्रूते । १० भावस्य । ११ परेण मया माध्यमिकेन । १२ मम
दूषणं किं स्यात् । १३ चित्रत्वेनाभिप्रेताया भवति एकस्यां सा चित्रता न स्यात्तदा
किं स्यान्मम दूषणम् । १४ प्रसिद्धा । १५ चित्रत्वेनाभिप्रेताया । १६ कुडौ ।
१७ चित्रत्वम् । १८ ज्ञानेभ्यः ।

१ “अक्षयविवेचनत्वं साधनमसिद्धमुक्तम्—नीलतद्भेदनयोः अक्षयविवेचनत्वा-
सिद्धेः, अन्तर्बहिर्देशतया विवेकेन प्रतीतेः ।” अष्टसह० पृ० २५४ ।

२ “अत्र देवेन्द्रव्याख्या—यदि नामैकस्यां भवति न सा चित्रता भावतः स्यात् ।
किं स्यात् को दोषः स्यात् । तथा च भावतश्चित्रता मत्वा भावा अपि चित्रा सिद्ध्यन्ति”
तद्भेदेव च सत्या भविष्यन्तीति प्रहुरभिप्रायः । आत्मकार आह—न स्यात्तस्यां मतमपि
इति । व्याहृतनेतत्—एका चित्रा च इति । एकत्वे हि सत्त्वानानारूपानि वस्तुतो
नानाकारतया प्रलक्षमासत्ते न पुनर्भावतस्ते तस्य आकाराः सन्तीति नलादेष्टव्यम् ।
एकत्वहानिप्रसंगात् । नहि नानात्वैकत्वयोः स्थितेरभ्यः कश्चिदाश्रयोऽप्यत्र भाविका-
न्यामाकारभेदाभेदाभ्याम् । तत्र यदि बुद्धिर्भावतो नानाकारैका चेप्यते तदा सकलं
विश्वमप्येकं द्रव्यं स्यात्, तथाच सहोत्पत्त्यादिदोषः । तस्मात्त्रैकाऽनेकाकारा । किञ्च
यदीदं स्वयमर्थानां रोचते अतद्रूपाणामपि सता यदेतत्तद्रूप्येण अस्थानं तदेतद्रस्तुत
यत्र स्थितं तत्त्वमिति । तत्र के वयं विषेकारः ? प्रथमस्तु ह्यनुगम्यत इति ।”

सं० रत्ना० पृ० १८० ।

इत्यभिधानात् । तत्कथं तद्दृष्टान्तावष्टम्भेन क्रमेणाप्येकस्या-
नेकाकारव्यापित्वं साध्येत ? तदप्यसमीचीनम् ; परममतिस्फु-
र्क्षिकया विचारयतो माध्यमिकस्य सकलशून्यतानुषङ्गात् ।
तथा हि-नीले प्रवृत्तं ज्ञानं पीतादौ न प्रवर्त्तते इति पीतादेः
सन्तानान्तरवदभावः । पीतादौ च प्रवृत्तं तन्नीले न प्रवर्त्तते ५
इत्यस्याप्यभावस्तद्वत् । नीलकुचलयस्फुर्मांशे च प्रवृत्तिमज्जं ज्ञानं
नेतरांशनिरीक्षणेषु क्षममिति तदंशानामप्यभावः । संविदितांशस्य
चावशिष्टस्य स्वयमनंशस्याप्रतिभासनात्सर्वाभावः । नीलकुचल-
यादिसंवेदनस्य स्वयमनुभवात्सत्त्वे च अन्यैरनुभवात्सन्तानान्तरा-
णामपि तद्वत् । अथान्यैरनुभूयमानसंवेदनस्य सद्भावासिद्धेस्तेषां १०
मभावः, तर्हि तन्निषेधासिद्धेस्तेषां सद्भावः किञ्च स्यात् ? अथ
तत्संवेदनस्य सद्भावासिद्धिरेवाभाससिद्धिः, नन्वेवं तन्निषेधा-
सिद्धिरेव तत्सद्भावासिद्धिरस्तु । भावाभावाभ्यां परसंवेदनसन्देहे
चैकान्ततः सन्तानान्तरप्रतिषेधासिद्धेः । कथं च ग्रामारामादि-
प्रतिभासे प्रतीतिभूधरशिखरारूढे सकलशून्यताभ्युपगमः प्रेक्षा- १५
वतां युक्तः प्रतीतिबाधनात् ? दृष्टहानेरदृष्टकल्पनायाश्चानुषङ्गात् ।

किञ्च, अखिलशून्यतायाः प्रमाणतः प्रसिद्धिः, प्रमाणमन्तरेण

१ बोधस्य । २ भवता जनेन । ३ चित्रकणानस्य नानात्वसमर्पणप्रकारेण ।
४ ज्ञानेन । ५ उद्धृतस्य । ६ नीलकुचलयस्य । ७ चित्र । ८ स्तेनैव । ९ नीलकुचल-
यस्य । १० सन्तानान्तरैः । ११ स्वयम् । १२ सो माध्यमिक । १३ सन्तानान्तरैः ।
१४ स्वयम् । १५ नीलकुचलयसंवेदनवादिर्न प्रति । १६ साधकप्रमाणाभावात् ।
१७ बाधकप्रमाणाभावात् । १८ सो माध्यमिक । १९ अन्यैरनुभूयमानसंवेदनस्य ।
२० माध्यमिको ब्रूते—अन्यसंवेदनसद्भावे साधकं प्रमाणं नोपन्यस्तं यवक्तिः ।
असाभिश्च बाधकं प्रमाणं नोपन्यस्तमिति परसंवेदनसन्देहः (इत्युक्ते जैनः प्राह) ।
२१ ग्रामादि । २२ सकलशून्यत्वस्य ।

१ “नन्वेवं नीलवेदनस्यापि प्रतिपरमाणुमेदात् नीलानुसवेदनैः परस्पर निवृत्तै-
वितर्कं तत्र एकनीलपरमाणुसंवेदनस्याप्येवं वेद्यवेद्यकसंविदाकारमेदात् त्रितयेन भवि-
तव्यम् । वेद्याकारादिसंवेदनत्रयस्यापि प्रत्येकमपरस्ववेद्यादिसंवेदनत्रयेण इति पर-
परवेदनत्रयकल्पनादनवसानाच्च क्विदेकवेदनसिद्धिः संविदद्वैतसिद्धिर्नाम् ।”

अष्टसह० पृ० ७७ । न्यायकुसु० पृ० १३४ ।

२ “प्रमाणानुपपत्त्युपपत्तिभ्याम् । न्यायसू० ४।२।३०। “एवं च सति सर्वं
नास्तीति नोपपद्यते । कस्मात् ? प्रमाणानुपपत्त्युपपत्तिभ्याम्, यदि सर्वं नास्तीति
प्रमाणमुपपद्यते; ‘सर्वं नास्ति’ इत्येतद्व्याहृत्यते । अथ प्रमाणं नोपपद्यते; सर्वं नास्तीत्यस्य
कथं सिद्धिः ? अथ प्रमाणमन्तरेण सिद्धिः; सर्वमस्ति इत्यस्य कथञ्च सिद्धिः ?”

प्र० क० मा० ९

चा ? प्रथमपक्षे कथं सकलशून्यता वास्तवस्य तत्सद्भावावेदक-
प्रमाणस्य सद्भावात् ? द्वितीयपक्षे तु कथं तस्याः सिद्धिः प्रमेय-
सिद्धेः प्रमाणसिद्धिनिवन्धनत्वात् ? तदेवं सुनिश्चितासम्भवद्वाध-
कप्रमाणत्वात् प्रतीतिसिद्धमर्थव्यवसायात्मकत्वं ज्ञानस्याभ्युप-
५ गन्तव्यम्, अन्यथाऽप्रामाणिकत्वप्रसङ्गः स्यात् ॥ छ ॥

अथेदानीं प्राक् प्रतिज्ञातं स्वव्यवसायात्मकत्वं ज्ञानविशेषणं
व्याचिंख्यासुः खोन्मुखतयेत्याद्याह—

खोन्मुखतया प्रतिभासनं स्वस्य व्यवसायः ॥ ६ ॥

स्वस्य विज्ञानस्वरूपस्योन्मुखतोऽल्लेखिता तथा इतीर्थभावे भो ।
१० प्रतिभासनं संवेदनमनुभवनं स्वस्य प्रमाणत्वेनाभिप्रेतविज्ञानस्वरू-
पस्य सम्बन्धी व्यवसायः ।

स्वव्यवसायसमर्थनार्थमर्थव्यवसायं स्वपरप्रसिद्धम् 'अर्थस्य'
इत्यादिना दृष्टान्तीकरोति ।

अर्थस्येव तदुन्मुखतया ॥ ७ ॥

१५ इवशब्दो यथार्थे । यथाऽर्थस्य घटादेस्तदुन्मुखतया खोल्लेखि-
तया प्रतिभासनं व्यवसायः तथा ज्ञानस्यापीति ।

स्योन्मतम्—न ज्ञानं स्वव्यवसायात्मकमचेतनत्वाद् घटादिवत् ।
तदचेतनं प्रधानविवर्तत्वात्तद्वत् । यस्तु चेतनं तन्न प्रधानविवर्तः,
यथात्मा; इत्यप्यसङ्गतम्; तस्यात्मविवर्तत्वेन प्रधानविवर्तत्वा-
२० सिद्धेः; तथाहि—ज्ञानविवर्तवानात्मा हंपृत्वात् । यस्तु न तथा स

१ पूर्वोक्तप्रकारेण ज्ञानस्यार्थव्यवसायात्मकत्वे समर्थिते सति । २ व्याख्या-
लिच्छुः । ३ ग्राहकता । ४ चृतीया । ५ वादिप्रतिवादिप्रसिद्धम् । ६ अर्थ । ७ तव
साहचर्यस्य । ८ ज्ञानम् । ९ ज्ञानस्य । १० पर्वायत्नेन । ११ जैनानुष्ठानम् ।
१२ चेतविरुत्वात् ।

न्यायभा० ४।२।३० प्रश्न० व्योमवती पृ० ५३२ । अष्टसह० पृ० ११५ ।
संन्यति० टी० ४५५ । स्या० म० का० १७ । रत्नाकरावता० पृ० ३२ ।

१ "प्रकृतेर्महान् ततोऽहङ्कारः..." साख्यका० २२ ।

"तस्याः प्रकृतेर्महान् उत्पद्यते प्रथमः कश्चित् । महान् बुद्धिः सतिः प्रज्ञा
संनिधिः स्यातिः चित्तिः सृष्टिरासृष्टी हरिः हरः हिरण्यगर्भ इति पर्यायाः ।"

माठवृत्ति, गौडपादभा० २२ । साख्यसं० पृ० ६ ।

२ "तथापरिणामवानात्मा दृष्ट (दृ) स्यात् । यस्तु ज्ञानपरिणामवान् भवति नाशो
द्रष्टा यथा ओद्यादिः, द्रष्टा चात्मा तस्मान्ज्ञानपरिणामवानिति ।" स्या० रत्ना० पृ० २३४ ।

न द्रष्टा यथा घटादिः, द्रष्टा चात्मा तस्मात्तद्विवर्त्तमानिति । प्रधानस्य ज्ञानवत्त्वे तु तस्यैव द्रष्टृत्वानुपपन्नादात्मकल्पनानर्थक्यम् । 'चेतनोऽहम्' इत्यनुभवाच्चैतन्यस्वभावतावच्चैतमनो 'ज्ञाताऽहम्' इत्यनुभवाद् ज्ञानस्वभावताप्यस्तु विशेषाभावात् । ज्ञानसंसर्गात् 'ज्ञाताऽहम्' इत्यात्मनि प्रतिभासो न पुनर्ज्ञानस्वभावत्वादित्यप्य-^५ समीक्षिताभिधानम् ; चैतन्यादित्यस्वभावस्याप्यभावप्रसङ्गात् । चैतन्यसंसर्गाद्धि चेतनो भोक्तृत्वसंसर्गाद्भोक्तृत्वोदासीन्यसंसर्गादुदासीनः शुद्धिसंसर्गाच्छुद्धो न तु स्वभावतः । प्रत्यक्षादिप्रमाणबाधोर्मयत्र । न खलु ज्ञानस्वभावताविकैलोऽयं कदाचनान्यत्तुभूयते, तद्विकलस्यानुभवविरोधात् । १०

आत्मनो ज्ञानस्वभावंत्वेऽनित्यत्वापत्तिः प्रधानेऽपि समाना । तत्परिणामस्य व्यक्त्यनित्यत्वोपगमात् अदोषे तु, आत्मपरिणामस्यापि ज्ञानविशेषादेरनित्यत्वे को दोषः ? तस्यात्मनः कथञ्चिद्व्यतिरेके भर्तृत्वप्रसङ्गः प्रधानेऽपि समानः । व्यक्त्यव्यक्तयोरेव्यतिरेकेऽपि व्यक्तमेवानित्यं परिणामत्वाच्च पुनरव्यक्तं परिणामित्वा-^{१५} दित्यभ्युपगमे, अत एव ज्ञानात्मनोरव्यतिरेकेऽपि ज्ञानमेवानित्यमस्तु विशेषाभावात् । आत्मनोऽपरिणामित्वे तु प्रधानेऽपि तदस्तु ।

१ ज्ञान । २ आद्यज्ञानम् । ३ चैतन्यस्वभावतया अनुभवः, ज्ञानस्वभावताया अनुभव इत्यविशेषः । ४ कथं तथा हि । ५ नैर्मल्य । ६ आत्मनश्चैतन्यादित्यस्वभावात् ज्ञानस्वभावाभावे च । ७ आत्मा । ८ आत्मा आत्मना । ९ ज्ञानमनित्यमिति वचनात् ज्ञानस्वरूपवत् । १० महदादेः । ११ ज्ञानादेः । १२ प्रधानस्यानित्यत्वापत्तिकृष्णोऽशोभः । १३ का । १४ अमेदे । १५ आत्मनः । १६ विनश्रत्त्वं । १७ महदादेः । १८ प्रधानस्य ।

१ "वनु ज्ञानसंसर्गाज्ज्ञाताऽहमित्यात्मनि प्रतिभासो न पुनर्ज्ञानस्वभावत्वादिति चेत् ; तदपि न्यायवाच्यम् ; चैतन्यादित्यस्वभावात्तद्व्यतिरेकप्रसङ्गः । चैतन्यसंसर्गाद्धि चेतनो भोक्तृत्वसंसर्गाद् भोक्तृत्वोदासीन्यसंसर्गादुदासीनः शुद्धिसंसर्गात् शुद्धो न तु स्वभावादित्यपि ननु स्वभावत एव ।" स्वा० रत्ना० पृ० २३५ ।

२ "हेतुमदनित्यमन्यापि सक्तिवमनेकगामितं लिङ्गम् ।

सावयवं परतन्त्रं व्यक्तं विपरीतमलकम् ॥" सांख्यका० १० ।

"प्रधानस्य चाऽनिलाद् व्यक्तादनर्थात्तरभूतस्य नित्यतां प्रतीवन् पुरुषस्यापि ज्ञानादज्ञानादानर्थात्तरभूतस्य नित्यत्वप्रतिष्ठं सर्वथा विशेषाभावात् ।" आह्वय० पृ० ४२ ।

"नचात्मनः अनित्यज्ञानपरिणामात्मके अनित्यत्वापत्तिः ; प्रधानेऽपि तत्प्रसङ्गात् । व्यक्ताऽव्यक्तयोरेदेऽपि व्यक्तमेवाऽनित्यं परिणामत्वात् नत्वव्यक्तं परिणामित्वादित्यन्यापि समानम् ।" न्यायकुशु० पृ० १९१ । स्वा० रत्ना० पृ० २३५ ।

व्यंकापेक्षया परिणामि प्रधानं न शक्त्यपेक्षया सर्वदा स्थाव-
त्त्वादित्यभिधाने तु आत्मापि तथास्तु सर्वथा विशेषामावात्,
अपरिणामिनोऽर्थक्रियाकारित्वासम्भवेनाप्रेऽसत्त्वप्रतिपादनाच्च ।
स्वसंवेदनप्रत्यक्षाविषयत्वे चास्याः प्रतिनियतार्थव्यवस्थापकत्वं
५ न स्यात् । तद्व्यवस्थापकत्वं हि तदनुभवनम्, तत्कथं बुद्धेर-
प्रत्यक्षत्वे घटेत ? अर्थात्मान्तरबुद्धितोपि तदप्रसङ्गात्, न चैवम् ।
ततो बुद्धिः स्वव्यवसायात्मिका कारणान्तरनिरपेक्षतयाऽर्थ-
व्यवस्थापकत्वात्, यत्पुनः स्वव्यवसायात्मकं न भवति न तस्यै-
थाऽर्थव्यवस्थापकं यथाऽऽदर्शादीति । अर्थव्यवस्थितौ तस्याः
१० पुरुषभोगौपेक्षत्वात् “बुद्ध्यर्थवसितमर्थं पुरुषश्चेतयते” []
इत्यभिधानात् । ततोऽसिद्धो हेतुरित्यपि श्रद्धामात्रम्, मेदेनानयो-
रनुपलम्भात् । एकमेवं ह्यनुभवसिद्धं संविद्रूपं हर्षविषादाद्यनेका-
कारं विषयव्यवस्थापकमनुभूयते, तस्यैवैते “चैतन्यं बुद्धिरव्यव-
सायो ज्ञानम्” इति पर्यायाः । न च शब्दमेदमात्राद्वास्तावोऽर्थमे-
१५ दोऽतिप्रसङ्गैत् ।

संसर्गविशेषवशाद्विप्रलब्धो बुद्धिचैतैन्ययोः सन्तमपि भेदं

१ महदादि, द्वितीयपक्षे सुखादि । २ सङ्गमस्वभावा द्वितीयपक्षे साम्यावस्था
शक्तिः । ३ परेण । ४ व्यक्त्यपेक्षया परिणाम्यस्तु । ५ व्यक्त्यपेक्षया परिणाम्यस्तु ।
६ किञ्च । ७ बुद्धेः । ८ अन्यथा । ९ पुरुषान्तर । १० स्वस्य । ११ व्यक्तिलक्ष-
णाया बुद्धेः बुद्धिलक्षणात्कारणादपर कारणान्तरमिन्द्रियस्य । १२ कारणनिरपेक्षतया ।
१३ अनुभवः स एव कारणम् । १४ बुद्धिप्रतिविम्बितत्वं । १५ अनुभवति ।
१६ कारणान्तरसापेक्षतया । १७ बुद्धेः । १८ नो सादृश्य । १९ बुद्धिपुरुषयोः ।
२० बुद्ध्यनुभवयोः । २१ अन्यथा । २२ इन्द्रः शक्र इत्यादौ स स्यात् । २३ सम्बन्ध ।
२४ वञ्चितो नरः । २५ चैतन्यं पुरुषस्य रूपम् । २६ विषयमानम् ।

१ “एकमेवेदं संविद्रूपं हर्षविषादाद्यनेकाकारविचरं पश्यामः ।”

न्यायमं० पृ० ७४ । न्यायकुसु० पृ० १९३ ।

“बुद्धिरपक्षमिहानमित्यनर्थान्तरस्य । न्यायसु० १।१।१५ । प्रथ० भा० पृ० १७१ ।

“बुद्धिरव्यवसायो हि संवित्संवेदनं तथा ।

सन्निधेयेतना चेति सर्वं चैतन्यवाचकम् ॥” तरसं० का० ३०३ ।

— सन्मति० टी० पृ० ३०० । स्वा० रत्ना० पृ० २३८ ।

२ “तस्मात्तत्संयोगाद्चेतनं चैतनावदिव सिद्धम् ।

शुणकचूलेऽपि तथा कर्त्तव्यं भवस्तुदासीनः ॥ १० ॥

यस्याचेतनस्वभावः पुरुषः तस्मात् तत्संयोगाद्चेतनं महदादि सिद्धम् अव्यवसा-
यमिमानसहृषाकोचनाविषु इति चैतनावत् प्रवर्षते । को दृष्टान्तः ? तथा—

नावधारयत्ययोगोलकादिवाग्नेः । न चात्रापि मेदो नास्तीत्यभिधौ-
तव्यम् ; उभयैत्र रूपस्पर्शयोर्मेदप्रतीतिः । अयोगोलकस्य हि
वृत्तसन्निवेशः कठिनस्पर्शश्चान्योऽग्नि(त्रे)र्मासुररूपोष्णस्पर्शाभ्यां
प्रमाणतः प्रतीयते । ततो यथात्रांऽन्योऽन्यानुप्रवेशलक्षणसंसर्गा-
द्विभागप्रतिपत्त्यभावस्तथा प्रकृतेपीत्यप्यसाम्प्रतम् ; बह्वययोगोल-^५
कयोरप्यमेदात् । अयोगोलकद्रव्यं हि पूर्वाकारपरित्यागेनाग्निस-
न्निधानाद्विशिष्टरूपस्पर्शपर्यायाधारमेकमेवोत्पन्नमनुभूयते आमा-
कारपरित्यागेन पाकाकाराधारघटद्रव्यवत् । कथं तर्हि तैस्त्योत्तर-
कालं तत्पर्यायाधारताया विनाशप्रतीतिः ? इत्यप्यचोद्यम् ;
उत्पत्त्यनन्तरमेव तद्विनाशाप्रतीतिः । किञ्चिद्व्यौपाधिकं वस्तुरूप-^{१०}
मुपौध्यपर्यायानन्तरमेवापैति, यथा जपापुष्पसन्निधानोपनीतस्फ-
टिकरकिमा । किञ्चित्तु कौर्लीन्तरे, मनोहाङ्गनादिविषयोपनीता-
त्मसुखादिषु । सकलर्मावानां स्वतोऽन्यतश्च निवर्त्तनप्रतीतिः ।
तन्नाश्ययोगोलकयोर्मेदः ।

तैर्द्विहोप्येकस्मिन् स्वपरप्रकाशात्मपर्यायेऽनुभूयमाने नैऋत्य-^{१५}
सद्भावोऽभ्युपगन्तव्यः, अन्यथा न केचिदेकत्वव्यवस्था स्यात् ।
सकलव्यवहारोच्छेदप्रसङ्गश्च अनिर्द्योतपरिहारेणैष्टे वस्तुन्येक-
स्मिन्ननुभूयमानेऽन्यसद्भावाशङ्कया क्वचित्प्रवृत्त्याद्यभावात् ।
ततोऽवाधितैकत्वप्रतिभासादपरपरिहारेणावभासमाने वस्तुन्ये-

१ निश्चिनोति । २ अयोगोलकादयोः । ३ जैनेन भवता । ४ अयोगोलकादयोः ।
५ वस्तुलकारः । ६ प्रलयात् । ७ अयोगोलकादयोः । ८ मेद । ९ बुद्धिचैतन्ये
(तन्मयोः) । १० कृष्णत्वादिलक्षण । ११ अयोगोलकस्य । १२ करण । १३ विनाश ।
१४ अपयच्छति । १५ उपाप्यपाये सति । १६ अपैति । १७ लक्ष्मन्दनादि । १८
पदार्थ । १९ परिणमन । २० मृतफलादिषु । २१ अयोगोलकनत् । २२ बुद्धिचैतन्ये
(तन्मयोः) । २३ स्वयम् । २४ चैतन्य । २५ परेण । २६ विषये । २७ क्रमम् । २८
अधिकण्टकादि । २९ वनितार्थी । ३० अधिकण्टकादि । ३१ विषये । ३२ निवृत्ति ।

अनुष्णाशीतो घटः शीतान्तरिः ससृष्टः शीतो भवति, अग्निना सजुक्त उष्णो भवति,
एवं महदादिलिङ्गमचेतनमपि भूत्वा चैतनावद् भवति ।”

माठरवृत्ति, यौकपादना० ।

1 “बह्वययोगोलकयोरपि अग्नौर्मेदभावत्वात् । अयोगोलकद्रव्यं हि पूर्वाकार-
परित्यागेन अग्निसन्निधानात् विशिष्टरूपस्पर्शपर्यायाधारमेकमेवोत्पन्नमनुभूयते आमा-
कारपरित्यागेन पाकाकाराधारघटद्रव्यवत् ।”

न्यायकुसुं० पृ० १९३ । सा० रत्ना० पृ० २३७ ।

कत्वव्यवस्थामिच्छतां अनुभवसिद्धकर्तृत्वभोकृत्वाद्यनेकधर्माधारचिद्विचर्त्तस्याप्येकत्वमभ्युपगन्तव्यं तद्विशेषात् । न चानैकत्वप्रतिभासे किञ्चिद्वाधकम्, यतो द्विचन्द्रादिप्रतिभासवन्मिथ्यात्वं स्यात् । स्वसंवेदनप्रसिद्धस्वरप्रकाशरूपचिद्विचर्त्तव्यतिरेकेणान्य-
५ चैतन्यस्य कदाचनानाप्यप्रतीतेः । न चोपदेशमात्रालोक्षावतां निर्वाध-
वोधाधिकरूढोऽर्थोऽन्यर्थो प्रतिभासमानोऽन्यथापि कल्पयितुं युक्तो-
ऽतिप्रसङ्गात् । चैतन्यस्य च स्वरप्रकाशात्मकत्वे किं बुद्धिसाध्यं
येनैसौ कल्प्यते ?

बुद्धेरैवाचेतनत्वे विषयव्यवस्थापकत्वं न स्यात् । ओंकारवत्त्वा-
१० त्त्वमित्यप्ययुक्तम् ; अचेतनस्याकारत्वे (रवत्त्वे)प्यर्थव्यवस्थापक-
त्वासम्भवात्, अन्यथाऽऽदर्शादेरपि तत्रप्रसङ्गाद्बुद्धिरुपतानुपङ्गः ।
अन्तःकरणत्व-पुरुषोपभोगप्रत्यासन्नहेतुत्वलक्षणविशेषोपि मनोऽ-
क्षादिनानैकान्तिकत्वात् बुद्धेर्लक्षणम् । यदि च अर्थमेकान्तः-
‘अन्तःकरणमन्तरेणार्थमात्मा न प्रत्येति’ इति, कथं तर्हि अन्तः-
१५ करणप्रत्यक्षता ? अन्यान्तःकरणविम्वादेवेति चेत् ; अनवस्था ।
अन्यान्तःकरणविम्बमन्तरेणान्तःकरणप्रत्यक्षतायां च अर्थप्रत्यक्ष-
तापि तथैवास्त्वलं तत्परिकल्पनया । अन्तःकरणप्रत्यक्षताभावे
च कथं तद्गतार्थविम्बग्रहणम् ? न ह्यादर्शाग्रहणे तद्गतार्थप्रतिवि-
म्बग्रहणं दृष्टम् ।

२० विषयाकारधारित्वं च बुद्धेरनुपपन्नम्, मूर्च्छस्यामूर्त्तं प्रति-

१ परेण । २ आत्मनः । ३ बोधस्य । ४ प्रमाण । ५ आगमात् । ६ बुद्धिलक्षण ।
७ फलत्वेन । ८ स्वसंवेदनप्रत्यक्ष । ९ बुद्धिलक्षणः । १० एकत्वेन प्रतिभासमानः ।
११ बुद्धिचैतन्यमिति द्वयरूपतया । १२ अन्यथा । १३ केन कारणेन । १४ किञ्चि ।
१५ अर्थाकारवत्त्वात् । १६ जलादेः । १७ मध्ये (?) । १८ अनुभव । १९ कारण
बुद्धिरूपम् । २० व्यस्यलक्षणम् । २१ अदृष्ट । २२ कतिव्याप्तिः । २३ अन्तःकरणत्व
बुद्धेर्लक्षणमित्युक्ते मनसा व्यभिचारः । कथं मनो ह्यन्तःकरणं भवति न च तस्य बुद्धिरुपता
पुरुषोपभोगप्रत्यासन्नहेतुत्व बुद्धेर्लक्षणमित्युक्ते चाक्षादिना व्यभिचारस्यापि-पुरुषो-
पभोगप्रत्यासन्नहेतुरिन्द्रियं भवति न च तस्य बुद्धिरुपता । २४ किञ्च । २५ बुद्धिर् ।
२६ बुद्धि । २७ आकार । २८ बुद्धि । २९ बुद्धि । ३० अन्तःकरणतायै ।

१ “न चास्मा वास्तवचैतन्याभावे विषयन्यवस्थापनमक्तिवृत्ता ।”

न्यायकुसु० पृ० १९३ । स्या० रत्ना० पृ० २३८ ।

२ “न विषयाकारधारि ज्ञानममूर्त्तत्वात्, यदमूर्त्तं तद्, विषयाकारधारि न भवति
यथा आकाशत्, अमूर्त्तञ्च ज्ञानमिति । तद्व्यतिरेके वा अमूर्त्तत्वमस्य विच्यते ।”

न्यायकुसु० पृ० १९३ । स्या० रत्ना० पृ० २३८ ।

वेम्बासम्भवात् । तथा हि—न विषयाकारधारिणी बुद्धिरमूर्त्त-
चादाकाशवत्, यत्तु विषयाकारधारि तन्मूर्त्तं यथा दर्पणादि ।
१ चासिद्धो हेतुः; तस्याः सकलवादिभिरमूर्त्तत्वाभ्युपगमात् ।
अन्यथा बाह्येन्द्रियप्रत्यक्षत्वप्रसङ्गो दर्पणादिवदेव । अतिसूक्ष्म-
चात्तदप्रत्यक्षत्वे तद्गतार्थप्रतिबिम्बप्रत्यक्षतापि न स्यात् । मूर्त्तस्य ५
वेन्द्रियादिङ्कारेणैव संवेदनसम्भवात् । तदभावेऽसंविदितत्व-
प्रसङ्गश्च । सर्वथा परोक्षत्वाभ्युपगमे चास्या मीमांसकमता-
नुपङ्गः ॥ छ ॥

एतेन वाङ्मोर्ष्याकारवत्त्वेन ज्ञाने प्रामाण्यं प्रतिपादयन्प्रत्या-
ख्यातः । प्रत्यक्षविरोधात्; प्रत्यक्षेण विपर्ययाकाररहितमेव ज्ञानं १०
प्रतिपुष्टमहमहमिकया घट्टादिग्राहकमनुभूयते न पुनर्दर्पणादि-
वत्प्रतिबिम्बाकान्तम् । विषयाकारधारित्वे च ज्ञानस्यायं दूर-
नेकटादिव्यवहाराभावप्रसङ्गः । न खलु स्वरूपे स्वतोऽभिधेऽनु-
भूयमाने सौस्ति, न चैवम्; 'दूरे पर्वतो निकटे मदीयो बाहुः'
इति व्यवहारस्याऽस्त्वेकद्रूपस्य प्रतीतेः । तैस्तदन्यथातुपपत्तेर्नि- १५
राकारं तत् । न चाकाराधार्यैकस्य दूरादितया तथा व्यवहारो

१ हेतोः । २ पदार्थस्य । ३ किञ्च । ४ कालोकादि । ५ किञ्च । ६ बुद्धे-
विषयाकारधारित्वनिराकरणपरेण ग्रन्थेन । ७ योगाचारः । ८ सौत्रान्तिकः (१) ।
९ पदार्थस्य । १० किञ्च । ११ सौत्रान्तिकः (१) । १२ स्वसवेदनेन । १३ अर्थः ।
१४ पदार्थः । १५ स्वयं ज्ञानेन । १६ किञ्च । १७ दूरनिकटादिव्यवहारः ।
१८ अस्त्येवमिति चेत् । १९ अभ्यभिचरत् । २० प्रतिपादनात् । २१ साकारत्वे
दूरनिकटादिव्यवहारो न घटते यतः । २२ समर्पकस्य पदार्थस्य ।

1 "स्वसविधिः फलज्ञास ताद्रूप्यदर्थनिश्चयः ।
विषयाकार एवास्य प्रमाणं तेन नीयते ॥" प्रमाणसमु० १।१० ।

"अर्थसारूप्यमस्य प्रमाणम् ।" न्यायनि० १।१९ ।

2 "दूरासन्नादिमेदेन व्यस्तमन्यक न युज्यते ।
तत्सादालोकेमेदाचेत् तस्मिन्नाभिधानयोः ॥
तुल्या दृष्टिरदृष्टिर्वा सङ्गोक्तस्य कश्चन ।
आलोकेन न मन्देन दृश्यतेऽतो मिदा यदि ॥"

प्रमाणवा० १।४०८-९ ।

"स्वतोऽभिन्नस्य चाकारस्य ज्ञानग्राह्यत्वे अर्थे दूरातीतादिव्यवहारो न स्यात् ।"
न्यायसमु० १० १६९ ।

युक्तः, वर्षणादौ तथानुपलम्भात् । दीर्घस्वार्पवतश्च प्रबोधचेतसो जनकस्य जाग्रदशाचेतसो दूरत्वेनातीतत्वेन चात्रापि दूरातीत-दिव्यवहारानुषङ्गः स्यात् ।

किञ्च, अर्थादुपजायमानं ज्ञानं यथा तस्य नीलतामनुकरोति ५ तथा यदि जडतामपि; तर्हि जडमेव तत् स्यादुत्तरार्थक्षणवत् । अथ जडतां नानुकरोति; कथं तस्या ग्रहणम् ? तदग्रहणे नीलाकारस्याप्यग्रहणम् अन्याथा तयोर्भेदोऽनेकान्तो वा । नीलाकार-ग्रहणेपि च, अंगृहीता जडता कथं तस्येत्युच्येत ? अन्याथा गृहीतस्य स्तम्भस्यागृहीतं वैलोक्य(कथं)रूपं भवेत् । तथा वैकोपलम्भो १० नैकत्वसाधनम् । अथ नीलाकारवज्जडतापि प्रतीयते किन्त्वर्तदाकारेण ज्ञानेन, न; तर्हि नीलताप्यतर्तदाकारेणैवानेन प्रतीयताम् । तथाहि—यद्येनं स्वात्मनोऽर्थान्तरभूतं प्रतीयते तत्तेनातदाकारेण यथा स्तम्भादेर्जाड्यम्, प्रतीयते च स्वात्मनोऽर्थान्तरभूतं नीलादिकमिति । किञ्च, नीलाकारमेव ज्ञानं जडतां प्रतिपद्यते, ज्ञानान्तरं १५ वा ? आद्यविकल्पे नीलाकारतां स्वात्मभूततया, जडतां त्वैन्यथैतज्ज्ञानातीत्यर्द्धैरतीथन्यायानुसरणं ज्ञानस्य । अथ ज्ञानान्तरेण सा

१ पुरुषस्य । २ किञ्च । ३ ज्ञानस्य । ४ पुरुषस्य । ५ परिच्छिन्निः । ६ जडसा-ग्रहणेपि नीलस्य ग्रहणं चेत् । ७ नीलजडयोः । ८ गृह्यमाणोऽगृह्यमाणभर्म-वेकसार्थस्येति च । ९ किञ्च । १० अगृहीतापि नीलस्य भर्मवेत् । ११ वक्तुः । १२ ज्ञानम् । १३ किन्त्वनेकत्वसाधनम् । १४ विशेषे । १५ अनङ्गाकारेण । १६ निराकारेण । १७ अनीलाकारेण । १८ नीलादिकं भर्मो अतदाकारेण ज्ञानेन प्रतीयते इति साध्यो भर्मः । तेन स्वात्मनोऽर्थान्तरभूततया प्रतीयमानत्वात् । १९ ज्ञान-रूपात् । २० कर्तुं । २१ नीलाकारतया । २२ अनङ्गाकारतया । २३ अस्मात्प- (अस्मात्)भूततया चेत् ।

१ “न चाकाराघायकस्य दूरातीतत्वात्तया व्यवहारः इत्यभिधातन्वयः; चाग्र-चेतसो दूरातीतत्वेन प्रबोधचेतसि तथा व्यवहारप्रसङ्गात् ।” न्यायकुमुदं पृ० १६९ ।

२ “अथ नीलतां तत्तदाकारतया प्रतिपद्यते जडतां स्वतदाकारतया सद्विधर्म-वरतीयन्वायानुसरणम् ।” न्यायकुमुदं पृ० १६८ ।

“अर्थं ज्ञत्वाः कामयन्ते अर्थं नेति ।” पात० महाभाष्यं ५।१।७८ ।

“अर्थं मुखमार्गं कृत्वायाः कामयते ग्राहन्ति सोऽयमर्थं वरतीयन्वायः ।” -

महासू० छा० भा० रत्नमं १।१।८ ।

३ “अनेन सर्वात्मना तत्र स्वाकाराधाने ज्ञानस्य जडतामसक्तौ उत्तरार्थक्षणवत् ।”

शास्त्रभा० टी० पृ० १५९ पृ० ।

प्रतीयते; तदप्यतदाकारं यथा जडतां प्रतिपद्यते तथाद्य(द्यं)नील-
तामिति व्यर्थं तदाकाररूपनम् ।

किञ्च, ज्ञानान्तरेण जडतैव केवला प्रतीयते, तद्वन्नीलतापि
वा? न तावदुत्तरपक्षः; अर्द्धजरतीयन्यायानुसरणप्रसङ्गात् ।
प्रथमपक्षे तु नीलताया जडतेयमिति कुतः प्रतीतिः? नाद्यज्ञानात्; ५
तेन नीलाकारमात्रस्यैव प्रतीतिः । नापि द्वितीयाद्यजडतामात्र-
विषयत्वात् । अथोभयविषयं ज्ञानान्तरं परिकल्प्यते, तच्चेदुभयत्र
साकारम्; सैव जडता । निराकारं चेत्; परमेतत्प्रसङ्गः ।
कचित्साकारतायामुक्तदोषोऽनैवस्था ।

ननु निराकारत्वे ज्ञानस्याखिलं निखिलार्थवेदकं तत्स्यात् १०
कचित्प्रत्यासत्तिविभ्रंकर्पाभावादित्यप्यपेशलम्; प्रतिनियतसाम-
र्थ्येन तत्तथाभूतमपि प्रतिनियतार्थव्यवस्थापकमित्यग्रे वक्ष्यते ।
'नीलाकारवज्जडाकारस्याद्वैष्टेन्द्रियार्थोकारस्य चानुकरणप्रसङ्गः
कारणत्वाविशेषात्प्रत्यासत्तिविभ्रंकर्पाभावाच्च' इति बोधे भवतोपि
योग्यतैव शरणम् । १५

यच्चोच्यते—'यथैवाहारकालादेः समानेऽपत्यं जननीपित्रोस्तैदे-
कमाकारं धत्ते नान्यस्य कस्यचित्, तथा चक्षुरादेः कारणत्वा-
विशेषेपि नीलस्यैवाकारमनुकरोति ज्ञानं नान्यस्य' इति; तन्निरा-
कारज्ञानेपि समानम् । तत्कार्यत्वाविशेषेपि हि यथा प्रत्या-
सत्यां ज्ञानं नीलमेवानुकरोति तथैव सर्वत्रानाकारत्वाविशेषेपि २०

१ आपहानम् । २ नीलवारहिता । ३ जडतया शुक्ला नीलता । ४ प्रथम-
ज्ञानात् । ५ न जडताया । ६ ज्ञानान्तरात् । ७ न नीलतायाः । ८ जडता
नीलता (च) विषयो यस्य । ९ सूतीयम् । १० परेण । ११ नीलतायां जडतायां
च । १२ स्यात् । १३ स्वस्य । १४ ज्ञानस्य । १५ जैन । १६ नीलतायाम् ।
१७ उच्छ्रोत्रोपपरिहारार्थं ज्ञानान्तरेण जडता प्रतीयते इति चेद्द(द)न्यानवस्था । १८ अर्थे ।
१९ तादृष्यतदुत्पत्तिलक्षणसम्बन्धः । २० तदभावः । २१ ज्ञानम् । २२ निराकारम् ।
२३ पापादि । २४ मनः । २५ किञ्च । २६ ज्ञानस्य । २७ नीलकारेण प्रत्या-
सत्तिः । २८ इन्द्रियादिना विभ्रंकर्पस्य । २९ जैनैः । ३० बौद्धस्य । ३१ सौत्रान्ति-
केन । ३२ पित्रादेः । ३३ कारणे । ३४ अपलम् । ३५ यदुक्तं त्वया समाधानम् ।
३६ ज्ञानस्य । ३७ स्वभावेन । ३८ कर्तुं । ३९ अर्थे । ४० पदार्थे ।

1

“यथैवाहारकालादेः समानेऽपत्यवन्मिति ।

पित्रोस्तैदेकमाकारं धत्ते नान्यस्य कस्यचित् ॥”

प्रमाणम् ० १।१६५ ।

किञ्चिदेव प्रतिपद्यते न सर्वमिति विभागः किं नेष्यते ? अन्यो-
न्याश्रयदोषैश्चोभयैत्र समानः । किञ्च, प्रतिनियतघटादिवत्सकलं
वस्तु निखिलज्ञानस्य कारणं साकारार्पकं वा किञ्च स्यात् ? वस्तु-
सामर्थ्यात् किञ्चिदेव कस्यचित् कारणं न सर्वं सर्वस्येति चेत् ;
५ तर्हि तत एव किञ्चित्कस्यचिद्ग्राह्यं ग्राहकं वा न सर्वं सर्वस्येत्यलं
प्रतीत्यपलापेन ।

प्रमाणत्वाच्चास्य तदभावः । अर्थाकारानुकारित्वे हि तस्य प्रमेय-
रूपतापत्तेः प्रमाणरूपताव्याघातः, न चैवम्, प्रमाणप्रमेययोर्बहि-
रन्तर्मुखाकारतया भेदेन प्रतिभासनात् । न चाप्यक्षेण ज्ञान-
१० मेवाऽर्थाकारमनुभूयते न पुनर्बाह्योऽर्थ इत्यभिधार्तव्यम् ; ज्ञानरू-
पतया बोधस्यैवाभ्यक्षे प्रतिभासनार्थस्य । न ह्यनहङ्कारस्पद-
त्वेनार्थस्य प्रतिभासेऽहङ्कारस्पदबोधरूपवत् ज्ञानरूपता युक्ता,
अहङ्कारस्पदत्वेनार्थस्यापि प्रतिभासोपपत्तेः तु 'अहं घटः' इति
प्रतीतिप्रसङ्गः । न चान्यथाभूता प्रतीतिरन्यथाभूतमर्थं व्यवस्था-
१५ पर्येति; नीलप्रतीतेः पीतादिव्यवस्थाप्रसङ्गात् ।

बोधस्यार्थाकारतां मुक्त्वाथेन घटयितुमशक्तेः 'नीलस्यायं
बोधः' इति, निराकारबोधस्य केनचित्प्रत्येकस्यैविकर्षासिद्धेः
सर्वार्थघटनप्रसङ्गात्सर्वैकैवेदनापत्तेः प्रतिकर्मव्यवस्था ततो न
स्यादित्यर्थाकारो बोधोऽभ्युपगन्तव्यः । तदुक्तम्—

१ वस्तु । २ परेण ३ नियतार्थप्रतिपत्तौ नियतसम्भवासिद्धित्तिद्धौ च नियतार्थ-
प्रतिपत्तिसिद्धिरिति, नियतनीलकारानुकरणे च सिद्धे नियतानुकरणयोग्यतासिद्धिर्ज्ञानस्य
तत्सिद्धौ च नियतनीलकारानुकरणसिद्धिरिति । ४ नियतार्थग्रहणानुकरणयोः ।
५ कस्यचित्पदार्थस्य । ६ किञ्च । ७ अर्थाकारानुकारित्वाभावः । ८ अस्तुमयं का
नो ह्यनिरिति चेत् । ९ इन्द्रिय । १० परेण । ११ अर्थस्य बोधरूपतया । १२ परेण ।
१३ अन्यथा । १४ पदार्थेन । १५ ताद्रूप्यवदुत्पत्तिलक्षणसम्बन्ध । १६ तदभाव ।
१७ ईप् (सप्तमी) । १८ निराकारबोधस्य सम्बन्धात् । १९ सम्बन्ध । २० सर्वार्-
थानाम् । २१ पटज्ञानस्य पटो विषयो घटज्ञानस्य घट इत्यादि । २२ ज्ञेयेन भवता ।

१ "प्रमाणरूपताविरोधानुवक्तव्यम् ।"

न्यायकुसु० पृ० १६८ ।

२ "तदाकारं हि सवेदनमर्थं व्यवस्थापयति नीलमिति पीतञ्चेति ।"

प्रमाणवा० अलं पृ० २ ।

"किमर्थं तर्हि सारूप्यमित्येते प्रमाणम् ? क्रियाकर्त्रेण्यवस्थायास्तदोके स्वादिपन्-
नम् ।...सारूप्यतोऽन्यथा न भवति नीलस्य कर्मणः संविधिः पीतस्य वेति क्रियाकर्त्रेण-
प्रतिनियमार्थमित्येते ।"

प्रमाणवा० अलं पृ० ११९ ।

“अथेन घटयत्येनां न हि मुक्ता(क्त्वा)र्थरूपताम् ।

तस्मात्प्रमेयाधिगतेः प्रमाणं मेयरूपता ॥” [प्रमाणवा० ३।३०५]

इत्यनल्पतमोविलसितम्; यतो घटयति सम्बन्धयतीति विवक्षितं ज्ञानम्, अर्थसम्बन्धमर्थरूपता निश्चाययतीति वा ? प्रथमपक्षोऽयुक्तः; न ह्यर्थसम्बन्धो ज्ञानस्यार्थरूपतया क्रियते, किन्तु ५ स्वकारणैस्तज्ज्ञानैर्मर्थसम्बन्धमेवोत्पाद्यते । न खलु ज्ञानमुत्पद्य पश्चादर्थेन सम्बन्ध्यात् । न चार्थरूपता ज्ञानस्यार्थे सम्बन्धकारणं तादात्म्याभावानुषङ्गात् । द्वितीयपक्षोऽप्यसम्भाव्यः; सम्बन्धासिद्धेः । न खलु ज्ञानगतार्थरूपता अर्थसम्बन्धेन ज्ञानेन सहचरिता क्वचिदुपलब्धा येनार्थसम्बन्धं ज्ञानं सा निश्चाययेत् । विशिष्टविषय-^{१०}योत्पद्य एव च ज्ञानस्यार्थेन सम्बन्धः, न तु संश्लेषात्मकोऽस्य ज्ञानेऽसम्भवात् । स चेन्द्रियैरेव विधीयते इत्यर्थरूपतासाधनप्रयोगो वृथैव । न चैवं सर्वत्रैसौ प्रसज्यते; यतो निराकारत्वेऽप्यवबोधस्य इन्द्रियवृत्त्या पुरोधतिन्येवायं नियमितत्वान्न सर्वार्थघटनप्रसङ्गः । कस्मात्तस्त्र तन्नियम्यते ? इत्यत्र वस्तुस्वभावैरुत्तरं^{१५} वाच्यम् । न हि कारणानि कार्यात्पत्तिप्रतिनियमे पर्यनुयोगमर्हन्ति तत्र तस्य वैफल्यात् । साकारत्वेऽपि चायं पर्यनुयोगः समानः-

१ अन्यस्तन्निकर्षादिक कर्तुं । २ निर्विकल्पका बुद्धिम् । ३ यस्मात् । ४ प्रमाणं न घटयतीति सम्बन्धः । ५ बुद्धेः । ६ फलज्ञानस्य । ७ सम्बन्धित्वेन । ८ नैयायिकादिकल्पितस्य । ९ ज्ञानस्यार्थरूपता । १० अर्थरूपता । ११ भा (१) । १२ कर्त्री । १३ भा । १४ इन्द्रियादिभिः । १५ अर्थसम्बन्धज्ञानार्थरूपतयोः । १६ किञ्च । १७ अन्यथा । १८ अर्थरूपताज्ञानयोः । १९ भा । २० पूर्वसिन्धिकल्पे इत्यादि द्रष्टव्यम् । २१ वसः । २२ ईप् । २३ किञ्च । २४ ज्ञाने । २५ ज्ञाने । २६ अर्थरूपताभावे । २७ असन्निरहितेऽप्यर्थे । २८ ज्ञानोत्पादलक्षणः सम्बन्धः । २९ व्यापारेण । ३० चरणत्वात् । ३१ ज्ञानम् । ३२ पूर्वपक्षे । ३३ अस्माभिर्ज्ञेयैः । ३४ आक्षेपम् । ३५ किञ्च ।

1 “अथेन घटयत्येनां न हि मुक्तावर्थरूपताम् ।

अन्यस्तन्मेदो ज्ञानस्य मेदकोऽपि कथञ्चन ॥ ३०५ ॥

तस्मात् प्रमेयाधिगतेः प्रमाणं मेयरूपता ।” प्रमाणवा० ।

2 “किञ्च, घटयतीति सम्बन्धयति इत्यभिप्रेतम्, अर्थसम्बन्धं निश्चाययति इति वा ?” न्यायकुसु० पृ० १७१ ।

3 “साकारत्वेऽपि चायं पर्यनुयोगः समानः । तथाहि-साकारमपि ज्ञानं किमिति नीलादिकमेव पुरोवृत्तिं तत्सन्निरहितमेव च व्यवसाययति ? तेनैव तथा तस्य जननादिति चेत् समानमेतन्निराकारेऽपि ।” सम्प्रति० टी० पृ० ४६० ।

न्यायकुसु० पृ० १७१ ।

साकारमपि हि ज्ञानं किमिति सञ्चिहितं नीलादिकमेव पुरोवर्ति व्यवस्थापयति न पुनः सर्वम् ? तेनैव च तथा जनैनात्' इत्युत्तरं निराकारत्वेपि समानम् । किञ्च, इन्द्रियादिजन्यं विज्ञानं 'किमितीन्द्रियाद्याकारं नाजुकुर्यात्' इति प्रश्ने भवताप्यत्र वस्तुत्वभाव ५ पत्रोत्तरं वाच्यम् । साकारता च ज्ञाने साकारज्ञानेन प्रतीयते, निराकारेण वा ? साकारेण चेत् ; तत्रापि तत्प्रतिपत्तावाकारान्तरपरिकल्पनमित्यनवस्था । निराकारेण चेद्वाह्यार्थस्य तथाभूतज्ञानेन प्रतिपत्तौ को विद्वेषः ?

किञ्च, अस्य वादिनोऽर्थेन संविचेर्घटनाऽन्यथानुपपत्तेः सञ्चि-
१० कर्षः प्रमाणम्, अधिगतिः फलं स्यात्, तस्यास्तमन्तरेण प्रतिनि-
यतार्थसम्बन्धित्वासम्भवात् । साकारसंवेदनस्य अखिलसमानार्थसाधारणत्वेन अनियतार्थघटनप्रसङ्गात् निखिलसमानार्थानामे-
कवेदनापत्तिः, केनचित्प्रत्यासत्तिविप्रकर्षासिद्धेः ।

तदुत्पत्तेरिन्द्रियादिना व्यभिचाराज्ञियामकत्वायोगः । तदुत्पत्ते-
१५ स्ताद्रूप्याच्चार्यस्य बोधो नियामको नेन्द्रियादीर्विपर्ययादित्यप्यसा-
म्प्रतम् ; तद्व्यलक्षणस्यापि समानार्थसंमनन्तरप्रत्ययेनानैकान्तिक-

१ व्यवस्थापकत्वप्रकारेण । २ ज्ञानस्य । ३ भवदीयम् । ४ जैनैः कृते । ५ परेण ।
६ पूर्वपक्षे । ७ अर्थरूपता । ८ किञ्च । ९ निराकारेण । १० सौत्रान्तिकस्य ।
११ ज्ञानस्य । १२ अर्थप्रमितिः । १३ किञ्च । तद्रूप्यनिषेधं कुर्वन्ति । १४ अर्था-
कारमर्थादुत्पन्नमर्थोध्यवसायि ज्ञानं प्रमाणमिमानि विशेषणानि प्रत्येकं दूषयन्ति ।
१५ ईप् । १६ अर्थ । १७ तद्रूप्याभावात् । १८ प्रा(श)कृतज्ञानस्य य एव नीलाद्यर्थो
विषयः स एवोत्तरज्ञानस्येति एकसन्तानवृत्तित्वेन समानोऽर्थे एक्यो नीलः ।
१९ ईप् । २० प्रथमक्षणे नीलमिदमिति ज्ञानमुत्पन्नं तच्च द्वितीयस्य जनकं तत्र
चाद्रूप्यमस्ति तदुत्पत्तिज्ञानत्वेन समानमव्यवहितत्वेनानन्तरमिति । २१ सदृश ।
२२ प्राक्तनज्ञानेन । २३ तदुत्पत्तेस्ताद्रूप्याच्च यथार्थस्य बोधो नियामकः क्वा
प्राक्तनज्ञानेनानेकान्तात् कथम् ? द्वितीयबोधस्य प्राक्तनबोधात्तदुत्पत्तित्वाद्रूप्यसङ्गनेनेति
द्वितीयबोधेन पूर्वान्तरबोधस्य नियामकत्वायोगात् । ज्ञानं ज्ञानस्य न नियामकं ज्ञानस्य
स्वप्रकाशकत्वात् ।

१ "साकारता विज्ञानस्य किं साकारेण प्रतीयते, आहोस्त्रिभिराकारेण ?"
सन्धति० टी० पृ० ४६० ।

२ "तत्सारूप्यतदुत्पत्तौ यदि सवेदकक्षणम् ।
तथा च स्वास्तमानार्थविज्ञान समनन्तरम् ॥"
प्रमाणवा० ११२२ ।

त्वात् । कथं चार्थवदिन्द्रियाकारं नाजुक्त्यादिसौ तदुत्पत्तेरविशेषात् ? तद्विशेषेष्यस्य कारणान्तरपरिहारेणार्थाकारानुकारित्वं पुत्रस्यैव पित्राकारानुकरणमित्यप्यसङ्गतम् ; स्वोपादानमात्रानुकरणप्रसङ्गात् । विषयस्यालम्बनप्रत्ययतया स्वोपादानस्य च समनन्तरप्रत्ययतया प्रत्यासत्तिविशेषसङ्गात् उभयाकारानुकरणे-५ ऽर्थवदुपादानस्यापि विषयतापत्तिरविशेषात् । तज्जन्मरूपाविशेषेष्यवसायनियमात् प्रतिनियतार्थनिर्यामकत्वेऽर्थवदुपादानेष्यवसायप्रसङ्गः, अन्यथोभयत्राप्यसौ मा भूद्विशेषाभावात् । न च तज्जन्मादित्रयसङ्गावैष्यर्थप्रतिनियमः; कामलाद्युपहृतचक्षुषः शुक्ले शङ्खे पीताकारज्ञानादुत्पन्नस्य तद्रूपस्य तदाकाराध्यवसायिनो १० विज्ञानस्य समनन्तरप्रत्यये प्रामाण्यप्रसङ्गात् । न चैवंवादिनो विज्ञानस्य स्वरूपे प्रमाणता घटते तत्र सारूप्याभावात् ।

किञ्च, ज्ञानगतालीलाद्याकारात् क्षणिकत्वाद्यौकारः किं भिन्नः, अभिन्नो वा ? भिन्नश्चेत् ; नीलाद्याकारस्याक्षणिकत्वप्रसङ्गस्तद्व्याचृत्तिलक्षणत्वात्तस्य । अथभिन्नः; तर्हि ततोऽर्थस्य नीलत्वादि-१५

१ किञ्च । ताद्रूप्यनिषेधं कुर्वन्ति । २ ज्ञानस्य । ३ अर्थलक्षणत्वात्कारणादपरमिन्द्रियलक्षणम् । ४ बोधस्य । ५ कारण । ६ अन्यवहितकारण । ७ तदुत्पत्तिलक्षणसम्बन्ध । ८ अर्थपूर्वज्ञाने । ९ तज्जन्मतद्रूपविशेषाभावात् । १० अर्थोपादानान्याश्रयत्तेरविशेषात् । ११ अर्थोपादानान्या । १२ निश्चय । १३ बोधस्य । १४ अर्थोपादानयोः । १५ तज्जन्मरूप । १६ किञ्च इदानीं सह दृश्यति । १७ अर्थोत्पत्त्यादि । १८ बोधस्य । १९ बोध । २० पुरुषस्य । २१ किञ्च । साकारत्वेन ज्ञानस्य प्रामाण्यवादिनः । २२ निरशत्वादि । २३ अत्रानुमाने घटादिवद् दृश्यन्तः । २४ नीलाकारान् ज्ञानात् ।

1 “न केवलं विषयवत्त्वाद् दृष्टेरुत्पत्तिरपि तु चक्षुरादिशक्तेश्च । विषयाकारानुकरणादर्शनस्य तत्र विषयः प्रतिभासते, न पुनः कारणम् तदाकारानुकरणादिति चेत्तर्हि; तदर्थवत्करणमनुकुरुमर्हति, न चार्थं विशेषाभावात् । दर्शनस्य कारणान्तरसङ्गादेऽपि विषयाकारानुकारित्वमेव सूत्रस्यैव पित्राकारानुकरणमित्यपि वार्तम्; स्वोपादानमात्रानुकरणप्रसङ्गात् । विषयस्यालम्बनप्रत्ययतया स्वोपादानस्य च समनन्तरप्रत्ययतया प्रत्यासत्तिविशेषाद् दर्शनस्य उभयाकारानुकरणेष्यनुज्ञायमाने रूपादिवदुपादानस्यापि विषयतापत्तिः, अतिशयाभावात् । वर्णादेवौ तद्वदविषयत्वप्रसङ्गात् ।”

अष्टश०, अष्टसह० पृ० ११८ ।

2 “दर्शनस्य तज्जन्मरूपाविशेषेऽपि तदध्यवसायनियमाद् दक्षिणविषयत्वमित्यस्यारम्; वर्णादाविव उपादानेऽपि अध्यवसायप्रसङ्गात् ।”

अष्टश०, अष्टसह० पृ० ११८ ।

वत् क्षणिकत्वादेरपि प्रसिद्धेस्तदर्थमनुमानमनर्थकम् । तदसिद्धौ वा नीलत्वादेरप्यर्तः सिद्धिर्न स्यादविशेषात् । ननु चानेकस्व-
भावार्थाकारत्वेपि ज्ञानस्य यस्मिन्नेवांशे संस्कारपाटवाच्चिर्भ्यो-
त्पादकत्वं तत्रैव प्रामाण्यं नान्यत्रेति । नैवसौ निश्चयः साकारः,
५ निराकारो वा ? साकारत्वे-तत्रापि नीलाद्यौकारस्य क्षणिकत्वा-
द्याकाराद्भेदाभेदपक्षयोः पूर्वोक्तदोषप्रसङ्गः । तत्रापि निश्चयान्तर-
रकल्पनेऽनवस्था । अथ निराकारः; तर्हि निश्चयान्तरात् सर्वाथैव-
विशिष्टस्य ज्ञानस्य 'अयमस्यैवस्य निश्चयः' इति प्रतिकर्मनियमः
कृतः सिद्धेत् ? निराकारस्यापि कुतश्चिन्मिच्छात् प्रतिकर्म-
१० सिद्धावन्मैत्राप्यत एव तत्सिद्धेः किमाकारकल्पनयेति ?

नैवस्तु निराकारत्वं विज्ञानस्य; न तु स्वसंविदितत्वं भूतपरि-
णामत्वाद्दर्पणादिवदित्यप्ययुक्तम्; हेतोरसिद्धेः । भूतपरिणामत्वे
हि विज्ञानस्य बाह्येन्द्रियप्रत्यक्षत्वप्रसङ्गे दर्पणादिवत् । सूक्ष्म-
भूतविशेषणपरिणामत्वाच्च तत्प्रसङ्गः; इत्यप्यसङ्गतम्; स हि चैत-
१५ न्येन सजातीयः, विजातीयो वा तदुत्पादन(तदुपादान)हेतुः
स्यात् ? प्रथमपक्षे सिद्धसाध्यता; सूक्ष्मो हि भूतविशेषोऽचेतन-
द्रव्यव्यावृत्तस्वभावो रूपादिरहितः सर्वदा बाह्येन्द्रियाविषयः

१ अर्थस्य । २ क्षणिकत्वादि । ३ सर्वं क्षणिकं सत्त्वात् । ४ नीलकारज्ञानात् ।
५ अमिन्नत्वस्य । ६ यस्य ज्ञानस्य । ७ नीले । ८ विकल्प । ९ क्षणिकाद्ये । १० नो
बौद्ध । ११ ज्ञानेनोत्पाद्यः । १२ साकारनिश्चयविषयेषु । १३ निश्चयगतस्य ।
१४ अक्षणिकत्वादि । १५ अमिन्नपक्षे । निश्चयगतनीलाद्याकारे । १६ नीलगतक्षणि-
कत्वनिश्चयपरिहारायैव । १७ अन्यानवस्था । १८ निश्चयः । १९ स्वस्वरूपेण ।
२० साधारणस्य । २१ नीलस्य । २२ योग्यतात्तः । २३ निराकारज्ञानपक्षेपि ।
२४ किं प्रयोजनं न किमपि । २५ जैनं प्रति चार्वाको भूते । २६ हेतोरसिद्धत्वमेव
दर्शयन्ति । २७ ज्ञानस्य । २८ सूक्ष्मभूतविशेषः । २९ ज्ञानेन । ३० अस्मात्
ज्ञानानाम् । ३१ प्राणी । ३२ रसगन्धवर्णशब्दैश्च ।

1

“सूक्ष्मो भूतविशेषश्चेदुपादानं चित्तो मतम् ।

स यवात्मास्तु चिज्जातिसमन्वितवपुर्गदि ॥ ११० ॥

तदिजातिः कथन्नाम त्तिदुपादानकारणम् ।

भवतस्तेजसोऽन्भोवत् तथैवाद्दृष्टकल्पना ॥ १११ ॥

सत्त्वादिना समानत्वाच्चिदुपादानकल्पने ।

स्मादीनामपि तत्त्वेन निवार्येत परस्परम् ॥ ११२ ॥

सूक्ष्मभूतविशेषः चैतन्येन विजातीयः सजातीयो वा ?”

तत्त्वार्यको० पृ० २५ । न्यायकुसु० पृ० ३६८ ।

स्वसंवेदनप्रत्यक्षाधिगम्यः परलोकादिसम्बन्धित्वेनानुमेयंश्च आत्मापरनामा विज्ञानोपादानहेतुरिति परैरभ्युपगमात् ।

तस्यातो विजातीयत्वे नोपादानभावः । सर्वथा विजातीयस्योपादानत्वे बह्वेर्जलाद्युपादानभावप्रसङ्गात् तत्त्वचतुष्टयव्याघातः । सत्त्वादिनां सजातीयत्वात्तस्योपादानभावेऽपि अयमेव दोषः । ५ प्रमाणप्रसिद्धत्वाच्चैतन्मनस्तदुपादानत्वमेव विज्ञानस्योपपन्नम् । तथा हि-यद्यतोऽसाधारणलक्षणविशेषविशिष्टं तत्त्वैतस्तत्त्वान्तरम् ; यथा तेजसो चाय्वादिकम्, पृथिव्याद्यसाधारणलक्षणविशेषविशिष्टं च चैतन्यमिति । न चायमसिद्धो हेतुः ; चैतन्यस्य ज्ञान(ज्ञान)दर्शनोपयोगलक्षणत्वात्, भूपयःपावकपवनानां धार-^{१०}णेरणद्रवोष्णतास्वभावानां तल्लक्षणाभावात् । न हि भूतानि ज्ञानदर्शनोपयोगलक्षणानि अस्मदाद्यनेकप्रतिपत्तुप्रत्यक्षत्वात् । यत्पुनस्तल्लक्षणं तस्मात्सर्वाद्यनेकप्रतिपत्तुप्रत्यक्षम् यथा चैतन्यम्, तथा च भूतानि, तस्मात्तथैवेति ।

ननु ज्ञानोपायोगविशेषव्यतिरेकेणापरस्य तद्वदः प्रमाणतो-^{१५}ऽप्रतीतिः असिद्धमेवासाधारणलक्षणविशेषविशिष्टत्वम् ; तथाहि-न तावत्प्रत्यक्षेणैतौ प्रतीयते ; रूपादिवत्तत्त्वभावानवधारणात् । नाप्यनुमानेन ; अस्य प्रामाण्याप्रसिद्धेः । न च तद्भावावेदकं किञ्चिदनुमानमस्तिः इत्यसङ्गतम् ; प्रत्यक्षेणैवात्मनः प्रतीतिः 'सुख्यहं

१ आदिपदेन पुष्पपाप । २ चिद्विवर्तत्वादित्यतः । ३ केनः । ४ चैतन्यस्य । ५ अन्वया । ६ प्रमेयत्ववस्तुत्वादि । ७ किञ्च । ८ स उपादानं यस्य तत् । ९ चैतन्य धर्मा पृथिव्यादिभ्योऽर्थांतरं भवतीति साध्यो धर्मः । ततोऽसाधारणलक्षणविशेषविशिष्टत्वात् । १० पृथिव्यादिभ्यः । ११ विनदृष्ट । १२ पृथिव्यादिभ्यः । १३ भिन्नं । १४ का । १५ ज्ञानदर्शनरूप एव उपयोगः । १६ अनेकसर्वत्रप्रत्यक्षेणासचैतन्नेन व्यभिचारः । १७ अनेकप्रतिपत्तुप्रत्यक्षत्वादित्युक्ते । १८ प्रत्यक्षत्वादित्युक्ते प्रत्यक्षेण । १९ असचैतन्नेन व्यभिचारः । २० दर्शनं । २१ आत्मनः । २२ साधनम् । २३ इन्द्रियप्रत्यक्षेण । २४ किञ्च । २५ हेतुः ।

1 "न हि भूतानि स्वसंवेदनलक्षणानि असदाद्यनेकप्रतिपत्तुप्रत्यक्षत्वात् ।"

अष्टसह० पृ० ६४ ।

2 "आत्मतद्भावे प्रमाणाभावात् ; तथाहि न प्रत्यक्षेणोपलभ्यते रूपादिवत्तत्त्वभावानवधारणात् । नाप्यनुमानमस्त्यात्मप्रतिबद्धम् ।" प्रज्ञ० व्यो० पृ० ३९१ ।

3 "अहमिति प्रत्यये तस्य प्रतिभासनात्, तथाच सुख्यहं दुःख्यहमिच्छावानहमिति प्रत्ययो दृष्टः ।" प्रज्ञ० व्यो० पृ० ३९१ ।

दुःख्यहमिच्छावानहम्' इत्याद्यनुपचरिताहप्रत्ययस्यात्मग्राहिणः प्रतिप्राणि संवेदनात् । न चायं मिथ्याऽवाच्यमानत्वात् । नापि शरीरालम्बनः; बहिःकरणनिरपेक्षान्तःकरणव्यापारेणोत्पत्तेः । न हि शरीरं तथाभूतप्रत्ययवेद्यं बहिःकरणविषयत्वात्, तस्यानुप-
 ५ चरिताहप्रत्ययविषयत्वाभावाच्च । न हि 'स्थूलोऽहं कृशोहम्' इत्याद्यभिन्नाधिकरणतया प्रत्ययोऽनुपचरितः; अत्यन्तोपकारकै र्भूत्ये 'अहमेवायम्' इति प्रत्ययस्याप्यनुपचरितत्वप्रसङ्गात् । प्रति-
 भासमेवो बाधकः अन्यत्रापि समानः । न हि बहलतमःपटलपटाव-
 गुण्डितविभ्रहस्यै 'अहम्' इति प्रत्ययप्रतिभासे स्थूलत्वादिधर्मोपेतो
 १० विग्रहोपि प्रतिभासते । उपचारैश्च निर्मितं विना न प्रवर्तते इत्यात्मोपकारकत्वं निर्मितं कल्प्यते भृत्यवदेव । 'मदीयो भृत्यः' इतिप्रत्ययमेदवत् 'मदीयं शरीरम्' इति प्रत्ययमेदस्तु मुख्यः ।

यच्चोक्तम्-रूपादिवत्त्वंभावानवधारणात्; तदयुक्तम्; 'अहम्'

१ बहिःकरणनिरपेक्षान्तःकरणव्यापारादुत्पद्यमानप्रत्ययवेद्यम् । २ अभावोऽस्तिह इत्युक्ते सत्याह । ३ इच्छावानहम् । ४ ईप् । ५ अनुकरणे । ६ देहः । ७ अन्यथा । ८ उपचारेण । ९ स्थूलोहमिलादिप्रत्यये । १० आवृत्त । ११ पुनरप्य । १२ स्थूलत्वाद् । १३ स्थूलत्वादेः । १४ प्रयोजनम् । १५ शरीरस्य । १६ ज्ञाने । १७ शरीरस्य । १८ ज्ञान । १९ परेण । २० आत्म । २१ आत्मा ।

"स्वसवेद्यः स भवति नासावन्येन ज्ञकयते द्रष्टुम्, नासावन्येन ज्ञकयते द्रष्टुं कथमतौ निर्दिश्येत... असौ पुरुषः स्वयमात्मानमुपलभते । न चान्यसं ज्ञकोऽप्यवर्ज-
 निद्रुम् ।" शारभा० १।१।५ ।

"अहमप्रत्ययविज्ञेयः स्वयमात्मोपपद्यते ।" मीमांसाश्लो० आत्मवादश्लो० १०७ ।

"स्वसंवेदनतः सिद्धः सदात्मा बाधवर्जितात् ।

तस्य क्षमादिविचर्त्तात्मन्यात्मन्यनुपपत्तितः ॥ १६ ॥"

तत्त्वार्थश्लो० पृ० २६ । श्लाघा० समु० श्लो० ७९ । न्यायकृत्यु० पृ० ३४६ ।

१ "न शरीरालम्बनमन्तःकरणव्यापारेण उत्पत्तेः । तथाहि न शरीरमन्तःकरण-
 परिच्छेद्यं बहिर्विषयत्वात् ।" प्रश्न० व्यो० पृ० ३९१ ।

२ "नन्वेवं कृशोऽहं स्थूलोऽहमिति प्रत्ययसहि कथम् ? मुख्ये बाधकोपपत्तेरुप-
 चारेण । तथाहि-मदीयो भृत्य इति ज्ञानवन्मदीयं शरीरमिति मेदप्रत्ययदर्शनात्
 भृत्यवदेव शरीरेऽप्यहमिति ज्ञानस्य औपचारिकत्वमेव पुक्तम् । उपचारस्तु निर्मितं
 विना न प्रवर्तते इत्यात्मोपकारकत्वं निर्मितं कल्प्यते ।" प्रश्न० व्यो० पृ० ३९१ ।
 न्यायकृत्यु० पृ० ३४९ । सम्प्रति० टी० पृ० ८६ ।

३ "अहमिति स्वभावस्य प्रतिभासनात् । न चार्थान्तरस्य अर्थान्तरस्वभावेनाप्रल-
 क्ष्यत्वं दोषः, सर्वपदार्थानामप्रत्ययनामसङ्गात् ।" प्रश्न० व्यो० पृ० ३९१ ।

इति तत्त्वभावस्य प्रतिभासनात् । न चोर्थान्तरस्यार्थान्तरस्वभा-
वेनाप्रत्यक्षत्वं दोषः, सर्वैर्पदार्थानामप्रत्यक्षताप्रसङ्गात् । अथात्मनः
कर्तृत्वादेकसिद्धिर् काले कर्मत्वासम्भवेनाप्रत्यक्षत्वम् ; तत्र; लक्षण-
भेदेन तदुपपत्तेः, स्वातन्त्र्यं हि कर्तृत्वंलक्षणं तदैव च ज्ञानक्रियया
व्याप्यत्वोपलब्धेः कर्मत्वं चाविरुद्धम्, लक्षणाधीनत्वाद्भ्रु- ५
व्यवस्थायाः ।

तथाजुमानेनात्मा प्रतीयते । श्रोत्रादिकरणैः कर्तृप्रयोज्यानि
करणत्वाद्वासादिवत् । न चोत्र श्रोत्रादिकरणानामसिद्धत्वम् ;
'रूपरसगन्धस्पर्शशब्दोपलब्धिः करणकार्या क्रियात्वाच्छिदि-
क्रियावत्' इत्यनुमानात्तत्सिद्धेः । तथा 'शब्दादिज्ञानं क्वचिदा- १०
श्रितं गुणत्वाद्गुणैर्दिवत्' इत्यनुमानतोऽप्यसौ प्रतीयते । प्रामाण्यं
चानुमानस्याग्रे समर्थयिष्यते । शरीरेन्द्रियमनोविषयगुणत्वा-
दिज्ञानस्य न तद्वतिरिक्ताश्रयाश्रितत्वम्, येनोत्पत्तिः स्यादि-
त्यपि मनोरथमात्रम्, विज्ञानस्य तद्गुणत्वासिद्धेः । तथाहि-न

१ आत्म । २ चैतन्यस्य । ३ रूपादिलक्षणार्थादर्थान्तरमात्मा तस्य । ४ आत्म-
लक्षणादधीनान्तरं घटादिसत्त्वं स्वभावो रूपादिसत्त्वं । ५ अन्यथा । ६ घटादीनां ।
७ रूपरसादिरूपेण धर्मेण प्रत्यक्षत्वासम्भवाद । (१) ८ कर्तृकाले । ९ स्वतन्त्रः कर्तेति
वचनात् । १० क्रियान्वाप्तं कर्मेति वचनात् । ११ असाधारणस्वरूपम् । १२ प्रत्यक्ष-
प्रकारेण । १३ अर्थपरिच्छिद्यौ । १४ छिद्यौ । १५ अनुमाने । १६ प्रत्यक्षानुमान-
प्रकारेण । १७ आत्मनि । १८ घटाद्यर्थे यथा । १९ आत्मा । २० असाभिपैतेः ।
२१ घटादि ज्ञायादि च । २२ केन ।

1 "अथात्मनः कर्तृत्वादेकसिद्धिर् काले कर्मत्वासम्भवेनाप्रत्यक्षत्वम् ; तत्र; लक्षण-
भेदेन तदुपपत्तेः । तथाहि-ज्ञानविकीर्षाधारत्वस्य कर्तृलक्षणस्योपपत्तेः कर्तृत्वम्,
तदैव च क्रियया व्याप्यत्वोपलब्धेः कर्मत्वञ्चेति न दोषः । लक्षणतत्रत्वाद्भ्रुव्यव-
स्थायाः ।" प्रश्न० न्यो० पृ० ३९२ ।

2 "करणैः शब्दाद्युपलब्धयुक्तैः श्रोत्रादिभिः समधिगमः क्रियते वासादीनां
करणानां कर्तृप्रयोज्यत्वदर्शनात् । शब्दादिषु प्रतिष्ठा च प्रसाधकोऽनुनीयते ।"

प्रश्न० भा० पृ० ६९ ।

"श्रोत्रादीनि करणानि कर्तृप्रयोज्यानि करणत्वात् वासादिवत् ।"

प्रश्न० न्यो० पृ० ३९३ । न्यायक्युसु० पृ० ३४९ ।

3 "शब्दोपलब्धिः करणकार्या क्रियात्वात् छिदिक्रियावत् ।"

प्रश्न० न्यो० पृ० ३९३ । स्या० सं० का० १७ ।

4 "शब्दादिज्ञानं क्वचिदाश्रितं गुणत्वात् ।"

प्रश्न० न्यो० पृ० ३९३ । न्यायक्युसु० पृ० ३४९ ।

शरीरं चैतन्यगुणाश्रयो भूतविकारत्वाद् घटादिवत् । चैतन्यं वा शरीरविशेषगुणो न भवति सति शरीरे निर्वैर्त्मानत्वात् । ये तु शरीरविशेषगुणा न ते तस्मिन्सति निवर्त्तन्ते यथा रूपादयः, सत्यपि तस्मिन्निवर्त्तते च चैतन्यम्, तस्मान्न तद्विशेषगुणः ।

५ तथा, नेन्द्रियाणि चैतन्यगुणवन्ति करणत्वाद्भूतविकारत्वाद्वा चास्यादिवत् । तद्गुणत्वे च चैतन्यस्येन्द्रियविनाशे प्रतीतिर्न स्याद्विनाशे गुणस्याप्रतीतेः । न चैवम्, तस्मान्न तद्गुणः । तथा च प्रयोगः—सरणौदि चैतन्यमिन्द्रियगुणो न भवति तद्विनाशेष्युत्पद्यमानत्वात्, यो यद्विनाशेष्युत्पद्यते स न तद्गुणो यथा पटविनाशेऽपि घटरूपादि, भवति चेन्द्रियविनाशेऽपि सरणादिकम्, तस्मान्न तद्गुणः । यदि चेन्द्रियगुणश्चैतन्यं स्यात्तर्हि करणं विना क्रियायाः प्रतीत्यभावात् करणान्तरैर्भवितव्यम् । तेषां च प्रत्येकं

१ शरीरस्य । २ चैतन्यस्य । ३ शरीरे । ४ किञ्च । ५ सुखम् । ६ किञ्च । ७ गुणी । ८ गुणः । ९ जानामीति । १० चैतन्यलक्षणयाः ।

1 “न शरीरेन्द्रियमनसामशत्वात् । न शरीरस्य चैतन्यं घटादिवत् भूतकार्यत्वात् सृष्टे चासंभवात् ।” प्रश्न० भा० पृ० ६९ ।

“शरीरं चैतन्यश्चैतन्यं भूतत्वात् कार्यत्वाच्च ।...चैतन्यं शरीरविशेषगुणो न भवति सति शरीरे निवर्त्तमानत्वात् ।” प्रश्न० व्यो० पृ० ३९४ । न्यायकुसु० पृ० ३४६ ।

“न शरीरगुणश्वेतना, कस्यात् ? ‘यावच्छरीरमावित्वात् रूपादीनात् ।’ ‘शरीरव्यापित्वात्’ ‘शरीरगुणवैभर्त्यात्’ । न्यायसू० ३।२।४९, ५२, ५५ ।

“न शरीरस्य ज्ञानादियोगः परिणामित्वात्, रूपादिमत्त्वात्, अनेकसमूहसत्त्वात्, सन्निवेशविशिष्टत्वात् ।” न्यायसू० पृ० ४३९ ।

“देहधर्मवैलक्षण्यात्...” प्रश्नसू० शा० भा० ३।३।५४ ।

2 “नेन्द्रियाणां करणत्वात् उपहतेषु विषयासाक्षिण्ये चाऽनुसृष्टिदर्शनात् ।” प्रश्न० भा० पृ० ६९ ।

“नेन्द्रियार्थयोः तद्विनाशेऽपि ज्ञानावस्थानात् ।” न्यायसू० ३।३।२८ ।

“नेन्द्रियाणां चैतन्यं करणत्वात् चास्यादिवत्, भूतत्वात्, कार्यत्वादिसिद्धिर्भवत्यम् ।...तदुपघातेऽपि सृष्टिदर्शनात् ।” प्रश्न० व्यो० पृ० ३९४ । न्यायकुसु० पृ० ३४६ ।

3 “सरणमिन्द्रियगुणो न भवति यथा घटविनाशेऽपि पटरूपादिति । तथा च सरणमिन्द्रियविनाशेऽपि भवति तस्मान्न तद्गुण इति ।” प्रश्न० व्यो० पृ० ३९५ ।

4 “यदि चेन्द्रियाणां चैतन्यं स्यात् करणं विना क्रियायाश्चानुपलब्धेति करणान्तरैर्भवितव्यम् । तानि करणानि इन्द्रियाणि विवादास्पदानि चास्मान्न इत्येकस्मिन् शरीरे पुरुषबहुत्वमभ्युपगतं स्यात् ।” प्रश्न० व्यो० पृ० ३९५ ।

चैतन्यगुणत्वे एकस्मिन्नेव शरीरे पुरुषबहुत्वप्रसङ्गः स्यात् । तथाच देवदत्तोपलब्धेऽर्थे यद्बदत्तस्येवेन्द्रियान्तरोपलब्धे तस्मिन् न स्याद्विन्द्रियान्तरेण प्रतिसन्धानम् । दृश्यते चैतसतो नेन्द्रियगुणश्चैतन्यम् । अथैकमेवेन्द्रियमशेषकरणाधिष्ठायकमिष्यतेऽतोयम-
दोषः; तर्हि संज्ञानेदमात्रमेव स्यादात्मनस्तथा नामान्तरकरणात् । ५

नापि चैतन्यगुणवन्मनः करणत्वाद्वास्यादिषत् । कर्तृत्वोपगमे तस्य चैतनस्य सतो रूपाद्गुणलब्धौ करणान्तरोपेक्षित्वे च प्रकारान्तरेणात्मैवोक्तः स्यात् ।

नापि विषयगुणः; तदसाक्षिध्ये तद्विनाशे चानुस्मृत्यादिदर्शनात् । न च शुणितोऽसाक्षिध्ये विनाशे वा गुणानां प्रतीतिर्युक्ता, १० शुणित्वैविरोधानुषङ्गात् । ततः परिशेषाच्छरीरैर्दिव्यतिरिकाध्या-
श्रितं चैतन्यमित्यतो भवत्येवात्मसिद्धिः ।

ततो निराकृतमेतत्—‘शरीरेन्द्रियविषयसंज्ञेभ्यः पृथिव्यादिभूते-
भ्यश्चैतन्याभिर्व्यक्तिः, पिष्टोदकगुडघातक्यादिभ्यो मदशक्तिवत्’ ।
ततोऽसाधारणलक्षणविशेषविशिष्टत्वेऽप्यतत्त्वा(तस्तत्त्वा)न्तैरत्व- १५

१ चैतन्यं गुणो वेदां तानि तत्त्वे । २ चक्षुषा दृष्टेऽर्थे श्रोत्रेण प्रतिसन्धानं न स्यात् ।
३ प्रत्यभिज्ञानम् । ४ मनः । ५ प्रेरकम् । ६ परेण । ७ विद्यमानस्य । ८ मनः ।
९ चक्षुरादि । १० चैतन्यं । ११ सुखादि । १२ अन्यथा । १३ शुणितोऽस्मी गुणा
इति । १४ इन्द्रियमनोविषय । १५ आत्म । १६ गुणत्वादिसापनात् । १७ जायते ।
१८ तेष्यश्चैतन्यस्याभिन्वक्तिर्वतः । १९ ज्ञानदर्शनोपयोगरूप । २० चैतन्यस्य ।

1 “यदि चैकमिन्द्रियमशेषकरणाधिष्ठायकं चैतनमिष्येत; संज्ञानेदमात्रमेव स्यात् ।”

प्रश्न० व्यो० पृ० ३९५ ।

2 “नापि मनसः करणान्तगनपेक्षित्वे युगपदालोचनसृष्टिमसङ्गात्, स्वयं
करणभावाच्च ।”

प्रश्न० भा० पृ० ६९ ।

“नापि मनोगुणः करणत्वात् वास्यादिषत् ।”

प्रश्न० व्यो० पृ० ३९५ । न्यायकुसु० पृ० ३४७ ।

“युगपच्छैवानुपलब्धैश्च न मनसः ।”

न्यायसू० ३।२।१९ ।

3 “अत एव विषयसापि न चैतन्यम् ।”

प्रश्न० कन्दली पृ० ७२ ।

“विषयासाक्षिध्ये तद्विनाशे चानुस्मृतिर्दृष्टा । न तत् गुणतद्विनाशे भवतीति ।”

प्रश्न० व्यो० पृ० ३९५ । न्यायकुसु० पृ० ३४७ ।

4 “इत्याह—मदशक्तिवद्विज्ञानम् । यथैव हि मयाज्ञानां किण्वादीनां देशकला-
वसाभिज्ञेभ्ये मदशक्तिरुक्षणवसाविशेषः प्रादुर्भवति एवं पृथिव्यादीनां तद्विशेषे प्रति-
नियतव्यदिप्राहकं ज्ञानमिति ।”

न्यायकुसु० पृ० ३४२ ।

मेव । “पृथिव्य(व्या)पस्तेजोवायुरिति तत्त्वानि, तत्त्वमुदये शरीरेन्द्रियविषयसंज्ञाः तेभ्यश्चैतन्यम्” [] इत्यत्र ‘अभिव्यक्तिमुपयाति’ इति क्रियाध्याहारादतः सन्दिग्धविषयव्या-
वृत्तिको हेतुरिति; शब्दसामान्याभिव्यक्तिनिषेधेनास्य चैतन्या-
भिव्यक्तिवादस्य विरोधार्थं ।

किंच, सततोऽभिव्यक्तिश्चैतन्यस्य, असतो वा स्यात्, सदसद्रू-
पस्य वा? प्रथमकल्पनायाम् तस्यानाद्यनन्तत्वसिद्धिः, सर्वदा
सततोऽभिव्यक्तेश्चैतन्यमन्तरेणानुपपत्तेः । पृथिव्यादिसामान्यवत् ।
तथा च “परलोकिनोऽभावात्परलोकाभावः” []
१० इत्यपरीक्षिताभिधानम् । प्रागसतश्चैतन्यस्याभिव्यक्तौ प्रतीति-
विरोधः, सर्वथाप्यसतः कस्यचिदभिव्यक्त्यर्थप्रतीतिः । न चैवादिनो
व्यञ्जककारकयोर्भेदः; ‘प्राक्सतः स्वरूपसंस्कारकं हि व्यञ्जकम्,
असतः स्वरूपनिर्वर्तकं कारकम्’ इत्येवं तयोर्भेदप्रसिद्धिः । कथ-
ञ्चित्सतोऽसतश्चाभिव्यक्तौ परमप्रवेशः—कथञ्चिद्भव्यतः सतश्चै-
१५ तन्यस्य पर्यायतोऽसतश्च कायाकारपरिणतैः पृथिव्यादिपुद्गलैः

१ सूत्रे । २ चैतन्यस्याभिव्यक्तिः । ३ वसः । ४ असापारणलक्षणाविशेष-
विक्षिप्तत्वादिति । ५ आकाशात्तद्विलक्षणशब्दोत्पत्तिं यौगमितां निराकृतवत्सर्वाकस्य
अद्वैतस्यैतद्विलक्षणचैतन्योत्पत्तिकथनमयुक्तं स्ववचनविरोधादित्यभिप्रायः । ६ अग्रे ।
७ यथा घटानां प्रदीपाद्यभिव्यक्त्यापारात्पूर्वं सज्जावग्राहकं प्रमाणमस्ति तथा
वात्सवादिन्यापारात्पूर्वं शब्दादिसज्जावग्राहकप्रमाणाभावात्कथमभिव्यक्त्यापारात्पूर्वं
दीनामभिव्यक्तिरिति चार्वाकेण शब्दाद्यभिव्यक्तिपक्षे मीमांसकं प्रत्युद्गाह्यमानेन
द्रुपणेन चैतन्याभिव्यक्तिपक्षस्यापि निराकृतत्वात् । कथम्? अभिव्यक्त्याचैतन्यात्पूर्वनक-
भिव्यक्तनिलचैतन्यसज्जावग्राहकप्रमाणभावादिति । ८ किञ्च । ९ पृथिवीत्वादि ।
२० अनाद्यनन्तात्मसिद्धौ । २१ सत्याम् । २२ खरविषाणादिवत् । २३ किञ्च ।
२४ ना भूत् । २५ व्यञ्जकस्य । २६ जैन । २७ वरनारकादि ।

१ इदं वाक्यं उत्सोपप्लव ५० १, आमती ३।१।५४, तत्त्वसं ० ५० ५२०,
तत्त्वार्थं लो० ५० २८, न्यायकुसु० ५० ३४१ इत्यादिषु उद्धृतं वर्तते ।

२ “तथाहि—पृथिव्यापस्तेजोवायुरिति चत्वारि तत्त्वानि । तेभ्यश्चैतन्यमिति । अत्र
केचिद्दुष्टिकारा व्याचक्षते—‘अत्यघते तेभ्यश्चैतन्यम्’ इति । अन्ये ‘अभिव्यक्त्यते’
इत्याहुः ।” तत्त्वसं ० ५० ५२० ।

३ “चैतन्यशक्तिं सतीमेव, प्रागसतीमेव, सदसती वा अभिव्यक्त्यतेः ।”

सुच्यनुशा० टी० ५० ७५ । न्यायकुसु० ५० ३४५ ।

४ इदं वाक्यं उत्सोपप्लव० ५० ५८, तत्त्वसं ० ५० ५२६, न्यायकुसु०
५० ३४६, सम्मति० टी० ५० ७१ इत्यादिषु उद्धृतं वर्तते ।

पैरैरप्यभिव्यक्तेरभीष्टत्वात् पृथिव्यादिभूतचतुष्टयैवत् । नन्वेवं
पिष्टोदकादिभ्यो मदशक्त्यभिव्यक्तिरपि न स्यात् तत्राप्सुक्त-
विकल्पानां समानत्वादित्यप्यसाम्प्रतम् ; तत्रापि द्रव्यरूपतया
प्राक्सत्त्वाभ्युपगमात्, सकलभावानां तद्रूपेणानाद्यनन्तत्वात् ।

शरीरेन्द्रियविषयसंज्ञेभ्यश्चैतन्यस्योत्पत्त्यभ्युपगमात् 'तेभ्यश्चै-
तम्' इत्यत्र 'उत्पद्यते' इति क्रियाध्याहारान्नाभिव्यक्तिपक्षभावी
दोषोऽवकाशं लभते इत्यर्थः । सोपि चैतन्यं प्रत्युपादानकारण-
त्वम्, सहकारिकारणत्वं वा भूतानाम् इति पुष्टं स्पष्टमा-
चष्टाम् ? न तावदुपादानकारणत्वं तेषाम् ; चैतन्ये भूतान्वयप्रस-
ङ्गात्, सुवर्णोपादाने किरीडादौ सुवर्णान्वयवत्, पृथिव्याद्युपादाने १०
काये पृथिव्याद्यन्वयवत् । न चात्रैवंम् ; न हि भूतसमुदयः पूर्वम-
चेतनाकारं परित्यज्य चेतनाकारमाददा(धा)नो धारणेणद्रव्यो-
ष्णतालक्षणेन रूपादिमत्त्वस्वभावेन वा भूतस्वभावेनान्वितः प्रैम-
णप्रतिपन्नः, चैतन्यस्य धारणादिस्वभावरहितस्यान्तःसंवेदनैरानु-
भवात् । न च प्रदीपोद्युपादानेन कज्जलादिना प्रदीपाद्यनन्वितेन १५
व्यभिचारः ; रूपादिमत्त्वमात्रेणात्राप्यन्वयदर्शनात् । पुद्गलविका-
राणां रूपादिमत्त्वमात्राव्यभिचारात् । भूतचैतन्ययोरप्येवं सत्त्वा-
दिक्रियाकारित्वादिधर्मैरन्वयसङ्गात् उपादानोपादेयभावः
स्यादित्यप्यसमीचीनम् ; जलानलादीनामप्यन्योन्यमुपादानोपादे-
यभावप्रसङ्गात्, तद्धर्मैस्तत्राप्यन्वयसङ्गात्वाविशेषात् । २०

किञ्च, 'प्राणिनामार्थं चैतन्यं चैतन्योपादानकारणकं त्रिद्विचर्च-

१ जैनेः । २ यथा पृथिव्यादिभूतचतुष्टयस्य पुद्गलरूपेण सतः षट्पादपर्यायरूपेण-
सतक्षकादिकारणादाविर्भावस्तथा प्रकृतस्यापि । ३ चैतन्याभिव्यक्तिविषयप्रकारेण ।
४ मदशक्तौ । ५ घृते । ६ अविद्वकर्णश्रावकविशेषः । ७ जैनेः । ८ अन्यथा ।
९ चैतन्यं भूतान्वयि तद्रुपादानत्वात् । यद्यदुपादानं तच्चदन्वयि यथा घृदुपोपादानको
घटः । १० पीतत्वमाहुरस्व । ११ धारणादि । १२ उपसंहारः । १३ मत्सङ्गः ।
१४ प्रदीपादि उपादानं यस्य । १५ कज्जले प्रदीपरूपादिमत्त्वमात्रान्वयप्रकारेण ।
१६ जलानलादयः परस्परमुपादानोपादेयभाववन्तः सत्त्वादिधर्मैरन्वितत्वात्तत्रैत-
न्यवत् । १७ चैतन्यं धर्मि भूतोऽन्वयि भवतीति साध्मो धर्मैः । तद्रुपादानत्वात्
यथा घृदुपादानको घटो घृदन्वयी । १८ तज्जन्मापेक्षया । १९ पूर्वजन्मचैतन्य ।
२० वसतः । २१ पूर्वनिद । २२ प्रमेय । (पर्याय)

१ "भूतानि किमुपादानकारणं चैतन्यस्य सहकारिकारणं वा ?"

तत्संसं० पं० पृ० ५२६ । शुच्यानु० टी० पृ० ७८ । न्यायकुसु० पृ० ३४४ ।

२ "प्राणिनामार्थं चैतन्यं चैतन्योपादानकारणकं त्रिद्विचर्चत्वात् मध्यचैतन्यविवर्त-
वत् । तथा अन्यचैतन्यपरिणामः चैतन्यकार्यः सत एव तद्वत् ।" अष्टसह० पृ० ६३१

त्वान्मध्यचिद्विवर्त्तवत् । तथान्यचैतन्यपरिणामश्चैतन्यकार्यस्तत्
एव तद्वत्' इत्यनुमानात्तस्य चैतन्यान्तरोपादानपूर्वकत्वसिद्धेर्न
भूतानां चैतन्यं प्रत्युपादानकारणत्वकल्पना घटते । सहकारिकार-
णत्वकल्पनायां तु उपादानमन्यद्वाच्यम्, अनुपादानस्य कस्यचि-
५ त्कार्यस्यानुपलब्धेः । शब्दविद्युदादेरनुपादानस्याप्युपलब्धेरदोषोय-
मित्यप्यपरीक्षिताभिधानम् ; 'शब्दादिः सोपादानकारणकः कार्य-
त्वात् पटादिवत्' इत्यनुमानात्सादृश्योपादानस्यापि सोपादान-
त्वसिद्धेः ।

गोमयादेरचैतनाच्चेतनस्य वृश्चिकादेरुत्पत्तिप्रतीतिः तेर्नने-
१० कान्तः इत्युक्तम् ; तस्य पक्षान्तर्भूतत्वात् । वृश्चिकादिशरीरं
श्चचेतनं गोमयादेः प्रादुर्भवति न पुनर्वृश्चिकादिचैतन्यवि-
र्वर्त्तस्तस्य पूर्वचैतन्यविवर्त्तादेवोत्पत्तिप्रतिज्ञानात् । अथ यथार्थैः
पथिकाग्निः अरणिनिर्मन्थोत्थोऽनग्निपूर्वकः अन्यस्त्वग्निपूर्वकः
तथाद्यं चैतन्यं कायाकारपरिणतभूतेभ्यो भविष्यत्यन्यत्तु चैतन्य-
१५ पूर्वकं विरोधाभावाद्दित्यपि मनोरथमात्रम् ; प्रथमपथिकाग्नेरनर्ग्यु-
पादानत्वे जलादीनामप्यजलाद्युपादानत्वापत्तेः पृथिव्यादिभूतचतु-
ष्टयस्य तत्त्वान्तरभावविरोधः । येषां हि परस्परमुपादानोपादेय-
भावस्तेषां न तत्त्वान्तरत्वम् यथा क्षितिविवर्त्तानाम्, परस्पर-
मुपादानोपादेयभावञ्च पृथिव्यादीनामित्येकमेव पुद्गलतत्त्वं क्षित्वा-

१ जन्मप्रभृतिमरणपर्यन्त । २ वसः (कार्यपरवसमासः) । ३ पर्यायः ।
४ वसः । ५ भूतानाम् । ६ कारणम् । ७ परेण । ८ वृश्चिकचैतनेन । ९ वृश्चिक-
चैतन्यस्य । १० वसः । ११ सन्दिग्धानैकान्तिकत्वम् । १२ चुडीसः । १३ मध्य-
चैतन्यम् । १४ कार्यत्वादिहेतोः । १५ काष्ठ । १६ पृथिव्यादयो धर्मिणस्तन्तान्तरत्वं
न प्राप्नुवन्तीति साध्यं परस्परमुपादानोपादेयभाववत्त्वात् । १७ सलिलदहनपवन ।

1 "नापि ते कारका विधेः अनन्ति सहकारिणः ।
सोपादानविहीनायास्तस्मात्सोम्योऽप्रसूयितः ॥ २०७ ॥
नोपादानाद्विना शब्दविद्युदादिः भवतीति ।
कार्यत्वात् कुम्भवत्... ॥ २०८ ॥ तत्त्वार्थस्ये० पृ० २८ ।
न्यायकुसु० पृ० ३४४ ।

२ "गोमयादेरचैतनाच्चेतनस्य वृश्चिकादेरुत्पत्तिदर्शनात्तेन व्यभिचारी हेतुरीति
चेन्नः तस्यापि पक्षीकरणम् । वृश्चिकादिशरीरस्याचेतनस्यैव तेन सम्पृच्छन्नं न पुनः
वृश्चिकादिचैतन्यविवर्त्तस्य, तस्य पूर्वचैतन्यविवर्त्तादेव उत्पत्तिप्रतिज्ञानात् ।"

अष्टसह० पृ० ६३ । तत्त्वार्थस्ये० पृ० २९ ।

३ "प्रथमपथिकाग्नेरनर्ग्युपादानत्वे जलादीनामप्यजलाद्युपादानत्वोपपत्तेः पृथि-
व्यादिभूतचतुष्टयस्य तत्त्वान्तरभावविरोधः ।"

अष्टसह० पृ० ६३ ।

विविधैर्त्तमवतिष्ठेत सहकारिभावोपगमे तु तेषां चैतन्येपि सोऽस्तु । यथैव हि प्रथमाविर्भूतपावकादेस्तिरोहितपावकान्तरादिपूर्वकत्वं तथा गर्भचैतन्यस्याविर्भूतस्वभावस्य तिरोहितचैतन्यपूर्वकत्वमिति ।

न चानाद्यैकानुभवितृव्यतिरेकेणैष्टानिष्टविषये प्रत्यभिज्ञानाभि-५
लाषादयो जन्मादौ युज्यन्ते; तेषामभ्यासपूर्वकत्वात् । न च
मानुदरैरस्थितस्य बहिर्विषयादर्शनेऽभ्यासो युक्तः; अतिप्रसङ्गात् ।
न चोबलज्ञावस्थायामभ्यासपूर्वकत्वेन प्रतिपन्नानामप्यनुसन्धानादीनां
जन्मादीषु तत्पूर्वकत्वं युक्तम्; अन्यथा धूमोऽग्निपूर्वको-
द्द्योप्यनग्निपूर्वकः स्यात् । मातापित्रभ्यासपूर्वकत्वात्तेषामदोषो-१०
यमित्यन्यसम्भाव्यम्; सन्तानान्तरैर्भ्यासादन्यत्र प्रत्यभिज्ञानेऽ-
तिप्रसङ्गात् । तदुपलब्धे 'सर्वे मयैवोपलब्धमेतत्' इत्यनुसन्धानं
चैकिलापत्यानां स्यात् । परस्परं वा तेषां प्रत्यभिज्ञानप्रसङ्गः
स्यात्, एकैस्तानोद्भूतदर्शनस्पर्शनप्रत्ययवत् ।

'ज्ञानेनाहं घटादिकं जानामि' इत्यहमप्रत्ययप्रसिद्धत्वाच्चैतन्नो १५
नैपलापो युक्तः । अत्र हि यथा कर्मतया विषयस्यावभासस्तथा
कर्तृतयात्मनोपि । न चात्र देहेन्द्रियादीनां कर्तृता; घटादिवत्तेषामपि
कर्मतयाऽवभासनात्, तदप्रतिभासनेप्यहमप्रत्ययस्यानु-
भवात् । न हि बहलतमःपटलपटावगुण्ठितविश्रंहस्योपरतेन्द्रिय-

१ वचः । २ परेण । ३ अग्निं प्रलरगिरूपपृष्ण्यादीनाम् । ४ दधि । ५ शक्ति-
रूपसित । ६ उपादान । ७ शक्तिरूपसित । ८ उपादान । ९ किञ्च । १० आत्म ।
११ सत्कार । १२ मालकस्य । १३ त्रिविक्रमेऽप्येऽभ्यासो भवत्वदर्शनाविद्येपात् ।
१४ मध्यभावस्यावा । १५ प्रत्यभिज्ञानादीनाम् । १६ अनन्यात् । १७ अपलस्य ।
१८ मातापितृलक्षण । १९ अपले । २० वस्तुनि । २१ अपलेन । २२ किञ्च ।
२३ एकापलेन दृष्टेऽप्ये द्विविधापलस्य प्रत्यभिज्ञानप्रसङ्गः स्यात् । २४ आत्मलक्षण ।
२५ किञ्च । २६ तिहवः । २७ ज्ञानेनाहं घटादिकं जानामीति प्रत्यये । २८ ज्ञानेनाहं
घटादिकं जानामीति प्रत्यये । २९ देहेन्द्रियादिकं जानामि । ३० नरस्य ।

१ "पूर्वानुभूतस्मृत्यनुबन्धाज्जातस्य हर्षमयशोकसम्प्रतिपत्तेः ।"

न्यायसू० ३।१।१९ । न्यायमं० पृ० ४७० ।

"जातिसाराणां संवादादपि सत्कारसंखितेः ।

अन्यथा कल्पयंश्लोकमतिक्रामति केवलम् ॥

नाऽस्मृतेऽभिलाषोऽस्ति न विना सापि दर्शनात् ।

तद्धि जन्मान्तराद्यर्थं जातमानेऽपि कल्पते ॥"

न्यायविलि० २।७९,८० । न्यायकुसु० पृ० ३४७ ।

व्यापारस्य गौरव्यौल्यादिधर्मोपेतं शरीरं प्रतिभासते । अहमप्रत्ययः स्वसंविदितः पुनस्तस्यानुभूयमानो देहेन्द्रियविषयादिव्यतिरिक्तार्थालम्बनः सिद्ध्यतीति प्रमाणप्रसिद्धोऽनादिनिधनो द्रव्यान्तरमात्मा । प्रयोगः—अनाद्यनन्त आत्मा द्रव्यत्वात्पृथिव्यादिवत् ।

१५ न तावदाश्रयासिद्धोर्यं हेतुः, आत्मनोऽहमप्रत्ययप्रसिद्धत्वात् । नापि स्वरूपोसिद्धः, द्रव्यलक्षणोपलक्षितत्वात् । तथाहि—द्रव्यमात्मा गुणपर्ययवत्त्वात्पृथिव्यादिवत् । न चायमप्यसिद्धो हेतुः, ज्ञानदर्शनादिगुणानां सुखदुःखहर्षविषादादिपर्यायाणां च तत्र सद्भावात् । न च घटादिनानेकान्तस्तस्य मृदादिपर्ययत्वात् ।

३० ननु शरीररहितस्यात्मनः प्रतिभासे ततोऽन्योऽनादिनिधनोऽसाविति स्यात् जलरहितस्यानलस्यैव, न चैवम्, आसंसारं तत्सहितस्यैवास्यावभासनात् । तत्र 'शरीररहितस्य' इति कोऽर्थः ? किं तत्स्वभावविकलस्य, आहोस्वित्तद्देशपरिहारेण देशान्तरावस्थितस्येति ? तत्राप्यपक्षेऽस्त्येव तद्रहितस्यास्य प्रतिभासः—

१५ रूपादिमदचेतनस्वभावशरीरविलक्षणतया अमूर्त्तचैतन्यस्वभावतया चात्मनोऽध्यक्षगोचरत्वेनोक्तत्वात् । द्वितीयपक्षे तु—शरीरदेशादन्यत्रोपलम्भात्तत्र तदभावः, शरीरप्रदेश एव वा ? प्रथमविकल्पे—सिद्धसाधनम्; तत्र तदभावाभ्युपगमोत् । न सल्लु नैयायिकवज्जैनेनापि स्वदेहादन्यत्रात्मेप्यते । द्वितीयविकल्पे तु—

२० न केवलमात्मनोऽभावोऽपि तु घटादेरपि । न हि सोपि स्वदेशादन्यत्रोपलभ्यते ।

किञ्च, स्वशरीरादात्मनोऽन्यत्वाभावः तत्स्वभावत्वात्, तद्गुणत्वात् वा स्यात्, तत्कार्यत्वाद्वा प्रकारान्तरासम्भवात् । पक्षत्रयेपि प्रागेव दत्तमुत्तरम् । ततश्चैतन्यस्वभावस्यात्मनः प्रमाणतः प्रसिद्धे-

१ पश्चात् । २ मनः । ३ आत्मा । ४ अनादिनिधनस्य । ५ आत्मनि । ६ द्रव्यत्वादिति हेतोः । ७ सति । ८ परिहारमाह । ९ उक्ते अर्थे । १० प्रतिभासाभावः । ११ प्रतिभासाभावः । १२ देशे । १३ जीवस्य । १४ ता । १५ जैनैः । १६ तत्स्वभावस्य यद्यतोऽसाधारणलक्षणविशेषविशिष्टं तत्तत्सत्त्वान्तरमित्यादिना निरस्तत्वात् । १७ जैनैः ।

1 "द्रव्यतोऽनादिपर्यन्तः सत्त्वात् क्लिप्तादितत्त्ववत् ।

स स्यान्न व्यभिचारोऽत्र हेतोर्नाशिन्यसंभवात् ॥ १४० ॥"

तरवार्यं को० पृ० ३२ ।

2 "शरीररहितस्येति कोऽर्थः—किं तत्स्वभावविकलस्य आहो तद्देशपरिहारेण देशान्तरावस्थितस्येति ।"

सा० रत्ना० पृ० १०८० ।

स्तत्स्वभावमेव ज्ञानं युक्तम् । तथा च स्वव्यवसायात्मकं तत् चैत-
नात्मपरिणामत्वात्, यत्तु न स्वव्यवसायात्मकं न तत्तथा यथा
घटादि, तथा च ज्ञानं तस्मात्स्वव्यवसायात्मकमित्यभ्युपगन्तव्यम् ।

नैतु विज्ञानस्य प्रत्यक्षत्वेऽर्थवत्कर्मतापत्तेः करणात्मनो ज्ञाना-
न्तरस्य परिकल्पना स्यात् । तस्यापि प्रत्यक्षत्वे पूर्ववत्कर्मतापत्तेः ५
करणात्मकं ज्ञानान्तरं परिकल्पनीयमित्यनवस्था स्यात् । तस्या-
प्रत्यक्षत्वेपि करणत्वे प्रथमे कोऽपरितोषो येनैस्य तथा करणत्वं
नेष्येते । न चैकैस्यैव ज्ञानस्य परस्परविरुद्धकर्मकरणाकाराभ्युप-
गमो युक्तोऽन्यत्र तथाऽदर्शनादित्याशङ्क्य प्रमेयैवेत्प्रमातृप्रमाण-
प्रमितीनां प्रतीतिसिद्धं प्रत्यक्षत्वं प्रदर्शयन्नाह— १०

घटमहमात्मना वेद्मीति ॥ ८ ॥

कर्मवत्कर्तृकरणक्रियाप्रतीतेः ॥ ९ ॥

न हि कर्मत्वं प्रत्यक्षतां प्रत्यक्षमात्मनोऽप्रत्यक्षत्वप्रसङ्गात् तद्व-
त्तस्यापि कर्मत्वेनाप्रतीतेः । तदप्रतीतावपि कर्तृत्वेनास्य प्रतीतेः
प्रत्यक्षत्वे ज्ञानस्यापि करणत्वेन प्रतीतेः प्रत्यक्षतास्तु विशेषः १५
भावात् । अथ करणत्वेन प्रतीयमानं ज्ञानं करणमेव न प्रत्यक्षम् ;
तदैन्यत्रापि समानम् । किञ्च, आत्मनः प्रत्यक्षत्वे परोक्षज्ञान-
कल्पनया किं सौध्यम् ? तस्यैव स्वरूपवद्वाह्यार्थग्राहकत्वप्रसिद्धेः ?
कर्तुः करणमन्तरेण क्रियायां व्यापारासम्भवात्करणभूतपरोक्ष-

१ वसः । २ चार्वाकेण भवता । ३ मीमांसकः । ४ विज्ञानं कर्म-प्रत्यक्षत्वात्,
घटवत् । ५ करणस्वरूपस्य । ६ पूर्वज्ञानस्य यथा । ७ प्रथमज्ञानस्य । ८ अप्रत्यक्षत्वे ।
९ जैनेः । १० यत्कर्म तदेव करणम् । ११ घटे । १२ अर्थस्य यथा । १३ करण-
भूतेन । १४ अन्यथा । १५ आत्मा न प्रत्यक्षः कर्मत्वेनाप्रतीयमानत्वात्करणज्ञानवत् ।
१६ यत् कर्म न भवति तत्प्रत्यक्षमपि न भवतीत्युक्ते । १७ करणज्ञानवत् ।
१८ उभयत्र कर्मत्वेनाप्रतीयमानत्वस्य । १९ समाधानपरिहारत् । २० कर्तृत्वेनात्मा
प्रतीयमानः कर्तव्यं स्यात् प्रत्यक्ष इति समानम् । २१ भयानकम् । २२ प्रमितिलक्षणार्थाः ।

1 "कर्मत्वेनाप्रतिभासमानत्वात् करणज्ञानमप्रत्यक्षमिति चेन्न; करणत्वेन प्रतिभास-
मानस्य प्रत्यक्षत्वोपपत्तेः । कथञ्चिद् प्रतिभासते, कर्म च न भवति इति व्याघातस्य प्रति-
पादितत्वात् ।" तन्मार्थको० पृ० ४६ । न्यायकुसु० पृ० २७६ । प्रमाणप० पृ० ६२ ।

2 "अथ करणत्वेनावुभयानं ज्ञानं करणमेव स्यात् प्रत्यक्षं तर्हि कर्तृप्रमाणफल-
रूपतया अनुभूयमानयोः आत्मप्रमाणफलयोः कर्तृप्रमाणकत्वरूपतैव स्यात् न प्रत्यक्ष-
त्वमिलभ्यस्तु ।"

सा० रत्ना० पृ० २२६ ।

ज्ञानकल्पना नानर्थिकेत्यप्यसाधीयः; मनसश्चक्षुरादेश्चान्तर्बहिः-
करणस्य सद्भावात् ततोऽस्य विशेषाभावाच्च । अनयोरचेतनत्वा-
त्प्रधानं चेतनं करणमित्यप्यसमीचीनम्; भावेन्द्रियमनसोश्चेत-
नत्वात् । तत्परोक्षत्वसाधने च सिद्धसाधनम्; स्वार्थग्रहण-
५ शकिलक्षणार्था लब्धेर्मनसश्च भावकरणस्य छर्षस्थाप्रत्यक्षत्वात् ।
उपयोगलक्षणं तु भावकरणं नाप्रत्यक्षम्; स्वार्थग्रहणव्यापारल-
क्षणस्यास्य स्वसंवेदनप्रत्यक्षप्रसिद्धत्वात् 'घटादिद्वारेण घटादि-
ग्रहणे उपयुक्तोऽप्यहं घटं न पश्यामि पदार्थान्तरं तु पश्यामि'
इत्युपयोगस्वरूपसंवेदनस्याखिलजनानां सुप्रसिद्धत्वात् । क्रियायाः
१० करणाविनाभावित्वे चात्मनः स्वसंविचौ किङ्करणं स्यात् । खैलै-
वेति चेत्, अद्यपि स एवास्तु किमदृष्टान्त्येकल्पनया ? ततश्चक्षु-
रादिभ्यो विशेषमिच्छतीं ज्ञानस्य कर्मत्वेनाप्रतीतावप्यध्यक्षत्व-
मभ्युपगन्तव्यम् । फलज्ञानात्मनोः फलत्वेन कर्तृत्वेन चानुभूय-
मानयोः प्रत्यक्षत्वाभ्युपगमे करणज्ञाने करणत्वेनानुभूयमानोपि
१५ सोऽस्तु विशेषाभावात् । न चोभ्यां सर्वथा करणज्ञानस्य भेदो

१ परोक्षज्ञानस्य । २ परोक्षत्वेन । ३ उभयत्र । ४ मुख्यम् । ५ कर्मत्वेना-
प्रतीयमानत्वाद्भेदोः । ६ भावेन्द्रियाभितायाः । ७ अर्थग्रहणशक्तेः । ८ जसदादि ।
९ अर्थग्रहणव्यापारः । १० तदेव दर्शयति । ११ व्याप्तिप्रमाणः । १२ किञ्च ।
१३ स्वस्वरूपम् । १४ करणम् । १५ भेदम् । १६ परेण । १७ करणरूपस्य । १८ अर्थ-
परिच्छिन्ति । १९ तादृशः (तासंज्ञा पश्याः । द्विःपदेन द्विवचनं आद्यम्) । २० परेण ।
२१ करणज्ञानं प्रत्यक्षत्वेन स्वस्वरूपेण प्रतिभासमानत्वात्फलज्ञानात्मनवत् । २२ स्वरूपेण
प्रतिभासाविशेषात् । २३ किञ्च । २४ का (पञ्चमी विपक्तिः) । २५ अन्यथा ।

1 "इन्द्रियमनसोरेव करणत्वात्, तयोरेचेतनत्वादुपकरणमात्रत्वात् प्रधान
चेतनं करणमिति चेन्न; भावेन्द्रियमनसोः परेषां चेतनतयाऽवसितत्वात् ।" तत्पार्थ-
क्यो० पृ० ४६ । "मनसश्चक्षुरादेश्चान्तर्बहिःकरणस्य सद्भावात्, ताभ्यां ज्ञानस्य
परोक्षत्वेन विशेषाभावाच्च । अथ मनसश्चक्षुरादिकायादेरचेतनत्वात् ज्ञानास्यं कर्णं
चेतनत्वेन ताभ्यां विशिष्यत इत्युच्यते; तदप्यनुपपन्नम्; भावरूपयोरिन्द्रियमन-
सोरपि चेतनत्वात्" ।
स्या० रत्ना० पृ० २१४ ।

2 "अर्थग्रहणशक्तिः कश्चिः, उपयोगः पुनरर्थग्रहणव्यापारः ।"

कपी० स्ववि०, न्यायकुसु० पृ० ११५ ।

3 "चक्षुरादिद्वारेणोपयुक्तोऽहं घटं पश्यामीत्युपयोगस्वरूपसंवेदनस्य सर्वथापि
प्रसिद्धत्वात् ।"
स्या० रत्ना० पृ० २१४ ।

4 "तदेव तस्य फलमिति चेत्; प्रमाणादभिन्नं भिन्नं वा ?" कश्चिद्विद्विप्रमिति
चेन्न सर्वथा करणज्ञानस्याप्रत्यक्षत्वं विरोधात् ।" तत्पार्थक्यो० पृ० ४६ ।

"किञ्च, ज्ञात्मप्रमाणफलान्यां सकाशात् करणज्ञानस्य सर्वथा भेदः, कश्चिदा ?
स्या० रत्ना० पृ० २१४ ।

मतान्तरानुपपन्नात् । कथञ्चिद्दे तु नास्याऽप्रत्यक्षनेकान्तः श्रेयान् प्रत्यक्षस्वभावाभ्यां कर्तृफलज्ञानाभ्यामभिन्नस्यैकान्ततोऽप्रत्यक्षन्य- विरोधात् ।

किञ्च, आत्मज्ञानयोः सर्वथा कर्मत्वाप्रसिद्धिः, कथञ्चिद्वा ? न तावन्सर्वथा; पुरुषान्तरापेक्षया प्रमाणान्तरपेक्षया च कर्मन्याप्रसि-
द्धिप्रसङ्गात् । कथञ्चिद्येत्, येनात्मनो कर्मत्वं सिद्धं तेन प्रत्यक्षन्य-
मपि, अस्मिन्नादिप्रमाणपेक्षया घटादीनामप्यंगेत एव कर्मन्याप्य-
ज्ञायोः प्रसिद्धेः । विरुद्धा च प्रतीयमानयोः कर्मत्वाप्रसिद्धिः,
प्रतीयमानत्वं हि ग्राह्यत्वं तदेव कर्मत्वम् । नतः प्रतीयमानन्या-
पेक्षया कर्मत्वाप्रसिद्धौ परतः कथं तत्सिद्ध्येत् ? विरोधाभावाद्ये- १०
त्संतस्तत्सिद्धौ को विरोधः ? कर्तृकरणन्ययोः कर्मत्वेन सहानय-
स्थानम् : परतस्तत्सिद्धौ संमानम् । 'घटग्राहिर्घानविशिष्टमात्मानं
संतोऽहमनुभवामि' इत्यनुभवसिद्धं स्वतः प्रतीयमानन्यापेक्ष-
यापि कर्मत्वम् । तद्वार्थवज्ज्ञानस्य प्रतीतिसिद्धप्रत्यक्षनाऽपलौपो-

- १ नैयायिक । २ करणरूपेण ननु शानरूपेण । ३ वा । ४ करणज्ञानं परंथा
न परीक्षे प्रलक्षस्वभावाभ्यां कर्तृफलज्ञानाभ्यामभिप्रायात्कालरूपवत् । ५ करणम् ।
६ करण । ७ अन्यथा । ८ अन्य करणज्ञानमपि उपदेष्टव्यार्थेन स्वदान्यभावात्प्रसिद्धेः ।
९ करण । १० मम करणज्ञानमपि कर्मप्रादुक्तान्यभावात्प्रसिद्धेः । ११ ममत्वेन ।
१२ सात्वत्येन विमिति न स्वाप्रत्यक्षत्वनिरोधके सत्यात् । १३ इत्युक्तयोः ।
१४ द्विज । १५ कर्मत्वेन करणत्वेन च । १६ ज्ञानज्ञानयोः । १७ स्वयं वा
ज्ञानादीनि कर्तृत्वया । १८ परापेक्षया स्वयं कर्मत्वं च कथम् । १९ (मयं) ।
२० कर्तृकरणयोः परतः कर्मत्वेन प्रतीतिरिति कथं ममानं महानवरमानं स्वादिशुद्धे
सत्यात् । २१ विरोधेन । २२ स्वयं । २३ अन्यथा ।

१ "सर्वथा प्रतीयमानत्वमसिद्धं कथञ्चिद्वा ? न तावन्सर्वथा; परंथापि प्रतीयमान-
त्वाभावात्प्रसङ्गात् । कथञ्चिद्येत् तु नास्तिकं रूपत्वम्, तस्यैवोक्तत्वात् । स्वयं प्रतीय-
मानत्वमसिद्धमिति श्रेयः परतः कथं तत्सिद्धम् ? विरोधाभावाद्ये- १०
त्संतस्तत्सिद्धौ को विरोधः ? कर्तृकरणन्ययोः कर्मत्वेन सहानय-
स्थानम् : परतस्तत्सिद्धौ संमानम् । 'घटग्राहिर्घानविशिष्टमात्मानं
संतोऽहमनुभवामि' इत्यनुभवसिद्धं स्वतः प्रतीयमानन्यापेक्ष-
यापि कर्मत्वम् । तद्वार्थवज्ज्ञानस्य प्रतीतिसिद्धप्रत्यक्षनाऽपलौपो-

प्रकारार्थको० सू० ४५ ।

"सुप्रतिज्ञो हि घटग्राहिर्घानविशिष्टमात्मानं सजोऽहमनुभवामि" इत्युक्तम् ।

१ वाक्यद्वयं सू० १०० ।

२ "सुप्रतिज्ञो हि घटग्राहिर्घानविशिष्टमात्मानं सजोऽहमनुभवामि" इत्युक्तम्,
एतच्च प्रतीकं ज्ञाने स्वरूपादेत्या कर्मत्वं कथं ज्ञानात्कर्मत्वं इत्युक्तम् ?

सू० ११९ सू० १२५

ऽर्थप्रत्यक्षत्वस्याप्यपलापप्रसङ्गात् । प्रतीतिसिद्धैस्वभावस्यैकत्राप-
लापेऽन्यत्राप्यनार्थसाक्ष कश्चित्प्रतिनियतस्वभावव्यवस्था स्यात् ।

किञ्च, इयं प्रत्यक्षता अर्थधर्मः, ज्ञानधर्मो वा ? न तावदर्थधर्मः,
नीलतादिवचनेशे ज्ञानकालादन्यदाप्यनेकप्रमातृसाधारणविषय-
५ तथा च प्रसिद्धिप्रसङ्गात् । न चैवम्, आत्मन्येवास्या ज्ञानकाले
एव स्वासाधारणविषयतया च प्रसिद्धेः । तथा च न प्रत्यक्षता
अर्थधर्मः तद्देशे ज्ञानकालादन्यदाप्यनेकप्रमातृसाधारणविषयतया
चाऽप्रसिद्धत्वात् । यस्तु तद्धर्मः स तद्देशे ज्ञानकालादन्यदाप्य-
नेकप्रमातृसाधारणविषयतया च प्रसिद्धो दृष्टः, यथा रूपादिः,
१० तद्देशे ज्ञानकालादन्यदाप्यनेकप्रमातृसाधारणविषयतया चाप्र-
सिद्धा चैवम् तस्मान्न तद्धर्मः । यस्यात्मनो ज्ञानेनार्थः प्रकटीक्रियते
तद्ज्ञानकाले तस्यैव सोऽर्थः प्रत्यक्षो भवतीत्यपि भ्रष्टामात्रम्,
अर्थप्रकाशकविज्ञानस्य प्राकट्याभावे तेनार्थप्रकटीकरणासम्भवा-
त्तदीपवत्, अन्यथा सन्तानान्तरवर्तिनोपि ज्ञानादर्थप्राकट्य-
१५ प्रसङ्गः । चक्षुरादिवचस्य प्राकट्याभावेप्यर्थे प्राकट्यं घटेतेत्यस्य-
मीचीनम्, चक्षुरादेरर्थप्रकाशकत्वासम्भवात् । तत्प्रकाशकज्ञान-
हेतुत्वात् खलूपचारेणार्थप्रकाशकत्वम् । कारणस्य ज्ञातृत्वस्यापि
कार्ये व्यापारविरोधो ज्ञापकस्यैवाज्ञातस्य ज्ञापकत्वविरोधात्
“ज्ञातृत्वं ज्ञापकं नाम” [] इत्यखिलैः परीक्षादक्षैरभ्युप-
२० गमात् । प्रमातुरात्मनो ज्ञापकस्य स्वयं प्रकाशमानस्योपगमादर्थे
प्राकट्यसम्भवे करणज्ञानकल्पनावैफल्यमित्युक्तम् । नापि ज्ञान-
धर्मः, अस्य सर्वथा परोक्षतयोपगमात् । यत्खलु सर्वथा परोक्षं तन्न
प्रत्यक्षताधर्माधारो यथाऽदृष्टादि, सर्वथा परोक्षं च परैरभ्युपगतं
ज्ञानमिति ।

१ करणज्ञानं प्रत्यक्षमर्थप्रत्यक्षत्वान्यथानुपपत्तेः । २ प्रत्यक्षत्वरूपत्वम् । ३ करण-
ज्ञानम् । ४ स्थूलत्वावर्धम् । ५ अविद्यासात् । ६ वस्तुनि । ७ घटपटादि । ८ अन्यथा ।
९ सन्दिग्धानैकान्तिकत्वमनेन वाक्येनार्थधर्मत्वादित्यस्य हेतोः । १० करणज्ञानेन ।
११ करणम् । १२ ज्ञानं नार्थं प्रकटयति स्वयमप्रत्यक्षत्वात्परमाण्वादिनत् । १३ करण-
ज्ञानं प्रत्यक्षमर्थप्रकाशकत्वात्परवीपवत् । १४ अ(म)लक्षादपि ज्ञानादर्थप्राकट्ये ।
१५ प्रवृत्तान्तरम् । १६ स्वस्य । १७ समयत्रापि परोक्षत्वाविशेषात् । १८ क्षारकत्वम् ।
१९ किञ्च । २० करणज्ञानं न प्राकट्यधर्माधिकरणं सर्वथा परोक्षतयोपगमात् ।
२१ करणम् ।

१ “अथ प्रकाशतामार्थं तदपि ज्ञानधर्मः, अर्थधर्मः उभयधर्मः, स्वतन्त्र वा स्यात् ?”

न्यायकुसुम् ५० १७९ ।

कुतश्चैवंवादिभो ज्ञानैसङ्गावसिद्धिः-प्रत्यक्षात्, अनुमानादेर्वा? न तावत्प्रत्यक्षात्तस्यातद्विषयतयोपगमात् । यद्यद्विषयं न भवति न तत्तद्व्यवस्थापकम्, यथास्मादङ्गप्रत्यक्षं परमाण्वाद्यविषयं न तद्व्यवस्थापकम् । ज्ञानाविषयं च प्रत्यक्षं परैरभ्युपगतमिति ।

नाप्यनुमानात्; तदविनाभाविङ्गाभावात् । तर्हि अर्थज्ञप्तिः; ५ इन्द्रियार्थो वा, तत्सहकारिर्गुणं मनो वा? अर्थज्ञप्तिश्चेत्सा किं ज्ञानस्वभावा, अर्थस्वभावा वा? यदि ज्ञानस्वभावा; तदाऽसिद्धत्वात्तस्याः कथमनुभापकत्वम्? न खलु ज्ञानस्वभावाविशेषेपि 'ज्ञप्तिः प्रत्यक्षा न करणज्ञानम्' इत्यत्र व्यवस्थानिवन्धनं पद्या-मोऽन्यत्र महिमोहात् । शब्दमात्रभेदाच्च सिद्धासिद्धत्वभेदः १० स्वेच्छापरिकल्पितोऽर्थस्याभिन्नत्वात् । ज्ञानत्वेन हि प्रत्यक्षतावि-रोधे ज्ञप्तावपीयं न स्याद्विशेषात् । अर्थार्थस्वभावा ज्ञप्तिः तदार्थ-प्राकट्यं सा, न चैतदर्थग्राहकविज्ञानस्यात्मैाधिकरणत्वेनापि प्राक-ट्याभावे घटते, पुरुषान्तरज्ञानादप्यर्थप्राकट्यप्रसङ्गात् । आत्मा-धिकरणत्वपरिज्ञानाभावे च ज्ञानस्य ज्ञानेन ज्ञातोप्यर्थः नात्मानु- १५ भविर्देकत्वेन ज्ञातो भवेत् 'मैया ज्ञातोऽयमर्थः' इति । अर्थग-तप्राकट्यस्य सर्वसाधारणत्वैवात्मान्तरबुद्धेरप्यनुमानं स्यात् । यैर्दृष्ट्या यस्यार्थः प्रकटीभवति तद्बुद्धिमेवासौ तैतोऽनुमि-

१ सर्वथा परोक्षकरणज्ञानमित्येवंवादिनः । २ करण । ३ वीतं प्रत्यक्षं करण-ज्ञानान्वयवसापकं तदविषयत्वादिति । ४ मीमांसकैः । ५ वसः । ६ पक्षाग्रम् । ७ करणज्ञान । ८ अज्ञातासिद्धत्वम् । ९ पक्षे । १० महदज्ञानं वर्नेतिवा । ११ अर्थज्ञप्तिः करणज्ञानमिति । १२ प्रत्यक्षामलक्षणेदः । १३ ज्ञानलक्षणस्य । १४ करणस्य । १५ ज्ञानत्वेन प्रत्यक्षतायाः । १६ करणज्ञानस्य । १७ जीव अहमधिकरणमस्य ज्ञानस्वेति परिज्ञानाभावे । १८ अत्यन्तपरोक्षत्वात् । १९ स । २० किञ्च । २१ ज्ञानस्य । २२ जीवेन । २३ किञ्च । २४ सर्वेषां करणज्ञानमसि अर्थप्राकट्यान्यथानुपपत्तेः । २५ ता । २६ अर्थप्राकट्यात् । २७ जानाति ।

१ "किञ्च, बुद्धेः स्वसंवेदनमलक्षणागोचरत्वे जुतस्तत्सत्त्वं तिष्ठेत् ?

प्रमाणान्तराद्येत् किं प्रत्यक्षरूपात्, अनुमानरूपात् ?"

न्यायकुसु० पृ० १७७ । स्वा० रत्ना० पृ० २१६ ।

२ "तदि इन्द्रियम्, अर्थः, तदतिशयः, तत्सम्बन्धः, तत्र प्रवृत्तिर्वा भवेत् ?"

न्यायकुसु० पृ० १७८ । स्वा० रत्ना० पृ० २१६ ।

३ "यदि पुनरर्थसैलादर्थपरिच्छिन्नेः प्रत्यक्षत्वम्यते, तदा साऽर्थप्राकट्यमुप्यते, न चैतदर्थग्राहणविज्ञानस्य प्राकट्याभावे घटामति अतिप्रसंगात् । न ह्यमकटे अर्थज्ञाने सन्तान्तरपरिनिष्कृतस्य त्रिदर्थस्य प्राकट्यं घटते ।" प्रमाणसू० पृ० ३१ ।

मीते नात्मान्तरबुद्धिमित्यप्यसारम्; बुद्ध्यात्मनोरप्रत्यक्षतैकान्ते
 'यद्बुद्ध्या यस्वार्थः प्रकटीभवति' इत्यस्यैवान्धपरम्परया व्यवस्था-
 पयितुमशक्तेः । प्रत्यक्षत्वे चात्मनः सिद्धं विज्ञानस्य स्वार्थव्यवसा-
 यात्मकत्वम् । आत्मैव हि स्वार्थग्रहणपरिणतो जानातीति ज्ञान-
 ५ मिति कर्तृसाधनज्ञानशब्देनाभिधीयते ।

इन्द्रियार्थौ लिङ्गमित्यप्यनालोचिताभिधानम्; तयोर्विज्ञान
 सद्भावविनाभावासिद्धेः । योग्यदेशे स्थितस्य प्रतिपत्तुरिन्द्रियार्थ-
 सद्भावेत्यन्यत्र गतमनसो विज्ञानाभावात् । तत्सिद्धौ चेन्द्रिय-
 स्यातीन्द्रियत्वेनार्थस्यापि ज्ञानाऽप्रत्यक्षत्वेनासिद्धेः कथं तथ्यापि
 १० हेतुत्वं तयोः ? सिद्धौ वा न साध्यज्ञानकाले ज्ञानान्तरात्तत्सिद्धि-
 र्युगपद् ज्ञानानुत्पत्त्यभ्युपगमात् । उत्तरकालीनज्ञानात्तत्सिद्धौ-
 तदा साध्यज्ञानस्याभावात्कस्यानुमानम् ? उभयविषयस्यैकज्ञान
 स्थानभ्युपगमादनेवस्थाप्रसङ्गात्ज्ञानयोरसिद्धिः ।

इन्द्रियार्थसहकारिप्रवृत्तौ मनो लिङ्गमित्यप्यपरीक्षिताभिधा-
 १५ नम्; तत्सद्भावासिद्धेः । युगपद् ज्ञानानुत्पत्तेस्तत्सिद्धिः, तथा
 हि-आत्मनो मनसा तस्येन्द्रियैः सम्बन्धे ज्ञानमुत्पद्यते । यदा
 चास्य चक्षुषा सम्बन्धो न तदा शेषेन्द्रियैरतिसम्भत्वात्; इत्यप्य-
 सङ्गतम्; दीर्घशङ्कुलीमक्षणादौ युगपद्द्रुपादिज्ञानपञ्चकोत्पत्तिप्र-
 तीतिः अश्वविकल्पकाले गोनिश्चयाच्च तदसिद्धेः । न चात्र क्रमैका-
 २० न्तकल्पना-प्रत्यक्षविरोधात् । किञ्चैवंवादिना (किं) युगपत्प्रतीतिं
 येन(वयवानवयव्यादिव्यवहारः स्यात् ? घटपटादिकमिति चेत् न;
 अत्रापि तथ्या कल्पनाप्रसङ्गात् । किञ्चातिसिद्धमस्यापि मनसो नयना-

१ करणज्ञान । २ सा । ३ ज्ञान । ४ द्वितीयविकल्पस्य । ५ करणज्ञानस्य ।
 ६ आ (तृतीया) । ७ कसिसिद्धिद्वये । ८ करणज्ञानस्य सर्वथा परोक्षत्वात् ।
 ९ इन्द्रियार्थयोः । १० असिद्धत्वेऽपि । ११ करणज्ञानं प्रति । १२ करणज्ञाने ।
 १३ इन्द्रियार्थे । १४ इन्द्रियार्थाङ्घ्रिहात्करणज्ञानसिद्धिरिन्द्रियार्थयोरपि सिद्धिः कसाद-
 प्रकरणज्ञानात्तस्यापि अपरेन्द्रियार्थादित्यनवस्था । १५ पञ्चमस्य । १६ मनसः ।
 १७ च शब्दः आविश्ये । १८ दीर्घशङ्कुलीमक्षणादौ युगपद् ज्ञानं नोत्पद्यते इत्येवं-
 वादिना । १९ अत्राहोपाये किमिति पूर्वेण सम्बन्धः । २० क्रमैकान्त ।

१ "अश्वविकल्पकाले गोदर्शनानुभवात् युगपद्द्रुपानुत्पत्तिश्चासिद्धा क्वं मनोऽङ्ग-
 भाविकम् ? नचाश्वविकल्पगोदर्शनयोर्दुर्गपद्द्रुपवेऽपि क्रमोत्पत्तिकल्पना प्रत्यक्षविरो-
 धात् ।" सम्प्रति० टी० पृ० ४७७ ।

२ "किंच, चक्षुराद्यन्यत्रमेन्द्रियसम्बन्धात् रूपादिज्ञानोत्पत्तिकाले मनसः सम्ब-
 न्धात् मानसज्ञानं किञ्च भवेत् ? तथापिचाहृष्टाभावादित्युत्पत्त्येव बहुद्वन्द्वमित्युगपत्ज्ञान-
 नानुत्पत्तिप्रसक्तितो मनसोऽनिमित्तता... ।" सम्प्रति० टी० पृ० ४७७ ।

दीनामन्यतमेन सन्निकर्षसमये रूपादिज्ञानवन्मानसं सुखादिज्ञानं
किञ्च स्यात् सम्बन्धसम्बन्धसद्भावात्? तथाविचाहृष्ट्याभावा-
द्येत्; अहृष्टकृता तर्हि युगपद् ज्ञानानुत्पत्तिस्तदेवांनुमापयेन्न मनः।

किञ्च, 'युगपद् ज्ञानानुत्पत्तेर्मनःसिद्धिस्तुतश्चास्याः प्रसिद्धिः'
इत्यन्योन्याश्रयः। अक्रकप्रसङ्गश्च—'विज्ञानसिद्धिपूर्विका हि युगपद् ५
ज्ञानानुत्पत्तिसिद्धिः, तत्सिद्धिर्मनःपूर्विका' इति। तस्मात्तत्सह-
कारि प्रगुणं मनो लिङ्गमित्यप्यसिद्धम्।

अस्तु वा किञ्चिल्लिङ्गम्, तथापि—ज्ञानस्याप्रत्यक्षतैकान्ते तत्स-
म्बन्धासिद्धिः। न चासिद्धेसम्बन्ध(न्धं) लिङ्गं कैच्यचिद्रैमकमति-
प्रसङ्गात्। ततः परोक्षतैकान्ताग्रहग्रहाभिनिवेशेपरित्यागेन 'ज्ञानं १०
स्वैव्यवसायात्मकमर्थज्ञप्तिनिमित्तत्वात् आत्मवत्' इत्यभ्युपगन्त-
व्यम्। नेत्रालोकादिनानेकान्त इत्यप्ययुक्तम्; तस्योपचार-
तोऽर्थज्ञप्तिनिमित्तत्वंसमर्थनात्, परमार्थतः प्रमातृप्रमाणयोरेव
तन्निमित्तत्वोपपत्तेरित्यलमतिप्रसङ्गेन।

एतेन 'आत्माऽप्रत्यक्षः कर्मत्वेनाप्रतीयमानत्वात्करणज्ञानवत्' १५

१ मनसा सम्बन्धे आत्मनि सुखादेः समवायसम्बन्धः सम्बन्धसम्बन्धः। २ युग-
पञ्चानोत्पादकस्य। ३ करणज्ञानं कर्म। ४ करणज्ञान। ५ क्षतिः। ६ विशानसिद्धिः।
७ इन्द्रियार्थः। ८ अविनाभावः। ९ भा। १० लिङ्गस्य। ११ अज्ञातः।
१२ साध्यस्य। १३ अन्यथा। १४ दुराग्रहः। १५ करणज्ञानं। १६ साध्यसम-
स्यात् स्वक्षप्तिनिमित्तत्वात्कृतातः। १७ कुठारेण व्यभिचारः। १८ मीमांसकमादृक्क-
रणज्ञानदूषणकपनेन। १९ करणज्ञानस्य परोक्षत्वनिराकरणपरेण प्रत्येन।

१ "तथाहि—सिद्धे तद्विग्रहे मनःसिद्धिः, तत्सिद्धौ च युगपच्छानोत्पत्तिविग्र-
मसिद्धिरतीतरेतराभ्यवसाज मनःसिद्धिः।" सम्मति० दी० पृ० ४७८।

२ "अस्तु वा किञ्चिल्लिङ्गम्, तथापि अगृहीतप्रतिबन्धं तद् न परोक्षां बुद्धिम-
नुमापयितुं समर्थम्...प्रतिबन्धश्च लिंगलिंगिनोः अविनाभूतत्वेन प्रमाणप्रतिपन्नयो-
रेव भवति। न च ज्ञानं तेन चाविनाभूतं किञ्चिर्लिङ्गं प्रमाणेन प्रतिपन्नं यतः सम्ब-
न्धग्रहणपुरस्सरमनुमानं प्रवर्तेत।" न्यायकुसु० पृ० १८१।

३ "ज्ञानं स्वपरिच्छेदकमर्थज्ञानत्वात्।" शुचयनुशा० दी० पृ० ९

"स्वव्यवसायात्मात्मकं ज्ञानमर्थपरिच्छित्तिनिमित्तत्वादात्मवत्"

प्रमाणप० पृ० ६१।

४ "किञ्च अप्रकाशस्वभावानि भेदाणि माता च प्रकाशमपेक्षन्ताम्, प्रकाशस्तु
भेदात्मकत्वाच्चान्यमपेक्षते। जाग्रतो हि भेदाणि माता च प्रकाशन्ते, सुषुप्तस्य च न

इत्याचक्ष्णः प्रभाकरोपि प्रत्याख्यातः । प्रमितेः कर्मत्वेनाप्रतीय-
मानत्वेपि प्रत्यक्षत्वाभ्युपगमात् । तस्याः क्रियात्वेन प्रतिभासना-
त्प्रत्यक्षत्वे कारणज्ञान-आत्मनोः कारणत्वेन कर्तृत्वेन च प्रतिभास-
नात्प्रत्यक्षत्वमस्तु । न चाभ्यां तस्याः सर्वथा भेदोऽभेदो वा-
५ मतीन्तरानुपज्ञात् । कथञ्चिदभेदे-सिद्धं तयोः कथञ्चित्प्रत्यक्ष-
त्वम् ; प्रत्यक्षादभिर्भयोः सर्वथा परोक्षत्वविरोधात् । ननु शाब्दी
प्रतिपत्तिरेषां 'घटमहमात्मना वेधि' इति नानुभवप्रभावा
तस्यास्तैद्विनाभावाभावात्, अन्यथा 'अङ्गुल्यग्रे हस्तियुधशत-
मास्ते' इत्यादिप्रतिपत्तेरप्यनुभवत्वप्रसङ्गस्तर्कैक्यमतेः प्रमात्रादीनां
१० प्रत्यक्षताप्रसिद्धिरित्याह—

शब्दानुच्चारणेपि स्वस्यानुभवनमर्थवत् ॥ १० ॥

यथैव हि घटस्वहेपप्रतिभासो घटशब्दोच्चारणमन्तरेणापि
प्रतिभासते । तथा प्रतिभासमानत्वाच्च न शाब्दस्तथा प्रमात्रा-
दीनां स्वरूपस्य प्रतिभासोपि तच्छब्दोच्चारणं विनापि प्रतिभा-
१५ सते । तस्माच्च न शाब्दः । तच्छब्दोच्चारणं पुनः प्रतिभातप्रमा-

१ मृगम् । २ वृद्ध । ३ अर्थपरिच्छिद्येः । ४ प्रमाकरेण । ५ सति ।
६ कर्मत्वेनाप्रतीयमानयोरपि । ७ किञ्च । ८ नैयायिकः । ९ वीर्यः । १० अन्यथा ।
योगसौगतयोः परिग्रहः । ११ कर्मत्वेन परोक्षत्वं कर्तृत्वेन कारणत्वेन प्रत्यक्षत्वं
कर्तृज्ञानयोः । १२ प्रमितिरूपात् । १३ कारणज्ञानात्मनोः । १४ सा । १५ मह-
मात्मना । १६ स्वसवेदनप्रत्यक्ष । १७ अनुभवेन सह । १८ प्रतीतित्वात्स-
म्प्रतिपन्नमतीतिवत् । १९ कारणात् । २० श्लाघ्याः प्रतिपत्तेः श्(स)काशात् ।
२१ ता । २२ अयं घटः । २३ अनुमानसङ्गावाच्च । २४ सुखादिवत् ।

इयमपि प्रकाशते । न च तदानीं तत्रास्त्येव; प्रबोधे सति प्रत्यभिधानात्, तत्र प्रकाशा-
त्मकत्वे सुप्तसिद्धशायामपि इयं प्रकाशते, तस्मात्प्रकाशात्मकमेतत् इयमर्थीक्रियते ।"
नेयाना मातृश्व स्वतःप्रकाशो नोपपद्यते इति युक्तं तयोः परापेक्षा, मित्रं च कश्चि-
दनुपपत्तिर्नास्ति इति स्वयम्प्रकाशैव मितिः ।" प्रक० पं० पृ० ५७ ।

1 तेषां फलज्ञानहेतोर्भविचारः, कर्मत्वेनाप्रतीयमानस्य फलज्ञानस्य प्रमात्रैः
प्रत्यक्षत्वाभ्युपगमात् । तस्य क्रियात्वेन प्रतिभासनात् प्रत्यक्षत्वे प्रमात्राप्यात्मनः
कर्तृत्वेन प्रतिभासनात् प्रत्यक्षत्वमस्तु ।" प्रमाणप० पृ० ६१ ।

2 "तच्च फलज्ञानमात्मनोऽर्थान्तरमूतमनर्थान्तरमूतमुभयं वा ? न तावत् सर्व-
थाऽर्थान्तरमूतमनर्थान्तरमूतं वा; भूतान्तरप्रवेद्यानुपज्ञात् । नाभ्युपगम्य; पक्षद्वयनिग-
हितदृष्टानुपपत्तेः । कथञ्चिदर्थान्तरत्वे तु फलज्ञानादात्मनः कथञ्चित्प्रत्यक्षत्वमविचार्य,
प्रत्यक्षादभिर्भय कथञ्चिदप्रत्यक्षत्वैकान्तविरोधात् ।" प्रमाणप० पृ० ६१ ।

प्रादिस्वरूपप्रदर्शनपरं नाऽनालम्बनमर्थवत्, अन्यथा 'सुख्यदम्' इत्यादिप्रतिभासस्याप्यनालम्बनत्वप्रसङ्गः ।

ननु यथा सुखादिप्रतिभासः सुखादिसंवेदनस्याप्रत्यक्षत्वेऽप्युपपन्नस्तथार्थसंवेदनस्याप्रत्यक्षत्वेऽप्यर्थप्रतिभासो भविष्यति इत्यप्यविचारितरमणीयम्; सुखादेः संवेदनादर्थान्तरस्वभावस्याप्रतिभासनादाह्लादनाकारपरिणतज्ञानविशेषस्यैव सुखत्वात्, तस्य चाध्यक्षत्वात् तस्यानध्यक्षत्वेऽत्यन्ताप्रत्यक्षज्ञानग्राह्यत्वे च-अनुग्रहोपेक्षाकारित्वासम्भवः, अन्यथा परकीयसुखादीनामर्थात्मनोऽत्यन्ताप्रत्यक्षज्ञानग्राह्याणां तत्कारित्वप्रसङ्गः । ननु पुत्रादिसुखाद्यप्रत्यक्षत्वेऽपि तत्सद्भावोपलम्भमार्त्रादीर्त्मेनोऽनुग्रहाद्युपलभ्यते १० तत्कथमयमेकान्तः ? इत्यप्यशिक्षितलक्षितम्; नहि तत्सुखाद्युपलम्भमात्रात् सौमनस्योदिजनिताभिमानिकसुखैपरिणतिमन्तरेणोत्मेनोऽनुग्रहादिसम्भवेः, शैत्रसुखाद्युपलम्भाद्भ्रेश्चेतितादिर्नोपरित्यक्तपुत्रसुखाद्युपलम्भाच्च तत्प्रसङ्गात् । विभ्रंहादिकमितिसन्निहितमपि आभिमानिकसुखमन्तरेणोऽनुग्रहादिकं न विदधाति-१५ किमङ्गं पुनरतिव्यवहिताः पुत्रसुखादयः ।

अस्तु नाम सुखादेः प्रत्यक्षता, सा तु प्रमाणान्तरेण न स्वतः 'स्वात्मनि क्रियाविरोधात्' इत्यर्थः, तस्यापि प्रत्यक्षविरोधः । न खलु घटादिवत् सुखाद्यविदितस्वरूपं पूर्वमुत्पन्नं पुनरिन्द्रियेण सम्बद्ध्यते तैतो क्षीनं ३८ ग्रहणं चेति लोके प्रतीतिः । प्रथममेवेष्टी-२०

१ निर्विषय । २ ईप् (सप्तमी) । ३ शब्दद्वारस्य । ४ शब्दोच्चारणपूर्वकत्वात् । ५ भाट्ट । ६ करणज्ञानं मलक्षमर्थप्रकाशनिमित्तत्वात्प्रदीपवदात्मवदा । ७ अर्थव्यति-
 निमित्तत्वादित्यस्य साधनस्यानैकान्तिकत्वम् । ८ करणज्ञानस्य । ९ परिच्छिन्तिः ।
 १० सुखादि । ११ करणज्ञानस्य । १२ करणज्ञानस्य । १३ मित्र । १४ करण ।
 १५ दुःखालस्य । १६ स्वस्य । १७ अनैकान्तिकत्वं । १८ प्रमाणमात्रात् ।
 १९ स्वस्य । २० पितुः । २१ कथं । २२ वैमनस्य । २३ आत्मनः ज्ञात्मनि ।
 २४ स्वस्य । २५ तातस्य । २६ जन्यया । २७ अनैकान्तिकत्वपरिहारः कृतः ।
 २८ सुचेष्टित । २९ क्षरीर । ३० उदासीनपुरुषस्य । ३१ पु(त्र)म् । ३२ विज्ञेये ।
 ३३ नैवाधिको वैज्ञेयिको वा । ३४ अज्ञात । ३५ पश्चात् । ३६ इन्द्रियसम्बन्धात् ।
 ३७ करणरूपमुत्पद्यते । ३८ ज्ञानेन । ३९ परिच्छिन्निरूपं । ४० स्वचन्दनादि ।

१ "न हि सुखापिदितस्वरूपं पूर्वं घटादिपदुत्पन्नं पुनरिन्द्रियसम्बन्धोपजातज्ञानान्तराद् वैद्यते इति लोकेप्रतीतिः, अपि तु प्रथममेव स्वप्रकाशरूपं तदुदयमासाद्य-
 दुपलभ्यते ।"

निर्द्वेषियानुभवानन्तरं स्वप्रकाशात्मनोऽस्योद्भूयप्रतीतेः । स्वात्मनि
क्रियाविरोधं चानन्तरमेव विचारयिष्यामः । यदि चार्थान्तरभूत-
प्रमाणप्रत्यक्षाः सुखादयस्तर्हि तदपि प्रमाणं प्रमाणान्तरप्रत्यक्ष-
मित्यनवस्था । विभिन्नप्रमाणग्राह्याणां चार्तुग्रहादिकारित्ववि-
५ रोधः । न हि स्त्रीसङ्गमादिभ्यः प्रतीयमानाः सुखादयोऽन्यैस्या-
त्मनैस्तत्कारिणो दृष्टाः । ननु परकीयसुखादीनामनुमानगम्यत्वा-
च्चात्मनोऽनुग्रहादिकारित्वम् आत्मीयानां प्रत्यक्षाधिगम्यत्वात्त-
त्कारित्वमित्यप्यसारम् ; योगिनोपि तत्कारित्वप्रसङ्गात् प्रत्यक्षा-
धिगम्यत्वाविशेषात् । आत्मीयसुखादीनामेव तत्कारित्वं नान्येषा-
१० मित्यापि फलुप्रायम्, अत्यन्तभेदेऽर्थान्तरभूतप्रमाणग्राह्याच्चे-
च्चात्मीयेतेरभेदस्यैवासम्भवात् ।

आत्मीयत्वं हि तेषां तद्गुणत्वात्, तत्कार्यत्वाद्वा स्यात्, तत्र
समवायाद्वा, तदधिष्यत्वाद्वा, तददृष्टनिष्पाद्यत्वाद्वा । न तावच्चहुण-
त्वात् ; तेषामात्मनो व्यतिरेकैकान्ते 'तैस्यैव तै' गुणा नाकाशादे-
१५ न्यात्मनो वा' इति व्यवस्थापयितुमशक्येः ।

तत्कार्यत्वाच्चेत्कुतस्तत्कार्यत्वम् ? तस्मिन् सति भावात् ;
आकाशादौ तत्रसङ्गः । तस्य निमित्तकारणत्वेन व्यापाराददोष-
श्चेत्, आत्मनोपि तथा तदस्तु । समवायिकारणमन्तरेण कार्या-
नुत्पत्तेरात्मनस्तत्कल्प्यते, गगनादेस्तु निमित्तकारणत्वमित्य-
२० प्ययुक्तम् ; विपर्ययेणापि तत्कल्पनाप्रसङ्गात् । प्रत्यासत्तेरात्मैव
समवायिकारणं चेन्न ; देशकालप्रत्यासत्तेर्नित्यव्यापित्वेनात्मव-
दन्यत्रापि समानत्वात् । योग्यतापि कार्ये सामर्थ्यम्, तत्रैका-

१ अद्यादि । २ सुखादेः । ३ परिच्छित्तिलक्षणा । ४ अग्रे । ५ किञ्च ।
६ सुखादेर्मिन्नप्रमाणात् । ७ सुखादीनां । ८ किञ्च । ९ उपपात । १० सस्य ।
११ परकीयसुखादिवद्गुणान्तः । १२ देवदत्तस्य पुरुषस्य । १३ यश्वदत्तस्य सस्य ।
१४ जीवन्मुक्तस्य । १५ आत्मनः सकाशात्सुखादीनाम् । १६ परकीय । १७ देव-
दत्तात्म । १८ देवदत्तात्म । १९ देवदत्तात्मनि । २० देवदत्तात्म । २१ देव-
दत्तात्म । २२ भा । २३ भेदेकान्ते । २४ देवदत्तात्मनः । २५ सुखादयः ।
२६ यश्वदत्तात्मनः । २७ देवदत्तात्म । २८ देवदत्ते सति । २९ सुखादयः
आकाशकार्यत्वादाकाशादीयाः स्फुराकाशादौ सति भावात् । ३० उपादानकारण ।
३१ आत्मा निमित्तकारणं गगनादि समवायिकारणं । ३२ सुखादौ । ३३ अकि-
कार्योत्पादिका । ३४ किञ्च ।

१ 'न चाल्मनो ज्ञानाच्च अर्थान्तरभूता' एव सुखादयोऽनुग्रहादिविवायिनो भवेयुः ;
इतरथा योगिनोऽपि ते तथा स्युः ।' सम्प्रति० टी० पृ० ४७६ ।

शादेरप्यस्तीति । अथात्मन्यात्मनस्तज्जननसामर्थ्यं नान्यस्येव-
प्ययुक्तम्; अत्यन्तभेदे तथा तज्जननविरोधात् । तत्सामर्थ्यस्या-
प्यात्मनोऽत्यन्तभेदे 'तस्यैवेदं नान्यस्य' इति किङ्कतोयं विभागः ?
समवायौदेश्च निषे(तस्य)र्मानत्वान्नियामकत्वायोगः । तद्वान्वय-
मात्रेण सुखादीनामात्मकार्यत्वम् । तदभावेऽभावात्तच्चेन्न; नित्य-^{१०} ११ १२ १३ १४
व्यापित्वान्यां तस्याभावासम्भवात् । तत्र समवायादित्यप्यसत्;
तस्यात्रैवं निराकरिष्यमाणत्वात्, सैर्धर्माविशेषोच्च; तेनै^{१५} तेषां
तत्रैव^{१६} समवायासम्भवात् ।

तदाद्येयत्वाच्चेत्किमिदं तदाद्येयत्वं नाम तत्रै^{१७} समवायः, तौदात्म्यं १०
वा, तत्रोत्कलितत्वमात्रं वा ? न तावत्समवायः, दत्तोत्तरत्वात् ।
नापि तादात्म्यम्; मतान्तरेणुपपन्नात् । तेषामात्मनोऽत्यन्तभेदे
सकलात्मनां गगनादीनां च व्यापित्वे 'तत्रैवोत्कलितत्वम्' इत्यपि
श्रद्धामात्रगम्यम् । अथाऽहैष्टान्नियमः 'यच्चात्मीयाऽहृष्टनिष्पाद्यं
सुखं तदात्मीयमन्ये^{१८} तु परकीयम्' इत्यप्यसारम्; अहृष्टस्याप्या- १५
त्मीयत्वासिद्धेः । समवायादेस्तन्नियामकत्वेऽप्युक्तदोषानुपपन्नः । यत्र
यदहृष्टं सुखं दुःखं चोत्पादयति तत्तत्सत्येपि मनोरथमात्रम्, पर-
स्परश्रयानुपपन्नात्-अहृष्टनियमे सुखादेर्नियमः, तन्नियमाच्चाहृष्ट-
स्येति । 'यस्य श्रद्धयोर्पेर्गृहीतानि ब्रह्मशुणकमाणि यदहृष्टं जनयन्ति
तत्तस्य' इत्यपि श्रद्धामात्रम्, तस्या अप्यात्मनोऽत्यन्तभेदे प्रतिनि-
यमासिद्धेः । 'यस्याहृष्टेनासौ जन्यते सा तस्य' इत्यप्यन्योन्याश्र-
याद्युक्तम् । 'ब्रह्मादौ यस्य दर्शनस्वरणोदीनी श्रद्धामाविर्भा-

- १ सुखादि । २ कृपाद । ३ आत्मनः सकाशात्सुखादिकं सर्वथा मित्रं ।
४ सुखादि । ५ देवदत्तस्य । ६ केन कृतः । ७ देवदत्तात्मनि सामर्थ्यस्य ।
८ अग्रे । ९ तस्मिन् सति भावात् । १० देवदत्तात्म । ११ सुखादीनां ।
१२ व्यतिरेक । १३ सुखादि । १४ देवदत्तसुखादीनाम् । १५ देवदत्तात्मनः ।
१६ आत्मनः । १७ देवदत्तात्मनि । १८ अन्ये । १९ खादावयं । २० समवायस्य ।
२१ कारणेन । २२ सुखादीनां । २३ देवदत्तात्मन्येव । २४ (सम्बन्ध) ।
२५ देवदत्तात्म । २६ खादा । २७ वसः । २८ देवदत्तात्म । २९ देवदत्तात्मनि ।
३० सुखादीनां । ३१ देवदत्तात्मना सह । ३२ देवदत्तात्मनि । ३३ आविर्भूतत्वं ।
३४ जनैः । ३५ अन्यथा । ३६ जैनमत । ३७ दिक्काण्डि । ३८ देव-
दत्तात्मनि । ३९ पुण्यादि । ४० सुखादय आत्मीया आत्मीयाहृष्टनिष्पाद्यत्वात् ।
४१ पुनः । ४२ आत्मनि । ४३ आत्मनः । ४४ असेदमदृष्टमिति । ४५ आत्मनः ।
४६ निश्वासेन । ४७ स्वीकृतानि । ४८ श्रद्धा असेति । ४९ श्रद्धाया नियमे
अदृष्टनियमस्त्वसिद्धिः । ५० आत्मनः । ५१ प्रत्यक्ष । ५२ प्रत्यभिज्ञान ।

वयन्ति तस्य सा' इत्यप्युक्तिमात्रम्, दर्शनादीनामपि प्रतिनिय-
मासिद्धेः । समवायात्तेषां अद्वायाश्च प्रतिनियमः इत्यप्यसमीक्षि-
ताभिधानम्, तस्य षट्पदार्थपरीक्षायां निराकरिष्यमाणत्वात् ।

एतेनैतदपि प्रत्याख्यातम् 'ज्ञानं ज्ञानान्तरवेद्यं प्रमेयत्वात्पटा-
५ दिघत्,' सुखसंवेदनेन हेतोर्व्यभिचारात्महेत्त्वश्चानेन च, तस्य
ज्ञानान्तरावेद्यत्वेपि प्रमेयत्वात् । तस्यापि ज्ञानान्तरप्रत्यक्षत्वेऽन-

१ दर्शनादीनाम् । २ सुखदुःखादेः स्वसंविदितत्वसमर्थनपरेण अन्वेन । ३ यौक्-
मतमपि (तदेव यौगमत्तं दर्शयति ज्ञानमित्यादिना) । ४ सुखसंवेदनं ज्ञानं भवति
न तु ज्ञानान्तरवेद्यं । ५ आ ।

१ "नासाधना प्रमाणसिद्धिर्नापि प्रलक्षादिव्यतिरिक्तप्रमाणाभ्युपगमो... नापि च
तदेव व्यक्त्या तस्या एव ग्रहणसुवेद्यते येनात्मनि वृत्तिविरोधो भवेत्, अपि तु
प्रलक्षादिजातीयेन प्रलक्षादिजातीयस्य ग्रहणमातिष्ठामहे । न चानवस्था, अस्ति
किञ्चिद् प्रमाणं यः स्वज्ञानेन अन्यवीहेतुः यथा धूमादि, किञ्चित्पुनरत्रातमेव बुद्धिसा-
धनं यथा चक्षुरादि, तत्र पूर्वं स्वज्ञाने चक्षुराद्यपेक्षम्, चक्षुरादि तु ज्ञानानपेक्षमेव
ज्ञानसाधनमिति कानवस्था ! नुमुत्सवा च तदपि अक्षयज्ञानं सा कदाचिदेव कञ्चिदिति
नानवस्था ।" न्यायबा० ता० टी० पृ० १७० ।

"विवादाध्यासिताः प्रलयान्तरेणैव वेद्याः प्रलयत्वात्, ये ये प्रलयात्ते सर्वे प्रल-
यान्तरवेद्याः यथा न प्रलयान्तरेणैव वेद्याः (१) अनिघमानस्वावभासेऽतिप्रसंगत्
ज्ञायमानस्वैवावभासोऽभ्युपेयः । तथा च विज्ञानस्य स्वसंवेदने तदेव तस्य कर्म किथा
चेति विरुद्धमापद्येत । यथोक्तम्—

अङ्गुक्ष्यग्रं यथात्मानं नात्मना स्पष्टमर्हति ।

स्वाद्येन ज्ञानमप्येवं चाल्मानं ज्ञातुमर्हति ॥ इति ।

यत् प्रलयत्वं वस्तुभूतमविरोधेन व्याप्तम्, तद्विरुद्धविरोधदर्शनात् स्वसंवेदनाभि-
वर्तमानं प्रलयान्तरवेद्यत्वेन व्याप्यते इति प्रतिबन्धसिद्धिः । एवं प्रमेयत्व-गुणत्वस-
त्त्वादयोऽपि प्रलयान्तरवेद्यत्वहेतवः प्रयोक्तव्याः । तथा च न स्वसंवेदनं विज्ञानमिति
सिद्धम् ।" निधिवि० न्यायकणि० पृ० २९७ ।

"तस्मात् ज्ञानान्तरसंवेद्यं संवेदनं वेद्यत्वात् षटादिषत् ।"

प्रश्न० व्यो० पृ० ५२९ ।

"अनवस्थाप्रसङ्गस्तु अवश्यवेद्यत्वानभ्युपगमेन निरसनीयः...विवादाध्यासितवेदनं
वेदान्तान्तरानोचरः वेदान्त्वात् पुरुषान्तरवेदानवत्..." प्रश्न० किरणवणी पृ० २८१ ।

२ "महेत्त्वश्चानेन हेतोर्व्यभिचारात्, तस्य ज्ञानान्तरावेद्यत्वेऽपि प्रमेयत्वात् ।"
प्रमाणप० पृ० ६६ । मुच्यन्नुक्ता० टी० पृ० १० । न्यायकुसु० पृ० १८१ ।

शा० रत्ना० पृ० २२२ ।

"मुक्तादिसंवेदनेन व्याभिचारी च" सम्प्रति० टी० पृ० ४७१ ।

वस्था-तस्यापि ज्ञानान्तरेण प्रत्यक्षत्वात् । ननु नानवस्था नित्य-
ज्ञानद्वयस्यैश्वरे सदा सम्भवात्, तत्रैकैतार्थजातस्य द्वितीयं
पुनस्तज्ज्ञानस्य प्रतीतेर्नापरज्ञानकल्पनया किञ्चित्प्रयोजनं तावत्तै-
वार्थसिद्धेरित्यप्यसमीचीनम् ; समानकाल्यावद्ब्रह्मभाविस्वजाती-
यगुणद्वयस्यान्यत्रानुपलब्धेरत्रापि तत्कल्पनाऽसम्भवात् । ५

संभवे वा तद्वितीयज्ञानं प्रत्यक्षम्, अप्रत्यक्षं वा? अप्रत्यक्षं
चेत्; कथं तेनाद्यज्ञानप्रत्यक्षतासम्भवः? अप्रत्यक्षादप्यतस्तत्स-
म्भवे प्रथमज्ञानस्याऽप्रत्यक्षत्वेऽप्यर्थप्रत्यक्षतास्तु । प्रत्यक्षं चेत्;
स्वतः, ज्ञानान्तराद्वा? स्वतश्चेदाद्यस्यापि स्वतः प्रत्यक्षत्वमस्तु ।
ज्ञानान्तराश्चेत्सैवानवस्था । आद्यज्ञानाश्चेदन्योन्याभ्रयः-सिद्धे ह्याद्य-१०
ज्ञानस्य प्रत्यक्षत्वे ततो द्वितीयस्य प्रत्यक्षतासिद्धिः, तत्सिद्धौ
चाद्यस्येति ।

किञ्च, अनयोर्ज्ञानयोर्महेश्वराद्भेदे कथं तदीयत्वसिद्धिः सम-
वायादेरेषे दत्तोत्तरत्वात्? तदाधेयत्वात्तत्त्वेऽप्युक्तम् । तदाधेयत्वं
च तत्रैव समवेतैवम्, तच्च केन प्रतीयते? न तावदीश्वरेण, १५

१ द्वयोर्ज्ञानयोर्मध्ये । २ आद्येन । ३ समुत्सवः । ४ प्रयोजनम् । ५ कथमन-
वस्था । ६ गुणद्वयानुपलब्धेरित्युक्ते यात्रुलिङ्गे रूपरसाम्नां व्यभिचारस्य तदुपलब्धेरतः
स्वजातीयत्वकं तथापि क्रमेणात्मनि सुखा[सुखा]ख्यगुणद्वयस्योपलब्धेरतः समानकालेत्सुकं
तथापि नानापुरुषैश्चार्थमाणशब्दानां समानकालस्वजातीयगुणत्वेन आकाशे उपलब्धेरतो
वामद्रव्यमानीत्युक्तं न चाकाशस्थितिपर्यन्तं शब्दानामनवस्थानं तेषामनित्यत्वेनोपगमात्
त्रिसुणस्यामित्वाच्च । ७ यान्द्रव्यं तावद्भावीति । ८ आत्मवटादौ । ९ ईश्वरो वीत-
गुणद्वयाधारो न भवति द्रव्यत्वात्पटवत् । १० तन्मतप्रक्रियापेक्षया । ११ ईश्वरस्य ।
१२ प्रथममेव । १३ ईप् । १४ तदाधेयत्वं समवायः तावात्म्यं तत्रोत्कलितत्वमित्यादौ
दृश्यम् । १५ किञ्च । १६ ईश्वरे । १७ ईश्वरे समवेतं (समवायेन सम्बद्धं) ज्ञानद्वयं ।

१ "समानकाल्यावद्ब्रह्मभाविस्वजातीयगुणद्वयस्यान्यत्रानुपलब्धेरित्युक्तं तत्क-
ल्पनाया असंभवः । तथाच प्रयोगः-ईश्वरः समानकाल्यावद्ब्रह्मभाविस्वजातीय-
गुणद्वयसाधारो न भवति द्रव्यत्वात्...वटवत् ।" सा० रत्ना० पृ० २२८ ।

२ "तदप्यर्थज्ञानमीश्वरस्य प्रत्यक्षमप्रत्यक्षं वा? यदि प्रत्यक्षम्; तदा स्वतो
ज्ञानान्तराद्वा? स्वतश्चेत्; प्रथममप्यर्थज्ञानं स्वतः प्रत्यक्षमस्तु किं विश्वान्तरेण? यदि
तु ज्ञानान्तरात्प्रत्यक्षं तदधीभ्यते, तदा तदपि ज्ञानान्तर किमीश्वरस्य प्रत्यक्षमप्रत्यक्षं
वेति स पक्ष पर्यनुयोगोऽनवस्थानं च दुःशक्यं परिहर्तुम् ।" प्रमाणप० पृ० ६०

३ "किंचानयोर्ज्ञानयोः पिनाकपाणेः सर्वथा भेदे कथं तदीयत्वसिद्धिः?"

सा० रत्ना० पृ० २२८ ।

तेनात्मनो ज्ञानद्वयस्य चाग्रहणे 'अत्रेदं समवेतम्' इति प्रतीत्य-
योगात् । तस्य तत्र समवेतत्वमेव तद्ग्रहणमित्यपि नोत्तरम् ;
अन्योन्याश्रयात्-सिद्धे हि 'इदमत्र' इति ग्रहणे तत्र समवेतत्व-
सिद्धिः, तस्याश्च तद्ग्रहणसिद्धिः । यथात्मीयज्ञानमात्मन्यपि स्थितं
५ न जानाति सोर्यजातं जानातीति कश्चेतनः श्रद्धहीनः ? नापि ज्ञानेन
'स्थाणावैहं समवेतम्' इति प्रतीयते; तेनाप्यार्धारस्यात्मनश्चा-
ग्रहणात् । न च तद्ग्रहणे 'ममेदं रूपमत्र स्थितम्' इति सम्भवः ।

अस्तु वा समवेतत्वप्रतीतिः, तथापि-स्वैज्ञानस्याप्रत्यक्षत्वा-
त्सर्वज्ञत्वेविरोधः । तदप्रत्यक्षत्वे चानेनाशेषार्थस्याप्यध्यक्षता-
१० विरोधः । कथमन्यथात्मान्तरज्ञानेनाप्यर्थसाक्षात्करणं न स्यात् ?
तथा चेश्वरानीश्वरविभागाभावः-स्वयमप्रत्यक्षेणापीश्वरज्ञानेना-
शेषविषयेणाशेषस्य प्राणिनोऽशेषार्थसाक्षात्करणप्रसङ्गात् । तत-
स्तद्विभागमिच्छता महेश्वरज्ञानं स्वतः प्रत्यक्षमभ्युपैगन्तव्यमित्य-
नेनानेकान्तैः सिद्धः ।

१५ अथासंदादिज्ञानापेक्षया ज्ञानस्य ज्ञानान्तरवेद्यत्वं प्रमेयत्वहे-
तुना साध्यतेऽतो नेश्वरज्ञानेनानेकान्तोऽस्यासंदादिज्ञानाद्विशि-

१ ज्ञानविकल्पो गृह्णाति ज्ञानसहितो वा । ज्ञानविकलक्षेपे ज्ञानद्वयकल्पनानाशय-
मात्मैवावैज्ञानस्य आहकोस्तु । ज्ञानसहितक्षेपे । तदपि ज्ञानमात्मनि समवेतमिति कुतो
जानाति आत्मैव ज्ञानं वेत्यादिविचारः । २ अत्रेदं । ३ किञ्च । ४ ज्ञानवान् ।
५ ज्ञानद्वयेन प्रतीयते । ६ ईशे । ७ ज्ञानाद्रेदे सत्यासाणुसदृश इत्यर्थः । ८ ईश्वरस्य ।
९ ज्ञानरूपस्य । १० स्वसिन् । ११ ज्ञानस्य स्वसविदितत्वात् । १२ सप्रक्रिया-
माश्रेण । १३ आत्मान्तरज्ञानेनाप्यर्थसाक्षात्करणं भवत्विति चेत् । १४ ईश्वरज्ञानस्य ।
१५ महेश्वरस्य । १६ किञ्च । १७ स्वस्य संसारिज्ञानेनापीति अप्या (वा)ः ।
१८ ईश्वर । १९ वसः । २० परेण । २१ यौनेन । २२ हेतोरीश्वरज्ञाने
व्यभिचारः । २३ परेण मया ।

१ "यदि पुनरप्रत्यक्षनेवेश्वरार्थज्ञानज्ञानं तदेश्वरस्य सर्वज्ञत्वविरोधः स्वज्ञानस्य-
प्रत्यक्षत्वात् । तदप्रत्यक्षत्वे च प्रथमार्थज्ञानमपि न तेन प्रत्यक्षन्, स्वयमप्रत्यक्षेण
ज्ञानान्तरेण तस्यावैज्ञानस्य साक्षात्करणविरोधात् । कथमन्यथा आत्मान्तरज्ञानेनापि
कस्यचिद् साक्षात्करणं न स्यात् । तथा चानीश्वरस्यापि सकलस्य प्राणिनः स्वयमप्रत्यक्षे-
णापि ईश्वरज्ञानेन सर्वविषयेण सर्वार्थसाक्षात्करणं संगच्छेत् ततः सर्वस्य सर्वार्थवेदि-
त्वसिद्धेः ईश्वरानीश्वरविभागाभावो न्यते ।" प्रमाणप० पृ० ६० ।

२ "स्वान्तर्तिरेषा ते बुष्माकमसदादिज्ञानापेक्षया अवैज्ञानस्य ज्ञानान्तरवेद्यत्वं
अमेयत्वहेतुना साध्यते ततो नेश्वरज्ञानेन व्यभिचारः, तस्यासंदादिज्ञानाद्विशिष्टत्वात् ।

दृत्वात्, न खलु विशिष्टे दृष्टं धर्ममविशिष्टेऽपि योजयन् प्रेक्षावर्त्ता
 लभते निखिलार्थवेदित्वस्याप्यखिलज्ञानानां तद्वत्प्रसङ्गात् । इत्य-
 प्यसमीचीनम्; स्वभावावलम्बनात् । स्वपरप्रकाशात्मकत्वं हि
 ज्ञानसामान्यस्वभावो न पुनर्विशिष्टविज्ञानस्यैव धर्मः । तत्र तस्योप-
 लम्भमात्रात्तद्धर्मत्वे भानौ स्वपरप्रकाशात्मकत्वोपलम्भात् प्रदीपे^५
 तत्प्रतिषेधप्रसङ्गः । तत्स्वभावत्वे तद्वत्तेषां निखिलार्थवेदित्वानु-
 पङ्गश्चेत्; तर्हि प्रदीपस्य स्वपरप्रकाशात्मकत्वे भानुवन्निखिला-
 र्थोद्योतकत्वानुपङ्गः किन्न स्यात् ? योग्यतावशात्तदात्मकत्वावि-
 शेपेऽपि प्रदीपादेर्निर्यतायोद्योतकत्वं ज्ञानेऽपि समानम् । ततो ज्ञानं
 स्वपरप्रकाशात्मकं ज्ञानत्वान्महेश्वरज्ञानवत्, अव्यवधानेनैर्यप्र-^{१०}
 काशकत्वाद्वा, अर्थग्रहणोत्पत्तत्वाद्वा तद्वदेव, यत्पुनः स्वपरप्र-
 काशात्मकं न भवति न तद् ज्ञानम् अव्यवधानेनार्थप्रकाशकम्
 अर्थग्रहणात्मकं वा, यथा चक्षुरादि ।

आश्रयसिद्धिश्च 'प्रमेयत्वात्' इत्ययं हेतुः, धर्मिणो ज्ञानस्या-
 सिद्धेः । तत्सिद्धिः खलु प्रत्यक्षतः, अनुमानतो वा प्रमाणान्तरस्या-^{१५}
 त्त्रानधिकारात् ? तत्र न तावत्प्रत्यक्षतः; तस्येन्द्रियार्थसन्निकर्ष-
 जत्वाभ्युपगमात्, तज्ज्ञानेन चक्षुरादीन्द्रियस्य सन्निकर्षाभावात् ।
 अन्येन्द्रियं तेन चास्य सन्निकर्षो वैच्यः । मनोन्तःकरणम्, तेन
 चास्य संयुक्तसमवायः सम्बन्धः, तत्प्रभवं चाध्यक्षं धर्मिस्वरूप-
 ग्राहकम्-मनो हि संयुक्तमात्मना तत्रैव समवायस्तज्ज्ञानस्येति;^{२०}
 तदयुक्तम्; मनसोऽसिद्धेः । अथ 'घटादिज्ञानज्ञानम् इन्द्रियार्थ-

१ स्वपरप्रकाशात्मकत्वं स्वविदितत्वं । २ असदादिज्ञाने । ३ अन्यथा ।
 ४ निखिल ज्ञानमदिकार्यवेदि ज्ञानत्वादीश्वरज्ञानवत् । ५ ता । ६ महेश्वरज्ञाने शम्भौ
 च । ७ स्वप्रक्रियामात्रात् । ८ रवौ । ९ ईश्वरज्ञानवत् । १० असदादिज्ञानानां ।
 ११ शक्तिः । १२ कतिपय । १३ चक्षुरादिना व्यभिचारः । १४ भिन्नविशेषणं ।
 १५ परिच्छिन्ति । १६ अभिन्नविशेषणं । १७ वसः । १८ किञ्च । १९ घटादि-
 ज्ञानस्य । २० परेण । २१ चक्षुरादिपञ्चम्यः । २२ परेण । २३ इन्द्रियं ।
 २४ मनः । २५ घटादिज्ञान ।

न हि निश्चिते दृष्टं धर्ममविशिष्टेऽपि षट्पन् प्रेक्षावत्ता लभते इति; सापि न परीक्षा-
 सद्वा, ज्ञानान्तरस्यापि प्रज्ञानेन वेद्यत्वे अनवस्थानुपगमात् ।" प्रमाणप० पृ० ६० ।

न्यायकुसु० पृ० १८३ । सा० रत्ना० पृ० १२२ ।

1 "अत्र प्रयोगे हेतुराश्रयासिद्धिः स्वरूपासिद्धिश्च धर्मिणो ज्ञानस्याप्रतिपत्तौ तदा-
 भित्तवेत्यवधार्मासिपत्तेः ।" तत्प्रसिद्धिः अध्वक्षतोऽनुमानतो वा प्रमाणान्तरस्या-
 त्रानधिकारात् ।" सन्मति० टी० पृ० ४७५ ।

सन्निकर्षजं प्रत्यक्षत्वे सति ज्ञानत्वात् चक्षुरादिप्रभवरूपादिज्ञानवत् इत्यनुमानात्तत्सिद्धिरित्यभिधीयते, तदप्यभिधानमात्रम्; हेतोरप्रसिद्धविशेषणत्वात् । न हि घटादिज्ञानज्ञानस्याध्यक्षत्वं सिद्धम्, इतरेतराश्रयानुषङ्गात्-मनःसिद्धौ हि तस्याध्यक्षत्व-
 ५ सिद्धिः, तत्सिद्धौ च सविशेषणहेतुसिद्धेर्मनःसिद्धिरिति । विशेष्या-
 सिद्धत्वं च; न खलु घटज्ञानाद्भिन्नमन्यज्ज्ञानं तैर्ब्राह्मकमनुभूयते ।
 सुखादिसंवेदनेन व्यभिचारश्च; तद्धि प्रत्यक्षत्वे सति ज्ञानं न
 तज्जन्यमिति । अस्यापि पक्षीकरणान्न दोष इत्ययुक्तम्; व्यभि-
 चारविषयस्य पक्षीकरणे न कश्चिद्धेतुर्व्यभिचारी स्यात् । 'अनित्यः
 १० शब्दः प्रमेयत्वाद् घटवत्' इत्यादेरप्यात्मादिना न व्यभिचारस्तस्य
 पक्षीकृतत्वात् । प्रत्यक्षादिवाधोभयत्र समाना । न हि 'घटादि-
 वत्सुखाद्यविदितस्वरूपं पूर्वमुत्पन्नं पुनरिन्द्रियेण सम्बध्यते ततो
 ज्ञानं ग्रहणं च' इति लोके प्रतीतिः, प्रथममेवेष्टानिष्टविषयानु-
 भवानन्तरं स्वप्रकाशात्मनोऽसौदयप्रतीतिः ।

१५ स्वात्मनि किर्याविरोधान्मिथ्येयं प्रतीतिः, न हि सुतीक्ष्णोऽपि
 खड्ग आत्मानं छिनत्ति, सुशिक्षितोपि वा नटबट्टः स्वं स्कन्धमा-
 रोहतीत्यप्यसमीचीनम्; स्वात्मन्येव क्रियायाः प्रतीतिः । स्वात्मा
 हि किर्यायाः स्वरूपम्, किर्यावदात्मा वा ? यदि स्वरूपम्, कथं
 तस्यास्तत्र विरोधः स्वरूपस्याविरोधकत्वात्? अन्यथा सर्वभार्वानां

१ अनुमानज्ञानेन व्यभिचारस्वत्परिहारार्थं प्रत्यक्षत्वे सति ग्रहणम् । २ अन्यथा ।
 ३ हेतोः । ४ घटज्ञान । ५ इन्द्रियार्थसन्निकर्षजं न भवति । ६ प्रमेयेन ।
 ७ आत्मनोऽनित्यत्वे सुखादिसंवेदनस्येन्द्रियार्थसन्निकर्षजनत्वे च । ८ पश्चात् । ९ मानसं
 करणरूपम् । १० सुखादिसंवेदनस्य । ११ प्रकाशलक्षणायाः । १२ ता ।
 १३ आत्मार्थवाचकत्वशब्दपक्षे । १४ आत्मार्थवाचकत्वशब्दपक्षे । १५ विरोध-
 कत्वे । १६ घटादि ।

१ "न; अस्य हेतोःप्रसिद्धविशेषणत्वात्, नहि घटादिज्ञानज्ञानस्य अध्यक्षत्वं सिद्धम्
 इतरेतराश्रयत्वात् ।" सम्मति० टी० पृ० ४७६

२ "सुखसंवेदनेन व्यभिचारी च; तथाहि-तत्संवेदनमध्यक्षत्वे सति ज्ञानं न च
 तज्जन्यमिति व्यभिचारः । अथास्यापि पक्षीकरणाददोषः, तथाहि-सुखादिसंवेदनमि-
 न्द्रियार्थसन्निकर्षजम् अध्यक्षज्ञानत्वात् चक्षुरादिप्रभवरूपादिवेदनवत्, सुखादिर्वा भिन्न-
 ज्ञानवेद्यः वेद्यत्वाद् घटवत् ।" सम्मति० टी० पृ० ४७६

३ "स्वात्मनि वृत्तिविरोधात्, नहि तदेव अंगुल्यग्रं तेनैव अंगुल्यग्रेण स्पृश्यते,
 सैवात्सिचारा तथैवात्सिचाराया छिद्यते ।" सुट्टार्थ-अभिप० पृ० ७८

४ "स्वात्मा हि क्रियायाः स्वरूपं क्रियावदात्मा वा ?" आश्रय० पृ० ४७ । व्याप-
 क्तु० पृ० १८८ । स्वा० रत्ना० पृ० २२९ ।

स्वरूपे विरोधान्निस्स्वरूपत्वानुपपन्नः । विरोधस्य द्विष्टत्वाच्च न क्रियायाः स्वात्मनि विरोधः । क्रियावदात्मा तस्याः स्वात्मा इत्यप्यसङ्गतम्, क्रियावत्येव तस्याः प्रतीतेस्तत्र तद्विरोधासिद्धेः^५ अन्यथा सर्वक्रियाणां निराश्रयत्वं सकलद्रव्याणां चाऽक्रियत्वं स्यात् । न चैवम्, कर्मस्थायीस्तस्याः कर्मणि कर्तृस्थायीश्च कर्तरि^६ प्रतीयमानत्वात् । किञ्च, तैत्रोत्पत्तिलक्षणा क्रिया विरुद्ध्यते, परिस्पन्द्वात्मिका, धात्वर्थरूपा, शक्तिरूपा वा ? यद्युत्पत्तिलक्षणा, सा विरुद्ध्यताम् । नखलु 'ज्ञानमात्मानमुत्पादयति' इत्यभ्युपगमात् । नापि परिस्पन्दात्मिकासौ तत्र विरुद्ध्यते, तस्याः द्रव्यवृत्तित्वेन ज्ञाने सत्त्वसैवास-१० म्भवात् । अथ धात्वर्थरूपा; सा न विरुद्धा 'भवति तिष्ठति' इत्यादिक्रियाणां क्रियावत्येव सर्वदोषलब्धेः । शक्तिरूपक्रियायांस्तु विरोधो दूरोत्सारित एव; स्वरूपेण कस्यचिद्विरोधासिद्धेः, अन्यथा प्रदीपस्यापि स्वप्रकाशनविरोधस्तद्धि स्वकारणकलापात्स्व-परप्रकाशात्मकमेवोपजायते प्रदीपवत् ।^{१५}

ज्ञानक्रियायाः कर्मतया स्वात्मनि विरोधस्ततोऽर्थत्रैव कर्मत्व-दर्शनादित्यप्यसमीक्षिताभिधानम्; प्रदीपस्यापि स्वप्रकाशनविरो-धानुपपन्नात् । यदि चैकत्र दृष्टो धर्मः सर्वत्राभ्युपगम्यते, तर्हि घटे प्रभास्वरौष्यादिधर्मानुपलब्धेः प्रदीपेऽप्यस्याभावप्रसङ्गः, रथ्यापुरुषे वाऽसर्वज्ञत्वदर्शानान्महेश्वरेऽप्यसर्वज्ञत्वानुपपन्नः । अत्र २० वस्तुवैचित्र्यसम्भवे ज्ञानेन किमपरान्दं येर्नोर्ज्ञौ नेर्नते ?

किञ्च ज्ञानान्तरापेक्षया तत्रैव कर्मत्वविरोधः, स्वरूपापेक्षया वा ?

१ जमाव । २ अर्थ । ३ स्वरूप । ४ ओदनं पचति देवदत्तः । ५ न विरोधः । ६ धामं गच्छति देवदत्तः । ७ ज्ञाने । ८ भवता परेण । ९ परेण । १० वयं जैनाः । ११ स्वात्मनि । १२ देवदत्तादी । १३ जानाति । १४ स्वात्मनि । १५ अर्थस्य । १६ अस्मादादिज्ञान । १७ कुतः । १८ घटादी । १९ किञ्च । २० स्वच्छिदिक्रिया प्रति कर्मत्वविरोधलक्षणः । २१ खट्वादी । २२ ज्ञाने । २३ आस्वरौष्यसर्वज्ञत्वलक्षण । २४ केन । २५ स्वरूपप्रकाशरूपो वैचित्र्यसम्भवः । २६ परेण । २७ ज्ञानक्रियायां ।

१ "का पुनः स्वात्मनि क्रिया विरुद्धा परिस्पन्दरूपा धात्वर्थरूपा वा ? तत्साध-को० पृ० ५२ । त्या० रत्ना० पृ० २२८ । "का पुनः स्वात्मनि क्रिया विरुद्ध्यते शक्ति-रूपचिर्वा ?" भाष्य० पृ० ५७ । स्याद्दार्ढ्यं० पृ० ९३ । "उत्पत्तिरूपा, परिस्पन्दा-त्मिका, धात्वर्थस्वभावा, शक्तिलक्षणा वा ?" न्यायकुमु० पृ० १८७ ।

२ "किञ्च, ज्ञानान्तरापेक्षया तत्र कर्मत्वविरोधः स्वरूपापेक्षया वा ?" न्यायकुमु० पृ० १८८ ।

प्रथमपक्षे-महेश्वरस्यासर्वज्ञत्वप्रसङ्गस्तज्ज्ञानेन तस्याऽवेद्यत्वात् ।
आत्मसमवेतानन्तरज्ञानवेद्यत्वाभावे च

“स्वसमवेतानन्तरज्ञानवेद्यमर्थज्ञानम्” [] इति ग्रन्थ-
विरोधो मीमांसैकमतेऽप्रवेशश्च स्यात् । ज्ञानान्तरापेक्षया तस्य
५ कर्मत्वाविरोधे च-स्वरूपापेक्षयाप्यविरोधोऽस्तु सहस्रकिरणव-
त्स्वपरोद्योतनस्वभावत्वात्तस्य । कर्मत्ववर्धं ज्ञानक्रियातोऽर्थान्तर-
स्यैव करणत्वदर्शनात्तस्यापि तत्र विरोधोऽस्तु विशेषभावात् ।
तथा च “ज्ञानेनाहमर्थं जानामि” इत्यत्र ज्ञानस्य करणतया प्रती-
तिर्न स्यात् ।

१० विशेषणज्ञानस्य करणत्वाद्विशेष्यज्ञानस्य तत्फलत्वेन क्रिया-
त्वात्तयोर्भेद एवेत्यपि श्रद्धामात्रम् ; “विशेषणज्ञानेन विशेष्यमहं
जानामि” इति प्रतीत्यभावात् । “विशेषणज्ञानेन हि विशेष्यं
विशेष्यज्ञानेन च विशेष्यं जानामि” इत्यखिलजनोंऽनुमन्यते ।

किञ्च, अैनयोर्विषयो भिन्नः, अभिन्नो वा । प्रथमपक्षे-विशेषणवि-
१५ शेष्यज्ञानद्वयपरिकल्पना व्यर्थाऽर्थभेदाभावाद्द्वारावाहिविज्ञानवत् ।
द्वितीयपक्षे चैनयोः प्रमाणफलव्यवस्थाविरोधोऽर्थान्तरविषय-
त्वाद् घटपटज्ञानवत् । न खलु घटज्ञानस्य पटज्ञानं फलम् । न
चान्यत्र व्यौपृते विशेषणज्ञाने ततोऽर्थान्तरे विशेष्ये परिच्छिन्ति-
युक्ता । न हि खदिरादाबुत्पतननिय(प)तनव्यापारवति पेशौ
२० ततोऽन्यत्र धवादौ छिदिक्रियोत्पद्यते इत्येतत्प्रातीतिकम् । लिङ्ग-

१ असदादिज्ञानस्य । २ प्रथमज्ञान । ३ द्वितीयज्ञानेन । ४ किञ्च । ५ योगस्य ।
६ करणज्ञानं न प्रत्यक्षं कर्मत्वेनाप्रतीयमानत्वात् । ७ ज्ञानान्तरेणाप्यप्रत्यक्षत्वात् ।
८ स्वरूपापेक्षया कर्मत्वविरोधं ब्रूमः । ज्ञानान्तरापेक्षया किं कर्मत्वविरोधोक्तिः ।
९ परेणाङ्गीकृते । १० किञ्च । ११ कुठारादेः । १२ ज्ञानाङ्गित्वस्य करणत्वसा-
विशेषात्कर्मत्ववत् । १३ ज्ञानकरणत्वविरोधे सति । १४ करणज्ञानेन । १५ पक्षे ।
१६ लोके । १७ करणज्ञानक्रियाज्ञानयोः । १८ नीलादिज्ञानेन दण्डादिज्ञानेन
वा । १९ जानामि । २० उत्पलदिकं दण्डीत्यादिकं । २१ ता । २२ विशेषण-
ज्ञानविशेष्यज्ञानयोः । २३ विशेषणज्ञानविशेष्यज्ञानयोः । २४ भिन्नविषयत्वात् ।
२५ किञ्च । २६ नीलादौ विशेषणे । २७ सति । २८ उत्पलदौ । २९ ज्ञानं ।
३० कर्म । ३१ सति । ३२ धूमादिज्ञानस्य ।

“प्रमाणफलते बुधोर्विशेषणविशेष्योः ।

यदा तदापि पूर्वोक्ताऽभिधार्थत्वनिराक्रिया ॥” मीमांसायो० पृ० १५६ ।

१ “विशेषणज्ञानं करणं विशेष्यज्ञानं तत्फलत्वात् ज्ञानक्रियेति चेदः स्यादेवं यदि
विशेषणज्ञानेन विशेष्यं जानामीति प्रतीतिरुत्पद्यते ।” स्या० रत्ना० पृ० २२८ ।

ज्ञानस्यानुमानज्ञाने व्यापारदर्शनावत्रौप्यविरोधं इत्यप्यसम्भाव्यं तद्वत्क्रमभावेनात्र ज्ञानद्वयानुपलब्धेः, एकमेव हि तैयोर्ग्रहकं ज्ञान-
मनुभूयते । न चात्र विषयभेदाज्ज्ञानभेदकल्पना; समानेन्द्रिय-
ग्राह्ये योग्यदेशावस्थितेयं घटपटादिवदेकस्यापि ज्ञानस्य व्यापार-
विरोधात् । न च घटादावपि ज्ञानभेदः समानशुणानां युगपद्भा-
वानभ्युपगमात् । क्रमभावे च प्रतीतिविरोधः सर्वज्ञाभावश्च ।
युगपद्भावाभ्युपगमे चानयोः सत्येतरगोविषाणवत्कार्यकारणभा-
वाभावः । विशेषणविशेष्यज्ञानयोः क्रमभावेऽप्याशुवृत्त्या यौगप-
द्याभिमानो यथोत्पलपत्रशतच्छेद इत्यप्यसङ्गतम्; निखिलभा-
वानां क्षणिकत्वप्रसङ्गात्सर्वत्रैकैकत्वाभ्यवसायस्याशुवृत्तिप्रवृत्त-
त्वात् । प्रत्यक्षप्रतिपन्नस्यैव दृष्टान्तमात्रेण निषेधविरोधोऽपि,
अन्यथा शुक्ले शङ्खे पीतविभ्रमदर्शनात्सुवर्णेपि तद्विभ्रमः स्यात् ।
मूर्त्तस्य सूच्यग्रस्यौत्तरार्धस्थितमुत्पलपत्रशतं युगपत्प्राप्तुमशक्तेः
क्रमच्छेदेऽप्याशुवृत्त्या यौगपद्याभिमानो युक्तः, पुंसस्तु स्वावरण-
क्षयोपशमापेक्षस्य युगपत्स्वपरप्रकाशनस्वभावस्य समग्रन्द्रियस्या-
प्राप्तार्थग्राहिणः स्वयममूर्त्तस्य युगपत्स्वविषयग्रहणे विरोधाभा-
वात् किञ्च युगपज्ज्ञानोत्पत्तिः ?

न च मनोपि सूच्यग्रवन्मूर्त्तमिन्द्रियाणि तूत्पलपत्रवत्परस्पर-
परिहारस्थितानि युगपत्प्राप्तुं न समर्थमिति वैच्यम्; तथाभूतस्या-
स्याऽसिद्धेः । युगपज्ज्ञानोत्पत्तिविभ्रमात्तत्सिद्धौ परस्परश्रयः— २०

१ अग्न्यादिज्ञाने । २ विशेष्यपरिच्छितौ । ३ विशेषणज्ञानव्यापारस्य । ४ लिङ्ग-
लिङ्गिज्ञानस्य । ५ नीलोत्पलयोर्विशेषणविशेष्ययोः । ६ एक । ७ अग्न्यादि ।
८ ज्ञानानां । ९ नैयामिकानामनभ्युपगमात् । १० परैः । ११ कृत्वा । १२ कल्पना ।
१३ कर्म । १४ घटपटादिपदार्थे । १५ एकोयमित्यवसायः । १६ विशेषण-
विशेष्यज्ञानवैरापद्यस्य । १७ किञ्च । १८ अविरोधे । १९ विशेषणविशेष्यरूप ।
२० कर्तुं । २१ कर्मरूपाणि । २२ परेण ।

1 “न चात्र विषयभेदाज्ज्ञानभेदकल्पनोपपत्तिमती; समानेन्द्रियग्राह्ये योग्यदेश-
ावस्थितेऽपि घटपटादिवदेकस्यापि ज्ञानस्य व्यापारविरोधात् ।” स्या० रत्ना० पृ० २३० ।

2 “मूर्त्तस्य सूच्यग्रस्यौत्तरार्धस्थितमुत्पलपत्रशतं युगपद व्याप्तुमशक्तेः क्रम-
भेदेऽप्याशुवृत्तेः यौगपद्याभिमान इति युक्तम्, आत्मनस्तु क्षयोपशमसव्यपेक्षस्य युग-
पद स्वपरप्रकाशनस्वभावस्य स्वयममूर्त्तस्याप्राप्तार्थग्राहिणो युगपद स्वविषयग्रहणे न
कथिद्विरोध इति किञ्च युगपज्ज्ञानोत्पत्तिः ।” सम्प्रति० टी० पृ० ४७८ ।

3 “नच मनोऽपि सूच्यग्रवन्मूर्त्तमिन्द्रियाणि तूत्पलपत्रवत् परस्परपरिहारस्थित-
स्वरूपाणि न युगपत्प्राप्तुं समर्थमिति न युगपज्ज्ञानोत्पत्तिः; तथाभूतस्य तस्यैवाऽ-
सिद्धेः ।”
सम्प्रति० टी० पृ० ४७८ ।

तद्विभ्रमसिद्धौ हि मनःसिद्धिः, ततस्तद्विभ्रमसिद्धिरिति । 'बन्धु-
रादिकं क्रमवत्कारणोपेक्षं कारणान्तरसाकल्ये सत्यनुत्पाद्योत्पा-
दकत्वाद्वासीकैर्योदिवत्' इत्यनुमानात्तत्सिद्धिरित्यपि मनोरथ-
भावम्; भवदभ्युपगतेन मनसैवानेकान्तात् । न हि तत्साकल्ये तत्
५ तथाभूतमपि क्रमवत्कारणान्तरापेक्षमनवस्थाप्रसङ्गात् । किञ्च,
अनुत्पाद्योत्पादकत्वं युगपत्, क्रमेण वा ? युगपच्छेद्विद्वेदो हेतुः,
तथोत्पादकत्वस्याक्रमिकारणाधीनत्वात् प्रसिद्धसहभाव्यनेककार्य-
कारिसौमग्रीवत् । क्रमेण चेदसिद्धः, कर्कटीभक्षणादौ युगपद्रूपा-
दिज्ञानोत्पादकत्वप्रतीतिः । आशुवृत्त्या विभ्रमकल्पनायां तैत्तम् ।
१० तन्न मनसः सिद्धिः ।

सिद्धौ वा न संयोगः, निर्देशयोरेकदेशेन संयोगे सांशतैवम् ।
सैवात्मनैकत्वम् उभयव्याघातकारि स्यात् । 'यत्र' संयुक्तं मेनस्तत्र

१ मनः । २ यद्यदुत्पादकं तत्तत्क्रमवत्कारणोपेक्षम् । ३ आलोकरूपादि ।
४ ज्ञान । ५ ता । ६ उत्पादकत्वादित्युच्यमाने नानाङ्करोत्पादकैर्नानावीचरेनेकान्तस्त्र-
यवच्छेदार्थमनुत्पाद्योत्पादकत्वादित्युक्तं तथापि वीचैरेवानेकान्तस्त्रयवच्छेदार्थं कारणान्त-
साकल्ये सतीत्युक्तम् । एकसाक्षरुरादिलक्षणात्कारणादपरमालोकरूपलक्षणं कारणान्तरं
कारणान्तरसाकल्ये सत्यनुत्पाद्योत्पादकं न भवति किन्तुत्पादकमेव धीनम् । ७ इन्द्रः
क्रमवत्कारणमत्र । ८ मनः । ९ पर । १० साधनस्य । ११ मनः । १२ अन्यथा ।
१३ क्रमसाध्ये अक्रममेव साधयेत् । १४ नित्यः शब्दः कृतकत्वात् । १५ अङ्क-
रादि । १६ धीगानि । १७ क्षित्युदकादिलक्षणा । १८ यथा धीजलक्षणा सामग्री
क्षित्युदकादिलक्षणाऽक्रमकारणाधीना । १९ चक्षुरादीनां । २० तद्विभ्रमसिद्धौ हि
मनःसिद्धिस्तद्विभ्रमसिद्धिरिति दूषणं । २१ स्वप्रक्रियामात्रेण । २२ आत्मना ।
२३ आत्ममनसोः । २४ षट्ते । २५ संयोगे । २६ अनौप्युपगम्य तत्र किञ्च ।
२७ आत्मनि । २८ समवायिनि ।

१ आत्मेन्द्रियार्थाः कारणान्तरापेक्षाः सङ्गापेक्षेऽपि अनुत्पाद्योत्पादकत्वात् । ये हि
सङ्गापेक्षेऽपि कार्यमनुत्पाद्य पश्चादुत्पादयन्ति ते सापेक्षाः यथा तन्त्वादयः अन्त्यसंयो-
गापेक्षा इति ।" प्रश्न० व्यो० पृ० ४२४ । प्रश्न० कन्द० पृ० १० ।

२ "किञ्च, अनुत्पाद्योत्पादकत्वमस्य क्रमेण, युगपद्वा विनश्चितम् ।"

न्यायकुसु० पृ० २७१ ।

३ "सिद्धौ वा न संयोगः, निर्देशयोरात्ममनसोरिकदेशेन संयोगे सांशतैवम् ।"

न्यायकुसु० पृ० २७२ ।

"नच निर्देशयोरात्ममनसोः संयोग संभवी, एकदेशेन तत्संयोगे सांशतमसत्तेऽ,
सर्वात्मना संयोगे उभयोरैकत्वमाप्तेः ।" सम्प्रति० टी० पृ० ४७६ ।

४ "यदिच यत्र मनः संयुक्तं तत्र समवेतं ज्ञानं समुत्पादयति तदा सर्वज्ञानं

संभवेते ज्ञानमुत्पादयति' इत्यभ्युपगमे चाखिलात्मसंभवेत-
सुखौदौ ज्ञानं जनयेत् तेषां नित्यव्यापित्वेन मनसा संयोगोऽ-
विशेषात् । तथा च प्रतिप्राणि भिन्नं मनोन्तरे व्यर्थम् । यस्य
रथमनस्तेत्तत्समवायिनि ज्ञानहेतुरित्यप्यसारम्, प्रतिनियतात्मि-
सम्बन्धित्वस्यैवात्रोत्सिद्धेः । तद्धि तत्कार्यत्वात्, तदुपक्रियमाण-
त्वात्, तत्संयोगात्, तददृष्टप्रेरितत्वात्, तदात्मप्रेरितत्वाद्वा
स्यात् ? न तावत्तत्कार्यत्वेन तत्सम्बन्धिता; नित्ये तदयोगात् ।
नाप्युपक्रियमाणत्वेन; अत्रोत्सिद्ध्याप्रहेयोतिशये तस्याप्यसम्भवात् ।
नापि संयोगात्; सर्वत्रैस्याविशेषात् । नापि 'यददृष्टप्रेरितं
प्रवर्तते निर्वर्तते वा तत्तस्य' इति बौद्ध्यम्; अचेतनस्यादृष्ट्या १०-
स्यानिदृष्टेशोदिपरिहारेणेदृष्टेशादौ तत्प्रेरणासम्भवात्, अन्यथे-
श्वरकल्पनावैफल्यम् । न चेश्वरस्यैदृष्टप्रेरणे व्यापारात्साफ-
ल्यम्, मनस एवासौ प्रेरकः कल्प्यताम् किं परम्परया ? तस्य

१ सुखादौ । परेण । २ मनः कर्तुं । ४ निखिलात्मनाम् । ५ एकस्यैव मनसः
सम्भवे सति । ६ मानसान्तर । ७ व्यर्थं भवतीत्युक्ते परः प्राह । ८ आत्मनः ।
९ कर्तुं । १० सुखादौ । ११ भवति । १२ जीव । १३ अस्यात्मन इदं मन इति ।
१४ मनसि । १५ मनो धर्मि प्रतिनियतात्मसम्बन्धि भवतीति साध्यम् । १६ प्रति-
नियतात्म । १७ मनसः । १८ मनसः । १९ मनसः । २० वा । २१ आ ।
२२ मनसः । २३ मनसः । २४ मनसः । २५ मनसः । २६ नित्यपरमाणुपरिमाणं
मन इति वचनात् । २७ आत्मना । २८ आरोपयितुमशक्यम् । २९ स्फोटयितुम-
शक्यम् । ३० अतिशये मनसि । ३१ आत्मस्य । ३२ ता । ३३ अनिदृष्टात् ।
३४ परेण । ३५ काल । ३६ मनः । ३७ विषये । ३८ परेण । ३९ महेश्वरेणा-
दृष्टं प्रवर्तते अदृष्टेन मन इति परम्परा तथा । ४० अदृष्टस्य ।

व्यापितया समानदेशत्वेन मनसस्यैः सञ्चकत्वात् सर्वात्मसंभवेतदुत्सिद्धादिषु तदेवैकं
ज्ञानमुत्पादयतीति प्रतिप्राणि भिन्नमनःपरिकल्पनमनर्थकमासज्येत ।"

सम्पत्ति० टी० पृ० ४७६ । न्यायकुसु० पृ० २७१ ।

१ "न हि तत्कार्यत्वेन तत्सम्बन्धिता, तस्य नित्यत्वान्युपगमात्, तत्र चानाद्ये-
वाप्रहेयातिशये तत्कार्यताऽयोगात् ।" सम्पत्ति० टी० पृ० ४७६ ।

२ "नापि संयोगात्, तस्यापि तत्रैकदेशेन सर्वात्मना वाऽयोगात् ।"

सम्पत्ति० टी० पृ० ४७६ । न्यायकुसु० पृ० २७१ ।

३ "नच यददृष्टप्रेरितं तत्प्रवर्तते तत्सम्बन्धीति वक्तव्यम्; अदृष्टस्य अचेतनत्वेन
प्रतिनियतविषय (ये) तत्प्रेरकत्वायोगात्, प्रेरकत्वे वा ईश्वरपरिकल्पनावैधर्म्यप्रसक्तैः"

सम्पत्ति० टी० पृ० ४७६ । न्यायकुसु० पृ० २७१ ।

सर्वसाधारणत्वाच्चातो न तन्नियमः । चाँदृष्टस्यापि प्रतिनियमः सिद्धः; तस्यात्मनोऽत्यन्तभेदात् समवायस्यापि सर्वत्राविशेषात् । 'येनात्मना यन्मनः प्रेर्यते तत्तस्य' इत्ययुक्तम्, अनुपलब्धस्य प्रेरणासम्भवात् ।

- ५ किञ्च, ईश्वरस्यापि स्वसंविदितज्ञानानभ्युपगमे 'सैदर्सद्द्वर्गः कस्यचिदेकज्ञानालम्बनोऽनेकत्वात्पञ्चाङ्गुलवत्' इत्यत्र पक्षीकृतैकदेशेन व्यभिचारः-तज्ज्ञानान्यैसदसद्द्वर्गयोरनेकत्वाविशेषेभ्येकज्ञानालम्बनत्वाभावादेकशाखाप्रभवत्वात्तुमानेनैव । स्वसंविदितत्वाभ्युपगमे चास्य अनेनैव प्रमेयत्वहेतोर्व्यभिचार इत्युक्तम् ।
- १० 'अस्मदादिज्ञानापेक्षया ज्ञानस्य ज्ञानान्तरवेद्यत्वं साध्यते' इत्यत्राप्युक्तम् ।

किञ्चाद्ये ज्ञाने सति, असति वा द्वितीयज्ञानमुत्पद्यते? सति चेत्-युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिविरोधः । असति चेत्; कस्य तद्ग्राहकम्? असतो ग्रहणे द्विचन्द्रादिज्ञानवदस्य भ्रान्तत्वप्रसङ्गः ।

- १५ किञ्च, अस्मदादीनां तैज्ज्ञानान्तरं प्रत्यक्षम्, अप्रत्यक्षं वा। यदि प्रत्यक्षम्-स्वतः, ज्ञानान्तराद्वा? स्वतश्चेत्, प्रथममप्यर्थज्ञानं स्वतः प्रत्यक्षमस्तु। ज्ञानान्तरात्प्रत्यक्षत्वे तदपि ज्ञानान्तरं ज्ञानान्तरात्प्रत्यक्षमित्यनवस्था । अप्रत्यक्षं चेत् कथं तेनाद्यज्ञानग्रहणम्? स्वय-

१ किञ्च । २ अत्येदमदृष्टमिति । ३ आत्मस्य गगनावी । ४ परैः । ५ इत्यनुणकर्मसामान्यविशेषसमवायरूपः सद्द्वर्गः । ६ प्राक्पञ्चसैतरेतरालम्बनाभावरूपोऽसद्द्वर्गः । ७ पारिशेष्यादीश्वरस्य । ८ गुणरूपेण विज्ञानेन । ९ सद्द्वर्गेण । १० ईश्वर । ११ इन्द्रः । १२ ईश्वरज्ञानान्यपदार्थयोरैकज्ञानालम्बनत्वे स्वसंविदितत्वप्रसङ्गः । १३ पक्षानि यतानि फलानि । १४ यत् । १५ हेतुः । १६ व्यभिचारपरिहारार्थं । १७ परैः । १८ ईश्वरस्य । १९ गुणरूपेण भर्तेश्वरज्ञानेन । २० स्वभावालम्बनादिति । २१ स्वभावालम्बनादित्वादि । २२ अस्मदादिः । २३ ज्ञानान्तरत्वं । २४ नवनमते । २५ ज्ञानस्य । २६ अर्थज्ञानं भ्रान्तमसद्ग्रहणात् । २७ द्वितीयम् ।

१ "नच येनात्मना यन्मनः प्रेर्यते तत्तत्सम्बन्धि इति प्रतिनियमः अदृष्टवदात्मनोऽपि अचेतनत्वेन तत्प्रत्येकत्वात् । चैतनत्वेऽपि नानुपलब्धस्य प्रेरणम् ।"

सन्मति० टी० पृ० ४७७, न्यायकुसु० पृ० २७२ ।

२ "किञ्च, स्वसंविदितज्ञानानभ्युपगमे 'सदसद्द्वर्गः कस्यचिदेकज्ञानालम्बनः अनेकत्वात्पञ्चाङ्गुलवत्' इत्यत्र पक्षीकृतैकदेशेन व्यभिचारः, तज्ज्ञानान्यसदसद्द्वर्गयोरनेकत्वाविशेषेऽपि एकज्ञानालम्बनत्वाभावात् एकशाखाप्रभवत्वात्तुमानवत् ।"

सन्मति० टी० पृ० ४७७ ।

मप्रत्यक्षेण ज्ञानान्तरेणात्मान्तरज्ञानेनेवास्ये ग्रहणविरोधात् । ननु
ज्ञानस्य स्वविषये गृहीतिजनकत्वं ग्राहकत्वम्, तच्च ज्ञानान्तरेणा-
गृहीतस्यापीन्द्रियादिवद्युक्तमित्यपि मनोरथमात्रम्; अर्थज्ञान-
स्यापि ज्ञानान्तरेणागृहीतस्यैवार्थग्राहकत्वानुषङ्गात् । तथा च ज्ञान-
ज्ञानपरिकल्पनावैयर्थ्यं मीसांसकर्मतानुषङ्गश्च । ५

लिङ्गादेश्चदृश्यैर्ना चैगृहीतानां स्वविषये विज्ञानजनकत्वप्र-
सङ्गात्तद्विषयविज्ञानोन्वेषणानर्थक्यम् । 'उभयथोपलम्भाद्दोषः'
इत्यभ्युपगमेपि किञ्चिद्विज्ञादिकमन्वैवमेव चक्षुरादिकं तु ज्ञात-
मेव स्वविषये प्रमितिमुत्प्रेष्येत्तत्त एव । अथ चक्षुरादिकमेवा-
ज्ञातं स्वविषये प्रमितिनिमित्तम्, न लिङ्गादिकं तत्तु ज्ञातमेव १०
नान्यथाऽतो नोभयत्रोभयथाप्रसङ्गः प्रतीतिविरोधात्, नन्वेवं यथा
अर्थज्ञानं ज्ञातमर्थं क्षतिनिमित्तम्, तथा ज्ञानज्ञानमपि ज्ञानेऽस्तु,
तत्राप्युभयथापरिकल्पने प्रतीतिविरोधाविशेषात् । यथैव हि-
'विषादापैत्रं चक्षुरादिज्ञातमेवायं क्षतिनिमित्तं तत्त्वादस्यश्चक्षुरादि-
वत् । लिङ्गादिकं तु ज्ञातमेव कचिद्विज्ञाननिमित्तं तत्त्वाद्दुभयवादि- १५

१ द्वितीयेन । २ सन्तानान्तर । ३ ज्ञानस्य । ४ द्वितीयं । ५ अर्थज्ञाने ।
६ परिच्छिन्ति । ७ कथ्यते । ८ सुतीयज्ञानेन । ९ द्वितीयज्ञानस्य । १० अदृष्टादि ।
११ इव । १२ मीमांसकमते अगृहीतस्यैव (परोक्षस्य) ज्ञानस्यावग्राहकत्वात् ।
१३ गामन्याजेत्यादि । १४ सशार्दंशितम्बन्धप्रतिपत्तेः कारणं सादृश्यं । १५ किञ्च ।
१६ अनुमेये । १७ गामन्याजेत्यादिवाक्यार्थे । १८ लिङ्गादिश्चासौ विषयश्च ।
१९ इन्द्रियस्याज्ञातस्य लिङ्गादेश्चोक्तस्य । २० न त्वज्ञातं ज्ञापकं नाम । २१ गृही-
तस्यागृहीतस्य च गृहीतिजनकत्वेन । २२ अर्थज्ञानतद्ग्राहकज्ञानवच्च । २३ परेण ।
२४ परकीयं । २५ असदादिकं लिङ्गन्तु ज्ञातमेव । २६ परकीय । २७ परस्य ।
२८ चक्षुरादीं लिङ्गादीं च । २९ यथाक्रमं ज्ञातत्वाज्ञातत्वप्रकारेण । ३० इति चेत् ।
३१ उभययोमयत्र विकल्पे प्रतीतिविरोधप्रकारेण । ३२ ज्ञातं । ३३ क्षतिनिमित्तं ।
३४ ज्ञाने । ३५ पक्षं ज्ञातमपरं चाज्ञातं स्वविषये प्रमितिजनकम् । ३६ परस्य ।
३७ परकीयम् । ३८ अप्रत्यक्षत्वाविशेषामावात् । ३९ परस्य । ४० स्वविषये ।

1 "स्वामतस्य-चक्षुरादिकमेवाज्ञातं स्वविषयक्षतिनिमित्तं दृष्टं न तु लिङ्गादिकम्,
तदपि ज्ञातमेव नान्यथा ततो नोभयत्रोभयथाप्रसङ्गः प्रतीतिविरोधद्विषयः तद्विषयं यथा
अर्थज्ञानं व्यभिचिन्तयत्यर्थक्षतिनिमित्तं तथा ज्ञानज्ञानमपि ज्ञानेऽस्तु, तत्रापि उभयथा परि-
कल्पनाया प्रतीतिविरोधस्याविशेषात् । कया युज्यते प्रतीतिविरोध इति चेत् ।
चक्षुरादिषु कथं सति सम-पर्यनुमेयाः । विषादापैत्रं चक्षुरादिकमज्ञातमेव अर्थक्षतिनिमित्तं
चक्षुरादित्वात्" तथा विषादाध्यासितं लिङ्गादिकं ज्ञातमेव कचिद्विज्ञाननिमित्तम्
लिङ्गादित्वात्, यदित्थं तदित्थं यथोभयवादिप्रसिद्धं दृग्मादि, तथा च विषादाध्यासितं

नापि शैकिक्षयात्, ईश्वरात्, विषयान्तरसञ्चारात्, अदृष्टा-
द्वाऽनवस्थाभावः । न हि शैकिक्षयाच्चतुर्थ्यादिज्ञानस्यानुत्पत्तेरनव-
स्थानाभावः । तदनुत्पत्तौ प्राक्कनज्ञानासिद्धिदोषस्य तदवस्थ-
त्वात् । तैत्क्षये च कुतो रूपादिज्ञानं साधनादिज्ञानं वा र्थतो
५ व्यवहारः प्रवर्त्तते? न च चतुर्थादिज्ञानजननशक्तेरेव क्षयो
नेतरस्याः; युगपदनेकशक्त्यभावात् । भावे वा तथैव ज्ञानोत्पत्ति-
प्रसङ्गः । नित्यस्यापरोपेक्षाप्यसम्भाव्या । क्रमेण शक्तिसङ्गावे
कुतोऽसौ? न तावदात्मनोऽशक्त्वात्, तदसम्भवात् । शक्त्यन्तर-
कल्पने चानवस्था ।

१० ईश्वरस्तां निवारयतीत्यपि बालविलसितम्; कृतकृत्यस्य तन्नि-
वारणे प्रयोजनाभावात् । परोपकारः प्रयोजनमित्यसत्; धर्मि-
ग्रहणाभावस्य तदवस्थत्वप्रसङ्गात्, अप्रतीतेर्निषिद्धत्वाच्चस्य ।

न च विषयान्तरसञ्चारोत्तन्निवृत्तिः; विषयान्तरसञ्चारो हि
धर्मिज्ञानविषयान्तरसाधनादिविषये ज्ञानोत्पत्तिः । न च तैज्ज्ञा-

१ किञ्च । २ प्रतिपत्तुः । ३ पञ्चपद्यादि । ४ प्रथमद्वितीयतृतीय । ५ पूर्व-
निरूपित । ६ शक्ति । ७ दृष्टान्तादि । ८ कुतः । ९ रूपादिज्ञाननवितायाः शक्तेः ।
१० अपसिद्धान्तः । ११ आत्मनः । १२ ज्ञानोत्पत्तौ । १३ शक्ति । १४ शक्ति-
र्भवेत् । १५ असमर्थात् । १६ ता । १७ शक्तादात्मनश्चेत् । १८ आत्मयताः
शक्तयः शक्तिमत पद्मात्मनः उत्पद्यन्ते इत्यनेन प्रकारेण । १९ आद्यज्ञानज्ञानायावत् ।
२० पूर्वनिरूपित । २१ षटादिज्ञानज्ञानमित्यादौ । २२ धर्मिज्ञानज्ञानस्य । २३ तृतीय-
ज्ञानात् । २४ ता । २५ वसः । २६ आद्यज्ञानस्य । २७ तृतीयज्ञानात् ।
२८ तृतीयज्ञानस्य । २९ द्वितीय ।

1 “न च शक्तिप्रक्षयाच्चतुर्थज्ञानादेरनुत्पत्तेरनवस्थानिवृत्तिः; धर्मिग्रहणस्यैवमभावा-
पत्तेः ।... किञ्च, यदि शक्तिप्रक्षयादनवस्थानिवृत्तिः; बाह्यविषयमपि ज्ञानं न भवेत्
शक्तिप्रक्षयादेव ।” सन्मति० टी० पृ० ४७९ ।

2 “न च चतुर्थादिज्ञानजननशक्तेरेव प्रक्षयः न बाह्यविषयज्ञानशक्तेः, युगपदनेक-
शक्त्यभावात्, भावे वा युगपदनेकज्ञानोत्पत्तिप्रसक्तिः ।” सन्मति० टी० पृ० ४७९ ।

3 “पदेन ईश्वरादनवस्थानिवृत्तिरिति प्रतिषिद्धितम्; तस्यादृष्टकल्पनत्वात्, प्रति-
षिद्धत्वाच्च ।” सन्मति० टी० पृ० ४७९ ।

4 “न च विषयान्तरसञ्चारादनवस्थानिवृत्तिः, यतो धर्मिज्ञानविषयात् साधनादि-
विषयान्तरस्य, तत्र ज्ञानस्योत्पत्तेः विषयान्तरसञ्चारः । न चापरापरज्ञानग्राहिज्ञानस-
न्तत्युत्पत्तौ अवश्यम्भाविबाह्यसाधनादिविषयसन्निधानस्य, येन तत्र ज्ञानस्य सञ्चारो
भवेत् । सन्निधानेऽपि अन्तरङ्गबहिरङ्गयोरन्तरङ्गस्यैव बलीयस्त्वात् नान्यतरङ्गविषयपरिहारेण
बाह्यविषये ज्ञानोत्पत्तिर्भवेदिति कुतोऽनवस्थानिवृत्तिः? ” सन्मति० टी० पृ० ४७९ ।

नसन्निधानेऽवश्यं सौघनादिना सन्निहितेन भवितव्यमसिद्धौदेर-
भावोपपत्तेः । सन्निहितेपि वा जिघृक्षिते धर्मिण्यर्घ्यहीते कथं
विषयान्तरे ग्रहणाकांक्षा ? कथं वा तज्ज्ञानमेकार्थसमवेतत्वेन
सन्निहितं विहाय तद्विपरीते दृष्टान्तादौ ज्ञानं ज्ञायेत् ?

अदृष्टान्तनिवृत्तौ स्वसंविदितज्ञानोत्पत्तिरेवातोऽस्तु किं सिद्ध्यै- ५
मिनिवेशेन ? तत्र प्रत्यक्षाद्धर्मिसिद्धिः ।

नीप्यनुमानात् ; तत्सद्भावावेदकस्यै तस्यैवासिद्धेः । सिद्धौ वा
तैर्भाष्यैर्भाष्यासिद्ध्यादिदोषोपनिर्पातः स्यात् । पुनरत्राप्यनुमाना-
न्तरात्तत्सिद्धावनवस्था । इत्युक्तदोषपरिजिहीर्षया प्रदीपवत्स्व-
परप्रकाशनशक्तिद्वयात्मकं ज्ञानमभ्युपगमैतव्यम् । तदपह्नवे १०
वैस्तुव्यवस्थाभावप्रसङ्गात् ।

ननु स्वैर्परप्रकाशो नाम यदि बोधरूपत्वं तदा साध्यविकलो
दृष्टान्तः प्रदीपे बोधरूपत्वस्यासम्भवात् । अथ भासुररूपसम्ब-
न्धित्वं तस्य ज्ञानेऽत्यन्तासम्भवात्कथं साध्यता ? अन्यैर्थां प्रत्यक्ष-
बाधस्तदप्यसमीचीनम् ; तत्प्रकाशो हि स्वपररूपोद्योतैररूपोऽ- १५
भ्युपगमैभ्यते । स च कैचिद्बोधरूपतया क्वचित्तु भासुररूपतया वा
न विरोधमध्यास्ते ।

१ तृतीयज्ञानसैक्यात्मसमवेतत्वेन । २ दृष्टान्तादि । ३ अन्यथा । ४ आश्रय ।
५ दृष्टान्त । ६ साधनादौ । ७ अर्थज्ञाने । ८ तृतीयेन द्वितीयस्याग्रहणे द्वितीयेन
प्रथमस्याग्रहणे । ९ प्रतिपत्तुः । १० किञ्च । ११ धर्मिज्ञानतृतीयज्ञानं । १२ पका-
त्मनि । १३ तृतीयं चतुर्थं । १४ ज्ञानान्तरेणैव वेद्यं ज्ञानमिति । १५ द्वितीयविकल्पः ।
१६ ग्राहकत्व । १७ धर्मिज्ञान । १८ ता । १९ हेतोरसिद्धिः । २० द्वितीयेऽ-
नुमाने । २१ ईश्वरज्ञानेन सुखसवेदनेन चानेकान्तः धर्म्यसिद्धिः । २२ परेण ।
२३ भटादिज्ञान । २४ ज्ञानं स्वपरप्रकाशकमर्थप्रकाशकत्वाप्रदीपवत् । २५ प्रदीपे
बोधरूपत्वे ज्ञाने भासुररूपसम्बन्धित्वे सति । २६ ज्ञाने भासुररूपसम्बन्धित्वं विषते
चेत् । २७ प्रकटन । २८ जनैः । २९ ज्ञाने ।

1 “नचादृष्टवशादनवस्थानिदृष्टिः ; स्वसंविदितज्ञानाभ्युपगमेनापि अनवस्थानिदृष्टेः
संभवाद, अन्यथा कार्येऽनुपपद्यमाने अदृष्टपरिकल्पनाया उपपत्तेः । स्वसुवेदनेऽपि
अदृष्टस्य शक्तिप्रसूयाभावात् ।” सम्यक्ति० टी० पृ० ४७९ ।

2 “यदि प्रकाशकत्वं बोधरूपत्वं विवक्षितं तदा साधनविकल्पमुदाहरणं, प्रदीपे
बोधरूपत्वस्यासंभवाद । अथ प्रकाशकत्वं भासुररूपसम्बन्धित्वं तद् विज्ञाने नास्ति ।”

प्रश्न० श्यो० पृ० ५२९ ।

3 “यतः अर्थप्रकाशकत्वमर्थोक्तकत्वमुच्यते, तच्च क्वचिद्बोधरूपतया क्वचिद्भा-
सुररूपतया वा न विरोधमध्यास्ते ।” न्यायकुमु० पृ० १८९ । सा० रत्ना० पृ० २११ ।

ननु 'यिनात्मना ज्ञानमात्मानं प्रकाशयति येन चार्थं तौ चेत-
तोऽभिधौ; तर्हि तौवेव न ज्ञानं तस्य तत्रानुप्रवेशात्तत्स्वरूपवत्,
ज्ञानमेव वा तयोस्तत्रानुप्रवेशात्, तथा च कथं तस्य स्वपर-
प्रकाशनशक्तिद्वयात्मकत्वम्? मिधौ चैत्त्वसंविदितौ, स्वाश्रय-
५ ज्ञानविदितौ वा । प्रथमपक्षे स्वसंविदितज्ञानत्रयप्रसङ्गस्तत्रापि
प्रत्येकं स्वपरप्रकाशस्वभावद्वयात्मकत्वे र्त्स एव पर्यनुयोगोऽन-
वस्था च । द्वितीयपक्षेऽपि स्वपरप्रकाशहेतुभूतयोस्तयोर्यदि ज्ञानं
तथाविधेन स्वभावद्वयेन प्रकाशकं तर्ह्यनवस्था । तदप्रकाशकत्वे
प्रमाणत्वायोगैस्तयोर्वा तैस्त्वभावत्वविरोध इति एकान्तर्वादिना-
१० सुपलम्भो नास्तीकम्; जीत्यन्तैरत्वात्स्वभावतद्गतोर्मेदामेदं प्रत्य-
नेर्कान्तात् । ज्ञानात्मना हि स्वभावतद्गतोरमेदः, स्वपरप्रकाश-
स्वभावत्वात्मना च मेदः इति ज्ञानमेवामेदोऽतो भिन्नस्य ज्ञानात्मनोऽ-
प्रतीतिः । स्वपरप्रकाशस्वभावे च मेदस्तैर्धर्तोरिकयोस्तत्प्रती-
यमानत्वादित्युक्तदोषानवकाशः । कल्पितयोस्तु मेदामेदैकान्त-
१५ योस्तद्दूषणप्रवृत्तौ सर्वत्र प्रवृत्तिप्रसङ्गात् न कस्यचिदिष्टतत्त्व-
व्यवस्था स्यात् । स्वपरप्रकाशस्वभावौ च प्रमाणस्य तत्प्रका-
शनसामर्थ्यमेव, तद्रूपतया चैस्य परोक्षता तत्प्रकाशनलक्षण-

१ स्वभावेन । २ भवतः । ३ तौ । ४ ज्ञानात् । ५ द्वौ स्वभावौ ज्ञानं च ।
६ प्रत्येकं स्वपरप्रकाशनस्वभावौ मिश्रानभिधौ वा ६ अभिन्नपक्षे प्राशुक्येव दूषण
मिन्नपक्षे स्वसंविदितौ स्वाश्रयज्ञानविदितौ वेत्त्यदि । ७ भावयोः । ८ मिधेन ।
९ स्वभावद्वयप्रकाशनात् । १० ज्ञानस्य । ११ ज्ञानस्य । १२ ज्ञान । १३ वा ।
१४ परेषां भवताम् । १५ जैनानाम् । १६ प्रकारान्तरत्वात् । १७ कल्पित-
मेदामेदरूपत्वात् । १८ असत्प्रत्यक्षस्य । १९ अनियमात् । २० स्वरूपेण ।
२१ ईयेकः । २२ वा हिः । २३ ज्ञानस्य । २४ ता । २५ प्रा । २६ इति ।
२७ ज्ञानरूपस्वभावरूपानेदार्या । २८ स्वभावतद्गतोः । २९ स्वपरप्रकाशनस्वभावे-
मेदामेदपक्षयोः । ३० भवत्पक्षे मया योगेन । ३१ सुखात्मनोरमेदो प्रत्याक्षेपपादित्वा
कल्पितस्तत्रामेदे त्वया दूषणमुद्गाप्यते भेदप्रतिभासो न स्वादेकात्मनि सीगतेन भेदः
कल्पितस्तत्र भेदे त्वया दूषणमुद्गाप्यते अनुसन्धानं न स्वादिति । तथापि भेदाभेद-
पक्षदूषणं स्यात् । कथं त्वया द्रव्यगुणयोर्भेदोऽनुपगतः आत्मन्यभेदस्वरूपेणैव परेणो-
द्गाप्यमानं दूषणं प्रसज्येत । ३२ वस्तुनि । ३३ कारकौ न सापेक्षौ द्वाप्यस्य ।
३४ ज्ञानस्य ।

१ "यथाप्युक्तं येनैवात्मना ज्ञानमात्मानं प्रकाशयति तेनैवार्थं इत्यारिः
उदसमीक्षिताभिधानस्य; स्वभावतद्गतोः भेदाभेदं प्रत्यनेकान्तात् ।"

न्यायकुमु० पृ० १८९ । सा० रत्ना० पृ० २३९ । (तत्त्वार्थको० पृ० १२५)

कार्यानुमेयत्वात्तयोः । सकलभावानां सामर्थ्यस्य कार्यानुमेयतया निखिलवादिमिरभ्युपगमात् । अर्वागंद्दशां चान्तर्बहिर्वाथौ नैका-
न्ततः प्रत्यक्ष इत्यत्राखिलवादिनामविप्रतिपत्तिरेवेत्युक्तदोषानव-
काशतया प्रमाणस्य प्रत्यक्षताप्रसिद्धेरलं विवादेनै । अर्मुमेवायं
समर्थयमानः कोवेत्यादिना प्रकरणार्थमुपसंहरति । ५

को वा तत्प्रतिभासिनमर्थमध्यक्षमिच्छंस्तदेव
तथा नेच्छेत् ॥ ११ ॥

प्रदीपवत् ॥ १२ ॥

को वा लो (लौ)किकः परीक्षको वा तत्प्रतिभासिनमर्थ-
मध्यक्षमिच्छंस्तदेव प्रमाणमेव तथा प्रत्यक्षप्रकारेण नेच्छेत् ! १०
अपि तु प्रतीतिं प्रमाणयन्निच्छेदेव । अत्रैवायं परीक्षकेतरजनप्र-
सिद्धत्वात् प्रदीपं दृष्टान्तीकरोति ? ययैव हि प्रदीपस्य स्वप्रकाशतां
प्रत्यक्षतां वा विना तत्प्रतिभासिनोर्यस्य प्रकाशकता प्रत्यक्षता
वा नोपपद्यते । तर्था प्रमाणस्यापि प्रत्यक्षतामन्तरेण तत्प्रतिभा-
सिनोर्यस्य प्रत्यक्षता न स्यादित्युक्तं प्राक् प्रबन्धेनेत्युपरन्वयते । १५
तदेवं सैकलप्रमाणव्यक्तिव्यापि साकल्येनाप्रमाणव्यक्तिर्भयो व्या-
वृत्तं प्रमाणप्रसिद्धं स्वापूर्वार्थव्यवसायात्मकं ज्ञानं प्रमाणलक्षणम् ।
नेनेकलक्षणप्रमाणस्य प्रामाण्यं स्वतः परतो वा स्यादित्याशङ्क्य
प्रतिविधेचे ।

तत्प्रामाण्यं स्वतः परतश्च ॥ १३ ॥

२०

तस्य स्वापूर्वार्थेत्यादिलक्षणलक्षितप्रमाणस्य प्रामाण्यमुत्पत्तौ
परत एव । ज्ञतौ सैकार्ये च स्वतः परतश्च अभ्यासानभ्यासापेक्षया ।

१ स्वप्रप्रकाशरूपयोः । २ किञ्चिज्ज्ञानात् । ३ व्यक्त्यपेक्षया प्रत्यक्षः शक्त्यपेक्षया
परोक्षः । ४ ज्ञानं स्वप्रकाशकमर्थप्रकाशकत्वात् । ५ स्वप्रप्रकाशकसमर्थप्रकाश-
कत्वात् । ६ भीमांसकेन ज्ञानपरोक्षतरूपो यौगेन स्वात्मनिक्रियाऽभावरूपश्च ।
७ स्वसंविदित । ८ ज्ञान । ९ अध्यक्षविषयं । १० प्रदीपवत् । ११ प्रदीपप्रका-
रेण । १२ दूहणम् । १३ असाभिर्नेनैः । १४ प्रत्यक्षपरोक्षः । १५ अन्यात्वा-
दिपरिहारः । १६ सन्निकर्षादि । १७ अतिन्यासिपरिहारः । १८ असम्भवपरिहारः ।
१९ स्वापूर्वत्वादि । २० अविस्तंवादित्वं । २१ जैनः । २२ अर्थाव्यभिचारित्वम् ।
२३ प्रवृत्त्यर्थपरिच्छिन्नलक्षणम् ।

1 "सम्प्रामाणात्प्रमाणत्वं निश्चितं स्वत एव नः ।

अनन्यादे तु परतः इत्याहुः केचिदजसा ॥

ये तु सकलप्रमाणानां स्वतः प्रामाण्यं मन्यन्ते तेऽत्र प्रष्टव्याः—
 किमुत्पत्तौ, ज्ञप्तौ, स्वकार्ये वा स्वतः सर्वप्रमाणानां प्रामाण्यं
 प्रार्थ्यते प्रकारान्तरासम्भवात्? यद्युत्पत्तौ, तत्रापि 'स्वतः
 प्रामाण्यमुत्पद्यते' इति कोर्थः? किं कारणमन्तरेणोत्पद्यते, स्वसा-
 ५ मग्रीतो वा, विज्ञानमात्रसामग्रीतो वा भवत्यन्तराभावात्। प्रथम-
 पक्षे-देशकालनियमेन प्रतिनियतप्रमाणाधारतया प्रामाण्य-
 प्रवृत्तिविरोधः स्वतो जायमानस्यैवंरूपत्वात्, अन्यथा तदयोगात्।
 द्वितीयपक्षे तु सिद्धसाध्यता, स्वसामग्रीतः सकलभावानामुत्पत्त्य-
 भ्युपगमात्। तृतीयपक्षोप्यविचारितरमणीयः; विशिष्टकार्यस्या-
 १० विशिष्टकारणप्रभवत्वायोगात्। तथा हि-प्रामाण्यं विशिष्टकारण-
 प्रभवं विशिष्टकार्यत्वाद्प्रामाण्यवत्। यथैव ह्यप्रामाण्यलक्षणं
 विशिष्टं कार्यं काचकामलादिदोषलक्षणविशिष्टेभ्यश्चक्षुरादिभ्यो
 जायते तथा प्रामाण्यमपि गुणविशेषणविशिष्टेभ्यो विशेषाभावात्।

१ माट्टाः । २ समर्थत । ३ आत्मवाचक आत्मीयवाचकश्च । ४ आप्तवाचक-
 पक्षे । ५ आत्मीयवाचकपक्षे । ६ आत्मीयपक्षे । ७ घटादि । ८ तदविरोधे ।
 ९ कारणमन्तरेण प्रवृत्तेरयोगात् । १० प्रामाण्यस्य । ११ ज्ञानेन व्यभिचारः ।
 १२ प्रामाण्यं न विज्ञानसामग्रीजन्यं विज्ञानान्यत्वे सति कार्यत्वात् । प्रामाण्यविक्रान्ते
 मित्रसामग्रीजन्ये मित्रकार्यत्वाद् घटपटादिवत् । १३ विशिष्टकार्यत्वस्य ।

तच्च स्याद्वादिनामेव स्वार्थनिश्चयनात् स्थितम् ।

ननु स्वनिश्चयोन्मुक्तनिःशेषज्ञानवादिनान् ॥” तत्त्वार्थको० पृ० १७७ ।

“इति स्थितमेतत्—प्रमाणादिष्टसंसिद्धिः अन्यथाऽतिप्रसङ्गतः । प्रामाण्यं तु स्वतः
 सिद्धमभ्यासात्परतोऽन्यथा ॥” प्रमाणप० पृ० ६३ ।

“आन्यासिकं यथा ज्ञानं प्रमाणं गम्यते स्वतः ।

मिथ्याज्ञानं तथा किञ्चिदप्रमाणं स्वतः स्थितम् ॥”

तत्त्वसं० कारि० ३१०० ।

“नहि बौद्धैः यथा चतुर्णामेकनमोऽपि पक्षोऽनीष्टः, अनियमपक्षस्येष्टत्वात् ।
 तथाहि—उभयमन्येतत् किञ्चिद् स्वतः किञ्चिद् परत इति”..... ।”

तत्त्वसं० पं० पृ० ८११ ।

१ “वार्तिके स्वतो ज्ञायते, स्वतो वा जायते, स्वतो वा व्याप्तिवते ?”

प्रश्न० कन्दली पृ० २१८ ।

२ “तत्रापि स्वतः कारणमन्तरेण आत्मनैव प्रामाण्यमुत्पद्यते इत्यर्थः स्यात्,
 आत्मनो वा सकाशात्, आत्मीयायाः सामग्रीतो वा ?” न्यायकुसु० पृ० १५९ ।

३ “प्रमा ज्ञानहेत्वतिरिक्तहेत्वधीना कार्यत्वे सति तद्विधेयत्वाद् अप्रमावत् ।”

प्रश्न० किरणा० पृ० ३१८ ।

ज्ञावप्यनभ्यासदशायीं न प्रामाण्यं स्वतोऽवतिष्ठते; सन्देह-
विपर्ययाक्रान्तत्वात्तद्वदेव । अभ्यासदशायीं तूर्भयमपि स्वतः ।
नापि प्रवृत्तिलक्षणे स्वकार्ये तत्स्वतोऽवतिष्ठते, स्वग्रहणसापेक्ष-
त्वात्प्रामाण्यवदेव । तद्धि ज्ञातं सन्नित्वृत्तिलक्षणस्वकार्यकारि
नैर्न्यथा । ५

नैतु गुणविशेषणविशिष्टेभ्यः इत्यु(त्ययु)क्तम्; तेषां प्रमाणतोऽ-
नुपलम्भेनासत्त्वात् । न खलु प्रत्यक्षं तान्प्रत्येतुं समर्थम्; अती-
न्द्रियेन्द्रियाप्रतिपत्तौ तद्गुणानां प्रतीतिविरोधात् । नैप्यनुमानम्;
तस्य प्रतिर्वन्धवलेनोत्पत्त्यभ्युपगमात् । प्रतिवन्धश्चेन्द्रियगुणैः
सह लिङ्गस्य प्रत्यक्षेण गृह्येत, अनुमानेन वा । न तावत्प्रत्यक्षेण, १०
गुणाग्रहणे तत्सम्बन्धग्रहणविरोधात् । नैप्यनुमानेन, अस्यापि
गृहीतसम्बन्धलिङ्गप्रभवत्वात् । तत्राप्यनुमानौन्तरेण सम्बन्ध-
ग्रहणेऽनवस्था । प्रथमानुमानेनान्योन्याश्रयः । अत्रप्रतिपन्नसम्ब-
न्धप्रभवं चानुमानं न प्रमाणमतिप्रसङ्गात् ।

किञ्च, स्वभावहेतोः, कार्यात्, अनुपलब्धेर्वा तत्प्रभवेत्? न १५
तावत्स्वर्भावात्, तस्य प्रत्यक्षगृहीतेर्ष्य व्यवहारमात्रप्रवर्तनफल-
त्वाद्दृष्टादौ शिशापात्वादिवत् । न चात्यक्षाऽक्षाश्रितगुणलिङ्गस-
म्बन्धः प्रत्यक्षतः प्रतिपन्नः । कार्यहेतोश्च सिद्धे कार्यकारणभावे का-
रणप्रतिपत्तिहेतुत्वम्, तत्सिद्धिश्चाध्यैक्षानुपलम्भप्रमाणसम्पाद्या ।
न चेन्द्रियगुणाश्रितसम्बन्धग्रहकत्वेनाध्यैक्षप्रवृत्तिः, येन तत्का- २०

१ सत्यमसत्यमिति । २ प्रामाण्यमप्रामाण्यम् । ३ अभ्यासदशया विषयं प्रति
गमनम् । ४ सत्यम् । ५ स्वस्य ज्ञानेन । ६ प्रामाण्यस्य । ७ अर्थेयमिच्छादित्वात् ।
८ असत्यमिदमिति । ९ विषयं प्रत्यगमनम् । १० अज्ञातम् । ११ अभ्यासदशायी
स्वतः । १२ नीमासकः । १३ चक्षुरादिभ्यः । १४ अपरिज्ञाने । १५ प्रामाण्य
विधानकारणातिरिक्तकारणप्रभवं विज्ञानान्तरत्वे सति कार्यत्वात्प्रामाण्यवत् । १६ अवि-
नाभावः । १७ प्रामाण्यस्य । १८ लिङ्गस्य । १९ प्रामाण्यं गुणनियतं तदन्वयव्यति-
रेकानुविधायित्वात् । २० द्वितीयानुमाने । २१ तदन्वयव्यतिरेकानुविधायित्वं
गुणसङ्ग्राह्याविनाभावि तस्मि(गुणे)न्सत्त्वेनोत्पद्यमानत्वात् । २२ अगृहीतः । २३ अनु-
मानाभासम् । २४ तत्पुत्रत्वादेरुत्पन्नस्य प्रामाण्यप्रसङ्गात् । २५ वृक्षोर्ष्यं शिञ्जपा-
त्वात् । २६ हेतोः । २७ वृक्षोर्ष्यं शिञ्जपात्वात् । २८ ता । २९ प्रामाण्यं
(कार्यं) साध्येन (गुणेन) सम्बन्धि अनुमानकार्यत्वाद्भवत् । ३० हेतुः कार्यम् ।
३१ सम्बन्धः कारणम् । ३२ अन्वयव्यतिरेकान्म्याम् । ३३ असत्यसङ्गाव ।
३४ कार्यकारणभावः । ३५ ता ।

1 "नहि चक्षुरादिषु गुणा नाम केन्द्रियुपलम्बन्ते ।"

मी० श्लो० न्यायरत्ना० ५० ५९ ।

यत्वेन कस्यचिद्विज्ञानस्याप्यध्यक्षतः प्रतिपत्तिः स्यात् । अनुपलब्धे-
स्त्वेवंविधे विषये प्रवृत्तिरेव न सम्भवत्यभावमात्रसाधकत्वेनास्याः
व्यापारोपगमात् ।

न चोत्रं लिङ्गमस्ति । यथार्थोपलब्धिरस्तीत्यप्यसङ्गतम् ; यतो
५ यथार्थत्वायर्थार्थत्वे विहाय यदि कार्यस्योत्पत्त्याख्यस्य स्वरूपं
निश्चितं भवेत्तदा यथार्थत्वलक्षणः कार्यविशेषः पूर्वसात्कार-
रणकलापादनिष्पद्यमानो शुभोत्पत्तौ स्योत्पत्तौ कारणान्तरं परिकल्प-
येत् । यदा तु यथार्थोपलब्धिः स्वयो(स्वो)त्पादककारणकलापा-
नुमापिका तदा कथं तद्वैतिरिक्तगुणसद्भावः ? अयथार्थत्वं तूपल-
१० ष्योर्विशेषः पूर्वसात्कारणसमूहादनुत्पद्यमानः स्योत्पत्तौ सामर्थ्य-
न्तरं परिकल्पयतीति परतोऽप्रामाण्यं तस्योत्पत्तौ दोषापेक्षत्वात् ।

न चेन्द्रिये नैर्मल्यादिरेव गुणः ; नैर्मल्यं हि तत्स्वरूपम्, न तु
स्वरूपाधिकौ गुणः तथा व्यपदेशस्तु दोषाभावनिवन्धनः ।
तथाहि-कामलादिदोषासत्त्वाभिर्मलमिन्द्रियं तत्सत्त्वे सद्योषम् ।
१५ मनसोपि निद्राद्यभावः स्वरूपं तत्सद्भावस्तु दोषः । विश्वं यस्यापि
निश्चलत्वादिसवरूपं चलत्वादस्तु दोषः । प्रमातुरपि क्षुधाद्यभावः
स्वरूपं तत्सद्भावस्तु दोषः ।

न चैतद्भैरव्यम्-विज्ञानजनकानां स्वरूपमयथार्थोपलब्ध्या
समाधिगतम् यथार्थत्वं तु पूर्वसात्कारणकलापादनुत्पद्यमानं
२० गुणाख्यं सामर्थ्यन्तरं परिकल्पयति इति ; यतोऽत्र लोकः प्रमा-
णम् । न चात्र मिथ्याज्ञानात्कारणस्वरूपमात्रमेवानुमिनोति किन्तु
सैन्यग्नानात् ।

किञ्च, अर्थतथाभावप्रकाशनरूपं प्रामाण्यम्, तस्य चक्षु-

१ प्रामाण्यस्य । २ सम्बन्धः । ३ ता । ४ किञ्च । ५ नवनयुगे साधे ।
६ नयने गुणाः सन्ति यथायथोपलब्धेः । ७ विशेषरूपे । ८ कार्यमात्रस्य ।
९ उपलम्भसामान्यस्य । १० सल । ११ कर्ता । १२ शुद्धं चक्षुः । १३ अन्यत् ।
१४ इन्द्रिय । १५ इन्द्रिय । १६ इन्द्रिय । १७ का । १८ निर्मलं चक्षुरिति ।
१९ इन्द्रियस्वरूपम् । २० पटादिपदार्थस्य । २१ भासन्नत्वादि । २२ नवनयुगम् ।
२३ जैनैः । २४ चक्षुरादीनां । २५ लिङ्गेन । २६ अयथार्थोपलब्धिबन्धकारि-
न्द्रियात् । २७ विज्ञानसामर्थ्यनुमाने । २८ चक्षुरादि । २९ प्रामाण्यं विज्ञानकारण
(चक्षुरादि) प्रमदं विज्ञानस्वभावत्वात् विज्ञानस्वरूपम् । ३० प्रमाणस्य कार्योपल-
ब्धाभावप्रकाशनरूपं प्रामाण्यम् ।

१ "नैर्मल्यं शुण इति चेत् ; नन्वेवं दोषात्मनो शुणः ।"

रादिसामग्रीतो विज्ञानोत्पत्तावप्यनुत्पत्युपगमे विज्ञानस्य स्वरूपं वैकव्यम् । न च तद्रूपव्यतिरेकेण तस्य स्वरूपं पश्यामो येन तद्व्युत्पत्तावप्यनुत्पन्नमुत्तरकालं तत्रैवोत्पत्तिमद्भ्युपगम्यते प्रामाण्यं भिन्नाविव चित्रम् । विज्ञानोत्पत्तावप्यनुत्पत्तौ व्यतिरिक्तसामग्रीतश्चोत्पत्यभ्युपगमे विद्वद्धर्माध्यासात्कारणमेदाच्च ५ तयोर्भेदः स्यात् ।

किञ्च, अर्थतथात्वपरिच्छेदरूपा शक्तिः प्रामाण्यम्, शक्त्यश्च भावानां सत(स्वत) एवोत्पद्यन्ते नोत्पादककारणाधीर्नाः । तदुक्तम्—

“स्वतः सर्वप्रमाणानां प्रामाण्यमिति गम्यताम् । १०

न हि स्वतोऽसती शक्तिः कर्तुर्मन्येन पार्यते ॥”

[मी० श्लो० सू० २ श्लो० ४७]

न चैतत्सत्कार्यदर्शनसमाश्रयणादभिधीयते; किन्तु यः कार्यगतो धर्मः कारणे समस्ति स कार्यवत्त एवोदयमासादयति यथा मृत्पिण्डे विद्यमाना रूपादयो घटेपि मृत्पिण्डाद्गुपजायमाने १५ मृत्पिण्डरूपादिद्वारेणोपजायन्ते । ये तु कार्यधर्माः कारणेष्वविद्यमाना न ते ततः कार्यवत् जायन्ते किन्तु स्वत एव, यथा तस्यैवोदकाहरणशक्तिः । एवं विज्ञानेऽप्यर्थतथात्वपरिच्छेदशक्तिश्चक्षुरादिष्वविद्यमाना तेभ्यो नोदयमासादयति किन्तु स्वत एवाभिभवति । उक्तं च—

“आत्मलाभे हि भिन्नानां कारणापेक्षिता भवेत् ।

लब्धात्मनां स्वकार्येषु प्रवृत्तिः स्वयमेव तु ॥”

[मी० श्लो० सू० २ श्लो० ४८]

यथा—मृत्पिण्डदण्डचक्रादि घटो जन्मन्यपेक्षते ।

उदकाहरणे त्वस्य तदपेक्षा न विद्यते” ॥ [] २५

१ प्रामाण्यस्य । २ जनैः । ३ कथं मीमांसकाः । ४ विज्ञानस्य । ५ विज्ञाने । ६ विविधज्ञाने चित्रं नोत्पद्यते विनष्टे तु भवतीति । ७ प्रामाण्यस्य । ८ प्रामाण्यस्य । ९ विज्ञानस्य कारणमित्यर्थं प्रामाण्यस्य गुण इति । १० उत्पत्यनुत्पत्तिलक्षणम् । ११ इन्द्रियगुणो । १२ प्रमाणप्रामाण्यबन्धोः । १३ प्रमाणप्रामाण्ये भिन्ने । १४ इति परस्मानिष्टापत्तिः परेणामेदस्मिन्नुपेयमार्गः । १५ प्रमाणस्य भावशक्तिः । १६ विज्ञानकारणातिरिक्तकारणाधीर्नाः । १७ भवति । १८ निश्चीयताम् । १९ कारणे । २० स्वरूपेण । २१ मीमांसकारणातिरिक्तकारणाधीनेन गुणेन । २२ अपरादेत्यम् । २३ नोदयमासादयति । २४ कारणमेव । २५ घटलक्षणकार्यस्य । २६ कार्योणां ।

१. “स्वतः हि भावाः स्वात्मलाभायैव कारणमपेक्षन्ते । घटो हि मृत्पिण्डादिकं स्वतः स्वयमेव जपेद्यते, नोदकाहरणेऽपि । तथा ज्ञानमपि स्वोत्पत्तौ गुणवदितरदा कारणम-

चक्षुर्गादिविज्ञानकारणादुपजायमानत्वात्तस्य परतोऽभिधाने तु सिद्धसाध्यता । अनुमानौदिवुद्धिस्तु गृहीताविनामौवादिलिङ्गैदे-
रुपजायमाना प्रमाणभूतौपजायतेऽतोऽत्रापि तेषां न व्यापारः ।
तन्नोत्पत्तौ तदन्यापेक्षम् ।

- ५ नापि ह्यतौ, तद्धि तत्र किं कारणगुणानपेक्षते, संवादप्रत्ययं वा ?
प्रथमपक्षोऽयुक्तः; गुणानां प्रत्यक्षादिप्रमाणाविषयत्वेन प्रागेवा-
सत्त्वप्रतिपादनात् । संवादज्ञानापेक्षाप्ययुक्ता; - तत्त्वञ्चु सैमा-
नजातीयम्, भिन्नजातीयं वा ? प्रथमपक्षे किमेकसन्तानप्रभवम्;
भिन्नसन्तानप्रभवं वा ? न तावद्भिन्नसन्तानप्रभवम्; देवैर्दत्तघ-
१० टज्ञाने यद्भेदघटज्ञानस्यापि संवादकत्वप्रसङ्गात् । एकसन्ता-
नप्रभवमप्यभिन्नविषयम्, भिन्नविषयं वा ? प्रथमविकल्पे सर्वो-
चसंवादकभावाभावोऽविशेषात् । अभिन्नविषयत्वे हि यथोत्तरं
पूर्वस्य संवादकं तथेदमप्यस्य किन्न स्यात् ? कथं चैतस्य प्रमाण-
त्वनिश्चयः ? तदुत्तरकालभाविनोऽन्यैस्मात् तैथाविधादेवेति
१५ चेत्, तर्हि तस्याप्यन्यस्मात्तथाविधादेवेत्यनवस्था । प्रथमप्र-
माणौत्तस्य प्रामाण्यनिश्चयेऽन्योन्याश्रयः । भिन्नविषयमित्यपि
वार्त्तम्; शुक्तिशकले रजतज्ञानं प्रति उत्तरकालभाविशुक्तिका-
शकलज्ञानस्य प्रामाण्यन्यैवस्थापकत्वप्रसङ्गात् ।

नैपि भिन्नजातीयम्; तद्धि किमर्थक्रियाज्ञानम्, उतैन्यत् ? न
२० तावदन्यत्; घटज्ञानात्पटज्ञाने प्रामाण्यनिश्चयप्रसङ्गात् । नाप्यर्थ-
क्रियाज्ञानम्; प्रामाण्यनिश्चयाभावे प्रवृत्त्याभावेनार्थक्रियाज्ञाना-

१ प्रामाण्यस्य । २ आगम । ३ सङ्केतादि । ४ शब्द । ५ गुणानां ।
६ प्रामाण्यं । ७ गुण । ८ प्रामाण्यं । ९ प्रामाण्यस्य । १० अर्थज्ञानेन समानं
सदृशा जातिवि(र्वि)षयो यस्य तत्समानजातीयम् । ११ पुरुष । १२ अन्यथा ।
१३ भिन्नसन्तानप्रभवत्वाविशेषात् । १४ एकस्य जलज्ञानं जलज्ञानमिति । १५ अभि-
न्नविषयस्य । १६ संवादकं । १७ किञ्च । १८ उत्तरज्ञानस्य । १९ द्वितीयज्ञानात् ।
२० ज्ञानात् । २१ अभिन्नविषयात् । २२ प्रथमप्रमाणादुत्तरस्य निश्चयः उत्तर-
ज्ञानात्प्रथमनिश्चय इति । २३ ज्ञानात् । २४ पूर्वज्ञानं । २५ सदृशविषयत्वेन
समानजातीयत्वे सति भिन्नविषयत्वस्याविशेषात् । २६ संवादज्ञानं । २७ द्वितीय-
विकल्पं प्रत्याह परः । २८ ज्ञानावगाहनादि । २९ ता । ३० मरीचिकावक्त्रे
जलज्ञानात्प्रज्ञानमरीचिकाज्ञानम् । ३१ अन्यथा । ३२ आद्यज्ञानस्य ।

वेक्षणां नाम स्वकार्ये तु विषयनिश्चये अनपेक्षनेव ।”

मी० श्लो० न्यायरत्ना० पृ० ६० ।

कारिकेयं तत्सर्वप्रदे (पृ० ७५७) पूर्वपक्षरूपेण वर्तते ।

घटनात् । चक्रकप्रसङ्गश्च । कथं चार्थक्रियाज्ञानस्य तद्विश्रयः ?
अन्यार्थक्रियाज्ञानाच्चेद्वनवस्था । प्रथमप्रमाणाच्चेदन्योन्याश्रयः ।
अर्थक्रियाज्ञानस्य स्वतःप्रामाण्यनिश्चयोपगमे चोद्यस्य तथाभावे
किङ्कृतः प्रद्वेषः ? तदुक्तम्—

“यथैवे प्रथमज्ञानं तैत्संवादमपेक्षते ।

संवादेनापि संवादः परो मृग्यस्तथैव हि ॥ १ ॥ []

कस्यचित्तु यदीष्येत स्वत एव प्रमाणात् ।

प्रथमस्य तथाभावे प्रद्वेषः केन हेतुना ॥ २ ॥

[मी० श्लो० सू० २ श्लो० ७६]

संवादस्याथ पूर्वैण संवादित्वात्प्रमाणात् ।

अन्योन्याश्रयभावेन प्रामाण्यं न प्रकल्पते ॥ ३ ॥ [] इति ।

अर्थक्रियाज्ञानस्यार्थाभावेऽदृष्टत्वाच्च स्वप्रामाण्यनिश्चयेऽन्यापेक्षा
सौघनज्ञानस्यै त्वार्थार्थैवपि दृष्टत्वात्तत्र तदपेक्षा युक्ता; इत्यप्य-
सङ्गतम्; तस्याप्यर्थमन्तरेण स्वप्रदशायां दर्शनात् । फलावातिरूप-
त्वात्तस्य तत्र नान्यापेक्षा सौघननिर्भासिज्ञानस्य तु फलावाति-
रूपत्वाभावात्तदपेक्षा; इत्यप्यनुत्तरम्; फलावातिरूपत्वस्याप्रयोज-
कत्वात् । यथैव हि सौघननिर्भासिनो ज्ञानस्यान्वैत्र व्यभिचारदर्श-
नात्सत्यासत्यविचारणायां प्रेक्षावतां प्रवृत्तिस्तथा तैसापि विशे-
धार्थार्थात् ।

किञ्च, समानकालमर्थक्रियाज्ञानं पूर्वज्ञानप्रामाण्यव्यवस्थाप-
कम्, भिन्नकालं वा ? यथैककालम्; पूर्वज्ञानविषयम्, तद्विषयं

१ अर्थक्रियाज्ञानोत्पत्तौ पूर्वज्ञानस्य प्रामाण्यं पूर्वज्ञानप्रामाण्ये च प्रवृत्तिः प्रवृत्तौ
चार्थक्रियाज्ञानोत्पत्तिरिति । २ किञ्च । ३ प्रामाण्यं । ४ जैनः । ५ ज्ञानस्य ।
६ स्वविषये । ७ स्वविषये । ८ द्वितीयज्ञानस्य । ९ ज्ञानस्य । १० भाष्यज्ञानेन ।
११ न वदते । १२ जैनः । १३ अग्रतीर्थः । १४ जलज्ञानस्य । १५ जललक्षणं ।
१६ गरीश्विकचक्रे । १७ साधनज्ञानप्रामाण्ये । १८ ज्ञानपानादिलक्षणं ।
१९ स्वप्रामाण्यनिश्चये । २० प्रथमवृत्तीयज्ञानं । २१ ज्ञानादिक्रियायाः साधनं जलादि-
तस्मिन् । २२ युक्तम् । २३ अन्यानपेक्षत्वं प्रति । २४ अर्थक्रियायाः । २५ जलं ।
२६ गरीश्विकाया । २७ ज्ञानदशायां सुप्तावस्थायां च सत्यासत्यत्वस्य । २८ स्वप्रद-
शायां व्यभिचारदर्शनस्य । २९ सवादकं । ३० वसः । ३१ वसः । ३२ वसः ।

१ “कारिकेयं तत्ससंभवे (‘पृ० ७५७) पूर्ववक्तरूपतया घृताऽस्ति ।

वा ? । न तावत्तदविषयम् ; चञ्चुरादिज्ञाने ज्ञानान्तरस्याप्रति-
भासनात्, प्रतिनियतरूपादिविषयत्वात्स्य । तदविषयत्वे च
कथं तज्ज्ञानप्रामाण्यनिश्चायकत्वं तदग्रहे तैद्धर्माणां ग्रहणविरो-
धात् । भिन्नकालमित्यप्ययुक्तम् ; पूर्वज्ञानस्य क्षणिकत्वेन नाशे
५ तद्ग्राहकत्वेनोत्तरज्ञानस्य तत्प्रामाण्यनिश्चायकत्वायोगात् ।
सर्वप्राणभृतां प्रामाण्ये सन्देहविपर्ययाक्रान्तत्वासिद्धेश्च । समु-
त्पन्ने खलु विज्ञाने 'अयमित्थमेवार्थः' इति निश्चयो न सन्देहो
विपर्ययो वा । तदुक्तम्—

“प्रमोषं ग्रहणात्पूर्वं स्वरूपेणैव संस्थितम् ।

१० निरपेक्षं स्वैकार्यं च गृह्यते प्रत्ययान्तरैः, ॥ १ ॥”

[मी० श्लो० सू० २ श्लो० ८३] इति

प्रमाणाप्रमाणयोरुत्पत्तौ तुल्यरूपत्वाच्च संवादविसंवादावन्त-
रेण तयोः प्रामाण्याप्रामाण्यनिश्चय इति च मनोरथमात्रम् ; अं-
प्रमाणे बाधककारणदोषज्ञानयोरवश्यंभावित्वादप्रामाण्यनिश्चयः,
१५ प्रमाणे तु तयोरभावात्प्रामाण्यावसार्थः ।

१ स्पर्शनरसनप्राणश्रोत्र । २ द्वितीये ज्ञाने । ३ आद्यस्य जलज्ञानस्य । ४ रस-
गन्धस्पर्शशब्द । ५ वसः । ६ नाशेन्द्रियजनितज्ञानस्य । ७ प्रामाण्यसत्त्वा-
धीनाय । ८ यदा ज्ञानमुत्पद्यते तदा संशयादिरहितमेवोत्पद्यतेऽतः कथमपरापेक्षा ।
९ किञ्च । १० भवति । ११ प्रामाण्यं । १२ प्रामाण्यलक्षणस्य धर्मस्वाभावान्त-
र्भावान्निमित्तप्रधानोऽयं निर्देशः । १३ परिच्छिन्नः । १४ अर्थपरिच्छिन्नप्रवृत्ति-
लक्षणे । १५ पुरुषैः । १६ संवादरूपैः । १७ सन्निकर्षरूपैः । १८ परतः ।
१९ निश्चयः । २० भवति ।

1 “अर्थान्यथास्महेतुत्वदोषज्ञानादपोषते ॥ ५३ ॥

“दोषनिमित्तं हि ज्ञानस्यावधार्यत्वम्, दोषान्वयव्यतिरेक्युविधानात् । अतो
दुष्टकारणत्वमेव ज्ञानेन आत्मनः प्रामाण्यं विषयस्वार्थस्यातथाभूतस्यापि तथात्मनवप-
त्तमपि अर्थान्यथात्वज्ञानेन दोषज्ञानेन वाऽपोषते ।” मी० श्लो० न्यायरत्ना० पृ० ६९ ।

“यमेव स्वतः सर्वज्ञानानां प्रामाण्यम् ; अप्रामाण्यं तु परत ध्वेलाभिलस प्रत्य-
क्षेयम् ; तथाहि—विशानं जायमानं यथाभूतवर्षमवभासयति तथाभूत धर्मा इति
निश्चायवशेन न तु निश्चये ज्ञानान्तरमपेक्षणीयम्, तेन स्वत एव प्रामाण्यम् ।
अप्रामाण्यं तु अर्थस्यातथाभावनिश्चयनिरपेक्षं सन्नाशगमव्युत्पन्नमिति परतोऽप्रामा-
ण्यम् । अति च प्रमाणाप्रमाणसाधारणत्वे निश्चयस्य निश्चयानुसारेण पक्षावार्शकोप-
जायते ; सा परत ध्वेति परत ध्वेत्प्रामाण्यम् । न चापि सर्वभाशंका, किन्तु बाह्ये
व्यभिचारदर्शनेन तद्वद् एव शंकेति । नच सर्ववशे ज्ञाने व्यभिचारदर्शनमिति सर्वभा-
शंका ; सर्वनैवाशंकाया परतोऽपि प्रामाण्यं न स्यात्, तस्यापि शंकास्पदत्वादिति ।”

मीमांसाभाष्यपरि० पृ० ८ ।

यापि-तत्तुल्यरूपेऽन्यत्र तयोर्दर्शनात्तदौशङ्का; सापि त्रिचतुर-
ज्ञानपेक्षामात्राश्रित्येते । न च तदपेक्षार्यां स्वतः प्रामाण्यव्याघा-
तोऽनवस्था वा; संवादकज्ञानस्याप्रामाण्यव्यवच्छेदे एव व्यापार-
दन्यज्ञानानपेक्षणाश्च । तदुक्तम्—

“द्वं त्रिचतुरज्ञानैर्जन्मनो नाधिका मतिः ।

प्रार्थ्यते तावतैवेयं स्वतः प्रामाण्यमर्थ्यते ॥ १ ॥”

[मी० श्लो० सू० २ श्लो० ६१]

यौऽप्यनुत्पद्यमानः संशयोऽबलादुत्पाद्यते सोऽप्यर्थक्रियार्थिनौ
सर्वत्र प्रवृत्त्यादिव्यवहारोच्छेदकारित्वाच्च युक्तः । उक्तञ्च—

“आशङ्केतं हि यो मोहोदजातमपि वाचकम् ।

स सर्वव्यवहारेषु संशयात्मा क्षयं व्रजेत् ॥ १ ॥” []

१ अग्रमाणे । २ अप्रामाण्यं । ३ प्रमाणे । ४ परिज्ञाने । ५ पञ्चमस्य
ज्ञानस्य । ६ स्वग्रन्थोक्तप्रकारेण कथमाद्यज्ञानस्य द्वितीयादिसंवादज्ञानपेक्षित्वप्रकारेण ।
७ उत्पत्तेः । ८ का । ९ ज्ञानम् । १० वाच्छेदे पुरुषेण । ११ प्राप्नोति ।
१२ यथाऽऽद्याद्यज्ञानं द्वितीयं द्वितीयं च तृतीयं तृतीयं च चतुर्थमपेक्षते । तथा
चतुर्थेनापि पञ्चममपेक्षणीयमित्यादिप्रकारेणानवस्था किमिति न स्यादित्युक्ते सत्याह ।
१३ विषये । १४ अज्ञानात् । १५ प्रवृत्तिनिवृत्तिरूपेषु । १६ यतः ।

1 “ननु यथा आद्यस्य द्वितीयेन दोषोऽनगतः तस्यापि तृतीयेन तथा तृतीयस्यापि
दोषाशङ्का भवत्येव, तथा सर्वत्रैवेति न क्वचिदाश्वासः स्यादत आह—‘दोषज्ञाने त्वनु-
त्पन्ने न शङ्क्या निष्प्रमाणता’ इति । दिक्काव्यस्येन्द्रियविषयदोषा हि मिथ्यात्वहेतवो
लोकप्रसिद्धा यत्र नैव संभवन्ति यथा आगर्वायामाळोके स्वस्येन्द्रियमनस्कस्य सन्नित-
वदज्ञाने । तत्र नैव दोषाशङ्का, तदभावाच्चाप्रामाण्याशङ्कापि नैव भवति । यथाविषेषु हि
अप्रामाण्यसंभवः तथाविषेष्वेव तदाशङ्का भवति, संभावितदोषेषु च तत्संभव इति
कथमन्यत्र शङ्क्यते ? नहि ज्ञानत्वमात्रेण संशयो युक्तः; संशयस्य साधारणमार्गि-
निश्चयाधीनत्वात् । तदवश्यं कानिचिच्छानानि असन्दिग्धप्रामाण्यान्वयोत्पद्यन्ते ।
तस्याश्च सर्वत्राशङ्का । यत्रापि दूरत्वादिदोषसम्भावप्रामाण्याशङ्का, तत्रापि प्रत्यासत्तिग-
मनादिनाऽप्यवरपदार्थनिर्णयाच्चातिदूरगमनमिति । एवं च तृतीयज्ञाने दोषो यदि न
संभावितः ततस्तदवधिरेव निर्णयः । अथ ननु संभावितः ततस्तत्रिराकरणप्रयत्नेन चतु-
र्थज्ञानावसानो निर्णय इति नाधिकज्ञानापेक्षा । तावतैव तृतीयेन चतुर्थेन वा द्वितीयस्य
तृतीयस्य वापि सति यस्यैवाद्यस्य द्वितीयस्य वा प्रामाण्यं समर्थ्यते तस्य साभाविकं
प्रामाण्यमनपोहितं भवति । इतरच्चापवादादप्रमाणमिति जानवस्था ॥”

मी० श्लो० न्यायरसा० पृ० ६४ ।

2 “उच्छेदेत हि यो मोहोदजातमपि वाचकम् ।

स सर्वव्यवहारेषु संशयात्मा क्षयं व्रजेत् ॥ २८७२ ॥ तत्सर्ग० (पूर्वपक्षे)

प्र० क० मा० १४

चोदनाजनिता तु बुद्धिरपौरुषेयत्वेन दोषरहिताश्चोदनावाक्या-
दुपजायमाना लिङ्गातोक्त्यक्षबुद्धिवत्स्वतः प्रमाणम् । तदुक्तम्—

“चोदनाजनिता बुद्धिः प्रमाणं दोषैवर्जितैः ।

कारणैर्जन्यमानत्वाल्लिङ्गातोक्त्यक्षबुद्धिवत् ॥ १ ॥”

५

[मी० श्लो० सू० २ श्लो० १८४]

तत्र ज्ञतौ पैरापेक्षा ।

नापि स्वकार्यैः तत्रापि हि किं तत्संवादप्रत्ययमपेक्षते, कारण-
गुणान् वा ? प्रथमपक्ष चक्रकप्रसङ्गः—प्रमाणस्य हि स्वकार्ये
प्रवृत्तौ सत्यामर्थक्रियार्थिनां प्रवृत्तिः, तस्यां चार्थक्रियाज्ञानोत्पत्ति-
१० लक्षणः संवादः; तत्सङ्गावे च संवादमपेक्ष्य प्रमाणं स्वकार्येऽर्थप-
रिच्छेदलक्षणे प्रवर्त्तत । भाविनं संवादप्रत्ययमपेक्ष्य तत्र
प्रवर्त्तते; इत्यप्यनुपपन्नम्; तस्यासत्त्वेन स्वकार्ये प्रवर्त्तमानं विज्ञानं
प्रति सहकारित्वायोगात् ।

द्वितीयपक्षेऽपि गृहीताः स्वकारणगुणाः तस्य स्वकार्ये प्रवर्त्त-
१५ मानस्य सहकारित्वं प्रतिपद्यन्ते, अगृहीता वा ? न तावदुत्तरः
पक्षः; अतिप्रसङ्गात् । प्रथमपक्षेऽनवस्था-स्वकारणगुणज्ञानापेक्षा
हि प्रमाणं स्वकार्ये प्रवर्त्तत तदपि स्वकारणगुणज्ञानापेक्षं प्रमाण-
कारणगुणग्रहणलक्षणे स्वकार्ये प्रवर्त्तत तदपि च स्वकारणगुण-
ज्ञानापेक्षमिति । तस्य स्वकारणगुणज्ञानानपेक्षस्यैव प्रमाणकारण-
२० गुणपरिच्छेदलक्षणे स्वकार्ये प्रवृत्तौ प्रथमस्यापि कारणगुणज्ञानान-
नपेक्षस्यार्थपरिच्छेदलक्षणे स्वकार्ये प्रवृत्तिरस्तु विशेषामावात् ।
तदुक्तम्—

“जातेपि यदि विज्ञाने तावन्नार्थोऽवधार्यते ।

यौवत्कारणैश्चुद्धैर्त्वं न प्रमाणान्तराद्भैतम् ॥ १ ॥

१ वेद । २ इति गुणव्यापारामावः । ३ प्रलेकं सम्बन्धते । ४ स्वतः ।
५ अनातोक्त्यलक्षण । ६ वेदवाक्यैः । ७ संवादानुमान । ८ प्रामाण्यस्य । ९ परापेक्षं
प्रामाण्यं न । १० प्रामाण्यं कर्तृ । ११ प्रामाण्यलक्षणस्य धर्मैस्तान्तरभावात्प्रति-
प्रधानोर्ध्वं निर्देशः । १२ अर्थपरिच्छित्तिरूपे । १३ तुणाम् । १४ अविद्यमानत्वेन ।
१५ अर्थपरिच्छित्तिरूपे । १६ प्रमाणस्य । १७ सन्तानान्तरलोचनगुणा अपि सह-
कारिणो भवन्तु अगृहीतत्वाविशेषात् । १८ इन्द्रियनैर्नित्यादि । १९ नवचक्षुर्नैर्लभमिति
शब्दः परोक्ष इति । २० प्रमाणकारणगुणज्ञान । २१ शब्द । २२ भाष्योक्त-
लक्षण । २३ प्रमाणकारणगुणज्ञानस्य । २४ अनपेक्षत्वस्य । २५ प्रथमज्ञानस्य ।
२६ चक्षुः । २७ नैर्नैर्त्वं । २८ शब्दज्ञानात् । २९ ज्ञातम् ।

तत्र ज्ञानान्तरोत्पादः प्रतीक्ष्यः कारणान्तरात् ।
 यावद्धि न परिच्छिन्ना शुद्धित्वावदसत्समा ॥ २ ॥
 तस्यापि कारणे शुद्धे तर्ज्जानस्य प्रमाणता ।
 तस्याप्येवमितीत्यं च न कंचिर्द्वयतिष्ठते ॥ ३ ॥”

[मी० श्लो० सू० २ श्लो० ४९-५१] इति । ५

अत्र प्रतियोगिणीयते । यत्तावदुक्तम्—‘प्रत्यक्षं न तौन्प्रत्येतुं सम-
 र्थम्’ इति; तत्रेन्द्रिये शक्तिरूपे, व्यक्तिरूपे वा तेषामनुपलम्भे-
 नाभावः साध्यते? प्रथमपक्षे—गुणवदोषाणामप्यर्थभावः । न ह्या-
 र्थोपलम्भे प्रत्यक्षत्वे अर्थेयप्रत्यक्षता नामातिप्रसङ्गात् । अथ व्यक्ति-
 रूपे; तत्रापि किमात्मप्रत्यक्षेण गुणानामनुपलम्भः, परप्रत्यक्षेण १०
 र्थः? प्रथमविकल्पे दोषाणामप्यसिद्धिः । न ह्यात्मीयं प्रत्यक्षं
 स्वचक्षुरादिगुणदोषविवेचने प्रवर्त्तते इत्येतस्मात्प्रतीतिकम् ।
 रूपाद्योनादिप्रत्यक्षेण तु चक्षुरादिसङ्गावमात्रमेव प्रतीयते इत्य-
 तोपि गुणदोषसङ्गावसिद्धिः । अथ परप्रत्यक्षेण तै नोपलभ्यन्ते;
 तदसिद्धम् । यथैव हि काचकामलादयो दोषाः परचक्षुषि प्रत्य- १५
 क्षतः परेण प्रतीयन्ते तथा नैर्मल्यादयो गुणा अपि ।

जातमौत्रस्यापि नैर्मल्याद्युपेतैरेन्द्रियप्रतीतेः तेषां गुणरूपत्वाभावे
 जातितैमिरिकैस्याप्युपलम्भमादिन्द्रियस्वरूपव्यतिरिक्तैतिमिरादि-
 दोषाणामर्थ्यभावः । कथं वै रूपादीनां घटादिगुणस्वभावता

१ घटा । २ शब्दलक्षणस्य । ३ अन्येभ्यः । ४ शब्दलक्षणात् । ५ प्रथम-
 ज्ञानकारण(नेत्र)स्य । ६ द्वितीयस्य तृतीयज्ञानस्यापि । ७ दोषरहिते । ८ द्वितीयस्य
 तृतीयस्यापि । ९ ज्ञाने । १० जैनः । ११ जैनैः । १२ स्वकारणाश्रितान्गुणान् ।
 १३ अन्ये । १४ गोलके । १५ गुणानाम् । १६ शक्तिरूपे इन्द्रिये । १७ शक्ति-
 रूपेन्द्रियस्य । १८ गुणदोष । १९ अन्यथा आत्मान्तरप्रत्यक्षत्वामात्रेण तन्ज्ञान-
 प्रत्यक्षताप्रसङ्गात् । २० गुणानाम् । २१ गुणाः । २२ प्राणिनः । २३ किन्तु
 नयनस्वरूपतैव । २४ प्राणिनः । २५ कामलादिकं नयनस्वरूपानतिरेकि जातमात्रस्य
 नयनविशिष्टत्वेनोपलम्भमानत्वाद्गुणवत् । २६ न नैर्मल्यादयो गुणा इति । २७ किञ्च
 स्यात् । २८ घटादिरूपादयो धर्मिणो गुणा न भवन्तीति साध्यम् ।

१ “तत्र किमिन्द्रिये परोक्षशक्तिरूपे गुणानां प्रत्यक्षेणानुपलम्भादभावः साध्यते,
 आदोषिण्य प्रत्यक्षे चक्षुर्गोलकयोर्वा नास्तिरूपे?” स्या० रत्ना० पृ० २४४ ।

२ “जातमात्रस्यापि नैर्मल्यादिनेन्द्रियप्रतीतेर्नैर्मल्यादीनां गुणरूपत्वाभाव इत्युच्यते;
 तर्हि जातमिरिकस्य जातमात्रस्यापि तिमिरादिपरिकरितैरेन्द्रियप्रतीतेरेन्द्रियस्वरूपातिरिक्त-
 तिमिरादिदोषाणामप्यभावः कथञ्च स्यात्? कथञ्चैव रूपादीनामपि कुम्भादिगुणस्वभावता
 चत्परोत्तरस्य कुम्भे तेषां प्रतीयमानत्वाविशेषात् ।” स्या० रत्ना० पृ० २४५ ।

उत्पत्तिप्रभृतिः प्रतीयमानत्वाविशेषात्? 'यञ्चक्षुरादिव्यतिरिक्तै-
भावाभावानुविधायि तत्तत्कारणकम्, यथाऽप्रामाण्यम्, तथा
च प्रामाण्यम् । यच्च तद्व्यतिरिक्तं कारणं ते गुणाः' इत्यनुमानतोऽपि
तेषां सिद्धिः ।

५ यच्चेन्द्रियगुणैः सह लिङ्गस्य प्रतिबन्धः प्रत्यक्षेण गृह्येत,
अनुमानेन वेत्याद्युक्तम्, तदप्ययुक्तम्; ऊहाख्यप्रमाणान्तरेण त-
त्प्रतिबन्धप्रतीतिः । कथं चाप्रामाण्यप्रतिपादकदोषप्रतीतिः? **१**
तत्राप्यस्य समानत्वात् । नैर्मल्यादेर्मलाभावरूपत्वात्कथं गुण-
रूपतेत्यप्यसाम्प्रतम्; दोषाभावस्य प्रतियोगिपदार्थस्वभाव-
१०त्वात् । निःस्वभावत्वे कैर्यत्वधर्माधारत्वविरोधात् खरविषाण-
वत् । तथाविधस्य प्रतीतेरनभ्युपगमाच्च, अन्यथा—

“भौवान्तरविनिर्मुक्तो भौवोऽत्रानुपलम्भवत् ।

अभावः समस्त (सम्मत्स्त)स्य हेतोः किञ्च समुद्भवः॥” []

१ प्रामाण्यं यमि चक्षुरादिव्यतिरिक्तपदार्थकारणकं भवति चक्षुरादिव्यतिरिक्तपदार्थ-
भावाभावानुविधायित्वात् । २ कारणस्य । ३ यथार्थोपलम्बिलक्षणविशिष्टकार्यत्वादि-
त्वस्य । ४ अविनाभावः । ५ गुणसङ्गावे प्रामाण्यस्य सङ्गावस्तदभावे प्रामाण्यस्याभाव
इति । ६ परेण । ७ इन्द्रियगुणलिङ्गस्य । ८ दोषपक्षेऽपि दोषैस्तस्य लिङ्गस्य सम्बन्धः
प्रत्यक्षेण गृह्यतेऽनुमानेन वेत्यादिदोषस्य । ९ भावान्तरस्वभावत्वादभावस्य । १० यद्
(गुण) निरूपणाधीनं निरूपणं यस्य (दोषस्य) तत्प्रतियोगि । ११ गुणः । १२ अया-
वस्य । १३ अजनादिना कियमाणत्वलक्षणकार्यत्व(नैर्मल्यादि) । १४ निस्स्वभावा-
भावस्य । १५ स्वया परेण । १६ अभ्युपगमे । १७ गुणादोषलक्षणं कपालक्षणादन्वो
घटो वा । १८ गुणः कपालं वा । १९ मीमांसकमते । २० यत्रसाङ्गतलोपलम्भ-
लक्षणसङ्गावादपरो घटोपलम्भलक्षणो भावो भावान्तरं तेन विनिर्मुक्तो भावो भूतलोप-
लम्भलक्षणः स एव घटस्यानुपलम्भो यथा । २१ लिङ्गस्य ।

१ “तथाहि—अतीन्द्रियलोचनायाभिता दोषाः किं प्रत्यक्षेण प्रतीयन्ते, उत अनु-
मानेन? न तावत् प्रत्यक्षेण; इन्द्रियादीनामतीन्द्रियत्वेन तद्वत्तदोषाणांमप्यतीन्द्रियत्वेन
तेषु प्रत्यक्षस्याप्रवृत्तेः । नाप्यनुमानेन; अनुमानस्य गृहीतप्रतिबन्धलिङ्गप्रभवत्वान्मु-
श्रममात् । लिङ्गप्रतिबन्धप्रादकस्य च प्रत्यक्षस्यानुमानस्य चात्र विषयेऽसम्भवात् ।
प्रमाणान्तरस्य चात्रानन्तर्यतत्त्वात्तत्त्वेन प्रतिपादयिष्यमाणत्वात् इत्यादि सर्वैरप्रामाण्यो-
त्पत्तिकारणभूतेषु लोचनायाभितेषु दोषेष्वपि समानमिति ।” सन्मति० डी० पू० ९ ।

२ “पदार्थान्तरेण विनिर्मुक्तः लक्तः भिन्न इति यावत्, इत्यभ्युतो भाव पदाभावः
न पुनर्वादादतिरिच्यते इत्यर्थः । तत्र इष्टान्तोऽनुपलम्भः, यथा घटानुपलम्भो
घटातिरिक्तस्य पटादेशपलम्भे पर्यवसति, तथा दोषा[ऽभावो]भावान्तरे पर्यवसती
माच्य इत्याशय इति” गु० टि० । सन्मति० डी० टि० पू० १० ।

इत्यस्य विरोधः ।

तथा च गुणदोषाणां परस्परपरिहारेणावस्थानादोषाभावे गुणसङ्गावोऽवश्यंभ्युपगन्तव्योऽप्यभावे शीतसङ्गाववत्, अभावभावे भावसङ्गाववत् । अन्यथा कथं हेतौ नियमाभावो दोषः स्यात् अभावस्य गुणरूपतावद्दोषरूपत्वस्याप्ययोगात् ? तथाच—^५ नैर्मल्यादिव्यतिरिक्तगुणरहिताच्चक्षुरादेरुपजायमानप्रामाण्यवन्नियमविरहव्यतिरिक्तदोषरहिताच्चेतोरप्रामाण्यमभ्युपजायमानं स्वतो विशेषाभावात् । तथा च—

“अप्रामाण्यं त्रिधा भिन्नं मिथ्यात्वाङ्गीनसंशयैः ।

वैस्तुत्वाङ्घ्रिविधैस्यात्र सम्भवो दुष्टकारणात् ॥”

१०

[मी० श्लो० सू० २ श्लो० ५४]

इत्यस्य विरोधः । ततो हेतोर्नियमविरहस्य दोषरूपत्वे चेन्द्रिये मलापगमस्य गुणरूपतास्तु । तथाच सूक्तमिदम्—

“तस्माद्गुणेभ्यो दोषाणामभावस्तदभावतः ।

अप्रामाण्यद्वयासत्त्वं तेनोत्सैर्गोऽनैपोदितः ॥”

१५

[मी० श्लो० सू० २ श्लो० ६५] इति ।

‘गुणेभ्यो हि दोषाणामभावः’ इत्यभिर्द्वैधता ‘गुणेभ्यो गुणाः’ एवाभिहितास्तैथा प्रामाण्यमेवाप्रामाण्यद्वयासत्त्वम्, तस्य गुणेभ्यो भावे कथं न परतः प्रामाण्यम् ? कथं वै तस्यौ-

१ निस्त्वभावत्वाभावे । २ षट्स । ३ कपालस्य । ४ षट्स । ५ नेव । ६ सावने । ७ अविनाशनाभावः । ८ स्वतः । ९ भाषान्तररहितकारणमात्रजन्यत्वस्य । १० विपर्यय । ११ ज्ञानाभावः स्वभावस्याप्ययम् । १२ अज्ञानस्य ज्ञानभावरूपतया स्वतःसिद्धत्वात् तत्र काचिदपेक्षा । १३ भावरूपत्वात् । १४ सञ्चयविपर्ययरूपस्य । १५ त्रिषु मध्ये । १६ काचकामलादिदोषदूषिताच्चक्षुषः । १७ ग्रन्थस्य । १८ अनुमानस्य प्रामाण्ये गुणानां व्यापारो न वृष्टो यतः । १९ संशयविपर्यय । २० कारणेन । २१ प्रामाण्यम् । २२ अबाधित आस्ते । २३ परेण । २४ गुणाभावरूपत्वादोषाणां दोषाभाव एव च गुणः । २५ यथा गुणेभ्यो दोषाणामभावः । २६ किञ्च ।

1 “दोषाभावो हि पशुंदासदृश्या गुणात्मक एव भवेत्, ततश्च सत्परीक्षानमपि गुणज्ञानात्मकं प्राप्नोति ।” तत्त्वसू० पं० ५० ७९९ । न्यायकुसुमं पृ० १९८ । सङ्ग्रहितं टी० ५० १० । सा० रत्ना० पृ० २४८ ।

त्सैर्गिकत्वम् दुष्टकारणप्रभवासत्यप्रत्ययेष्वभावात्? अप्रामाण्यस्य
चौत्सैर्गिकत्वमस्तु दोषाणां गुणापनेमे व्यापारात् । भवतु वा भौवा-
ङ्गिभ्योऽर्भावः; तथाप्यस्य प्रामाण्योत्पत्तौ व्याप्तियमाणत्वात्कथं
तत्त्वतः? न चाभावस्याऽर्जनकत्वम्, कृत्वाद्यभावस्य परमागा-
५ वस्थितघटादिप्रत्ययोत्पत्तौ जनकत्वप्रतीतेः, प्रमाणपञ्चकाभावस्य
चाभावंप्रमाणोत्पत्तौ ।

योपि—यथार्थत्वायथार्थत्वे विहायोपलम्भसामान्यस्यानुपल-
म्भः—सोपि विशेषनिष्ठत्वात्तत्सामान्यस्य युक्तः । न हि निर्विशेषं
गोत्वादिसामान्यमुपलभ्यते गुणदोषरहितमिन्द्रियसामान्यं वा,

१ नैसर्गिकत्वम् । २ गौत्सैर्गिकत्वम् । ३ किञ्च । ४ कृतः । ५ निराकरणे
नास्ते । ६ गुणरूपात् । ७ गुणेश्चो भिन्नो दोषाणामभाव इत्यर्थः । ८ प्रामाण्यं प्रति ।
९ प्रमितिः । १० न हि सर्वथा यथार्थत्वायथार्थत्वविशेषाङ्गिभ्यमुपलम्भसामान्यम् ।

1. “तस्माद्गुणेश्चो दोषाणामभावात्तदभावतः ।

अप्रामाण्यद्वयासत्त्वं तेनोत्सर्गोऽनपोदितः ॥ ३०५७ ॥

सर्वत्रैवं प्रमाणत्वं निश्चितं चेदिहाप्यसौ ।

पूर्वोदितो दोषगणः प्रसक्त्य चानवस्थितिः । ३०५८ ॥

तस्मादेव च ते न्यायादप्रामाण्यमपि स्वतः ।

प्रसक्तं शक्यते वक्तुं यस्मात्तत्राप्यदः स्फुटम् ॥ ३०६६ ॥

तस्माद्दोषेश्चो गुणानामभावस्तदभावतः ।

प्रमाणरूपनास्तित्वं तेनोत्सर्गोऽनपोदितः ॥ ३०६७ ॥”

तत्त्वसं० पृ० ८०० । न्यायकृतसु० पृ० १५८ । सन्मति० टी० पृ० ९ ।

2. “(पूर्वपक्षः) यदि हि यथार्थत्वायथार्थत्वरूपद्वयरहितमेव किञ्चिदुपलम्भ्यास्त्वं
स्वार्थं भवेत् तदा कार्यत्रैविध्यमध्यवसीयेत् यदुत यथायौपलम्भेश्चैर्गुणवन्ति कारकाणि
अयथायौपलम्भेर्दोषकल्पितानि उभयरूपरहितायाः पुनरुपलम्भैः स्वरूपावस्थितान्ये-
वेति, नत्वेवमस्ति, हेभा हीयमुपलम्भिरनुभूयते यथार्था चायथार्था च । तत्र अयथा-
यौपलम्भिस्तावत् दुष्टकारणजन्यैव संवेद्यते । यथाहि—दुष्टकारणकलापाहुःस्त्रिद्वितकुला-
कादेः कुटिलकल्पादिकार्यमवलोक्यते तथा तिरिदादिदोषदुष्टान्नवनादिकारणकदन्तकाय
कुमुदबाल्म्वदितयप्रलयादिका अयथायौपलम्भिरपि, अत एव उत्पत्तौ दोषापेक्षत्वा-
दप्रामाण्यं परत द्येति कथ्यते । तद्विरमययथायौपलम्भौ दुष्टकारणजन्यत्वेन प्रतिद्वया-
मिदानां एतदीयकार्याभावात् यथायौपलम्भिः स्वरूपावस्थितेभ्य एव कारणेश्चोऽनकत्वमे-
व इति न गुणकल्पनायै सा प्रभवति” (पृ० २४३) (उत्तरपक्षः—) यत्पुनरुक्तम्—
हेभा हीयमुपलम्भिरनुभूयते यथार्था च अयथार्था चेति; तत्र च विप्रतिपत्त्यामहे ।
न हि यथार्थत्वायथार्थत्वे विहाय निर्विशेषमुपलम्भिसामान्यमुपपद्यते विशेषविष्ठत्वात्
सामान्यस्य, न खलु शाब्दकेयबाहुल्येयादिविशेषविकलं गोत्वादिसामान्यं प्रतीयते येनेदमुप-
लम्भिसामान्यं यथार्थत्वायथार्थत्वविशेषरहितं प्रतीयेत” सा० रत्ना० पृ० २४६ ।

येनोपलम्भसामान्येऽप्ययं पर्यनुयोगः स्यात् । लोकं च प्रमाण-
यतोर्मयं परतः प्रतिपत्तव्यम् । सुप्रसिद्धो हि लोकेऽप्रामाण्ये
दोषावष्टयचक्षुषो व्यापारः, प्रामाण्ये नैर्मल्यादियुक्तस्य, 'यत्पूर्वं
दोषावष्टयमिन्द्रियं मिथ्याप्रतिपत्तिहेतुस्तदेवेदानीं नैर्मल्यादि-
युक्तं सम्यक्प्रतिपत्तिहेतुः, इति प्रतीतिः ।

यच्चोच्यते—कंचिन्निर्मलमपीन्द्रियं मिथ्याप्रतीतिहेतुरन्यत्रा-
कादिस्वभावं सत्यप्रतीतिहेतुः, तत्रापि प्रतिपेक्षुर्दोषः स्वच्छनील्या-
दिमले निर्मलाभिप्रायात् । अनेकप्रकारो हि दोषः प्रकृत्यादिमेवात्,
तदभावोपि भावान्तरस्वभावस्तथाविधस्तत एव । न चोत्पन्नं
सद्ब्रह्मानं प्रामाण्ये नैर्मल्यादिकमपेक्षते येनानयोर्भेदः स्यात् । १०
गुणवच्चक्षुरादिभ्यो जायमानं हि तदुपात्तप्रामाण्यमेवोपजायते ।

अर्थतथाभावपरिच्छेदसामर्थ्यलक्षणप्रामाण्यस्य स्वतो भावा-
भ्युपगमे च अर्थान्यथात्वपरिच्छेदसामर्थ्यलक्षणाप्रामाण्यस्याप्य-
विद्यमानस्य केनचित्कर्तुमशक्तेः स्वतो भावोऽस्तु ।

कथं चैवं वैदिनो क्षीनरूपतात्मन्यविद्यमानेन्द्रियैर्जन्यते? तस्या- १५

१ विशेषरहितगोत्वादिसामान्योपलम्भप्रकारेण । गुणदोषरहितेन्द्रियसामान्योपलम्भ-
प्रकारेण च । २ अपि शब्दोपपन्नकारणैः । ३ यतो यथार्थत्वायथार्थत्वे विद्यतेत्यादिः ।
४ उपलम्भसामान्यस्यानुपलम्भलक्षणः । ५ अपि तु विशेषेष्वयं पर्यनुयोगो शतव्यः ।
६ प्रामाण्यामप्रामाण्यं । ७ चक्षुषः । ८ नरे । ९ पुरुषान्तरे । १० पुरुषस्य ।
११ निर्मल इति । १२ वातपित्तादि । १३ नैर्मल्यादिगुण । १४ अनेकप्रकारः ।
१५ गुणश्च । १६ कालभेदः । १७ भ्रान्तं कर्तुं । १८ न हि स्वतोऽसती शक्तिरित्यस्य
दोषमाह । १९ परेण । २० साध्यकारणे । २१ कारणेन । २२ यत्कारणेऽविद्य-
मानं तत्सत एव जायते इत्येवंवादिनः । २३ षट्कारणविशेषितज्ञानरूपता ।

१ "यतो यदि लोकव्यवहारसमाश्रयणेन प्रामाण्याप्रामाण्ये व्यवसाय्येते तदा
अप्रामाण्यवत् प्रामाण्यमपि परतो व्यवसायनीयम्..." सम्प्रति० टी० पृ० ९ ।

२ "किञ्चाप्रामाण्यमप्येवं सत एव प्रसज्यते ।

नहि स्वतोऽसत्तत्सत् कुतश्चिदपि संभवः ॥ २८४३ ॥

...तथाह्यप्रामाण्यमपि विपरीतार्थपरिच्छेदोत्पादिका शक्तिः, शक्यं विद्वानभि-
तायाः कालत्रयेऽप्यकरणत्वं प्रामाण्यवदप्रामाण्यात्मिका शक्तिः सत एव प्रसज्यते ।"

तत्त्वसं० पं० पृ० ७५५ ।

"एवमभिधानेऽयथावस्थितार्थपरिच्छेदशक्येरेव्यप्रामाण्यरूपाया अस्तयाः केनचि-
त्कर्तुमशक्तेस्तदपि स्वतः स्यात् ।"

सम्प्रति० टी० पृ० ९ ।

३ "किंच, यथात्मन्यविद्यमानं रूपं कारणैर्नाधीयते कथं तदा कथमिन्द्रियादयो
ज्ञाने (ज्ञान) रूपतामात्मन्यसतीमादयति विज्ञाने? यथाऽविद्यमानाणि सा तैराधीयते
अर्थपरिच्छेदार्थं किञ्चादधीरन्?" तत्त्वसं० पं० पृ० ७५३ । सम्प्रति० टी० पृ० ९ ।

स्तत्राविद्यमानत्वेऽप्युत्पत्त्युपगमेऽर्थग्रहणशक्त्या कोपराधः कृतो
येनास्यास्ततः समुत्पादो नैर्ज्यते? न चेमाः शक्यः स्वाधा-
रेभ्यः समासादितव्यतिरेकाः येन स्वाधाराभिमतविज्ञानवत्
कारणेभ्यो नोदयमासादयेयुः । पाश्चात्यसंवादप्रत्ययेन प्रामाण्य-
स्याजन्यत्वात्स्वतो भावेऽप्रामाण्यस्यापि सोस्तु । न खलूत्पन्ने
विज्ञाने तदप्युत्तरकालभाविविस्वादादप्रत्ययाद्भवति ।

यञ्चोक्तम्—‘लब्धात्मनां स्वकार्येषु प्रवृत्तिः स्वयमेव तु’ तद-
प्युक्तिमात्रम् ; यथावस्थितार्थव्यवसायरूपं हि संबेदनं प्रमाणम्,
तस्यात्मलाने कारणापेक्षायां कीऽन्यीं खैकीर्ये प्रवृत्तिर्या स्वयमेव
१० स्यात्? घटस्य तु जलोद्बहनव्यापारात्पूर्वं रूपान्तरेणापि स्वहे-
तोरुत्पत्त्येका सृदादिकारणनिरपेक्षस्य तत्र प्रवृत्तिः प्रतीतिनि-
बन्धनत्वाद्भवत्यवस्थायाः । विज्ञानस्य तुत्पत्त्यनन्तरमेव विना-
शोपगमात्कृतो लब्धात्मनो वृत्तिः स्वयमेव स्यात्? तदुक्तम्—

“न हि तत्क्षणमप्यास्ते जीयते वाऽप्रमात्मैकम् ।

१५ यैर्नैर्ग्रहणे पञ्चींद्याप्रियेतेन्द्रियादिवैत् ॥ १ ॥
तेनैर् जन्मैव द्रुक्षेर्विषये र्थापार उच्यते ।

१ परेण । २ कर्तृभूतवा । ३ सापि ज्ञानेऽविद्यमाना इन्द्रियैर्जन्यताम् । ४ परेण ।
५ ज्ञानेभ्यः । ६ प्रातमेदाः । ७ आक्षेपे । ८ यथा शक्त्या आचारीभूतविज्ञानं
कारणेभ्यो न तथेमा इत्यर्थः । ९ परेणाङ्गीकृते । १० परेण । ११ प्रामाण्यं कथ्यते ।
१२ आक्षेपोक्तिः । १३ प्रामाण्यम् । १४ अर्थपरिच्छिन्निरूपे प्रवृत्तिरूपे च ।
१५ न कापि । १६ रिक्तारूपेण । १७ जलाहरणलक्षणे स्वकार्ये । १८ परमते ।
१९ न हि । २० अप्रमिति । २१ आक्षेपे । २२ ज्ञानस्य लक्षणान्तरे अव-
स्थानप्रकारेण अप्रमात्मकमवनप्रकारेण । २३ उत्पत्त्यनन्तरम् । २४ आप्तनः ।
२५ क्षणमपि नास्ते अप्रमात्मकं वा न जायते येन प्रकारेण । २६ व्यापृतिः ।

१ “अप्रामाण्यमपि चैवं स्वतः स्यात्, नहि तदपि उत्पन्ने ज्ञाने विसवादाप्रल-
यादुत्तरकालभाविवः तत्रोत्पद्यते इति कल्पनिदम्बुपगमः ।”

सन्मति० टी० पृ० १० ।

२ “ततश्च स्वाधारेणोपशक्तिकरूपप्रामाण्यात्तलाने चैत् कारणापेक्षा कान्या स्वकार्ये
प्रवृत्तिर्या स्वयमेव स्यात्...घटस्य जलोद्बहनव्यापारात्पूर्वं रूपान्तरेणा-
सृक्तं सृदादिकारणनिरपेक्षस्य स्वकार्ये प्रवृत्तिरिति विसदृशमुदाहरणम् ।”

सन्मति० टी० पृ० १० ।

३ “यसु ज्ञानं त्वयापीठं जन्मानन्तरमस्मिन् ।

लब्धात्मनोऽसतः पश्चाद्वापारस्तस्य कीदृशः ॥ २९२२ ॥

तत्सर्त० पृ० ७७० ।

तदेवै च प्रैमारूपं तद्वती करणं च धीः ॥ २ ॥”

[मी० श्लो० सू० २ श्लो० ५५-५६] इति ।

किञ्च, प्रमाणस्य किं कार्यं यत्रास्य प्रवृत्तिः स्वयमेवोच्यते-
यथार्थपरिच्छेदः, प्रमाणमिदमित्यवसायो वा ? तत्राद्यविकल्पे
‘आत्मानमेव करोति’ इत्यायातम्, तच्चायुक्तम्; स्वात्मनि
‘कियाविरोधात् । नापि प्रमाणमिदमित्यवसायः; आन्तिकारण-
सङ्गावेन कश्चित्तदभावात्, कचिद्विपर्ययदर्शनाच्च ।

अनुमानोत्पादकहेतोस्तु साध्याविनाभावित्वमेव गुणो यथा
तद्वैकल्प्यं दोषः । साध्याविनाभावस्य हेतुस्वरूपत्वाद्गुणरूपत्वाभावे
तद्वैकल्प्यस्यापि हेतोः स्वरूपविकलत्वाद्दोषता मा भूत् । १०

अंगामस्य तु गुणैर्वत्पुरुषप्रणीतत्वेन प्रामाण्यं सुप्रसिद्धम्,
अपौरुषेयत्वस्यासिद्धेः, नीलोत्पलादिषु दहनादीनां विवर्त्यप्रतीति-
जनकत्वोपलम्भेनानैकान्तात्, परस्परविरुद्धभावचानियोगाद्यर्थेषु

- १ एवं चेद्विज्ञानस्य कर्णरूपता क्रियारूपता न स्यादित्युक्ते आह । २ जन्मेव ।
- ३ परिच्छिन्धि । ४ सञ्जाति । ५ तयोर्मध्ये । ६ सत्स्वरूपम् । ७ तत्र प्रवर्तना-
त्तस्य । ८ उत्पत्तिरुत्पत्त्याया । ९ सदोषजनन । १० सत्यबलव्याने प्रमाणस्यभावे ।
- ११ आन्तिकाने प्रमाणमित्यव्यवसायदर्शनात् । १२ शब्दस्य । १३ पुनः ।
- १४ “पूर्वाचार्यो हि शाल्वं वेदे भट्टस्तु भावनाम् । प्रामाकरो निनोगं तु शङ्करो
विपिनमप्रवीत्” । १५ आयनो धर्मा प्रामाण्यं भवतीति साध्यम् । १६ स्वर्ग ।
- १७ यदपौरुषेयं तत्प्रमाणमित्युक्तऽनेकान्तात् । १८ विधि । १९ बोधे ।

1 “नच ज्ञानस्य किञ्चित्कार्यमस्ति यत्र व्याप्तिरेत । स्वार्थपरिच्छेदात्प्रकमस्तीति चेन्न;
ज्ञानपर्यायत्वात्स आत्मानमेव करोतीति स्रष्ट्याद्यतमेतत् । प्रमाणमेतत् इति निश्चय-
जननं स्वकार्यमिति चेन्न; कचिदनिश्चयाद्विपर्ययदर्शनाच्च ।” तत्सर्वं० पं०
पृ० ७७० । सन्मति० टी० पृ० ११ ।

2 “अविनाभावनिश्चयस्यैव गुणत्वात् तदनिश्चयस्य विपरीतनिश्चयस्य च दोष-
त्वात् ।” सन्मति० टी० पृ० ११ ।

3 “पुनरप्यपौरुषेयस्यानैकान्तिकया प्रतिपादयन्नाह—
न नराकृतमित्येव यथार्थज्ञानकारि तु ।

दृष्टं हि दाववह्यादेर्मिथ्याज्ञानेऽपि हेतुता ॥ २४०३ ॥

नहि पुरुषदोषोपधानादिवार्षेयं ज्ञानविभ्रमः, तद्रहितानामपि दाववह्यादीनां
नीलोत्पलादिषु वितथज्ञानजननात् । दावो वनगतो बहिः, स पुनर्यः स्वयमेव वेण्वा-
दीनां सङ्घर्षसमुद्भूतः स इह व्यभिचारविषयत्वेन द्रष्टव्यः । यत्स्वरणिनिर्मेयनादि-
पुरुषैर्निर्द्वैतं तत्रापौरुषेयत्वासंभवात् ततो न हेतोर्व्यभिचार इति भावः । आदिश-
ब्देन मरीच्यादिपरिग्रहः । तामेव मिथ्याज्ञानहेतुतां दर्शयन्नाह—

प्रामाण्यप्रसङ्गाच्च । निखिलवचनानां लोके गुणवर्तुरूपप्रणीतत्वेन
प्रामाण्यप्रसिद्धेः, अत्रान्यथापि तत्परिकल्पने प्रतीतिविरोधाच्च ।

अपि च अपौरुषेयत्वेऽप्यागमस्य न स्वतोऽर्थे प्रतीतिजनकत्वम्
सर्वदा तत्प्रसङ्गात् । नापि पुरुषप्रयत्नाभिर्व्यक्तस्य; तेषां रागा-
५ दिदोषदुष्टत्वेनोपगमात् तत्कृताभिव्यक्तैर्यथार्थतानुपपत्तेः । तथैव
अप्रामाण्यप्रसङ्गभयादपौरुषेयत्वाभ्युपगमो गजज्ञानमनुकरोति ।
तदुक्तम्—

“असंस्कार्यतया पुंभिः सर्वथा स्यान्निरर्थता ।

संस्कारोपगमे व्यक्तं गजज्ञानमिदं भवेत् ॥ १ ॥”

१०

[प्रमाणवा० १।२३२]

तत्र प्रामाण्यस्योत्पत्तौ परानपेक्षा ।

नैपि ज्ञतौ । साहि निर्निमित्ता, सन्निसन्निमित्ता वा ? न ताव-
न्निसन्निमित्ता; प्रतिनियतदेशकालस्वभावाभावप्रसङ्गात् । सन्निमि-
त्तत्वे किं सन्निमित्ता, अन्यनिमित्ता वा ? न तावत्सन्निमित्ता,
१५ सन्निमित्तविदितत्वानभ्युपगमात् । अन्यनिमित्तत्वे तत्किं प्रत्यक्षम्,
उतानुमानम् ? न तावत्प्रत्यक्षम्; तस्य तत्र व्यापारभावात् ।
तद्धीन्द्रियसंयुक्ते विषये तद्व्यापारादुर्दयमासाद्यत्प्रत्यक्षव्यपदेशं
लभते । न च प्रामाण्येनेन्द्रियाणां संप्रयोगो येन तद्व्यापारज-
नितप्रत्यक्षेण तत्प्रतीयेत । नापि मनोव्यापारजैः प्रत्यक्षेण; पूर्व-
२० विधीनोपगमाभावात् ।

१ वेदे । २ अपौरुषेयत्वेन । ३ अन्यथा । ४ हासस्य । ५ अपौरुषेयत्वस्य ।
६ अपौरुषेयस्य वेदस्य । ७ वेदस्य पुरुषकृताभिव्यक्तितोऽर्थे प्रतीतिजनकत्वे च । ८ तत्र
परस्य । ९ वेदस्य । १० निश्चिता । ११ पुंभिः । १२ गुण । १३ मीमांसकमत-
प्रक्षेपं करोति । १४ अन्यथा । १५ प्रामाण्यमात्मानं स्वेनैव जानाति । १६ अल्पत-
प्ररोक्षत्वाद्विज्ञानस्य । १७ मीमांसकैः । १८ प्रामाण्यज्ञतौ । १९ जायमानस्य ।
२० सन्निकर्षः । २१ अपि तु न । २२ तद्वतीयेत । २३ प्रामाण्यज्ञतिरूप ।
२४ प्रामाण्यज्ञतेः ।

रक्तं नीलसरोजं हि बह्मयालोके स हीम्यते ।

बह्मयादिः कृतकत्वाच्च हेतुरपपद्यते ॥ २४०४ ॥

तत्सर्वं० पं० पृ० ६५६ ।

१ “यतो निश्चयस्तत्र भवन् किं निनिमित्तः उत सन्निमित्तः इति कल्पनादयम् ।
तत्र न तावन्निसन्निमित्तः; प्रतिनियतदेशकालस्वभावाभावप्रसङ्गात् । सन्निमित्तत्वेऽपि किं
सन्निमित्तं उत स्वभ्यतिरिक्तनिमित्तः ?”

सम्पत्ति० टी० पृ० १३ ।

नाप्यनुमानतः, लिङ्गाभावात् । अथार्थप्राकेष्ट्यं लिङ्गम्; तर्कि-
यथार्थत्वविशेषणविशिष्टम्, निर्विशेषणं वा? प्रथमपक्षे तस्य
यथार्थत्वविशेषणग्रहणं प्रथमप्रमाणात्, अन्यसाहा? आद्यपक्षे
परस्परपक्षयोः दोषः । द्वितीयेऽनवस्था । निर्विशेषणात्प्रतिपत्तौ
चातिप्रसङ्गः । प्रत्यक्षानुमानान्यां तत्रैप्रामाण्यनिश्चये स्वतः प्रामा-
ण्यव्याघातश्च ।

यैर्वा संवादात्पूर्वस्य प्रामाण्ये चक्रकदूषणम्; तदप्यसङ्गतम्; न
खलु संवादात्पूर्वस्य प्रामाण्यं निश्चित्य प्रवर्तते, किन्तु बहिरूपदर्शने
सत्येकदा शीतपीडितोऽन्यार्थं तद्देशमुपसर्पन् कृपालुना वा केन-
चित्तद्देशं बहिरूपदर्शने तत्स्पर्शविशेषमनुभूय तद्रूपस्पर्शयोः सम्ब-
न्धमवगम्यानभ्यासदशायां 'ममायं रूपप्रतिभासोऽभिर्मैतार्थ-
क्रियासाधनः एवंचिधप्रतिभासत्वात्पूर्वोत्पन्नैवंविधप्रतिभासवत्'
इत्यनुमानोत्सार्धनैर्निर्भासिज्ञानस्य प्रामाण्यं निश्चित्य प्रवर्तते ।
कृषीबलाद्योपि ह्यनभ्यस्तबीजादिनिषये प्रथमतः तावच्छरावा-

- १ प्राकृत्यं प्रामाण्याविनाभावो भवति तच्च यत्र शान्तिश्च तत्र प्रामाण्यमिति ।
२ प्रमाणप्रामाण्यमस्ति यथार्थप्राकृत्यात् । ३ प्राकृत्यमात्रम् । ४ लिङ्गम् । ५ प्रथम-
बलज्ञानात् । ६ प्रमाणात् । ७ प्रमाणभूतप्रथमज्ञानात्साधनस्य यथार्थत्वविशेषणग्रहणं
गृहीतविशेषणविशिष्टसाधनात्म्यमज्ञानस्य प्रामाण्यनिश्चय इति । ८ लिङ्गात् ।
९ प्रामाण्यव्यक्तौ । १० भिव्याज्ञानेऽपि प्रामाण्यं स्वादिसर्वः । ११ पूर्वज्ञानप्राप्तिं द्वितीयं
प्रलक्षम् । १२ पूर्वज्ञानस्य । १३ किञ्च । १४ जयक्रियारूपात् । १५ परोक्षम् ।
१६ जलविज्ञानस्य । १७ नरः । १८ नरः । १९ पुण्यायं । २० गच्छन् ।
२१ छण्यस्पर्शम् । २२ जविनाभावम् । २३ मास्तर । २४ शीतापहरणलक्षणम् ।
२५ मित्राङ्गमास्तररूपम् । २६ शीतापनोदस्य साधनमग्निः । २७ जलम् ।

१ "तदि फलं निर्विशेष्यं वा स्वकारणस्य शास्त्र्यापारस्य प्रामाण्यमनुभाषयेत्,
यथार्थत्वविशिष्टं वा ।" न्यायमं० पृ० १६८ । न्यायकुमु० पृ० २०१ । सन्मति०
टी० पृ० १४ । सा० रत्ना० पृ० २५६ ।

२ "यत्र संवादज्ञानात् साधनज्ञानप्रामाण्यनिश्चये चक्रकदूषणमभ्युपाधिः; तद-
सङ्गतम्; यदि हि प्रथममेव संवादज्ञानात् साधनज्ञानस्य प्रामाण्यं निश्चित्य प्रवर्तते
तदा सात्त्विकम्, यदा तु बहिरूपदर्शने सत्येकदा शीतपीडितोऽन्यार्थं तद्देशमुपसर्प-
न् तत्स्पर्शमनुभवति कृपालुना वा केनचित्तद्देशं बहिरूपदर्शने; तदाऽतौ बहिरूपदर्शन-
ज्ञानयोः सम्बन्धमवगच्छति एवं स्वरूपो भावः पूर्वभूतप्रयोजननिषर्तकः इति... ।"
सन्मति० टी० पृ० १६ । सा० रत्ना० पृ० २५६ ।

३ "कृषीबलाद्योऽपि हि जनन्यस्ते बीजादिगोचरे प्रथमम् विहितमनुजरीराव-
सिक्तसुकुमारशुद्धि शरावाद्वा कतिपयशास्त्रादिवीजकण्यगभाषपनादिना बीजाबीजे

दावल्पतरवीजवपनादिना बीजाबीजनिर्धारणाय प्रवर्तन्ते, पश्चाद्बृष्टसाधर्म्यात्परिशिष्टस्य बीजाबीजतया निश्चितस्योपयोगाय परिहाराय च अभ्यस्तबीजादिविषये तु निःसंशयं प्रवर्तन्ते ।

यच्चाभ्यघाति-संवादप्रत्ययात्पूर्वस्य प्रामाण्यवैचरणेऽनवस्था ५ तस्याप्यपरसंवादापेक्षाऽविशेषात्; तदप्यभिधानमात्रम्; तस्य संवादरूपत्वेनापरसंवादापेक्षाभावात् । प्रथमस्यापि संवादापेक्षा मा भूदित्यसमीचीनम्; तस्यासंवादरूपत्वात्, अतः संवादकद्वारेणैवास्य प्रामाण्यं निश्चीयते ।

अर्थक्रियाज्ञानं तु साक्षादविसंवाद्यैर्भक्त्यालम्बित्वाच्च तैश्चा १० प्रामाण्यनिश्चयमार्कं । तेन 'कस्यचित्तु यदीष्येत' इत्यादि प्रलाप-मात्रम् । न चार्थक्रियाज्ञानस्याप्यवस्तुवृत्तिशङ्कायामन्यप्रमाणा-पेक्षयानवस्थावतारः, । अस्यार्थभावेऽदृष्टत्वेन निरारेकत्वात् । यथैव हि-किं 'गुणव्यतिरिक्तेन गुणिनाऽर्थक्रिया सम्पादिता

१ परेण । २ ज्ञानस्य । ३ जनैः । ४ संवादप्रलयो धर्मी अपरसंवादापेक्षो भवतीति साध्यं प्रलयत्वात् । ५ प्रलयत्वेन । ६ जलादिज्ञानस्य । ७ पूर्वज्ञानविषये उच्यते । ८ असंवादरूपत्वं यतः । ९ प्रेक्षावक्तिः । १० संवाद । ११ ज्ञानपानावगाहनादि । १२ पुनः । १३ यतः (कर्मेधारयसमाप्तः) । १४ वसः । १५ अविज्ञानादापेक्षाप्रकारेण । १६ भवति । १७ कारणेन । १८ स्वतः पक्षप्रमाणता । प्रथमस्य तदाभावे प्रेक्ष्यः केन हेतुना । १९ अपिचन्दास्ताधनज्ञानस्य ग्रहणम् । २० विषयानेपि ज्ञानादिके अविद्यमानज्ञानादिलक्षणाऽवस्तुवृत्तिशङ्कायाम् । २१ निःसंशयत्वात् । २२ रूपस्पर्शादि । २३ योगः ।

निर्धार्य पश्चाद्बृष्टसाधर्म्येणानुमानात् परिशिष्टस्य बीजाबीजतया निश्चितस्योपादानाय हानाय च यतन्ते । तदनन्तरं पुनरभ्यस्तो बीजादिगोचरे परिदृष्टसाधर्म्यादिलिङ्गनिरपेक्षा पव निःशङ्कं कीनाशाः केदारेषु बीजवपनाय प्रवर्तन्ते ।" स्या० रत्ना० पृ० २५५ ।

1 "उच्यते वस्तुसंवादः प्रामाण्यमभिधीयते ।

तस्य चार्थक्रियाम्वासन्नानादन्यत्र लक्षणम् ॥ २९५५ ॥

अर्थक्रियावभासं च ज्ञानं संवेद्यते स्फुटम् ।

निश्चीयते च तन्मात्रभाष्यामर्शनचेतसा ॥ २९६० ॥

अतस्तस्य स्वतः सम्यक् प्रामाण्यस्य विनिश्चयात् ।

नोचरार्थक्रियाप्राप्तिप्रलयः समपेक्ष्यते ॥ २९६१ ॥

ज्ञानप्रमाणभावे च तस्मिन् कार्यावभ्यासिनि ।

प्रत्यये प्रथमेप्यसाद्धेतोः प्रामाण्यनिश्चयः ॥ २९६२ ॥

तत्त्वसं० पृ० ७७८ । सम्प्रति० ते० पृ० १४ ।

2 "यथा अर्थक्रिया किमवयवव्यतिरिक्तेन अवयविनाऽर्थेन निष्पादिता, उदाह्य-तिरिक्तेन, आदौस्त्रिगुणरूपेण, अथानुभवरूपेण, किंवा त्रिगुणात्मकेन, परमाणुसम्-

उताऽव्यतिरिक्तैर्नोभयरूपेणौभयैरूपेण, त्रिगुणात्मना चार्थेन, परमाणुसमूहलक्षणेन वा' इत्याद्यर्थक्रियार्थिनां चिन्ताऽनुपयोगिनी- निष्पन्नत्वाद्वाच्छित्तफलस्य, तथेयमपि 'किं वस्तुभूतायामवस्तु- भूतायां चार्थक्रियायां तत्संवेदनम्' इति । वृद्धिच्छेदादिकं हि फलमभिहितम्, तच्च निष्पन्नं वृद्धि(वृद्धि)योगिज्ञानानुभवे किं तच्चिन्तासाध्यम् ?

न च स्वमार्थक्रियाज्ञानस्यार्थाभावेऽपि दृष्टत्वाज्जाप्रदर्थक्रिया- ज्ञानेषु तथा शङ्काः तस्यैतद्विपरीतत्वात् । स्वमार्थक्रियाज्ञानं हि सबाधम् ; तद्ब्रह्मरेवोत्तरकालमन्यथाप्रतीतेः न जाग्रद्देशामांवीति ।

१ साहचर्यावाची । २ व्यतिरिक्तान्यतिरिक्त । ३ जैनमीमांसकी । ४ बौद्ध- विज्ञेयः । ५ सत्त्वरजस्तमोलक्षणा गुणाः । ६ साहचर्यम् । ७ प्रधानेन । ८ बौद्धः । ९ अवयवी । १० योगः । ११ नृणाम् । १२ ज्ञानपानानवाहनादेः । १३ अर्थ- क्रियाज्ञानचिन्ता । १४ अङ्गमहापहार । १५ पुरुषस्य । १६ पुरुषेण । १७ का । १८ अर्थक्रियाज्ञानम् । १९ न सबाधम् ।

हात्मकेन वा, अथ ज्ञानरूपेण, आहोस्विद सद्दृतिरूपेण इत्यादिचिन्ता अर्थक्रियामात्र- धिना निष्प्रयोजना निष्पन्नत्वाद्वाच्छित्तफलस्य, तथेयमपि किं वस्तुतस्यामर्थक्रियायां तत्संवेदनज्ञानग्रुपबाधते आहोस्विदवस्तुतस्याम् इति । वृद्धाहविच्छेदादिकं हि फलम- भिवाञ्छितम्, तच्चाभिनिष्पन्नम्, तद्वियोगिज्ञानस्य स्वसंविदितस्योदये इति तच्चिन्ताया निष्फलत्वम् ।”

सम्पत्ति० टी० पृ० १४ ।

I “तथाहि लोके सद्धि (वृद्धि) च्छेदादिकं फलमभिवाञ्छितम् तच्चाह्लादपरि- तापादिरूपज्ञानातिर्यावादेव निर्वृत्तमित्येतावतैवाहितसन्तोषा निवर्तन्ते जना इति स्वत एव सिद्धिरुच्यते ।”

तत्सं० पं० पृ० ७७८ ।

2 “ननु चार्थक्रियामाप्ति ज्ञानं स्वप्नेऽपि विद्यते ।

न च तस्य प्रमाणत्वं तद्वैतोः प्रथमस्य च ॥ २९८० ॥

नैव आन्ता हि सावस्था सर्वा दाहानिवन्धना ।

न दाहवस्तुसवादस्तास्त्वस्वास्तु विद्यते ॥ २९८१ ॥

यवमर्थक्रियाज्ञानात् प्रमाणत्वमिच्छिये ।

नानवस्था पराकाङ्क्षामिनिवृत्तेरिति स्थितम् ॥ २९८६ ॥

किञ्च, प्रमाणमविसंवादिज्ञानमित्यनेन अर्थक्रियाविगमलक्षणफलप्रापकहेतोरानन्देर्द लक्षप्रसुष्यते, तत्र च फलज्ञाने लक्षणानवतारात् कर्म तस्यापि प्रामाण्यमवसीयते इत्यस्य चोपस्थावकाशः कर्म भवेत् ? तथाहि-अङ्कुरस्य हेतुर्बीजम् इति लक्षणे सति अङ्कुरस्यापि कर्म बीजत्वमिति किं विदुषां प्रश्नो जायते ? यथा च बीजस्य तद्भावोऽङ्कुरदर्शनादवगम्यते तथा प्रमाणस्यापि तद्भावोऽर्थक्रियालक्षणफलदर्शनात् ।”

तत्सं० पं० पृ० ७८४ । न्यायकुसु० पृ० २०२ । सम्पत्ति० टी० पृ० १५ ।

प्र० क० मा० १५

यदि चात्रार्थक्रियाज्ञानमर्थमन्तरेण स्यात् किमन्यज्ज्ञानमर्थाव्यभिचारि यद्वलेनार्थव्यवस्था ?

अपि च, 'अर्थक्रियाहेतुर्ज्ञानं प्रमाणम्' इति प्रमाणलक्षणं तर्कर्थफलेव्याशङ्कते ? यथा 'अङ्कुरहेतुर्वीजम्' इति बीजलक्षणस्याऽङ्कुरेऽभावात् नैवं प्रश्नः 'कथमङ्कुरे बीजरूपता निश्चीयते' इति, एवमत्रापि ।

यच्चेदमुक्तम् "श्रोत्रधीश्चाप्रमाणं स्यादित्तराभिरसङ्गतिः(तिः)।"

[मी० श्लो० सू० २ श्लो० ७७]

इति; तदप्ययुक्तम्; वीणादिरूपविशेषोपलम्भतस्तच्छब्दविशेषे १० शङ्काव्यावृत्तिप्रतीतेः कथमित्तराभिरसङ्गतिः ? श्रोत्रबुद्धेरर्थक्रियातुभवरूपत्वेन स्वतः प्रामाण्यसिद्धेश्च गन्धादिबुद्धिबत् । संशयाद्यभावोद्धान्येन संकल्पपेक्षा । यत्रैव हि संशयादिसंज्ञैव साऽपेक्षते नान्यत्र अतिप्रसङ्गात् ।

अथोच्यते अर्थक्रियाऽविसंवादात्पूर्वस्य प्रामाण्यनिश्चये मणि- १५ प्रभायां मणिवुद्धेरपि प्रामाण्यनिश्चयः स्यात्; तदप्यपर्यालोचिताभिमानम्; एवंभूतार्थक्रियाज्ञानान्मणिवुद्धेरप्रामाण्यस्यैव निश्च-

१ किञ्च । २ जाग्रदृश्यामन्यर्थक्रियायाम् । ३ स्थितिः । ४ किन्तु नैव शङ्कनीयम् । ५ परेण । ६ अर्थक्रियाज्ञाने प्रमाणलक्षणशङ्का कथं स्यात् । अर्थक्रियाज्ञानरूपे फले अर्थक्रियाहेतुतया प्रमाणात्ता निश्चीयते कथमिति प्रश्नः स्यात् । ७ स्वग्रन्थे । ८ चक्षुरादिजनितवीभिः । ९ रूपादिज्ञानैः । १० अर्थस्य शब्दस्य क्रिया, उत्पद्यमानत्वं तस्यानुभवरूपत्वेन । ११ किञ्च । १२ स्पर्शरस । १३ अपरेण सजातीयेनार्थक्रियाज्ञानेन । १४ संवाद । १५ ज्ञाने । १६ स्यात् । १७ अन्यथा । १८ प्रतीयमानेपि स्वकीये सुखे अन्यापेक्षा स्यात् । १९ ज्ञानस्य । २० अङ्गीक्रियमाणे । २१ ता । २२ भिन्नदेशार्थसम्बन्ध ।

1 "....तस्माच्छ्रोत्रधीः प्रमाणं भवत्येव तदन्यामिच्छुरादिमितिभिर्योक्तसम्बन्धसद्भावात्, तथाहि—दूराद् वीणादिशब्दअवणात् तदर्थिनो वेण्वादिशब्दसाधर्म्यदुपजातसंशयस्य पुंसः प्रवृत्तौ वीणारूपदर्शनाद्यः प्रागुपजातः संशयः किमर्थं वीणाध्वनिः उत वेणुगीतादिशब्द इति स व्यावर्तते । यत्र च देशे मृदङ्गादिप्रतिशब्दअवणात् प्रवृत्तस्य तदर्थभिगतितर्कं भवति तत्र विसंवादात्प्रामाण्यं प्रत्येति ।" तत्त्वसं० पं० पृ० ८०३ ।

2 "यत्र शङ्के पीतज्ञानं मणिप्रभायां मणिज्ञानं तदप्यप्रमाणमेव, तत्र यथार्थप्रतिभासावसाययोरभावात् । प्रतिभासावसायिके प्रत्यक्षस्य ग्रहणाग्रहणे नत्वर्थान्विसंवादादभावात् नचान्न यथा स्वभावदेशकालावस्थितवस्तुप्रतिभासोऽस्ति नरा (वा ?) देशकालः स एव भवति । देशकालयोरपि वस्तुस्वभावभेदकत्वात् ।" तत्त्वसं० पं० पृ० ७८२ । न्यायकुमुद० पृ० २०२ ।

यात्तेन संवादाभावात् । कुञ्चिकाविवरस्यायां हि मणिप्रभायां मणिज्ञानम् अपर(अपवर)कान्तदेशसम्बन्धे तु मणावर्थक्रियाज्ञान-मिति भिन्नदेशार्थग्राहकत्वेन भिन्नविषययोः पूर्वोत्तरज्ञानयोः कथमविसंवादास्तिमिराद्याहितविभ्रमज्ञानेवत् ?

यश्चान्यदुक्तम्—कचित्कूटेपि जयतुक्ते ज्ञानं प्रमाणं स्यात्कति-^५ पर्यार्थक्रियादर्शनात्, तत्र कूटे कूटज्ञानं प्रमाणमेवाऽकूटज्ञानं तु न प्रमाणं तत्संवादाभावात् । सम्पूर्णचेतनालामो हि तस्यार्थक्रिया न कतिपयचेतनालाम इति ।

यच्चैकविषयं भिन्नविषयं वा संवादाकमित्युक्तम्; तत्रैवाधार-त्रातिरूपादीनां तादात्म्यप्रतिबन्धेनान्योन्यं व्यभिचारभावात् । १० ज्योत्स्नाशरसादिज्ञानं रूपाद्यविनाभावि रसादिविषयत्वात् । भिन्न-विषयत्वैर्व्योतिशब्दितविषयाभावेऽस्य रूपज्ञानस्य प्रामाण्यनिश्चयात्म-कम् । इदमर्थे हि विभिन्नदेशाकारस्यापि वीणादे रूपाविशेषदर्शने शब्दविशेषे शब्दाव्यावृत्तिः किं पुनर्नो^३ ? अविनाभावो हि संवाद्य-संवादाकभावनिमित्तं नोन्यत् ।

१५

१ पूर्वज्ञानस्य । २ अमृत । ३ जनित । ४ विभ्रमज्ञानस्य यथा भिन्नदेश-सम्बन्धार्थक्रियाज्ञानरूपसंवादात् प्रामाण्यम् । ५ शुक्तिकादी रजतादिज्ञानं विभ्रमः । ६ परेण । ७ द्रव्ये । ८ दूषणमुच्यते । ९ अकूटजयतुक्त्वात् । १० अर्थ । ११ पूर्व-ज्ञानस्य । १२ परेण । १३ मातु(लि)जादि । १४ सन्वन्धेन । १५ द्वितीयम् । १६ रूपरसज्ञानयोः । १७ ज्योत्स्नाभावि । १८ भावस्य ज्योत्स्नाभाविनः । १९ भावस्य । २० रूपादी । २१ विभिन्नविषययोः रूपरसज्ञानयोः शब्दाव्यावृत्तिः कुत इत्युक्ते आह । २२ एकविषयत्वं भिन्नविषयत्वं वा ।

१ “एकसन्तानवर्तिनो विषयद्वयस्याविनाभावादन्यालम्बनमपि ज्ञानमन्यविषयस्य ज्ञानस्य प्रामाण्यं साधयिष्यति, नहि तौ रूपरसज्ञौ विनिर्भागेन वर्तेते एकसामग्र्य-बीचत्वात् ।”

तत्त्वसं. पं० पृ० ८०२ ।

२ “कन्निस्खलु समानजातीयं संवादकज्ञानं भवति, यथा देवदत्तस्य प्रथमं घटज्ञाने प्रवृत्ते वशदत्तस्यैव तसिन्धेव घटे घटज्ञानम् ।” कन्निषु भिन्नजातीयमपि, संवादकज्ञानं भवति । यथा प्रथमस्य प्रवर्तकबलज्ञानस्य उत्तरकालमाविज्ञानपानावगाहनावर्थक्रिया-ज्ञानम् ।” भवति हि एकसन्तानप्रभवम् अन्वकारकञ्चित्कालेकप्रभवस्य कुम्भज्ञानस्य उत्तरकालमावितिस्तिमिरालोकप्रभवं तसिन्धेव कुम्भे कुम्भज्ञानम् । भिन्नविषयं तु एकसन्तानप्रभवं संवादकं यथा रथाङ्गमिश्रनादैकतरदसैनस्य अन्यतरदसैनम् ।” न खलु निश्चितं भिन्नविषयं संवेदनं संवादकमिति नूनम् । किं तर्हि ? यत्र पूर्वोत्तरज्ञान-गोचरयोः अविनाभावस्तत्रैव भिन्नविषयत्वेऽपि ज्ञानयोः संवाद्यसंवादाकभाव इति ।” अविनाभावो हि संवाद्यसंवादाकभावनिमित्तं नान्यत् ।” सा० रत्ना० पृ० २५३ ।

संवादज्ञानं किं पूर्वज्ञानविषयं तदविषयं वा; इत्याद्यप्यसमीक्षिताभिधानम्; न खलु संवादज्ञानं तद्गाहित्वेनास्य प्रामाण्यं व्यवस्थापयति । किं तर्हि ? तत्कार्यविशेषत्वेनाश्यादिकमिव धूमादिकम् ।

सर्वप्राणभृतां प्रामाण्ये सन्देहविपर्ययासिद्धेश्च; इत्यप्ययुक्तम्; ५ प्रेक्षापूर्वकारिणो हि प्रमाणाप्रमाणचिन्तात्यामधिक्रियन्ते नेतरे । ते च कासाञ्चिदज्ञा(ञ्चिञ्ज्ञा)नव्यकीनां विसंवाददर्शनात्जाताशङ्काः कथं ज्ञानमात्रत्वं 'अयमित्थमेवार्थः' इति निश्चिन्वन्ति प्रामाण्यं वास्य ? अन्यथैषां प्रेक्षावत्तैव हीयेत ।

प्रमाणे बाधककारणदोषज्ञानाभावात्प्रामाण्यावसायः; इत्यप्य-
१० मिधानमात्रम्; तदभावो हि बाधकाग्रहणे, तदभावनिश्चये वा स्यात् ? प्रथमपक्षे भ्रान्तज्ञाने तद्भावेपि तदग्रहणं कञ्चित्कालं दृष्टम्, एवमत्रापि स्यात् । 'भ्रान्तज्ञाने कञ्चित्कालमग्रहेपि कालान्तरे बाधकग्रहणं, सम्यग्ज्ञाने तु कालान्तरेपि तदग्रहणम्' इत्ययं विमर्गः सर्वविदां नास्मादशाम् । बाधकाभावनिश्चयोपि १५ सम्यग्ज्ञाने प्रवृत्तेः प्राक्, उत्तरकालं वा ? आद्यविकल्पे भ्रान्तज्ञानेपि प्रमाणत्वप्रसङ्गः । द्वितीयविकल्पे तन्निश्चयस्याकिञ्चित्करत्वं तन्मन्तरेणैव प्रवृत्तेरुत्पन्नत्वात् । न च बाधकाभावनिश्चये किञ्चिन्मिचित्तमस्ति । अनुपलब्धिर्स्तीति चेत्किं प्राक्काला, उत्तरकाला वा ? न तावत्प्राक्काला; तस्याः प्रवृत्त्युत्तरकाल-
२० भाविबाधकाभावनिश्चयनिमित्तत्वासम्भवात् । न ह्यन्यकालानु-

१ पूर्वज्ञानं विषयो यस्य । २ अर्थक्रियाज्ञानं । ३ कर्तृ । ४ अश्यादिकं कर्मतामापन्नं यथा व्यवस्थापयति धूमादिकं कर्तृ, कुतस्तत्कार्यत्वात् तद्गाहकत्वादित्यर्थः । ५ कर्तृ । ६ बाधक । ७ अप्रेक्षाकारिणो नराः । ८ मरीचिकादौ । ९ किन्तु नैव । १० बाधकाभावः । ११ उभयोः । १२ सत्यजलज्ञाने । १३ उभयोः (कोट्योः) । १४ देशकालापेक्षया । १५ ज्ञानपानादिलक्षणायाः । १६ किञ्च । १७ कारणम् । १८ विवादापत्तेः प्रमाणे बाधकं नास्ति अनुपलब्धेरिति । १९ नेदं जलमिति ।

१ "नहि संवादज्ञानं तद्गाहकत्वेन तस्य प्रामाण्यं व्यवस्थापयति, किन्तु तत्कार्यविशेषत्वेन यथा धूमोऽग्निर् इति पराभ्युपगमः ।" सम्प्रति० टी० पृ० १६ ।

२ "तदभावो हि बाधकाग्रहणे, तदभावनिश्चये वा ?" तत्रोप० लि० पृ० ३ । सम्प्रति० टी० पृ० १७ ।

३ "बाधकानुपलब्धिः किं प्रवृत्तेः प्राग्भाविनी—बाधकाभावनिश्चयस्य प्रवृत्त्युत्तरकालभाविनी निमित्तम्, अथ प्रवृत्त्युत्तरकालभाविनी इति विकल्पद्वयम् ?" सम्प्रति० टी० पृ० १७ ।

पलब्धिरन्यकालमभावनिश्चयं च विदधात्यतिप्रसङ्गात् । नाप्युत्तरकाला, प्राक् प्रवृत्तेः 'उत्तरकालं बाधकोर्पलब्धिर्न भविष्यति' इत्यसर्वविदा निश्चेतुमशक्यत्वेनासिद्धत्वात् । प्रवृत्त्युत्तरकालभाविनिश्चयमात्रनिमित्तत्वे न किञ्चित्फलम् तस्यांकिञ्चित्कारत्वात् ।

किञ्च, असौ सर्वसम्बन्धिनी, आत्मसम्बन्धिनी वा? प्रथम-^५यक्षे असिद्धा; न खलु 'सर्वे प्रमातारो बाधकं नोपलभन्ते' इत्यर्वाग्दर्शिना निश्चेतुं शक्यम् । नाप्यात्मसम्बन्धिनी, तस्याः परचेतोवृत्तिविशेषैरनैकान्तिकत्वात् । तन्नानुपलब्धिर्निमित्तम् ।

नापि सर्वोदोर्नैवस्थोप्रसङ्गात् । कारणदोषाभावेऽप्ययमेव न्यायः ।

एवं 'त्रिचेतुरज्जान' इत्याद्यपि स्वगृहमान्यम्; 'कस्यचिद्विज्ञानस्य १० प्रामाण्यं पुनरप्रामाण्यं पुनः प्रमाणता' इत्यवस्थात्रयदर्शनाद्बाधके तद्बाधकादौ बाधस्थात्रयमाशङ्कमानस्य परीक्षकस्य कथं नापरापेक्षा येनानवस्था न स्यात् ?

'आशङ्केत हि यो मोहात्' इत्याद्यपि विभीषिकामात्रम्, यतो नाभिशापमात्रात्प्रेक्षावतां प्रमाणमन्तरेण बाधकोऽशङ्का व्यावर्त्तते । १५ न चास्या व्यावर्त्तकं प्रमाणं भवन्मतेऽस्तीत्युक्तम् । कारणदोषेक्षानेषु पूर्वेण जाताशङ्कस्य तत्कारणदोषान्तरापेक्षायां कथमनवस्था न स्यात् ? तस्य तत्कारणदोषग्रहकज्ञानाभावमात्रतः प्रमाणत्वाज्ञानवस्था, यदाह—

“यदा स्वतः प्रमाणत्वं तदान्येनैव स्मर्यते ।

२०

१ पूर्वेण जाताशङ्कस्य । २ बाधकस्य । ३ सन्प्रत्यत्र घटानुपलब्धिः कालान्तरेऽप्यत्र घटामात्रं कुर्वादित्यतिप्रसङ्गात् । ४ जलादिदाने । ५ बाधकामात्रेण । ६ अनुपलब्धस्य । ७ प्रवृत्त्यर्थो हि निश्चयोऽवलोक्यते प्रवृत्तेश्च जातत्वाभिज्ञयस्याकिञ्चित्कारणत्वेन । ८ अनुपलब्धिः । ९ किञ्चिज्ज्ञेयं । १० अनुपलब्धेः । ११ लभ्युमशक्यैः । १२ बाधकामात्रनिश्चयं निमित्तम् । १३ अन्यथा । १४ पूर्वेण जाताशङ्कस्य संवादे सवादान्तरापेक्षणात् । १५ इदं जलं पुनरिदं जलं पुनरिदं जलम् । १६ विवक्षितस्य । १७ बाधकात् । १८ पञ्चमज्ञानलक्षणसंवादप्रमाणम् । १९ चतुर्विज्ञानस्य । २० प्रत्यक्षादिना प्रामाण्यग्रहणामात्रे प्रामाण्ये बाधकाशङ्काव्यावर्त्तनस्य कर्तुमशक्यत्वात् । २१ द्वितीयविकल्पः । २२ विज्ञानकारणनेत्रादिकम् । २३ काचकामलादि । २४ ज्ञानेन । २५ इन्द्रियाणामतीन्द्रियत्वादभावः । २६ सवादकज्ञानम् । २७ कृतः ।

१ “किञ्च, बाधकानुपलब्धिः सर्वसम्बन्धिनी किं तन्निश्चयहेतुः उत आत्मसम्बन्धिनी इति पुनरपि पक्षद्वयम् ।”

सम्पत्ति० टी० पृ० १७ ।

निवर्त्तते हि मिथ्यात्वं दोषाज्ञानादर्थज्ञतः” ॥

[मी० श्लो० सू० २ श्लो० ५२]

प्रागेव त्रिहितोर्त्तरम् । न च दोषाज्ञानात्तदधीनः, सत्स्वपि तेषु
तदज्ञानसम्भवात् । सम्यग्ज्ञानोत्पादनशक्तिवैपरीत्येन मिथ्याप्रत्य-
५ योत्पादनयोग्यं हि रूपं तिमिरादिनिमित्तमिन्द्रियदोषः, स चाती-
न्द्रियत्वात्सन्नपि नोपलक्ष्यते । न च दोषाः ज्ञानेन व्याप्ता येन
तन्निवृत्त्या निवर्त्तेरन् । ततोऽयुक्तमिदम्—

“तैस्मात्स्वतः प्रमाणत्वं सर्वत्रौत्सर्गिकं स्थितम् ।
बोधकरणदुष्टत्वज्ञानाभ्यां तदपोचते ॥
१० परीधीनेपि वै तैस्मिन्नानवस्था प्रसज्यते ।
प्रमाणाधीनमेतद्धि स्वतस्तच्च प्रतिष्ठितम् ॥
प्रमाणं हि प्रमाणेन यथा नान्येन साध्यते ।
न सिध्यत्यप्रमाणत्वमप्रमाणात्तथैव हि ॥
२५ बोधकप्रत्ययस्तावदर्थान्यत्वाऽवधारणम् ।
सोऽनपेक्षः प्रमाणत्वात्पूर्वज्ञानमपेक्षते ॥
यैत्र्येपि त्वपवौदस्य स्यादपेक्षा क्वचित्पुनः ।
जाताशङ्कस्य पूर्वैरेण सार्थान्येन निवर्त्तते ॥

१ शङ्कया यदापादितमप्रामाण्यम् । २ स्वच्छनीत्यादि । ३ संवादमन्तरेण ।
४ कारणदोषामावेव्यवनेन न्याय इति । ५ किञ्च । ६ दोषाभावः । ७ किञ्च ।
८ अनवस्था समर्था यतः । ९ अत्रे वक्ष्यमाणलक्षणम् । १० मीमांसकग्रन्थे ।
प्रमेयज्ञानप्रामाण्ये संवादज्ञानापेक्षाया अनवस्थाचक्रकेतरेतराभ्या यतः । ११ एवं
नेत्सर्वस्य ज्ञानस्य ज्ञान्तादेः प्रमाणात् स्यादित्युक्ते सत्याह । १२ यथाऽप्रामाण्यं
बाधकारणदोषज्ञानापेक्षं तथा बाधकादिनाऽपरमपेक्षणीयमपरेणाप्यपरमपेक्षणीयमित्यन-
वस्था कुतो न स्यादित्युक्त आह । १३ ज्ञान्तादेरप्रामाण्ये । १४ अप्रामाण्यं ।
१५ प्रमाणाधीनं स्यादिति अप्रामाण्यं तदाऽनवस्था न स्यादेव किं तर्हि अप्रामाण्यस्य
प्रमाणमन्तरेणैव सिद्धिः स्यात्तत्राप्यप्रामाण्यं स्वतः स्यादित्युक्ते आह । १६ प्रमा-
मन्तरेण । १७ बाधप्रलयः पुनः क इत्युक्ते आह । १८ ज्ञानं । १९ परानपेक्षः ।
२० स्वतः । २१ मरीचिकायां जलज्ञानम् । २२ बाधते । २३ विषये । २४ यदा
बाधकप्रत्ययोऽपरमपेक्षेत तदा किम् । २५ बाधकज्ञानस्य । २६ अप्रमादान्तरस्य ।
२७ अर्थे । २८ नरस्य । २९ पूर्वैरेण ज्ञानेन । ३० अपरेण बाधकप्रलयेन पूर्व-
सञ्जातीयेन संवादकेन ।

१ “न च दोषा ज्ञानेन ये व्याप्ता येन तन्निवृत्त्या निवर्त्तेरन्” सम्मति० टी० पृ० १८ ।

२ तस्मात्स्वतः इत्यादयो नवश्लोकाः तत्त्वसंग्रहे किञ्चिद पाठभेदेन पूर्वपञ्चरूपेण
उपलभ्यन्ते (पृ० ७५८-६०) । सम्मति० टी० पृ० १८-१९ ।

बाधकान्तरमुत्पन्नं यद्यस्यान्विच्छतोऽपरम् ।
 ततो मध्यमवाधेन पूर्वस्येव प्रमाणता ॥
 अथान्यैदप्रयत्नेन सम्यगन्वेषणे कृते ।
 मूलाभावात् विज्ञानं भवेद्बाधकवाधनम् ॥
 ततो निरपवादत्वात्तेनैवाद्यं वलीयसा ।
 बाध्यते तेन तस्यैव प्रमाणत्वमपोद्यते ॥
 एवं परीक्षकज्ञानं तृतीयं नातिवर्त्तते ।
 तैतश्चाजातवाधेन नाशङ्क्यं बाधकं पुनः ॥”

५

कथं वै चोदनाप्रभवचेतसो निःशङ्कं प्रामाण्यं गुणवतो वक्र-
 भावेनाऽपवादकदोषाभावासिद्धेः ? ननु वक्रगुणैरेवापवादकदो- १०
 षाभावो नैवेत्येते तदभावेऽप्यनाश्रयाणां तेषामनुपपत्तेः । तदुक्तम्—

“शब्दे दोषोद्भवस्तावद्ब्रह्मधीन इति स्थितम् ।
 तदभावः केचित्तावद्गुणवद्ब्रह्मकत्वतः ॥
 तद्गुणैरेपेक्ष्यमानां शब्दे सद्भ्रान्त्यसम्भवात् ।
 यद्वा वक्रभावेन न स्युर्दोषा निरैश्रयाः ॥”

१५

[मी० श्लो० सू० २ श्लो० ६२-६३]

इत्यपि प्रलापमात्रमपौरुषेयत्वस्यासिद्धेः । ततश्चेदमयुक्तम्—

“तत्रापवादनिर्मुक्तिर्वक्रभावाद्धिधीर्यसौ ।
 वेदे तेनैप्रमाणत्वं नाशङ्कामपि गच्छति ॥ १ ॥”

[मी० श्लो० सू० २ श्लो० ६८]

२०

स्थितं चैतच्चोदनाजनिता बुद्धिर्न प्रमाणमनिराकृतदोषकारण-
 प्रभवत्वात् द्विषन्नादिवुद्धिर्वैद । न चैतदसिद्धम्, गुणवतो वक्र-
 भावे तत्र दोषाभावासिद्धेः । नाप्यनैकान्तिकं विरुद्धं वा; तुष्ट-

१ बाधकप्रलयस्य सनातीयसंवादरूपापरबाधकोत्पत्त्यभावेन विजातीयं बाधकान्तर-
 मुत्पद्यते यदा उदा क्रिय । २ ता । ३ तृतीयज्ञानस्य बाधकं चतुर्विज्ञानं । ४ दृष्टान्त-
 मन्तरेण । ५ उत्पद्यते । ६ प्रामाण्य । ७ तृतीयस्य । ८ तृतीयस्यानवधिं ज्ञानम् ।
 ९ बाधकस्य द्वितीयज्ञानस्य । १० बाधकज्ञानं न भवेत्ततः । ११ द्वितीयज्ञानेन ।
 १२ ज्ञानं । १३ कारणेन । १४ निराक्रियते । १५ द्वितीयज्ञानेन । १६ एवं
 चेदनवस्था कुतो न स्यादित्युक्ते सत्याह । १७ तृतीयं ज्ञानं नातिवर्त्तते यतः ।
 १८ मन्तरेण । १९ स्वतः प्रामाण्ये दूषणान्तरम् । २० किञ्च । २१ ज्ञानस्य ।
 २२ परेण यथा । २३ दोषाणां । २४ वान्ये । २५ निराकृतानां दोषाणाम् ।
 २६ शब्दे । २७ पुंस्य । २८ वेदे । २९ अप्रामाण्य । ३० अनाया ससाध्या ।
 ३१ स्वान् । ३२ कारणेन । ३३ ज्ञान । ३४ वेदे ।

कारणप्रभवत्वाप्रामाण्ययोरविनाभावस्य मिथ्याज्ञाने सुप्रसिद्धि-
(द्ध)त्वादिति ॥

सिद्धं सर्वजनप्रबोधजननं सैद्योऽकलङ्काश्रयम्,
विद्यानन्दसमन्तभद्रगुणतो नित्यं मनोनन्दनम् ।
निर्दोषं परमागमार्थविषयं प्रोक्तं प्रमालक्षणम् ।
युक्त्या चेतसि चिन्तयन्तु सुधियः श्रीवर्द्धमानं जिनम् ॥१॥

परिच्छेदावसाने आशिपमाह । चिन्तयन्तु । कम् ? श्रीवर्द्धमानं
तीर्थकरपरमदेवम् । भूयः कथम्भूतम् ? जिनम् । के ? सुधियः ।
के ? चेतसि । कया ? युक्त्या ज्ञानप्रधानतया । भूयोपि कथम्भू-
१० तम् ? सिद्धं जीवन्मुक्तम् । भूयोपि कीदृशम् ? सर्वजनप्रबोधजन-
नम् सर्वे च ते जनाश्च तेषां प्रबोधस्तं जनयतीति सर्वजनप्रबोध-
जननस्तम् । कथम् ? सद्यः श्रुति । भूयोपि कीदृशम् ? अकलङ्का-
श्रयम्-कलङ्कानां द्रव्यकर्मणामभावः अकलङ्कस्तस्याश्रयस्तम् ।
भूयोपि कथम्भूतम् ? मनोनन्दनम् । कथम् ? नित्यं सर्वदा ।
१५ कुतः ? विद्यानन्दसमन्तभद्रगुणतः-विद्या कैवलज्ञानमानन्दः सुखं
समन्ततो भद्राणि कल्याणानि समन्तभद्राणि विद्या चानन्दश्च
समन्तभद्राणि च तान्येव गुणास्तेभ्यः ततः । भूयोपि कीदृशम् ?
निर्दोषं रागादिभावकर्मरहितम् । भूयोपि कथम्भूतम् ? परमाग-
मार्थविषयम्-परमागमार्थो विषयो यस्य स तथोक्तस्तम् । भूयोपि
२० कीदृशम् ? प्रोक्तं प्रकृतमुक्तं वचनं यस्यासौ प्रोक्तस्तम् । भूयोपि
कथम्भूतम् ? प्रमालक्षणम् ॥ श्रीः ॥

इति श्रीप्रभाचन्द्रविरचिते प्रमेयकमलमार्त्तण्डे परीक्षासु-

खालहारे प्रथमः परिच्छेदः समाप्तः ॥ श्रीः ॥

१ न सम्यग्ज्ञाने । २ कृतकत्वम् । ३ श्रुति । ४ उत्पन्नान्तरम् । ५ जसि-
न्यदे सिद्धप्रमाणलक्षणवर्द्धमानस्वामिसम्बन्धित्वेनाधीन्यं बोद्धव्यम् । ६ द्रव्यभावकर्म-
णामभावस्तस्याश्रयम् । ७ प्रमाणलक्षणस्य सम्यग्ज्ञानरूपत्वात् । ८ सर्वदा ।
९ रागादिभावकर्मरहितम् । १० वसः (बहुमीदिसमाससंज्ञेयमुपनिषदा जेनेन्द्रव्याकरणे) ।
११ प्रमाणलक्षणस्य सम्यग्ज्ञानरूपत्वात् । १२ नाज्ञानप्रधानतया ।

। श्रीः ।

२ अथ प्रत्यक्षोद्देशः

अथ प्रमाणसामान्यलक्षणं व्युत्पाद्येदानीं तद्विशेषलक्षणं व्युत्पादयितुमुपक्रमते । प्रमाणलक्षणविशेषव्युत्पादनस्य च प्रतिनियतप्रमार्णव्यकिनिष्ठत्वात्तदभिप्रायवांस्तद्व्यक्तिसंख्याप्रतिपादनपूर्वकं तद्व्यलक्षणविशेषमाह—

तद्वेति ॥ १ ॥

५

तत्सापूर्वेत्यादिलक्षणलक्षितं प्रमाणं द्वेषा द्विप्रकारम्, सकल-प्रमाणमेदैप्रमेदानामत्रान्तर्भावविभावात् । 'परंपरिकल्पितैक-द्विध्यादिप्रमाणसंख्यानियमे तदघटनात्' इत्याचार्यः स्वयमेवाग्रे प्रतिपादयिष्यति । 'ये हि प्रत्यक्षमेकमेव प्रमाणमित्याचक्षते न तेषामनुमानादिप्रमाणान्तरस्यात्रान्तर्भावः सम्भवति तद्विलक्षण-१० त्वाद्विभिन्नसामग्रीप्रभवत्वाच्च ।

ननु चास्याऽप्रामाण्यान्नान्तर्भावविभावनया किञ्चित्प्रयोजनम् । प्रत्यक्षमेकमेव हि प्रमाणम्, अगौणत्वात्प्रमाणस्य । अर्थनिश्चायकं च हानं प्रमाणम्, न चानुमानादर्थनिश्चयो घटते-सामान्ये सिद्धसाधनाद्विशेषेऽनुगमाभावात् । तदुक्तम्— १५

विशेषेऽनुगमाभावः सामान्ये सिद्धसाधनम् [] इति ।

किञ्च, व्याप्तिग्रहणे पक्षधर्मतावगमे च सत्यनुमानं प्रवर्तते । न च व्याप्तिग्रहणमध्यक्षतः; अस्य सच्चिहितमात्रार्थग्राहित्वेनाखिल-पदैर्योक्षेपेर्न व्याप्तिग्रहणेऽसौमर्थ्यात् । नाप्यनुमानैतः; अस्य व्याप्ति-

१ अनन्तरम् । २ कथयित्वा । ३ विशदीकर्तुम् । ४ प्रारभते । ५ परिच्छेद-वतारः । ६ मेद । ७ अथं त्रिविधमन्त्यं पञ्चविधमित्यादिलक्षणम् । ८ व्यक्तियोगेपि लक्षणैकत्वमन्तर्भावः । ९ निश्चयत्वात् । १० क्वच पठत् । ११ तदघटनं कथमाचार्यः प्रतिपादयिष्यतीत्युक्ते आह । १२ चार्वाकाः । १३ वैशेषिकाश्च । १४ इन्द्रियस्त्रिभिः । १५ अनुमानादेः । १६ किञ्च । १७ साध्ये । १८ न हि अभिप्राये कस्यचिद्वि-प्रतिपत्तिरस्ति सामान्याच्च प्रवर्तमानः कथं नियतमभिसुखमेवावश्यं प्रवर्तते । १९ यो यो ब्रूयन् स स ताणैनाग्निमानिलम्बयामावः । २० नानुमानं प्रमाणं स्वाभिस्ययामावस्यतः । २१ हेतोः । २२ उपपत्तेः । २३ अत्राधारधृमाधारमहा-चसादि । २४ स्वीकरणेन । २५ प्रत्यक्षम् । २६ सर्वत्र ब्रूयोजयिना व्याप्तः तदन्वयव्यतिरेकानुविधानात् । २७ व्याप्तिग्रहणम् ।

ग्रहणपुरस्सरत्वात् । तत्राप्यनुमानतो व्याप्तिग्रहणेऽनवस्थेतरैतरा-
श्रयदोषप्रसङ्गः । न चान्यत्रमाणं तद्ग्राहकमस्ति । तैत्कुतोनुमानस्य
प्रामाण्यम् ? इत्यसमीक्षिताभिधानम् ; अनुमानादेरप्यध्यक्षवत्प्र-
तिनियतस्वविषयव्यवस्थायामविसंवादकत्वेन प्रामाण्यप्रसिद्धेः ।
५ प्रत्यक्षेपि हि प्रामाण्यमविसंवादकत्वादेव प्रसिद्धम्, तच्चान्यत्रापि
समानम् अनुमानादिनाप्यध्यवसितैर्यै विसंवादाभावात् ।

-यच्च-अगौणत्वात्प्रमाणस्येत्युक्तम्, तत्रानुमानस्य कृतो [गौण-
त्वम्,] गौणार्थविषयत्वात्, प्रत्यक्षपूर्वकत्वाद्वा ? न तावदाद्यो
विकल्पः ; अनुमानस्याप्यध्यक्षवद्वास्तवसामान्यविशेषात्मकार्थवि-
१० षयत्वाभ्युपगमात् । न खलु कल्पितसौमान्यार्थविषयमनुमानं
सौगतवज्जनैरिष्टम्, तद्विषयत्वस्यानुमाने निराकरिष्यमाणत्वात् ।
प्रत्यक्षपूर्वकत्वाच्चानुमानस्य गौणत्वे प्रत्यक्षस्यापि कस्यचिदनुमा-
नपूर्वकत्वाद्गौणत्वप्रसङ्गः ; अनुमानात्साध्यार्थं निश्चित्य प्रवर्त्त-
मानस्याध्यक्षप्रवृत्तिप्रतीतेः । ऊहाख्यप्रमाणपूर्वकत्वाच्चास्याध्यक्ष-
१५ पूर्वकत्वमसिद्धम् ।

यच्चोक्तम् 'न च व्याप्तिग्रहणमध्यक्षतः' इत्यादि; तदप्युक्तिमा-
त्रम् ; व्यसतेः प्रत्यक्षानुपलम्भवलोद्भूतोहाख्यप्रमाणात्प्रसिद्धेः । न
च व्यक्तीनामानैतन्त्यं देशादिव्यभिचारो वा तत्प्रसिद्धेर्वाधकः,
सौमान्यद्वारेण-प्रतिर्वन्धावधारणात्तस्य चानुगताऽबाधितप्रत्यय-
२० विषयत्वादस्तित्वम् । प्रसाधयिष्यते च "सामान्यविशेषात्मा
तदर्थः" [परीक्षासुख ४-१] इत्यत्र वस्तुभूतसामान्यसद्भावः ।

न "क्षोदप्रमाणमन्तरेण 'प्रत्यक्षमेव प्रमाणमगौणत्वात्' इत्याद्य-
भिधानं शक्यम् । तथैहि—अगौणत्वमविसंवादिद्वं वा लिङ्गं नाम-

१ आषानुमानेऽपरानुमानेन व्याप्तिप्रतिपत्तौ अनवस्था । आषानुमानेन द्वितीयानु-
माने व्याप्तिप्रतिपत्तौ इतरेतराश्रयः । २ पक्षधर्मतावगमे च सत्यनुमानं प्रवर्तत इत्युक्तिं
तत्र पक्षप्रतिपत्तिश्च प्रत्यक्षतोऽनुमानतो वा । न तावत्प्रत्यक्षतः पक्षप्रतिपत्तिरनुमाना-
नर्थक्यप्रसङ्गात् । नाप्यनुमानतः पक्षप्रतिपत्तिरनुमानेपि पक्षप्रतिपत्तिः प्रत्यक्षतोऽनु-
मानतो वा । न तावत्प्रत्यक्षतः एकदोषानुपह्नात् । नाप्यनुमानतोऽनवस्थाप्रसङ्गात् ।
कथमनुमानेन्यनुमानात्पक्षप्रतिपत्तिरिति । ३ व्याप्तिग्रहणामाने सति । ४ प्रत्ये ।
५ उपचरित । ६ परमार्थरूप । ७ अन्यापोहरूप । ८ व्याप्तिज्ञानं प्रत्यक्षम् ।
९ नुः । १० ता । ११ किञ्च । १२ साधनम् । १३ अविभूतम्यक्तोऽनन्ता अतः
सम्बन्धोवधारयितुं न शक्यः, यो भूयवात् सोऽधिमात् पर्वत इति देशाद्व्यभिचारो
वा सम्बन्धोवधकः । १४ कालः । १५ शप्तेः । १६ भूयस्त्वेनाधित्वेन । १७ साम्ब-
साधनयोर्विनाभाव । १८ गौर्गौरित्वात्पञ्चसूत । १९ प्रमाणार्थः । २० किञ्च ।
२१ सर्वमनुमानमप्रमाणं गौणत्वमित्यादि च । २२ उक्तमेव समर्थवन्ते आचार्याः ।

सिद्धप्रतिबन्धं सत् प्रत्यक्षस्य प्रामाण्यमनुमौपयेदिति प्रसङ्गात् । प्रतिबन्धप्रसिद्धिर्जनवयवेनाभ्युपगन्तव्यौ, अन्यथा यस्यामेव प्रत्यक्षैव्यक्तौ प्रामाण्येर्नागौणत्वादेरसौ सिद्धस्तस्यामेवागौणत्वादे-
स्तत्सिद्धेयत्, न व्यक्त्यन्तरे तत्र तस्यासिद्धत्वात् । न चासौ साक-
ल्येनाध्यक्षात्सिद्धेयस्य सन्निहितमात्रविषयकत्वात् । अथैकत्र ५
व्यक्तौ प्रत्यक्षेणान्योः सैवन्धं प्रतिपद्यार्थ्यत्रान्यैवविधं प्रत्यक्षं
प्रमाणमित्यगौणत्वादिप्रामाण्ययोः सर्वोपसंहारेण प्रतिबन्धप्रै-
सिद्धिरित्यभिधीयते, न अविषये सर्वोपसंहारेण प्रतिपत्तेरयो-
गौत् । सर्वोपसंहारेण प्रतिपत्तिर्न नामान्तरेणोह एवोक्तः स्यात् ।
अग्निधूमादीनां चैवमविनाभावप्रतिपत्तिः किञ्च स्यात्? येन १०
'अनुमानमप्रमाणमविनाभावस्याखिलपदार्थाक्षेपेर्ण प्रतिपत्तुमश-
क्यत्वात्' इत्युक्तं शोभेत ।

किञ्चानुमानमात्रस्याप्रामाण्यं प्रतिपादयितुमभिप्रेतम्, अती-
न्द्रियार्थानुमानस्य वा? प्रथमपक्षे प्रतीतिसिद्धसकलव्यवहारो-
च्छेदः । प्रतीयेन्ते हि कुतश्चिदविनाभाविनोऽर्थोदर्थान्तरं प्रति- १५
नियतं प्रतियन्तो लौकिकाः, न तु सर्वस्मात्सर्वम् । द्वितीयपक्षे
तु कथमतीन्द्रियप्रत्यक्षेतरप्रमाणानामगौणत्वादिनां प्रामाण्येतर-
व्यवस्था? कथं वै परचेतसोऽतीन्द्रियस्य व्यापारव्याहारादिका-
र्यविशेषात् प्रतिपत्तिः?, सर्वोपसंहारेणैतादेस्तथाविधस्य प्रतिषेधो-

१ साध्वेनाहाताविनाभावनम् । २ हापयेत् । ३ भूभवनवर्द्धितोत्थितसापि भूभ-
ल्लिङ्गात्साध्यप्रतिपत्तिः स्यादहातसम्भन्तत्वाविशेषात् । ४ साकल्येन । ५ परेण ।
६ साकल्येन प्रतिबन्धसिद्धेरनभ्युपगमे । ७ अग्निप्रत्यक्षविशेषे महानसाग्निदाने ।
८ सह । ९ अविषयत्वात् । १० अविनाभावनः । ११ प्रत्यक्षप्रामाण्यम् । १२ प्रकृत-
व्यक्तेरन्यव्यक्तौ । १३ षट्प्रत्यक्षविशेषे । १४ अविनाभावनम् । १५ अग्निप्रत्यक्ष-
विशेषे । १६ अगौणत्वादिप्रामाण्ययोः साध्यसाधनयोः । १७ अविनाभावनम् ।
१८ षटादिसकलप्रत्यक्षे व्यक्त्यन्तरे । १९ अगौणमविसंवादकम् । २० यावत्प्रत्यक्षं
वाच्यसर्वमगौणमविसंवादकमिति । २१ अविनाभावव्यक्तिः । २२ परेण । २३ इति चेन्न ।
२४ स्वीकारेण । २५ अविनाभावनम् । २६ किञ्च । २७ प्रत्यक्षप्रामाण्यप्रकारेण ।
२८ स्वीकारेण । २९ मन्वा । - ३० तवेष्टम् । - ३१ नाशः । - ३२ श्यपन्ते ।
३३ भूभल्लङ्घ्यात् । ३४ अखिलप्रमाणम् । ३५ आनन्तः । - ३६ प्रत्यक्षाणि चैतराणि
षानुयावादीनि प्रत्यक्षेतराणि - अतीन्द्रियाणि च तानि प्रत्यक्षेतराणि चातीन्द्रियप्रत्यक्षे-
तराणि । तानि च तानि प्रामाण्यमिति च । सन्त्वानान्तरव्यक्तिरेव प्रत्यक्षानुमाननोपसं-
न्वितम् । ३७ अविषयविषयव्यतिरेकव्यतिरेकः । ३८ - किञ्च । ३९ सिद्ध्यादिमानस्य ।
४०, कर्म वा - ४१ श्रद्धा । - ४२ सङ्गः । - ४३ - अतीन्द्रियस्य ।

ऽनुपलब्धेः स्यात् ? सोऽयं चार्वाकः “प्रमाणस्यागौणत्वावनुमाना-
दर्शनश्चयो दुर्लभः” [] इत्याचक्ष्णः कथमत एवाच्यक्षादेः
प्रामाण्यादिकं प्रसाधयेत् ? प्रसाधयन्वा कथमतीन्द्रियेतरार्थविष-
यमनुमानं न प्रमाणयेत् ? उक्तं च—

५ “प्रमाणैतरैस्सामान्यैस्त्रितेरन्यधियो गँतेः ।

प्रमाणान्तरसङ्गावः प्रतिषेधाच्च कस्यचित् ॥” [] इति ।
तच्चानुमानस्याप्रामाण्यम् ।

अस्तु नाम प्रत्यक्षानुमानभेदात्प्रमाणद्वैविध्यमित्यारेकापनोदा-
र्थम्—

१० प्रत्यक्षेतरभेदात् ॥ २ ॥

इत्याह । न खलु प्रत्यक्षानुमानयोर्व्याख्येयागमादिप्रमाणभेदा-
नामन्तर्भावः सम्भवति यतः सौगतोपकल्पितः प्रमाणसंख्या-
नियमो व्यवतिष्ठेत् ।

प्रमेयद्वैविध्यात् प्रमाणस्य द्वैविध्यमेवेत्यप्यसम्भाव्यम्, तद्वै-
१५ विध्यासिद्धेः, ‘एक एव हि सामान्यविशेषात्प्रार्थः प्रमेयः प्रमाणस्य’
इत्येते चक्ष्यते । किञ्चानुमानस्य सामान्यमात्रगोचरत्वे ततो
विशेषेष्वप्रवृत्तिप्रसङ्गः । न खल्वन्यविषयं ज्ञानमन्यत्र प्रवर्त्तकम्
अतिप्रसङ्गात् । अथ लिङ्गानुमितात्सामान्याद्विशेषप्रतिपत्तेर्न
प्रवृत्तिः; नन्वेवं लिङ्गादेव तत्प्रतिपत्तिरस्तु किं परम्परया ?
२० ननु विशेषेषु लिङ्गस्य प्रतिबन्धप्रतिपत्तेरभावात्कथमतस्तेषां प्रति-
पत्तिः ? तदेतत्सामान्येपि समौनम् । अथाप्रतिपत्तप्रतिबन्धमपि
सामान्यं तेषां शक्यम्; लिङ्गमप्येवविधं तद्रमकं किञ्च स्यात् ?

१ प्रत्यक्षं प्रमाणमगौणत्वात्, अनुमानमप्रमाणं गौणत्वादित्याचक्ष्णः । २ आदि-
पदेनानुमानस्याप्रामाण्यम् । ३ इन्द्रियाण्यतिशान्ताः स्वर्गादयः । ते च इतरे च
प्रत्यक्षप्राप्ता अस्यादयः । अतीन्द्रियेतरे ते च ते अर्थाश्च ते विषया यस्यानुमानस्य सत् ।
४ अप्रमाण । ५ त्व । ६ का । ७ परिष्णानात् । ८ परोक्ष । ९ स्वर्गादिः । १० आह
सौगतः । ११ परोक्ष । १२ अपि तु न कुतोपि स्थितिं कुर्वात् । १३ चतुर्थाध्याये ।
१४ (ततोऽनुमानादित्यर्थः) अग्निपरमाणुलक्षणस्तलक्षणेषु । १५ षटविषयं ज्ञानं पटे
प्रवर्त्तकं स्यात् । १६ घृम । १७ अग्निमत्त्वात् । १८ विशेषेषु पुरुषत्वस्य । १९ यथा
लिङ्गात्सामान्यस्य प्रतिपत्तिरेवं तेषां विशेषाणात् । २० प्रयोजनम् । २१ लिङ्गा-
त्सामान्यप्रतिपत्तिः सामान्यादिविशेषप्रतिपत्तिरिति । २२ विशेषेषु सामान्यस्य प्रतिबन्ध-
प्रतिपत्तेरभावात्कथं ततस्तेषां प्रतिपत्तिरिति । २३ अप्रतिपत्तप्रतिबन्धत्वाविशेषात् ।

सामान्यस्यापि सामान्येनैव विशेषेषु प्रतिबन्धप्रतिपत्तावनवस्था-
सामान्यादि सामान्यप्रतिपत्तौ विशेषेष्वप्रवृत्तौ पुनस्ततोऽप्यप-
रसामान्यप्रतिपत्तौ सं एव दोषः । अतः सामान्यतदनुमानाना-
मनवस्थानादप्रवृत्तिविशेषेषु स्यात् ।

किञ्च व्यापकमेव गम्यम् अन्वयविचारस्य तत्रैव भावात् ।^१
व्यापकं च कारणं कार्यस्य, स्वभावो भावस्य । तच्च स्वलक्षण-
मेव, अतस्तदेव गम्यं स्यात् न सामान्यमव्यापकत्वात् । अथ
तदपि व्यापकम्, स्वलक्षणवद्वस्तुत्वम्, अन्यथा तस्मिन्निधितेपि
प्रयोजनभावात्तत्रानुमानमप्रमाणमेव स्यात् ।

किञ्च, तत्प्रमेयद्वित्वं प्रमाणद्वित्वस्य ज्ञातम्, अज्ञातं वा ज्ञापकं^२
भवेत् ? यद्यज्ञातमेव तत्तस्य ज्ञापकम्, तर्हि तस्य संबन्धाविशे-
षात्सर्वेषामविशेषेण तत्प्रतिपत्तिप्रसङ्गतो विवादो न स्यात् । ज्ञातं
चेत्कृतस्तज्ज्ञातिः ? प्रत्यक्षात्, अनुमानाद्वै ? न तावत्प्रत्यक्षात् ;
तेन सामान्याग्रहणात् । ग्रहणे चा तस्य सविकल्पकत्वप्रसङ्गो विषय-
सङ्करश्च प्रमाणद्वित्वविरोधी भवेतोऽनुषज्येत । नाप्यनुमानतः ;^३
अत एव । स्वैलक्षणपरानुसृतंथा हि भवेतानुमानमभ्युपगतम्—

“अतद्देदपरावृत्तवस्तुमैत्रप्रवेदनात् ।

सामान्यविषयं प्रोक्तं लिङ्गं मेदाप्रतिष्ठितेः ॥” []
इत्यभिधानात् । द्वैभ्यां तु प्रमेयद्वित्वस्य द्वैनेऽस्य प्रमाणद्वित्व-
ज्ञापकत्वायोगः, अन्यथा देवदत्तयज्ञदत्ताभ्यां प्रतिपन्नादमद्वि-^४
त्वात् तदन्यतरस्याद्वित्वप्रतिपत्तिः स्यात् । द्वैविध्यमिति हि
द्विष्टो धर्मः । स च द्वैयोर्ज्ञाने ज्ञायते नान्यथा । न ह्यज्ञातसह-

१ विशेषेष्वप्रवृत्तिरूपः । २ अविनाभावस्य । ३ व्यापके । ४ वक्तिः । ५ धूमस्य ।
६ वृक्षत्वम् । ७ शिक्षापालस्य । ८ साध्यम् । ९ लिङ्गस्य । १० सामान्यस्य ।
११ अनस्तुत्वे । १२ विशेषेषु प्रवृत्तिलक्षण । १३ सामान्यविशेषमेदेन । १४ अज्ञा-
तप्रमेयद्वित्वस्य । १५ देखे । १६ नृणां । १७ द्रव्या वा । १८ अनुमानस्या-
भाव इत्यर्थः । १९ सौगतस्य । २० अत एव । २१ हेतोरतिद्वयं परिहरति ।
२२ स्वलक्षणगोचरत्वेन । २३ सौयतेन । २४ अनसिरूप । २५ अस्मिन्नात्र ।
२६ अन्यापोह । २७ अन्यापोह । २८ स्वलक्षणस्य । २९ अन्यवस्थितेः । कुतोऽ-
न्यवस्थितिः ? मेदानामानगलेन ग्रहणासम्भवात् । ३० प्रत्यक्षानुमानान्याम् । अतो
सृष्टीयो विकल्पः । ३१ परिज्ञाने सति अस्य प्रमेयद्वित्वस्य । ३२ प्रमेयद्वित्वस्य प्रमा-
णद्वित्वज्ञापकत्वं चेत् । ३३ मित्रदेहे । ३४ देवदत्तस्य यज्ञदत्तस्य वा । ३५ प्रमेय-
द्वित्वस्य प्रमाणद्वित्वज्ञापकत्वायोगो दर्शयति । ३६ स्वलक्षणसामान्ययोः प्रमेययोः ।
३७ सति । ३८ पुरुषेण ।

विन्ध्यस्य तद्वद्वित्त्वप्रतिपत्तिरस्ति । परस्परश्रयानुषङ्गश्च-सिद्धे
 हि प्रमाणद्वित्वेऽतः प्रमेयद्वित्वसिद्धिः, तस्याश्च प्रमाणद्वित्वसिद्धि-
 रिति । अथान्यतः प्रमाणद्वित्वस्य सिद्धिः, व्यर्थस्तर्हि प्रमेयद्वित्वोप-
 न्यासः । तदप्यन्यैदेकं वा स्यात्, अनेकं वा ? एकं चेद्विषयसङ्करः ।
 ५ प्रत्यक्षं हि स्वलक्षणाकारमनुमानं तु सामान्याकारम्, तद्व्यस्यै-
 कज्ञानवेद्यत्वे सुप्रसिद्धो विषयसङ्करः । अथानेकज्ञानवेद्यम्;
 तदप्यपरेणानेकज्ञानेन वेद्यं तदप्यपरेणेत्यनवस्था ।

ननु स्वलक्षणाकारेता प्रत्यक्षेणात्मभूतैव वेद्यते सामान्याकारेता
 त्वनुमानेन, तयोश्च स्वसंवेदनप्रत्यक्षसिद्धत्वात् प्रत्यक्षसिद्धमेव
 १० प्रमाणद्वित्वं प्रमेयद्वित्वं च, केवलंभूयंस्तयोः प्रतिपद्यमानोऽपि न
 व्यवहरति स प्रसिद्धेन प्रमेयद्वैविध्येन प्रमाणद्वैविच्यव्यवहारे
 प्रवर्त्यते; तदप्यसारम्; ज्ञानादर्थान्तरस्यानर्थान्तरस्यै वा केवलस्य
 सामान्यस्य विशेषस्य वा क्वचिज्ज्ञाने प्रतिभासाभावात्, उभयौ-
 त्मन एवान्तर्वहिर्वा वस्तुनोऽध्यक्षादिप्रत्यये प्रतिभासमानत्वात् ।
 १५ प्रयोगः-असति बाधके यद्यथा प्रतिभासते तत्तथैवाभ्युपगन्त-
 व्यम् यथा नीलं नीलतया, प्रतिभासते चाध्यक्षादि प्रमाणं
 सामान्यविशेषात्प्रामाण्यविषयतयेति ।

ननु मा भूत्प्रमेयमेदः, तथाप्यागमादीनां नानुमानादर्थान्तर-
 त्वम् । शब्दादिकं^३ हि परोक्षार्थं सम्बद्धम्, असम्बद्धं वा गैम-
 २० येत् ? न तावदसम्बद्धम्; गवादेरप्यश्वादिप्रतिभासप्रसङ्गात् ।
 सम्बद्धं चेत्; तल्लिङ्गमेव, तज्जनितं च ज्ञानमनुमानमेव । इत्यप्य-
 सास्रतम्; प्रत्यक्षस्याप्येवमनुमानत्वप्रसङ्गात्-तदपि हि स्वविषये

१ नरस्य । २ सद्यविन्ध्यपर्वतगत । ३ इतरेतराश्रयपरिहारार्थं परः प्राह ।
 ४ ज्ञानात् । ५ किञ्च । ६ तयोः । ७ ज्ञानम् । ८ युगपद्भयोः प्रतिपत्तिविषय-
 सङ्करः । ९ विषयसङ्करः कथमित्युक्ते सत्याह । १० तर्हीति शेषः । ११ जननस्य
 परिहरति परः । १२ प्रत्यक्षस्य । १३ स्वरूपगतैव । १४ अनुमानस्य । १५ वेद्यते ।
 १६ सामान्यं विशेषं वा । १७ शति । १८ नरुः (शिष्यः) । १९ स्वसंवेदनप्रत्यक्षेण
 प्रमेयद्वित्वं प्रमाणद्वित्वं च । २० प्रमाणं द्विविधं प्रमेयद्वैविध्यादित्यनुमानं प्रददर्शय ।
 २१ आचार्येण । २२ अर्थगतस्य । २३ ज्ञानगतस्य । २४ सामान्यविशेषात्मनः ।
 २५ प्रत्यक्षादि प्रमाणं धर्मि सामान्यविशेषार्थविषयत्वेनाभ्युपगन्तव्यं भवतीति साध्यो
 धर्मः । असति बाधके तथा प्रतिभासमानत्वादिति हेतुः । २६ सम्बद्धार्थविषयत्वात् ।
 २७ आदिष्वप्येव साहचर्यापत्त्युत्पापकार्यादि । २८ कर्तुं । २९ परोक्षार्थं ।
 ३० परोक्षार्थम् । ३१ गवादिशब्दात् । ३२ असम्बद्धत्वाविशेषात् । ३३ आग-
 मादीनामनुमानत्वप्रकारेण ।

सम्बद्धं सत्तस्य गमकम् नान्यथा, सर्वस्य प्रमातुः सर्वार्थप्रत्यक्ष-
त्वप्रसङ्गात् । अथ विषयसम्बद्धत्वाविशेषेपि प्रत्यक्षानुमानयोः
सामग्रीभेदात्प्रमाणान्तरत्वम्; शब्दादीनामप्येवं प्रमाणान्तरत्वं
किञ्च स्यात् ? तथाहि—शब्दं तावच्छब्दसामग्रीतः प्रभवति—

“शब्दादुदेति यज्ज्ञानमप्रत्यक्षेपि वस्तुनि ।

शब्दं तदिति मन्यन्ते प्रमाणान्तरचौदिनः ॥” []

इत्यभिधानात् । न चास्य प्रत्यक्षता; सविकल्पकारूपवृत्तभाव-
त्वात् । नाप्यनुमानता; त्रिरूपलिक्काप्रभवत्वादनुमानगोचरार्थो-
विषयत्वाच्च । तदुक्तम्—

“तस्मादनुमानत्वं शब्दे प्रत्यक्षवद्भवेत् ।

त्रैरूप्यरहितत्वेन तादृग्विषयवर्जनात् ॥ १ ॥”

[मी० श्लो० शब्दपरि० श्लो० १८]

यादृशो हि घृमादिलिङ्गजस्यानुमानस्य विषयो धर्मविक्षिप्तो
धर्मो तादृशा विषयेण रहितं शब्दं सुप्रसिद्धं त्रैरूप्यरहितं च ।
तथा हि—न शब्दस्य पक्षधर्मत्वम्; धर्मिणोऽयोगात् । न चार्थस्य
धर्मत्वम्; तेन तस्य सम्बन्धोत्सिद्धेः । न चाप्रतीतेर्ये तद्धर्मतर्था
शब्दस्य प्रतीतिः सम्भविनी । प्रतीते चार्थे न तद्धर्मतया प्रति-
पत्तिः शब्दस्योपयोगिनी, तामन्तरेणाप्यर्थस्य प्रागेव प्रतीतेः ।
अथ शब्दो धर्मो, अर्थचानिति साध्यो धर्मः, शब्द एव च
हेतुः; न; प्रतिक्षेपार्थकदेशत्वप्राप्तेः । अथ शब्दत्वं हेतुरिति न प्रति-
क्षेपार्थकदेशत्वम्; नैः शब्दत्वस्यागमैकत्वात्, गोशब्दत्वस्यैव
निषेत्स्यमानत्वेनासिद्धत्वात् । उक्तं च—

“सार्थान्यविषयत्वं हि पैदैस्य स्वार्थविष्यते ।

१ अन्यथा चेत् । २ शब्दादीनि प्रमाणान्तराणि—सामग्रीभेदात् प्रत्यक्षविषय ।
३ सामग्रीभेदप्रकारेण । ४ मेरुस्तीति ज्ञानम् । आगमज्ञानमिलर्षः (हितन्तरमिदम्) ।
५ जेनादपः । ६ पक्षधर्मत्वादि । ७ शब्दादुत्पन्नत्वात् । ८ ईप् । ९ अनुमेय ।
१० च । ११ अग्निमस्य । १२ पर्वतः । १३ आ । १४ गोल्लक्षणस्य ।
१५ अविनाभाव । १६ अर्थधर्मत्वेन । १७ कल्पती । १८ इति चेत् । १९ पक्ष-
वचनं प्रतिष्ठा तस्मा अर्थः पक्षस्यैकदेशो धर्मो धर्मश्च । २० गोशब्दो जनति
नित्यो व्यापकत्वेनैक एवेति गोशब्दत्वसामान्याभावः हेतोः । २१ इति चेत्त्रैलोक्यः ।
२२ गोशब्दवदशब्देपि शब्दत्वस्य भावादगमकत्वम् । २३ तस्मिन्निषेचोपि गोशब्द-
स्यापीदारेकत्वात्, नैकम्यकौ सामान्यमिति व्यापकत्वेनैकत्वाच्च गोशब्दत्वसामान्या-
भावः । २४ अर्थस्य । २५ अर्थस्य साध्यस्य व्यापकत्वम् । २६ गोत्व । २७ गवा-
देरागमस्य । २८ सप्तम्यापेक्षयाये ।

धर्मो धर्मविशिष्टश्च लिङ्गीत्येतच्च साधितम् ॥

नै तावदनुमानं हि यावत्तद्विषयं न तैत् ।”

[मी० श्लो० शब्दपरि० श्लो० ५५-५६]

“अथ शब्दोऽर्थवत्त्वेन पक्षः कस्मान्न कल्प्यते ॥

५ प्रतिशार्थैकदेशो हि हेतुस्तत्र प्रसज्यते ।”

[मी० श्लो० शब्दपरि० श्लो० ६२-६३]

“शब्दत्वं गमकं नात्र गोशब्दत्वं निषेत्स्यते ॥

व्यंकिरेव विशेष्यीतो हेतुश्चैका प्रसज्यते ।”

[मी० श्लो० शब्दपरि० श्लो० ६४]

- १० न चार्थान्वयोर्योऽस्ति व्योपारेण हि सङ्गावेन सत्तयेति यावत् ।
विद्यमानस्य ह्यन्वेतृत्वं, नाविद्यमानस्य । ‘यत्र हि धूमस्तत्रावदर्थं
वह्निरस्ति’ इत्यास्तित्वेन प्रसिद्धोऽन्वेर्तो भवति धूमस्य । न त्वैवं
शब्दस्यार्थेनान्वयोऽस्ति, न हि तत्र शब्दाक्रान्ते देशेऽर्थस्य
सङ्गावः । न खलु यत्र पिण्डखर्जुरादिशब्दः श्रूयते तत्र पिण्ड-
१५ खर्जुराद्यर्थोऽस्ति । नापि शब्दकालेऽर्थोऽवश्यं सम्भवति; राव-
णशङ्खचक्रवर्त्यादिशब्दा हि वर्तमानास्तदर्थस्तु भूतो भविष्यश्च,
इति कुतोऽर्थैः शब्दस्यान्वेतृत्वम् ? नित्यविभुत्वाभ्याम् तत्त्वे
वैतिप्रसङ्गः । तदुक्तम्—

“अन्वयो न च शब्दस्य प्रमेयेण निर्हस्यते ।

२० व्योपारेण हि सर्वेषामन्वेतृत्वं प्रतीयते ॥ १ ॥

यत्र धूमोऽस्ति तत्राग्निरस्तित्वेनान्वयः स्फुटः ।

न त्वैवं यत्र शब्दोऽस्ति तत्रार्थोऽस्तीति निश्चयः ॥ २ ॥

१ अनुमानविषयः । २ स्वग्रन्थापेक्षया । ३ उभयस्य (शब्दानुमानयोः) उभय-
(सामान्यविशेष)विषयत्वं यद्यपि तथापि शब्दस्यानुमानरूपता भविष्यतीत्युक्ते सत्यात् ।
४ धर्मविशिष्टधर्मविषयम् । ५ शब्दम् । ६ वौद्वेन न समर्थते । ७ गोशब्दस्य
नित्यविभुत्वाविशेषाभावात् । ८ स्वग्रन्थापेक्षया । ९ शब्दसलक्षणम् । १० धर्मिणी ।
११ शब्दत्वं न गमकं गोशब्दत्वस्य प्रतिषेधो वा यतः । १२ तदर्थश्च प्रतिशार्थैकदेशासिद्धो
हेतुरित्यभिप्रायः । १३ अर्थेन सहाविनाभावः । १४ शब्दस्य । १५ शब्दस्य ।
१६ व्यापारेणेति पदस्य सङ्गावेनेति सत्तयेति वा पर्यायशब्दौ । १७ व्यापकत्वय-
न्वयश्च । १८ व्यापकः । १९ धूमाग्निप्रकारेण । २० इति देशान्वयाभावः ।
२१ कालान्वयाभावः । २२ अन्वयो व्यापकत्वं वा । २३ गोशब्दादभ्यासप्रतीतिः
स्यात् । २४ शब्दस्य सर्वेष्वर्थेष्वनुगमो यतः । २५ सम्बन्धः । २६ विद्वद्भिः ।
२७ कुतस्तथाहि । २८ सङ्गावेन सत्तया वा । २९ अर्थानाम् । ३० धूमाग्निप्रकारेण ।

न तावद्यत्र देशेऽसौ न तत्काले च गम्यते ।
 भवेन्नित्यनिमुत्वाच्चेत्सर्वाथेष्वपि तत्समम् ॥ ३ ॥
 तेनै संवैत्र दृष्टर्त्वाद्भ्यतिरेकस्य चागतैः ।
 सर्वशब्दैरशेषार्थप्रतिपत्तिः प्रसज्यते ॥ ४ ॥”

[मी० श्लो० शब्दपरि० श्लो० ८५-८८] ५

अन्वयाभावे च व्यतिरेकस्याप्यभावः—

“अन्वयेन विना तर्साद्भ्यतिरेकः कथं भवेत् ।” []

इत्यभिधानात् । ततः शाब्दं प्रमाणात्तैरेव ।

उपमानं च । अस्य हि लक्षणम्—

“दृश्यभौनाद्यदर्शयन् विद्वानमुपजायते । १०

सादृश्योर्पोषितस्तज्ज्ञैरुपमानमिति स्मृतम् ॥ ११ ॥” []

येन हि प्रतिपन्ना गौरुपर्लब्धो न गवयो, न चातिदेशवाक्यं
 ‘गौरिव गवयः’ इति श्रुतं तस्यारण्ये पर्यटतो गवयदर्शने प्रथमे
 उपजाते परोक्षे गवि सादृश्यज्ञानं यदुत्पद्यते ‘अनेन सादृशो गौः’
 इति, तस्य विषयः सादृश्यविशिष्टः परोक्षो गौस्तद्विशिष्टं वा १५.
 सादृश्यम्, तच्च चस्तुभूतमेव । यदैह—

“सादृश्यस्य च चस्तुत्वं न शक्यमपवाधिर्तुम् ।

भूयोवयवसामान्ययोगो ज्ञात्यन्तरस्य तत् ॥”

[मी० श्लो० उपमानपरि० श्लो० १८] इति ।

अस्य चानधिगतार्थाधिगन्तृतया प्रामाण्यम् । गवयविषयेण २०
 हि प्रत्यक्षेण गवयो विषयीकृतो, न त्वसन्निहितोपि सादृश्य-
 विशिष्टो गौस्तद्विशिष्टं वा सादृश्यम् । यच्च पूर्वं ‘गौः’ इति
 प्रत्यक्षमभूत्स्यापि गवयोत्यन्तमप्रत्यक्ष एव । इति कथं गवि
 तदपेक्षं तैसादृश्यज्ञानम् ? उक्तं च—

१ तत्र प्रवेशेऽर्थाऽस्तीति निश्चयो नास्तीत्यर्थः । २ अर्थः । ३ अन्वैतुत्वम् ।
 ४ कारणेन । ५ अर्थेषु । ६ शब्दस्य । ७ अप्रतिपत्तेः । ८ अन्वयाविनाभावित्वं
 व्यतिरेकस्य यतः । ९ शब्दार्थयोरेक्यव्यतिरेको न सौ यतः । १० अनुमानात् ।
 ११ भाट्टो प्रवीति । १२ गवयात् । १३ गवि । १४ उपाधिद्विशेषणम् । १५ कारिकं
 भावयति । १६ आमादौ । १७ अन्यत्र प्रसिद्धस्याप्यारोपणमतिदेशः । १८ गोप-
 न्ययोः । १९ तदुपमानम् । २० गवयस्य । २१ अर्थमागो । २२ अर्थमाग्यो-
 विशिष्टम् । २३ यस्मात्कारणात् । २४ निराकर्तुम् । २५ भूयसां बहूनामवयवानां
 समानता सामान्यं तेन योगः । २६ एकस्या गवयनापेरेत्या गोजातिर्ज्ञात्यन्तरम् ।
 एकस्या गोजातेरेत्या गवयजातिर्ज्ञात्यन्तरम्, तस्य । २७ उपमानस्य । २८ गवयस्य ।
 २९ गोप्रत्यक्षापेक्षम् । ३० ता । ३१ प्रत्यक्षात् ।

“तस्माद्यत्स्यते तत्स्यात्सादृश्येन विशेषितम् ।

प्रमेयमुपमानस्य सादृश्यं वा तदन्वितम् ॥ १ ॥

प्रत्यक्षेणावबुद्धेऽपि सादृश्ये गवि च स्मृते ।

विशिष्टस्यान्यतोऽसिद्धेरुपमानप्रमाणता ॥ २ ॥

५ प्रत्यक्षेऽपि यथा देशे सूर्यमाणे च पावके ।

विशिष्टविषयत्वेन नानुमानाप्रमाणता ॥ ३ ॥”

[मी० श्लो० उपमानपरि० श्लो० ३७-३९] इति ।

न चेद् प्रत्यक्षम्, परोक्षविषयत्वात्साविकल्पकत्वाच्च । नाप्यनु-
मानम्; हेत्वभावात् । तथा हि-गोगतम्, गवयगतं वा सादृश्य-
१० मंत्र हेतुः स्यात्? तत्र न गोगतम्; तस्य पक्षधर्मत्वेनाग्रहणात् ।
यदा हि सादृश्यमात्रं धर्मि, ‘सूर्यमाणेन गवा विशिष्टम्’ इति
साध्यम्, यदा च तीदृशो गौः, तदा न तैर्धर्मतया ग्रहणमस्ति । अतः
एव न गवयगतम् । गोगतसादृश्यस्य ‘गोर्वा हेतुत्वे प्रतिहार्यक-
देशत्वप्रसङ्गश्च । न च सादृश्यमत्र प्रौढप्रमेयेण प्रतिषेद्धं प्रतिषे-
१५ षम् । न चान्वयप्रतिपत्तिमन्तरेण हेतोः साध्यप्रतिपादकत्वमुपल-
ब्धम् । ततो गौर्वार्थदर्शने गवयं पश्यतः सादृश्येन विशिष्टे गवि
पक्षधर्मत्वग्रहणं सैम्बन्धानुस्मरणं चान्तरेण प्रतिपत्तिरुत्पद्य-
माना नानुमानेऽन्तर्मवतीति प्रमाणान्तरमुपमानम् । उक्तं च—

१ गवयात् । २ गोलक्षणं वस्तु । ३ सूर्यमाणगवान्वितम् । ४ उपमानं गृहीत-
आदित्वात्प्रमाणं स्पष्टित्युक्ते आह । ५ गवयगते । ६ सादृश्यविशिष्टस्य । ७ सादृश्य-
विशिष्टो गौस्तद्विशिष्टं वा सादृश्यमिति विशिष्टविषयः । ८ सादृश्यविशिष्टस्य गोल-
द्विशिष्टस्य वा सादृश्यस्य । ९ ८ प्रत्यक्षान्याम् । १० असिद्धये दृष्टान्तमाह ।
११ पर्वतादी । १२ देशादिनियतत्वेन । १३ उपमानम् । १४ उपमानस्यानुमानत्वे
साध्ये । १५ कः पक्षधर्मत्वेनाग्रहणं वा कथं सादृश्यस्येत्येत्त्याह । १६ सामान्यम् ।
१७ गोगतसदृशत्वादिति हेतुः । १८ गवयसदृशो गौरिति वा पक्षः । १९ गवयगत-
सदृशत्वादिति हेतुः । २० गोगतसादृश्यस्य । २१ पक्षः । २२ हेतुपन्यासात्पूर्वं
सादृश्यस्याप्रसिद्धत्वात् । २३ पक्षधर्मत्वेनाग्रहणादेव । २४ हेतुः । २५ सादृश्यम् ।
२६ यद्यपि पक्षधर्मत्वेनाग्रहणं गोगतसादृश्यस्य तथापि हेतुत्वेनोपन्यासः क्रियते
इत्युक्ते आह । २७ गौर्गवयेन सदृशः गोगतसादृश्यात् । गौर्गवयेन सदृशः गौर्यतः ।
२८ उक्तयुक्त्या पक्षधर्मत्वं नास्ति चेन्मा भूदन्वयो भविष्यतीत्युक्ते आह । २९ हेतुः ।
३० उपमानस्यानुमानत्वे साध्ये । ३१ हेतुपन्यासात्पूर्वम् । ३२ सादृश्यविशिष्टो
गौस्तद्विशिष्टं वा सादृश्यमिति विशिष्टविषयेण । ३३ अविनाशुत्तम् । ३४ तथा
प्रतीतेरभावात् । ३५ सपक्षे सत्त्वं । ३६ सादृश्यस्य पक्षधर्मत्वेनाग्रहणमन्वयप्रतिपत्त्य-
भावो वा यतः । ३७ नसः । ३८ सति । ३९ अन्वयः ।

“न चैतस्यानुमानत्वं पक्षधर्मार्थसम्भवात् ।
 भ्रोकप्रमेयस्य सादृश्यं धर्मित्वेन न गृह्यते ॥ १ ॥
 गवये गृह्यमाणं च न गवार्थानुमापकम् ।
 प्रतिज्ञार्थैकदेशत्वाद्भोगतस्य न लिङ्गता ॥ २ ॥
 नवयश्चाप्यसम्बन्धात्त गोर्लिङ्गत्वमृच्छति ।
 सादृश्यं न च सवैण पूर्वं दृष्टं तदन्वयि ॥ ३ ॥
 एकस्मिन्नपि दृष्टेयं द्वितीयं पश्यतो वने ।
 सादृश्येन सहैवास्मिन्संदेवोत्पद्यते मतिः ॥ ४ ॥”
 [मी० श्लो० उपमानपरि० श्लो० ४३-४६] इति ।

तैथार्थापत्तिरपि प्रमाणान्तरम् । तल्लक्षणं हि—“अर्थापत्तिरपि १०
 दृष्टः श्रुतो वार्योन्यथा नोपपद्यते इत्यदृष्टार्थैकल्पना” । [शावरभा०
 १।१।५] कुमारिलोप्येतदेव भाष्यकारवचो व्याचष्टे ।

“प्रमाणषड्विज्ञातो यैत्रार्थोऽनन्यथा भवन् ।
 अदृष्टं कल्पयेदैन्यं सार्थापत्तिरुदाहृता ॥”

[मी० श्लो० अर्था० परि० श्लो० १] १५

प्रत्यक्षादिभिः षड्भिः प्रमाणैः प्रसिद्धो योर्थः स येन विना नोप-
 पद्यते तस्यार्थस्य कल्पनमर्थापत्तिः । तत्र प्रत्यक्षपूर्विकार्थापत्तिर्य-
 थाश्लेः प्रत्यक्षेण प्रतिपन्नार्थादृष्टदहनशक्तियोगोऽर्थापत्त्या प्रकल्प्यते ।
 न हि शक्तिः प्रत्यक्षेण परिच्छेद्या, अतीन्द्रियत्वात् । नैष्यनुमानेन;
 अस्य प्रत्यक्षोपगतप्रतिबन्धलिङ्गप्रभवत्वेनाभ्युपगमात्, अर्थाप- २०
 त्तिगोचरस्य चार्थस्यै कदाचिदप्यभ्यक्षागोचरत्वात् । अनुमानपूर्-
 विकं त्वर्थापत्तिर्यथा सूर्ये गमनात्तच्छक्तियोगिता । अत्र हि

१ आदिशब्देन सपक्षे सत्त्वम् । २ अनुमानकालात्पूर्वम् । ३ हेतुः । ४ नक्ष-
 धर्मित्वेन सादृश्यम् । ५ तदिह गवयो हेतुर्भविष्यतीत्युक्ते आह । ६ गवार्थेन ।
 ७ पक्षधर्मत्वं नास्ति चेन्मा भूदन्वयो भविष्यतीत्युक्ते आह । ८ पुंसा । ९ हेतुपन्थासा-
 त्पूर्वम् । १० प्रमेयेण । ११ उक्ताद्योपसहारमाह । १२ गोलक्षणे । १३ गवयम् ।
 १४ पक्षधर्मत्वग्रहणं विना साध्यसाधनसम्बन्धसंरूपं च विना कोर्था गवयदर्शन-
 काल एव । १५ शाब्दोपमाने यथा प्रमाणान्तरे भवतः । १६ सामर्थ्याध्यासा ।
 १७ उच्यते । १८ पुनः । १९ प्रत्यक्षादिप्रमाणमात्रगम्यः । २० आगमे ।
 २१ अदृष्टार्थं विना । २२ उपरि दृष्टिलक्षणम् । २३ आपादनम् । २४ बुद्धौ ।
 २५ नवीपुरादिः । २६ अदृष्टार्थे सत्त्वे भवन्नित्यर्थः । २७ उपरि दृष्टिलक्षणम् ।
 २८ पूरात्वम् । २९ कारिकां भावयति । ३० श्लेः । ३१ अर्थापत्तिषु मध्ये ।
 ३२ स्फोटत्वात् । ३३ अग्निर्दहनशक्तियुक्तः दाहान्ययानुपपत्तेरिति । ३४ आत्मादि-
 वत् । ३५ सा । ३६ शक्तिलक्षणम् ।

देशान्तरप्राप्त्या स्वयं गमनमनुमीयते ततस्तच्छक्तिसम्बन्ध इति । श्रुतार्थापत्तिर्यथा—‘पीनो देवदत्तो दिवा न भुङ्के’ इति वाक्य-
श्रवणाद्वात्रिभोजनप्रतिपत्तिः । उपमानार्थापत्तिर्यथा—गवयोपमि-
ताया गोस्तज्ज्ञानग्राह्यताशक्तिः । अर्थापत्तिपूर्विकाऽर्थापत्तिर्यथा—
५ शब्देऽर्थापत्तिप्रबोधितावाचकसामर्थ्यादभिधानसिध्यर्थं तन्नित्य-
त्वज्ञानम् । शब्दाच्चार्थः प्रतीयते, ततो वाचकसामर्थ्यं, ततोपि
तन्नित्यत्वमिति । अभावपूर्विकाऽर्थापत्तिर्यथा—प्रमाणाभावप्र-
मितचैत्रार्थावविशेषितौद्देशाच्चैत्रवह्निर्भावसिद्धिः, ‘जीवञ्चैत्रोऽन्य-
जास्ति गृहे अभावात्’ इति । तदुक्तम्—

१० “तत्र प्रत्यक्षतो ज्ञाताद्वाहाद्हनशक्तता ।

वहेरनुमितात्स्वयं यानात्तच्छक्तियोगिता ॥ १ ॥”

[मी० श्लो० अर्था० श्लो० ३]

“पीनो दिवा न भुङ्के चेत्येवमादिवचःश्रुतौ ।

रात्रिभोजनविज्ञानं श्रुतार्थापत्तिरुच्यते ॥ २ ॥”

१५

[मी० श्लो० अर्था० श्लो० ५१]

“गवयोपमिताया गोस्तज्ज्ञानग्राह्यशक्तता ।

अभिधानप्रसिद्ध्यर्थमर्थापत्यावबोधितात् ॥ १ ॥

शब्दे वाचकसामर्थ्यात्तन्नित्यत्वप्रमेयता ।

अभिधानार्थ्याऽसिद्धेरिति वाचकशक्तता ॥ २ ॥

२०

अर्थापत्यावगम्यैव तदैन्यत्वगैतेः पुनः ।

अर्थापत्यन्तरेणैव शब्दनित्यत्वनिश्चयः ॥ ३ ॥

१ आदिलो गमनशक्तियुक्तो गतिमत्त्वान्यथानुपपत्तेः । गतिमानादिलो देश-
देशान्तरप्राप्तेः, वागादिवत् । २ स्वयं गमनशक्तियुक्तो गतिमत्त्वान्यथानुपपत्तेः ।
३ आचम । ४ देवदत्तो रात्रौ भुङ्के पीनत्वे सति दिवाभोजनाभावश्रवणान्यथानुप-
पत्तेः । ५ गौरुपमानज्ञानग्राह्यताशक्तियुक्ता उपमेयत्वान्यथानुपपत्तेः । ६ उच्चारण ।
७ शब्दे निलो वाचकसामर्थ्यान्वया (नित्यत्वं विना)ऽनुपपत्तेः । अस्मार्थापत्तिपूर्वकर्त्त-
निरूप्यते । शब्दो वाचकशक्तियुक्तः ततोऽर्थप्रतीकत्वान्या (वाचकशक्तिं विना)-
ऽनुपपत्तेः । ८ शब्द । ९ अभावप्रमाण । १० ता । ११ आ । १२ विशेषण ।
१३ अर्थापत्तिपु मध्ये । १४ सत्यात् । १५ उपमान । १६ यत्तः । १७ अस्मि-
धानसिद्ध्यर्थं तन्नित्यत्वप्रमेयता स्यात् । १८ नित्यत्वं विना । १९ वाचकशक्तता ।
अर्थापत्यवगम्या न भवित्यति अतश्चार्थापत्तिपूर्विकापत्तिः कर्त्तव्यादित्युक्ते आह ।
२० अतीन्द्रियत्वात् । २१ शक्ततायाः सकाशादन्यत्वं विज्रत्वं नित्यत्वम् । २२ परि-
ज्ञानात् । २३ यथैवार्थापत्या वाचकशक्ततावगम्यते तथैव शब्दनित्यत्वं प्रतीयते इति
कृतार्थापत्तिपूर्विकार्थापत्तेर्वैयर्थ्यमित्युक्ते आह ।

दर्शनस्य परार्थत्वादित्यसिद्धमभिधास्यते ।
 प्रमाणाभावनिर्णीतचैत्राभावविशेषितात् ॥ ४ ॥
 गेहाच्चैत्रचहिर्भावसिद्धिर्या त्विह दर्शिता ।
 तामभावोत्थितामन्यामर्यापत्तिमुद्धरेत् ॥ ५ ॥”

[मी० श्लो० अर्था० श्लो० ४-९] इत्यादि । ५

तथाऽभावप्रमाणमपि प्रमाणान्तरम् । तद्धि निर्वेधार्थाधारवस्तु-
 ग्रहणादिसाम्प्रतीतस्त्रिक्रमकारमुत्पन्नं सत् क्वचित्प्रदेशाद् घटादीना-
 मभावं विभावयति । उक्तं च—

“गृहीत्वा वस्तुसङ्गवं स्मृत्वा च प्रतियोगिनम् ।
 मानसं नास्तिताज्ञानं जायतेऽक्षीनपेक्षया ॥

[मी० श्लो० अभाव० श्लो० २७]

१०

“प्रत्यक्षादेरनुत्पत्तिः प्रमाणाभाव उच्यते ।
 सात्मनोऽपरिणामो वा विज्ञानं वान्यैवस्तुनि ॥”

[मी० श्लो० अभाव० श्लो० ११]

“प्रमाणपञ्चकं यत्र वैस्तुरूपे न जायते ।
 वैस्तुसत्तावबोधार्थं तत्राभावप्रमाणात् ॥”

[मी० श्लो० अभाव० श्लो० १] इति ।

१५

न चाध्यक्षेणाभावोऽवसीयते; तस्याभावविषयत्वविरोधात्,
 भावांशेनैवेन्द्रियाणां सम्बन्धात् । तदुक्तम्—

“न तौघदिन्द्रियेषैषा नास्तीत्युत्पाद्यते मतिः ।

भावांशेनैव सम्बन्धो योग्यत्वादिन्द्रियस्य हि ॥”

[मी० श्लो० अभाव० १८] इति ।

२०

नाप्यनुमानेनौसौ साध्यते; हेतोरभावात् । न च विषयैर्भूतस्या-

१ अभिधानान्यथासिद्धेरिति यदुक्तं तत्समर्पनीयमित्युक्ते आह । २ उच्चारणस्य ।
 ३ श्लिष्यार्थत्वात् । ४ स्वग्रन्थापेक्षयापि बद्धव्यमाग्नये । ५ अर्थापत्तिरूपण-
 प्रस्तावे । ६ प्रमाणपञ्चकाद्भिन्नात् । ७ भाष्यकारः । ८ घटादि । ९ शुद्धभूतक ।
 १० निर्वेधयस्मरणसुपलम्बिलक्षणप्राप्तस्य घटादेरनुपलम्बस्य । ११ अभावप्रमाणसाम-
 प्रीतः । १२ त्रिक्रममित्येतत्पदं प्रलक्ष्येत्यादिनाऽऽह । १३ मूलके । १४ आदि-
 पदेन काले । १५ वाद्येन्द्रियानपेक्षया । १६ स्वरूपम् । १७ प्रमाणपञ्चकरूप-
 त्वेनाभावप्रमाणस्य । १८ प्रसज्यप्रतिषेधोत्र । १९ जीवस्य प्रमाणपञ्चकरूपतया ।
 २० स्वरूपम् । २१ पशुंघासोत्र । २२ गुणि । घटांशुलक्षणे । २३ कदाचिद्व्यक्ति-
 त्वानवधारणम् । २४ अनुमानापेक्षया । २५ कारणदेः प्रागभावादिना विभागः
 कृतः । अभाव इति वा । २६ पदार्थस्य ।

भावस्याभावाद्भाषप्रमाणवैयर्थ्यम्; कारणादिविभागतो व्यवहारस्य लोकप्रतीतस्याभावप्रसङ्गात् । उक्तं च—

“न च स्याद्भवहोरोयं कारणादिविभागतः ।

प्रागभावादिभेदेन नाभावो यदि भिद्यते ॥ १ ॥”

५

[मी० श्लो० अभाव० श्लो० ७]

प्रागभावादिभेदान्ध्यानुपपत्तेश्चास्यार्थापत्त्या वस्तुरूपतावसी-
यते । उक्तं च—

“न चावस्तुन ष्टेते स्युर्भेदास्तेर्नास्य वस्तुता ।

कार्यादीनामभावः को भावो यः कारणादिनः(ना) ॥ १ ॥”

१०

[मी० श्लो० अभाव० श्लो० ८]

अनुमानावसेया चास्य वस्तुता । यदाह—

“यद्भ्यानुवृत्तिव्यावृत्तिबुद्धिग्राह्यो यतस्त्वर्थम् ।

तस्माद्भावादिवद्वस्तु प्रमेयत्वाच्च गृह्यताम् ॥ १ ॥”

[मी० श्लो० अभाव० श्लो० ९]

१५ चतुःप्रकारश्चाभावो व्यवस्थितः—प्राक्प्रध्वंसेतरेतराऽत्यन्ता-
भावभेदात् । उक्तं च—

“वस्त्वऽसङ्करसिद्धिश्च तत्प्रामाण्यं समाश्रिता ।

क्षीरे दध्यादि यन्नास्ति प्रागभावः स उच्यते ॥ १ ॥

नास्तिता पयसो दधि प्रध्वंसाभावलक्षणम् ।

२०

गवि योऽध्वाद्यभावस्तु सोन्योन्याभाव उच्यते ॥ २ ॥

शिरसोऽवयवा निम्ना वृद्धिकाठिन्यवर्जिताः ।

शशशृङ्गादिरूपेण सोऽत्यन्ताभाव उच्यते ॥ ३ ॥”

[मी० श्लो० अभाव० श्लो० २-४]

यदि चैतेषां व्यवस्थापकमभावाख्यं प्रमाणं न स्यात्तदा प्रति-

२५ नियतवस्तुव्यवस्थाविलोपः स्यात् । तदुक्तम्—

“क्षीरे दधि भवेदेवं दधि क्षीरं घटे पटः ।

शशे शृङ्गं पृथिव्यादौ चैतन्यं मूर्तितात्मनि ॥

१ अन्यथा । २ क्षीर । ३ कार्यं दधि । ४ प्रागभावादिकृतः कारणादि-
विभागः । ५ लोकप्रतीतः । ६ [अ]भावप्रमाणमन्तरेण । ७ प्रागभावादयः । ८ कार-
णेन । ९ स्वरूपादीनां च । १० अयवाऽर्थापत्त्यपेक्षया । ११ अभावो वस्तुरूपो
भवति अनुवृत्तिव्यावृत्तिबुद्धिग्राह्यत्वाद्भावादिवत्प्रमेयत्वाच्च तद्वत् । १२ शशस्य ।
१३ कालत्रये ।

अप्यु गन्धो रसश्चाग्नौ वायौ रूपेण तौ सह ।

ज्योतिर्नि संस्पर्शता ते च न चेदस्य प्रमाणता ॥”

[मी० श्लो० अभाव० श्लो० ५-६] इति ।

न च निर्दशत्वाद्धस्तुनस्तत्स्वरूपग्राहिणाध्यक्षेणार्थं सर्वात्मना
ग्रहणाद्गृहीतस्य चापरस्यादंशस्य तत्राभावात् कथं तद्व्यवस्थाप-
नाय प्रवर्त्तमानमभावाख्यं प्रमाणं प्रामाण्यमश्नुते ? इत्यभिघात-
व्यम् ; यतः सदसदात्मके वस्तुनि प्रत्यक्षादिना तत्र सदंशग्रहणे-
प्यगृहीतस्यासदंशस्य व्यवस्थापनाय प्रमाणाभावस्य प्रवर्त्तमानस्य
न प्रामाण्यव्याहृतिः । उक्तं च—

“स्वरूपपररूपाभ्यां नित्यं सदसदात्मके ।

१०

वस्तुनि ज्ञायते किञ्चिद्रूपं कैश्चित्कदाचन ॥ १ ॥

यस्य यत्र यदोद्भूतिर्जिघृक्षा चोपजायते ।

वेद्येतेभ्युभवस्तस्य तेन च व्यपदिश्यते ॥ २ ॥

तस्योपकारकत्वेन वर्त्ततेऽशस्तैर्देतैरः ।

उभयोरपि संविस्था उभयाजुगमोस्ति तु ॥ ३ ॥”

१५

[मी० श्लो० अभाव० श्लो० १२-१४]

प्रत्यक्षाद्यवतारश्च भावांशो गृह्यते यदा ।

व्यापारस्तैर्दनुत्पत्तेरभावांशे जिघृक्षिते ॥ ४ ॥”

[मी० श्लो० अभाव० श्लो० १७]

न च धर्मिणोऽभिज्ञत्वाद्भावांशवद्भावांशस्याप्यध्यक्षेणैव ग्रहः २०
सदसदंशयोर्धर्म(र्ष्य)भेदेऽन्योन्यं मेदान्नायनरश्मिरूपादिवद्-
भावस्याजुद्भूतत्वात् । न चाभावस्य भावरूपेण प्रमाणेन परिच्छिन्ति-

१ गन्धादयः । २ सद्रूपस्य वस्तुनः । ३ समर्पनाय । ४ व्याप्नोति ।
५ सौगतेन । ६ सवदा । ७ प्रमाणैः । ८ किञ्चिद्रूपमित्येतत्पदं वस्तुत्वादिना
विद्युतेति । सदंशस्यासदंशस्य वा । ९ उभयात्मके वस्तुनि । १० सदंशग्रहणकाले ।
११ अभिव्यक्तिः । १२ पुरुषाणाञ् । १३ नरैः । १४ परिच्छिन्तिः । १५ सदंश-
स्यासदंशस्य वा । १६ अभिव्यक्तेन सदंशेन असदंशेन वा । १७ पुंनिर्वस्तु । १८ य
पवांशो गृह्यते स पवाशोक्ति न तद्वितीय इत्युक्ते आह । १९ गृह्यमाणसदंशस्य ।
२० सदंशग्रहणकाले । २१ असदंशः । २२ सदसदंशयोः । २३ संवेद-
नात् । २४ उभयात्मके वस्तुनि । २५ कैश्चित्त्वैतत्पदं प्रत्यक्षाद्यवतार इत्यादिना
आह । २६ तदा भवेत् । २७ स्यात् । २८ अभावस्य । २९ ग्रहीतुमिष्टे वस्तुनि ।
३० तदनुत्पत्तेरित्येतदपरार्द्धार्थं विषट्यति । ३१ वस्तुनः । ३२ पक्षपात् ।
३३ भेदेऽन्योन्ययोः प्रत्यक्षेण ग्रहणं कुतो न स्यादित्युक्ते आह । अन्योन्यमिति ।
३४ सदंशस्योद्भूतत्वात् ॥

युंक्ता । प्रयोगः—यो यथाविधो विषयः स तथाविधेनैव प्रमाणेन परिच्छिद्यते, यथा रूपादिभावो भावरूपेण चक्षुरादिना, विवादादस्पर्दीभूतश्चाभावस्तस्माद्भावः (दभावेन) परिच्छेद्यत इति । उक्तं च—

५ “न नु (ननु) भौवाद्भिन्नत्वात्सर्म्भयोगोस्ति तेनै च ।
न ह्यत्यन्तमभेदोस्ति रूपादिर्वदिर्हापि नः ॥ १ ॥
धर्मयोगेदं ह्यद्यो हि धर्म्यभेदेपि नः स्थितेः ।
उद्ध्वामिभवात्सर्म्भत्वाद्भिन्नं चैवतिष्ठते ॥ २ ॥”
[मी० श्लो० अभाव० श्लो० १९-२०]

१० “मेयो यद्वदभावो हि मानमप्यैवसिर्ध्विताम् ।
भौवात्मके यथा मेये नाभावस्य प्रमाणता ॥

तथैवाभावमेयेपि न भावस्य प्रमाणता ।”

[मी० श्लो० अभाव० ४५-४६] इति ।

ततः शाब्दादीनां प्रमाणान्तरत्वप्रसिद्धेः कथं प्रत्यक्षानुमानभेदा-
१५ त्प्रमाणद्वैविध्यं परेषां व्यवतिष्ठेत ?

नन्वेवं प्रत्यक्षेतरभेदात्कथं भवतोपि प्रमाणद्वैविध्यव्यवस्था—
तेषां प्रमाणान्तरत्वप्रसिद्धेरविशेषादिति चेत्? तेषां ‘परोक्षेऽन्त-
र्भावात्’ इति त्रैमः । तथाहि—यदेकलक्षणलक्षितं तद्व्यक्तिभेदेऽप्ये-
कमेव यथा वैशद्यैकलक्षणलक्षितं चक्षुरादिप्रत्यक्षम्, अवैशद्यै-
२० कलक्षणलक्षितं च शाब्दादीति । चक्षुरादिसामग्रीभेदेपि हि
तज्ज्ञानानां वैशद्यैकलक्षणलक्षितत्वेनैवाभेदः प्रसिद्धः प्रत्यक्षरूप-
तानतिक्रमात्, तद्वत् शाब्दादिसामग्रीभेदेऽप्यवैशद्यैकलक्षितत्वेनै-
वाभेदः शाब्दादीनाम् परोक्षरूपत्वाविशेषात् । ननु परोक्षस्य
स्मृत्यादिभेदेन परिगणितत्वात् उपमानादीनां प्रमाणान्तरत्वमेवे-

१ अभावो अभावप्रमाणपरिच्छेधः—तथाविधविषयात् । २ भावेन परिच्छेधोऽभावैव
वेति । ३ तथाविधविषयत्वात् । ४ पदार्थात् । ५ अमानस । ६ इन्द्रियाणाम् ।
७ असदंज्ञेन । ८ रहिम । ९ यथा रूपादेरत्यन्तमभेदोस्ति, एवं भावाभावधर्मयोरत्य-
न्तमभेदो नास्ति । १० धर्मस्यात्यन्तमभेदो नास्तीति कुतः ? । ११ स्वकीयप्रमाणा-
न्यायुभयधर्मयोरपि ग्रहणं कक्षात्र स्वादित्युक्ते भाह । १२ सदसदंशयोः ।
१३ प्रत्यक्षादिप्रमाणैः । १४ अग्रहणं च । १५ अभावरूपम् । १६ सौमतेन ।
१७ वृद्धान्तमाह । १८ बौद्धानाम् । १९ सौगतमतप्रसिद्धप्रमाणद्वैविध्यात्प्रवृत्ति-
प्रकारेण । २० जैनस्य । २१ धर्मं जैनाः । २२ शाब्दादि धर्मि व्यक्तिभेदेऽप्येकं
अत्येकलक्षणलक्षितत्वात् । २३ स्पर्शनादि ।

त्यप्यसमीक्षिताभिधानम्; ते- (मत्रैवान्तर्भावात् । उपमानस्य हि प्रत्यभिज्ञानेन्तर्भावो वक्ष्यते ।

अर्थापत्तेस्त्वनुमानेऽन्तर्भावः; तथा हि—अर्थापत्युत्थापकोऽर्थान्यथानुपपद्यमानत्वेनानवगतः, अवगतो वाऽदृष्टार्थपरिकल्पना-
निमित्तं स्यात् ? न तावद्वगगतः; अतिप्रसङ्गात् । येन हि विनो-
पपद्यमानत्वेनावगतस्तमपि परिकल्पयेत्, येन विना नोपपद्यते
तमपि वा न कल्पयेत्, अन्यथानुपपद्यमानत्वेनानवगतस्यार्थाप-
त्युत्थापकार्थस्यान्यथानुपपद्यमानत्वे सत्यप्यदृष्टार्थपरिकल्पकत्वा-
सम्भवात् । सम्भवे वा लिङ्गस्याप्यनिश्चिताविनाभावस्य परोक्षा-
र्थानुमापकत्वं स्यात् । ततश्चेदं नार्थापत्युत्थापकार्थाद् भिद्येत । १०
नाप्यवगतः; अर्थापत्यनुमानयोर्भेदाभावप्रसङ्गादेव, अविनाभावि-
त्वेन प्रतिपन्नादेकस्मात्सम्बन्धिर्नो द्वितीयप्रतीतेरुभयत्राविशेषात् ।

किञ्च, अर्थान्यथानुपपद्यमानत्वावगमोऽर्थापत्तेरेव, प्रमाणान्त-
राह्वा ? प्रथमपक्षेऽन्योन्याश्रयः; तथाहि—अन्यथानुपपद्यमानत्वेन
प्रतिपन्नादर्थोदर्थोपपत्तिर्भवति; तत्प्रवृत्तेश्चास्यान्यथानुपपद्यमान- १५
त्वप्रतिपत्तिरिति । ततो निराकृतमेतत्—

“अविनाभाविता चात्रै तदैव परिगृह्यते ।

न प्रौढवगतेत्येवं सैत्यप्येषा न कौर्येणम् ॥ १ ॥”

[मी० श्लो० अर्था० श्लो० ३०]

“तेनै सम्बन्धवैलीयां सैम्बन्ध्यन्यैतरो ध्रुवम् ।

२०

अर्थापत्यैव गन्तव्यः पञ्चादस्त्वनुमानता ॥”

[मी० श्लो० अर्था० श्लो० ३३] इति ।

१ अधःपूरादिः । २ उपरि वृष्टिं विना । ३ उपरि वृष्ट्यादिलक्षण । ४ कारणम् ।
५ रासभागमनादिना । ६ धूमादिः । ७ नालिकेरुद्रीपायार्तं नरं प्रति । ८ लिङ्गम् ।
९ अन्यथा । १० घृष्यादिहेतोरपःपूरादिकल्पकाद्वा । ११ अस्यादिसाप्यसोपरिवृष्ट्या-
दिकल्पस्य वा । १२ अधःपूरादेः । १३ उपरि वृष्ट्यादिकं विना । १४ अधः-
पूरात् । १५ अर्थापत्युत्थापकार्थोवगमः । १६ अर्थस्य । १७ अन्योन्यामयो वतः ।
१८ वक्ष्यमाणम् । १९ अर्थापत्यनुमानयोरभेदः—निश्चिताविनाभाविलिङ्गप्रभवत्वा-
निशेषादिस्त्युक्ते आह परः । २० अर्थापत्तिकल्पितेष्वःपूरादौ । २१ अर्थापत्युत्पत्तेः
पूर्वमविनाभावित्वा नावसिता । २२ सती । २३ अर्थापत्तिं प्रति । २४ अतोऽनु-
मानादार्थापत्तेर्भेदः । २५ सम्बन्धे गृहीतेष्वर्थापत्तेरनुमानरूपता भविष्यतीत्युक्ते आह ।
२६ येन कारणेनाविनाभावित्वाऽर्थापत्तिसमये एव गृह्यते तेन कारणेन सम्बन्धे ।
२७ ग्रहणम् । २८ अनुमानस्य । २९ सम्बन्धिर्नोईष्टिपूर्वोर्नैव्ये अन्यतरो वृष्टिः ।
३० पूर्वमर्थापत्तिरेवैतर्थाः । ३१ उत्तरार्द्धं चैव तदा ।

अथ प्रमाणान्तरार्त्तद्वगमः; तर्कि भूयोदर्शनम्, विपक्षेऽनु-
पलम्भो वा? आद्यविकल्पे कालस्य भूयोदर्शनम्-साध्यधर्मिणि,
दृष्टान्तधर्मिणि वा? न तावदाद्यः पक्षः; शक्तेरतीन्द्रियतया साध्य-
धर्मिण्यस्य तद्विनाभावित्वेन भूयोदर्शनासम्भवात् । द्वितीयपक्षो-
५ प्यत एवायुक्तः । किञ्च, दृष्टान्तधर्मिणि प्रवृत्तं भूयोदर्शनं साध्य-
धर्मिण्यव्यस्त्यान्यर्थानुपपन्नत्वं निश्चाययति, दृष्टान्तधर्मिण्येव वा?
तत्रोत्तरः पक्षोऽयुक्तः; न खलु दृष्टान्तधर्मिणि निश्चितान्यर्थानुप-
पद्यमानत्वोर्थोऽन्यत्र साध्यधर्मिणि तथात्वेनानिश्चितः खँसाध्यं
प्रसाधयति अतिप्रसङ्गोत् । प्रथमपक्षे तु लिङ्गार्थापत्युत्थापकार्थ-
१० योर्मेदाभावः स्यात् ।

ननु लिङ्गस्य दृष्टान्तधर्मिणि प्रवृत्तप्रमाणैवशात्सर्वोपसंहारेण
स्वसाध्यनियतत्वंनिश्चयः, अर्थापत्युत्थापकार्थस्य तु साध्यधर्मि-
ण्येव प्रवृत्तप्रमाणैवशात्सर्वोपसंहारेणादृष्टार्थान्यथानुपपद्यमानत्वनि-
श्चय इत्यनयोर्मेदः; नैतद्युक्तम्; न हि लिङ्गं संपक्षानुगममात्रेण
२५ गमकम् ईष्यस्य लोहलेख्यत्वे पार्थिवत्ववत्, श्यामत्वे तत्पुत्रत्व-
वत्वा । किं तर्हि? 'अन्तर्व्याप्तिवलेन' इति प्रतिर्पादयिष्यते, तत्र च
किं सपक्षानुगमेनेति च? तदभावे गमकत्वमेवास्य कथमिति
चेत्? यथार्थापत्युत्थापकार्थस्य । तथै चार्थापत्तिरेवाखिलमनु-
मानमिति षट्प्रमाणसंख्याव्याघातः । भवतु वा संपक्षानुगमान-
२० नुगममेदः, तथापि नैतावता तैथोर्मेदः, अन्यथा पक्षधर्मत्वसहि-

१ अर्थापत्युत्थापकार्थविनायावावगमः । २ यत्र दृष्टिर्नास्ति स विपक्षस्तस्मिन् ।
३ अर्थापत्युत्थापकार्थस्य कल्याविनामृतकल्पकस्य । ४ साध्यधर्मो दहनशक्तिलक्षणो-
स्यादेरस्तीति साध्यधर्मो तस्मिन् । ५ दृष्टान्त एव धर्मो । ६ अज्ञो । ७ दाहस्य
साधनस्य । ८ शक्त्या । ९ दृष्टान्ते धर्मिणि शक्त्याविनामृतस्फोटलक्षणकल्पकाऽ-
दर्शनादेव । १० दाहस्य । ११ शक्ति विना । १२ शक्ति विना । १३ दाहः ।
१४ दाहस्य शक्तिम् । १५ मैत्रपुत्रत्वादेरपि स्वसाध्यं प्रति गमकत्वप्रसङ्गात् ।
१६ महाप्रसादो । १७ प्रत्यक्षः । १८ यो यो द्रुमवान्स सोऽग्निमिति । १९ अवि-
नायाव । २० पक्षे । २१ अर्थापत्तिरूपात् । २२ यो यः स्फोटः स सर्वेभि
शक्तियुक्तकार्यः । २३ स्फोटस्य । २४ पाषाणकाष्ठादि । २५ अन्वय । २६ कर्त्त
लोहलेख्यं पार्थिवत्वात्पाषाणवत्लोहलेख्यं न तत्पार्थिवं न, यथाक्राशम् । २७ अन्त-
र्व्याप्तिवलेनेति क्रोधः पक्षे एव साध्यसाधनवोर्व्याप्तिरन्तर्व्याप्तिः । २८ परद्वयमेवानुगम-
नाङ्गं नोदाहरणमित्यादिविचारानसरे । २९ अन्तर्व्याप्तिवलेनैव गमकत्वे च । ३० प्रति-
पादयिष्यते । ३१ यथार्थापत्युत्थापकस्यान्तर्व्याप्तिवलेन गमकर्त्त एवा लिङ्गसाधि ।
३२ दाहस्य । ३३ दृष्टान्ताभावे हेतोरगमकर्त्त च । ३४ दृष्टान्ते । ३५ अर्थापत्तेः ।
३६ अर्थापत्यनुमानयोः । ३७ प्रतापता नैदमेव ।

ताया अर्थापत्तेस्तद्ग्रहितार्थापत्तिः प्रमाणान्तरं स्यादिति प्रमाण-
संख्याव्याघातः । अस्ति चार्थापत्तिः पक्षधर्मत्वरहिता—

“नदीपूरोऽप्यघोदेशे दृष्टः सन्नपरि स्थिताम् ।
निर्यम्यो गमयत्येव वृत्तां वृष्टिं निर्यामिकाम् ॥ १ ॥
पित्रोर्ब्रह्मणत्वेन पुत्रब्राह्मणतातुमां ।
सर्वलोकप्रसिद्धा न पक्षधर्ममपेक्षते ॥ २ ॥
एवं यत्पक्षधर्मत्वं ज्येष्ठं हेत्वङ्गमिष्यते ।
तत्पूर्वोक्तान्यधर्मस्य दर्शनाद्ब्रह्मभिर्चार्थते ॥ ३ ॥” []

इत्यभिधानात् ।

नियमधर्मतोऽर्थान्तरप्रतिपत्तेरविशेषार्थयोरमेदे स्वसाध्याविना- १०
भाविनोर्थादर्थान्तरप्रतिपत्तेरत्रान्यविशेषात्कथमनुमानादार्थापत्ते-
र्मेदः स्यात् ? अथ विपक्षेऽनुपलम्भात्तस्यान्यथानुपपद्यमानत्वाव-
गमः; न; पार्थिवत्वादेरप्येवं स्वसाध्याविनाभावित्वावगमप्रसङ्गात्
विपक्षेऽनुपलम्भस्याविशेषात्, सर्वात्मसम्बन्धिनोऽनुपलम्भस्या-
सिद्धान्तैकान्तिकत्वाच्च । नन्वेवं सकलानुमानोच्छेदः, अस्तु नाम १५
तस्यायम् यो यो दर्शनाद्विपक्षेऽनुपलम्भाद्भवति प्रसाध्यति
नास्माकम्, प्रमाणान्तरात्तत्रसिद्ध्यभ्युपगमाद् । नैवतोपि ततस्त-
दभ्युपगमे प्रमाणसंख्याव्याघातः ।

नैतु वह्निसर्वस्यसाध्यक्षत एव प्रसिद्धेस्तदतिरिक्तातीन्द्रियश-
क्तिसद्भावे प्रमाणाभावात्कथं तत्रार्थापत्तेः प्रामाण्यम् ? निजा हि २०

१ हेतोर्भ्याप्यवृत्तित्वं पक्षधर्मत्वम् । २ उपरि दृष्टो देवो नदीपूर्वर्शनान्यथानुप-
पत्तेरित्येतस्य अपक्षधर्मत्वं सिद्धदेशत्वात् । यत्र देवो दृष्टिस्तत्र नदीपूरो न । यत्र
नदीपूरस्तत्र दृष्टिर्न । अत्र पक्षः उपरिदेशः । ३ पुनः । ४ व्याप्यः । ५ व्यापिकायम् ।
६ पुत्रो ब्राह्मणः—पित्रोर्ब्रह्मण्यन्यथानुपपत्तेः । ७ अनुमा अर्थापत्तिः । अत्रस्यहा नो
नुक्तिरित्याशयभिधानात् । ८ उक्तप्रकारेण । ९ अन्यस्य पक्षादपत्तिरिक्तस्य यतो नदीपूर्वः
पितृप्राक्ष्यं च । पूर्वोक्तो नदीपूर्वादिः स चासाकन्यधर्मस्य तस्य । १० यो यो हेतुः
स स पक्षधर्मत्वसहित इत्यस्य व्यभिचारः । पक्षधर्मरहितोपि हेतुर्विधत्ते वतः ।
११ स्फोट्यात्पूर्वम् । १२ पक्षधर्मसहितसहितार्थापत्त्योः । १३ स्मिन्नत्पूर्वम् ।
१४ अभिवृष्टयोः । १५ अनुमानेऽर्थापत्तौ च । १६ आकाशे लोहलेखित्वसामावात् ।
१७ दाहस्य । १८ इति चैत्र । १९ साधनस्य । २० लोहलेख्ये आकाशकल्पये
मिष्ये पार्थिवत्वसामुपलम्भप्रकारेण । २१ वज्रस्य लोहलेखित्वम् । २२ गणने ।
२३ विपक्षेऽनुपलम्भः सर्वसम्बन्धीलादिप्रकारेण । २४ परः । २५ दृष्टान्ते ।
२६ चैतानाम् । २७ कदापि । २८ नीर्मासकस्य । २९ नैयायिकः । ३० वह्नि-
त्वस्य । ३१ सरूपातिरिक्तम् ।

शक्तिः पृथिव्यादीनां पृथिवीत्वादिकमेव तदभिसम्बन्धादेव तेषां कार्यकारित्वात् । अन्त्या तु चरमसहकारिरूपा, तत्सद्भावे कार्य-
करणादभावे चाकरणात् । तथाहि-सन्तोपि तन्त्वो न कार्यमा-
भन्ते अन्त्यतन्तुसंयोगं विनेति सैव शक्तिस्तेषाम् । ननु कथमर्था-
५ न्तरमर्थान्तरस्य शक्तिः ? अर्थान्तरत्वैपि समानमेतत्-‘स एव
तस्यैव न शक्तिः’ इति । अथ यदि पूर्वेषां सहकार्येव शक्तिस्तर्हि
तस्याप्यशक्त्याकारणत्वादन्या शक्तिर्वाच्येत्यनवस्था; तदयुक्तम्;
चरमस्य हि सहकारिणः पूर्वसहकारिण एव शक्तिः इतरेतर-
भिसम्बन्धेन कार्यकरणात् । स एव सैमग्राणां भावः सामग्रीति
१० भावप्रत्ययेनोच्यते, तेन सैता सैमप्रव्यपदेशात् ।

किञ्च, असौ शक्तिर्नित्या, अनित्या वा स्यात् ? नित्या चेत्स-
वैदा कार्योत्पत्तिप्रसङ्गः । तथा च सहकारिकारणापेक्षा व्यर्थार्था-
नाम् तल्लभात्प्रागेव कार्यस्योत्पन्नत्वात् । अथानित्यासौ, कुतो
जायते ? शक्तिमतश्चेत्, किं शक्तात्, अशक्ताद्वा ? शक्ताश्चेच्छक्य-
१५ न्तरपरिकल्पनातोऽनवस्था स्यात् । अशक्तात्तदुत्पत्तौ कार्यमेव
तथाविधात्ततः किञ्चोत्पद्येत ? अलमतीन्द्रियशक्तिकल्पनया ।

तथा, शक्तिः शक्तिमतो भिन्ना, अभिन्ना वा स्यात् ? अभिन्ना
चेत्, शक्तिमात्रं शक्तिमन्मात्रं वा स्यात् ? भिन्ना चेत्, ‘तस्यैयम्’
इति व्यपदेशाभावः अनुपकारात् । उपकारे वा तथा तस्योपकारः,
२० तेन वाऽस्याः ? प्रथमपक्षे शक्तिमतः शक्त्योपकारोऽर्थान्तरभूतः,
अनर्थान्तरभूतो वा विधीयते ? अर्थान्तरभूतश्चेदनवस्था, तस्यापि

१ पृथिवीत्वादिसरूप । २ शक्तिः । ३ अन्त्य । ४ जैनादिः । ५ बीजस्य ।
६ नैयायिकः । ७ बहिः । ८ बहेः । ९ अपरसहकारिशक्त्यभावादशक्तः ।
१० अतीन्द्रियया शक्त्या शक्तिमतः उपकारः क्रियते इत्यस्मिन्पक्षे शक्त्या क्रियमाण
उपकारः शक्तिमतो भिन्नश्चेत्तदानवस्था । कथम् ? उपकारोपि शक्तिमतो भिन्नो यदि
तदा शक्तिमतोऽयमुपकार इति सम्बन्धो न स्यात् भिन्नत्वात् । उपकारेणापि स्वसम्बन्ध-
स्तिवर्धयुपकारान्तरं क्रियते चेत्तदा शक्तेनाऽशक्तेन बोपकारिणोपकारान्तरं क्रियते ? न
प्रावदशक्तेन-अशक्तस्योपकारकरणे अक्षमत्वात् । शक्तेन चैदुपकारेण स्वसम्बन्धसिध्दवर्ध-
युपकारान्तरं विधीयते तर्हि यथा शक्त्या स्वयं शक्तः उपकारः सापि भिन्नाऽभिन्ना वा ?
भिन्ना चेत्तदोपकारस्यैव शक्तिरिति न-वसाद्भिन्नत्वात् । शक्त्यापि स्वसम्बन्धसिध्दवर्ध-
युपकारान्तरं क्रियते इत्यादिप्रकारेणानवस्था । ११ कारणान्तरम् । १२ विधमानेन ।
१३ तन्प्रदानम् । १४ इत्यनवस्था परिहृता । १५ यथा शक्त्या शक्तिमात्रं शक्तः सापि
नित्याऽनित्या वा ? न तावन्नित्या-सर्वदा कार्योत्पत्तिप्रसङ्गात् । अथानित्या, सापि कुतो
जायते ? शक्तिमतश्चेच्छक्तादशक्ताद्वेलादिप्रकारेण । १६ स्फोटोदादि । १७ शक्तिः ।
१८ शक्तिमतः सकाशात् । १९ पूर्ववत् । २० न केवलं शक्तः ।

व्यपदेशार्थमुपकारान्तरपरिकल्पनया शक्त्यन्तरपरिकल्पनात् । अनर्थान्तरभूतोपकारकरणे तु स एव कृतः स्यात् । तथा च न शक्तिमानसौ तत्कार्यत्वाप्रसिद्धतत्कार्यत्वात् । शक्तिमतापि-शक्त्यन्तरान्वितेन, तद्ग्रहितेन वा शकेरुपकारः क्रियते? आद्यपक्षे शक्त्यन्तराणां ततो मेदः, अमेदो वा? उभयत्रानन्तरोक्तोभयदोषानुपपन्नोऽनवस्था च । तद्ग्रहितेनानेन शकेरुपकारे तु प्राच्यशक्ति-^५ कल्पनाप्यपार्थिका तद्ग्रहितेरेकेणैव कार्यस्याप्युत्पत्तेरुपकारवत् । शक्तिशक्तिमतोभेदाभेदपरिकल्पनायां विरोधादिदोषानुपपन्नः ।

तथा, असौ किमेका, अनेका वा? तत्रैकत्वे शकेर्युगपदनेककार्योत्पत्तिर्न स्यात् । अनेकत्वेपि अनेकशक्तिमात्मन्यर्थेनेकशक्तिभिर्विभ्रुयादित्यनवस्थाप्रसङ्ग इति । ^{१०}

अत्र प्रतिविधीयते । किं ग्राहकप्रमाणाभावाच्छेकरभाघः, अतीन्द्रियत्वाद्वा? तत्राद्यः पक्षोऽयुक्तः; कार्यात्पत्त्यन्यथानुपपत्तिजनितानुमानस्यैव तद्ग्राहकत्वात् । ननु सामर्थ्यधीनोत्पत्तिकत्वात्कार्याणां कथं तदन्यथानुपपत्तिर्यतोऽनुमानात्तत्सिद्धिः स्यात्; इत्यप्यसमीचीनम्; यतो नास्माभिः सामर्थ्याः कार्यकारित्वं प्रतिषिध्यते, ^{१५} किन्तु प्रतिनियतायास्तस्याः प्रतिनियतकार्यकारित्वम् अतीन्द्रियशक्तिसद्भावमन्तरेणासम्भाव्यमित्यसावप्यभ्युपगन्तव्या । कथमन्यथा प्रतिबन्धकमणिमन्त्रादिसन्निधानेप्यग्निः स्फोटादिकार्यं न कुर्यात् सामर्थ्यास्तत्रापि सद्भावात्? तेन ह्यग्नेः स्वरूपं प्रतिहन्त्यते, सहकारिणो वा? न तावदाद्यः पक्षः क्षेमद्वरः; ^{२०} अग्निस्वरूपस्य तदवस्थतयाध्यक्षेणैवाध्यवसायात् । नापि द्वितीयः; सहकारिस्वरूपस्याप्यङ्गुल्यग्निसंयोगलक्षणस्याविकलतयोपलक्षणात् । अतः शकेरेवानेन प्रतिबन्धोभ्युपगन्तव्यः ।

१ शक्तिमतोऽयमुपकार इति सम्बन्धव्यपदेशार्थम् । २ उपकारस्य । ३ शक्तिमात् । ४ बहिः । ५ उपकारवत् । ६ द्वितीयपक्षे । ७ निष्कष्य । ८ त्तोदादेः । ९ शक्तिरहितेन शक्तिमताऽग्निना उपकारस्योत्पत्तिर्यथा । १० अन्धकारराज, अर्थ-प्रकाश, वसिष्ठादाद, तैलशोषादि । ११ अर्थोऽनेकशक्तिरुपकारविभक्तिर्येषे च दानेकशक्तौनामैकत्वप्रसङ्गः-एकशक्त्या याध्यमानत्वात्तदन्यममशक्तिवत् । १२ अतीन्द्रियायाः । १३ वदित्वात्तयोर्धो दहनशक्तिद्युत्तत्त्वं । त्तोदादिकाद्योरेवस्यन्तमानुपपत्तेरिति । १४ तत्रवाच्यतत्रनापिनिमित्तकारणानां परस्परसम्बन्धस्यैव सामग्री । १५ जैनेः । १६ अतीन्द्रियशक्त्यभावेति सामर्थ्याः कार्यकारित्वे । १७ सामर्थ्याः प्रतिबन्धकमग्निधाने सद्भावो नान्तीत्युक्ते ऋह । १८ प्रतिबन्धकेन । १९ प्रतिबन्धकमणिमन्त्रादिना । २० परेः अन्धः ।

ननु चानेन नाग्नेः सहकारिणो वा स्वरूपं प्रतिदह्यते, किन्तु स्वभाव एव निवर्त्यते, अतः स्फोटादिकार्यस्यानुत्पत्तिः प्रतिबन्धकमणिमन्त्राद्यभावस्यापि तदुत्पत्तौ सहकारित्वात् तदभावे तदनुत्पत्तेः; इत्यप्यसमीक्षिताभिधानम्; उत्तम्भकमणिसन्निधाने कार्यस्यानुत्पत्तिप्रसङ्गात् । न खलु तदा प्रतिबन्धकमण्याद्यभावोऽस्ति प्रत्यक्षविरोधात् । ननु यथाग्निः प्रतिबन्धकमण्याद्यभावसहकारी स्फोटादिकार्यं करोति, एवं प्रतिबन्धकमण्यादिः उत्तम्भकमण्याद्यभावसहकारी तत्प्रतिबन्धं करोति, अतो न तत्सन्निधाने कार्यस्यानुत्पत्तिरिति । अस्तु नामैतत्; तथापि-प्रतिबन्ध-
 १० कोत्तम्भकमणिमन्त्रयोरभावेऽग्निः स्वकार्यं करोति, न वा ? न तावदुत्तरः पक्षः; प्रत्यक्षविरोधात् । प्रथमपक्षे तु कस्याभावः अग्नेः सहकारी-तयोरन्यतरस्य, उभयस्य वा ? न तावदुभयस्य; अन्यतरभावे कार्यानुत्पत्तिप्रसङ्गात् । अन्यतरस्य चेत्किं प्रतिबन्धकस्य, उत्तम्भकस्य वा ? प्रतिबन्धकस्य चेत्; स एवोत्तम्भकमण्यादिस-
 १५ न्निधाने कार्यानुत्पादप्रसङ्गः तदा तस्याभावाप्रसिद्धेः । उत्तम्भकस्य चेत्; अत्राप्ययमेव दोषः । न चाभावस्य कार्यकारित्वं धेदते भावरूपतानुपङ्गात्, अर्थक्रियाकारित्वलक्षणत्वात्परमार्थसतो लक्षणांतराभावात् ।

कश्चास्याभावः कार्योत्पत्तौ सहकारी स्यात्-किमितरेतराभावः,
 २० प्रागभावो वा स्यात्, प्रध्वंसो वा, अभावमात्रं वा ? न तावदितरेतराभावः; प्रतिबन्धकमणिमन्त्रादिसन्निधानेष्वस्य सम्भवात् । नापि प्रागभावः; तत्प्रध्वंसोत्तरकालं कार्योत्पत्त्यभावप्रसङ्गात् । नापि प्रध्वंसः प्रतिबन्धकमण्यादिप्रागभावावस्थायाम् कार्यस्यानुत्पत्तिप्रसङ्गात् । न च भावादर्थान्तरस्याभावस्य सङ्गावोऽस्ति, तेष्वानन्तर-
 २५ मेव निराकरिष्यमाणत्वात् । अतो निराकृतमेतत्-‘यस्यान्वयव्यतिरेकौ कार्येणानुक्रियेते सोऽभावस्तत्र सहकारी सहकारिणामनिर्णयमात्’ इति ।

१ प्रतिबन्धकेन । २ स्वस्य प्रतिबन्धकस्य भावः । ३ अभावरूपकारणभावे । ४ कार्योत्थापक । ५ प्रतिबन्धकमण्याद्यभावस्य सहकारिणोऽभावात् । ६ उत्तम्भकमणिसन्निधानकाले । ७ प्रतिबन्धकभावे उत्तम्भकसङ्गावे चोभयसङ्गावे च । ८ उत्तम्भकस्याभावात् सहकारी चेदित्यर्थः । ९ उत्तम्भकसङ्गावे कार्यानुत्पादप्रसङ्गलक्षणः । १० अभावः कार्यकारी चेत्तर्हीति शेषः । ११ तदोत्तम्भकस्याभावानिशेषाभावात् उत्तम्भकसङ्गावे कार्यं न स्यात् । १२ सत्त्वासम्बन्धः प्रमाणसम्बन्धो वेलादि । १३ प्रतिबन्धकस्य । १४ प्रतिबन्धक उत्तम्भको नेति । १५ दुष्प्रभावस्य । १६ सहकारिणो भावा अभावा एव वा भवन्तीति नियमो नास्ति ।

कथं चैवंवादिनो मन्त्रादिना कश्चित्प्रति प्रतिबन्धोप्यग्निः स एवाग्न्यस्य स्फोटिकाकार्यं कुर्यात् ? प्रतिबन्धकाभावस्य सहकारिणः कैस्यचिदप्यभावात् । न चास्मैत्पक्षेप्येतच्चोद्यं समानम्, वस्तुनोऽनेकशक्त्यात्मकत्वात्कस्याश्चित्कैनेचित्कश्चिदं [प्रति] प्रतिबन्धेप्यन्यस्याः प्रतिबन्धाभावात् । नाप्यभावमात्रं सहकारिः ५ वस्तुनोर्थान्तरस्याभावस्याभावे तद्गतसामान्यस्याप्यसम्भवात् । न चाभावस्य सामान्यं सम्भवति, द्रव्यगुणकर्मान्यतरूपतानुपपन्नात् । ततः प्रतिबन्धकमप्यादिप्रतिहतशक्तिर्वह्निः स्फोटादिकार्यस्यानुत्पादकस्तद्विपरीतस्तत्पादक इत्यभ्युपगन्तव्यम् ।

ततो निराकृतमेतत् 'कार्यं स्रोतपत्तौ प्रतिबन्धकाभावोपकृतो- १० भयघाघविवादास्पदकारकव्यतिरिक्तानपेक्षम्, तन्मात्रादुत्पत्तावनुपपद्यमानबाधकत्वात्, यंसु र्थतो व्यतिरिक्तमपेक्षते न तर्हि-न्मात्रजत्वेऽनुपपद्यमानबाधकम् यथा तन्तुमात्रापेक्षया पटः, न च तथेदम्, तस्माद्यथोक्तसाध्यम्' इति; हेतोरसिद्धेः; तन्मात्रादुत्पत्तौ कार्यस्य प्रागुक्तन्यायेनानेकबाधकोपपत्तेः । १५

स्वरूपसहकारिव्यतिरेकेण शक्तेः प्रतीत्यभावादसत्त्वे वा स्व-ग्वनितादिदृष्टकारणकलापव्यतिरेकेणादृष्टस्योप्यप्रतीतितोऽसत्त्वं स्यात्, तथा चासाधारणनिमित्तकारणाय दर्शो जलाञ्जलिः । कथं चैवंवादिनो जगतो मद्देश्वरनिमित्तत्वं सिध्येत् ? विचित्र-क्षित्यादिदृष्टकारणकलापादेवाङ्कुरादिविचित्रकार्योत्पत्तिप्रतीतेः । २० अनुमानात्तस्य तन्निमित्तत्वसाधने शक्तेरप्यत एव सिद्धिरस्तु । तथाहि-यत्कार्यम् तदसाधारणधर्मोपस्थासितादेव कारणत्वावि-र्भवेति सहकारीतैरकारणमात्राद्वा न भवेति यथा सुखोऽङ्कुरादि, कार्यं चेदं निखिलमाविर्भावद्वदित्विति । एतेनैवातीन्द्रियैर्त्वा-त्तर्दभावोऽपास्तः । २५

यदप्युक्तम्- 'पृथिव्यादीनां पृथिवीत्वादिर्कमेव निजा शक्तिः' इत्यादि; तदप्यपेशलम्; मृत्पिण्डादिभ्योपि पटोत्पत्तिप्रसङ्गात्

१ कार्योत्पत्ति प्रत्यभावः सहकारीत्वेन वादिनः । २ प्रागभावदिरूपस्य । ३ चैव । ४ मन्त्रादिना । ५ नर प्रति । ६ अभावः सहकारी विचार्यमाणो न भवते यतः । ७ स्फोटादिकार्यं धर्मि । ८ वह्नि । ९ अतीन्द्रियशक्तेः । १० कारक-मात्रात् । ११ पटादिकार्यम् । १२ तन्तुभ्यः । १३ नेमादिकम् । १४ तन्तुमात्रं । १५ पुण्यस्य । १६ पुण्यस्याऽसत्त्वे सति । १७ विशेष । १८ परेण भवता । १९ स्वरूपसहकारिव्यतिरेकेण शक्तेः प्रतीत्यभावः इत्येवंवादिनः । २० शक्ति । २१ पुण्यमद्देश्वरादेः । २२ स्वपक्षसिद्धौ साध्यम् । २३ उपादान । २४ परपक्ष-प्रतिक्षेपे साध्यमिदम् । २५ मृत्वेऽङ्कुरमसाधारणकारणम् । २६ अङ्कुरेऽसाधारणमी-श्वरः । २७ द्वितीयनिकल्पोप्यम् । २८ अक्षयभावः । २९ सामान्यम् ।

सहकारीतरंशकेस्तत्राप्यविशेषात् । अथ न पृथिवीत्वादिमात्रांपलक्षितानामर्थानां पटाद्युत्पत्तौ व्यापारो येनातिप्रसङ्गः स्यात्, तन्तुत्वाद्यसाधारणनिजशक्त्युपलक्षितानामेव तत्र तेषां व्यापारात्, इत्यप्यसाम्प्रतम्; तन्तुत्वाद्युपलक्षितानां दग्धकुशिताद्यर्थानामपि तज्जनकत्वप्रसङ्गात् । अवस्थाविशेषसमन्वितानां तन्तूनां कार्यारम्भकत्वादयमदोषः; इत्यपि-मनोरथमात्रम्; शक्तिविशेषमन्तरेणावस्थाविशेषस्यैवासम्भवात्, अन्यथा दग्धादिस्माचानामपि तेषां स स्यात् ।

यच्चोच्यते-शक्तिर्नित्याऽनित्या वेत्यादि; तत्र किमयं द्रव्यशक्तौ, १० पर्यायशक्तौ वा प्रश्नः स्यात्, भावानां द्रव्यपर्यायशक्त्यात्मकत्वात्? तत्र द्रव्यशक्तिर्नित्यैव अनादिनिधनस्वभावत्वाद्द्रव्यैश्च । पर्यायशक्तिस्त्वनित्यैव सादिपर्यवसानत्वात्पर्यायाणाम् । न च शक्तिर्नित्यत्वे सहकारिकारणानपेक्षयैवार्थस्य कार्यकारित्वात्प्रसङ्गः; द्रव्यशक्तेः केवलार्थाः कार्यकारित्वानभ्युपगमात् । पर्यायशक्तिस- १५ मन्विता हि द्रव्यशक्तिः कार्यकारिणी, विशिष्टपर्यायपरिणतस्यैव द्रव्यस्य कार्यकारित्वप्रतीतिः । तत्परिणतिश्चास्य सहकारिकारणापेक्षया इति पर्यायशकेस्तदैव भावान्न सर्वदा कार्योत्पत्तिप्रसङ्गः सहकारिकारणापेक्षावैयर्थ्यं वा । कथमन्यथा अदृष्टेश्वरादेः केवलस्यैव सुखादिकार्योत्पादनसार्मर्थ्यं सर्वदा कार्योत्पादकत्वं सह- २० कारिकारणापेक्षावैयर्थ्यं वा न स्यात् ?

यदप्यभिहितम् शकादशकाद्वा तस्याः प्रादुर्भाव इत्यादि; तत्र-शर्कादेवास्याः प्रादुर्भावः । न चानवस्था दोषाय; बीजाङ्गुरादिवदनादित्वात्तत्प्रवाहस्य । वर्तमाना हि शक्तिः प्राक्तनशक्तियुक्तनार्थेनाविर्भाव्यते, सापि प्राक्तनशक्तियुक्तेनेति पूर्वपूर्वाव- २५ स्याद्युक्तार्थानामुत्तरोत्तरावस्थाप्रादुर्भाववत् । कथं वैवंशैदिनोऽदृष्टस्याप्याविर्भावो घटते? तच्चात्मना अदृष्टान्तरयुक्तो-

१ शकवीचरादि । २ पृथिवीत्वादि । ३ अदृष्टादि । ४ पटादौ । ५ तन्तुत्वाद्यसाधारणः । ६ तन्तुत्वाद्यविशेषात् । ७ शक्तिविशेषं विनापस्याविशेषो भविष्यति चेत् । ८ शक्तिरहित । ९ इत्या च सति पटादिजनकत्वप्रसङ्गः स्यात् । १० द्रव्यशक्तिः पर्यायशक्तिरिति श्लेषोक्तं सत्यात् । ११ इति श्लेषोक्तिः अदृष्टवदिति द्रव्यम् । १२ परापरविचरन्त्यापि द्रव्यसूक्ष्मता श्रुतिव स्यात्सादिषु । १३ पर्यायशक्तिरिति श्लेषः । १४ जैवैः । १५ कथमिति श्लेषः । १६ अदृष्टान्तरादि । १७ सहकारिकारणमन्तरम् । १८ परेणाङ्गीकृतं सति । १९ शक्तेः । २० शक्तिमयः । २१ शक्ति । २२ अर्थेन । २३ शकादशकाद्वैलेर्भावदिवः ।

विर्भाव्यते, तद्ग्रहितेन वा? प्रथमपक्षेऽनवस्था । द्वितीयपक्षे तु मुक्तात्मवत्तस्यै तज्जनकत्वासम्भवेः ।

किञ्च, कथं वा महेश्वरस्याखिलकार्यकारित्वम्? सहकारिरहितस्य तत्कारित्वे सकलकार्याणामेकैवोत्पत्तिप्रसङ्गात् । तत्सहितस्य तत्कारित्वे तु तेषु सहकारिणोऽन्यसहकारिसहितेन कर्तव्या ५ इत्यनवस्था । पूर्वपूर्वाहणसहकारिसमन्वितयोरप्यत्मेश्वरयोः उत्तरोत्तराहणखिलकार्यकारित्वे निखिलभावानां पूर्वपूर्वशक्तिसमन्वितानामुत्तरोत्तरशक्त्युत्पादकत्वमस्तु, अलं सिद्ध्यामिनिवेशेन ।

यच्चान्यदुक्तम्-शक्तिः शक्तिमतो भिन्नाऽभिन्ना वेत्यादि; तदप्ययुक्तम्; तस्यास्तद्वतः कथञ्चिद्भेदाभ्युपगमात् । शक्तिमतो हि १० शक्तिर्भिन्ना तत्प्रत्यक्षत्वेऽप्यस्याः प्रत्यक्षत्वाभावात्, कार्यन्याथानुपपत्त्या तु प्रतीयमानासौ । तद्वतो विवेकैः प्रत्येतुमशक्यत्वादिभिरेति । न चात्र विरोधाद्यवतारः; तदात्मकवस्तुनो जीत्यन्तरत्वात्, मेचकज्ञानघत्सामान्यविशेषवत् ।

यत्पुनरुक्तमेकानेका वेत्यादि, तत्रार्थानामनेकैव शक्तिः । १५ तथाहि-अनेकशक्तियुक्तानि कारणानि विचित्रकार्यत्वाच्चार्यवत् । विचित्रकार्याणि वा कारणशक्तिभेदनिमित्तकानि तर्थाद्विभिन्नार्थकार्यवत् । न हि कारणशक्तिभेदमन्तरेण कार्यनानात्वं युक्तं रूपादिज्ञानवत्, यथैव हि कर्कटिकादौ रूपादिज्ञानानि रूपादिस्वभावभेदनिबन्धनानि तथा क्षणस्थितैरेकसादपि प्रदीपादेर्भा- २० वाद् घर्त्तिकादाहृतैलशोषादिविचित्रकार्याणि तैच्छक्तिभेदनिमित्तकानि व्यवतिष्ठन्ते, अन्यथा रूपादेर्नानात्वं न स्यात् । वैश्वरादिसामग्रीभेदादेव हि तज्ज्ञानप्रतिभासभेदः स्यात्, कर्कटिकादिद्रव्यं तु रूपादिस्वभावग्रहितमेकमनंशमेव स्यात् । वैश्वरादिबुद्धौ

१ अष्टान्तरपरिकल्पनया आत्मन इति पक्षे । २ संघर्षात्मनः । ३ अदृष्टरहितत्वात् । ४ अदृष्टविशेष । ५ महेश्वरेण । ६ अनवस्थाभावात्तदेन । ७ जैत्रैः । ८ अग्निं विना घूमवत् । ९ पदार्थात् । १० भेदेन । ११ शक्तैः कथञ्चिद्भेदाभेदपक्षे । १२ भेदाभेद । १३ भेदाभेदाद्वा बालन्तरत्वात् । १४ दहनो दाहशक्तियुक्तो दाहान्यथानुपपत्तेः[?] । १५ सन्न्यक्तिसन्न्युत्पत्त्यात्सामान्यरूपता गोलक्ष । अथत्वादिस्यो व्यावर्तमानत्वादिशेषरूपता यथा तथा सर्वत्र प्रतिपत्तव्यम् । सामान्यमेव विशेषस्यैव तद्वत् । १६ विचित्राणि क्षयाणि येषां तानि विचित्रकार्याणि तेषां भावस्यैव दस्यन्तेति । १७ विचित्रकार्यत्वात् । १८ सन्दिग्धानैकान्तिकत्वे सत्यात् । १९ तैलशोषादिशक्तिभेदं विनापि-तैलशोषादिकायां स्थितिरेव । २० तैलशोषादि । २१ तैलशोषादिशक्तिं विनापि शक्तिभेदनिमित्तकानि यदि तैलशोषादिकार्याणि स्युः । २२ किन्तु । २३ रूपादिस्वभावसमर्थनार्थं परः प्राह ।

प्रतिभासमानत्वाद्द्रुपादेः कथं कर्कटिकादिद्रव्यस्य तद्द्रुहितत्वमिति चेत् ? तर्हि तैलशोषादिविचित्रकार्यानुमानबुद्धौ शक्तिनानात्वस्याप्यर्थानां प्रतीतेः कथं तद्द्रुहितत्वं स्यात् ? प्रत्यक्षबुद्धौ प्रतिभासमाना रूपादय एव परमार्थसन्तो न त्वनुमानबुद्धौ प्रतिभासमानाः ५ शक्यैः; इत्यपसु(प्यसु)न्दरम्; अदृष्टेश्वरादेरपरमार्थसत्त्वप्रसङ्गात् । प्रदीपादिद्रव्यस्यैकस्य वर्तिकादिसहकारिसामग्रीभेदात्तद्द्रुहादिकार्यनानात्वं न पुनस्तच्छक्तिसंभावमेदात्; इत्यप्यविचारितरमणीयम्; रूपादेरप्यभावप्रसङ्गात् । शक्यं हि वक्तुं कर्कटिकादिद्रव्ये चक्षुरादिसामग्रीभेदाद्द्रुपादिप्रत्ययप्रतिभासभेदो, न पुना १० रूपाद्यनेकस्वभावमेदादिति । तन्न प्रमाणप्रतिपन्नत्वाद्द्रुपादिवच्छक्तीनामपलापो युक्त इति ।

यत्पुनरर्थापस्यर्थापत्तेरुदाहरणं वाचकसामर्थ्यात्तन्नित्यत्वज्ञानमुक्तम्; तदप्ययुक्तम्; वाचकसामर्थ्यस्य तत्प्रत्यनन्यथाभवनसिद्धेः । निराकरिष्यते चाग्रे नित्यत्वं शब्दस्येत्यलमतिप्रसङ्गेन ।

१५ याप्यभावार्यापत्तिः-जीवञ्चैत्रोऽन्यत्रास्ति गृहेऽभावादिति; तत्रापि किं गृहे यत्तस्य जीवनं तदेव गृहे चैत्राभावस्य विशेषणम्, उतान्यत्र ? प्रथमपक्षे तत्राभावस्य विशेष्यस्यासिद्धिः, यदा हि चैत्रो गृहे जीवति कथं तदा तत्र तदभावो येनैसौ तेन विशेष्येत ? यदा च तत्र तदभावो, न तदा तत्र तज्जीवनमिति । द्वितीयपक्षे २० तु विशेषणस्यासिद्धिः, न खलु चैत्रस्यान्यत्र यज्जीवनं तदर्थापस्युदयकाले तथाविधप्रदेशविशेषणत्वेन कुतश्चित्प्रतीयते अर्थापत्तेर्वैयर्थ्यप्रसङ्गात् । येनैव हि प्रमाणेन तज्जीवनं प्रतीयते तेनैव तत्सद्भावोपि । न ह्यप्रतिपन्ने देवदत्ते तद्धर्मो जीवनं प्रत्येतुं शक्यम् अतिप्रसङ्गात् । न चाप्रतीतस्य विशेषणत्वमर्त एव । अर्थापत्यैव

१ प्रदीपो नानाशक्तियुक्तः तैलशोषादिनानाकार्यान्यथानुपपत्तेरिति । २ द्रुपणमीलैवं वचः । ३ ज्ञाने । ४ निरस्तत्वप्रतिपादनाव । ५ शब्द । ६ शब्दमित्यत्वं प्रति । ७ अन्यथा नित्यत्वं विना न भवनं तस्य । ८ अविनाभावस्यासिद्धेः । ९ जीवतः । १० नहिजीवनम् । ११ विशेष्यस्यासिद्धिमुद्गावयन्ति । १२ चैत्राभावः । १३ गृहजीवनेन । १४ चैत्रस्य नहिजीवनं चैत्राभावविशेषणमित्यसिद्धेः । १५ जीवनस्य । १६ अस्तिक्रमेव प्रदर्शयन्ति । १७ नहिः । १८ अन्यप्रदेश । १९ प्रमाणत्वात् । २० विद्वद्भिः । २१ अन्यथा । २२ अर्थापत्तेर्वैयर्थ्यप्रसङ्गमेव सूचयन्ति । २३ अतोर्थापत्या चैत्रसद्भावपरिकल्पनं व्यर्थम् । २४ जीवनमेव प्रतीयते न तत्सद्भाव इति परेणोक्ते जैनः प्राह । २५ मेरुप्रतीलभावोपि तद्द्रुपादिप्रतिपत्तिप्रसङ्गात् । २६ जीवनस्य । २७ दण्डाऽज्ञाने दण्डिज्ञानमसद्भाव ।

तत्सिद्धावितरेतराश्रयः-सिद्धे हि तथा तस्यान्यत्र जीवने तद्विशेष-
वितात्तत्प्रदेशाभावादर्थोपस्युद्धयः, ततश्च तत्सिद्धिरिति ।

अथ न निश्चितं सजीवनं तद्गृहाभावविशेषणं येनोपयं दोषः,
किन्तु 'यदि गृहेऽसन् जीवति तदान्यत्रास्ति' इत्यभिधीयते;
तर्हि संशयरूपत्वात्तस्याः कथं प्रामाण्यम् ? या तु प्रमाणं साजु-५
मानमेव । पञ्चावैयवत्वमप्यत्र सम्भवत्येव । तथाहि-जीवतो
देवदत्तस्य गृहेऽभावो वह्निस्तत्सद्भावपूर्वकः जीवतो गृहेऽभा-
वत्वात् प्राङ्गणे स्थितस्य गृहे जीवद्भाववत् । यद्वा, देवदत्तो
वह्निरस्ति गृहासंसृष्टजीवनाधारत्वात्सत्त्वात्मवत् । कथं पुनर्देवद-
त्तस्यानुपलभ्यमानस्य जीवनं सिद्धं येन तद्वैतुविशेषणमित्यसत् ; १०
प्रसङ्गसाधनोपन्यासात् ।

यच्च निषेधैर्वाधारवस्तुग्रहणादिसामग्रीत इत्याद्युक्तम् ; तत्र
निषेध्याधारो वस्त्वन्तरं प्रयोगिसंसृष्टं प्रतीयते, असंसृष्टं वा ?
तत्राद्यपक्षोऽयुक्तः ; प्रतियोगिसंसृष्टवस्त्वन्तरस्याप्यक्षेण प्रतीतौ
तत्र तदभावग्राहकत्वेनाभावप्रमाणप्रवृत्तिविरोधात् । प्रवृत्तौ वा १५
न प्रामाण्यम् ; प्रतियोगिनः सत्त्वेपि तत्प्रवृत्तेः । द्वितीयपक्षे तु
अभावप्रमाणवैयर्थ्यम्, प्रत्यक्षेणैव प्रतियोगिनोऽभावप्रतिपत्तेः ।
अथ प्रतियोग्यसंसृष्टतावगमो वस्त्वन्तरस्याभावप्रमाणसम्पाद्यः ;
तर्हि तदप्यभावप्रमाणं प्रतियोग्यसंसृष्टवस्त्वन्तरग्रहणे सति प्रव-
र्त्तते, तदसंसृष्टतावगमश्च पुनरप्यभावप्रमाणसम्पाद्य इत्यन- २०
वस्था । प्रथमाभावप्रमाणात्तदसंसृष्टतावगमे चान्योन्याश्रयः ।

१ वह्निजीवन । २ वह्निजीवन । ३ गृह । ४ इतरेतराश्रयः । ५ यदि जीवति
तदा वह्निरस्ति यदि न जीवति-तदा नास्तीत्यर्थः । ६ जीवनस्य संशयितत्वात् ।
७ अन्यत्र जीवनातिशयात् । ८ यथापचित्तिर्व्याप्यप्रमाणं तथा सर्वाव्यप्रमाणं स्वादित्या-
रेकायामाह । ९ पञ्चावयववत्त्वाभावे कथमयोपचैरनुमानत्वमिति परेषोक्ते सत्याह ।
१० प्रतिशाहेतुत्वाहरणोपनयनिगमनान्यवयवाः । ११ दृष्टेन व्यभिचारपरिहाराय-
नेतत् । १२ प्रमारुरूपवत् । १३ अभावरूपहेतोः । १४ साध्यतापनयोर्वाप्य-
व्यापकभावसिद्धौ व्याप्याभ्युपगमो व्यापकाभ्युपगमनान्तरीयको यत्र (अर्थे) प्रदग्धते
तत्प्रसङ्गसाधनम् । १५ घट । १६ भूतम् । १७ आदिपदेन प्रतिषेधसंरक्षणमुप-
लब्धिः । १८ भूतम् । १९ घटेन । २० रहितम् ।
२१ घटाभाव । २२ अभावप्रमाणम् । २३ अभाववगमः । २४ भूतम् ।
२५ आद्यम् । २६ उत्पत्तेः । २७ प्रथमाभावप्रमाणात्प्रतियोग्यसंसृष्टतावगमः तदव-
गमश्च प्रथमाभावप्रमाणोदये इति ।

प्रतियोगिनोपि स्वरणं वस्त्वन्तरसंसृष्टस्य, असंसृष्टस्य वा । यदि संसृष्टस्य; तदाऽभावप्रमाणप्रेवृत्तिः । अथासंसृष्टस्य; ननु प्रत्यक्षेण वस्त्वन्तरासंसृष्टस्य प्रतियोगिनो ग्रहणे तथाभूतस्यास्य स्वरणं स्यान्नान्यथा । तथाभ्युपगमे च तदेवाभावप्रमाणवैयर्थ्यं ५ 'वस्त्वसङ्करसिद्धिश्च तत्प्रामाण्यं समाश्रिता' इत्यादिग्रन्थविरोधश्च । वस्तुमात्रस्याध्यक्षेण ग्रहणाभ्युपगमे प्रतियोगीतरव्यवहारभावः ।

यदि चानुभूतेषु भौवे प्रतियोगिस्वरणमन्तरेण भौवप्रतिपत्तिर्न स्यात्, तर्हि प्रतियोग्यप्यनुभूत एव स्वर्तव्यो नान्यथा अति-
 १० प्रसङ्गात् । तदनुभवश्चान्यैः संसृष्टतयाऽभ्युपगन्तव्यः, तस्याप्यन्यैः संसृष्टताप्रतिपत्तिस्ततोऽन्यत्र प्रतियोगिस्वरणात् तत्राप्ययमेव न्याय इत्यनवस्था । अथ प्रतियोगिनो भूतलस्य स्वरणाद् घटस्यान्यैः संसृष्टता प्रतीयते, तत्स्वरणाच्च भूतलस्य तदेतरेतराभ्युपगमः; तथा-
 १५ हि—न यावद्धटासंसृष्टभूभागप्रतियोगिस्वरणाद् घटस्य भूतलासंसृष्टताप्रतिपत्तिर्न तावत्तत्स्वरणोद्भूतलस्य घटासंसृष्टताप्रतिपत्तिः, यावच्च भूतलस्य घटासंसृष्टता न प्रतीयते न तावत्तत्स्वरणेन घट-
 २० स्येति । ततोऽन्यप्रतियोगिस्वरणमन्तरेणैवाभौवांशो भावांशवत्प्रत्यक्षोऽभ्युपगन्तव्यः । भूतलासंसृष्टघटदर्शनाहितसंस्कारस्य च पुनर्घटासंसृष्टभूभागदर्शनानन्तरं तथाविधघटस्वरणे सति 'अस्या-
 २० भावः' इति प्रतिपत्तिः प्रत्यभिज्ञानमेव । यदा तु स्वदुरीगमाहि-

१ स्थूला च प्रतियोगिनमित्येतद्विचारयति । २ भूतल । ३ भूतलसम्बद्धप्रतियोगि-
 सङ्गावग्राहकत्वेनैव प्रत्यक्षस्य प्रवृत्तेः । ४ पूर्वोक्तमेव । ५ आयातम् । ६ प्रत्यक्षेणैवा-
 भावस्य प्रतीतत्वात् । ७ अनवस्थादिदूषणपरिहारं करोति । ८ भूतलमात्रस्य । ९ अन-
 वस्थादिदोषमवात्परिण । १० घट । ११ भूतल । १२ भूतलस्य । १३ प्रत्यक्षप्रतिपत्तेः ।
 १४ भूतललक्षणे । १५ घटस्य । १६ परिण । १७ अन्येन पटेन । १८ परिण ।
 १९ घटस्य । २० पटेन । २१ घटात् । २२ पटे । २३ अन्यानवस्था स्यात् ।
 २४ अनवस्थापरिहारार्थं परः प्राह । २५ भूभागेन । २६ अन्यासंसृष्टता प्रतीयते ।
 २७ घटासंसृष्टभूभागप्रतियोगिस्वरणात् घटस्य भूतलासंसृष्टताप्रतिपत्तिस्तस्यां सत्यां
 भूभागासंसृष्टघटप्रतियोगिस्वरणाद्भूतलस्य घटसंसृष्टताप्रतिपत्तिस्तस्यां सत्यां घटासंसृष्ट-
 भूभागस्वरणाद् घटस्य भूतलासंसृष्टताप्रतिपत्तिरित्यान्वयमुद्धेनेतरेतराभयः । २८ भूभा-
 गासंसृष्टघटप्रतियोगि । २९ दृष्टश्चतानुभूतेषु स्वरणं चोपनायते । ३० घटासंसृष्ट-
 भूभाग । ३१ असंसृष्टताप्रतीतिः । ३२ इतरेतराभयो यतः । ३३ स्वर्गमाणघटस्य ।
 ३४ प्रतियोगिस्वरणं विना जायमानं ज्ञानं प्रत्यक्षं प्रतियोगिस्वरणानन्तरमुपजायमानम-
 भावप्रमाणं भविष्यतीत्युक्तेः प्राह । ३५ जरस्य । ३६ स्वर्गमाणघटस्य । ३७ भूभागे ।
 ३८ दर्शनेस्वरणकारणकत्वाविशेषात् । ३९ आविर्भावतिरोभानात्सर्वं सर्वत्र विद्यते इति ।

तत्संस्कारः साङ्ख्यस्तथाऽप्रतिपद्यमानः तत्प्रसिद्धसत्त्वरजस्त-
मोलक्षणविषयनिदर्शनोपदर्शनेन अनुपलब्धिविशेषतः प्रतियोग्यते
तदाप्यनुमानमेवेति कौभावप्रमाणस्यावकार्शः ? ततोऽयुक्तमु-
क्तम्—'न चाप्यक्षेणाभावोऽवसीयते तस्याभावविषयत्वविरोधात्,
नाप्यनुमानेन हेतोरभावात्' इति । ५

किञ्च, अभावप्रमाणेनाभावग्रहणं तस्यैव प्रतिपत्तिः स्यान्न
प्रतियोगिनिवृत्तेः । अभावप्रतिपत्तेस्तन्निवृत्तिप्रतिपत्तिश्चेत्, सां
किं प्रतियोगिस्वरूपसम्बद्धा, असम्बद्धा वा ? न तावत्सम्बद्धा,
भावाभावयोस्तादात्म्यादिसम्बन्धासंभवस्य वक्ष्यमाणत्वात् ।
अथासम्बद्धा, तर्हि तत्प्रतिपत्तावपि कथं प्रतियोगिनिवृत्ति- १०
सिद्धिः अतिप्रसङ्गात् ? तन्निवृत्तेरप्यपरतन्निवृत्तिप्रतिपत्त्यभ्यु-
पगमे चानवस्थो ।

यच्च 'प्रमाणपञ्चकाभावः, तदर्थ्यज्ञानम्, आत्मा वा ज्ञाननिर्मु-
क्तोऽभावप्रमाणम्' इति त्रिप्रकारतास्येत्युक्तम्; तदप्ययुक्तम्;
यतः प्रमाणपञ्चकाभावो निरुपार्थ्यत्वोक्तं प्रमेयाभावं परिच्छि- १५
न्धात् परिच्छित्तेर्ज्ञानधर्मत्वात् ? अथ प्रमाणपञ्चकाभावः प्रमेया-
भावविषयं ज्ञानं जनयन्नुपचाराद्भावप्रमाणमुच्यते; न, अभाव-
स्यावस्तुतया तज्ज्ञानजनकत्वायोगात् । वस्तुवै हि कार्यमुत्पादं-
यति नावस्तु, तस्य सैकलसामर्थ्यविकलत्वात्परविषाणवत् ।
सामर्थ्यं वा तस्य भावरूपताप्रसक्तिः, तल्लक्षणत्वात्परमार्थसतो २०
लक्षणान्तरभावात्, सत्तासम्बन्धादेस्तल्लक्षणस्य निषेत्स्यमान-

१ अभावं प्रत्यक्षतः । २ दृष्टान्त । ३ अमान्य । ४ इह भूले षटो नास्ति
दृश्यत्वे सत्यनुपलम्बैः । यत्र यस्य दृश्यत्वे सत्यनुपलम्बित्वात् तस्याभावो यथा तमसि
सत्त्वस्य । ५ विषये । ६ प्रत्यक्षप्रत्यभिज्ञानानुमानैरभावः प्रतीयते यतः । ७ सति ।
८ घटाभावस्य । ९ प्रतिपत्तिः स्यात् । १० निवृत्तिः । ११ अनन्तरमेव प्रध्वंसा-
भावनिराकरणे । १२ निवृत्त्याऽसम्बद्धस्य प्रतियोगिनो षट्स्य यथाऽभावः स्यात्तथा
यदस्यापि निवृत्त्याऽसम्बद्धस्याभावप्रसङ्गः—उभयत्रासम्बद्धत्वाविशेषात् । १३ सा चासी
निवृत्तिश्च तन्निवृत्तिस्तस्याः सकाशात् । १४ परेण । १५ प्रतिपत्तिर्घटेन सम्बद्धाऽ-
सम्बद्धत्वादिप्रकारेण । १६ निषेधाद्घटादन्यस्य भूतस्य परिकान्तम् । १७ परेण ।
१८ निःसंभावत्वात् । १९ गगनाम्भोजवत् । २० निरुपाख्यः स्यात्प्रमेयाभावपरि-
च्छेदकस्य सादित्युक्ते सत्यात् । २१ मिलितेऽयमुपचारः प्रमाणभूतज्ञानजनकत्वेन
प्रमाणं प्रमाणपञ्चकाभावो न साक्षात्प्रमाणमिति । २२ तत्र । २३ शशशब्दवत् ।
२४ समुत्पत्त्याद् दृष्टिपण्डवत् । २५ देशकालसंभावयथा । २६ आदिशब्देन प्रमाण-
विषयत्वम् । २७ सप्रभावनिराकरणप्रसङ्गो ।

त्वात् । न च यत्र प्रमाणपञ्चकाभावस्तत्रावश्यं प्रमेयाभावज्ञान-
मुत्पद्यते; परचेतोवृत्तिविशेषैरनैकान्तिकत्वात् ।

किञ्च, प्रमाणपञ्चकाभावो ज्ञातः, अज्ञातो वा तज्ज्ञानहेतुः
स्यात् ? ज्ञातश्चेत्कुतो ज्ञातिः ? तद्विषयप्रमाणपञ्चकाभावाच्चेत्,
५ अनवस्था । प्रमेयाभावाच्चेदन्योन्याश्रयः—सिद्धे हि प्रमेयाभावे
प्रमाणपञ्चकाभावसिद्धिः, तत्सिद्धेश्च प्रमेयाभावसिद्धिरिति ।
अज्ञातस्य च ज्ञापकत्वायोगः “नाज्ञातं ज्ञापकं नाम” []
इति प्रेक्षावद्भिरभ्युपगमात्, अन्यथातिप्रसङ्गः । अज्ञातदेस्तु
कारकत्वादज्ञातस्यापि ज्ञानहेतुत्वाविरोधः । न चास्यापि कार-
१० कत्वात्तद्वेतुत्वाविरोधः; निखिलसामर्थ्यशून्यत्वेनास्य कारक-
त्वासम्भवादित्युक्तत्वात् । ततोऽयुक्तमुक्तम्—

“प्रत्यक्षाद्यवतारश्च भावांशो गृह्यते यदा ।

व्यापारस्तदनुत्पत्तेरभावांशे जिघृक्षिते ॥”

[मी० श्लो० अभाव० श्लो० ९७] इति ।

१५ द्वितीयपक्षे तु यत्तदर्थज्ञानं तत्प्रत्यक्षमेव, पर्युर्दासवृत्त्या हि
निषेध्याद् घटादेरन्यस्य भूतलादेर्ज्ञानमभावप्रमाणाभ्यां प्रतिपद्य-
मानं तदैन्या(न्य)भावलक्षणाभावपरिच्छेदकमिष्टमेव । तृतीयपक्षे
तु किमसौ सर्वथा ज्ञाननिर्मुक्तः, कथञ्चिद्वा ? तत्राद्यविकल्पे
'माता मे वन्ध्या' इत्यादिवत्स्ववचनविरोधः । सर्वथा हि यद्यात्मा
२० ज्ञाननिर्मुक्तः कथमभावपरिच्छेदकः ? परिच्छेदस्य ज्ञानधर्मत्वात् ।
परिच्छेदकत्वे वा कथमसौ सर्वथा ज्ञाननिर्मुक्तः स्यात् ? अथ
कथञ्चित् ; तथाहि—'अभावविषयं ज्ञानमस्यास्ति निषेध्यविषयं तु
नास्ति' इति; तर्हि तज्ज्ञानमेवाभावप्रमाणं स्यात्तत्त्वात् । तच्च भावा-

१ अन्यथा । २ प्रमाणपञ्चकाभावेऽपि प्रमेयाभावज्ञानं न परचेतोवृत्तिविशेषेभ्यस्ति
अतीन्द्रियत्वात् । ३ पुरुषेण । ४ प्रमेयाभावः । ५ वस्तुः । ६ प्रमाणपञ्चकाभावलक्षणा-
भावप्रमाणादित्यर्थः । ७ ग्रन्थानवस्था । ८ अभावस्य । ९ अन्वेषाज्ञातस्य धूमसा-
ग्निज्ञापकत्वप्रसङ्गात् । १० अक्षादेरज्ञातस्य कर्म ज्ञापकत्वमित्युक्ते जाह । ११ जादि-
पदेन अष्टमम् । १२ ज्ञानं प्रति कारणत्वं कारकत्वम् । १३ प्रमेयाभावज्ञानं । १४
प्रमाणपञ्चकाभावोऽभावज्ञानहेतुर्न भवति यतः । १५ तदा भवति । १६ निषेध्यवदात् ।
१७ भूतलस्य । १८ घटाभावः भूतलस्यज्ञान इति । १९ (तस्माद् घटादन्यभूतलम् ।
सञ्जातो भावश्च (अर्थः) स तदन्यभावो लक्षणं यस्याभावस्य) । २० समयोरपि सम्भ-
स्योर्थं (भावान्तरस्वभावलक्षणः) विनाशः । २१ आत्मा । २२ प्रमेयाभावस्य ।
२३ अभावः । २४ घटादन्यभूतलं तदेव स्वभावो यस्याभावस्य ।

न्तरस्वभावाभावग्राहकतयेन्द्रियैर्जनितत्वात्प्रत्यक्षमेव । ततो निराकृतमेतत्—“न तावदिन्द्रियेणैपा” इत्यादि, “वस्त्वसङ्करसिद्धिश्च तत्प्रामाण्यं समाश्रिता” इत्यादि च; तस्याः प्रत्यक्षादिप्रमाणत एव प्रसिद्धेः । कथं ततोऽभावपरिच्छित्तिरिति चेत्; कथं भावस्यै? प्रतिभासाञ्चेदितरत्र समानम् । न खलु प्रत्यक्षे-^१ णान्यैसंसृष्टः प्रथमतोऽर्थोऽनुभूयते, पश्चाद्भावप्रमाणादन्यासंसृष्ट इति क्रमप्रतीतिरस्ति, प्रथममेवान्यासंसृष्टस्यार्थस्याध्यक्षे प्रतिभासनात् । न चान्यासंसृष्टार्थवेदनादन्यत्तदभाववेदनं नाम ।

एतेनैतदपि प्रत्युक्तम् “स्वरूपपररूपाभ्याम्” इत्यादि; सर्वैः सर्वदोभयरूपस्यैवान्तर्वेदित्वात्^२ इति^३ प्रतिसंवेदनात्, अन्यथा तद-^{१०} भावप्रसङ्गात् ।

यदप्युक्तम्—“यस्यै यत्रं यदोद्भूतिः” इत्यादि; तदप्युक्तम्; न ह्यनुभूतमनुभूतं नाम । नापि जिघृक्षाप्रभवं सर्वज्ञानम्; इन्द्रियमनोमात्रभावे भावात्तदभावे चाभावात्तस्य ।

यच्चान्यदुक्तम्—“मेयो यद्भवभावो हि” इत्यादि; तत्र ‘भावरू-^{१५} येण प्रत्यक्षेण नाभावो वेद्यते’ इति प्रतिज्ञौ अन्यासंसृष्टभूतलगा-^४ हिणा प्रत्यक्षेण निराक्रियते अनुष्णाग्निप्रतिष्ठावत् । ‘भावात्मके यथा मेये’ इत्याद्यप्युक्तम्; अभावादिपि भावप्रतीतेः, यथा गगनतले पश्नादीनामधःपाताभवाद्वायोरिति । भावाच्चाख्यादेः^५ शीताभावस्य प्रतीतिः सकलजनप्रसिद्धा । ‘यो यथाविधः स^{२०} तथाविधेनैव गृह्यते’ इत्यभ्युपगमे चाभावस्य मुद्गरविद्येतुत्वा-

१ अभावस्य प्रत्यक्षतो ग्राहणं सिद्धं यतः । २ नास्तीत्युत्पाद्यते मतिः । भावाच्चेनैव सम्बन्धो योग्यत्वादिन्द्रियस्य हि । ३ अभावग्राहकनायाः । ४ प्रत्यक्षादिप्रमाणात्तत्र मते परिच्छित्तिः । ५ षटेन । ६ भूतलक्षणः । ७ अन्यसंसृष्टज्ञानानन्तरम् । ८ षटेन । ९ यत्रैवोभयरूपान्वेषितयतयानुभूयमानं ज्ञानं कथमितरावेऽनुभूतमिति भावः । १० भूतलक्षणस्य । ११ भूतलक्षण । १२ नित्यं सदसदात्मके । वस्तुनिष्ठावते किञ्चिद्भूतं कैश्चिररूपाचनेत्यन्तम् । १३ प्रमाणैः । १४ सदसदात्मकस्य । १५ ज्ञानस्य । १६ षटादेः । १७ उभयरूपान्वेदनं न चेत् । १८ उभयरूपत्वा-^{१५} दर्थस्य । १९ सदंशस्यासदंशस्य वा । २० वस्तुनि । २१ जिघृक्षा शोपनायते । वेद्यतेऽनुभवस्तस्य तेन च व्यपदिश्यते इत्यन्तम् । २२ प्रत्यक्षप्रतिपन्नम् । २३ अभाव-^{१५} रूपम् । २४ मानस (अभावरूप) प्येवमित्युक्तात् । भावात्मके यथा मेये नाऽभावस्य प्रमाणात् । तथैवाभावमेयेपि न भावस्य प्रमाणात्तेति च । २५ अभावोऽभावपरिच्छेद्यः तथाविधत्वादिति वा प्रतिष्ठा । २६ गगनतले वायुरस्ति पश्नादीनामधःपाताम्यावा-^{१५} न्ययान्यथानुपपत्तेः । २७ प्रतीतिः । २८ भावरूप ।

भावः स्यात् । शक्यं हि वक्तुम्—यो यथाविधः स तथाविधेनैव क्रियते यथा भावो भावेन, अभावश्चाभावः, तस्मादभावेनैव क्रियते । प्रत्यक्षबाधा चान्यत्रापि समाना ।

यदप्यभिहितम्—‘प्रागभावादिभेदाच्चतुर्विधश्चाभावः’ इत्यादिः
 ५ तदप्यभिधानमार्तम् ; यतः स्वकारणकलापात्स्वभावव्यवस्थि-
 तयो भावाः समुत्पन्ना नात्मानं परेण मिश्रयन्ति तस्य परत्वं प्रस-
 सङ्गात् । न चान्यतोऽप्या (तो व्या)वृत्तस्वरूपाणां तेषां भिन्नोऽ-
 भाऽवांशः सम्भवति । भावे वा तस्यापि पररूपत्वाद्भावेन
 ततोपि व्यावर्तितव्यमित्यपरापराभावपरिकल्पनयानवस्था । अतो
 १० न कुर्वन्निर्द्भावेन व्यावर्तितव्यमित्येकस्वभावं विश्वं भवेत्, पर-
 भावाभावाच्च व्यावर्तमानस्यार्थस्य पररूपताप्रसङ्गः ।

यदि चेतरेतराभाववशाद् घटः पटादिभ्यो व्यावर्तत, तर्हीत-
 रेतराभावोपि भावादभावान्तराच्च प्रागभावादेः किं स्वतो व्याव-
 र्तत, अन्यतो वा ? स्वतश्चेत् ; तथैव घटोप्यन्येभ्यः किन्न व्याव-
 र्तत ? अन्यतश्चेत् ; किमसौधारणधर्मात्, इतरेतराभावान्तराद्वा ?
 असाधारणधर्माभ्युपगमे स एव पटादिष्वपि युक्तः । इतरेतरा-
 भावान्तराश्चेत् ; बहुत्वमितरेतराभावस्यानवस्थाकौरि स्मृत ।

किञ्च, इतरेतराभावोप्यसाधारणधर्मेणाव्यावृत्तस्य, व्यावृत्तस्यै
 वा भेदकः ? यद्यव्यावृत्तस्य ; किं नैकैव्येकेभेदकः ? अथ व्यावृ-
 त्तस्य ; तर्ही घटादिष्वपि स एवास्तु भेदकः किमितरेतराभाव-
 कल्पनया ?

१ सृष्टिपण्डादिना । २ घटप्रभवंसाभावः । ३ घटाभावं प्रति मुद्रारादीना
 म्यापारोपकत्वात् । ४ अभावप्रमाणेनाभावो गृह्यते इत्यत्रापि । कथम् ? प्रत्यक्षेणै-
 वाभावप्रतीतिरिति । ५ चक्रवीवरकुलाद्यादि । ६ घटादयः । ७ पटादिभावेन ।
 ८ अन्यथा । ९ तस्य परस्य पटादेः । १० घटत्वप्रसङ्गात् । ११ पटादिभ्यः ।
 १२ घटादिभावानात् । १३ यतोऽभावात् तेषां (घटादीनां) व्यावृत्तिः (पटादिभ्यः)
 युक्ता । १४ सम्भवति चेत् कस्य ? घटस्य । पटादयः पटरूपा घटादिभ्यः
 सकाशशक्या तथा अभावांशोपि । १५ अभावांशस्य । १६ घटादिभ्यः । १७ घटादि-
 पदाभेदेन । १८ भावादभावाद्वा । १९ अनवस्थादोषमयात् । २० इति हेतोः ।
 २१ घटादिस्वभावम् । २२ व्यावर्तकत्वेतरेतराभावस्याभावात् । २३ ततश्च किं
 भवेत् । २४ घटस्य । २५ मिश्रत्वात् । २६ पटादिभ्यः । २७ प्रशुभ्रोदरदेः ।
 २८ व्यावर्तकः । २९ इतरेतराभावान्तरं किं स्वतो व्यावर्तते अन्यतो वेलादिप्रकारेण ।
 ३० पटादेः सकाशादव्यावृत्तस्य घटादेः । ३१ घटस्य ।

किञ्च, अनेन घटे पटः प्रतिविध्यते, पटत्वसामान्यं वा, उभयं वा ? प्रथमपक्षे किं पटविशिष्टे घटे पटः प्रतिविध्यते, पटविविके वा ? न तावदाद्यः पक्षो युक्तः, प्रत्यक्षविरोधात् । नापि द्वितीयः, तथाहि—किमितरेतराभावादन्या घटस्य पटविविकता, स एव वा विविकताशब्दाभिधेयः ? मेदैः, तथैव घटे पटाभावव्यवहारसिद्धेः ५ किमितरेतराभावेन ? अथ स एव तच्छब्दाभिधेयः, तर्हि यस्माद्भावात्पटविविके घटे पटाभावव्यवहारः सोऽन्योऽभावः, विविकताशब्दाभिधेयश्चान्यं इत्येकस्मिन्वस्तुनीतरेतराभावद्वयमायातम् ।

किञ्च, 'घटे पटो नास्ति' इति पटरूपताप्रतिषेधः, सा किं प्राप्ता प्रतिविध्यते, अप्राप्ता वा ? प्राप्तायाः प्रतिषेधे पटेऽपि पटरूप-१७ प्रताप्रतिषेधः स्यात् प्राप्तेरविशेषात् । अप्राप्तायास्तु प्रतिषेधानुपपत्तिः, प्राप्तिपूर्वकत्वात्तस्य । न ह्यनुपलब्धोदकस्य 'अनुदकः कमण्डलुः' इति प्रतिषेधो घटते । अथान्यत्र प्राप्तमेव पटरूपमन्यत्र प्रतिविध्यते; तत्रापि समवायप्रतिषेधः, संयोगप्रतिषेधो वा ? न तावत्समवायप्रतिषेधः; रूपादेरेकत्र समवायेन सम्बद्ध-१५ स्यान्नैत्र वस्त्वन्तरेऽन्योन्याभावतोऽभावव्यवहारानुपलम्भात् । संयोगप्रतिषेधोऽप्यनुपपन्नः; घटपटयोः कदाचित्संयोगस्यापि सम्भवात् । अथ पटेन संयोगरहिते घटे पटप्रतिषेधो न तत्संयोगवति । नन्वेवं पटसंयोगरहितत्वमेवाभावोऽस्तु, न त्वन्यस्माद्भावात्पटसंयोगरहिते घटे पटाभाव इति युक्तम् । तन्न घटे २० पटप्रतिषेधो युक्तः ।

नापि पटत्वप्रतिषेधः; तस्याप्येकत्र सम्बद्धस्यान्यत्र सम्बन्धाभावादेव प्रतिषेधानुपपत्तेः । नान्युर्भयप्रतिषेधः; प्रागुक्ताशेषदोषानुपपन्नात् ।

किञ्च, इतरेतराभावप्रतिपत्तिपूर्विका घटप्रतिपत्तिः, घटग्रहण-२५ पूर्वकत्वं इतरेतराभावग्रहणस्य ? आद्यपक्षेऽन्योन्याश्रयत्वम्; तथाहि—इतरेतराभावो घटसंबन्धित्वेनोपलभ्यमानो घटस्य विशेषणं न पदार्थान्तरसम्बन्धित्वेन, अन्यथा सर्वं सर्वस्य विशेषणं

१ उभयं, पटः पटत्वं चैत्यर्थः । तृतीयपक्षोऽयम् । २ असाधारणस्वरूपता । ३ इतरेतराभावविविकतायोः । ४ इतरेतराभावः । ५ पटस्वरूपस्य । ६ पर्वं परस्मान्निष्ठापादनं भवति । ७ उभयत्र । ८ पुरुषस्य । ९ आत्मानवितानीभूतरूपादेः । १० पटादौ । ११ घटादौ । १२ इतरेतराभावात् । १३ द्वितीयपक्षः । १४ घटे । १५ तृतीयपक्षः । १६ पटपटत्वयोः । १७ घटस्वेतरेतराभावोऽयमिति ।

स्यात् । घटसम्बन्धित्वप्रतिपत्तिश्च घटग्रहणे सत्युपपद्यते । सोपि व्यावृत्त एव पटादिभ्यः प्रतिपत्तव्यः । ततो यावत्पूर्वं घटसम्बन्धित्वेन व्यावृत्तेरुपलम्भो न स्यान्न तावद्यावृत्तिविशिष्टतया घटः प्रत्येतुं शक्यः, यावच्च पटादिव्यावृत्तत्वेन न प्रतिपन्नो घटो ५ न तावत्सम्बन्धित्वेन व्यावृत्तिं विशेषयति इति ।

अथ घटग्रहणपूर्वकत्वमितरेतराभावग्रहणस्य; अत्राप्यभावो विशेष्यो घटो विशेषणम् । तद्ग्रहणं च पूर्वमन्वेषणीयम् “नागृहीतविशेषणा विशेष्ये बुद्धिः” [] इत्यभिधानात् । तत्रापि घटो गृह्यमाणः पटादिभ्यो व्यावृत्तो गृह्यते, अव्यावृत्तो वा ? तत्र न २० तावत्पटादिभ्योऽव्यावृत्तस्य घटस्य घटरूपता घटते, अन्यथा पटादेरपि तथैव पटादिरूपताप्रसङ्गाद्भावकल्पनावैयर्थ्यम् । अथ तेभ्यो व्यावृत्तस्य घटस्य घटरूपताप्रतिपत्तिः प्रार्थ्यते; तत्रापि किं कतिपयपटादिव्यक्तिभ्योऽसौ व्यावर्त्तते, सकलपटादिव्यक्तिभ्यो वा ? प्रथमपक्षे कुतश्चिदेवासौ व्यावर्त्तते, न १५ सकलपटादिव्यक्तिभ्यः । द्वितीयपक्षेपि न निखिलपटादिभ्योऽस्य व्यावृत्तिर्घटते, तास्मानन्त्येन ग्रहणासम्भवात् । इतरेतराभ्रयत्वं च, तथाहि—यावत्पटादिभ्यो व्यावृत्तस्य घटस्य घटरूपता न स्यान्न तावद् घटात्पटादयो व्यावर्त्तन्ते, यावच्च घटाद्वावृत्तानां पटादीनां पटादिरूपता न स्यान्न तावत्पटादिभ्यो घटो व्याव- २० र्त्तते इति ।

अस्तु वा यथाकथञ्चित्पटादिभ्यो घटस्य व्यावृत्तिः, घटान्तरात्तु कथमसौ व्यावर्त्तते इति सम्प्रर्थायम्—किं घटरूपतया, अन्यथा वा ? यदि घटरूपतया; तर्हि सकलघटव्यक्तिभ्यो व्यावर्त्तमानो घटो घटरूपतामादाय व्यावर्त्तते इत्यायातम् अघटत्वम् २५ न्यासां घटव्यक्तीनाम् । अथाघटरूपतर्या; तत्किमघटरूपता पटादिबद् घटेऽप्यस्ति ? तथा चेत्, तर्हि यो व्यावर्त्तते घटान्तराद्घटत्वेन घटस्तस्याघटत्वं स्यात् । तच्च विप्रतिविद्धम्—यच्चघटो घटः, कथं घटः ? तस्मात्तार्थादर्थान्तरमभावः ।

१ इतरेतरभावस्य । २ इतरेतरभावप्रतिपत्तेर्घटप्रतिपत्तिपूर्वकत्वं मतः । ३ इतरेतरभावस्य । ४ घटसम्बन्धित्वमितरेतरभावस्य । ५ द्वितीयपक्षः । ६ प्रवर्त्तते । ७ घटस्य पूर्वं ग्रहणेपि । ८ पक्षद्वये । ९ जैनमते स्वगतासाधारणभ्रमेण घटः पटादिभ्यो व्यावृत्तो भवति, न तु इतरेतरभावादिति । १० पटादिभ्योऽन्यावृत्तस्य घटस्य घटरूपता यदि । ११ सम्प्रर्थायते परेण । १२ ग्रहणे वा सर्वत्रादिप्रसङ्गः । १३ इतरेतरभावः । १४ विचार्यम् । १५ अघटरूपतया । १६ तर्हि । १७ विकल्पम् ।

ननु चाभावस्यार्थान्तरत्वानभ्युपगमे कथं तन्निमित्तको व्य-
हारः ? तथाहि—किं घटावष्टब्धं भूतलं घटाभावो व्यपदिश्यते,
तद्द्रवितं वा ? प्रथमपक्षे प्रत्यक्षविरोधः । द्वितीयपक्षे तु नाममात्रं
भिद्येत—घटोऽरहितत्वम्, घटाभावविशिष्टत्वमिति; तदप्यसाम्प्र-
तम्; यतः किं घटाकारं भूतलं येन 'घटो न भवति' इत्युच्यमाने ५
प्रत्यक्षविरोधः स्यात्, यद्भूतलं तद्घटाकाररहितत्वाद्घटो न भव-
त्येव । ननु यद्यपि भूतलाद्यर्थान्तरं घटाभावः, तर्हि घटसम्ब-
द्धेऽपि भूतले 'घटो नास्ति' इति प्रत्ययः स्यात्, न चैवम्, ततो
यथा भूतलाद्यर्थान्तरं घटस्तथा तद्भावोपीति; तदप्यसारम्;
घटासम्भविभूतलगतासाधारणधर्मोपलक्षितं हि भूतलं घटाभावो १०
व्यपदिश्यते । घटावष्टब्धं तु घटभूतलगतसंयोगलक्षणसाधारण-
धर्मविशिष्टत्वेन तैथोत्पन्नमिति न 'अघटं भूतलम्' इति व्यपदेशं
लभते । तत्रेतरैतराभावो विचारक्षमः ।

नापि प्रागभावः; तस्याप्यर्थार्थान्तरस्य प्रमाणतोऽप्रतिपत्तेः ।
ननु 'स्रोत्पत्तेः प्राग्नासीद् घटः' इति प्रत्ययोऽसद्विषयः, सत्प्रत्य- १५
यविलक्षणत्वात्, यस्तु सद्विषयः स न सत्प्रत्ययविलक्षणो यथा
'सद्भवम्' इत्यादिप्रत्ययः, सत्प्रत्ययविलक्षणञ्चायं तस्मात्सद्वि-
षयः' इत्यनुमानार्थतोऽर्थान्तरस्य प्रागभावस्य प्रतीतिरित्यपि
मिथ्या; 'प्रागभावादौ नास्ति प्रध्वंसादिः' इति प्रत्ययेर्नानैका-
न्तात् । तस्याप्यसद्विषयत्वेऽभावार्थवस्था । अथ 'भावे भूभा- २०
गादौ नास्ति घटादिः' इति प्रत्ययो मुख्याभावविषयः, 'प्रागभा-
वादौ नास्ति प्रध्वंसादिः' इति प्रत्ययस्तूपचरिताभावविषयः, ततो
नानवस्थेति; तदप्ययुक्तम्; परमार्थतः प्रागभावादीनां साङ्कर्यप्र-
सङ्गात् । न खलूपचरितेनाभावेनान्योन्यमभावानां व्यतिरेकः
सिद्धोर्ते, सर्वत्र मुख्याभावकल्पनानर्थक्यप्रसङ्गात् । २५

१ नास्तीति विकल्पो नास्तीत्यभिधानं च । २ अर्थार्थान्तरभावं समर्थयन्ति
परे । ३ जैनैर्भवद्भिः । ४ नार्थभेदः । ५ भूतलस्य । ६ जैनमते । ७ परमते ।
८ घटभूतलयोः किं तादात्म्यं प्रतिपिभ्यते आवारणैयभावो वा ? तत्रार्थं पर्यं विवेचयति ।
९ भूतलगतं विविकारं मित्रं घटगतं विविकारं मित्रम् । १० उभयगतत्वात् ।
११ घटावष्टब्धत्वेन । १२ घटस्य प्रागभावो घृतिपण्डलक्षणोर्ध्वस्तस्मात् । १३ प्राग-
भावः । १४ अर्थात् । १५ अर्थं सत्प्रत्ययविलक्षणञ्च भवति, न त्वसद्विषयः ।
१६ अभावे अभावोऽस्ति यतः । १७ प्रागभावादौ नास्ति प्रध्वंसादिति व्य-
हारः प्रयोजनमभावानामसङ्करो निमित्तमित्युपचारप्रवृत्तिः—निमित्तप्रयोजनवशादुपचार-
प्रवृत्तेः । १८ भेदः । १९ अन्यथा ।

यदप्युक्तम्—'न भावस्वभावः प्रागभावादिः सर्वदा भावविशेषणत्वात्' इति; तदप्युक्तिमात्रम्; हेतोः पक्षाव्यापकत्वात्, 'न प्रागभावः प्रध्वंसादौ' इत्यादेरभावविशेषणस्याप्यभावस्य प्रसिद्धेः। गुणादिनानेकान्ताच्च; अस्य सर्वदा भावविशेषणत्वेऽपि भावस्वभावात् । 'रूपं पश्यामि' इत्यादिव्यवहारे गुणस्य स्वतन्त्रस्यापि प्रतीतेः सर्वदा भावविशेषणत्वाभावे 'अभावस्तत्त्वम्' इत्यभावस्यापि स्वतन्त्रस्य प्रतीतेः शश्वद्भावविशेषणत्वं न स्यात् । सामर्थ्यात्तद्विशेष्यस्य द्रव्यादेः सम्प्रत्ययात्सदास्य भावविशेषणत्वे गुणादेरपि सर्वदा भावविशेषणत्वमस्तु, तद्विशेष्यस्य द्रव्यस्य १० सामर्थ्यतो गम्यमानत्वात् ।

किञ्च, प्रागभावः सादिः सान्तः परिकल्प्यते, सादिरनन्तः, अनादिरनन्तः अनादिः सान्तो वा? प्रथमपक्षे प्रागभावात्पूर्वं घटस्योपलब्धिप्रसङ्गः, तद्विरोधिनः प्रागभावस्याभावात् । द्वितीयेऽपि तदुत्पत्तेः पूर्वमुपलब्धिप्रसङ्गस्तत एव । उत्पन्ने तु प्रागभावे १५ सर्वदानुपलब्धिः स्यात्तस्यानन्तत्वात् । तृतीये तु सदात्तुपलब्धिः । चतुर्थे पुनः घटोत्पत्तौ प्रागभावस्याभावे घटोपलब्धिघटदशेषकार्योपलब्धिः स्यात्, सकलकार्याणामुत्पत्त्यमानानां प्रागभावस्यैकत्वात् ।

ननु यावन्ति कार्याणि तावन्तस्तत्प्रागभावाः, तत्रैकस्य प्रागभावस्य विनाशोऽपि शेषोत्पत्त्यमानकार्यप्रागभावानामविनाशाच्च घटोत्पत्तौ सकलकार्योपलब्धिरिति; तर्ह्यनन्ताः प्रागभावास्ते किं स्वतन्त्राः, भावतन्त्रा वा? स्वतन्त्राश्चेत्कथं न भावस्वभावाः कालादिवत्? भावतन्त्राश्चेत्किमुत्पन्नभावतन्त्राः, उत्पत्त्यमानभावतन्त्रा वा? न तावदादिविकल्पः; समुत्पन्नभावकाले २५ तत्प्रागभावविनाशात् । द्वितीयविकल्पोऽपि न श्रेयान्; प्रागभावकाले स्वयमसतामुत्पत्त्यमानभावानां तदौश्रयत्वायोगात्, अन्यथा

१ दण्डेन रूपेण च व्यभिचारः स्यात्तत्परिहारार्थं सर्वदेति विशेषणं दण्डस्य कदाचिद्विशेष्यरूपतयापि भावात् । कथम्? दण्डं पश्यामीति । २ यतोऽभावोऽप्यभावस्य विशेषणं भवेत् भावोऽभावस्यापि । ३ प्रागभावो विशेषणमत्र । ४ अतोऽभावोऽभावस्य विशेषणमपि भवेद्भावोऽभावस्यापि । ५ घटस्य । ६ विशेष्यत्वेन । ७ अभावस्तत्त्वम् । कस्य? घटस्येति । ८ यथा अभावः कस्येत्युच्यमाने पटस्येति, तथा गुणाः कस्य? द्रव्यस्येति । ९ विनाशोपेतः । १० घटस्य । ११ घटस्य । १२ तद्विरोधिनः प्रागभावस्य सर्वदा भावादेव । १३ घटादिकार्यस्य । १४ घटोत्पत्तौ घटोपलब्धिघटदशेषकार्योपलब्धि परिहरति परः । १५ तथा प्रागभावानाम् ।

प्रध्वंसाभावस्यापि प्रध्वस्तपदार्थाश्रयत्वप्रसङ्गः । न चानुत्पन्नः प्रध्वस्तो वार्थः कस्यचिदाश्रयो नाम अतिप्रसङ्गात् ।

अथैक एव प्रागभावो विशेषणभेदाद्भिन्न उपचर्यते 'घटस्य प्रागभावः पटादेर्वा' इति, तथोत्पन्नार्थविशेषणतया तस्य विनाशि-
प्युत्पत्त्यमानार्थविशेषणत्वेनाविनाशान्नित्यत्वमपीति । नन्वेवं १
प्रागभावाद्विचतुष्टयकल्पनानर्थक्यम् सर्वत्रैकस्यैवाभावस्य विशेष-
णभेदात्तर्था भेदव्यवहारोपपत्तेः । कार्यस्य हि पूर्वेण कालेन विशि-
ष्टोर्थः प्रागभावः, परेण विशिष्टः प्रध्वंसाभावः, नानार्थविशिष्टः
सि एवेतरेतराभावः, कालत्रयेप्यत्यन्तनानास्यभावभावविशेष-
णोऽत्यन्ताभावः स्यात्, प्रत्ययभेदस्यापि तथोपपत्तेः, सत्तै-१०
कत्वेपि द्रव्यादिविशेषणभेदात्प्रत्ययभेदवत् । यथैव हि सत्प्रत्य-
याविशेषाद्विशेषलिङ्गाभावाच्चैकैकं सत्तायाः तथैवासत्प्रत्ययावि-
शेषलिङ्गाभावाच्चाभावस्यैवापि । अथ 'प्राग्नास्तीति' इत्यादिप्रत्ययवि-
शेषाच्चतुर्विधोऽभावः; तर्हि प्रागास्तीतिपञ्चाङ्गविष्यति सम्प्रत्य-
स्तीति कालभेदेन, पाटलिपुत्रेस्ति चित्रकूटेस्तीति देशभेदेन, द्रव्यं १५
गुणः कर्म चास्तीति द्रव्यादिभेदेन च प्रत्ययभेदसद्भावात्प्राक्स-
त्तादेवः सत्ताभेदाः किञ्चेत्थ्यन्ते ? प्रत्ययविशेषात्तद्विशेषणान्येव
भिद्यन्ते तस्यै तन्निमित्तकत्वाच्च तु सत्तौ, ततः सैकैवेत्यभ्युपगमे
अभावभेदोपि मा भूत्सर्वथा विशेषाभावात् ।

अथामिधीयते—'अभावस्य सर्वथैकत्वे विवक्षितकार्योत्पत्तौ २०
प्रागभावस्याभावे सर्वत्राभावस्याभावानुपङ्गात्सर्वे कार्यमनौघनन्तं
सर्वात्मकं च स्यात्; तदप्यभिधानमात्रम्; सत्तैकत्वेपि समान-
त्वात् । विवक्षितकार्यप्रध्वंसे हि सत्ताया अभावे सर्वत्राभावप्रसङ्गः
तस्या एकत्वात्, तथा च सकलशून्यता । अथ तत्प्रध्वंसेपि नास्याः

१ प्रागभावस्य प्रध्वंसाभावस्य वा । २ अनुरपन्नः प्रध्वस्तो वा स्तम्भः प्रासादस्या-
श्रयो भवेत् । ३ घटावर्धः । ४ प्रागभावस्य । ५ घटादि । ६ प्रागभावादिप्रकारेण ।
७ पटलक्षणस्रोत्पत्तेः सकाशात् । ८ अर्थः । ९ घटपटलकटादि । १० अभाव-
कक्षणोर्धः । ११ अत्यन्तं सर्वथा नाना (भिन्नाः) स्वभावा येषां तेष्वलनानास्यभावा
गगनाम्नोन्मत्तरमिषाणादयस्ते च ते भावाश्च ते विशेषणं यस्याभावस्य । १२ प्रत्ययो
ज्ञानम् । १३ विशेषणभेदादेव । प्रागभावस्यैकत्वकल्पनाप्रकारेण । १४ द्रव्यं सद्रूपः
सन्कर्म सत् । १५ परमते । १६ जैनमते एकत्वम् । १७ घटः । १८ कारण ।
१९ आदिपदेन पश्चात्सत्ता सम्प्रतिसत्ता च प्राप्ता । २० परेण मगता । २१ घटा-
वर्धाः । २२ प्रत्ययविशेषस्य । २३ (सत्तायाः विशेषणनिमित्तकत्वाभावादित्यर्थः) ।
२४ प्रागभावाभावादेनादि प्रध्वंसाभावाभावादनन्तम् । २५ इतरेतराभावाभावात् ।

- प्रध्वंसो नित्यत्वात्, अन्यथार्थान्तरेषु सत्प्रत्ययोत्पत्तिर्न स्यात्, तदन्यत्रापि समानम्, समुत्पन्नैककार्यविशेषणतया ह्यभावस्याभावेऽपि न सर्वथाऽभावः भावान्तरेऽप्यभावप्रतीत्यभावप्रसङ्गात् । यथा चाभावस्य नित्यैकरूपत्वे कार्यस्योत्पत्तिर्न स्यात् तस्य तत्प्र-
- ५ तिवन्धकत्वात्, तथा सत्ताया नित्यत्वे कार्यप्रध्वंसो न स्यात् तस्यास्तत्प्रतिबन्धकत्वात् । प्रसिद्धं हि प्रध्वंसात्प्राक्प्रध्वंसप्रतिबन्धकत्वं सत्तायाः, अन्यथा सर्वदा प्रध्वंसप्रसङ्गात् कार्यस्य स्थितिरेव न स्यात् । यदि पुनर्बलवत्प्रध्वंसकारणोपनिपाते कार्यस्य सत्ता न ध्वंसं प्रतिवध्नाति, ततः पूर्वं तु बलवद्विनाशकारणोप-
- १० निपाताभावात्तं प्रतिवध्नात्येवातो न प्रागपि प्रध्वंसप्रसङ्गः इत्येतदन्यत्रापि न काकैर्भक्षितम्, अभावोऽपि हि बलवदुत्पादकारणोपनिपाते कार्यस्योत्पादं सन्नपि न प्रतिरुणद्धि, कार्योत्पादात्पूर्वं तूत्पादकारणाभावात्तं प्रतिरुणद्ध्येव, अतो न प्रागपि कार्योत्पत्तिप्रसङ्गो येन कार्यस्यानादित्वं स्यात् ।
- १५ तन्न प्रागभावोऽपि तुच्छस्वभावो घटते किन्तु भावान्तरस्वभावः । यद्भावे हि नियमतः कार्योत्पत्तिः सै प्रागभावः, प्रागन्तरपरिणामविशिष्टं मृद्भव्यम् । तुच्छस्वभावत्वे चास्य सन्धेतरगोविषाणादीनां सहोत्पत्तिनियमवतामुपादानसङ्करप्रसङ्गः प्रागभावाविशेषात् । यत्र यदा यस्य प्रागभावाभावस्तत्र तदा
- २० तस्योत्पत्तिरित्यप्ययुक्तम्, तस्यैवानियमात् । स्वोपादानेतरनियमात्त्रैन्नियमेऽप्यन्योन्यौश्रयः ।

प्रध्वंसाभावोऽपि भौवस्वभाव एव, यद्भावे हि नियता कार्यस्यै

१ अभावे । २ प्रागभावस्य । ३ प्रध्वंसात्पूर्वं सत्तायाः प्रध्वंसप्रतिबन्धकत्वं न स्यादिति । ४ सर्वदा प्रध्वंसप्रसङ्गात्कार्यस्य स्थितिरेव न स्यादेतत्परिहरति परः । ५ कार्यकालादुत्तरेण कालेन । ६ मृद्भवादि । ७ विनाशकारणसन्निधानात्पूर्वम् । ८ अभावे । ९ सृष्टिपण्डादि । १० प्रागभावः कः भावान्तरं च किमित्युक्ते भावः । ११ यस्य सृष्टिपण्डस्य । १२ स्वस्य विनाशेन घटरूपेण परिणमते सृष्टिपण्डः । १३ सृष्टिपण्डलक्षणः । १४ घटोत्पत्तेः । १५ स्यातादि । १६ अस्योपादानमेतदस्यैतदिति विवेचयितुमशक्यत्वात् । १७ तुच्छाभावस्य प्रागभावसैकत्वात् । १८ उपादानकारणे । १९ कार्यस्य । २० सन्धेतिविषाणस्यार्थं प्रागभावः असन्धेतिव्यर्थं प्रागभाव इति प्रागभावस्यैव नियमाभावात् । २१ सन्धेतिविषाणकार्यं । २२ स्वानुपादानं । २३ प्रागभावनियमे । २४ सन्धेतिविषाणस्योपादाननियमे सिद्धे सन्धेतिव्यर्थं प्रागभावनियमः सिध्येत् । प्रागभावनियमसिद्धौ च सन्धेतिविषाणोपादाननियमसिद्धिरिति । २५ उत्तरक्षणवर्तिकपाललक्षणः । २६ यस्य कपालस्य । २७ घटस्य ।

विपत्तिः स प्रध्वंसः, मुद्गरादिव्यापारवैयर्थ्यं स्यात् । स हि तद्भावापा-
रेण घटादेर्मिन्नः, अभिन्नो वा विधीयते ? प्रथमपक्षे घटादेस्तद-
वस्थत्वप्रसङ्गात् 'विनष्टः' इति प्रत्ययो न स्यात् । विनाशसम्ब-
न्धाद् 'विनष्टः' इति प्रत्ययोत्पत्तौ विनाशतद्गतोः कश्चित्स-^५
म्बन्धो वक्तव्यः-स हि तादात्म्यलक्षणः, तदुत्पत्तिस्वरूपो वा
स्यात्, तद्विशेषणविशेष्यभावलक्षणो वा ? तत्र न तावत्तादा-
त्म्यलक्षणोसौ घटते; तयोर्भेदाभ्युपगमात् । नापि तदुत्पत्तिल-
क्षणः; घटादेर्स्तदकारणत्वात्, तस्य मुद्गरादिनिमित्तकत्वात् ।
तदुभयनिमित्तत्वाददोषः; इत्यप्यसुन्दरम्; मुद्गरादिवद्विनाशो-^{१०}
त्तरकालमपि घटादेरुपलम्भप्रसङ्गात् । तस्य स्वविनाशं प्रत्यु-
पादानकारणत्वाच्च तत्काले उपलम्भः; इत्यप्यसमीचीनम्;
अभावस्य भावान्तरस्वभावताप्रसङ्गात् तं प्रत्येवास्योपादान-
कारणत्वप्रसिद्धेः । तयोर्विशेषणविशेष्यभावः सम्बन्धः; इत्य-
प्यसत्; परस्परसम्बन्धयोस्तदसम्भवात् । सम्बन्धान्तरेण^{१५}
सम्बन्धयोरेव हि विशेषणविशेष्यभावो दृष्टो दण्डपुरुषादिवत् ।
न च विनाशतद्गतोः सम्बन्धान्तरेण सम्बन्धत्वमस्तीत्युक्तम् । तत्र
तद्भावापारेण भिन्नो विनाशो विधीयते । अभिन्नविनाशविधाने
तु 'घटादिरेव तेन विधीयते' इत्यायातम्; तच्चायुक्तम्; तस्य
भोगोवोत्पन्नत्वात् ।

२०

ननु प्रध्वंसस्योत्तरपरिणामरूपत्वे कपालोत्तरक्षणेपु घटप्रध्वं-
सस्याभावात्तस्य पुनरुज्जीवनप्रसङ्गः; तदप्यनुपपन्नम्; कारणस्य
कार्योपमर्दानात्मकत्वाभावात् । कार्यमेव हि कारणोपमर्दाना-
त्मकत्वधर्माधारतया प्रसिद्धम् ।

यच्च कपालेभ्योऽभावस्यार्थान्तरत्वं विभिन्नकारणप्रभवतयो-^{२५}
च्यते; तथाहि- 'उपादानघटविनाशो बलवत्पुरुषप्रेरितमुद्गराद्य-
भिघातादव्यवक्रियोत्पत्तेरव्यवविभागतः संयोगविनाशाद्घोत्प-

१ मुद्गर्व्यं कुशलरूपं तस्मानन्तरपरिणामो घटः । तस्योत्तरपरिणामस्तु कपाल-
लक्षणः । २ कर्मा । ३ प्रध्वंसत्वावविशिष्टो घट इति । ४ परेण । ५ घटादुत्पत्तिः
प्रध्वंसस्येति । ६ तं विनाशं प्रति । ७ यथा घटस्य कपालादि भावान्तरम् । ८ कपाल-
लक्षणं भावान्तरस्वभावम् । ९ तादात्म्यतदुत्पत्तिलक्षणेन । १० मुद्गरादिव्यापारेण
कर्मा । ११ घटात् । १२ द्वितीयपक्षे । १३ मुद्गरादिव्यापारात् । १४ कपाल ।
१५ घटस्य । १६ कपाल । १७ हेतोर्विभिन्नकारणत्वं समर्थवति परः । १८ चलन-
लक्षणायाः ।

द्यते, उपादेयकपालोत्पादस्तु स्वारम्भकार्वायवर्कर्मसंयोगविशेषादे-
वाविर्भवति' इति; तदप्यसमीक्षिताभिधानम्; अस्य विनाशो-
त्पादकारणप्रक्रियोद्घोषणस्याप्रातीतिकत्वात् । केवलमन्यप्रता-
रितेन भवेता परः प्रतार्यते । तस्मादन्धपरम्परापरित्यागेन बल-
५ वत्पुरुषप्रेरितमुद्रारादिव्यापाराद् घटाकारविकलकपालाकारमुद्ग-
व्योत्पत्तिरभ्युपगन्तव्या अलं प्रतीत्यपलापेन ।

'क्षीरे दध्यादि यन्नास्ति' इत्याद्यप्यभावस्य भावस्वभावत्वे
सत्येव घटते, दध्यादिविविक्तस्य क्षीरादेरेव प्रागभावादितया-
ध्यक्षादिप्रमाणतोध्यवसायात् । ततोऽभाचस्योत्पत्तिसामग्र्याः
१० विषयस्य चोक्तप्रकारेणासम्भवात् पृथक्प्रमाणात् । इति स्थित-
मेतत्प्रत्यक्षेतरभेदादेव द्वेषैव च प्रमाणमिति ।

तत्राद्यप्रकारं विशदमित्यादिना व्याचष्टे—

विशदं प्रत्यक्षम् ॥ ३ ॥

विशदं स्पष्टं यद्विज्ञानं तत्प्रत्यक्षम् । तथा च प्रयोगः—विश-
१५ दज्ञानात्मकं प्रत्यक्षं प्रत्यक्षत्वात्, यत्तु न विशदज्ञानात्मकं
तन्न प्रत्यक्षम् यथाऽनुमानादि, प्रत्यक्षं च विवादाध्यासितम्,
तस्माद्विशदज्ञानात्मकमिति ।

अनेनाऽर्कसाद्भूमदर्शनात् 'बहिरव' इति ज्ञानम्, 'यावान्
कश्चिद् भावः कृतको वा स सर्वः क्षणिकः, यावान् कश्चिद्भूम-
२० वान्प्रदेशः सोग्निमान्' इत्यादि व्यासिज्ञानं चास्पष्टमपि प्रत्यक्ष-
माचक्षाणः प्रत्याख्यातः; अनुमानस्यापि प्रत्यक्षताप्रसङ्गात् प्रत्यक्ष-
मेवैकं प्रमाणं स्यात् ।

किञ्च, अकसाद्भूमदर्शनाद्बहिरत्रेत्यादिज्ञाने सामान्यं वा प्रति-
भासेत, विशेषो वा? यदि सामान्यम्; न तच्छिं प्रत्यक्षम्,
२५ तस्य तद्विषयत्वानभ्युपगमात् । अभ्युपगमे वा 'प्रमाणद्वैविध्यं
प्रमेयद्वैविध्यात्' इत्यस्य व्याघातः, संविकल्पकत्वप्रसंगश्च ।
विशेषविषयत्वे ततः प्रवर्त्तमानस्यैव सन्देहो न स्यात् 'तार्णा

१ परमाणु । २ ततः संयोगविशेषः । ३ ताद्विः । ४ यौनेन । ५ प्रवर्त्तमानाक-
रुपा । ६ भिन्नस्य । ७ अभावप्रमाणस्य । ८ दृष्टान्तसारणमन्तरेण । ९ मौक्तः ।
१० उभयत्रास्पष्टत्वाविशेषात् । ११ प्रत्यक्षं सामान्यविषयं यदि । स्वल्पाकारपरि-
गतम् । १२ सौगतेन । १३ प्रत्यक्षं विशेषं गृह्णाति अनुमानं सामान्यं गृह्णाति इति
बौद्धमतं न घटेत्—प्रत्यक्षेणैव सामान्यग्रहणादिति । १४ ग्रन्थस्य । १५ प्रत्यक्षस्य ।
१६ सामान्यविषयत्वात् । १७ हुः ।

चात्राग्निः पाणो वा' इति सन्निहितवत् । न खलु सन्निहितं पावकं पश्यतस्तत्र सन्देहोस्ति । सन्देहे वा शब्दाल्लिङ्गाद्वा प्रति(ती)येतो-
प्यसौ स्यात् । तथा चेदमसङ्गतम्—“शब्दाल्लिङ्गाद्वा विशेषप्रतिपत्तौ
न तत्र सन्देहः” [] इति । तत्रेदं प्रत्यक्षम् । किं तर्हि ?
लिङ्गदर्शनप्रभवत्वाद्नुमानम् । ‘दृष्टान्तमन्तरेणाप्यनुमानं भवति’ ५
इत्येतच्चाग्रे वक्ष्यते ।

व्यासिद्धानं चास्पष्टत्वेनाप्रत्यक्षं व्यवहारिणां सुप्रसिद्धम् । व्यव-
हारानुकूल्येन च प्रमाणचिन्ता प्रतन्यते “प्रामाण्यं व्यवहारेण”
[प्रमाणवा० ३।५] इत्यादिवचनात् । न च तेषां सर्वे क्षणिका
भावाः कृतका वाऽऽद्यादयो धूमादयो वा स्पष्टज्ञानविषया इत्य- १०
भ्युपगमोऽस्ति, अनुमानानर्थक्यप्रसङ्गात् । सर्वे हि व्याप्यं
व्यापकं च स्पष्टतया युगपन्निश्चिन्वतो न किञ्चिदनुमानसाध्यम्,
अन्यथा योगिनोप्यनुमानप्रसङ्गः । निश्चिते समारोपस्याप्यस-
म्भवो विरोधात् । कालान्तरभावि समारोपनिषेधकत्वेनानुमानस्य
प्रामाण्ये क्वचिदुपलब्धदेवदत्तस्य पुनः कालान्तरेऽनुपलम्भसमा- १५
रोपे सति यद्वेदनन्तरं तैस्सरणादिकं तदपि प्रमाणं भवेत् । तत्र
व्यासिद्धानमप्यस्पष्टत्वात् प्रत्यक्षं युक्तम् ।

ननु चास्पष्टत्वं ज्ञानधर्मः, अर्थधर्मो वा ? यदि ज्ञानधर्मः;
कथमर्थस्यास्पष्टत्वम् ? अन्यस्यास्पष्टत्वादन्वस्यास्पष्टत्वेऽतिप्रस-
ङ्गात् । अर्थधर्मत्वे कथमतो व्यासिद्धानस्याप्रत्यक्षताप्रसिद्धिः ? २०
व्यधिकरणोद्धेतोः साध्यसिद्धौ ‘काकस्य काण्ठ्याद्धवलः प्रासादः’
इत्यादेरपि गमकत्वप्रसङ्गः; इत्यप्यसमीक्षितमिधानम्; स्पष्ट-
त्वेपि समानत्वात् । तदपि हि यदि ज्ञानधर्मस्तर्हि कथमर्थे
स्पष्टता अतिप्रसङ्गात् ? विषये विषयिधर्मस्योपचाराद्दोषेऽत
एव सौम्यत्रैपि मौ भूत् । संवेदनस्यैव ह्यस्पष्टता धर्मः स्पष्ट- २५

१ जानतः । २ सन्देहे सति । ३ जैनं प्रति यहुक्त्वात् । ४ परीक्षा । ५ पुत्रः ।
६ समारोपव्यवच्छेदाधर्मनुमानमिति चेन्नैत्याह । ७ अर्थे । ८ निश्चयश्चेत्समारोपः
कथमिति । ९ सर्वे क्षणिकं सत्त्वाकृतकत्वादेति । १० नाहमद्रासमिति । ११ वसः ।
१२ यत्सोपलम्भस्य । १३ तस्य पूर्वोपलम्भस्य देवदत्तस्य । १४ आदिप्रदेन प्रत्य-
सिद्धानम् । १५ साधनं विचारयति । १६ दूरपादपास्पष्टत्वे पुरोवर्तिप्रदर्शितास्पष्टत्वं
स्यात् । १७ भिन्नाधिकरणात् । १८ अस्पष्टत्व हेतुरर्थे, अप्रत्यक्षत्वं साध्यं ज्ञाने
इति । १९ सन्निहिते पादपादौ स्पष्टत्वमनुमेयेति स्यात् । २० अतिप्रसंगलक्षणो
दोषः । २१ ज्ञानास्पष्टत्वस्वावयवमैत्वे । २२ ज्ञानस्यैवास्पष्टलक्षणो धर्मोऽयं उपवर्ष-
त्वेऽतश्चातिप्रसङ्गाभावात्कथं व्यधिकरणासिद्धो हेतुः ।

तावत् । तस्याः विषयधर्मत्वे सर्वदा तथा प्रतिभासप्रसङ्गा-
स्कृतः प्रतिभासपरावृत्तिः? न चास्पष्टसंवेदनं निर्विषयमेव,
संवादकैत्वात्स्पष्टसंवेदनवत् । क्वचिद्विसंवादात्सर्वत्रास्य विसं-
वादे स्पष्टसंवेदनेपि तत्प्रसङ्गः । ततो नैतत्साधु—

५ “बुद्धिरेवैतदाकारा तैत उत्पद्यते यदा ।
तदाऽस्पष्टप्रतीभासव्यवहारो जगन्मतः ॥”

[प्रमाणवार्त्तिकालं० प्रथमपरि०]

द्विचन्द्रादिप्रतिभासेपि तद्व्यवहारानुषङ्गाच्च । स्पष्टप्रतिभासेन
वाध्यमानत्वादस्य निर्विषयत्वमर्थत्रापि समानम् । यथैव हि
१० दूरादस्पष्टप्रतिभासविषयत्वमर्थस्यारौत्स्पष्टप्रतिभासेन वाध्यते
तथा सन्नहिदितार्थस्य स्पष्टप्रतिभासविषयत्वं दूरादस्पष्टप्रति-
भासेन, अविशेषात् ।

ननु विषयधर्मस्य विषयेषूपचारात्तत्र स्पष्टास्पष्टत्वव्यवहारे
त्रिषयिणोपि ज्ञानस्य तद्धर्मतासिद्धिः कुतः? सैज्ञानस्पष्टत्वास्प-
१५ ष्टत्वाभ्याम्, स्वतो वा? प्रथमपक्षेऽनवस्था । द्वितीयपक्षे त्वविशे-
षेणाखिलज्ञानानां तद्धर्मताप्रसङ्गः; इत्यप्यसमीचीनम्; तत्रान्ये-
थैव तद्धर्मताप्रसिद्धेः । स्पष्टज्ञानावरणवीर्यान्तरायक्षयोपशमवि-
शेषाद्धि क्वचिद्विज्ञाने स्पष्टता प्रसिद्धा, अस्पष्टज्ञानावरणादिक्ष-
योपशमविशेषात्त्वस्पष्टतेति । प्रसिद्धश्च प्रतिर्वन्धकापायो ज्ञाने
-२० स्पष्टताहेत् रजोनीहाराद्यावृत्ता(ता)र्थप्रकाशस्येव तद्वियोगः ।

अक्षात्स्पष्टता इत्यन्यै, तेषां दविष्टैर्पादपादिज्ञानस्य दिवोत्का-
दिवेदनस्य च तत्प्रसङ्गः । तदुत्पादकाक्षस्यातिदूरदेशदिनकर-
करनिकरोपहतत्वाद्दोषोयमिति; अत्रौप्यक्षस्योपघातः, शक्तेर्वा?

१ अस्पष्टतया । २ गृहीतार्थान्यभिचारित्वात् । ३ अस्पष्टसंवेदनं सालम्बनं सिद्धं
यतः । ४ ज्ञानम् । ५ पवकारोत्र मित्रप्रक्रमे । तेनातदाकारैल्लसानन्तरं द्रष्टव्यः ।
बुद्धिर्विषयादुत्पद्यते चेत् तदा अतदाकारा कथमिति चेदुच्यते । एकत्वेन व्यवसिता-
च्चन्द्रलक्षणार्थदुत्पद्यमाना बुद्धिर्यदा द्वित्वमवभासयति एकत्वं नावभासयति तदा
अतदाकारा सती अस्पष्टव्यपदेशमर्हति । ६ अविषयाकारा । ७ विषयात् । ८ पदस्य
तु स्पष्टत्वमभ्युपगतं बोद्धेन । ९ अतदाकारत्वं यतो बुद्धेः । १० स्पष्टसंवेदनेपि ।
११ समीपे । १२ वाधाऽवाधत्वस्वीभयत्रापि । १३ स्वयोः स्पष्टास्पष्टज्ञानयोर्भावे
च त्रे ज्ञाने च तयोः स्पष्टत्वास्पष्टत्वाभ्याम् । १४ प्रत्यक्षानुमानानाम् । १५ उक्त-
विपर्ययेणैव । स्वज्ञानस्य स्पष्टत्वास्पष्टत्वेनैव । १६ नीर्यं शक्तिः । ज्ञानस्य नीर्यस्य
चावरणमवरोधकं कर्त्तुं । १७ अंशतः क्षयोपशमो भवति न सर्वतः । १८ प्रति-
बन्धकोत्रावरणम् । १९ संवेदनस्य विशदत्वम् । २० गीमासकाः । २१ अतिदूरं ।
२२ परिधारे ।

प्रथमपक्षोऽयुक्तः; तत्त्वरूपस्याविकलस्यानुभवात् । द्वितीयपक्षे तु योग्यतासिद्धिः; भावेन्द्रियाख्यक्षयोपशमलक्षणयोग्यताव्यतिरेकेणाक्षशक्तेरव्यवस्थितेः । तल्लक्षणाच्चाक्षात्स्पष्टत्वाभ्युपगमेऽस्मिन्मतप्रसिद्धिः ।

आलोकोप्येतेन तद्धेतुः प्रत्याख्यातः । ततः स्थितमेतद्विश-५
वज्ञानस्वभावं प्रत्यक्षमिति ।

ननु किमिदं ज्ञानस्य वैशद्यं नामेत्याह अव्यवधानेनेत्यादि ।

प्रतीत्यन्तराव्यवधानेन विशेषवत्तया वा प्रतिभासनं वैशद्यम् ॥ ४ ॥

तुल्यजातीयापेक्षया च व्यवधानमव्यवधानं वा प्रतिपत्तव्यं न १०
पुनर्वैशद्यकालाद्यपेक्षया । यथा 'उपर्युपरि स्वर्गपटलानि' इत्यत्रान्यान्यं तेषां देशादिव्यवधानेपि तुल्यजातीयानामपेक्षाकृता प्रत्यासत्तिः सामीप्यमित्युक्तम्, एवमत्राप्यव्यवधानेन प्रमाणान्तरनि-
रपेक्षतया प्रतिभासनं वस्तुनोऽनुभवो वैशद्यं विज्ञानस्येति ।

नन्वेवमीहादिज्ञानस्यावग्रहाद्यपेक्षत्वादव्यवधानेन प्रतिभासन-१५
लक्षणवैशद्याभावात्प्रत्यक्षता न स्यात्; तदसारम्; अपरापरेन्द्रियव्यापारादेवावग्रहादीनामुत्पत्तेस्तत्र तदपेक्षत्वासिद्धेः । एकमेव चैदं विज्ञानमवग्रहाद्यतिशयवदपरापरचक्षुरादिव्यापारादुत्पन्नं सत्स्वतन्त्रतया स्वविषये प्रवर्त्तते इति प्रमाणान्तराव्यवधानमत्रापि प्रसिद्धमेव । अनुमानादिप्रतीतिस्तु लिङ्गादिप्रतीत्यैवं अनिता सती २०
स्वविषये प्रवर्त्तते इत्यव्यवधानेन प्रतिभासनाभावोऽत्र प्रत्यक्षेति । ततो निरवग्रहमेवंविधं वैशद्यं प्रत्यक्षलक्षणम्, साकल्येनाखिला-
द्यक्षव्यक्तिषु सम्भवेनाव्याप्त्यसम्भवदोषाभावात् । अतिव्या-
प्तिस्तु दूरोत्सारितैव अद्यक्षत्वानभिमतैः किञ्चिदप्येतल्लक्षणास्या-
सम्भवात् ।

२५

१ (कण्युपयोगी भावेन्द्रियमिति सूत्रकारवचनम् । लघ्विर्हि इन्द्रियस्यान-
प्राप्त्यभ्यप्रदेशाना तदावरणकर्मक्षयोपशमरूपा) । २ ज्ञानस्य । ३ जैनमतसिद्धिः ।
४ अक्षस्य स्पष्टताहेतुनिराकरणपरेण प्रत्येन । ५ समर्थितम् । ६ उदाहरणे ।
७ ज्ञाने । ८ अनुमानं प्रमाणान्तरेण लिङ्गज्ञानेन जायते इति उद्वयुदासायैतत्पदम् ।
९ प्रतिज्ञानम् । १० अवग्रहादिरूपस्य । ११ ईहादिप्रतीज्ञाने । १२ न प्रत्यक्ष-
प्रतीत्या । १३ लिङ्गादिप्रतीत्या व्यवधानात् । १४ अव्यवधानेन प्रतिभासनलक्षणम् ।
१५ अनुभावोऽत्र ।

समन्धकारादौ ध्यामलितवृक्षादिवेदनमप्यध्यक्षप्रमाणस्वरूप-
मेव, संस्थानमात्रे वैशद्योविसंवादित्वसम्भवात् । विशेषांशाध्य-
वसायस्त्वनुमानरूपः, लिङ्गप्रतीत्या व्यवहितत्वान्नाध्यक्षरूपतां
प्रतिपद्यते । अतिदूरदेशे हि पूर्वं संस्थानमात्रं प्रतिपद्य 'अयमेवंवि-
५ घसंस्थानविशिष्टोर्थो वृक्षो हस्ती पलालकूटादिर्वा एवंविधसंस्था-
नविशिष्टत्वान्यथानुपपत्तेः' इत्युत्तरकालं विशेषं विवेचयति ।
तरतमभावेन तत्प्रदेशसन्निधाने तु संस्थानविशेषविशिष्टमेवार्थं
वैशद्यतरतमभावेनाध्यक्षत एव प्रतिपद्यते, विशदक्षानावरणस्य
तरतमभावेनैवापगमात् ।

१० ननु च परोक्षेपि स्मृतिप्रत्यभिज्ञादिस्वरूपसंवेदनेऽस्याध्यक्ष-
लक्षणस्य सम्भवादतिव्याप्तिरेव; इत्यप्यपरीक्षिताभिधानम्; तस्य
परोक्षत्वासम्भवात्, क्षायोपशमिकसंवेदनानां स्वरूपसंवेदनस्या-
निर्द्रियप्रधानतयोत्पत्तेरनिन्द्रियाध्यक्षव्यपदेशसिद्धेः सुखादि-
स्वरूपसंवेदनवत् । बहिरर्थग्रहणापेक्षया हि विज्ञानानां प्रत्यक्षेतर-
१५ व्यपदेशः, तत्र प्रमाणान्तरव्यवधानाव्यवधानसङ्गत्वेन वैशद्येतर-
सम्भवात्, न तु स्वरूपग्रहणापेक्षया, तत्र तदर्थत्वात् ।

ततो निर्दोषत्वक्षेत्राद्यं प्रत्यक्षलक्षणं परीक्षादक्षैरभ्युपगन्तव्यं न
'इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नम्' [न्यायसू० १।४] इत्यादिकं तस्याव्याप-
कत्वाद्दीन्द्रियप्रत्यक्षे सर्वज्ञविज्ञानेऽस्यासत्त्वात् । न च 'तत्रास्ति'
२० इत्यभिधातव्यम्; प्रमाणतोऽनन्तरमेवास्य प्रसाधयिष्यमाणत्वात् ।
तथा सुखादिसंवेदनेऽप्यस्यासत्त्वम् । न हीन्द्रियसुखादिसन्निकर्षो-
त्तज्ज्ञानमुत्पद्यते; सुखादेरेव स्वग्रहणात्मकत्वेनोदयादित्युक्तम् ।
चाक्षुषसंवेदने चास्यासत्त्वम्; चक्षुषोर्थेन सन्निकर्षाभावात् ।

अथोच्यते—स्पर्शनेन्द्रियादिवच्चक्षुषोपि प्राप्यैकारित्वं प्रमाणा-
२५ त्प्रसाध्यते । तथा हि—प्राप्तार्थप्रकाशकं चक्षुः वैज्ञानेन्द्रियत्वात्स्पर्श-

१ अस्पष्ट । २ आकारमात्रे । ३ इन्द्रः । ४ उक्तमेव समर्थयन्ति । ५ कर्मणः ।
६ अव्यवधानेन प्रतिभासनत्वलक्षणस्य । ७ स्थूलादीनाम् । ८ अनिन्द्रियं । (ईष-
दिन्द्रियं) मनः । ९ मानसप्रत्यक्षत्वादित्यर्थः । १० एवं चेत्स्थूलादीनां परोक्ष-
व्यपदेशो न स्यादित्युक्ते आह । ११ बहिरर्थग्रहणे । १२ अनुमानलक्षणप्रमाणा-
लिङ्गप्रत्यक्षं प्रमाणान्तरम् । १३ स्वसंवेदन । १४ प्रमाणान्तरव्यवधानाभावात् ।
१५ अव्याप्त्यादिदोषत्रयासम्भवो यतः । १६ परोक्षं प्रत्यक्षलक्षणम् । १७ परेण
भवता । १८ इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नमित्यादिकस्य । १९ मनः । २० ज्ञेयः
प्रथमपरिच्छेदे । २१ प्रत्यक्षलक्षणस्य । २२ प्राप्यैकारित्वं प्राप्य अर्थं जानातीत्यर्थः ।
२३ नैयायिकेन । २४ इन्द्रियत्वादित्युक्ते मनसा व्यभिचारस्तत्परिहारार्थं वाक्-
ग्रहणम् । २५ बहिरर्थग्रहणाभिमुखत्वात् ।

नेन्द्रियादिवत् । ननु किमिदं बाह्येन्द्रियत्वं नाम-बहिरर्थामि-
मुख्यम्, बहिर्देशावस्थायित्वं वा? प्रथमपक्षे मनसावेकान्तः;
तस्याप्राप्यकारित्वेपि बहिरर्थग्रहणाभिमुख्येन बाह्येन्द्रियत्वसिद्धेः ।
द्वितीयपक्षे त्वसिद्धो हेतुः; रश्मिरूपस्य चक्षुषो बहिर्देशावस्थायि-
त्वस्य भवतानभ्युपगमात् । गोलकान्तर्गततेजोद्रव्याश्रया हि^१
रश्मयस्त्वन्मते प्रसिद्धाः । गोलकरूपस्य तु चक्षुषो बहिर्देशा-
वस्थापिनो हेतुत्वे पक्षस्य प्रत्यक्षवाधनात्कालात्ययापदिष्टत्वम् ।

न च बाह्यविशेषणेन मनो व्यवच्छेद्यम्, न हि तत् सुखादौ
संयुक्तसंभवायादिसम्बन्धं व्याप्तौ च सम्बन्धसम्बन्धमन्तरेण
ज्ञानं जनयति रूपादौ नेत्रादिवत् । अथासौ सम्बन्ध एव न^{१०}
भवति; तर्हि नेत्रादीनां रूपादिभिरप्यसौ न स्यात्, तस्यापि
सम्बन्धसम्बन्धत्वात् । तथा चेन्द्रियत्वाविशेषेपि मनोऽप्राप्तार्थ-
प्रकौशकं तथा बाह्येन्द्रियत्वाविशेषेपि चक्षुः किं नेष्यते? अथात्र
हेतुभावात्तन्नेष्यते; अन्यत्रापि 'इन्द्रियत्वात्' इति हेतुः केन
वार्यत? ततो मनसि तत्साधने प्रमाणवाधनमन्यत्रापि संमानम् ।^{१५}

चक्षुश्चात्र धर्मित्वेनोपात्तं गोलकस्वभावम्, रश्मिरूपं वा?
तत्राद्यविकल्पे प्रत्यक्षवाधा; अर्थदेशपरिहारेण शरीरप्रदेशे एवा-
स्योपलम्भात्, अन्यथा तद्द्रहितत्वेन नयनपक्षमप्रदेशस्योपलम्भः
स्यात् । अथ रश्मिरूपं चक्षुः; तर्हि धर्मिणोऽसिद्धिः । न खलु
रश्मयः प्रत्यक्षतः प्रतीयन्ते, अर्थवैचित्र्यं तत्स्वरूपाप्रतिभासनात्,^{२०}
अन्यथा विप्रतिपत्त्यभावः स्यात् । न खलु नीले नीलतयानुभूयमाने
कश्चिद्विप्रतिपद्यते ।

किञ्च, इन्द्रियार्थसन्निकर्षजं प्रत्यक्षं भवन्मते । न चार्थदेशे

१ नैयायिकेन । २ चक्षुःप्राप्तार्थप्रकाशकं बहिर्देशावस्थायित्वादित्यस्य । ३ प्रत्य-
क्षादिप्रमाणवाधिते पक्षे प्रवर्तमानो हेतुः कालात्ययापदिष्टः । ४ कर्तुं । ५ मनसा
संयुक्ते आत्मनि सुखादेस्सम्भवाव इति । ६ मन आत्मनात्मा चाशेषपदार्थैः साध्य-
साधनरूपैस्सम्बन्धयते इति । ७ इति सिद्धं प्रत्यक्षादिप्रमाणवाधनम् । ८ नेत्रादिना संयुक्ते
षटादौ रूपादेस्सम्बन्धसम्बन्धो यथा । ९ रूपादिषु नेत्रादीनां सम्बन्धसम्बन्धस्य ।
१० भवन्मताज्ञीकारेण । ११ मनसि । १२ मनः प्राप्तार्थप्रकाशकमिन्द्रियत्वात्स-
यादिवदिति । १३ प्राप्तार्थप्रकाशकत्वस्य । १४ आगमप्रमाणवाधा । १५ चक्षुषि ।
१६ प्रत्यक्षप्रमाणवाधनम् । १७ अनुमाने । १८ चक्षुः प्राप्तार्थप्रकाशकं बाह्येन्द्रि-
यत्वात् । १९ गोलकः । २० अर्थस्य यथा प्रतिभासनम् । २१ रश्मिस्वरूपं प्रति-
भासते चेत् । २२ रश्मिरूपं चक्षुर्गोलकरूपं वेत्ति । २३ रश्मिरूपं चक्षुरित्यसिद्धौ
दूषणान्तरमाह । २४ नैयायिकः ।

विद्यमानैस्तैरपरैर्द्विन्द्वयस्य सन्निकर्षोस्ति यतस्तत्र प्रत्यक्षमुत्पद्येत,
अभवत्स्याप्रसङ्गात् ।

अथानुमानात्तेषां सिद्धिः; किमेत एव, अनुमानान्तराद्वा ? प्रथ-
मपक्षेऽन्योन्याश्रयः—अनुमानोत्थाने ह्येतस्तत्सिद्धिः, अस्याश्चा-
५ अनुमानोत्थानमिति । अथानुमानान्तरात्तत्सिद्धिस्तदानवस्था, तत्रा-
प्यनुमानान्तरात्तत्सिद्धिप्रसङ्गात् ।

यदि च गोलकान्तर्भूतात्तेजोद्भव्याद्बहिर्भूता रश्मयश्चक्षुःशब्द-
वाच्यः; पदार्थप्रकाशकाः; तर्हि गोलकस्योन्मीलनमज्जनादिना
संस्कारश्च व्यर्थः स्यात् । अथ गोलकाद्याश्रयपिधाने तेषां विषयं
१० प्रति गमनासम्भवात्तदर्थं तदुन्मीलनम्, घृतादिना च पादयोः
संस्कारे तत्संस्कारो भवति स्याश्रयगोलकसंस्कारे तु नितरां
स्यात् इत्यस्यापि न वैयर्थ्यम्; तदापि गोलकादिलभस्य काम-
लादेः प्रकाशकत्वं तेषां स्यात् । न खलु प्रदीपकलिकाश्रयास्तद्-
श्मयस्तत्कलिकावलम्बं शलाकादिकं न प्रकाशयन्तीति युक्तम् ।

१५ न चात्र चक्षुषः सम्बन्धो नास्तीत्यभिधातव्यम्; यतो व्यक्ति-
रूपं चक्षुस्तत्रासम्बद्धम्, शक्तिस्वभावं वा, रश्मिरूपं वा ? प्रथ-
मपक्षे प्रत्यक्षविरोधः; व्यक्तिरूपचक्षुषः काचकामलादौ सम्ब-
न्धप्रतीतेः । द्वितीयपक्षेपि तच्छक्तिरूपं चक्षुर्व्यक्तिरूपचक्षुषो
भिन्नदेशम्, अभिन्नदेशं वा ? न तावद्भिन्नदेशम्; तच्छक्तिरू-
२० पताव्याघातानुपङ्गान्निरीधारत्वप्रसङ्गाच्च । न ह्यन्यशक्तिरन्या-
धारा युक्ता । तद्देशद्वारेणैवार्थोपलब्धिप्रसङ्गश्च । ततोऽभिन्नदेशं
चेत्; तत्तत्र सम्बद्धम्, असम्बद्धं वा ? सम्बद्धं चेत्; चहिरर्थव-
त्सैवाश्रयं तत्सम्बद्धं चाज्जनादिकमपि प्रकाशयेत् । असम्बद्धं
चेत्कथमाश्रयं नाम अतिप्रसङ्गात् ?

२५ अथ रश्मिरूपं चक्षुः, तस्यापि काचकामलादिना सम्बन्धो-
स्त्येव । न खलु स्फटिकदिक्पिकामध्यगतप्रदीपोदिरश्मयस्ततो

- १ अपरलोकानां लोचनस्य । २ अन्यथा=उरपद्यते चेत्तर्हि । ३ ग्रन्थानवसा ।
४ प्रथमानुमानात् । ५ अनुमानात् । ६ रश्मिरूपं चक्षुस्त्रैजसत्वात्मवीपवदित्यस्य ।
७ ग्रन्थानवसा । ८ भवत्प्रक्रियामात्रेण । ९ वसः । १० गोलकान्तर्भूततेजोद्भवस्य ।
११ स्वस्य रश्मिरूपचक्षुषः । १२ रश्मिरूपचक्षुषः संस्कारः । १३ गोलकस्य-
ज्जनादिना संस्कारस्य । १४ गोलकरूपम् । १५ शक्तेः । १६ व्यक्तिरूपचक्षुषः ।
१७ शक्तिस्वभावम् । १८ व्यक्तिरूपे चक्षुषि । १९ शक्तिरूपेन्द्रियसामर्थ्यं गोलकम् ।
२० समयत्र सम्बन्धाविशेषात् । २१ शक्तिरूपम् । २२ सद्यस्य विन्यायेयता
स्यादिसम्बन्धाविशेषात् । २३ तृतीयपक्षे । २४ काचादि । २५ अदिपदेन रसादि ।
२६ स्फटिकादिक्पिकायाः सकाशात् ।

निर्गच्छन्तस्तत्संयोगिनौ न सम्यग्दास्तत्प्रकाशका वा न भवन्तीति प्रतीतम् । तथा चाञ्जनादेः प्रत्यक्षत एव प्रसिद्धेः परोपदेशस्य दर्पणादेश्च तदर्थस्योपादानमनर्थकमेव स्यात् ।

किञ्च, यदि गोलकान्निःसृत्यार्थेनाभिसम्बन्धार्थं तैः प्रकाशयन्ति; तर्ह्यर्थं प्रति गच्छतां तैजसानां रूपस्पर्शविशेषवतां तेषामु-^५पलम्भः स्यात्, न चैवम्, अतो दृश्यानामनुपलम्भात्तेषामभावः । अथादृश्यास्तेऽनुद्भूतरूपस्पर्शवत्त्वात्; न; अनुद्भूतरूपस्पर्शस्य तेजोद्रव्यस्याप्रतीतेः । जलहेम्नोर्भासुररूपोष्णस्पर्शयोरनुद्भूतिप्रतीतिरस्तीत्यसम्यक्; उभयानुद्भूतेस्तत्रौप्यप्रतिपत्तेः । दृष्टानुसारेण चादृष्टार्थकल्पना, अनर्थ्यातिप्रसङ्गात् । तथाहि—रात्रौ १० दिनकरकराः सन्तोपि नोपलभ्यन्तेऽनुद्भूतरूपस्पर्शत्वाच्चक्षुरश्मिवत् । प्रयोगश्च—मार्जारदीनां चक्षुषा रूपदर्शनं बाह्यालोकपूर्वकम् तत्त्वादिवाऽसदादीनां तद्दर्शनवत् । ननु मार्जारदीनां चाक्षुषं तेजोस्ति, तत एव तत्सिद्धेः किं बाह्यालोककल्पनयेत्यनर्थ्यापि समीनम् । ननु यथा यदृश्यते तथा तत्कल्प्यते, दिवाऽसदादीनां १५ चाक्षुषं सौर्यं च तेजो विज्ञानकारणं दृश्यते तत्तथैवं कल्प्यते, रात्रौ तु चाक्षुषमेव, अतस्तदेव तत्कारणं कल्प्यते । ननु किं मनुष्येषु नायनरश्मीनां दर्शनमस्ति ? अथानुमेयास्ते; तर्हि रात्रौ सौर्यरश्मयोप्यनुमेयाः सन्तु । न च रात्रौ तत्सद्भावे नक्तञ्चरणामिव मनुष्याणामपि रूपदर्शनमसङ्गः; विचित्रशक्तिस्त्वाद्भावो-^{२०}नाम् । कथमनर्थथोलूकादयो दिवा न पश्यन्ति ? यथा चात्रौलोकैः

१ गहिः । २ श्रीखण्डेन । ३ सम्बन्धे सति । ४ अञ्जनादिपरिधानार्थम् । ५ रश्मयः । ६ भासुर । ७ उष्ण । ८ रश्मीनाम् । ९ इति चेत्रेत्यर्थः । १० अप्रतीतिं परिहरति परः । ११ एकसिन्धुष्णोदकलक्षणे हेमलक्षणे वा तैजसद्रव्ये । १२ यदैकसिद्धेतेजोद्रव्ये उभयानुद्भूतिर्न दृष्टा तथापि चक्षुरविमधूमयानुद्भूतिः कल्प्यते इत्युक्तं बाह । १३ अदृष्टानुसारेणादृष्टार्थकल्पना यदि स्यात् । १४ रात्रौ । १५ नरनेत्रे । १६ मनुष्याणां चाक्षुषं तेजोस्ति तत एव तत्सिद्धेः किं बाह्यालोककल्पनया । १७ कारणत्वेन । १८ तेजः । १९ कारणत्वेन । २० मार्जारदीनाम् । २१ रूपदर्शनकारणम् । २२ प्रतीतिः । २३ येनैवं परिहारः परोपेक्ष्यते । न सन्तीत्यर्थः । २४ परः । २५ सौर्यरश्मिसद्भावात् । २६ कथं विचित्रशक्तिवत् ? रात्रौ विद्यमानाः सौर्यरश्मयो नक्तञ्चरणां रूपज्ञानहेतवो न मनुष्याणामिति । २७ सौर्यरश्मीनाम् । २८ भावानां विचित्रशक्तिर्न स्यादिति । २९ परमते । ३० दिवसे । ३१ भूकानाम् ।

प्रतिबन्धकः, तथान्यैत्र तैमः । ततो यथानुपलम्भाच्च सन्ति रात्रौ भास्करकरास्तथान्यैदा नायनकरा इति ।

एतैर्न 'दूरस्थितकुड्यादिप्रतिफलितानां प्रदीपरश्मीनामन्तरेण ले सतामप्यनुपलम्भसरभवात् तैरनुपलम्भो व्यभिचारी, इत्यपि ५ निरस्तम्; आदित्यरश्मीनामपि रात्रावभावासिद्धिप्रसङ्गात् ।

अथोच्यते—चक्षुः स्वरश्मिसम्बद्धार्थप्रकाशकम् तैजसत्वात् प्रदीपवत् । ननु किमनेन चक्षुषो रश्मयः साध्यन्ते, अन्यतैः सिद्धानां तेषां ग्राह्यार्थसम्बन्धो वा? प्रथमपक्षे पक्षस्य प्रत्यक्ष-चाद्या, नरनारीनयनानां प्रभासुररश्मिरहितानां प्रत्यक्षतः प्रतीतेः । १० हेतोश्च कालात्ययापदिष्टत्वम् । अथाद्दृश्यत्वात्तेषां न प्रत्यक्षवाद्या पक्षस्य । नन्वेवं पृथिव्यादेरपि तत्सत्त्वप्रसङ्गः; तथा हि-पृथिव्या-दयो रश्मिवन्तः सत्त्वादिभ्यः प्रदीपवत् । यथैव हि तैजसत्वं रश्मिवत्तया व्याप्तं प्रदीपे प्रतिपन्नं तथा सत्त्वादिकमपि । अथ तेषां तत्साधने प्रत्यक्षविरोधः; सौन्यत्रापि समान इत्युक्तम् ।

१५ ननु मार्जारादिचक्षुषोः प्रत्यक्षतः प्रतीयन्ते रश्मयः तत्कथं तद्विरोधः? यदि नाम तत्र प्रतीयन्तेऽन्यैत्र किमायातम्? अर्थेया हेत्वि पीतत्वप्रतीतौ पटादौ सुवर्णत्वसिद्धिप्रसङ्गः । प्रत्यक्षवाध-नमुर्भयैत्रापि ।

किञ्च, मार्जारादिचक्षुषोर्भासुररूपदर्शनादन्यत्रापि चक्षुषि २० तैजसत्वं प्रसाधने गवादिलोचनयोः कृष्णत्वस्य नरनारीनिरीक्षण-योर्घावल्यस्य च प्रतीतेरविशेषेण पार्थिवत्वमाप्यत्वं वा साध्य-ताम् । कथं च प्रभासुरप्रभारहितनयनानां तैजसत्वं सिद्धं यतः सिद्धो हेतुः? किमर्तं एवानुमानात्, तदन्तराद्वा? आद्यविक-ल्पेऽन्योन्याश्रयः—सिद्धे हि तेषां रश्मिवत्त्वे तैजसत्वसिद्धिः, ततश्च २५ तत्सिद्धिरिति ।

१ जैनसते । २ रात्रौ । ३ नराणा प्रतिबन्धकम् । ४ दिवा । ५ अपि न सन्ति । ६ रात्रौ दिनकरकराणामनावसाधनपरेण ग्रन्थेन । ७ प्रतिविम्बितानाम् । ८ प्रदीपकुड्याद्योः । ९ जैनेः । १० अन्यथा । ११ न सन्त्यनुपलम्भमानत्वादिति । १२ अनुमानेन । १३ प्रमाणात् । १४ मार्जारादिनयनेषु । १५ नरनारीनयनेषु । १६ अन्यत्र प्रतीतस्यान्यत्र विधिवदि । १७ हेत्वि पीतत्वात्पटे सुवर्णत्वसाधने प्रत्यक्षवाधनं यथा तथा तैजसत्वाच्चक्षुषि रश्मिवत्त्वसाधने च प्रत्यक्षवाधनम् । १८ नरनयनं रश्मिवत् तैजसत्वान्मार्जारादिचक्षुषीदिति । १९ अशेषनेनाप्यम् । २० तैजसत्वादिलक्षणात् ।

अथ 'चक्षुस्तैजसं रूपादीनां मध्ये रूपस्यैव प्रकाशकत्वात् प्रदीपवत्' इत्यनुमानान्तरात्तत्सिद्धिः; न; अत्रापि गोलकस्य भासुररूपोष्णस्पर्शरहितस्य तैजसत्वसाधने पक्षस्य प्रत्यक्षबाधा, 'न तैजसं चक्षुः तमःप्रकाशकत्वात्, यत्पुनस्तैजसं तन्न तमःप्रकाशकं यथालोकः' इत्यनुमानवाधा च । प्रसाधयिष्यते च 'तमोवत्' इत्यत्र तमसः सत्त्वम् । प्रदीपवचैजसत्वे चास्यालोकपेक्षा न स्यादुष्णस्पर्शरहितयोपलम्भश्च स्यात्, न चैवम्, तदपेक्षतया मनुष्यपारावतवलीवर्दादीनां धवललोहितकालरूपतया उष्णस्पर्शस्वभावतया चास्योपलम्भात् । तन्न गोलकं चक्षुः ।

नाप्यन्यत्; तद्भाह्वकप्रमाणाभावेनाश्रयासिद्धत्वप्रसङ्गाद्धेतोः । १० 'रूपादीनां मध्ये रूपस्यैव प्रकाशकत्वात्' इति हेतुश्च जलोजनचन्द्रमाणिष्योदिभिरनैकान्तिकः । तेषामपि पक्षीकरणे पक्षस्य प्रत्यक्षबाधा, सर्वो हेतुरव्यभिचारी च स्यात् । न च जलाद्यन्तर्गतं तैजोद्रव्यमेव रूपप्रकाशकमित्यभिधातव्यम्; सर्वत्र दृष्टहेतुवैफल्यपत्तेः । तथा च दृष्टान्तासिद्धिः, प्रदीपादावप्यन्यैस्यैव तैत्प्रकाश १५ कस्य कल्पनाप्रसङ्गात् । प्रत्यक्षबाधनमुभयत्र । निराकरिष्यते च "नार्थालोकौ कारणम्" [परी० २।६] इत्यत्रालोकस्य रूपप्रकाशकत्वम् ।

किञ्च, रूपप्रकाशकत्वं तत्र ज्ञानजनकत्वम् । तच्च कारणविषयवादिनो घटादिरूपस्याप्यस्तीत्यनेन हेतोर्व्यभिचारः । 'करणत्वे २०

१ रूपस्येत्युच्यमाने आत्ममनोभ्या व्यभिचारस्तत्परिहारार्थं रूपस्यैवेत्युक्तम् । रूपस्यैव प्रकाशकत्वादित्युच्यमाने असिद्धत्वम् । कुतः? द्रव्यद्रव्यत्वयोरपि चक्षुषा प्रकाशनात् । तत्परिहारार्थं रूपादीना मध्ये इत्युक्तम् । अनेन द्रव्यद्रव्यत्वयोः परिहारः—रूपादीनां गुणानामेव निर्धारितत्वात् । २ इति यदुक्तं तत्रेत्यर्थः । ३ नार्थालोकौ कारणं परिच्छेद्यत्वात्तमोवदित्यस्य सत्त्वस्य व्याख्यानसरे । ४ चक्षुषः । ५ आदिपदेन स्फोभति । ६ कृष्ण । ७ धर्मि । ८ रश्मिरूपम् । ९ रश्मिरूपचक्षुषः । १० रूपस्याप्येते प्रकाशकाः । ११ आदिपदेन काचादिभिरपि । १२ यद्रूपादीना मध्ये रूपस्यैव प्रकाशकं तत्तैजसमित्युक्ते जलाजनादिभिर्हेतुर्व्यभिचारी स्यादित्यर्थः । १३ कार्ये । १४ कारण । १५ पिशाचादेः । १६ रूप । १७ जलादेरेव रूपप्रकाशकत्वोपलम्भादन्यस्य । रूपप्रकाशकत्वकल्पनेऽपि । १८ साधनविकलो दृष्टान्त इति निरूपयमानेन । १९ यत्कारणं ज्ञानं जनयति तदेव ज्ञानस्य विषयो भवतीति । २० ज्ञानस्य । २१ नैयायिकस्य । २२ घटादिरूपं रूपज्ञानजनकं न तु तैजसम् । २३ प्रकाशकत्वादित्यस्य । तैजसत्वसाध्यत्वाभावो(ने)पि साधनमस्ति यतः । २४ चक्षुस्तैजसं कारणत्वे सति रूपादीना मध्ये रूपस्यैव प्रकाशकत्वादित्युक्तेऽपीत्यर्थः ।

सति' इति विशेषणेप्यालोकार्थसन्निकर्षेण चक्षुरूपयोः संयुक्त-
समवायसम्बन्धेन ध्वानेकान्तः । 'द्रव्यत्वे करणत्वे च सति तैत्प्र-
काशकत्वात्' इति विशेषणेपि चन्द्रादिनानेकान्तः ।

- किञ्च, द्रव्यं रूपप्रकाशकं भासुररूपम्, अभासुररूपं वा ?
५ प्रथमपक्षे उष्णोदकसंसृष्टमपि तत् तत्प्रकाशकं स्यात् । अनुद्भूत-
रूपत्वान्नेति चेत्, नायनरश्मीनामप्यत एव तन्माभूत् । तथा
दृष्टत्वादित्यप्यनुत्तरम्; संशयात्, न हि तत्र निश्चयोस्ति ते
तैत्प्रकाशका न गोलकमिति । अनुद्भूतरूपस्य तेजोद्रव्यस्य दृष्टा-
न्तेपि रूपप्रकाशकत्वाप्रतीतिः । तथाच, न चक्षु रूपप्रकाशकम-
१० अनुद्भूतरूपत्वाज्जलसंयुक्तानलवत् । द्वितीयपक्षेपि उष्णोदकतेजो-
रूपं तैत्प्रकाशकं स्यात् । न हि तत्तत्र नष्टम्, 'अनुद्भूतम्' इत्य-
भ्युपगमात् । उद्भूतं तत्तैत्प्रकाशकमित्यभ्युपगमे रूपप्रकाशकैर्दे-
न्वयव्यतिरेकानुविधायी तस्यैव कार्यो न द्रव्यस्य । न खलु देव-
दत्तं प्रति पश्वादीनामागमनं तद्गुणान्वयव्यतिरेकानुविधायि देव-
१५ दत्तस्य कार्यम् । ततो 'द्रव्यत्वे सति' इति विशेषणासिद्धिः ।

किञ्च, सम्बन्धादेरिवाऽतैजसस्यापि द्रव्यरूपकरणस्य कस्यचि-
द्रूपज्ञानजनकत्वं किञ्च स्यात्, विपक्षव्यावृत्तेः सान्निध्यत्वादतैज-
सत्वे रूपज्ञानजनकत्वंस्याविरोधात् ? तदेवं तैजसत्वासिद्धेर्नातै-
श्चक्षुषोरधिभवत्त्वसिद्धिः ।

- २० अथान्यतः सिद्धानां रश्मीनां ग्राह्यार्थसम्बन्धोनेन साध्यते;
नै; अन्यतः कुतश्चित्तेषामसिद्धेः, प्रत्यक्षादेस्तत्साधकत्वेन प्राक्प्र-

१ सन्निकर्षाः संयुक्तसमवायादयः करणं भवन्ति न तु तैजसम् । २ चक्षुषा
संयुक्ते षटे रूपस्य समवायसम्बन्ध इत्यतः सन्निकर्षोपि संयुक्तसमवाय पवान ।
३ तेजोद्रव्ये सन्निकर्षादयो गुणास्तद्वयवच्छेदार्य द्रव्यत्वे सतीति विशेषणम् । ४ चक्षु-
स्तैजसं द्रव्यत्वे करणत्वे च सति रूपादीना मध्ये रूपस्यैव प्रकाशकत्वात् । ५ रूपं ।
६ चन्द्रे तैजसत्वाभावात् । ७ तेजोद्रव्यम् । ८ भासुररूपस्य । ९ रूपप्रकाशकत्वम् ।
१० अनुद्भूतरूपस्यापि तेजोद्रव्यस्य रूपप्रकाशकत्वेन । ११ तेजोद्रव्ये । १२ रूपं ।
१३ भासुर । १४ उष्णोदकगततेजोरूपम् । १५ रूपं । १६ परेण । १७ रूपं ।
१८ उद्भूततेजोरूपस्य । १९ गोलकगतोद्भूततेजोरूपस्य । २० तेजोद्रव्यस्य ।
२१ मन्त्रतन्त्रादि । २२ किन्तु देवदत्तगुणस्यैव कार्यम् । २३ सन्निकर्षादि ।
२४ आदिपदेन संयोगस्य चन्द्रादेश्च । २५ गोलकरूपस्य । २६ विपक्षवत्तैजसा-
ज्जलादेः । २७ रूपज्ञानजनकत्वहेतोः । २८ यत्तैजसं न भवति तत्र रूपप्रकाशक-
मिति । २९ जलादीनाम् । ३० तैजसत्वाविति हेतोः । ३१ द्वितीयपक्षः ।
३२ इति चैत्र । ३३ प्रमाणम् ।

तिषिद्धत्वात् । तथा चेदमयुक्तम्—“धत्तूरकपुष्पवदादौ सूक्ष्मा-
णामप्यन्ते महत्त्वं तद्रश्मीनां महापर्वतादिप्रकाशकत्वान्यथानुप-
पत्तेः ।” [] इति; स्वरूपतोऽसिद्धानां तेषां महत्त्वादिधर्मस्य
अद्धामात्रगम्यत्वात् । ततो रश्मिरूपचक्षुषोऽप्रसिद्धेर्गोलकस्य च
प्राप्यकारित्वे प्रत्यक्षवाधितत्वात्कस्य प्राप्तार्थप्रकाशकत्वं साध्येत ? ५
यदि च स्पर्शनादौ प्राप्यकारित्वोपलम्भाच्चक्षुषि तत्साध्येत; तर्हि
हस्तादीनां प्राप्तानामेवान्याकर्षकत्वोपलम्भाद्यस्कांतादीनां तथा
लोहाकर्षकत्वं किञ्च साध्येत ? प्रमाणवाधान्यत्रापि ।

अथार्थेन चक्षुषोऽसम्बन्धे कथं तत्र ज्ञानोदयः ? क एवमाह—
‘तत्र ज्ञानोदयः’ इति ? आत्मनि ज्ञानोदयाभ्युपगमात् । न चाप्रा- १०
प्यकारित्वे चक्षुषः सकृत्सर्वार्थप्रकाशकत्वप्रसङ्गः; प्रतिनियत-
शक्तित्वाद्भावानाम् । ‘यं एव यत्र योग्यः स एव तत्करोति’
इत्यनन्तरमेव वक्ष्यते । कार्यकारणयोरत्यन्तमेदेऽर्थान्तरत्वावि-
शेषात् ‘सर्वमेकैसात्कृतो न जायेत’ इति, ‘रश्मयो वा लोकान्तं
कृतो न गच्छन्ति’ इति चोद्ये^१ भवतोपि योग्यतैव शरणम् । १५

किञ्च, चक्षु रूपं प्रकाशयति संयुक्तसमवायसम्बन्धात्, स
चास्य गन्धाद्वावपि समान इति तमपि प्रकाशयेत् । तथा चेन्द्रि-
यान्तरवैयर्थ्यम् । योग्यताऽभावात्तदप्रकाशने सर्वत्र सैवास्तु,
किमन्तर्गङ्गुना सम्बन्धेर्न ? यदि चायमेकान्तश्चक्षुषा सम्बद्धस्यैव
ग्रहणमिति; कथं तर्हि स्फटिकाद्यन्तरितार्थग्रहणम् ? तद्रश्मीनां २०
तं प्रति गच्छतां स्फटिकाद्यवयविना प्रतिवन्धात् । तैस्तस्य
नाशितत्वाद्दोषे तद्व्यवहितार्थोपलम्भसमये स्फटिकादेरुपलम्भो
र्न स्यात् । तस्योपरि स्थितद्रव्यस्य च पातप्रसक्तिः आधारभूत-
स्यावयविनो नाशात् । न हि परमाणवो दृश्याः कस्याचिदाधारा
वा; अवयविकल्पनानर्थक्यप्रसङ्गात् । अवयव्यन्तरस्योत्पत्तेरदोषे २५
तदा तद्व्यवहितार्थानुपलम्भप्रसङ्गः । न चैवम्, युगपत्सैयोर्निर-
न्तरमुपलम्भात् । अथाशु व्यूहान्तरोत्पत्तेर्निरन्तरस्फटिकादिवि-

१ अप्राप्तकर्षकाणाम् । २ प्राप्तत्वप्रकारेण । ३ प्रत्यक्षवाधा । ४ चक्षुष्यपि ।
५ जैनेः । ६ चक्षुरादीनाम् । ७ कृत एतदित्याह । ८ कार्ये । ९ कार्यकारणभाव-
नियमे न योग्यता कारणं किन्त्वन्वदेव कारणमित्युक्ते आह । १० कार्यम् । ११ कार-
णात् । १२ भिन्नत्वाविशेषात् । १३ जैनेः । १४ नैयायिकस्य । १५ कार्यनियमे ।
१६ सन्निकर्षेण । १७ नियमः । १८ तस्य चक्षुषः । १९ नष्टत्वात् । २० कल-
पादेः । २१ मन्यथा । २२ एकस्य नाशेऽपरस्योत्पत्तेः । २३ स्फटिकस्फटिका-
न्तरितार्थयोः । २४ स्कन्धान्तरस्य ।

भ्रमः; तदभावस्याप्याशु प्रवृत्तेरभावविभ्रमः किञ्च स्यात्? भाव-
पक्षस्य बलीयस्त्वमित्ययुक्तम्; भावाभावयोः परस्परं स्वकार्य-
करणं प्रत्यविशेषात् ।

कथं च समलजलान्तरितार्थस्योपलम्भो न स्यात्? ये हि तद्-
५ क्षमयः कठिनमतितीक्ष्णलोहाऽभेद्यं स्फटिकादिकं भिन्दन्ति तेषां
जलेऽतिद्रवस्वभावे काऽक्षमा? अथ नीरेण नाशितत्वाच्च ते
तद्भिन्दन्ति; तर्हि स्वच्छजलव्यवस्थितस्याप्यनुपलम्भप्रसङ्गः ।
योग्यताङ्गीकरणे सर्वं सुस्थम् । ततः प्रोक्तदोषपरिहारमिच्छेता
प्रतीतिसिद्धमप्राप्यकारित्वं चक्षुषोऽभ्युपगन्तव्यम् ।

- १० तथाहि-‘चक्षुरप्राप्तार्थप्रकाशकमत्यासन्नार्थाप्रकाशकत्वात्, य-
त्पुनः प्राप्तार्थप्रकाशकं तदत्यासन्नार्थप्रकाशकं दृष्टं यथा
ओञ्चादि, अत्यासन्नार्थाप्रकाशकं च चक्षुस्तस्मादप्राप्तार्थप्रकाश-
कम्’ इति । न चायमसिद्धो हेतुः; कान्वकामलार्थत्यासन्नार्था-
प्रकाशकत्वस्य चक्षुषि प्रागेव प्रसाधितत्वात् । ननु साध्याविशि-
१५ ष्टेयं हेतुः; ‘पर्युदासप्रतिषेधे हि यदेवस्याप्राप्यकारित्वं तदेवात्या-
सन्नार्थाप्रकाशकत्वम्’ इति । प्रसज्यप्रतिषेधस्तु जैनेनाभ्युपगम्यते
अपसिद्धान्तप्रसङ्गात्; इत्यप्यनुपपन्नम्; प्रसङ्गसाधनत्वादेतस्य ।
ओञ्चादौ हि प्राप्यकारित्वात्यासन्नार्थप्रकाशकत्वयोर्व्याप्यव्यापक-
भावसिद्धौ सत्यां परस्य व्यापकभाववेष्ट्याऽत्यासन्नार्थाप्रकाशकत्व-
२० लक्षणयाऽनिष्टस्य प्राप्यकारित्वलक्षणव्याप्याभावस्यापादानमात्र-
मेवानेन विधीयते, इत्युक्तदोषाप्रसङ्गः । नाप्यनैकान्तिको विरुद्धो
वा; विपक्षस्यैकदेशे तत्रैव वाऽसौऽप्रवृत्तेः ।

न च स्पर्शनेन प्राप्यकारिणाप्यत्यासन्नस्याभ्यन्तरशरीरावय-
वस्पर्शास्याप्रकाशनादनेकान्तः; अस्य तर्तकारणत्वेन तद्विषय-
२५ त्वात् । स्वकारणव्यतिरिक्तो हि स्पर्शादिः स्पर्शनादीन्द्रियाणां

१ बलीयस्त्वादित्यर्थः । २ बलीयस्त्वस्य । ३ समलजले शक्तिर्नास्ति स्वच्छ-
जलेस्ति तर्हि योग्यतैव कारणम् । ४ अप्राप्तार्थप्रकाशकत्वेपि न सकलार्थप्राप्तकं चक्षुः ।
यत्र योग्यता तं प्रकाशयति यत्र योग्यता नास्ति तं न प्रकाशयतीति । ५ नैयायिकेन ।
६ कामलादि । ७ शब्दादिकं प्रकाशयत् । ८ आदिपदेनाजनादि । ९ साध्यसम
इत्यर्थः । १० हेतुसित्तनञो विचारः । ११ अत्यासन्नार्थं न प्रकाशयतीति ।
१२ सर्वथा तुच्छाभावः । १३ अन्यथा । १४ (जैने नक्ति) परेष्ट्याऽनिष्टापादनं
प्रसङ्गसाधनम् । १५ अनुमानस्य । १६ नैयायिकस्य । १७ चक्षुषीलम्बादिवदे ।
१८ चक्षुषा । १९ अनुमानेन । २० प्राप्यकारित्वस्य । २१ हेतोः । २२ तस्य
उपादानकारणत्वेन, न तु निमित्तकारणत्वेन ।

विषयः, तत्रैवाभिमुख्यसम्भवेनामीषां प्रकाशनयोग्यतोपपत्तेः । कथमन्यथैकशरीरप्रदेशान्तरगतस्पर्शनेन तत्प्रदेशान्तरगतः स्पर्शः प्रकाश्येत ? न च कामलादयोऽक्षनादयो वा चक्षुषः कारणेन तेषामप्यनेन न्यायेन प्रकाशनं न स्यात्, स्वसामग्रीतस्तत्सन्निकर्षानात्प्रागेवास्योत्पन्नत्वात् । नापि कालात्ययापदिष्टोयम्; प्रत्यक्षस्य पक्षावाधकत्वेन प्रागेव समर्थनात्, आगमस्य च तद्वाधकस्यासम्भवात् । नापि सत्प्रतिपक्षः; विपरीतार्थोपस्थापकानुमानानां प्रागेव प्रतिष्वस्तत्त्वादिति । तथा, 'चक्षुर्गत्वा नाऽर्थेनाभिसम्बद्ध्यते इन्द्रियत्वात्स्पर्शनादीन्द्रियवत्' इत्यनुमानाच्चास्याप्राप्यकारित्वसिद्धिः । अर्थस्य च तद्देशागमने प्रत्यक्षविरोध इति । १०

तद्योक्तप्रकारं प्रत्यक्षं मुख्यसांव्यवहारिकप्रत्यक्षप्रकारेण द्विप्रकारम् । तत्र सांव्यवहारिकप्रत्यक्षप्रकारस्योत्पत्तिकारणस्वरूपे प्रकाशयति—

इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तं देशतः

सांव्यवहारिकम् ॥ ५ ॥

१५

विशदं प्रत्यक्षमित्यनुवर्त्तते । तत्र समीचीनोऽबाधितः प्रवृत्तिनिवृत्तिलक्षणो व्यवहारः सांव्यवहारः, स प्रयोजनमस्येति सांव्यवहारिकं प्रत्यक्षम् । नन्वेवंभूतमनुमानमप्यत्र सम्भवतीति तदपि सांव्यवहारिकं प्रत्यक्षं प्राप्नोतीत्याशङ्कानोदार्थम्—'इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तं देशतः' इत्याह । देशतो विशदं यत्तत्प्रयोजनं ज्ञानं २० तत्सांव्यवहारिकं प्रत्यक्षमित्युच्यते नान्येदित्यनेन तत्स्वरूपम्, इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तमित्यनेन पुनस्तदुत्पत्तिकारणं प्रकाशयति ।

तत्रैन्द्रियं द्रव्यभावेन्द्रियभेदाद्भेदात् । तत्र द्रव्येन्द्रियं गोलकादिपरिणामविशेषपरिणतरूपरसगन्धस्पर्शवत्पुद्गलात्मकम्, पृथिवी-२५ व्यादीनामत्यन्तभिन्नजातीयत्वेन द्रव्यान्तरत्वासिद्धितस्तस्य प्रत्येकं तदारब्धत्वासिद्धेः । द्रव्यान्तरत्वासिद्धिश्च तेषां विषयपरिच्छेदे प्रसाधयिष्यते । भावेन्द्रियं तु लब्धुपयोगात्मकम् । तत्राऽऽवरणक्षयोपशमप्राप्तिरूपार्थग्रहणशक्तिर्लब्धिः, तदभावे सतोप्यर्थ-

१ स्कारणव्यतिरिक्ते स्पर्शादावाभिमुख्यं नास्ति यदि । २ पूर्वानुमानप्रकारेण । ३ लेघनिष्ठयोरर्थयोः । ४ लोके । ५ अनुमानादि । ६ आचार्यः । ७ इन्द्रियानिन्द्रिययोर्मध्ये । ८ सर्वाङ्गतत्त्वं, विद्या, नासा, गोलकपद्मप्रद, कर्णशङ्कलीति पञ्चसंस्थात्मकम् । ९ सर्वथा । १० चतुर्थे ।

स्याप्रकाशनात्, अन्यथातिप्रसङ्गः । उपयोगस्तु रूपादिविषय-
ग्रहणव्यापारः, विषयान्तरासक्ते चेतसि सन्निहितस्यापि विषय-
स्याग्रहणात्तत्सिद्धिः । एवं मनोपि द्वेषा द्रष्टव्यम् ।

ततः “पृथिव्यतेजोवायुभ्यो घ्राणरसनचक्षुःस्पर्शनेन्द्रिय-
५ भावः” [] इति प्रत्याख्यातम्; पृथिव्यादीनामन्योन्यमेका-
न्तेन द्रव्यान्तरत्वासिद्धेः, अन्यथा जलादेर्युक्ताफलादिपरिणामा-
भावप्रसक्तिरात्मादिवत् । न चैवम्, प्रत्यक्षादिविरोधात् ।

अथ मतम्—पार्थिवं घ्राणं रूपादिषु सन्निहितेषु गन्धस्यैवाभिव्य-
ञ्जकत्वान्नागकार्णिकाविमर्दककरतलवत्; तदप्यसङ्गतम्; हेतोः
१० सूर्यरश्मिभिरुदकसेकेन चानेकान्तात् । इदमेतद् हि तैलाभ्यक्तस्या-
दित्यमरीचिकाभिर्गन्धाभिव्यक्तिभूमिस्त्वदकसेकेनेति । ‘आप्यं रसनं
रूपादिषु सन्निहितेषु रसस्यैवाभिव्यञ्जकत्वात्तलालवत्’ इत्यत्रापि
हेतोर्लवणेन व्यभिचारः, तस्यानाप्यत्वेपि रसाभिव्यञ्जकत्वप्र-
सिद्धेः । ‘चक्षुस्तैजसं रूपादिषु सन्निहितेषु रूपस्यैवाभिव्यञ्जक-
१५ त्वात्प्रदीपवत्’ इत्यत्रापि हेतोर्माणिक्याद्युद्घोतितेनानेकान्तः ।
‘वायव्यं स्पर्शनं रूपादिषु सन्निहितेषु स्पर्शस्यैवाभिव्यञ्जकत्वात्तो-
यंशीतस्पर्शव्यञ्जकवार्यध्वयविवत्’ इत्यत्रापि कर्पूरादिनां सलिल-
शीतस्पर्शव्यञ्जकेनानेकान्तः ।

पृथिव्यतेजःस्पर्शाभिव्यञ्जकत्वाच्चास्यं पृथिव्यादिकार्यत्वानु-
२० पङ्को वायुस्पर्शाभिव्यञ्जकत्वाद्वायुकार्यत्ववत् । चक्षुषश्च तेजोरू-
पाभिव्यञ्जकत्वात्तेजःकार्यत्ववत् पृथिव्यप्समवाधिरूपव्यञ्जकत्वा-
त्पृथिव्यप्कार्यत्वप्रसङ्गः । रसनस्य चाप्यरसाभिव्यञ्जकत्वाद्-
प्कार्यत्ववत् पृथिवीरसाभिव्यञ्जकत्वात्पृथिवीकार्यत्वप्रसङ्गः ।

‘नाभसं श्रोत्रं रूपादिषु सन्निहितेषु शब्दस्यैवाभिव्यञ्जकत्वात्’
२५ इति चाऽसाम्प्रतम्; शब्दे नभोगुणत्वस्याग्रे प्रतिषेधात् । तत-
श्चेदमप्ययुक्तम्—“शब्दः स्वसमानजातीयविशेषगुणवतेन्द्रियेण

१ तदभावेप्यर्थप्रकाशनं चेत् । २ पिशाचपरमाण्वादेरपि ग्रहणप्रसङ्गः । ३ विषयं
प्रलभिसुखता । ४ नैयायिकमतम् । ५ सर्वथा । ६ आदिपदेन चन्द्रकान्तादेव ।
७ पार्थिवत्वाभावात् । ८ नुः । ९ तेजसत्वाभावात् । १० तोयगत । ११ यतः ।
१२ पार्थिवेन । १३ सलिलगत । १४ वायव्याभावात् । १५ स्पर्शनेन्द्रियत्वम् ।
१६ शब्दो विशेषगुणवतेन्द्रियेण गृह्यते इत्युच्यमाने सिद्धसाभ्यता भविष्यति । न हि
जैनेनापि रूपलक्षणगुणवता ओत्रेण शब्दो न गृह्यते इत्यभ्युपगम्यते । तद्वयवच्छेदार्थं
समानजातीयविशेषगुणवतेन्द्रियेण गृह्यते इत्युक्तम् । तथापि स्वस्मगतरूपेण समान-
जातीयरूपलक्षणविशेषगुणवतेन्द्रियेण शब्दो गृह्यत इत्यभ्युपगमरिसिद्धसाभ्यता ।

गृह्यते सामान्यविशेषवत्त्वे सति बाह्येकेन्द्रियप्रत्यक्षत्वात्, बाह्ये-
केन्द्रियप्रत्यक्षत्वे सत्यनात्मविशेषगुणत्वाद्वा रूपादिवत्” []
इति । ततो नेन्द्रियाणां प्रतिनियतभूतकार्यत्वं व्यवतिष्ठते प्रमा-
णाभावात् । प्रतिनियतेन्द्रिययोग्यपुद्गलारब्धत्वं तु ब्रह्मेन्द्रि-
याणां प्रतिनियतभावेन्द्रियोपकरणभूतत्वान्यथानुपपत्तेर्घटते इति ५
प्रेक्षादक्षैः प्रतिपत्तव्यम् ।

ननु चेन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तं तदित्यसाम्प्रतम्, आत्मार्थालो-
कादत्रैरपि तत्कारणतयात्राभिधानार्हत्वात्; तन्न; आत्मनः सम-
न्तरप्रत्ययस्य वा प्रत्ययान्तैरेष्यविशेषात् अत्रानभिधानम् असा-
धारणकारणस्यैव निरूपयितुमभिमतत्वात् । सन्निकर्षस्य चाऽ-१७
व्यापकत्वादसाधकतमत्वाच्चानभिधानम् । अर्थालोकयोस्तदसाधा-
रणकारणत्वाद्त्राभिधानं तर्हि कर्त्तव्यम्; इत्यप्यसत्; तयोर्ज्ञान-
कारणत्वस्यैवासिद्धेः । तदाह—

नार्थाऽऽलोकौ कारणं परिच्छेद्यत्वात्तमोवत् ॥ ६ ॥

प्रसिद्धं हि तमसो विज्ञानप्रतिबन्धकत्वेनातत्कारणस्यापि परि- १५
च्छेद्यत्वंम् । ननु ज्ञानानुत्पत्तिव्यतिरेकेणान्यस्य तमसोऽभावा-

तद्व्युत्पत्त्यर्थं स्वेन शब्दलक्षणं समानजातीयविशेषगुणवतेन्द्रियेण गृह्यत इत्युक्तम् ।
साध्यविशेषणसाफल्यानन्तर हेतुविशेषणसाफल्यमुच्यते । इन्द्रियग्राह्यत्वादित्युच्यमाने
घटो नानेकान्तः । घटो हि इन्द्रियग्राह्यो भवति न च स्वसमानजातीयविशेषगुणवते-
न्द्रियेण गृह्यते—घटस्य द्रव्यत्वेन तत्समानजातीयस्य गुणसाभावात् । तेनानेकान्त-
व्युत्पत्त्यासामेकेन्द्रियग्राह्यत्वादित्युक्तम् । न हि घटस्यैकेन्द्रियग्राह्यत्वं स्पर्शनादीन्द्रिये-
णापि ग्रहणात् । एकेन्द्रियग्राह्यत्वादित्युच्यमाने आत्मनानेकान्तः । आत्मा हि मनो-
लक्षणेकेन्द्रियग्राह्यो भवति, न च समानजातीयविशेषगुणवतेन्द्रियेण गृह्यते—आत्मनो
द्रव्यत्वेन तत्समानजातीयस्य गुणस्य मनस्यभावात् । तत्परिहारार्थं बाह्येकेन्द्रियग्राह्य-
त्वादित्युक्तम् । तथा च रूपत्वादिनानेकान्तः । रूपत्वादिक बाह्येकेन्द्रियग्राह्यं भवति, न
च स्वसमानजातीयविशेषगुणवतेन्द्रियेण गृह्यते—रूपत्वस्य सामान्यभावेन तत्समानजातीय-
गुणस्यैवासाधकत्वात् । तत्परिहारार्थं सामान्यविशेषवत्त्वे सति बाह्येकेन्द्रियग्राह्यत्वादित्यु-
क्तम् । न च रूपत्वसामान्यं सामान्यबद्धवति—निस्सामान्यानि सामान्यानीति वचनात् ।

१ न चैकपुद्गलजन्यत्वेनैकादृशत्वं योग्यपुद्गलारब्धत्वात् । २ सहाय । ३ साध्य-
वहारिकम् । ४ आदिपदेन सन्निकर्षादिः । ५ प्रत्यक्ष । ६ च्छे । ७ कारणरूपस्य ।
८ पूर्वम् । ९ उपादानत्वेनात्मनासदृश । १० परोक्षशाने । ११ च्छे । १२ विशेष ।
१३ चक्षुषः प्राप्यकारित्वनिराकरणात् । १४ साध्यवहारिकस्य । १५ च्छे ।
१६ जैनैः । १७ ज्ञानस्य । १८ हेयत्वम् ।

त्कस्य दृष्टान्ता? इत्यप्यसङ्गतम्; तस्यार्थान्तरभूतस्यालोकसेवात्रै-
वानन्तरं समर्थयिष्यमाणत्वात् । ननु परिच्छेद्यत्वं च स्यात्-
योस्तत्कारणत्वं च अविरोधात्; इत्यप्यपेशलम्; तत्कारणत्वे
तयोश्चक्षुरादिवत्परिच्छेद्यत्वविरोधात् ।

५ किञ्च, अर्थकार्यतया ज्ञानं प्रत्यक्षतः प्रतीयते, प्रमाणान्तराद्वा?
प्रत्यक्षतश्चेत्किं तैत एव, प्रत्यक्षान्तराद्वा? न तावत्तत एव, अने-
नार्थमात्रस्यैवानुभवात् । तद्देतुत्वविशिष्टार्थानुभवे वा विवाद्वा
न स्यान्नीलत्वादिवत् । न खलु प्रमाणप्रतिपन्ने वस्तुरूपेऽसौ दृष्टो
विरोधात् । न हि कुम्भकारादेर्घटादिहेतुत्वेनानुभवे सोस्ति । तन्न
१० तद्देवार्त्मानोऽर्थकार्यतां प्रतिपद्यते । नापि प्रत्यक्षान्तरम्; तेनाप्य-
र्थमात्रस्यैवानुभवात्, अन्यथोक्तदोषानुपपन्नं; ज्ञानान्तरस्यानेना-
दृष्टत्वाच्च । एकैर्थासमवेतानन्तरं ज्ञानग्राह्यमर्थज्ञानमित्यभ्युपगमेपि
अनेनार्थाग्रहणम् । न चोभयविषयं ज्ञानमस्ति यतस्तत्प्रतिपत्तिः ।

अथ प्रमाणान्तरात्सर्वार्थकार्यता प्रतीयते; तर्हि ज्ञानविषयम्,
१५ अर्थविषयम्, उभयविषयं वा स्यात्? तत्राद्यविकल्पद्वये तयोः
कार्यकारणभावाप्रतीतिः एकैकविषयज्ञानग्राह्यत्वात्, कुम्भकार-
घटयोरन्यतरविषयज्ञानग्राह्यत्वे तद्भावाप्रतीतिवत् । नाप्युभय-
विषयज्ञानात्प्रतीतिः; तद्विषयज्ञानस्यास्माद्देशां भवतोऽनभ्युपग-
मात् । न खलु 'ज्ञाने प्रवृत्तं ज्ञानमर्थेपि प्रवर्तते' इत्येव प्रवृत्तं
२० ज्ञाने' इत्यभ्युपगमो भवतः । अत्रभ्युपगमे वा प्रमाणान्तरत्वप्रस-
क्तिरिति व्याप्तिज्ञानविचारे विचारयिष्यते ।

अथानुमानात्तत्कार्यतावसायैः; तथाहि-अर्थालोककार्यं विज्ञानं
तदन्वयव्यतिरेकानुविधानात्, यद्यस्यान्वयव्यतिरेकावर्तुविधत्ते
तत्तस्य कार्यम् यथाग्नेर्धूमः, अन्वयव्यतिरेकानुविधत्ते चार्था-
२५ लोकोपेक्षानम् इति । न चात्रालिङ्गो हेतुस्तत्सद्भावे सत्येवास्व
भावादभावे चाभावात् । इत्याशङ्क्याह—

१ ग्रन्थे । २ तत्र ज्ञाने । ३ षट् विषयीकरोति यत्प्रत्यक्षम् । ४ ज्ञानं ।
५ आद्यप्रत्यक्षम् । ६ स्वस्य । ७ जानाति । ८ विचारलक्षणम् । ९ अर्थज्ञानयोरनु-
भवश्लेषप्रमाणान्तरेण । १० प्रथमप्रत्यक्षज्ञानस्य । ११ द्वितीयज्ञानापेक्षया । १२ द्वितीय-
ज्ञानेन । १३ आत्मलक्षणम् । १४ द्वितीय । १५ परेण । १६ अर्थकार्यतया ज्ञानस्य ।
१७ अपि तु न कुतोपि । १८ ज्ञानस्य । १९ वस्तुः । २० अर्थज्ञानयोः ।
२१ प्रमाणान्तरात् । २२ ज्ञानस्यार्थकार्यतायाः । २३ किञ्चिज्ज्ञानान् । २४ नैयायि-
केन । २५ उभयविषयज्ञानस्य । २६ उभयविषयज्ञानस्य पञ्चमस्य । २७ तिष्ठत्यः ।
२८ अनुकरोति ।

तदन्वयव्यतिरेकानुविधानाभावाच्च केशोण्डुक- ज्ञानवन्नक्तञ्चरज्ञानवच्च ॥ ७ ॥

तदन्वयव्यतिरेकानुविधानाभावाच्च, न केवलं परिच्छेद्यत्वा-
च्चयोस्तदकारणताऽपि तु ज्ञानस्य तदन्वयव्यतिरेकानुविधाना-
भावाच्च । नियमेन हि यद्यस्यान्वयव्यतिरेकावनुकरोति तत्तस्य ५
कार्यम् यथाग्नेर्धूमः । न चानयोरन्वयव्यतिरेकौ ज्ञानेनानु-
क्रियेते ।

अत्रोभयप्रसिद्धदृष्टान्तमाह-केशोण्डुकज्ञानवन्नक्तञ्चरज्ञानवच्च ।
कामलाद्युपहृतचक्षुषो हि न केशोण्डुकज्ञानेर्धः कारणत्वेन
व्याभियते । तत्र हि केशोण्डुकस्य व्यापारः, नयनपद्मादेर्वा, तत्के- १०
शानां वा, कामलादेर्वा गत्यन्तराभावात् ? न तावदाद्यविकल्पः;
न खलु तज्ज्ञानं केशोण्डुकलक्षणैर्ये सत्येव भवति ज्ञेयमाभावात्-
सङ्गात् । नयनपद्मादेस्तत्कारणत्वे तस्यैव प्रतिभासप्रसङ्गात्,
गगनतलावलम्बितया पुरःस्थतया केशोण्डुकाकारतया च प्रति-
भासो न स्यात् । न ह्यन्यदन्यत्रान्यथा प्रत्येतुं शक्यम् । अथ नय- १५
नकेशा एव तत्र तथाऽसन्तोपि प्रतिभासन्ते; तर्हि तद्रहितस्य
कामलिनोपि तत्प्रतिभासाभावः स्यात् ।

किञ्च, असौ तद्देशे एव प्रतिभासो भवेन्न पुनर्देशान्तरे । न
खलु स्थाणुनिवन्धना पुरुषभ्रान्तिस्तद्देशादन्यत्र दृष्टा । कथं च
तद्देशतो तदाकारता चाऽसती तज्ज्ञानं जनयेद्यतो ग्राह्या स्यात् । २०
अथ भ्रान्तिचशार्त्तिकेशाएव तत्र तर्था तज्ज्ञानं जनयन्ति; अस्मा-
कमपि तर्हि 'चक्षुर्मनसी रूपज्ञानमुत्पादयेते' इति समानम् ।
यथैव ह्यन्यविषयजनितं ज्ञानमन्यविषयस्य ग्राहकं तथान्यैकारण-
जनितमपि स्यात् ।

अथ कामलाद्य एव तज्ज्ञानस्य हेतवः, तेभ्यश्चोत्पन्नं तदसदेव २५
केशादिकं प्रतिपद्यते; तर्हि निर्मललोचनमनोमात्रकारणादुत्पद्य-

१ अर्थांशक । २ अर्थांशकयोर्ज्ञानं प्रत्यकारणत्वे साध्ये । ३ अर्थाभावे (कोपेधु-
डुकशब्द एव श्रूयते) । ४ आलोक्यभावे । ५ भवति चेत्तर्हि । ६ केशोण्डुकज्ञानस्य ।
७ नरस्य । ८ केशोण्डुक । ९ नयनदेशे । १० नयनकेशानाम् । ११ गगनतले ।
१२ गगनतले । १३ नयनकेशेषु । १४ केशोण्डुक । १५ केशोण्डुक । १६ नयन ।
१७ गगनतले । १८ केशोण्डुकतया । १९ केशोण्डुक । २० नयनकेशेभ्यस्तत्कारण-
जन्यकेशोण्डुकस्य ग्राहकं चेत् । २१ केशोण्डुकादन्ये नयनकेशाः । २२ नयनकेशे-
भ्यस्तत्कारणजन्यकेशोण्डुकं तस्य । २३ अर्थादन्ये इन्द्रियमनसी । २४ केशोण्डुक ।

मानं ज्ञानं सदेव वस्तु विषयीकरोतीति किञ्चेभ्यते? तत्कथमर्थ-
कार्यता ज्ञानस्य अनेन व्यभिचारात् संशयज्ञानेन च?

न हि तदर्थे सत्येव भवति; अध्रान्तत्वानुपपत्तात्, तद्विष-
यभूतस्य स्थाणुपुरुषलक्षणार्थद्वयस्यैकत्र सद्भावासम्भवाच्च ।
५ सद्भावे वारेको न स्यात् । अथोच्यते—“सामान्यप्रत्यक्षाद्विशेषा-
प्रत्यक्षादुभयविशेषस्मृतेश्च संशयः” [वैशे० सू० २।२।१७]
विपर्ययः पुनस्तद्विपरीतविशेषस्मृतेः इत्यर्थो देवानयोर्भावः; तद-
प्युक्तिमात्रम्; तयोः खलु सामान्यं वा हेतुः स्यात्, विशेषो
वा, द्वयं वा? न तावत्सामान्यम्; तत्र संशयाद्यभावात्
१० ‘सामान्यप्रत्यक्षात्’ इत्यभिधानात्, प्रत्यक्षे च संशयादि-
विरोधात् । विशेषविषयं च संशयादिज्ञानम् । न चास्य सामान्यं
जनकं युज्यते । न ह्यन्यविषयं ज्ञानमन्येन जन्यते, रूप-
ज्ञानस्य रसादुत्पत्तिप्रसङ्गात् । यथा च सामान्यादुपजायमानं
तैदसतो विशेषस्य वेदकं तथेन्द्रियमनोभ्यां जायमानं सतः
१५ सामान्यादेरपीति व्यर्थार्थस्य तस्मैतुत्वकल्पना । सामान्यार्थजत्वे
चास्यै अर्थानैर्धजत्वप्रतिज्ञाविरोधः, कामलिनश्च केशोण्डुकादि-
ज्ञानानुत्पत्तिः, न खलु तत्र केशोण्डुकादिसमानधर्मा धर्मा विद्यते
यद्दर्शनात्तस्यात् । तन्नास्यै सामान्यं हेतुः ।

नापि विशेषस्तत्र तदभावात् । न खलु पुरोदेशे स्थाणुपुरुष-
२० लक्षणो विशेषोस्ति तैज्ज्ञानस्याध्रान्तत्वप्रसङ्गात् । स्थाणुरस्तीति
चेत्; कथं ततः किं पुरुषः पुरुष एवेति पुरुषांशावसायः?
अन्यैर्धान्यैत्रापि ज्ञानैर्यस्य कारणत्वकल्पना व्यर्था । तत्र विशे-
षोपि तैद्वेत्तुः । नाप्युभयम्; उभयपक्षोक्तदोषानुपपत्तात् । ततः
संशयादिज्ञानस्यार्थाभावेऽप्युपलम्भात्कथं तदभावे ज्ञानाभावसि-
२५ द्विर्यतोर्थकार्यतास्य स्यात् ?

- १ भवता नैपाधिकेन । २ केशोण्डुकज्ञानेन । ३ अन्यथा । ४ संशयज्ञानस्य ।
५ संशयः । ६ परेण । ७ ऊर्ध्वतासामान्यस्य ग्राहकं प्रत्यक्षमुपलम्भस्तस्यात् ।
८ स्थाणुत्वपुरुषत्वलक्षणो विशेषस्तस्याऽप्रत्यक्षमनुपलम्भस्तस्यात् । ९ विद्यमानविशे-
षात् । १० तस्माद्विद्यमानविशेषात्सामान्यादिलक्षणात् । ११ ज्ञानम् । १२ सामान्य-
प्रत्यक्षाद्विशेषात्प्रत्यक्षादिति सामग्रीतः सद्योत्पत्तौ दूषणान्तरमाह । १३ सद्यस्य ।
१४ स्थाणुपुरुषलक्षणयोरेवदोरेन्यतर एकस्तु विद्यमानोर्थोऽपरोऽविद्यमानोऽनर्थः ।
१५ स्थाणुस्थानीयः । १६ आकाशे । १७ शुक्तिस्थानीयः । १८ संशयादिः ।
१९ पुरोदेशे । २० अन्यथा । २१ स्थाणावविद्यमानस्य पुरुषांशस्य व्यवसायो यदि ।
२२ इन्द्रियमनोग्यामुत्पत्ते सत्यज्ञानेपि । २३ संशयादिद्वेत्तुः ।

ननु भ्रान्तं तत्तेनापलभ्यते, न चान्यस्य व्यभिचारेन्यस्य व्यभिचारोऽतिप्रसङ्गात्; इत्यप्यसमीक्षिताभिधानम्; स्वपरग्रहणलक्षणं हि ज्ञानम्, तत्र च यथा सत्याभिमतज्ञानं स्वपरग्राहकं तथा केशोण्डुकादिज्ञानमपि। एतावस्तु विशेषः—किञ्चित्सत्परं गृह्णाति संवादसद्भावात्किञ्चिदसद्विसंवादात्, न चैतावता जात्यन्तर-^५ त्वेनानैयोरन्यत्वं तार्भ्यां व्यभिचाराभावो वा। अन्यथा 'प्रयत्नानन्तरीयकः शब्दः कृतकत्वाद् घटादिवत्' इत्यादेरप्यप्रयत्नानन्तरीयकैर्विशुद्धनकुसुमादिभिर्न व्यभिचारः, तात्त्वादिदण्डादिजनिताच्छब्दघटादेस्तद्विपरीतस्य विद्युदारेण्यत्वात्। न चान्यस्य व्यभिचारेऽन्यस्यापि व्यभिचारोऽतिप्रसङ्गात्। तथाप्यत्र व्यभि-^{१०} चारे प्रकृतेः सोऽस्तु विशेषाभावात्।

किञ्च, 'कारणमेव परिच्छेद्यम्' इत्यभ्युपगमे योगिज्ञानात्प्राक्कालभाविन एवार्थस्यानेन परिच्छित्तिः स्यात् तस्यैव तत्कारणत्वात्; न पुनस्तत्कालभाविनोऽर्भाविनो वा, तस्यात्कारणत्वात्। लघ्वात्मलाभं हि किञ्चित्कस्यचित्कारणं नान्यथातिप्रस-^{१५} ङ्गात्। तथाप्यनेन तत्परिच्छेदेऽन्यज्ञानेनाप्यतत्कारणस्याप्यर्थस्य परिच्छेदः स्यात्। तथा चेदमयुक्तम्—“अर्थसहकारितयार्थवत्प्रमाणम्” [] इति। तदपरिच्छेदे चार्थसर्वज्ञतानुपपन्नः। ज्ञानान्तरेण परिच्छेदे तस्यापि ज्ञानान्तरस्य समसमयभाविनोर्थस्यापरिच्छेदकत्वात्कथं सर्वज्ञतेति चिन्त्यम्। ^{२०}

क्षणिकत्वे चार्थस्य ज्ञानकालेऽसत्त्वात्कथं तेन ग्रहणम्? तदाकारता चास्य प्रौक्प्रत्युक्ता। सत्यां वा तस्या एव ग्रहणात्परमार्थतोर्थस्याग्रहणात्तदेवाऽसर्वज्ञत्वम्। न खलु चैत्रसदृशे मैत्रे दृष्टे परमार्थतश्चैत्रो दृष्टो भवत्यन्यत्रोपचारात्। साध्वी चोपचारेण सर्वज्ञत्वकल्पना सुगतस्य सर्वस्यै तथाप्रातेः,^{२५} एकस्य कस्यचित्सतो वेदने तत्सदृशस्य सत्त्वेन सर्वस्य वेद-

१ कारणेन। २ गोपालवटिकाभूमस्य पावकम्यभिचारे भूषटादिवूमस्यापि तद्व्यभिचारः स्यात्। ३ भ्रान्ताभ्रान्तज्ञानयोः। ४ संशयविपर्ययाभ्याम्। ५ ज्ञानस्वार्थाभावे भावो व्यभिचारस्वभावाभावो न च। ६ एतावतान्यत्वं व्यभिचाराभावो वा स्यादिति तर्हि। ७ अपेक्षितपरन्यापारो हि भावः कृतक उच्यते। ८ तात्त्वाद्यन्यतस्य, येषाद्विभ्रणकस्य। ९ भिन्नजातीयत्वात्। १० प्रयत्नानन्तरीयकत्वं विना भावे। ११ अन्यत्वेपि। १२ कृतकत्वादित्यस्य हेतोः। १३ ज्ञाने। १४ अन्यत्वस्य। १५ ईश्वरानादा। १६ भविष्यतोर्वस्य। १७ स्वरविषाणमपि कस्यचित्कारणं स्यादित्यतिप्रसङ्गः। १८ वर्तमानस्य भाविनो वाच्यस्य ज्ञानाकारणत्वेपि। १९ योगिनः। २० भाविनोर्वस्य। २१ प्रथमपरिच्छेदे। २२ प्राणिमात्रस्य। २३ सञ्चिहितस्य।

नसम्भवात् । सत्त्वेन सर्वस्य सर्वेण वेदनमन्यैस्तु धर्मैरवेदन-
मिति चेत्, तर्हि [“यं”] कस्यार्थस्वभावस्य” [प्रमाणवा० १।४४]
इत्यादिग्रन्थविरोधः । सत्त्वेनापि तदग्रहणे न सादृश्यं ग्रहण-
कारणमिति कथं सुगतस्योपचारेणापि बहिः प्रमेयग्रहणम्?

५ कथं चैवंवादिनो भावस्योत्पद्यमानता प्रतीयते-सा ह्युत्पद्यमाना-
र्थसमसमयभाविना ज्ञानेन प्रतीयते, पूर्वकालभाविना, उत्तरकाल-
भाविना वा? न तावत्समसमयभाविना; तस्याऽतत्कार्यत्वात् ।
नापि पूर्वकालभाविना; तत्काले तस्याः सत्त्वाभावात् । न चासती
प्रत्येतुं शक्या; अकारणत्वात् । तदा खलुत्पत्त्यमानतार्थस्य न
१० तत्पद्यमानता । नाप्युत्तरकालभाविना; तदा विनष्टत्वात्तस्याः ।
न हि तदोत्पद्यमानतार्थस्य किं तूत्पन्नता ।

नित् रज्ञानपक्षे सिद्धमकारणस्याप्यर्थस्थानेन परिच्छेद्यत्वम् ।
१५ दन्येनापि स्यात् । अथार्थाकार्यत्वे तद्वन्नित्यत्वाच्चिखिलार्थ-
ग्राहित्वानुपपन्नं; न; चक्षुरादिकार्यत्वेनानित्यत्वात् । प्रतिनियत-
१५ शक्तित्वाच्च प्रतिनियतार्थग्राहित्वम् । न खलु यैकस्य शक्तिः
सान्यस्यापि, अन्यथा सर्वस्य सर्वैकत्वानुपपन्नो मद्देश्वरत्वत् ।
यथैव हीश्वरः कार्यप्रोमेणानुपक्रियमाणोप्यविशेषेण तं करोति
तथा कुम्भकारादिरपि कुर्यात् । न हि सोपि तेनोपक्रियते येन
'उपकारकमेव कुर्यान्नान्यम्' इति नियमः स्यात् । शक्तिप्रतिनि-
२० यमासौदविशेषेपि कश्चित्कस्यचित्कर्त्तव्यभ्युपगमो ग्राहकत्वपक्षेपि
समानः ।

ननु यद्यथाभावेपि ज्ञानोत्पत्तिः कुतो न नीलाद्यर्थरहिते प्रदेशे
तद्भवति? भवत्येव नयनमनसोः प्रणिधाने । कथं न नीलाद्यर्थग्र-
हणम्? तत्र तदभावात् । कथं 'तदुत्पन्नम्' इत्यवगमः? न हि

१ पुरुषेण । २ नीलपीतादिलक्षणैः । ३ नीललक्षणसार्वस्य प्रत्यक्षतः प्रतीतेः
कोन्यो भावो यः प्रमाणान्तरैरेषते इति ग्रन्थस्य विरोधः । ४ प्रतिनिमित्तस्य सादृश्यस्य
ग्रहणं स्यात् त्वर्थस्य । ५ कारणमेव परिच्छेद्यमिति वादिनः । ६ असदादिज्ञानेन ।
७ असदादिज्ञानस्य । न=इति चेन्नैत्यर्थः । ८ असदादिज्ञानस्य । ९ ईश्वरज्ञानस्य ।
१० असदादिज्ञानस्य । ११ एकस्य वा शक्तिः सान्यस्य यदि । १२ चरत्स्य ।
१३ सर्वकार्याणाम् । १४ ग्रामः समूहः । १५ अनुपकारकार्यकारणत्वस्याविशेषेपि ।
१६ षट्पदादिषु मध्ये । १७ अर्थकार्यताऽभावैपि ज्ञानं कल्पन्नियोगस्य ग्राहकं
स्यादिति समानता । १८ पुरोदेशे ।

१ 'यत्कार्यस्वभावस्य प्रत्यक्षस्य सतः स्वयम् ।

कोऽन्यो न जागो दृष्टः स्याद्यः प्रमाणैः परीक्ष्यते ॥" [प्रमाणवा० १।४४]

विषयमपरिच्छिन्दत् ज्ञानम् 'अस्ति' इति युक्तम्, अन्यथा सर्वत्र सर्वदा सर्वस्य तदनिवार्यं भवेदित्यप्यसारम्; तत्रोपनीतस्य नीलादेस्तेनैव ग्रहणोपलम्भात् । तदैव तदन्यज्ज्ञात(न)मिति चेत्किमिदानीं प्रतिविषयं प्रकाशकस्य भेदः? तथाभ्युपगमे प्रदीपादेरपि प्रतिविषयमन्यत्वप्रसङ्गः । प्रत्यभिज्ञानमुर्भयत्र समानम् । ५

नन्वर्थाभावेपि ज्ञानसद्भावेऽतीतानागते व्यवहिते च तत्स्यात्सन्निहितवत् । ननु (ननु) तत्र तत्स्यादिति कोर्थः? किं तत्रोत्पद्येत, तद्गाहकं वा भवेदिति? न तावत्तत्रोत्पद्येत; आत्मनि तदुत्पत्त्यभ्युपगमात् । नापि तद्गाहकं भवेत्; अयोग्यत्वात् । न खलु तदुत्पन्नमपि सर्वं वेत्ति; योग्यस्यैव वेदनात् । कारणेपि चैतच्चोद्यं १० समानम् । तत्रापि हि कारणं कार्येणानुपक्रियमाणं यावत्प्रतिनियतं कार्यमुत्पादयति तावत्सर्वं कस्मान्नोत्पादयतीति चोद्ये योग्यतैव शरणम् । ततो ज्ञानस्यार्थान्वयव्यतिरेकानुविधानाभावात्कार्यं तत्कार्यता यतः "अर्थवत्प्रमाणम्" [न्यायमा० पृ० १] इत्यत्र भाष्ये "प्रमातृप्रमेयाभ्यामर्थान्तरमव्यपदेश्याऽच्चमिचारिव्यव- १५ सायात्मके ज्ञाने कर्तव्येऽर्थसहकारितयार्थवत्प्रमाणम्" [] इति व्याख्या शोभेत? तच्चार्थकार्यता विज्ञानस्य ।

नाप्यालोककार्यता; अज्ञनादिसंस्कृतचक्षुषां नक्तञ्चराणां चालोकामावेपि ज्ञानोत्पत्तिप्रतीतेः । अथालोकस्याकारणत्वेऽन्वकारणस्थायामप्यसदादीनां ज्ञानोत्पत्तिः स्यात् । न चैवम्; तत- २० स्तद्भावे भावात्तदभावे चाभावात्तत्कार्यताऽस्य । अन्यथा धूमो-

१ अर्थे । २ पुरोदेशे । ३ पूर्वज्ञानेनैव । ४ अन्यज्ज्ञानामीलसिन्नवसरे । ५ ज्ञानस्य । ६ य एवार्थं प्रदीपो घटस्य प्रकाशकः स एवार्थं घटस्य प्रकाशको यथा तथा च एव नीलज्ञानपरिणत आत्मा स एवान्यज्ञानपरिणतः । ७ कारणचोद्यप्रक्षेपि । ८ कुल्लादिलक्षणम् । ९ घटादिलक्षणेन । १० प्रमाणं भवति । कीदृशम्? अर्थवदर्थो विद्यते यस्य तत् । अर्थवत्प्रमाणमित्युक्ते ज्ञानमपि प्रमाणं स्यात्तत्परिहारार्थमर्थसहकारितयेति । न च ज्ञानमर्थसहकारितयाऽर्थवत् किन्तु अर्थविषयतयाऽऽत्मवत् अर्थसहकारितयाऽर्थवत्प्रमाणमित्युच्यमाने मनोपि प्रमाणं स्यात् । कथम्? सुखोत्पत्तौ स्वप्नसिद्धादिसहकारितयाऽर्थवत्प्रवति मनः । इति तद्वयवच्छेदार्थमव्यपदेश्यादिविशेषणविधिं ज्ञाने कर्तव्ये इत्युक्तम् । एवं चैत्प्रमाता प्रमेयं च प्रमाणं स्यात् । कथम्? प्राणविशेषणे ज्ञाने कर्तव्ये स्वभावर्यसहकारितया अर्थवान्प्रमाता भवति । इति प्राणविशेषणे ज्ञाने कर्तव्ये खण्डमुण्डादिव्यक्तिलक्षणार्थसहकारितया अर्थवदिति प्रमेयं गोत्वादि सामान्यरूपम् । इति तत्परिहारार्थं प्रमातृप्रमेयाभ्यामर्थान्तरमित्युक्तम् । ११ अन्यव्यतिरेकस्तद्भावेपि आलोकज्ञानयोः कार्यकारणभावो नास्ति यदि ।

प्यग्निजन्यो न स्यात्, तद्व्यतिरेकेणान्यस्य तद्व्यवस्थापकस्याभावादिति चेत्, किं पुनरन्धकारावस्थायां ज्ञानं नास्ति? तथा चेत्; कथमन्धकारप्रतीतिः? तदन्तरेणापि प्रतीतावर्त्यत्रापि ज्ञानकल्पनानर्थक्यम् । 'प्रतीयते, ज्ञानं नास्ति' इति च स्ववचनविरोधः, ५ प्रतीतेरेव ज्ञानत्वात् ।

अथान्धकाराख्यो विषय एव नास्ति यो ज्ञानेन परिच्छिद्येत, अन्धकारव्यवहारस्तु लोके ज्ञानानुत्पत्तिमात्र इत्युच्यते; यद्येवमालोकस्याप्यभावः स्याद्विशदज्ञानव्यतिरेकेणान्यस्यास्याप्यप्रतीतिः । तद्व्यवहारस्तु लोके विशदज्ञानोत्पत्तिमात्रः । ननु ज्ञानस्य १० वैशद्यमेव तदभावे कथम्? इत्यप्यज्ञचोद्यम्; नक्तञ्चरादीनां रूपेऽसदादीनां रसादौ च तदभावेपि तस्य वैशद्योपलब्धेः ।

आलोकविषयस्य च ज्ञानस्यार्त एवालोकाद्वैशद्यम्, तदन्तराद्वा, अन्यतो वा क्लृप्तश्चित्? यद्यन्यतः; न तर्ह्यालोककृतं वैशद्यम् । न हि यद्यदभावेपि भवति तत्तत्कृतमतिप्रसङ्गात् । अथालोकान्तरात्; १५ तद्विषयस्यापि तस्यालोकान्तरार्त्तदित्यनवस्था । न चालोकान्तरमस्ति । अथास्मिं देवालोकात्; स्वविषयादेव तर्हि वैशद्यम्, तथा घटादिरूपादप्यस्तु । तस्याभासुरत्वाद्भातस्तत्; इत्यप्युक्तम्; बहुलान्धकारनिशीथिन्यां नक्तञ्चरादीनां तत्र वैशद्याभावप्रसङ्गात् । 'विशदं प्रत्यक्षम्' इत्यत्र चोक्तं वैशद्यकारणम् । यद्येवं प्रदीपाद्यु- २० पादानमनर्थकं तदन्तरेणापि ज्ञानोत्पत्तिप्रसङ्गात्; नाऽनर्थकम्, आवरणोपनयनद्वारेण विषये ग्राह्यतालक्षणस्य विशेषस्य इन्द्रियमूर्त्तिसोर्वा तज्ज्ञानजनकलक्षणस्यातोऽज्जनादेरिचोत्पत्तेः । न चैतौ-वता तस्य तत्कारणता; काण्डपटाद्यावरणापनेतुर्हस्तादेरपि तत्त्वप्रसङ्गात् । ततो यथा ज्ञानानुत्पत्तिव्यतिरेकेण नान्यत्तमः २५ तयो विशदज्ञानोत्पत्तिव्यतिरेकेणालोकोप्यन्यो न स्यात् ।

ननु 'अत्र प्रदेशे बहुल आलोकोऽत्र च मन्दः' इति लोकव्यवहारार्थैः सोस्तीति चेत्; तर्हि 'गुहागङ्गारादौ बहुलं तमोन्यत्र

- १ अन्वयव्यतिरेकव्यतिरेकेण । २ कार्यकारणभावव्यवस्थापकस्य । ३ अन्वकारस्य । ४ घटादिविषये । ५ अर्थः । ६ परेण भवता । ७ ज्ञानानुत्पत्तिमात्रान्धकारप्रकारेण । ८ प्रकृतज्ञानविषयात् । ९ खरामावेपि जायमानो धूमः खरहेतुकोन्यथा स्यात् । १० वैशद्यम् । ११ प्रथमालोकादेव । १२ विश्वानस्य । १३ यथादिज्ञानवैशद्यम्, तत्तच्च किमालोकपरिकल्पनेन । १४ आवरणप्रक्षयः । १५ तमः । १६ सप्तमीभिः । १७ प्रदीपादिना मनोलोचनस्थार्थस्य च स्वविशेषजननेपि । १८ वैशद्यकारणत्वं । १९ भेदमते । २० विशदज्ञानोत्पत्तेः सकाशात् ।

मन्दम्' इति लोकव्यवहारः किं काकैर्मक्षितः ? अत्रास्याऽप्रमाण-
त्वेऽन्यत्र कः समाश्वसः ? ननु बहिर्देशादागत्य गृहान्तःप्रविष्टस्य
सत्यप्यालोके तमःप्रतीतेर्न पारमार्थिकं तत्, न चालोकतमसो-
र्विरुद्धयोरैकत्रावस्थानम्, ततो ज्ञानानुत्पत्तिमात्रमेव तदिति
चेत्, तर्हि नक्तञ्चरादीनामेव (वं) विचरादौ प्रदीपाद्यालोकाभावेऽपि ५
तत्प्रतीतेः सोऽपि पारमार्थिको न स्यात् । न चैकत्र तमोऽभावेऽपि
तत्प्रतीतेः सर्वत्र तदभावो युक्तः, अन्यथाऽर्थाभावेऽपि क्वचित्प्र-
तीतेः सर्वत्र तदभावः स्यात् । तस्मादालोकवत्तमोऽपि प्रतीतिसि-
द्धम् । तत्र चालोकाभावेऽपि ज्ञानोत्पत्तिप्रतीतेः । न च तत्प्रति-
तस्य कारणता । तन्नार्थालोकयोर्ज्ञानं प्रति कारणत्वम् । १०

एवं तर्हि तत्तयोः प्रकाशकमपि न स्यादित्याह—

अतज्जन्यमपि तत्प्रकाशकम् ॥ ८ ॥

ताभ्यामर्थालोकाभ्यामजन्यमपि तयोः प्रकाशकम् ।

अत्रैवार्थं प्रदीपवदित्युभयप्रसिद्धं दृष्टान्तमाह—

प्रदीपवत् ॥ ९ ॥

१५

न खलु प्रकाश्यो घटादिः स्वप्रकाशकं प्रदीपं जनयति, स्वका-
रणकलापादेवास्योत्पत्तेः । 'प्रकाश्याभावे प्रकाशकस्य प्रकाशक-
त्वायोगात्स तस्य जनक एव' इत्यभ्युपगमे प्रकाशकस्याभावे
प्रकाश्यस्यापि प्रकाश्यत्वाघटनात् सोऽपि तस्य जनकोऽस्तु ।
तथा चेतरेतराश्रयः—प्रकाश्यानुत्पत्तौ प्रकाशकानुत्पत्तेः, तदनु- २०
त्पत्तौ च प्रकाश्यानुत्पत्तेरिति । स्वकारणकलापादुत्पन्नयोः प्रदी-
पघटयोरन्योन्यापेक्षया प्रकाश्यप्रकाशकत्वधर्मव्यवस्थाया एव
प्रसिद्धेनेतरेतराश्रयावकाश इत्यभ्युपगमे ज्ञानार्थयोरपि स्वसाम-
ग्रीविशेषवशादुत्पन्नयोः परस्परापेक्षया ग्राह्यग्राहकत्वधर्मव्यव-
स्थाऽऽस्वीर्यताम् । कृतं प्रतीत्यपलापेन । २५

ननु चाजनकस्याप्यर्थस्य ज्ञानेनावगतौ निखिलार्थावगतिप्रस-
ङ्गात्प्रतिकर्मव्यवस्था न स्यात् । 'यद्धि र्यतो ज्ञानमुत्पद्यते तत्तस्यैव
ग्राहकं नान्यस्य' इत्यस्यार्थजन्यत्वे सत्येव सा स्यादिति वदन्तं
प्रत्याह—

१ नमसि । २ नरस्य । ३ तमसोऽभावेऽपि तमःप्रतीतिप्रकारेण । ४ एकत्राभावे
मन्त्राभावे यदि । ५ तमसि । ६ तमसः । ७ अर्थालोकयोर्ज्ञानं प्रत्यकारणत्व-
प्रकारेण । ८ स्वरूप । ९ अभ्युपगम्यतान् । १० अलम्बितार्थः । ११ प्रतिनियत-
विषयव्यवस्था । १२ अर्थात् ।

स्वावरणक्षयोपशमलक्षणयोग्यतया हि प्रति-
नियतमर्थं व्यवस्थापयति ॥ १० ॥

तथा हि-यदर्थप्रकाशकं तत्स्वात्मन्यपेतप्रतिबन्धम् यथा प्रदी-
पादि, अर्थप्रकाशकं च ज्ञानमिति । प्रतिनियतस्वावरणक्षयो-
पशमश्च ज्ञानस्य प्रतिनियतार्थोपलब्धेरेव प्रसिद्धः । न चान्यो-
न्याश्रयः; अस्याः प्रतीतिसिद्धत्वात् । तल्लक्षणयोग्यता च शक्ति-
रेव । सैव ज्ञानस्य प्रतिनियतार्थव्यवस्थायामङ्गं नाथोत्पत्त्यादिः,
तस्य निषिद्धत्वादन्वयैर्नादर्शनाच्च । न खलु प्रदीपः प्रकाशयार्थैर्जन्य-
स्तेषां प्रकाशको दृष्टः ।

१० किञ्च, प्रदीपोपि प्रकाशयार्थाऽजन्यो यावत्काण्डपटाद्यनावृत्त-
मेवार्थं प्रकाशयति तावत्तदावृत्तमपि किञ्च प्रकाशयेदिति चोद्ये
भवतोप्यतो योग्यतातो न किञ्चिदुत्तरम् ।

कारणस्य च परिच्छेद्यत्वे करणादिनां व्यभि-
चारः ॥ ११ ॥

- १५ नहीन्द्रियमदृष्टादिकं वा विज्ञानकारणमप्यनेन परिच्छेद्यते । न
भ्रूमः-कारणं परिच्छेद्यमेव किन्तु 'कारणमेव परिच्छेद्यम्' इत्य-
वधारयामः; तन्न; योगिविज्ञानस्य व्याप्तिज्ञानस्य चाशेषार्थग्राहिणो-
ऽभावप्रसङ्गात् । न हि विनष्टानुत्पन्नाः समसमयभाविनो वार्था-
स्तस्य कारणमित्युक्तम् । केशोण्डुकादिज्ञानस्य चाजनकार्यग्राहि-
२० त्वाभावप्रसङ्गः । कथं च कारणत्वाविशेषेपीन्द्रियादेरग्रहणम् ?
अयोग्यत्वाच्चेत्; योग्यतैव तर्हि प्रतिकर्मव्यवस्थाकारिणी, अल-
मन्यैकल्पनया । स्वाकारार्पकत्वाभावाच्चेन्न; ज्ञाने स्वाकारार्पकत्व-
स्याप्यपास्तत्वात् । कथं च कारणत्वाविशेषेपि किञ्चित्स्वाकारार्पकं
किञ्चित्चेति प्रतिनियमो योग्यतां विना सिध्येत् ? कथं च सकलं
२५ विज्ञानं सकलार्थकार्यं न स्यात् ? 'प्रतिनियतशक्तित्वाद्भावानाम्'
इत्युत्तरं ग्राह्यग्राहकभावेपि समानम् ।

१ ज्ञानं कर्तुं । २ ज्ञानस्यापेतप्रतिबन्धत्वं कारणमर्थप्रकाशे चेत्तर्हि सकलार्थप्रकाशकं
किमिति न स्यादित्युक्ते आह । ३ आदिपदेन ताद्रूप्यादिः । ४ प्रकाशके प्रदीपादौ ।
५ तद्रूपत्वादेः । ६ धर्मी हेतुश्च । ७ साम्यम् । ८ षटादिवदिति दृष्टान्तः ।
९ इन्द्रियादिना । १० ज्ञानेन । ११ वयं भ्रुगताः । १२ यत्सत्तत्त्वं क्षणिकमिति ।
१३ कल्पत्वादि । १४ इन्द्रियादेः । १५ स्वस्य षटादिवस्तुनः । १६ स्वामलक्ष-
णादर्थानुत्पन्नमानं ज्ञानं स्वम्भस्य ग्राहकं यथा तथा निश्चेषार्थग्राहकं कुतो न
स्यादित्युत्तरं प्रतिनियतशक्तित्वाद्भावानामित्यत्रापि समानम् । १७ सामस्तेन ।

अथेदानीं मुख्यप्रत्यक्षप्ररूपणस्यावसरप्राप्तत्वात् तदुत्पत्तिकारणस्वरूपप्ररूपणायाह—

सामग्रीविशेषविश्लेषिताखिलावरणमऽतीन्द्रियमशेषतो मुख्यम् ॥ १२ ॥

‘विशदं प्रत्यक्षम्’ इत्यनुवर्त्तते । तत्राशेषतो विशदमतीन्द्रियं यद्विज्ञानं तन्मुख्यं प्रत्यक्षम् । किंविशिष्टं तत् ? सामग्रीविशेषविश्लेषिताखिलावरणम् । ज्ञानावरणादिप्रतिपक्षभूता हीहे सम्यग्दर्शनादिलक्षणान्तरङ्गा बहिरङ्गानुभवौदिलक्षणा सामग्री गृह्यते, तस्या विशेषोऽविकलत्वम्, तेन विश्लेषितं क्षयोपशमक्षयरूपतया विघटितमखिलमवधिमनःपर्ययकेवलज्ञानसम्बन्ध्यावरणम् १० अखिलं निःशेषं वाऽऽवरणं यस्यावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानत्रयस्य तत्तथोक्तम् ।

अत्र च प्रयोगैः—यद्यत्र स्पष्टत्वे सत्यवितथं ज्ञानं तत्तत्रापगताखिलावरणम् यथा रजोनीहाराद्यन्तरितबुद्धादौ तदपगमप्रभवं ज्ञानम्, स्पष्टत्वे सत्यवितथं च कैचिदुक्तप्रकारं ज्ञानमिति । तथा-१५ ऽतीन्द्रियं तत् मनोऽज्ञानपेक्षत्वात् । तदनपेक्षं तत् सकलकलङ्कविकलत्वात् । तद्विकलत्वं चास्यात्रैवं प्रसाधयिष्यते । अत एव चाशेषतो विशदं तत् । यत्तु नातीन्द्रियादिस्वभावं न तत्तदनपेक्षत्वादिविशेषणविशिष्टम् यथासदादिप्रत्यक्षम्, तद्विशेषणविशिष्टञ्चेदम्, तस्मात्तथेति । तथा मुख्यं तत्प्रत्यक्षम् अतीन्द्रिय-२० त्वात् स्वविषयेऽशेषतो विशदत्वाद्वा, यत्तु नेत्यं तन्नैवम्, यथासदादिप्रत्यक्षम्, तथा चेदम्, तस्मान्मुख्यमिति ।

ननु चावरणप्रसिद्धौ तदपगमाज्ज्ञानस्योत्पत्तिर्युक्ता, न च तत्प्रसिद्धम् । तद्धि शरीरम्, रागादयः, देशकालादिकं वा भवेत् ? न तावच्छरीरं रागादयो वा; तद्भावेऽप्यर्थोपलम्भसम्भवात् । तदुपलम्भप्रतिबन्धकमेव हि काण्डपटादिकं लोके प्रसि-

१ सत्ते । २ आदिपदेन देशकालादिग्रहणम् । ३ समग्रत्वम् । ४ आवरणापये । ५ अवधिमनःपर्ययकेवलज्ञानं स्वविषयेऽपगताखिलावरणं तत्र स्पष्टत्वे सत्यवितथज्ञानत्वात् । ६ ज्ञानम् । ७ अर्थे । ८ अनुमानादिना व्यभिचारपरिहारार्थम् । ९ संख्यादिना व्यभिचारपरिहारार्थम् । १० रूपिषु, परमनोगतार्थेषु, मूर्तामूर्तसकलवस्तुषु च । ११ क्रमेणावधिमनःपर्ययकेवलत्वम् । १२ अस्मिन्परिच्छेदे । १३ सकलकलङ्कविकलत्वादेव । १४ अवध्यादित्रयम् । १५ मुख्यम् । १६ नौदः प्राह । १७ आदिपदेन स्वभावो वा ।

इमावरणम् । ननु मेर्वादेर्दूरदेशता रावणादेस्तत्कालता परमाण्वादेः सूक्ष्मस्वभावता मूलकीलौदकादेश्च भूम्यादिः आवरणं प्रसिद्धमेवेति चेत्तदसारम् ; तदभावस्य कर्तुमशक्यत्वात् । न खलु सातिशयिर्मतापि योगिनः देशाद्यभावो विधातुं शक्यः । ५ न चान्यत् किञ्चिदावरणं प्रतीयते । ततः सामग्रीविशेषविश्लेषिताखिलावरणमित्ययुक्तम् ;

अत्रोच्यते-न शरीराद्यावरणम् । किं तर्हि ? तद्व्यतिरिक्तं कर्म । तच्चानुमानतः प्रसिद्धम् ; तथाहि-स्वपरप्रमेयवोचैकस्वभावस्यात्मनो हीनैर्गर्मस्थानशरीरविषयेषु विशिष्टाऽभिरतिः आत्मतद्व्य-
१० तिरिक्तकारणपूर्विका तत्त्वात् कुत्सितपरपुरुषे कमनीयकुलकामिन्यास्तत्राद्युपयोगजनितविशिष्टाभिरतिवत् । तथा, भवभृतां मोहोदयः शरीरादिव्यतिरिक्तसम्बन्धन्तरपूर्वको मोहोदयत्वात् भविराद्युपयोगमत्तस्यात्मगृहादौ मोहोदयवत् ।

ननु चार्तः कर्ममात्रमेव प्रसिद्धं नावरणम् ; ततस्तत्सिद्धावेष
१५ प्रमाणमुच्यतां तत्रैव विवादादिति चेदुच्यते यज्ज्ञानं स्वविषयेऽप्रवृत्तिमत् तत्सावरणम् यथा कामलिनो लोचनविज्ञानमेकचन्द्रमसि, स्वविषये अशेषार्थलक्षणेऽप्रवृत्तिमच्च ज्ञानमिति ।

ननु विज्ञानस्याशेषविषयत्वं कुतः सिद्धम् ? आवरणापाये तत्प्रकाशकत्वाच्चेदन्योन्याश्रयः-सिद्धे हि सकलविषयत्वे तस्य आव-
२० रणापाये तत्प्रकाशनं सिद्ध्यति, अतश्च सकलविषयत्वमिति; तदप्यसमीक्षिताभिधानम् ; यतोऽनुमानमिच्छता भवताप्यवश्यं सकलावरणवैकल्यात्प्रागेव सकलस्य प्राणिमात्रस्याशेषविषयं व्याप्त्यो-
दिज्ञानमभ्युपगतमेव । तथा, यत्स्वविषयेऽस्पष्टं ज्ञानं तत्सावरणम् यथा रजोनीहाराद्यन्तरिततरुनिकरादिज्ञानम्, अस्पष्टं च
२५ "सर्वे सदनेकान्तात्मकम्" इत्यादि व्याप्तिज्ञानम् । मिथ्यादृशां सर्वत्रानेकान्तात्मकै भावे विपरीतज्ञानं सावरणं मिथ्याज्ञानत्वात् धत्तूरकाद्युपयोगिनो मृच्छकले काञ्चनज्ञानवदिति । अतः सिद्धमावरणं पौद्गलिकं कर्मेति ।

१ ज्ञानस्य । २ मीमांसकीयपूर्वपक्षे सति जैनेः । ३ हीनशब्दे ग्रन्थदिशब्देः प्रत्येकमभिसम्बन्धीयः । ४ विषयज्ञाननितात्रन्दनादिषु । ५ विशिष्टाभिरतित्वात् । ६ आदिपदेनौषधमन्त्रादि । ७ अनुभव । ८ चक्रानुमानद्वयात् । ९ सत्सारिज्ञानम-
शेषार्थलक्षणे स्वविषये सावरणं भवति 'तत्राप्रवृत्तिमत्त्वादिति प्रतिज्ञादेत् उपरिष्ठाभेयो ।
१० सावरणम् । ११ अभावात् । १२ अदिपदेनागमनम् । १३ अस्पष्टज्ञानत्वा-
दित्युच्यमाने स्वसिद्धत्पष्टत्वं स्यात्तद्व्यवच्छेदार्थं स्वविषये इत्युक्तम् । १४ पदान्तरु-
विपरीतम् । १५ अनुमानत्रयात् ।

ननु चाविद्यैवावैरणं न पौद्गलिकं कर्म, मूर्च्छेनानेनामूर्त्तस्य ज्ञानादेरावरणायोगात्, अन्यथा शरीरादेरप्याव(वा)रकत्वानुप-
 झात्; इत्यप्यसमीचीनम्; मदिरादिना मूर्च्छेनाप्यमूर्त्तस्य ज्ञाना-
 देरावरणदर्शनात् । अमूर्त्तस्य चाव(वा)रकत्वे गगनादेशानान्त-
 रस्य च तैत्प्रसङ्गः । तदविरुद्धत्वात्तस्य तत्रेति चेत्; तर्हि शरी- ५
 रादेरप्यत एव तन्मा भुत्तद्विरुद्धस्यैवावरकत्वप्रसिद्धेः । प्रवाहेण
 प्रवर्त्तमानस्य ज्ञानादेरविद्योदये निरोधात्तस्यास्तद्विरोधगतौ मदि-
 रादिवत्पौद्गलिककर्मणोपि सास्तु विशेषाभावात् । तथाहि-आत्मनो
 मिथ्याज्ञानादिः पुद्गलविशेषसम्बन्धनिवन्धनः तत्त्वरूपांन्यथाभा-
 वैस्वभावत्वात् उन्मत्तकादिजनितोन्मादादिवत् । न च मिथ्या- १०
 ज्ञानजनितापरमिथ्याज्ञानेनानेकान्तः; तस्यापरापरपौद्गलिककर्मो-
 दये सत्येव भावात् अपरापरोन्मत्तकादिरससङ्गावे तत्कृतोन्मा-
 दादिसन्तानवत् ।

ननु चात्मगुणत्वात्कर्मणां कथं पौद्गलिकत्वमित्ये; तेष्यप-
 रीक्षकाः; तेषामात्मगुणत्वे तत्पारतन्त्र्यनिमित्तत्वविरोधात् सर्व- १५
 दात्मनो बन्धानुपपत्तेः सदैव मुक्तिप्रसङ्गात् । न खलु यो यस्य
 गुणः स तस्य पारतन्त्र्यनिमित्तम् यथा पृथिव्यादे रूपादिः,
 आत्मगुणश्च धर्माधर्मसंज्ञकं कर्म परैरभ्युपगम्यते इति न तदा-
 त्मनः पारतन्त्र्यनिमित्तं स्यात् । न चैवम्, आत्मनः परतन्त्रतया
 प्रमाणतः प्रतीतेः । तथाहि-परतन्त्रोऽसौ हीनस्थानपरिग्रहवत्त्वात् २०
 मद्योद्रेकपरतन्त्राशुचिस्थानपरिग्रहवद्विशिष्टपुरुषवत् । हीनस्थानं
 हि शरीरम्, आत्मनो दुःखहेतुत्वात्कारागारवत् । तत्परिग्रह-
 वांश्च संसारी प्रसिद्ध एव । न च देवशरीरे तदभावात्पक्षार्थ्यसिः;
 तस्यापि मरणे दुःखहेतुत्वप्रसिद्धेः । यत्परतन्त्रासौ तत्कर्म इति
 सिद्धं तस्य पौद्गलिकत्वम् । तथा हि-पौद्गलिकं कर्म आत्मनः पार- २५
 तन्त्र्यनिमित्तत्वाभिर्गलादिवत् । न च क्रोधादिभिर्व्यभिचारः;

१ प्रवृत्तानादितथादिनौ वदतः । २ आत्मनः । ३ आदिप्रदेनात्मनः । ४ अवि-
 यास्वरूपस्य । ५ गगनादिकं ज्ञानान्तरं च ज्ञानादेरावरकं भवति अमूर्त्तत्वादविधावत् ।
 ६ तेन ज्ञानेन । ७ मिथ्याज्ञानमविद्या । ८ प्रवाहेण प्रवर्त्तमानस्य ज्ञानादेः पौद्-
 लिककर्मोदये निरोधस्याविशेषात् । ९ कर्मेतापन्न । १० सम्यग्ज्ञानादि । ११ मिथ्या-
 ज्ञानादि । १२ योगाः । १३ धर्माधर्मसंज्ञकं कर्म आत्मनः पारतन्त्र्यनिमित्तं न भवति
 आत्मगुणत्वादित्यप्याहारः । १४ कर्मणा । १५ शरीरादिलक्षण । १६ भागात्सिद्धत्वं
 दुःखहेतुत्वलक्षणस्य हेतोः । १७ सुखदुःखरागद्वेषादिक्रानं पारतन्त्र्यम् । १८ निगलं
 गलबन्धनम् (शृङ्गादि) ।

तेषां जीवपरिणामानां पारतन्त्र्यस्वभावत्वात्, क्रोधादिपरिणामो हि जीवस्य पारतन्त्र्यं न पुनः पारतन्त्र्यनिमित्तम् ।

सत्यम्; नात्मगुणोऽदृष्टं प्रधानपरिणामत्वात्तस्य “प्रधानपरिणामः शुक्लं कृष्णं च कर्म” [] इत्यभिधानात्; इत्यपि मनो-
 ५ रथमात्रम्; प्रधानस्यासत्त्वेन तत्परिणामत्वस्य केचिदप्यसम्भवात् । तदसत्त्वं चात्रैवानन्तरं वैक्ष्यामः । तत्परिणामत्वेपि वा तस्यात्मपारतन्त्र्यनिमित्तत्वाभावे कर्मत्वायोगात्, अन्यथाति-
 १० र्प्रसङ्गः । प्रधानपारतन्त्र्यनिमित्तत्वात्तस्य कर्मत्वमिति चेन्न; प्रधानस्य तेन बन्धोपगमे मोक्षोपगमे चात्मकल्पनावैयर्थ्यप्रस-
 १५ ङ्गात् । बन्धमोक्षफलानुभवनस्यात्मनि प्रतिष्ठानात् तत्कल्पनावैयर्थ्यमित्यसत्; प्रधानस्य तत्कर्तृत्ववत् तत्फलानुभोक्तृत्वस्यापि प्रमाणसामर्थ्यप्राप्तत्वात्, अन्यथा कृतनाशाकृताभ्यागमदोषानु-
 २० षङ्गः । अथात्मनश्चेतनत्वात्तत्फलानुभवनं न तु प्रधानस्याऽचेतनत्वात्; तदप्ययुक्तम्; मुक्तात्मनोपि तत्फलानुभवनानुषङ्गात् ।
 २५ तस्य प्रधानसंसर्गाभावात् तत्फलानुभवनमिति चेत्; तर्हि संसारिणः प्रधानसंसर्गाद्वन्धफलानुभवनम् । तथा चात्मन एव बन्धः सिद्धः, तत्संसर्गस्य बन्धफलानुभवननिमित्तस्य बन्धरूपत्वात्, बन्धस्यैव ‘संसर्गः’ इति पुत्रलस्य च ‘प्रधानम्’ इति नामान्तरकरणात् ।

२० ननु प्रसिद्धस्यापि यथोक्तप्रकारस्य कर्मणः कार्यकारणप्रवाहेण प्रवर्तमानस्यानादित्वाद्दिनाशहेतुभूतसामग्रीविशेषस्य चाभावात्कथं तेन विच्छेषिताखिलावरणत्वं ज्ञानस्य; इत्यप्यपेशलम्; सम्यग्दर्शनादित्रयलक्षणस्य तद्विनाशहेतुभूतसामग्रीविशेषस्य सुप्रतीतत्वात् । सञ्चितं हि कर्म निर्जरातश्चारित्रविशेषरूपायाः
 २५ प्रलीयते । सा च निर्जरा द्विविधा-उपक्रमेतरमेदात् । तत्रौपक्रमिकी तपसा द्वादशविधेन साध्या । अनुपक्रमा तु यथाकालं संसारिणः स्यात् ।

कृतः पुनः साकल्येन पूर्वोपात्तकर्मणां निर्जरा निश्चीयते इति वैदनुमानात्; तथाहि-साकल्येन क्वचिदात्मनि कर्माणि निर्जी-

१ साङ्ख्यः । २ पुण्यम् । ३ पापम् । ४ गुण्यदो विकारे । ५ कथं ज्ञानः । ६ अदादेरपि कर्मत्वं स्यात् । ७ प्रधानं बन्धफलानुभोक्तृ भवति बन्धाधिकरणत्वादि-
 गणनद्वैवदत्तवत् । ८ तत्कृतत्वेपि तत्फलानुभोक्तृत्वं न स्यादिति तर्हि । ९ कृतस्य कर्मणः प्रधानसम्बन्धित्वेन नाशः । १० अकृतस्य फलस्वात्मनि आगमः । ११ तस्य कर्मणः फलं बन्धमोक्षौ । १२ तस्य कर्मणः । १३ पौत्रलिकस्य ।

र्यन्ते विपाकान्तत्वात्, यानि तु न निर्जीर्यन्ते न तानि विपाका-
न्तानि यथा कौलादीनि, विपाकान्तानि च कर्माणि, तस्मात्साक-
ल्येन क्वचिन्निर्जीर्यन्ते । न चेदमसिद्धं साधनम्; तथाहि—विपाका-
न्तानि कर्माणि फलावसानत्वाद्भीत्यादिवत् । न चेदमप्यसिद्धम्;
तेषां नित्यत्वानुषङ्गात् । न च नित्यानि कर्माणि नित्यं तत्फलाजु-^५
भवनप्रसङ्गात् ।

भावि पुनः कर्म संवराभिरुच्येत—“अपूर्वकर्मणामास्रवनिरोधः
संवरः” [तत्त्वार्थसू० १।१] इत्यभिधानात् । आस्रवो हि मिथ्या-
दर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगविकल्पात्पञ्चविधः, तस्मिन्सति
कर्मणामास्रवणात् । स च संवरो गुतिसमितिधर्मानुप्रेक्षा-^{१०}
शरीषहजयचारित्रैर्विधीयते इत्यागमे विस्तरतः प्ररूपितं द्रष्ट-
व्यम् । निर्जरासंवरयोश्च सम्यग्दर्शनाद्यात्मकत्वात्तत्प्रकर्षं कर्मणां
सन्तानरूपतयाऽनादित्वेऽपि प्रक्षयः प्रसिध्यत्येव । न ह्यनादिस-
न्ततिरपि शीतस्पर्शां विपक्षस्योष्णस्पर्शस्य प्रकर्षं निर्मूलतलं
प्रलयमुपब्रज्जोपलब्धः, कार्यकारणरूपतया बीजाङ्कुरसन्तानो^{१५}
वाऽनादिः प्रतिपक्षभूतदहनेन निर्दग्धबीजो निर्दग्धाङ्कुरो वा न
प्रतीयते इति वक्तुं शक्यम् ।

ननु तत्प्रकर्षमात्रात्कर्मप्रक्षयमात्रमेव सिध्येन्न पुनः साकल्येन
तत्प्रक्षयः, सम्यग्दर्शनादेः परमप्रकर्षसम्भवाभावात्; इत्यप्य-
सङ्गतम्; तत्प्रकर्षस्य क्वचिदात्मनि प्रसिद्धेः । तथाहि—यस्य^{२०}
तारतम्यप्रकर्षस्तस्य क्वचित्परमप्रकर्षः यथोष्णस्पर्शस्य, तारत-
म्यप्रकर्षश्चासंयतसम्यग्दृष्ट्यादौ सम्यग्दर्शनादेरिति । न च दुःख-
प्रकर्षेण व्यभिचारः; सप्तमनरकभूमौ नारकाणां तत्परमप्रकर्षप्र-
सिद्धेः सर्वार्थसिद्धौ देवानां सांसारिकसुखपरमप्रकर्षवत्,
मिथ्यादृष्टिष्वनन्तानुबन्धिक्रोधादिपरमप्रकर्षवद्वा । नापि ह्यानहा-^{२५}
निप्रकर्षेणानेकान्तः; तस्यापि क्षायोपशमिकस्य हीयमानतया
प्रकृष्यमाणस्य केवलिनि परमापकर्षप्रसिद्धेः । क्षाधिकस्य तु हाने-
वासम्भवात्कुतस्तत्प्रकर्षो यतोऽनेकान्तः ।

इत्थं वा साकल्येन कर्मप्रक्षये प्रयोगः कर्तव्यः—‘यस्यातिशये

१ कलदानपरिणतिविपाकः । २ परमतापेक्षया । ३ सम्यग्दर्शनादेः कर्मविनाश-
हेतुत्वमुक्तमिदानीमन्यदेवोक्तमिति कथं न पूर्वापरविरोधः ? इत्युक्ते आह । ४ सति ।
५ सम्यग्दर्शनादि क्वचिदात्मनि परमप्रकर्षं प्राप्नोति तारतम्यप्रकर्षवत्त्वादित्युपरिदृष्ट-
दम्भाहियते । ६ केवलज्ञानस्य । ७ तारतम्यप्रकर्षः । ८ विपाकान्तत्वादित्यनुमाना-
पेक्षया वाशब्दोऽत्र । ९ क्वचित्कर्मणामसन्तानान्यातिशयो धर्मी सम्यग्दर्शनादेरलन्ता-
सिद्धये भवति तस्यातिशये तद्धान्यतिशयदर्शनादित्युपरिदृष्टदम्भाहियते ।

यद्भान्यतिशयस्तस्यात्यन्तातिशयेऽन्यस्यात्यन्तहाविः यथांशोरत्यन्तातिशये शीतस्य, अस्ति च सम्यग्दर्शनादेरत्यन्तातिशयः क्वचिदात्मनि' इति । यद्वा, आवरणहानिः क्वचित्पुरुषविशेषे परमप्रकर्षमाप्ता प्रकृत्यमाणत्वात् परिमाणवत् । न चात्रासिद्धं साधनम्; ५ तथाहि-प्रकृत्यमाणावरणहानिः आवरणहानित्वात् माणिक्याद्यावरणहानिवत् । तद्भानिपरमप्रकर्षे च ज्ञानस्य परमः प्रकर्षः सिद्धः । यद्धि प्रकाशात्मकं तत्स्वावरणहानिप्रकर्षे प्रकृत्यमाणं इष्टम् यथा नयनप्रदीपादि, प्रकाशात्मकं च ज्ञानमिति । तदेवमावरणप्रसिद्धिवत्तदभावोप्यनवैयवेन प्रमाणतः प्रसिद्धः । तैत्प्रभवमेव १० चाशेषार्थगोचरं ज्ञानमभ्युपगन्तव्यम्, लेशतोप्यावरणसद्भावे तस्याशेषार्थगोचरत्वासम्भवात्, यत्रैवावरणसद्भावस्तत्रैवास्त्यप्रतिबन्धसम्भवात् ।

आगमद्वारेणाशेषार्थगोचरं ज्ञानम्; इत्यप्यसुन्दरम्; विशदज्ञानस्य प्रस्तुतत्वात् । न चागमज्ञानं विशदम् । न चागमोप्यशेषार्थ- १५ गोचरः; अर्थपर्यायेषु तस्याप्रवृत्तेः । तै चार्थस्य प्रतिक्षणम् 'अर्थक्रियाकारित्वात्सत्त्वाद्वा सन्ति' इत्यवसीयन्ते । अन्यथास्याऽवस्तुत्वप्रसङ्गः । करणजन्यत्वे चाशेषज्ञानस्यातीन्द्रियार्थेषु प्रतिबन्धः प्रसिद्ध एव, इन्द्रियाणां रूपादिमत्त्वव्यवहितेऽनेकावयवप्रचयत्मकेऽर्थे प्रवृत्तिप्रतीतेः ।

२० ननु योगजधर्मानुगृहीतानामिन्द्रियाणां गगनाद्यशेषातीन्द्रियार्थसाक्षात्कारिज्ञानजनकत्वसम्भवात् कथं तत्राशेषज्ञानस्येन्द्रियजत्वेपि प्रतिबन्धसम्भवः; इत्यप्यसमीक्षिताभिधानम्; योगजधर्मानुग्रहस्येन्द्रियाणां प्रथमपरिच्छेदे प्रतिविहितत्वात् ।

भावनाप्रकर्षपर्यन्तजत्वाद्योगिविज्ञानस्य नोक्तदोषानुषङ्गः । २५ भावना हि द्विविधा-श्रुतमयी, चिन्तामयी च । तत्र श्रुतमयी श्रुत्यमाणेभ्यः परार्थानुमानवाक्येभ्यः समुत्पद्यमानज्ञानेन श्रुतशब्दाच्यतामास्कन्देता निर्वृत्ता परमप्रकर्षे प्रतिपद्यमाना स्वार्थानुमानज्ञानलक्षणया चिन्तया निर्वृत्ता चिन्तामयी भावनामारमैते । सा च प्रकृत्यमाणा परं प्रकर्षपर्यन्तं सम्प्राप्ता योगिप्रत्यक्षं जन-

१ कर्मणः । २ साकल्येन । ३ आवरणाभावप्रभवत् । ४ परेण । ५ अर्थे । ६ प्रकृतत्वात् । ७ अर्थपर्यायाः । ८ अर्थोऽवस्तु असत्त्वात् । असत्त्वोऽर्थक्रियाशून्यत्वात् । अर्थक्रियाशून्योर्थः-अर्थपर्यायरहितत्वात् खपुष्पवत् । ९ सौगतो वक्रि । १० आचार्यात् । ११ सर्वं क्षणिकं सत्त्वादिति । १२ प्रामुषता । १३ श्रुतमयी भावना कर्त्री ।

यतीति तत्कथमस्योवरणापायप्रभवत्वम् ? इत्यप्यसारम् ; क्षणिकनैरात्म्यादिभावनायाश्चिन्तामरुधाः श्रुतमरुथाश्च मिथ्यारूपत्वात् । न च मिथ्याज्ञानस्य परमार्थविषययोगिज्ञानजनकत्वमतिप्रसङ्गात् । यथा च न क्षणिकत्वं नैरात्म्यं शून्यत्वं वा वस्तुनस्तथा वक्ष्यते । ५

किञ्च, अखिलप्राणिनां भावनावतां तथाविधज्ञानोत्पत्तिः किन्न स्यात् सुगतवत् ? तेषां तथाभूतभावनाऽभावाच्चेत् ; न; प्रतिपन्नतत्त्वानां भावनाप्रवृत्तमनसां सर्वेषां समानां भावनैव कुतो न स्यात् ? प्रतिबन्धककर्मसङ्गावाच्चेत् ; तर्हि भावनाप्रतिबन्धककर्मापाये भावनावत् योगिज्ञानप्रतिबन्धककर्मापाये तज्ज्ञानोत्पत्तिर- १०
भ्युपगन्तव्या । इति सिद्धं साकल्येनावरणापाये एवातीन्द्रियमशेषार्थविषयं विशदं प्रत्यक्षम् ।

ननु चाशेषार्थज्ञानुस्त(ज्ञानस्यत)ज्ज्ञानवतः कस्यचित्पुरुषविशेषस्यैवासम्भवात्कथं तज्ज्ञानसम्भवः ? तथाहि-न कश्चित्पुरुषविशेषः सर्वज्ञोस्ति सदुपलम्भकप्रमाणपञ्चकागोचरचारित्वा- १५
द्वन्ध्यास्तनन्धयवत् । न चायमसिद्धो हेतुः ; तथाहि-सकलपदार्थवेदी पुरुषविशेषः प्रत्यक्षेण प्रतीयते, अनुमानादिप्रमाणेन वा ? न तावत्प्रत्यक्षेण ; प्रतिनियतासङ्गरूपादिविषयत्वेन अन्यसन्तानस्यसंवेदनमानेप्यस्य सामर्थ्यं नास्ति, किमङ्ग पुनरनाद्यनन्तातीतानागतवर्त्तमानसूक्ष्मादिस्वभावसकलपदार्थसाक्षात्कारि- २०
संवेदनविशेषे तदर्थ्यासिते पुरुषविशेषे वा तत्स्यात् ? न चातीताद्विस्वभावनिखिलपदार्थग्रहणमन्तरेण प्रत्यक्षेण तत्साक्षात्करणप्रवृत्तज्ञानग्रहणम्, ग्राह्याग्रहणे तन्निष्ठग्राहकत्वस्याप्यग्रहणात् ।

नाप्यनुमानेर्नासौ प्रतीयते; तद्धि निश्चितस्वसाध्यप्रतिबन्धाद्धेतोरुदयमासादयत्प्रमाणतां प्रतिपद्यते । प्रतिबन्धश्चाखिलपदार्थ- २५
ज्ञसत्त्वेन स्वसाध्येन हेतोः किं प्रत्यक्षेण गृह्येत, अनुमानेन वा ? न, तावत्प्रत्यक्षेण ; अस्याऽत्यक्षज्ञानवत्सत्त्वसाक्षात्करणाक्षमत्वेन तत्प्रतिपत्तिनिमित्तहेतुप्रतिबन्धग्रहणेप्यक्षमत्वात् । न ह्यप्रतिपन्नसम्बन्धिनस्तद्गतसम्बन्धावगमो युक्तोऽतिप्रसङ्गात् । नाप्य-

१-१ मुख्यप्रत्यक्षस्य । २-दिचन्द्रादिज्ञानस्यापि योगिज्ञानजननकत्वप्रसङ्गात् । ३ अशेषविषय । ४ सर्वज्ञ । ५ परेण त्वया । ६ मुख्यम् । ७ मीमांसकः । ८ अन्यस्य पुनान्तरस्य । ९ अहो । १० तत्साहिते । ११ कश्चित्पुरुषः सकलपदार्थसाक्षात्कारी च ग्रहणसमयत्वे ऋति प्रक्रीणप्रतिबन्धप्रत्ययत्वादित्यनेन । १२ परमाणोरप्रतिपत्तावधि, घटस्य परमाणुना सम्बन्धप्रतिपत्तिप्रसङ्गात् ।

नुमानेन; अनवस्थेतरैतराश्रयदोषानुषङ्गात् । न चात्र धर्मो प्रत्यक्षेण प्रतिपन्नः; अनक्षज्ञानवत्यत्यक्षेऽध्यक्षस्याप्रवृत्तेः । प्रवृत्तौ वाध्यक्षेणैवास्य प्रतिपन्नत्वात् किञ्चिदनुमानेन । नाप्यनुमानेन; हेतोः पक्षधर्मतावगममन्तरेणानुमानस्यैवाप्रवृत्तेः । न चाप्रतिपक्षे ५ धर्मिणि हेतोस्तत्सम्बन्धावगमः । नाप्यप्रतिपक्षपक्षधर्मत्वो हेतुः प्रतिनियतसाध्यप्रतिपत्त्यङ्गम् ।

किञ्च, सैत्तासाधने सर्वो हेतुरसिद्धविरुद्धानैकान्तिकत्वलक्षणां प्रैयीं दोषजार्तिं नातिवर्त्तते । तथाहि-सर्वज्ञसत्त्वे साध्ये भावधर्मो हेतुः, अभावधर्मो वा स्यात्, उत उभयधर्मो वा? प्रथमपक्षेऽसिद्धः; १० भावेऽसिद्धे तद्धर्मस्य सिद्धिविरोधात् । द्वितीयपक्षे तु विरुद्धः; भावे साध्येऽभावधर्मस्याभावाव्यभिचारित्वेन विरुद्धत्वात् । उभयधर्मोप्यनैकान्तिकः सैत्तासाधने; तदुभयव्यभिचारित्वात् ।

अपि चाविशेषेण सर्वज्ञः कश्चित्साध्यंते, विशेषेण वा? तत्राद्यपक्षे विशेषतोऽर्हत्प्रणीतागमाश्रयणमनुपपन्नम् । द्वितीय- १५ पक्षे तु हेतोरपरसर्वज्ञस्याभावेन दृष्टान्तानुवृत्त्यसम्भवादसाधारै-
णानैकान्तिकत्वम् ।

किञ्च, यतो हेतोः प्रतिनियतोऽर्हद् सर्वज्ञः साध्यते ततो बुद्धोपि साध्यतां विशेषोभावात्, न चात्र सर्वज्ञत्वसाधने हेतुरस्ति ।

२० यदप्युच्यते-सूक्ष्मान्तरितदूरार्थाः कस्यचित्प्रत्यक्षाः प्रमेयत्वा-
त्पावकादिवत्; तदप्युक्तिमात्रम्; यतोऽत्रैकज्ञानप्रत्यक्षत्वं सूक्ष्मा-
द्यर्थानां साध्यत्वेनाभिप्रेतम्, प्रतिनियतविषयानेकज्ञानप्रत्यक्षत्वं
वा? तत्राद्यकल्पनायां विरुद्धो हेतुः; प्रतिनियतरूपादिविषय-
ग्राहकानेकप्रत्यक्षप्रत्यक्षत्वेन व्याप्तस्याइत्यादिदृष्टान्तधर्मिणि प्रमेय-
२५ त्वस्योपलम्भात् साध्यविकलता च दृष्टान्तस्य । द्वितीयकल्पनायां
सिद्धसाध्यता अनेकप्रत्यक्षैरनुमानादिभिश्च तैत्परिज्ञानाम्युपग-
मात् ।

१ निश्चिताविनाभावपूर्वकत्वादनुमानस्य । २ साध्यसाधकानुमाने । ३ परोक्षे ।
४ धर्मो प्रतिपन्नः । ५ सर्वज्ञलक्षणो । ६ सर्वज्ञस्य । ७ प्रयोऽवयवा यस्याः । ८ भाव-
स्वरूपः । ९ सर्वज्ञसत्त्वे । १० सर्वज्ञस्य । ११ भावमानोनय । १२ जैनेः ।
१३ दृष्टान्तमवर्तनाभावात् । १४ विपक्षसपक्षान्या व्यावर्त्तमानो हेतुरसाधारणानैका-
न्तिकः । अस्योदाहरणमनिलः शब्दः जावगत्वादिति । १५ हेतोः । १६ जगति ।
१७ अनुमाने । १८ सूक्ष्मान्तरितदूरार्थे ।

“यदि बद्धिः प्रमाणैः स्यात्सर्वज्ञः केन धार्यते ।

एकेन तु प्रमाणेन सर्वज्ञो येन कल्प्यते ॥

नूनं स चक्षुषा सर्वान् रसादीन्प्रतिपद्यते ।” [मी० श्लो० चोद-
नासू० श्लो० १११-१२] इत्यभिधानात् ।

किञ्च, प्रमेयत्वं किमशेषज्ञेयव्यापिप्रमाणप्रमेयत्वव्यक्तिलक्षण-
मभ्युपगम्यते, असदादिप्रमाणप्रमेयत्वव्यक्तिस्वरूपं वा स्यात्,
उभयव्यक्तिसाधारणसामान्यस्वभावं वा ? प्रथमपक्षोऽयुक्तः;
विवादाध्यासितपदार्थेषु तथाभूतप्रमाणप्रमेयत्वस्यासिद्धत्वात्,
अन्यथा साध्यस्यापि सिद्धेहेतूपादानमपार्थक्यम् । सन्दिग्धान्वय-
र्थाय हेतुः स्यात् ; तथाभूतप्रमाणप्रमेयत्वस्य दृष्टान्तेऽसिद्धत्वात् । १०
द्वितीयपक्षेऽसिद्धो हेतुः, असदादिप्रमाणप्रमेयत्वस्य विवादगो-
चरार्थेष्वसम्भवात् । सम्भवे वा ततस्तथाभूतप्रत्यक्षत्वसिद्धिरेव
स्यात् । तत्र चाविवादाच्च हेतूपन्यासः फलवान् । नाप्युभय-
प्रमेयत्वव्यक्तिसाधारणं प्रमेयत्वसामान्यं हेतुः; अस्यन्तविलक्ष-
णीतीन्द्रियेन्द्रियविषयप्रमाणप्रमेयत्वव्यक्तिद्वयसाधारणसामान्य- १५
स्यैवासम्भवात् । तन्नानुमानार्थेऽसिद्धिः ।

नाप्यर्थाभावात् ; सोपि हि नित्यः, अनित्यो वा तत्प्रतिपादकः
स्यात् ? न तावन्नित्यः; तत्प्रतिपादकस्य तस्याभावात्, भावेपि
प्रामाण्यासम्भवात् कौर्येऽर्थे तत्प्रामाण्यप्रसिद्धेः । अनित्योऽपि किं
तत्प्रणीतः, पुरुषान्तरप्रणीतो वा ? प्रथमपक्षेऽन्योन्याश्रयः— २०
सर्वज्ञप्रणीतत्वे तस्य प्रामाण्यम्, ततस्तत्प्रतिपादकत्वमिति ।
नापि पुरुषान्तरप्रणीतः; तस्योन्मत्तवाक्यवदप्रामाण्यात् । तन्ना-
गमादप्यस्य सिद्धिः ।

नाप्युपमानात् ; तत्खलूपमानोपमेययोर्नवयवेनाध्यक्षत्वे सति
सादृश्यावलम्बनमुदयमासादयति ; नान्यथातिप्रसङ्गात् । न चोप- २५
मानभूतः कश्चित्सर्वज्ञत्वेनाध्यक्षतः सिद्धो येन तत्सादृश्यादन्यस्य
सर्वज्ञत्वमुपमानात्साध्येत ।

१ जेनादिभिः । २ प्रत्यक्षत्वाप्रत्यक्षत्वेन कारणेन विवादाध्यासितत्वम् । ३ सङ्गमा-
दिषु । ४ विवादाध्यासितपदार्थेषु अशेषज्ञेयव्यापिप्रमाणप्रमेयत्वं सिद्धं चेत् । ५ असा-
धारणानैकान्तिकः । ६ अशेषज्ञेयप्रमाणप्रमेयत्वादित्ययम् । ७ पाषाणदौ । ८ अस-
दादिप्रमाणप्रमेयत्वादिति हेतुः । ९ सङ्गमादिषु । १० असदादिप्रमाणभूत ।
११ अतीन्द्रियश्लेन्द्रियविषयश्च तेषां ग्राहकप्रमाणम् । १२ सर्वज्ञ । १३ हिरण्य-
गर्भं प्रकृत्य सर्वज्ञ इति । १४ अक्षिष्टोमेन यत्नेत् सर्वकाम इति क्रियमाणेऽर्थे ।
१५ सर्वज्ञ । १६ साकत्येन । १७ भूयवनवर्द्धितोरिषत्सोपमानज्ञानप्रसङ्गात् ।
१८ तस्योपमानभूतसर्वज्ञस्य । १९ नुः ।

नाप्यर्थापसितस्तत्सिद्धिः; सर्वज्ञसद्भावमन्तरेणानुपपद्यमानस्य प्रमाणषड्विज्ञातार्थस्य कस्यचिद्भावात् । धर्माद्युपदेशस्य बहुजनपरिगृहीतस्यान्यथापि भावात् । तथा चोक्तम्—

“सर्वज्ञो दृश्यते तावद्येदानीमस्मदादिभिः ।

५

[मी० श्लो० चोदनासू० श्लो० ११७]

दृष्टो न चैकदेशोस्ति लिङ्गं वा योर्नुमापयेत् ॥ १ ॥ []

न चागमविधिः कश्चिन्नित्यः सर्वज्ञयोधकः ।

न च मन्त्रार्थवादानां तात्पर्यमवकर्षते ॥ २ ॥ []

न चान्यार्थप्रधानैस्तैस्तदस्त्वित्वं विधीयते ।

१० न चानुवदितुं शक्यः पूर्वमेन्यैरवोचितैः ॥ ३ ॥ []

अनादेरागमस्यार्थो न च सर्वज्ञ आदिमान् ।

कृत्रिमेण त्वसत्येन स कथं प्रतिपाद्यते ॥ ४ ॥ []

अथ तद्वचनेनैव सर्वज्ञोऽर्थैः प्रतीयते ।

प्रकल्पेत कथं सिद्धिरन्योन्याश्रययोस्तयोः ? ॥ ५ ॥ []

१५

सर्वज्ञोक्ततया चाक्यं सत्यं तेन तदस्तिता ।

कथं तदुभयं सिद्ध्येत् सिद्धंमूलान्तरादृते ॥ ६ ॥ []

असर्वज्ञप्रणीतास्तु वचनान्मूर्त्तवर्जितात् ।

सर्वज्ञमवगच्छन्तः स्ववाक्यात्किञ्च जानते ? ॥ ७ ॥ []

सर्वज्ञसदृशं कश्चिद्यदि पश्येत् सम्प्रति ।

२० उपमानेन सर्वज्ञं जानीयाम ततो पयम् ॥ ८ ॥ []

उपदेशो हि बुद्धादेर्धर्माऽध्यर्मादिगोचरः ।

अन्यथा नोपपद्येत सर्वज्ञं यदि नाऽभवत् ॥ ९ ॥ []

बुद्धादयो ह्यवेदज्ञास्तेषां वेदादसम्मैवः ।

उपदेशः कृतोऽतस्तैर्व्यामोर्हीदेव केवलात् ॥ १० ॥ []

१ सर्वज्ञाभावेऽपि । २ सम्बन्धमन्तर हेतुः । ३ लिङ्गं भूत्वेति शेषः । ४ सवचनम् । ५ प्रथमसामञ्जसभावनादिः । ६ षट्ठे । ७ यागार्थम् । ८ आगमैः । ९ आगमात् । १० अनुभाषणात् । ११ प्रमाणान्तरेः । १२ सर्वज्ञः । १३ अस्मदादिभिः । १४ सर्वज्ञागमसत्त्वार्थयोः । १५ कथमन्योन्याश्रय इत्युक्ते सत्याह । १६ वसः । १७ आप्तप्रामाण्यलक्षणात् मूलादन्यत् सर्वज्ञमामाभ्यलक्षणं मूलान्तरं वा प्रष्टव्यम् । १८ मूर्त्तं प्रामाण्यम् । १९ सर्वज्ञसदृशदर्शनात् । २० भूत्वा । २१ न विद्यते संभव उत्पत्तिर्वैल्योपदेशस्य । २२ अज्ञानात् ।

१ ‘न च मन्त्रार्थवादानां न चानुवदितुं शक्यः’ इति कोकद्वयं विना सर्वेऽपि श्लोकाः तत्त्वसंग्रहे (५० ८२०, ८२१, ८२२, ८२८, ८२९, ८४०) पूर्वपक्षे कुम्भारिककृतैकत्वैनोपलभ्यन्ते ।

ये तु मन्वादयः सिद्धाः प्राधान्येन त्रयीविदारम् ।
त्रयीविदाधितग्रन्थास्ते वेदप्रभवोक्तयः ॥ ११ ॥” []
इति ।

न च प्रमाणान्तरं सद्गुणलम्भकं सर्वज्ञस्य साधकमस्ति ।

मा भूद्रत्येदानीन्तनास्सदादिजनाना (नां) सर्वज्ञस्य साधकं ५
प्रत्यक्षाद्यन्यतमं देशान्तरकालान्तरवर्तिनां केपाञ्चिद्भविव्यतीति
चाऽयुक्तम् :

“यज्ञार्तीयैः प्रमाणैस्तु यज्ञार्तीयार्थदर्शनम् ।

दृष्टं सम्प्रति लोकस्य तथा कालान्तरेऽप्यभूत् ॥”

[मी० श्लो० चोदनासू० श्लो० ११३] १०

इत्यभिधानात् । तथा हि—विवादाध्यासिते देशे काले च प्रत्यक्षा-
दिप्रमाणम् अत्रत्येदानीन्तनप्रत्यक्षादिप्राह्यसजातीयार्थप्राहकं
तद्विजातीयसर्वेषां अर्थप्राहकं वा न भवति प्रत्यक्षादिप्रमाणत्वात्
अत्रत्येदानीन्तनप्रत्यक्षादिप्रमाणवत् ।

ननु च यथाभूतमिन्द्रियादिजनितं प्रत्यक्षादि सर्वेषां अर्थसा- १५
धकं दृष्टं तथाभूतमेव देशान्तरे कालान्तरे च तथा साध्यते,
अन्यथाभूतं वा? तथाभूतं चेत्सिद्धसाधनम् । अन्यथाभूतं
चेदप्रयोजको हेतुः; जगतो बुद्धिमत्कारणत्वे साध्ये संचिवेश-
विशिष्ट्यादिवत्; तदसम्भ्रनम्; तथाभूतस्यैव तथा साधनात् ।
न च सिद्धसाधनमन्यादृशेप्रत्यक्षाद्यभावात् । तथा हि—विवादा- २०
पक्षं प्रत्यक्षादिप्रमाणमिन्द्रियादिसामग्रीविशेषानपेक्षं न भवति
प्रत्यक्षादिप्रमाणान्वान्प्रसिद्धेप्रत्यक्षादिप्रमाणवत् । न बुद्धवरा-
हपिर्पालिकादिप्रत्यक्षेण मन्दिहिनदेशविशेषानपेक्षिणा नक्तञ्चरप्र-
त्यक्षेण घालोकानपेक्षिणान् कान्तः, कौल्यायनाद्यनुमानातिशयेन,
जैमिन्वाद्यागमांतिशयेन वा; तस्यापीन्द्रियादिप्रमाणानसामग्री २५
विशेषमन्तरेणासम्भवात्, अर्नान्द्रियाननुमेवाद्यार्थाविषयत्वेन
सार्थात्तिल्लनाभावात् । तथा चोक्तम्—

१। मन्वा. प्रतिष्ठाः । २ मध्ये । ३ प्रयानिन्द्रियाधितो ग्रन्थो येषां ते ।
४ वेदादप्रभव उच्यते। त्रयीविदाधितो ना वेदप्रभवा., तदप्रभवा उच्यते। येषां मन्वादीनां
ते । ५ रूपादिमदत्तान्नादि । ६ असदादिप्रमाणसद्गुणप्रमाणप्रकरणे । ७ सर्वज्ञ-
वादी मते । ८ अर्नान्द्रियप्रत्यक्षम् । ९ सपक्षन्यापकपक्षन्याहृनः प्रतिनियतार्थ-
प्राप्तये सतीति विशेषणजन्मिणोऽप्यादिनमन्वन्धो हेतुप्रयोजकः । १० अक्रियादक्षि-
नोपि ऋगुद्गुपादकर्तृ सति । ११ अतीन्द्रिय । १२ देशान्तरकालान्तरवर्ति ।
१३ अत्रत्येदानीन्तन प्रतिष्ठात् । १४ वरुचि । १५ अक्षुतवेदार्थलक्षण । १६ एका-
ग्रता । १७ स्वस्य प्रत्यक्षादेः ।

“येनाप्यतिशयो दृष्टः स स्वार्थानतिलङ्घनात् ।

दूरसूक्ष्मादिदृष्टौ स्यान्न रूपे श्रोत्रवृत्तितः (ता) ॥ १ ॥

[मी० श्लो० चोदनासू० श्लो० ११४]

येषु सातिशया दृष्टाः प्रेक्षाभेदादिभिर्नराः ।

५ स्तोक्तस्तोकान्तरत्वेन न त्वतीन्द्रियदर्शनात् ॥ २ ॥ []

प्राज्ञोपि हि नरः सूक्ष्मार्थान्दृष्टुं क्षमोपि सन् ।

सजातीरनतिक्रामन्नतिशेते पराक्षरान् ॥ ३ ॥ []

एकशास्त्रविचारेषु दृश्यतेऽतिशयो महान् ।

न तु शास्त्रान्तरज्ञानं तन्मात्रेणैव लभ्यते ॥ ४ ॥ []

१० ज्ञात्वा व्याकरणं कुरं बुद्धिः शब्दापशब्दयोः ।

प्रेक्ष्यते न नक्षत्रतिथिग्रहणनिर्णये ॥ ५ ॥ []

ज्योतिर्विज्ञे प्रकृष्टोपि चन्द्रार्कग्रहणादिषु ।

न भवत्यादिशब्दानां साधुत्वं ज्ञातुमर्हति ॥ ६ ॥ []

तथा वेदेतिहासादिज्ञानातिशयवानपि ।

१५ न स्वर्गदेवताऽपूर्वप्रत्यक्षीकरणे क्षमः ॥ ७ ॥ []

देशहस्तान्तरं व्योम्नि यो नामोत्सृज्य गच्छति ।

न योजनमसौ गन्तुं शक्नोऽभ्यासशतैरपि ॥ ८ ॥” []

इति ।

प्रसङ्गविपर्ययाभ्यां चास्यैशेषार्थविषयत्वं बाध्यते; तथाहि—
२० सर्वज्ञस्य ज्ञानं प्रत्यक्षं यद्यभ्युपगम्यते तदा तर्द्धर्मादिग्राहकं न
स्याद्विद्यमानोपलम्बनत्वात् । विद्यमानोपलम्बनं तत् सत्सम्प्र-
योगजत्वात् । सत्सम्प्रयोगजं तत्, प्रत्यक्षशब्दवाच्यत्वात्सदा-
दिप्रत्यक्षवत् । तद्धर्मादिग्राहकं चेत् न विद्यमानोपलम्बनं धर्मादि-
रविद्यमानत्वात् । तत्त्वे चासत्सम्प्रयोगजत्वे चाऽप्रत्यक्षशब्दवा-
२५ च्यत्वम् ।

१ गृहादीन्द्रिये । २ क्रियमाणायाम् । ३ इन्द्रियाणामतिज्ञयो नास्ति चेन्मा
भूत्पुरुषणा भविष्यतीत्युक्ते सत्याह । ४ अर्थग्रहणशक्तिः प्रज्ञा । ५ नेषा पाठग्रहण-
शक्तिः । ६ पूर्वोक्तं भावयति । ७ तत्र दृष्टान्तमाह । ८ दृष्टान्तं भावयति । ९ न्यास-
पर्यन्तम् । १० प्रकृष्टा भवति । ११ पुनरपि दृष्टान्तं भावयति । १२ बकारो दृष्टान्त-
समुच्चये । १३ अदृष्ट । १४ लोकप्रसिद्धं दृष्टान्तमाह । १५ प्रसङ्गविपर्यययोर्लक्षणसुच-
रपक्षे वदिष्यति । १६ सर्वज्ञानस्य । १७ जैनादिभिः सर्वज्ञवादिभिः । १८ पुण्य-
थापादि । १९ इति प्रसङ्गेन तस्याशेषार्थविषयत्वं बाध्यते । २० तस्य परोक्षत्वमित्यर्थः ।
२१ इति विपर्ययेण तस्याशेषार्थविषयत्व बाध्यते । २२ अविद्यमानोपलम्बनत्वे ।

१ इमा अशेषाः कारिकाः तस्यसमूहे (५० ८२५-२६) पूर्वपक्षतया उपलभ्यन्ते ।

धर्मज्ञत्वनिषेधे चान्याशेषार्थप्रत्यक्षत्वेऽपि न प्रेरणाप्रामाण्य-
प्रतिबन्धो धर्मे तस्या एव प्रामाण्यात् । तदुक्तम्—

“सर्वप्रमातृसम्बन्धिप्रत्यक्षादिनिवारणात् ।

केवलागमगम्यत्वं लप्स्यते पुण्यपापयोः ॥ १ ॥” []

धर्मज्ञत्वनिषेधस्तु केवलोत्रोपयुज्यते ।

सर्वमन्यद्विजानंस्तु पुरुषः केनै वार्यते ॥ २ ॥” []

किञ्च, अस्य ज्ञानं चक्षुरादिजनितं धर्मादिग्राहकम्, अभ्यास-
जनितं वा स्यात्, शब्दप्रमवं वा, अनुमानाविर्भूतं वा ? प्रथमपक्षे
धर्मादिग्राहकत्वायोगश्चक्षुरादीनां प्रतिनियतरूपादिविषयत्वेन
तत्प्रभवज्ञानस्याप्यत्रैव प्रवृत्तेः । अथाभ्यासजनितम्, ज्ञानाभ्या-१०
सादिप्रकर्षतरतमादिक्रमेण तत्प्रकर्षसम्भवे सकलस्वभावातिशय-
पर्यन्तं संवेदनमवाप्यते; इत्यपि मनोरथमात्रम्; अभ्यासो हि
कस्यचित्प्रतिनियतशिल्पकलादौ तदुपदेशाद् ज्ञानाच्च दृष्टः । न
चाशेषार्थोपदेशो ज्ञानं वा सम्भवति । तत्सम्भवे किमभ्यासप्रया-
सेनाशेषार्थज्ञानस्य सिद्धत्वात् । अन्योन्याश्रयश्च—अभ्यासात्तज्ज्ञा-१५
नम्, ततोऽभ्यास इति । शब्दप्रमवं तदित्यप्युक्तम्; परस्परा-
श्रयणानुपपन्नात्—सर्वज्ञप्रणीतत्वेन हि तत्प्रामाण्येऽशेषार्थविषय-
ज्ञानसम्भवः, तत्सम्भवे चाशेषज्ञस्य तथाभूतशब्दप्रणेतृत्वमिति ।
अभ्युपगम्यते च प्रेरणाप्रभवज्ञानंवतो धर्मज्ञत्वम्,

“चोदना हि भूतं भवन्तं भविष्यन्तं सूक्ष्मं व्यवहितं विप्रकृष्टमि-२०
त्येवंजातीयकमर्थमवगमयितुमलं नान्यत् किञ्चनेन्द्रियादिकम्”
[शाबरभा० १।१२] इत्यभिधानात् ।

अनुमानाविर्भूतमित्यप्यसङ्गतम्; धर्मादेरतीन्द्रियत्वेन तज्ज्ञा-
पकलिङ्गस्य तेन सह सम्बन्धासिद्धेरसिद्धसम्बन्धस्य चाज्ञाप-
कत्वात् ।

२५

किञ्च, अनुमानेनाशेषज्ञत्वेऽसदादीनामपि तत्प्रसङ्गः, ‘भावा-
भावोभयरूपं जगत्प्रमेयत्वात्’ इत्याद्यनुमानस्यासदादीनामपि
भावात् । अनुमानागमज्ञानस्य चास्पष्टत्वात्तज्जनितस्याप्यवैशद्य-
सम्भवान्न तज्ज्ञानैवान्सर्वज्ञो युक्तः ।

- १ वैदिकी । २ प्रेरणाप्रामाण्ये । ३ धर्माधर्मान्यामन्यत् । ४ न केनापि ।
५ सर्वज्ञस्य । ६ सकलार्थग्रहणलक्षणातिशय । ७ आगम । ८ धर्मादिग्राहकं सर्वज्ञ-
ज्ञानम् । ९ अशेषार्थविषय । १० मन्वादेः । ११ कालेन । १२ दैवेन ।
१३ अनुमानादिज्ञानजनितस्पष्टज्ञानवात् ।

१ श्वे कारिके तत्त्वसंग्रहे (पृ० ८१६, ८२०) पूर्वपक्षतया विधेते ।

न च वक्तव्यम्—‘पुनःपुनर्भाव्यमानं भावनाप्रकर्षपर्यन्ते योगि-
ज्ञानरूपतामासाद्यत्तद्वैशद्यमाप् भविष्यति । इदृश्यते चाम्यास-
बलात्कामशोकाद्युपप्लुतज्ञानस्य वैशद्यम्’ इति; तद्वदस्यैव्युपप्लुत-
त्वप्रसङ्गात् ।

- ५ किञ्च, अस्याखिलार्थग्रहणं सकलज्ञत्वम्, प्रधानभूतकतिप-
यार्थग्रहणं वा ? तत्राद्यपक्षे क्रमेण तद्ग्रहणम्, युगपद्वा ? न ताव-
त्क्रमेण; अतीतानागतवर्त्तमानार्थानां परिसमाप्त्यभावात्तज्ज्ञान-
स्याप्यपरिसमाप्तेः सर्वज्ञत्वायोगात् । नापि युगपत्; परस्परविरु-
द्धशीतोष्णाद्यर्थानामेकत्र ज्ञाने प्रतिभासासम्भवात् । सम्भवे वा
१० प्रतिनियतार्थस्वरूपप्रतीतिविरोधः ।

किञ्च, एकक्षण एवाशेषार्थग्रहणाद् द्वितीयक्षणेऽकिञ्चिज्ज्ञः
स्यात् । तथा परस्पररागादिसाक्षात्करणाद्गरादिमान्, अन्यथा
सकलार्थसाक्षात्करणविरोधः ।

- नापि प्रधानभूतकतिपयार्थग्रहणम्; इतरार्थव्यवच्छेदेन ‘पते-
१५ पामेव प्रयोजननिष्पादकत्वात्प्राधान्यम्’ इति निश्चयो हि सक-
लार्थज्ञाने सत्येव घटते, नान्यथा । तच्च प्रागेव कृतोत्तरम् ।

कथं चातीतानागतग्रहणं तत्स्वरूपासम्भवाद् ? असतो ग्रहणे
तैमिरिकज्ञानवत्प्राप्याभावः । सत्त्वेन ग्रहणेऽतीतादेवर्त्तमान-
त्वम् । तथा चान्यकालस्यान्यकालतया वस्तुनो ग्रहणात्तज्ज्ञान-
२० स्यात्प्राप्याप्यम् ।

कथं चासौ तद्ग्राह्याखिलार्थाज्ञाने तत्कालेऽप्यसर्वज्ञैर्ज्ञातुं श-
क्यते ? तदुक्तम्—

“सर्वज्ञोयमिति ह्येतत्कालेऽपि बुभुत्सुभिः ।

तज्ज्ञानज्ञेयविज्ञानरहितैर्गम्यते कथम् ॥ १ ॥

२५

कल्पनीयाश्च सर्वज्ञा भवेयुर्वद्वस्तव ।

य एव स्यादसर्वज्ञः स सर्वज्ञं न बुद्धयते ॥ २ ॥

सर्वज्ञो नावदुद्धश्च येनैव स्यान्न तं प्रति ।

तद्वाक्यानां प्रमाणत्वं मूलाज्ञानेऽन्यैवाक्यवत् ॥ ३ ॥”

[मी० श्लो० चोदनासू० श्लो० १३४-३६] इति ।

१ आगमानुमानवनितास्पष्टं ज्ञानम् । २ न्यायत । ३ सर्वज्ञज्ञानस्य । ४ मोक्ष-
लक्षणम् । ५ सर्वज्ञः । ६ तेन सर्वज्ञज्ञानेन । ७ तद्धि सर्वज्ञेनैव सर्वज्ञो ज्ञायते इत्युक्ते
सत्याह । ८ यतः । ९ मूलस्य वाच्यकारणस्य सर्वज्ञलक्षणस्य । १० अन्यस्य
रज्यापुत्रस्य ।

अत्र प्रतिविधीयते । यत्तावदुक्तम्-सदुपलम्भकप्रमाणपञ्चका-
विषयत्वं साधनम्; तदसिद्धम्; तत्सद्भावावेदकस्यानुमानादेः
सद्भावात् । तथाहि-कश्चिदात्मा सकलपदार्थसाक्षात्कारी तद्ग्रहण-
स्वभावत्वे सति प्रक्षीणप्रतिबन्धप्रत्ययत्वात्, यद्यद्ग्रहणस्वभावत्वे
सति प्रक्षीणप्रतिबन्धप्रत्ययं तत्तत्साक्षात्कारि यथापगततिमि-५
रादिप्रतिबन्धं लोचनविज्ञानं रूपसाक्षात्कारि, तद्ग्रहणस्वभावत्वे
सति प्रक्षीणप्रतिबन्धप्रत्ययश्च कश्चिदात्मेति । न तावत्सकलार्थ-
ग्रहणस्वभावत्वमात्मनोऽसिद्धम्; चोदनावलाघ्रिखिलार्थज्ञानोत्प-
त्यन्यथानुपपत्तेस्तस्य तत्सिद्धेः, 'सैकलमनेकान्तात्मकं सत्त्वात्'
इत्यादिव्याप्तिज्ञानोत्पत्तेर्वा । यद्धि यद्विषयं तत्तद्ग्रहणस्वभावम् १०
यथा रूपादिपरिहारेण रसविषयं रसनविज्ञानं रसग्रहणस्वभा-
वम्, सकलार्थविषयश्चात्मा व्याप्त्यागमज्ञानाभ्यामिति । सौम्यं
“चोदना हि भूतं भवन्तं भविष्यन्तं विप्रकृष्टमित्येवंजातीयक-
मर्थमवगमयितुमलं पुरुषान्” [शावरभा० १।१।२] इति स्वयं
ब्रुवाणो विधिप्रतिषेधविचारणानिवन्धनं साकल्येन व्याप्तिज्ञानं १५
च प्रतिपद्यमानः सकलार्थग्रहणस्वभावतामात्मनो निराकरोतीति
कथं स्वस्थः? प्रक्षीणप्रतिबन्धप्रत्ययत्वं च प्रागेव प्रसाधित-
त्वात्सासिद्धम् ।

साध्यसाधनयोश्च प्रतिबन्धो न प्रत्यक्षानुमानाभ्यां प्रतिज्ञा-
यते येनोक्तदोषानुपपन्नः स्यात्, तर्काख्यप्रमाणान्तरात्तत्सिद्धेः । २०

यच्चाप्रतिपक्षपक्षधर्मत्वो हेतुर्न प्रतिनियतसाध्यप्रतिपत्यङ्गमि-
त्थुं कम्; तदप्यपेशलम्; न हि सर्वज्ञोत्रं धर्मित्वेनोपात्तो येना-
स्यासिद्धरयं दोषः । किं तर्हि? कश्चिदात्मा । तत्र चाविप्रतिपत्तेः ।
न चापक्षधर्मस्य हेतोरगमकत्वम्;

“पित्रोश्च ब्राह्मणत्वेन पुत्रब्राह्मणतानुमा । २५

सर्वलोकप्रसिद्धा न पक्षधर्ममपेक्षते ॥” []

इति स्वयमभिधानात् ।

यदप्युक्तम्-सत्तासाधने सर्वो हेतुस्त्रयीं दोषजार्ति नातिवर्चत
इति; तत्सर्वानुमानोऽलेदकारित्वादयुक्तम्; शक्यं हि वक्तुं धूम-

१ जैनैः । २ प्रक्षीणः प्रतिबन्धलक्षणः प्रत्ययः कारणं यस्य । ३ वस्तु । ४ आत्मा
सकलार्थग्रहणस्वभावो भवति सकलार्थविषयत्वादित्युपदिष्टाभोन्यम् । ५ मीमांसकः ।
६ इन्द्रिमान् । ७ विशेषणम् । ८ अनवसेतरेतरानुपपन्नः । ९ अर्थसाक्षात्कारित्वे
सत्त्वेन प्रक्षीणप्रतिबन्धप्रत्ययत्वं लोचने सिद्धं स्तम्भादौ न दृष्टम् । अतः साध्यधर्मिणि
साध्यसाधनयोः सम्बन्धसिद्धिर्भवत्येव । १० परेण । ११ अनुमाने । १२ धर्मिणः ।

त्वादिर्यद्यग्निमत्पर्वतधर्मस्तदाऽसिद्धः; को हि नामाग्निमत्पर्वत-
धर्मं हेतुमिच्छन्नग्निमत्त्वमेव नेच्छेत् । तद्विपरीतधर्मश्चेद्विरुद्धः;
साध्यविरुद्धसाधनात् । उभयधर्मश्चेद्व्यभिचारी सपक्षेतरयोर्वत्त-
नात् । विमत्त्वधिकरणभावापन्नधर्मिधर्मत्वे धूमवत्त्वादेः सर्वं
५ सुस्थम् । यथा चाचलस्याचलत्वादिना प्रसिद्धसत्ताकस्य सन्दि-
ग्धाग्निमत्त्वादिसाध्यधर्मस्य धर्मो हेतुर्न विरुध्यते, तथा प्रसिद्धा-
त्मत्वादेर्विशेषणसत्ताकस्याप्रसिद्धसर्वज्ञत्वोपाधिसत्ताकस्य च
धर्मिणो धर्मः प्रकृतो हेतुः कथं विरुध्येत ?

यदपि अविशेषेण सर्वज्ञः कश्चित्साध्यते विशेषेण वेत्याद्यऽभि-
१० हितम्; तदप्यभिधानमात्रम्; सामान्यतस्तत्साधानात्तत्रैव विवा-
दात् । विशेषविप्रतिपत्तौ पुनर्दृष्टेष्टाविरुद्धवाक्त्वादहृत एवाशेषा-
र्थज्ञत्वं सेतस्यति । कथं वा तत्प्रतिषेधः अत्राप्यस्य दोषस्य समान-
त्वात् ? अहंतो हि तत्प्रतिषेधसाधनेऽप्रसिद्धविशेषणः पक्षो
व्याप्तिश्च न सिध्येत्, दृष्टान्तस्य साध्यशून्यतानुपपन्नात् । अहंत-
१५ श्चेत्; स एव दोषो बुद्धादेः परिस्यासिद्धेः, अनिष्टानुपपन्नश्चाहंतस्तद-
प्रतिषेधात् । सामान्यतस्तत्प्रतिषेधे सर्वं सुस्थम् ।

यद्योक्तम्-एकज्ञानप्रत्यक्षत्वं सूक्ष्माद्यर्थानां साध्यत्वेनाभिप्रेतं
प्रतिनियतविषयानेकज्ञानप्रत्यक्षत्वं वेत्यादि; तदप्युक्तिमात्रम्;
प्रत्यक्षसामान्येन कस्यचित्सूक्ष्माद्यर्थानां प्रत्यक्षत्वसाधनात् १
२० प्रसिद्धे च तेषां सामान्यतः कस्यचित्प्रत्यक्षत्वे तत्प्रत्यक्षस्यैकत्वं-
मिन्द्रियानिन्द्रियानपेक्षत्वात्सिध्येत्, तदपेक्षस्यैवार्थानेकत्वप्र-
सिद्धेः । तदनपेक्षत्वं च प्रमाणान्तरात्सिद्धयेत्; तथाहि-योगिप्रत्य-
क्षमिन्द्रियानिन्द्रियानपेक्षं सूक्ष्माद्यर्थविषयत्वात्, यत्पुनरिन्द्रि-
यानिन्द्रियापेक्षं तत्र सूक्ष्माद्यर्थविषयम् यथासादादिप्रत्यक्षम्,
२५ तथा च योगिनः प्रत्यक्षम्, तस्मात्तथैति ।

किञ्च, एवं साध्यविकल्पनेनानुमानोच्छेदः । शक्यते हि
वक्तुम्-साध्यधर्मिधर्मोऽग्निः साध्यत्वेनाभिप्रेतः, दृष्टान्तधर्मिधर्मः,
उभयधर्मो वा ? प्रथमपक्षे विरुद्धो हेतुः; तद्विरुद्धेन दृष्टान्तध-

१ ज्ञानवान् । २ अतश्च हेतूपन्यासो व्यर्थः । ३ अनग्निमत्पर्वतधर्मः । ४ आदि-
पदेन स्थूलत्वादिना । ५ आदिपदेन अमूर्तत्वम् । ६ सर्वज्ञसाधने । ७ नीतो न
सर्वज्ञः पुरुषत्वाद्भ्यामपुरुषवदिति । ८ यो यः पुरुषः स सोऽहं सन् सर्वज्ञो न
भवतीति । ९ अन्यथा । १० रथ्यापुरुषस्य । ११ सर्वज्ञभाव । १२ सुगतदेः ।
१३ नीमासकस्य । १४ तस्य सर्वज्ञत्वस्य । १५ असात्पक्षेण समान इत्यर्थः ।
कथम् ? सामान्यतः सर्वज्ञसाधने अप्रसिद्धविशेषणः पक्ष इत्यादिद्वयानि विशेषणसो-
च्छानि नोपवीकन्ते इति । १६ प्रत्यक्षस्य ।

मिणि तद्वर्णनाग्निना घूमस्य व्याप्तिप्रतीतेः । साध्यविकलञ्च
इष्टान्तः स्यात् । द्वितीयपक्षे तु प्रत्यक्षादिविरोधः । अयोभयग-
ताग्निस्वामान्यं साध्यते तर्हि सिद्धसौध्यता ।

यथाव्यवृत्तम्-प्रमेयत्वं किमशेषहेयव्यापिप्रमाणप्रमेयत्वव्य-
किलक्षणमसादादिप्रमाणप्रमेयत्वव्यक्तिसवरूपं वेत्तादि; तद्वन्मादि-
सकलसाधनोन्मूलनहेतुत्वाच्च वक्तव्यम् । तथाहि-साध्यधर्मिधर्मो-
धूमो हेतुत्वेनोपात्तः, इष्टान्तधर्मिधर्मो वा स्यात्, उभयगतसा-
मान्यरूपो वा; साध्यधर्मिधर्मत्वे इष्टान्ते तस्याभावादनन्वयो हेतु-
दोषः । इष्टान्तधर्मिधर्मत्वे साध्यधर्मिण्यभावादसिद्धता । उभय-
गतसामान्यरूपत्वेऽप्यसिद्धत्वैव, प्रत्यक्षत्वाप्रत्यक्षत्वेनात्यन्तविल-
क्षणमहानसाचलप्रदेशव्यक्तिद्वयाश्रितसामान्यस्यैवासम्भवात् ।
अथ कण्ठाक्षिविक्षेपादिलक्षणधर्मकलापसाधर्म्यान्न महानसाचल-
प्रदेशाश्रितधूमव्यक्त्योरत्यन्तवैलक्षण्यं येनोभयगतसामान्यासिद्धे-
रसिद्धता स्यात्, तर्हि सापूर्वार्थव्यवसायात्मकत्वादिधर्मकला-
पसाधर्म्यस्यातीन्द्रियेन्द्रियविषयप्रमाणव्यक्तिद्वयेऽत्यन्तवैलक्षण्य-
निवर्तकस्य सम्भवादुभयसाधारणसामान्यसिद्धेः कथं प्रमेयत्व-
सामान्यस्यासिद्धिः ?

यथावृत्तम्-प्रसङ्गविपर्ययाभ्यां चास्याशेषार्थविषयत्वं बाध्यत
इत्यादि; तन्मनोरथमात्रम्; साध्यसाधनयोर्व्याप्यव्यापकभाव-
सिद्धौ हि व्याप्याभ्युपगमो व्यापकान्युपगमनान्तरीयको यैव २०
प्रदर्शयते तत्प्रसङ्गसाधनम् । व्यापकनिवृत्तौ चावश्यं भाविनी
व्याप्यनिवृत्तिः स विपर्ययः । न च प्रत्यक्षत्वसत्समैयोज्यत्व-
विर्धमानोपलम्भनत्वधर्मैर्धामिसिद्धत्वानां व्याप्यव्यापकभावः
कथित् प्रतिपन्नः । स्वात्मन्येवासौ प्रतिपन्न इत्यप्यसङ्गतम्; चक्षु-
रादिकरणग्रामप्रभवप्रत्यक्षस्याव्यवहितदेशकालस्वभावाविप्रकृष्ट- २५
प्रतिनिपतरूपादिविषयत्वान्भ्युपगमात्, निर्धर्मस्य चाभावाद्दिग्म-

१ महानसे पूर्वताशेषत्वात् । २ लोकेक । ३ स्थितं नः (वैनाना) समीहित-
मिति पाठान्तरम् । ४ पूर्वत्ववृत्तत्वादित्युक्ते । ५ महानसे । ६ यो यः पूर्वत्ववृत्त-
त्वात् स सोक्षिमानिलनयो न । ७ महानसपूर्वत्वत्वादित्युक्ते । ८ अतीन्द्रियविषय-
वैन्द्रियविषयश्च तयोर्ग्रोहकं प्रमाणम् । ९ सद्रश्मलप्रवर्तकत्वेत्यर्थः । १० सर्वज्ञस्य ।
११ अनुभावे । १२ व्याप्य । १३ व्यापक । १४ व्याप्य । १५ व्यापक ।
१६ इष्टान्ते । १७ समीपवर्ति । १८ यतः । १९ यथासिधे प्रसङ्गे व्याप्यव्यापक-
भावः साध्यसाधनानां प्रतिपन्नस्याविषेऽसौ सात्र सर्वज्ञत्वप्रत्यक्षे तत्र व्याप्यव्यापक-
व्यापसाप्रतिपन्नत्वादित्यर्थः । २० यत्प्रसङ्गस्येत्याख्यं तदव्यवहितदेशकालाव्यापक-
मिति नियमस्य ।

रुष्टार्थग्राहकेपि प्रत्यक्षशब्दवाच्यत्वदर्शनात् । तथाहि—अनेक-
योजनशतव्यचहितार्थग्राहि वैनतेयप्रत्यक्षं रामायणादौ प्रसिद्धम्,
लोके चातिदूरार्थग्राहि गृध्रवराहौदिप्रत्यक्षम्, स्मरणसव्यपेक्षे-
न्द्रियौदिजन्यप्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्षं च कालविप्रकृष्टस्यातीतकाल-
५ सम्बन्धित्वस्यातीतदर्शनसम्बन्धित्वस्य च ग्राहि पुरोवस्थितार्थं
भवतैवाभ्युपगम्यते । अन्यथा—

“देशकालादिभेदेन तत्रास्त्यवसरो मितेः ।

इदानीन्तनमस्तित्वं न हि पूर्वधिया गतम् ॥”

[मी० श्लो० प्रत्यक्षसू० श्लो० २३३-३४]

१० इत्यादिना तस्यांगृहीतार्थाधिगन्तृत्वं पूर्वापरकालसम्बन्धित्वलक्ष-
णनित्यत्वग्राहकत्वं च प्रतिपाद्यमानं विरुध्येत । प्रातिभं च हानं
शब्दलिङ्गाक्षव्यापारानपेक्षं ‘श्वो मे भ्राता आगन्ता’ इत्याद्याकार-
मनागतातीन्द्रियकालविशेषणार्थप्रतिभासं जाग्रदृशायां स्फुटतर-
मनुभूयते ।

१५ किञ्च, धर्मादेरतीन्द्रियत्वाच्चक्षुरादिनानुपलम्भः, अविद्यमान-
त्वाद्वा स्यात्, अविशेषणत्वाद्वा? न तावदाद्यः पक्षः; अतीन्द्रि-
यस्याप्यतीतकालादेरुपलम्भाभ्युपगमात् । नाप्यविद्यमानत्वात्;
भाविर्धर्मादेरतीतकालादेरिवाविद्यमानत्वेऽप्युपलम्भसम्भवात् ।
अविशेषणत्वं तु तस्यासिद्धं सकललोकोपभोग्यार्थजनकत्वेन

२० द्रव्यगुणकर्मजन्यत्वेन चास्याखिलार्थविशेषणत्वसम्भवात् । अती-
तार्थेतीन्द्रियकालादेरिवास्यापि विशेषणग्रहणप्रवृत्तचक्षुरादिना
ग्रहणोपपत्तेः कथं धर्मं प्रत्यस्यैनिमित्तत्वसाधने प्रसङ्गविपर्य-
यसम्भवः? प्रज्ञादिमन्त्रादिना च संस्कृतं चक्षुर्यथा कालविप्रकृष्टार्-
थस्य द्रव्यविशेषसंस्कृतं च निर्जीविकादिचक्षुर्जलाद्यन्तरितार्थस्य

२५ ग्राहकं दृष्टम्, तथा पुण्यविशेषसंस्कृतं सूक्ष्माद्यशेषार्थग्राहि
अविष्यतीति न कश्चिद्दृष्टस्वभावातिक्रमः । ‘स्वात्मनि च यावन्निः
कारणैर्जनितं यथाभूतार्थग्राहि प्रत्यक्षं प्रतिपन्नं तथा सर्वत्र
सर्वदा प्राण्यन्तरेपि’ इति नियमे नक्तञ्चराणामनालोकान्ध-

१ ज्ञाने । २ वराहः पिपीलिका । ३ अनिन्द्रियमादिपदेन । ४ धर्मस्य ।
५ देवदत्तलक्षणे । ६ मीमांसकेन । ७ स्वभावादिरादिपदेन । ८ पूर्वप्रमाणगृहीतेषु
देवदत्तलक्षणे । ९ प्रत्यभिज्ञायाः । १० परिष्ठातम् । ११ प्रलभिज्ञानस्य । १२ भवता ।
१३ योगजपर्मकारणभर्मापलम्भे । १४ अनागतमादिपदेन । १५ सर्वज्ञानस्य ।
१६ अग्राहकत्वसाधने । १७ आदिपदेन संज्ञा । १८ तत्रमादिपदेन । १९ कर्म-
धार । २० योनिचक्षुः ।

कारव्यवहितरूपाद्युपलम्भो न स्यात्स्वात्मनि तथाऽनुपलम्भात् ।
प्राण्यन्तरे स्वात्मन्यनुपलब्धस्यानालोकान्धकारव्यवहितरूपाद्युप-
लम्भलक्षणातिशयस्य सम्भवे सूक्ष्माद्युपलम्भलक्षणातिशयोपि
स्यात् । जात्यन्तरत्वं चोभयत्र समानम् । अभ्युपगम्य चाक्ष-
जत्वं सर्वज्ञज्ञानस्यातीन्द्रियार्थसाक्षात्कारित्वं समर्थितं नार्थतः, ५
तज्ज्ञानस्य घातिकर्मचतुष्टयक्षयोद्भूतत्वात् ।

यच्चास्य ज्ञानं चक्षुरादिजनितं वेत्याद्यमिहितम्; तदप्यच्चारु;
चक्षुरादिजन्यत्वेऽप्यनन्तरं धर्मादिग्राहकत्वाविरोधस्योक्तत्वात् ।
यच्चाभ्यासजनितत्वेऽभ्यासो हीत्याद्युक्तम्; तदप्ययुक्तम्;
“उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्” [तत्त्वार्थसू० ५।३०] इत्यखिलार्थ-१०
विषयोपदेशस्याविसंवादिनो ज्ञानस्य च सामान्यतः सम्भवात् ।
न च तज्ज्ञानवत् एवाशेषज्ञत्वाद्ध्यर्थोभ्यासः; तस्य सामान्यतोऽ-
स्पष्टरूपस्यैवाविर्भावात्, अभ्यासस्य तत्प्रतिबन्धकापायसङ्हा-
यस्याशेषविशेषविषयस्पष्टज्ञानोत्पत्तौ व्यापारात् । नाप्यन्योन्या-
श्रयः; अभ्यासादेर्वाखिलार्थविषयस्पष्टज्ञानोत्पत्तेरनभ्युपगमात् । १५

शब्दप्रभवपक्षेप्यन्योन्याश्रयानुषङ्गोऽसङ्गतः; कारकपक्षे तद-
सम्भवात् । पूर्वसर्वज्ञप्रणीतागमप्रभवं ह्येतस्याशेषार्थज्ञानम्,
तस्याप्यन्यसर्वज्ञागमप्रभवम् । न चैवमनवस्थादोषानुङ्गः; बीजा-
ङ्कुरवदनादित्वेनाभ्युपगमादागमसर्वज्ञपरम्परयाः ।

यच्चानुमानाविर्भावितत्वपक्षे सम्बन्धासिद्धेरित्युक्तम्; तदस-२०
मीचनम्; प्रमाणान्तरात्सम्बन्धसिद्धेरभ्युपगमात् । न खलु कश्चि-
त्तस्यागोचरोस्ति सर्वत्रेन्द्रियातीन्द्रियविषये प्रवृत्तेरन्यथा तत्रा-
नुमानाप्रवृत्तिप्रसङ्गात्, तस्य तन्निसन्धनत्वात् ।

यच्चानुमानागमज्ञानस्य चास्पष्टत्वादित्यमिहितम्; तदप्यसमी-
क्षितामिधानम्; न हि सर्वथा कारणसदृशमेव कार्यं विलक्षण-२५
स्याप्यङ्कुरादेर्वाजावेरुत्पत्तिदर्शनात् । सर्वत्र हि सामग्रीमेदात्कार-
यमेदः । अत्राप्यागमादिज्ञानेनाभ्यासप्रतिबन्धकापायादिसामग्री-
सहायेनासादिताशेषविशेषवैशद्यं विज्ञानमाविर्भाव्यते ।

भावनावलाद्देश्ये कामाद्युपलुप्तज्ञानवत्सर्वोप्युपलुप्तत्वप्रसङ्गः;

१ नक्तञ्जरादौ सर्वलक्षणं प्राण्यन्तरे च । २ परमार्थतः । ३ सर्वज्ञम् ।
४ पुरुषस्य । ५ अशेषविशेषविषयस्पष्टज्ञान । ६ केवलात् । ७ जैनेः । ८ उत्सृज-
नस्य । ९ तर्कलक्षणात् । १० इन्द्रियतीन्द्रियाविषये प्रवृत्तिर्न स्यादिति । ११ सर्वत्रे ।
१२ आदिपदेनानुमानम् । १३ आदिपदेन देशकालादि । १४ अशेषज्ञानस्य ।

इत्यप्यसाम्प्रतम्; यतो 'भावनाबलाद् ज्ञानं वैशद्यमनुभवंति'
इत्येतावन्मात्रेण तज्ज्ञानस्य दृष्टान्तोपपत्तेः । न चाशेषदृष्टान्त-
धर्माणां साध्यधर्मिण्यापादनं युक्तं सकलानुमानोच्छेदप्रसङ्गात् ।
न चाशेषज्ञानं क्रमेणाशेषार्थग्राहीभ्यते येन तत्पक्षनिक्षिप्तदोषोप-
५ निपातः; सकलावरणपरिक्षये सहस्रकिरणवद्युगपत्त्रिखिलार्थोद्-
द्योतनस्वभावत्वात्तस्य कारणक्रमव्यवधानातिवर्त्तित्वाच्च ।

यच्चोक्तम्-युगपत्परस्परविरुद्धशीतोष्णाद्यर्थानामेकत्र ज्ञाने
प्रतिभासासम्भवः; तदप्यसारम्; तत्र हि तेषामभावादप्रतिभासः;
ज्ञानस्यासामर्थ्याद्वा ? न तावदभावात्; शीतोष्णाद्यर्थानां सकृ-
१० त्सम्भवात् । ज्ञानस्यासामर्थ्यादित्यसत्; परस्परविरुद्धानाम-
न्धकारोद्द्योतादीनामेकत्र ज्ञाने युगपत्प्रतिभाससंवेदनात् ।
सकृदेकत्र विरुद्धार्थानां प्रतिभासासम्भवे 'यत्कृतकं तदनित्यम्'
इत्यादिव्याप्तिश्च न स्यात्, साध्यसाधनरूपतया तैर्विरुद्धत्व-
सम्भवात् । नाप्येकत्र तेषां प्रतिभासे तज्ज्ञानस्य प्रतिनियतार्थ-
१५ ग्राहकत्वविरोधः; अन्धकारोद्द्योतादिविरुद्धार्थग्राहिणोऽपि
प्रतिनियतार्थग्राहकत्वप्रतीतेः ।

यच्चान्यदुक्तम्-एकक्षण एवाशेषार्थग्राहणाद्वितीयक्षणेऽहः
स्यात्; तदप्यसम्बद्धम्; यदि हि द्वितीयक्षणेऽर्थानां तज्ज्ञानस्य
चाभावस्तदाऽयं दोषः । न चैवम्, अनन्तत्वात्तद्वयस्य । पूर्वं हि
२० भाविनोऽर्था भावित्वेनोत्पत्त्यमानतया प्रतिपन्ना न वर्त्तमानत्वेनो-
त्पन्नतया वा । साप्युत्पन्नता तेषां भवितव्यतया प्रतिपन्ना न
भूततया । उत्तरकालं तु तद्विपरीतत्वेन ते प्रतिपन्नाः । यदा हि
यद्धर्मविशिष्टं वस्तु तदा तज्ज्ञाने तथैव प्रतिभासते नान्यथा
विभ्रमप्रसङ्गात् इति कथं गृहीतग्राहित्वेनाप्यस्यैप्रामाण्यम् ?

२५ यच्चेदं परस्परगमादिसाक्षात्करणाद्गमादिमानित्युक्तम्; तद-
प्ययुक्तम्; तैर्थापरिणामो हि तैस्त्वकारणं न संवेदनमात्रम्,
अन्यथा 'मद्यादिकमेवंविधरसम्' इत्यादिवाक्यात्तच्छ्रोत्रियो
यदा प्रतिपद्यते तदाऽस्यापि तद्रसास्वादनदोषः स्यात् । अरस-
नेन्द्रियजत्वात्तस्यादोषोयम्; इत्यन्यत्रापि समानम् । न हि सर्व-

१ प्राप्नोति । २ सर्वज्ञाने । ३ जैनैः । ४ द्रुपदहनाद्यवयविनि । ५ आदि-
पदेनाहिनकुलादीना च । ६ कृतकत्वानित्यत्वयोः । ७ अन्धत्वलक्षणः । ८ भावि-
नोऽर्थाः । ९ सर्वज्ञाने । १० सत्पत्त्यमानतादितिरूपणप्रकारेण । ११ सर्वज्ञ-
ज्ञानस्य । १२ रागादिरूपतया । १३ तत्त्वस्य रागादिमत्त्वस्य । १४ जानाति ।
१५ मथादिज्ञानस्य । १६ सर्वज्ञज्ञानेति ।

ज्ञानमिन्द्रियप्रभवं प्रतिहायते । किञ्चाङ्गनालिङ्गनसेवनाद्यमि-
लाषस्येन्द्रियोद्रेकहेतोरविर्भावाद्वागादिमत्त्वं प्रसिद्धम् । न चासौ
प्रक्षीणमोहे भगवत्यस्तीति कथं रागादिमत्त्वस्याशङ्कापि ।

यदप्यमिहितम्—कथं चातीतादेर्ग्रहणं तत्स्वरूपासम्भवादि-
त्यादि; तदप्यसारम्; यतोऽतीतादेरतीतादिकालसम्बन्धित्वेना-५
सत्त्वम्, तज्ज्ञानकालसम्बन्धित्वेन वा ? नाद्यः पक्षो युक्तः; वर्त्त-
मानकालसम्बन्धित्वेन वर्त्तमानस्यैव स्वकालसम्बन्धित्वेनातीता-
देरपि सत्त्वसम्भवात् । वर्त्तमानकालसम्बन्धित्वेन त्वतीतादेर-
सत्त्वमभिमतमेव, तत्कालसम्बन्धित्वेत्सत्त्वयोः परस्परं मेदात् ।
न चैतत्कालसम्बन्धित्वेनासत्त्वे स्वकालसम्बन्धित्वेनाप्यतीतादेर- १०
सत्त्वम्; वर्त्तमानकालसम्बन्धिनोप्यतीतादिकालसम्बन्धित्वेना-
सत्त्वात् तस्याप्यसत्त्वप्रसङ्गात् सकलशून्यतानुषङ्गः । न चाती-
तादेः सत्त्वेन ग्रहणे वर्त्तमानत्वानुषङ्गः; स्वकालनियतसत्त्वरूप-
तयैव तस्य ग्रहणात् । ननु चातीतादेस्तज्ज्ञानकाले असन्निधाना-
त्कथं प्रतिभासः, सन्निधाने वा वर्त्तमानत्वप्रसङ्गः प्रसिद्धवर्त्त- १५
मानवत्; इत्यपि मन्त्रादिसंस्कृतलोचनादिज्ञानेन व्याप्तिज्ञानेन
च प्रागेव कृतोत्तरम् ।

अथोच्यते—‘पूर्वं पश्चाद्वा यदि कंचित्कदाचिन्निखिलदर्शिनो
विज्ञानं विश्रान्तं तर्हि तावन्मात्रत्वात्संसारस्य कुतोऽनाद्यन-
न्तता ? अथ न विश्रान्तं तर्हि नानेकयुगसहस्रेणापि सकलसंसा- २०
रसाक्षात्करणम्’ इति; तदप्युक्तिमात्रम्; यतः किमिदं विश्रान-
न्तत्वं नाम ? किं किञ्चित्परिच्छेद्याऽपरस्यापरिच्छेदः, सकल-
विषयदेशकालगमनासामर्थ्यादधीन्तरेऽवस्थानं वा, क्वचिद्विषये
उत्पद्य विनाशो वा ? न तावदाद्यविकल्पो युक्तः; अर्नभ्युपगमात् ।
न खलु सर्वज्ञज्ञानं क्रमेणार्थपरिच्छेदकम्, युगपदशेषार्थोद्घोत- २५
कत्वात्तस्येत्युक्तम् । द्वितीयविकल्पोप्यनभ्युपगमादेवायुक्तः । न
हि विषयस्य देशं कालं वा गत्वा ज्ञानं तत्परिच्छेदकमिति केना-
प्यभ्युपगतम्, अप्राप्यकारिणस्तस्य क्वचिद्गमनाभावात् । केवलं
यथाऽनाद्यनन्तरूपतया स्थितोर्थस्तयैव तत्प्रतिपद्यते । तृतीय-
विकल्पोप्ययुक्तः; क्वचिद्विषये तस्योत्पन्नस्यात्मस्वभावतया विना- ३०
शासम्भवात् । न हि स्वभावो र्भावस्य विनश्यति स्फटिकस्य

१ नसः । २ अर्थस्य । ३ जैनानाम् । ४ तत्सातीतापैस्य । ५ अन्यथा ।
६ अतीतकाल । ७ वर्त्तमानज्ञानकाले । ८ उत्तरत्र । ९ अर्थे । १० समाप्तम् ।
११ ता । १२ कश्चिद्विदस्त्विति । १३ जैनानाम् । १४ जैनानाम् । १५ ज्ञानस्य ।
१६ पदार्थस्य ।

स्वच्छतादिवत्, अन्यथा तस्याप्यभावः स्यात् । औपाधिकमेव हि रूपं नश्यति यथा तस्यैव रक्तिमादि । कथं चैवंवादिनो वेदस्यानाद्यनन्तताप्रतिपत्तिस्तत्राप्युक्तविकल्पानामवतारात् ? कथं वा साध्यसाधनयोः साकल्येन व्याप्तिप्रतिपत्तिः, सामान्येन व्याप्ति-
५ प्रतिपत्तावप्यनाद्यनन्तसामान्यप्रतिपत्तार्त्तुकदोषानुषङ्ग एव ।

यच्चोक्तम्—‘कथं चासौ तत्कालेऽसर्वज्ञैर्ज्ञातुं शक्यते? तदपि फल्गुप्रायम्; विषयापरिज्ञाने विषयिणोऽप्यपरिज्ञानाम्युपगमे कथं जैमिन्यादेः सकलवेदार्थपरिज्ञाननिश्चयोऽसकलवेदार्थविदोऽम् ? तदनिश्चये च कथं तद्ब्रह्माख्यातार्थाश्रयणाद्विश्वोभ्रादावनुष्ठाने
१० प्रवृत्तिः ? कथं वा व्याकरणादिसकलशास्त्रार्थापरिज्ञाने तदर्थज्ञतानिश्चयो व्यवहारिणाम् ? यतो व्यवहारप्रवृत्तिः स्यात् ।

सुनिश्चितासम्भवद्वाधकप्रमाणत्वाच्चाशेषार्थवेदिनो भगवतः सत्त्वसिद्धिः । न चेदमसिद्धम्; तथाहि—सर्वविदोऽभावः प्रत्यक्षेणाधिगम्यः, प्रमाणान्तरेण वा ? न तावत्प्रत्यक्षेण; तद्धि सर्वत्र
१५ सर्वदा सर्वैः सर्वज्ञो न भवतीत्येवं प्रवर्त्तते, क्वचित्कदाचित्कश्चिद्वा ? प्रथमपक्षे न सर्वज्ञाभावस्तज्ज्ञानवत् एवाशेषज्ञत्वात् । न हि सकलदेशकालाश्रितपुरुषपरिषत्साक्षात्करणमन्तरेण प्रत्यक्षतस्तदाधारमसर्वज्ञत्वं प्रत्येतुं शक्यम् । द्वितीयपक्षे तु न सर्वथा सर्वज्ञाभावसिद्धिः ।

२० अथ न प्रवर्त्तमानं प्रत्यक्षं सर्वज्ञाभावसाधकं किन्तु निवर्त्तमानम् । ननु कौरणस्य व्यापकस्य वा निवृत्तौ कार्यस्य व्याप्यस्य वा निवृत्तिः प्रसिद्धा नान्यनिवृत्तार्त्तवैत्यनिवृत्तिरतिप्रसङ्गात् । न चाशेषज्ञस्य प्रत्यक्षं कौरणं व्यापकं वा येन तन्निवृत्तौ सर्वज्ञस्यापि निवृत्तिः । न चैवं घटाद्यभावासिद्धिः एकज्ञानसंसर्गिपदार्था-

१ जपाकुसुमादिजनितम् । २ सर्वज्ञानस्य क्वचिद्विश्रान्तत्वात् सर्वज्ञत्वमित्येवं वादिनः । ३ वेदस्यानाद्यनन्तताग्राहकं जैमिन्यादिज्ञानं क्वचिद्विश्रान्तमित्यादि । ४ किञ्च । ५ व्याप्तिविशेषतः प्रत्येतुं नायाति व्यक्तीनामानन्त्यात् । अतः सामान्येनेत्युक्तम् । ६ सामान्यमनाद्यनन्तनीदृशसामान्यस्य ग्राहकं व्याप्तिज्ञानं क्वचिद्विश्रान्तं न वेत्यादि । ७ सर्वकः । ८ सर्वज्ञः । ९ अर्थः । १० ज्ञानस्य । ११ अवाद्ब्रह्मात् । १२ स्वात्मनि मुखादिवत् । १३ असदादेः । १४ अन्यादेः । १५ वृक्षत्वस्य । १६ भूमादेः । १७ शिक्षपात्तस्य । १८ अकारणस्याऽव्यापकस्य वा । १९ अकार्यस्याऽव्याप्यस्य वा । २० घटनिवृत्तौ घटनिवृत्तिप्रसङ्गात् । २१ असदादेः । २२ सर्वज्ञाभावसिद्धि-प्रकारेण । कथम् ? न प्रवर्त्तमानं प्रत्यक्षं घटाभावसाधकं किन्तु निवर्त्तमानमित्युक्ते ननु कारणस्येत्यादिप्रश्नो निवृत्तिपर्यन्तः । किन्तु सर्वज्ञपदस्थाने घटपदं पठनीयम् ।

न्तरोपलम्भात् क्वचित्त्सिद्धेः । न चात्राप्ययं न्यायः समानस्त-
त्संसर्गिण एव कस्यचिदभावत्, अन्यथा सर्वत्र तदभावविरोधो
घटादिवत् । तन्न प्रत्यक्षेणाधिगम्यस्तदभावः ।

नाप्यनुमानेन; विवादाध्यासितः पुरुषः सर्वज्ञो न भवति
वक्तृत्वाद्ग्रथ्यापुरुषवदित्यनुमाने हि प्रमाणान्तरसंवादिनोऽर्थस्य ५
वक्तृत्वं हेतुः, तद्विपरीतस्य वा स्यात्, वक्तृत्वमात्रं वा? प्रथम-
पक्षे विरुद्धो हेतुः; प्रमाणान्तरसंवादिसूक्ष्माद्यर्थवक्तृत्वस्याशे-
षज्ञे एव भावात् । द्वितीयपक्षे तु सिद्धसाधनम्; तथाभूतस्य
वक्तृत्वसर्वज्ञत्वेनास्माभिरभ्युपगमात् । वक्तृत्वमात्रस्य तु हेतोः
साध्यविपर्ययेण सर्वज्ञत्वेनानुपलब्धेन सह सहानवस्थानपरस्प- १०
रपरिहारस्थितिलक्षणविरोधासिद्धेस्ततो व्यावृत्त्यभावाच्च स्वसा-
ध्यनिर्यतत्वं यतो गमकत्वं स्यात् । सर्वज्ञे वक्तृत्वस्यानुपलब्धे-
स्ततो व्यावृत्तिरित्यप्यसम्यक्; सर्वसम्बन्धिनोऽनुपलम्भस्या-
सिद्धेः, तेनैव सर्वज्ञान्तरेण वा तत्र तस्योपलम्भसम्भवात् । सर्व-
ज्ञस्य कस्यचिदभावात्सर्वसम्बन्धिनोऽनुपलम्भस्य सिद्धिरित्यस- १५
ङ्गतम्, प्रमाणान्तरात्तत्सिद्धावस्यै वैयर्थ्यात् । अतः सिद्धौ वैक-
कानुपपन्नः । नापि स्वसम्बन्धिनोऽनुपलम्भात्तद्व्यतिरेकनिश्चयः;
अस्य परचेतोवृत्तिविशेषैरनैकान्तिकत्वात् ।

न चाखिलसाधनेषु दोषस्यास्यै समानत्वात्त्रिखिलानुमानो-
च्छेदः, तत्र विपक्षव्यावृत्तिनिमित्तस्यानुपलम्भव्यतिरेकेण प्रमा- २०
णान्तरस्य भावात् । न चात्र कार्यकारणभावः प्रसिद्धः; असर्व-
ज्ञत्वर्थमानुविधानाभौवाद्वचनस्य । यच्चि यत्कार्यं तत्तद्धर्मानुवि-
धायि प्रसिद्धं वैश्यादिसामग्रीगतसुरभिगन्धार्यनुविधायिधूम-

१ भूतल । २ घटाद्यभाव । ३ सर्वज्ञेति । ४ एकज्ञानसंसर्गिपदाद्यन्तरोप-
लम्भात् क्वचिद् घटाभावप्रतिपत्तिलक्षण- । ५ प्रदेशस्य । ६ एकज्ञानसंसर्गिकोपि
क्वचित्प्रदेशो भवेद्यदि । ७ आदिपदेनान्तरितं दूरम् । ८ जैनैः । ९ सर्वज्ञभाव ।
१० अतश्च सन्दिग्धविपक्षव्यावृत्तिको हेतुः । ११ वक्तृत्वमात्रस्य । १२ अविनाभूत-
त्वम् । १३ वक्तृत्वस्य । १४ प्रकृतसर्वज्ञेन । १५ प्रकृतानुमानस्य । १६ वक्तृत्वानु-
मानस्य । १७ वक्तृत्वानुमानात्सर्वज्ञाभावसिद्धिस्तत्सिद्धौ च सर्वज्ञसाधनस्य व्यावृत्ति-
सिद्धिरतस्यानुमानमिति । १८ वक्तृत्वस्य । १९ सर्वज्ञलक्षणादिपक्षाद् व्यावृत्ति-
निश्चयः । २० अभावसाध्यसाधकानां निखिलसाधनानां पक्षेनुपलम्भः सर्वसम्बन्धी
आत्मसम्बन्धीनेत्याद्युक्ते असिद्धानैकान्तिकत्वलक्षणस्य । २१ यत्रानिर्नास्ति तत्र धूमोपि
नास्ति । २२ ऊहस्य । २३ वक्तृत्वात्सर्वज्ञत्वयोः । २४ यसः । २५ वचनम-
सर्वज्ञकार्यं न भवति तद्धर्मानुविधानाभावात् । २६ सन्दिग्धानैकान्तिकत्वे सतीदमाह ।
२७ यसः । २८ आदिपदेन श्रीगन्ध ।

वत् । तथाहि असर्वज्ञत्वं सर्वज्ञत्वादन्यत्पर्युदासवृत्त्या किञ्चिज्-
ज्ञत्वमभिधीयते । न च तत्तरतमभावाद्बचनस्य तथाभावो दृश्यते
तद्विप्रकृतमत्यल्पज्ञानेषु कृम्यादिषु, न च तत्र वचनप्रवृत्तेः प्रकर्षो
दृश्यते । अथ प्रसज्यप्रतिषेधवृत्त्या सर्वज्ञत्वोभावोऽसर्वज्ञत्वं
५ तत्कार्यं वचनम्; तर्हि ज्ञानरहिते मृतशरीरादौ तस्योपलम्भप्र-
सङ्गो ज्ञानातिशयवस्तु चाखिलशास्त्रव्याख्यातृषु वचनातिशयो-
पलम्भो न स्यात् । न चैवम्, ततो ज्ञानप्रकर्षतरतमाद्यनुविधान-
दर्शनात्तस्य तत्कार्यता सातिशयतक्षादिकारणधर्मजुविधायि-
प्रासादादिकार्यविशेषवत् । तन्नानुमानात्तदभावसिद्धिः ।

१० नाप्यागमात्, स हि तत्प्रणीतः, अन्यप्रणीतः, अपौरुषेयो वा
तदभावसाधकः स्यात् ? तत्र यथागमप्रणेता सकलं सकलज्ञवि-
कलं साक्षात्प्रतिपद्यते युक्तोसौ तत्र प्रमाणम्, किन्तु विद्यमा-
नोपि न प्रकृतार्थोपयोगी, तथा प्रतिपद्यमानस्य तस्यैवाशेषज्ञ-
त्वात् । न प्रतिपद्यते चेत्; तर्हि रथ्यापुरुषप्रणीतागमचन्नासौ
१५ तत्र प्रमाणम् । न ह्यविदितार्थस्वरूपस्य प्रणेतुः प्रमाणभूतागम-
प्रणयनं नामातिप्रसङ्गात् । द्वितीयविकल्पेऽप्येतदेव वक्तव्यम् ।

अपौरुषेयोप्यागमो जैमिन्यादिभ्यो यदि सर्वत्र सर्वदा
सर्वज्ञाभावं प्रतिपादयेत्तर्हि सर्वस्यै प्रतिपादयेत् केनचित् सह
प्रत्यासत्तिविप्रकर्षविरहात् । तथा च—

२० “विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतः
पात् ।” [श्वेताश्वत० ३।३]

सं वेत्ति विश्वं न हि तस्य वेत्ता तमाहुरभ्यं पुरुषं महा-
न्तम् ।” [श्वेताश्वत० ३।१९] “हिरण्यगर्भं” [ऋग्वेद अष्ट० ८
मं० १० सू० १२१] प्रकृत्य “सर्वज्ञः” इत्यादौ न न कस्यचिद्वि-
२५ प्रतिपत्तिः स्यात्—“किमनेन” सर्वज्ञः प्रतिपाद्यते केनविशेषो
वा स्तूयते” इति । न खलु प्रदीपप्रकाशिते घटादौ कस्यचिद्वि-
प्रतिपत्तिः—“किमयं घटः पटो वा” इति । न च स्वरू-

१ यदि । २ सर्वथा ज्ञानाभावः । ३ ज्ञानातिशय । ४ वचनः । ५ सातिशयत्व ।
६ सर्वसकलज्ञविकल्पे । ७ सर्वज्ञाभावलक्षणेऽर्थे । ८ सर्वज्ञाभावे । ९ रथ्या-
पुरुषस्य प्रमाणभूतागमप्रणेतृत्वं स्यात् । १० मीमांसकेन नैयायिकादिना च ।
११ प्रस्तुत्य । १२ वेदवाक्येन । १३ यागलक्षणः ।

१ ‘सम्बाहुभ्यां षमति सम्पतत्रैः चावाभूमी जनयन् देव एकः’ इत्युत्तरार्द्धम् ।
२ ‘अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स नृणोत्यकर्णः’ इति पूर्वार्द्धम् ।

पेऽस्याप्रामाण्यम् । अविर्सवादो हि प्रमाणलक्षणं कार्यं स्वरूपे
त्रार्थे, नान्यत् । यत्र सोस्ति तत्प्रमाणम् । न चाशेषज्ञाभावावेदकं
किञ्चिद्वेदवाक्यमस्ति, तत्सद्भावावेदकस्यैव श्रुतेः । तन्नागमा-
दप्यस्याभावसिद्धिः ।

नाप्युपमानात्; तत्खलूपमानोपमेययोरध्यक्षत्वे सति साह- ५
इयावलम्बनमुदयमासादयति नान्यथा । न चात्रत्येदानीन्तनोप-
मानभूताशेषपुरुषप्रत्यक्षत्वम् उपमेयभूताशेषान्यदेशकालपुरुष-
प्रत्यक्षत्वं चाभ्युपगम्यते; सर्वज्ञसिद्धिप्रसङ्गात्, निखिलार्थप्रत्य-
क्षत्वमन्तरेणाशेषपुरुषपरिषत्साक्षात्कारित्वात्सम्भवात् ।

नाप्यर्थापत्तेस्तदभाववगमः; सर्वज्ञाभावमन्तरेणानुपजायमा- १०
नस्य प्रमाणबद्धविज्ञातस्य कस्यचिदर्थस्यासम्भवात् । वेदप्रामा-
ण्यस्य गुणवत्पुरुषप्रणीतत्वे सत्येव भावात् । अपौरुषेयत्वस्याग्रे
विस्तरतो निषेधात् । न चार्थापत्तिरनुमानात्प्रमाणान्तरमित्यग्रे
वक्ष्यते । तद्वदत्रापि व्योत्यादिचिन्तायां दोषान्तरं चापादनीयम् ।

नाप्यभावप्रमाणात्तदभावसिद्धिः; तस्यासिद्धेः, तदसिद्धिश्चा- १५
भावप्रमाणलक्षणस्य

“प्रत्यक्षादेरनुत्पत्तिः प्रमाणाभाव उच्यते ।

सात्मनोऽपरिणामो वा विज्ञानं चान्यवस्तुनि ॥”

[मी० श्लो० अभावप० श्लो० ११]

इत्यादेः प्रागेव विस्तरतो निराकरणात्सिद्धा । इत्यलमतिप्रसङ्गेन । २०
न चानुमाने तत्सद्भावावेदके सत्येतत्प्रवर्त्तते—

“प्रमाणपञ्चकं यत्र वस्तुरूपे न जायते ।

वस्तुसत्तावबोधार्थं तत्राभावप्रमाणता ॥”

[मी० श्लो० अभावप० श्लो० १]

इत्यभिधानात् । किञ्च, अभावप्रमाणं

२५

“गृहीत्वा वस्तुसद्भावं स्मृत्वा च प्रतियोगिन्म् ।

मानसं नास्तिताज्ञानं जायतेऽज्ञानपेक्षया ॥”

[मी० श्लो० अभावप० श्लो० २७]

इति सामग्रीतः प्रादुर्भवति । न चाशेषज्ञानास्तिताधिकरणाखिल-
देशकालप्रत्यक्षता कस्यचिदस्त्यतीन्द्रियार्थदर्शित्वप्रसङ्गात् । ३०

१ छतिवाक्यस्य । २ प्रवर्त्तकम् । ३ प्रमाणत्वेनाद्वीकृतवचनादौ । ४ अभ्युप-
गम्यते चेत्तर्हि सर्वज्ञो वेदप्रामाण्यान्यथानुपपत्तेः । ५ सपक्षेऽन्वयादि । ६ विचारणा-
याम् । ७ आभवासिद्धिलक्षणादोषादन्यस्तन्मन्वाप्रतिपत्त्यनवस्येतरैतदभयलक्षणं दोषा-
न्तम् । ८ अभावप्रमाणरूपणविसारेण । ९ षटासदशलक्षणे ।

प्र० क० मा० २३

नाप्यशेषज्ञः क्वचित्कदाचित्केनचित्प्रतिपन्नो येनासौ स्मृत्वा निषे-
ध्येत, सर्वत्र सर्वदा तन्निषेधविरोधात् । न च निषेध्यनिषेध्याघार-
योरप्रतिपत्तौ निषेधो नामातिप्रसङ्गात् । न ह्यप्रतिपन्ने भूतले घटे
च घटनिषेधो घटते । यथा चाभावप्रमाणस्योत्पत्तिः स्वरूपं विषयो
५ वा न सम्भवति तथा प्राक्प्रपञ्चेनोक्तमिति कृतमतिप्रसङ्गेन ।

तन्नाभावप्रमाणादप्यशेषज्ञाभावसिद्धिः । तदेवं सिद्धं बुनिश्चि-
तासम्भवद्वाधकप्रमाणत्वमप्यशेषज्ञस्य प्रसाधकम् इत्यलमतिप्र-
सङ्गेन ।

ननु चावरणविच्छेपादशेषवेदिनो विज्ञानं प्रभवतीत्यसाम्प्रतम् ;
१० तस्यानादिमुक्तत्वेनावरणस्यैवासम्भवादिति चेत् ; तदयुक्तम् ;
अनादिमुक्तत्वस्यासिद्धेः । तथाहि—नेश्वरोऽनादिमुक्तो मुक्तत्वा-
त्तदन्यमुक्तवद् । बन्धापेक्षया च मुक्तव्यपदेशः, तद्गहिते
चास्याप्यभावंः स्यादाकाशवत् ।

ननु चानादिमुक्तत्वं तस्यानादेः क्षित्यादिकार्यपरम्परायाः कर्तृ-
१५ त्वात्सिद्धम् । न चास्य तत्कर्तृत्वमसिद्धम् ; तथाहि—क्षित्यादिकं
बुद्धिमद्भेतुकं कार्यत्वात्, यत्कार्यं तद्बुद्धिमद्भेतुकं दृष्टम् यथा
घटादि, कार्यं चेदं क्षित्यादिकम्, तस्माद्बुद्धिमद्भेतुकम् । न चात्र
कार्यत्वमसिद्धम् ; तथाहि—कार्यं क्षित्यादिकं सावयवत्वात् ।
यत्सावयवं तत्कार्यं प्रतिपन्नम् यथा प्रासादादि, सावयवं चेदम्,
२० तस्मात्कार्यम् ।

ननु क्षित्यादिगतात्कार्यत्वात्सावयवत्वाच्चान्यदेव प्रासादादौ
कार्यत्वं सावयवत्वं च यदक्रियादर्शिनोपि कृतबुद्ध्युत्पादकम्,
ततो दृष्टान्तदृष्टस्य हेतौर्धर्मिण्यभावादसिद्धत्वम् ; इत्यसमीक्षिता-
भिधानम् ; यतोऽर्क्युत्पन्नान्प्रतिपन्नधिकृत्यैवमुच्यते, व्युत्प-
२५ न्नात्वा ? प्रथमपक्षे धूमादावप्यसिद्धत्वंप्रसङ्गात्सकलानुमानो-
च्छेदः । द्वितीयपक्षे तु नासिद्धत्वम् ; कार्यत्वादेर्बुद्धिमत्कारण-
पूर्वकत्वेन प्रतिपन्नाविनाभावस्य क्षित्यादौ प्रसिद्धेः पर्वतादौ

१ सर्वशसङ्गावे प्रमाणोपन्यासविस्तरेण । २ अशेषनेत्री सावरणो न भवति
अनादिमुक्तत्वाद् । यः सावरणः सोनादिमुक्तो न भवति यथा लम्बादिः । ३ मुक्तो
भवति अनादिमुक्तो भवतीति सन्दिग्धानैकान्तिकत्वे सतीर्द वयममाह । ४ ईश्वरो
मुक्तव्यपदेशभाग् न भवति बन्धरहितशादाकाशवत् । ५ पुरुषस्य । ६ कार्यत्वस्य
सावयवत्वस्य च । ७ प्रासादादौ यदक्रियादर्शिनः कृतबुद्ध्युत्पादकं दृष्टं कार्यत्वं
सावयवत्वं वा साधनं तत् क्षित्यादौ नास्तीत्यसिद्धत्वमिति । ८ साध्यासाधनप्रतिपत्तिरहि-
तान् । ९ यथाविधो धूमो दृष्टान्ते प्रतिपन्नस्वभाविष्यस्य दार्ढान्तिकेऽभावात् । १० बुः ।

धूमादिवत् । दृष्टान्तोपलब्धकार्यत्वादेस्ततो भेदे पर्वतादिधूमा-
न्महानसधूमस्यापि भेदः स्यात् ।

ननु कार्यत्वस्य बुद्धिमत्कारणपूर्वकत्वेनाविनाभावोऽसिद्धः,
अर्हेष्टप्रभवैः स्यावरादिभिर्व्यभिचारात्; तन्न; साध्याभावेपि
प्रवर्तमानो हेतुर्व्यभिचारीत्युच्यते, न च तत्र कर्त्रभावो निश्चितः ५
किन्त्वग्रहणम् । उपलब्धिलक्षणप्राप्तत्वे हि ततः कर्तुरभाव-
निश्चयः, न च तत्तस्येभ्यते ।

अथ क्षित्याद्यन्वयव्यतिरेकानुविधानोपलम्भात्तेषां नातिरि-
क्तस्य कारणत्वकल्पना अतिप्रसङ्गात्; तर्हि धर्माधर्मयोरपि तत्र
कारणता न भवेत् । न च तयोरकारणतैव; तरुतृणादीनां सुख-१०
दुःखसाधनत्वाभावप्रसङ्गात्, धर्माधर्मनिरपेक्षोत्पत्तीनां तद-
साधनत्वात् । न चैवम्, न हि किञ्चिज्जगत्स्यति वस्तु यत्साक्षा-
त्परम्परया वा कस्यचित्सुखदुःखसाधनं न स्यात् ।

ननु क्षित्यादिसामग्रीप्रभवेषु स्यावरादिषु 'बुद्धिमतोऽभावा-
दग्रहणं भावेप्यनुपलब्धिलक्षणप्राप्तत्वाद्वा' इति सन्दिग्धो अति-१५
रेकः कार्यत्वस्य; इत्यप्यपेशलम्; सकलानुमानोच्छेदप्रसङ्गात् ।
यत्र हि बह्वेददर्शने धूमो दृश्यते तत्र—'किं बह्वेददर्शनमभावादनु-
पलब्धिलक्षणप्राप्तत्वाद्वा' इत्यस्योपि सन्दिग्धव्यतिरेकत्वान्न गम-
कत्वम् । यथा सामग्र्या धूमो जन्यमानो दृष्टतां नातिघर्त्तते
इत्यन्यत्रापि समानम्—कार्यं कर्तृकरणादिपूर्वकं कथं तदतिक्रम्य २०
वर्त्ततातिप्रसङ्गात् ?

अनुपलम्भस्तु शरीराद्यभावात् त्वसत्त्वात्, यत्र हि सशरीरस्य
कुलालादेः कर्तृता तत्र प्रत्यक्षेणोपलम्भो युक्तोऽत्र तु चैतर्न्यमा-
त्रेणोपादानाद्यधिष्ठानान्न प्रत्यक्षप्रवृत्तिः । न च शरीराद्यभावे
कर्तृत्वाभावस्तस्य शरीरेणाविनाभावाभावात् । शरीरान्तररहि-२५
तोपि हि सर्वश्चेतनः स्वशरीरप्रवृत्तिनिवृत्ती करोतीति, प्रयत्ने-
च्छावशात्तत्प्रवृत्तिनिवृत्तिलक्षणकार्याविरोधे प्रैक्येपि सोस्तु ।
ज्ञानचिकीर्षाप्रयत्नाधारता हि कर्तृत्वम् न सशरीरेतरता, घटादि-

१ ता । २ क्षिलादिगतकार्यत्वादेः(पञ्चमी) । ३ असिद्धत्वे उद्भाविते सकलानु-
मानोच्छेदः प्रत्युत्तरमित्यर्थः । ४ भूतहादिभिः । ५ ईश्वरस्य । ६ ईश्वरस्य ।
७ कुम्भकारान्वयव्यतिरेकानुविधायिनि घटे तन्नुवायस्य हेतुत्वं स्यात् । ८ कर्तुः ।
९ विपक्षन्यावृत्तिः । १० पर्वते । ११ साधनस्य । १२ महानसप्रदेहे । १३ कार्यत्वे ।
१४ दृष्टम् । १५ घटोपि कुम्भकारहेतुको न स्यात् । १६ ईश्वरस्य । १७ साव-
रादिकार्ये । १८ ज्ञानमात्रेण । १९ कर्तुः । २० प्रेरणात् । २१ स्यावरादी ।

कार्यं कर्तुमजानतः सशरीरस्यापि तत्कर्तृत्वादर्शनात्, जानतो-
यीच्छापाये तदनुपलम्भात्, इच्छतोपि प्रयत्नाभावे तदसम्भ-
वात्, तत्रयमेव कारकप्रयुक्तिं प्रत्यङ्गं न शरीरेतरता ।

न च दृष्टान्तेऽनीश्वरासर्वज्ञकृत्रिमज्ञानवता कार्यत्वं व्याप्तं
५ प्रतिपन्नमित्यत्रापि तथाविधमेवाधिष्ठातारं साधयतीति विशेष-
विद्वेद्धता हेतोः इत्यभिधातव्यम्, बुद्धिमत्कारणपूर्वकत्वमात्रस्य
साध्यत्वात् । धूमाद्यनुमानेपि चैतत्समानम्-धूमो हि महानसादिदे-
शासम्बन्धिताणेषाणादिविशेषाधारेणाग्निना व्याप्तः पर्वतेपि तथा-
विधमेवाग्निं साधयेदिति विशेषविद्वेद्धः । देशादिविशेषत्यागोना-
१० ग्निमात्रेणास्य व्याप्तेर्न दोषः इत्यन्यत्रापि समानम् ।

सर्वज्ञता चास्याशेषकार्यकरणात्सिद्धा । यो हि यत्करोति स
तस्योपादानादिकारणकलापं प्रयोजनं चावश्यं जानाति, अन्यथा
तत्क्रियाऽयोगात्कुम्भकारादिवत् । तथा “विश्वतश्चक्षुः” [श्वेता-
श्वतरोप० ३।३] इत्यागमादप्यसौ सिद्धः

१५ “द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च ।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥ १ ॥
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ।
यो लोकत्रयमविद्य विमर्त्यव्यय ईश्वरः ॥ २ ॥”
[भगवद्गी० १५।१६-१७]

२० इति व्यासवचनसद्भावाच्च ।

न च स्वरूपप्रतिपादकानामप्राप्यम्, प्रमाजनकत्वस्य सद्भा-
वात् । प्रमाजनकत्वेन हि प्रमाणस्य प्रामाण्यं न प्रवृत्तिजनकत्वेन,
तच्चेहस्त्येव । प्रवृत्तिनिवृत्ती तु पुरुषस्य सुखदुःखसाधनत्वा-
ध्यवर्साये समर्थस्यार्थित्वाद्भवतः । विधेरेकैत्वाद्गीर्णां प्रामाण्यं
२५ न स्वरूपार्थत्वात्, इत्यसत्, स्वार्थप्रतिपादकत्वेन विध्यङ्गत्वात् ।
तथाहि-स्तुतेः स्वार्थप्रतिपादकत्वेन प्रवर्तकत्वं निन्द्यास्तु
निवर्तकत्वम्, अन्यथा हि तैर्दार्थापरिह्वाने विहितैर्प्रतिषेधैः

१ अनिलः । २ क्षिलादौ । ३ निलदानेच्छाप्रपन्नान्निषेपत्वेन । ४ द्रुमः ।
५ ईश्वरः । ६ ईश्वरः । ७ अनिलः संसारी जावसमूहः । ८ निल ईश्वरः ।
९ वेदसम्बन्धीनि पृथिव्यादीनि । १० निलः । ११ प्रविध्यः । १२ विदधाति ।
१३ वेदवाक्यानाम् । १४ यथार्थानुभवः प्रमा । १५ वेदवाक्ये । १६ सति ।
१७ प्रवृत्तैः । १८ वेदवाक्यानाम् । १९ वेदवाक्यानाम् । २० वेदवाक्यानां
स्वार्थप्रतिपादकत्वेन प्रवर्तकत्वं निवर्तकत्वं वा नास्ति यदि । २१ वेदवाक्यम् ।
२२ उपादेयः । २३ निषिद्धः ।

विशेषेण प्रवृत्तिर्निवृत्तिर्वा स्यात् । तथा विधिवाक्यस्यापि स्वार्थ-
प्रतिपादनद्वारेणैव पुरुषप्रेरकत्वं दृष्टमेवं स्वरूपप्ररेष्वपि वाक्येषु
स्यात्, वाक्यरूपतया अविशेषाद्विशेषहेतोश्चाभावात् । तथा
स्वरूपार्थानामप्रामाण्ये “मेध्या आपो दर्भः पवित्रममेध्यमशुचि”
इत्येवंस्वरूपापरिहाने विध्यङ्गतायामविशेषेण प्रवृत्तिनिवृत्ति-^५
प्रसङ्गः । न चैतदस्ति, मेध्येष्वेव प्रवर्तते अमेध्येषु च निव-
र्तते इत्युपलम्भात् ।

एवं प्रमाणप्रसिद्धो भगवान् कारुण्याच्छरीरादिसर्गं प्राणिनां
प्रवर्तते । न चैवं सुखसाधन एव प्राणिसर्गोऽनुषज्यते, अदृष्टस-
द्वकारिणः कर्तृत्वात् । यस्य यथाविधोऽदृष्टः पुण्यरूपोऽपुण्यरूपो १०
चा तस्य तथाविधफलोपभोगाय तत्सापेक्षैस्तथाविधेशरीरादीन्सृ-
जतीति । अदृष्टप्रक्षयो हि फलोपभोगं विना न शक्यो विधातुम् ।

न चादृष्टादेर्वीखिलोत्पत्तिरस्तु किं कर्तृकल्पनयेति वाच्यम् ;
तस्याप्यचेतनतयाधिष्ठात्रपेक्षोपपत्तेः । तथाहि—अदृष्टं चेतनाधि-
ष्ठितं कार्यं प्रवर्ततेऽचेतनत्वात्तन्त्वादिवत् । न चासदाद्यात्मैवा-^{१५}
धिष्ठायकः; तस्यादृष्टपरमाण्वादिविषयविज्ञानाभावात् । न च
(चा) चेतनस्याकर्त्तृत्वात्प्रवृत्तिरूपलब्धा, प्रवृत्तौ वा निष्पन्नेपि
कार्यं प्रवर्तते विवेकशून्यत्वात् ।

तथा चार्त्तिककारेणापि प्रमाणद्वयं तत्सिद्धयेऽभ्यधायि—
“महाभूतादि वैकं चेतनाधिष्ठितं प्राणिनां सुखदुःखनिमित्तं २०
रूपादिमत्त्वासुर्यादिवत् । तथा पृथिव्यादीनि महाभूतानि बुद्धि-
मत्कारणाधिष्ठितानि स्वासु धारणाचासु क्रियासु प्रवर्तन्ते-
ऽनित्यत्वाद्वास्यादिवत् ।” [न्यायवा० पृ० ४६७]

तथोऽविच्छकर्णेन च—“तनुकरणभुवनोपादानौनि चेतनाधि-
ष्ठितानि स्वकार्यमारभन्ते रूपादिमत्त्वात्तन्त्वादिवत् ।” तथा, २५
“दीन्द्रियग्राह्याग्राह्यं विमतिर्भवापन्नं बुद्धिमत्कारणपूर्वकं स्वार-

१ किञ्च । २ प्रवृत्तिप्रतिपादकस्य । ३ विधिवाक्यप्रकारेण । ४ शब्दार्थ ।
५ स्वार्थप्रतिपादकद्वारेण विध्यङ्गता । ६ वेदवाक्यानाम् । ७ कारुण्यात्प्रवर्तनेन ।
८ सुखजनकः । ९ प्राणिसम्बन्धी शरीरादिसर्गः । १० प्राणिनः । ११ सुखदुःखादि-
जनक । १२ भगवान् । १३ सुखदुःखादिजनकान् । १४ अपि तु न भगवतः ।
१५ जैनादिभिः । १६ प्रेरितम् । १७ प्रेरकः । १८ कारणं विना । १९ ईश ।
२० परमाणुव्यवच्छेदार्थं महदिति पदम् । २१ पृथिव्यादि । २२ कार्यम् ।
२३ यथा चार्त्तिककारेणान्यधायीति पूर्वेण सम्बन्धः । २४ परमाण्वादिकारणानि ।
२५ क्लिप्तादिकम् ।

म्माकावयवसन्निवेशविशिष्टत्वाद् घटादिवत् । वैधर्म्येण परमाणवो यथा" [] आभ्यां दर्शनस्पर्शनेन्द्रियाभ्यां प्राह्यं पृथिव्यत्ते-
जोलक्षणं त्रिविधं द्रव्यमप्राह्यं वाय्वादिकम् । वायौ हि रूप-
संस्काराभावादनुपलब्धिः रूपसंस्कारो रूपसमवायः । द्रव्यणुका-
दीनां त्वऽमदृत्वात् । उक्तं च—“महत्तन्नेकद्रव्यत्वाद्रूपविशेषार्थं
रूपोपलब्धिः” [वैशे० सू० ४।१।६]

प्रशस्तमतिना च; “सर्गादौ पुरुषाणां व्यवहारोऽन्योपदेश-
पूर्वकः उत्तरकालं प्रबुद्धानां प्रत्यर्थनियतत्वाद्प्रसिद्धवाग्व्यव-
हाराणां कुमाराणां गवादिषु प्रत्यर्थनियतो वाग्व्यवहारो यथा
१० मात्रार्थुपदेशपूर्वकः” [] इति ।

उद्योतकरेण च; “भुवनहेतवः प्रधानपरिमाणवदृष्टाः स्वका-
र्योत्पत्तावतिशयबहुद्धिमन्तमधिष्ठितारमपेक्षन्ते स्थित्वा प्रवृत्ते-
स्तन्तुतुर्यादिवत् । तथा, बुद्धिमत्कारणाधिष्ठितं महाभूतादि व्यक्तं
सुखदुःखनिमित्तं भवत्यचेतनत्वात्कार्यत्वाद्भिनाशित्वाद्रूपदिम-
१५ त्वाद्वा वास्यादिवत् ।” [न्यायवा० पृ० ४५७] इत्यनवद्यं भगवतः
प्रलयकालेऽप्यलुप्तज्ञानाद्यतिशयस्य साधनम् ।

अत्र प्रतिविधीयते—सावयवत्वात्कार्यत्वं क्षित्यादेः प्रसाध्यते ।
तत्र किमिदं सावयवत्वं नाम ? सहावयववैषैर्त्तमानत्वम्, तैर्जन्य-
मानत्वं वा, सावयवमिति बुद्धिविषयत्वं वा ? प्रथमपक्षे सामा-
२० न्यादिनानेकान्तः; गोत्वादि सामान्यं हि सहावैयवैर्वर्त्तते, न च
कौर्यम् । द्वितीयपक्षेप्यसिद्धो हेतुः; परमाण्वाद्यवयवानां प्रत्यक्षतो-
ऽसिद्धौ क्षित्यादेस्तज्जन्यमानत्वस्याप्यसिद्धेः । प्रत्यक्षानुपलम्भसा-
धनञ्च कार्यकारणभावः । द्रव्यणुकादिकं स्वपरिमाणानुपलम्भपरिमाणो-
पेतकारणारब्धं कौर्यत्वात्पटादिवदित्यनुमानात्तेषां प्रसिद्धिः;
३० इत्यप्यसमीचीनम्; चैककप्रसङ्गात्—परमाणुप्रसिद्धौ हि क्षित्यादे-

१ परमाणु । २ रचनाविशेष । ३ व्यतिरेकेण । ४ आदिपदेन द्रव्यणुकादिकम् ।
५ अनेकद्रव्यत्वाद्रूपविशेषाच्चैत्युच्यमाने द्रव्यणुकादौ रूपोपलब्धिः स्यात्तद्वयवच्छेदार्थं
सहतीति पदम् । ६ महत्तन्नेकद्रव्यत्वादित्युच्यमाने वायावपि रूपोपलब्धिः स्यात्तद्वयव-
च्छेदार्थं रूपविशेषादित्युच्यते । ७ सृष्टिप्रारम्भे । ८ आदिपदेन मित्रादि । ९ साङ्ख्यो-
द्देशेनास्य प्रयोगः । १० मीमांसकानुद्देशेनास्य पदस्य प्रयोगः । ११ छण्डमुण्ड-
शाकलेयत्वादिस्वल्पकिमिः सह वसते । १२ निसत्वात्तस्य । १३ द्रव्यणुकादि ।
४ घटसृष्टिपण्डादौ कार्यकारणभावः प्रत्यक्षतः सिद्धो द्रव्यणुकपरमाण्वादी उ कार्यकारण-
भावोऽनुमाच्यदिति भावः । १५ बुद्ध्या (व्यापकत्वात्माहत्परिमाणोपेतारमचः कार्यत्व-
द्वयादेः) व्यभिचारपरिहारार्थं द्रव्यत्वे सतीति विशेषणं द्रव्यम् । १६ परमाण्वादी-
नाम् । १७ त्रिभिरावर्त्तनं चक्रकद्रूपणम् ।

स्त्रैर्जन्यमानत्वलक्षणसावयवत्वसिद्धिः, तत्सिद्धौ च कार्यत्व-
सिद्धिः, ततश्च परमाणुप्रसिद्धिरिति । महापरिमाणोपेतप्रक्षिपि-
लावयवकर्पासपिण्डोपादानेन अतिनिविडावयवाल्पपरिमाणोपेत-
कर्पासपिण्डेन अनेकान्तश्च । बलवत्पुरुषप्रयत्नप्रेरितहस्ताद्यभि-
घातादवयवक्रियोत्पत्तेः अवयवविभागात् संयोगविनाशात् महा-^५
कर्पासपिण्डविनाशः, अल्पकर्पासपिण्डोत्पादस्तु स्वारम्भकाव-
यवकर्मसंयोगविशेषवशादेव भवति; इत्यपि विनाशोत्पादप्रक्रि-
योद्घोषेणमात्रम्, प्रमाणतोऽप्रतीतिः । कर्पासद्रव्यं हि महापरि-
माणपिण्डाकारपरित्यागेनाल्पपरिमाणपिण्डाकाकारतयोत्पद्यमानं
प्रमाणतः प्रतीयते । आशूत्पत्तेर्भेदानवधारणास्तथा प्रतीतिरित्य-^{१०}
प्यसङ्गतम्; सकलभावानां क्षणिकत्वानुषङ्गात् । अमेदाध्यवसा-
यस्तु सदृशापरापरोत्पत्तिविश्रलम्भादित्यनिष्ठसिद्धिप्रसङ्गात् ।
नाप्यागमात्परमाण्वादिप्रसिद्धिस्तत्प्रामाण्याप्रसिद्धेः ।

सावयवमिति बुद्धिविषयत्वमपि, आत्मोद्दिनानैकान्तिकं तस्या-
कार्यत्वेपि तत्प्रसिद्धेः । सार्वयवार्थसंयोगान्निवयवत्वेप्यस्य तद्दु-^{१५}
द्धिविषयत्वमित्यौपचारिकम्; तदप्यसङ्गतम्; तस्य निरवयवत्वे
व्यापित्वविरोधात् परमाणुवत् । तदपि ह्यौपचारिकमेव स्यात् ।
तदेवं सावयवत्वासिद्धेः कथं ततः क्षित्यादेः कार्यत्वसिद्धिः ?

प्रागसतः स्वकारणसमवायात्, सत्तासमवायाद्वा तैत्सिद्धि-
श्चेत्; कुतः प्राक् ? कारणसमवायाच्चेत्; तत्समवायसमये प्रागि-^{२०}
वास्य स्वरूपसत्त्वस्याभावः, न वा ? अभावे 'प्राक्' इति विशे-
षणमनर्थकम् । कार्यस्य हि कारणसमवायसमये स्वरूपेण सत्त्व-
सम्भवे तद्ब्रह्मागपि सत्त्वे कार्यता न स्यात् । ततः प्रागित्यर्थवै-
त्स्यात् । प्रागिव तत्समवायसमयेप्यस्य स्वरूपसत्त्वाभावे तु
'असतः' इत्येवाभिधातव्यम् । न चासतः कारणसमवायः; खर-^{२५}
विपणादेरपि तत्प्रसङ्गात् । न चास्य कारणाभावान्न तत्प्रसङ्गः;
इत्यभिधार्तव्यम्; क्षित्यादेरपि तदभावप्रसङ्गादसत्त्वाविशेषात् ।
क्षित्यादेः कारणोपलम्भात् दोषः; इत्यप्यसारम्; कार्यकारणयोरु-
पलम्भे हीदमस्य कारणं कार्यं चेदमिति प्रति(वि)भागः स्यात् ।
न च प्रत्यक्षतः क्षित्यादेरुपलम्भोऽसतस्तस्य तज्जनकत्वविरोधात् ^{३०}

१ क्रिया । २ कथनमात्रम् । ३ पूर्वपिण्डविनाश परोत्तरपिण्डोत्पत्तिरित्येवमेतया ।
४ आशुद्रव्यैः । ५ विसंवादात् । ६ क्षित्यादिकं कार्यं सावयवत्वादित्यस्य । ७ आदि-
पदेनाकाशादिना । ८ सरीरादिसूक्तिमद्भिः । ९ परमाणु । १० इह तन्पुत्र पदस-
मवायो यथा । ११ क्षित्यादिकार्यत्वस्य । १२ क्षित्यादिकार्यत्वस्य । १३ चासतः
इति विशेषणम् । १४ कारण । १५ न प्रागिति । १६ परेण त्वया ।

खरविषाणवत् । न र्वाजनैकं विषयैः, उँपलम्भकारणमुपैलम्भ-
विषय इत्यभ्युपगमात् ।

प्रागसतः सत्तासम्बन्धेष्वेतत्सर्वं समानम् । न समानम्; खर-
शृङ्गादेः क्षित्यादिकार्यस्य, विशेषसम्भवात् । तच्चाल्यन्ताऽसत्,
५ क्षित्यादिकं न सँत्ताऽप्यसत्सत्तासम्बन्धात्तु सत्; इत्यपि मनोर-
थमात्रम्; सत्त्वासत्त्वयोरेकत्रैकदा प्रतिषेधविरोधात् । 'न सत्'
इत्यभिधानात्तस्य सत्तासम्बन्धात्प्रागभावः स्यात्सत्प्रतिषेधलक्षण-
त्वादेस्य, 'नाप्यसत्' इत्यभिधानात्तु भावः, असत्त्वप्रतिषेधरूप-
त्वात्तस्य रूपान्तराभावात् । ततोऽसदेव तदभ्युपगन्तव्यम् ।
१० तत्रास्य खरशृङ्गादेर्विशेषः ।

किञ्च, सत्ता सती, असती वा ? यद्यऽसती; कथं तथा वन्ध्या-
सुतयेव सम्बन्धादेर्भ्येषां सत्त्वम् ? सती चेत्स्वतः, अन्यसत्तातो
वा ? यद्यन्यसत्तातोऽनवस्था । स्वतश्चेत् पदार्थानामपि स्वत एव
सत्त्वं स्यादिति व्यर्थं तत्परिकल्पनम् ।

१५ पृतेन द्वितीयविकल्पेऽप्यपास्तः । कार्यस्य हि स्वतः सत्त्वोपगमे
किं तत्कल्पनया साध्यम् ? अनवस्थाप्रसङ्गात् । तदेवं कार्यत्वा-
सिद्धेरसिद्धो हेतुः ।

किञ्च, कथञ्चित्कार्यत्वं क्षित्यादेः, सर्वथा वा ? सर्वथा चेत्पु-
नरप्यसिद्धत्वं द्रव्यतोऽशेषार्थानामकार्यत्वात् । कथञ्चित् चेद्वि-
२० रुद्धत्वम्; सर्वथा बुद्धिमन्त्रिमित्त्वात्साध्याद्विपरीतस्य कथञ्चि-
द्बुद्धिमन्त्रिमित्त्वस्य साधनात् ।

अनैकान्तिकं च आत्मादिभिः; तेषां बुद्धिमन्त्रिमित्त्वाभावेपि
तैस्सम्भवात् । कथञ्चिदप्यकार्यत्वे चैतेषां कार्यकारित्वस्याभावं-
स्तस्याऽकर्तृरूपत्यागेन कर्तृरूपोपादानाविनाभावित्वात् । तस्या-
२५ गोपादानयोश्चैकैर्कृषि वस्तुन्यसम्भवात्सिद्धं कथञ्चित् कार्यत्वं
तेषाम् । कर्तृत्वाकर्तृत्वरूपयोरत्मादिभ्योऽर्थान्तरत्वाच्च तद्विना-
शोत्पादाभ्यां तेषामपि तेषाभावो यतः कार्यत्वं स्यात्; इत्यपि

१ प्रत्यक्षसाजनकक्षित्यादिकम् । २ असत्त्वादेवानजनकम् । ३ प्रत्यक्षस्य ।
४ प्रत्यक्षकारणं प्रत्यक्षजनकमित्यर्थः । ५ प्रत्यक्षविषयः । ६ प्राणित्यादि । ७ सत्ता-
सम्बन्धवैयर्थ्यप्रसङ्गात् । ८ खरविषाणादेरपि सत्तासम्बन्धप्रसङ्गात् । ९ न सदित्यस्य ।
१० सत्त्वः । ११ परेण । १२ क्षित्यादीनाम् । १३ न वेत्यस्य । १४ कारण-
समवायसत्तासमवायकल्पनया । १५ द्रव्यपदोयाभ्याम् । १६ कार्यत्वम् । १७ कृदस-
निल्लसेव । १८ निले । १९ विनाशोत्पादः ।

अद्धामात्रम्; तयोस्ततोऽर्थान्तरत्वे सम्बन्धासिद्धिप्रसङ्गात् ।
समवायादेश्च कृतोत्तरत्वादित्यलमतिप्रसङ्गेन ।

बुद्धिमत्कारणमित्यत्र त्रै मत्वर्थस्य साध्यविशेषणस्यानुप-
पत्तिः । बुद्धिमतो हि बुद्धिर्व्यतिरिक्ता वा, अव्यतिरिक्ता वा ? तत्र
तस्यास्ततो व्यतिरेकैकान्ते तस्येति सम्बन्धस्याभावः । सा हि ५
तस्य तद्गुणत्वात्, तत्समवायाद्वा, तत्कार्यत्वाद्वा, तदाधेयत्वाद्वा
स्यात् ? न तावत्तद्गुणत्वात्सा तस्यैत्यभिघातैव्यम्; ततो व्यतिरेकै-
कान्ते सा तस्यैव गुणो नाकाशादेरिति व्यवस्थापयितुमशकैः ।
नापि तत्समवायात्; तस्यैवासम्भवात् । सम्भवे वा तस्य ताभ्यां
भेदैकान्ते व्यवस्थापकत्वायोगात्सर्वत्राविशेषाच्च । तत्कार्यत्वात्सा १०
तस्येति चेत्; कुतस्तत्कार्यत्वम् ? तस्मिन्सति भावात्; आकाशादौ
प्रसङ्गः । तदभावेऽभावाच्चेन्न; नित्यव्यापित्वाभ्यां तस्य तदयो-
गात् । तदाधेयत्वात्सा तस्येति चेत्; किमिदं तदाधेयत्वं नाम ?
समवायेन तत्र वर्त्तनं चेत्तत्कृतोत्तरम् । तादात्म्येन वर्त्तनं चेन्न;
अनभ्युपगमात् । सम्बन्धमात्रेण वर्त्तनं चेत्; तर्हि घटादेर्भूत-१५
छादिगुणत्वप्रसङ्गः, सम्बन्धमात्रेण वर्त्तमानस्य तस्य तदाधेयत्व-
सम्भवात् ।

किञ्च, व्याप्त्या तेनास्यास्तत्र वर्त्तनम्, अव्याप्त्या वा ? न
तावद्वाप्त्या; आत्मविशेषगुणत्वादसदादिवुद्ध्यादिवत् । परमम-
हापरिमाणेन व्यभिचारः; इत्ययुक्तम्; तत्र विशेषगुणैत्वाभावात् । २०
नन्वेवमसदादिवुद्ध्यादौ सकलार्थग्राहित्वाभावो दृष्टः सोपि तत्र
स्यादिति चेत्; अस्तु नाम, दृष्टान्ते व्याप्तिदर्शनमात्रात्सर्वत्र
साध्यसिद्धेर्भवेताभ्युपगमात् । कथमन्यथा प्रकृतसिद्धिः ? यथा
चासदादिवुद्धिवैलक्षण्यं तद्दृष्टेरदृष्टं परिकल्प्यते तथा घटादौ कर्म-
कैर्चुकरैर्णनिर्वर्त्यकार्यत्वं दृष्टं वने वनस्पत्यादिषु चेतनकर्तृ-२५
हितमपि स्यादित्येतैर्व्यभिचारो हेतोः । अथाऽव्याप्त्या; तर्हि
वेशान्तरोत्पत्तिमत्कार्येषु कथं तस्या व्यापारः असन्निधानात् ?

१ समवायादिसम्बन्धनिराकरणविस्तरेण । २ किञ्च । ३ साध्य कारणं तस्य विशेषणं
बुद्धिमत् । ४ परेण यौगेन । ५ बुद्धिबुद्धिमद्भ्याम् । ६ बुद्धिमत् इयं बुद्धिरिति ।
७ गगनादौ समवायस्य व्यापकत्वात् । ८ चेत्तर्हि । ९ खमपि सर्वदाऽस्ति-यतः ।
१० सामल्लेन । ११ आत्मविशेषगुणेन । १२ आकाशगुणत्वात्परममहापरिमाणस्य
जनानाम् । आत्मा तु तेषां देहपरिमाण-इति । १३ व्याप्त्या वर्त्तमानत्वप्रतिषेधे ।
१४ ईश्वरलक्षणे बुद्धिमति । १५ नैयायिकेन । १६ बुद्धिमत्कारणत्वस्य । १७ का ।
१८ परेण । १९ घट । २० कुम्भकार । २१ चक्रादि ।

तथापि व्यापारेऽदृष्टस्याप्यश्यादिवेशेऽसन्निरहितस्योर्ध्वज्वलनादि-
हेतुता स्यादिति—“अशेरुर्ध्वज्वलनम्” [प्रश्न० व्यो० पृ० ४११]
इत्याद्यात्मसर्वगतत्वसाधनमयुक्तम् । अव्यतिरेकैकान्ते चात्ममार्त्तं
बुद्धिमार्त्तं वा स्यात्, तत्कथं मत्वर्थः ? न हि तदेव तेनैव
५ तद्भवति ।

किञ्च, असौ तद्बुद्धिः क्षणिका, अक्षणिका वा ? यदि क्षणिका;
तदा तस्याः कथं द्वितीयक्षणे प्रादुर्भावः कारणत्रयाधीनत्वा-
त्तस्य ? न चेश्वरेऽसमवायिकारणमात्ममनःसंयोगस्तच्छरीरादिकं
च निमित्तं कारणमस्ति । कारणत्रयाभावेऽप्यसदादिवुद्धिवैलक्ष-
१० ण्यात्तस्याः प्रादुर्भावे क्षित्यादिकार्यस्य घटादिकार्यवैलक्षण्याद्बुद्धि-
मत्कारणमन्तरेणाप्युत्पत्तिः किञ्च स्यात् ? महेश्वरबुद्धिवच्च
मुक्तात्मनामप्यानन्दादिकं शरीरादिनिमित्तकारणमन्तरेणाप्युत्प-
त्स्यत इति कथं बुद्ध्यादिविकलं जडात्मस्वरूपं मुक्तिः स्यात् ?

अथाऽक्षणिका तद्बुद्धिः । नन्वत्रापि ‘क्षणिकदशब्दोऽसदादि-
१५ प्रत्यक्षत्वे सति विभुद्रव्यविशेषगुणत्वात् सुखादिवत्’ इत्यत्रानु-
मानेऽनयैव हेतोरनेकान्तोऽस्या इव विभुद्रव्यविशेषगुणत्वेऽन्य-
स्यासदादिप्रत्यक्षत्वेऽपि नित्यत्वसम्भवात् । तथा ‘क्षणिका
महेश्वरबुद्धिर्बुद्धित्वादसदादिवुद्धिवत्’ इत्यनुमानविरोधश्च ।
अथ बुद्धित्वाविशेषेऽपि ईशासदादिवुद्धयोरक्षणिकत्वेतरलक्षणो
२० विशेषः परिकल्प्यते तथा घटादिक्षित्यादिकार्ययोरप्यकर्तृकर्तृ-
पूर्वकत्वलक्षणो विशेषः किञ्चेप्यते ? तथा च कार्यत्वादिहेतोर-
नेकान्तः । तदेवं बुद्धिमत्त्वासिद्धेः कथं तत्कारणत्वेन कार्यत्वं
व्याप्येत ?

अस्तु वाऽविचारितरमणीयं बुद्धिमत्कारणत्वव्याप्तं कार्यत्वम् ;
२५ तथाप्यत्र यादृग्भूतं बुद्धिमत्कारणत्वेनाऽभिनवकूपप्रासादादौ
व्याप्तं कार्यत्वं प्रमाणतः प्रसिद्धं यदक्रियादर्शिनोऽपि जीर्णकूपप्रा-
सादादौ लौकिकैर्तैरयोः कृतबुद्धिजनकं तादृग्भूतस्य क्षित्यादाव-
सिद्धेरसिद्धौ हेतुः । सिद्धौ वा जीर्णकूपप्रासादादाविवाऽ-

- १ सुकृतस्य । २ अशेरुर्ध्वस्थितमहादि, तस्य शुभपचनं भोजुदेवदत्तादृष्टेति ।
३ नैयायिकमते आत्मनः सर्वगतत्वात्तद्गुणोऽदृष्टमपि सर्वगतमेवातो देशान्तरे कालान्तरे
चात्रपात्रपटमुक्ताफलादीन् तद्भोजुदेवदत्तादृष्टं तत्र गत्वा सहकारिभूयोरशमयति ।
४ समवाय्यसमवायिनिमित्तेति । ५ समवायिकारणं त्वात्मास्ति । ६ नैयायिकमते ।
७ अक्षणिकबुद्धिपक्षेऽपि । ८ परममहापरिमाणेन व्यभिचारपरिहरार्थमेतत् । ९ पृ० ४
१० इतरः परीक्षकः ।

क्रियादर्शिनोपि कृतबुद्धिप्रसङ्गः । न च प्रकृत्याऽत्यन्तभिन्नोपि धर्मः शब्दमात्रेणानेदी हेतुत्वेनोपादीयमानोऽभिमतसाध्यसिद्धये समर्थो भवत्यन्यत्राप्यस्यैवाविरोधेनाशङ्काऽनिवृत्तेः । यथा वल्मीके धर्मिणि कुम्भकारकृतत्वसिद्धये मृद्धिकारत्वमात्रं हेतुत्वेनोपादीयमानम् । ५

नन्वेतत्कार्यसमं नाम जात्युत्तरम् । तदुक्तम्—“कार्यैधान्यत्व-
लेशेन येत्साध्यासिद्धिदर्शनं तत्कार्यसमम्” [] इति ।
अस्य चासदुत्तरत्वान्नातः प्रकृतसाध्यसिद्धिप्रतिबन्धोऽन्यथा
सकलानुमानोच्छेदः । शब्दानित्यत्वे हि साध्ये किं घटादिगतं
कृतकत्वं हेतुत्वेनोपादीयते, किं वा शब्दगतम्, उभयगतं वा ? १०
प्रथमपक्षे हेतोरसिद्धिः, न ह्यन्यगतो धर्मोऽन्यत्र वर्तते । द्वितीये
तु साधनविके लो दृष्टान्तः । तृतीयेप्युभयदोषानुषङ्गः, इत्यप्य-
सारम्; कारणमात्रजन्यतालक्षणस्य कृतकत्वस्य विपक्षे बाधकप्र-
माणबलादवित्यत्वमात्रव्याप्तत्वेनाऽवधारितस्य शब्देऽप्युपलम्भात्
तत्रोक्तदूषणस्यासदुत्तरत्वाज्जात्युत्तरत्वम् । न चैवं कार्यसामान्यं १५
बुद्धिमत्कारणत्वमात्रव्याप्तं क्षित्यादावुपलभ्यते, विपक्षे बाधक-
प्रमाणभावेन सन्दिग्धानैकान्तिकत्वात्तस्य, अन्यथाऽक्रियादर्शि-
नोपि कृतबुद्धिप्रसङ्गः । यदि च घटादिलक्षणं विशिष्टकार्यं
तन्मात्रैव्याप्तं प्रतिपद्याऽविशिष्टकार्यस्यैवापि क्षित्यादेस्तात्पूर्वकत्वं
सौभ्यते; तर्हि पृथ्वीलक्षणभूतस्य रूपरसगन्धस्पर्शवत्त्वं प्रतिपद्य २०
भूतत्वादेव चायोरपि तत्साध्यताम् । अथाऽत्र प्रत्यक्षादिप्रमाण-
बाधः, सोर्नैत्रापि समानः ।

१ क्षित्यादौ । २ सभावेन । ३ कार्यत्वशब्देन । ४ बुद्धिमतेतुकत्व । ५ विप-
क्षेऽबुद्धिमतेतुकत्वादौ । ६ कृतबुद्धयुत्पादकरूपस्य कार्यस्य । ७ क्षित्यादिकं घटादिवद्
बुद्धिमतेतुकं तर्वादिवद्बुद्धिमतेतुकं वेलाशङ्का । ८ वल्मीके कुम्भकारकृतो भवति
मृद्धिकारवाद् वेदादिवद् । ९ पूर्वोक्तम् । १० भेदलेशः स कीदृशः कृतबुद्धयनुत्पा-
दकः । ११ बुद्धिमतेतुकत्व । १२ कार्यसमजात्युत्तरात् । १३ घटादिगतकृतकत्वस्य
शब्देऽभावात् । १४ शब्दगतकृतकत्वस्य घटादावभावात् । १५ नित्ये । १६ यद्विल्यं
तत्र कृतकं यथाकाशमिति ज्ञानबलात् । १७ बुद्धिमत्कारणरहिते तर्वादौ । १८ बुद्धि-
मत्कारणरहिते तर्वादौ कार्यसामान्यं वर्तते बुद्धिमत्कारणरहिते घटादौ च कार्यसामान्यं
वर्तते । तर्हि बुद्धिमतेतुकमबुद्धिमतेतुकं वेति सन्दिग्धानैकान्तिकत्वम् । १९ कार्य-
त्वस्य । २० विपक्षे बाधकं प्रमाणं यदि स्यात् । २१ क्षित्यादौ । २२ दृष्टान्ते इव ।
२३ अक्रियादर्शिनोपि कृतबुद्धयुत्पादकत्वमात्रम्यासम् । २४ अक्रियादर्शिनः कृत-
बुद्धयनुत्पादकस्य । २५ परेण । २६ क्षित्यादौ बुद्धिमतेतुपूर्वकत्वेपि ।

यदप्युक्तम्—व्युत्पन्नप्रतिपत्तृणां नासिद्धत्वं कार्यत्वादेः; तदप्य-
युक्तम्; यतः प्रतिबन्धप्रतिपत्तिलक्षणा व्युत्पत्तिस्तेषाम्, तद्व्यति-
रिक्ता वा स्यात्? प्रथमपक्षे क्षित्यादिगतकार्यत्वौदौ प्रकृतसाध्य-
साधनाभिप्रेते व्युत्पत्त्यसम्भवः, यथोक्तसाध्यव्याप्तस्य तत्र तस्या-
५ भावात् । भावे वा सशरीरस्यासदादीन्द्रियग्राह्यस्यानित्यबुद्ध्यादि-
धर्मकलापोपेतस्य घटादौ तद्व्यापकत्वेन प्रतिपन्नस्यात्र ततः
सिद्धिः । न खलु हेतुव्यापकं विहायाव्यापकस्यास्तन्तविलक्षण-
साध्यधर्मस्य धर्मिणि प्रतिपत्तौ हेतोः सामर्थ्यम् । कारणमात्र-
प्रतिपत्तौ तु सिद्धसाध्यता ।

१० ननु बुद्धिमत्कारणमात्रं ततस्तत्र सिध्यत्पक्षधर्मताधलाद्विशिष्ट-
विशेषाधारमेव सेत्स्यति, निर्विशेषस्य सामान्यस्यासम्भवात्,
घटादौ प्रतिपन्नस्य चासदादेस्तन्निर्माणासामर्थ्यात् । नन्वेवं
क्षित्यादौ बुद्धिमत्कारणत्वासिद्धिरेव स्यादसदादेस्तन्निर्माणा-
सामर्थ्यादेर्न्यस्य च हेतुव्यापकत्वेन कदाचनान्यप्रतिपत्तेः खरवि-
१५ षाणवत्, निराधारस्य च सामान्यस्यासम्भवात् । न हि गोत्वा-
धारस्य खण्डादिव्यक्तिविशेषस्यासम्भवे तद्विलक्षणमद्विष्याद्या-
श्रितं गोत्वं कुतश्चित्प्रसिद्ध्यति ।

अस्मादशान्यादशविशेषपरित्यागेन कर्तृत्वमात्रानुमाने च
चेतनेतरविशेषत्यागेन कारणमात्रानुमानं किञ्चानुमन्यते? धूम-
२० मात्रात्पावकमात्रानुमानवत् । यादृशमेव हि पावकमात्रं पैङ्गल्या-
दिधर्मोपेतं कण्ठाक्षैर्विक्षेपकादित्वापाण्डुरत्वादिधर्मोपेतधूममा-
त्रस्य प्रत्यक्षानुपलम्भप्रमाणजनितोहास्यप्रमाणात्सर्वोपसंहारेण
व्यापकत्वेन महानसादौ प्रतिपन्नं तादृशस्यैवान्यत्रोप्येतोनुमानं
नात्यन्तविलक्षणस्य, व्यक्तिसम्बन्धित्वमात्रस्यैव भेदात् । न च
२५ व्यक्तीनामप्यात्यन्तिको भेदो महानसादिवदर्थ्यासामपि दृश्यते-
योपगमात् । न च कार्यविशेषस्यै कर्तृविशेषमन्तरेणानुपलम्भात्
तन्मात्रमपि कर्तृविशेषानुमापकं युक्तम्; तस्य कारणत्वमात्रेणैवा-
विनाभावनिश्चयात्, धूममात्रस्याग्निमात्रेणाविनाभावनिश्चयवत् ।

१ प्रतिबन्धोऽविनाभावः । २ अक्रियादशिनोपि कृतबुद्ध्युत्पादकत्वलक्षणे ।
३ क्षित्यादौ । ४ कार्यत्व । ५ क्षित्यादौ । ६ अशरीरसर्वबनित्यज्ञानत्वादिलक्षण ।
७ प्रोक्तक्षित्यादिके । ८ वसः । ९ क्षित्यादि । १० सर्वशलादिधर्मकलापोपेतसेवरस ।
११ कार्यत्वैति । १२ नेत्रादि । १३ परोक्ष । १४ स्त्रीकारेण । १५ पर्वतादौ ।
१६ जलस्य । १७ महानसास्य । १८ पर्वतादिरूपव्यक्तीनाम् । १९ समपत्र ।
२० अक्रियादशिनः कृतबुद्ध्युत्पादकलक्षणस्य । २१ बुद्धिमदर्थलक्षण । २२ कार्य-
मात्रम् । २३ कार्यमात्रस्य ।

घटादिलक्षणकार्यविशेषस्य तु कारणविशेषेणाविनाभावावगमः चान्दनादिधूमविशेषस्याग्निविशेषेणाविनाभावावगमवत् । तथापि कार्यमात्रस्य कारणविशेषानुमापकत्वे धूमादिकार्यविशेषस्य महानसादौ तत्कालवन्हाविनाभावोपलम्भाद् धूमघटिकादौ तन्मात्रं तत्कालवन्हानुमापकं स्यात् । अथ तत्र तत्कालवन्हानुमाने प्रत्य-^५क्षविरोधः; सोऽकृष्टजाते भूरुहादौ कर्त्रेऽनुमानेपि समानः । तत्कर्तुरतीन्द्रियत्वात्तदविरोधे धूमघटिकादौ बह्वेरेप्यतीन्द्रियत्वात्सोस्तु । भास्वरूपसम्बन्धवयविद्रव्यत्वान्नातीन्द्रियत्वं तस्येति चेत्; एतदेव कुतोऽवसितम् ? महानसादौ तथाभूतस्यास्योपलम्भाच्चेत्; तर्हि क्षित्यादिकर्तुः शरीरसम्बन्धि-^{१०}नोऽतीन्द्रियत्वं मा भूत्कुम्भकारादौ तस्यानुपलम्भात् ।

ननु वृक्षशाखाभङ्गादौ पिशाचादिः, स्वशरीरावयवप्रेरणे चात्माऽशरीरोऽपि कर्त्ताऽपलम्भः; इत्यप्यसुन्दरम्; पिशाचादेः शरीरसम्बन्धरहितस्य कार्यकारित्वानुपपत्तेर्मुक्तात्मवत् । तत्सम्बन्धेनैव हि कुम्भकारादौ कार्यकारित्वं दृष्टं नान्यथा । तत्सम्ब-^{१५}न्धोपेगमे चास्य दृश्यत्वप्रसङ्गः कुम्भकारादिवत् । तच्छरीरस्य दृश्यत्वाद्दृश्योसौ न पिशाचादिविपर्ययादिति चेत्; ननु शरीरत्वाविशेषेपि यथासदादिशरीरविलक्षणं तच्छरीरमभ्युपगम्यते तथा घटादिकार्यविलक्षणं भूरुहादिकार्यं कार्यत्वाविशेषेप्यभ्युपगम्यताम् । तथा चानेन प्रकृतो हेतुर्व्यभिचारी । तथासदादेः^{२०} शरीरसम्बन्धमात्रेणैव तदवयवानां प्रेरकत्वोपपत्तेर्नापरशरीरसम्बन्धस्तत्रोपयोगी 'तत्सम्बन्धमन्तरेण हि चेतनस्य स्वशरीरावयवेष्वन्यत्र वा कार्यकारित्वं नास्त्यनुपलम्भात्' इत्येतावन्मात्रमेव नियम्यत ईति महेश्वरस्यापि शरीरसम्बन्धेनैव कर्तृत्वमभ्युपगन्तव्यम् । २५

तच्छरीरं च तत्कृतं यद्यभ्युपगम्यते; तर्हि शरीरान्तरं तस्याभ्युपगन्तव्यमित्यनवस्थातः प्रकृतकार्ये तस्याऽव्यापारोऽपरापरशरीरनिर्वर्त्तने एवोपक्षीणशक्तित्वात् । तदनिष्पाद्यं चेत्; तर्त्तिककार्यम्, नित्यं वा ? प्रथमपक्षे तेनैव हेतोर्व्यभिचारस्तस्य कार्यत्वेप्यबुद्धिमत्पूर्वकत्वात् । बुद्धिमत्कारणान्तरपूर्वकत्वे चानवस्था,^{३०} तच्छरीरस्याप्यपरबुद्धिमत्कारणान्तरपूर्वकत्वात् । नित्यं चेत्;

- १ कार्यविशेषैव कारणविशेषेण न्यासित्वावपि । २ गोपालघटिकादौ । ३ गोपालघटिकादौ । ४ असदात्वात्मा । ५ परेण । ६ ईश्वरस्य । ७ भूरुहादिना । ८ अवयवप्रेरणे । ९ अवयवप्रेरणे । १० तर्हि । ११ परेण । १२ हि । १३ परेण । १४ क्लियादिकार्ये ।

तर्हि तच्छरीरस्य शरीरत्वाविशेषेपि नित्यत्वलक्षणः स्वभावातिक्रमो यथाभ्युपगम्यते, तथा भूरुहादेः कार्यत्वे सत्यप्यकर्तृपूर्वकत्वलक्षणोप्यभ्युपगम्यताम् इति स एव तैर्व्यभिचारः कार्यत्वादेः । तत्र प्रतिबन्धप्रतिपत्तिलक्षणा व्युत्पत्तिस्त्वेषाम् ।

५ अथ तद्व्यतिरिक्ता व्युत्पत्तिः; सा खिदुरागमाहितवासनावतां भवतु, न पुनस्तावन्मात्रेण कार्यत्वादेः साध्यं प्रति गमकत्वम् । अन्यथा वेदे मीमांसकस्य वेदाध्ययनवाच्यत्वादेरपौरुषेयत्वं प्रति गमकत्वं स्यात् ।

यञ्चोक्तम्—'साध्याभावेपि प्रवर्त्तमानो हेतुर्व्यभिचारीत्युच्यते ।

१० न च तत्र कर्त्रभावो निश्चितः किन्त्वंग्रहणम्' इति; तदुक्तिमात्रम्; प्रमाणाविषयत्वेपि स्थावरादौ कर्त्रभावातिशये गगनादौ रूपाद्यभावातिशयः स्यात् । तत्र रूपादीनां बाधकप्रमाणसङ्गावेनाभावनिश्चये अत्रापि तथा कर्त्रभावातिशयोस्तु । न चास्यानुपलब्धिलक्षणप्राप्तत्वादभावातिशयः; शरीरसम्बन्धेन हि कर्तृत्वं नान्यथा . १५ मुक्तात्मवत्, तत्सम्बन्धे चोपलब्धिलक्षणप्राप्तत्वप्रसङ्गः कुम्भकारादिवत् । तस्य हि शरीरसम्बन्ध एव दृश्यत्वं नान्यत्, स्वरूपेणात्मनोऽदृश्यत्वात् पिशाचादिशरीरवत् । तच्छरीरस्यादृश्यत्वोपगमे च किञ्चित्कार्यमप्यनुद्धिपूर्वकं स्यादित्युक्तम् ।

यत्सूक्ष्म-क्षित्याद्यन्वयव्यतिरेकानुविधानात्तेषामेव कारणत्वे २० धर्माधर्मयोरपि तन्न स्यात्; तन्न सूक्ष्मम्; जगद्वैचित्र्यान्यथानुपपत्त्यां तयोस्तत्कारणत्वप्रसिद्धेः । भूम्यादेः खलु सकलकार्ये प्रति साधारणत्वात् अदृष्टाख्यविचित्रकारणमन्तरेण तद्वैचित्र्यानुपपत्तिः सिद्धा ।

यदप्युक्तम्—तत्र बुद्धिमतोऽभावाद्ग्रहणं भावेप्यनुपलब्धिलक्षणप्राप्तत्वादेति सन्दिग्धव्यतिरेकित्वे सकलानुमानोच्छेदः । यथा सामग्र्या घूमादिर्जन्यमानो दृष्टस्तां नातिवर्त्तत इत्यन्यत्रापि समानम्; तदप्युक्तम्; यौदृग्भूतं हि घटादिकार्यं यादृग्भूतसामग्रीप्रभवं दृष्टं तौदृग्भूतस्यैव तदतिक्रमाभावो नान्यादृग्बिषयस्य घूमादिबदेवेत्युक्तं प्राक् ।

१ अनित्यत्वरूपत्वभावस्य । २ पूर्वोक्त एव । ३ स्थावरादिभिः । ४ भूरुहादीनाम् । ५ व्युत्पन्नानाम् । ६ यौग । ७ परेण । ८ कर्तुः । ९ कर्तुः । १० ईश्वरस्य । ११ अशरीरत्वात्स्य । १२ ईश्वर । १३ अक्रियादर्शिनः कृतानुत्पादकम् । १४ वक्रादिरूप । १५ कार्यस्य ।

यश्चेदमुक्तम्-ज्ञानचिकीर्षाप्रयत्नाधारता हि कर्तृता न सशरी-
रेतरता; इत्यप्यसङ्गतम्; शरीराभावे तदाधारत्वस्याप्यसम्भवा-
न्मुक्तात्मवत् । तेषां स्रष्टृत्पत्तौ आत्मा समंवायिकारणम्, आत्म-
मनःसंयोगोऽसमंवायिकारणम्, शरीरादिकं निमित्तकारणम् ।
न च कारणत्रयाभावे कार्योत्पत्तिरनभ्युपगमात् । अन्यथा मुक्ता-^५
त्मनोपि ज्ञानादिगुणोत्पत्तिप्रसङ्गात् “नवानां गुणनामत्यन्तो-
च्छेदो मुक्तिः” [] इत्यस्य व्याघातः । निमि-
त्तकारणमन्तरेणाप्येवामुत्पत्तौ च बुद्धिमत्कारणमन्तरेणाप्यङ्क-
रादेः किं नोत्पत्तिः स्यात् ? नित्यत्वाभ्युपगमात्तेषामदोषोयमित्य-
युक्तम्; प्रमाणविरोधात् । तथाहि-नैश्वरज्ञानादयो नित्यास्तत्त्वा-^{१०}
वसदादिज्ञानादिवत् । तज्ज्ञानादीनां दृष्टस्वभावातिक्रमे भूस्वहादी-
नामपि स स्यात् ।

न चाऽचेतनस्य चेतनानधिष्ठितस्य वास्यादिवत्प्रवृत्त्यसम्भ-
वात्, सम्भवे वा निरभिप्रायाणां देशादिनियमाभावप्रसङ्गात्
तदधिष्ठातेश्वरः सकलजगदुपादानादिज्ञाताभ्युपगन्तव्यः इत्य-^{१५}
भिर्घातव्यम्; तज्ज्ञत्वेनास्याद्याप्यसिद्धेः । न चास्य तत्कर्तृत्वादेव
तज्ज्ञत्वम्; इतरेतराश्रयानुपङ्गात्-सिद्धे हि सकलजगदुपादा-
नाद्यभिन्नत्वे तत्कर्तृत्वसिद्धिः, तत्सिद्धौ च तदभिन्नत्वसिद्धिः ।
अचेतनवचेतनस्यापि चेतनान्तराधिष्ठितस्य विष्टिकर्मकरादिवत्
प्रवृत्त्युपलम्भात्, महेश्वरेष्वधिष्ठात् चेतनान्तरं परिकल्पनीयम् ।^{२०}
स्वामिनोऽनधिष्ठितस्यापि प्रवृत्त्युपलम्भोऽर्कृष्टोत्पन्नाङ्कराद्युपादाने
समानः । घटाद्युपादानस्यानधिष्ठितस्याप्रवृत्त्युपलम्भात् तथाङ्करा-
द्युपादानस्यापि कल्पने विष्टिकर्मकरादेः स्वाम्यनधिष्ठितस्याप्रवृ-
त्तेर्महेश्वरेपि तथा स्यात्, तथा चानवस्था । चेतनस्याप्यपर-
चेतनाधिष्ठितस्य प्रवृत्त्यभ्युपगमे च ‘अचेतनं चेतनाधिष्ठितम्’^{२५}
इत्यत्र प्रयोगेऽचेतनमिति धर्मविशेषणस्याचेतनत्वादिति हेतो-
ऽप्यार्थकत्वम्, व्यं वच्छेदाभावात् । स्नेहेतुं प्रतिनिर्येमाद्य अचेत-
नस्यापि देशादिनियमो ज्योत्यान्, तस्य भवताप्यवस्थाभ्युपग-
मनीयत्वात्, अन्यथा सर्वत्र सर्वदा सर्वकार्याणामुत्पत्तिः स्यात्,
चेतनस्याधिष्ठातुर्नित्यव्यापित्वाभ्यां सर्वत्र सर्वदा सञ्चिदानात् ।^{३०}

१ ग्रन्थस्य । २ अपेक्षितस्य । ३ ज्ञानस्यत्यानाम् (कारणानां) । ४ परेण ।
५ पालकि डोली इति वा लोके ख्याता संस्कृते च श्लोकिकेति । ६ तर्हि । ७ चेतनस्य ।
८ फलाभावात् । ९ स्वस्य कार्यस्य । १० उपादानकारणम् । ११ अदृष्टादेः ।
१२ युक्त इत्यर्थः । १३ योगेन ।

- न च कारकशक्तिपरिज्ञानाविनाभावि तद्व्ययोकृत्वम्, तस्या-
नेकघोपलम्भात् । किञ्चित्खलुपादानाद्यपरिज्ञानेऽपि प्रयोक्तृत्वं
दृष्टम्, यथा स्वापमदमूर्च्छाद्यवस्थायां शरीरैवयवानाम् । किञ्चि-
त्पुनः कतिपयकारकपरिज्ञाने, यथा कुम्भकारादेः करादिव्या-
५ पारेण दण्डादिप्रयोक्तृत्वम् । न खलु तस्याखिलकारकोपल-
म्भोस्ति; धर्माधर्मयोस्तद्भेदभूतयोरनुपलम्भात् । उपलम्भे वा
तयोर्देशादिनियतेषु कार्येष्विच्छाव्याघातो न स्यात्, सर्वत्राऽ-
तीन्द्रियार्थदर्शी स्यात् । न हि कश्चित्तादृशो बुद्धिमानस्ति यो न
किञ्चित्करोति कार्यं वा तादृशं विद्यते यत्राऽदृष्टं नोपयुज्यते ।
१० कारणशक्तेश्चातीन्द्रियत्वात्तदपरिज्ञानं सर्वप्राणिनां सुप्रसिद्धम् ।
यथास्थानं चास्याः सद्भावो निवेदितः । अन्येषु शरीराऽऽनायासतो
वाग्व्यापारमात्रेण; यथा स्वामिनः कर्मकरादिप्रयोक्तृत्वम् । अस्तु
वा कारकप्रयोक्तृत्वस्य परिज्ञानेनाविनाभावः, तथाप्यशरीरेश्वरे
तस्यासम्भवः, सर्वत्र शरीरसम्बन्धे सत्येवास्योपलम्भात् ।
१५ यदप्यभ्यघाति-बुद्धिमत्कारणपूर्वकत्वमात्रस्य साध्यत्वाच्च
विशेषविरुद्धता कार्यत्वस्य, अन्यथा धूमाद्यनुमानोच्छेदः; तदप्य-
भिधानमात्रम्; कार्यमात्राद्धि कारणमात्रानुमाने विशेषविरुद्ध-
ताऽसम्भवस्तस्य तेन व्याप्तिप्रसिद्धेः, न पुनर्बुद्धिमत्कारणानुमाने
तस्य तेनोप्याप्तेः प्रतिपादितत्वात् । व्याप्तौ वा अनीश्वरसर्वज्ञत्वा-
२० दिधर्मकलापोपेत एव कर्त्ता^१ सिध्येत्, तथाभूतेनैव घटादौ
व्याप्तिप्रसिद्धेः, न पुनरीश्वरत्वादिविरुद्धधर्मोपेतैः, तस्यै तद्व्याप-
कत्वेन स्वप्नेयप्रतिपत्तेः । तथाप्यस्यै तं प्रति गमकत्वे महानस-
प्रदेशे बन्धिव्याप्तौ धूमः प्रतिपन्नो गिरिशिखरादौ प्रतीयमानो
बन्धिविरुद्धधर्मोपेतोदकं प्रति गमकः स्यात् । धूमाद्यनुमानोच्छे-
२५ दासम्भवश्च प्राक्प्रसङ्गेन प्रतिपादितः ।

यच्चान्यदुक्तम्—‘सर्वज्ञता चाशेषकार्यकारणात्’ इत्यादि; तदप्य-
युक्तम्; कार्यकारित्वस्य कारणपरिज्ञानाविनाभावासम्भवस्योक्त-
त्वात् । एकस्याशेषकार्यकारिणो व्यवस्थापकप्रमाणाभावात्,
कार्यत्वादेश्च कृतोत्तरत्वात्कथमतः सर्वज्ञतासिद्धिः ?

१ प्रेरकत्वम् । २ प्रेरकत्वम् । ३ प्रेरकत्वम् । ४ तस्य घटादिकार्यत्वम् । ५ अस्मा-
द्भेदे कार्यं भवत्येवेदं न भवत्येवेतीच्छा । ६ न च तथा । ७ नेति संबन्धः ।
८ प्रयोक्तृत्वम् । ९ विशेषविरुद्धताया असम्भवो न च । १० कार्यत्वम् । ११ बुद्धि-
मत्कारणपूर्वकत्वेन । १२ शिखादौ । १३ कर्त्ता । १४ ईश्वरसर्वज्ञत्वादिधर्मकलापो-
पेतसाध्यत्वम् । १५ कार्यत्वम् । १६ कार्यत्वम् । १७ ईश्वरसर्वज्ञत्वादिधर्मकलापोपेत-
साध्यं प्रति । १८ विस्मरेण ।

यद्योक्तम्—‘तथा विश्वतश्चक्षुः’ इत्यागमादप्यसौ सिद्धः; तद-
प्युक्तिमात्रम्; अन्योन्याभयानुषङ्गात्—प्रसिद्धप्रामाण्यो ह्यागमस्तौ-
त्प्रसाधको नान्यथातिप्रसङ्गात् तैतस्तत्प्रामाण्यप्रसिद्धौ महेश्वर-
सिद्धिः, तत्सिद्धौ च तत्प्रणीतत्वेनागमप्रामाण्यप्रसिद्धिः । अन्ये-
श्वरप्रणीतागमात्तत्सिद्धौ तस्याप्यन्येश्वरप्रणीतागमात्सिद्धावी-
श्वरागमानवस्था । पूर्वेश्वरप्रणीतागमात्तत्सिद्धौ परस्परभयः ।
स्वप्रणीतागमात्तत्सिद्धौ चान्योन्यलभयः । नित्यस्य त्वागमस्य
परैः प्रामाण्यं नैष्यते महेश्वरकल्पनानर्थक्यप्रसङ्गात्, प्रामाण्य-
स्योत्पत्तौ ह्यती चेश्वरसङ्गावस्याकिञ्चित्करत्वात् ।

यदप्युक्तम्—कारुण्याच्छरीरादिसर्गे प्राणिनां प्रवर्तते; तद-
प्युक्तम्; सुखोत्पादकस्यैव शरीरादिसर्गस्योत्पादकस्य प्रस-
ङ्गात् । न हि करुणावतां यातनाशरीरोत्पादकत्वेन प्राणिनां
सुखोत्पादकत्वं युक्तम् । धर्माधर्मसहकारिणः कर्तृत्वात्सुखव-
दुःखस्याप्युत्पादकोऽसौ, फलोपभोगेन हि तयोः प्रक्षयादपवर्गः
प्राणिनां स्यात् इति करुणयापि तद्विधाने प्रवृत्त्यविरोधः; इत्य-
प्यसङ्गतम्; तयोरीश्वरानायत्तत्वे कार्यत्वे च अभ्यामेव कार्यत्वा-
देरनैकान्तिकत्वप्रसङ्गात्, तदुत्पत्तौ तस्याव्यापारे च विनाशेप्य-
व्यापारोस्तु, कारणान्तरोत्पन्नसुखदुःखलक्षणफलोपभोगेनानयोः
प्रक्षयसम्भवात् । न हीश्वरस्यापि तत्फलोत्पादनादन्यत्तयोः क्षय-
कर्तृत्वम् ।

२०

किञ्च, धर्माधर्मौ निष्पाद्य पुनस्तयोः क्षयकरणे किमुत्पत्ति-
करणप्रयासेन ? न हि प्रेक्षाकारी स्वार्थो पुनः समीकरणन्यायेना-
त्मानमायासयति “प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य दूरादस्पर्शनं वरम्”
[] इति प्रसिद्धेश्च । अन्यथा प्रक्षालिताशुचिमोदकपरित्या-
गन्यायानुसरणप्रसङ्गः ।

२५

अपवर्गविधानार्थं चास्य प्रवृत्तौ कथमपूर्वकर्मसञ्चयकर्तृत्वम् ?
तत्सहकारिणश्चास्य सुखदुःखोत्पादकशरीरोत्पादकत्वे वरं तत्फे-
लोपभोक्तृप्राणिगणस्यैव तत्सव्यपेक्षस्य तदुत्पादकत्वमस्तु किम-
हेश्वरपरिकल्पनया ? सर्वत्र कार्येऽदृष्टस्य व्यापारात् । तथाहि—

१ ईशः । २ ईश्वर । ३ अग्रसिद्धप्रामाण्यादागमादन्वेषामीश्वराभावः साधदि ।
४ यतः प्रसिद्धप्रामाण्यागमः ईश्वरप्रतिपादकः । ५ नैयायिकैः । ६ अन्यथा ।
७ तीमवेदनाजनक । ८ सुखदुःख । ९ महेश्वरस । १० ईशकारणरहितत्वे ।
११ भूमिं खनित्वा । १२ तयोर्धर्माधर्मयोः । १३ अग्रसिद्धस्य । १४ निश्चितं कार्यं
यमि प्राण्यदृष्टपूर्वकं भवतीति साध्यो धर्मः तदुपभोग्यत्वात् ।

यद्यदुपभोग्यं तत्तद्दृष्टपूर्वकम् यथा सुखादि, उपभोग्यं च प्राणिनां निखिलं कार्यमिति ।

ननु यथा प्रभुः सेवामेर्दानुरोधोत्फलप्रदो नाप्रभुस्तथेश्वरोपि कर्मापेक्षः फलप्रदो नान्यः; इत्यपि मनोरथमात्रम्; राक्षो हि ५ सेवायत्तफलप्रदस्य यथा रागादियोगो नैर्घृण्यं सेवायत्तता च प्रतीता तथेशस्याप्येतत्सर्वं स्यात्, अन्यथाभूतस्य अन्यपरिद्वारेण क्वचिदेव सेवके सुखादिप्रदत्वानुपपत्तेः ।

अथ यथा स्वल्पत्यादीनामेकसूत्रधारनियमितानां महाप्रासादादिकार्यकरणे प्रवृत्तिः, तथाप्राप्येकेश्वरनियमितानां सुखा- १० अनेककार्यकरणे प्राणिनां प्रवृत्तिः; इत्यप्यसाम्प्रतम्; नियमाभावात् । न ह्ययं नियमः-निखिलं कार्यमेकेनैव कर्त्तव्यम्, नाप्येकनियतैर्बहुभिरिति; अनेकधा कार्यकर्त्तृत्वोपलम्भात् । तथाहि-क्वचिदेक एवैककार्यस्य कर्त्तापलभ्यते यथा कुविन्दः पटस्य । क्वचिदेकोप्यनेककार्याणाम् यथा घटघटीशरावोदञ्चना- १५ दीनां कुलालः । क्वचिदनेकोप्यनेककार्याणाम् यथा घटपटमकुटशकटादीनां कुलालादिः । क्वचिदनेकोप्येककार्यस्य यथा क्षि विकोद्ग्रहनादिकार्यस्यानेकपुरुषसंघातः । न चानेकस्थपत्यादिनिष्पाद्ये प्रासादादिकार्येऽवश्यतयैकसूत्रधारनियमितानां तेषां तत्र व्यापारः; प्रतिनियताभिप्रायाणामप्येकसूत्रधारऽनियमि- २० तानां तत्करणाविरोधात् ।

किञ्च, अदृष्टापेक्षस्यार्थं कार्यकर्तृत्वे तत्कृतोपकारोऽवश्यंभावी अनुपकारकस्यापेक्षायोगात् । तस्य चार्तो मेदे सम्बन्धासम्भवः । सम्बन्धकल्पनार्था चानवस्था । अमेदे तत्करणे महेश्वर एव कृत इत्यदृष्टकार्यतास्य । नाऽस्यादृष्टेन किञ्चित्क्रियते सम्भूयै २५ कार्यमेव विधीयते सहकारित्वस्यैककार्यकारित्वलक्षणत्वात् । इत्यप्यसाम्प्रतम्; सहकारिसव्यपेक्षो हि कार्यजननस्वभावः तस्यादृष्टादिसहकारिसन्निधानाद्यदि प्रागप्यस्ति तदोत्तरकालमात्रिसकलकार्योत्पत्तिस्तदैव स्यात् । तथाहि-यद्येदा यजननसमर्थे तत्तदा तज्जनयत्येव यथान्त्यावस्थीमासं बीजमङ्कुरम्, प्रागप्युत्तर-

१ वस्तु । २ यस्य पुरुषस्य । ३ स्वामी । ४ विशेष । ५ अनुसरणम् । ६ निष्कृपत्वम् । ७ प्रक्षकादीनाम् । ८ ईश्वरस्य । ९ ईश्वरात् । १० तत्रेश्वरस्य निखिलं विलीयते । ११ ईश्वरादृष्टान्यामेकीभूय । १२ फलमात्रतयाऽनुपगतो महेश्वरो धर्मा उत्तरकालमात्रे सकलं कार्यमदृष्टादिसन्निधानात्प्राप्य जनयतीति साध्यो धर्मः तदा तस्य तज्जननसामर्थ्यादिति शेषः । १३ नश्यदवसामासम् ।

कालभावि सकलकार्यजननसमर्थश्चैकस्वभावतयाभ्युपगतो महे-
श्वर इति । तदा तदजनने वा तज्जननसामर्थ्याभावः, यद्धि यदा
यन्न जनयति न तच्चदा तज्जननसमर्थस्वभावम् यथा कुसूलस्थं
बीजमङ्कुरमजनयन्न तज्जननसमर्थस्वभावम्, न जनयति चोत्तर-
कालभावि सकलं कार्यं पूर्वकार्योत्पत्तिसमये महेश्वर इति । ५

तज्जननसमर्थस्वभावोप्यसौ सहकार्यऽभावात्तथा तन्न जन-
यति; इत्यपि चार्त्तम्; समर्थस्वभावस्यापरापेक्षाऽयोगात् ।
'समर्थस्वभावश्चापरापेक्षश्च' इति विरुद्धमेतत्, अनीधेयाऽप्र-
हेयौतिशयत्वात्तस्य ।

किञ्च, पते सहकारिणः किं तदायत्तोत्पत्तयः, अतदायत्तोत्प-१०
त्तयो वा ? प्रथमपक्षे किं नैकदैवोत्पद्यन्ते ? तदुत्पादकान्यसहका-
रिवैकल्याच्चेदनवस्था । तथा चास्यापरापरसहकारिजनने एवो-
पक्षीणशक्तित्वात् प्रकृतकार्ये व्यापारः । बीजाङ्कुरादिवदनादि-
त्वात्तत्प्रवाहस्य नानवस्था दोषायेत्यभ्युपगमे महेश्वरकल्पना-
वैयर्थ्यम्, स्वसामर्थ्यधीनोत्पत्तितया पूर्वपूर्वसामग्रीविशेषवशा-१५
दुपरापराखिलकार्योत्पत्तिप्रसिद्धेः । अथातदायत्तोत्पत्तयः; तर्हि
तैरेव कार्यत्वादिहेतवोऽनैकान्तिकाः इति ।

यत्तेन 'महाभूतादि व्यक्तं चेतनाधिष्ठितं प्राणिनां सुखदुःख-
निमित्तं रूपादिमत्त्वानुयुक्त्यादिवत्' इत्यादीनि चार्त्तिककारादिभि-
रुपन्यस्तप्रमाणानि निरस्तानि; यादृशं हि रूपादिमत्त्वमनित्यत्वं २०
च चेतनाधिष्ठितं वास्यादौ प्रसिद्धं तादृशस्य क्षित्यादावसिद्धेः ।
रूपादिमत्त्वमात्रस्य च चेतनाधिष्ठितत्वेन प्रतिर्वन्धासिद्धेः आश-
ङ्कितविपक्षवृत्तितयाऽनैकान्तिकत्वम् । प्रतिवन्धाभ्युपगमे चेष्ट-
विपरितीतसाधनाद्विरुद्धमित्यादि पूर्वोक्तं सर्वमत्रापि योजनीयम् ।

किञ्च, ईश्वरबुद्धेरनित्यत्वप्रसाधनात्तदभिन्नस्येश्वरस्यानित्य- २५
त्वप्रसिद्धेस्तस्याप्यपरबुद्धिमदधिष्ठितत्वप्रसङ्गः स्यादित्यनवस्था ।
तदनधिष्ठितत्वे वा तेनैवानेकान्तो हेतोः ।

यच्चोक्तम्—'सर्गादौ पुरुषाणां व्यवहारः' इत्यादि; तत्रोत्तरकालं
प्रबुद्धानामित्येतद्विशेषणमसिद्धम् । न खलु प्रलयकाले प्रलुप्त-

१ आरोपयिष्यमद्यनयोऽतिशयोऽनापेयः । २ अन्यैः स्फोटयितुमशक्योऽतिशयोऽ-
प्रहेयः । ३ ईश्वरानपेक्षोत्पत्तयः ४ सहकारिभिः । ५ साधयवकार्यत्वहेतुनिराकरण-
परेण अन्येन । ६ अविनाशमासिद्धेः । ७ भूतहादिवचेतनानधिष्ठिते महाभूतादित्येक
रूपादिमत्त्वं वर्तते वास्यादिवचेतनाधिष्ठिते वा इति । ८ सर्वश्रुत्यादियमोपेक्षादिपरी-
तसासर्वश्रुत्यादियमोपेतस्य ।

ज्ञानस्मृतयो वितनुकरणाः पुरुषाः सन्ति, तस्यैव स्रीयाऽ-
प्रसिद्धेः । सिद्धौ वा स्वकृतकर्मवशाद्विशिष्टज्ञानान्तरेषु (नरो)त्य-
त्तैस्तेषां कथं वितनुकरणः प्रलुप्तज्ञानस्मृतित्वं वा ? सन्दिग्धवि-
पक्षव्यावृत्तिकत्वादनैकान्तिकञ्च हेतुः ।

५ किञ्च, अन्योपदेशपूर्वकत्वमात्रे साध्ये सिद्धसाध्यता; अना-
देव्यवहारस्याशेषपुरुषाणामन्योपदेशपूर्वकत्वेनेष्टत्वात् । ईश्वरो-
पदेशपूर्वकत्वे तु साध्येऽनैकान्तिकता, अन्यथापि तत्सम्भवात् ।
साध्यविकर्तृता च दृष्टान्तस्य । न चास्योपदेशपूर्वत्वसम्भवो विमु-
क्तत्वान्मुक्तात्मवत् । तच्च वितनुकरणतयोपगमात्प्रसिद्धम् ।

१० 'स्थित्वा प्रवृत्तेः' इति चेश्वरेणैवानैकान्तिकम्, स हि क्रमव-
त्कार्येषु स्थित्वा प्रवर्त्तते न च चेतनान्तराधिष्ठितोऽनवस्था-
प्रसङ्गात् इति ।

अनयैव दिशा 'सप्तभुवनान्येकबुद्धिमन्निर्मितानि एकवस्त्वेन्त-
र्गतत्वादेकावसेथान्तर्गतापवरकवत्' इत्यादिपरकीयप्रयोगोऽ-
१५ भ्यूहः । न ह्येकावसथान्तर्गतानामपवरकादीनामेकसूत्रधार-
निर्मितत्वनियमः येनेश्वरः सकलभुवनैकसूत्रधारः सिद्धेत्,
अनेकसूत्रधारनिर्मितत्वस्याप्युपलम्भात् ।

एकाधिष्ठाना ब्रह्मादयः पिशाचान्ताः परस्परातिशयवृत्ति-
त्वात्, इह येषां परस्परातिशयवृत्तित्वं तेषामेकायत्तता दृष्टा
२० यथेह लोके गृहग्रामनगरदेशाधिपतीनामेकसिन्सार्वभौमनर-
पती, तथा भुजगरक्षोयक्षप्रभृतीनां परस्परातिशयवृत्तित्वं च, तेन
मन्यामहे तेषामेकसिन्नीश्वरे पारतन्त्र्यम्; इत्यसम्यक्; अत्र हि
'ईश्वराख्येनाधिष्ठायकेनैकाधिष्ठानाः' इति साध्येऽनैकान्तिकता
हेतोर्विपर्यये वाचकप्रमाणाभावात् प्रतिबन्धोऽसिद्धेः । दृष्टान्तस्य च
२५ साध्येविकलता । 'अधिष्ठायकमात्रेण साधिष्ठानाः' इति साध्ये
सिद्धसाध्यता, स्वर्निकायस्वामिनः शक्रादेर्भवान्तरोपासाऽदृष्टस्य
चाधिष्ठायकतयाभ्युपगमात् ।

१ प्रलयकालसमये एव न तु पश्चात् । २ परोपदेशरहिते भेद्युनादिव्यवहारवति
पुंक्ति । ३ (हेतोः) । ४ ईश्वरोपदेशं विनापि । ५ व्यवहारे प्रलम्बनियतत्वस्य ।
६ पुत्रादीनां मात्राभ्युपदेशपूर्वकत्वेनेश्वरोपदेशपूर्वकत्वाभावात् । ७ विगतमुक्तत्वात् ।
८ साधनम् । ९ आकाश । १० सन्दिह । ११ ईश्वराभिप्ताः कार्यकरणे । १२ सन्दि-
ग्धानैकान्तिकता । १३ विपक्षे—इदाम्बिलतत्रेण गृहग्रामनगरदेशाधिपतिषु ।
१४ ईश्वराख्येनैकाधिष्ठायकेन परस्परातिशयवृत्तित्वसाविनाभावसिद्धेः । १५ सार्व-
भौमनरपती ईश्वरमेरुत्वासिद्धेः ।

ततो अहेश्वरस्याशेषजगत्कर्तृत्वप्रसाधकस्यानवद्यप्रमाणस्या-
सम्भवात् कुतोऽनादिमुक्तत्वसिद्धिर्यतोऽनाद्यशेषज्ञत्वमस्य स्यात् ।
प्रयोगः-क्षित्वादिकं नैकैकस्यभावभावपूर्वकं विभिन्नदेशकाला-
कारत्वात् । यदित्यं तदित्यम् यथा घटपटमकुटशकटादि,
विभिन्नदेशकालाकारं चेदम्, तस्मान्नैकैकस्यभावभावपूर्वक-
मिति । न चेदमसिद्धं साधनम् । सर्वोपपैततर्वादौ धर्मिणि विभि-
न्नदेशकालाकारत्वस्य सुप्रसिद्धत्वात् । नाप्यनैकान्तिकं विरुद्धं
वा विपक्षस्यैकदेशे तत्रैव वा वृत्तेरभावात् ।

नन्वैकस्याप्येककार्यकरणकुशलस्य कर्तृविचित्रसहकारिसा-
क्षिभ्यो विचित्रकार्यकारित्वं दृश्यते, अतोऽनैकान्तः, इत्यप्यनुपप-
न्नम्, तत्राप्यैकस्यभावत्वस्यासिद्धेः, स्वरूपमेदयतां सहकारित्व-
स्यासम्भवप्रतिपादनात् । नापि कालास्ययापदिहम्, प्रत्यक्षाग-
माभ्यां पक्षस्याबाध्यमानत्वात् । न हि क्षित्वादौ विचित्रकार्ये
प्रत्यक्षैकैकस्यभावः कसौपलभ्यते, तस्यातीन्द्रियतया प्रत्यक्षागो-
चरत्वस्य प्रागेव प्रतिपादनात्, आगमस्यापि तत्प्रतिपादकस्य ।
प्रागेव प्रतिषेधात् । नापि सत्प्रतिपक्षम्, विपरीताद्योपस्थापक-
स्यानुमानान्तरस्याभावात्, कार्यत्वादिहेतूनां चात्रैवानेकदोषदु-
ष्टत्वप्रतिपादनादिति ।

ननु साधूक्तमावरणापाये सर्वज्ञत्वमिति । तस्य प्रकृतेरेव अत्रै-
वावरणसम्भवात्, नात्मनस्तस्यावरणाभावात् "प्रधानपरिणामः २०
शुद्धं कृष्णं च कर्म" [इत्यभिधानात् । निखिलजग-
त्कर्तृत्वाच्चास्या एवाशेषज्ञत्वमस्तु; तदेतदव्यसमीक्षिताभिधान-
म्, कर्मणः प्रधानपरिणामताप्रतिषेधात् सकलजगत्कर्तृत्वस्य
चासिद्धेः । ननु प्रकृतिप्रभवैवेयं जगतः सृष्टिप्रक्रिया, तत्कथं
तस्यास्तकर्तृत्वासिद्धिः ? तथा हि—

२५

"प्रकृतेर्महान्ततोऽहङ्कारस्तसाद्गणश्च षोडशकः ।
तस्मादपि षोडशकात्पञ्चभ्यः पञ्च भूतानि ॥"

[सांख्यका० २१]

अर्थं हि प्रकृतेर्महान्=विषयाभ्यवसायलक्षणा बुद्धिदत्पद्यते ।
बुद्धेर्माहङ्कारोऽहं सुभगोऽहं दर्शनीय इत्याद्यभिमानलक्षणः । ३०
अहङ्कारात्पञ्च तन्मात्राणि शब्दस्पर्शरूपरसगन्धात्मकानि, इन्द्रि-
याणि चैकादश पञ्च बुद्धीन्द्रियाणि श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाग्राणल-
क्षणाणि, पञ्च कर्मेन्द्रियाणि वाक्पाणिपादपायूपस्यसंज्ञानि,

१ कवनादिपञ्चमकृतत्वात् । २ प्रकृतेः । ३ क्रमः ।

मनश्च सङ्कल्पलक्षणम्—‘भोजनार्थं हि तत्र गृहे यास्यामि किं दधि भविष्यति गुडो वा भविष्यति’ इत्येवं सङ्कल्पवृत्तिर्मनः। पञ्चभ्यश्च तन्मात्रेभ्यः पञ्च भूतानि—शब्दादाकाशं, स्पर्शाद्वायुं, रूपात्तेजः, रसादापः, गन्धात्पृथ्वीति। पुरुषश्चेति। पञ्चविंशतितत्त्वानि।

५ प्रकृत्यात्मकाश्चैते महदादयो मेदाः, न त्वऽतोऽत्यन्तमेदिनो लक्षणमेदाभावात्। तथाहि—

“त्रिगुणमविवेकि विषयः सामान्यमचेतनं प्रसवधर्मि।
व्यक्तं तथा प्रधानं तद्विपरीतस्तथा च पुमान् ॥”

[सांख्यका० ११]

१० लोकं हि यदात्मकं कारणं तदात्मकमेव कार्यमुपलभ्यते यथा कृष्णैस्तनुभिरारब्धः पटः कृष्णः। एवं प्रधानमपि त्रिगुणात्मकम्, तथा बुद्ध्यहङ्कारतन्मात्रेन्द्रियभूतात्मकं व्यक्तमपि। तथाऽविवेकि—‘इमे सत्त्वादेव इदं च महदादि व्यक्तम्’ इति पृथक्कुर्वन् न शक्यते। किन्तु ‘ये गुणास्तद्व्यक्तं यद्व्यक्तं ते गुणाः’ इति। तथा

१५ व्यक्ताव्यक्तद्वयमपि विषयो भोग्यस्वभावत्वात्। सामान्यं च सर्व-पुरुषाणां भोग्यत्वात्पण्यस्वीवत्। अचेतनात्मकं च सुखदुःखमोहावेदकत्वात् प्रसवधर्मिवत्। तथाहि—प्रधानं बुद्धिं जनयति, बुद्धिरप्यहङ्कारम्, अहङ्कारोपि तन्मात्राणीन्द्रियाणि चैकादश, तन्मात्राणि च महाभूतानीति।

२० प्रकृतिविकृतिभावेन परिणामविशेषाल्लक्षणमेदोप्यविरुद्धः। यथोक्तम्—

“हेतुमदनित्यमव्यापि सक्रियमनेकमाश्रितं लिङ्गम्।
साधयवं परतन्त्रं व्यक्तं विपरीतमव्यक्तम् ॥”

[सांख्यका० १०]

२५ व्यक्तमेव हि कारणवत्; तथाहि—प्रधानेन हेतुमती बुद्धिः, बुद्ध्या चाहङ्कारः, अहङ्कारेण पञ्च तन्मात्राण्येकादश चैन्द्रियाणि, भूतानि तन्मात्रैः। न त्वेवमव्यक्तम्—तस्य कुतश्चिदनुत्पत्तेः। तथा व्यक्तमनित्यम् उत्पत्तिधर्मकत्वात्, नाव्यक्तम् तस्यानु-

१ महादादिकार्यं त्रिगुणादिरूपेण व्यक्तम्। २ व्यक्ताऽव्यक्ताभ्याम्। ३ प्रधानमेव त्रिगुणात्मकम्। महादादिकार्यं कार्यं त्रिगुणात्मकं सादित्युक्ते सत्याह। ४ आदिपदेन रजस्तमसी। ५ पुरुषेण। ६ स्वरूपावसानम्। ७ लक्षणमेदाभावात्कार्यकारणभावः सादित्युक्ते आह। ८ महदादि। ९ प्रधानम्। १० हेतुमात्रम्। ११ महदादि कार्यम्। १२ कारणम्।

त्वत्तिमन्वात् । यथा च प्रधानपुरुषौ दिवि चान्तरिक्षेऽत्र सर्वत्र व्यापितया वर्तते न तथा व्यक्तम् । यथा च संसारकाले त्रयोदशविधेन बुद्ध्यहङ्कारेन्द्रियलक्षणेन संयुक्तं सूक्ष्मशरीरादिकं व्यक्तं संसरति, नैवमव्यक्तं तस्य विभ्रुत्वेन सक्रियत्वायोगात् । बुद्ध्यहङ्कारादिभेदेन चानेकविधं व्यक्तम्, नाव्यक्तम् तस्यैकस्यैव सतो लोकत्रयकारणत्वात् । आश्रितं च व्यक्तम्, यद्यस्मादुत्पद्यते तस्य तदाश्रितत्वात् । न त्वेवमव्यक्तम् तस्याकार्यत्वात् । लिङ्गं च 'ह्यं गच्छति' इति कृत्वा, प्रलयकाले हि भूतानि तन्मात्रेषु लीयन्ते, तन्मात्राणीन्द्रियाणि चाहङ्कारे, अहङ्कारो बुद्धौ, बुद्धिश्च प्रधाने । न चाव्यक्तं क्वचिदपि लयं गच्छतीति तस्याविद्यमान-१० कारणत्वात् । सावयवं च व्यक्तम् शब्दस्पर्शरूपरसगन्धात्मकैरवयवैर्युक्तत्वात् । न त्वेवमव्यक्तम् प्रधानात्मनि शब्दादीनामनुपलब्धेः । यथा च पितरि जीवति पुत्रो न स्वतन्त्रो भवति तथा व्यक्तं सर्वदा कारणात्तत्त्वात्परतन्त्रम् । न त्वेवमव्यक्तं तस्य नित्यमकारणाधीनत्वत् । १५

ननु प्रधानात्मनि कुतो महदादीनां सद्भावसिद्धिर्यतः प्रागुत्पत्तेः सदेव कार्यमिति चेत् ।

“असदकरणादुपादानग्रहणात्सर्वसम्भवाभावात् ।

शक्यस्य शक्यकरणात्कारणभावाच्च सत्कार्यम् ॥”

[सांख्यका० ९] २०

इति हेतुपञ्चकात् । यदि हि कारणात्मनि प्रागुत्पत्तेः कार्यं नाभविष्यत्तदा तन्न केनचिदकरिष्यत । यदसत्तत्र केनचित्क्रियते यथा गगनाम्भोरुहम्, असच्च प्रागुत्पत्तेः परमते कार्यमिति । क्रियते च तिलादिभिस्तैलादिकार्यम्, तस्मात्तच्छक्तितः प्रागपि सत्, व्यक्तिरूपेण तु कापिलैरपि प्राक् सत्त्वस्यानिष्ट-२५ त्वात् ।

यदि चासद्भवेत्कार्यं तर्हि पुरुषाणां प्रतिनियतोपादानग्रहणं न स्यात् । यथाहि-शालिबीजादिषु शाक्यादीनामसत्त्वं तथा कोद्रवबीजादिष्वपि । तथा च कोद्रवबीजादयोपि शालिफलार्थिभिरुपादीयेरन् । न चैवम्, तस्मात्तत्र तत्कार्यमस्तीति गम्यते । ३०

१ प्रवर्तते । २ गच्छति । ३ व्यापकत्वेन । ४ तिरोभावम् । ५ परमते प्रागुत्पत्तेः कार्यं धर्मि, न केनचित्क्रियते इति साध्या धर्मः—असत्त्वात् । ६ जैनादिमते । ७ सृष्टिपण्डे षटो नास्ति षटोपि नास्ति तदा सृष्टिपण्डो षटसोपादानं षटस्य न, तस्य तु तन्मय षवेति नियतोपादानम् । ८ शाक्यादि ।

यदि चासदेव कार्यं सर्वस्मात्तृणपांशुलोष्ठादिकात्सर्वं सुवर्ण-
रजतादि कार्यं स्यात्, तादात्म्यविगमस्य सर्वैस्सिद्धविशिष्टत्वात् ।
न च सर्वं सर्वतो भवति तस्मात्सर्वैव तस्य सद्भावसिद्धिः ।

ननु कारणानां प्रतिनिर्यतेष्वेव कार्येषु प्रतिनियताः शक्यः ।
५ तेन कार्यस्यासत्त्वाविशेषेपि किञ्चिदेव कार्यं कुर्वन्ति; इत्यप्यनु-
त्तरम्; शक्ता अपि हि हेतवः शक्यक्रियमेव कार्यं कुर्वन्ति
नाशक्यक्रियम् । यञ्चासत्तन्न शक्यक्रियं यथा गगनाम्भोरुहम्,
असच्च परमते कार्यमिति ।

बीजादेः कारणभावाच्च सत्कार्यं कार्यासत्त्वे तदयोगात् ।
१० तथाहि-न कारणभावो बीजादेः अविद्यमानकार्यत्वात्स्वरविषा-
णवत् । तत्सिद्धमुत्पत्तेः प्राकारणे कार्यम् ।

तच्च कारणं प्रधानमेवेत्यावेदयति हेतुपञ्चकात्—

“भेदानां परिमाणात्समन्वयाच्छक्तितः प्रवृत्तेश्च ।
कारणकार्यविभागादविभागाद्द्वैश्वरूप्यस्य ॥”

१५

[सांख्यका० १५]

लोके हि यंस्य कर्त्ता भवति तस्य परिमाणं दृष्टम् यथा कुलालः
परिमितान्मृत्पिण्डात्परिमितं प्रस्थग्राहिणमाढकग्राहिणं च घटं
करोति । इदं च महदादि व्यक्तं परिमितं दृष्टम्-एका बुद्धिः,
एकोऽहङ्कारः, पञ्च तन्मात्राणि, एकादशेन्द्रियाणि, पञ्चभूता-
२० नीति । अतो यत्परिमितं व्यक्तमुत्पादयति तत्प्रधानमित्यवगमः ।

इतश्चास्ति प्रधानं भेदानां समन्वयदर्शनात् । यञ्जातिसम-
न्वितं हि यदुपलभ्यते तत्तन्मयकारणसम्भूतम् यथा घट-
शरावादयो भेदा मृत्जातिसमन्विता मृदात्मककारणसम्भूताः,
सत्त्वरजस्तमोजातिसमन्वितं चेदं व्यक्तमुपलभ्यते । सत्त्वस्य हि
१५ प्रसादलाघवोर्द्धैर्ब्रह्मीत्यादयः कार्यम् । रजसस्तु तापशोषोद्देगा-
दयः । तमसश्च दैन्यवीभत्सगौरवादयः । अतो महदादीनां
प्रसाददैन्यतापादिकार्योपलम्भात्प्रधानान्वितत्वं सिद्धिः ।

१ तर्हि । २ अभावस्य । ३ उपादानेऽनुपादाने च । ४ कारणे । ५ तदुपादाने ।
६ शक्यक्रियेषु । ७ परमते कार्यं भूमि शक्यक्रियं न भवति अस्तत्वादिति शेषः ।
८ महदादि । ९ महदादीनाम् । १० कार्यस्य । ११ महदादिव्यक्तमेककारणपूर्वकं
परिमितत्वात् घटादिवत् । १२ महदादिव्यक्तमेककारणसम्भूतमेकस्वरूपान्वितत्वात्
घटघटीशरावोदञ्जनादिवत् । १३ उत्सव । १४ महदादिव्यक्तस्य ।

इतश्चास्ति प्रधानं शक्तिः प्रवृत्तेः । लोके हि यो यैस्मिन्नर्थे प्रवर्त्तते स तत्र शक्तः यथा तन्तुवायः पटकरणे, प्रधानस्य चास्ति शक्तिर्यथा व्यक्तमुत्पादयति, सा च निराधारा न सम्भवतीति प्रधानास्तित्वसिद्धिः ।

कार्यकारणविभागाच्च, दृष्टो हि कार्यकारणयोर्विभागः, यथा ५ मृत्पिण्डः कारणं घटः कार्यम् । स च मृत्पिण्डाद्विभक्तस्वभावो घटो मद्योदकादिधारणाहरणसमर्थो न तु मृत्पिण्डः । एवं महदादि कार्यं दृष्ट्वा साधयामः—‘अस्ति प्रधानं यतो महदादिकार्यमुत्पन्नम्’ इति ।

इतश्चास्ति प्रधानं वैश्वरूप्यस्याविभागात् । वैश्वरूप्यं हि लोक-१० त्रयमभिधीयते । तच्च प्रलयकाले क्वचिद्विभागं गच्छति । उक्तं च प्राक्—‘पञ्चभूतानि पञ्चसु तन्मात्रेष्वविभागं गच्छन्ति’ इत्यादि । अविभागो हि नामाविवेकः । यथा क्षीरावस्थायाम् ‘अन्यत्क्षीरमन्यद्दधि’ इति विवेको न शक्यते कर्तुं तद्वत्प्रलयकाले व्यक्तमिदमव्यक्तं चेदमिति । अतो मन्यामहेऽस्ति प्रधानं यत्र १५ महदाद्यऽविभागं गच्छतीति ।

अत्र प्रतिविधीर्यते-प्रकृत्यात्मकत्वे महदादिभेदानां कार्यतया ततः प्रवृत्तिविरोधः । न खलु यद्यस्मात्सर्वथाऽव्यतिरिक्तं तत्तस्य कार्यं कारणं वा युक्तं मित्रलक्षणात्वात्तयोः । अन्यथा तद्व्यवस्था सङ्कीर्येत । तथा च यद्भवद्भिर्मूलप्रकृतेः कारणत्वमेव, भूतेन्द्रिय-२० लक्षणषोडशकगणस्य कार्यत्वमेव, बुद्ध्यहङ्कारतन्मात्राणां पूर्वोत्तरापेक्षया कार्यत्वं कारणत्वं चेति प्रतिज्ञातं तन्न स्यात् । तथा चेदमसङ्गतम्—

“मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त ।

षोडशकश्च विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः ॥” २५

[सांख्यका० ३] इति ।

सर्वेषामेव हि परस्परमव्यतिरेके कैर्यत्वं कारणत्वं वा प्रस-

१ महदादिभेदानाम् । २ कार्यप्रवृत्तिः शक्तिपूर्विका प्रवृत्तित्वात्तन्तुवायप्रवृत्तिवत् ।
३ महदादिव्यक्तमेककारणपूर्वकं कार्यरूपत्वाद् घटादिवत् । ४ महदाद्यविभागः क्वचि-
दाभितः अविभागत्वात्क्षीरे दध्याद्यविभागवत् । ५ एकत्वम् । ६ जैनेः । ७ प्रकृतेः ।
८ प्रधानं महदादेः कारणं न भवति तस्मात्सर्वथाऽव्यतिरिक्तत्वात् । महदादि प्रधान-
कार्यं न भवति तस्मात्सर्वथाऽव्यतिरिक्तत्वात् । ९ मित्रलक्षणाभावे । १० प्रकृत्यादि
कार्यरूपं कार्यरूपान्महदादेरव्यतिरेकात् ।

ज्येत । आपेक्षिकत्वाद्वा तद्भावस्य, रूपान्तरस्य चापेक्षणीयस्या-
भावात्सर्वेषां पुरुषवत्प्रकृतिविकृतित्वाभावः । अन्यथा पुरुष-
स्यापि प्रकृतिविकृतित्व्यपदेशः स्यात् ।

यच्चैदम्-हेतुमत्त्वादिधर्मयोगि व्यक्तं विपरीतमव्यक्तम् ; तदपि
५ बालप्रलापमात्रम् ; न हि यद्येसादभिन्नस्वभावं तत्तद्विपरीतं युक्तं
भिन्नस्वभावलक्षणत्वाद्विपरीतत्वस्य । अन्यथा भेदव्यवहारोच्छे-
द्यः(दः) स्यात् । सत्त्वरजस्तमसां चान्योन्यं भिन्नस्वभावनिर-
न्धनो भेदो न स्यादिति विश्वमेकरूपमेव स्यात् । ततो व्यक्तरू-
पाव्यतिरेकादव्यक्तमपि हेतुमत्त्वादिधर्मयोगि स्यात् व्यक्तस्वरूप-
१० वत् । व्यक्तं वाऽहेतुमत्त्वादिधर्मयोगि स्यादव्यक्तस्वरूपाव्यति-
रेकात्तत्स्वरूपवदित्येकान्तैः ।

किञ्च, अन्वयव्यतिरेकनिश्चयसमधिगम्यो लोके कार्यकारण-
भावः प्रसिद्धः । न च प्रधानादिभ्यो महदाद्युत्पत्तिनिश्चयेऽन्वयो
व्यतिरेको वा प्रतीतोस्ति येन प्रधानान्महान्महतोऽहङ्कार इत्यादि
१५ सिद्ध्येत् ।

न च नित्यस्य कारणभावोस्ति, क्रमाऽक्रमाभ्यां तस्यार्थक्रिया-
विरोधात् । ननु नित्यमपि प्रधानं कुण्डलादौ सर्पवन्महदादिरू-
पेण परिणामं गच्छत्तेषां कारणमित्युच्यते, ते च तत्परिणामरू-
पत्वात्तत्कार्यतया व्यपदिश्यन्ते । परिणामश्चैकवस्त्वऽधिष्ठान-
२० त्वाद्भेदेपि न विरुध्यते; इत्यप्यनेकान्तावलम्बने प्रमाणीपपञ्च
नित्यैकान्ते परिणामस्यैवासिद्धेः । स हि तत्र भवन् पूर्वरूपत्या-
गाद्वा भवेत्, अत्यागाद्वा ? यद्यत्यागात् ; तदाऽवस्थासाङ्ग्यं वृद्धा-
द्यवस्थायामपि युवाद्यवस्थोपलब्धिप्रसङ्गात् । अथ त्यागात् ;
तदा स्वभावहानिप्रसङ्गः ।

२५ किञ्च, सर्वथा तस्यागः, कथञ्चिद्वा ? सर्वथा चेत् ; कस्य
परिणामः ? पूर्वरूपस्य सर्वथा त्यागात्पूर्वस्य चोत्पादात् । कथ-
ञ्चित् चेत् ; न किञ्चिद्विरुद्धम्, तस्यैवार्थस्य प्राच्यरूपत्यागेना-

१ अपेक्षणीयामानेपि प्रकृतिविकृतिभावो भविष्यतीत्युक्ते षाह । २ भिन्नलक्षणवा-
त्कार्यकारणभावयोरित्यपेक्षया वाशब्दः । ३ कार्यकारणभावस्य । ४ अपेक्षणीयसा-
मानेपि कस्यचित्प्रकृतित्वं वा घटते चेत् । ५ अन्यक्तं धर्मि व्यक्ताद्विपरीतं न भवति
तस्मादभिन्नस्वभावत्वात् । ६ विपरीतत्वं भिन्नस्वभावनिरन्धनं न भवतीति चेत् ।
७ सर्वं व्यक्तरूपमेवाऽव्यक्तरूपमेव वा स्यादिति । ८ कञ्चुः सर्वो यथा कुण्डलाकारेण
जायते स एव शङ्खाकारेण जायते । कुण्डलादौ स्वर्णवदिति पाठान्तरम् । ९ इत्यतया
पर्यायतया च । १० प्रधानस्यैव । मनुष्यलक्षणस्य वा । ११ बाणवस्थानाः ।

न्यथाभावलक्षणपरिणामोपपत्तेः । नित्यैकान्तता तु तस्य व्याह-
न्येत । अत्र हि नैकदेशेन तस्यागो निरंशस्यैकदेशाभावात् ।
नापि सर्वात्मना; नित्यत्वव्याघातात् ।

किंच, प्रवर्त्तमानो निवर्त्तमानश्च धर्मो धर्मिणोऽर्थान्तरभूतो वा
स्यात्, अनर्थान्तरभूतो वा ? यद्यर्थान्तरभूतः; तर्हि धर्मो तद्-^५
वैश्य एवेति कथमसौ परिणतो नाम ? न ह्यर्थान्तरभूतयोरर्थयो-
रुत्पादविनाशे सत्यविचलित्वात्मनो वस्तुनः परिणामो भवति,
अन्यथाऽऽत्मापि परिणामी स्यात् । तत्सम्बन्धयोर्धर्मयोरुत्पाद-
विनाशात्तस्य परिणामः; इत्यप्यसुन्दरम्; धर्मिणा सदसतोः
सम्बन्धाभावात् । सम्बन्धो हि धर्मस्य सतो भवेत्, असतो वा ? ^{१०}
न तावत्सतः; स्वातन्त्र्येण प्रसिद्धाशेषस्वभावसम्पत्तेरनपेक्षतया
क्वचित्पारतन्त्र्यासम्भवात् । नाप्यसतः; तस्य सर्वापार्याविरह-
लक्षणतया क्वचिदप्याश्रितत्वानुपपत्तेः । न खलु खरविपणादिः
क्वचिदाश्रितो युक्तः । न च प्रवर्त्तमानाप्रवर्त्तमानधर्मद्वयव्यतिरिक्तो
धर्मो उपलब्धिलक्षणप्राप्तो दर्शनपथप्रस्थायी कस्यचिदिति । अतः ^{१५}
स तादृशोऽसङ्गवहवारविषय एव विदुषाम् । अथानर्थान्तरभूतः;
तथान्येकसान्दर्भिस्वरूपपादव्यतिरिक्तत्वात्तयोरेकत्वमेवेति कथं
परिणामो धर्मिणः; धर्मयोर्वा विनाशप्रादुर्भावौ धर्मिस्वरूपवत् ?
धर्माभ्यां च धर्मिणोऽनन्यत्वान्दर्भिस्वरूपवदपूर्वस्योत्पादः पूर्वस्य
विनाश इति नैव कस्यचित्परिणामः सिध्यति । तस्मान्न परिणाम-^{२०}
वशादपि भवतां कार्यकारणव्यवहारो युक्तः ।

यद्येदमुत्पत्तेः प्राक्कार्यस्य सत्त्वसमर्थनार्थमसदकरणादिहेतुप-
ञ्चकमुक्तम्; तद् असत्कार्यवादपक्षेपि तुल्यम् । शक्यते ह्येवम-
प्यभिधातुम्- 'न सदकरणादुपादानग्रहणार्त्सर्वसम्भवाभावात् ।
शक्तस्य शक्यकरणात्कारणभावाच्च सत्कार्यम् ।' न सत्कार्यमिति ^{२५}
सम्बन्धः ।

किञ्च, सर्वथा सत्कार्यम्, कथञ्चिद्वा ? प्रथमपक्षोऽसम्भाव्यः;
यदि हि क्षीरैर्दौ दध्यादिकार्याणि सर्वथा विशिष्टरसवीर्यविपाका-

१ शुभावसायाः । २ प्रधानस्य । ३ पूर्वरूपसागः । ४ उत्तरपरिणामलक्षणः ।
५ पूर्वपरिणामलक्षणः । ६ पुरुषादेः । ७ सा अवसा यस्य । पूर्वोवसास्यः ।
८ नित्यस्य । ९ प्रधानस्य । १० अभिन्नत्वात् । ११ पारतन्त्र्यं हि सम्बन्ध इति
वचनात् । १२ उपाख्या स्वभावः । १३ धर्मिधर्मयोः । १४ धर्मयोर्विनाशप्रादुर्भावौ
धर्मिणो न भवत इति साध्यो धर्मिणोऽनर्थान्तरत्वात् । १५ धर्मो उत्पादविनाशवान्
उत्पादविनाशरूपधर्माभ्यामभिन्नत्वान्दर्भिस्वरूपवत् । १६ सकाशात् । १७ सर्वेभ्यः
कारणेभ्यः । १८ कारणे । १९ आदिना नवनीतप्रकादि ।

दिना विभक्तरूपेण मध्यावस्थावत्सन्ति, तर्हि तेषां किमुत्पाद्यमस्ति येन तानि कारणैः क्षीरादिभिर्जन्यानि स्युः ? तथा च प्रयोगः-यत्सर्वाकारेण सत्तन्न केनचिज्जन्यम् यथा प्रधानमात्मा वा, सञ्च सर्वात्मना परमते दध्यादीति न महदादेः कार्यता । नापि प्रधानस्य ५ कारणता; अविद्यमानकार्यत्वात् । यदविद्यमानकार्यं तन्न कारणम् यथात्मा, अविद्यमानकार्यं च प्रधानमिति । क्षीराद्यवस्थायामपि दध्यादीनां पञ्चादिवोपलम्भप्रसङ्गश्च । अथ कश्चिच्चिच्छक्तिरूपेण सत्कार्यम्; ननु शक्तिर्द्रव्यमेव, तद्रूपतया सतः पर्यायरूपतया चासतो घटादेरुपत्यभ्युपगमे जिनपतिमतानुसरणप्रसङ्गः ।

- १० किञ्च, तच्छक्तिरूपं दध्यादेर्मिन्नम्, अभिन्नं वा ? मिन्नं चेत्; कथं कारणे कार्यसङ्गावसिद्धिः ? कार्यव्यतिरिक्तस्य शक्त्याख्यपदार्थान्तरस्यैव सङ्गावाम्युपगमात् । आविर्भूतविशिष्टरसादिगुणोपेतं हि वस्तु दध्यादि कार्यमुच्यते । तच्च क्षीराद्यवस्थायामुपलब्धिलक्षणप्राप्तानुपलब्धेर्नास्ति । यच्चास्ति शक्तिरूपं तत्कार्यमेव न भवति । १५ न चान्यस्य भावेऽन्यदस्यतिर्प्रसङ्गात् । अथाभिन्नम्; तर्हि दध्यादेर्नित्यत्वात्कारणव्यापारवैयर्थ्यम् ।

अभिव्यक्तौ कारणानां व्यापाराच्च वैयर्थ्यम्; इत्यप्यसत्; यतोऽभिव्यक्तिः पूर्वं सती, असती वा ? सती चेत्; कथं क्रियेत ? अन्यथा कारकव्यापारानुपरमैः स्यात् । अथासती; तथाप्याकाश- २० कुशेशयवत्कथं क्रियेत ? असदकरणादित्यभ्युपगमाच्च ।

सर्वस्य सर्वथा सत्त्वेन च कार्यत्वासम्भवावुपादानपरिग्रहोपि न प्राप्नोति । सर्वसम्भवाभावोपि प्रतिनियतादेव क्षीरादेर्दध्यादीनां जन्मोर्च्यते । तच्च सत्कार्यवादपक्षे दूरोत्सारितम् । शक्यस्य शक्यकरणादिति चात्रासम्भाव्यम्; यदि हि केनचित् किञ्चि- २५ निष्पाद्येत तदा निष्पादकस्य शक्तिर्व्यवस्थाप्येत निष्पाद्यस्य च करणं नान्यथा । कारणभावोप्यर्थानां न र्घटते कार्यत्वाभावादेव ।

१ दध्यवस्थावत् । २ दध्यादि धर्मि केनचिज्जन्यं न भवति पूर्वमेव सर्वाकारेण सत्त्वादित्युपरिष्ठाणोन्मयम् । ३ इति=अनुमानात् । ४ प्रधानं कस्यचित्कारणं न भवति । ५ दध्यादिकार्यं धर्मि शक्तिरूपे कारणे नास्ति ततो मिन्नत्वात् । ६ ततो मिन्नत्वं स्वात्कारणे विद्यमानत्वं च सादिति सन्दिग्धानैकान्तिकत्वे सत्यात् । ७ शक्तिरूपस्य । ८ व्यक्तिरूपं दध्यादिकार्यम् । ९ घटस्य भावे पदस्य भावप्रसङ्गात् । १० विषयानापि क्रियमाना चेत् । ११ अविश्रान्तिः । १२ परमेव । १३ पदावस्य । १४ जैनेः । १५ कारणस्य । १६ कार्यस्य । १७ निष्पादनिष्पादक्रमानामावे शक्तिः करणोऽपि न व्यवस्थान्यते । १८ कार्यस्य सर्वथा सत्त्वात् । १९ कारणपेक्षया ।

किञ्च, एते हेतवो भवत्पक्षे प्रवृत्ताः किं कुर्वन्ति? स्वविषये हि प्रवृत्तं साधनं द्वयं करोति-प्रमेयार्थविषये प्रवृत्तौ संशयविपर्यासौ निवर्त्तयति, निश्चयं चोत्पादयति । तच्च सत्कार्यवादे न सम्भवति । संशयविपर्यासौ हि भवतां मते चैतन्यात्मकौ, बुद्धि-मनःस्वभावौ वा? पक्षद्वयेपि न तयोर्निवृत्तिः सम्भवति; चैतन्य-^५ बुद्धिमनसां नित्यत्वेनानयोरपि नित्यत्वात् । नापि निश्चयस्योत्पत्तिः; तस्यापि सदा सत्त्वात्, इति साधनोपन्यासवैयर्थ्यम् । तस्मात्साधनोपन्यासस्यार्थवत्त्वमिच्छता निश्चयोऽसन्नेव साधने-नोत्पाद्यत इत्यङ्गीकर्त्तव्यम् । तथा चासदकरणादेर्हेतुगणस्यानेनैवानैकान्तिकता । यथा चासतोपि निश्चयस्य करणम्, तद्विष्य-^{१०} त्तये च यथा विशिष्टसाधनपरिग्रहः, यथा चास्य न सर्वस्मात्साधनाभासादेः सम्भवः, यथा चासावसन्नपि शक्यैर्हेतुभिः क्रियते, तत्र च हेतूनां कारणभावोस्ति तथान्यत्रापि भविष्यति ।

अथ यद्यपि साधनप्रयोगात्प्राक्सन्नेव निश्चयः, तथापि न तत्प्रयोगवैयर्थ्यं तदभिव्यक्तौ तस्य व्यापारात् । तत्र केयमभि-^{१५} व्यक्तिः-किं स्वभावातिशयोत्पत्तिः, तद्विषयज्ञानं वा, तदुपल-म्भावरणापगमो वा? न तावत्स्वभावातिशयः; स हि निश्चयस्वरूपादभिन्नः, भिन्नो वा? यद्यभिन्नः; तर्हि निश्चयस्वरूपवत् सर्वदा सत्त्वाभ्योत्पत्तिर्युक्ता । अथ भिन्नः; तस्यासाविति सम्बन्धाभावः । स ह्याधाराधेयभावलक्षणो वा, जन्यजनकभावलक्षणो^{२०} वा? तत्राद्यपक्षोऽयुक्तः; परस्परमनुपकार्योपकारकयोस्तदसम्भवात् । उपकारे वा तस्याप्यर्थान्तरत्वे सम्बन्धासिद्धिरनवस्था च । अर्थान्तरत्वे साधनप्रयोगवैयर्थ्यं निश्चयादेवोपकाराऽनर्थान्तर-स्यातिशयस्योत्पत्तेः । अमूर्त्तत्वाच्चातिशयस्याधोगमनाभावाच्च तस्य कश्चिदाधारो युक्तः, अधोगतिप्रतिबन्धकत्वेनाधारस्याव-^{२५} स्थितेः । नापि जन्यजनकभावलक्षणः; सर्वदैव निश्चयाख्यकारणस्य सन्निहितत्वेन नित्यमतिशयोत्पत्तिप्रसङ्गात् । न च साधन-प्रयोगापेक्षया निश्चयस्यातिशयोत्पादकत्वं युक्तम्; अनुपकारिण्यपेक्षाऽयोगात् । उपकारित्वे वा पूर्ववद्दोषोऽनवस्था च ।

अपि चायमतिशयः सन्, असन्वा क्रियेत? असत्त्वे पूर्व-^{३०} वत्साधनानामनैकान्तिकतापत्तिः । सत्त्वे च साधनवैयर्थ्यम् ।

१ महदादावति । २ निश्चयस्वभावातिशययोः । ३ निश्चयेनातिशयस्य । ४ अति-शयात् । ५ प्रत्यक्ष । ६ निश्चयेनातिशयस्य क्रियमाण उपकारः अतिशयादानर्थान्तर-मिलसिद्धे दूषणमाह । ७ उपकाराय । ८ न उपकारकस्योत्पत्तिः ।

तंजाप्यभिव्यक्त्यावनवस्था । तन्न स्वभावातिशयोत्यतिरभिव्यक्तिः ।

नापि तद्विषयज्ञानम् ; सत्कार्यवादिनो मते तस्यापि नित्यत्वात्, द्वितीयज्ञानस्यासम्भवाच्च । एकमेव हि भवतां मते विज्ञानम्—“आसर्गप्रलयादेका बुद्धिः” [] इति सिद्धान्त-
५ स्वीकारात् ।

तदुपलम्भावरणापगमोप्यभिव्यक्तिर्न युक्ता; तदावरणस्य नित्यत्वेनापगमासम्भवात् । तिरोभावलक्षणोप्यपगमो न युक्तः; अत्यंकपूर्वरूपस्य तिरोभावासम्भवात् । द्वितीयोपलम्भस्य चासम्भवात्कथं तदावरणसम्भवं येनास्यापगमोभिव्यक्तिः स्यात् ? न
१० ह्यावरणमसतो युक्तं सद्भस्तुविषयत्वात्तस्य ।

बन्धमोक्षाभावश्च सत्कार्यवादिनोऽनुषज्यते । बन्धो हि मिथ्याज्ञानात्, तस्य च सर्वदावस्थितत्वेन सर्वदा सर्वेषां बद्धत्वात्कृतो मोक्षः ? प्रकृतिपुरुषयोः कैवल्योपलम्भलक्षणतत्त्वज्ञानाच्च मोक्षः, तस्य च सदावस्थितत्वेन सर्वदा सर्वेषां मुक्तत्वात्कृतो बन्धः ?
१५ सकलव्यवहारोच्छेदप्रसङ्गश्च; लोकः सल्लु हिताहितप्राप्तिपरिहारार्थं प्रवर्तते । सत्कार्यवादपक्षे तु न किञ्चिदप्राप्यमद्द्वयं चास्तीति निरीहमेव जगत्स्यात् ।

यदसत्तन्न केनचित्क्रियते इति चासङ्गतम्; हेतोर्विपक्षे वाचकप्रमाणाभावेनानेकान्तात् । कारणशक्तिप्रतिनियमाद्धि किञ्चि-
२० देवासत्क्रियते यस्योत्पादकं कारणमस्ति । यस्य तु गगनाम्बोरुद्भावेनास्ति कारणं तन्न क्रियते । न हि सर्वं सर्वस्य कारणमिष्टम् । नापि ‘यद्यदसत्तत्क्रियते एव’ इति व्याप्तिरिष्टा । किं तर्हि ? ‘यत्क्रियते तत्प्रागुत्पत्तेः कथञ्चिदसदेव’ इति । ननु तुल्येप्यसत्कारित्वे कारणानां किमिति सर्वं सर्वस्यासत्तः कारणं न स्यादि-
२५ त्यन्यत्रापि समानम् । समाने हि सत्कारित्वे किमिति सर्वं सर्वस्य सत्तः कारणं न स्यात् ? कारणशक्तिप्रतिनियमात् ‘सदभ्यात्मादि न क्रियते’ इत्यन्यत्रापि समानम् । प्रतिपादितप्रकारेण सर्वथा

१ समाधातिशयेति । २ साधनेन । ३ प्रायुक्तप्रकारेण ग्रन्थानवस्था । ४ त्रिक-
श्वयम् । ५ निश्चयलक्षणज्ञानापेक्षया निश्चयव्यवसायकज्ञानस्य (तद्विषयज्ञानस्य)
द्वितीयत्वम् । ६ साख्यानाम् । ७ निश्चयस्य । ८ निश्चयज्ञानस्य । ९ भावरणस्य
अव्यक्तरूपं न संभवति—नित्यत्वात् । १० प्राणिनाम् । ११ विवेकस्यद्वैतलक्षणोद्भावेः ।
१२ बन्धमोक्षलक्षणस्य । १३ परमते दृष्यादिकार्यं धर्मं न केनचित्क्रियते ।
१४ असत्तत्रापि कियत्त इत्यसिन् । १५ खरविवाग्भादेः । १६ आत्मादेः । १७ अस-
त्कार्यवादपक्षेति ।

सतः कार्यत्वासम्मवात्कार्यञ्चिदसत्कार्यवादे एव चोपादानप्रह-
णादित्यादेर्हेतुचतुष्टयस्य विरुद्धता साध्यविपर्ययसाधनात् । तन्नो-
त्पत्तेः प्राक्कारण(णे)कार्यसद्भावसिद्धिः ।

यच्चोक्तम्—भेदानां परिमाणादित्यादिहेतोः कारणं च प्रधान-
मेवैकं सिद्ध्यति; तदप्युक्तिमात्रम्; 'भेदानां परिमाणात्' इत्यस्यै-^५
ककारणपूर्वकत्वेनाविनाभावासिद्धेः, अनेककारणपूर्वकत्वेऽप्यस्या-
विरोधात् । कारणमात्रपूर्वकत्वेनैव हि तस्याविनाभावः, तत्सा-
धने च सिद्धसाधनम् ।

'भेदानां समन्वयदर्शनात्' इति चासिद्धम्; न खलु सुख-
दुःखमोहसमन्वितं प्रमाणतः प्रसिद्धम्, शब्दादिव्यक्तस्याचेतन-^{१०}
तथा चेतनसुखादिसमन्वयविरोधात् । प्रयोगः—ये चैतन्यरहिता
न ते सुखादिसमन्वयाः यथा गगनाम्भोजादयः, चैतन्यरहिताश्च
शब्दादय इति ।

ननु चैतन्येन सुखादिसमन्वयस्य यदि व्याप्तिः प्रसिद्धा, तर्हि
तन्निवर्त्तमानं शब्दादिषु सुखादिसमन्वयत्वं निवर्त्तयेत् । न ^{१५}
चासौ सिद्धा, पुरुषस्य चेतनत्वेऽपि सुखादिसमन्वयासिद्धेः;
इत्यप्यपेशलम्; स्वसंवेदनसिद्धिप्रस्तावे सुखादिस्वभावतयात्मनः
प्रसाधनात् ।

यथान्यदुक्तम्—प्रसादतापदैत्यादिकार्योपलम्भात्प्रधानान्वित-
त्वसिद्धिः; तदप्ययुक्तम्; अनेकान्तात्, कापिलयोगिनां हि पुरुषं ^{२०}
प्रकृतिविभक्तं भावयतां पुरुषमालम्ब्य स्वभ्यस्तयोगानां प्रसादो
भवति प्रीतिश्च, अनभ्यस्तयोगानां क्षिप्रतरप्रप्तमानमपश्यता-
मुद्वेगः, प्रकृत्या जडमतीनां मोहो जायते, न चासौ पुरुषः प्रधा-
नान्वितः परैरिष्टः । सङ्कल्पमात्रात्प्राप्तत्वेऽपि पुरुषादिति शब्दा-
दिष्वपि समानम् । सङ्कल्पमात्रभावित्वे च प्रीत्यादीनामात्मरूप-^{२५}
ताप्रसिद्धिः, सङ्कल्पस्य ज्ञानरूपत्वात्, ज्ञानस्य चात्मधर्मतया
स्वसंवेदनसिद्धिप्रस्तावे प्रतिपादितत्वात् इत्यलमिति प्रसङ्गेन ।

अस्तु वा प्रीत्यादिसमन्वयो व्यक्ते, तथापि न प्रधानप्रसिद्धिः,
साधनैस्यार्न्धेयासिद्धेः । न खलु यथाभूतं त्रिगुणात्मकमेकं नित्यं
व्यापि चास्य कारणं साधयितुमिष्टं तथाभूतेन किञ्चिद्धेतोः प्रति- ^{३०}

१ पश्चादुक्तम् । २ परमते सर्वथा सत्कार्यं साध्यम् । ३ कथञ्चिदसत्कार्यस्य ।
४ शब्दादिव्यक्तम् । ५ तथा इति मूलपुस्तके पाठः । ६ भिन्नम् । ७ मनसः ।
८ सङ्कल्पात्प्रीत्यादिहेतुः शब्दादिरिति । ९ ज्ञानस्यात्मधर्मत्वसमर्थनवित्करणे ।
१० समन्वयदर्शनादित्यस्य । ११ व्याप्त्यसिद्धेः । १२ वृष्टान्ते ।

बन्धः सिद्धः । नापि यदात्मकं कार्यमुपलभ्यते कारणेनाप्यवश्यं तदात्मना भाव्यम्, अन्यथा महदादौ हेतुमत्त्वानित्यत्वाव्यापित्वादिधर्मोपलम्भात् प्रधानेपि ताद्रूप्यप्रसिद्धिप्रसङ्गाद्देतोर्विरुद्ध-
तानुषङ्गः ।

- ५ यच्चैदं निदर्शनमुक्तम्—‘यथा घटशरावादयो वृज्जातिसम-
न्विताः’ इति; तदप्यसङ्गतम्; साध्यसाधनविकलत्वादस्य ।
न हि सूत्रवसुवर्णत्वादिजातिर्नित्यनिरशव्याप्येकरूपा प्रमाणतः
प्रसिद्धा येन तदात्मककारणसम्भूतत्वं तत्समन्वितत्वं च प्रसि-
द्धेत्, प्रतिव्यक्ति तस्याः प्रतिभासमेवाद्देदसिद्धेः । विस्तरेण
१० चास्याः सिद्धभावं सामान्यविचारप्रस्तावे प्रतिपादयिष्याम इत्य-
लमतिविस्तरेण ।

तथा ‘समन्वयात्’ इत्यस्यानेकान्तः; चेतनत्वभोक्तृत्वादिधर्मैः
पुरुषाणाम्, प्रधानपुरुषाणां च नित्यत्वादिधर्मैः समन्वितत्वेपि
तथाविधैककारणपूर्वकत्वानभ्युपगमात् ।

- १५ पतितेन शक्तितः प्रवृत्तेरित्यार्थेऽप्यनैकान्तिकत्वादिदोषदुष्टत्वादे-
ककारणपूर्वकत्वासाधनमित्यवसातव्यम् । तथा हि—प्रेक्षावत्कार-
णमेतेभ्यः प्रसाध्यते, कारणमात्रं वा ? प्रथमविकल्पे अनेकैकान्तः,
विनापि हि प्रेक्षावता कर्त्रा स्वहेतुसामर्थ्यप्रतिनियमात्प्रतिनियत-
कार्यस्योत्पत्त्यविरोधात् । न च प्रधानं प्रेक्षावद्युक्तं तस्याचेतन-
२० त्वात् प्रेक्षायाश्च चेतनापर्यायत्वात् । अथ कारणमोत्रं साध्यते,
तर्हि सिद्धसाध्यता । न ह्यसौर्कारणमन्तरेण कार्यस्योत्पादो-
ऽभीष्टः । कारणमात्रस्य च ‘प्रधानम्’ इति संज्ञाकरणे न किञ्चि-
द्विरुध्यतेऽर्थमेवाभावात् ।

= किञ्च, शक्तितः प्रवृत्तेरित्यनेन यदि कर्थाच्चिदव्यतिरिक्तशक्ति-
३० योनिकारणमात्रं साध्यते; तदा सिद्धसाध्यता । अथ व्यतिरिक्त-

१ सप्तमि । २ समन्वयादिति हेतुर्नित्यत्वादिधर्मोपेते प्रधाने साध्ये प्रयुक्तो-
नित्यत्वादिधर्मोपेतप्रधानप्रसाधनादिरुद्धः । ३ सा नित्यनिरशव्याप्येकरूपजातिः ।
४ तथा नित्यनिरशव्याप्येकरूपजाला । ५ नित्यनिरशव्याप्येकरूपजातिनिराकरण-
विस्तरेण । ६ नित्यनिरशव्याप्येकरूपजाला । ७ हेतोः । ८ निरस्यत्वादिभिन्न ।
९ परेण । १० हेतुद्वयनिराकरणपरेण ग्रन्थेन । ११ हेतुमयमपि । १२ नित्यत्वमेवा-
यतः । १३ हेतुम्यः । १४ व्युत्पन्नभूतहादिकं, प्रेक्षावत्कारणमन्तरेणामि वृषपतेऽतः
सर्वं प्रेक्षावत्कारणपूर्वकं वा नेति सगिदग्धानेकान्तः । १५ कारणसामान्यम् ।
१६ जैनानाम् । १७ अस्याभिः कारणमात्रं भवति; प्रधानं प्रतिपादते ह्यत्र +
१८ ग्रन्थसमाप्तेन । १९ कार्यनिष्पादने ।

विचित्रशक्तियुक्तमेकं नित्यं कारणैम्; तदानैकौन्तिकता हेतोः । तथाभूतेन कचिदन्वयासिद्धेरसिद्धता च, न खलु व्यतिरिक्तशक्ति-
वशात् कस्यचित्कारणस्य कचित्कार्यं प्रद्युत्तिः प्रसिद्धा, शक्तीनां
स्वात्मभूतत्वात् ।

यश्चेदमुक्तम्-अविभागाद्द्वैश्वरूप्यस्य; तदप्यसाम्प्रतम्; प्रल-५
यकालस्यैवाप्रसिद्धेः । सिद्धौ वा तदासौ महदादीनां लयो भवन्
पूर्वस्वभावप्रच्युतौ भवेत्, अप्रच्युतौ वा? यदि प्रच्युतौ;
तर्हि तेषां तदा विनाशसिद्धिः स्वभावप्रच्युतेर्विनाशरूपत्वात् ।
अथाप्रच्युतौ; तर्हि लयानुपपत्तिः, नहि अविकलमार्त्मेनस्तत्त्व-
मनुभवतः कस्यचिद्लयो युक्तोऽतिप्रसङ्गात् । परस्परविरुद्धं १०
चेदम् 'अविभागो वैश्वरूप्यम्' इति च । वैश्वरूप्यं च प्रधान-
पूर्वत्वे नोपपद्यत एव, तन्मयत्वेन सर्वस्य जगतस्तत्स्वरूपवदेक-
त्वप्रसङ्गात्, इति कस्याऽविभागः स्यादिति? तत्र प्रधानस्य
सकलजगत्कर्तृत्वं सिद्धम्, यतस्तत्सिद्धौ प्रधानस्य सर्वज्ञता,
कर्तृत्वस्य कारणशक्तिपरिहानाविनाभावासिद्धेरित्युक्तं प्रागीश्वर- १५
निराकरणे, तदलमतिप्रसङ्गेन ।

एतेन सेश्वरसाहचर्यैर्यदुक्तम्-'न प्रधानादेव केवलादमी
कार्यमेदाः प्रवर्त्तन्ते तस्याचेतनत्वात् । न ह्यचेतनोऽधिष्ठार्यैक-
मन्तरेण कार्यमारभमाणो दृष्टः । न चान्यार्त्माऽधिष्ठायको युक्तः;
सृष्टिकाले तस्याहत्वात् । तथा हि-बुद्ध्यध्यवसितमेवार्थं पुरुष- २०
श्चेतयते । बुद्धिसंसर्गाच्च पूर्वमसावन्न एव, न जातु कश्चिदर्थं
विजानाति । न चाज्ञातमर्थं कश्चित्कर्तुं शक्तः । अतो नासौ कर्त्ता ।
तस्मादीश्वर एव प्रधानापेक्षः कार्यमेदानां कर्त्ता, न केवलः । न
खलु देवदत्तादिः केवलः पुत्रम्, कुम्भकारो वा घटं जनयति'
इति- तदपि प्रतिव्यूढम्; प्रत्येकं तयोः कर्तृत्वस्यासम्भवे सहि- २५
तयोरप्यसम्भवात्, अर्थेया प्रत्येकपक्षनिक्षिप्तदोषानुषङ्गः ।

अथोच्यते-यदि नाम प्रत्येकं तयोः कर्तृत्वासम्भवस्तथापि
सहितयोः कथं तदभावः? न हि केवलानां चक्षुरादीनां रूपादि-

१ धर्मैलभावे भेदः । २ साध्यते इति शेषः । ३ सन्दिग्धरूपा । ४ स्वस्य ।
५ स्वरूपम् । ६ वस्तुनः । ७ प्रधानात्मनोरपि लयप्रसङ्गात् । ८ अविभागाद्द-
श्वरूप्यमिति । ९ एकत्वम् । १० अनेकत्वम् । ११ लोके भादौ विभागोक्तिं यदि
तदा पश्चाद्विभागानामविभागः स्यात् । १२ कर्तृत्वं कारणशक्तिज्ञानाविनामि न
भवतीति समर्थनेन । १३ प्रकृतीश्वरनिराकरणपरिणामेन । १४ महदादयः ।
१५ ईश्वर प्रेरकम् । १६ सत्पार्यात्मा । १७ कार्यम् । १८ सहितयोस्तयोः कर्तृत्व-
सम्भवक्षेपः । १९ आलोकादीनां च ।

ज्ञानोत्पत्तिसामर्थ्याभावे सहितानामप्यसौ युक्तः, तदप्युक्ति-
मात्रम्; यतः साहित्यं नामानयोरन्योन्यं सहकारित्वम् । तथा-
न्योन्यातिशयाधानाद्वा स्यात्, एकार्थकारित्वाद्वा ? न तावदाद्य-
कल्पना युक्ता; नित्यत्वेनानयोर्विकाराभावात् । नापि द्वितीय-
५ कल्पना युक्ता; कार्याणां यौगपद्यप्रसङ्गात् । अप्रतिद्वैतसामर्थ्यस्ये-
श्वरप्रधानाख्यकारणस्य सदा सन्निहितत्वेनाविकलकारणत्वासे-
षाम् । तथाहि—यद्यदाऽविकलकारणं तत्तदा भवत्येव यथाऽन्य-
क्षणप्राप्तायाः सामग्रीतोऽङ्कुरः, अविकलकारणं चाशेषं कार्यमिति ।

ननु यद्यपि कारणद्वयमेतन्नित्यं सन्निहितं तथापि क्रमेणैवास्मी
१० कार्यभेदाः प्रवर्तिष्यन्ते । महेश्वरस्य हि प्रधानगताः सत्त्वाद्य-
क्षयो गुणाः सहकारिणः, तेषां च क्रमवृत्तित्वात्कार्याणामपि
क्रमः । तथाहि—यदोद्भूतवृत्तिना रजसा युक्तो भवत्यसौ तदा
सर्गहेतुः प्रजानां भवति प्रसंघकार्यत्वाद्भ्रजसः, यदा तु सत्त्व-
मुद्भूतवृत्ति संश्रयते तदा लोकानां स्थितिकारणं भवति सत्त्वस्य
१५ स्थितिहेतुत्वात्, यदा तमसोद्भूतशक्तिना समायुक्तो भवति तदा
प्रलयं सर्वजगतः करोति तमसः प्रलयहेतुत्वात् । तदुक्तम्—

“रजोऽप्ये जन्मनि सत्त्ववृत्तये स्थितौ प्रजानां प्रलये तमःस्पृशे ।

अज्ञाय सर्गस्थितिनाशहेतवे त्रयीमयाय त्रिगुणात्मने नमः

॥ १ ॥” [कादम्बरी पृ० १]

२० इत्यन्यसाम्प्रतम्; यतः प्रकृतीश्वरयोः सर्गस्थितिप्रलयानां
मध्येऽन्यतमस्य क्रियाकाले तदपरकार्यद्वयोत्पादने सामर्थ्यमस्ति,
न वा ? यद्यस्ति, तर्हि सृष्टिकालेपि स्थितिप्रलयप्रसङ्गोऽविकल-
कारणत्वादुत्पादवत् । एवं स्थितिकालेष्युत्पादविनाशयोः, विनाश-
काले च स्थित्युत्पादयोः प्रसङ्गः, न चैतद्दुर्लभम् । न खलु पर-
२५ स्परपरिद्वारेणावस्थितानामुत्पादादिधर्माणामेकत्र धर्मिण्येकदा
सङ्भावो युक्तः । अथ नास्ति सामर्थ्यम्; तदैकमेव स्थित्यादीनां
मध्ये कार्यं सदा स्यात् यदुत्पादने तयोः सामर्थ्यमस्ति, नापरं
कदाचनपि तदुत्पादने तयोः सदा सामर्थ्याभावात् । अविकारि-
णोश्च प्रकृतीश्वरयोः पुनः सामर्थ्योत्पत्तिविरोधात्, अन्यथा
३० नित्यैकस्वभावतान्याघातः ।

अथ तत्स्वभावेपि प्रधाने सत्त्वादीनां मध्ये यदेवोद्भूतवृत्ति
तदेव कारणतां प्रतिपद्यते नान्यत्, तत्कथं स्थित्यादीनां यौगपद्य-

१ प्रसव उत्पत्तिः । २ ईश्वरः कर्ता । ३ न जायते इत्यत्रो रद्भ्रसमी । ४ त्रयी
वेदात्मनी । ५ सत्त्वरजस्तमोरुपाय । ६ स्थितिप्रलयौ धर्मिणौ सृष्टिकाले भवतः तदा
अविकलकारणत्वात् । ७ प्रनालक्षणे । ८ सामर्थ्यश्रुत्यपघटे नैव ।

प्रसङ्ग इति ? अत्रोच्यते-तेषामुद्भूतवृत्तित्वं नित्यम्, अनित्यं वा ? न तावन्नित्यम्; कादाचित्कत्वात्, स्थित्यादीनां यौगपद्यप्रसङ्गाच्च । अथानित्यम्; कुतोऽस्य प्रादुर्भावः ? प्रकृतीश्वरादेव, अन्यतो वा हेतोः, स्वतन्त्रो वा ? प्रथमपक्षे सदास्य सद्भावप्रसङ्गः, प्रकृतीश्वराख्यस्य हेतोर्नित्यरूपतया सदा सन्निहितत्वात् । नन्वाप्यतस्त-^५त्प्रादुर्भावो युक्तः; प्रकृतीश्वरव्यतिरेकेणापरकारणस्यमन्त्रभ्युपगमात् । तृतीयपक्षे तु कादाचित्कत्वविरोधोऽस्य स्वातन्त्र्येण भवतौ देशकालनियमायोगात् । स्वभावान्तरायत्तवृत्तयो हि भावाः कादाचित्काः स्युः तद्भावाभावप्रतिबद्धत्वात्तत्सत्त्वासत्त्वयोः, नान्ये तेषामपेक्षणीयस्य कस्यचिदभावात् । १०

किञ्च, आत्मज्ञानं जनयति भौवो निष्पन्नः, अनिष्पन्नो वा ? न तावन्निष्पन्नः; तस्यामवस्थायामात्मनोपि निष्पन्नरूपव्यतिरेकितया निष्पन्नत्वाग्निष्पन्नस्वरूपवत् । नाप्यनिष्पन्नः; अनिष्पन्नस्वरूपत्वादेव गगनाम्भोजवत् । तस्मात्प्रकारान्तरेणाशेषकृत्वासिद्धेरावरणापाये एवाशेषविषयं विज्ञानम् । तच्चात्मन एवेति परीक्षा-^{१५}दक्षैः प्रतिपत्तव्यम् । तच्च विज्ञानमनन्तदर्शनसुखवीर्याविनाभावित्वादनन्तचतुष्टयस्वभावत्वमात्मनः प्रसाधयतीति सिद्धो मोक्षो जीवस्यानन्तचतुष्टयस्वरूपलामलक्षणः, तस्यापेतप्रतिबन्धकस्यात्मैस्वरूपतया जीवन्मुक्तिवत्परममुक्तावप्यभावासिद्धेः ॥

यै त्वात्मनो जीवन्मुक्तौ कवलाहारमिच्छन्ति तेषां तत्रास्थान-^{२०}न्तचतुष्टयस्वभावभावोऽनन्तसुखविरहात् । तद्विरहश्च बुभुक्षाप्रभवपीडाक्रान्तत्वात् । तत्पीडाप्रतीकारार्थो हि निखिलजनानां कवलाहारग्रहणप्रयासः प्रसिद्धः । ननु भोजनादेः सुखाद्यनुकूलत्वात्कथं भगवतोऽतोऽनन्तसुखाद्यभावः ? इद्वयते ह्यसदादौ क्षुत्पीडिते निश्चकिके च भोजनसद्भावे सुखं वीर्यं चोत्प-^{२५}द्यमानम्; इत्यप्ययुक्तम्; असदादिसुखादेः कादाचित्कतया विषयेभ्य एवात्पत्तिसम्भवात् । भगवत्सुखादेश्च तत्सम्भवेऽनन्तताव्याघातः । तथाहि-क्षुत्क्षामकुक्षिर्निश्चकिकश्चासौ यदा कवलाहारग्रहणे प्रवृत्तस्तदैव तदीयसुखवीर्ययोर्नष्टत्वात्कुतोऽनन्तता ? वीतरागद्वेषत्वाच्चास्य तद्ग्रहणप्रयासायोगः । प्रयोगः-कैवली न ३०

१ कारणस्य । २ चायमानस्य । ३ कार्यलक्षणाद्भावादपरः कारणलक्षणो भावः स्वभावान्तरम् । ४ कारणानीनवृत्तय इत्यर्थः । ५ तस्य कार्यस्य । ६ स्वरूपम् । ७ कार्यलक्षणः । ८ निष्पन्नायात् । ९ अगत्कर्तृत्वादिलक्षणेन । १० जीवमवत्येन । ११ श्वेतपदाः । १२ भगवदीय ।

भुङ्क्ते रागद्वेषाभावानन्तवीर्यसद्भावात्यर्थानुपपत्तेः । ननु सममिन्द्र-
शश्रूणां साधूनां भोजनादिकं कुर्वतामपि वीतरागद्वेषत्वसम्भ-
वादनैकान्तिको हेतुः; इत्यप्यसाम्प्रतम्; मोहनीयकर्मणः सद्भावे
भोजनादिकं कुर्वतां प्रमत्तगुणस्थानप्रवृत्तीनां साधूनां परमार्थतो
५ वीतरागत्वासम्भवात् । तन्नानैकान्तिकीयं हेतुः । नापि विरुद्धो
विपक्षे वृत्तेरभावात् ।

कवलाहारित्वे चास्य सरागत्वप्रसङ्गः । प्रयोगः—यो यः कवलं
भुङ्क्ते स स न वीतरागः यथा रथ्यापुरुषः, भुङ्क्ते च कवलं
भवन्मतः केवलीति । कवलाहारो हि स्मरणाभिलाषाभ्यां भुज्यते,
१० भुक्तवता च कण्ठोष्ठप्रमाणतस्त्वृत्तेनाऽरुचितस्त्यज्यते । तथा
चाभिलाषाऽरुचिभ्यामाहारे प्रवृत्तिनिवृत्तिमत्त्वात्कथं वीतराग-
त्वम्? तदभावाच्चासता । अथाभिलाषाद्यभावेप्याहारं गृह्यात्यसौ
तथाभूतातिशयत्वात्, ननु चाहाराभावलक्षणोप्यतिशयोऽस्या-
भ्युपगन्तव्योऽनन्तगुणत्वाद्गनगमनाद्यतिशयवत् ।

१५ अथाहाराभावे देहस्थितिरेवास्य न स्यात्; तथाहि—भगवतो
देहस्थितिः आहारपूर्विका देहस्थितित्वात्सदादेहस्थितिवत् ।
नन्वनेनानुमानेनास्याहाऽमात्रम्, कवलाहारो वा साध्येत?
प्रथमपक्षे सिद्धसाध्यता, 'आसयोगकेवलिनो जीवा आहारिणः'
इत्यभ्युपगमात्, तत्र च कवलाहाराभावेप्यन्यस्य कर्मनोकर्मा-
२० दानलक्षणस्याविरोधात् । पद्भिधो ह्याहारः—

“णोर्कम्म कम्महारो कवलाहारो य लेप्पमाहारो ।

ओज मणो वि य कम्मसो आहारो छव्विहो णेयो ॥” []

इत्यभिधानात् । न खलु कवलाहारेणैवाहारित्वं जीवानाम्;
पकेन्द्रियाण्डजत्रिदशानामभुञ्जानतिर्यग्मनुष्याणां चानाहारित्व-

२५ प्रसङ्गात् । न चैवम्—

“विग्गहगइमावण्णा केवलिणी समुहदो अजोगी य ।

सिद्धा य अणाहारा सेसा आहारिणो जीवा ॥”

[जीवकाण्ड गा० ६६५, श्रावकप्रश्न० गा० ६८]

१ कवलाहाराभावमन्तरेणानुपपत्तेस्तयोः । २ हेतोरिकाय गृहीत्वा दूषयति ।
३ कवलाहारिणि । ४ अभिलाषाद्यभावेप्याहारग्रहणलक्षण । ५ कैनेः । ६ जोकम्
(१), कर्माहारः (२), कवलाहारः (३), लेप्यः आहारः (४) ओजः
(५), मानसिकः (६) अपि च क्रमशः आहारः पद्भिधो ह्येयः । ७ विग्गहगति-
मापन्नाः केवलिनः समुद्धात (दण्डकपाटेति समुद्धातद्वय) गताः अजोगिनश्च ।
सिद्धार्थ अनाहारः शेषा आहारिणो जीवाः । ८ दण्डकनादावसायात् । ९ अर्हद-
स्तातः अन्ये सिद्धावस्तात जादौ वा अवस्ता सा जदोगावस्ता ।

इत्यभिधानात् । द्वितीयपक्षे तु त्रिदशादिभिर्व्यभिचारः, तेषां कवलाहारभावेऽपि देहस्थितिसम्भवात् । अथ 'औदारिकशरीर-स्थितित्वात्' इति विशेष्योच्यते । तथाहि-या या औदारिक-शरीरस्थितिः सा सा कवलाहारपूर्विका यथासदादीनाम्, औदारिकशरीरस्थितिश्च भगवतः, इति न त्रिदशशरीरस्थित्या ५ व्यभिचारः, इत्यप्यसारम्; तदीयौदारिकशरीरस्थितेः परमौ-दारिकशरीरस्थितिरूपतयाऽसदाद्यौदारिकशरीरस्थितिबिलक्षण-त्वात् । तस्याश्च कवलावस्थायां केशादिवृक्ष्यभाववद्भुज्यमाषोप्य-विरुद्ध एव ।

कथं चैवं वादिनो भगवत्प्रत्यक्षमतीन्द्रियं स्यात् ? शक्यं हि १० वक्तुम्-तत्प्रत्यक्षमिन्द्रियजं प्रत्यक्षत्वादसदादिप्रत्यक्षवत् । तथा सरागोऽसौ वक्तुत्वात्तद्भवेव । न ह्यसदाद्यौ दृष्टो धर्मः कैश्चित्तत्र साध्यः कैश्चित्तेति वक्तुं युक्तम्, स्वेच्छाकारित्वानुपपन्नात् । तथा च न कश्चित्केवली धीतरागो वा, इति कस्य भुक्तिः प्रसाध्यते ? यदि वैकत्रं तच्छरीरस्थितेः कवलाहारपूर्वकत्वोपलम्भात्सर्वत्र १५ तथाभावः साध्यते; तर्हि घटाद्यौ सन्निवेशादेर्बुद्धिमत्पूर्वकत्वोप-लम्भात्तन्वादीनामप्यतो बुद्धिमत्पूर्वकत्वसिद्धिः स्यात् । द्विचन्द्रा-दिप्रत्ययस्य निरालम्बनत्वोपलम्भाच्चाखिलप्रत्ययानां निरालम्ब-नत्वप्रसङ्गः स्यात् । अथ यार्हशं बुद्धिमत्कारणव्याप्तं सन्निवेशादि घटाद्यौ दृष्टं तादृशस्य तन्वादिष्वभावाच्चातस्तेषां तत्पूर्वकत्व- २० सिद्धिः; तर्हि यौदृशमौदारिकशरीरस्थितित्वमसदाद्यौ तद्भुक्ति-पूर्वकं दृष्टं तादृशस्य भगवत्परमौदारिकशरीरस्थितावभावाच्चा-तस्तस्यास्तद्भुक्तिपूर्वकत्वसिद्धिः । यथा च प्रत्ययत्वाविशेषेऽपि कस्यैचिन्निरालम्बनत्वमन्यैस्यान्यैत्वम्, तथा च तच्छरीरस्थिते-स्तत्त्वाविशेषेऽपि निराहारत्वमितैरेष्येयतामविशेषात् । २५

अथ 'अयौदृशमौदारिकशरीरस्थितित्वमन्यैदृशाश्च पुरुषा न सन्ति' इत्युच्यते तर्हि मीमांसकमतानुप्रवेशः । अतो यथान्वा-

१ औदारिकशरीरस्थितित्वात्कवलाहारित्वमेवेति । २ कवलाहारलक्षणः । ३ सरा-गतसेन्द्रियत्वलक्षणः । ४ भगवतः सरागत्वे तत्प्रत्यक्षसेन्द्रियत्वमेव च । ५ अस-दाद्यौ । ६ अक्रियादिभिनः कृतानुभूत्यादकत्वम् । ७ सप्तषाण्डमलोपेतम् । ८ तस्य= कवलस्य । ९ औदारिकशरीरस्थितित्वादिदिति हेतोः । १० कवलस्य । ११ द्विचन्द्रादि-प्रत्ययस्य । १२ घटादिप्रत्ययस्य । १३ सालम्बनत्वम् । १४ आहारपूर्वकत्वम् । १५ परमौदारिकम् । १६ जनाहारिणः । १७ मीमांसकमतेऽपि सर्वशक्येणोऽन्या-दृशः पुरुषो नास्ति ।

दृशाः सन्ति पुरुषास्तथा तदस्थितित्वमपि । कथमन्यथा सप्तधातु-
मलापेतत्वं तच्छरीरस्य स्यात् ? तत्सम्भवे तदस्थितेरतैर्द्विकिपूर्व-
कत्वमपि स्यात् ।

तपोमाहात्म्याच्चतुरास्यत्वादिबन्धाभुक्तिपूर्वकत्वे तस्याः को
५ विरोधः ? दृश्यते च पञ्चकृत्वो भुञ्जानस्य यादृशी तच्छरीर-
स्थितिस्तादृश्येव प्रतिपक्षभावनोपेतस्य चतुस्त्रिद्येकभोजनस्यापि ।
तथा प्रतिदिनं भुञ्जानस्य यादृशी सा तादृश्येवैकद्वयादिदिनान्तरि-
तभोजिनोपि । श्रूयते च बाहुबलिप्रसूतीनां संवत्सरप्रमिताहार-
वैकल्येपि विशिष्टा शरीरस्थितिः । आयुःकर्मैव हि प्रधानं तदस्थिते-
१० निमित्तम्, भुक्त्यादिस्तु सहायमात्रम् । तच्छरीरोपर्वयोपि
लामान्तरायविनाशाद्यतिसमये तदुपचयनिमित्तभूतानां दिव्य-
परमाणूनां लाभाद् घटते । एवं छद्मस्थावस्थावन्न केवल्यवस्थाया-
मप्यस्य भुक्त्यऽभ्युपगमे अक्षिपक्षमनिमेषो नखकेशवृद्ध्यादिभ्या-
भ्युपगम्यताम् । तदभावातिशयाभ्युपगमे वा भुक्त्यभावातिशयो-
१५ प्यभ्युपगन्तव्यो विशेषाभावात् ।

ननु मासं वर्षं वा तदभावे तदस्थितावपि नाऽऽकालं तदस्थितिः
पुनस्तदाहारे प्रवृत्त्युपलम्भादिति चेत्, कुत एतत् ? आकालं
तदस्थितेरनुपलम्भाच्चेत्, सर्वज्ञवीतरागस्याप्यत एवासिद्धेर्लौमि-
सिच्छतो मूलोच्छेदः स्यात् । दोषोऽवरणयोर्हान्यतिशयोपलम्भेन
२० केचिदात्यन्तिकप्रक्षयसिद्धेस्तत्सिद्धौ क्वचिच्छरीरिण्यात्यन्तिको
भुक्तिप्रक्षयोपि प्रसिद्ध्येत् तदुपलम्भस्यात्राप्यविशेषात् । तन्न
शरीरस्थितेरभगवतो भुक्तिसिद्धिः ।

अथोच्यते-वेदनीयकर्मणः सद्भावात्तत्सिद्धिः; तथाहि-भग-
वति वेदनीयं स्वर्गलदायि कर्मत्वादायुःकर्मवत्; तदप्युक्ति-
२५ मात्रम्; यतोऽतोप्यनुमानासत्फलमात्रं सिद्धेन्न पुनर्भुक्तिलक्ष-
णम् । अथ क्षुदादिनिमित्तवेदनीयसद्भावाद्भुक्तिसिद्धिः; ननु
तन्निमित्तं तत्तत्रास्तीति कुतः ? क्षुदादिफलाच्चेदन्योन्याश्रय-
सिद्धे हि भगवति तन्निमित्तकर्मसद्भावे तत्फलसिद्धिः, तस्यान्न
तन्निमित्तकर्मसद्भावासिद्धिरिति ।

१ अन्यादृशोदारिकशरीरस्थितेः । २ अकवल । ३ भोजने विरक्तभावोपेतस्य ।
४ प्रुद्धिः । ५ वीतरागस्य । ६ अतिद्ये । ७ कालमभिव्याप्य । मरणपर्यन्तमित्यर्थः ।
८ कवलाहारमन्त्रेण । ९ तस्य कवलस्य । १० सर्वज्ञसद्भावम् । (कवलाहारत्वम्)
११ सर्वज्ञसद्भावोच्छेदः । १२ दोषा रागादिभावकर्म । १३ भावरयं द्रव्यकर्म ।
१४ इहान्ते । १५ आत्मनि । १६ स्वफलं क्षुदादिदुःखम् ।

अथाऽसातवेदनीयोदयात्तत्र तत्सिद्धिः; न; सामर्थ्यवैकल्यात् तस्य । अविकलसामर्थ्यं ह्यसातादिवेदनीयं स्वकार्यकारि, सामर्थ्य-वैकल्यं च मोहनीयकर्मणो विनाशात्सुप्रसिद्धम् । यथैव हि पतिते सैन्यनायकेऽसामर्थ्यं सैन्यस्य तथा मोहनीयकर्मणि नष्टे भगवत्य-सामर्थ्यमघातिकर्मणाम् । यथा च मन्त्रेण निर्विषीकरणे कृते मन्त्रि-^५ णोपभुज्यमानमपि विषं न दाहमूर्च्छादिकं कर्तुं समर्थम्, तथा असातादिवेदनीयं विद्यमानोदयमप्यसति मोहनीये निःसामर्थ्य-त्वाच्च क्षुद्रःस्वकरणे प्रभु सामग्रीतः कार्यात्पत्तिप्रसिद्धेः ।

मोहनीयाभावश्च प्रसिद्धो भगवतः, तीव्रतरशुक्लध्यानानलनिर्व-ग्धघनघातिकर्मैन्धनत्वात् । यदि च तदभावेऽपि तदुदयः स्वकार्य-^{१०} कारी स्यात्; तर्हि परघातकर्मोदयात्परान् यथादिभिस्ताडयेत् स एव वा परैस्ताडयेत् । परघातोदयोऽपि हि संयतानामर्हद्व-सौनानामस्ति । अथ परमकारुणिकत्वात्तदुदयेऽपि न परास्ताडयति उपसर्गाभावाच्च न च तैस्ताडयते; तर्हानन्तसुखवीर्यत्वाद्वाधाविर-हाच्चासातादिवेदनीयोदये सत्यपि भोजनादिकं न कुर्यात् । मोह-^{१५} कार्यत्वाच्च करुणायाः कथं तत्क्षये परमकारुणिकत्वं तस्य स्यात् ?

किञ्च, कर्मणां यद्युदयो निरपेक्षः कार्यमुत्पादयति; तर्हि त्रिवेदानां कषायाणां वा प्रमत्तादिषूदयोस्तीति मैथुनं भ्रुकुट्या-दिकं च स्यात् । ततश्च मनसः संक्षोभात्कथं शुक्लध्यानासिः क्षप-कञ्चेण्यारोहणं वा ? तदभावाच्च कथं कर्मक्षपणादि घटेत ? ^{२०}

नन्वेवं नामाद्युदयोऽपि तत्र स्वकार्यकारी न स्यात्; इत्यप्यसङ्ग-तम्; शुभप्रकृतीनां तत्राप्रतिबद्धत्वेन स्वकार्यकारित्वसम्भवात् । यथा हि घलवता राज्ञा स्वर्मांर्गानुसारिणा लब्धे देशे दुष्टा जीव-न्तोऽपि न स्वदुष्टाचरणस्य विघातारः सुजनास्त्वप्रतिहततया स्वका-र्यस्य विघातारस्तथा प्रकृतमपि । कथं पुनरशुभप्रकृतीनामेवाहति ^{२५} प्रतिबद्धं सामर्थ्यम् न पुनः शुभप्रकृतीनामिति चेत्; उच्यते-अशुभप्रकृतीनामर्हन्नऽर्जुभागं घातयति न तु शुभानाम्, यतो शुणघातिनां दण्डो नाऽदोषाणाम् । यदि च प्रतिबद्धसामर्थ्यमप्य-सातादिवेदनीयं स्वकार्यकारि स्यात्; तर्हि दण्डकवाटप्रतरादिवि-धानं भगवतो व्यर्थम् । तद्धि यदा न्यूनमायुर्बेदनीयादिकर्मधिक- ^{३०} स्थितिकं भवति तदाऽनेन कर्मणां समस्थित्यर्थं विधीयते । न चाधिकस्थितिकत्वेन फलदानसमर्थं कर्म उपायशतेनाप्यन्यथा

१ इति चेत् । २ केनलिगुणस्नानान्नाम् । ३ उदितस्य कर्मणः स्वकार्यकारि-त्वान्नामप्रकारेण । ४ दुष्टनिग्रहसिद्धपालनकारिणा । ५ शुभाशुभकर्म । ६ शक्तिः ।

कर्तुं शक्यमिति न कश्चिन्मुक्तः स्यात् । अथ तपोमाहात्म्या-
भिर्जीर्णमधिकस्थितिकत्वेन फलदानासमर्थम् आयुःकर्मसमानं
क्रियते; तथा वेद्यमपि क्रियतामविशेषात् ।

एतेनेदमप्यपास्तम्-यदि वेदनीयमफलम् तत्र तन्नास्येव
५ ज्ञानावरणादिवत्, तथा च कर्मपञ्चकस्याभावस्तत्र प्राप्नोतीति ।
कथम् ? यद्यायुरधिकानि वेद्यादीनि स्वफलदानसमर्थानि; तर्हि
मुक्त्यभावः । नो चेन्नै तेषां कर्मत्वमिति तदपनयनाय योगिनो
लोकपूरणादिप्रयासो व्यर्थः । अनुष्ठानविशेषेणापहृतसामर्थ्यान्वै-
भवस्थानं वेद्येपि समानम् । न च कारणमस्तीत्येतावतैव कार्यो-
० त्पत्तिः, अन्यथेन्द्रियादिकार्यस्याप्यनुपपन्नाद्भगवतो मतिज्ञानस्य
रामादीनां च प्रसङ्गः । अथावरणक्षयोपशमस्य मोहनीयकर्मणश्च
सहकारिणो विरहाभेन्द्रियादि स्वकार्ये व्याप्रियते; अत एव वेद-
नीयमपि न व्याप्रियेत । न ह्यत्यन्तमात्मनि परत्र वा विरतव्यामो-
हस्तदर्थं किञ्चिदादातुं हातुं वा प्रवर्त्तते । प्रयोगः-यो यत्रात्यन्तं
५ व्यावृत्तव्यामोहः स तदर्थं किञ्चिदादातुं हातुं वा न प्रवर्त्तते यथा
व्यावृत्तव्यामोहा माता पुत्रे, व्यावृत्तात्यन्तव्यामोहश्च भगवान्,
ततः सोपि भोजनमादातुं क्षुदादिकं वा हातुं न प्रवर्त्तते । प्रवृत्तौ
वा मोहवत्त्वप्रसङ्गः; तथाहि-यस्तदादातुं हातुं वा प्रवर्त्तते स
मोहवान् यथाऽऽसदादिः, तथा चायं श्वेतपटाभिमतो जिन इति ।
२० तथा च कुतोऽस्याप्तता रथ्यापुरुषवत् ?

न चेयं बुभुक्षा मोहनीयानपेक्षस्य वेदनीयस्यैव कार्यम्, येना-
त्यन्तव्यावृत्तव्यामोहेऽप्यस्याः सम्भवः । भोक्तुमिच्छा हि बुभुक्षा,
सा कथं वेदनीयस्यैव कार्यम् ? इतरथा योन्यादिषु रन्तुमिच्छा
रिरंसा तत्कार्यं स्यात् । तथा च कवलाहारवत् कयादावपि तत्प्र-
२५ वृत्तिप्रसङ्गात्तेश्वरादस्य विशेषः । यथा च रिरंसा प्रतिपक्षभावन-
नातो निवर्त्तते तथा बुभुक्षापि । प्रयोगः-भोजनाकाङ्क्षा प्रतिपक्ष-
भावनातो निवर्त्तते आकाङ्क्षात्वात् कयाद्याकाङ्क्षावत् । नन्वस्तु
तद्भावनाकाले तन्निवृत्तिः, पुनस्तदभावे प्रवृत्तिरित्येतत् कयाद्या-
काङ्क्षायामपि समानम् । यथा चास्याश्चेतसः प्रतिपक्षभावनाम-
० यत्त्वाद्यन्तन्निवृत्तिस्तथा प्रकृताकाङ्क्षायामपि ।

१ शुकृष्णानतपोमाहात्म्येन भगवता । २ फलदानासमर्थम् । ३ अघातिकर्म-
त्वस्य । ४ फलदानासमर्थम् । ५ कथमपास्तमित्युच्यते । ६ फलदानसमर्थानि च
भवन्तीति चेत् । ७ तर्हील्लव्याहियते । ८ इति सप्तानामभावेन परस्मानिष्टापादनम् ।
९ नामयोःविशेषाणाम् । १० कर्मत्वेन । ११ आदिना निवेदम् । १२ मतिज्ञानस्य
रामादिभ्यः । १३ इच्छा हि लोभभेदत्वेन मोहनीयस्य कार्यम् । १४ नरस्य ।

अथाकाङ्कारूपा धुन्न भवति, तेन वीतमोहेष्यस्याः सम्भवः, तदप्ययुक्तम्, अनाकाङ्कारूपत्वेप्यस्या दुःखरूपतयाऽनन्तसुखे भगवत्सम्भवात् । तथाहि—यत्र यद्विरोधि वलवदस्ति न तत्राभ्युदितकारणमपि तद्भवति यथाऽत्युष्णप्रदेशे शीतम्, अस्ति च क्षुद्रुःखविरोधि वलवत् केवलिन्यनन्तसुखम् । तथा यैर्कार्यैः^५ विरोध्यैर्निर्वैर्यै यत्रास्ति तत्र तदविकलमपि स्वकार्यं न करोति यथा श्लेष्मादिविरुद्धानिर्वर्त्यपिचविकाराक्रान्ते न र्द्वेष्यादि श्लेष्मादि करोति, वेद्यफलविरुद्धाऽनिर्वर्त्यसुखं च भगवतीति ।

अस्तु वा वैद्यं तत्र बुभुक्षाफलप्रदायि, तथापि—बुभुक्षातः सम-
वसरणस्थित एवासौ भुङ्के, चर्यामार्गेण वा गत्वा? प्रथमपक्षे^{१०}
मार्गस्तेन नाशितः स्यात् । कथं च बुभुक्षोदयानन्तरमाहारास-
म्पत्तौ ग्लानस्य यथावद्वोघहीनस्य मार्गोपदेशो घटेत? अथ तद्बु-
दयानन्तरं देवास्तत्राहारं सम्पादयन्ति; न; अत्र प्रमाणाभावात् ।
'आगमः' इति चैन्न; उभयप्रसिद्धस्यास्याप्यभावात् । स्वप्रसिद्धस्य
भावेपि नातस्तत्सिद्धिः, 'भुक्त्युपसर्गाभावः' इत्यादेरपि प्रमाणैर्भू-^{१५}
तागमस्य भावात् । अथ चर्यामार्गेण गत्वासौ भुङ्के; तत्रापि किं
गृहं गृहं गच्छति, एकस्मिन्नेव वा गृहे भिक्षालार्भं ज्ञात्वा प्रव-
र्त्तते? तत्राप्यपक्षे भिक्षार्थं गृहं गृहं पर्यटतो जिनस्याज्ञानित्व-
प्रसङ्गः । द्वितीयपक्षे तु भिक्षाशुद्धिस्तस्य न स्यात् । कथं चासौ
भत्स्यादीन् व्याघ्रलुब्धकप्रभृतिभिः सर्वत्र सर्वदा व्याहन्यमाना-^{२०}
न्प्राणिनस्तेषां पिक्षितानि च तथाऽशुच्यादींश्चार्थान् साक्षात्कुर्व-
न्नाहारं गृहीयात्? अन्यथा निष्करणः स्यात् । जीवानां हि वधं
विंष्टादिकं च साक्षात्कुर्वन्तो व्रतशीलविहीना अपि न भुञ्जते,
भगवांस्तु व्रतादिसम्पन्नस्तत्साक्षात्कुर्वन् कथं भुञ्जीत? अन्यथा
तेभ्योऽप्यसौ हीनसत्त्वः स्यात् ।

२५

यदप्युच्यते—यत्किञ्चिद्गृहं शुद्धमशुद्धं तत्सरन्तो यथासदादयो
भोजनं कुर्वन्ति तथा केवली साक्षात्कुर्वन्ति; तदप्युक्तिमात्रम्;
न ह्यसदादीनां परमचारिजपदप्राप्तेनाशेषधेन भगवता साम्यमस्ति ।
असदादयोपि हि यथा(यदा)कथञ्चित्किञ्चिदशुद्धं वस्तु इष्टं

१ क्षुदादिदुःखं धर्मि । २ यस्य वेदनीयस्य । ३ कार्यं क्षुद्र । ४ अनन्तसुखम् ।
५ न केनापि निराकर्तुं शक्यम् । ६ वेदनीयम् । ७ (नरे) । ८ श्लेष्मादिलक्षणस्य
कार्यस्य करणे अविकलमपि । ९ अनन्तसुखम् । १० वेदनीयम् । ११ जेतपटस्य ।
१२ भगवतः । १३ अर्थे । १४ जेतपटमते प्रसिद्धसागमस्य । १५ जैनागमस्य ।
१६ केनचित्प्रकारेण मार्गोदिगमनलक्षणेन ।

स्मरन्तो भोजनपरित्यागेऽसमर्थास्तद्भुञ्जते तदा तद्दोषविशुद्ध्यर्थं
गुरुवचनानादात्मानं निन्दन्तः प्रायश्चित्तं कुर्वन्ति । ये तु तस्यागे
समर्थाः पिण्डविशुद्धाबुद्धतमनसो निवेदस्य परां काष्ठामापन्ना-
स्त्यकशरीरापेक्षा जितजिह्वा अन्तरायविषये निपुणमत्यस्ते
५ स्मरन्तोपि न भुञ्जते ।

किञ्च, असौ भोजनं कुर्वाणः किमेकाकी करोति, शिष्यैर्वा
परिचृतः ? यदि एकाकी; पश्चाल्लभान् शिष्यान्विनिवार्यं श्रावकानां
गृहे गत्वा भुङ्क्ते तर्हि दीनः स्यात् । अथ तैः परिचृतः; तर्हि साध-
प्रसङ्गः ।

१० किञ्च, असौ भुक्त्वा प्रतिक्रमणादिकं करोति वा, न वा ?
करोति चेत्; अवश्यं दोषवान् सम्भाव्यते, तत्करणाव्ययानु-
पपत्तेः । न करोति चेत्; तर्हि भुज्जिक्रियातः समुत्पन्नं दोषं कथं
निराकुर्यात् ? आहारकथामात्रेणापि ह्यप्रमत्तोपि सन् साधुः
प्रमत्तो भवति, नार्हन्भुञ्जानोपीति श्रद्धामात्रम् । प्रमत्तत्वे चास्य
१५ श्रेणितः पतितत्वान्न केवलभाक्त्वम् ।

किमर्थं चालौ भुङ्क्ते-शरीरोपचयार्थम्, ज्ञानध्यानसंयमसंशि-
द्ध्यर्थं वा, क्षुद्धेदनाप्रतीकारार्थं वा, प्राणत्राणार्थं वा १ न तावच्छ-
रीरोपचयार्थम्; लाभान्तरायप्रक्षयात्प्रतिसमयं विशिष्टपरमाणु-
लाभतस्तत्सिद्धेः । तदर्थं तद्गृहणे चालौ कथं निर्ग्रन्थः स्यात्
२० प्राकृतपुरुषवत् ? नापि ज्ञानादिसिद्ध्यर्थम्; यतो ज्ञानं तस्यासि-
त्कार्यविषयमक्षयस्वरूपम्, संयमश्च यथाख्यातः सर्वदा विद्यते ।
ध्यानं तु परमार्थतो नास्ति निर्मनस्कत्वात्, योगनिरोधत्वेनोप-
चारतस्तत्रास्य सम्भवात् । नापि प्राणत्राणार्थम्; अपमृत्युरहि-
तत्वात् । नापि क्षुद्धेदनाप्रतीकारार्थम्; अनन्तसुखवीर्यं भगव-
२५ त्तस्याः सम्भवाभावस्योक्तत्वात् ।

ननु भगवतो भोजनाभावे कथम् 'एकादश जिने परीषदाः'
इत्यागमविरोधो न स्यात् ? तदसत्; तेषां तत्रोपचारेणैव प्रति-
पादनात्, उपचारनिमित्तं च वेदनीयसंज्ञावमात्रम् । परमार्थ-
तस्तु तत्र तेषां सज्ञावे क्षुदादिपरीषदसंज्ञावाहुः सुखावद् रोगवत्-
३० लृणस्पर्शपरीषदसंज्ञावान्महद्दुःखं स्यात्, तथा च दुःखितत्वा-
न्नासौ जिनेऽस्सदादिवत् । तथा भोजनं रसनेन शीतादिकं च

१ यतयः । २ शृष्टे । ३ भगवतो भुक्तिप्रियातो दोष एव न सम्भवते इत्युक्ते
आह । ४ प्रमत्तो न भवतीति यावत् । ५ प्राकृतो नीचः । ६ आधुनोऽपवर्तित-
त्वात् । ७ जिने । ८ द्रव्यरूपेण । ९ भोजनं रसनेनात्रुभवेदा केवलज्ञानेन नैति
विकल्प्य क्रमेण दृष्यन्नाह ।

स्पर्शनादिनेन्द्रियेण यद्यसावनुभवत्; तर्हि भगवतो मतिज्ञानानु-
षङ्गः । अथ कैवलज्ञानेन; तत्रापि सर्वे मोजनादिकं परशरीरस्थ-
प्रप्यस्यानुषज्यते । न चात्मशरीरस्थमेवास्य तन्मान्यदित्यभिधा-
तव्यम्; भगवतो वीतमोहस्य स्वपरशरीरमतिविभागाभावात् ।

यद्योपचारतोप्यस्यैकादश परीषदा न सम्भाव्यन्ते तत्र तन्नि- ५
वेद्यपरत्वात् सूत्रस्य, 'एकेनाधिका न दश परीषदा जिने एकादश
जिने' इति व्युत्पत्तेः । प्रयोगः-भगवान् शुदादिपरीषदरहितो-
ऽनन्तद्युक्तत्वात्सिद्धवत् ।

किञ्च, भोजनं कुर्वाणो भगवान् किल लोकैर्नावलोक्यते चक्षु-
बेत्यभिधीयते भवता । तत्रादर्शनेऽयुक्तसेवित्वादेकान्तमाश्रित्य १०
शुद्ध इति कारणम्, बह्वलान्धकारस्थितभोजनं वा, विद्याविशेषेण
स्वस्य तिरोधानं वा? तत्राद्यपक्षे पारदारिकवहीनंधडा दोष-
सम्भावनाप्रसङ्गः । अन्धकारस्तु न सम्भाव्यते, तद्देहदीप्त्या तस्य
निहतत्वात् । विद्याविशेषोर्पयोगे चास्य निर्ग्रन्थत्वाभावः । कथं
चाद्दृश्याय तस्मै दानं दातुमिर्दीयते? अथातिशयविशेषः कश्चि- १५
त्तस्य, येन भुञ्जानो नावलोक्यते; तर्हि भोजनाभावलक्षण पचा-
स्यातिशयोस्तु किं मिथ्याभिनिवेशेन? ततो जीवन्मुक्तस्यात्म-
नोऽनन्तचतुष्टयस्वभावत्वमिच्छता कवलाहाररहितत्वमेवैष्टव्य-
मित्यलमतिप्रसङ्गेन ।

ननु च 'अनन्तचतुष्टयस्वरूपलामो मोक्षः' इत्ययुक्तम्; बुद्ध्या- २०
दिविशेषगुणोच्छेदरूपत्वात्तस्य । तदुच्छेदे च प्रमाणम्-नवा-
नामात्मविशेषगुणानां संन्तानोऽत्यन्तमुच्छिद्यते संन्तानत्वात्
प्रदीपसन्तानवत् । न चायमसिद्धो हेतुः; पक्षे प्रवर्त्तमानत्वात् ।
नापि विरुद्धः; सपक्षे प्रदीपादौ सत्त्वात् । नाप्यनैकान्तिकः; पक्ष-
सपक्षवर्द्धिपक्षे परमाण्वादावप्रवृत्तेः । नापि कालात्ययापदिष्टः; २५
विपरीतार्थोपस्थापकयोः प्रत्यक्षागमयोरसम्भवात् । नापि सैत्प्रति-
पक्षः; प्रतिपक्षसाधनाभावात् ।

१ तर्हि । २ कैवलज्ञानेन तन्मान्यनुभवोस्तीति भावः । ३ (एकादश जिने इति
सूत्रस्य चिननिष्ठैकदशपरीषदाणां निषेधपरत्वात्) । ४ अन्वे । ५ मां इहा कश्चि-
न्नोशनं याचिष्यत इति दीनचित्तत्वं दोषो दीनचित्तस्य । ६ व्यापारे । ७ प्रपञ्चेन ।
< बुद्धिसुखदुःखेच्छादेषप्रयत्नधर्माधर्मसंस्कारलक्षणानाम् । ९ धर्माधर्माभ्यां बुद्धि-
रूपयते इन्द्रेः संस्कारः संस्कारादिच्छादेषौ इच्छादेवाभ्यां प्रयत्नसंसात्सुखदुःखे भवत
इति नवानां गुणानां संन्तानः । १० सर्वथा । ११ तिले । १२ प्रतिपक्षसाधको
हेतुः सप्रतिपक्षः ।

ननु सन्तानोच्छेदरूपेपि मोक्षे हेतुर्वाच्यो निर्देतुकविनाशान-
भ्युपगमात्; इत्यप्यचोद्यम्; तत्त्वज्ञानस्य विपर्ययज्ञानव्यवच्छेदे-
क्रमेण निःश्रेयसहेतुत्वोपपत्तेः । इष्टं च सम्यग्ज्ञानस्य मिथ्या-
ज्ञानोच्छेदे शुक्तिकादौ सामर्थ्यम् । ननु चैतत्त्वज्ञानस्यापि
५ तत्त्वज्ञानोच्छेदे सामर्थ्यं दृश्यते, ज्ञानस्य ज्ञानान्तरविरोधित्वेन
मिथ्याज्ञानोत्पत्तौ सम्यग्ज्ञानोच्छेदप्रतीतेः; इत्यप्युक्तम्; यतो
नानयोच्छेदमात्रमभिप्रेतम् । किं तर्हि ? सन्तानोच्छेदः । यथा
च सम्यग्ज्ञानान्मिथ्याज्ञानसन्तानोच्छेदो नैवं मिथ्याज्ञानात्सम्य-
ग्ज्ञानसन्तानस्य, अस्य सत्यार्थत्वेन बलीयस्त्वात् । निवृत्ते च
१० मिथ्याज्ञाने तन्मूला रागादयो न सम्भवन्ति कारणाभावे कार्या-
नुत्पादात् । रागाद्यभावे तत्कार्या मनोवाकायप्रवृत्तिर्व्यवर्तते ।
तदभावे च धर्माधर्मयोरनुत्पत्तिः । आरब्धशरीरेन्द्रियविषय-
कार्ययोस्तु सुखदुःखफलोपभोगात्प्रक्षयः । अनारब्धतत्कार्ययोर-
प्यवस्थितयोस्तत्फलोपभोगादेव प्रक्षयः । तथा चागमः—

१५ “नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि” [] इति ।

अनुमानं च, पूर्वकर्मण्युपभोगादेव क्षीयन्ते कर्मत्वात् प्रारब्ध-
शरीरकर्मवत् । न चोपभोगात्प्रक्षये कर्मान्तरस्यावश्यं भावा-
त्संसारानुच्छेदः; समीचिबलादुत्पन्नतत्त्वज्ञानेनैवावगतकर्मसा-
मर्थ्योत्पादितयुगपदशेषशरीरद्वारावासाशेषभोगस्योर्पैतत्कर्मप्रक्ष-
२० यात्, भाविक्रमोत्पत्तिनिमित्तमिथ्याज्ञानजनितानुसन्धानविकल-
त्वाच्च संसाराच्छेदोपपत्तेः । अनुसन्धानं हि रागद्वेषौ ‘अनु-
सन्धीयते गतं चित्तमाभ्याम्’ इति व्युत्पत्तेः । न च मिथ्या-
ज्ञानाभावेऽभिलाषस्यैवासम्भवाद्भोगोर्गानुपपत्तिः; तदुपभोगं विना
हि कर्मणां प्रक्षयानुपपत्तेः तत्त्वज्ञानिनोपि कर्मक्षयार्थेतया प्रवृत्ति-
२५ वैद्योपदेशेनातुरवदौषधाचरणे । यथैव ह्यातुरस्थानभिलषितेप्यौ-
षधाचरणे व्याधिप्रक्षयार्थं प्रवृत्तिः, तद्व्यतिरेकेण तत्प्रक्षयानुप-
पत्तेस्तथात्रैपि ।

१ मिथ्या । २ सम्यग्ज्ञानान्मिथ्याज्ञानाभावस्तदभावाद्वागाद्यभाषस्तदभावाच्च मनो-
वाकायप्रवृत्तिरूपप्रयत्नाभावस्तदभावान्कर्माधर्मयोरभाव इति । ३ द्विचन्द्रदिशावस ।
४ एकचन्द्रज्ञानस्य । ५ आमूलतः सन्ततिच्छेदे पशामिप्रायः । ६ सन्ननित्तादिकं सुख-
हेतुरिति आहिकण्टकादिकं दुःखहेतुरिति च सम्यग्ज्ञानात् । ७ सन्ननित्तादिकं दुःखहेतु-
रिति ज्ञानात् । ८ धर्माधर्मयोः । (वसः) । ९ प्रारब्धं शरीर येन तत्र तत्कर्म च ।
२० ध्यान । २१ नुः । २२ पूर्वोपात्त । २३ सम्भवते । २४ अनेन पूर्वं मनेन्द्रियं
दुःखादिकं दत्तमिति । २५ बुद्धिः । २६ तत्त्वज्ञानिनः पुरुषस्य । २७ कर्मफलस्य ।
२८ कर्मफलोपभोगे । २९ उक्तमेव समर्थयति । ३० कर्मफलोपभोगे तत्त्वज्ञानिनः ।

ननु तत्त्वज्ञानिनां तत्त्वज्ञानादेव सञ्चितकर्मप्रक्षय इत्यप्या-
गमोस्ति—

“यथैघांसि संमिद्धोद्भिर्मससात्कुरुते क्षणात् ।

ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा”

[भगवद्गी० धा३७] इति । ५

तथा च विरुद्धार्थत्वादुभयोरैकत्रार्थे कथं प्रामाण्यम् ? इत्ययुक्तम् ;
तत्त्वज्ञानस्य साक्षात्तद्विनाशे व्यापाराभावात् । तद्धि कर्मसा-
मर्थ्यावगमतोऽशेषशरीरोत्पत्तिद्वारेणोपभोगात्कर्मणां विनाशे
व्याप्रियते इत्यशिरिवोपचर्यते ज्ञानमित्यागमव्याख्यानाद्विरोधः ।
न चैतैद्वाच्यम्—‘तत्त्वज्ञानिनां कर्मविनाशस्तत्त्वज्ञानादितरेषां १०
तूपभोगात्’ इति; ज्ञानेन कर्मविनाशे प्रसिद्धोदाहरणाभावात्,
फलोपभोगानु तत्प्रक्षये तत्सर्जावार्त् ।

अन्ये तु मिथ्याज्ञानजनितसंस्कारस्य सहकारिणोऽभावाद्धि-
द्यमानान्यपि कर्माणि न जन्मान्तरे शरीराद्यौरम्भकाणीति
मन्यन्ते; तेषामनुत्पादितकार्यस्यार्ह्युत्पत्त्याप्रक्षयःश्रित्यत्वसंज्ञः । १५
अनागतयोर्धर्माधर्मयोरेतत्पत्तिप्रतिषेधे तत्त्वज्ञानिनो नित्यनैमित्ति-
कानुष्ठानं किमर्थमिति चेत् ? प्रत्यवायपरिहारार्थम् । न च
मिथ्याज्ञानाभावे दुष्कर्मणोऽभावात् कस्य परिहारार्थं तदित्यभि-
धातव्यम्; यतो मिथ्याज्ञानाभावे निषिद्धोच्चरणनिमित्तस्यैव
प्रत्यवायस्याभावो ऽ विहितानुष्ठाननिमित्तस्य, २०

“अक्रुर्षन्विहितं कर्म प्रत्यवायेन लिप्यते” [] इत्या-
गमात् । ततस्तदनुष्ठानं तत्परिहारार्थं युक्तम् । तदुक्तम्—

“नित्यनैमित्तिके कुर्यात्प्रत्यवायजिहासया ।

मोक्षार्थी न प्रवर्त्तत तत्र कार्म्यनिषिद्धयोः ॥ १ ॥

[मी० श्लो० सम्बन्धा० श्लो० ११०] २५

१ दीप्तः । २ तथाप्यागमसङ्गावे च । ३ आगमयोः । ४ मोक्षोपायलक्षणे ।
५ अग्रे वक्ष्यमाणम् । ६ अतत्त्वज्ञानिनाम् । ७ कुतः ? । ८ मारणशरीरकर्म-
वदिति । ९ तत्त्वज्ञाने समुत्पत्ते सतीति शेषः । १० यावनारूपस्य । ११ इन्द्रिय-
विषयादेश्च । १२ नैयायिकविशेषाः । १३ धर्माधर्मस्य । १४ ततोऽनुभवनप्रकारेणैव
मोक्षोऽभ्युपगन्तव्यः । १५ सति । प्रायुक्तन्यायेन । १६ नरस्य । १७ दुष्कर्म ।
१८ कैनादिना । १९ विप्रवधादि । २० नित्यनैमित्तिकादेः । २१ कर्मणी । २२ कार्म्य
यागः । २३ निषिद्ध विप्रवधादि । २४ कर्मणोः ।

नित्यनैमित्तिकैरेव कुर्वाणो दुरितक्षयम् ।

ज्ञानं च विमलीकुर्वन्नभ्यासेन तु पाचयेत् ॥ २ ॥

अभ्यासार्त्तकविज्ञानः कैवल्यं लभते नरः ।

काम्ये निषिद्धे च परं प्रवृत्तिप्रतिषेधतः ॥ ३ ॥" []

- ५ 'स्वर्गकामः' इत्याद्यागमजनितकामेन यागाभिलाषेण निर्वर्त्य हि काम्यमग्निष्टोमादि । कैवल्यं तु सकलविशेषगुणोच्छेदविशिष्टात्मस्वरूपं निर्वाणम् । न च विपर्ययज्ञानप्रध्वंसादिकमेण तद्विशिष्टात्मस्वरूपनिर्वाणस्य तत्त्वज्ञानकार्यत्वादनित्यत्वं वाच्यम् ; यतो विशेषगुणोच्छेदस्यानित्यत्वमापाद्यते, तद्विशिष्टात्मनो वा ?
- १० न तावद्विशेषगुणोच्छेदस्य; अस्य प्रध्वंसाभावरूपत्वात् । कार्यवस्तुनो ह्यनित्यत्वं प्रसिद्धम् । तद्विशिष्टात्मनश्च वस्तुत्वेऽपि कार्यत्वाभावात्तानित्यत्वम् । न च बुद्ध्यादिविनाशे गुणिनस्तथाभावो युक्तः; तथोरत्यन्तभेदात् । तत्तादात्म्ये त्वैवं दोषः स्यादेव ।

अथ मोक्षावस्थायां चैतन्यस्याप्युच्छेदोक्तं कृतबुद्धयस्तत्र प्रव-
१५ र्तन्ते इत्यानन्दरूपो मोक्षोऽभ्युपगन्तव्यः—

"आनन्दं ब्रह्मणो रूपं नञ्च मोक्षेऽभिव्यर्ज्यते" []

- इत्यागमात् । 'आत्मा सुखस्वभावोऽत्यन्तप्रियंबुद्धिविषयत्वात्, अनन्यैपरंतयोपौदीयमानत्वाच्च । यद्यदेवंविधं तत्तत्सुखस्वभावम् यथा वैषयिकं सुखम्, तथैवात्मा एवंविधः, तस्मात्सुखस्व-
२० भावः' इत्यनुमानाच्चास्यानन्दस्वभावताप्रतीतिः; इत्यप्यसाम्प्रतम् ; यतस्तत्सुखं नित्यम्, अनित्यं वा ? न तावदनित्यम् ; तत्स्वभावतयात्मनोऽप्यनित्यत्वप्रसङ्गात् । नित्यं चेत् ; तत्संवेदनमपि नित्यम् ;

- १ अनुष्ठानैः । २ मनुष्यः । ३ विस्तारयेत् । ४ उत्कृष्टविज्ञानः । ५ मोक्षम् ।
६ (मूलपाठस्त्वत्र 'कैवल्यं' इति । अनेन त्रिमात्रिकाक्षरेण छन्दोभङ्गः स्यादिति 'पर' शब्दो नियोजितः । कैवल्यशब्दस्य परशब्दोऽर्थः टिप्पण्यां लिखितश्च) । ७ निष्पाद्य-
मनुष्ठानम् । ८ मिथ्याज्ञान । ९ निस्स्वरूपत्वात् । १० गुणगुणिनोः । ११ गुण-
गुणिनोः । १२ गुणविनाशे गुणिविनाशलक्षणः । १३ वेदान्दी आत्कीयः ।
१४ बुद्धेः । १५ विनाशात् । १६ प्रेक्षावन्तः । १७ वैश्वेदिकेण । १८ आत्मनः ।
१९ व्यक्तीक्रियते । २० संसारियुक्तात्मनोः साधारणमनुमानम् । २१ पुत्रादिशरीरेण
व्यभिचारपरिहारार्थमत्यन्तपदोपादानम् । २२ आत्मनः । २३ वनिताशरीरेण व्यभि-
चारपरिहारार्थमनन्यपरतयेत्युक्तम् । २४ स्वप्रधानत्वेनेत्यर्थः । २५ अनन्यपरतयो-
पादीयमानत्वादिति कोषः ? आत्मन आत्मनि लीनतया स्वस्वरूपसोपादीयमानत्वं
ब्राह्मणमण्डलं यस्मात्तन् इति । २६ वैषयिकसुखप्रकारेण । २७ संसारावस्थायां शुष्क-
वस्थायां च ।

अनित्यं वा ? यदि नित्यम् ; मुकेतरावस्थयोरविशेषप्रसङ्गः तत्सु-
खसंवेदनयोर्नित्यत्वेनोभयत्र सत्त्वाविशेषात् । स्मरणानुपर्येत्तिश्च ;
अनुभवस्यैवावस्थानात् । संस्कारानुपर्येत्तिश्च ; अनुभवस्य निरति-
शयत्वात् । करणजन्यसुखेन चास्य संसारावस्थायां साहचर्यग्र-
हणप्रसङ्गात् सुखईयोपलम्भः सदा स्यात् । ५

अथ धर्माधर्मफलेन सुखादिना शरीरादिना वा नित्यसुख-
संवेदनस्य प्रतिबन्धत्वेनानुभवाभावात् मुकेतरावस्थयोरविशेषः
सदा सुखइयोपलम्भो वा ; तदयुक्तम् ; शरीरादेः सुखार्थत्वेन
तत्प्रतिबन्धकत्वायोगात् । न हि यद्यदर्थं तत्तस्यैव प्रतिबन्धकं
युक्तम् । नापि वैषयिकसुखाद्यनुभवेन तत्प्रतिबन्धः । तेन हि १०
नित्यसुखस्य तदनुभवस्य वा प्रतिबन्धोऽनुत्पत्तिलक्षणो विनाश-
लक्षणो वा न युक्तः ; ईश्वरपि नित्यत्वाभ्युपर्येत्तात् । न च
संसारावस्थायां बाह्यविषयव्यासङ्गाद्विद्यमानस्याप्यनुभवस्यासंवे-
दनम्, तद्भावात्तु मोक्षावस्थायां संवेदनमित्यभिधौतव्यम् ;
तदनुभवस्य नित्यत्वेन व्यासङ्गानुपपत्तेः । आत्मनो हि व्यासङ्गो १५
रूपाद्यौ विषये ज्ञानोत्पत्तौ विषयान्तरे ज्ञानानुत्पत्तिः, इन्द्रिय-
स्याप्येकस्मिन्विषये ज्ञानजनकत्वेन प्रवृत्तस्य विषयान्तरे ज्ञानजन-
कत्वम् । स चात्रानुपपन्नः ; सुखवत्तज्ज्ञानस्यापि सदा सत्त्वात् ।
शरीरादेस्तु प्रतिबन्धकत्वे तदपहन्तृर्हि साफलं न स्यात्, प्रति-
बन्धकविघातकारकस्योपकारकत्वेन लोके प्रतीतेः । २०

अथानित्यं तत्संवेदनम् ; तदोत्पत्तिकारणं वाच्यम् । अथ
योगजधर्मापेक्षः पुरुषान्तैःकरणसंयोगोऽसमवायिकारणम् । ननु
योगजधर्मस्य मुक्तावसम्भवात् कथमसौ तत्संयोगेनापेक्ष्येत

१ संसारावस्थाया मुक्तावस्थाया च । २ अस्ति च संसारावस्थाया सुखस्मरणम् ।
३ प्रत्यक्षस्य । ४ प्रत्यक्षविशेषो धारणाज्ञानं संस्कारः । ५ अस्ति च संस्कारस्योत्पत्तिः
संसारावस्थायाम् । ६ भावरूपस्य । ७ नित्यसुखस्य । ८ नित्यानित्यसुखद्वयस्य ।
९ यदा यदा वैषयिकं सुखमुत्पद्यते तदा तदा इयोरुपलम्भ इत्यर्थः । १० कार्त्वेण ।
११ सुखादिना च । १२ इन्द्रियादिना च । १३ प्रतिबन्धत्वेन । १४ अत्रार्थः
प्रयोजनम् । १५ योगायतनं शरीरमिति बचनात् । १६ प्रतिपद्यम् । १७ अनित्या-
दिवत् । १८ नित्यसुखसंवेदनयोः । १९ वेदान्तिना । २० नित्यसुखानुभवस्य ।
२१ वेदान्तिना । २२ आत्मन इन्द्रियस्य वा । २३ तत्समये । २४ व्यासङ्गः ।
२५ रूपे । २६ रसे । २७ नित्यसुखे । २८ सुखवत्संवेदनयोः । २९ नरस्य ।
३० वेदान्तिना । ३१ मनः । ३२ आत्मा तु समवायिकारणम् । ३३ नित्यसुख-
संवेदनस्य । ३४ वैशेषिका ।

यतस्तत्र ततस्तद्दुत्पत्तिः स्यात्? अर्थाद्यं योगजघर्मापेक्षान्तः-
करणसंयोगो विज्ञानं जनयति तच्चापेक्ष्योत्तरोत्तरं ज्ञानम्; तद्-
प्ययुक्तम्; न हि शरीरसम्बन्धानपेक्षं विज्ञानमेवान्तःकरण-
संयोगस्य ज्ञानोत्पत्तौ सहकारिकारणं दृष्टम् । न च दृष्टविपरीतं
५ शक्यं कल्पयितुमतिप्रसङ्गात् । आकस्मिकं तु कार्यं न भवत्येव,
अहेतोः सर्वत्र सर्वदा भावप्रसङ्गात् ।

किञ्च, यथा मुक्तावस्थायामनित्यसुखमतिक्रम्य नित्यं परि-
कल्प्यते, तथा नित्यत्वघर्माधिकरणं शरीरैदिकमपि परिकल्प-
नीयम् । कार्यत्वात् तस्य कथं नित्यत्वघर्माधिकरणत्वम् दृष्टविरो-
१० धादप्रमाणकत्वाच्च? इत्यन्यत्रापि समानम् । न खलु नित्यसुख-
साधकत्वेन प्रत्यक्षानुमानागमानां मध्ये किञ्चित्प्रवर्त्तते, असदा-
दीन्द्रियजप्रत्यक्षस्यात्र व्यापारानुपलम्भात् । 'योगिमत्यक्षं त्वेवं
प्रवर्त्ततेऽन्यथा वा' इत्यद्यापि विवादपदापन्नम् ।

यच्चात्मा सुखस्वभाव इत्यनुमानं तदपि न नित्यसुखस्वभावता-
१५ साधकम्; सुखस्वभावतामात्रस्यैवातः प्रसिद्धेः ।

किञ्च, सुखस्वभावत्वं सुखत्वजातिसम्बन्धित्वम्; तच्चात्मनि
सम्भाव्यते गुणे एवास्योपलम्भात् । न ह्येका काञ्चिज्जातिद्रव्यैः
गुणयोः साधारणोपलभ्यते । अथ सुखाधिकरणत्वम्; तन्न; अन्य
नित्यानित्यविकल्पानुपपत्तेः । तथा सुखत्वस्य सुखस्य बाधिकरण-
२० तायां तज्ज्ञानस्यापि नित्यानित्यविकल्पः समानः ।

साधनं च अत्यन्तप्रियबुद्धिविषयत्वमनन्यपरतयोपादीयमानत्वं
चानैकान्तिकत्वादसाधनम्; दुःखाभावोपि भावात् । अनन्यपरतयो-
पादीयमानत्वं चासिद्धम्; न ह्यात्माऽन्यार्थं नोपादीयते; सुखैर्-
-

१ नित्यसुख । २ नित्यसुखसंवेदनम् । ३ आत्मान्तःकरणसंयोगो जनयति ।
४ किन्तु शरीरसम्बन्धानपेक्षं सद्विज्ञानं सहकारिकारणं दृष्टम् । ५ सीगतादेरपि संवेद-
नस्य क्षणिकत्वादितिदिप्रसङ्गात् । ६ वेदान्तिना भवता । ७ इन्द्रियं च ।
८ नित्यसुखे । ९ नित्यसुखसाधकत्वेन । १० नित्यासुखाग्राहकत्वेन । ११ जातिः=
सामान्यम् । १२ निश्चीयते । १३ सुखरूपेण । १४ सुखाधिकरणत्वस्य सुखस्वभाव-
त्वस्य । १५ अन्यलीनतया । १६ वैशेषिकः । १७ निर्लं चैन्मुक्तेतरावसाया
अविशेषप्रसङ्ग इत्यादि दूषणम् । अनित्यं चेदुत्पत्तिकारणं बान्यमित्यादि दूषणम् ।
१८ तथा दूषणान्तरसमुच्चये । १९ आत्मनः । २० दुःखाभावो हि लक्ष्मणरसा-
त्यन्तप्रियबुद्धिविषयः अनन्यपरतयोपादीयमानश्च । न त्वसौ सुखस्वभावस्तस्य सुच्छ-
रूपत्वात् । २१ अभावस्य निःस्वरूपत्वादिशेषादिकामये । २२ सुखलीनतयाऽर्द्धं
सुखीत्युच्छेदेन ।

मस्योपादानात् । अत्यन्तप्रियबुद्धिविषयत्वमप्यसिद्धम्; दुःखि-
तार्यामप्रियबुद्धेरपि भावात् ।

‘आनन्दं ब्रह्मणो रूपम्’ इत्याद्यागमो नित्यसुखसद्भावावेदकः;
इत्यप्यसमीचीनम्; तस्यैतदर्थत्वासिद्धेः । आनन्दशब्दो ह्यात्य-
न्तिकदुःखाभावे प्रयुक्तत्वाद्गौणः । इष्टंश्च दुःखाभावे सुखशब्द-^५
प्रयोगः, यथा भाराक्रान्तस्य ज्वरादिसन्तप्तस्य वा तदपाये ।

किञ्च, आत्मस्वरूपात्तन्नित्यसुखमव्यतिरिक्तम्, तद्व्यतिरिक्तं
वा? प्रथमपक्षे आत्मस्वरूपवत् सर्वदा सुखसंवित्तिप्रसङ्गाद्ब्रह्म-
मुक्तयोरविशेषप्रसङ्गः ।

अनाद्यविद्याच्छादितत्वान्न स्वप्रकाशानन्दसंवित्तिः संसारिणः; ^{१०}
इत्यप्यपेशलम्; आच्छाद्यते ह्यप्रकाशस्वरूपं वस्तु, यत्तु प्रकाश-
स्वरूपं तत्कथमन्येनाच्छाद्येत? मेघादिना त्वादित्यादेराच्छादनं-
युक्तम् तस्यातोऽर्थान्तरत्वात्, मूर्त्तस्य मूर्त्तेनाच्छादनापत्तेः
(दनोपपत्तेः) । अविद्यायास्तु सत्त्वान्वत्त्वाभ्यामनिर्वचनीयतया
तुच्छस्वभावत्वात् न स्वप्रकाशानन्दाच्छादकत्वम् । तत्राद्यः ^{१५}
पक्षो युक्तः ।

द्वितीयपक्षोप्ययुक्तः; नित्यसुखस्यात्मनोऽर्थान्तरस्य प्रत्यक्षादेः
प्रतिपादकस्य प्रतिषिद्धत्वाद्वाद्यकस्य च प्रदर्शितत्वात् । तत्र
परमानन्दाभिव्यक्तिर्मोक्षः ।

नैपि विशुद्धज्ञानोत्पत्तिः; रागादिमतो विज्ञानात्तद्द्रहितस्या-^{२०}
स्योत्पत्तेरयोगात् । यथैव हि बोधाद्बोधरूपता ज्ञानान्तरे तथा
रागादेरपि स्यात्तादात्म्यात्, अन्यथा तादात्म्याभावः स्यात् । न
च ‘बोधादेव बोधरूपता’ इति प्रमाणमस्ति; विलक्षणतादपि कार-
णाद्विलक्षणकार्यस्योत्पत्तिदर्शनात् । बोधस्य च बोधान्तरहेतुत्वे
पूर्वकालभावित्वं समानजातीयत्वमेकसन्तानत्वं वा न हेतुः; ^{२५}
व्यभिचारात्; तथाहि-पूर्वकालभावित्वं तैत्समानक्षणे, समान-
जातीयत्वं च सन्तानान्तरक्षेणैर्व्यभिचारि, तेषां हि पूर्वकाल-
भावित्वे तैत्समानजातीयत्वे च सत्यपि न विवक्षितैज्ञानहेतुत्वम् ।

१ ज्वरसायाम् । २ ज्ञानमे । ३ बद्धः ससारी । ४ ब्रह्मणः सकाशात् ।
५ विद्यमानत्वानिद्यमानत्वान्याम् । ६ योगतमाद्यञ्च । ७ मोक्षः । ८ पूर्वज्ञानात् ।
९ उत्तरज्ञाने । १० बोधस्य रागादिना । ११ रागादिवैदि न स्यात् । १२ नीनादेः ।
१३ अङ्कुरादेः । १४ प्रथमस्य । १५ फलात्मत्वम् । १६ उत्तरज्ञानजनकमात्मन-
बोधस्य । १७ पुरुषान्तरबोधैः पूर्वकालभावितिः । १८ ज्ञानत्वेन समानजातीय-
त्वम् । १९ पुरुषान्तरबोधैः पूर्वकालभावितिः । २० पूर्वज्ञानस्य । २१ विवक्षित-
शुचरत् ।

एकसन्तानत्वं च अन्यज्ञानेन व्यभिचारि । अथ नेष्यत एवा-
न्यज्ञानं सर्वदाऽऽरम्भात्; तथाहि-मरणशरीरज्ञानमपि ज्ञानान्त-
रहेतुर्जाग्रदवस्थाज्ञानं च सुषुप्तावस्थाज्ञानस्यैति । नन्वेवं मरणश-
रीरज्ञानस्यान्तराभवशरीरज्ञानहेतुत्वे गर्भशरीरज्ञानहेतुत्वे वा
५ सन्तानान्तरेपि ज्ञानजनकत्वं किञ्च स्यान्नियतहेतोरभावात् ?
अथेष्यते एव उपाध्यायज्ञानं शिष्यज्ञानस्य हेतुः । अन्यस्यै कस्माच्च
भवति ? कर्मवैशैना निर्योमिका चेश्च; तस्या ज्ञानव्यतिरेकेणास-
म्भवात् । तैत्तादात्म्ये हि विज्ञानं बोधरूपतया अविशिष्टं बोधाच्च
बोधरूपतेत्यविशेषेण ज्ञानं विदध्यात् ।

- १० सुषुप्तावस्थाज्ञानस्य जाग्रदवस्थाज्ञानं कारणम्; इत्यप्यसम्भा-
व्यम्; सुषुप्तावस्थायां च ज्ञानाभ्युपगमे जाग्रदवस्थातो विशेषो न
स्यादुभयत्रापि स्वसंविदितज्ञानसद्भावाविशेषात् । मिद्धेर्नैभिभू-
तत्वं विशेषः; इत्यप्यसत्; तस्यापि तैद्धर्मतया तादात्म्येनाभि-
भावकत्वायोगात् । तैद्धर्मतिरेके तु रूपवेदनौद्विपदार्थस्वरूपव्यति-
१५ रिक्तं तत्स्वरूपं निरूप्यताम् । अभिभवश्च यदि विनाशः; कथं
तत्र ज्ञानस्य सत्त्वं विनाशस्य वा निर्हेतुकत्वम् ? अथ तिरो-
भावः; न; विज्ञानसत्त्वं संवेदनमित्यभ्युपगमे तस्यानुपपत्तेः ।
अतः सुषुप्तावस्थायां विज्ञानासत्त्वेनान्यज्ञानसद्भावादेकसन्ता-
नत्वं व्यभिचारीति ।

- २० यच्चोच्यते-विशिष्टभावनाभ्यासवशाद्वागादिविनाशः; तदप्य-
सङ्गतम्; निर्हेतुकत्वाद्दिनाशस्य अभ्यासानुपपत्तेर्न । अभ्यासो

१ बौद्धानां मते योगिनां मरणे चत्मचित्तमुत्तरचित्तं नोत्पादयतीति भावः ।
२ योगिचरमचित्तेन । ३ मया । ४ पूर्वविज्ञानेन विज्ञानान्तरस्य । ५ जननात् ।
६ गर्भशरीरज्ञानस्य । ७ (जाग्रदवस्थाज्ञानमिति सुष्टुतरम्) (?) । ८ जैनमतमहोक्तस्य
योगं प्रति लीगतेनोक्तम् । ९ मध्यमवशरीरस्य कार्मणस्य । १० नौदेन । ११ वैशे-
षिकः । १२ क्षिप्यात् । १३ बौद्धः । १४ वासना ज्ञानरूपैव । १५ अदृष्टं क्रिया
च । १६ कथं नियामिका ? मरणशरीरज्ञानान्तराभवशरीरज्ञानं गर्भशरीरज्ञानं
चोत्पद्यते उपाध्यायज्ञानाच्छिष्यज्ञानं चेति । १७ वैशेषिकः । १८ विज्ञानस्य ।
१९ साधारणम् । २० विशेषरहितम् । २१ हेतोः । २२ सन्तानान्तरेपि । २३ उच-
रम् । २४ पूर्वज्ञानं कर्तुं । २५ नौदेन ज्ञया । २६ सुषुप्तावस्थाजाग्रदवस्थयोः ।
२७ सुषुप्तावस्थाजाग्रदवस्थयोः । २८ अतिजात्येनातिनिद्रया वा । २९ पराभवः ।
३० बौद्धानां मते यथा नैमीत्यादिगुणो ज्ञानस्य तथा मिद्धादिदोषोपि ज्ञानस्य वर्ग
इति । ३१ ज्ञानात् । ३२ मिद्धस्य । ३३ आदिशब्देन विज्ञानसंघातसंस्कारा युक्तान्ते ।
३४ सुषुप्तावस्थायात् । ३५ विज्ञानस्य (तिरोभावस्य) । ३६ नौदेन । ३७ किञ्च ।

ह्यवस्थिते ध्यातर्यतिशयाघायकत्वेन स्यान्न क्षणिकज्ञानमात्रे । न च सन्तानापेक्षयाऽतिशयो युक्तः; तस्यैवासत्त्वात्, अविशिष्टा द्विशिष्टोत्पत्तेरयोगार्थं । अविशिष्टाद्वि पूर्वज्ञानादुत्तरोत्तरं साति शयं कथमुत्पद्येत ? तत्कथं योगिनां सकलकल्पनाविकलज्ञान-सम्भव इति ?

५

यच्च 'सन्तानोच्छित्तिर्निःश्रेयसम्' इति मंतम्; तत्र निर्हेतुक-तया विनाशस्योर्पायवैयर्थ्यमयत्नसिद्धत्वादिति ।

अन्ये त्वनेकान्तभावनातो विशिष्टप्रदेशेऽक्षयशीरीरादिलोभो निःश्रेयसमिति मन्यन्ते । तथाहि-नित्यत्वभावनायां ग्रहोऽनित्यत्वे च द्वेष इत्युभयपरिहारार्थमनेकान्तभावना; इत्यप्यपरीक्षिताभि-१० धानम्; मिथ्याज्ञानस्य निःश्रेयसकारणत्वायोगात् । अनेकान्त-ज्ञानं मिथ्यैव विरोधवैयधिकरण्याद्यनेकवाधकोपनिपातात् । स्वदेशादिषु सत्त्वं प्रदेशादिषु चासत्त्वम् इतरेतराभावादित्येते एव । स्वकार्येषु कर्तृत्वं कार्यान्तरेषु चाकर्तृत्वं न प्रतिबिध्यते, यैद्यस्यान्वयव्यतिरेकाभ्यामुत्पत्तौ व्याप्रियमाणमुपलब्धं तत्तस्य १५ कारणं नान्यस्येत्यभ्युपगमात् । तथा मुक्तावप्यनेकान्तो न व्याव-र्त्तत इति 'स एव मुक्तः संसारी च' इति प्रसक्तम् । तथाऽनेका-न्तेप्यनेकान्तप्रसङ्गात् सदसन्नित्यादित्यादिरूपव्यतिरिक्तं रूपान्तरमपि प्रसज्येतेति ।

अन्ये त्वात्मैकत्वज्ञानात्परमात्मनि लैयः सम्पद्यते इति ह्येते । २० तथाहि-आत्मैव परमार्थसंस्ततोऽन्यत्र भेदे प्रमाणाभावात् । प्रत्यक्षं हि पदैर्यानां सद्भावस्यैव ग्राहकं न भेदस्यैत्येवैवैसर्मांरो-पितो भेदः; तेप्यतत्त्वज्ञाः; आत्मैकत्वज्ञानस्य मिथ्यारूपतया निःश्रेयसाऽसाधकत्वात् । तन्मिथ्यात्वं चैर्यानां प्रमाणतो वास्त-वभेदप्रसिद्धेः ।

२५

१ रागादिसहितत्वेन । २ विशुद्धज्ञानोत्पत्तेः । ३ किञ्च । ४ निर्विशेषस्य । ५ योगाचारस्य । ६ ध्यानादेः । ७ विनाशस्य । ८ जैनाः । ९ मोक्षशिलोपति । १० स्वरूपदेहो वा । ११ आदिशब्देन ज्ञानादि । १२ केहः । १३ युक्ता । १४ वैश्वेपिकेणापि मया । १५ कारणम् । १६ कार्यस्य । १७ दूषणान्तरम् । १८ सत्त्वं सत्त्वमद्यत्वं चैलनेन प्रकारेण । १९ ग्राह्यादित्वादिनः । २० प्रवेशः । २१ मोक्षम् । २२ निर्विकल्पकम् । २३ षट्पदादीनाम् । २४ हेतोः । २५ मिथ्याज्ञानेन । २६ कल्पितः । २७ षट्पदादीनाम् । २८ प्रलयादेः । २९ परमार्थे ।

एवं शब्दाद्वैतज्ञानमपि मिथ्यारूपतया निःश्रेयसाप्रसाधकं द्रष्टव्यम् । निरस्तं चात्माद्वैतं शब्दाद्वैतं च प्राक्प्रबन्धेनेत्यलमति-
प्रसङ्गेन ।

प्रकृतिपुरुषविवेकोपलम्भः स्वरूपे चैतन्यमात्रेऽवस्थानलक्षण-
५ निःश्रेयसस्य साधनमित्यन्ये । तथाहि-पुरुषार्थसम्पादनाय प्रधानं
प्रवर्त्तते । पुरुषार्थश्च द्वेषा-शब्दादिविषयोपलब्धिः, प्रकृतिपु-
रुषविवेकोपलम्भश्च । सम्पन्ने हि पुरुषार्थे चरितार्थत्वात्प्रधानं
न शरीरादिभावेन परिणमते, विज्ञानं(तं) वा द्रुष्टतया कुष्ठिनीकी-
वद्भोगसम्पादनाय पुरुषं नोपसर्पति; इत्यप्यसाम्प्रतम्; प्रधाना-
१० सत्त्वस्य प्रागेवोक्तत्वात् । सति हि प्रधाने पुरुषस्य तद्विवेको-
पलम्भः स्यात् । अस्तु वा तत्; तथापि पुरुषस्य निमित्तमनपेक्ष्य
तत्प्रवर्त्तते, अपेक्ष्य वा ? न तावदनपेक्ष्य; मुक्तात्मन्यपि शरीरा-
दिसम्पादनाय तत्प्रवृत्तिप्रसङ्गात् । अथापेक्ष्य प्रवर्त्तते; किं तद्-
पेक्ष्यम्? विवेकांशुपलम्भः, अदृष्टं वा? न तावद्विवेकानुप-
१५ लम्भः; तस्य विवेकोपलम्भविनष्टत्वेन मुक्तात्मन्यपि सम्भवात् ।
न चांशुत्पत्तिविनाशयोरसत्त्वेन विशेषं पश्यामः । द्वितीयविक-
ल्पोप्ययुक्तः; अदृष्टस्यापि प्रधाने शक्तिरूपतया व्यवस्थितस्यो-
भयत्रांविशेषात् ।

द्रुष्टतया च त्रिज्ञातं प्रधानं पुरुषं नोपसर्पतीति चायुक्तम्;
२० तस्याचेतनतया 'अहमनेन' द्रुष्टतया विज्ञातम्' इति ज्ञानासम्भ-
वात् । ततः पूर्ववत्प्रवृत्तिरविशेषेणैव स्यात् इत्यलमतिप्रसङ्गेन ।

'तदा' द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानं मोक्षः' इति चार्थ्युपगतमेवं,
विशेषगुणरहितात्मस्वरूपे तस्यावस्थानाभ्युपगमात् । 'चिद्रू-
पेऽवस्थानम्' इत्येतसु न घटते; अनित्यत्वेन चिद्रूपताया
२५ विनाशात् । न चाक्षान्धन्वयव्यतिरेकानुविधाधिन्व्यास्तस्या नित्यत्वे

१ वास्तवभेदतिद्विप्रकारेण । २ अद्वैतनिराकरणस्य । ३ का । ४ भेदभावना-
ज्ञानम् । ५ प्रति प्रधानं । ६ भेदभावनाभावः । ७ भेदभावनाया योग्यवस्वार्थं
सम्भवात् । मुख्यवस्वार्थां तु तस्या विनाशात्प्रयोजनात्मावात् । ८ किञ्च । ९ विवे-
कानुपलम्भो नाम विवेकोपलम्भभावः । कथम् ? विवेकोपलम्भसांशुत्पत्तिः संसार-
मति विवेकोपलम्भस्य विनाशो मुक्तात्मनि । १० संसारिसुक्तात्मनोः । ११ पुत्रेणु ।
१२ सात्त्विकपरिकल्पितमुल्लुपायनिराकरणेन । १३ उत्तरीया मोक्षोपायसङ्घं
मिचार्थमार्थं नास्ति चेन्मा भूम्नोक्षलक्षणं तु सादित्युक्ते जाह । १४ मुक्त्यवसायान् ।
१५ आत्मनः । १६ (आत्मनः) । १७ यौगेन । १८ स्वरूपे निर्दिष्टमेतत् ।
१९ यौगयते त्रिद्रूपं बुद्धिः ।

अमाणमस्ति । आत्मस्वरूपतास्तीति चेत्; ननु चिद्रूपतात्म-
नोऽभिन्ना; भिन्ना वा स्यात्? अनेदे पर्यायमात्रम् 'आत्मा, चिद्रू-
पता च' इति, तस्य च नित्यत्वाभ्युपगमात् सिद्धसाध्यता । मेदे
तु संयोगादिभिरनैकान्तिकत्वम्; तेषामात्मघर्मत्वेपि नित्यत्वाभा-
वात् । गुणगुणिनोश्च तादात्म्यविरोधादित्युपरस्यते । ततो ५
बुद्ध्यादिविशेषगुणोच्छेदविशिष्टात्मस्वरूप एव मोक्षस्तत्त्वज्ञा-
नादिति स्थितम् ।

अत्र प्रतिविधीयते । यत्तावदुक्तम्-नवानामात्मविशेषगुणानां
सन्तानोत्पन्नमुच्छिद्यते; तत्रात्मनो भिन्नानां बुद्ध्यादिविशेषगु-
णानामात्मन्येव समचार्यादिना वृत्त्यसिद्धेः प्रागेवोक्तत्वात् कथ- १०
मात्मविशेषगुणानां सन्तानः सिद्धो यतः हेतोरश्रयासिद्धिर्न
स्यात्? तथा तेषां परेणोत्सर्गविदितत्वेनाभ्युपगमात् । ईानान्तर-
आह्वाने चानवस्थादिदोषप्रसक्तेः, अज्ञानस्य च सत्त्वाप्रसिद्धेः पुन-
रप्याश्रयासिद्धत्वम् । आत्मनोऽभिन्नानां तत्साधने तु तस्याप्यत्य-
न्तोच्छेदप्रसङ्गात् कस्यासौ मोक्षः? कथञ्चिदमेदस्तु नाभ्युपग- १५
स्यते । अभ्युपगमे वा नात्यन्तोच्छेदसिद्धिः इत्यनन्तरं नक्ष्यामः ।

सन्तानत्वं च हेतुः सामान्यरूपम्, विशेषरूपं वा? सौमन्य-
रूपं चेत्; परसामान्यरूपम्, अपरसामान्यरूपं वा? प्रथमपक्षे
गगनादिनानैकान्तः; अत्यन्तोच्छेदोभावेप्यत्र हेतोर्वर्तनात् । सत्ता-
सामान्यरूपत्वे च सन्तानत्वस्य 'सत् सत्' इति प्रत्ययहेतुत्वमेव २०
स्यात् न पुनः सन्तानप्रत्ययहेतुत्वम् । अथ विशेषगुणाधिता
र्जातिः सन्तानत्वम्; तर्हि द्रव्यविशेषे प्रदीपदृष्टान्ते तस्याऽऽ-
म्भवात्साधनविकलो दृष्टान्तः । न च सन्तानत्वं परमपरं वा
सामान्यं सर्वथा भिन्नं बुद्ध्यादिषु वृत्तिमत्प्रसिद्धम्; तद्वृत्तेः सम-
वायस्य प्रतिषिद्धत्वात् इति स्वरूपासिद्धत्वम् । २५

अथ विशेषरूपम्; तत्राप्युपादानोपादेयभूतबुद्ध्यादिलक्षणक्ष-
णविशेषरूपम्, पूर्वापरसमानजातीयक्षणप्रवाहमात्ररूपं वा?
प्रथमपक्षे सन्तानत्वस्यासाधारणानैकान्तिकत्वं तथाभूतस्यास्या-

१ नाममात्रम् । २ पराभ्युपगतमोक्षनिराकरणे । ३ मया । ४ तदापेयत्वं
सङ्गणत्वादि । ५ बुद्ध्यादीनाम् । ६ उच्छेद इत्यन्वयः । ७ वैभाविकेण । ८ बुद्धय-
न्तर । ९ आदिनेषुपेरात्मयः । १० सन्तानस्य । ११ परेण । १२ अक्षिन्नेन
वादे । १३ सत्तात्पर्यम् । १४ साम्याभावे । १५ किञ्च । १६ द्वितीयविकल्पः ।
१७ सामान्यम् । १८ किञ्च । १९ सन्तानत्वम् । २० सत् । २१ रूपत्वेन
सेवादीवत्त्वम् ।

न्यत्राननुवृत्तेः । अभ्युपगमविरोधश्च; न खलु परेण बुद्ध्यादिक्ष-
णोपादानोऽपरोऽखिलो बुद्ध्यादिक्षणोऽभ्युपगम्यते । अन्यथा
मुक्त्यऽवस्थायामपि पूर्वपूर्वबुद्ध्याद्युपादानक्षणादुत्तरोत्तरोपादे-
यबुद्ध्यादिक्षणोत्पत्तिप्रसङ्गाच्च बुद्ध्यादिसन्तानस्यात्यन्तोच्छेदः
५ स्यात् । द्वितीयपक्षे तु पाकजपरमाणुरूपादिनानेकान्तः; तथा-
विधसन्तानत्वस्यात्र सङ्गावेप्यत्यन्तोच्छेदाभावात् ।

विरुद्धश्चायं हेतुः; कार्यकारणभूतक्षणप्रधाहलक्षणसन्तानत्वस्य
प्रकान्तनित्यवदनित्येप्यसम्भवात्, अर्थक्रियाकारित्वस्थानेकान्ते
एव प्रतिपादयिष्यमाणत्वात् ।

१० शब्दविद्युत्प्रदीपादीनामप्यत्यन्तोच्छेदासम्भवात् साध्यवि-
कलो द्वयान्तः । न च च्वस्तस्यापि प्रदीपादेः परिणामान्तरेण स्थित्य-
भ्युपगमे प्रत्यक्षबाधा; वारि स्थिते तेजसि भासुररूपाभ्युपगमेपि
तत्प्रसङ्गात् । अथोष्णस्पर्शस्य भासुररूपाधिकरणतेजोद्रव्याभावे-
ऽसम्भवात् तत्रानुद्भूतस्यास्य परिकल्पनमनुमानतः; तर्हि 'प्रदीपादे-
१५ रप्यनुपादानोत्पत्तेरिव अन्यावस्थातोऽपरापरपरिणामाधारत्वम-
न्तरेण सत्त्वकृतकत्वादिकं न सम्भवति' इत्यनुमानतस्तसन्त-
नुच्छेदः किञ्च कल्प्यते ? तथाहि-पूर्वापरस्वभावपरिहारावातिस्वि-
तिलक्षणपरिणामवान् प्रदीपादिः सत्त्वात् कृतकत्वाद्वा घटादिवत् ।

सत्प्रतिपक्षश्च; तथाहि-बुद्ध्यादिसन्तानो नात्यन्तोच्छेदवान्,
२० अखिलप्रमाणानुपलभ्यमानतथोच्छेदत्वात्, य एवं स न
तत्त्वेनोपेयो यथा पाकजपरमाणुरूपादिसन्तानः, तथा चायम्,
तस्मान्नात्यन्तोच्छेदवानिति । न च प्रस्तुतानुमानत एव सन्ता-
नोच्छेदप्रतीतिः सर्वप्रमाणानुपलभ्यमानतथोच्छेदत्वमसिद्धम्;
सन्तानत्वसाधनस्यासत्प्रतिपक्षत्वासिद्धेः, तत्सिद्धौ हि हेतोरगम-
२५ कत्वम् । कालात्ययापदिष्टत्वं च; अनेनैवानुमानेन धाधितपक्षनि-
र्देशानन्तरं प्रयुक्तत्वात् ।

यश्च तत्त्वज्ञानस्य विपर्ययज्ञानव्यवच्छेदक्रमेण निःश्रेयसहेतु-
त्वमित्युक्तम्; तदप्युक्तिमात्रम्; ततो विपर्ययज्ञानव्यवच्छेदक्रमेण
धर्माधर्मयोस्तकार्यस्य च शरीरादेरभावेपि अनन्तातीन्द्रियास्त्रि-
३० लपदार्थविषयसम्यग्ज्ञानसुखादिसन्तानस्याभावासिद्धेः । इन्द्रि-
यजज्ञानादिसन्तानोच्छेदसाधने च सिद्धसाधनम् । इन्द्रियाद्य-

१ इष्टान्ते प्रदीपे । २ उपादेयः । ३ भादिना गन्धरसादि । ४ क्वचिद्विज्ञा-
निले । ५ तमोरूपेण । ६ उष्णे । ७ जप्तौ । ८ ईप्सु । ९ सन्तानत्व हेतुः ।
१० अभ्युपगम्यः । ११ सन्तानत्वादित्यतः ।

पाथे ज्ञानादिसन्तानसद्भावश्चाशेषज्ञसिद्धिप्रस्तावे प्रतिपादितः ।
कथं चांतीन्द्रियज्ञानाद्यनभ्युपगमे महेश्वरे तत्सद्भावः स्यात् ?
नित्यत्वं चेश्वरज्ञानस्येश्वरनिराकरणे प्रतिषिद्धम् । शरीराद्यपा-
थेष्वस्य ज्ञानाद्यभ्युपगमेऽन्यात्मनोपि सोऽस्तु तत्त्वभावत्वात् । न
च स्वभावापाथे तद्वतोऽवस्थानमैतिप्रसङ्गात् । ५

यत्तुक्तम्—आरब्धकार्ययोश्चोपभोगात्प्रक्षयः; तदपि न सूक्तम्;
उपभोगात्कर्मणः प्रक्षये तदुपभोगसमये अपरकर्मनिमित्तस्याभि-
लाषपूर्वकमनोवाक्कायव्यापारादेः सम्भवात् अविकलकारणस्य
प्रञ्चुरतरकर्मणो भवतः कथमात्यन्तिकः प्रक्षयः ? सम्यग्ज्ञानस्य
तु मिथ्याज्ञानोच्छेदकमेण बाह्याभ्यन्तरक्रियानिवृत्तिलक्षणचा- १०
रित्रोपद्वंद्वितस्यागामिकर्मानुत्पत्तिसामर्थ्यवत् सञ्चितकर्मक्षयेपि
सामर्थ्यं सम्भाव्यत एव । यथोष्णस्पर्शस्य भाविशीतस्पर्शा-
नुत्पत्तौ सामर्थ्यवत् प्रवृत्ततर्कपर्शादिध्वंसेपि सामर्थ्यं प्रती-
यते । किन्तु परिणामिजीवाजीवादिबस्तुविषयमेव सम्यग्ज्ञानम्,
न पुनरेकान्तनित्यानित्यात्मादिविषयम्; तस्य विपरीतार्थग्राहक- १५
त्वेन मिथ्यात्वोपपत्तेरित्यत्र निवेद्यिष्यते । अतो यदुक्तम्—‘यथै-
धांसि’ इत्यादि; तत्सर्वं संवररूपचारित्र्योपद्वंद्वितसम्यग्ज्ञानाग्नेर-
शेषकर्मक्षये सामर्थ्याभ्युपगमात्सिद्धसाधनम् ।

यच्चाभ्यघाति-समाधियलादुत्पन्नतत्त्वज्ञानस्येत्यादि; तदप्यभि-
धानमात्रम्; अभिलाषरूपरागाद्यभावेऽङ्गनाद्युपभोगासम्भवात् । २०
तत्सम्भवे चावश्यंभावी गृह्णितो भवदभिप्रायेण योगिनोपि प्रञ्चु-
रतरघर्माद्यसम्भवो नृपत्यादेरिवातिभोगिनः । वैद्योपदेशादा-
नुत्पद्यौषधघाद्याचरणे नीरुग्भावमिलाषेणैव प्रवर्तते, न पुनर्ज्ञान-
भावात् । तन्नाशेषशरीरद्वारावासाशेषभोगस्य कर्मान्तरानुत्पत्तिः ।
किं तर्हि ? परिपूर्णसम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र्यस्य, इत्यलं विवादेन, २५
जीवन्मुक्तैरपि त्रितयात्मकादेव हेतोः सिद्धेः । संसारकारणं हि

१ किञ्च । २ तद्व-ज्ञानम् । ३ पृथुप्रोदराषाकारभावे षट्पञ्चानप्रसङ्गात् ।
४ तस्य कर्मकृतस्य । ५ उत्पद्यमानस्य । ६ सम्यग्ज्ञानान्निभ्याज्ञानाभावः, मिथ्या-
ज्ञानाभावाद्ग्राह्यभावः, रागाद्यमानाद्वाक्षा (मन्त्रादि) न्यन्तर (चिन्तन) क्रिया-
निवृत्तिरिति । ७ सद्धितस्य । ८ अहङ्कम्पवद्वर्णगादेः । ९ असद्यदीयमपि तत्त्वज्ञानं
सञ्चितकर्मरूपनिबन्धनमागामिकर्मानुत्पत्तिकारणं स्यादित्युक्ते आह । नित्यादिवस्तुविषय-
ज्ञानस्य सम्यग्ज्ञानता न प्रतीयते किन्तु इत्यादि । १० नित्यात्मादिविषयज्ञानस्य ।
११ अनेकाप्रसिद्धौ । १२ आकाद्व्यावृत्तः । १३ न केवलं योगी । १४ सम्यग्दर्श-
नादिव्रयमोक्षकारणविप्रविवादेन । १५ न केवलं परमशुक्तः । १६ कारणात् ।

मिथ्यादर्शनादिभ्रयात्मकं न पुनर्मिथ्याज्ञानमात्रात्मकम्, तत्रैक-
सात्सम्यग्ज्ञानमात्रात्कथं व्यावर्त्तत इत्युक्तं सर्वज्ञसिद्धिप्रस्तावे ।

यश्चान्यदुक्तम्-नित्यनैमित्तिकानुष्ठानं केवलज्ञानोत्पत्तेः प्राक्
काम्यनिषिद्धानुष्ठानपरिहारेण ज्ञानावरणादिदुरितक्षयनिमित्त-
५ त्वेन केवलज्ञानप्राप्तिहेतुः; तदिष्टमेवासाकम् ।

आनन्दरूपता तु मोक्षस्याभीष्टैव । एकान्तनित्यता तु तस्याः
प्रतिषिध्यते । चिद्रूपतावदानन्दरूपताप्येकान्तनित्याः, इत्यप्य-
शुक्तम्; चिद्रूपताया अप्येकान्तनित्यत्वासिद्धेः, सकलवस्तुस्वभा-
वानां परिणामिनित्यत्वेनाग्रे समर्थविष्यमाणत्वात् ।

- १० अथानित्यत्वे तस्याः तत्संवेदनस्य चोत्पत्तिकारणं वक्तव्यम्;
ननूक्तमेव प्रतिबन्धापायलक्षणं तत्कारणं सर्वज्ञसिद्धिप्रस्तावे ।
आत्मेव हि प्रतिबन्धकापायोपेतो मोक्षावस्थायां तैवाभूतज्ञान-
सुखादिकारणम्, घटाद्यावरणापायोपेतप्रदीपलक्षणवत् स्वपर-
प्रकाशकारणप्रदीपक्षणोत्पत्तौ, तदुत्पादन[स्व]भावस्वीन्यैपेक्षा-
१५ योगात् । र्थसिद्धि यदुत्पादनस्वभावं न तच्चदुत्पादनेऽन्यापेक्षम्
यथान्या कारणसामग्री स्वैकार्योत्पादने, तदुत्पादनस्वभावश्चाती-
न्द्रियज्ञानसुखाद्युत्पत्तौ प्रतिबन्धकापायोपेत आत्मेति । संसारा-
वस्थायामप्युपलभ्यते-र्वासीचन्दनकर्त्तॄणां सर्वत्र समवृत्तीनां
विशिष्टध्यानादिर्व्यवस्थितानां सेन्द्रियशरीरव्यापाराऽजन्यः पर-
२० माच्छादरूपोऽनुभवः । अस्यैव भावनावशादुत्तरोत्तरावस्थामासा-
द्वयतः परमकाष्ठा गतिः संभाव्यत एव ।

आनन्दरूपताभिव्यक्तिश्चानाद्यऽविद्याविलयात्; इत्यभीष्टमेव;
अष्टप्रकारपारमार्थिककर्मप्रवाहरूपाऽनाद्यविद्याविलयाद् अनन्त-
सुखसंज्ञानादिस्वरूपप्रतिपत्तिलक्षणमोक्षावातेरभीष्टत्वात् ।

- २५ विशुद्धज्ञानसन्तानोत्पत्तिलक्षणेऽप्यसौ मोक्षोऽभ्युपगम्यते ।
स तु चित्तसन्तानः सौन्वयो युक्तः । बद्धो हि मुच्यते नाबद्धः ।

१ चतुर्वपरिच्छेदे । २ अतीन्द्रिय । ३ एव । ४ घटस्वप्रदीपवत् । ५ उत्तर ।
६ आत्मनः । ७ इन्द्रियवनितादेः । ८ प्रतिबन्धकापायोपेत आत्मा धर्मी अतीन्द्रिय-
ज्ञानसुखानुत्पत्तौ अन्यं नापेक्षते इति साध्यं, तदुत्पादनस्वभावत्वादिति शेषः ।
९ अन्वतन्नुसंयोगः । १० षटलक्षणस्य । ११ स प्रसिद्ध उरपादनस्वभावो वसा-
त्मनः । १२ ज्ञप्तिदत्त्वे हेतोरज्ञावित्ते परिहारमाह । १३ कुठार । १४ पुण्यानाम् ।
१५ अज्ञमिषयोः । १६ आदिना दानम् । १७ भेदः । १८ निशीघरे ।
१९ प्राप्ति । २० बीदविशेषैरभ्युपगतः । २१ ज्ञानस्य । २२ सद्रव्यः ।

न च निरन्वये चित्तसन्ताने बद्धस्य मुक्तिः । तत्र ह्यन्यो बद्धोऽ-
न्यञ्च मुच्यते ।

सन्तानैक्याद्बद्धस्यैव मुक्तिरपीति चेत्, ननु यदि सन्तानार्थः परमार्थसन्, तदात्मैव सन्तानशब्देनोक्तः स्यात् । अथ संवृत्तिसन्, तदैकस्य परमार्थसतोऽसत्त्वात् 'अन्यो बद्धोऽन्यञ्च ५ मुच्यते' इति मुच्यर्थे प्रवृत्तिर्न स्यात् । अथात्यन्तनानात्वेऽपि दृढतरैकत्वाध्यवसायाद् 'बद्धमात्मानं मोचयिष्यामि' इत्यभिसन्धानवतः प्रवृत्तेर्नायं दोषः, न तर्हि नैरात्म्यदर्शनम्, इति कुतस्तन्निबन्धना मुक्तिः? अथास्ति तद्दर्शनं शास्त्रसंस्कारजम्, न तर्ह्येकत्वाध्यवसायोऽस्खलद्रूप इति कुतो बद्धस्य मुच्यर्थे प्रवृत्तिः १० स्यात्? तथा च—

"मिथ्याध्यारोपहानार्थं यैज्ञोऽसत्यपि मोक्ति" [प्रमाणवा० २।१२२] इति श्लोके । तस्मात्साम्येन चित्तसन्ततिरभ्युपगन्तव्या, सकलविज्ञानक्षणत्वेऽपि जीवाभावे बन्धमोक्षयोस्तदर्थे वा प्रवृत्तेरनुपपत्तेः । न चान्योन्याविलक्षणाऽपरापरचित्तक्ष- १५ णानामनुयायिजीवाभावो विरोधात्, इत्यभिधीतव्यम्; स्वसंवेदन-प्रत्यक्षेण तत्रानुयायिरूपतया तस्य प्रतीतेः । प्रतीयमानस्य च कथं विरोधो नाम अनुपलम्भसाध्यत्वात्तस्य ?

तद्भाषापरैश्चासति आत्मनि प्रत्यभिज्ञानप्रत्ययस्य प्रादुर्भावो न स्यात् । यथात्मन्यप्यारोपितैकत्वविषयत्वादस्य प्रादुर्भावः, न; २० अस्यारोपितैकत्वविषयत्वे स्यात्प्रत्ययानुमानात्क्षणिकैकत्वं निश्चिन्वतो निश्चितप्रसङ्गात्, निश्चयैरौपम्यसोर्विरोधात् । निर्वर्तत पवेति

१ पूर्वक्षणः । २ उत्तरक्षणः । ३ अपिशाब्दादन्वोपि । ४ बौद्धानां मते पूर्वोत्तर-
क्षणानामेक आधारभूतः सन्तानः स अपरमार्थः सन्केवलः पूर्वक्षणः उत्तरक्षणः
सन्तानी स तु परमार्थसन् । ५ कल्पनासन् । ६ आत्मनः । ७ क्षणानाम् । ८ अमि-
प्रायवतः । ९ निर्विकल्पकस्य । १० आधना । ११ बद्धस्य मुच्यर्थे प्रवृत्त्यभावे च ।
१२ नैरात्म्यभावेनालक्षणः । १३ विनश्यति । १४ अन्यभावे अन्यो मोक्षो वा
न धत्ते यतः । १५ सद्रव्या । १६ अन्यथा । १७ परेण । १८ पूर्वक्षणे अहमेव
दुःखी उत्तरक्षणेऽहमेव सुखीति । १९ त्वसिन् । २० न केवलं बहिः । २१ संवृत्ता ।
२२ चेदिति शेषः । २३ स्वरूपे । २४ यत्सत्त्वग्निकमित्यादि । २५ आरोपितै-
कत्वविषयस्य प्रत्यभिज्ञाप्रत्ययस्य । २६ अनुमानेन । २७ सोऽहं प्रत्यभिज्ञानरूपो
विकल्पः । २८ मनः—ज्ञानम् । २९ यकत्र । ३० अनुमानमनित्यत्वसाधने यक-
मित्यन्वयनिश्चयं प्रवृत्तं प्रत्यभिज्ञानं त्वैकत्वसाधने इति विरोधः । ३१ क्षणिकत्वनिश्चय-
समये यकत्वविरयं प्रत्यभिज्ञानम् ।

चेत्; तर्हि संहजस्याभिसंस्कारिकस्य च सत्त्वदर्शनस्याभावात्तद्वैवे
तन्मूलरागादिनिवृत्तेर्मुक्तिः स्यात् । भ्रान्तत्वे चास्य प्रत्यक्षस्याशेष-
स्यापि भ्रान्तत्वप्रसङ्गः, बाह्याध्यात्मिकभावेऽप्येकत्वग्राहकत्वेनैवा-
शेषप्रत्यक्षाणां प्रवृत्तिप्रतीतिः । तथा च प्रत्यक्षस्याभ्रान्तत्वविशे-
५ षण्मसम्भाव्यमेव स्यात् । समर्थयिष्यते च प्रत्यभिज्ञानप्रत्यय-
स्यानारोपितार्थग्राहकत्वमभ्रान्तत्वं च । तन्नैकत्वाभावः । अनु-
भूयमानस्यापि चैकत्वस्यानेकत्वेन विरोधे ग्राह्यग्राहकसंविच्छि-
लक्षणविरुद्धरूपत्रयाध्यासितज्ञानस्य, अर्थसंलक्षणस्य चैकदा
स्वपरकार्यकर्तृत्वकर्तृत्वलक्षणविरुद्धधर्मद्वयाध्यासितस्य एकत्व-
१० विरोधः स्यात् ।

यच्चान्यत्-रागादिमतो विज्ञानान्न तद्रहितस्यास्योत्पत्तिरित्याद्यु-
क्तम्; तदप्यसाम्प्रतम्; रागादिरहितस्याखिलपदार्थविषयविज्ञान-
नस्याशेषज्ञसाधनप्रस्तावे प्रतिपादितत्वात् । न च बोधाद्बोध-
रूपतेति प्रमाणमस्ति; इत्यप्ययुक्तम्; विलक्षणकारणाद्विलक्षण-
१५ कार्यस्योत्पत्त्यभ्युपगमे अचेतनाच्छरीरादेश्चैतन्योत्पत्तिप्रसङ्गाच्च-
र्वाकमतानुपपन्नः । प्रसौधितश्च परलोकी प्रागित्यलमतिप्रसङ्गेन ।

यच्चाम्यथायि-सुषुप्तावस्थायां विज्ञानसङ्गावे जाग्रदवस्थातो
न विशेषः स्यात्; तदप्यभिधानमात्रम्; यतस्तदा विज्ञानसङ्गावेपि
अतिनिद्रयाभिभूतत्वान्न जाग्रदवस्थातोऽविशेषः, मत्तमूर्च्छिता-
२० यवस्थायां मदिराद्युत्पादितमद्वैदेर्नाद्यभिभूतविज्ञानवत् ।

ननु कोऽयं सिद्धेनाभिभवः? ज्ञानस्य नाशश्चेत्; कथं तस्य सत्त्वम्?
तिरोभावश्चेत्; न; स्वपरप्रकाशरूपज्ञानाभ्युपगमे तस्याप्यसम्भ-
वात्; इत्यप्यचर्चिताभिधानम्; मणिमन्त्रादिनाऽद्यादिप्रतिबन्धे
शरावादिना प्रदीपादिप्रतिबन्धे च समानत्वात् । न हि तत्राप्यद्या-
२५ देर्नाशः प्रतिबन्धः; प्रत्यक्षविरोधात् । नापि तिरोभावः; स्वपरप्र-
काशसम्भावस्य स्फोटादिकार्यजननसमर्थस्य तिरोभावस्याप्यस-

१ आन्यजनसम्बन्धिनः । २ पण्डितजनसम्बन्धिनः । ३ जीव । ४ प्रलभि-
ज्ञानस्य । ५ क्षणिकत्वनिश्चयसमये यव । ६ सौगतस्य । ७ प्रलब्धं कल्पनापोदग-
भ्रान्तमित्यत्र सूत्रे । ८ किञ्च । ९ सुखदुःखनानालक्षणोपलम्भेन । १० नील-
स्वलक्षणस्य । ११ उत्तरनीलादिक्षणस्य । १२ अर्थान्तरपीतादेः । १३ अचेतनादा-
श्मनः । १४ ज्ञानलक्षणस्य । १५ दूरस्थितेन चार्वाकैणोक्तमसदीपमतयेवास्तु ।
तत्राह । १६ सुप्तावस्था ज्ञानवती आत्मनः अवस्थात्वान्मत्तमूर्च्छितावस्थावत् ।
१७ अचता । १८ पीवा । १९ विषयपीवा । २० सुषुप्तावस्थायाम् । २१ मणि-
मन्त्रशरावादिना अभिप्रदीपप्रतिबन्धे :

म्भवात् । प्रतीत्यनतिक्रमेणात्र स्वरूपसामर्थ्यप्रतिबन्धाभ्युपगमोऽन्यत्रापि समानः । मिद्धादिसामग्रीविशेषवशाद्धि बाह्याध्यात्मिकार्थविचारविधुरं गच्छत्तृणस्पर्शज्ञानसमानं सुपुस्तावस्थायी ज्ञानमास्ते ।

न हि स्वपरप्रकाशस्वभावत्वमात्रेणैवास्यं तन्निरूपणताम-५
थ्यम्; सर्वज्ञानभिभूतस्यैवार्थस्य स्वकार्यकारित्वप्रतीतेः, अन्यथा
दहनादिस्वभावस्याग्नेः सदा दाहकत्वप्रकाशकत्वप्रसङ्गः, गच्छ-
त्तृणस्पर्शसंवेदनस्य वा तदर्थनिरूपकत्वानुपङ्गः । अथात्र मनो-
व्यासङ्कोऽस्मरणकारणम्; अन्यत्र मिद्धादिकमित्यविशेषः । अस्ति
चात्र स्वापलक्षणार्थनिरूपणम्-‘एतावत्कालं निरन्तरसुप्तोहमेता-१०
वत्कालं सान्तरम्’ इत्यनुस्मरणप्रतीतेः । न च स्वापलक्षणार्थान-
नुभवेषु सुप्तोत्थानानन्तरं ‘गाढोहं तदा सुप्तः’ इत्यनुस्मरणं
घटते; तस्यानुभूतवस्तुविषयत्वेनानुभवाविनाभावित्वात्, अन्यथा
घटाद्यर्थाननुभवेषु तत्रानुस्मरणसम्भवात्कृतस्तदनुभवोपि
सिद्धेत् ? न च मत्तमूर्च्छिताद्यवस्थायामपि विज्ञानाभावाद् दृष्टा-१५
न्तस्य साध्यविकलता; इत्याशङ्कनीयम्; तदवस्थातः प्रच्युतस्योत्त-
रकालं ‘मया न किञ्चिदप्यनुभूतम्’ इत्यनुभवाभावप्रसङ्गात्,
स्मृतेरनुभवपूर्वकत्वात् । अतो येनानुभवेन सतात्मा निखिला-
नुभवविकलोऽनुभूयते तस्यामवस्थायी सोऽवस्थाभ्युपगन्तव्यः ।

किञ्च, सुप्ताद्यवस्थायी विज्ञानाभावं स एवात्मा प्रतिपद्यते, २०
पार्थस्यैवा? स एव चेत्; तत एव ज्ञानात्, तदभावाद्वा, ज्ञानान्त-
राद्वा? न तावत्तत एव; अस्यासत्त्वात्, ‘तदेव नास्ति तत्र, तत एव
चाभावगतिः’ इत्यन्योन्यं विरोधात् । ज्ञानाभावात्तत्र तदभावपरि-
च्छित्तिः; इत्युक्तम्; परिच्छेदस्य ज्ञानधर्मतयाऽर्भावेऽसम्भ-
वात्, अन्यथा ज्ञानस्यैव ‘अभावः’ इति नामकृतं स्यात् । २५

अथ ज्ञानान्तरात्तत्र तदभावगतिः; किं तत्कालभाविनः, जाग्र-
त्प्रबोधकालभाविनो वा? प्रथमपक्षे कथं सुपुस्ताद्यवस्थायी सर्वथा
ज्ञानाभावः? अथ जाग्रत्प्रबोधकालभाविज्ञानाभ्यामन्तराले ज्ञाना-

- १ ज्ञानस्य स्वपरप्रकाशरूपं तिरोहितमतिरोहितं चैतन्यम् । २ चैतन्यस्य ।
३ देशे । ४ अभिभूतस्य स्वकार्यकारित्वं यदि स्यात् । ५ प्रतिबन्धसमयेपि ।
६ कार्यान्तरे प्रवृत्तिः । ७ अज्ञानपानत्वं वा । ८ किञ्च । ९ सुप्तोहमिति शेषः ।
१० प्रसङ्गेण । ११ अनुभवविनाभावित्वं स्मरणस्य यदि न स्यात् । १२ स्मृतिः ।
१३ अन्यः । १४ सुपुस्तावस्थायी यस्य ज्ञानस्याभावस्तस्मादेव ज्ञानात् । १५ ज्ञानस्य ।
१६ ज्ञानाभावे परिच्छेदो यदि स्यात् । १७ ज्ञानमन्तरेण परिच्छेदानुपपत्तिर्वतः ।
१८ सन्ध्याकालप्रातःकालः, तत्र भावि ।

भावोऽवसीयते; ननु तद्दशाभाविज्ञानयोः सुषुप्ताद्यवस्थाभाविज्ञानं नोपलब्धिलक्षणप्राप्तम्, तत्कथं ताभ्यां तदभावोऽवसीयते? अन्यथाऽदृष्टस्यापि परलोकादेरभावोऽध्यक्षत एव स्यात् । तत्र च “प्रमाणेतरसामान्यस्थितेः” [] इत्यार्षेऽसङ्गतम् ।

- ५ नापि पार्श्वस्थोन्यस्तत्र तदभावं प्रतिपद्यते; कारणस्वभावव्यापकानुपलब्धेर्विरुद्धविधेर्वा तदभावाविनाभाविनो लिङ्गस्यात्रानुपलब्धेः । न तत्र विज्ञानसङ्गाधेपि लिङ्गाभावः समान इत्यभिधातव्यम्; स्वात्मनि स्वसंविदितज्ञानाविनाभावित्वेनाऽवधारितस्य प्राणापानशरीरोष्णताकारविशेषादेस्तत्सङ्गाधावेदिनो लिङ्गस्याऽऽपलब्धेः, जाग्रद्दशायामप्यन्यचेतोवृत्तेस्तद्व्यतिरेकेणान्यतोऽप्रतीतेः ।

- ननु द्विविधोर्त्र प्राणादिः चैतन्यप्रभवो जाग्रद्दशायाम्, प्राणादिप्रभवश्च सुषुप्ताद्यवस्थायामिति । तत्र चैतन्यप्रभवप्राणादेर्जाग्रद्दशायां चैतन्यानुमानं युक्तम्, न पुनः प्राणादिर्प्राणादेः । न खलु गोपालघटादौ धूमप्रभवधूमादभ्यनुमानं दृष्टम्, अग्निप्रभवधूमादेव तद्दर्शनात्; इत्यप्यसङ्गतम्; सुषुप्तेतरावस्थयोः प्राणादेर्विशेषाऽप्रतीतेः । यथैव हि सुषुप्तः प्रीणिति तथैतरोपि, अन्यथा ‘किमयं सुषुप्तः किं वा जागर्ति’ इति सन्देहो न स्यात् । यदि चैते सुषुप्तस्य चैतन्यप्रभवा न स्युः किन्तु प्राणादिप्रभवाः; तर्हि जाग्रतः परवञ्चनाभिप्रायेण सुषुप्तव्याजेनावस्थितस्य तादृशमेव तेषां भावो न स्यात् । न ह्यग्नेर्जायमानो धूमः प्रयत्नशतैरपि धूमादन्यतो वा जायते धूमप्रभवो वीजैरिति । दृश्यन्ते च ते यादृशा एव सुषुप्तस्य तादृशा एवास्यापि । तत्रैते भिन्नकारणप्रभवाः । चैतन्येतेर्प्रभवांश्च प्राणादीन् विवेचयन्वीतः ३० रागेतरप्रभवव्यापारादीनपि विवेचयतु । तथा च

“सरागा अपि वीतरागवच्छेदन्ते वीतरागाश्च सरागवदिति वीतरागेतरविभागो निश्चेतुमशक्यः ।” [] इति ब्रुवते ।

१ तादिः । २ यथा घट उपलब्धिलक्षणप्राप्तो भवति घटा पश्चादन्यत्र घटाभावोऽवसीयते । ३ अनुपलब्धिलक्षणप्राप्तस्य प्रत्यक्षभावः स्यादिति । ४ प्रतिषेधाच्च कल्पचिदितिपर्यन्तम् । ५ अन्यपुरुषैः । ६ आत्मावस्थानाम् । ७ उभयोर्मध्ये । ८ प्रभव । ९ पुरुषः । १० आसोच्छ्वसं गृह्णाति । ११ जीवति । १२ जाग्रत् । १३ उभयोः आसौ विशेषश्चेत् । १४ यतः सादृश्ये एव सन्देहः । अस्ति च सन्देहः । १५ किञ्च । १६ सुषुप्तस्य यादृशः प्राणः । १७ वयदेः । १८ धूमः । १९ न जायते । २० प्राण ।

धूमश्चाग्नेर्धूमाश्चोत्पद्यमानो यथा प्रतिपन्नस्तथा प्राणादिश्चैत-
न्यात्तदभावाच्चोत्पद्यमानः स्वात्मनि परत्र चानेन प्रत्येतुं न
शक्यते क्वचित्तदभावस्य निश्चेतुमशक्यत्वादित्युक्तम् । धूमे च
'किमयं धूमोऽग्नेः, धूमान्तराद्वा' इति सन्देहः प्रवृत्तस्याग्निद-
र्शनैतराभ्यां निवर्त्तते । प्राणादौ तु 'किमयमनन्तरचैतन्य-
प्रभवः, किं वा भूतभाविजन्मान्तरचैतन्यप्रभवः' इति सन्देहः
कुतो निवर्त्तत परचैतन्यस्य द्रष्टुमशक्यत्वात्? ततोऽयं न
निश्चिन्तं परप्रतिपादनार्थं शास्त्रप्रणयनं युक्तम् । सन्देहासु
तत्प्रणयनं चार्वाकस्याप्यविरुद्धम्, इत्युक्तमुक्तम्—“अन्यधियो
गतेः” [] इति । १०

सुषुप्तादौ बाधः प्राणादिः कुतो जायताम्? जाग्रद्विज्ञानसह-
कारिणो जाग्रत्प्राणादेरिति चेत्; न; एकस्माज्जाग्रद्विज्ञानादनन्त-
रभावीप्राणादिः कालान्तरभावि च प्रबोधज्ञानमित्यस्यासम्भा-
व्यमानत्वात् । न ह्येकस्मात्सामग्रीविशेषात् क्रमभाविकार्यद्वय-
सम्भवो नाम, अन्यथा नित्यादप्यक्रमान्तरमवत्कार्योत्पत्तिप्रसङ्गः । १५
तथाच “नाऽक्रमान्तरमिणो भावाः” [प्रमाणवा० १।४५] इत्यस्य
विरोधः । तस्मात्तत्कालभाविन एव ज्ञानात् प्राणादिप्रभवोऽभ्यु-
पगन्तव्यः । तत्कथं तत्र ज्ञानाभावसिद्धिः ?

स्वापसुखसंवेदनं चात्र सुप्रतीतम्—‘सुखमहमस्वापम्’ इत्युत्तर-
कालं तत्प्रतीत्यन्यथानुपपत्तेः । न ह्यननुभूते वस्तुनि स्मरणं प्रत्यभि- २०
ज्ञानं चोपपद्यते । न च तदा स्वापसुखनिरूपणाभावात्तत्संवेदना-
भावः; तदहर्जातवालकस्य सुखप्रक्षिप्तस्तैन्यजनितसुखसंवेदनेन
व्यभिचारात् । न खलु तत्रेन ‘इदमित्थम्’ इति निरूप्यते ।

न च दुःखाभावात्सुखशब्दप्रयोगोऽत्र गौर्णः; अर्भावंस्य प्रति- २५
योगिभावेनान्तरस्वभावतया व्यवस्थितेः इत्यलमतिप्रसङ्गेन ।

यद्योक्तम्—अनेकान्तज्ञानस्य बाधकसद्भावेन मिथ्यात्वोपप-
त्तेर्न निःश्रेयससाधकत्वम्; तदप्युक्तिमात्रम्; तज्ज्ञानस्यैवावाधित-

१ सौगतेन । २ इतरदृश्यदर्शनम् । ३ जाग्रदज्ञाप्यात् । ४ तथागतस्य ।
५ किञ्च । ६ मतस्य । ७ एकस्मात्कार्यद्वयसम्भवश्चेत् । ८ एकरूपात् । ९ स्वाप-
दशा । १० सुषुप्तावस्थायात् । ११ किञ्च । १२ सुषुप्तावस्थायात् । १३ सुख-
संवेदनं विना । १४ सुषुप्तावस्थायात् । १५ दुःख । १६ दुःखाभावे सुखशब्दो
न पारभाषिकसुखस्य वाचक इति हेतोः । १७ सुखमहमस्वापमित्यस्मिन्वाक्ये ।
१८ औपचारिकः । १९ दुःखस्य । २० दुःखलक्षणाद्भावादपरं सुखलक्षणं भावा-
न्तरम् । २१ स्वापावस्थयां ज्ञानसद्भावसाधनविस्तारेण ।

तथा सम्यक्त्वेन वक्ष्यमाणत्वात् । नित्यानित्यत्वयोर्विधिप्रतिषेध-
रूपत्वाद्भिन्ने धर्मिण्यभावः; इत्याद्यप्ययुक्तम्; प्रतीयमाने वस्तुनि
विरोधासिद्धेः । न च येन रूपेण नित्यत्वविधिस्तेनैवानित्यत्व-
विधिः, येनैकत्र विरोधः स्यात्; अनुवृत्त-व्यावृत्ताकारतया नित्या-
५ नित्यत्वविधेरभ्युपगमात् । विभिन्नधर्मनिमित्तयोश्च विधिप्रति-
षेधयोर्नैकत्र प्रतिषेधः अतिप्रसङ्गात् । न चानुवृत्तव्यावृत्ताका-
रयोः सामान्यविशेषरूपतयाऽऽत्यन्तिको भेदः; पूर्वोत्तरकालमा-
विश्वपर्यायतादात्म्येनावस्थितस्यानुगताकारस्य बाह्याध्यात्मिका-
र्थेषु प्रत्यक्षप्रतीती प्रतिभासनादित्यग्रे प्रपञ्चयिष्यते ।

१० स्वदेशादिषु सत्त्वं परदेशादिष्वसत्त्वं च वस्तुनोऽभ्युपगम्यते
एवेतरेतराभावात्; इत्यप्यसमीक्षिताभिधानम्; इतरेतराभावंस्य
घटादभेदे तद्विनाशे पटोत्पत्तिप्रसङ्गात् पटाभावस्य विनष्टत्वात् ।
अथ घटाद्भिन्नोऽसौ; तर्हि घटादीनामन्योन्यं भेदो न स्यात् ।
यथैव हि घटस्य घटाभावाद्भिन्नत्वाद् घटरूपता तथा पेटादेरपि
१५ स्यात् । नाप्येषां परस्परभिन्नानामभावेन भेदः कर्तुं शक्यः;
भिन्नाभिन्नभेदकरणे तस्याकिञ्चित्करत्वप्रसङ्गात् । नापि भेद-
व्यवहारः; स्वहेतुभ्योऽसाधारणतयोत्पन्नानां सकलभावानां प्रत्यक्षे
प्रतिभासनादेव भेदव्यवहारस्यापि प्रसिद्धेः । प्रतिक्षिप्तश्चेतरेतरा-
भावः प्रागेवेति कृतं प्रयासेन ।

२० कार्यान्तरेषु चाऽकर्तृत्वं न प्रतिषिध्यते; इत्याद्यप्यस्वारम्;
एकान्तपक्षे कार्यकारित्वस्यैवासम्भवात् ।

यच्च मुक्तावप्यनेकान्तो न व्यावर्त्तते; तदिष्यते एव । अने-
कान्तो हि द्वेषा-क्रमानेकान्तः, अक्रमानेकान्तश्च । तत्र क्रमाने-
कान्तापेक्षया य एव प्रागमुक्तः स एवेदानीं मुक्तः संसारी
२५ चेत्यविरोधः । अनेकान्तेऽनेकान्ताभ्युपगमोप्यदूर्ध्वमेव; प्रमाण-

१ अनेकान्तसिद्धौ । २ एकस्मिन् । ३ नित्यानित्यात्मकतया । ४ वसः ।
५ अन्यथा । ६ कर्तृत्वाकर्तृत्वधर्मयोरेकत्र धर्मिणि प्रतिषेधप्रसङ्गात् । ७ अनेकान्त-
सिद्धौ । ८ घटे पटाभावः पटे घटाभाव इतीतरेतराभावः । ९ कपालेणु । १० घटे ।
११ घटाभावाद्भिन्नरूपत्वाद् घटरूपता । १२ वसः । १३ अभिन्नभेदकरणे पदार्थ
एव कृतो भवेत् । भिन्नभेदकरणे पदार्थसाक्ष्यम् । १४ अभावकृतः । १५ इतरेतरा-
भावनिराकरणप्रयासेनालम् । १६ अनेकान्त एवेति दोषावेकान्तः (सर्वथा) सोऽने-
कान्ते प्रतिषिध्यते । केन ? द्वितीयानेकान्तपदेन । कथम् ? न विद्यते अनेकान्त
एवेति एकान्तो यस्यानेकान्तस्य तस्याभ्युपगमः । १७ अनवस्थादिकम् ।

परिच्छेद्यस्यानेकधर्माध्यासितवस्तुस्वरूपानेकान्तस्य नयपरिच्छेद्यै-
कान्ताविनाभावित्वात् ।

‘आत्मैकत्वज्ञानात्’ इत्यादिग्रन्थस्तु सिद्धसाध्यतया न समा-
धानमर्हति ।

न च गुणपुरुषान्तरविवेकदर्शनं निःश्रेयससाधनं घटते; प्रकर्ष-^५
पर्यन्तावस्थायामप्यात्मनि शरीरेण सहावस्थानान्मिध्याज्ञानवत् ।

अथ फलोपभोगकृतोपात्तकर्मक्षयापेक्षं तत्त्वज्ञानं परनिःश्रेय-
सस्य साधनम्, तद्वनपेक्षं चाऽपरनिःश्रेयसस्येत्युच्यते; तदप्युक्ति-
मात्रम्; फलोपभोगस्यौपक्रमिकानौपक्रमिकविकल्पानतिक्रमात् ।
तस्यौपक्रमिकत्वे कुतस्तदुपक्रमोऽन्यत्र तपोतिशयात्, इति १०
तत्त्वज्ञानं तपोतिशयसहायमन्तर्भूततत्त्वार्थश्रद्धानं परनिःश्रेयस-
कारणमित्यनिच्छतोप्यायातम् । तस्यानौपक्रमिकत्वे तु सदा
सद्भावावुपपन्नैः ।

यच्च स्वरूपे चैतन्यमात्रेऽवस्थानं मोक्ष इत्युक्तम्; तद्युक्तम्;
चैतन्यविशेषेऽनन्तज्ञानादिस्वरूपेऽवस्थानस्य मोक्षत्वसाधनात् । १५
न ह्यनन्तज्ञानादिकमात्मनोऽस्वरूपं सर्वज्ञत्वादिविरोधात् । प्रधा-
नस्य सर्वज्ञत्वादिस्वरूपं नात्मन इत्यसत्; तस्याचेतनत्वेनाकाशा-
दिवत्तद्विरोधात् । ज्ञानादेरप्यचेतनत्वात् प्रधानस्वभ(भा)वत्त्वा-
विरोधश्चेत्; कुतस्तदचेतनत्वसिद्धिः? ‘अचेतना ज्ञानादय उत्प-
त्तिमत्त्वाद् घटादिवत्’ इत्यनुमानाश्चेत्; न; हेतोरनुभवेनानेका- २०
न्तात्, तस्य चेतनत्वेऽप्युत्पत्तिमत्त्वात् । न चोत्पत्तिमत्त्वमसिद्धम्;
परापेक्षत्वाद्बुद्ध्यादिवत् । परापेक्षोसौ बुद्ध्यध्यवर्त्सायापेक्षत्वात्
“बुद्ध्यध्यवर्त्सितैर्मथं पुरुषश्चेतयते” [] इत्यभिधानात् ।

कालात्ययापदिष्टश्चायं हेतुः; ज्ञानादीनां स्वसंवेदनप्रत्यक्षाच्चेतन-
त्वप्रसिद्धेरप्यक्षबाधितपक्षानन्तरं प्रयुक्तत्वात् । चैतनसंसर्गात्तेषां २५
चेतनत्वप्रसिद्धिः; इत्यप्यचर्चिताभिधानम्; शरीरादेरपि तत्रप्रसि-
द्धिप्रसङ्गात् चैतनप्र(त्व)संसर्गाविशेषात् । शरीराद्यसम्भवी तेषां

१ यतः । कथम्? स चात्माननेकान्तश्च तस्य । २ प्रकृतिसत्त्वादिगुणयोरनेदाद्गुण
इत्युक्ते प्रकृतेश्चाद्या । ३ पुरुषविशेष । ४ भेदभावनाज्ञानम् । ५ विवेकदर्शनस्य ।
६ असम्भवे तु सम्यग्दर्शनादिकं परमप्रकर्षप्राप्तं शरीरेण सहावस्थानि न भवति
अनौपचारमसमये एव शरीराभावलक्षणे तत्सद्भावात् । ७ जीवश्रुतिः । ८ सकल-
मनिर्जरा अकामनिर्जरा चेति । ९ भेद । १० वर्जने । ११ योगस्य । १२ फलोप-
भोगश्चेति इत्या । १३ सदा युक्तिप्रसङ्गः । १४ दर्शनेन । १५ अनुभवस्य ।
१६ अर्थप्रतिनिम्बन । १७ निश्चितम् । १८ आत्मा । १९ अनुभवति ।

संसर्गविशेषोस्तीति चेत्; स कोन्योऽन्यत्र कथञ्चित्तादात्म्यात्? तददृष्टकृतकर्त्तृदेः शरीरादावपि भावात् । ततो नाचेतना ज्ञानादयः स्वसंवेद्यत्वादनुभववत् । स्वसंवेद्यास्ते परसंवेदानान्यथानुपपत्तेरिति स्वसंवेदनसिद्धिप्रस्तावे प्रतिपादितम् । तथा चात्म-
५ स्वभावास्ते चेतनत्वादनुभववत् । सुखमप्यात्मस्वभाव एव मोक्षेऽभिव्यज्यमानत्वाद् ज्ञानवत् । अनात्मस्वभावत्वे तत्र तदभिव्यक्तिर्न स्याद्दुःखवत् ।

तथा सुखात्मको मोक्षश्चेतनात्मकत्वे सत्यखिलदुःखविवेकात्मकत्वात् संहतसकलविकल्पध्यानावस्थावत् । तथानन्तं तत्
१० आत्मस्वभावत्वे सत्यपेतेप्रतिबन्धत्वात् ज्ञानवदेव । अपेतप्रतिबन्धत्वं तु मोहनीयादेः प्रतिबन्धकस्य कर्मणोऽपायात्प्रसिद्धमेव । इति सिद्धमनन्तज्ञानादिचेतन्यविशेषेऽवस्थानं पुंसो मोक्ष इति ।

नैतु पुंस एवानन्तज्ञानादिस्वरूपलामलक्षणो मोक्ष इत्ययुक्तम्; स्त्रीणामप्यस्योपपत्तेः । तथाहि-अस्ति स्त्रीणां मोक्षोऽविकलकारण-
१५ त्वात् पुरुषवत्; तदसत्; हेतोरसिद्धेः, तथाहि-मोक्षहेतुर्ज्ञानादिपरमप्रकर्षः स्त्रीषु नास्ति परमप्रकर्षत्वात् सप्तमपृथ्वीगमनकारणापुण्यपरमप्रकर्षवत् । यदि नाम तत्र तत्कारणापुण्यपरमप्रकर्षभावो मोक्षहेतोः परमप्रकर्षाभावे किमायातम्? कार्यकारणव्याप्यव्यापकभावाभावे हि तयोः कथमन्यस्याभावेऽन्यस्याभावेऽतिप्र-
२० संज्ञात् इति चेत्; सत्यम्; अयं हि तावन्निर्यमोस्ति-यद्देहस्य मोक्षहेतुपरमप्रकर्षस्तद्देहस्य तत्कारणापुण्यपरमप्रकर्षोऽप्यस्त्येव, यथा पुंवेदस्य । न च चरमशरीरेण व्यभिचारः; पुंवेदसामान्यापेक्षयोक्तैः ।

१ विना । २ पुरुषादृष्टकृतः अन्यः संसर्गविशेषो ज्ञानादिभिरात्मनोऽस्तीत्युक्ते जाह । ३ संसर्गस्य । ४ पटादिः परः । ५ ज्ञानस्य स्वसंविदितत्वाभावे । ६ चेतनत्वसिद्धितया । ७ सुखस्य । ८ अखिलदुःखविवेकात्मकत्वादित्युक्ते घटेन व्यभिचारस्तत्परिहाराय चेतनात्मकत्वे सतीत्युक्तम् । ९ चेतनात्मकत्वादित्युच्यमाने खण्ड्यमाननरेण व्यभिचारस्तत्परिहारायैवखिलदुःखविवेकात्मकत्वादित्युक्तम् । १० आत्मस्वभावत्वादित्युच्यमाने दुःखेन व्यभिचारस्तत्परिहारायैवपेतप्रतिबन्धत्वादित्युक्तम् । ११ अपेतप्रतिबन्धत्वादित्युच्यमाने प्रदीपेन व्यभिचारस्तत्परिहारायैवमात्मलभावत्वे सतीत्युक्तम् । १२ लक्षणम् । १३ शेषपटः । १४ मोक्षहेतुज्ञानादिपरमप्रकर्षतत्कारणापुण्यपरमप्रकर्षयोः । १५ अकारणस्याप्यपकस्य वा । १६ अन्तर्गताभ्यापकस्य वा । १७ घटाभावे त्रैलोक्याभावो भवेत् । १८ अविनाभावः । १९ पुंति सप्तमपृथ्वीगमनकारणापुण्यप्रकर्षोस्ति मोक्षहेतुज्ञानादिपरमप्रकर्षत्वात् । २० न्याप्यो हेतुः । २१ साध्यो व्यापकः । २२ इति पुंति अनयोर्गोप्यव्यापकभावः सिद्धः सन् स्त्रीषु व्यापकभावे व्याप्याभावं साधयलेवेति श्रवः । २३ आत्मना ।

विपरीतस्तु नियमो न सम्भवत्येव; नपुंसकवेदे तत्कारणापुण्य-
परमप्रकर्षं सत्यप्यन्यस्यानभ्युपगमात् पुंस्यभ्युपगमाच्च, अनित्य-
त्वस्य प्रयत्नान्तरीयकत्वेतरत्ववत् । ततश्च स्त्रीवेदस्यापि यदि
मोक्षहेतुः परमप्रकर्षः स्यात्, तदा तदभ्युपगमादेवापरोप्यनि-
ष्टोऽवश्यमापद्यते, अन्यथा पुंस्यपि न स्यात् । सिद्धे च प्रतिबन्धार्द्ध-^५
यामावेपि कृतिकोदयादिबहुकंप्रकर्षयोरविनाभावे स्त्रीणां तत्कार-
णापुण्यपरमप्रकर्षप्रतिषेधेन मोक्षहेतुपरमप्रकर्षो निषिध्यते ।

न च 'नपुंसकस्य मोक्षहेतुपरमप्रकर्षोस्ति तत्कारणापुण्य-
परमप्रकर्षसद्भावात् पुंसत् । पुंसो वा नार्ह्यत एव नपुंसकवत् ।
तत्कारणाऽपुण्यपरमप्रकर्षो वा नपुंसके - नास्ति परमप्रकर्ष-^{१०}
त्वात् स्त्रीवादित्यप्यनिष्टापत्तिः उभयप्रसिद्धाद्धेतोरुभयप्रसिद्धस्य
निषेधेनोर्भयोस्तुल्यत्वात्' इत्यभिघातव्यम्; उभयाभिप्रेतागमेन
वाघनोत् । स्त्रीणां तु तत्कारणापुण्यपरमप्रकर्षं परमभ्युपगतेनैव
मोक्षहेतुपरमप्रकर्षेणापाद्य तत्प्रतिषेधेन तद्धेतुरेव प्रतिषिध्यत
इत्यस्ति विशेषः । ^{१५}

यद्वा नोक्तानुमाने तत्कारणापुण्यपरमप्रकर्षाभावाद्धेतोर्मोक्ष-
हेतुपरमप्रकर्षः स्त्रीषु निषिध्यते, अपि तु परमप्रकर्षत्वाद् दृष्टान्ते
दृष्टसाध्यव्यासिकोत् । न चार्द्धं केनचिद्ब्यभिचारः; स्त्रीसम्बन्धिनः
कस्यचित्परमप्रकर्षस्यासम्भवात् । मायापरमप्रकर्षोस्तीति चेत्; न;
स्त्रीणां मायावैबुध्यमात्रस्यैवागमे प्रसिद्धेः । अन्यथा पुंवत्सप्तम-^{२०}
पृथिवीगमनानुपपन्नः । 'मायापरमप्रकर्षादन्यत्वे सति' इति विशेष-
पर्यौद्धा न दोषः । तत्र ज्ञानादिपरमप्रकर्षो मोक्षहेतुस्तथास्तीत्यै-

१ मोक्षहेतुपरमप्रकर्षो व्यापकः साध्यं तत्कारणापुण्यपरमप्रकर्षो व्याप्यो
हेतुरिति । २ अविनाभावः । ३ शब्दः प्रयत्नान्तरीयकः अनित्यत्वादित्यत्रानित्यत्वस्य
व्याप्यरूपस्य हेतोर्यथा प्रयत्नान्तरीयकत्वम् । ४ नियमः सिद्धो यतः । ५ मोक्ष-
हेतुपरमप्रकर्षसद्भावैपि अपरोऽनिष्टो नोपपद्यते चेत् । ६ तादात्म्यतदुत्पत्तिरक्षणणे
इति । ७ मोक्षहेतुपरमप्रकर्षसप्तमपृथ्वीगमनकारणापुण्यपरमप्रकर्षलक्षणयोः । ८ मोक्ष-
हेतुपरमप्रकर्षः । ९ साम्यस्य । १० वादिप्रतिवादिनोः । ११ सितपटप्रसिद्धस्य
स्त्रीनिर्वाणस्यासामिः प्रतिषेधादसत्प्रसिद्धस्य सितपटेन प्रतिषेधात् इति तुल्यत्वम् ।
१२ सितपटपक्षस्य । १३ परः सितपटः । १४ इति कर्षं तुल्यत्वमुभयोः । १५
प्राण्युक्तस्य परिहारान्तरे यद्वाशब्दः । १६ व्यापकभावाद् व्याप्याभावं न कुर्म
इत्यर्थः । १७ यो यः परमप्रकर्षः स स स्त्रीषु नास्तीति । १८ स्त्रीषु मोक्षप्रतिषेधे ।
१९ प्राचुर्यमात्रं न तु परमप्रकर्षः । २० मायापरमप्रकर्षः स्त्रीचस्ति यदि ।
२१ परमप्रकर्षत्वे । २२ व्यभिचारलक्षणः । २३ परमप्रकर्षत्वादित्यत्रानुमाने ।

सिद्धो हेतुः । न खलु ज्ञानादयो यथा पुरुषे प्रकृष्यमाणाः प्रमाणतः प्रतीयन्ते तथा स्त्रीष्वपि, अन्यथा नपुंसके ते तथा स्युः, तथा चास्याप्यपवर्गप्रसङ्गः ।

संयमस्तुं तद्धेतुस्तत्रासम्भाव्य एव; तथाहि-स्त्रीणां संयमो ५ न मोक्षहेतुः नियमेन द्विविशेषाद् हेतुत्वान्यथानुपपत्तेः । यत्र हि संयमः सांसारिकलब्धीर्नामप्यहेतुः तत्रासौ कथं निःशेषकर्मवि-
प्रमोक्षलक्षणमोक्षहेतुः स्यात् ? नियमेन च स्त्रीणामेव ऋद्धिविशेषहेतुः संयमो नेष्यते, न तु पुरुषाणाम् । यदि हि नियमेन लब्धिविशेषस्याजनकः संयमः क्वचिदन्यत्राविवादास्पदीभूते मोक्षहेतुः १० प्रसिद्धोत् तदा तद्गृहान्तावष्टम्भेनात्राप्यसौ तथा प्रत्येतुं शक्येत, नान्यथैति प्रसङ्गात् । संयममात्रं तु सदप्यासां न तद्धेतुः तिर्यग्गृहस्थादिसंयमवत् ।

सचेत्संयमत्वाच्च नासौ तद्धेतुर्गृहस्थसंयमवत् । न चायमसिद्धो हेतुः; न हि स्त्रीणां निर्वैरः संयमो दृष्टः प्रवचनप्रति- १५ पादितो वा । न च प्रवचनाभावेपि मोक्षसुखाकाङ्क्षया तासां वक्षत्यागो युक्तः; अर्हत्प्रणीतागमोलङ्घनेन मिथ्यात्वावधाना-
प्राप्तेः । यदि पुनर्नृणामचेत्सौ तद्धेतुः स्त्रीणां तु सचेत्; तर्हि कारणभेदान्मुकेरप्यनुषज्येत भेदः स्वर्गादिवत् । देशसंयमिर्नैवैवं मुक्तिः प्रसज्यते । तथा च लिङ्गग्रहणमनर्थकम् । सचेत्संयमश्च २० मुक्तिहेतुरिति कुतोऽवगतम् ? स्वागमाद्येत्; न; अस्यासान् प्रत्या-
गमाभासत्वाद् भवतीति यश्चाल्लुप्तानागमवत् ।

स्त्रियो न मोक्षहेतुसंयमवत्यः साधूनामवन्धत्वाद् गृहस्थवत् ।
न चात्रोत्सिद्धो हेतुः;

२५ “वरिसैस्यदिविस्त्रयाए अज्जाए अज्ज दिविस्त्रयो साह ।
असिर्गमैणवर्देणर्णमंसणविणपण सो पुज्जो ॥” [इत्यभिधानात् ।]

बाह्याभ्यन्तरपरिग्रहवत्त्वाच्च न तास्तद्वत्यस्तद्वत् । न चायमसिद्धो हेतुः; प्रत्यक्षेणावगतो हि वक्ष्यग्रहणादिबाह्यपरिग्रहोऽभ्य-

१ अविकलकारणत्वादिति । २ जीपु ज्ञानादयः प्रकृष्यमाणाश्चेत्तर्हि । ३ स्त्रीणां मोक्षहेतुसंयमो विवर्ते चेत् । ४ न पुनः । ५ स्त्रीणां मोक्षहेतुसंयमो विवर्ते चेत्तर्हि । ६ ऋद्धीनात् । ७ दृष्टान्तत्वमन्तरेण । ८ गृहस्थस्यापि मोक्षः स्यात् स्वसंयमात् । ९ निर्वैरसंयमः । १० अदृष्टलक्षणकारणभेदाद्यथा स्वर्गादेः प्रथमद्वितीयादिप्रकारेण भेदः । ११ सचेत्संयमवत्सौमुक्तिप्रकारेण । १२ निर्ग्रन्थतालक्षणवत् । १३ सित-
पटस्य । १४ महेश्वरात् । १५ अनुमाने । १६ वर्णशतदीक्षितायाः आर्थिकायाः अथ दीक्षिताः साधुः । अभिगमवन्धनानमस्कारेण विनयेन स पूज्यः । १७ सम्मुखगमनम् । १८ युवमकिपूर्वकम् । १९ नमस्कारम् ।

न्तरं स्वशरीरानुरागादिपरिग्रहमनुमापयति । न च शरीरोष्मणा वातकायिकादिजन्तूपघातनिवारणार्थं स्वशरीरानुरागाद्यभावेव्य-
सावुपादीयते इत्यभिधेयम् ; पुंसामाचेलक्यत्रतस्य हिंसात्वावुष-
क्तात् । तथा चार्हदादयो मुक्तिभाजस्तदुपदेशारो वा न स्युः, किन्तु
सवस्त्रा एव गृहस्था मुक्तिभाजो भवेयुः । न चाचेलक्यं नेष्यते ५

“आचेलकुहेसिय सेज्जाहररायपिंडकिदिकम्म” [जीतकल्प-
भा० गा० १९७२] इत्यादेः पुरुषं प्रति वैशविधस्य स्थिति-
कल्पस्य मध्ये तदुपदेशात् ।

किञ्च, गृहीतेपि वस्त्रे जन्तूपघातस्तदवस्थः, तेनानावृतपाणि-
पादादिप्रदेशोष्मणा तदुपघातस्य परिहर्तुमशक्तेः । वस्त्रस्य १०
यूकालिक्षाद्यनेकजन्तुसम्भूच्छेनाधिकरणत्वाच्च । तथाविधस्यापि
स्वीकरणे भूर्दजानां लुञ्जनादिक्रिया न स्यात् । वस्त्राकुञ्चनोदेर्जात-
चातेनाकाशप्रदेशावस्थितजन्तूपपीडनाच्च व्यजनादिवातवत् ।

किञ्च, एवमनेकप्राण्युपघातनिवारणार्थमविहारोप्यनुष्ठेयो वस्त्र-
ग्रहणवदविशेषात् । प्रयत्नेन गच्छतो जन्तूपघातेऽप्यहिंसा निश्चे- १५
लेपि समा । यथा च यज्ञानुष्ठानं पशुहिंसाङ्गत्वेनाऽश्रेयस्करत्वात्
त्याज्यं तथा वस्त्रग्रहणमप्यविशेषात् ।

एतेन संयमोपकरणार्थं तदित्यपि निरस्तम् ।

किञ्च, बाह्याभ्यन्तरपरिग्रहपरित्यागः संयमः । स च याचन-
सीवनप्रक्षालनशोषणनिक्षेपादानचौरहरणादिमनःसंक्षोभकारिणि २०
वस्त्रे गृहीते कथं स्यात् ? प्रेत्युत संयमोपघातकमेव तत् स्याद्बा-
ह्याभ्यन्तरनैर्ग्रन्थ्यप्रतिपन्थित्वात् ।

ऋशीतार्तिनिवृत्त्यर्थं वस्त्रादि यदि गृह्यते ।

कामिन्यादिसैथा किंर्न कामपीडादिशान्तये ? ॥ १ ॥

येन येन विना पीडा पुंसां समुपजायते ।

२५

तत्तत्सर्वमुपादेयं लावर्कादिपर्लादिकम् ॥ २ ॥

१ परेण । २ आचेलक्यैदेशिकग्रन्थ्यापरराजकीयपिण्डेक्षाहृतिकर्मत्रतरोपपणयोग्यत्वं
न्येषसा प्रतिक्रमणं मासिकवासिता स्थितिकस्यो योगश्च वापिको दक्षमः । ३ अनु-
श्रेष्ठासंयमस्य । ४ यूकाद्यनेकजन्तुसम्भूच्छेनाधिकरणत्वाविशेषात् एषां निवारणार्थम् ।
५ प्रसारणाच्च । ६ व्यजकः । ७ जन्तूपघातपरिहारार्थं वस्त्रसोपादानप्रकारेण ।
८ अयमनम् । ९ वस्त्रस्य जन्तूपघातसमर्थनपरिणं ग्रन्थेन । १० विक्षेपतः ।
११ विरोधित्वात् । १२ तान्मूलादिश्च । १३ वस्त्रग्रहणप्रकारेण । १४ गृह्यते ।
१५ यदि तर्हीति शेषः । १६ लावकः पक्षिविशेषः । पर्लं मांसम् । १७ उपपादेयम् ।

- वस्त्रखण्डे गृहीतेपि विरक्तो यदि तत्त्वतः ।
 स्त्रीमात्रेपि तथा किञ्च तुल्याक्षेपसमाधितः ॥ ३ ॥
 नापि तन्वीमनःक्षोभनिवृत्त्यर्थं तदादृतम् ।
 तद्वाञ्छाऽहेतुकत्वेन तन्निषेधस्य सम्भवात् ॥ ४ ॥
- ५ चक्षुषत्पाटनं पट्टवन्धनं च प्रसज्यते ।
 लोचनैर्द्विस्तदुत्पत्तौ निमित्तत्वाविशेषतः ॥ ५ ॥
 चलच्चित्ताङ्गना काचित्संयतं च तपस्विनम् ।
 यदीच्छति भ्रातृवर्तिकं दोषस्तस्य मतो नृणाम् ॥ ६ ॥
 वीमत्सं मलिनं साधुं दृष्ट्वा शवशरीरवत् ।
 अङ्गना नैव रज्यन्ते विरज्यन्ते तु तत्त्वतः ॥ ७ ॥
 स्त्रीपरीषद्भग्नैश्च बद्धरागैश्च विग्रहे ।
 वस्त्रमादीयते यस्मात्सिद्धं ग्रन्थद्वयं ततः ॥ ८ ॥

न चैवं जन्तुरक्षागण्डादिप्रतीकारार्थं पिच्छौषधादौ गृह्यमाणे-
 प्ययं दोषः समानः; त्रिचतुरपिच्छग्रहणस्य जन्तुरक्षार्थत्वात्,
 १५ शरीरे ममेदंभावाऽसूचकत्वाच्च, औषधस्यापि प्रतिपन्नसाम-
 र्थ्यस्य गण्डादेर्व्यावृत्तिहेतुत्वात् नाश्रयैर्विरोधित्वाच्च, वस्त्रे तु
 विपर्ययात्, परमनैर्ग्रन्थ्यसिद्धर्थं पिच्छस्याप्यग्रहणाच्चौषधवत् ।
 पिण्डौषध्यादयो हि सिद्धान्तानुसारेणोद्गमाविदोषरहिता रज-
 जयाराधनहेतवो गृह्यमाणा न कस्यापि मोक्षहेतोः हन्तारः । न हि
 २० तद्ग्रहणे रागादयोऽन्तरङ्गा बहिरङ्गा वा सैर्भूषणविषादेर्यो ग्रन्था
 जायन्ते, अतस्ते मोक्षहेतोरुपकर्त्तार एव । पिण्डग्रहणमन्तरेण
 ह्यपूर्णकालेपि विपत्तेरापत्तेरात्मघातित्वं स्यात्, न तु वैल्ले ।
 षष्ठाष्टमादिक्रमेण च मुमुक्षुभिः पिण्डोपि त्यज्यते, न तु स्त्रीभिः
 कदाचिद्ग्रह्यम् ।

१ रागादिसङ्गात्वे सत्येव स्त्रीपरिग्रह इत्याक्षेपो वक्ष्येति समान इति समाधानम् ।
 एवं यदि वस्त्रमात्रे गृहीते न रागस्ताहि स्त्रीमात्रपरिग्रहेति न रागः । २ सस्य ।
 ३ भोत्रादेश्च । ४ यथा भ्रातृसमानत्वं वनिशयात् । कृत एतत्तस्य ? इच्छारहित-
 त्वात्तस्य तपस्विनः । ५ शरीरे । ६ कारणात् । ७ वस्त्ररागलक्षणवाद्यान्वन्तरपरि-
 ग्रहः । ८ तत्र इत्ययं शब्दः श्लोकादौ द्रष्टव्यस्तेनायमर्थः वस्त्रस्त्रीकरणे अपर प्रयोजनं
 नास्ति यत्ततः । ९ वस्त्रप्रकारेण । १० गण्डो रोगनिषेधः । ११ मूर्च्छा-
 १२ नैर्ग्रन्थ्य- १३ जन्तुरक्षार्थभावात्ममेदन्माषसूचकत्वाद् गण्डाद्यन्यावृत्तिहेतुत्वाद्
 नाश्रयविरोधित्वाच्च । १४ किञ्च । १५ औषधादेर्यथाऽग्रहणम् । १६ सम्बन्ध-
 नादेः । १७ अलङ्कार- १८ मण्डन- १९ देशनैयत्येन वस्त्रपरिधानादिलक्षणो
 वेधः । २० अगृह्यमाणे आत्मघातित्वं स्यादिति शेषः ।

अथ ब्रह्मादन्यस्याखिलस्य त्यागात्साकल्येनासां बाह्यं नैर्ग्रन्थ्यम्; तर्हि लोभादन्यकषायत्यागादेवाबाह्यमपि स्यात् । न च गृहीतेपि ब्रह्मे ममेदम्भावस्याभावात्तदवतिष्ठते; विरोधात्- 'बुद्धिपूर्वकं हि हस्तेन पतितवस्त्रमादाय परिदधानोपि तन्मूच्छीरहितः' इति कश्चेतनः श्रद्दधीत ? तन्वीमाश्लिष्यतोपि तद्द्रवित-^५त्वप्रसङ्गात् । ततो ब्रह्मग्रहणे बाह्याभ्यन्तरपरिग्रहप्राप्तेर्नैर्ग्रन्थ्यद्वयासम्भवात् स्त्रीणां मोक्षः । स हि बाह्याभ्यन्तरकारणजन्यः कार्यत्वान्माषपाकादिवत् । तच्च बाह्यमभ्यन्तरं च कारणमाश्लिष्यन्त्यम्, तदभावे कथं स स्यात् ? इति परहेतोरसिद्धेर्नानुमानात् स्त्रीमुक्तिसिद्धिः । १०

नाप्यागमात्; तन्मुक्तिप्रतिपादकस्यास्याभावात् ।

“पुंवेदं वेदंतां जे पुरिसा खवगसेदिमारूढा ।

सेसोदयेणं वि तहा झाणुर्वजुत्ता य ते दु सिज्जंति ॥”

[]

इत्यादेरप्यागमस्य स्त्रीमुक्तिप्रतिपादकत्वाभावः । स हि पुंवे-^{१५}दोदयवत् शेषवेदोदयेनापि पुंसामेवापवर्गावेदक उभयत्रापि 'पुरुषाः' इत्यभिसम्बन्धात् । उदयश्च भावस्यैव न द्रव्यस्य ।

स्त्रीत्वानर्थथानुपपत्तेः सासां न मुक्तिः । आगमे हि जघन्येन सप्ताष्टभिर्भवैः उत्कर्षेण द्विवैर्जीवस्य रत्नत्रयाराधकस्य मुक्तिरुक्ता । यदा चास्य सम्यग्दर्शनाराधकत्वम् तत्प्रभृति सर्वासु स्त्रीभूत्पत्ति-^{२०}रेव न सम्भवतीति कथं स्त्रीमुक्तिसिद्धिः ।

ननु चानादिमिथ्यादृष्टिरपि जीवः पूर्वभवनिर्जीर्णांशुभकर्मा प्रथमतरमेव रत्नत्रयमाराध्य भरतपुत्रादिवन्मुक्तिमाप्तादयत्यतः स्त्रीत्वेनोत्पन्नस्यापि मुक्तिरविरुद्धेति; तदप्ययुक्तम्; पूर्वं निर्जीर्णांशुभकर्मणः स्त्रीवेदेनोत्पत्तेरसम्भवात्, तस्याप्यशुभकर्मत्वेन ^{२५}निर्जीर्णत्वात् । कथं पुनः स्त्रीवेदस्याशुभकर्मत्वमिति चेत्; सम्यग्दर्शनोपेतस्य तत्त्वेनोत्पत्तेरयोगात् ।

ततो नास्ति स्त्रीणां मोक्षः पुरुषादन्यत्वात् नपुंसकवत् । अन्यथाऽस्याप्यसौ स्यात् । न चैतद्वाच्यम्-नास्ति पुंसो मोक्षः स्त्रीतो-

१ तद-उपादि । २ बाह्यमभ्यादिकमन्तरा शक्तिरेव यथा न हेतुः । ३ सितपद-प्रयुक्तस्य अविकलकारणत्वादित्यस्य । ४ अनुभवन्तः । ५ नपुंसकस्त्रीवेदोदयेनापि । ६ ध्यानोपयुक्तः । ७ पुरुषाः । ८ मुक्तिसंज्ञाये सति । ९ दिव्यकृपादिषु । १० अन्यथानुपपत्तिः सिद्धा यतः । ११ स्त्रीणां मोक्षश्चेत् ।

न्यत्वात् नपुंसकवत्; उभयवादिसम्भतागमेन बाधितत्वात्,
भेवदागमस्य चासान्प्रति अप्रमाणत्वात् ।

तथा स्त्रीणां मोक्षो नास्ति उत्कृष्टध्यानफलत्वात् सप्तमपृथ्वी-
गमनवत् । अतोपि न तासां मुक्तिसिद्धिः । ततोऽनन्तचतुष्टय-
५ स्वरूपलाभलक्षणो मोक्षः पुरुषस्यैवेति प्रेक्षादक्षैः प्रतिपत्तव्यम् ॥

मुख्यं सांव्यवहारिकं च शदितं भाजुप्रदीपोपमम्,
प्रत्यक्षं विशदस्वरूपनियतं साकल्यवैकल्यतः ।
निर्बाधं निर्यतस्वहेतुजनितं मिथ्येतैरैः कल्पितम्,
तल्लक्ष्मेति विचारचारुधिषणैश्चेतस्यलं चिन्त्यताम् ॥ १ ॥

१० इति श्रीप्रभाचन्द्रविरचिते प्रमेयकमलमार्त्तण्डे परीक्षासुखालङ्कारे
द्वितीयः परिच्छेदः समाप्तः ॥ १ ॥

१ पुरुषादन्यत्वादित्यनुपानं न वक्तव्यमसदागमेन बाधितत्वादिति सितपटेनोक्तं तं
प्रत्याह हरिः । २ जनेन पथेन परिच्छेदाद्यनुपसंहरणाह । ३ सामग्रीविशेषेभेलादिक-
मिन्द्रियानिन्द्रियं च । ४ नैयायिकादिभिः । ५ कृतम् ।

। श्रीः ।

॥ अथ तृतीयः परोक्षपरिच्छेदः ॥

अथेदानीं परोक्षप्रमाणस्वरूपनिरूपणाय—

परोक्षमितरत् ॥ १ ॥

इत्याह । प्रतिपादितविशदस्वरूपविज्ञानाद्यदन्यद्ऽविशदस्वरूपं विज्ञानं तत्परोक्षम् । तथा च प्रयोगः—अविशदज्ञानात्मकं परोक्षं परोक्षत्वात् । यद्वाऽविशदज्ञानात्मकं तन्न परोक्षम् यथा मुख्ये-५ तरप्रत्यक्षम्, परोक्षं चेदं वक्ष्यमाणं विज्ञानम्, तस्मादविशदज्ञानात्मकमिति ।

तन्निमित्तप्रकारप्रकाशनाय प्रत्यक्षेत्याद्याह—

प्रत्यक्षादिनिमित्तं स्मृतिप्रत्यभिज्ञान-

तर्कानुमानागमभेदम् ॥ २ ॥

१०

प्रत्यक्षादिनिमित्तं यस्य, स्मृत्यादयो भेदा यस्य तथोक्तम् ।

तत्र स्मृतेस्तावत्संस्कारेत्यादिना कारणस्वरूपे निरूपयति—

संस्कारोद्बोधनिबन्धना तदित्याकारा स्मृतिः ॥ ३ ॥

संस्कारः सांख्यव्यवहारिकप्रत्यक्षभेदो धारणा । तस्योद्बोधः प्रबोधः । स निबन्धनं यस्याः तदित्याकारो यस्याः सा तथोक्ता १५ स्मृतिः ।

विनियानां सुखावबोधार्थं दृष्टान्तद्वारेण तत्स्वरूपं निरूपयति—

यथा स देवदत्त इति ॥ ४ ॥

यथेत्युवाहरणप्रदर्शने । स देवदत्त इति । एवंप्रकारं तच्छब्द-
परासृष्टं यद्विज्ञानं तत्स्वर्षं स्मृतिरित्यवगन्तव्यम् । न चासावप्रमाणं २०

१ स्मृतिप्रलभिज्ञानतर्कानुमानागमविशेषाः स्वभाविनो षड्विधः प्रसिद्धाः । तत्र परोक्षत्वं सामान्यरूपं वादिप्रतिवादिनोः प्रसिद्धस्वभावः—तेन वस्तुनोऽनेकवर्मात्मकत्वात् । तत्र स्थितौ द्वितीयोऽविशदज्ञानात्मकोऽप्रसिद्धः साध्यते इति विश्वेष्टं स्वभाविनं (स्वभावस्वभाविनोभेदात्) सामान्यस्वभावं नृवता बोधाभावात् । २ कारण । ३ भेद । ४ स्मृतिः प्रत्यक्षपूर्विका । प्रलभिज्ञानं प्रत्यक्षसरणपूर्वकम् । तर्कः प्रत्यक्षसरणप्रलभिज्ञानपूर्वकः । अनुमानं प्रत्यक्षसरणप्रलभिज्ञानतर्कपूर्वकम् । आगमस्तु आगमाध्यक्षसङ्केतस्मृतिपूर्वकः । ५ संस्कारस्य कारणमार्थं देवदत्तदर्शनम् । उद्बोधस्य कारणं पाश्चालं तत्सदृशतत्कार्यादिवर्शनम् । ६ प्राक्तव्यम् ।

संवादकत्वात् । यत्संवादकं तत्प्रमाणं यथा प्रत्यक्षादि, संवादिका च स्मृतिः, तस्मात्प्रमाणम् ।

ननु कोयं स्मृतिशब्दवाच्योर्थः-ज्ञानमात्रम्, अनुभूतार्थविषयं वा विज्ञानम्? प्रथमपक्षे प्रत्यक्षादेरपि स्मृतिशब्दवाच्यत्वानु-
 ५ षङ्कः । तथा च कस्य दृष्टान्तता? न खलु तदेव तस्यैव दृष्टान्तो भवति । द्वितीयपक्षेपि देवदत्तानुभूतार्थं यद्देवदत्तादिज्ञानस्य स्मृतिरूपताप्रसङ्गः । अथ 'येनैव यदेव पूर्वमनुभूतं वस्तु पुनः कालान्तरे तस्यैव तत्रैवोपजायमानं ज्ञानं स्मृतिः' इत्युच्यते ननु 'अनुभूते जायमानम्' इत्येतत् केन प्रतीयताम्? न तावदनुभवेन;
 १० तत्काले स्मृतेरेवासत्त्वात् । न चासती विषयीकर्तुं शक्या । न चाविषयीकृता 'तत्रोपजायते' इत्यधिगतिः । न चानुभवकालेऽर्थस्यानुभूततास्ति, तदा तस्यानुभूयमानत्वात्, तथा च 'अनुभूयमाने स्मृतिः' इति स्यात् । अथ 'अनुभूते स्मृतिः' इत्येतत्स्मृतिरेव प्रतिपद्यते; न; अनयाऽतीतानुभवार्थयोरविषयीकरणे तथा प्रतीययो-
 १५ गात् । तद्विषयीकरणे वा निखिलातीतविषयीकरणप्रसङ्गोऽविशेषात् । यदि चानुभूतता प्रत्यक्षगम्या स्यात्; तदा स्मृतिरपि जानीयात् 'अहमनुभूते समुत्पन्ना' इति अनुभववानुसारित्वात्तस्याः । न चालौ प्रत्यक्षगम्येत्युक्तम्; इत्यप्यसमीक्षिताभिधानम्; स्मृतिशब्दवाच्यार्थस्य प्रागेव प्ररूपितत्वात् । 'तदित्याकारानुभूतार्थ-
 २० विषया हि प्रतीतिः स्मृतिः' इत्युच्यते ।

ननु चोक्तमनुभूते स्मृतिरित्येतन्न स्मृतिप्रत्यक्षाभ्यां प्रतीयते; तदप्यपेशलम्; मतिज्ञानापेक्षणात्मना अनुभूयमानाऽनुभूतार्थविषयतायाः स्मृतिप्रत्यक्षाकारयोश्चानुभवसम्भवात् चित्राकारप्रतीतिवत् चित्रज्ञानेन । यथा चाशक्यविवेचनत्वाद् युगपच्चित्राका-
 २५ रतैर्कस्याविरुद्धा, तथा क्रमेणापि अचग्रहेहावायधारणास्मृत्यां दिचित्रस्वभावात् । न च प्रत्यक्षेणानुभूयमानतानुभवे तदैवार्थेऽनुभूतताया अप्यनुभवोऽनुषज्यते; स्मृतिविशेषणापेक्षत्वात्तत्र तत्प्रतीतिः, नीलाद्याकारविशेषणापेक्षया ज्ञाने चित्रप्रतिपत्तिवत् ।

न चानुभूतार्थविषयत्वे स्मृतेर्गृहीतग्राहित्वेनाऽप्रामाण्यम्; ३० [प]रिच्छित्तिविशेषसम्भवात् । न खलु यथा प्रत्यक्षे विशदाकार-

१ सांगतो वक्ति । २ अनुत्पन्नत्वेन । ३ अनुभूतेऽर्थे । ४ अनुभवकालेऽर्थस्यानुभूयमानत्वे च । ५ अनुभवश्चार्थश्च अनुभवार्थो । अतीतो च तावदनुभवार्थो च । ६ अतीतत्वस्य । ७ कर्त्ता । ८ प्रत्यक्षस्मरणयोः । ९ विज्ञानस्य । १० आदिना प्रलभिज्ञानादि । ११ एकस्यात्मनोऽविरुद्धा । १२ उत्तरकालमात्मनः । १३ तमेव दर्शयति ।

तथा वस्तुप्रतिभासः तथैव स्मृतौ तत्र तस्या (तस्य) वैशद्यऽ-
प्रतीतेः । पुनः पुनर्भावयतो वैशद्यप्रतीतिस्तु भावनाज्ञानम्, तच्च
तद्रूपतया भ्रान्तमेव स्वप्नादिज्ञानवत् । तथाप्यनुभूतार्थविषयत्व-
मात्रेणास्याः प्रामाण्यानभ्युपगमे अनुमानेनाधिगतेऽग्नौ यत्प्रत्यक्षं
तदप्यप्रमाणं स्यात् । असत्यतीतेषु प्रवर्त्तमानत्वात्तदप्रामाण्ये ५
प्रत्यक्षस्यापि तत्प्रसङ्गः, तदर्थस्यापि तत्कालेऽसत्त्वात् । तज्जन्मा-
देस्तत्रास्य प्रामाण्ये स्मरणेपि तदस्तु । निराकृतं चार्थजन्मादि
ज्ञानस्य प्रागेवेति कृतं प्रयासेन ।

न चाविसंवादकत्वं स्मृतेरसिद्धम्; स्वयं स्थापितनिक्षेपादौ
तद्वृहीतार्थे प्राप्तिप्रमाणान्तरप्रवृत्तिलक्षणाविसंवादप्रतीतेः । यत्र १०
तु विसंवादः सा स्मृत्याभासा प्रत्यक्षाभासवत् । विसंवादकत्वे
चास्याः कथमनुमानप्रवृत्तिः सम्बन्धस्यातोऽप्रसिद्धेः ? न च
सम्बन्धस्मृतिमन्तरेणानुमानमुदेत्यतिप्रसङ्गात् ।

किञ्च, सम्बन्धाभावात्तस्याः विसंवादकत्वम्, कल्पितसम्ब-
न्धविषयत्वाद्वा, सतोप्यस्याऽनया विषयीकर्तुमशक्यत्वाद्वा ? १५
प्रथमपक्षे कुतोऽनुमानप्रवृत्तिः ? अन्यथा यतः कुतश्चित्सम्बन्ध-
रहितोद्यत्र क्वचिदनुमानं स्यात् । कल्पितसम्बन्धविषयत्वेनास्याः
विसंवादित्वे इदं प्रामाण्यैकत्वे प्राप्यविकल्प्यैकत्वे च प्रत्यक्षानुमान-
योरविसंवादो न स्यात् । तत्सम्बन्धस्य कल्पितत्वे च अनुमान-
मप्येवंविधमेव स्यात् । तथा च कथमतोऽभीष्टतत्त्वसिद्धिः ? अथ २०
सन्नपि सर्व्वेभ्योऽनया विषयीकर्तुं न शक्यते, यस्तु विषयीक्रियते
सामान्यं तस्याऽसत्त्वात् स्मृतेर्विसंवादित्वम्; तदेतदनुमानेपि
समानम् । अर्थावसितस्वलक्षणव्यभिचारित्वं स्मृतावैपि ।

१ वैशद्यमेव नास्ति कुतः परिच्छिन्नविशेषः इत्यभिप्राय वक्ति बौद्धः । २ अव-
यादादिभेदेनानुभवतो नरस्य । ३ क्षणिकत्वात् । ४ आदिना ताद्रूप्यम् । ५ अर्थ-
जन्मादिनिराकरणप्रयासेन । ६ प्रत्यक्ष । ७ विस्तृतसम्बन्धस्यापि अनुमानोत्पत्ति-
प्रसङ्गात् । ८ दृष्टान्तसाध्यसाधनयोः । ९ सम्बन्धाभावे अनुमानप्रवृत्तिर्यदि स्यात् ।
१० अर्थाच्छिन्नस्थानीयात् । ११ यदेव दृष्टं जलस्वलक्षणं तदेव प्राप्तमिति । १२ अनु-
मानलक्षणो विकल्पः । विकल्पस्य विषयो विकल्प्यो यो जलादिः । पूर्वं विकल्प्यः
पक्षात्प्राप्य इति । कथम् ? विवादापन्नो देवः प्रवृत्तस्य ज्ञानादिमान् जलत्वात्सम्प्रतिपक्ष-
देशवत् । इति यदेवानुमितं कानादिकं तदेव प्राप्तमिति । १३ स्मृतियुद्धमात्रेण । १४ सर्व्व
क्षणिकं सत्त्वादिति क्षणिकत्वसिद्धिः । १५ तादात्म्यतदुत्पत्तिलक्षणः । १६ अन्या-
पोहः । १७ न्यायरूपमनुमानेन स्वलक्षणं विषयानं न विषयीक्रियते (यद्विषयीक्रि-
यते) सामान्यं तद्विद्यमानं न भवतीति । १८ प्रत्यक्षेण । १९ यतः । २० स्वलक्षणं
न व्यभिचरतीति न स्मृतेर्वैपि । २१ समानम् ।

किञ्च, लिङ्गलिङ्गिसम्बन्धः सत्तामात्रेणानुमानप्रवृत्तिहेतुः, तद्दर्शनात्, तत्स्मरणाद्वा? तत्राद्यविकल्पे नालिकेरुद्रीपायातस्या-
प्रतिपन्नाग्निधूमसम्बन्धस्यापि धूमदर्शनादग्निप्रतिपत्तिः स्यात् ।
न चाविज्ञातः सम्बन्धोस्ति उपलम्भनिवन्धनत्वात्सद्भवहारस्य,
५ अन्यथातिप्रसङ्गात् । तद्दर्शनमात्रेण तत्प्रवृत्तौ बालाघस्थायां प्रति-
पन्नाग्निधूमसम्बन्धस्य पुनर्वृद्धदेशायां धूमदर्शनादग्निप्रतिपत्ति-
प्रसङ्गः, न चैवम् । तत्स्मृतावस्त्येवेति चेत्, कथं नासौ प्रमाणम्? को हि स्मृतिपूर्वकमनुमानमभ्युपगम्य पुनस्तां निराकुर्यात्? अनु-
मानस्यापि निराकरणानुषङ्गात् । न खलु कारणाभावे कार्योत्पत्ति-
१० नार्थाऽतिप्रसङ्गात् ।

समारोपव्यवच्छेदकत्वाच्चास्याः प्रामाण्यमनुमानवत् । न च
स्मृतिविषयभूते सम्बन्धादौ समारोपस्यैवासम्भवात् कस्य व्यव-
च्छेद इत्यभिधातव्यम्; साधर्म्यदृष्टान्ताभिधानानर्थक्यप्रसङ्गात् ।
तत्र स्मृतिहेतुभूतं हि तत्, अन्यथा हेतुरेव केवलोभिधीयेत ।
१५ ततस्तदभिधानान्यथानुपपत्तस्तद्विषयभूते सम्बन्धादौ विस्मरण-
संशयविपर्यासलक्षणः समारोपोस्तीत्यवगम्यते । तन्निराकरणा-
च्चास्याः प्रामाण्यमिति ।

अथेदानीं प्रत्यभिज्ञानस्य कारणस्वरूपप्रकरणार्थं दर्शनेत्या-
द्याह—

२० दर्शन-स्मरणकारणकं सङ्कलनं प्रत्यभिज्ञानम् ।

तदेवेदं तत्सदृशं तद्विलक्षणं तत्प्रतियोगीत्यादि ॥५

दर्शनस्मरणे कारणं यस्य तत्तथोक्तम् । सङ्कलनं विवक्षित-
धर्मयुक्तत्वेन प्रत्यैवमर्शनं प्रत्यभिज्ञानम् । ननु प्रत्यभिज्ञायाः प्रत्य-
क्षप्रमाणस्वरूपत्वात् परोक्षरूपतयात्रौभिधानमयुक्तम्; तथाहि—
२५ प्रत्यक्षं प्रत्यभिज्ञा अक्षान्वयव्यतिरेकानुविधानात् तदन्यप्रत्यक्ष-
वत् । न च स्मरणपूर्वकत्वात्तस्याः प्रत्यक्षत्वाभावः; सत्सम्प्रयोगज-
त्वेन स्मरणपञ्चाङ्गावित्वेऽप्यस्याः प्रत्यक्षत्वाविरोधात् । उक्तं च—

१ परपक्षप्रतिक्षेपं करोति दुरिः । २ ग्रहण । ३ अज्ञातस्यापि सत्त्वतिद्विधेय ।
४ ईश्वरादेरपि सत्त्वतिद्विप्रसङ्गात् । ५ विस्तृतसम्बन्धस्य । ६ अनुमानप्रवृत्तिः ।
७ वृत्तिपन्नाभावे षटोत्पत्तिप्रसङ्गात् । ८ साध्यसाधनविषये । ९ समारोपाभावे प्रति-
शेषः । १० यत्सत्तत्सर्वं क्षणिकं यथा जलधरः । ११ सम्बन्धस्मृतिहेतुभूतो दृष्टान्तो
यदि न स्यात् । १२ एकत्वसादृश्यादिलक्षण । १३ पुनर्ग्रहणम् । १४ नीर्मासकः ।
१५ परोक्षप्रमाणे । १६ सत्तो विद्यमानस्यार्थस्येन्द्रियेण सह संबन्धः सन्निकर्षलक्षणा-
ज्जातः सत्सम्प्रयोगजस्तस्य भावस्त्वस्यैव तेन ।

“न हि स्मरणतो र्यत्राक तत् प्रत्यक्षमितीदृशम् ।
वचनं राजकीयं वा लौकिकं चापि विद्यते ॥ १ ॥
न चापि स्मरणात्प्रधादिन्द्रियस्य प्रवर्त्तनम् ।
वार्यते केनचिन्नापि तत्तदानीं प्रदुष्यति ॥ २ ॥
तेनैन्द्रियार्थसम्बन्धात्प्रागूर्ध्वं चापि यत्स्मृतेः ।
विज्ञानं जायते सर्वं प्रत्यक्षमिति गम्यताम् ॥ ३ ॥”
[मी० श्लो० सू० ४ श्लो० २३४-२३७]

५

अनेकदेशकालावस्थ्यासमन्वितं सामान्यं द्रव्यादिकं च वस्त्वस्याः
प्रमेयमित्यपूर्वप्रमेयसद्भावः । तदुक्तम्—

“गृहीतमपि गोत्वादि स्मृतिरूपुष्टं च यद्यपि ।
तथापि व्यतिरेकेण पूर्वबोधात्प्रतीयते ॥ १ ॥
देशकालोदिभेदेन तत्रास्त्यवसरो मितेः ।
यः पूर्वमवगतोर्शः स न नाम प्रतीयते ॥ २ ॥
इदानीन्तनमस्तित्वं न हि पूर्वधिया गतम् ।”

१०

[मी० श्लो० सू० ४ श्लो० २३२-२३४]

१५

तदप्यसमीचीनम्; प्रत्यभिज्ञानेऽक्षान्वयव्यतिरेकानुविधानस्या-
सिद्धेः, अन्यथा प्रथमव्यक्तिदर्शनकालेऽप्यस्योत्पत्तिः स्यात् ।
पुनर्दर्शने पूर्वदर्शनेर्हितं संस्कारं प्रबोधोत्प्रेक्षस्त्वैतिसहायैमिन्द्रियं
तज्जनयति; इत्यप्यसाम्प्रतम्; प्रत्यक्षस्य स्मृतिनिरपेक्षत्वात् ।
तत्सापेक्षत्वेऽपूर्वार्थसाक्षात्कारित्वाभावः स्यात् ।

२०

देशकालेत्याद्यप्ययुक्तमुक्तम्; यतो देशादिभेदेनाप्यध्यक्षं चक्षुः-
सम्बद्धमेवार्थं प्रकाशयत्प्रतीयते । न च प्रत्यभिज्ञा तं प्रकाशयति
पूर्वोत्तरविवर्त्तवत्यैकत्वविषयत्वात्तस्याः । वैर्त्तमानश्चायं चक्षुः-
सम्बद्धः प्रसिद्धः ।

१ ज्ञानम् । २ स्मरणानन्तरमिन्द्रियमर्थग्रहणाय न प्रवर्त्तते इत्युक्ते आह ।
३ स्मरणोत्तरकालम् । ४ दुष्टं भवति । ५ राजकीयं लौकिकं वचनं न विद्यते येन ।
स्मरणादिन्द्रियस्य प्रवर्त्तनं वा केनचिद्वा न विचार्यते येन । इन्द्रियं वा दुष्टं न भवति येन
कारणेन । ६ प्रत्यक्षस्मरणगृहीतप्राहित्वात्प्रत्यभिज्ञानं प्रत्यक्षमप्रमाणं स्यादित्यारेक्षया-
त्माह । ७ तिर्यक्सामान्यम् । ८ आदिना गुणः । ९ भेदेन । १० स्मरणप्रत्यक्षरूपात् ।
११ कर्म पूर्वबोधोत्प्रेक्षेदेव प्रतीयते इत्युक्ते आह । १२ ज्ञानसाधेदेन । १३ प्रत्यभि-
ज्ञानलक्षणप्रत्यक्षमप्रमाणम् । १४ प्रत्यभिज्ञानलक्षणप्रत्यक्षम् । १५ पूर्वादिपर्यायः ।
१६ भाष । १७ यतः । १८ भासः । १९ यतः । २० तासः । २१ कासः ।
२२ वसः । २३ वसः । २४ सन्धिगवानैकान्तिकाले उद्भाषिते श्वं वाक्मं परिहारः ।

यदप्युच्यते-संरतः पूर्वदृष्टार्थानुसन्धानानुत्पद्यमाना मतिश्चक्षुः-
सम्बद्धत्वे प्रत्यक्षमिति; तदप्यसारम्; न हीन्द्रियमतिः स्मृति-
विषयपूर्वरूपग्राहिणी, तत्कथं सा तत्सन्धानमात्मसात्कुर्यात् ?
पूर्वदृष्टसन्धानं हि तत्प्रतिभासनम्, तत्सम्भवे चेन्द्रियमतेः
५ परोक्षार्थग्राहित्वात् परिस्फुटप्रतिभासता न स्यात् । यदि च
स्मृतिविषयस्वभावतया दृश्यमानोर्थः प्रत्यक्षप्रत्ययैरवगम्येत
तर्हि स्मृतिविषयः पूर्वस्वभावो वर्त्तमानतया प्रतिभातीति विप-
रीतख्यातिः सर्वे प्रत्यक्षं स्यात् । अन्वयवधानेन प्रतिभासनलक्षण-
वैशद्याभावाच्च न प्रत्यभिज्ञानं प्रत्यक्षम् इत्यलमतिर्प्रसङ्गेन ।

१० तच्च तद्वेदं तत्सदृशं तद्विलक्षणं तत्प्रतियोगीत्यादिप्रकारं
प्रतिपत्तव्यम् । तद्वैबोक्तप्रकारं प्रत्यभिज्ञानमुदाहरणद्वारेणाखिल-
जनावबोधार्थं स्पष्टयति—

यथा स एवायं देवदत्तः ॥ ६ ॥

गोसदृशो गवयः ॥ ७ ॥

१५ गोविलक्षणो महिषः ॥ ८ ॥

इदमस्माद्दूरम् ॥ ९ ॥

वृक्षोयमित्यादि ॥ १० ॥

ननु स एवायमित्यादि प्रत्यभिज्ञानं नैकं विज्ञानम्-‘सः’ इत्यु-
ल्लेखस्य स्मरणत्वात् ‘अयम्’ इत्युल्लेखस्य चाध्यक्षत्वात् । न चाभ्यां
२० व्यतिरिक्तं ज्ञानमस्ति यत्प्रत्यभिज्ञानशब्दाभिषेयं स्यात् । नाप्यन-
योरैक्यं प्रत्यक्षानुमानयोरपि तत्प्रसङ्गात् । स्पष्टेतररूपतया तयो-
र्भेदेऽत्रापि सोऽस्तु; तदसाम्प्रतम्; स्मरणप्रत्यक्षजन्यस्य पूर्वोच-
रविवर्तवर्त्यैकद्रव्यविषयस्य सङ्कलनज्ञानस्यैकस्य प्रत्यभिज्ञानत्वेन
सुप्रतीतत्वात् । न खलु स्मरणमेवातीतवर्त्तमानविवर्त्तवर्तिद्रव्यं
२५ सङ्कलयितुमले तस्यातीतविवर्त्तमात्रगोचरत्वात् । नापि दर्शनम्;

१ पुरुषस्य । २ प्रतिभासात् । ३ तर्कस्य प्रत्यक्षतापरिहारार्थमाह । ४ इन्द्रिय-
मतिः स्मृतिविषयरूपग्राहिणी न भवति इन्द्रियमतित्वादिसिद्धानुमाने सन्देहवानैक-
नितकत्वे परिहारे इदं वाक्यम् । ५ दृश्यमानार्थादिपरीतस्मृतिविषयो विपरीतख्यातिः ।
६ इत्यापयवे । ७ पूर्वस्मरणसुचरदर्शनं च व्यवधारकं प्रत्यभिज्ञानस्य । ८ प्रत्यभि-
ज्ञानभेदलक्षणप्रत्यक्षप्रमाणस्य निराकरणविखरेण । ९ प्रत्यभिज्ञानभेदं दर्शयति ।
१० प्रागुक्तलक्षणलक्षितमेव । ११ तेन स्पष्टं इत्यादि च । १२ अत्राह सौम्यतः ।

तस्य वर्तमानमात्रपर्यायविषयत्वात् । तदुभयसंस्कारजनितं कल्पना-
ज्ञानं तत्सङ्कलयतीति कल्पने तदेव प्रत्यभिज्ञानं सिद्धम् ।

प्रत्यभिज्ञानानभ्युपगमे च 'यत्सत्तत्सर्वं क्षणिकम्' इत्याद्यनु-
मानवैयर्थ्यम् । तद्व्येकत्वप्रतीतिनिरासार्थम् न पुनः क्षणक्षयप्रसि-
द्ध्यर्थं तस्याध्यक्षसिद्धत्वेनाभ्युपगमात् । समारोपनिषेधार्थं तत्; ५
इत्यप्यपेशलम्; सोयमित्येकत्वप्रतीतिमन्तरेण समारोपस्याप्यस-
म्भवात् । तदभ्युपगमे च 'अयं सः इत्यध्यक्षस्मरणव्यतिरेकेण
नापरमेकत्वज्ञानम्' इत्यस्य विरोधः । न चाध्यक्षस्मरणे एव समा-
रोपः; तेनानयोर्व्यवच्छेदेऽनुमानस्यानुत्पत्तिरेव स्यात् तत्पूर्वक-
त्वात्तस्य । कथं चास्याः प्रतिक्षेपेऽभ्यासेतरावस्थार्थां प्रत्यक्षानुमा- १०
नयोः प्रामाण्यप्रसिद्धिः? प्रत्यभिज्ञाया अभावे हि 'यदृष्टं यच्चानु-
मितं तदेव प्राप्तम्' इत्येकत्वाध्यवसायाभावेनानयोरविसंवादास-
म्भवात् । तथा च "प्रमाणमविसंवादि ज्ञानम्" [प्रमाणवा० २।१]
इति प्रमाणलक्षणप्रणयनमयुक्तम् । अन्यद् दृष्टमनुमितं वा प्राप्तं
चान्यदित्येकत्वाध्यवसायाभावेप्यविसंवादे प्रामाण्ये चानयोरभ्यु- १५
पगम्यमाने मरीचिकावक्रे जलज्ञानस्यापि तत्प्रसङ्गः ।

न चैवंवादिनो नैरात्म्यभावनाभ्यासो युक्तः फलमावात् । न
चात्मदृष्टिनिर्वृत्तिः फलम्; तस्या एवासम्भवात् । 'सोहम्' इत्य-
स्तीति चेत्; न; स्मरणप्रत्यक्षोल्लेखव्यतिरेकेण तदनभ्युपगमात् ।
तथा च कुतस्तन्निमित्ता रागादयो यतः संसारः स्यात्? २०

ननु पूर्वापरपर्याययोरेकत्वग्राहिणीं प्रत्यभिज्ञा, तस्य चासम्भ-
वात् कथमियमविसंवादिनी यतः प्रमाणं स्यात्? प्रत्यक्षेण हि
तृचद्रूपयोः प्रतीतिः सकालनियतार्थविषयत्वात्तस्य; इत्यपि मनोर-
थमात्रम्; सर्वथा क्षणिकत्वस्यैव निराकरिव्यमाणत्वात् । प्रत्यक्षे-
णाऽतृचद्रूपतयार्थप्रतीतिश्चानुभवत् कथं विसंवादकत्वं तस्याः? २५
ततः प्रमाणं प्रत्यभिज्ञा स्वगृहीतार्थाविसंवादित्वात् प्रत्यक्षादिषु ।
नीलाद्यनेकाकाराक्रान्तं चैकैज्ञानमभ्युपगच्छतः 'स एवायम्'
इत्याकारद्वयाक्रान्तैकज्ञाने को विद्वेषः?

१ उदुभयस्य कार्यः संस्कारः सौगताभिप्रायेण वा सता तेन जनितम् । २ प्रथम-
मेव विशारदः (क्षणक्षयिनः) परमाणवः प्रत्यक्षेण निक्षीयन्ते इति वचनात् ।
३ ग्रन्थस्य । ४ सिद्ध । ५ अर्थाव्यभिचारित्वमविसंवादः । ६ प्रमाणे अविसंवादि-
त्वादिति प्रसिद्धेत्तुमुत्तममेण प्रामाण्यमप्रसिद्धवर्गैः साध्यते इति प्रामाण्याविसंवा-
दयोर्भेदः । ७ जलम् । ८ अन्यल्लभिलार्थः । ९ प्रत्यभिज्ञानामावादिलेखनवादिनः ।
१० पक्षादारमदर्शनाभावः । ११ कुतः । १२ नदयद्रूपयोः । १३ चतुर्षपदि-
च्छेदे । १४ अन्यरूपतया । १५ परस्परतावात्म्येन ।

ननु स एवायमित्याकारद्वयं किं परस्परानुप्रवेशेन प्रतिभासते, अननुप्रवेशेन वा ? प्रथमपक्षेऽन्यतराकारस्यैव प्रतिभासः स्यात् । द्वितीयपक्षे तु परस्परविविकैप्रतिभासद्वयप्रसङ्गः । अथ प्रतिभासद्वयमेकाधिकरणमित्युच्यते; न; एकाधिकरणत्वासिद्धेः । न खलु ५ परोक्षापरोक्षरूपौ प्रतिभासावेकमधिकरणं विभ्राते सर्वैसंविदामेकाधिकरणत्वप्रसङ्गात् । इत्यप्यसारम्; तदाकारयोः कथञ्चित्परस्परानुप्रवेशेनात्माधिकरणतयात्मन्येवानुभवात् । कथं चैवंवादि-
नश्चित्रज्ञानसिद्धिः ? नीलादिप्रतिभासानां परस्परानुप्रवेशे सर्वेषामेकरूपतानुषङ्गात् कुतश्चित्रतैकनीलाकारज्ञानवत् ? तेषां तदन-
नुप्रवेशे भिन्नसन्ताननीलादिप्रतिभासानामिवात्यन्तभेदसिद्धेर्नि-
तरां चित्रताऽसम्भवः । एकज्ञानाधिकरणतया तेषां प्रत्यक्षतः प्रतीतेः प्रतिपादितदोषाभावे प्रकृतेष्यसौ मा भूचर्त एव ।

अथोच्यते—‘पूर्वमुत्तरं वा दर्शनमेकत्वेऽप्रवृत्तं कथं स्मरणस-
हायमपि प्रत्यभिज्ञानमेकैत्वे जनयेत् ? न खलु परिमलस्मरण-
सहायमपि चक्षुर्गन्धे ज्ञानमुत्पादयति’ इति; तदप्युक्तिमात्रम्; १५ तथा च तज्जनकैत्वस्यात्र प्रमाणप्रतिपन्नत्वात् । न च प्रमाणप्रति-
पन्नं वस्तुस्वरूपं व्यलीकविचारसदृशेणार्थान्यथाकर्तुं शक्यं सह-
कारिणा चाचिन्त्यशक्तित्वात् । कथमन्यथाऽसर्वज्ञज्ञानमभ्यास-
विशेषसहायं सर्वज्ञज्ञानं जनयेत् ? एकत्वविषयत्वं च दर्शन-
स्यैऽपि, अन्यथा निर्विषयकत्वमेवास्य स्यादेकान्ताऽनित्यत्वस्य
कदाचनान्यप्रतीतेः । केवलं तेनैकत्वं प्रतिनियतवर्तमानपर्या-
याधारतयार्थस्य प्रतीयते, स्मरणसहायप्रत्यक्षजनितप्रत्यभिज्ञानेन
तु स्मर्यमाणानुभूयमानपर्यायाधारतयेति विशेषः ।

न च लूनपुनर्जातनखकेशादिवत्सर्वत्र निर्विषया प्रत्यभिज्ञा;
२५ क्षणक्षयैकान्तस्यानुपलम्भात् । तदुपलम्भे हि सा निर्विषया
स्यात् एकचन्द्रोपलम्भे द्विचन्द्रप्रतीतिवत् । लूनपुनर्जातन-
खकेशादौ च ‘स एवायं नखकेशादिः’ इत्येकत्वपरामर्शेप्रत्यभि-
ज्ञानं ‘लूननखकेशादिसदृशोयं पुनर्जातनखकेशादिः’ इति साह-
स्यनिबन्धनप्रत्यभिज्ञानान्तरेण चाध्यमानत्वादप्रमाणं प्रसिद्धम्,
३० न पुनः साहस्यप्रत्यवमर्शि तत्रास्याऽषाध्यमानतया प्रमाणत्व-

१ उभयोर्मध्ये । २ एकज्ञानस्य । ३ विभ्र । ४ एकत्वद्वयिः स्वादिति दूषणम् ।
५ एकज्ञान । ६ जैनेः । ७ देवदत्तपदकादि । ८ द्रव्यपेक्षया । ९ एकाधि-
करणप्रतीतेः । १० प्रत्यक्षम् । ११ पूर्वोत्तरविषयवर्तमानत्वे । १२ दर्शनस्य ।
१३ प्रत्यक्ष । १४ अभावरूपत्वेन । १५ सहकारिणामचिन्त्यशक्तित्वं यदि न स्यात् ।
१६ न केवलं प्रत्यभिज्ञानस्य । १७ दर्शनमेकत्वविषयं यदि न स्यात् ।

प्रसिद्धेः । न चैकत्रैकत्वपरामर्शिप्रत्यभिज्ञानस्य मिथ्यात्वदर्शनात्सर्वत्रास्य मिथ्यात्वम्; प्रत्यक्षस्यापि सर्वत्र भ्रान्तत्वानुपेक्षाच्च किञ्चित्कुतश्चित्कस्यचित्प्रसिद्धेत् । ततो यथा शुक्ले शङ्के पीताभासं प्रत्यक्षं तत्रैव शुक्लाभासप्रत्यक्षान्तरेण बाध्यमानत्वादप्रमाणम्, न पुनः पीते कनकादौ तथा प्रकृतमपीति । ५

कथं च प्रत्यभिज्ञानविलोपेऽनुमानप्रवृत्तिः? येनैवं हि पूर्वधूमोऽग्नेर्दृष्टस्तस्यैव पुनः पूर्वधूमसदृशधूमदर्शनादग्निप्रतिपत्तिर्युक्ता नान्यस्यान्यदर्शनात् । न च प्रत्यभिज्ञानमन्तरेण 'तेनेदं सदृशम्' इति प्रतिपत्तिरस्ति; पूर्वप्रत्यक्षेणोत्तरस्य तत्प्रत्यक्षेण च पूर्वस्याग्रहणात्, द्वयप्रतिपत्तिनिवन्धनत्वादुभयसादृश्यप्रतिपत्तेः १० सैम्यन्धप्रतिपत्तिवत् । ततः प्रत्यभिज्ञा प्रमाणमभ्युपगन्तव्या ।

तदप्रामाण्यं हि गृहीतग्राहित्वात्, स्मरणानन्तरभावित्वात्, शब्दाकारधारित्वाद्वा, बाध्यमानत्वाद्वा स्यात्? न तावदाद्यविकल्पो युक्तः; न हि तद्विषयभूतमेकं द्रव्यं स्मृतिप्रत्यक्षग्राहमित्युक्तम् । तद्गृहीतातीतवर्त्तमानविवर्त्ततादात्म्येनावस्थितद्रव्यस्य १५ कथञ्चित्पूर्वार्थत्वेषु तद्विषयप्रत्यभिज्ञानस्य नाप्रामाण्यम्, लैङ्गिकादिरप्यप्रामाण्यप्रसङ्गात् तस्यापि सर्वथैवापूर्वार्थत्वासिद्धेः, सम्बन्धग्राहिविज्ञानविषयसार्ध्यादिसामान्यात् कथञ्चिदभिन्नस्यानुमेयस्य देशकालविशिष्टस्य तद्विषयत्वात् कथञ्चित्पूर्वार्थत्वसिद्धेः । तन्न गृहीतग्राहित्वाच्चत्राप्रामाण्यम् । २०

नापि स्मरणानन्तरभावित्वात्; रूपस्मरणानन्तरे रससञ्चिर्षिते समुत्पन्नरसज्ञानस्याप्यप्रामाण्यप्रसङ्गात् । तत्र हि रूपस्मृतेः पूर्वकालभावित्वात् समनन्तरकारणत्वं "बोधोद्बोधरूपता" [] इत्यभ्युपगमात् । न चात्र बोधरूपतया समनन्तरकारणत्वमन्यत्र स्मृतिरूपतयेत्यभिधातव्यम्; स्मृतिरूप-बोधरूपयोस्तादात्म्ये २५ क्वचिद्बोधरूपतया तत्तस्य क्वचित्तु स्मृतिरूपतयेति व्यवस्थापयितुमशक्तेः । कथं चैवंवैदिनोऽनुमानं प्रमाणम्? तद्वि लिङ्गलिङ्गि-

१ देवदत्तादावपि । २ किञ्चिद्वस्तु । ३ प्रमाणात् । ४ प्रतिपत्तुः । ५ अप्रतिषेधतः । ६ प्रकल्पनिवन्धनस्य सादृश्यनिवन्धनस्य च । ७ देवदत्तेन । ८ पद्मदत्तस्य । ९ विपक्षलक्षणप्रस्तरदर्शनात् । १० वृद्धत्वादिपर्यायस्य । ११ युवादिपर्यायस्य । १२ संयोगादि । १३ द्रव्यापेक्षया । १४ आदिना शब्दस्य । १५ तर्कं । १६ आदिना साधनम् । १७ जड्यादेः । १८ साक्षिण्ये । १९ स्मृतिरूपता बोधरूपता चास्ति स्मरणज्ञानस्य । २० स्मृतौ । २१ स्मरणानन्तरभावित्वाच्च प्रमाणं प्रत्यभिज्ञा इत्येवम् ।

सम्बन्धस्वरणानन्तरमेवोपजायते, अन्यथा साधर्म्यदृष्टान्तोप-
न्यासो व्यर्थः स्यात् ।

शब्दाकारधारित्वं च प्रागेव प्रतिषिद्धम् ।

बाध्यमानत्वं चासिद्धम्; न खलु प्रत्यक्षं तद्बाधकम्; तस्य
५ तद्विषयप्रवृत्त्यऽसम्भवात् । यद्धि यद्विषये न प्रवर्तते न तत्र तस्य
साधकं बाधकं वा यथा रूपज्ञानस्य रसज्ञानम्, न प्रवर्तते च
प्रत्यभिज्ञानस्य विषये प्रत्यक्षमिति । नाप्यनुमानं तद्बाधकम्;
प्रत्यभिज्ञानविषये तस्याप्यप्रवृत्तेः, क्वचिदनुमेयमात्रे प्रवृत्ति-
प्रसिद्धेः । तस्य तद्विषये प्रवृत्तौ वा सर्वथा बाधकत्वविरोधः ।
१० ततः प्रमाणं प्रत्यभिज्ञा सकलबाधकरहितत्वात्प्रत्यक्षादिवत् ।

ऐतेनैव 'गोसदृशो गवयः' इत्यौदि सादृश्यनिबन्धनं प्रत्यभि-
ज्ञानं प्रमाणमावेदितं प्रतिपन्नव्यम्, तस्यापि स्वविषये बाधवि-
धुरत्वस्य संवादकत्वस्य च प्रसिद्धेः ।

ननु सादृश्यस्यार्थेभ्यो मिश्रामिश्रादिविकल्पैर्विचार्यमाणस्यायो-
१५ गात्तद्विषयप्रत्यभिज्ञानस्य बाधविधुरत्वमविसंवादकत्वं चासि-
द्धम्; इत्यप्यास्तां तावत्, प्रत्यक्षादिप्रमाणविषयभूतत्वेनाबाधि-
ततत्स्वरूपस्य सामान्यसिद्धिप्रक्रमे प्रतिपादयिष्यमाणत्वात् । न
च तस्मिन्नेव स्वपुत्रादौ 'तादृशोयम्' इति प्रत्यभिज्ञानं सादृश्य-
निबन्धनं 'स एवायम्' इत्येकत्वनिबन्धनप्रत्यभिज्ञानेन बाध्य-
२० मानमप्रमाणं प्रतिपाद्य स्वपुत्रादिना सदृशे पुरुषे 'तादृशोयम्'
इत्यपि प्रत्यभिज्ञानमप्रमाणं प्रतिपादयितुं युक्तम्; तस्याबाध्य-
मानत्वेन प्रमाणत्वात् ।

स्यान्मतम्-प्रत्यभिज्ञानमनुमानत्वेन प्रमाणमिष्यत एवं;
तथाहि-पूर्वोत्तरार्थेक्षणयोरनर्थान्तरभूतं सादृश्यं तत्प्रत्यक्षाभ्यां
२५ प्रतीयत एव । यस्तु तथा प्रतिपद्यमानोपि सादृश्यव्यवहारं न
करोति घटविक्रमभूतलप्रतिपत्तावपि घटाभावव्यवहारं वैत,
स 'प्रागुपलब्धार्थसमनोयं तत्सदृशाकारोपलम्भोत्' इत्युभय-

१ ज्ञाने । २ शब्दाद्वैतनिराकरणे । ३ अन्त्यादौ । ४ एकत्वनिबन्धनप्रत्यभिज्ञान-
प्रमाणसमर्थनग्रन्थेन । ५ देवदत्तेन सदृशो यदुदत्त इत्यादि च । ६ आदिना
उभयग्रहणम् । ७ पुनः । ८ आदिनानुमानादि । ९ एकसिद्धम् । १० नौ-
सिद्धान्तोपपत्तम् । ११ योगवयलक्षणी पूर्वोपलब्धालमाविप्रलक्षसम्बन्धित्वेन पूर्वोत्तरार्थ-
क्षणी । १२ यथा घटमाने व्यवहारं न करोति साङ्ख्यः इत्यर्थः । १३ पूर्वदृष्टेन
व्यवहारादिना । १४ इत्यमानो देवदत्तादिः । १५ अयं इत्यमानो गवयो गोसदृशः
गोसदृशाकारत्वात्सो गवयप्रलक्षत्वे सति सादृश्यव्यवहारात् । १६ व्यक्तिसदृशत्वात् ।

गतसदृशाकारदर्शनेन तथा व्यवहारं कार्यते, इत्यानुपलम्भोप-
दर्शनेन घटाभावव्यवहारवत्; तदप्यसङ्गतम्; 'प्राकृतिपन्नधूम-
सदृशोयं धूमः' इत्यादिलिङ्गप्रत्यभिज्ञाज्ञानैस्य लैङ्गिकत्वे तल्लिङ्ग-
प्रत्यभिज्ञाज्ञानस्यापि लैङ्गिकत्वमित्यर्नवस्थाप्रसङ्गात् ।

किञ्च, अर्थे सादृश्यव्यवहारस्य सदृशाकारनिवन्धनत्वे सदृ-
शाकारेपि कुतस्तद्व्यवहारसिद्धिः ? अपरतद्गतसदृशधर्मदर्शना-
च्चेत्; अर्नवस्था । धर्मिसादृश्यव्यवहारे चान्योन्याश्रयः । तन्नर्थं
सादृश्यप्रत्यभिज्ञा लिङ्गजाभ्युपगन्तव्या ।

ननु गोदर्शनाहितसंस्कारस्य पुनर्गवयदर्शनाद्गवि स्मरणे सति
'अनेन समानः सः' इत्येवमाकारस्य ज्ञानस्योपमानरूपत्वान्न प्रत्य-
भिज्ञानता । सादृश्यविशिष्टो हि विशेषो विशेषविशिष्टं वा
सादृश्यमुपमानस्यैव प्रमेयम् । उक्तं च—

“तस्मादर्थैर्त्स्यते तत्स्यात्सादृश्येन विशेषितम् ।

प्रमेयमुपमानस्य सादृश्यं वा तदन्वितम् ॥ १ ॥

प्रत्यक्षेणावबुद्धेपि सादृश्ये गवि च स्मृते ।

विशिष्टैस्त्यैः सिद्धेरुपमानप्रमाणता ॥ २ ॥”

१५

[मी० श्लो० उपमान० श्लो० ३७-३८] इति ।

तदप्यसमीक्षिताभिधानम्; एकत्वसादृश्यप्रतीत्योः सङ्कल-
ना(न)ज्ञानरूपतया प्रत्यभिज्ञानतानतिक्रमात् । 'स एवायम्'
इति हि यथोत्तरपर्यायस्य पूर्वपर्यायेणैकताप्रतीतिः प्रत्यभिज्ञा, २०
तथा सादृश्यप्रतीतिरपि 'अनेन सदृशः' इत्यविशेषात् । पूर्वोत्तर-

१ अत्र घटो नास्ति इत्यत्वे सलनुपलम्भेति । २ इयं शिक्षणा पूर्वदृष्टशिक्षणस-
माना इति च । ३ लिङ्गरूपस्य । ४ अनुमानरूपत्वे अङ्गीक्रियमाणे । ५ तद्गतधर्मस्य ।
६ पर्वतधूमः पूर्वदृष्टधूमसदृशस्त्वसदृशाकारत्वात्सम्प्रतिपन्नधूमवत् । तत्सदृशाकारत्वेन
समानं सदृशाकारत्वात् सम्प्रतिपन्नसदृशाकारवत् । ७ गोगवयलक्षणम् । ८ गोगवयौ
सदृशौ सदृशाकारत्वादिबदत्तयवदत्तवत् । गोगवयाकारौ सदृशौ सादृशाकारत्वात् तद्वत् ।
द्वितीयौ आकारौ सादृशौ सदृशाकारत्वादित्यादि । ९ स्वादि । १० नीमासकः ।
११ पश्चात् । १२ गोलक्षणो धर्मो । १३ धर्मः । १४ इत्यमानात् । १५ गव-
यात् । १६ सर्वमाणम् । १७ वस्तु । १८ सर्वमाणगवान्वितम् । १९ उपमान-
स्यैवैतन्न यः पक्षकारस्त्वस्य सवादं दर्शयति । २० गवयगते । २१ सादृश्यविशिष्टस्य
गोत्सदृशित्वस्य वा साक्षादेः । २२ स्मरणप्रत्यक्षान्तरम् । २३ स्मरणप्रत्यक्षान्तरम्
सकाशादप्यनुपमानं ततः । २४ प्रत्यभिज्ञा । २५ सङ्कलनरूपवायाः ।

प्रत्ययवेद्यैकत्वगोचरत्वात्तस्याः प्रत्यभिज्ञानत्वे सादृश्यप्रतीतावपि तत्स्यात् । न हि तत्ताभ्यां न परिच्छिद्यते—

“वस्तुत्वे सति चास्यैवं सम्बन्धस्य च चक्षुषा ।

द्वयोरेकत्र वा द्वौ प्रत्यक्षत्वं न वार्यते ॥ १ ॥

सामान्यवच्च सादृश्यमेकैकत्र समाप्यते ।

प्रतियोगिन्यदृष्टेपि तत्तस्मादुपलभ्यते ॥ २ ॥”

[मी० श्लो० उपमान० श्लो० ३४-३५]

इत्यस्य विरोधालुपङ्गात् । यथा च पूर्वोत्तरप्रत्ययाभ्यां गवयग-
वादिविशिष्टमप्रतिपक्षं सादृश्यमनेन प्रतीयते तथा पूर्वोत्तरपर्या-
१० यविशिष्टमेकत्वं प्रत्यभिज्ञानेन ।

यदि च ‘एकत्वज्ञानमेव प्रत्यभिज्ञा सादृश्यज्ञानं तूपमानम्’
इत्यभ्युपगमः; तर्हि वैलक्षण्यज्ञानं किन्नाम प्रमाणं स्यात्? यथैव
हि गोदर्शनाहितसंस्कारस्य गवयदर्शिनः ‘अनेन समानः सः’
इति प्रतिपत्तिस्तथा महिष्यादिदर्शिनः ‘अनेन विलक्षणः सः’
१५ इति वैलक्षण्यप्रतीतिरप्यस्ति । सा च न प्रत्यभिज्ञोपमानयोरन्य-
तरा तदेकत्वसादृश्याविषयत्वात्, अतः प्रमाणान्तरं प्रमाण-
संख्यानियमविधातकृद्भवेत्परस्यै ।

ननु सादृश्याभावो वैलक्षण्यम्, तस्याभावप्रमाणविषयत्वाच्च
प्रमाणसंख्यानियमविधातः; तर्हि वैलक्षण्यमावः सादृश्यमिति
२० स पूर्व दोषः । नन्वेकस्यै समानधर्मयोगः सादृश्यम्, तत्कथं
वैलक्षण्यमावमभ्रं स्यादिति चेत्; तर्हि वैलक्षण्यमपि विसदृश-
धर्मयोगः, तत्कथं सादृश्याभावमात्रं स्यादिति समानम्?

एतेन ‘गौरिव गवयः’ इत्युपमानवाक्याहितसंस्कारस्य पुनर्वने
गवयदर्शनात् ‘अयं गवयशब्दवाच्यः’ इति संज्ञासंज्ञिसम्बन्धप्रति-

१ पूर्वोत्तरप्रत्ययवेद्यैकत्वविशेषात् । २ अन्यथा । ३ उक्तप्रकारेण मीमांसकग्रन्था-
पेक्षया सादृश्यस्य वस्तुत्वं कथमिति प्रश्ने अवयवसामान्ययोगप्रकारेण वस्तुत्वम् ।
४ गोगवयलक्षणयोर्विशेषयोः । ५ गवये वा । ६ प्रत्यक्षे सति । ७ एकत्र प्रत्यक्षत्वं
कथं न वार्यते इत्युक्ते आह । ८ अन्यथा । ९ प्रत्यावृत्ता अन्वेन एकत्व-
प्रतीतिवत्सादृश्यप्रत्यभिज्ञानस्यापि पूर्वोत्तरप्रत्ययवेद्यसादृश्यगोचरत्वमस्तीति समर्थितम् ।
१० अप्रतिपक्षं प्रतीयते । ११ प्रत्यभिज्ञानस्य उपमानस्य च । १२ वैलक्षण्यज्ञानं ।
१३ मीमांसकस्य । १४ वैलक्षण्यमावलक्षणसादृश्यस्याभावप्रमाणवेद्यत्वात् उपमान-
प्रमाणभावे सति । १५ गोगवयलक्षणार्थस्य । १६ गवयः । १७ सुष्ठुमावकरूपम् ।
१८ अवयवम् । १९ मीमांसकं प्रत्युपमानस्य प्रत्यभिज्ञानस्यसमर्भनपरेण अन्वेन ।
२० उपमानस्य । २१ गवयशब्दस्य । २२ गवयपिण्डस्य ।

पत्तिरुपमानमिति नैयायिकमतमपि प्रत्युक्तम् । यथैव ह्येकदा घट-
मुपलब्धवतः पुनस्तस्यैव दर्शने 'स एवायं घटः' इति प्रतिपत्तिः
प्रत्यभिज्ञा, तथा 'गोसदृशो गवयः' इति सङ्केतकाले गोसदृश-
गवयाभिधानयोर्वाच्यवाचकसम्बन्धं प्रतिपद्य पुनर्गवयदर्शनात्-
प्रतिपत्तिः प्रत्यभिज्ञा किञ्चेप्यते? न खलु पूर्वमप्रतिपत्तेः पूर्व-
दर्शनात्स्मृतिर्युक्ता, यतस्तथा प्रतिपत्तिः स्यात् ।

गोविलक्षणमहिष्यादिदर्शनाच्च 'अयं गवयो न भवति' इति
तैत्संज्ञासंज्ञिसम्बन्धप्रतिषेधप्रतिपत्तिश्च यद्युपमानम्—“प्रसिद्ध-
साधर्म्यात्साध्यसाधनमुपमानम्” [न्यायसू० १।१।६] इति व्याह-
न्येत । अथ प्रसिद्धार्थवैधर्म्यादपीर्ष्यते, तर्हि 'प्रसिद्धार्थवैधर्म्याच्च १०
साध्यसाधनमुपमानम्' इत्युपस्थानं सङ्गे कर्तव्यम् ।

किञ्च, प्रसिद्धार्थैकत्वात्साध्यसाधनमुपमानमित्यप्यभ्युपगम्य-
ताम् । तथा च प्रत्यभिज्ञानस्य प्रत्यक्षेन्तर्भावोऽयुक्तः ।

तथा स्वसमीपवर्तिप्रासादादिदर्शनोपजनितसंस्कारस्य तत्प्र-
तियोगिभूधराद्युपलम्भात् 'इदमस्माद्दरम्' इति प्रतिपत्तिः, १५
आमलकदर्शनाहितसंस्कारस्य विल्वादिदर्शनात् 'अतस्तत्सूक्ष्मम्'
इति, ह्रस्वदर्शनाविभूतसंस्कारस्य तद्विपरीतार्थोपलम्भात् 'अतोयं
प्रांशुः' इति च प्रतिपत्तिः किं नाम मौनं स्यात् ?

तथा वृक्षाद्यनभिज्ञो यदा कश्चित्कञ्चित्पृच्छति कीदृशो
वृक्षादिरिति ? स तं प्रत्याह—'शाखादिमान्वृक्ष एकशृङ्गो गण्ड- २०
कोऽष्टपादः शरभः चारुसटान्वितः सिंहः' इत्यादि । तैद्वाक्याहित-
संस्कारः प्रष्टा यदा शाखादिमतोर्थान् प्रतिपद्य 'अयं स वृक्षश-
ब्दवाच्यः' इत्यादिरूपतया तैत्संज्ञासंज्ञिसम्बन्धं प्रतिपद्यते तदा
किं नाम तैत्प्रमाणं स्यात् ? उपमानम्; इत्यसम्भाव्यम्; सर्वत्रो-
क्तप्रकारप्रतिपत्तौ प्रसिद्धार्थसाधर्म्यासम्भवात् । ततः प्रति- २५

१ ज्ञानवतः । २ आटविकाद् शाल्वा । ३ वाच्यवाचकसम्बन्धे । ४ गवयः ।
५ गोः । ६ ज्ञातार्थसम्बन्धसाधर्म्यात् । ७ गवयस्य । ८ साध्यस्य अयं गवयशब्द-
वाच्य इति सङ्घासङ्घिसम्बन्धस्य । ९ गवा । १० महिषस्य । ११ साध्यसाधनमुप-
मानम् । १२ गोगवयलक्षणेन । १३ महिषस्य । १४ साध्यस्य अयं गवयशब्दवाच्य
इति सङ्घासङ्घिसम्बन्धस्य । १५ गणना । १६ तन्नात्त्वेव भवदीये सङ्गे । १७ पूर्व-
पर्यायेण । १८ उत्तरपर्यायस्य । १९ स एवायमित्यादि । २० दूषणान्तरसमुच्चये ।
२१ कुञ्च । २२ प्रमाणम् । २३ पृच्छयमानपुरवस्य । २४ ते च ते सङ्घासंज्ञिनश्च,
शृङ्ग इति सङ्घा, शाखादियान् पदार्थैः सङ्घी । २५ अयं पृक्षशब्दवाच्य इत्यादिकात् ।
२६ इदमस्माद्दमित्यादौ च ।

नियतप्रमाणव्यवस्थामभ्युपगच्छता प्रतिपादितप्रकारा प्रतीतिः
प्रत्यभिज्ञैवेत्यभ्युपगन्तव्यम् ।

अथेदानीमूहस्योपलम्भेत्यादिना कारणस्वरूपे निरूपयति—

उपलम्भानुपलम्भनिमित्तं व्याप्तिज्ञानमूहः ॥११॥

- ५ उपलम्भानुपलम्भौ साध्यसाधनयोर्यथाक्षयोपशमं सैकृतं पुनः-
पुनर्वा दृढतरं निश्चयानिश्चयौ न भूयोदर्शनादर्शने । तेनैतान्द्रि-
यसाध्यसाधनयोरगमानुमाननिश्चयानिश्चयहेतुकसम्बन्धबोध-
स्वार्पि सद्गृह्यान्नाव्याप्तिः । यथा 'अस्त्यस्य प्राणिनो धर्मविशेषो
विशिष्टसुखादिसद्भावाव्यानुपपत्तेः' इत्यादौ, 'आदित्यस्य गम-
१० नशक्तिसम्बन्धोऽस्ति गतिमत्त्वान्यथानुपपत्तेः' इत्यादौ च । न
खलु धर्मविशेषः प्रवचनादन्यतः प्रतिपत्तुं शक्यः, नाप्यतोनुमा-
नादन्यतः कुतश्चित्प्रमाणादादित्यस्य गमनशक्तिसम्बन्धः साध्य-
त्वाभिमतः, साधनं वा गतिमत्त्वं देशादेशान्तरप्राप्तिमत्त्वानुमा-
नादन्यत इति । तौ निमित्तं यस्य व्याप्तिज्ञानस्य तत्तथोक्तम् ।
१५ व्याप्तिः साध्यसाधनयोरविनाभावः, तस्य ज्ञानमूहः ।

न च बालावस्थायां निश्चयानिश्चयाभ्यां प्रतिपन्नसाध्यसाधन-
स्वरूपस्य पुनर्वृद्धावस्थायां तद्विस्मृतौ तत्स्वरूपोपलम्भेव्यविना-
भावप्रतिपत्तेरभावात्तयोस्तदहेतुत्वम्; स्मरणोदेरपि तदहेतुत्वात् ।
भूयो निश्चयानिश्चयौ हि स्मर्यमाणप्रत्यभिज्ञायमानौ तत्कारण-
२० मिति स्मरणादेरपि तन्निमित्तत्वप्रसिद्धिः । मूलकारणत्वेन
तूपलम्भादेरज्ञोपदेशः, स्मरणादेस्तु प्रकृतत्वादेव तत्कारणत्व-
प्रसिद्धेरनुपदेश इत्यभिप्रायो गुरुणाम् ।

तच्च व्याप्तिज्ञानं तथोपपत्त्यन्यथानुपपत्तिभ्यां प्रवर्त्तत इत्युपद-
र्शयति—इदमस्मिन्नित्यादि ।

- १ प्रसिद्धायेन पूर्वप्रतिपन्नेन प्रासादादिना ज्ञात्वादिमान्वृक्ष इत्यादिवाक्येन ।
२ उत्सृष्टं तद्विलक्षणमित्यादिरूपा । ३ एकवारम् । ४ अस्मरानुपलम्भो भावान्तरो-
पलम्भोऽनिश्चयः । ५ प्रलक्षणे साध्यसाधनयोः । ६ उपलम्भानुपलम्भौ निश्चया-
निश्चयौ येन कारणेन । ७ तौ हेतू यस्य सम्बन्धबोधस्य । ८ प्रत्यक्षपूर्वकविश्वया-
निश्चययोः सद्गृहः अविज्ञानात् । ९ निश्चयानिश्चयहेतुकसम्बन्धबोधस्य सद्गृहः क
इत्युक्ते आह । १० अस्य प्राणिनोऽधर्मविशेषोऽस्ति दुःखादिसद्भावादित्यादौ च ।
११ चन्द्रो गमनशक्तियुक्तो गतिमत्त्वादित्यादौ च । १२ केवलमुपलम्भानुपलम्भयोः ।
१३ साध्यसाधनयोः । १४ आदिना. प्रत्यभिज्ञानम् । १५ अनुपलम्भस्य च ।
१६ स्ये । १७ प्रस्तुतत्वात् ।

इदमस्मिन् सत्येव भवति असति तु न भवत्येवेति ॥ १२ ॥

इदं साधनत्वेनाभिप्रेतं वस्तु, अस्मिन्साध्यत्वेनाभिप्रेते वस्तुनि सत्येव सम्भवतीति तथोपपत्तिः । अन्यथा साध्यमन्तरेण न भवत्येवेत्यन्यथानुपपत्तिः । वाशब्द उभयप्रकारसूचकः । ५

तौवेवोभयप्रकारौ सुप्रसिद्धव्यक्तिनिष्ठतया सुखावबोधार्थं प्रदर्शयति-

यथाग्नावेव धूमस्तद्भावे न भवत्येवेति च ॥१३॥

ननु चास्याऽप्रमाणत्वार्त्तिक कारणस्वरूपनिरूपणप्रयासेन; इत्यप्यसाम्प्रतम्; यतोस्याप्रामाण्यं गृहीतग्राहित्वात्, विसंवादि-१० त्वाद्वा स्यात्, प्रमाणविर्वैयपरिशोधकत्वाद्वा ? प्रथमपक्षे साध्यसाधनयोः साकल्येन व्याप्तिः प्रत्यक्षात् प्रतीयते, अनुमानाद्वा ? न तावत्प्रत्यक्षात्; तस्य सन्निहितमात्रगोचरतया देशादिवि-प्रकृष्टाशेषार्थालम्बनत्वानुपपत्तेः; तत्रास्य वैशद्यासम्भवाच्च । न खलु सत्त्वानित्यत्वाद्योऽग्निधूमाद्यो वा सर्वे भावाः सन्निधान-१५ वत् प्रत्यक्षे विशदतया प्रतिभान्ति, प्राणिमात्रस्य सर्वज्ञतापत्तेरनुमानानर्थक्यप्रसङ्गाच्च । अविचारकतया चाध्यक्षं 'यावान् कश्चिद्भूमः स सर्वोपि देशान्तरे कालान्तरे चाग्निजन्माऽन्यजन्मा वा न भवति' इत्येतावतो व्यापारान् कर्तुमसमर्थम् । पुरोव्यवस्थितार्थेषु प्रत्यक्षतो व्याप्तिं प्रतिपद्यमानः सर्वोपसंहारेण प्रति-२० पद्यते; इत्यप्यसुन्दरम्; अविर्वैये सर्वोपसंहारायोगात् ।

प्रत्यक्षपृष्ठभाविनो विकल्पस्यापि तद्विषयमात्राभ्यवसायत्वात् सर्वोपसंहारेण व्याप्तिग्राहकत्वाभावः; तथा चानिश्चितप्रतिबन्धकत्वाद्देशान्तरादौ साधनं साध्यं न गमयेत् ।

ननु कार्यं धूमो हुतैर्भुजः कार्यधर्मानुवृत्तितो विशिष्टप्रत्यक्षा-२१ नुपलम्भाभ्यां निश्चितः; स देशान्तरादौ तद्भावेपि भवन्स्तत्कार्य-

१ उल्लेखोपम् । २ तथोपपत्त्यन्यथानुपपत्तिरूपौ । ३ अनुमान । ४ अनिर्णय-रूपत्वात्तर्कस्यप्रामाण्यमित्यभिप्राये सत्याह । ५ क्षणिकत्व । ६ अन्यथेति श्रेयः । ७ निर्विकल्पकत्व परामर्शश्चेत्यत्वात् । ८ न विद्यते विचारः यावान्कश्चिद्भूमः स सर्वोपपक्षेरेव कार्यं नार्थान्तरयेति । ९ जनः । १० प्रत्यक्षत्व । ११ प्रत्यक्षतः सर्वोपसंहारे व्याप्तिप्रदणामावे च । १२ कर्तुं । १३ अनेः । १४ कार्यस्य धर्मः कारणे सति भवनलक्षणस्तद्भावे भववनलक्षणः ।

तामेवातिर्वर्त्तत, इत्याकौसिकोऽग्निनिवृत्तौ न कंचिदपि निव-
र्त्तत, नाप्यवश्यंतया तत्सद्भावे एव स्यादिति, अहेतोः खरवि-
षाणवत्तस्यासत्त्वात् कंचिदप्युपलम्भो न स्यात्, सर्वत्र सर्वदा
सर्वाकारेण चोपलम्भः स्यात् । स्वभावश्च 'तद्गतोर्थस्याभावेपि'
५ यदि स्यात्तदार्थस्य निःसभावत्वं स्वभावस्य वाऽसत्त्वं स्यात्,
तत्स्वभावतया चास्य कदाचिदप्युपलम्भो न स्यात् । उक्तञ्च—

“कार्यं धूमो हुतभुजः कार्यधर्मानुवृत्तितः ।

सम्भवंस्तदभावेपि हेतुमत्तां विलङ्घयेत् ॥”

[प्रमाणवा० १३५]

१०

“स्वभावेप्यविनाभावो भावमात्रानुबन्धिनि ।

तदभावे स्वयं भावस्याभावः स्योदमेदतेः ॥”

[प्रमाणवा० १४०] इति ।

व्याप्तिप्रतिपत्तावपि तन्निश्चयकालोपलब्धेनैव व्यापकेन
व्याप्यस्य व्याप्तिः स्यात् तस्यैव तथा निश्चयात्, न तौदशस्य ।
१५ तौदशस्यापि साध्यव्याप्तत्वग्रहणे तद्गाहिणो विकल्पस्यार्गुहीत-
ग्राहित्वं कथं न स्यात् ? यत्तु प्रत्यक्षेण कंचित्प्रदेशे साध्यव्याप्त-
त्वेन प्रतिपन्नं ततस्तस्यैतनुमाने विशेषतो हेतुनुमानं स्यात्,
अन्यदेशादिस्थसाध्येनास्याव्याप्तेः ।

पारिशेष्यात्तौदशेन व्यापकेनान्यत्र तादृशस्य व्याप्तिसिद्धिश्चेत्,
२० ननु किमिदं पारिशेष्यम्—प्रत्यक्षम्, अनुमानं वा ? न तावत्प्रत्य-
क्षम्; देशान्तरस्थस्यानुमेयस्य प्रत्यक्षेणाप्रतिपत्तेः, अन्यथानु-
मानानर्थक्यानुपपन्नः । नाप्यनुमानम्; तत्राप्यनुमानान्तरेण व्याप्ति-
प्रतिपत्तावनवस्थाप्रसङ्गात्, तेनैव तत्प्रतिपत्तावन्योन्याश्रयः ।

१ अतिक्रमेत् । २ अकारणकः । ३ भूवरप्रदेशे । ४ सत्त्वलक्षणहेतुर्न्याप्यः ।
५ स्वलक्षणो हेतुर्न्याप्यः । ६ अनित्यत्वलक्षणस्य साध्यस्य व्यापकस्य । ७ अनुया-
यिनि । ८ इति स्थितिः । ९ स्वभावस्य भावस्य वा । १० स्वभावस्य अर्थस्य वा ।
११ साध्यसाधनयोः । १२ स्वातन्त्र्येणानवस्थानाभावात्स्वभावस्य । १३ अविवेकादि-
त्वर्थः । १४ व्याप्तिसिद्धयकालोपलब्धस्य व्याप्यस्य साधनस्य । १५ साध्येन व्याप्तत्व-
प्रकारेण । १६ पूर्वदृष्टधूमसदृशस्य धूमस्य न तथा निश्चयः । १७ पूर्वदृष्टसदृशस्यापि
धूमस्य । १८ सादृश्यमगृहीतम् । १९ महानसे । २० साधनम् । २१ साध्यस्य ।
२२ विशेषतः खदिरादिरूपतया दृष्टस्य महानसादौ यादृशाग्निः प्रतिपन्नस्य भूपरसादौ
अनुमानस्य । २३ महानसस्याग्निसदृशेन । २४ भूपरनितम्बादौ २५ अथ धूमोयिना
व्याप्तौ धूमवान्महानसधूमवदिति ।

पत्नेन साध्यसाधनयोः साकल्येनानुमानाद्याप्तिप्रतिपत्तेस्तर्क-
स्याप्रामाण्यमिति प्रत्युक्तम् । तन्न प्रत्यक्षानुमानयोः साकल्येन
व्याप्तिप्रतिपत्तौ सामर्थ्यम् ।

अथास्मदादिप्रत्यक्षस्य व्याप्तिप्रतिपत्तावसामर्थ्येऽपि योगिप्रत्य-
क्षस्य तत् स्यात्; इत्यप्यसत्; तस्याप्यविचारकतया तावतो
व्यापारान् कर्तुमसमर्थत्वाविशेषात् । कुतश्चास्योत्पत्तिः-विकल्प-
मात्राभ्यासात्, अनुमानाभ्यासाद्वा? प्रथमपक्षे कामशोकादिज्ञान-
वत्तस्याप्रामाण्यप्रसङ्गः । द्वितीयपक्षेऽप्यन्योन्याभ्रयः-व्याप्तिविषये
हि योगिप्रत्यक्षे सत्यनुमानम्, तस्मिंश्च सति तदभ्यासाद्योगि-
प्रत्यक्षमिति । अस्तु वा योगिप्रत्यक्षम्; तथापि-तत्प्रतिपत्तायैष्व-
नुमानवैयर्थ्यम् । साध्यसाधनविशेषेषु स्पष्टं प्रतिभातेष्वपि
अनुमाने सर्वत्रानुमानानुषङ्गात् स्वरूपस्याप्यध्यक्षतोऽप्रसिद्धिः ।

परार्थं तस्यानुमानमिति चेत्; तर्हि योगी परार्थानुमानेन
गृहीतव्याप्तिकम्, अगृहीतव्याप्तिकं वा परं प्रतिपादयेत्? गृहीत-
व्याप्तिकं चेत्; कुतस्तेन गृहीता व्याप्तिः? न तावत्स्वसंवेदनेन्द्रिय-
मनोविज्ञानैः; तेषां तद्विषयत्वात् । योगिप्रत्यक्षेण व्याप्तिप्रति-
पत्तावनुमानवैयर्थ्यमित्युक्तम् । अगृहीतव्याप्तिकस्य च प्रतिपाद-
नानुपपत्तिरतिप्रसङ्गात् ।

मानसप्रत्यक्षाद्याप्तिप्रतिपत्तिरित्यन्ये; तेष्वतत्त्वज्ञाः; प्रत्यक्षस्ये-
न्द्रियार्थसन्निकर्षप्रभवत्वाभ्युपगमात् । अणुस्वभावमनसो युग-
पदशेषार्थस्तत्सम्बन्धस्य च प्रागेव प्रतिविहितत्वात् कथं तत्प्रत्य-
येनापि व्याप्तिप्रतिपत्तिः?

ननु साध्यसाधनैर्धर्मयोः क्वचिद्वाक्तिविशेषे प्रत्यक्षत एव
सम्बन्धप्रतिपत्तिः; इत्यप्युक्तम्; साकल्येन तत्प्रतिपत्त्यभावाजु-
पज्ञात् । साध्यं च किमग्निर्सामान्यम्, अग्निविशेषैः, अग्निसामान्य-
विशेषो वा? न तावदाग्निसामान्यम्; तदनुमाने सिद्धं साध्यर्था-
पत्तेः, विशेषतोऽसिद्धेर्धर्मैः? नाप्यग्निविशेषः; तस्यानन्वयात् ।

१ अनुमानेन व्याप्तिप्रक्षणेऽनवस्येत्तरेतराश्रयत्वनिरूपणपरेण ग्रन्थेन । २ तद्वा-
हिल्लिदस्याप्रामाण्यमित्यत्रासौ यो विकल्पः । ३ निर्विकल्पकत्वेन । ४ विकल्पस्या-
प्रमाणत्वेनाऽऽक्षीकरणात् । ५ उत्पन्ने । ६ स्वस्वरूपादौ । ७ भूभवनवार्द्धितोत्पित्तमपि
नर प्रतिपादयेत् । ८ योगाः । ९ तैरेव । १० अणुपरिमार्ण मनः । ११ ते पृथ-
धर्मौ । १२ अशितवसायान्यत् । १३ यत्र यत्र भूमस्तत्र तत्र खदिराशिमिति ।
१४ अशितवस । १५ साधनवैयर्थ्यमिति भावः । १६ तत्राविवादादद्याद्व्याप्तिग्रहणकाले
पमानस्य प्रसिद्धेः । कथमन्यथा साध्यसाधनयोर्व्याप्तिनिर्वाप्तिः स्यात् । १७ देशदिना ।
१८ अशितवस ।

अग्निसामान्यविशेषस्य साध्यत्वे तेन धूमस्य सम्बन्धः कथं सकल-
देशकालव्याप्त्याध्यक्षतः सिद्ध्येत्? तथा तत्सम्बन्धासिद्धौ च
यत्र यत्र यदा यदा धूमोपलम्भस्तत्र तत्र तदा तदाग्निसामान्य-
विशेषविषयमनुमानं नोदयमासादयेत् । न ह्यन्यथा सम्बन्ध-
५ ग्रहणमन्यथानुमानोत्थानं नाम, अतिप्रसङ्गात् । ततः सर्वाक्षेपेण
व्यासिग्राही तर्कः प्रमाणयितव्यः ।

ननु 'यावान्कश्चिद्धूमः स सर्वोप्यग्निजन्माऽनग्निजन्मा वा न
भवति' इत्यूर्हार्पोहविकल्पज्ञानस्य सम्बन्धग्राहिप्रत्यक्षफलत्वात्
प्रामाण्यम्; इत्यप्यसमीचीनम्; प्रत्यक्षस्य सम्बन्धग्राहित्वप्रतिषे-
१० धात् । तत्फलत्वेन चास्याऽप्रामाण्ये विशेषणहान्नफलत्वाद्विशेष्य-
ज्ञानस्याप्यप्रामाण्यानुषङ्गः । हानोपादानोपेक्षानुद्धिफलत्वात्तस्य
प्रामाण्ये च ऊहापोहज्ञानस्यापि प्रमाणत्वमस्तु सर्वथा विशेषी-
भावात् । तन्नास्यं गृहीतग्राहित्वादप्रामाण्यम् ।

नापि विसंवादित्वात्; स्वविषयेस्य संवादप्रसिद्धेः । साध्य-
१५ साधनयोरविनाभावो हि तर्कस्य विषयः, तत्र चाविसंवादकत्वं
सुप्रसिद्धमेव । कथमन्यथानुमानस्याविसंवादकत्वम्? न खलु
तर्कस्यानुमाननिबन्धनसम्बन्धे संवादाभावेऽनुमानस्यासौ घटते ।

ननु चास्य निश्चितः संवादो नास्ति विप्रकृतार्थविषयत्वात्;
तदसत्; तर्कस्य संवादसन्देहे हि कथं निस्सन्देहानुमानोत्था-
२० नम्? तदभावे च कथं सामस्येन प्रत्यक्षस्याप्रामाण्यव्यवच्छेदेन
प्रामाण्यप्रसिद्धिः? ततो निस्सन्देहमनुमानमिच्छता साध्यसा-
धनसम्बन्धग्राहि प्रमाणमसन्दिग्धमेवाभ्युपगन्तव्यम् ।

समारोपव्यवच्छेदकत्वाच्चास्य प्रामाण्यमनुमानवत् ।

प्रमाणविषयपरिशोधकत्वान्नोर्हः प्रमाणम्; इत्यपि वार्त्तम्;
२५ प्रमाणविषयस्याप्रमाणेन परिशोधनविरोधात् मिथ्याज्ञानवत्प्र-
मेयार्थवच्च । प्रयोगः-प्रमाणं तर्कः प्रमाणविषयपरिशोधकत्व-
दनुमानोदिवत् । यस्तु न प्रमाणं स न प्रमाणविषयपरिशोधकः

१ अग्निसामान्यविशेषेण । २ देशान्तरकालान्तरसम्बन्धिभवेन । ३ अह्यविना-
भूतधूमोपलम्भानुमानोत्पत्तिप्रसङ्गात् । ४ स्त्रीकारेण । ५ अन्यथ । ६ व्यतिरेक ।
७ साकल्येन । ८ दण्डज्ञान । ९ दण्डि । १० अनुमानलक्षणफलसङ्गात्वात् ।
११ तर्कस्य । १२ साकल्येन । १३ तर्कस्य अविसंवादकत्वं सुप्रसिद्धं यदि न स्यात् ।
१४ विषये । १५ प्रत्यक्षं प्रमाणमविसंवादकत्वादिति । १६ तर्कस्य संवादसन्देहे
निस्सन्देहानुमानोत्थानं न स्यात्ततः । १७ तर्कः । ८ अनुमान । ९ तर्कः ।
२० दूरस्थितसार्थस्य प्रत्यक्षविषयस्य यथानुमान परिशोधकम् ।

यथा मिथ्याज्ञानं प्रमेयो वार्थः, प्रमाणविषयपरिशोधकश्चायम्, तस्मात्प्रमाणम् ।

तथा, प्रमाणं तर्कः प्रमाणानामनुग्राहकत्वात्, यत्प्रमाणानामनुग्राहकं तत्प्रमाणम् यथा प्रवचनानुग्राहकं प्रत्यक्षमनुमानं वा, प्रमाणानामनुग्राहकश्चायमिति । न चायमसिद्धो हेतुः, ५ प्रमाणानुग्रहो हि प्रथमप्रमाणप्रतिपन्नार्थस्य प्रमाणान्तरेण तथैवावसायः, प्रतिपत्तिदार्ढ्यविधानात् । स चात्रास्ति प्रत्यक्षादिप्रमाणेनावगतस्य देशतः साध्यसाधनसम्बन्धस्य दृढतरमनेनावगमात् । ततः साध्यसाधनयोरविनाभावावबोधनिवन्धनमूहज्ञानं परीक्षादक्षैः प्रमाणमभ्युपगन्तव्यम् । १०

न चोहः सम्बन्धज्ञानजन्मा यतोऽपरापरोहानुसरणावनवस्था स्यात् ; प्रत्यक्षानुपलम्भजन्मत्वात्तस्य । स्वयोग्यताविशेषवशाच्च प्रतिनियतार्थव्यवस्थापकत्वं प्रत्यक्षवत् । प्रत्यक्षे हि प्रतिनियतार्थपरिच्छेदो योग्यतात एव न पुनस्तदुत्पत्त्यादेः, ततस्तत्परिच्छेदकत्वस्य प्राक्प्रतिषिद्धत्वात् । योग्यताविशेषः पुनः प्रत्यक्षस्यैवास्य १५ स्वविषयज्ञानावरणवीर्यान्तरायक्षयोपशमविशेषः प्रतिपत्तव्यः ।

ननु यथा तर्कस्य स्वविषये सम्बन्धग्रहणनिरपेक्षा प्रवृत्तिस्तथानुमानस्याप्यस्तु सर्वत्र ज्ञाने स्वावरणक्षयोपशमस्य स्वार्थप्रकाशनहेतोरविशेषात्, तथा चानर्थकं सम्बन्धग्रहणार्थं तर्कपरिकल्पनम्; तदप्यसमीचीनम्; यतोऽनुमानस्याभ्युपगम्यत एव २० स्वयोग्यताग्रहणनिरपेक्षमनुमेयार्थप्रकाशनम्, उत्पत्तिस्तु लिङ्गलिङ्गिसम्बन्धग्रहणनिरपेक्षा नास्ति, अगृहीततत्सम्बन्धस्य प्रतिपत्तुः क्वचित्कदाचित्तदुत्पत्त्यप्रतीतिः । न च प्रत्यक्षस्याप्युत्पत्तिः कैरणार्थसम्बन्धग्रहणापेक्षा प्रतिपत्ता; स्वयमगृहीततत्सम्बन्धस्यापि प्रतिपत्तुस्तदुत्पत्तिप्रतीतिः । तद्ब्रह्मस्यपि स्वार्थसम्बन्ध- २५ ग्रहणानपेक्षस्योत्पत्तिप्रतिपत्तेर्नोत्पत्तौ सम्बन्धग्रहणापेक्षा शुक्तिमतीत्यनर्थवद्यम् ।

अथेदानीमनुमानलक्षणं व्याख्यातुकामः साधनादित्याद्याह—

१ प्रत्यक्ष । २ दूरसगलक्षणस्य । ३ द्वितीयप्रत्यक्षेण । ४ एकदेशतः । ५ निश्चयात् । ६ यथानुमानं साध्यसाधनसम्बन्धमाहितर्कपूर्वकमूहोपि तथा स्यात्, तथा चानवसाय इत्युक्ते आह । ७ धूमधूमज्जविषय एक एवोहः सकलानुमानव्यवस्थापकः कुतो न स्वादित्युक्ते आह । ८ तस्य अर्थस्य । ९ स्वस्यानुमानस्य कारणभूता योग्यता । १० अपिशब्देनानुमानस्य सङ्ग्रहः । ११ इन्द्रिय । १२ घटादि । १३ स्वमालीयं तर्कमुपलम्भानुपलम्भौ अर्थ इति सम्बन्धः, अथवा उपलम्भानुपलम्भयोश्च सम्बन्धः । १४ न्यासिज्ञानस्य कारणस्वरूपनिरूपणम् । १५ स्वरूपम् ।

साधनात्साध्यविज्ञानमनुमानम् ॥ १४ ॥

साध्याऽभावाऽसम्भवनियमनिश्चयलक्षणात् साधनादेव हि शक्याऽभिप्रेतौप्रसिद्धत्वैलक्षणस्य साध्यस्यैव यद्विज्ञानं तदनुमानम् । प्रोक्तविशेषणयोरन्यतरस्याप्यपाये ज्ञानस्यानुमानत्वा-
५ सम्भवात् ।

ननु चास्तु साधनात्साध्यविज्ञानमनुमानम् । तत्तु साधनं निश्चितपक्षधर्मत्वादिरूपत्रययुक्तम् । पक्षधर्मत्वं हि तस्यासिद्धत्वव्यवच्छेदार्थं लक्षणं निश्चीयते । सपक्ष एव सत्त्वं तु विरुद्धत्वव्यवच्छेदार्थम् । विपक्षे चासत्त्वमेव अनैकान्तिकत्वव्यवच्छि-
१० त्तये । तदनिश्चये साधनस्यासिद्धत्वादिदोषत्रयपरिहारासम्भवात् । उक्तञ्च—

“हेतोस्त्रिष्वपि रूपेषु निर्णयस्तेर्न वर्णितः ।

असिद्धविपरीतार्थव्यभिचारिविपक्षतः ॥” [प्रमाणवा०

१।१६] इत्याशङ्क्याह—

१५ साध्याविनाभावित्वेन निश्चितो हेतुः ॥ १५ ॥

असाधारणो हि स्वभावो भावस्य लक्षणमव्यभिचारद्वेषै-
ष्यवत् । न च त्रैरूप्यस्यासाधारणता; हेतौ तदाभासे च तत्सम्भवात्पञ्चरूपत्वादिवत् । असिद्धत्वादिदोषपरिहारश्चास्य
अन्यथानुपपत्तिनियमनिश्चयलक्षणत्वादेव प्रसिद्धः, स्वयमसिद्ध-
२० स्थान्यथानुपपत्तिनियमनिश्चयासम्भवाद् विरुद्धानैकान्तिकवत् ।

किञ्च, त्रैरूप्यमात्रं हेतोरलक्षणम्, विशिष्टं वा त्रैरूप्यम् ? तत्राद्यविकल्पे धूमवत्त्वादिषड्कृत्वादावप्यस्य सम्भवात्कथं तल्लक्षणत्वम् ? न खलु ‘बुद्धोऽसर्वज्ञो वक्तृत्वादे रथ्यापुरुषवत्’ इत्यत्र हेतोः पक्षधर्मत्वादिरूपत्रयसद्भावे परैर्गमकत्वमिष्यतेऽन्यथानुप-
२५ पन्नत्वविरहात् । द्वितीयविकल्पे तु कुतो वैशिष्ट्यं त्रैरूप्यस्यान्यत्रान्यथानुपपत्तिनियमनिश्चयात्, इति स एवास्य लक्षणमर्क्ष्यं परीक्षादक्षैरुपलक्ष्यते । तद्भावे पक्षधर्मत्वाद्यभावेपि ‘उदे-

१ शक्यं=मलक्षणवाधितम् । २ अभिमतम्=इष्टम् । ३ अप्रसिद्धत्वम्=असिद्धम् ।

४ यतः । ५ साध्यसाधनयोः । ६ साध्यस्य साधनस्य ना । ७ सपक्षे एव सत्त्वं-मित्युच्यमाने विपक्षे धकदेवेन सत्त्वनिवृत्तिः सात् । तद्व्यवच्छेदार्थं साध्येन विपक्षे हेतोरसत्त्वं यथा सादिति विपक्षे चासत्त्वं चेत्युक्तम् । ८ दिग्भागेन । ९ पक्षे एव विपक्षाल्लेभ्यस्ततः । १० स्वरूपेण । ११ यतः । १२ साक्षिः । १३ अनुमाने । १४ नोदेः । १५ वर्जने । १६ परिपूर्णम् ।

व्यति शकटं कृत्तिकोदयात्' इत्यादेर्गमकत्वेन वक्ष्यमाणत्वात्, सपक्षे सत्त्वरहितस्य च श्रावणत्वादेः शब्दानित्यत्वे साध्ये गमकत्वप्रतीतिः ।

ननु नित्यादाकाशादेर्विपक्षादिषु सपक्षादप्यनित्याद् घटादेः सतो व्यावृत्तत्वेन श्रावणत्वादेरसाधारणत्वादनैकान्तिकता; तद-^५ सत्यम्; असाधारणत्वस्यानैकान्तिकत्वेन व्यैत्यऽसिद्धेः । सपक्ष-विपक्षयोर्हि हेतुरंसत्वेन निश्चितोऽसाधारणः, संशयितो वा? निश्चितश्चेत्; कथमनैकान्तिकः? पक्षे साध्याभावेन्युपपद्यमानतया निश्चितत्वेन संशयहेतुत्वाभावात् ।

श्रावणत्वं हि श्रावणज्ञानग्राह्यत्वम्, तज्ज्ञानं च शब्दादात्मानं १० लभमानं तस्य ग्राहकम् नान्यथा, "नाकारणं विषयः" [] इत्यभ्युपगमात् । शब्दश्च नित्यस्तज्जननैकस्वभावो यदि; तर्हि श्रावणप्रणिधानात्पूर्वं पश्चाच्च तज्ज्ञानोत्पत्तिप्रसङ्गः । न ह्यविकले कारणे कार्यस्यानुत्पत्तिर्युक्ता अतर्कार्यत्वप्रसङ्गात् । प्रयोगः-यस्मिन्नविकले सत्यपि यन्न भवति न तत्तत्कार्यम् यथा सत्यप्य-^{१५} विकले कुलाले अभवन्पटो न तत्कार्यः, सत्यपि शब्दे पूर्वं पश्चाच्चाविकले न भवति च तज्ज्ञानमिति । ननु च श्रोत्रप्रणिधानात्पूर्वं पश्चाच्च तज्ज्ञानजननैकस्वभावोपि शब्दस्तन्न जनयत्यावृत्तत्वात्; तदप्यसङ्गतम्; आवरणं हि द्रष्टृदृश्ययोरेतराले वर्तमानं वस्तु लोके प्रसिद्धम्, यथा काण्डेपटादिकम् । श्रोत्र-^{२०} शब्दयोश्च व्यापकत्वे सर्वत्र सर्वदा तत्करणैकस्वभावयोरत्यन्त-संनिष्ठयोः किं नामान्तराले वर्त्तते? वृत्तौ वा तयोर्व्यापकत्व-व्याघातः, तदषष्ट्यधदेशपरिहारेणानयोर्वर्तनादिति 'आसवच-नादिनिबन्धनमर्थज्ञानमागमः' (परीक्षामु० ३।१००) इत्यत्र विस्तरैर्ण विचारयिष्यामः । तन्नास्याऽऽवृत्तत्वात्तज्ज्ञानाजनकत्वं ^{२५} किन्त्वसत्त्वादेव, इति श्रावणत्वादेः सपक्षविपक्षाभ्यां व्यावृत्तत्वेपि पक्षे साध्याविनाभावित्वेन निश्चितत्वाद्गमकत्वमेव । न च सपक्षविपक्षयोरसत्त्वेन निश्चितः पक्षे साध्याविनाभावित्वेन निश्चेतुमशक्यः; सर्वानित्यत्वे साध्ये सत्त्वादेरहेतुत्वप्रसङ्गात् ।

१ शब्दत्वादेव । २ विषयानात् । ३ यद्यदसाधारणं तत्तदनैकान्तिकमिति । ४ शब्दे । ५ अनित्यत्वस्य । ६ श्रावणत्वहेतोः । ७ साध्याभावे अनुपपद्यमानतया निश्चितत्वं हेतोः कथमित्युक्ते आह । ८ पक्षाप्रतायाः । ९ शब्दप्रसङ्गे । १० श्रावण-ज्ञानस्य । ११ श्रावणज्ञानं शब्दकार्यं न भवति शब्देऽविकले सति पूर्वं पश्चाच्चाविकले-मानत्वात् । १२ आवरणकनायुनिः । १३ द्रष्टृदृश्ययोः । १४ मध्ये । १५ वस्तुविशेषः । १६ आवरणभावं । १७ शब्दस्य । १८ हेतुः । १९ सर्वमनित्यं सत्त्वादिति ।

न खलु सत्त्वादिर्विपक्ष एवासत्त्वेन निश्चितः, सपक्षेपि तदसत्त्व-
निश्चयात् ।

सपक्षस्याभावात्तत्र सत्त्वादेरसत्त्वनिश्चयाच्चिश्चयहेतुत्वम्, न
पुनः श्रावणत्वादेः सङ्गावेपीति चेत्; ननु श्रावणत्वादिरपि यदि
५ सपक्षे स्यात्तदा तं व्याप्त्यादेवेति समानान्तर्व्याप्तिः । सति विपक्षे
धूमादिश्चासत्त्वेन निश्चितो निश्चयहेतुर्मा भूत् । विपक्षे सत्यसति
चासत्त्वेन निश्चितः साध्याविनाभावित्वाद्धेतुरेवेति चेत्; तर्हि
सपक्षे सत्यसति चासत्त्वेन निश्चितो हेतुरस्तु तत एव । नन्वेवं
सपक्षे तदेकदेशे वा सन्कथं हेतुः? 'सपक्षेऽसत्त्वेव हेतुः' इत्यनव-
१० धारणात् । विपक्षेपि तदसत्त्वानवधारणमस्तु; इत्ययुक्तम्; साध्या-
विनाभावित्वव्याधातानुषङ्गात् ।

यदि पुनः सपक्षविपक्षयोरसत्त्वेन संशयितोऽसाधारण इत्यु-
च्यते; तदा पक्षत्रयवृत्तितया निश्चितया संशयितया वाऽनै-
कान्तिकत्वं हेतोरित्यायातम् । न च श्रावणत्वाद्वा सास्तीति
१५ गमकत्वमेव । विरुद्धताप्येतेन प्रत्युक्ता । यो हि विपक्षैकदेशेपि
न वर्त्तते, स कथं तत्रैव वर्त्तते? असिद्धता तु दूरोत्सारितैव,
श्रावणत्वस्य शब्दे सत्त्वनिश्चयात् । तत्र पक्षधर्मत्वं सपक्षे सत्त्वं
वा हेतोर्लक्षणम् ।

विपक्षे पुनरसत्त्वमेव निश्चितं साध्याविनाभावनियमनिश्चय-
२० स्वरूपमेव । इति तदेव हेतोः प्रधानं लक्षणमस्तु किमत्र लक्षण-
न्तरेण? न च सपक्षे सत्त्वाभावे हेतोरनन्वयत्वानुपपन्नः; अन्त-
र्व्याप्तिलक्षणस्य तथोपपत्तिरूपस्यान्वयस्य सङ्गावादन्वयानुप-
पत्तिरूपव्यतिरेकवत् । न खलु दृष्टान्तधर्मिण्येव साधर्म्यं वैधर्म्यं
वा हेतोः प्रतिपत्तव्यमिति नियमो युक्तः; सर्वस्य क्षणिकत्वादि-
२५ साधने सत्त्वादेरहेतुत्वप्रसङ्गात् ।

१ नित्ये । २ निश्चयहेतुत्वम् । ३ सपक्षस्य । ४ सपक्षेऽसत्त्वनिश्चयादिति शेषः ।
५ सपक्षे (पक्षे) । ६ श्रावणत्वादेः सति विपक्षे तत्रासत्त्वेन निश्चितस्य स्वसाध्यसाधकत्वे
अङ्गीक्रियमाणे । ७ पक्षे । ८ स्वसाध्यस्य । ९ सति विपक्षे असत्त्वाविवेकात् ।
१० हेतुः । ११ सपक्षे असत्त्वेन निश्चितस्य हेतुत्वप्रकारेण । १२ चेतनास्वरवः
स्वापादिमत्त्वात् सत्त्वादिति हेतुः सिद्धेषु न प्रवर्त्तते अन्यत्र प्रवर्त्तते । १३ नित्ये ।
१४ न केवलं सपक्षे । १५ अनैकान्तिकत्वनिराकरणपरेण अन्येन । १६ पक्ष-
धर्मत्वसपक्षेसत्त्वलक्षणेन । १७ पक्षे एव । १८ अन्यतः । १९ व्यतिरेकः ।
२० दृष्टान्तस्यासत्त्वात् ।

नेनु त्रैरूप्यं हेतोर्लक्षणं मा भूत् 'पक्वान्येतानि फलान्येकशाखा-
प्रभवत्वादुपयुक्तफलवत्' इत्यादौ 'मूर्खोयं देवदत्तस्तत्पुत्रत्वादि-
तरतत्पुत्रवत्' इत्यादौ च तदामासेपि तत्सम्भवात् । पञ्चरूपत्वं
तु तल्लक्षणं युक्तमेवानवद्यत्वात्, एकशाखाप्रभवत्वस्यावाधित-
विषयत्वासम्भवाद् आत्मताग्राहिप्रत्यक्षेणैव तद्विषयस्य बाधित-
त्वात्, तत्पुत्रत्वादेश्चासत्प्रतिपक्षत्वार्भावात् तत्प्रतिपक्षस्य शास्त्र-
व्याख्यानादिलिङ्गस्य सम्भवात् ।

प्रकरणसमस्याप्यसत्प्रतिपक्षत्वाभावाद्हेतुत्वम् । तस्य हि
लक्षणम् "र्यसात् प्रकरणचिन्ता स प्रकरणसमः" । [न्यायसू०
१।२।७] इति । प्रक्रियेते साध्यत्वेनाधिक्रियेते अनिश्चितौ पक्ष- १०
प्रतिपक्षौ यौ तौ प्रकरणम् । तस्य चिन्ता संशयात्प्रभृत्याऽऽनिश्च-
यात्पर्यालोचना र्यतो भवति स एव, तन्निश्चयार्थं प्रयुक्तः प्रकरण-
समः । पक्षद्वयेप्यर्थ्यं समानत्वाद्धैमयत्राप्यन्वयादिसङ्गावात् ।
तर्था-अनित्यः शब्दो नित्यधर्मानुपलब्धेर्घटादिवत्, यत्पुन-
र्नित्यं तन्नानुपलभ्यमाननित्यधर्मकम् यथात्मादि एवमेकेनान्य- १५
तैरानुपलब्धेरनित्यत्वसिद्धौ साधकत्वेनोपन्यासे सति द्वितीयः
प्राह-यद्यनेन प्रकारेणानित्यत्वं प्रसाध्यते तर्हि नित्यतासिद्धि-
रप्यस्त्वऽन्यतरानुपलब्धेस्तत्रापि सङ्गावात् । तथा हि-नित्यः
शब्दोऽनित्यधर्मानुपलब्धेरत्मादिवत्, यत्पुनर्न नित्यं तन्नानुप-
लभ्यमानाऽनित्यधर्मकम् यथा घटादिः

२०

इत्यप्यविचारितरमणीयम्; साध्याविनाभावित्वव्यतिरेकेणाप-
रस्याबाधितविषयत्वादेरसम्भवात् तदेव प्रधानं हेतोर्लक्षणमस्तु
किं पञ्चरूपप्रकल्पनया ? नै च प्रमाणप्रसिद्धत्रैरूप्यस्य हेतोर्विषये
वाधा सम्भवति; अनयोर्विरोधात् । साध्यसङ्गावे एव हि हेतो-

१ यौगः । २ अक्षितः । ३ स इयामस्तत्पुत्रत्वादित्यादौ च । ४ अनुगोक्षि-
द्रंभत्वाज्जलवत् इति च । ५ साध्यस्य । ६ तत्पुत्रो विद्वान् शास्त्रव्याख्यानसङ्गा-
वात् । ७ तत्पुत्रत्वादिति हेतोः । ८ हेतोः । ९ स्त्रीक्रियेते । १० वादिना यः
पक्षो निश्चितः स प्रतिवादिना अनिश्चितः । यः प्रतिवादिना निश्चितः स वादिना न
निश्चितः । ११ वादिप्रतिवादिभ्याम् । १२ वापकादिभ्ये । १३ आ मर्त्यादायाम् ।
१४ हेतोः । १५ हेतुः । १६ हेतोः । १७ पक्षधर्मत्वादि । १८ सपक्षधर्मत्वादि ।
१९ तथा हि । २० नित्यत्व । २१ यौगेन । २२ अनित्यधर्मस्य । २३ गीर्मांसकः ।
२४ असत्प्रतिपक्षत्वस्य च । २५ यौगमतमालम्ब्य सूतिभिरुच्यते । २६ वतः ।
२७ किं त्रैरूप्यं का च वाधा कथं च तयोर्विरोध इत्युक्ते आह ।

धर्मिणि सद्भावस्त्रैरूप्यम्, तदभावे एव च तत्र तत्सम्भवो बाधा,
भावाभावयोश्चैकत्रैकस्य विरोधः ।

किञ्च, आध्यक्षागमयोः कुतो हेतुविषयबाधकत्वम्? स्वार्थ-
(र्था)व्यभिचारित्वाच्चेत्; हेतौवपि सति त्रैरूप्ये तत्समानमित्यसा-
५ वप्यनयोर्विषये बाधकः स्यात् । इदयते हि चन्द्रार्कादिस्वैर्यब्राह्मण-
ध्यक्षं देशान्तरप्राप्तिलिङ्गप्रभवानुमानेन बाध्यमानम् । अथैक-
शाखाप्रभवत्वाद्यनुमानस्य भ्रान्तत्वाद्वाध्यत्वम् । कुतस्तद्भ्रान्त-
त्वम्-अध्यक्षवाध्यत्वात्, त्रैरूप्यवैकल्याद्वा? प्रथमपक्षेऽन्योन्वा-
श्रयः-भ्रान्तत्वेऽध्यक्षवाध्यत्वम्, ततश्च भ्रान्तत्वमिति । द्वितीय-
१० पक्षस्त्वयुक्तः; त्रैरूप्यसद्भावस्यात्र परेणाभ्युपगमात् । अनभ्युप-
गमे वाऽत एवास्याऽगमकत्वोपपत्तेः किमध्यक्षवाधासाध्यम्?

किञ्च, अबाधितविषयत्वं निश्चितम्, अनिश्चितं वा हेतोर्लक्षणं
स्यात्? न तावदनिश्चितम्; अतिप्रसङ्गात् । नापि निश्चितम्-
तन्निश्चयासम्भवात् । स हि स्वसम्बन्धी, सर्वसम्बन्धी वा?
१५ स्वसम्बन्धी चेत्; तत्कालीनः, सर्वकालीनो वा? न तावत्तत्काली-
नः; तस्यासम्यगनुमानेपि सम्भवात् । नापि सर्वकालीनः;
तस्यासिद्धत्वात्, 'कालान्तरेऽप्यत्र बाधकं न भविष्यति' इत्यसर्व-
विदा निश्चेतुमशक्यत्वात् ।

सर्वसम्बन्धिनोपि तत्कालस्योत्तरकालस्य वा तन्निश्चयस्या-
२० सिद्धत्वम्; अर्वाग्रदृशा 'सर्वत्र सर्वदा सर्वेषामत्रै' बाधकस्याभावः'
इति निश्चेतुमशक्येस्तन्निश्चयनिबन्धनस्याभावात् । तन्निबन्धनं
हेतुपलम्भः, संवादो वा स्यात्? न तावदनुपलम्भः; सर्वात्मिसम्ब-
न्धिनोऽस्याऽसिद्धानैकान्तिकत्वात् । नापि संवादः; प्रागनुमान-
प्रवृत्तेस्तस्यासिद्धेः । अनुमानोत्तरकालं तत्सिद्धयभ्युपगमे पर-
२५ स्परश्रयः-अनुमानात्प्रवृत्तौ संवादनिश्चयः, ततश्चाबाधितविषय-
त्वावगमेऽनुमानप्रवृत्तिरिति । न चाविनाभावनिश्चयादेवाबाधित-
विषयत्वनिश्चयः; हेतौ पञ्चरूपयोगिन्यऽविनाभावपरिसमाप्ति-

१ पूर्वते । २ यदा हेतोर्धर्मिणि सद्भावस्तदा पक्षधर्मत्वम् । यदा च साध्यसद्भावे
हेतोर्धर्मिणि सद्भावस्तदागमयः । यदा च साध्यसद्भावे एव हेतोर्धर्मिणि सद्भावस्तदा
विपक्षेऽसत्त्वम् । कथं साध्यसद्भाव एव इत्येवकारेण विपक्षेऽसत्त्वं गम्यम् । ३ साध्यस्य ।
४ साध्य । ५ एकशाखाप्रभवत्वलक्षणे । ६ यौगेन । ७ पक्षधर्मत्वादेरप्यनिश्चितस्य
हेत्वङ्गत्वप्रसङ्गात् । ८ अनुमानकालीनः । ९ एकशाखाप्रभवत्वलक्षणे । १० सम्भ-
गनुमाने । ११ अनुमान । १२ नृणाम् । १३ अनुमानविषये । १४ भाद्रुकल ।
१५ आत्मनः स्वस्य ।

वादिनामवाधितविषयत्वाऽनिश्चये अविनाभावनिश्चयस्यैवासम्भ-
वात् । तन्नैकशाखाप्रभवत्वादेर्वाधितविषयत्वाच्चेत्वाभासत्वम् ।

नापि तत्पुत्रत्वादेः सत्प्रतिपक्षत्वात् । यतः प्रतिपक्षस्तुल्य-
बलः, अतुल्यबलो वा सन् स्यात् ? न तावदाद्यः पक्षः; द्वयो-
स्तुल्यबलत्वे 'एकस्य वाधकत्वमपरस्य च वाध्यत्वम्' इति ५
विशेषानुपपत्तेः । न च पक्षधर्मत्वाद्यभाव एकस्य विशेषः; तस्या-
नभ्युपगमात् । अभ्युपगमे वा अत एवैकस्य दुष्टत्वसिद्धेर्न
किञ्चिदनुमानवाधया ? द्वितीयपक्षेप्यतुल्यबलत्वं तयोः पक्षधर्म-
त्वादिभावाभावावकृतम्, अनुमानवाधाजनितं वा स्यात् ? प्रथम-
पक्षोनभ्युपगमादेवायुक्तः, पक्षधर्मत्वादेरुभयोरप्यभ्युपगमात् । १०
द्वितीयोप्यसम्भाव्यः; तस्याद्यापि विवादपदापन्नत्वात् । न खलु
द्वयोस्तैरूप्याविशेषतस्तुल्यत्वे सति 'एकस्य वाध्यत्वमपरस्य च
वाधकत्वम्' इति व्यवस्थापर्यितुं शक्यमविशेषेणैव तत्प्रसङ्गात् ।
इतरेतराश्रयश्च-अतुल्यबलत्वे सत्यनुमानवाधा, तस्यां चातुल्य-
बलत्वमिति ।

१५

यश्च प्रकरणसमस्यानित्यः शब्दोऽनुपलभ्यमाननित्यधर्मकत्वा-
दित्युदाहरणम्; तत्रानुपलभ्यमाननित्यधर्मकत्वं शब्दे तत्त्वतोऽ-
प्रसिद्धम्, न वा ? प्रथमपक्षे पक्षवृत्तितयाऽस्याऽसिद्धेरसिद्धत्वम् ।
द्वितीयपक्षे तु साध्यधर्मोन्विते धर्मिणि तत्प्रसिद्धम्, तद्रहिते वा ?
आद्यविकल्पे साध्यवत्येव धर्मिण्यस्य सद्भावसिद्धिः, कथमगम- २०
कत्वम् ? न हि साध्यधर्ममन्तरेण धर्मिण्यऽभवनं विहायापरं
हेतोरविनाभावित्वम् । तच्चेत्समस्ति, कथं न गमकत्वम् अवि-
नाभावनिवन्धनत्वात्तस्य ? द्वितीयपक्षे तु विरुद्धत्वम्; साध्यधर्म-
रहिते धर्मिणि प्रवर्त्तमानस्य विपक्षवृत्तितया विरुद्धत्वोपपत्तेः ।
अथ सन्दिग्धसाध्यधर्मवति तत्तत्र प्रवर्त्तते; तर्हि सन्दिग्ध- २५
विपक्षव्यावृत्तिकत्वात्स्याऽनैकान्तिकत्वम् ।

नन्वेवं सर्वो हेतुरनैकान्तिकः स्यात्, साध्यसिद्धेः प्राक्सौध्य-
धर्मिणः साध्यधर्मसदसत्त्वाश्रयत्वेन सन्दिग्धत्वात्, ततोऽनुमेय-
व्यतिरिक्ते साध्यधर्मवति धर्म्यन्तरे साध्याभावे च प्रवर्त्तमानो

१ यांगीनाम् । २ उक्त्यायेन । ३ तत्पुत्रत्वव्याख्यानवत्त्वहेत्वोः । ४ तत्पुत्र-
त्वादिलेतस्य । ५ यौगेन । ६ तत्पुत्रत्वादिलेतस्य । ७ तत्पुत्रत्वव्याख्यानवत्त्वहेत्वोः ।
८ तत्पुत्रत्वस्य पक्षधर्मोद्यमानः व्याख्यानवत्त्वस्य च पक्षधर्मोद्यमानः । ९ तत्पुत्र-
त्वव्याख्यानवत्त्वहेत्वोः । १० सन्दिग्धताधर्मनैवति प्रवर्त्तमानस्यानैकान्तिकत्वप्रका-
रणेण । ११ पूर्वतस्य शब्दस्य वा । १२ अनित्यतयाऽनुमेयाच्छब्दात् । १३ षटे ।
१४ आकाशादी । १५ सपक्षविपक्षयोरिति यावत् ।

हेतुरनैकान्तिकः, साध्याभाववत्येव तु पक्षधर्मत्वे सति विरुद्धः, यस्तु विपक्षाद्भावाच्चः सपक्षे चानुगतः पक्षधर्मो निश्चितः स्वसाध्यं गमयत्येवेत्यभ्युपगन्तव्यम्; इत्यप्यनुन्दरम्; यतो यदि साध्यधर्मिव्यतिरिक्ते धर्म्यन्तरे हेतोः स्वसाध्येन प्रतिबन्धोऽभ्युपगम्यते; तर्हि साध्यधर्मिण्युपादीयमानो हेतुः कथं साध्यं साधयेत्, तत्र साध्यमन्तरेणाप्यस्य सद्भावाभ्युपगमात्? तद्व्यतिरिक्ते एव धर्म्यन्तरे साध्येनास्य प्रतिबन्धग्रहणात् । न चान्यत्र साध्याविनाभावित्वेन निश्चितो हेतुरन्यत्र साध्यं गमयत्यतिप्रसङ्गात् । ततः साध्यधर्मिण्येव हेतोर्व्यतिः प्रतिपत्तव्या ।

- १० ननु यदि साध्यधर्मनिवृत्तत्वेन साध्यधर्मिण्यसौ पूर्वमेव प्रतिपन्नः, तर्हि साध्यधर्मस्यापि पूर्वमेव प्रतिपन्नत्वाद्धेतोः पक्षधर्मताग्रहणस्य वैयर्थ्यम्; तदप्यसङ्गतम्; यतः प्रतिबन्धसाधकप्रमाणेन सर्वोपसंहारेण 'साधनधर्मः साध्यधर्माभावे क्वचिदपि न भवति' इति सामान्येन प्रतिबन्धः प्रतिपन्नः । पक्षधर्मताग्रहणकाले १५ तु 'यत्रैव धर्मिण्युपलभ्यते हेतुस्तत्रैव साध्यं साध्यति' इति पक्षधर्मताग्रहणस्य विशेषविषयप्रतिपत्तिनिवन्धनत्वान्नानुमानस्य वैयर्थ्यम् । न खलु विशिष्टधर्मिण्युपलभ्यमानो हेतुस्तद्गतसाध्यमन्तरेणोपपत्तिमान्, तस्य तेन व्याप्तत्वाभावप्रसङ्गात् । अत एव प्रतिपन्नप्रतिबन्धैकहेतुसद्भावे धर्मिणि न विपरीतसाध्योपस्थापकहेत्वन्तरस्य सद्भावः, अन्यथा द्वयोरप्यनयोः स्वसाध्याविनाभावित्वात्, नित्यत्वानित्यत्वयोश्चैकैकैकद्वैकान्तवादिमते विरोधतोऽसम्भवात्, तद्व्यवस्थापकहेत्वोरप्यसम्भवः । सम्भवे वा तयोः स्वसाध्याविनाभूतत्वान्नित्यत्वानित्यत्वधर्मसिद्धिर्धर्मिणः स्यादिति कुतः प्रकरणसमस्यागमकता एकान्तत्वसिद्धिर्वा?

१ शब्दो नित्यः कृतकत्वाद्दृष्टवत् । साध्याभाववत्येव घटे कृतकत्वस्य शब्दलक्षण-पक्षधर्मत्वे सति प्रवृत्तमानस्य विरुद्धत्वम् । २ शब्दात् पर्वतात् वा । ३ घटे महानसादौ वा । ४ शब्दे पर्वते वा । ५ घटे महानसे वा । ६ घटे महानसे वा । ७ शब्दे पर्वते वा । ८ काष्ठे लोहलेख्यत्वोपलम्भाद्भेदोपि तथाप्रसङ्गात् । ९ शब्दे । १० पक्षधर्मताग्रहणात् । ११ ऊहेन । १२ हेतुः । १३ ननु यथासाक साध्यधर्मव्यतिरिक्ते एव धर्म्यन्तरे स्वसाध्येन हेतोः प्रतिबन्धग्रहणाभ्युपगमे साध्यधर्मिणि साध्यधर्ममन्तरेणाप्यस्य सद्भावादगमकत्वम् । तथा भवतामपि प्रतिबन्धप्रसाधकप्रमाणेन सामान्येनैवाविनाभावप्रतिपत्तेर्विशिष्टधर्मिणि उपलभ्यमानस्य हेतोस्तद्गतसाध्यमन्तरेणाप्युपपत्तिसम्भवादित्युक्ते वक्ति न खल्विति । १४ अन्यथा । १५ सर्वत्र । १६ अनुपलभ्यमाननित्यधर्मत्व-लक्षणस्य । १७ शब्दे । १८ नित्यत्वलक्षणम् । १९ अनुपलभ्यमाननित्यधर्मकत्व-लक्षणस्य । २० हेतोः । २१ शब्दे धर्मिणि । २२ अनित्यत्वमेव शब्दस्येति ।

अथान्यतरस्यात्र स्वसाध्याविनाभाववैकल्यम्; तथाप्यत एवास्या-
गमकतेति किं तत्प्रतिपादनप्रयासेन ?

किञ्च, नित्यधर्मानुपलब्धिः प्रसज्यप्रतिषेधरूपा, पर्युदासरूपा
वा शब्दानित्यत्वे हेतुः स्यात् ? तत्राद्यः पक्षोऽयुक्तः; तुच्छाभावस्य
साध्यासाधकत्वाभिषिद्धत्वाच्च । द्वितीयपक्षे तु अनित्यधर्मोप-
लब्धिरेव हेतुः; सा च शब्दे यदि सिद्धा कथं नानित्यतासिद्धिः ?
अथ तच्चिन्तासम्बन्धिपुरुषेषासौ प्रयुज्यत इति तत्रासिद्धा; तर्हि
कथं न सन्दिग्धो हेतुर्वादिनं प्रति ? प्रतिवादिनस्त्वसौ स्वरूपा-
सिद्ध एव; नित्यधर्मोपलब्धेस्तत्रासौ सिद्धेः । तन्न पाञ्चरूपत्वम-
प्यस्य लक्षणं घटते अवाधितविषयत्वादेर्विचार्यमाणस्यायोगात्पक्ष-
धर्मत्वादिवत् । १०

यदि चैकस्य हेतोः पक्षधर्मत्वाद्यनेकधर्मात्मकत्वमिष्यते,
तदाऽनेकान्तः समाश्रितः स्यात् । न च यदेव पक्षधर्मस्य सपक्षे
एव सत्त्वम् तदेव विपक्षात्सर्वतोऽसत्त्वमित्यभिधातव्यम्; अन्वर्थ-
व्यतिरेकयोर्भावाभावरूपयोः सर्वथा तादात्म्यायोगात्, तत्त्वे वा
केवलान्वयी केवलव्यतिरेकी वा सर्वो हेतुः स्यात्, न त्रिरूपवान् ।

व्यतिरेकस्य चाभावरूपत्वाद्धेतोस्तद्रूपत्वेऽभावरूपो हेतुः स्यात् ।
न चाभावस्य तुच्छरूपत्वात्स्वसाध्येन धर्मिणा सम्बन्धः । यदि च
सपक्ष एव सत्त्वं विपक्षासत्त्वम् न ततो भिन्नम्; तर्हि तदेवास्या-
साधारणं कथं स्यात् ? वस्तुभूर्तान्यांभार्चमन्तरेण प्रतिनियतस्या-
स्याप्यत्रासम्भवात् । अथ ततस्तदन्यधर्मान्तरम्; तर्ह्येकस्यानेक-
धर्मात्मकस्य हेतोस्तथाभूतसाध्याविनाभावेत्वेन निश्चितस्य अने-
कान्तात्मकार्यप्रसाधकत्वात् कथं न पर्योपन्यस्तहेतूनां विरुद्धता ?
एकान्तविरुद्धेनानेकान्तेन व्यासत्वात् ।

किञ्च, परैः सामान्यरूपो हेतुरुपादीयते, विशेषरूपो वा, उभ-
यम्, अनुभयं वा ? सामान्यरूपश्चेत्; तर्हि व्यक्तिभ्यो भिन्नम्,
अभिन्नं वा ? भिन्नं चेत्; न; व्यक्तिभ्यो भिन्नस्य सामान्यस्याऽप्रति-

१ इयोर्मध्ये एकसाधस्य । २ प्रकरण । ३ नित्यधर्मानुपलब्धेरनित्यत्वं प्रतिपाद-
नामः । अनित्यधर्मानुपलब्धेरनित्यत्वं साधयाम् । इति । ४ शब्दे धर्मिणि । ५ शब्दे ।
६ असत्प्रतिपक्षत्वस्य च । ७ हेतोः । ८ सपक्षे सत्त्वम् । ९ विपक्षेऽसत्त्वम् ।
१० अस्मिन्पक्षे व्यतिरेकस्यान्वयरूपत्वे तादात्म्यम् । ११ अत्र पक्षे अन्वयस्य
व्यतिरेकरूपत्वे तादात्म्यम् । १२ केवलव्यतिरेकीत्वमिन्पक्षे । १३ हेतुरूपात् ।
१४ अभावपक्षे हेतोः । १५ यसः । १६ भिन्न । १७ यसः । १८ विपक्षासत्त्व-
लक्षणम् । १९ वैशेषिक ।

भासमानतयाऽलिङ्गत्वात् । तथाभूतस्यास्य सामान्यविचारे निरा-
करिष्यमाणत्वाच्च । अथामिन्नम्; कथञ्चित्, सर्वथा वा? सर्वथा
चेत्; न; सर्वथा व्यक्त्यव्यतिरिक्तस्यास्य व्यक्तिस्वरूपवद्व्यक्त्यन्तरा-
ननुगततः सामान्यरूपतानुपपत्तेः । कथञ्चित्पक्षस्त्वनभ्युपगमा-
५ देवायुक्तः । नापि व्यक्तिरूपो हेतुः; तस्यासाधारणत्वेन गमकत्वा
योगात् । नाप्युभयं परस्पराननुविद्धम्; उभयदोषप्रसङ्गात् ।
नाप्यनुभयम्; अन्योन्यव्यवच्छेदरूपाणामेकाभावे द्वितीयविधाना
दनुभयस्यासत्त्वेन हेतुत्वायोगात् । ततः पदार्थान्तरानुवृत्तव्यवृ-
त्तरूपमात्मानं विभ्रदेकमेवार्थस्वरूपं प्रतिपत्तुमैदामेदंप्रत्ययप्रस-
१० त्तिनिवन्धनं हेतुत्वेनोपादीयमानं तथाभूतसाध्यसिद्धिनिवन्धन-
मभ्युपगन्तव्यम् ।

किञ्च, एकान्तवाद्युपन्यस्तहेतोः किं सामान्यं साध्यम्, विशेषो
वा, उभयं वा, अनुभयं वा? न तावत्सामान्यम्; केवलस्यास्या-
सम्भवादर्थक्रियाकारित्वविकलत्वाच्च । नापि विशेषः; तस्या-
१५ ननुयायितया हेत्वऽव्यापकस्य साध्यितुमशक्तेः । नाप्युभयम्;
उभयदोषानतिवृत्तेः । नाप्यनुभयम्; तस्यासतो हेत्वव्यापकत्वेन
साध्यत्वायोगात् ।

यच्चान्यदुक्तम्—“प्रत्यक्षपूर्वकं त्रिविधमनुमानं पूर्ववच्छेषैवत्सा-
मान्यतो दृष्टं च ।” [न्यायसू० १।१।५] इति । तत्र पूर्ववच्छेषैव-
२० त्केवलान्वयि, यथा सैदसैद्वर्गः कस्यचिदेकज्ञानालम्बनमनेकत्वात्
पञ्चाङ्गुलवत् । पञ्चाङ्गुलव्यतिरिक्तस्य सदसद्वर्गस्य पक्षीकरणाद्-
न्यैस्याभावाद्द्विपक्षाभावः, अत एव व्यतिरेकाभावः । पूर्ववत्सामा-
न्यतोऽदृष्टम् केवलव्यतिरेकि, यथा सात्मकं जीवच्छरीरं प्राणा-
दिमत्त्वादिति । पूर्ववच्छेषवत्सामान्यतोऽदृष्टमन्वयव्यतिरेकि,

१ पराभ्युपगतसामान्यं धर्मि सामान्यरूपता न भवति व्यक्त्यन्तराननुगमभावे
व्यक्तिस्वरूपवत् । सामान्यं व्यक्त्यन्तरं नानुगच्छति व्यक्तिस्योऽभिन्नत्वात् व्यक्ति-
स्वरूपवत् । २ परेण । ३ दृष्टान्तेऽसत्त्वेन । ४ परस्पराननुविद्धं तु परैर्नाभ्युपगम्यते ।
५ निरपेक्षम् । ६ व्यक्त्यन्तरेषु । ७ सदृशपरिणामेन । ८ व्यक्तिभेदेषु । ९ देश-
कालादिभेदेन भेदप्रत्ययः । १० धूमो धूम इत्यभेदप्रत्ययः । ११ व्यक्तिरहितस्य ।
१२ पाकादि । १३ अन्यत्र व्यक्तिनिषेधेषु । १४ लिङ्गप्रत्यक्षं यतः । १५ समास-
रहितानि पदान्यत्र । १६ सर्वावयवापेक्षाऽऽदी प्रयुज्यमानत्वात्पक्षः पूर्वः पूर्वमस्य
हेतोरस्तीति पूर्ववत्पक्षधर्म इत्यर्थः । १७ ज्ञेयो दृष्टान्तः सोऽस्य हेतोरस्तीति शेषवत्स-
पक्षे सन्नित्यर्थः । १८ सपक्षे ससाध्यम् । १९ द्रव्यगुणादि । २० प्रागयानादि ।
२१ पक्षीभूताद् दृष्टान्तभूतादन्वयस्य व्यतिरिक्तस्य विपक्षस्य । २२ साधनसामान्यस्य
साध्यसामान्येन व्याप्तिः सामान्यं सतोऽदृष्टं व्यतिरेकिदृष्टान्ते ।

यथा विधादास्पदं तनुकरणभुवनादि बुद्धिमत्कारणं कार्यत्व।
दिभ्यो घटादिवत् । यत्पुनर्बुद्धिमत्कारणं न भवति न तत्कार्यत्वा-
दिघर्माधारो यथात्मैदिः' इति ।

तदप्येतैन प्रत्याख्यातम्; सर्वैर्ज्ञान्यथानुपपन्नत्वस्यैव हेतु-
लक्षणतोपपत्तेः; तस्मिन्सत्येव हेतोर्गमकत्वप्रतीतिः । ५

केवलान्वयिनो हि यद्यन्यथानुपपन्नत्वं प्रमाणनिश्चितमस्ति,
किमन्वयाभिधानेन ? अथान्वयाभावे तदभावस्तदनिश्चयो वेति
तदभिधानम्; स्यादेतत् यद्यविनाभावस्तेन व्याप्तः स्यात्, अन्व्या-
पकनिवृत्तेरन्व्याप्यनिवृत्तावतिप्रसङ्गार्त् । व्याप्तश्चेत्; तर्हि प्राणादौ
तन्निवृत्तावविनाभावनिवृत्तेरगमकत्वं स्यात् । न खलु यद्यस्यै १०
व्यापकं तत्तदभावे भवति वृक्षत्वाभावे शिशपात्ववत् । गमकत्वे
वास्य नान्वयेर्नास्तौ व्याप्तः स्यात् । यदभावे हि यद्भवति न तत्तेन
व्याप्तम् यथा रासभाभावे भवन्धूमादिर्न तेन व्याप्तः, भवति
चान्वयाभावेपि तदविनाभाव इति ।

'सदसद्दर्गः कस्यचिदेकज्ञानालम्बनमनेकत्वात्' इत्ययं च हेतुः १५
कुतः केवलान्वयी ? व्यतिरेकाभावाच्चेद्; अयमपि कुतः ? तद्विष-
यस्य विपक्षस्याभावाच्चेद्; अथ कोयं विपक्षाभावः—पक्षसपक्षावेव,
निवृत्तिर्मात्रं वा ? प्रथमपक्षे परैर्मतप्रसङ्गः अभावस्य भावान्तर-
स्वभावतास्वीकौरात् । द्वितीयपक्षे तु स तथाविधः प्रतिपन्नः, न
वा ? न प्रतिपन्नश्चेत्; तर्हि विपक्षाभावसन्देहाद्यतिरेकाभावोपि २०
सन्दिग्ध इति केवलान्वयोपि तादृगेव । अथ प्रतिपन्नः; स
यदि साध्यनिवृत्त्या साधननिवृत्त्याधारः प्रतिपन्नः; तर्हि स एव
विपक्षः, कथं विपक्षाभावो यतो व्यतिरेकाभावः ? साध्यसाधना-
भावाधारतया निश्चितस्य विपक्षत्वात् । तच्च भाववदभावस्यापि
न विरुध्यते, कथमन्यथा 'सदसद्दर्गः कस्यचिदेकज्ञानालम्बनम्' २५-
इत्यासासन् पक्षः स्यात् ? असन् पक्षो भवति न विपक्षे इति वि. ३०

१ व्यतिरेकिदृष्टान्तः । २ गगनं च । ३ अन्यथानुपपन्नत्वमेव हेतुलक्षणमिति
समर्थनपरेण ग्रन्थेन । ४ अनुमाने । ५ तर्कलक्षण । ६ दृष्टान्ते हेतोः सस्वमन्वयः ।
७ अन्वयपक्ष । ८ अविनाभावस्य । ९ सत्यात् । १० घटनिवृत्तौ पटनिवृत्तिप्रसङ्गात् ।
११ अविनाभावोऽन्वयेन । १२ अविनाभावस्य । १३ अन्वयः । १४ अविनाभावः ।
१५ प्रसङ्गः । १६ केनमत । १७ जैनेन । १८ विपक्षाभावो विपक्षो भवति साध्य-
निवृत्त्या साधननिवृत्त्याधारः स्यात्सप्रतिपन्नविपक्षवत् । १९ भाव एव महान्दलक्षणः
आकाशलक्षणो वा विपक्षः स्यात् न त्वभाव इत्युक्ते आह । २० अभावस्य विपक्षत्वे
विरोधश्चेत् । २१ असन् । २२ केन ।

विभागः ? अथाऽसद्गणेशब्देन सामान्यसमवायान्त्यविशेषा एवो-
च्यन्ते, नाभावः; तर्हि तद्विषयं ज्ञानं न कस्यचिदनेन प्रसाधित-
मिति सुव्यवस्थितम् ईश्वरस्याखिलकार्यकारणग्रामपरिज्ञानम् ।
प्रागभावाद्यज्ञाने कार्यत्वादेरप्यज्ञानात् ।

- ५ किञ्च, र्यद्यभावोऽत्र पक्षसपक्षाभ्यां बहिर्भूतः; तद्व्यनेनानेकत्वा-
दित्यनैकान्तिको हेतुः, तदनेकत्वेपि कस्यचिदेकज्ञानावलम्बन-
त्वानभ्युपगमात् । अभ्युपगमे वा कथमभावो न पक्षः ? तथा
विपक्षोप्यस्तु । नन्वेवं विपक्षाभावोपि तदालम्बनमिति पक्ष एव
स्यात्, तथा च पुनरपि विपक्षाभावं एव इति चेत्; तर्हि पुनरपि
१० तदेव बोधम्—'कोयं विपक्षाभाव इति ? यदि पक्षसंपक्षावेव;
भावाद्भिन्नस्याभावस्याभावः ।

अथ तुच्छा विपक्षनिवृत्तिस्तदभावः; सोपि यद्यप्रतिपक्षस्तर्हि
सन्दिग्धः । तत्सन्देहे च व्यतिरेकाभावोपि तादृगेवेति न निश्चितः
केवलान्वयः' इत्यादि तदेवस्थं पुनः पुनरावर्त्तते इति चैकक-
१५ प्रसङ्गः । ततः केवलान्वयित्वेनाभ्युपगतस्य विपक्षाभाव एव
तुच्छो विपक्षः । ततः साध्यनिवृत्त्या साधननिवृत्तिश्चेति कथं न
व्यतिरेकः ? अत एवाविनाभावस्य तत्परिज्ञानस्य च प्राणादिमर्ध-
वद्भावात्किमन्वयेन ?

अथ विपक्षाभावस्यैवापादानत्वायोगात् ततः साध्यसाधनयो-
२० र्यावृत्तिः; तन्न; 'भावः प्रागभावादिभ्यो भिन्नस्ते वा परस्प-
रतो भिन्नाः' इत्यादावप्यभावस्यापादानत्वाभावप्रसङ्गात् सर्वेषां
साङ्कर्यं स्यात् ।

किञ्च, अन्वयो व्याप्तिरभिधीयते । सा च त्रिधा—बहिव्याप्तिः,
साकल्यव्याप्तिः, अन्तर्व्याप्तिश्चेति । तत्र प्रथमव्याप्तौ भग्नघटव्यति-
२५ रिक्तं सर्वे क्षणिकं सत्त्वात्कृतकत्वाद्वा तद्वत्, विवादापत्त्याः प्रत्यया

१ ये सत्तासम्बन्धात्सन्देहे सद्वर्गवाच्याः । ये तु सतः सत्त्वस्ते असद्वर्गश्च-
वाच्या इत्यर्थः । २ अनेकत्वादित्यनेन अनुमानेन । ३ उपहासः । ४ प्रागसत्कार्य
यसिन् कपाले उत्पन्ने यस्य वस्तुनो घटलक्षणस्य नियमेन प्रसंसत्ताकारणम् ।
५ कारणत्वम् । ६ प्रागभावादिरूपः । ७ अनुमाने । ८ अभावस्यैकभावावलम्बन-
त्वम् । ९ तुच्छरूपोऽभावः । १० अभावस्य विपक्षतासद्भावप्रकारेण । ११ विपक्ष-
श्चासावभावश्चेति । १२ यकणारूपः । १३ पूर्वोक्तेन । १४ विपक्षाभावस्तर्हि ।
१५ सा प्राक्तनी अवस्था यस्य । १६ ग्रन्थचक्रक । १७ हेतोः । १८ व्यतिरेक-
सद्भावादेव । १९ ईदृशे घट । २० अनेकत्वादिगठेन । २१ तुच्छरूपत्वादापादा-
नत्वायोगः । २२ भावाभावात् प्रागभावादीना भावाभावादीनाम् ।

निरालम्बनाः प्रत्ययत्वात्त्वप्रप्रत्ययवत्, ईश्वरः किञ्चिज्ज्ञो रागा-
दिमान्वा वकृत्वादिभ्यो रथ्यापुरुषवत् इत्यादेर्गमकत्वं स्यात्
केवलान्वयस्यात्र सुलभत्वात् । ननु सर्वं न सत्त्वादिकं क्षणिक-
त्वादिना व्याप्तम् आत्मादौ क्षणिकत्वाद्यसत्त्वात्, तन्न; तदसत्त्वे
तत्रार्थक्रियाऽसत्त्वात् सर्वं न स्यात् ।

किञ्च, घटादिदृष्टान्ते सत्त्वादिकं क्षणक्षयादौ सति दृष्टमपि
यदि क्वचित्तदभावेपि स्यान्न तर्हि वहिर्व्याप्तिरन्वयः, लक्षणयुक्ते
वाधासम्भवे तल्लक्षणमेव दूषितं स्यात् ।

अथ सकलव्याप्तिरन्वयः; ननु केयं सकलव्याप्तिः ? 'दृष्टान्त-
धर्मिणीव साध्यधर्मिण्यन्यत्र च साध्येन साधनस्य व्याप्तिः सा' १०
इति चेत्; सा कृतः प्रतीयताम् ? प्रत्यक्षतः, अनुमानाद्वा ? प्रत्य-
क्षतश्चेत्, किमिन्द्रियात्, मानसाद्वा ? न तावदिन्द्रियात्; चक्षु-
रादेरिन्द्रियस्य सकलसाध्यसाधनार्थसन्निकर्षवैधुर्यं तदनुपपत्तेः ।
न हि तद्वैधुर्यं तद्युक्तम् "इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नर्मव्यपदेश्यमऽ-
व्यभिचारि व्यवसायात्मकं ज्ञानं प्रत्यक्षम्" [न्यायसू० १।१।४] १५
इत्यभिधानात् । तस्य तत्सन्निकर्षे वा प्राणिमात्रस्याशेषहत्वप्रस-
ङ्गात् कश्चिदीश्वराद्विशेष्येत ।

ननु साध्यसाधनयोः साकल्येन ग्रहणं सकलव्याप्तिग्रहणम् ।
साध्यं चाग्निसामान्यं साधनं च धूमसामान्यम्, तयोश्चान्वयव-
योरेकत्रापि साकल्येन ग्रहणमस्ति, विशेषप्रतिपत्तिस्तु सर्वत्र २०
पक्षधर्मताबलादेवेति चेत्; तर्हि क्षणिकत्वादि साध्यम्, सत्त्वादि
साधनम्, तयोश्चान्वयवयोः प्रदीपादौ संहदर्शनादेव सकल-
व्याप्तिग्रहः किन्न स्यात् ? मानसप्रत्यक्षादपि व्याप्तिप्रतिपत्तावयमेव
दोषः । तन्न प्रत्यक्षतः सकलव्याप्तिग्रहः । नाप्यनुमानतोऽन्यथा-
प्रसङ्गात् ।

सामान्यस्य च साध्यत्वे साधनवैफल्यम् तत्राविवादात्, व्याप्ति-
ग्रहणकाले वैवाक्ये प्रसिद्धेः । कथमन्यथा सामान्यधर्मयोः साक-
ल्येन व्याप्तिर्निर्णीता स्यात् ?

१ योगं प्रति । २ लक्षणम् । ३ लक्ष्यम् । ४ सत्त्वादिलक्षणे हेतौ । ५ वहि-
र्व्याप्तिरूपसान्वयस्य कथं वाधासम्भवः ? आत्मादौ क्षणिकत्वाभावेपि सत्त्वमस्ति
यतः । ६ सकलेषु साध्यसाधनेषु । ७ व्यक्तयन्तरेषु । ८ अशब्दवत् । ९ सकलयोः ।
१० अनुमाने । ११ अनुमाने । १२ हेतोः । १३ निरंशयोः । १४ युगपत् ।
१५ पूर्वतोऽग्निमान्धूमवत्त्वादिति सलानुमाने भ्रूणोक्षिकार्थं तदन्वयव्यतिरेकानुविधा-
यित्वादिल्लनेनानुमानेन व्याप्तिः प्रतीयते इत्यादिप्रकारेण । १६ साध्यसामान्यस्य ।
१७ व्याप्तिग्रहणकाले सामान्यस्य सिद्धिर्नास्ति चेत् । १८ साध्यसाधनयोः ।

साध्यत्वं चास्यासतः करणम्, सतो ज्ञापनं वा? प्रथमपक्षे सामान्यस्यानित्यत्वाऽसर्वगतत्वप्रसङ्गः । द्वितीयपक्षेऽप्यस्य दृश्यत्वे धर्मिवत्प्रत्यक्षत्वमिति किं केन ज्ञाप्यते? अन्यथा धूमसामान्यमप्यशिसामान्येन ज्ञाप्येत । अथ व्यक्तिसहायत्वाद्भूमसामान्यमेव प्रत्यक्षं नान्यत् ततोऽयमदोषः; न, अस्य सामान्यविचारे सहायापेक्षा-प्रतिक्षेपात् ।

यच्चोक्तम्-विशेषप्रतिपत्तिस्तु पक्षधर्मताबलादेवेति; तत्र पक्षधर्मता धूमस्य, तत्सामान्यस्य वा? तत्राद्यः पक्षोऽसङ्गतः; विशेषेण व्यतिरेकप्रतिपत्तिस्तद्गमकत्वायोगात् ।

- १० द्वितीयपक्षेऽप्यशिसामान्यस्यैव धूमसामान्यात्सिद्धिः स्यात् तेनैव तस्य व्याप्तेः, नाग्निविशेषस्य अनेनाव्याप्तेः । अथ साधनसामान्यात् साध्यसामान्यप्रतिपत्तेरेव विशेषप्रतिपत्तिः सामान्यस्य विशेषनिष्ठत्वात् । ननु तत्सामान्यमपि विशेषमात्रेण व्याप्तं सत्तदेव गमयेन्नान्यत् । अथ विशिष्टविशेषाधारं लिङ्गसामान्यं १५ प्रतीयमानं विशिष्टविशेषाधिकरणं साध्यसामान्यं गमयतीत्युच्यते; तदप्युक्तिमात्रम्; तथा व्यतिरेकभावात् । अथ विपक्षे सद्भावबाधकप्रमाणवशात्सिद्धिरिष्यते; तर्हि तावतैव पर्याप्तत्वात् किमन्वयेन परस्य ?

पर्यतेनान्तर्व्याप्तिरपि चिन्तिता । न खलु प्रत्यक्षादितः सापि २० प्रसिद्ध्यति । तत्र पूर्ववच्छेषवदिति सूक्तम् ।

यच्चान्यदुक्तम्-‘पूर्ववत्सामान्यतोदृष्टं चेति चशब्दो भिन्नप्रक्रमः ‘सामान्यतः’ इत्यस्यानन्तरं द्रष्टव्यः । ततोयमर्थः-पूर्ववत्पक्षवत्सामान्यतोपि न केवलं विशेषतो दृष्टं विपक्षे । अनेन केवलव्यतिरेकी हेतुर्दर्शितः-‘सात्मकं जीवच्छरीरं प्राणादिमत्त्वात्’ २५ इत्यादिः; तदप्युक्तम्; यतः प्राणादेरन्यथाभावे कुतोऽविनाभाववगतिः? व्यतिरेकाच्चेत्; तथाहि-यस्माद् घटादेः सात्मकत्व-

१ निष्पादनम् । २ हेतुना । ३ साध्यसामान्यस्य । ४ हेतुना । ५ प्रत्यक्षमपि ज्ञाप्यते चेत् । ६ धूमविशेष । ७ अशिसामान्यम् । ८ साध्यसाधनसामान्यस्य । ९ ग्रन्थे । १० साध्यसाधनयोः । ११ यत्र यत्र पुरो भवति पर्वतस्य धूमस्तत्राग्निरिति । १२ सिद्धिः । १३ धूमसामान्यस्य । १४ यतः । १५ अग्निविशेष । १६ प्रेष्टविशेषम् । १७ पर्वतस्य धूम । १८ पर्वतस्याग्नि । १९ वसः । २० यो यः पुरोवत्सिपर्वतस्य धूमः स पुरोवत्सिपर्वतस्याग्निमानिति । २१ हेतोः । २२ अनुपलम्भ । २३ व्याप्तिः । २४ व्याप्तेः । २५ यौगस्य । २६ साकल्यव्याप्तिशोधनपरं ग्रन्थेन । २७ निराकृता । २८ अन्वयवृष्टान्तस्य । २९ कारणात् ।

निवृत्तौ प्राणाद्यो नियमेन निवर्त्तन्ते तस्मात्सात्मकत्वाभावः प्राणाद्यभावेन व्याप्तो धूमाभावेनैव पावकाभावः । जीवच्छरीरे च प्राणाद्यभावविरुद्धः प्राणादिसङ्गावः प्रतीयमानस्तदभावं निवर्त्तयति । स च निवर्त्तमानः स्वव्याप्यं सात्मकत्वाभावमादाय निवर्त्तते इति सात्मकत्वसिद्धिस्तत्र; इत्यप्यसारम्; यतोनुमा-५ नान्तरेप्येवमविनाभावप्रसिद्धेः केवलव्यतिरेक्येव सर्वमनुमानं स्यात्, अन्वयमात्रेण तत्सिद्धावतिप्रसङ्गस्योक्तत्वात् ।

किञ्च, साध्यनिवृत्त्या साधननिवृत्तिर्व्यतिरेकः, स च क्वचित् कदाचित्, सर्वत्र सर्वदा वा स्यात्? न तावदाद्यः पक्षः; तथा व्यतिरेकस्य साधनाभासेपि सम्भवात् । द्वितीयपक्षोप्ययुक्तः; १० साकल्येन व्यतिरेकप्रतिपत्तेः प्रत्यक्षादिप्रमाणतः परेषामन्वय-प्रतिपत्तेरिवासम्भवात् ।

एतैन पूर्ववच्छेषवत्सामान्यतोदृष्टमन्वयव्यतिरेक्यनुमानं प्रत्याख्यातम्; पक्षद्वयोपक्षिसदोषानुषङ्गात् ।

यच्च तदुदाहरणम्-विवादापन्नं तनुकरणभुवनादिकं बुद्धिमद्धे-१५ तुर्कं कार्यत्वादिभ्यो घटादिवदित्युक्तम्; तदपीश्वरनिराकरण-प्रकरणे विशेषतो दूषितमिति पुनर्न दूष्यते ।

अथ “पूर्ववत्-कारणात्कार्यानुमानम्, शेषवत्-कार्यात्कारणानुमानम्, सामान्यतो दृष्टम्-अकार्यकारणादकार्यकारणानुमानम् सामान्यतोऽविनाभावमात्रात्” [न्यायभा०, वार्त्ति० १।१।५] इति २० व्याख्यायते; तदप्यविनाभावनियमनिश्चायकप्रमाणाभावादेवायुक्तं परेषाम् । स्याद्वादिनां तु तदुक्तं तत्सङ्गावात् इत्याचार्यः स्वयमेव कार्यकारणेत्यादिना हेतुप्रपञ्चे प्रपञ्चयिष्यति ।

१ कारणात् । २ व्यापकेन । ३ धूमाभावः पावकाभावे सत्वसति च भवति धूमाभावस्य व्यापकत्वेन तदतन्निष्ठत्वात् । ४ शेषे । ५ स इयामस्तत्पुत्रत्वादितर-तपुत्रनदिस्यादौ । ६ केवलान्वयिकेवलव्यतिरेकिलक्षणपक्षद्वयनिराकरणपरेण ग्रन्थेन । ७ पूर्वं कारणं तद्विज्ञमस्यानुमानस्यास्तीति पूर्ववत् । कारणलिङ्गनितमनुमानमित्यर्थः । ८ असौ पुमान् रूपादिज्ञानवान् चक्षुरादिमरुतान्मदित्युदाहरणम् । शेषवदिति शेषः कार्यं तद्विज्ञमस्यानुमानस्यास्तीति शेषवत् । कार्यलिङ्गनितमनुमानमित्यर्थः । सात्मकं जीवच्छरीर प्राणादिमत्त्वादित्युदाहरणम् । ९ दृष्टान्ते । १० कार्यं यो हेतुर्न भवति कारणं वा यो हेतुर्न भवति तस्माद्धेतोः कार्यं यन्न भवति साध्यं वा यन्न भवति साध्यं तस्यानुमानम् । मातुलिङ्गं रूपवद्रसवत्त्वात्सम्प्रतिपन्नमातुलिङ्गवदित्युदाहरणम् । ११ सङ्गम् । १२ व्याख्यानम् । १३ कद । १४ जटाधराणाम् । १५ अनुमान-नितयम् ।

यदपि-पूर्ववत्पूर्वं लिङ्गलिङ्गिसम्बन्धस्य कंचिद्विश्वयादेव्यत्र प्रवर्त्तमानमनुमानम् । शेषवत्परिशेषानुमानम्, प्रसक्तप्रतिषेधे परिशिष्टस्य प्रतिपत्तेः । सामान्यतो ईदृं विशिष्टव्यक्तौ सम्बन्धाग्रहणार्त्सामान्येन दृष्टम्, यथा गतिमानादित्यो देशादेशान्तर-
५ प्राप्तेर्देवदत्तवदिति । तदप्येतेन प्रत्याख्यातम्; उक्तप्रकाराणां प्रमाणतः प्रसिद्धाविनाभावानां प्रतिपादयिष्यमाणहेतुप्रपञ्चत्वेन स्याद्वादिनामेव सम्भवात् ।

न चायं भेदो घटते । सर्वं हि लिङ्गं पूर्ववदेव; परिशेषानुमान-
स्यापि पूर्ववत्त्वप्रसिद्धेः-प्रसक्तप्रतिषेधस्य परिशिष्टप्रतिपत्त्यविना-
१० भूतस्य पूर्वं कंचिद्विश्वितस्य विवादाध्यासितपरिशिष्टप्रतिपत्तौ साधनस्य प्रयोगात् । सामान्यतो दृष्टस्याऽपि पूर्ववत्त्वप्रतीतेः; कचिद्देशान्तरप्राप्तेर्गतिमत्त्वाविनाभाविन्या एव देवदत्तादौ प्रति-
पत्तेः, अन्यथा तदनुमानाप्रवृत्तेः । परिशेषानुमानमेव वा सर्वम्; पूर्ववत्तोपि धूमात्पावकानुमानस्य प्रसक्ताऽपावकप्रतिषेधात्प्रवृ-
१५ त्तिघटनात्, तदप्रसक्तौ विवादानुपपत्तेरनुमानवैयर्थ्यं स्यात् । सामान्यतो दृष्टस्यापि देशान्तरप्राप्तेरादित्यगत्यनुमानस्य तदगति-
मत्त्वस्य प्रसक्तस्य प्रतिषेधादेवोपपत्तेः । सकलं सामान्यतो दृष्टमेव वा; सर्वत्र सामान्येनैव लिङ्गलिङ्गिसम्बन्धस्य प्रतिपत्तेः, विशेषतस्तत्सम्बन्धस्य प्रतिपत्तुमशक्तेः । ततोऽनुमानं तत्रभेदं
२० चेच्छताऽविनाभाव एवैकं हेतोः प्रधानं लक्षणं प्रतिपत्तव्यम् ।

ननु चास्तु प्रधानं लक्षणमविनाभावो हेतोः । तत्स्वरूपं तु निरूप्यतामप्रसिद्धस्वरूपस्य लक्षणत्वायोगादित्याशङ्क्य सहकमे-
स्यादिना तत्स्वरूपं निरूपयति—

१ लिङ्गलिङ्गिसम्बन्धः पूर्वं निश्चीयमानत्वात् पूर्वं सोऽनुमानस्यास्तीति पूर्ववत् ।
अग्निमान्पूर्वतो भूमवत्त्वान्महानसवदित्युदाहरणम् । २ महानसे । ३ पूर्वते । ४ शेषः
परिशिष्यमाणोर्धः सोऽस्यास्तीति शेषवत् । अत्रोदाहरणं शब्दः कचिदाभितो गुणत्वा-
द्रूपवदिति । ५ उद्धरिवार्थस्याकाशादेः । ६ अनुमानम् । ७ साध्यसाधनं नास्तीति
चेत् । ८ हेतुमात्रम् । ९ देवदत्ते गतिमत्त्वदेशादेशान्तरप्राप्तयोः साध्यसाधनयोर्धर्मयोः
सामान्येन प्रतिपत्तिः । १० पूर्ववच्छेषवत्सामान्यतोऽदृष्टलक्षणानाम् । ११ ऊह-
लक्षणात् । १२ कचिदनाभितत्वस्य । १३ घटस्य । १४ कचिदाभितत्वस्य ।
१५ आकाशस्य । १६ कचिदाभितत्वस्य । १७ रूपादौ । १८ शब्दे कचिदा-
भितत्वस्य । १९ गुणवत्त्वस्य । २० देशादेशान्तरप्राप्तेर्गतिमत्त्वाविनाभाविन्या देवदत्ते
प्रतिपत्तिर्नास्तीति चेत् । २१ आदित्यगतिमत्त्वस्य । २२ पूर्ववच्छेषवदित्यनुमान-
द्वयम् । २३ अनुमाने । २४ यौनेन यवता ।

सहक्रमभावनियमोऽविनाभावः ॥ १६ ॥

सहभावनियमः क्रमभावनियमश्चाविनाभावः प्रतिपत्तव्यः ।

कयोः पुनः सहभावः कयोश्च क्रमभावो यन्नियमोऽविनाभावः
स्यादित्याह—

सहचारिणोः व्याप्यव्यापकयोश्च सहभावः ॥१७॥५

पूर्वोत्तरचारिणोः कार्यकारणयोश्च क्रमभावः ॥१८॥

सहचारिणो रूपरसादिलक्षणयोर्व्याप्यव्यापकयोश्च शिक्षपा-
त्वबुद्धत्वादिसहभावयोः सहभावः प्रतिपत्तव्यः । पूर्वोत्तरचारिणोः
कृत्तिकाशकटोदयादिस्वरूपयोः कार्यकारणयोश्चाग्निधूमादिस्वरू-
पयोः क्रमभाव इति ।

१०

कुतोसौ प्रोक्तप्रकारोऽविनाभावो निर्णयते इत्याह—

तर्कान्निर्णयः ॥ १९ ॥

न पुनः प्रत्यक्षादेरित्युक्तं तर्कप्रामाण्यप्रसाधनप्रस्तावे ।

ननु साधनात्साध्यविज्ञानमनुमानसित्युक्तम् । तत्र किं साध्य-
मित्याह—

१५

ईष्टमबाधितमसिद्धं साध्यम् ॥ २० ॥

संशयादिव्यवच्छेदेन हि प्रतिपन्नमर्थस्वरूपं सिद्धमुच्यते,
तद्विपरीतमसिद्धम् । तच्च—

सन्दिग्धविपर्यस्ताव्युत्पन्नानां साध्यत्वं यथा

स्यादित्यसिद्धपदम् ॥ २१ ॥

२०

किमयं स्यात्पुः पुरुषो वेति चलितप्रतिपत्तिविषयभूतो ह्यर्थः
सन्दिग्धोभिधीयते । शुक्रिकाशकले रजताध्यवसायलक्षणवि-
पर्यासगोचरस्तु विपर्यस्तः । गृहीतोऽगृहीतोपि वार्थो यथावद-
निश्चितस्वरूपोऽव्युत्पन्नः । तथाभूतस्यैवार्थस्य साधने साधन-
सामर्थ्यात्, न पुनस्तद्विपरीतस्य तत्र तद्वैफल्यत् ।

२५

इद्याऽबाधितविशेषणद्वयस्यानिष्टेत्यादीनां फलं दर्शयति—

१ चादिः (षष्ठीदिवचनमित्यर्थः) । ययोः । २ तस्य अविनाभावस्य । ३ साध्य-
त्वेनाभिप्रेतम् । ४ अर्थानाम् । ५ पूर्वम् । ६ सिद्धौ । ७ सूत्रेण ।

अनिष्टाध्यक्षादिबाधितयोः साध्यत्वं माभूदितीष्टाबाधितवचनम् ॥ २२ ॥

अनिष्टं हि सर्वथा नित्यत्वं शब्दे जैनस्य । अर्थावणत्वं तु प्रत्यक्षबाधितम् । आदिशब्देनानुमानादिबाधितपक्षपरिग्रहः । ५ तत्रानुमानबाधितः यथा-नित्यः शब्द इति । आगमबाधितः यथा-प्रेत्याऽसुखप्रदो धर्म इति । स्ववचनबाधितः यथा-माता मे वन्ध्वेति । लोकबाधितः यथा-शुचि नरशिरःकपालमिति । तैयोरनिष्टाध्यक्षादिबाधितयोः साध्यत्वं मा भूदितीष्टाबाधितवचनम् ।

१० ननु यथा शब्दे कथञ्चिदनित्यत्वं जैनस्येष्टं तथा सर्वथाऽनित्यत्वमाकाशगुणत्वं चार्थस्येति तदपि साध्यमनुपज्यते । न च बादिनो यदिष्टं तदेव साध्यमित्यभिधातव्यम् ; सामान्याभिधाधित्वेनेष्टस्यान्यत्राप्यविशेषात् । इत्याशङ्कपनोदार्थमाह—

न चासिद्धवदिष्टं प्रतिवादिनः ॥ २३ ॥

१५ विशेषणम् । न हि सर्वं सर्वापेक्षया विशेषणं प्रतिनियतत्वाद्द्विशेषणविशेष्यभावस्य । तत्रासिद्धमिति साध्यविशेषणं प्रतिबाधपेक्षया न पुनर्बाधपेक्षया, तस्यार्थस्वरूपप्रतिपादकत्वात् । न चाविज्ञातार्थस्वरूपः प्रतिपादको नामातिप्रसङ्गात् । प्रतिवादिनस्तु प्रतिपाद्यत्वात्तस्य चाविज्ञातार्थस्वरूपत्वाविरोधात् तदपेक्षयैवेदं २० विशेषणम् । इष्टमिति तु साध्यविशेषणं बाधपेक्षया, बादिनो हि यदिष्टं तदेव साध्यं न सर्वस्य । तदिष्टमप्यध्यक्षाद्यबाधितं साध्यं भवतीति प्रतिपत्तव्यं तत्रैव साधनसामर्थ्यात् ।

तदेव समर्थयमानः प्रत्यायनाय हीत्याद्याह—

प्रत्यायनाय हीच्छा वक्तुरेव ॥ २४ ॥

२५ इच्छया खलु विपयीकृतमिष्टमुच्यते । स्वाभिप्रेतार्थप्रतिपादनाय चेच्छा वक्तुरेव ।

तस्य चोक्तप्रकारस्य साध्यस्य हेतौर्वाप्तिप्रयोगकालापेक्षया साध्यमित्यादिना भेदं दर्शयति—

१ शब्दः अर्थावण शब्दुक्ते । २ प्रत्यभिज्ञायमानत्वादिति हेतुः । ३ कृतत्वादिति हेतुना बाध्यः पक्षोऽत्र । ४ पुरुषाभित्वात्परमवत् । ५ पुरुषसयोगेपि भगवत्त्वात् प्रसिद्धवन्भावत् । ६ प्राण्यङ्गत्वाच्छङ्गशुक्तिवत् । ७ साध्ययोः । ८ वैशेषिकस्य । ९ जैनस्य । १० प्रतिवादिन्यपि । ११ इष्टाऽसिद्धयोर्मध्ये । १२ सम्बन्धिनः ।

साध्यं धर्मः क्वचित्तद्विशिष्टो वा धर्मो ॥ २५ ॥

क्वचिद्ब्रह्मातिकाले साध्यं धर्मो नित्यत्वादिस्तेनैव हेतोर्व्याप्ति-
सम्भवात् । प्रयोगकाले तु तेन साध्यधर्मेण विशिष्टो धर्मो साध्य-
मभिधीयते, प्रतिनियतसाध्यधर्मविशेषणविशिष्टतया हि धर्मिणः
साध्यितुमिष्टत्वात् साध्यव्यपदेशाविरोधः ।

५

अन्यैव पर्यायमाह—

पक्ष इति यावत् ॥ २६ ॥

ननु च कथं धर्मो पक्षो धर्मधर्मिसमुदायस्य तत्त्वात् । तन्न;
साध्यधर्मविशेषणविशिष्टतया हि धर्मिणः साध्यितुमिष्टस्य
श्रमभिधाने दोषाभावात् ।

१०

स च पक्षत्वेनाभिप्रेतः—

प्रसिद्धो धर्मो ॥ २७ ॥

तत्रप्रसिद्धिश्च क्वचिद्विकल्पतः क्वचित्प्रत्यक्षादितः क्वचिच्चोभयत
इति प्रदर्शनार्थम्—‘प्रत्यक्षसिद्धस्यैव धर्मित्वम्’ इत्येकान्तनिरा-
करणार्थं च विकल्पसिद्ध इत्याद्याह—

१५

विकल्पसिद्धे तस्मिन् सत्तेतरे साध्ये ॥ २८ ॥

अस्ति सर्वज्ञः नास्ति खरविषाणमिति ॥ २९ ॥

विकल्पेन सिद्धे तस्मिन्धर्मिणि सत्तेतरे साध्ये हेतुसामर्थ्यतः ।
यथा अस्ति सर्वज्ञः सुनिश्चितासम्भवद्वाधकप्रमाणत्वात्, नास्ति
खरविषाणं तद्विपर्ययादिति । न खलु सर्वज्ञखरविषाणयोः सद-
सत्तायां साध्यायां विकल्पादन्यतः सिद्धिरस्ति; तत्रेन्द्रियव्यापा-
राभावात् ।

ननु चेन्द्रियप्रतिपन्न एवार्थं मनोविकल्पस्य प्रवृत्तिप्रतीतेः कथं
तत्रेन्द्रियव्यापाराभावे विकल्पस्यापि प्रवृत्तिः; इत्यप्यपेशलम्;
धर्मो धर्मोदौ तत्प्रवृत्त्यभावानुपैक्षात् । आगमसामर्थ्यप्रभवत्वेना-
स्यात्र प्रवृत्तौ प्रकृतेः सत्प्रवृत्तिरस्तु विशेषाभावात् ।

१ शब्दस्य । २ इति । ३ पक्ष इति । ४ अनुमाने । ५ निश्चिनसवादः सवादः
(निश्चितसवादासंवादः) शब्दप्रत्ययो विकल्पत्वेन । ६ असत्ता । ७ इन्द्रिय-
व्यापाराभावात् । ८ शब्दगम्यत्वाविशेषात् ।

प्रमाणोभयसिद्धे तु साध्यधर्मविशिष्टता ॥ ३० ॥
अग्निमानयं देशः परिणामी शब्द इति यथा ३१

प्रमाणं प्रत्यक्षादिकम्, उभयं प्रमाणविकल्पौ, ताभ्यां सिद्धे पुनर्धर्मिणि साध्यधर्मेण विशिष्टता साध्या । यथाग्निमानयं देशः, परिणामी शब्द इति । देशो हि धर्मित्वेनोपात्तोऽभ्यक्षप्रमाणत एव प्रसिद्धः, शब्दस्तूभाभ्याम् । न खलु देशकालान्तरिते ध्वनौ प्रत्यक्षं प्रवर्त्तते, श्रूयमाणमात्र एवास्य प्रवृत्तिप्रतीतेः । विकल्पस्य त्वऽनियतविषयतया तत्र प्रवृत्तिरविरुद्धैव ।

ननु चैवं देशस्याप्यग्निमत्त्वे साध्ये कथं प्रत्यक्षसिद्धता? तत्र ३० हि दृश्यमानभागस्याग्निमत्त्वसाधने प्रत्यक्षवाधनं साधनवैफल्यं वा, तत्र साध्योपलब्धेः । अदृश्यमानभागस्य तु तत्साधने कुतस्तत्प्रत्यक्षतेति? तदप्यसमीचीनम्; अवयविद्रव्यापेक्षया पर्वतादेः सांख्यबह्वारिकप्रत्यक्षप्रसिद्धतामिधानात् । अतिसूक्ष्मेक्षिकापर्यालोचने न किञ्चित्प्रत्यक्षं स्यात्, बहिरन्तर्वाऽसदादिप्रत्यक्षस्या- ३५ शेषविशेषतोऽर्थसाक्षात्करणेऽसमर्थत्वात्, योगिप्रत्यक्षस्यैव तदसामर्थ्यात् ।

ननु प्रयोगकालब्रह्मासिकालेपि तद्विशिष्टस्य धर्मिण एव साध्यव्यपदेशः कुतो न स्यादित्याशङ्क्याह—

व्याप्तौ तु साध्यं धर्म एव ॥ ३२ ॥

२० न पुनस्तद्वान् ।

अन्यथा तदघटनात् ॥ ३३ ॥

अनेन हेतोरन्वयासिद्धेः । न खलु यत्र यत्र कृतकत्वादिकं प्रतीयते तत्र तत्रानित्यत्वादिविशिष्टशब्दाद्यन्वयोस्ति ।

“ननु प्रसिद्धो धर्मोत्यादिपक्षलक्षणप्रणयनमयुक्तम्; अस्ति सर्वश २, इत्याद्यनुमानप्रयोगे पक्षप्रयोगस्यैवासम्भवात् अर्थादापन्नत्वत्तस्य । अर्थादापन्नस्याप्यभिधाने पुनरुक्तत्वप्रसङ्गः—“अर्थादापन्नस्य स्वशब्देनाभिधानं पुनरुक्तम्” [न्यायसू० ५।२।१५] इत्यभिधानात् । तत्प्रयोगेपि च हेत्वादिवचनमन्तरेण साध्याप्रसिद्धे-

१ प्रसिद्धः । २ शब्दस्य केवलप्रत्यक्षतः सिध्यभावप्रकारेण । ३ स्यात् । ४ नाऽ-
वयव (प्रदेश)द्रव्यापेक्षया । ५ असर्वशप्रत्यक्ष । ६ विचार । ७ साध्यवर्त ।
८ वीरः । ९ अर्थादापन्नस्य ।

साध्यवचनादेव च तत्प्रसिद्धेर्व्यर्थः पक्षप्रयोगः' इत्याशङ्क्य साध्य-
धर्माधारेत्यादिना प्रतिविधत्ते—

साध्यधर्माधारसन्देहापनोदाय गम्यमानस्यापि

पक्षस्य वचनम् ॥ ३४ ॥

साध्यधर्मोऽस्तित्वादिः, तस्याधार आश्रयः यत्रासौ साध्यधर्मो
वर्तते, तत्र सन्देहः—किमसौ साध्यधर्मोऽस्तित्वादिः सर्वज्ञे वर्तते
सुखादौ वेति, तस्यापनोदाय गम्यमानस्यापि पक्षस्य वचनम् ।

साध्यधर्मिणि साधनधर्मावबोधनाय

पक्षधर्मोपसंहारवत् ॥ ३५ ॥

तस्याऽवचनं साध्यसिद्धिप्रतिबन्धकत्वात्, प्रयोजनाभावाद्वा ? १०
तत्र प्रथमपक्षोऽयुक्तः; वादिना साध्याविनाभावनियमैकलक्षणेन
हेतुना स्वपक्षसिद्धौ साध्यितुं प्रस्तुतायां प्रतिज्ञाप्रयोगस्य
तत्प्रतिबन्धकत्वाभावात् ततः प्रतिपक्षासिद्धेः । द्वितीयपक्षोप्य-
युक्तः; तत्प्रयोगे प्रतिपाद्यप्रतिपत्तिविशेषस्य प्रयोजनस्य सद्भा-
वात्, पक्षाऽप्रयोगे तु केषाञ्चिन्मन्दमतीनां प्रकृतार्थाप्रतिपत्तेः । १५
ये तु तत्प्रयोगमन्तरेणापि प्रकृतार्थं प्रतिपद्यन्ते तान्प्रति तदप्रयो-
गोऽभीष्ट एव । “प्रयोगपरिपाटी तु प्रतिपाद्यानुरोधतः” []
इत्यभिधानात् । ततो युक्तो गम्यमानस्याप्यस्य प्रयोगः, कथ-
मन्यथा शास्त्रादावपि प्रतिज्ञाप्रयोगः स्यात् ? न हि शास्त्रे नियत-
कथायां प्रतिज्ञा नाभिधीयते—‘अग्निरत्र धूमात्, वृक्षोयं शिशपा-
त्वात्’ इत्याद्यभिधानानां तत्रोपलम्भात् । परानुग्रहप्रवृत्तानां
शास्त्रकाराणां प्रतिपाद्यावबोधनाधीनधियां शास्त्रादौ प्रतिज्ञा-
प्रयोगो युक्तिमानेवोपयोगित्वात्तस्येत्यभिधाने वादेपि सोऽस्तु
तत्रापि तेषां तादृशत्वात् ।

अमुमेवार्थं को वेत्यादिना परोपहसनव्याजेन समर्थयते— २५

को वा त्रिधा हेतुमुक्त्वा समर्थयमानो न

पक्षयति ? ॥ ३६ ॥

को वा प्रामाणिकः कार्यस्वभावानुपलम्भभेदेन पक्षधर्मत्वादि-

१ न्यासिप्रदर्शनद्वारेण । २ सुनिश्चिताऽसन्भवद्वाधकप्रमाणत्वायमिति साधनस्य
पक्षपरत्वेन प्रदर्शनानुपसंहारस्तद्वत् । ३ अस्ति सर्वज्ञ इति । ४ गम्यमानस्य पक्षस्य
प्रयोगो न स्यादिति । ५ सुगोप्यात् । ६ धर्मकीर्त्यादीनाम् । ७ सीगतेन । ८ निरेण ।

रूपत्रयमेवेन वा त्रिधा हेतुमुक्त्वाऽसिद्धत्वादिदोषपरिहारद्वारेण समर्थयमानो न पक्षयति ? अपि तु पक्षं करोत्येव । न चाऽसमर्थितो हेतुः साध्यसिद्ध्यङ्गमतिप्रसङ्गात् । ततः पक्षप्रयोगमनिच्छता हेतुमनुक्तैव तत्समर्थनं कर्त्तव्यम् । हेतोरवचने कस्य ५ समर्थनमिति चेत् ? पक्षस्याप्यनभिधाने क्व हेत्वादिः प्रवर्त्तताम् ? गम्यमाने प्रतिज्ञाविषये एवेति चेत् ; गम्यमानस्य हेत्वादेरपि समर्थनमस्तु । गम्यमानस्यापि हेत्वादेर्मन्दमतिप्रतिपत्त्यर्थं वचने तदर्थमेव प्रतिज्ञावचनमप्यस्तु विशेषाभावात् । ततः साध्यप्रतिपत्तिमिच्छता हेतुप्रयोगवत्पक्षप्रयोगोप्यभ्युपगन्तव्यः । १० तद्व्यस्यैवानुमानाङ्गत्वात्, इत्याह—

एतद्व्यमेवानुमानाङ्गम्, नोदाहरणम् ॥ ३७ ॥

ननु “पक्षहेतुदृष्टान्तोपनयनिगमनान्यवयवाः” [न्यायसू० १।१।३२ (?)] इत्यभिधानाद् दृष्टान्तादेरप्यनुमानाङ्गत्वसम्भवादेतद्व्यमेवाङ्गमित्ययुक्तमुक्तम् । प्रतिज्ञा ह्यागमः । हेतुरनुमानम्, १५ प्रतिज्ञातार्थस्य तेनानुमीयमानत्वात् । उदाहरणं प्रत्यक्षम्, “वादिप्रतिवादिनोर्यत्र बुद्धिसाम्यं तदुदाहरणम्” [] इति वचनात् । उपनय उपमानम्, दृष्टान्तधर्मिसाध्यधर्मिणोः सादृश्यात्, “असिद्धसाध्यर्थासाध्यसाध्यननुपमानम्” [न्यायसू० १।१।६] इत्यभिधानात् । सर्वेषामेकविपर्ययत्वप्रदर्शनफलं निगमनमित्या- २० शङ्कोदाहरणस्य तावत्तदङ्गत्वं निराकुर्वन्नाह—नोदाहरणम् । अनुमानाङ्गमिति सम्बन्धः ।

तद्धि किं साक्षात्साध्यप्रतिपत्त्यर्थमुपादीयते, हेतोः साध्याविनाभावनिर्द्देशार्थं वा, व्यातिसरणार्थं वा प्रकारान्तरासम्भवात् ? तत्राद्यविकल्पोऽयुक्तः—

२५ न हि तत्साध्यप्रतिपत्त्यङ्गं तत्र यथोक्तहेतोरेव व्यापारात् ॥ ३८ ॥

१ हेत्वाभासस्यापि साध्यसिद्ध्यङ्गताप्रसङ्गात् । २ न केवलं हेतोः । ३ साम्यं च । ४ साध्यसाधनस्यैव परिहारेण दृष्टान्तस्य समर्थनमादिशब्देन ग्राह्यम् । ५ एतत् । ६ कारणे बुद्धे । ७ महानसादि । ८ धूमवस्त्रेण । ९ प्रसिद्धं महानसं तेन साधर्म्यं पर्वतस्य धूमवस्त्रेण । १० धूमवांश्यायम् । ११ धूमवस्त्रस्येव साध्यत्वं पर्वतस्य साध्यं तस्य साधनं, ज्ञानम् । १२ प्रमाणाजानम् । १३ अप्रित्तम् । १४ अक्रमपरम्परया साध्यप्रतिपत्तिः कथनेर्वाविषादेतोः साध्यसिद्धिरिति ।

न हि तत् साध्यप्रतिपत्त्यङ्गं तत्र यथोक्तहेतोरेव साध्याविना-
भावनियमैकलक्षणस्य व्यापारात् । द्वितीयविकल्पोप्यसम्भाव्यः—

तद्विनाभावनिश्चयार्थं वा विपक्षे बाधकादेव
तत्सिद्धेः ॥ ३९ ॥

न हि हेतोस्तेन साध्येनाविनाभावस्य निश्चयार्थं वा तदुपादानं^५
युक्तम् ; विपक्षे बाधकादेव तत्सिद्धेः । न हि सपक्षे सत्त्वमात्रा-
द्धेतोर्व्याप्तिः सिद्ध्यति, 'स श्यामस्तत्पुत्रत्वादितरनत्पुत्रवत्' इत्यत्र
तदाभासेपि तत्सम्भवात् । ननु साकल्येन साध्यनिवृत्तौ साधन
निवृत्तेरत्रासम्भवात्परत्र गौरुपि तत्पुत्रे तत्पुत्रत्वस्य भावाच्च
व्याप्तिः; तर्हि साकल्येन साध्यनिवृत्तौ साधननिवृत्तिनिश्चयरूपा-^{१०}
द्वार्थकादेव व्याप्तिप्रसिद्धेरलं दृष्टान्तकल्पनया ।

व्यक्तिरूपं च निदर्शनं सामान्येन तु व्याप्तिः
तत्रापि तद्विप्रतिपत्तावनवस्थानं स्यात्
दृष्टान्तान्तरापेक्षणात् ॥ ४० ॥

किञ्च, चादिप्रतिवादिनोर्यत्र बुद्धिसाम्यं स दृष्टान्तो भवति^{१५}
प्रतिनियतव्यक्तिरूपः, यथाऽऽग्नौ साध्ये महानसादिः । व्यक्तिरूपं
च निदर्शनं कथं तद्विनाभावनिश्चयार्थं स्यात् ? प्रतिनियतव्यक्तौ
तन्निश्चयस्य कर्तुमशक्येः । अनियतदेशकालाकाराघातया सामा-
न्येन तु व्याप्तिः । कथमन्यथान्यत्र साधनं साध्यं साधयेत् ?
तत्रापि दृष्टान्तेपि तस्यां व्याप्तौ विप्रतिपत्तौ सत्यां दृष्टान्तान्तरा-^{२०}
न्वेषणेऽनवस्थानं स्यात् ।

नापि व्याप्तिस्मरणार्थं तथाविधहेतुप्रयो-
गादेव तत्स्मृतेः ॥ ४१ ॥

नापि व्याप्तिस्मरणार्थं दृष्टान्तोपादानं तथाविधस्य प्रतिपन्ना-
विनाभावस्य हेतोः प्रयोगादेव तत्स्मृतेः । एवं चाप्रयोजनं^{२५}
तदुदाहरणम् ।

१ ऊहात् । २ अविनाभावः । ३ ऊहात् । ४ पर्वते । ५ साम्यसाधनयोः ।
६ प्रतिनियतव्यक्तौ तन्निश्चयस्य कर्तुमशक्येति तद्भावयति । ७ सामान्येन व्याप्तिर्न
साधि । ८ दृष्टान्तादन्यत्र ।

तत्परमभिधीयमानं साध्यधर्मिणि साध्य-
साधने सन्देहयति ॥ ४२ ॥

कुतोऽन्यथोपनयनिगमने ? ॥ ४३ ॥

परं केवलमभिधीयमानं साध्यसाधने साध्यधर्मिणि सन्देह-
यति सन्देहवती करोति । कुतोऽन्यथोपनयनिगमने ?

मा मूढदृष्टान्तस्यानुमानं प्रत्यङ्गत्वमुपनयनिगमनयोस्तु स्यादि-
त्याशङ्कापनोदार्थमाह—

न च ते तदङ्गे साध्यधर्मिणि हेतुसाध्ययो-
र्वचनादेवाऽसंशयात् ॥ ४४ ॥

१० न च ते तदङ्गे साध्यधर्मिणि हेतुसाध्ययोर्वचनादेव हेतु-
साध्यप्रतिपत्तौ संशयाभावात् । तथापि दृष्टान्तौदेरनुमानाव-
यवत्वे हेतुरूपत्वे वा—

समर्थनं वा वरं हेतुरूपमनुमानावयवो-
वास्तु साध्ये तदुपयोगात् ॥ ४५ ॥

१५ समर्थनमेव वरं हेतुरूपमनुमानावयवो वास्तु साध्ये तस्यो-
पयोगात् । समर्थनं हि नाम हेतोरसिद्धत्वादिदोषं निराकृत्य
स्वसाध्येनाऽविनाभावसाधनम् । साध्यं प्रति हेतोरगमकत्वे च
तस्यैवोपयोगो नान्यस्येति ।

ननु व्युत्पन्नप्रज्ञानां साध्यधर्मिणि हेतुसाध्ययोर्वचनादेवा-
२० संशयादर्थप्रतिपत्तेर्दृष्टान्तादिवचनमनर्थकमस्तु । बालानां त्वव्यु-
त्पन्नप्रज्ञानां व्युत्पत्त्यर्थं तन्नानर्थकमित्याह—

बालव्युत्पत्त्यर्थं तन्नयोपगमे शास्त्र एवासौ
न वादेऽनुपयोगात् ॥ ४६ ॥

बालव्युत्पत्त्यर्थं तन्नयोपगमे दृष्टान्तोपनयनिगमनत्रयाभ्युप-

१ यदि सन्देहवती न करोति । २ उपनयनिगमनादेश्च । ३ सपक्षे दृष्टान्ते
सत्त्वमुपनययश्च हेतुस्वरूपम् । कुतः ? त्रिरूपो हेतुर्यत इति सौगतः । ४ हेतुलक्षणं
कीदृशम् ? दृष्टान्तोपनयनिगमनलक्षणत्रिरूपत्वप्रदर्शनस्वरूपम् । ५ हेतुरूपोस्तु ।
कथम् ? हेतोः समर्थनं हेतुरेवेत्यनेन प्रकारेण । ६ विपक्षे साकल्येन बाधकप्रमाण-
प्रदर्शनं हेतुसमर्थनम् । ७ पतदेव ।

गमे, शास्त्र एवासौ तदभ्युपगमः कर्तव्यः न चादेऽनुपयोगात् । न खलु चादकाले शिष्या व्युत्पाद्यन्ते व्युत्पन्नप्रज्ञानामेव चादेऽधिकारात् । शास्त्रे चोदाहरणादौ व्युत्पन्नप्रज्ञा चादिनो चादकाले ये प्रतिवादिनो यथा प्रतिपद्यन्ते तान् तथैव प्रतिपादयितुं समर्था भवन्ति, प्रयोगपरिपाट्याः प्रतिपाद्यानुरोधतो जिनपतिमतानु-^५ सारिभिरभ्युपगमात् ।

तत्र तद्व्युत्पादनार्थं दृष्टान्तस्य स्वरूपं प्रकारं चोपदर्शयति—

दृष्टान्तो द्वेषाऽन्वयव्यतिरेकभेदात् ॥ ४७ ॥

दृष्टो हि विधिनिषेधरूपतया चादिप्रतिवादिभ्यामविप्रतिपत्त्या प्रतिपन्नोऽन्तः साध्यसाधनधर्मो यत्रासौ दृष्टान्त इति व्युत्पत्तेः । १०

अथ कोऽन्वयदृष्टान्तः कश्च व्यतिरेकदृष्टान्त इति चेत्—

साध्यव्याप्तं साधनं यत्र प्रदर्श्यते सोन्वय-

दृष्टान्तः ॥ ४८ ॥

यथासौ साध्ये महानसादिः ।

साध्याभावे साधनव्यतिरेको यत्र कथ्यते स १५

व्यतिरेकदृष्टान्तः ॥ ४९ ॥

यथा तस्मिन्नेव साध्ये महाहदादिः ।

अथ को नाम उपनयो निगमनं वा किमित्याह—

हेतोरुपसंहार उपनयः ॥ ५० ॥

प्रतिज्ञायास्तु निगमनम् ॥ ५१ ॥

२०

प्रतिज्ञायास्तूपसंहारो निगमनम् । उपनयो हि साध्याविना-
भाचित्वेन विशिष्टं साध्यधर्मिण्युपनीयते येनोपदर्श्यते हेतुः
सोमिधीयते । निगमनं तु प्रतिज्ञाहेतुदाहरणोपनयाः साध्य-
लक्षणैर्कार्यतया निगम्यन्ते सम्बद्ध्यन्ते येन तदिति ।

तच्चानुमानं र्थवयवं र्थवयवं पञ्चावयवं वा द्विप्रकारं भवतीति २५
दर्शयन्—

१ शास्त्रे यदुदाहरणादि तस्मिन् । २ वा । ३ एवं च सति । ४ सामान्यतः
स्वरूपं दृष्टान्तनोक्तं शेषतस्तत्स्वरूपं तु साध्यन्यासमित्यादिना दर्शयति । ५ वसः ।
६ वैतस्य । ७ मीमांसकस्य । ८ योगस्य ।

तदनुमानं द्वेषा ॥ ५२ ॥

इत्याह ।

कुतस्तद् द्वेषेति चेत् ?

स्वार्थपरार्थभेदात् ॥ ५३ ॥

५ तत्र—

स्वार्थमुक्तलक्षणम् ॥ ५४ ॥

स्वार्थमनुमानं साधनात्साध्यविज्ञानमित्युक्तलक्षणम् ।

किं पुनः परार्थानुमानमित्याह परार्थमित्यादि—

परार्थं तु तदर्थपरामर्शिवचनाज्जातम् ॥ ५५ ॥

१० तस्य स्वार्थानुमानस्यार्थः साध्यसाधने तत्परामर्शिवचनाज्जातं यत्साध्यविज्ञानं तत्परार्थानुमानम् ।

ननु वचनात्मकं परार्थानुमानं प्रसिद्धम्, तच्चोक्तप्रकारं साध्य-
विज्ञानं परार्थानुमानमिति वर्णयता कथं सङ्गृहीतमित्याह—

तद्वचनमपि तद्धेतुत्वात् ॥ ५६ ॥

१५ तद्वचनमपि तदर्थपरामर्शिवचनमपि तद्धेतुत्वात् ज्ञानलक्षण-
मुख्यानुमानहेतुत्वादुपचारेण परार्थानुमानमुच्यते । उपचार-
निमित्तं चास्य प्रतिपादकप्रतिपाद्यापेक्षयानुमानकार्यकारणत्वम् ।
तत्प्रतिपादकज्ञानलक्षणानुमान(नं)हेतुः कारणं यस्य तद्वचनस्य,
तस्य वा प्रतिपाद्यज्ञानलक्षणानुमानस्य हेतुः कारणम्, तद्भाष-
२० स्तद्धेतुत्वम्, तस्मादिति । मुख्यरूपतया तु ज्ञानमेव प्रमाणं
परनिरपेक्षतयाऽर्थप्रकाशकत्वादिति प्राक्प्रतिपादितम् ।

यथा चानुमानं द्विप्रकारं तथा हेतुरपि द्विप्रकारो भवतीति
दर्शनार्थं स हेतुर्द्वैतेत्याह—

स हेतुर्द्वेषा उपलब्ध्यनुपलब्धिभेदात् इति ॥ ५७ ॥

२५ योऽविनाभावलक्षणलक्षितो हेतुः प्राक्प्रतिपादितः स द्वेषा
भवति उपलब्ध्यनुपलब्धिभेदात् ।

तत्रोपलब्धिर्विधिसाधिकैवानुपलब्धिश्च प्रतिषेधसाधिकैवैत्य-
नयोर्विषयनियममुपलब्धिरित्यादिना विघटयति—

१ अनेन प्रकारेण । २ तद्वदिति । ३ परार्थानुमानमुच्यते इति सम्बन्धः ।
४ हेतोः । ५ अनेन प्रकारेण ।

उपलब्धिर्विधिप्रतिषेधयोरनुपलब्धिश्च ॥ ५८ ॥

अविनाभावनिमित्तो हि साध्यसाधनयोर्गम्यगमकभावः । यथा चोपलब्धेर्विधौ साध्येऽविनाभावाद्गमकत्वं तथा प्रतिषेधेऽपि । अनुपलब्धेश्च यथा प्रतिषेधे ततो गमकत्वं तथा विधावैपीत्यग्रे स्वयमेवाचार्यो वक्ष्यति ।

सा चोपलब्धिर्द्विप्रकारा भवत्यविरुद्धोपलब्धिर्विरुद्धोपलब्धिश्चेति—

अविरुद्धोपलब्धिर्विधौ षोढा व्याप्यकार्यकारण- पूर्वोत्तरसहचरभेदात् ॥ ५९ ॥

तत्र साध्येनाविरुद्धस्य व्याप्यादेरुपलब्धिर्विधौ साध्ये षोढा १० भवति व्याप्यकार्यकारणपूर्वोत्तरसहचरभेदात् ।

ननु कार्यकारणभावस्य कुतश्चित्प्रमाणादप्रसिद्धेः कथं कार्यकारणस्य तद्वा कार्यस्य गमकं स्यादित्यप्यास्तां तावद्विषयपरिच्छेदे सम्बन्धपरीक्षायां कार्यकारणतादिसम्बन्धस्य प्रसाधयिष्यमाणत्वात् ।

ननु प्रसिद्धेऽपि कार्यकारणभावे कार्यमेव कारणस्य गमकं तस्यैव तेनाविनाभावात्, न पुनः कारणं कार्यस्य तदभावात्; इत्यसङ्गतम्; कार्याविनाभावितयाऽवधारितस्यानुमानकालप्राप्तस्य छत्रादेर्विशिष्टकारणस्य छत्रादिकार्यानुमापकत्वेन सुप्रसिद्धत्वात् । न ह्यनुकूलमात्रमन्त्यैक्षणप्राप्तं वा कारणं लिङ्गमुच्यते, येन प्रतिबन्ध-
वैकल्यैः सम्भवान्निमित्तकारि स्यात्, द्वितीयक्षणे कार्यस्य प्रत्यक्षीकरणादनुमानानर्थक्यं वा । तदेव समर्थयमानो रसादेकसामर्थ्यनुमानेनेत्याद्याह—

रसादेकसामर्थ्यनुमानेन रूपानुमानमिच्छद्भिरि- ष्टमेव किञ्चित्कारणं हेतुर्यत्र सामर्थ्या- प्रतिबन्धकारणान्तरावैकल्ये ॥ ६० ॥

१ साध्ये । अविनाभावाद्गमकत्वमुपलब्धेः । २ साध्ये । ३ साध्ये । ततो गमकत्वमुपलब्धेः । ४ स्वभावहेतुरयम् । ५ ज्ञानाद्वैतवादी शून्यवादी वा बौद्ध-विशेषः प्राह । ६ न केवलमग्रे प्राक्तनं वक्ष्यतीत्यसि । ७ आदिना सयोगादिग्रहणम् । ८ चन्द्रशुद्धेर्वा । ९ आदिना समुद्रवृद्धिः । १० तन्तुसंयोगरूपम् । ११ मन्त्रीपथदिना प्रतिबन्धः । १२ इन्द्रः । १३ सहकारिणा क्षिप्रादीना वैकल्यम् ।

आस्वाद्यमानाद्भि रसाचञ्जनिका सामग्र्यनुमीयते । पश्चात्त-
दनुमानेन रूपानुमानम् । सजातीयं हि रूपक्षणान्तरं जनयन्नेव
प्राक्तनो रूपक्षणो विजातीयरसादिक्षणान्तरोत्पत्तौ प्रभुर्मेवेच्चा-
न्यथा । तथा चैकसामग्र्यनुमानेन रूपानुमानमिच्छद्भिरिष्टमेव
५ किञ्चित्कारणं हेतुर्यत्र सामर्थ्याप्रतिबन्धकारणान्तरावैकत्वे
भवतः ।

अथ पूर्वोत्तरचरिणोः प्रतिपादितहेतुभ्योर्थान्तरत्वसमर्थ-
नार्थमाह—

न च पूर्वोत्तरकालवर्त्तिनोस्तादात्म्यं तदुत्पत्तिर्वा
१० कालव्यवधाने तदनुपलब्धेः ॥ ६१ ॥

प्रयोगः—र्यद्यत्काले अनन्तरं वा नास्ति न तस्य तेन तादात्म्यं
तदुत्पत्तिर्वा यथा भविष्यच्छङ्खचक्रवर्त्तिकाले असतो रावणादेः,
नास्ति च शकटोदयादिकाले अनन्तरं वा कृत्तिकोदयादिकमिति ।
तादात्म्यं हि समसमयस्यैव कृतकत्वानित्यत्वादेः प्रतिपन्नम् ।
१५ अग्निधूमादेश्चान्योन्यमव्यवहितस्यैव तदुत्पत्तिः, न पुनव्यवहित-
कालस्य अतिप्रसङ्गात् ।

ननु प्रज्ञाकरमिप्रायेण भाविरोहिण्युदयकार्यतया कृत्तिकोद-
यस्य गमकत्वात्कथं कार्यहेतौ नास्यान्तर्भाव इति चेत्? कथ-
मेवैमभूद्भरण्युदयः कृत्तिकोदयादित्यनुमानम्? अथ भरण्यु-
२० दयोपि कृत्तिकोदयस्य कारणं तेनायमदोषः; ननु येन स्वभावेन
भरण्युदयात्कृत्तिकोदयस्तेनैव यदि शकटोदयात्; तदा भरण्यु-
दयादिवाऽनोपि पश्चादसौ स्यात् । यथा च शकटोदयात्प्रोक्तस्यैव
भरण्युदयादपि । यदि चातीतानागतयोरेकत्र कार्यं व्यापारः;
तर्ह्यस्वाद्यमानरसस्यातीतो रसो भावि च रूपं हेतुः स्यात् । ततो

१ तस्य सङ्कारिकारणस्य । २ समर्थः । ३ विक्षिप्तं नानुक्तादिरूपं करणम् ।
४ मणिमन्त्रादिना । ५ क्षित्युदकादिकस्य । ६ हेतुः । ७ साध्यसाधनयोः ।
८ तादात्म्यतदुत्पत्तौ धर्मिणो कृत्तिकोदयशकटोदययोर्न भवतः शकटोदयकालेऽनन्तरं
वा कृत्तिकोदयस्यानुपलब्धेः । ९ तादात्म्यं तदुत्पत्तिर्वा । १० सम्बन्धानैकान्तिकत्वे
सतीर्दं वाक्यम् । ११ रावणशङ्खचक्रवर्त्तिनोरतीतानागतयोस्तादात्म्यतदुत्पत्तिप्रसङ्गात् ।
१२ बौद्धाना मध्ये प्रहाकरबौद्धो नाम भाविभरणवादी कश्चिद्बन्धकारः । १३ पूर्व-
चरस्य । १४ पूर्वचरस्य कार्यहेतुत्वान्तर्भावप्रकारेण । १५ भूतकारणवादिमतमाभिलो-
च्यते । १६ अनुमानामावलक्षणः । १७ कृत्तिकोदयः । १८ रोहिणी । १९ कृत्ति-
कोदयः । २० प्राक् कृत्तिकोदयः स्यात् ।

न वर्षमानस्य रूपस्य चातीतस्य वा प्रतीतिः । इत्ययुक्तमुक्तम्—“अतीतैककालोर्ना गतिर्नाऽनागतानाम्” [प्रमाणवा० स्वधृ० १।१३] इति । अथान्यतरकार्यमसौ; तर्ह्यऽन्यतरस्यैवातः प्रतीतिर्भवेत् ।

ननु स्वसत्तासमवायात्पूर्वमसन्तोपि मरणोदयोऽरिष्टादिकार्यकारिणो दृष्टास्ततोऽनेकान्तो हेतोरित्याशङ्क्य भाव्यतीतयोरित्या-५ दिना प्रतिविधत्ते—

भाव्यतीतयोर्मरणजाग्रद्वोधयोरपि
नारिष्टोद्वोधौ प्रति हेतुत्वम् ॥ ६२ ॥

तद्वापाराश्रितं हि तद्भावभावित्वम् ॥ ६३ ॥

न च पूर्वमेवोत्पन्नमरिष्टं करतलरेखादिकं वा भाविनो मरणस्य १० राज्यादेर्व्यापारमपेक्षते, स्वयमुत्पन्नस्यापरापेक्षायोगात् । अथास्योत्पत्तिर्मरणादिनैव क्रियते; न, असेतः खरविषाणवत्कर्तृत्वायोगात् । कार्यकालेऽसत्त्वेपि स्वकाले सत्त्वाददोषश्चेत्; ननु किं भाविनो मरणादेः स्वकाले पूर्वं सत्त्वम्, अरिष्टादेर्वा । भाविनः पूर्वं सत्त्वे ततः पश्चादरिष्टादिकमुपजायमानं पश्चात्त्वं न पूर्वम् । १५ इत्ययुक्तमुक्तम्—“पूर्वमसन्तोपि मरणादयोऽरिष्टादिकार्यकारिणः” इति । अथान्यभाविमरणाद्यपेक्षयारिष्टादिकं पूर्वमुच्यते; ननु तदपि सत् स्वकाले यदि ततः प्रागेव स्यात्; तर्हि पश्चात्त्वमरिष्टादिकं कथं ततः पूर्वमुच्यते ? अन्यभाविमरणाद्यपेक्षया चेदनवस्था ।

अथ पूर्वमरिष्टादिकं स्वकाले पश्चाद्भावमरणादिकं स्वकाल-२० नियतं भवेत्; तर्हि निष्पन्नस्य निराकाङ्क्षस्यास्य पश्चादुपजायमानेन मरणादिना कथं करणं कृतस्य करणायोगात् ? अन्यथा न क्वचित्कार्ये कस्यचित्कारणस्य कदाचिदुपरमः स्यात्, पुनःपुनस्तस्यैव करणात् । अथ निष्पन्नस्याप्यनिष्पन्नं किञ्चिद्रूपमस्ति तत्करणोत्तत्तत्करणं कैल्लप्यते, तत्ततो यद्यभिन्नम्; तदेव तत्तस्य च २५ न करणमित्युक्तम् । भिन्नं चेत्; तदेव तेन क्रियते नारिष्टादिकमित्यायातम् । तत्सम्बन्धिनस्तस्य करणात्तदपि कृतमिति चेत्;

१ अतीतवर्षकश्च अतीतैकौ कालौ येषां रूपादीनाम् । २ साधार्यानाम् । ३ शक्य-
दोदयमरण्युदययोर्मध्ये । ४ कारणस्य । ५ आदिना राज्यादयश्च । ६ उर्यात-
दसरेखादि । ७ अरिष्टादिना । ८ कारणस्य । ९ कारणस्य । १० इति चेत् ।
११ अरिष्टादिकाले । १२ मरणादेः सकाशात्पूर्वं सत्त्वम् । १३ सकाशात् ।
१४ द्वितीयविकल्पोयम् । १५ अरिष्टादेः । १६ परेण ।

मिर्झयोः कार्यकारणभावाच्चान्यैः सम्बन्धः, स्वयं सौगतैस्तथाऽभ्युपगमात् । तत्र चारिष्टादिना तत्क्रियेत, तेन चारिष्टादिकम् १ प्रथमपक्षेऽरिष्टादेरेव तन्निष्पत्तेर्मरणादिकमकिञ्चित्करमेव क्वचिदप्यनुपयोगात् । तेनारिष्टादिकरणे पूर्वनिष्पन्नस्य पश्चादुपजायमानेन तेन किं क्रियत इत्युक्तम् । अथाऽनिष्पन्नं किञ्चिदस्ति; तत्रापि पूर्ववच्चर्चानवस्था च ।

ननु यद्यत्र कार्यकारणभावो न स्यात्कथं तर्हि एकदर्शनादन्यानुमानमिति चेत्; 'अविनाभावात्' इति ब्रूमः । तादात्म्यतदुत्पत्तिलक्षणप्रतिबन्धेऽप्यविनाभावादेव गमकत्वम् । तदभावे १० वक्तृत्वतत्पुत्रत्वादेस्तादात्म्यतदुत्पत्तिप्रतिबन्धे सत्यपि असर्वज्ञत्वे श्यामत्वे च साध्ये गमकत्वाप्रतीतेः । तदभावेऽपि चाविनाभावप्रसादात् कृत्तिकोदय-चन्द्रोदय-उद्गृहीताण्डकपिपीलिकोर्त्सर्पण-एकाग्रफलोपलभ्यमानमधुरसखरूपाणां हेतूनां यथाक्रमं शकटोदय-समानसमयसमुद्रवृद्धि-भाविष्टृष्टि-समसमयसिन्दूरारुण- १५ रूपस्वभावेषु साध्येषु गमकत्वप्रतीतिश्च । तदुक्तम्—

“कार्यकारणभावादि सम्बन्धानां द्वयी गतिः ।

नियमानियमाभ्यां स्यादनियमादनङ्गता ॥ १ ॥

सर्वेऽप्यनियमा ह्येते नानुमोत्पत्तिकारणम् ।

नियमोत्पत्तेवलादेव न किञ्चिन्नानुमीयते ॥ २ ॥” []

२० ततः शरीरनिर्वर्त्तकाऽदृष्टादिकारणकलापादरिष्टकरतलरेखादयो निष्पन्नाः भाविनो मरणराज्यादेरनुमापका इति प्रतिपत्तव्यम् ।

जाग्रद्बोधस्तु प्रबोधबोधस्य हेतुरित्येतत्प्रौढेव प्रतिबिहितम्, स्वापाद्यवस्थायामपि ज्ञानस्य प्रसाधितत्वात् । ततो भाव्यतीत-

१ निष्पन्नानिष्पन्नयोः । २ सयोगादिः । ३ अन्यसम्बन्धाभावप्रकारेण । ४ अनिष्पन्नम् । ५ अनिष्पन्नरूपेण । ६ कार्ये । ७ अरिष्टादि । ८ चटन । ९ अन्यकारावस्थायामास्त्राद्यमानमाग्रफलं सिन्दूरारुणरूपशुक्लं भवति मधुरसोपेतत्वाद्गुणमुक्ता-अफलवत् । १० आदिना तादात्म्यसंयोगादि । ११ प्रकारः । १२ अविनाभाव-भावात् । १३ अनुमानं प्रति । १४ अनियमादनङ्गतेत्येतदेवाचष्टे सर्वे इत्यादिना । १५ कार्यकारणतादात्म्यादयः । १६ वक्तृत्वतत्पुत्रत्वादीनां हेत्वाभासाना येऽविना-भावरहिताः कार्यकारणादिसम्बन्धास्तै सर्वे अनुमानोत्पत्तिकारणं न भवन्ति । १७ तर्ह-नुमानोत्पत्तिं प्रति किं कारणमित्युक्ते सत्याह । १८ अविनाभावात् । १९ साध्यम् । २० आदिनास्मादि । २१ यौगेन । २२ भोक्षविचारानसरे ।

योर्मरणजाग्रद्वोधयोरपि नारिद्योद्वोधौ प्रति हेतुत्वम्, येनाभ्याम-
नैकान्तिको हेतुः स्यादिति स्थितम् ।

यथा च पूर्वोत्तरचारिणोर्न तादात्म्यं तदुत्पत्तिर्वा तथा—

**सहचारिणोरपि परस्परपरिहारेणावस्थाना-
त्सहोत्पादाच्च ॥ ६४ ॥**

यैयोः परस्परपरिहारेणावस्थानं न तयोस्तादात्म्यम् यथा घट-
पटयोः, परस्परपरिहारेणावस्थानं च सहचारिणोरिति । एक-
कालत्वाभानयोर्न तदुत्पत्तिः । ययोरेककालत्वं न तयोस्तदुत्पत्तिः
यथा सद्येतरगोविषाणयोः, एककालत्वं च सहचारिणोरिति ।

न चास्वाद्यमानाद्रसात्सामर्थ्यनुमानं ततो रूपानुमानंमनुमिता-१०
नुमानौदित्यभिघातव्यम्, तथा व्यवहाराभावात् । न हि आस्वाद्य-
मानाद्रसाद् व्यवहारी सामग्रीमनुमिनोति, रससमसमयस्य रूप-
स्थानेनानुमानात् । व्यवहारेण च प्रमाणचिन्ता भवता प्रतन्यते ।
“प्रामाण्यं व्यवहारेण” [प्रमाणवा० २।५] इत्यभिधानात् ।
सामग्रीतो रूपानुमाने च कारणात्कार्यानुमानप्रसङ्गाद्धिक्कसंख्या-१५
व्याघातः स्यात् ।

तनेव व्याप्यादिहेतून् बालव्युत्पत्त्यर्थमुदाहरणद्वारेण स्फुट-
यति । तत्र व्याप्यो हेतुर्यथा—

**परिणामी शब्दः, कृतकत्वात्, य एवं स एवं
दृष्टः यथा घटः, कृतकश्चायम्, तस्मात्परिणामीति । २०
यस्तु न परिणामी स न कृतकः यथा वन्ध्यास्त-
नन्धयः, कृतकश्चायम्, तस्मात् परिणामीति ॥६५॥**

‘दृष्टान्तो द्वेषा अन्वयव्यतिरेकमेदात्’ इत्युक्तम् । तत्रान्वय-
दृष्टान्तं प्रतिपाद्य व्यतिरेकदृष्टान्तं प्रतिपादयन्नाह—यस्तु न
परिणामी स न कृतको दृष्टः यथा वन्ध्यास्तनन्धयः, कृतकश्चा-२५
यम्, तस्मात्परिणामीति । कृतकत्वं हि परिणामित्वेन व्याप्तम् ।

१ साम्यसाधनयोः । २ तादात्म्यतदुत्पत्त्योर्भावः । ३ तादात्म्यं सहचारिणो-
र्नोक्ति परस्परपरिहारेणावस्थानात् । ४ कृतम् । ५ अनुमितायाः सामग्र्याः सत्त्व-
शाद्यनुमानं रूपम् । ६ परेण भवता । ७ सौगतेन । ८ त्रि । ९ तदधिधेवेन ।
१० अपेक्षितपरन्मापारः कृतक उच्यते ।

पूर्वोत्तराकारपरिहारावाप्तिस्थितिलक्षणपरिणामशून्यस्य सर्वथा
नित्यत्वे क्षणिकत्वे वा शब्दस्य कृतकत्वानुपपत्तेर्वक्ष्यमाणत्वाद् ।

किं पुनः कार्यलिङ्गस्योदाहरणमित्याह—

अस्त्यत्र शरीरे बुद्धिव्याहारादेः ॥ ६६ ॥

- ५ व्याहारो वचनम् । आदिशब्दाद्वापाराकारविशेषपरिग्रहः ।
ननु तात्वाद्यन्वयव्यतिरेकानुविधायितया शब्दस्योपलम्भमात्मक-
मात्मकार्यत्वं येनातस्तदस्तित्वसिद्धिः स्यात् ? न खल्व्वात्मनि
विद्यमानेषु विवक्षावैद्वर्षेरिकरे कफादिदोषकण्ठादिव्यापाराभावे
वचनं प्रवर्त्तते; तदप्यसारम्; शब्दोत्पत्तौ तात्वादिसहायस्यै-
१० वात्मनो व्यापाराभ्युपगमात् । घटाद्युत्पत्तौ चक्रादिसहायस्य
कुम्भकारादेर्व्यापारवत्, कथमन्यथा घटादेरप्यात्मकार्यता ?
कार्यकार्योद्देश्य कार्यहेतविवान्तर्भावः ।

कारणलिङ्गं यथा—

अस्त्यत्र छाया छात्रात् ॥ ६७ ॥

- १५ कारणकारणादेरत्रैवानुप्रवेशाच्चार्थान्तरत्वम् ।
पूर्वचरलिङ्गं यथा—

उदेष्यति शकटं कृत्तिकोदयात् ॥ ६८ ॥

पूर्वपूर्वचराद्यनेनैव सङ्गृहीतम् ।

उत्तरचरं लिङ्गं यथा—

- २० उद्गाद्गरणिस्तत एव ॥ ६९ ॥

कृत्तिकोदयादेव । उत्तरोत्तरचरमेतेनैव सङ्गृह्यते ।

सहचरं लिङ्गं यथा—

अस्त्यत्र मातुलिङ्गे रूपं रसात् ॥ ७० ॥

संयोगिने एकार्थसमैवार्यिनेश्च साध्यसमकालस्यात्रैवान्तर्भावो

- २५ द्रष्टव्यः ।

१ आत्मा । २ सुच्छायतादि । ३ सहित । ४ सहाय । ५ कण्ठादिन्मवहार-
भाव एव कारणम् । ६ जैनैः । ७ तात्वाद्यन्वयव्यतिरेकानुविधायित्वेन तात्वादेरेव
कार्यं शब्द इत्येवं यदि । ८ अभूदत्र शिवकः स्यात्सात् । ९ महोऽत्रस्थानां कण्ठा-
क्षेपविक्षेपकारी धूमवदग्निमत्सात् । कण्ठादिविक्षेपस्य कारणं धूमस्तस्य च कारणं वक्षि-
रिति । १० उदाह्रियते । ११ आत्मनोत्राऽस्तित्वं विच्छिद्यशरीरात् । अत्रापि नैयामिक-
मतानुसरणे कार्यहेतौरेव धूमादेरिव संज्ञा । १२ नैयामिकमतानुसरणे सहचरहेतोरेव
संज्ञा । १३ हेतोः ।

अथाविरुद्धोपलब्धिमुदाहृत्येदानीं विरुद्धोपलब्धिमुदाहर्तुं
विरुद्धेत्याद्याह—

विरुद्धतदुपलब्धिः प्रतिषेधे तथेति ॥ ७१ ॥

प्रतिषेधेन यद्विरुद्धं तत्सम्बन्धिनां तेषां व्याप्यादीनामुप-
लब्धिः प्रतिषेधे साध्ये तथाऽविरुद्धोपलब्धिवत् षट्प्रकार । ५
तानेव षट् प्रकारान् यथेत्यादिना प्रदर्शयति—

(यथा) नास्त्यत्र शीतस्पर्श औष्ण्यात् ॥ ७२ ॥

यथेत्युदाहरणप्रदर्शने । औष्ण्यं हि व्याप्यमग्नेः । स च विरुद्धः
शीतस्पर्शेन प्रतिषेधेनेति ।

विरुद्धकार्यं लिङ्गं यथा—

१०

नास्त्यत्र शीतस्पर्शो धूमात् ॥ ७३ ॥

विरुद्धकारणं लिङ्गं यथा—

नास्मिन् शरीरिणि सुखमस्ति हृदयशल्यात् ॥ ७४ ॥

सुखेन हि प्रतिषेधेन विरुद्धं दुःखम् । तस्य कारणं हृदय-
शल्यम् । तत्कुतश्चित्तदुपदेशादेः लिङ्गात्सुखं प्रतिषेधतीति । १५

विरुद्धपूर्वचरं यथा—

नोदेष्यति मुहूर्त्तान्ते शकटं

रेवत्युदयात् ॥ ७५ ॥

शकटोदयविरुद्धो ह्यश्विन्युदयस्तत्पूर्वचरो रेवत्युदय इति ।

विरुद्धोत्तरचरं यथा—

२०

नोदगाद्भरणिर्मुहूर्त्तात्पूर्वं पुष्योदयात् ॥ ७६ ॥

भरण्युदयविरुद्धो हि पुनर्वसूदयस्तदुत्तरचरः पुष्योदय इति ।

विरुद्धसहचरं यथा—

नास्त्यत्र भित्तौ परभागाभावोऽर्वाग्भागात् ॥ ७७ ॥

परभागाभावेन हि विरुद्धस्तत्सद्भावस्तत्सहचरोऽर्वाग्भाग इति । २५

अथोपलब्धिं व्याख्यायेदानीमनुपलब्धिं व्याचष्टे । सा चानुपलब्धिरुपलब्धिर्वद्विप्रकारा भवति । अविरुद्धानुपलब्धिर्विरुद्धानुपलब्धिश्चेति । तत्राद्यप्रकारं व्याख्यातुकामोऽविरुद्धेत्याद्याह—

अविरुद्धानुपलब्धिः प्रतिषेधे सप्तधा स्वभाव-
 ५ व्यापककार्यकारणपूर्वोत्तरसह-
 चरानुपलम्भभेदादिति ॥ ७८ ॥

प्रतिषेधेनाविरुद्धस्यानुपलब्धिः प्रतिषेधे साध्ये सप्तधा भवति । स्वभावव्यापककार्यकारणपूर्वोत्तरसहचरानुपलब्धिभेदात् ।

१० तत्र स्वभावानुपलब्धिर्यथा—

नास्त्यत्र भूतले घट उपलब्धिलक्षण-
 प्रातस्यानुपलब्धेः ॥ ७९ ॥

पिशाचादिभिर्व्यभिचारो मा भूदित्युपलब्धिलक्षणप्रातस्येति विशेषणम् । कथं पुनर्यो नास्ति स उपलब्धिलक्षणप्रातस्तत्प्रातस्त्वे
 १५ वा कथमसत्त्वमिति चेदुच्यते—आरोप्यैतद्रूपं निविध्यते सर्वैर्वा-
 रोपितरूपविषयत्वादिषेधस्य । यथा 'नार्यं गौरः' इति । न ह्यत्रै-
 तच्छब्दार्थं वक्तुम्—सति गौरत्वे न निषेधो निषेधे वा न गौरत्व-
 मिति । नन्वेवैमदृश्यमपि पिशाचादिकं दृश्यरूपतयाऽऽरोप्य
 प्रतिषेध्यतामिति चेन्न; आरोपयोग्यत्वं हि यस्यास्ति तस्यैवा-
 रोपः । र्यश्चार्थो विद्यमानो नियमेनोपलभ्येत स एवारोपयोग्यः,
 २० न तु पिशाचादिः । उपलम्भकारणसाकल्ये हि विद्यमानो घटो
 नियमेनोपलम्भयोग्यो गम्यते, न पुनः पिशाचादिः । घटस्यो-
 पलम्भकारणसाकल्यं चैकज्ञानसंसर्गिणि प्रदेशादानुपलम्भमाने
 निश्चीयते । घटप्रदेशयोः खलूपलम्भकारणान्यविशिष्टानितीति ।

१ व्याप्य । २ प्रतिषेधेन घटेनाविरुद्धः कः तत्त्वभावो घटत्वभाव इत्यर्थः ।
 ३ कृत्वा । ४ प्रकृत्य घटसन्धित्वेन मूलकम् । ५ क्विदपि न निषेध्यसारोपित-
 रूपविषयत्वमित्युक्ते आह । ६ वस्तुनि । ७ आरोपितस्य प्रतिषेधत्वे । ८ विद्व-
 मानत्वे पिशाचादिरूप्युपलम्भेवेत्युक्ते आह । ९ पिशाचादिरूप्यारोपयोग्यः कुतो न
 स्यादित्युक्ते आह । १० प्रलक्ष । ११ इन्द्रियाल्लोकादिना । १२ निषेध्यस्य घटस्य
 कथमुपलम्भकारणसाकल्यं निश्चीयत इत्युक्ते आह । १३ इन्द्रिय । १४ घटेन ।
 १५ घटस्योपलम्भकारणसाकल्यं च न स्यात् प्रकृत्या न संसर्गिण्यदाभ्यान्तरोपलम्भस्य अवि-
 श्वतीत्युक्ते आह । १६ समानानि ।

यञ्च यदेशाधेयतया कल्पितो घटः स एव तेनैकज्ञानसंसर्गा, न देशान्तरस्थः । तैतच्चैकज्ञानसंसर्गिपदार्थान्तरोपलम्भे योग्यतया सम्भावितस्य घटस्योपलब्धिचक्षणप्राप्तानुपलम्भः सिद्धः ।

ननु चैकज्ञानसंसर्गिण्युपलम्भमाने सत्यपीर्तरेविषयज्ञानोत्पादनशक्तिः सामग्र्याः समस्तीत्यवसातुं न शक्यते, प्रभाववतो ५ योगिनः पिशाचादेर्वा प्रतिबन्धात्सतोपि घटस्यैकज्ञानसंसर्गिणि प्रदेशादात्रुपलम्भमानेप्यनुपलम्भसम्भवात् ; तदयुक्तम् ; यतः प्रदेशादिनैकज्ञानसंसर्गिण एव घटस्याभावो नान्यस्य । यस्तु पिशाचादिनाऽन्यत्वमापादितः स नैव निषेध्यते । इह वैकज्ञानसंसर्गिभासमानैर्यस्तज्ज्ञानं च पर्युदासवृत्त्या घटस्याऽसत्तानुप- १० लब्धिश्चोच्यते ।

ननु चैवं केवलभूतलस्य प्रत्यक्षसिद्धत्वात्तद्रूपो घटाभावोपि सिद्ध एवेति किमनुपलम्भसाध्यम् ? सत्यमेवैतत्, तथापि प्रत्यक्ष- प्रतिपन्नेष्वभावे यो व्यामुह्यति साह्यथादिः सोऽनुपलम्भं निमिचीकृत्य प्रतिपाद्यते । अंनुपलम्भनिमित्तो हि सत्त्वरजस्तमःप्रभृति- १५ ष्वसङ्ख्यवर्धोरः । स चात्राप्यस्तीति निमित्तप्रदर्शनेन व्यवहोरः प्रसाध्यते । इत्येतेहि विशाले गवि साक्षादिमन्वात्प्रवर्त्तितगो- व्यवहारो मूढमतिर्विशङ्कटे साहय्यमुत्प्रेक्षमाणोपि न गोव्यवहारं प्रवर्त्तयतीति विशङ्कटे वा प्रवर्त्तितो गोव्यवहारो न विशाले, स निमित्तप्रदर्शनेन गोव्यवहारे प्रवर्त्तते । साक्षादिमन्मात्रनिमि- २० त्तको हि गोव्यवहारस्त्वया प्रवर्त्तितपूर्वो न विशालत्वविशङ्कट- त्वनिमित्तक इति । तैथा महत्यां शिक्षापायां प्रवर्त्तितवृक्षव्यवहारो मूढमतिः स्वल्पायां तस्यां तल्लवहारमप्रवर्त्तयन्नितिचोपदर्शनेन प्रवर्त्तते वृक्षोयं शिक्षापात्वादिति ।

व्यापकानुपलब्धिर्यथा—

२५

१ घटप्रदेशयोभिन्नज्ञानप्राप्तत्वादेकज्ञानसंसर्गित्वाभावो भूतसेत्युक्ते आह ।
 २ कल्पितस्य घटस्यैकज्ञानसंसर्गित्वं सिद्धं यतः । ३ भूतल । ४ इत्येतनेन ।
 ५ प्रदेशे । ६ घट । ७ कतिशयवतो मायाविनः कुणक्षिप् । ८ भिन्नज्ञानसंसर्गिणः ।
 ९ अइत्यवयवम् । १० कुतो न प्रतिषेधेतेरुक्ते आह । ११ भूतलचक्षणः ।
 १२ जनैः । १३ भूतलसङ्घाव एव घटाभाव इत्येवम् । १४ अनेन हेतुना ।
 १५ प्रतिषेधोच्यते । १६ प्रत्यक्षसिद्धेऽभावे व्यवहारः स्वयमेव साक्षान्न्यसात्, ततोऽ-
 नुपलम्भो व्यर्थ इत्युक्ते आह । १७ सत्त्वे रजो नास्त्यनुपलम्बेति । १८ कर्म
 निमित्तप्रदर्शनमिलाह स चात्राप्यस्तीति । १९ असिन् । २० हले । २१ साक्षादि-
 मन्वादि निमित्तम् । २२ कथम् । २३ काष्ठादिसहकारिवैकल्याभावतः ।

नास्त्यत्र शिंशपा वृक्षाऽनुपलब्धेः ॥ ८० ॥

कार्यानुपलब्धिर्यथा—

नास्त्यत्राऽप्रतिबद्धसामर्थ्योऽग्निर्धूमानुपलब्धेः ८१

नास्त्यत्र धूमोऽनग्नेः ॥ ८२ ॥

५ इति कारणानुपलब्धिः ।

न भविष्यति मुहूर्त्तान्ते शकटं कृत्तिकोदया-
नुपलब्धेः ॥ ८३ ॥

इति पूर्वचरानुपलब्धिः ।

नोदगाद्गरणिर्मुहूर्त्तात्प्राक् तत एव ॥ ८४ ॥

१० कृत्तिकोदयानुपलब्धेरेव । इत्युत्तरचरानुपलब्धिः ।

नास्त्यत्र समतुलायामुन्नामो नामानुपलब्धेः ८५

इति सहचरानुपलब्धिः ।

अथानुपलब्धिः प्रतिषेधसाधिकैवेति नियमप्रतिषेधार्थं विरुद्धे-
त्याद्याह—

१५ विरुद्धानुपलब्धिः विधौ त्रेधा विरुद्धकार्य-
कारणस्वभावानुपलब्धिभेदात् ॥ ८६ ॥

विधेयेन विरुद्धस्य कार्यादेरनुपलब्धिर्विधौ साध्ये सम्भवन्ती
त्रिधा भवति—विरुद्धकार्यकारणस्वभावानुपलब्धिभेदात् ।

तत्र विरुद्धकार्यानुपलब्धिर्यथा—

२० अस्मिन्प्राणिनि व्याधिविशेषोस्ति निरामय-
चेष्टानुपलब्धेः ॥ ८७ ॥

आमयो हि व्याधिः, तेन विरुद्धस्तदभावः, तत्कार्या विशिष्ट-
चेष्टा तस्या अनुपलब्धिव्याधिविशेषास्तित्वानुमानम् ।

विरुद्धकारणानुपलब्धिर्यथा—

२५ अस्त्यत्र देहिनि दुःखमिष्टसंयोगाभावात् ॥ ८८ ॥

दुःखेन हि विरुद्धं सुखम्, तस्य कारणमभीष्टार्थेन संयोगः,
तदभावस्तदनुपलब्धिर्दुःखास्तित्वं गमयतीति ।

विरुद्धस्वभावानुपलब्धिर्यथा—

अनेकान्तात्मकं वस्त्वेकान्तानुपलब्धेः ॥ ८९ ॥

अनेकान्तेन हि विरुद्धो नित्यैकान्तः क्षणिकैकान्तो वा । तस्य
चानुपलब्धिः प्रत्यक्षादिप्रमाणेनाऽस्य ग्रहणाभावात्सुप्रसिद्धा ।
यथा च प्रत्यक्षादेस्तद्ग्राहकत्वाभावस्तथा विषयविचारप्रस्तावे
विचारयिष्यते ।

ननु चैतत्साक्षाद्विधौ निषेधे वा परिसङ्ख्यातं साधनमस्तु ।
यत्तु परम्परया विधेर्निषेधस्य वा साधकं तदुक्तसाधनप्रकारे-१०
भ्योऽन्यत्वाद्दुक्तसाधनसङ्ख्याव्याघातकारिं छलसाधनान्तरमनु-
ष्येत । इत्याशङ्क्य परम्परयेत्यादिना प्रतिविधत्ते—

परम्परया संभवत्साधनमत्रैवान्तर्भावनीयम् ॥ ९०

यतः परम्परया सम्भवत्कार्यकार्यादि साधनमत्रैव अन्तर्भाव-
नीयं ततो नोक्तसाधनसङ्ख्याव्याघातः । १५

तत्र विधौ कार्यकार्यं कार्याविरुद्धोपलब्धौ अन्तर्भावनीयम्
यथा—

अभूदत्र चक्रे शिवकः स्थासात् ।

कार्यकार्यमविरुद्धकार्योपलब्धौ ॥ ९१-९२ ॥

शिवकस्य हि साक्षाच्छकः कार्यं स्थासस्तु परम्परयेति । २०
निषेधे तु कारणविरुद्धकार्यं विरुद्धकार्योपलब्धौ यथाऽन्तर्भा-
व्यते तद्यथा—

नास्त्यत्र गुहायां मृगक्रीडनं मृगारिशब्दनात्

कारणविरुद्धकार्यं विरुद्धकार्योपलब्धौ

यथेति ॥ ९३ ॥

२५

मृगक्रीडनस्य हि कारणं मृगः । तेन च विरुद्धो मृगारिः ।
तत्कार्यं च तच्छब्दनमिति ।

१ एकान्तस्वरूपानुपलब्धेरिति पाठान्तरम् । २ नियमानम् । ३ कार्यादिभेदः ।
४ साध्ये । ५ ता । ६ तथा कार्यकार्यं कार्याविरुद्धोपलब्ध्यावन्तर्भावनीयमिति
सम्बन्धः ।

ननु यद्यव्युत्पन्नानां व्युत्पत्त्यर्थं दृष्टान्तादियुक्तो हेतुप्रयोगस्तर्हि व्युत्पन्नानां कथं तत्प्रयोग इत्याह—

व्युत्पन्नप्रयोगस्तु तथोपपत्त्याऽन्यथाऽ-
नुपपत्त्यैव वा ॥ ९४ ॥

९ एतदेवोदाहरणद्वारेण दर्शयति—

अग्निमानयं देशस्तथा धूमवत्त्वोपपत्तेर्धूम-
वत्त्वान्यथानुपपत्तेर्वा ॥ ९५ ॥

कुतो व्युत्पन्नानां तथोपपत्त्यन्यथाऽनुपपत्तिभ्यां प्रयोगनियम इत्याशङ्क्य हेतुप्रयोगो हीत्याद्याह—

१० हेतुप्रयोगो हि यथाव्याप्तिग्रहणं विधीयते,
सा च तावन्मात्रेण व्युत्पन्नै-
रवधार्यते इति ॥ ९६ ॥

यतो हेतोः प्रयोगो व्याप्तिग्रहणानतिक्रमेण विधीयते । सा च व्याप्तिस्तावन्मात्रेण तथोपपत्त्यन्यथानुपपत्तिप्रयोगमात्रेण व्युत्प-
१५ न्नैर्निश्चीयते इति न दृष्टान्तादिप्रयोगेण व्याप्त्यवधारणार्थेन किञ्चित्प्रयोजनम् ।

नापि साध्यसिद्ध्यर्थं तत्प्रयोगः फलवान्—

तावतैव च साध्यसिद्धिः ॥ ९७ ॥

यतस्तावतैव चकार एवकारार्थं निश्चितविपक्षासम्भवहेतु-
२० प्रयोगमात्रेणैव साध्यसिद्धिः ।

तेन पक्षः तदाधारसूचनाय उक्तः ॥ ९८ ॥

तेन पक्षो गम्यमानोपि व्युत्पन्नप्रयोगे तदाधारसूचनाय साध्याधारसूचनायोक्तः । यथा च गम्यमानस्यापि पक्षस्य प्रयोगो नियमेन कर्त्तव्यस्तथा प्रागेव प्रतिपादितम् ।

२५ अथैदानीमवसरप्राप्तस्यागमप्रमाणस्य कारणस्वरूपे प्ररूपयन्ना-
त्तेत्याद्याह—

आप्तवचनादिनिबन्धनमर्थज्ञानमागमः ॥ ९९ ॥

आप्तेन प्रणीतं वचनमाप्तवचनम् । आदिशब्देन ईदृस्तसंज्ञादिव-
रिग्रहः । तन्निबन्धनं यस्य तत्तथोक्तम् । अनेनोक्षरश्रुतमनक्षर-
श्रुतं च सङ्गृहीतं भवति । अर्थज्ञानमित्यनेन चान्यापोहज्ञानस्य
शब्दसन्दर्भस्य चागमप्रमाणव्यपदेशाभावः । शब्दो हि प्रमाण-
कारणकार्यत्वाद्गुणव्यपदेशप्रमाणव्यपदेशमर्हति ।

ननु चातीन्द्रियार्थस्य द्रष्टुः कस्याचिदाप्तस्याभावात् तत्रापौरु-
षेयस्यागमस्यैव प्रामाण्यात् कथमाप्तवचननिबन्धनं तद् ? इत्यपि
मनोरथमात्रम् ; अतीन्द्रियार्थद्रष्टुर्भगवतः प्राक्प्रसाधितत्वात्,
अगमस्य चाऽपौरुषेयत्वासिद्धेः । तद्धि पदस्य, वाक्यस्य, वर्णानां १०
चाऽभ्युपगमेत प्रकारान्तराऽसम्भवात् ? तत्र न तावत्प्रथम-
द्वितीयविकल्पौ घटेते; तथाहि-वेदपदवाक्यानि पौरुषेयाणि
पदवाक्यत्वाद्भारतादिपदवाक्यवत् ।

अपौरुषेयत्वप्रसाधकप्रमाणाभावाच्च कथमपौरुषेयत्वं वेदस्यो-
पपन्नम् ? न च तत्प्रसाधकप्रमाणाभावोऽसिद्धः ; तथाहि-तत्र-१५
साधकं प्रमाणं प्रत्यक्षम्, अनुमानम्, अर्थापत्यादि वा स्यात् ?
न तावत्प्रत्यक्षम् ; तस्य शब्दस्वरूपमात्रग्रहणे चरितार्थत्वेन
पौरुषेयत्वापौरुषेयत्वधर्मग्राहकत्वाभावात् । अनादिसर्वस्वरूपं
चापौरुषेयत्वं कथमक्षप्रभवप्रत्यक्षपरिच्छेद्यम् ? अक्षणां प्रतिनि-
यतरूपादिष्वियतया अनादिकालसम्बन्धाऽभावतस्तत्सम्बन्ध-२०

१ मुखेन संज्ञा । २ अर्थज्ञानमित्येतावत्सुख्यमाने प्रलसादावतिव्याप्तिरत उक्तं
वाक्यनिबन्धनमिति । वाक्यनिबन्धनमर्थज्ञानमित्युच्यमानेपि यादृच्छिक्तसंज्ञादिषु विप्र-
कृन्मवाक्यजन्येषु सुप्तोन्मत्तादिवाक्यजन्येषु वा नदीवीरफलसंसर्गादिज्ञानेष्वतिव्याप्तिः
अत उक्तमाप्तेति । आप्तवाक्यनिबन्धनज्ञानमित्युच्यमानेप्याप्तवाक्यकर्तृके (कारणे)
आवणप्रलक्षेऽतिव्याप्तिरत उक्तमयेति । अर्थज्ञानपर्यरूढः प्रयोजनारूढ इति यावत् ।
ज्ञानपर्यमेव वचसीलाभित्युक्तवचनात् वचसा प्रयोजनस्य प्रतिपादकत्वात् । ३ आप्तवच-
नादि । ४ अर्थज्ञानस्य । ५ आदिपदेन । ६ आप्तशब्दोपादानात्पौरुषेयत्वबन्धेदः ।
७ अन्यज्ञानपदार्थोदन्वस्य पदार्थोत्पादोहो निराकरणं तस्य व्यावृत्तिरूपापोहविषय इव
शब्दो न स्वर्थविषय इति नोक्तः । ८ भगोः व्यावृत्तिर्गोः । व्यावृत्तिस्तुच्छा अर्थरूपा
न भवति । ९ शब्द एवाथो न वाचार्थः । १० ज्ञान । ११ वा । १२ गणकरादि-
मतिपाकज्ञानापेक्षया कारणत्वं शब्दस्य (दिग्बन्धनेः) । १३ प्रतिपादकज्ञानस्य
(सर्वज्ञानस्य) हि कार्यं शब्दः । १४ अर्थज्ञानम् । १५ परेण मीमांसकेन ।
१६ आवणप्रलक्षम् । १७ वसः । १८ वा ।

सत्त्वेनाप्यसम्बन्धात् । सम्बन्धे वा तद्वदऽनागतकालसम्बद्ध-
धर्मादिस्वरूपेणापि सम्बन्धसम्भवाच्च धर्मज्ञप्रतिषेधः स्यात् ।

नाप्यनुमानं तत्प्रसाधकम्; तद्धि कर्त्तृऽस्मरणहेतुप्रभवम्,
वेदाध्ययनशब्दवाच्यत्वलिङ्गजनितं वा स्यात्, कालत्वसाधनस-
५ मुत्थं वा? तत्राद्यपक्षे किमिदं कर्त्तृस्मरणं नाम-कर्त्तृस्मरणाभावः,
अस्मर्यमाणकर्त्तृकत्वं वा? प्रथमपक्षे व्यधिकरणाऽसिद्धो हेतुः,
कर्त्तृस्मरणाभावो ह्यात्मन्यपौरुषेयत्वं वेदे वर्त्तते इति ।

द्वितीयपक्षे तु दृष्टान्ताभावः; नित्यं हि वस्तु न स्मर्यमाणकर्त्तृकं
नाप्यस्मर्यमाणकर्त्तृकं प्रतिपन्नम्, किन्त्वकर्त्तृकमेव । हेतुश्च व्यर्थ-
१० विशेषणः; सैति हि कर्त्तरि स्मरणमस्मरणं वा स्यान्नासति स्मर-
विषाणवैत् । अथाऽकर्त्तृकत्वमेवात्र विवक्षितम्; तर्हि स्मर्यमाण-
ग्रहणं व्यर्थम्, जीर्णकूपप्रासादादिभिव्यभिचारश्च । अथ सम्प्र-
दायौऽविच्छेदे सत्यऽस्मर्यमाणकर्त्तृकत्वं हेतुः; तथाप्यनेकान्तः ।
सन्ति हि प्रयोजनाभावादस्मर्यमाणकर्त्तृकाणि 'वटे वटे वैश्रवणः'
१५ [] इत्याद्यनेकपदवाक्यान्यविच्छिन्नसम्प्रदायाणि ।
न च तेषामपौरुषेयत्वं भवतापीष्यते । असिद्धश्चायं हेतुः; पौरा-
णिका हि ब्रह्मकर्त्तृकत्वं स्मरन्ति "वर्कत्रेभ्यो वेदास्तर्ह्य विनि-
स्तुताः" [] इति । "प्रतिमन्वन्तरं चैव श्रुतिरन्यै
विधीयते" [] इति चाभिधानात् । "यो वेदांश्च
२० अहिणोति" [] इत्यादिवेदवाक्येभ्यश्च तत्कर्त्ता स्मर्यते ।

स्मृतिपुराणादिवच्च ऋपिनामाङ्किताः काण्वमाध्यन्दिनतैत्तिरी-
यादर्थः शार्ङ्गमेदाः कथमस्मर्यमाणकर्त्तृकाः? तथाहि-यदास्तकृत-

१ न केवलमनादिकालेन । २ अनुष्ठेयत्वेन । ३ पुण्य । ४ आदिना पापम् ।
५ इति । ६ कर्त्तृविषयं यत्स्मरणं ज्ञानं तस्याभावः । ७ स्मर्यमाणकर्त्तृप्रतिषेधः ।
८ आकाशवदिति दृष्टान्तः । ९ भिन्नाधिकरणः सन् । १० दृष्टान्ते । ११ व्यर्थ-
विशेषणः कथमित्युक्ते आह । १२ स्मरविषाणे यथा स्मरणमस्मरणं वा नास्ति कर्त्तृ-
भावात् । १३ अनुमाने । १४ वेदे वर्णक्रमः पाठक्रमः उदात्तादिक्रमश्च सम्प्र-
दायः । १५ चत्वरं चत्वरं ईश्वरः पर्वते पर्वते रामः सर्वत्र मधुघदनः । सा ते
भवन्तु धृमीता देवी गिरिनिवासिनी । विचारम्मं करिष्यामि सिद्धिर्भवतु मे सदा ।
१६ कथम् । १७ चतुर्थाः । १८ ब्रह्मणः । १९ अस्मर्यमाणकर्त्तृकस्य हेतोरने-
कान्तिकत्वासिद्धत्वे ते उद्भाव्य पुनरप्यसिद्धत्वमुद्भावयन्ति । २० पक्षसाम्प्रदायोः सका-
शादपरो मनुः मन्वन्तरम् । तत्प्रति प्रतिमन्वन्तरम् । २१ वेदः । २२ स्मृतिः ।
२३ शिक्षा । २४ करोति । २५ प्रसन्नो भवतु इत्यादिभ्यश्च । २६ सन्तानः ।
२७ गोत्रमेदाः ।

कत्वात्तन्नामभिरङ्किताः, तदृष्टत्वात्, तेष्वकाशितत्वाद्वा ? प्रथम-
पक्षे कथमासामपौरुषेयत्वमस्मर्यमाणकर्तृकत्वं वा ? उत्तरपक्ष-
द्वयेपि यदि तावदुत्सन्ना शास्त्रा कण्वादिना दृष्टा प्रकाशिता वा
तदा कथं सम्प्रदायाऽविच्छेदोऽतीन्द्रियार्थदर्शिनः प्रतिक्षेपश्च
स्यात् ? अथानवच्छिन्नैव सा सम्प्रदायेन दृष्टा प्रकाशिता वा; ५
तर्हि यावद्भिरुपाध्यायैः सा दृष्टा प्रकाशिता वा तावतां नाम-
भिस्तस्याः किन्नाङ्कितत्वं स्याद्विशेषाभावात् ?

एतेन 'छिन्नमूलं वेदे कर्तृस्मरणं तस्य ह्यनुभवो मूलम् । न
चासौ तत्र तद्विषयत्वेन विद्यते' इत्यपि प्रत्युक्तम् । यतोऽध्यक्षेण
तदनुभवाभावात् तत्र तच्छिन्नमूलम्, प्रमाणान्तरेण वा ? अद्य- १०
क्षेण चेतुः किं भवत्सम्बन्धिना, सर्वसम्बन्धिना वा ? यदि भव-
त्सम्बन्धिना; तर्ह्यागमान्तरेपि कर्तृप्राहकत्वेन भवत्प्रत्यक्षस्या-
प्रवृत्तेस्तत्कर्तृस्मरणस्य छिन्नमूलत्वेनास्मर्यमाणकर्तृकत्वस्य भावाद्
व्यभिचारी हेतुः ; अथागमान्तरे कर्तृप्राहकत्वेनास्मत्प्रत्यक्षस्या-
प्रवृत्तावपि कर्तृसङ्गावाभ्युपगमात् ततो व्यावृत्तमस्मर्यमाण- १५
कर्तृकत्वमपौरुषेयत्वेनैव व्याप्यते इति अव्यभिचारः; न; परकी-
याभ्युपगमस्याप्रमाणत्वात्, अन्यथा वेदेपि परैः कर्तृसङ्गावाभ्यु-
पगमतोऽस्मर्यमाणकर्तृकत्वादित्यसिद्धो हेतुः स्यात् ।

अथ वेदे सविज्ञानकर्तृविशेषे विप्रतिपत्तेः कर्तृस्मरणमऽतोऽ-
प्रमाणम्-तत्र हि कैचिद्विरण्यगर्भम्, अपरे अष्टकादीन् कर्तृन् २०
स्मरन्तीति । नन्वेवं कर्तृविशेषे विप्रतिपत्तेस्तद्विशेषस्मरणमेवा-
प्रमाणं स्यात् न कर्तृमात्रस्मरणम्, अन्यथा कादम्बर्यादीनामपि
कर्तृविशेषे विप्रतिपत्तेः कर्तृमात्रस्मरणत्वेनास्मर्यमाणकर्तृकत्वस्य
भावात्पुनरप्यनेकान्तः । अथ वेदे कर्तृविशेषे विप्रतिपत्तिवत्कर्तृ-
मात्रेपि विप्रतिपत्तेस्तत्स्मरणमप्यप्रमाणम्, कादम्बर्यादीनां तु २५
कर्तृविशेषे एव विप्रतिपत्तेस्तत्प्रमाणमित्यनेकान्तिकत्वाभावोऽ-
स्मर्यमाणकर्तृकत्वस्य विपक्षे प्रवृत्त्यभावात् । ननु वेदे सौगतादयः
कर्तारं स्मरन्ति न मीमांसका इत्येवं कर्तृमात्रे विप्रतिपत्तेर्यदि
तदप्रमाणम्; तर्हि तद्वत्स्मरणमप्यऽप्रमाणं किञ्च स्याद्विप्रति-
पत्तेरविशेषात् ? तथा चासिद्धो हेतुः । ३०

१ कण्वादि । २ कण्वादि । ३ नद्य । ४ कर्तृस्मरणमूलस्य वेदपदवाक्यानीत्याह-
नुमानेऽस्य पुराणस्थितिवेदावयवस्य च प्रवर्तनपरेण अन्येन । ५ कारणम् । ६ कथम् ।
७ शावादिपिटकत्रये । ८ सौगतैः । ९ व्यावृत्तितम् । १० सविप्रतिपत्तिक ।
११ यदि कर्तृविशेषे विप्रतिपत्तिः कर्तृमात्रस्मरणस्याऽप्रामाण्यम् । १२ बाणः सङ्करो
वेति । १३ कादम्बर्यादी ।

अथ यद्यनुपलम्भपूर्वकमस्यमाणकर्तृकत्वं हेतुत्वेनोच्येत; तदोक्तप्रकारेणाऽसिद्धिनैकान्तिकत्वे स्यात्तौम्, तदभावंपूर्वके तु तस्मिन्तयोरनवकाशः, न; अत्र कर्त्रेऽभावग्राहकस्य प्रमाणा-
न्तरस्यैवाऽसम्भवात् । अस्मादेवानुमानात्तदभावसिद्धावन्योन्या-
५ अयः—अतो ह्यऽनुमानात्तदभावसिद्धौ तत्पूर्वकमस्यमाणकर्तृकत्वं सिद्ध्यति, तत्सिद्धौ चातोऽनुमानात्तदभावसिद्धिरिति ।

ननु वेदे कर्तृसङ्गावाभ्युपगमे तत्कर्तुः पुरुषस्यावश्यं तदनुष्ठान-
समये अनुष्ठानात्प्रामाण्यवशात्तत्प्रामाण्यप्रसिद्धये स्मरणं
स्यात् । ते ह्यदृष्टफलेषु कर्मस्त्वेवं निःसंशयाः प्रवर्त्तन्ते । 'यदि
१० तेषां तद्विषयः सत्यत्वनिश्चयः, सोपि तदुपदेष्टुः स्मरणात्स्यात् ।
यथा पित्रादिप्रामाण्यवशात्स्वयमदृष्टफलेष्वपि कर्मसु तदुपदेशा-
त्प्रवर्त्तन्ते 'पित्रादिभिरेतदुपदिष्टं तेर्नानुष्ठीयते', एवं वैदिकेष्वपि
कर्मस्वनुष्ठीयमानेषु कर्तुः स्मरणं स्यात् । न चाभिभुक्तानामपि
वेदार्थानुष्ठानाणां त्रैवर्णिकानां तत्स्मरणमस्ति । तथा चैवं प्रयोगः—
१५ 'कर्तुः स्मरणयोग्यत्वे सत्यस्यमाणकर्तृकत्वाद्पौरुषेथो वेदः' ।
तदप्यसम्बद्धम्; आगमान्तरैऽप्यस्य हेतोः सङ्गाववाचकप्रमा-
णाऽसम्भवेन सङ्गावसम्भवतः सन्दिग्धविपक्षैर्व्यावृत्तिकत्वेना-
नैकान्तिकत्वात् ।

किञ्च, विपक्षविरुद्धं विशेषणं विपक्षाद्वावर्त्तमानं स्वविशेष्य-
२० मादाय निवर्त्तत । न च पौरुषेयत्वेन सह कर्तुःस्मरणयोग्यत्वस्य
सहानवस्थानलक्षणः परस्परपरिहारस्थितिलक्षणो वा विरोधः
सिद्धः । सिद्धौ चैतत् एव सौम्यप्रसिद्धेः 'अस्यमाणकर्तृकत्वाद्'
इति विशेष्योपादानं व्यर्थम् ।

१ उक्तप्रकारेण हेतोरसिद्धत्वे प्रतिपादितेऽनुमानवलेन हेतुसिद्धिं करोति परः ।
२ अनुपलम्भेन हेतुना साधितं यदस्यमाणकर्तृकत्वं साधनं तत् । ३ अनुपलम्भः
स्वसम्बन्धी सर्वसम्बन्धी वा स्यात् । ४ पौरुषत्वपक्षेऽसिद्धत्वम् । पाश्चात्यपक्षेऽनैकान्तिकत्वम् ।
५ वेदः अस्यमाणकर्तृकः अनुपलम्भमानकर्तृकत्वात् आकाशवत् इत्यनेनानुमानेन
हेतुसिद्धिं विदधाति । ६ अनुपलम्भलक्षणस्य हेतोरभयदोषदुष्टत्वात्स्मरणेण प्रकृतहेतुं
साधयति । ७ वेदः अस्यमाणकर्तृकः कर्त्रेऽभावाद्दशोभवत् इत्यनेनानुमानेन साधिते ।
८ अस्यमाणकर्तृकत्वादेव । ९ अस्यमाणकर्तृकत्वात् । १० अस्यमाणकर्तृकत्वात् ।
१० कृत यत्तदित्याह । ११ अनिरीक्षितफलेषु । १२ यागेषु । १३ वक्ष्यमाणप्रकारेण ।
१४ कर्म निःसंशयाः प्रवर्त्तन्ते । १५ कर्म । १६ कारणेन । १७ व्यावृत्तानाम् ।
१८ उक्तप्रकारेण । १९ वक्ष्यमाणरीत्या । २० सिद्धके । २१ पौरुषेयसिद्धके ।
२२ पौरुषेयत्वं विपक्षः । २३ विरोधस्य । २४ अपौरुषेयत्वमिति ।

यच्चोक्तम्—तदनुष्ठानसमय इत्यादि; तदागमान्तरेपि समानम् ।
‘न च’ इति चिन्त्यताम्—न चायं नियमः—‘अनुष्ठानातारोऽभिप्रेतार्थो-
नुष्ठानसमये तत्कर्त्तारमनुस्मृत्यैव प्रवर्त्तन्ते’ । न खलु पाणिन्यादि-
प्रणीतव्याकरणप्रतिपादितशाब्दव्यवहारानुष्ठानसमये तदर्थानुष्ठा-
नारोऽवश्यन्तया व्याकरणप्रणेतारं पाणिन्यादिकमनुस्मृत्यैव प्रव-
र्त्तन्त इति प्रतीतम् । निश्चिततत्समयानां कर्त्तृस्मरणव्यतिरेकेणा-
प्याशुतरं भवत्यादिसाधुशब्दोपलम्भात् । तत्र भवत्सम्बन्धि-
प्रत्यक्षेणानुभवाभावात् तत्र तच्छिन्नमूलम् ।

नापि सर्वसम्बन्धिप्रत्यक्षेण; तेन ह्यनुभवाभावोऽसिद्धः । न
ह्यर्वागैदृशां ‘सर्वेषां तत्र कर्त्तृग्राहकत्वेन प्रत्यक्षं न प्रवर्त्तते’ इत्यव- १०
सातुं शक्यमिति तत्र तत्स्मरणस्य छिन्नमूलत्वासिद्धेरस्मर्यमाण-
कर्त्तृकत्वादित्यसिद्धो हेतुः ।

अथ प्रमाणान्तरेणानुभवाभावः; तत्र; अनुमानस्य आगमस्य च
प्रमाणान्तरस्य तत्र कर्त्तृसङ्गावावेदकस्य प्राक्प्रतिपादितत्वात् ।

किञ्च, अस्मर्यमाणकर्त्तृकत्वं चादिनः, प्रतिवादिनः, सर्वस्य वा १५
स्यात्? चादिनश्चेत्; तदनैकान्तिकं “सा ते भवतु सुप्रीता”
[] इत्यादौ विद्यमानकर्त्तृकेष्यस्य सम्भवात् । प्रतिवादिन-
श्चेत्; तदसिद्धम्; तत्र हि प्रतिवादी स्मरत्येव कर्त्तारम् । एतेन
सर्वस्यास्मरणं प्रत्याख्यातम् । सर्वात्मज्ञानविज्ञानरहितो वा कथं
सर्वस्य तत्र कर्त्तृऽस्मरणमवैति? २०

किञ्च, अतः स्वातन्त्र्येणापौरुषेयत्वं साध्येत, पौरुषेयत्वसाधन-
मनुमानं वा वाध्येत? प्राच्यविकल्पे स्वातन्त्र्येणापौरुषेयत्वस्यार्द्धः
साधनम्, प्रसङ्गो धी? स्वातन्त्र्यपक्षे नाऽतोऽपौरुषेयत्वसिद्धिः
पदवाक्यत्वतः पौरुषेयत्वप्रसिद्धेः । अतो न ज्ञायते किमस्मर्य-
माणकर्त्तृत्वादपौरुषेयो वेदः पदवाक्यात्मकत्वात्पौरुषेयो वा? न २५
च सन्देहहेतोः प्रामाण्यम् ।

ननु न प्रकृतौ हेतोः सन्देहोत्पत्तिर्येनास्याऽप्रामाण्यम् किन्तु
प्रतिहेतुतः, तस्य चैतस्मिन्सत्यऽप्रवृत्तेः कथं संशयोत्पत्तिः?

१ अभिप्रेतार्थप्रतिपादकत्वान्नय । २ भवतीत्यादि । ३ उच्चारण । ४ अस्य शब्द-
स्वापमर्श इति । ५ सङ्केतान्तरम् । ६ तस्यात् । ७ असर्वज्ञानम् । ८ वेदे । ९ वेदे ।
१० प्रसङ्गात् । ११ वेदे । १२ वेदे । १३ अस्मर्यमाणकर्त्तृकत्वात् । १४ अस्मर्य-
माणकर्त्तृकत्वादिति । १५ साधनम् । १६ अस्मर्यमाणकर्त्तृकत्वात् । १७ कारणम् ।
१८ अस्मर्यमाणकर्त्तृत्वस्य । १९ अपौरुषेयत्वकल्पणस्य साध्यसाधकस्य । २० अस्मर्य-
माणकर्त्तृत्वादिति । २१ विप्रतिकूलहेतुता ।

तदयुक्तम्; यथैव हि प्रकृतहेतोः सङ्गावे पौरुषेयत्वसाधकहेतोर-
प्रवृत्तिरभिधीयते तथा पदवाक्यत्वलक्षणहेतुसङ्गावे सत्यस्य-
माणकर्तृकत्वस्याप्यप्रवृत्तिरस्तु विशेषाभावात् । तत्र स्वतन्त्र-
साधनमिदम् ।

- ५ नापि प्रसङ्गसाधनम्; तत्खलु 'पौरुषेयत्वाम्युपगमे वेदस्य-
तत्कर्तुः पुरुषस्य स्मरणप्रसङ्गः स्यात्' । इत्यनिष्टापादनसमावम् ।
न च कर्तृस्मरणं परस्यानिष्टम्; स हि पदवाक्यत्वेन हेतुना
तत्कर्तुः स्मरणं प्रतीयन् कथं तत्स्मरणस्याऽनिष्टतां ब्रूयात् ?

पौरुषेयत्वसाधनानुमानबाधापक्षेपि किमनेनास्य स्वरूपं वाच्यते,
१० विषयो वा ? न तावत्स्वरूपम्; अपौरुषेयत्वानुमानस्याप्यनेन
स्वरूपबाधनानुषङ्गात्, तयोस्तुल्यबलत्वेनान्योन्यं विशेषाभावात् ।
अतुल्यबलत्वे वा किमनुमानबाधया ? येनैव दोषेणास्याऽतुल्य-
बलत्वं तत एवाप्रामाण्यप्रसिद्धेः । विषयबाधाप्यनुपपन्ना; तुल्य-
बलत्वेन हेत्वोः परस्परविषयप्रतिबन्धे वेदस्योभयधर्मशून्यत्वा-
१५ नुषङ्गात् । एकस्य वा स्वविषयसाधकत्वेऽन्यस्यापि तत्रप्रसङ्गाद्
धर्मद्वैयात्मकत्वं स्यात् । अतुल्यबलत्वे तु यत एवातुल्यबलत्वं
तत एवाऽप्रामाण्यप्रसिद्धेः किमनुमानबाधयेत्युक्तम् ।

एतेन

“वेदस्याध्ययनं सर्वं शुर्वध्ययनपूर्वकम् ।

- २० वेदाध्ययनवाच्यत्वाद्बुनाध्ययनं यथा” [मी० श्लो० अ० ७
श्लो० ३५५] इत्यनेनानुमानेन पौरुषेयत्वप्रसाधकानुमानस्य बाधा;
इत्यपि प्रत्याख्यातम्; प्रकृतदोषाणामत्राप्यविशेषात् ।

किञ्च, अत्र निर्विशेषणमध्ययनशब्दवाच्यत्वमपौरुषेयत्वं प्रति-
पादयेत्, कर्त्रऽस्मैरणविशिष्टं वा ? निर्विशेषणस्य हेतुत्वे निश्चित-
२५ कर्तृकेषु भारतादिष्वपि भावादनेकान्तिकत्वम् ।

१ प्रकृतहेतो सति पदवाक्यत्वं हेत्वन्तरं न प्रवर्तते । पदवाक्यत्वे तु सत्यस्य
प्रकृतो हेतुः वर्तते इति वोऽसौ विशेषस्तस्याभावात् । २ वेदः स्यमाणकर्तृकः
पौरुषेयत्वाद्भारतवत् । हेतुरूपव्याप्त्याम्युपगमेनानिष्टस्य साध्यरूपव्यापकाभ्युपगमसा-
धादनं प्रसङ्गः । ३ जैनस्य । ४ जानम् । ५ पदवाक्यत्वलक्षण । ६ पौरुषेयत्वाऽ-
पौरुषेयत्वानुमानयोः । ७ पौरुषेयत्वलक्षणस्य विषयस्य । ८ पदवाक्यत्वाऽस्यमाण-
कर्तृकत्वलक्षणयोः । ९ अपौरुषेयत्वपौरुषेयत्वलक्षण । १० पौरुषेयत्वाऽपौरुषेयत्व-
लक्षण । ११ वेदस्य । १२ अस्यमाणकर्तृकत्वानुमानस्यापौरुषेयत्वप्रसाधनानुमानं
प्रति बाधकत्वानिराकरणपरेण अन्येन । १३ विश्लेषणमेतत् ।

किञ्च, यथाभूतानां पुरुषाणामध्ययनपूर्वकं दृष्टं तथाभूतानामे-
वाध्ययनशब्दवाच्यत्वमध्ययनपूर्वकत्वं साधयति, अन्यथाभूतानां
वा ? यदि तथाभूतानां तदा सिद्धसाधनम् । अथान्यथाभूतानां
तर्हि सन्निवेशादिवद्ऽप्रयोजको हेतुः । अथ तथाभूतानामेव
तत्तथा ततः साध्यते, न च सिद्धसाधनं सर्वपुरुषाणामतीन्द्रियार्थ-^५
दर्शनशक्तिवैकल्येनातीन्द्रियार्थप्रतिपादकप्रेरणाप्रणेतृत्वात्सामर्थ्ये-
नेदृशत्वात् । तदप्यसाम्प्रतम् ; यतो यदि प्रेरणायास्तथाभूतार्थ-
प्रतिपादने अप्रामाण्याभावः सिद्धः स्यात् स्यादेतत्-यौवता गुण-
वद्भक्तऽभावे तद्गुणैरनिराकृतैर्दावैरपोहितत्वात् तत्र सापेक्षं
प्रामाण्यम्, तथाभूतां प्रेरणामतीन्द्रियार्थदर्शनशक्तिविरहिणोपि ^{१०}
कर्तुं समर्था इति कुतस्तथाभूतप्रेरणाप्रणेतृत्वात्सामर्थ्येनाऽशेष-
पुरुषाणामीदृशत्वसिद्धिर्यतः सिद्धसाधनं न स्यात् ?

अथ न गुणवद्भक्तत्वेनैव शब्देऽप्रामाण्यनिवृत्तिरपौरुषेयत्वे-
नाप्यस्याः सम्भवात् तेनायमदोषः । तदुक्तम्—

“शब्दे दोषोऽङ्गवस्तावद्भक्तधीन इति स्थितम् । १५
तदभावः क्वचित्चावद्गुणवद्भक्तत्वतः ॥ १ ॥
तद्गुणैरपेक्ष्यैनां शब्दे सङ्गान्त्यऽसम्भवात् ।
यद्वा षड्भवेन न स्युर्दोषो निरौभ्रयाः ॥ २ ॥”
[मी० खो० सू० २ खो० ६२-६३]

इति । तदप्यसमीचीनम्, यतोऽपौरुषेयत्वमस्याः किमन्यतः ^{२०}
प्रमाणात्प्रतिपक्षम्, अत एव वा ? यद्यन्यतः ; तदाऽस्यै वैयर्थ्यम् ।
अत एव चेत्, नन्वेतोऽनुमानादपौरुषेयत्वसिद्धौ प्रेरणायामप्रा-

१ अनुनासनसदृशानाम् । २ अस्माभिरपि तथाभूतानां शुर्वऽध्ययनपूर्वकत्वं प्रति-
पाष्ये । ३ अतीन्द्रियार्थदर्शनाम् । ४ आदिना कार्यत्वादिवत् । ५ अकिञ्चित्करो
हेतुस्तेषां शुर्वऽध्ययनपूर्वकत्वं नास्ति यतः । ६ सपक्षव्यापकपक्षव्यावृत्तौ क्षुपाव्याहित-
सम्बन्धो हेतुरप्रयोजकः । ७ जैनानां तु मते सर्वपुरुषाणामतीन्द्रियार्थदर्शने शक्तिवैकल्यं
नास्ति केषाञ्चिदतीन्द्रियार्थदर्शनशक्तिरस्तीति भावः । ८ अक्षिद्योमेन यत्तेति लिङ्गति-
भगवानन्तरं शब्दो मां प्रेरयतीति दर्शनात् प्रेरणान्विततया कृतिः (यागः) प्रवीयते ।
सा च प्रेरणा वेद इत्यर्थः । ९ तर्हि । १० न कुतोपि । ११ येन कारणेन ।
१२ प्रामाण्यनिराकृतत्वात् । १३ सदोषम् । १४ अप्रामाण्यभूतम् । १५ सङ्गमः ।
१६ न तु स्वभावतः । १७ अपौरुषेयवैदवाक्यानन्तरोपप्रेषु स्थितिवाच्येषु । १८ पर-
देव समर्थयत्प्रे । १९ अपौरुषेयवेदे । २० निराकृतानाम् । २१ असंबन्धादयः ।
२२ आश्रयः पुरुषः । २३ वेदाध्ययनवाच्यत्वादिति । २४ वेदाध्ययनवाच्यत्वस्य ।
२५ वेदाध्ययनवाच्यत्वात् । २६ वेदाध्ययनवाच्यत्वात् ।

माण्याभावः स्यात्, तदभावाच्च तथाभूतप्रेरणाप्रणेत्वत्वासामर्थ्येन सर्वपुरुषाणामीदृशत्वसिद्धिरित(रितीत)रेतराश्रयः । तन्न निर्विशेषणोयं हेतुः प्रकृतसाध्यसाधनः ।

अथ सविशेषणः; तदा विशेषणस्यैव केवलस्य गमकत्वाद्विशेष्योपादानमनर्थकम् । भवतु विशेषणस्यैव गमकत्वम् का नो हानिः, सर्वथाऽपौरुषेयत्वसिद्ध्या प्रयोजनात्; तदप्ययुक्तम्; यतः कर्त्रेऽस्सरणं विशेषणं किमभावाख्यं प्रमाणम्, अर्थापत्तिः, अनुमानं वा? तत्राद्यः पक्षो न युक्तः; अभावप्रमाणस्य स्वरूपसामग्रीविषयाऽनुपपत्तितः प्रामाण्यस्यैव प्रतिपिद्धत्वात् ।

१० किञ्च, सत्पुलम्भकप्रमाणपञ्चकनिवृत्तिनिवन्धनास्य प्रवृत्तिः “प्रमाणपञ्चकं यत्र” [मी० श्लो० अभाव० श्लो० १] इत्याद्यभिधानात् । न च प्रमाणपञ्चकस्य वेदे पुरुषसङ्गावावेदकस्य निवृत्तिः, पदवाक्यत्वलक्षणस्य पौरुषेयत्वप्रसाधकत्वेनानुमानस्य प्रतिपादनात् । न चास्याऽप्रामाण्यमभिधातुं शक्यम्; यतोऽस्याऽप्रामाण्यम्—किमनेन वैधितत्वात्, साध्याविनाभावित्वाभावाद्वा स्यात्? तत्राद्यपक्षे चक्रकप्रसङ्गः; तथाहि—न यावदभावप्रमाणप्रवृत्तिर्न तावत्प्रस्तुतानुमानवाधा, यावच्च न तस्य वाधा न तावत्सत्पुलम्भकप्रमाणनिवृत्तिः, यावच्च न तस्य निवृत्तिर्न तावत्तन्निवन्धनाऽभावाख्यप्रमाणप्रवृत्तिः, तदप्रवृत्तौ च नानुमानवाधेति । द्वितीयपक्षस्त्वयुक्तः; स्वसाध्याविनाभावित्वस्यात्र सम्भवात् । न खलु पदवाक्यात्मकत्वं पौरुषेयत्वमन्तरेण कश्चिद्दृष्टं येनास्य स्वसाध्याविनाभावाभावः स्यात् ।

येतेन कर्तुरस्सरणमन्यर्थानुपपद्यमानं कर्त्रेऽभावनिश्चायकमैर्थापत्तिगम्यमपौरुषेयत्वं वेदानामित्यपास्तम्; अन्यथानुपपद्यमानत्वासम्भवस्यार्त्रं प्रागेव प्रतिपादितत्वात् । कर्त्रेऽस्सरणमनुमानरूपमपौरुषेयत्वं प्रसाध्यतीत्यप्यनुपपन्नम्; प्रागेव कृतोत्तरत्वात् ।

एतेन—

“अतीतानागतौ कालौ वेदकारविचर्जितौ ।

कालत्वाच्चर्चंथा कालो वर्त्तमानः समीक्ष्यते ॥ १ ॥” []

१ अप्रामाण्याभावात् । २ अनुमानवाधेति । ३ कथम्? । ४ एव । ५ अभावप्रमाणप्रवृत्तौ प्रस्तुतानुमानवाधा तस्या सत्पुलम्भकप्रमाणनिवृत्तिसत्ता च पदवाक्यत्वस्य स्वसाध्याविनाभावित्वमिति समर्थनपरेण ग्रन्थेन । ६ अपौरुषेयत्वं विना । ७ वेदोऽपौरुषेयः कर्त्रेऽस्सरणान्यथानुपपत्तेः । ८ कर्तुरस्सरणादित्यत्र । ९ पिटकादौ । १० वटे वटे वैभषण इत्यादिनाऽनेकान्तिकसमर्थनेन ।

इत्यपि प्रत्युक्तम्; प्राक्तनानुमानद्वयोक्ताशेषदोषाणामत्राप्य-
विशेषात् । आगमान्तरेप्यस्य तुल्यत्वाच्च ।

किञ्च, इदानीं यथाभूतो वेदाकरणसमर्थपुरुषयुक्तस्तर्कैर्द-
पुरुषरहितो वा कालः प्रतीतोऽतीतोऽनागतो वा तथाभूतः
कालत्वात्साध्येत, अन्यथाभूतो वा ? यदि तथाभूतः; तदा सिद्ध-
साध्यता । अथान्यथाभूतः; तदा सन्निवेशादिवद्ऽप्रयोजको हेतुः ।
अथ तथाभूतस्यैवातीतस्यानागतस्य वा कालस्य तद्द्रहितत्वं
साध्यते, न च सिद्धसाध्यताऽन्यथाभूतस्य कालस्यासम्भवात् ।
नन्वन्यथाभूतः कालो नास्तीत्येतत्कृतः प्रमाणात्प्रतिषेधम् ? यद्य-
न्यतः; तर्हि तत् एवापौरुषेयत्वसिद्धेः किमनेन ? अत एवेति १०
षेत्; ननु 'अन्यथाभूतकालाभावसिद्धावतोऽनुमानात्तद्द्रहितत्व-
सिद्धिः, तत्सिद्धेऽन्यथाभूतकालाभावसिद्धिः' इत्यन्योन्याश्रयः ।

नाप्यागतोऽपौरुषेयत्वसिद्धिः; इतरेतराश्रयानुपपन्नात् । तथा-
हि—आगमस्याऽपौरुषेयत्वसिद्धावप्रामाण्याभावसिद्धिः, तत्सिद्धे-
ऽनातोऽपौरुषेयत्वसिद्धिरिति । न चाऽपौरुषेयत्वसिद्धिरिति । न १५
चाऽपौरुषेयत्वप्रतिपादकं वेदवाक्यमस्ति । नापि विधिवाक्याद्ऽ-
परस्य परैः प्रामाण्यमिष्यते, अन्यथा पौरुषेयत्वमेव स्यात्प्रति-
पादकानां "हिरण्यगर्भः समवर्त्ततांश्रे" [ऋग्वेद अष्ट० ८ मं० १०
सू० १२१] इत्यादिप्रचुरतरवेदवाक्यानां श्रवणात् ।

अपौरुषेयत्वधर्माधारतया प्रमाणप्रसिद्धस्य कस्यचित्पदवाक्या- २०
देरसम्भवाच्च तत्सादृश्येनोपमानादप्यपौरुषेयत्वसिद्धिः ।

नाप्यर्थापत्तेः; अपौरुषेयत्वव्यतिरेकेणानुपपद्यमानस्यार्थस्य
कस्यचिदप्यभावात् । स ह्यप्रामाण्याभावलक्षणो वा स्यात्, अती-
न्द्रियार्थप्रतिपादनस्वभावो वा, परार्थशब्दोच्चारणरूपो वा ? न
तावदाद्यः पक्षः; अप्रामाण्याभावस्यागमान्तरेपि तुल्यत्वात् । न २५
चासौ तत्र मिथ्या; वेदेपि तन्मिथ्यात्वप्रसङ्गात् । अथागमान्तरे
पुरुषस्य कर्तुरभ्युपगमात्, पुरुषाणां तु रागादिदोषदृष्टत्वेन तज्ज-
नितस्याऽप्रामाण्यस्यात्र सम्भवात्तत्रासौ मिथ्या, न वेदे तत्रा-
प्रामाण्योत्पादकदोषाश्रयस्य कर्तुरभावात् । नन्वत्र कुतः कर्तुर-
भावो निश्चितः ? अन्यैतः, अत एव वा ? यद्यन्यतः; तदेवोच्यताम्, ३०

१ कालत्वादित्यनेनानुमानेन पौरुषेयत्वसाधकानुमानस्य स्वरूपं बाधेत विषय-
नेत्यादिप्रकारेण । २ वेद । ३ साधनात् । ४ तेन वेदकर्ता । ५ वेदकर्ता । ६ अस्तु
वा वेदवाक्यमपौरुषेयत्वप्रतिपादकं तथापि । ७ प्रतिषेधवाक्यादेः । ८ गीर्मांसकैः ।
९ अपरस्य प्रामाण्यं यदीष्यते । १० जातः । ११ आदौ । १२ प्रमाणात् ।

किमर्थापस्या? अर्थापत्तेश्चेत्; न; इतरेतराश्रयानुपपत्तात्-अर्थाप-
त्तितो हि पुरुषाभावसिद्धावप्रामाण्याभावसिद्धिः, तत्सिद्धौ चार्था-
पत्तितः पुरुषाभावसिद्धिरिति ।

द्वितीयपक्षोप्ययुक्तः; अतीन्द्रियार्थप्रतिपादनलक्षणार्थस्यागमा-
५न्तरेपि सम्भवात् ।

परार्थशब्दोच्चारणान्यथानुपपत्तेर्नित्यो वेदः; इत्यप्यसमीची-
नम्; धूमादिवत्सादृश्यादप्यर्थप्रतिपत्तेः प्रतिपादयिष्यमाणत्वात् ।

किञ्च, अपौरुषेयत्वं प्रसज्यप्रतिषेधरूपं वेदस्याभ्युपगम्यते,
पर्युदासस्वभावं वा? प्रथमपक्षे तर्त्कि सदुपलम्भकप्रमाणग्राह्यम्,
१० उताऽभावप्रमाणपरिच्छेद्यम्? तत्राद्यः पक्षोऽयुक्तः; सदुपलम्भक-
प्रमाणपञ्चकस्यापौरुषेयग्राहकत्वप्रतिषेधात् । तद्ग्राह्यस्य तुच्छ-
स्वभावाभावरूपत्वानुपपत्तेश्च । प्रतिक्षिप्तश्च तुच्छस्वभावाभावः
प्राक्प्रवन्धेन । द्वितीयपक्षस्तु श्रद्धामात्रगम्यः; अभावप्रमाण-
स्याऽसम्भवतस्तेन तद्ग्राहणानुपपत्तेः । तदसम्भवश्च तत्सामग्री-
१५ स्वरूपयोः प्राक्प्रवन्धेन प्रतिषिद्धत्वात्सिद्धः ।

अथ पर्युदासरूपं तदभ्युपगम्यते । नन्वत्रापि किं पौरुषेयत्वाद्-
न्यत्पर्युदासवृत्त्याऽपौरुषेयत्वशब्दाभिधेयं स्यात्? तैत्स्वमिति
चेत्; तर्त्कि निर्विशेषणम्, अनादिविशेषणविशिष्टं वा? प्रथमपक्षे
सिद्धसाध्यता; ततोऽन्यस्य वेदसत्त्वमात्रस्याध्यक्षादिप्रमाणप्रसि-
२० द्धस्यासामिरभ्युपगमात् । पौरुषेयत्वं हि कृतकत्वम्, ततश्चान्य-
त्सत्त्वमित्यत्र को वै विप्रतिपद्यते? द्वितीयपक्षः पुनरविचारितर-
मणीयः; वेदानादिसत्त्वे प्रत्यक्षादिप्रमाणतः प्रसिद्धसम्भवस्याऽ-
नन्तरमेव प्रतिपादितत्वात् ।

अस्तु वाऽपौरुषेयो वेदः; तथाप्यसौ व्याख्यातः, अव्याख्यातो
२५ वा स्वार्थे प्रतीतिं कुर्यात्? न तावदव्याख्यातः; अतिप्रसङ्गात् ।
व्याख्यातश्चेत्; कुतस्तद्व्याख्यानम्-स्वतः; पुरुषाद्वा? न ताव-
त्स्वतः; 'अयमेव मदीयपदवाक्यानामर्थो नायम्' इति स्वयं
वेदेनाऽप्रतिर्पादनात्, अन्यथा व्याख्यामेदो न स्यात् । पुरुषाश्चेत्;
कथं तद्ग्राख्यानात्पौरुषेयादर्थप्रतिपत्तौ दोषाशङ्का न स्यात्?
३० पुरुषा हि विपरीतमप्यर्थं व्याचक्षाणा दृश्यन्ते । संवादेन प्रामा-

१ इति । २ निरुत्पादपौरुषेयत्वम् । ३ वेदे । ४ जैनेः । ५ द्विजवस्तीगता-
ज्ञाप्यवैप्रतीतिं कुर्यात् । ६ वेदस्य जडत्वेन वक्तुमशक्यत्वात् । ७ यदि वेदः
प्रतिपादयति । ८ भवनाविधिलियोगादिः । ९ व्याख्यानात्वात् । १० व्याख्या-
नात् ।

ण्याभ्युपगमे च अपौरुषेयत्वकल्पनाऽनर्थिका तद्ब्रह्मेदस्यापि प्रमाणान्तरसंवादादेव प्रामाण्योपपत्तेः । न च व्याख्यानानां संवादाऽस्ति; परस्परविरुद्धभावनानियोगादिव्याख्यानानामन्योन्यं विस्वादापोलम्भात् ।

किञ्च, असौ तद्ब्रह्माख्याताऽतीन्द्रियार्थद्रष्टा, तद्विपरीतो वा? प्रथमपक्षे अतीन्द्रियार्थदर्शिनः प्रतिषेधविरोधो धर्मादौ चास्य प्रामाण्योपपत्तेः “धर्मे चोदनैव प्रमाणम्” [] इत्य-
चचारणानुपपत्तिश्च ।

अथ तद्विपरीतः; कथं तर्हि तद्ब्रह्माख्यानाद्यथार्थप्रतिपत्तिः अय-
थार्थाभिधानाशङ्कया तदनुपपत्तेः? न च मन्वादीनां सातिशय-१०
प्रकृत्यात्तद्ब्रह्माख्यानाद्यथार्थप्रतिपत्तिः; तेषां सातिशयप्रकृत्या-
सिद्धेः । तेषां हि प्रकृतिशयः स्वतः, वेदार्थाभ्यासात्, अदृष्टात्,
ब्रह्मणो वा स्यात्? स्वतश्चेत्; सर्वस्य स्याद्विशेषाभावात् । वेदार्था-
भ्यासाच्चेत् किं ज्ञातस्य, अज्ञातस्य वा तदर्थस्याभ्यासः स्यात्? न
तावदज्ञातस्याऽतिप्रसङ्गात् । ज्ञातस्य चेत्; कुतस्तज्ज्ञप्तिः-स्वतः, ११
अन्यतो वा? स्वतश्चेत्; अन्योन्याश्रयः-सति हि वेदार्थाभ्यासे
स्वतस्तपरिज्ञानम्, तस्मिन् तदर्थ्याभ्यास इति । अन्यतश्चेत्;
तस्यापि तत्परिज्ञानमन्यत इत्यतीन्द्रियार्थदर्शिनोऽनभ्युपगमेऽ-
न्यपरम्परतो यथार्थनिर्णयानुपपत्तिः ।

अदृष्टोपि प्रकृतिशयाऽसाधकः; तस्यात्मान्तरेपि सम्भवात् । १०
न तंथाविधोऽदृष्टोऽन्यत्र मन्वादावेवांस्य सम्भवादिति चेत्;
कुतोऽत्रैवांस्य सम्भवः? वेदार्थानुष्ठानविशेषाच्चेत्; स तर्हि
वेदार्थस्य ज्ञातस्य, अज्ञातस्य वाऽनुष्ठानात् स्यात्? अज्ञातस्य चेत्;
अतिप्रसङ्गः । ज्ञातस्य चेत्; परस्परश्रयः-सिद्धे हि वेदार्थ-
ज्ञानातिशये तदर्थानुष्ठानविशेषसिद्धिः, तत्सिद्धौ च तज्ज्ञानाति- १५
शयसिद्धिरिति ।

ब्रह्मणोपि वेदार्थज्ञाने सिद्धे सत्यऽतो मन्वादेस्तदर्थपरिज्ञानाति-
शयः स्यात् । तच्चास्य कुतः सिद्धम्? धर्मविशेषाच्चेत्; स

१ प्रत्यक्षप्राप्तेर्षे प्रत्यक्ष संवादकमनुमेयेर्षे अनुमानमेव संवादकं परोक्षेऽर्षे पूर्वा-
परविरोधः संवादः । २ मीमांसकमते । ३ तस्मादतीन्द्रियार्थद्रष्टुः । ४ अतीन्द्रि-
यार्थद्रष्टुर्विपरीतस्य किञ्चिन्वत्स । ५ गोपालादीनामपि वेदार्थसाम्यासप्रसङ्गात् ।
६ पुरुषात् । ७ परस्य त्व । ८ अवेत् । ९ प्रकृतिशयसाधकः । १० प्रकृति-
शयसाधकाद्ब्रह्मस्य । ११ प्रकृतिशयसाधकाद्ब्रह्मस्य । १२ गोपालादीनामपि वेदार्थ-
नुष्ठानप्रसङ्गः ।

एवेतरेतराश्रयः—वेदार्थपरिज्ञानाभावे हि तत्पूर्वकानुष्ठानजनित-
धर्मविशेषानुत्पत्तिः, तदनुत्पत्तौ च वेदार्थपरिज्ञानाभाव इति ।
तस्मात्तीन्द्रियार्थदर्शिनोऽनभ्युपगमे वेदार्थप्रतिपत्तिर्घटते ।

ननु व्याकरणाद्यभ्यासाल्लौकिकपदवाक्यार्थप्रतिपत्तौ तद्वि-
५ शिष्टवैदिकपदवाक्यार्थप्रतिपत्तिरपि प्रसिद्धेरश्रुतकाव्यादिवत्,
तत्र वेदार्थप्रतिपत्तावऽतीन्द्रियार्थदर्शना किञ्चित्प्रयोजनम्;
इत्यप्यसारम्; लौकिकवैदिकपदानामेकत्वेऽप्यनेकार्थत्वव्यवस्थितेः
अन्यपरिहारेण व्याचिख्यासितार्थस्य नियमयितुशक्तेः । न च
प्रकरणादिभ्यस्तन्नियमः; तेषामप्यनेकप्रवृत्तेर्द्विसन्धानादिवत् ।
१० यदि च लौकिकेनाश्रयादिशब्देनाविशिष्टत्वाद्द्वैदिकस्याश्रयादिशब्द-
स्यार्थप्रतिपत्तिः; तर्हि पौरुषेयेणाविशिष्टत्वात्पौरुषेयोसौ कथं न
स्यात्? लौकिकस्य ह्यश्रयादिशब्दस्यार्थवत्त्वं पौरुषेयत्वेन व्याप्तम् ।
तत्रार्थं वैदिकोऽश्रयादिशब्दः कथं पौरुषेयत्वं परित्यज्य तदर्थमेव
ग्रहीतुं शक्नोति? उभयमपि हि गृहीयाज्जह्याद्वा ।

१५ न च लौकिकवैदिकशब्दयोः शब्दस्वरूपांविशेषे सङ्केतग्रहणस-
व्यपेक्षत्वेनाऽर्थप्रतिपादकत्वे अनुच्चार्यमाणयोश्च पुरुषेणाऽश्रवणे
समाने अन्यो विशेषो विद्यते यतो वैदिका अपौरुषेयाः शब्दा
लौकिकास्तु पौरुषेया स्युः । सङ्केते(ता)नतिक्रमेणार्थप्रत्यायनं
चोभयोरपि ।

२० न चापौरुषेयत्वे पुरुषेच्छावशादर्थप्रतिपादकत्वं युक्तम्, उप-
लभ्यन्ते च यत्र पुरुषैः सङ्केतिताः शब्दास्तं तमर्थमविगानेन
प्रतिपादयन्तः, अन्यथा तत्सङ्केतमेदपरिकल्पनानर्थक्यं स्यात् ।
ततो ये नररचितवचनरचनाऽविशिष्टास्ते पौरुषेयाः यथाऽभिनव-
कूपप्रासादादिरचनाऽविशिष्टा जीर्णकूपप्रासादादयः, नररचित-
२५ वचनाऽविशिष्टं च वैदिकं वचनमिति ।

न चात्राश्रयासिद्धो हेतुः; वैदिकीनां वचनरचनानां प्रत्यक्षतः
प्रतीतेः । नाप्यप्रसिद्धविशेषणैः पक्षः; अभिनवकूपप्रासादादौ

१ आदिना निषण्डः । २ तस्मात्कारणात् । ३ सदृशत्वे । ४ अन्यार्थस्य ।
५ द्विसन्धानकाव्यवत् । ६ सदृशत्वात् । ७ शब्देन । ८ अश्रयादिशब्दसार्पवत्त्वे
पौरुषेयत्वेन व्याप्ते सति । ९ अपौरुषेयत्वपौरुषेयत्वद्वयम् । १० वैदिकानां शब्दानां
कश्चन विशेषोस्ति ततोऽमीषामपौरुषेयत्वमित्याशङ्क्यात् । ११ समानत्वे । १२ अत्र
शब्दस्यायमर्थ इति । १३ समाने । १४ समानम् । १५ वेदे । १६ अर्थे ।
१७ वैदिकं वचनं धर्मि पौरुषेयं भवति नररचितवचनरचनाऽविशिष्टत्वात् । १८ अनु-
माने । १९ अवगणेन । २० समतापेक्षया । २१ सार्थं पौरुषेयत्वम् । २२ सपक्षे ।

पुरुषपूर्वकत्वेनास्य साध्यविशेषणस्य सुप्रसिद्धत्वात् । न च हेतोः स्वरूपासिद्धत्वम्; तद्वचनरचनासु विशेषप्राहकप्रमाणाभावेनास्याऽभावात् ।

न चाप्रामाण्याभावलक्षणो विशेषस्तत्रेत्यभिघातव्यम्; तस्य विद्यमानस्यापि तन्निराकारकत्वाभावात् । यादृशो हि विशेषः ५ प्रतीयमानः पौरुषेयत्वं निराकरोति तादृशस्यास्याऽभावाद्ऽविशिष्टत्वम् न पुनः सर्वथा विशेषाभावात्, एकान्तेनैऽविशिष्टस्य कस्यचिद्वस्तुनोऽभावात् । अप्रामाण्याभावलक्षणञ्च विशेषो दोषवन्तमप्रामाण्यकारणं पुरुषं निराकरोति न गुणवन्तमप्रामाण्यनिवर्त्तकम् । न च गुणवतः पुरुषस्याभावादन्वस्य चानेन १० विशेषेण निराकृतत्वात्सिद्धमेवापौरुषेयत्वं तत्रेत्यभ्युपगन्तव्यम्; तत्सङ्गावस्य प्रोक्तप्रतिपादितत्वात् । तदभावेऽप्रामाण्याभावलक्षणविशेषाभावप्रसङ्गाच्च ।

पौरुषेये प्रासादादौ हेतोर्दर्शनादपौरुषेये चाकाशादावऽदर्शनाद्भ्रान्तैकान्तिकत्वम् । अत एव न विरुद्धत्वम्; पक्षधर्मत्वे हि सति १५ विपक्षे वृत्तिर्यस्य स विरुद्धः, न चास्य विपक्षे वृत्तिः । नापि कालाल्यायापदिष्टत्वम्; तद्धि हेतोः प्रत्यक्षागमवार्धितकर्मनिर्देशानन्तरप्रयुक्तं भवतेत्यते । न च यत्र स्वसाध्याविनाभूतो हेतुर्धर्मिणि प्रवर्त्तमानः स्वसाध्यं प्रसाधयति तत्रैव प्रमाणान्तरं प्रवृत्तिमासाद्यत्तमेव धर्मं व्यावर्त्तयति; एकस्यैकदैकत्र विधिप्रतिषेधयो- २० विरोधात् । प्रकरणसमत्वमपि प्रतिहेतोर्विपरीतधर्मप्रसाधकस्य प्रकरणचिन्ताप्रवर्त्तकस्य तत्रैव धर्मिणि सङ्गावोऽभिधीयते । न च स्वसाध्याविनाभूतहेतुप्रसाधितधर्मिणो विपरीतधर्मोपेतत्वं सम्भवतीति न विपरीतधर्मार्थायिनो हेत्वन्तरस्य तत्र प्रवृत्तिरिति । तत्र वेदपदवाक्ययोर्नित्यत्वं घटते ।

२५

१ पौरुषेयत्वम् । २ लौकिकं नररचितरचनाऽविशिष्टं वैदिकं नेति भेदः । ३ पौरुषेयत्वम् । ४ वैदिकलौकिकशब्दयोरभिन्नत्वम् । ५ अविभिन्नत्वम् । ६ सर्वथा वैदिकलौकिकशब्दयोरविषेधादमेवो भविष्यतीत्युक्ते आह । ७ सर्वप्रकारेण । ८ जमेदरूपस्य । ९ वैदिकलौकिकशब्दयोरतीन्द्रियार्थेन्द्रियार्थप्रतिपादकत्वाद्भेदो यतः । १० वेदे । ११ सर्ववृत्तिप्रस्तावे । १२ यथा शब्दो नित्यः कृतकत्वादिति कृतकत्वस्य शब्दधर्मत्वेन नित्यात्साध्याद्विपरीतेऽनिले विपक्षे वृत्तिमस्याद्विरुद्धः । १३ हेतोः । १४ पक्ष । १५ वृत्तिक्रियाविषयत्वात्कर्मलक्षणत्वम् । १६ प्रत्यक्षागमलक्षणम् । १७ धर्मत्वम् । १८ प्रतिपक्षसाधकम् । १९ संशयात्प्रश्लान्निश्चयात्पर्यालोचना । २० सत्यविपक्षो हेतुः प्रकरणसम इति वचनात् । २१ प्रसाधकम् । २२ विधिप्रतिषेधरूपयोः ।

नापि वर्णानां कृतकत्वतः शब्दमात्रस्यानित्यत्वसिद्धौ तेषामप्य-
नित्यत्वसिद्धौ तेषामप्यनित्यत्वोपपत्तेः । तथाहि-अनित्यः शब्दः
कृतकत्वाद् घटवत् । न च कृतकत्वमसिद्धम् ; तथाहि-कृतकः
शब्दः कारणान्वयव्यतिरेकानुविधायित्वात्तद्वदेव । न चेदमप्य-
५ सिद्धम् ; तात्त्वादिकारणव्यापारे सत्येव शब्दस्यात्मलाभप्रतीते-
स्तदभावे वाऽप्रतीतेः, चक्रादिव्यापारसङ्गात्वासङ्गावयोर्घटस्या-
त्मलाभालाभप्रतीतिवत् ।

ननु शब्दस्याऽनित्यत्वोपगमे ततोर्थप्रतीतिर्न स्यात्, अस्ति
चासौ । ततो 'नित्यः शब्दः स्वार्थप्रतिपादकत्वान्यथानुपपत्तेः' इत्य-
१० भ्युपगन्तव्यम् । स्वार्थेनावगतसम्बन्धो हि शब्दः स्वार्थं प्रतिपाद-
यति, अन्यथाऽगृहीतसङ्केतस्यापि प्रतिपन्नस्ततोऽर्थप्रतीतिप्रसङ्गः ।

सम्बन्धावगमश्च प्रमाणत्रयसम्पाद्यः ; तथाहि-यदैको कृद्गोऽ-
न्यैस्मै प्रतिपन्नसङ्केताय प्रतिपादयति- 'देवदत्तं गामभ्याजं शुक्लं
वृणुते' इति, तदा पार्श्वस्थान्योऽभ्युत्पन्नसङ्केतः शब्दार्थो प्रत्य-
१५ क्षतः प्रतिपद्यते, श्रोतुंश्च तद्विषयक्षेपणीदिचेष्टोपलम्भानुमीनतो
गवादिविषयां प्रतिपत्तिं प्रतिपर्येते, तत्प्रतिपत्त्यन्यथानुपपत्त्या
च तच्छब्दस्यैव तत्र वाचिकां शक्तिं परिकल्पयति पुनः पुनस्तै-
च्छब्दोच्चारणादेव तदर्थस्य प्रतिपत्तेः । सोयं प्रमाणत्रयसम्पाद्यः
२० पुनः पुनरुच्चारणं घटते, तदभावे नान्वयव्यतिरेकाभ्यां वाचक-
शक्त्यवगमः, तदसत्त्वाच्च प्रेक्षावङ्किः परावबोधाय वाक्यमुच्चा-
र्येत । न चैवम् । ततः परार्थवाक्योच्चारणान्यथानुपपत्त्या निश्ची-
यते नित्योसौ ।

तदुक्तम्--"दर्शनस्य परार्थत्वाच्चित्यः शब्दः" [जैमिनि सू० १।१८]

२५ अथ मतम्-पुनः पुनरुच्चार्यमाणः शब्दः सादृश्यादेकत्वेन
निश्चीयमानोऽर्थप्रतिपत्तिं विदधाति न पुनर्नित्यत्वात् ; तदसमी-

१ नित्यत्वमन्तरेण । २ कैनेव त्वया । ३ गृहीत । ४ प्रलक्षानुमानार्थापत्तिरिति ।
५ पूर्वं श्रोतोः सकाशात् । ६ ना । ७ बालकाय । ८ तृतीयः । ९ गुरुसन्निधौ
गमानयनसमये । १० गोशब्दं भावगप्रत्ययेण, गोलक्षणमर्थं नायनप्रत्ययेण । ११ यं
देवदत्तं प्रति वाच्यं प्रोक्तं तस्य । १२ आदिना ताडनप्रेरणादि । १३ तृतीयः ।
१४ स्त्रियो गोलक्षणार्थं ज्ञानवाच् तद्विषयचेष्टावत्त्वान्मदत् । १५ गोशब्दो गोलक्ष-
णार्थवाचकशक्तियुक्तो गोप्रतीत्यन्यथानुपपत्तेरिति । १६ गो इति । १७ नित्यत्व
शब्दस्य । १८ गोशब्दे लभारिते गोलक्षणार्थप्रतिपत्तिर्भवति, अनुच्चारिते गोलक्षणार्थ-
प्रतिपत्तिर्न भवतीति । १९ वाचकशक्त्यवगमेस्य । २० शब्दः । २१ उच्चारणस्य ।
२२ घटोयं पुनर्देशकात्परे घटोयमिति ।

धीनम्, सादृश्येन ततोर्थाऽप्रतिपत्तेः । न हि सदृशतया शब्दः प्रतीयमानो वाचकत्वेनाव्यवसीयते किन्त्वेकैत्वेन । य एव हि सम्बन्धग्रहणसमये मया प्रतिपन्नः शब्दः स एवायमिति प्रतीतेः ।

किञ्च, सादृश्यादर्थप्रतीतौ भ्रान्तः शाब्दः प्रत्ययः स्यात् । न ह्यन्यस्मिन्नगृहीतसङ्केतेऽन्यस्मादर्थप्रत्ययोऽभ्रान्तः, गोशब्दे ५ गृहीतसङ्केतेऽन्वशब्दाद्भवार्थप्रत्ययेऽभ्रान्तत्वप्रसङ्गात् । न च भूयोऽव्ययसामान्ययोगैस्वरूपं सादृश्यं शब्दे सम्भवति; विशिष्टै-वर्णात्मकत्वाच्छब्दानां वर्णानां च निर्देवयवत्वात् । न च गौवादि-विशिष्टानां गौदीनां वाचकत्वं युक्तम्; गत्वादिसामान्यस्याऽभा-वात्, तदभावश्च गौदीनां नानात्वायोगात्, सोपि प्रत्यभिज्ञया १० तेषामेकैत्वनिश्चयात् । न चात्र प्रत्यभिज्ञा सामान्यनिबन्धना; भेदेनिष्ठस्य सामान्यस्यैव गौदिष्वसम्भवौत् ।

किञ्च, गौवादीनां वैचकत्वम्, गादिव्यक्तीनां वा ? न तावद्गत्वा-दीनाम्; नित्यस्य वाचकैत्वेऽसंनिभताश्रयणप्रसङ्गात् । नापि गादि-व्यक्तीनाम्; तथा हि—गादिव्यक्तिविशेषो वाचकः, व्यक्तिमात्रं वा ? १५ न तावद्गादिव्यक्तिविशेषः; तस्यानन्वयात् । नापि व्यक्तिमात्रम्; तद्धि सामान्यान्तःपाति, व्यचयन्तर्भूतं वा ? सामान्यान्तःपातित्वे स एवास्मन्मतप्रवेशः । व्यचयन्तर्भूतत्वे तद्वत्सोऽनन्वयदोष इति । ततोऽर्थप्रतिपादकत्वान्यथानुपपत्तेर्नित्यः शब्दः । तदुक्तम्—

“अर्थापत्तिरियं चोक्ता पक्षधर्मादिवैर्जितौ ।

२०

१ उच्यते । २ यकथाकित्यत्वम् । ३ ज्ञानम् । ४ शब्दे । ५ शब्दात् । ६ अन्यत्वाऽविशेषात् । ७ अन्यथा । ८ गटे सति । ९ गृहीतसङ्केतशब्दस्य नष्टत्वात् । १० बहु । ११ सम्बन्ध । १२ सामान्यम् । १३ सादृश्यवर्णरहितैकत्वधर्मी; स एव विशेषस्तेनोपलक्षितो वर्णः, स आत्मा स्वरूपं यस्य शब्दस्य । १४ वर्णानां पुद्गल-त्मकत्वात् शब्दस्य च वर्णात्मकत्वाच्छब्दे तथाविवं सादृश्यं अनिश्चयीत्यरेकाग्रमाह । १५ निरसत्वात् । अर्थाभावे किं केन सादृश्यं स्यात् । १६ अत्वादिना च । १७ अकारादीनां च । १८ अनेकसमवेतरथास्सामान्यस्य । १९ स एवार्थं वृत्कार इति । २० गत्वादि । २१ विशेष । २२ अनेकरूपेषु । २३ गकार एक एवेति गभेदाद्यावात् । २४ सामान्यरूपाणाम् । २५ अन्यथानुपपत्तिरिति हेतुके आह । २६ गोपिण्डस्य । २७ भीमासक । २८ सङ्केतकाले गृहीतस्य शब्दस्य व्यवहारकाले आपमनाभावात् सङ्केतव्यवहारशब्दयोर्भेदो यतः । २९ सामान्यस्य नित्यत्वात् । ३० विपक्षेऽनित्यत्वे शब्दस्यार्थप्रतिपादकत्वं न घटते यतः । ३१ वाचकसामर्थ्य-मित्यर्थः ३२ आदिना सपक्षे सख्यत् । ३३ अर्थापत्तौ पक्षधर्मादीनां प्रयोजनं नास्ति यतः ।

- यदि नाशिनित्ये वा विनैशिन्येव वा भवेत् ॥ १ ॥
 शब्दे वाचकसामर्थ्यं ततो दूषणमुच्यताम् ।
 फलवद्यवहाररङ्गभूतार्थप्रत्ययाङ्गता ॥ २ ॥
 निष्फलत्वेन शब्दस्य योग्यत्वादर्वंगम्यते ।
 ५ परीक्षमाणस्तेनैस्य युक्त्या नित्यविनैशयोः ॥ ३ ॥
 स धर्मोऽभ्युपगन्तव्यो यः प्रधानं न वाचते ।
 न ह्यङ्गोऽनुरोधेन प्रधानफलवर्धनम् ॥ ४ ॥
 युज्यते नाशिपक्षे च तदेकान्तात्प्रसज्यते ।
 न ह्यदृष्टीर्यसम्बन्धः शब्दो भवति वाचकः ॥ ५ ॥
 १० तथा च स्यादपूर्वोपि सर्वैः सर्वे प्रकाशयेत् ।
 सम्बन्धदर्शनं चैस्य नाऽनित्यस्योपपद्यते ॥ ६ ॥
 सम्बन्धज्ञानेसिद्धिश्रेष्ठैर्बुधैः कालान्तरस्थितिः ।
 अन्यस्मिन् ज्ञातसम्बन्धे न चान्यो वाचको भवेत् ॥ ७ ॥
 गोशब्दे ज्ञातसम्बन्धे नाऽश्वशब्दो हि वाचकः १”
 १५ [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २३७-२४४] इति ।
 अथ विभिन्नदेशादितैयोपलभ्यमानत्वाद्गकारादीनां नानात्वा-
 ऽनित्यत्वे साध्येते; तन्न; अनेकप्रतिपत्तृभिर्विभिन्नदेशादितयो-
 पलभ्यमानेनादित्येनानेकान्तात् । विभिन्नदेशादितयोपलम्भश्रैषां
 व्यञ्जकध्वन्यधीनो, न स्वरूपमेदनिबन्धनः । तदुक्तम्—
 २० “नित्यत्वं व्यापकत्वं च सर्वेषु संस्थितम् ।
 प्रत्यभिज्ञानतो मीनाद्वाधसैक्यमवर्जितात् ॥ १ ॥” []

१ अर्थापत्तिरेवासां तथाप्यन्यथासिद्धत्वमन्यथैव सिद्धत्वं वा स्यादित्युक्ते आह ।
 २ वनयात्मके । ३ केवलेऽनिले । ४ निलानिलात्मके केवलेऽनिले शब्दे वाचक-
 सामर्थ्यस्य वर्तमानात् । ५ न चैवमिति भावः । ६ फलवाञ्छासौ प्रवृत्तिनिवृत्ति-
 लक्षणव्यवहारश्च तस्याङ्गभूतं कारणभूतं च तदर्थप्रत्ययश्च, तस्याङ्गता कारणता
 शब्दस्य । ७ अन्यथा । ८ हेतुना । ९ अर्थप्रतीतिलक्षणफलराहित्ये । १० अर्थ-
 प्रतिपत्तिः । ११ उक्तप्रकारेण सफलत्वमाधत्तं शब्दस्येति फलं मन्वत् को दोष
 इत्युक्ते आह परीक्षेलादि । १२ फलवत्त्वं सिद्धं शब्दस्य येन कारणेन । १३ इयो-
 र्धर्मयोर्धर्म्ये । १४ नित्यफललक्षणः । १५ विलयस्य फलम् । १६ निलत्वं
 वाचकं अभिव्यक्ति प्रधानफलस्येत्युक्ते आह न हीत्यादि । १७ कारण । १८ भावेन ।
 १९ लक्षणता । २० अर्थप्रतीतिलक्षणमुख्यफलस्य । २१ निलापक्षवप्राप्तिपक्षेपि
 प्रधानफलवाचनं नास्तीत्युक्ते आह । २२ नियमेन । २३ अज्ञातार्थः । २४ शब्दस्य ।
 २५ गृहीतसम्बन्ध एव प्रशक्तोऽस्त्विलाह । २६ अवयवम् । २७ शब्दस्य काल-
 न्तरस्थितिपक्षे । २८ आदिना कालः । २९ गादयो धर्मिणो नाना जगित्वाश्च भवन्ति
 विभिन्नदेशकालवादित्यनुमानेन । ३० प्रमाणात् । ३१ संगमः=संघमः ।

“यो यो गृहीतः सर्वस्मिन्देशे शब्दो हि विद्यते ।
 न चास्याऽवयवाः सन्ति येन वर्त्तत भागशः ॥ २ ॥
 शब्दो वर्त्तत इत्येव तत्र सर्वात्मकश्च सः ।
 व्यञ्जकध्वन्यऽधीनत्वात्तद्देशे स च गृह्यते ॥ ३ ॥
 न च ध्वनीनां सामर्थ्यं व्याप्तुं व्योम निरन्तरम् ।
 तेनाऽविच्छिन्नरूपेण नासौ सर्वत्र गृह्यते ॥ ४ ॥
 ध्वनीनां भिन्नदेशत्वं श्रुतिस्तत्रानुरुच्यते ।
 अपरितान्तरालत्वाद्भिच्छेदश्चावसीयते ॥ ५ ॥
 तेषां चाल्पकदेशत्वाच्छब्देऽप्यऽविमुतामतिः ।
 गतिमद्वेगवत्त्वाभ्यां ते चायान्ति यतो यतः ॥ ६ ॥
 श्रोता ततस्ततः शब्दमाथान्तमिव मन्यते ॥”

[मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १७२-१७५]

अथैकेन भिन्नदेशोपलम्भाद् घटादिवचनान्तात्वम्; न; आदित्ये-
 नानेकान्तात् । इत्यते ह्येकेनादित्यो भिन्नदेशः, न चातावतासौ
 नाना । अथ ‘युगपदेकेन भिन्नदेशोपलब्धेः’ इति विशेष्योच्यते, १५
 तथाप्यनेनैवानेकान्तः । जलपात्रेषु हि भिन्नदेशेषु सवितैकोप्ये-
 केन युगपद्भिन्नदेशो गृह्यते । उक्तं च—

“सूर्यस्य देशभिन्नत्वं न त्वेकेन न गृह्यते ।
 न नाम सर्वथा तावद्दृश्यं नैकदेशता ॥ १ ॥
 सविशेषैर्षं हेतुश्चेत्तथापि व्यभिचारिता ।
 हेतुश्च भिन्नदेशोयमित्येकोपि हि बुध्यते ॥ २ ॥
 जलपात्रेषु चैकेन नानैकः सवितैक्यते ।
 युगपर्षं च भेदेस्य प्रमाणं तुल्यवेदान्तात् ॥ ३ ॥”

[मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १७६-१७८]

१ प्रत्यभिधानाच्छब्दस्य व्यापकत्वं कथमित्युक्ते आह । २ अवयवसङ्ग्राहात्
 खण्डशो वर्त्तते इत्युक्ते आह । ३ भागशो न वर्त्तते तर्हि कथं वर्त्तते इत्युक्ते आह ।
 ४ सर्वत्र विद्यते चेत्तर्हि सर्वत्रैवोपलम्भः स्यादित्युक्ते आह । ५ ध्वनयोपि सकलदेशं
 कथं न व्याप्तुवन्तीत्युक्ते आह । ६ नानादेशेषूपलम्बमानत्वम् । ७ शब्दअवयवम् ।
 ८ शब्दव्यञ्जकवाच्यताम् । ९ अत एव अवयवव्यभिचारो दृश्यते । १० गतिः=
 क्रियारूपा । वेगः=सत्कारविशेषः । ११ भिन्नदेशश्चेद्गुणत्वमर्थे तदा भिन्नदेशो
 भविष्यतीत्युक्ते आह नेति । १२ सूर्यस्य । १३ युगपदिति । १४ कथं व्यभिचारे
 इत्यते इत्यारिकायामाह । १५ एकः सूर्यो भिन्नदेशतया कथं बुध्यते इत्युक्ते आह ।
 १६ एषं चेत्तर्हि सूर्यो नानारूपो भविष्यतीत्युक्ते आह । १७ आदित्य आदित्य इति
 समानरूपत्वादेवनाम्नैतरेक एवायमित्युक्तमीयते । न चास्य भेदे प्रमाणं किञ्चिदित्यर्थः ।

कश्चिदाह—न तत्र सवितेक्ष्यते तस्य नभसि व्यवस्थानात्,
तन्निमित्तानि तु तेषु प्रतिबिम्बानि प्रतीयन्ते, ततो नानेकान्तः ।

“आह्नैकेन निमित्तेन प्रतिपात्रं पृथक् पृथक् ।

भिन्नानि प्रतिबिम्बानि गृह्यन्ते युगपन्मया ॥ १ ॥”

५

[मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १७९]

एतत्कुमारिलः परिहरन्नाह—

“अत्र ब्रूमो यदा यावज्जले सौर्येण तेजसा ।

स्फुरता चाक्षुषं तेजः प्रतिस्त्रोतैः प्रवर्त्तितम् ॥ १ ॥

खेदेशमेव गृह्णाति सवितारमनेकधा ।

१०

भिन्नमूर्त्तिं यथापात्रं तैदास्यानेकता कुतः ॥ २ ॥”

[मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १८०-१८१]

यथा च प्रदीपः ।

“ईर्षत्सम्मिलितेऽङ्गुल्या यथा चक्षुषि दृश्यते ।

पुंथगेकोपि भिन्नत्वाच्चक्षुर्वृत्तेस्तैथैव नः ॥ १ ॥

१५

अन्ये तु चोदयन्त्यत्र प्रतिबिम्बोदयैषिणः ।

स एव चैत्प्रतीयेत कस्मान्नोपरि दृश्यते ॥ २ ॥

कूपादिषु कुतोऽघस्तात्प्रतिबिम्बाङ्घ्रिनेक्षणम् ।

प्राबुसुखो दर्पणं पश्यन् स्याच्च प्रत्यङ्मुखः कथम् ॥ ३ ॥

तत्रैव बोधयेदर्थं बहिर्यातं यदीन्द्रियम् ।

२०

तत एतद्भवेदेवं शरीरे तत्तु बोधकम् ॥ ४ ॥”

[मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १८२-१८५]

त्रैत्राह—

“अप्सूर्यदर्शिनां नित्यं द्वेषा चक्षुः प्रवर्त्तते ।

एकमूर्द्धमघस्ताच्च तत्रोर्द्धांशप्रकाशितम् ॥ १ ॥

२५

अधिष्ठानानृजुत्वाच्च नात्मा सूर्यं प्रपद्यते ।

पारम्पर्योर्पितं स तमर्चागृह्यत्वा तु बुध्यते ॥ २ ॥

१ जैनादिः । २ स सर्वो निमित्तं येषां तानि । ३ सूर्येण । ४ नानात्वेन ।
५ क्रियाविशेषणमेतत् । ६ पात्राण्यनतिक्रम्य । ७ यदा दृश्यते । ८ अमेयनस्त्रोका-
न्तर्यामिणः केन सह सवन्धनीय इत्यन्वयार्थो ‘यथा च प्रदीपः’ शब्द उक्तः ।
९ एक एव सविता नाना कर्म दृश्यते इत्याह ईषदिति । १० नानारूपेण ।
११ चक्षुःप्रवृत्तिर्नानारूपास्ति यत इत्यर्थः । १२ नः=असाकमपि, सवैव=मदीप-
प्रकारेणैव । एकोप्यादिलो नानात्वेन दृश्यते चक्षुषः प्रवृत्तेर्भिन्नत्वात् । १३ कूपादिषु
कुत इत्यस्य समाधानमिदममेतन्नय ।

ऊर्ध्ववृत्ति तदेकत्वाद्वागिव च मन्यते ।
 अंधस्तादेव तेनार्कः सान्तरालः प्रतीयते ॥ ३ ॥
 एवं प्राग्गतया धृत्या प्रत्यग्वृत्तिसमर्पितम् ।
 बुध्यमानो मुक्तं भ्रान्तेः प्रेत्यनित्यवगच्छति ॥ ४ ॥
 अनेकदेशवृत्तौ च सत्यपि प्रतिविम्बके ।
 समानबुद्धिगम्यत्वान्मानात्वं नैव विद्यते ॥ ५ ॥”

[मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १८६-१९०]

किञ्च,

“विशमेदेन भिन्नत्वं मतं तद्वानुमानिकम् ।
 प्रत्यक्षस्तु स एवेति प्रत्ययस्तेनै वाधकः ॥ ६ ॥
 पर्यायेण यथा वैको भिन्नदेशान् ब्रजन्नपि ।
 देवदत्तो न भिद्येत तथा शब्दो न भिद्यते ॥ ७ ॥
 ज्ञातैकत्वो यथा चासौ दृश्यमानः पुनः पुनः ।
 न भिन्नः कालमेदेन तथा शब्दो न देशतः ॥ ८ ॥
 पर्यायादविरोधैश्चेद्भ्यापित्वादपि दृश्यताम् ।
 दृष्टसिद्धो हि यो धर्मः सर्वथा सोऽभ्युपेयताम् ॥ ९ ॥”

[मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १९७-२००] इति ।

अत्र प्रतिविधीयते । नित्यः शब्दोऽर्थप्रतिपादकत्वान्मथानुपप-
 चेरित्ययुक्तम्; धूमादिवदनित्यस्यापि शब्दस्यावगतसम्बन्धस्य
 सादृश्यतोऽर्थप्रतिपादकत्वसम्भवात् । न खलु य एव सङ्केतकाले २०
 दृष्टस्तेनैवार्थप्रतीतिः कर्त्तव्येति नियमोस्ति, महानसदृष्टधूमस-
 दृशादपि पर्वतधूमादग्निप्रतिपत्त्युपलम्भात् । न हि महानसप्रदे-
 शोपलब्धैव धूमव्यक्तिरन्यत्राप्यग्निं गमयति; सदृशपरिणामा-
 क्रान्तव्यक्त्यन्तरस्य तद्गमकत्वप्रतीतिः, अन्यथा सर्वस्य सर्वगत-
 त्वानुषङ्गः । सदृशपरिणामप्रधानतया च साध्यसाधनयोः २५
 सम्बन्धावधारणम् । न ह्यनाश्रितसमानपरिणतीनां निखिलधूमा-
 दिव्यक्तीनां स्वसाध्येनाऽर्वादेशा सम्बन्धः शक्यो ग्रहीतुम्;

१ गच्छता । २ संयुक्तम् । ३ स्वस्योपलम्भादरेण । ४ इत्यस्यापि प्रतिविम्बके
 ऊर्ध्वोपलम्भादरेणानेकदेशवृत्तिकं तद्वानुमानिकत्वं प्रकृतसाधनस्थानेनेति चेन्न
 उक्त्यापि ज्ञानात्वंसंभवात् इति बद्धन्तं प्रति । ५ पथमनेकान्तदूषणमुद्रान्य काल-
 लयापदिहलमुद्रावपति । निरुदेशसैकार्त्वं नास्तीति प्रत्यक्षं कथमनुमानवाचकमित्युक्ते
 षाड् । ६ गच्छरासीनाम् । ७ कारणेन । ८ कालक्रमेण । ९ व्यवहारकाले ।
 १० समानत्वमित्यर्थः । ११ अक्षिधूमयोः शब्दार्थयोश्च । १२ शब्दप्रकरणे-
 न्शब्दव्यक्तिर्नैवति पक्षे शब्दत्वादिति वक्तव्यम् । १३ असर्वदेव ।

अ० क० मा० ३५

असाधारणरूपेण तस्य तासामप्रतिभासनात्, अथ धूमसामान्य-
मेवाग्निप्रतिपत्तिकारणम्; न, व्यक्तिसादृश्यव्यतिरेकेण तद्-
सम्भवात् । न च 'धूमत्वान्मया प्रतिपन्नोग्निः' इति प्रतिपत्तिः,
किन्तु, धूमात् । सा च सामान्यविशिष्टव्यक्तिमात्रयोः सम्बन्ध-
५ ग्रहणे घटते । न तु धूमाग्निसामान्ययोरवश्यं चानुमेयानुमाप-
कयोः सामान्यविशिष्टविशेषरूपतोपगन्तव्या, अन्यथा सामान्य-
मात्रस्य दाहाद्यर्थक्रियासाधकत्वाऽभावात् ज्ञानाद्यर्थक्रियायाञ्च
तत्साध्यात्यास्तदैवोत्पत्तेः, दाहाद्यर्थिनामनुमेयार्थप्रतिभासात्
प्रवृत्त्यभावतोऽस्याप्रामाण्यप्रसङ्गः । सामान्यविशिष्टविशेषरूपता
१० चात्र वाच्यवाचकयोरपि समाना न्यायस्य समानत्वात् ।

यदप्युक्तम्—

“सदृशत्वात्प्रतीतिश्चेत्तद्द्वारेणाप्यवाचकः ।

कस्य चैकस्य सादृश्यात्कल्प्यतां वाचकोऽपरैः ॥ १ ॥

अदृष्टसङ्गतत्वेन सैवेषां तुल्यता यदा ।

१५ अर्थवोन्पूर्वदृष्टश्चेत्तस्य तावान्क्षणः कृतः ॥ ३ ॥

द्विस्तावानुपलब्धो हि अर्थवान्सम्प्रतीयते ।”

[मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २४८-२५०]

इत्यादिः तदप्यसारम्; अनुमानवाचोच्छेदप्रसङ्गात् । धूमादि-
लिङ्गात्पूर्वोपलब्धधूमादिसादृश्यतोऽग्न्यादिसाध्यप्रतिपत्तावप्यस्य
२० सर्वस्य समानत्वात् ।

एतेनैवमपि प्रत्युक्तम्—

“शब्दं तावदनुच्चार्य सम्बन्धैर्करणं कृतः ।

न चोच्चारितनष्टस्य सम्बन्धेन प्रयोजनम् ॥”

[मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २५६] इत्यादि ।

२५ यतोऽदृष्टे धूमे सैम्बन्धो न शक्यते कर्तुम् । नापि दृष्टनष्टस्यास्य
सम्बन्धेन प्रयोजनं किञ्चित् ।

- १ शब्दपक्षे शब्दसामान्यमेवार्थप्रतिपत्तिकारणमिति वाच्यम् । २ धूमसामान्यात् ।
३ सादृश्यपरिणामविशिष्ट व्यक्तिरेव मात्रा स्वरूपं ययोः साध्यसाधनयोस्त्वयोः ।
४ साध्यसाधनयोः । ५ शब्दसोच्चारणसमये, अग्न्याधनुमानसमये च । ६ विद्येने
पूर्वतादी । ७ सामान्यस्य । ८ नदीत्यादिपूर्वोक्तस्य । ९ संकेतकालोपलब्धसम्बन्धेन
व्यवहारकालोपलब्धशब्दस्य । १० तदेति शेषः । कथमवाचक इत्युक्ते कस्तेत्याह ।
कस्य=संकेतकालोपलब्धस्य । ११ व्यवहारकालोपलब्धः शब्दः । १२ अदृष्ट-
सम्बन्धेन । १३ शब्दानाम् । १४ वाच्यवाचकसंन्यवान् शब्दः । १५ दिवात् ।
१६ वाच्येन सह । १७ साध्येनाभिना सह ।

यच्च सादृश्ये दूषणमुक्तम्—

“तथा भिन्नमभिन्नं वा सादृश्यं व्यक्तिो भवेत् ।

एवमेकमनेकं वा नित्यं वानित्यमेव वा ॥ १ ॥

भिन्ने चैकत्वमित्यत्वे जातिरेव प्रकल्पिता ।

व्यक्त्यऽनन्यदर्थैकं च सादृश्यं नित्यमिष्यते ॥ २ ॥ ५

व्यकिनित्यत्वमापन्नं तथा सत्यसंदीहितम् ।”

[मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २७१-२७३] इत्यादिः

तदप्युक्तम्; स्वहेतोरेकस्य हि यादृशः परिणामस्तादृश एवा-
परस्य सादृश्यम्, न तु स एव । स च व्यक्तिभ्यो भिन्नोऽभि-
न्नश्च, तथाप्रतीतेः । न च जातिस्तथाभूता; नित्यव्यापित्वेनाभ्यु-१०
पगमात् । तथाभूताश्चास्याः सामान्यनिराकरणे निराकरिष्यमाण-
त्वात् । ततः प्रवृत्तिमिच्छता लिङ्गाच्छब्दाद्वा न सामान्यमात्रस्य
प्रतिपत्तिरभ्युपगन्तव्या ।

ननु सामान्यस्य विशेषमन्तरेणानुपैपत्तितो लक्षितलक्ष्णया
विशेषप्रतिपत्तेर्न प्रवृत्त्याद्यभावानुपङ्गः; इत्यप्रातीतिकम्; क्रमप्र-१५
तीतेरभावात् । न हि वाचकोद्भूतवाच्यप्रतिभासे प्राक् सामान्या-
वभासः पश्चाद्विशेषप्रतिभास इत्यनुभवोस्ति ।

किञ्च, सामान्याद्विशेषः प्रतिनियतेन रूपेण लक्ष्येत, साधा-
रणेन वा ? न तावदाद्यः पक्षः; प्रतिनियतरूपतयाऽस्याऽप्रतीतेः ।
न हि शब्दोच्चारणवेलायां जातिपरिमितो विशेषोऽसाधारण-२०
रूपतयाऽनुभूयते प्रत्यक्षप्रतिभासाऽविशेषप्रसङ्गात् । प्रतिनिय-
तरूपेण जातेरविनाभावाभावाच्च कुतस्तथा तस्य लक्षणम् ? नापि
द्वितीयः; साधारणरूपतया प्रतिपन्नस्यापि विशेषस्यार्थक्रिया-
कारित्वाऽसामर्थ्येन प्रवृत्त्यहेतुत्वात्, प्रतिनियतस्यैव रूपस्य
तत्र सामर्थ्योपलब्धेः । पुनरपि साधारणरूपतातो विशेष-२५
प्रतिपत्तावनवस्था स्यात् । साधारणरूपतया चातो विशेष-

१ तथाशब्दः सन्न्यापेक्षया दूषणान्तरसमुच्चये । २ अनेकं सादृश्यं चैतद्वि-
निलमनिलं वा ? अनिल चेन्न संबन्धप्रतिपत्तिः । निलं चैतदेकैव सादृश्ये-
नार्थप्रतिपत्तिपत्तेरनेकनिष्ठसादृश्यपरिकल्पनं व्यर्थम् । ३ परोक्षी परिहारमाह ।
४ असाभिन्नैः । ५ घृमादेः । ६ घृमादेः । ७ सादृश्यपरिणामः ।
८ भिन्नाभिन्नत्वप्रकारेण । ९ भिन्नाभिन्नरूपा । १० परेण स्वया । ११ सामान्य-
सानुमेयरूपत्वे प्रवृत्तिर्न षट्ते यतः । १२ सामान्यस्य विशेषनिष्ठत्वात् । १३ सामा-
न्यजनितप्रतिपत्त्या । १४ सामान्यस्य नित्यसर्वगतत्वात् । १५ पूर्वोक्तस्य समर्थन-
नेतत् । १६ अन्यथेति शेषः । १७ ज्ञानम् ।

प्रतिपत्तौ सामान्यात्सामान्यप्रतिपत्तौ सामान्यप्रतिपत्तिरेव खात्र
विशेषप्रतिपत्तिः, साधारणरूपतायाः सामान्यत्वत्वात् ।

किञ्च, यदि नाम शब्दाज्जातिः प्रतिपन्ना : किमायातम्,
येनासौ तां गमयति ? तयोः सम्बन्धाच्चेत्, सम्बन्धस्तयोस्तदा
५ प्रतीयते, पूर्वं वा ? न तावत्तदा, व्यकेरनधिगतेः 'जातिरेव
हि केवला तदा प्रतिभासते' इत्यभ्युपगमात्, अन्यथा किं
लक्षितलक्षणया ? न च व्यक्त्यनधिगमे तत्सम्बन्धाधिगमः;
द्विष्टत्वात्तस्य । अथ पूर्वमसौ प्रतीयतः; तथापि तदेवासौ भवतु ।
न ह्येकदा तत्सम्बन्धेऽन्यदाप्यसौ भवत्यतिप्रसङ्गात् । न च जाते-
१० विशेषनिष्ठतैव स्वरूपम्; व्यक्त्यन्तराले तत्स्वरूपेऽसत्त्वप्रसङ्गात् ।
तत्कथं व्यक्त्यऽविनाभावोऽस्याः ?

किञ्च, सर्वदा जातिर्व्यक्तिनिष्ठेति प्रत्यक्षेण प्रतीयते, अनुमा-
नेन वा ? प्रत्यक्षेण चेत्किं युगपत्, क्रमेण वा ? तत्राद्यपक्षोऽ
युक्तः; सर्वव्यक्तीनां युगपदप्रतिभासनात् । न च तासामप्रति-
१५ भासे तथा सम्बन्धावसायोऽतिप्रसङ्गात् । नापि द्वितीयः;
क्रमेण निरवधेः सकलव्यक्तिपरम्परायाः परिच्छेत्तुमशक्तेः ।
कादाचित्के तु जातेर्व्यक्तिनिष्ठताधिगमे सर्वत्र सर्वदा न
तन्निष्ठताधिगमः स्यात् । तन्न प्रत्यक्षेण जातेस्तद्विष्टताधिगमः ।
नाप्यनुमानेन; अस्याऽध्यक्षपूर्वकत्वेनाभ्युपगमात् । तस्य चात्राऽ-
२० प्रवृत्तावनुमानस्याप्यप्रवृत्तिः । तन्न लक्षितलक्षणया विशेषप्रति-
पत्तिः सम्भवति, इति वाच्यवाचकयोः सामान्यविशिष्टविशेष-
रूपतोपगन्तव्या धूमादिवत् ।

ननु धूमादेः सामान्यसद्भावात्तद्विशिष्टस्योक्तन्यायेन गमकत्व-
मस्तु, शब्दे तु तस्याभावत्कथं तद्विशिष्टस्य गमकत्वम् ? तद-
२५ भावश्च वर्णान्तरग्रहणे वर्णान्तरानुसन्धानामावात् । यत्र हि सामा-
न्यमस्ति तत्रैकग्रहणेऽपरस्यानुसन्धानं दृष्टं यथा शाबलेयग्रहणे
बाहुलेयस्य । वर्णान्तरे च गादौ गृह्यमाणे न कादीनामनुसन्धान-
म्; तदसाम्प्रतम्; गादौ हि वर्णान्तरे गृह्यमाणे यदि 'अयमपि
वर्णः' इत्यनुसन्धानामावः 'सोऽसिद्धः, तथानुभू(तथाभू)

। १ व्यक्तिम् । २ शब्दाज्जातिप्रतिपत्तिकाले । ३ शब्दोच्चारणसमये व्यक्तिनि
प्रतिभासते चेत्तर्हि । ४ लक्षितेन क्रातेन सामान्येन लक्षणा=विशेषप्रतिपत्तिस्तथा ।
५ संबन्धस्य । ६ षट्पटयोरैकदा संबन्धे सर्वदा संबन्धप्रसङ्गात् । ७ संबन्धो
वाक्षि यतः । ८ कदाचिदेलप्यत्र द्रष्टव्यम् । ९ पिशाचाप्रतिभासे पिशाचेन कूटस्य
संबन्धप्रसङ्गप्रसङ्गात् । १० विशेषस्य । ११ अर्थवाचकत्वम् । १२ अनुसन्धाने=अल-
विधानम् । १३ व्यक्तिम् । १४ गत्वाभावात् ऋदिषु । १५ अनुसन्धानामावः ।

शानुसन्धानस्यानुभूयमानत्वेनाऽभावासिद्धेः । अथ गादौ वर्णान्तरे गृह्यमाणे 'अयमपि कादिः' इत्यनुसन्धानाभावात् सामान्यसङ्गावः; तर्हि शावलेयादावपि व्यक्त्यन्तरे गृह्यमाणे 'अयमपि वाङ्-लेयः' इत्यनुसन्धानाभावाद्गोत्वस्याप्यभावः । अथ 'गौर्गाः' इत्यनु-गताकारप्रत्ययसङ्गावात् गोत्वाऽसत्त्वम्; तदन्यत्रापि समानम्-^५ तत्रापि हि 'वर्णो वर्णः' इत्यनुगताकारप्रत्ययोस्तु, तत्कथं वर्णेषु वर्णत्वस्य गादिषु गत्वादेः शब्दे शब्दत्वस्याभावः निमित्ताऽ-विशेषात्? तथाहि-समानासमानरूपास्तु व्यक्तियु क्वचित् 'समानाः' इति प्रत्ययोऽन्वेत्यन्यत्र व्यावर्त्तते । यत्र च प्रत्ययानु-वृत्तिस्तत्र सामान्यव्यवस्था, नान्यत्र । सा च प्रत्ययानुवृत्तिर्गादि-^{१०} व्यपि समानेति कथं न तत्र सामान्यव्यवस्था? तथाप्यत्र सामा-न्यानभ्युपगमे शावलेयादावपि सोस्तु । न हि तत्रापि तथा-भूतप्रत्ययानुवृत्तिमन्तरेण सामान्याभ्युपगमेऽन्यन्निमित्तमुत्प-श्यामः । यदि चात्राऽनुगताऽचाधिताऽक्षजप्रत्ययविषयत्वे सत्यपि गत्वादेरभावः; तर्हि गादेरपि व्यावृत्तप्रत्ययविषयस्या-^{१५} भावः स्यात् । तथा च कैस्य दर्शनेस्य परार्थत्वाजित्यत्वं साध्येत ?

यद्योक्तम्-'सादृश्येन ततोऽर्थाप्रतिपत्तेः' इति; तत्सदृशपरिणामलक्षणसामान्यविशिष्टव्यक्तेरर्थप्रतिपादकत्वसमर्थनात्प्रत्यु-क्तम् ।

। यदप्यभिहितम्-सादृश्यादर्थप्रतीतौ भ्रान्तः शाब्दः प्रत्ययः २० स्यात्; तद्गामादेरप्यादिप्रतिपत्तौ समानम् ।

यदप्युक्तम्-'गत्वादीनां वाचकत्वं गादिव्यक्तीनां वा' इत्यादि; तत्सामान्यविशिष्टव्यक्तेर्वाचकत्वसमर्थनादेव प्रत्युक्तम् ।

यद्योक्तम्-'यो यो गृहीतः' इत्यादि; तदप्युक्तिमात्रम्; पक्ष-स्यानुमानवाधितत्वात् । तथाहि-अनेको गोशब्द एकैकदा २५ भिन्नदेशस्वभावतयोपलभ्यमानत्वाद् घटादिवत् । न चानेक-प्रतिपत्तुभिर्भिन्नदेशतयोपलभ्यमानेनादित्यादिना, कालमेदेन भिन्नदेशादितयोपलभ्यमानेन देवदत्तेन वा व्यभिचारः; 'एके-नैकदा' इति विशेषणद्वयोपादानात् । एकैकदा दर्शनस्पर्शानाभ्यां भिन्नस्वभावतयोपलभ्यमानेन घटादिना वा; 'भिन्नदेशतया' इति ३० विशेषणात् । जलपात्रसङ्क्रान्तादित्यादिप्रतिविम्बैस्तद्व्यभिचारः;

१ गत्वलक्षणं सामान्यं नास्ति तथापि वर्णलक्षणं सदृशसामान्यं कादिव्यक्तेर्वेति चैनाभिप्रायः । २ अभावे सति । ३ गादेः । ४ उच्चारणस्य । ५ हेतोः । ६ न चेति पूर्वेषु संज्ञेषु न हेतुः ।

तेषामग्रेऽनेकत्वप्रसाधनात् । तथाप्यत्र सर्वगतत्वादिधर्मसम्भवे
घटादावपि सोऽस्तु-

‘न चास्याऽवयवाः सन्ति येन वर्त्तत भागशः ।
घटो वर्त्तत इत्येव तत्र सर्वात्मकश्च सः ॥’

- ५ इत्यादेरत्राप्यभिघातुं शक्यत्वात् । यथा च—
कचिद्रक्तः कचित्पीतः कचित्कृष्णश्च गृह्यते ।
प्रतिदेशं घटस्तेन विभिन्नो मम युक्तिमान् ॥

तथा—

उदात्तः कुत्रचिच्छब्दोऽनुदात्तश्च तथा कचित् ।

- १० अकारो मि(कारमि)श्रितोऽन्यत्र विभिन्नः स्याद् घटादिवत् ॥
ननु ‘व्यञ्जकध्वनिधर्मा एवोदात्तादयो नाऽकारादिधर्माः, ते तु
तत्रारोपात्तद्धर्मा इषावभासन्ते’ जपाकुसुमरक्ततेव स्फटिकादा-
विति । उक्तञ्च—

“बुद्धितीव्रत्वमन्दत्वे महत्त्वालपत्वकल्पना ।

- १५ सा च पट्टी भवत्येव महातेजःप्रकाशिते ॥ १ ॥
मन्दप्रकाशिते मन्दा घटादावपि सर्वदा ।
एवं दीर्घादयः सर्वे ध्वनिधर्मा इति स्थितम् ॥ २ ॥”

[मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २१९-२२०]

- तदप्यसारम्; यतो यद्युदात्तादिधर्मरहितोऽकारादिस्तत्स-
२० हितश्च ध्वनिः रक्तेतरस्वभावजपाकुसुमस्फटिकवत् कचिदुप-
लब्धः स्यात् तदा स्यादेतत् ‘अन्यधर्मस्तदारोपात्तद्धर्मतयेवा-
वभाति’ इति । न चासौ स्वमेपि तथोपलभ्यते । शब्दधर्मतया
चैते प्रतीयमाना यद्यन्यस्येप्यन्तेऽन्यत्र कः समाश्वासहेतुः ?
बाधकाभावश्चेत्सोत्रापि समानः । विपरीतदर्शनं हि बाधकम्,
२५ यथा द्विचन्द्रदर्शनस्यैकचन्द्रदर्शनम् । न चान्न तदस्ति-उदात्ता-
दिधर्मात्मकस्यैवाकारादेः सर्वदा प्रतीतेः । तथापि तत्कल्पने
रक्तादिधर्मरहितस्य घटादेर्दर्शनं तथैव कल्प्यताम् । तथाविध-
स्यानुपलम्भादसत्त्वम्; शब्देपि समानम् ।

- किञ्चेद् बुद्धेस्तीव्रत्वं नाम ? किं महत्स्वरहितस्यार्थस्य महत्त्वेनो-
३० पलम्भः, यथाऽवस्थितस्याऽत्यन्तस्पष्टतया वा ? प्रथमे विकल्पे
आन्तताऽस्याः स्यात् । ‘सा च पट्टी भवत्येव महातेजःप्रकाशिते
घटादौ सर्वदा’ इति च निदर्शनमयुक्तम्; न हि महातेजःसाम-
र्थ्यादल्पोपि घटो ‘महान्’ इत्यवभासते, किन्त्वत्यन्तस्पष्टतया ।
द्वितीयविकल्पे तु महत्त्वादिधर्मरहितस्यास्याऽत्यन्तस्पष्टतया
३५ ग्रहणं स्यात् । तथा च न व्यञ्जकध्वनिधर्मानुविधायित्वं स्यात् ।

एतेन बुद्धिमन्दत्वेऽल्पता निरस्ता । न खलु मन्दतेजसः प्रकाशिते घटादौ महति बुद्धिमन्दत्वेनाल्पत्वप्रतीतिरस्ति । ततो 'महातात्वादिव्यापारे महत्त्वादिधर्मोपेतोऽल्पे चाल्पत्वादिधर्मोपेतः शब्द एवोत्पद्यते' इत्यभ्युपगन्तव्यम् ।

यदि च तात्वाद्यो ध्वनयो वास्य व्यञ्जकाः; तर्हि तद्यापारे ५ तद्धर्मोपेतस्यास्य नियमेनोपलब्धिर्न स्यात् । कारकव्यापारो ह्येषः— स्वसन्निधाने नियमेन कार्यसन्निधापनं नाम, न व्यञ्जकव्यापारः । न खलु यत्र यत्र व्यञ्जकः प्रदीपादिस्तत्र तत्र व्यङ्ग्यघटादिसन्निधापनमुपलब्धिर्वा नियमतोस्ति, अन्यथा तयोरविशेषप्रसङ्गात्, चक्रादिव्यापारवैयर्थ्यानुषङ्गाच्च । अथ घटादेरसर्वगतत्वाच्च १० तद्व्यञ्जनसन्निधाने सर्वत्रोपलम्भः, शब्दस्य तु सम्भवति विपर्ययात्; इत्यप्यनिरूपिताभिधानम्; तस्य सर्वगतत्वाऽसिद्धेः । तथाहि—न सर्वगतः शब्दः सामान्यविशेषवत्त्वे सति बाह्यैकैन्द्रियप्रत्यक्षत्वाद् घटादिवत् । ततो घटादिभ्यः शब्दस्य विशेषाभावादुभयोः कार्यत्वं व्यङ्ग्यत्वं चाभ्युपगन्तव्यम् । १५

किञ्च, एते ध्वनयः श्रोत्रग्राह्याः, न वा ? श्रोत्रग्राह्यत्वे अत एव शब्दाः तल्लक्षणत्वाच्चेष्टाम् । तत्र च तात्त्विका एवोदात्ताद्यो धर्माः । तथा चापरशब्दकल्पनानर्थक्यम् । अथ न श्रोत्रग्राह्याः; कथं तर्हि तद्धर्मा उदात्ताद्यस्तग्राह्याः ? न हि रूपादीनां धर्मा भासुरत्वाद्यो रूपादेरग्रहणे श्रोत्रेण गृह्यन्ते । २० अथ न भावतस्तेन ते गृह्यन्ते, किन्त्वारोपात् । ननु चाऽगृहीतस्यारोपोपि कथम् ? अन्यथा भासुरत्वादेरपि तत्रारोपः स्यात् । अथ व्यञ्जकत्वाद् ध्वनीनां तद्धर्मा एव तत्रारोप्यन्ते, न रूपादीनां विपर्ययात्; ननु हानजनकत्वान्नापरं व्यञ्जकत्वम् । तथा सत्यरूपेण चक्षुषा व्यज्यमानः पर्वतो महानपि २५ तद्धर्मोरोपात्तत्परिमाणतया प्रतीयेत सर्वपञ्च बृहत्परिमाणतया, न चैवम् । तन्नैते ध्वनिधर्मा उदात्ताद्योऽपि तु शब्दधर्माः । तथाप्यस्यैकव्यक्तिकत्वे घटादेरपि तदस्तु विशेषाभावात् ।

ननु चास्यैकत्वे नभोवत्कारणानायत्तत्वाच्च तदुत्कर्षापकर्षाभ्यामुत्कर्षापकर्षौ स्याताम्; तच्छब्देपि समानम्—तस्यापि हि ३० प्रत्येकमेकव्यक्तिकत्वे तात्त्वोत्कर्षाऽपकर्षाभ्यामुत्कर्षापकर्षयोगो न स्यात्, किन्तु सर्वत्र तुल्यप्रतीतिविषयता स्यात् । ननु चासिद्धं तात्त्वादेर्महत्त्वादेः शब्दस्य महत्त्वादिकम्; तथाहि—

“कारणानुविधायित्वं यथास्पृशत्वमहत्त्वयोः ।

तदसिद्धं न वर्णो हि वर्द्धते न पदं कश्चित् ॥

वर्णान्तरजनौ तावत्तत्पदत्वं विहन्यते ।
 अपदं हि भवेदेतद्यदि वा स्यात्पदान्तरम् ॥
 वर्णोऽनवयवत्वानु वृद्धिहासौ न गच्छति ।
 व्योमादिवदतोऽसिद्धा वृद्धिरस्य स्वभावतः ॥”

५ [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २१०-२१३]

अत्रोच्यते-किं कारणानुविधायित्वमल्पत्वमहत्त्वयोः स्वभाव-
 सिद्धत्वादसिद्धम्, आहोस्वित्कारणाल्पत्वमहत्त्वाभ्यां शब्दस्या-
 ल्पत्वमहत्त्वे एव न विद्येते स्वभावतस्तद्द्रहितत्वात् इति? तत्राद्यपक्षे स्वभावे एव वास्याऽल्पत्वमहत्त्वे विद्येते, न तु ते
 १० तस्य कारणाल्पत्वमहत्त्वाभ्यां कृते इत्यायातम्, तथा च घटा-
 देरपि तथा तत्सत्त्वप्रसङ्गः । निहेतुकत्वेन सर्वदा भावानुषङ्ग-
 श्लोभयत्र समानः । द्वितीयस्तु पक्षोऽसङ्गतः; तयोस्तत्र प्रतीय-
 मानत्वेन स्वभावतस्तद्द्रहितत्वसिद्धेः । न खलु महति तात्त्वावै
 महानऽल्पे चाल्पः शब्दो न प्रतीयते, सर्वत्र तयोरनाम्नास-
 १५ प्रसङ्गात् ।

यदप्युक्तम्-“न हि वर्णो वर्द्धते” इत्यादि; तत्र यदि तावत्
 ‘अल्पतात्त्वादजनिता वर्णादिरल्पो महतस्तात्त्वादिव्यापाराच्च
 वर्द्धते’ इत्युच्यते; तदा सिद्धसाधनम् । न हि घटोऽल्पान्यु-
 त्पिण्डात्तथाविधो जातोऽन्यतः स एव वर्द्धते अघटत्वप्रसङ्गात्,
 २० घटान्तरमेव वा स्यात् । अथान्योपि वृद्धिमात्रं जायते; तत्र;
 तथाविधस्य दृष्टत्वात् । दृष्टस्य चाऽपह्नुवाऽयोगात् ।

यतेनैतन्निरस्तम्—

“अथ तादृष्यविज्ञानं हेतुरित्यभिधीयते ।

तथापि व्यभिचारित्वं शब्दत्वेपि हि तन्मतिः ॥ १ ॥

२५ व्यक्त्यल्पत्वमहत्त्वे हि तद्यथानुविधीयते ।

तथैवानुविधातायं ध्वन्यल्पत्वमहत्त्वयोः ॥ २ ॥”

[मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २१३-२१४] इति ।

सहशपरिणामो हि सामान्यम् । तस्य च वर्षवदऽल्पत्वमह-
 त्वसम्भवात् कथं तेनानेकान्तः? भवत्कल्पितं तु सामान्यमग्रे
 ३० निषिद्धत्वात्स्वरविषाणप्रख्यमिति कथं तेन व्यभिचारोद्भावनम्?
 यदप्युच्यते—

व्यङ्गानां चैतदस्तीति लोकेष्वैकान्तिकं न तत् ।

वर्षणाल्पमहत्त्वे हि दृश्यतेऽनुपतन्मुखम् ॥ १ ॥

न स्यादव्यङ्गता तस्मिंस्तत्क्रियाजन्यतापि वा ।

३५ न चास्योच्चारणादन्या विद्यते जनिका क्रिया ॥ २ ॥”

[मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २१५-२१७]

तदप्यचारुः भ्रान्तेनाऽभ्रान्तस्य व्यभिचाराऽयोगात् । शब्दे हि महत्त्वादिप्रत्ययोऽभ्रान्तो वाचवर्जितत्वादित्युक्तम् । मुखे तु भ्रान्तो विपर्ययात् । न चान्यस्य भ्रान्तत्वेऽन्यस्यापि तत्, अन्यथा सकलशून्यतापुष्कः—स्वभादिप्रत्ययवत्सकलप्रत्ययानां भ्रान्ततापत्तेः । न च खड्गे प्रतिविम्बितदीर्घतया मुखमेवाऽऽ-
भाति दर्पणे तु वर्चुलतया गौरनीले काचे नीलतया; किन्तु तदा-
कारस्तात्र प्रतिविम्बितस्तद्धर्मानुकारी प्रतिभाति । न च शब्दस्या-
प्याकारो ध्वनौ, ध्वनेर्वा शब्दे प्रतिविम्बितस्तद्धर्मानुकारी भवती-
त्यभिधातव्यम्; शब्दस्याऽमूर्त्तत्वेन मूर्त्ते ध्वनौ तत्प्रतिविम्बना-
ऽसम्भवात् । मूर्त्तानामेव हि मुखादीनां मूर्त्ते दर्पणादौ तत्प्रति-
विम्बनं दृष्टं नाऽमूर्त्तानामात्मादीनाम् । न चाऽभ्रोत्रग्राह्यत्वे ध्वनेः
प्रतिविम्बितोऽप्याकारः भ्रोत्रेण ग्रहीतुं शक्योऽतिप्रसङ्गात् । तद्ग्रा-
ह्यत्वे वा अपरशब्दकल्पना व्यर्थेत्युक्तम् ।

यच्चाप्युक्तम्—

“यथा महत्यां खातायां मृदि व्योम्नि महत्त्वधीः । १५
अल्पायामल्पधीरेवमत्यन्ताऽकृतके मतिः ॥
तेनात्रैवं परोपाधिः शब्दवृद्धौ मतिर्भ्रमः (मतिभ्रमः) ।
न च स्थूलत्वसूक्ष्मत्वे लक्ष्यते शब्दवर्तिनी ॥”

[मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २१७-२१९]

तदप्यसमीचीनम्; व्योम्नोऽतीन्द्रियत्वेन महत्त्वादिप्रत्ययवि-
षयत्वायोगात् । तद्योगे चाल्पया खातयाऽवष्टब्धो व्योमप्रवे-
शोऽल्पो महत्या च महानिति नाऽनेनाऽनेकान्तः । निरवयवत्वे
हि तस्याणुवद्ग्रापित्वासम्भवः, अत्यन्ताकृतकत्वेन च क्रमयौ-
गपद्याभ्यामर्थक्रियाविरोध इति वक्ष्यते । तथा शब्दस्यापि
सावयवत्वाभ्युपगमे— २५

“पृथग् न चोपलभ्यन्ते वर्णस्यावयवाः क्वचित् ।
न च वर्णेष्वनुस्यूता दृश्यन्ते तन्नुवत्पटे ॥ १ ॥
तेषामनुपलब्धेश्च न जाता लिङ्गतो गतिः ।
नागमस्तत्परश्चास्मिन्नाऽदृश्ये चोपमा क्वचित् ॥ २ ॥
न चास्यानुपपत्तिः स्याद्धर्णस्यावयवैर्विना । ३०
यथान्यावयवानां हि विनाप्यवयवान्तरैः ॥ ३ ॥
प्रत्यक्षेणावबुद्धश्च वर्णोऽवयववर्जितः ।
किञ्च स्याद्भोमवक्त्रात्र लिङ्गं तद्ग्रहिता मतिः ॥ ४ ॥”

[मी० श्लो० स्फोटवा० श्लो० ११-१४]

इति षष्ठो विद्वेते ।

यत्पुनरुक्तम्—‘व्यञ्जकध्वन्यधीनत्वात्तद्देशे स च गृह्यते’
इत्यादि; तत्र कुतो ध्वनयः प्रतिपन्ना येन तदधीना शब्दश्रुतिः
स्यात्? प्रत्यक्षेण, अनुमानेन, अर्थापत्त्या वा? प्रत्यक्षेण
चोक्तिं श्रोत्रेण, स्पर्शनेन वा? न तावच्छ्रोत्रेण; तथा प्रतीत्यमा-
५ वात् । न खलु शब्दवत्तत्र ध्वनयः प्रतिभासन्ते विप्रतिपत्त्यमाव-
प्रसङ्गात् । तत्र ध्वनिप्रतिभासे चापरशब्दकल्पनावैयर्थ्यमि-
त्युक्तम् । अथ स्पर्शनप्रत्यक्षेण ते प्रतीयन्ते-स्वकरपिहितवदनो
हि वदन् स्वकरसंस्पर्शनेन तान्प्रतिपद्यते, वदतो मुख्यात्रे स्थित-
१० त्वादेः प्रेरणोपलम्भादनुमानेनेति; तदप्यसाम्प्रतम्; वायुवत्ता-
त्वादिव्यापारानन्तरं कर्माशानामप्युपलम्भेन शब्दामिव्यञ्जकत्व-
प्रसङ्गात् । चक्रुवक्त्रप्रदेश एवैषां प्रक्षयेण श्रोतृश्रोत्रप्रदेशे गम-
नाभावात् तत्; इत्यन्यत्रापि समानम् । न हि वायवोपि तत्र
गच्छन्तः समुपलभ्यन्ते । शब्दप्रतिपत्त्यन्यथानुपपत्त्या प्रतिपत्ति-
स्तूभयत्रसमाना । यथा च स्तिमितभाषिणो न कर्मांशोपलम्भ-
१५ स्तथा वायूपलम्भोपि नास्ति । स्तिमितस्य कल्पनमुभयत्र समा-
नम् । तत्र प्रत्यक्षेणानुमानेन वा तत्प्रतिपत्तिः ।

अथार्थापत्त्या तेषां प्रतिपत्तिः; तथाहि-शब्दस्तावन्नित्यत्वा-
श्रोत्पद्यते संस्कृतिरेव तु क्रियते । सा च विशिष्टा नोपपद्येत
यदि ध्वनयो न स्युः । तदुक्तम्—

- २० “शब्दोत्पत्तेर्निषिद्धत्वादन्यथानुपपत्तितः ।
विशिष्टसंस्कृतेर्जन्म ध्वनिभ्यो व्यवसीयते ॥ १ ॥
तद्भावमाविता चात्र शक्त्यस्तित्वावबोधिनी ।
श्रोत्रशक्तिवदेवेष्टा बुद्धिस्तत्र हि संहता ॥ २ ॥
कुण्ठादिप्रतिबन्धोपि युज्यते मार्तरिश्वनः ।
२५ श्रोत्रादेरभिघातोपि युज्यते तीव्रवर्तिना ॥ ३ ॥”

[मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १२६-१२९]

इति; तत्र केयं विशिष्टा संस्कृतिर्नाम-शब्दसंस्कारः, श्रोत्र-
संस्कारः, उभयसंस्कारो, वा? परेण हि श्रेष्ठा संस्कारोऽभ्युप-
गम्यते । स च—

१ शब्दस्य अभिव्यक्तिः । २ निक्षीयते । ध्वनयः सन्ति शब्दसंस्कारान्य-
थानुपपत्तेरिति । ३ तद्भावमावित्वमसिद्धमित्युक्ते षाह बुद्धिरिति । बुद्धिः—अलक्ष-
बुद्धिः । ४ नियता । ५ शब्दस्वामूर्तत्वे कुण्ठादिप्रतिबन्धो न साच्छ्रोत्राभिघातो वा
न स्वादित्युक्ते षाह । ६ शब्दव्यञ्जकनायोः । ७ शब्दव्यञ्जकवायुना । ८ ध्वनेः
सकृदाप । ९ मीमांसकेन ।

“स्याच्छब्दस्य हि संस्कारादिन्द्रियस्योभयस्य वा ।”

[मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ५२]

“स्थिरवाच्यपनीत्या च संस्कारोऽस्य भवन्मवेत् ।”

[मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ६२]

इत्यभिधानात् ।

५

तत्राद्ये पक्षे कोऽयं शब्दसंस्कारः-शब्दस्योपलब्धिः, तस्यात्म-
भूतः कश्चिदतिशयः, अनतिशयव्यावृत्तिर्वा, स्वरूपपरिपोषो वा,
व्यक्तिसमवायो वा, तद्ग्रहणापेक्षग्रहणता वा, व्यञ्जकसन्निधान-
मात्रं वा, आवरणविगमो वा स्यात् ? यदि शब्दोपलब्धिः, कथ-
मसौ ध्वनीनां गमिका शब्दे श्रोत्रमात्रभावितात्तस्याः ? तथाप्य-१०
न्यनिमित्तकल्पने हेतूनामनवस्थितिः स्यात् ।

तस्यात्मभूतः कश्चिदतिशयोऽनतिशयव्यावृत्तिर्वा इत्यत्रापि
अतिशयो दृश्यस्वभाव एव, अनतिशयव्यावृत्तिस्त्वदृश्यस्वभावस्व-
ण्डनमेव । ते चेततोऽन्ये, तत्करणेऽपि शब्दस्य न किञ्चित्कृतमिति
तदवस्थाऽस्याऽश्रुतिः । अथाऽन्ये, तदा शब्दस्यापि कार्यतया १५
अनित्यत्वानुषङ्गः । यो हि यस्मादसमर्थस्वभावपरिव्यागेन समर्थ-
स्वभावं लभते स चेन्न तस्य जन्यः, केदानीं जन्यताव्यवहारः ?
न च समर्थस्वभाव एव जन्यो न शब्दः इत्यभिधातव्यम् ;
तस्याऽतो विरुद्धधर्माध्यासतो भेदानुषङ्गात् । तत्र चोक्तो दोषः ।

श्रोत्रप्रदेशे एव चास्य संस्कारे तावन्मात्रक एव शब्दः, २०
न सर्वगतः स्यात् । तस्यैवान्मैत्र तद्विपर्ययेणैवस्थाने दृश्याऽऽ-
दृश्यत्वप्रसङ्गात् निर्देशत्वव्याघातो विप्रतिपत्त्यभावश्चास्यैः परि-
णामित्वप्रसिद्धेः । यदसौभिः ‘आवणस्वभावविनाशोत्पत्तिर्म-
त्पुद्गलैर्द्रव्यम्’ इत्यभिधीयते तद्युग्माभिः ‘वैर्षः’ इत्याख्यायते ।
यौ च आवणस्वभावोत्पादविनाशौ शब्दोत्पादविनाशा- २५
वसौभिरिष्टौ तौ युग्माभिः शब्दाभिव्यक्तिरिरोभावविति नास्त्व

१ शब्दस्य । २ नियमाभावः । ३ शब्दस्य । ४ तस्य=अतिशयस्य अनति-
शयव्यावृत्तेर्वा । ५ शब्दस्य । ६ शब्दात् । ७ ध्वनेः । ८ असमर्थस्वभावः=
पूर्ववत्त्वा (शब्दात्प्राक्त्वम्) । ९ अति तु न कापीत्यर्थः । १० शब्दस्य ।
११ श्रोत्रप्रदेशादन्यत्र । १२ स्वभावस्य जन्मता शब्दस्य त्वनन्यतेति भेदे ।
१३ सर्वगतत्वे च शब्दस्य । १४ शब्दस्य । १५ जैनेः । १६ पुद्गले एव आवण-
स्वभावोत्पत्तेरवश्यमिति च । १७ तदेव शब्दः । १८ मीमांसकैः । १९ शब्द-
रूपः । २० जैनेः । २१ मीमांसकैः ।

विधादो नार्थे । इदमेतररूपता चैकस्य ब्रह्मवादां समर्थयते तद्वेषेतनेतररूपतयाप्येकस्याऽवस्थित्यविरोधात् । घटादेरपि चैवं सर्वगतत्वानुषङ्गः—‘सोपि हि इष्टप्रदेशे इह्योऽन्यत्र चाहस्या’ इति वदतो न वक्त्रं वक्रीभवेत् । सर्वत्र चास्य संस्कारे सर्व-
५ दोषलब्धिः स्यात्, न वा कचित्कदाचित् विशेषोभावात् ।

स्वरूपपरिपोषः संस्कारोस्य; इत्यप्यऽचर्चिताभिधानम्; नित्यस्य स्वभावान्यथाकरणाऽसम्भवात् । करणे वा स्वभावाति-
शयपक्षमैवी दोषोलुपज्यते ।

नापि व्यक्तिमवायः; वर्णस्य व्यक्त्यऽसम्भवात्, अन्यथा
१० सामान्यात्कोस्य विशेषः ? अत एव न तद्ब्रह्मणापेक्षग्रहणता ।

नापि व्यञ्जकसन्निधानमात्रम्; सर्वत्र सर्वदा सर्वप्रति-
पचुभिः सर्ववर्णानां ग्रहणप्रसङ्गात् । ननु प्रतिनियतेन ध्वनिना
प्रतिनियतो वर्णः संस्कृतः प्रतिनियतेनैव प्रतिपन्ना प्रतीयते
तथैव सामर्थ्यात् । उक्तं च—

१५ “विषयस्यापि संस्कारे तेनैकस्यैव संस्कृतिः ।
नरैः सामर्थ्यमेवाद्य न सर्वैरवगम्यते ॥ १ ॥

यथैवोत्पद्यमानोयं न सर्वैरवगम्यते ।

दिग्देशाद्यविभागेन सर्वान्प्रति भवन्नपि ॥ २ ॥

तथैव यत्समीपस्थैर्नादैः स्याद्यस्य संस्कृतिः ।

२० तैरेव श्रूयते शब्दो न दूरस्थैः कथञ्चन ॥ ३ ॥”

[मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ८३-८६] इति ।

तदप्यपेशलम्; तेषां तदुपलम्भाऽसामर्थ्ये सर्वदाऽनुपलम्भ-
प्रसङ्गाद्बधिरवत् । यदा तत्समीपस्थैर्व्यञ्जकैर्व्यज्यतेऽसौ तदा
तैरेवोपलभ्यते इत्यप्यसुन्दरम्; यतस्तेषां व्यञ्जकैः किं कियते
२५ येन ते तैर्नियमेनापेक्षन्तेऽकिञ्चित्कारेऽपेक्षाऽसम्भवात् ? तद्ब्रह्म
योग्यतेति चेत्; किमात्मनः, शब्दस्य, इन्द्रियस्य वा ? आद्यविक-
ल्पद्वये सर्ववोपलम्भोऽनुपलम्भो वा स्यात् । इन्द्रियसंस्कारस्तु
निराकरिष्यते ।

१ (एकस्यैव शब्दस्य इदमवाहृदयत्वरूपतास्वीकारादद्वैतं तिष्ठातीत्यर्थः) ।

२ ब्रह्मवादसमर्थने हेतुमाह । ३ द्वितीयपक्षोपगम् । ४ संस्कृतत्वेन । ५ ध्वनिभिः ।

६ स स्वभावस्ततो मित्रोऽभिन्नो वा ? मित्रश्लेष तैर्ध्वनिभिः शब्दस्य करणम्
इत्यादिः । ७ अन्यथा=शब्दस्य व्यक्तिरूपेण सामान्यत्वादिरूपताप्रसङ्गोपि सादित्यर्थः ।

८ तस्य=शब्दसंस्कारस्य । ९ शब्दस्य ।

यदप्युक्तम्—यथैवोत्पद्यमानोऽयमित्यादिः । तदप्यसङ्गतम् ; न हि दिग्गोचपेक्षयाऽसौभिस्तद्गृहणमिष्यतेऽपि तु श्रवणान्तर्गतत्वेन । अतो यस्यैव श्रवणान्तर्गतो यः शब्दः स तेनैव शृण्वते । सर्वगतवर्णपक्षे तु नायं परिहारो निखिलवर्णानां सकलप्रतिपचुश्रवणान्तर्गतत्वेन तथैवोपलम्भप्रसङ्गात् । ५

आवरणविगमः शब्दसंस्कारः; इत्यप्यसत्यम् ; यतः प्रमाणा-
न्तरेण शब्दसङ्गावे सिद्धे तस्यावरणं सिद्ध्येत् स्पर्शनप्रत्यक्ष-
प्रतिपक्षे घटेऽन्धकारौदिषत् । न चासौ सिद्धः । तत्कथमस्या-
वरणम् ? नित्यस्याऽस्याऽनाधेयाऽप्रहेयाऽतिशयात्मतयाऽस्या-
किञ्चित्करत्वाच्च । न चाऽकिञ्चित्करः कस्यचिदावरणमतिप्रस- १०
ङ्गात् । उपलब्धिप्रतिबन्धकारणात्तच्चेत् ; न; तज्जननैकस्वभावस्य
तदयोगात् । न हि कारणाऽक्षये कार्यक्षयो युक्तस्तस्याऽतत्कार्य-
त्वप्रसङ्गात् । कथमेवं कुड्यादयो घटादीनामावारका इति चेत् ;
तज्जनकस्वभावखण्डनात् । कथमन्यस्योपलब्धिं जनयन्तीति
चेत् ? तं प्रति तत्स्वभावत्वात् । कथमेकस्योभयरूपता ? इत्यप्य- १५
चोद्यम् ; तथा दृष्टत्वात् । शब्दस्यापि स्वभावखण्डनेऽनित्यते-
त्युक्तम् ।

सर्वगतत्वे चास्याभियमाणत्वायोगः । आचार्या हि येना-
भियते तदावारकम्, यथा पटो घटस्य । शब्दस्त्वावारक-
मध्ये तद्देशे तत्पार्श्वे च सर्वत्र विद्यमानत्वात्कथं केनचिदा- २०
भियेत ? प्रत्युत स एवावारकः स्यात् । तद्वत्तदावारकमपि सर्व-
गतमिति चेत् ; न तर्ह्यवारकम् । न ह्याकाशमात्मादीनामा-
वारकम् । मूर्त्तत्वात्तदिति चेत् ; न तर्हि सर्वगतं घटादिषत् ।

अथ यावज्जोमव्यापिनो बहव एवास्यावारकाः ते; किं सान्तराः;
निरन्तरा वा ? यदि सान्तराः; न तर्हि तस्यावरणम्, तन्मध्ये २५
तद्देशे तत्पार्श्वे च विद्यमानत्वात् । अथ स्वमाहात्म्यात्तथापि
स्वदेशे तदावारकाः; तर्ह्यन्तराले तदुपलम्भप्रसङ्गः । तथा च
सान्तरा प्रतिपत्तिः प्रतिवर्णं खण्डशः प्रतिपत्तिश्च स्यात् । सर्वत्र
सर्वदा सर्वात्मना विद्यमानत्वान्न दोषश्चेत् ; नैवम् ; प्रतिप्रदेशमका-
रादिवद्भुत्वस्य भ्वन्यादिवैफल्यस्य चालुषङ्गात्, तदभावेऽप्यन्तराले ३०
उपलम्भसम्भवात् । अथान्तरालेऽसन्तोष्यावारकाः; तर्ह्येकमेवा-
वारकं प्रदेशनियतं कल्पनीयं किं तद्वद्भुत्वेन ? अन्यत्राविद्यमानं

१ आदिना देवकालादिग्राहः । २ जनेः । ३ अन्धकारादिर्यथाऽऽवरणं घटस्य ।
४ आवारकेण । ५ मूलपुस्तके 'अन्यत्वा-' इति ।
प्र० क० मा० ३६

कथमावारकमिति चेत्? अन्तरालवदिति ज्ञेयः । तन्मते
सान्तराः । निरन्तरत्वे चैषाम् तद्वच्छब्दस्यापि निरन्तरत्वादा-
वार्यावारकभावः समान एवोभयत्र । अथ वस्तुस्वाभाव्यात्
स्तिमिता वायव एव तदावारकाः; ननु दृष्टे वस्तुन्येतद्वक्तुं
५ शक्यम्, यथा दृष्टेऽग्नौ दाहकत्वेन 'वस्तुस्वाभाव्यादग्निर्देहति न
जलम्' इत्युच्यते । न च तथाविधा वायवो दृष्टाः । नापि सन्
शब्दस्यैरात्रियमाणो येनैवं स्यात् । अदृष्टकल्पनमुभयत्र समानम् ।
तत्र किञ्चित्तस्यावारकम् ।

अस्तु वा तत्, तथाप्यस्य कुतो विगमः? ध्वनिभ्यश्चेत्, न;
१० तत्सद्भावावेदकप्रमाणप्रतिषेधतस्तेषामसत्त्वात् । सत्त्वे वा कुत-
स्तेषामुत्पत्तिः? तात्त्वादिव्यापाराच्चेत्, न; तद्वच्छब्दस्यापि
तद्व्यापारे सत्युपलम्भतस्तत्कार्यतातुषङ्गात् । ननु खननाद्यनन्तरं
व्योमोपलभ्यते, न च तत्कार्यमतोऽनैकान्तिकत्वम् । तदुक्तम्—

“अनैकान्तिकता तावद्धेतूनामिह कथ्यते ।
१५ प्रयत्नानन्तरं दृष्टिर्नित्येपि न विरुध्यते ॥ १ ॥”
[मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १९]

“आकाशमपि नित्यं सद्यदा भूमिजलावृतम् ।
व्यज्यते तदपोहेन खननोत्सेचनादिभिः ॥ २ ॥
प्रयत्नानन्तरं ज्ञानं तदा तत्रापि दृश्यते ।
२० तेनानैकान्तिको हेतुर्यदुक्तं तत्र दर्शनम् ॥ ३ ॥
अथ स्थगितमप्येतदस्त्येवेत्यनुमीयते ।
शब्दोपि प्रत्यभिज्ञानात्प्रागस्तीत्यवगम्यताम् ॥ ४ ॥”

[मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ३०-३३]

तदप्यसङ्गतम्; ध्वनीनामप्येवं तात्त्वादिव्यापारकार्यत्वाभाव-
२५ प्रसङ्गात् । एकरूपता चाकाशस्याप्यसिद्धा; स्वविज्ञानजननैक-
स्वभावत्वे हि तस्य न खननाद्यनन्तरमेवोपलब्धिः किन्तु पूर्वमपि
स्यात् । तदस्वभावत्वे वा न कदाचनान्युपलब्धिः स्याद्विशेषा-
भावात् । विशेषे वा एकरूपताव्याघातः । प्रत्यभिज्ञानाच्छब्दे
प्राक् सत्त्वसिद्धिश्च ध्वनावपि समाना 'य एव पूर्वमकारस्य
३० व्यञ्जको ध्वनिः स एव पश्चादपि' इति प्रतीतिः । तथा च व्यञ्जन-
स्यापि सर्वत्र सर्वदा सद्भावे तात्त्वादिव्यापारवैफल्यं सर्वत्र सर्वदा
व्यङ्ग्यप्रतीतिश्च स्यात् । तत्र तात्त्वादिव्यापारकार्यता ध्वनीना-
मेव । अतः कथं तेषां सत्त्वमुत्पादकभावात् ?

१ जैनाः । २ शब्दो वायोरावारकाः कुतो न स्यादिति जैनेनोक्ते परः प्रा-
गदृष्टकल्पना स्यादिति । तस्योपरि जैनेनोच्यते ।

सन्तु वा ते, तथाप्यतः क्वचिदावरणविगमे विवक्षितवर्णवक्षि-
ल्लिवर्णोपलब्धिप्रसङ्गः, व्यापकत्वेन सर्वेषां तत्र सद्भावात्,
तथा च ध्वन्यन्तरस्य वैफल्यम् । ननु चाचार्याणामिवाचारकाणां
तद्वच्च तदपनेतृणां भेदस्तेनायमदोषः । उक्तञ्च—

“व्यञ्जकानां हि वायूनां भिन्नावयवदेशता । ५
जातिभेदश्च तेनैवं संस्कारो व्यवतिष्ठते ॥ १ ॥
अन्यार्थं प्रेरितो वायुर्यथान्यं न करोति वः ।
तथान्यवर्णसंस्कारशक्तो नान्यं करिष्यति ॥ २ ॥
अन्यैस्तात्वादिसंयोगैर्वर्णो नान्यो यथैव हि ।
तथा ध्वन्यन्तराक्षेपो न ध्वन्यन्तरसारिभिः ॥ ३ ॥ १०
तस्मादुत्पत्त्यभिव्यक्तयोः कार्यार्थापत्तितः समः ।
सामर्थ्यभेदः सर्वत्र स्यात्प्रयत्नविचक्षयोः ॥ ४ ॥”

[मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ७९-८२]

तदप्यसमीक्षिताभिधानम्; अमिन्नदेशेऽमिन्नेन्द्रियग्राह्ये चा-
चार्ये आवरणभेदस्याभिव्यञ्जकभेदस्य चाऽप्रतीतेः । न खलु १५
घटाश्रावोदञ्चनदीनां तथाविधानामावरणव्यञ्जकभेदो दृष्टः,
काण्डपटादेरेकस्यैवावरणत्वस्य प्रदीपादेश्चैकस्यैवाभिव्यञ्जकत्वस्य
प्रसिद्धेः । तथा च प्रयोगः-शब्दाः प्रतिनियतावरणाचार्याः
प्रतिनियतव्यञ्जकव्यङ्ग्या वा न भवन्ति, समानदेशैकेन्द्रियग्राह्य-
त्वाद्, घटादिवत् । न चाऽऽचार्यवर्णानां देशभेदो युक्तः; व्यापक- २०
त्वाभावप्रसङ्गात् । देशभेदो हि परस्परदेशपरिहारेणावस्थाना-
त्प्रसिद्धो गोकुञ्जरवत् । तथा चावरणभेदस्याऽसतः कथं जाति-
भेदप्रकल्पनं तदपनेतृजातिभेदप्रकल्पनं च श्रेयो यतो 'जाति-
भेदश्च' इत्यादि शोभेत ।

नन्वेकेन्द्रियग्राह्यस्यापि व्यङ्ग्यस्य व्यञ्जकभेदो दृष्टः, यथा २५
भूमिगन्धस्य जलसेकः न शरीरगन्धस्य । अस्यापि मरीचिचक्र-
सहायस्तैलाभ्यङ्गो न भूमिगन्धस्येति । सत्यं दृष्टः; स तु विषय-
संस्कारकस्य व्यञ्जकस्य, न त्वावरणविगमहेतोः । नैव वा गन्ध-
स्याभिव्यञ्जका जलसेकादयोऽपि तु कारकाः, तत्सहकारिणः
पृथिव्यादेर्विशिष्टस्य गन्धस्योत्पत्तेः पूर्वं तत्र तत्सद्भावावेदक- ३०
प्रमाणाभावात् । कारकाणां चैकेन्द्रियग्राह्ये समानदेशे च कार्ये
नियमो दृष्टः । यथैकत्र स्थिता अपि यवबीजादयो न सर्वे
शाल्यङ्कुरं यवाङ्कुरं चोत्पादयन्ति, किन्तु शालिबीजमेव शाल्यङ्कुरं
यवबीजं च यवाङ्कुरम् इति ।

एतेन 'अन्यैस्ताल्वादिसंयोगैः' इत्यादि निरस्तम्; कथम्? ध्वन्यन्तरसारिभिस्ताल्वादिभिर्यद्यपि ध्वन्यन्तराक्षेपो नास्ति तथापि य एव तैराक्षिप्यते तत एव सर्ववर्णश्रुतेर्ध्वन्यन्तराक्षे-
पपक्षदोषस्तदवस्थः । तन्न शब्दसंस्कारोभिव्यक्तिर्घटते ।

५ अथेन्द्रियसंस्कारोऽसौ । तदुक्तम्—

“अथापीन्द्रियसंस्कारः सोप्यधिष्ठानदेशतः ।

शब्दं न श्रोष्यति श्रोत्रं तेनाऽसंस्कृतशङ्कुलि ॥ १ ॥

अप्राप्तकर्णदेशत्वाद्गुणेर्न श्रोत्रसंस्क्रिया ।

अतोऽधिष्ठानभेदेन संस्कारनियमस्थितिः ॥ २ ॥”

१० [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ६९-७०]

“यद्यपि व्यापि चैकं च तथापि ध्वनिसंस्कृतिः ।

अधिष्ठानेषु सा यस्य तच्छब्दं प्रतिपत्स्यते ॥ १ ॥”

[मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ६८] इति ।

अत्रापि संस्कृतसंस्कृतं श्रोत्रं युगपत्सर्ववर्णान् शृणुयात् ।
१५ न ह्यञ्जनादिना संस्कृतं चक्षुः सञ्चिहितं नीलधवलदिकं कञ्चि-
त्पश्यति कञ्चिन्नेति । बलातैलादिना संस्कृतं श्रोत्रं वा काञ्चिदेव
गकारादीन् शृणोति काञ्चिन्नेतीति नियमो दृष्टो येनात्रापि तथा
कल्पना स्यात् ।

ततो निराकृतमेतत्—

२० “तथा(यथा)घटादेर्दीपादिरभिव्यञ्जक इष्यते ।

चक्षुषोऽनुग्रहादेवं ध्वनिः स्याच्छ्रोत्रसंस्कृतेः ॥ १ ॥

न चा(च)पर्यनुयोगोत्र केनाकारेण संस्कृतिः ।

उत्पत्तावपि तुल्यत्वाच्छक्तिस्तत्राप्यतीन्द्रिया ॥ २ ॥”

[मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ४२-४३] इति ।

२५ प्रदीपादिनानुगृहीतचक्षुषा पटाद्यनेकार्थग्रहणवत् ध्वन्यनु-
गृहीतश्रोत्रेणाप्येकदानैकशब्दभ्रवणप्रसङ्गात् । प्रयोगः—श्रोत्र-
मेकेन्द्रियग्राह्याभिन्नदेशावस्थितार्थग्रहणाय प्रतिनियतसंस्कारक-
संस्कार्यं न भवति इन्द्रियत्वाच्चक्षुर्वत् । तन्न श्रोत्रसंस्कारोप्यभि-
व्यक्तिर्घटते ।

३० अस्तु तर्ह्युभयसंस्कारः । न चात्रोक्तदोषानुषङ्गः । तदुक्तम्—

“द्वयसंस्कारपक्षे तु वृथा दोषद्वये ध्वनः ।

येनान्यतरवैकल्यात्सर्वैः सर्वो न गृह्यते ॥ १ ॥”

[मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ८६]

उदप्ययुक्तम्; उक्तदोषादेव, तथाहि-यदैकवर्णप्राहकत्वेन संस्कृतं श्रोत्रं संस्कृतं वर्णं प्रतिपद्यते तदा तत्रत्यसर्ववर्णान्प्रतिपद्येत संस्कृतं च वर्णं सर्वत्र सर्वदाऽवस्थितत्वेन, अन्यथा तत्प्रतीतिरेव न भवेत्तदात्मकत्वात्तस्य । अतो व्यङ्ग्यव्यञ्जकभावस्य विचार्यमाणस्याऽयोगान्न व्यञ्जकध्वन्यधीनो विभिन्नदेशकालस-^५ भावतया शब्दस्योपलम्भोऽपि तु तत्त्वभावसेदनिवन्धनः ।

यञ्चोक्तम्-‘जलपात्रेषु च’ इत्यादि; तदप्यसाम्प्रतम्; तत्रोपलभ्यमानस्यादित्यप्रतिविम्बस्यानेकत्वात् । ‘गगनतलावलम्बी हि सविता तत्रोपलभ्यते’ इत्यत्र न प्रत्यक्षं प्रमाणं तत्स्वरूपाप्रतिभासनात् । तस्य हि स्वरूपं गगनतलावलम्बि चैकं च, तन्भाव-^{१०} भासते । यञ्चावभासि जलपात्रावलम्बि चानेकं च, तद्वृक्षच्छायादिवद्वस्त्वन्तरमेव । न चान्यप्रतिभासेऽन्यप्रतिभासो नामाऽतिप्रसङ्गात् । न च जलभानोर्गगनभानुना सादृश्यादेकत्वम्; कमनीयकामिनीनयनयोरपि तत्प्रसङ्गात् । नापि तद्विकारे जलभानुविकारादेकत्वम्; वृक्षच्छाययोरपि तत्प्रसङ्गात् । ^{१५}

ननु तत्र तत्प्रतिविम्बानां वस्त्वन्तरत्वे कुतः प्रादुर्भावः स्यादिति चेत्? जलादित्यादिलक्षणस्वसामग्रीविशेषात् । तर्हि स्वच्छताविशेषसङ्गावाज्जलादर्शादयो मुख्यादित्यादिप्रतिविम्बाकारविकारधारिणः कस्माच्च सर्वदोषलभ्यन्ते इति चेत्? स्वसामग्र्यऽभावतोऽभावाच्छब्दसुखादिवत् । कश्चिद्धि विकारः सहकारिनि-^{२०} वृत्तावप्यनिवर्त्तमानो हैष्टो यथा घटादिः, कश्चिच्च निवर्त्तमानो यथा शब्दादिः, अचिन्त्यशक्तित्वाद्भावानाम् । तात्त्वादिव्यापारसहकारिनिवृत्तौ हि पुद्गलस्य श्रावणस्वभावव्यावृत्तिः । स्रग्वनितानिवृत्तौ चाल्हादनाकारव्यावृत्तिरात्मनः सकलजनप्रसिद्धा, एवमादित्यादिसहकारिनिवृत्तौ जलादेस्तत्प्रतिविम्बाकारनिवृ-^{२५} त्तिरविरुद्धा ।

तर्तो निराकृतमेतत्-‘अत्र ब्रूमो यदा तावज्जले सौर्येण’ इत्यादि; स्वप्रदेशस्थतया सवितुर्ग्रहणासिद्धेः । ‘चाक्षुषं तेजः प्रतिज्ञोतः प्रवर्त्तितम्’ इति चातीवाऽसङ्गतम्; प्रमाणाभावात् । न हि चक्षुस्तेजांसि जलेनाभिसम्बन्ध्य पुनः सवितारं प्रति प्रवर्त्तितानि ^{३०} प्रत्यक्षादिप्रमाणतः प्रतीयन्ते । यथा च चक्षूरक्ष्मीनां विषयं प्रति

१ मुख्यादिप्रतिविम्बाकारस्य । २ चक्रवीवरदि । ३ उत्पत्तेरुत्तरकाले । ४ ऋदिना सुखम् । ५ कृपम् । ६ शब्दरूपस्य । ७ व्याघ्रदृशम् । ८ यस्माद्भवन्तरत्वं सिद्धं प्रतिविम्बानाम् । ९ पुनः । १० सौर्येण तेजसा । ११ घटादिपदार्थम् ।

प्रवृत्तिर्नास्ति तथा चक्षुरप्राप्यकारित्वप्रघट्टके प्रतिपादितम् ।
इत्यलंमतिविस्तरेण ।

यद्यान्यदुक्तम्—‘देशभेदेन भिन्नत्वम्’ इत्यादि; तदप्यसारम्; यतो यदि प्रत्यक्षमेवानुमानस्य बाधकं नानुमानं प्रत्यक्षस्य; तर्हि चन्द्रार्कादौ स्वैर्याध्यक्षं देशादेशान्तरप्रासिलिङ्गजनितगत्यनुमानेन बाध्यं न स्यात् । अथास्य प्रत्यक्षरूपतैव नास्ति बाधितविषयत्वात्; तत्प्रकृतेऽपि समानम्, लूनपुनर्जातनखकेशादिवत्साहचर्यप्रतीत्या तैन्नानात्वप्रसाधकानुमानेन चाऽप्राप्येकत्वप्रतीतेर्बाधितविषयत्वाऽविशेषात् । अतोऽयुक्तमेतत्—

१० “स एवेति मतिर्नापि साहचर्यं न च तत्कंचित् ।
विनावयवसामान्यैर्वर्णैर्व्यवयवैर् न च ॥”

[मी० श्लो० स्फोटवा० श्लो० १८] इति ।

अवयवसामान्यस्याप्यत्रात एव प्रसिद्धेः । तैनायुक्तमुक्तम्—
‘पर्यायेण’ इत्यादि; देवदत्ते हि ‘स पचायम्’ इति प्रत्ययः, अत्र १५ तु ‘तेर्नानेन चौर्यं सदृशः’ इति । न च सदृशप्रत्ययादेकत्वम्; गौर्व्ययोरपि तत्प्रसङ्गात् । यद्यप्युच्यते—

“जैनकोपिलनिर्दिष्टं शब्दश्रोत्रादिसर्पणम् ।
साधीयोऽस्मात्तदप्यत्र युक्त्या नैवावतिष्ठते ॥ १ ॥”

[मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १०६]

२० जैनेन हि निर्दिष्टं श्रोतारं प्रति शब्दस्य सर्पणं कापिलेन तु वक्तारम् । श्रोत्रैर्द्विर्यत्तदेव साधीयोऽस्मान्नैयाधिकोपकल्पितात् । वीचीतैरङ्गन्यायेन शब्दस्यामूर्त्तस्यागमनात् । तदप्यत्र युक्त्या नैवावतिष्ठते । यस्मात्—

“शब्दस्यागमनं तावदैर्दृष्टं परिकल्पितम् ।

२५ मूर्त्तिस्पर्शादिमत्त्वं च तेषामभिभवः सताम् ॥ १ ॥

१ चक्षुरस्मीना विषयं प्रति गमननिराकरणेन । २ नाशकम् । ३ प्रादि ।
४ स्वैर्यलक्षणम् । ५ गकारे । ६ कथम् । ७ गकार । ८ गकारे । ९ साहचर्य-
प्रतीत्यैकत्वप्रतीतेर्बाधितविषयत्वं यतः । १० स यवायं गकारादिः । ११ गकारादौ ।
१२ वर्णानां निरंशत्वात् । १३ अशाः । १४ तेन सदृशोयं गकारः । १५ वर्णेन ।
१६ वर्णैः । १७ अन्यथा । १८ मीमांसकेन । १९ साङ्ख्य । २० ज्ञेयः ।
२१ अत्रे वक्ष्यमाणात् । २२ जगति वर्णेषु वा । २३ मीमांसकस्य । २४ गमनम् ।
२५ छहरी । २६ क्रुतः । २७ प्रत्यक्षादिप्रमाणेनाप्राचीतिकम् । २८ कुब्जादिना
तिरोभावः ।

त्वगग्राह्यत्वमन्ये च भोगाः सूक्ष्माः प्रकल्पिताः ।
 तेषामदृश्यमानानां कथं च रचनार्कर्मः ॥ २ ॥
 क्रीडशास्त्रचनामेवाद्दर्णमेदश्च जायताम् ।
 द्रवित्वेन विना चैषां संश्लेषः (संश्लेषः) कल्प्यते कथम् ॥ ३ ॥
 आगच्छतां च विश्लेषो न भवेद्वायुना कथम् । ५
 लघवोऽर्चयवा ह्येते निबन्धा न च केनचित् ॥ ४ ॥
 वृक्षाद्यभिर्हृतानां च विश्लेषो लोष्टवद्भवेत् ।
 एकश्रोत्रप्रवेशे च नान्येषां स्यात्पुनः श्रुतिः ॥ ५ ॥
 न चावार्त्तरवर्णानां नानात्वस्यास्ति कारणम् ।
 न चैकस्यैव सर्वास्तु गमनं दिक्षु युज्यते ॥ ६ ॥ १०

[मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १०७-११२]

इत्यादि । तद्व्यञ्जकवैयव्यागमनेपि समानम् । शक्यते हि शब्द-
 स्थाने वायुं पठित्वा 'वायोरागमनं तावददृष्टं परिकल्पितम्'
 इत्याद्यभिधातुम् ।

किञ्च, अदृष्टकल्पनागौरवदोषो भवत्पक्ष एवानुषज्यते; १५
 तथाहि-शब्दस्य पूर्वापरकोट्योः सर्वत्र च देशेऽनुपलभ्यमानस्य
 सत्त्वम्, तस्य चावारकाः स्तिमिता वायवः प्रमाणतोऽनुपलभ्य-
 मानाः कल्पनीयाः, तदपनोदकार्त्तान्ये, तेषां शक्तिनानात्वं कल्प-
 नीयम्, नासैत्पक्षे । पौद्गलिकत्वं च यथावसरं गुणनिषेधप्रक्रमे
 प्रसाधयिष्यामः । तत्सिद्धं घटस्य चक्रादिव्यापारकार्यत्ववच्छब्दस्य २०
 तात्त्वादिव्यापारकार्यत्वमिति साधूक्तम्—'आप्तवचनम्' इत्यादि ।

नैतु शब्दार्थयोः सम्बन्धासिद्धेः कथमाप्तप्रणीतोपि शब्दोऽर्थे
 ज्ञानं कुर्याद्यत आप्तवचननिबन्धनमित्यादि वचः शोभेतेत्याशङ्का-
 पनोदार्थम् 'सहजयोग्यता' इत्याद्याह—

सहजयोग्यतासङ्केतवशाद्धि शब्दादयः वस्तु- २५
 प्रतिपत्तिहेतवः ॥ १०० ॥

१ अवयवाः । २ अदृष्टाः । ३ रचना-नन्यः । ४ अदृष्टः । ५ भेदः ।
 ६ वर्णोत्पत्तौ । ७ शब्दानां पुद्गलरूपाणाम् । ८ जैनानाम् । ९ शब्दानां वायुर्ना
 च । १० जैनोक्ताः । ११ सम्बन्धाः । १२ कारणेन । १३ वर्णवायुत्पत्तौ ।
 १४ पुद्गलरूपाणां वर्णानाम् । १५ एकस्य नरस्य । १६ मृणाम् । १७ अभ्यापकः
 शब्दो जैनमते यतः । १८ मध्योत्पन्नानाम् । १९ नैयायिकस्य । २० गस्य ।
 २१ जैनस्य । २२ तात्त्वादिनवित्तशब्दाभिव्यञ्जकत्वेनः । २३ मीमांसकपक्षे ।
 २४ व्यञ्जकाः । २५ जैन । २६ सौगतः । २७ निराकारार्थम् ।

सहजा स्वीभाषिकी योग्यता शब्दार्थयोः प्रतिपाद्यप्रतिपादक-
शक्तिः ज्ञानक्षेययोर्ज्ञाप्यज्ञापकशक्तिवत् । न हि तत्राप्यतो योग्य-
तातोऽप्यः कार्यकारणभावादिः सम्बन्धोस्तीत्युक्तम् । तस्यां सत्यां
सङ्केतः । तद्वशाद्धि स्फुटं शब्दादौ यो वस्तुप्रतिपत्तिहेतवः ।

५ यथा मेवादयः सन्ति ॥ १०१ ॥

इति ।

ननु चासौ सहजयोग्यताऽनित्या, नित्या वा ? न तावदनित्या;
अनवस्थाप्रसङ्गादे-येन हि प्रसिद्धसम्बन्धेन 'अयम्' इत्यादिना
शब्देनाप्रसिद्धसम्बन्धस्य घटादेः शब्दस्य सम्बन्धः क्रियते
१० तस्याप्यन्येन प्रसिद्धसम्बन्धेन सम्बन्धस्तस्याप्यन्येनेति । नित्यत्वे
चास्याः सिद्धं नित्यसम्बन्धाच्छब्दानां वस्तुप्रतिपत्तिहेतुत्वमिति
मीमांसकाः; तेष्यतत्त्वज्ञाः; हस्तसंज्ञादिसम्बन्धवच्छब्दार्थसम्ब-
न्धस्यानित्यत्वेप्यर्थप्रतिपत्तिहेतुत्वसम्भवात् । न खलु हस्तसंज्ञा-
दीनां स्वार्थेन सम्बन्धो नित्यः, तेषामनित्यत्वे तदाश्रितसम्बन्धस्य
१५ नित्यत्वविरोधात् । न हि भित्तिर्व्यैपाये तदाश्रितं चित्रं न व्यैप-
तीयमिर्धातुं शक्यम् ।

न चानित्यत्वेऽस्यार्थप्रतिपत्तिहेतुत्वं न दृश्यम्; प्रत्यक्षविरो-
धात् । एवं शब्दार्थसम्बन्धेप्येतद्व्याच्यम्-स हि न तावदना-
श्रितः; नैवोवर्तमानाश्रितस्य सम्बन्धत्वाऽसम्भवात् । आश्रितश्चेत्किं
२० तदाश्रयो नित्यः, अनित्यो वा ? नित्यश्चेत्; कोयं नित्यत्वे-
नाभिप्रेतस्तदाश्रयो नाम ? जातिः, व्यक्तिर्वा ? न तावज्जातिः;
तस्याः शब्दार्थत्वे प्रवृत्त्याद्यैवभावप्रतिपादनात्, निराकरिष्य-

३ न स्वीपाषिकी । २ वाच्यवाचकसामर्थ्यम् । ३ अपरः । ४ पूर्वं प्रथम-
परिच्छेदे । ५ अस्य शब्दस्यायमर्थः, अस्य गोशब्दस्य साक्षादिमानर्थ इति च ।
६ प्रायुक्ताः । ७ आदिना हस्ताङ्गुलीसंज्ञाः । ८ उदाहरणे । ९ अन्यथा ।
१० कथम् ? तथा हि । ११ अर्थेन सह । १२ इदमित्यादिना च । १३ यथा
प्रसिद्धसम्बन्धेन घटशब्देन घट एव वाच्यस्तथाऽप्रसिद्धसम्बन्धेनापि घटशब्देन घट एव
वाच्य इति । १४ शब्देन । १५ वदन्ति । १६ आदिना नयनाङ्गुल्यादिसंज्ञाः ।
१७ विनाशे । १८ विनश्यति । १९ वक्तुम् । २० अन्यथा । २१ प्रत्यक्षेण सिद्धा
हस्तसंज्ञादयोऽनित्या वतः । २२ अनित्यहस्तसंज्ञादिसम्बन्धस्यार्थप्रतिपत्तिप्रतिपाद-
कत्वप्रकारेण । २३ तादिः । २४ वक्ष्यमाणम् । २५ अन्यथा । २६ अमूर्तन-
भोवत् । २७ गगनस्य त्वर्णेन सम्बन्ध उपचारत एव, न तु साक्षात्तसाऽमूर्तत्वात् ।
२८ दृष्टः । २९ सामान्यम् । ३० विशेषः । ३१ यदा सामान्यरूपो शब्दार्थो
सम्बन्धस्य वाच्यवाचकरूपत्वाधारभूतो तदा तावेव विषयीकुर्याच्छब्द इति भावः ।
३२ आदिना निवृत्तिः । ३३ पूर्वम् ।

माणत्वाच्च । व्यक्तेस्तु तदाश्रयत्वे कथं नित्यत्वमनभ्युपगमा-
त्तथाप्रतीत्यभावाच्च । अनित्यत्वे च तदाश्रयत्वस्य सिद्धं तद्व्य-
पाये सम्बन्धस्यानित्यत्वं मित्तिव्यपाये चित्रवत् । ततोऽयुक्त-
मुक्तम्—

“नित्याः शब्दार्थसम्बन्धास्तत्राज्ञातो महर्षिभिः ।

५

सूत्राणां सानुतन्त्राणां भाष्याणां च प्रणेतुभिः ॥”

[वाक्यपदी० १।२३] इति;

सहशपरिणामविशिष्टस्यार्थस्य शब्दस्य तदाश्रितसम्बन्धस्य
वैकान्ततो नित्यत्वासम्भवात् । सर्वथा नित्यस्य वस्तुनः क्रम-
योगपद्याभ्यामर्थक्रियासम्भवतोऽसत्त्वं चाऽश्वविपाणवत् । अन-१०
वस्थादूषणं चायुक्तमेव; ‘अयम्’ इत्यादेः शब्दस्यानादिपरम्परौ-
तोऽर्थमंत्रे प्रसिद्धसम्बन्धत्वात्, तेनावर्गतसम्बन्धस्य घटादि-
शब्दस्य सङ्केतकरणात् ।

नित्यसम्बन्धवादिनोपि चानवस्थादोषस्तुल्य एव—अनमित्य-
कसम्बन्धस्य हि शब्दस्याभिव्यक्तसम्बन्धेन शब्देन सम्बन्धा-१५
भिव्यक्तिः कर्तव्या, तस्याप्यन्येनाभिव्यक्तसम्बन्धेनेति । यदि
पुनः कस्यचित्सत् एव सम्बन्धाभिव्यक्तिः; अपरस्यापि सा
तथैवास्तीति सङ्केतक्रिया व्यर्था । शब्दविभंगाभ्युपगमे चाऽ
सम्बन्धस्य नित्यत्वकल्पनया । कल्पने चाऽगृहीतसङ्केत-
स्याप्यतोऽर्थप्रतिपत्तिः स्यात् । सङ्केतस्य व्यञ्जकः; इत्यप्य-२०
युक्तम्; नित्यस्य व्यञ्ज्यत्वायोगात् । नित्यं हि वस्तु यदि व्यक्तं
व्यक्तमेव, अथाव्यक्तमप्यव्यक्तमेव, अभिन्नसंभावत्वात्तस्य ।
शब्दाभिव्यक्तिपक्षनिक्षिप्तदोषानुपपन्नश्चात्रापि तुल्य एव ।

१ चतुर्थपरिच्छेदे । २ नित्यवातेः । ३ सम्बन्धस्य । ४ परेण । ५ व्यक्तेर्नित्य-
त्वस्य । ६ व्यक्तिरूपस्य । ७ अनित्यः सम्बन्धो यतः । ८ सामान्य । ९ वाक्य-
वाचकलक्षणः । १० भीर्मासायां ग्रन्थे । ११ अम्युपगताः । १२ विपमपदव्याख्या-
नमनुत्तरं तेन सह वर्तन्ते इति । तेषां सूत्राणाम् । १३ सर्वथा । १४ प्रवाहः ।
१५ पुरोवर्तिन्यभिर्द्वारितार्थे । १६ अर्थेन सह । १७ भीर्मासकस्य । १८ कथम् ।
१९ अर्थेन सह । २० अनवस्थापरिहारार्थम् । २१ नापरेण । २२ हेतोः ।
२३ पुरुषेण क्रियमाणा । २४ अयमित्यादिशब्दस्य सत्र एव सम्बन्धः । घटादि-
शब्दस्य तु अयमित्यादिना शब्देनापरेण सम्बन्ध इति । २५ नित्यत्वस्य । २६ नुः ।
२७ सम्बन्धस्य नित्यत्वात् । २८ नित्यशब्दस्य । २९ सङ्केतेन । ३० एकसंभाव-
त्वात् । ३१ नित्यसम्बन्धानिव्यक्तौ अष्टविकल्पप्रकारेण ।

किञ्च, सङ्केतः पुरुषाश्रयः, स चातीन्द्रियार्थज्ञानविकलतया-
न्यथापि वेदे सङ्केतं कुर्यादिति कथं न मिथ्यात्वलक्षणमस्या-
प्रामाण्यम् ?

किञ्च, असौ नित्यसम्बन्धवशादेकार्थनियतः, अनेकार्थ-
नियतो वा स्यात् ? एकार्थनियतश्चेत्किमेकदेशेन, सर्वात्मना
वा ? सर्वात्मनैकार्थनियमे अर्थान्तरे वेदात्प्रतिपत्तिर्न स्यात्,
तैत्तश्चास्याज्ञानलक्षणमप्रामाण्यम् । एकदेशेन चेत्, स किमे-
कदेशोऽभिमतैकार्थनियतः, अनभिमतैकार्थनियतो वा ? अनभि-
मतैकार्थनियतश्चेत्, कथं न मिथ्यात्वलक्षणमप्रामाण्यम् ? अभि-
मतैकार्थनियतश्चेत्किं पुरुषात्, स्वभावाद्वा ? प्रथमपक्षे अपौरुषे-
यत्वसमर्थनप्रयासो व्यर्थः । पुरुषो हि रागाद्यन्धत्वात्प्रति-
क्षिप्यते, तस्माच्चेद्देवैकदेशोऽर्थनियमं प्रतिपद्यते, किमपौरुषेय-
त्वेन ? अनेकार्थनियमे च विरुद्धोप्यर्थः सम्भवेत्, तथा चार्थ-
मिथ्यात्वम् ।

१५ किञ्च, असौ सम्बन्धपेन्द्रियः, अतीन्द्रियः, अनुमानगम्यो वा
स्यात् ? न तावदैन्द्रियः, स्वेन्द्रिये स्वेन रूपेणाप्रतिभासमानत्वात् ।
अतीन्द्रियश्चेत्, कथं प्रतिपत्त्यङ्गं ज्ञापकस्य निश्चयापेक्षणात् ?
संज्ञिधिमात्रेण ज्ञापनेऽतिप्रसङ्गात् ।

अनुमानगम्यश्चेत्, न; लिङ्गाभावात् । तस्य हि लिङ्गं ज्ञानम्,
२० अर्थः, शब्दो वा ? न तावज्ज्ञानम्; सम्बन्धासिद्धौ तत्कार्यत्वे-
नास्याऽनिश्चयात् । नाप्यर्थः; तस्य तेन सम्बन्धासिद्धेः । न हि
सम्बन्धार्थयोस्तादात्म्यम्; सम्बन्धस्यैतन्नित्यत्वानुषङ्गात् । नापि
तैदुत्पत्तिः; अनभ्युपगमात् । असम्बद्धश्चैतर्थाः कथं सम्बन्धं ज्ञाप-
यत्यतिप्रसङ्गात् ? ज्ञापने वा शब्दा एवं सम्बन्धविकलाः किमर्थं
२५ न ज्ञापयन्त्यलं सिद्धोपस्थाधिना नित्यसम्बन्धेन ? तन्नार्थोपि

१ सर्वस्वरूपेण । २ पुरुषाणाम् । ३ वेदेनार्थान्तरप्रतिपत्त्यभावात् । ४ भीर्मास-
कस्य । ५ भीर्मासकैः । ६ वेदस्य । ७ द्वितीयपक्षे । ८ वेदस्य । ९ इन्द्रियविषयः ।
१० ओत्रलोचनलक्षणे । ११ असाधारणरूपेण । १२ वाच्यवाचकसाम्यत्वात्-
न्द्रियत्वात् । १३ सम्बन्धस्य । १४ नाज्ञातं ज्ञापकं नाम । १५ शब्दार्थयोः सारुध्येण
सम्बन्धस्यार्थज्ञापने । १६ सम्बन्धमात्रेण । १७ भीर्मासकनत्सौगतानपि बोधयेदिति ।
१८ सम्बन्धेन सहाविनाभाविलिङ्गस्य । १९ सम्बन्धोक्ति ज्ञानात् । २० सम्बन्धासिद्धे-
रिति खपुस्तकीयः पाठः । २१ सम्बन्धोक्ति अर्थात् । २२ कथम् । २३ अन्यथा ।
२४ अर्थवत् । २५ सम्बन्धानुष्णरूपादर्थोत्पत्तिः । २६ सम्बन्धेन सह । २७ तथा
च खरविधानं सम्बन्धं ज्ञापयत् । २८ असम्बन्धार्थेन । २९ सम्बन्धस्य ।

लिङ्गम् । नापि शब्दः; अर्थपक्षोक्तदोषानुपपन्नात् । ततो नित्यस-
म्बन्धस्य प्रमाणतोऽप्रसिद्धेन तद्वशाद्देवोऽर्थप्रतिपादकः ।

अथ स्वभावादेवासौ तत्प्रतिपादकः; तन्न; 'अयमेवास्माकमर्थो
नायम्' इति वैदेनानुक्तेः । तदुक्तम्—

“अयमर्थो नायमर्थ इति शब्दा वदन्ति न ।

कल्प्योयमर्थः पुरुषैस्ते च रागादिविभृताः ॥ १ ॥”

५

[प्रमाणवा० ३।३१२]

इति । ततो लौकिको वैदिको वा शब्दः सहजयोग्यतासङ्केत-
वशादेवार्थप्रतिपादकोऽभ्युपगन्तव्यः प्रकारान्तरासम्भवात् ।

ननु चार्थप्रतिपादकत्वमेवामसम्भाव्यम्, य एव हि शब्दाः १०
संत्यर्थे दृष्टास्ते एवातीतानागतौ तदभावेपि दृश्यन्ते । यदभावे
च यद्दृश्यते न तत्तत्प्रतिबद्धम् यथाऽश्वाऽभावेपि दृश्यमानो
गौर्न तत्प्रतिबद्धः, अर्थाभावेपि दृश्यन्ते च शब्दाः, तन्नैतेऽर्थप्रति-
पादकाः, किन्त्वन्योपोहमात्राभिधायकाः । तदप्यविचारितरमणी-
यम्; अर्थवतः शब्दात्तद्रहितस्यास्यान्यत्वात् । न चान्यस्य व्यभि- १५
चारेऽन्यस्याप्यसौ युक्तः; अन्यथा गोपालघटिकादिधूमस्माग्नि-
व्यभिचारोपलम्भात्पवैतादिप्रदेशवर्तिनोपि स स्यात्, तथा च
कार्यहेतवे दत्तो जलाञ्जलिः । सकलान्यता च, स्वप्नादिप्रत्ययानां
कैचिद्विभ्रमोपलम्भतो निखिलप्रत्ययानां तत्प्रसङ्गात् । 'यत्नतः
परीक्षितं कार्यं कार्यं नातिवर्त्तते' इत्यन्यत्रापि समानम्—'यत्नतो २०
हि शब्दोर्थवत्त्वेतरस्वभावतया परीक्षितोर्थं न व्यभिचरति' इति ।
तथा चान्यापोहमात्राभिधायित्वं शब्दानां श्रद्धामात्रगम्यम् ।

किञ्च, अन्यापोहमात्राभिधायित्वे प्रतीतिविरोधः—'वादि-
शब्देभ्यो विधिरूपोवसायेन प्रत्ययप्रतीतिः । अन्यनिषेधमात्राभि-
धायित्वे च तत्रैव चरितार्थत्वात्साक्षादिमतोर्थस्यातोऽप्रतीतिः २५
तद्विषयाया गवादिबुद्धेर्जनकोन्यो ध्वनिरन्वेषणीयः । अथैकेनैव
गोशब्देन बुद्धिद्वयस्योत्पादान्न परो ध्वनिर्मुग्यः; न; एकस्य
विधिकारिणो निषेधकारिणो वा ध्वनेर्मुगपद्विज्ञानद्वयलक्षणफल-

१ सौगतः । २ विषयाने । ३ काले । ४ मा । ५ अपोहवत्त्वे व्यावर्त्तनेना-
भावेनेति । ६ एव । ७ भिन्नत्वात् । ८ भूमात् । ९ परेण । १० कथम् ।
११ अपे । १२ भूमादि । १३ अन्यादि । १४ शब्दे । १५ कथम् । तथा हि ।
१६ व्यभिचारमात्रे च । १७ कृतः । १८ अस्तित्वरूपनिश्चयेन । १९ ज्ञानादि-
मदर्थस्य । २० अगवादिन्याश्रुति । २१ एव । २२ द्वितीयः । २३ शब्दः ।
२४ ध्वनेः । २५ गवाचक्षित्व । २६ अगवादिन्याश्रुति ।

नुपलम्भात् । विधिनियेषघञ्ज्ञानयोश्चान्योन्यं विरोधात् कथमेकसा-
त्सम्मैवः ?

यदि च गोशब्देनागोशब्दनिवृत्तिर्मुख्यतः प्रतिपद्यते; तर्हि
गोशब्दश्रवणानन्तरं प्रथमतः 'अगोः' इत्येषा श्रोतुः प्रतिपत्ति-
५ भवेत् । न चैवम्, अतो गोबुद्धयनुत्पत्तिप्रसङ्गात् । तदुक्तम्—

“नन्वन्यापोर्द्वैक्यच्छब्दो युष्मत्पक्षेऽनुवर्णितः ।

निषेधमात्रं नैवेह प्रतिभासेऽवगम्यते ॥ १ ॥

किन्तु गौर्गवयो हस्ती वृक्ष इत्यादिशब्दतः ।

विधिरूपावसायेन मतिः शाब्दी प्रवर्त्तते ॥ २ ॥”

१०

[तत्त्वसं० का० ९१०-११ पूर्वपक्षे]

“यदि गौरित्ययं शब्दः समर्थोऽर्थनिवर्त्तने ।

जनको गवि गोबुद्धि(द्धे)र्मुख्यतामपरो ध्वनिः ॥ ३ ॥

ननु क्षीनफलाः शब्दा न चैकस्य फलद्वयम् ।

अपवौदविधिज्ञानं फलमेकस्यैवैः कथम् ॥ ४ ॥

१५

प्रौर्गौरिति विज्ञानं गोशब्दश्रीविणो भवेत् ।

येनोऽगोः प्रतिषेधाय प्रवृत्तो गौरिति ध्वनिः ॥ ५ ॥”

[भामहलं० ६।१७-१९]

किञ्च, अपोहलक्षणं सामान्यं वाच्यत्वेनोभिधीयमानं पर्थुदास-
लक्षणं चाभिधीयेत, प्रसज्यलक्षणं वा ? प्रथमपक्षे सिद्धसाध्यता-
२० यदेव ह्यगोनिवृत्तिलक्षणं सामान्यं गोशब्देनोच्यते भवेता-
तदेवासाभिगीर्त्वाख्यं भौवलक्षणं सामान्यं गोशब्दवाच्यमित्य-
भिधीयेत, अभावस्य भावान्तरात्मकत्वेन व्यवस्थितत्वात् ।

कश्चायं भवतामश्वादिनिवृत्तिस्वभावो भावोऽभिप्रेतः ? न ता-
वदसाधारणो गवादिस्वलक्षणात्मा; तस्य सकलविकल्पगोचरति-

१ परस्परविरुद्धार्थप्रतिपादनविरोधात् । २ यत्र विधिविज्ञानं तत्र निषेधविज्ञानं
जाति । यत्र निषेधज्ञानं न तत्र विधिविज्ञानमिति । ३ बुद्धिद्वयस्य । ४ परेण भवता ।
५ अगोः निवृत्तेः पूर्वम् । ६ यत्र । ७ अश्वादिः । ८ अन्यथा । ९ गौरिति
बुद्धिस्तस्या अनुत्पत्तिः । १० तं करोतीति । ११ बौद्ध । १२ प्रतिपादितः ।
१३ गौरयमित्यसिद्धम् । १४ तर्हि कार्यं प्रतिभासः । १५ अर्थस्य । १६ अश्वादि ।
१७ तर्हि । १८ अवन्तु । १९ विधिनियेषज्ञानं । २० शब्दस्य । २१ विधिनियेष-
लक्षणम् । २२ निषेध । २३ शब्दस्य । २४ बौद्धानाम् । २५ अगोनिवृत्तेः पूर्वम् ।
२६ अश्वः । २७ जनस्य । २८ कुतः । २९ गोशब्दस्यार्थत्वेन । ३० बौद्धमते ।
३१ कथम् । ३२ सौगतेन । ३३ जनैः । ३४ सत्ता । ३५ अगोनिवृत्तिलक्षणोऽ-
भातो भावान्तरेण गोत्वेन व्यवस्थिते । ३६ क्षणिकनिरंशनिवन्धनरूपः ।

क्रान्तत्वात् । नापि शाबलेयादिव्यक्तिविशेषः; असौमान्यप्रसङ्गतः । यदि गोशब्दः शाबलेयादिव्यक्तिः स्यात्तर्हि तस्यानन्वयौक्त्ये च सामान्यविषयः स्यात् । तस्मात्सर्वेषु सजातीयेषु शाबलेयादिपिण्डेषु यत्रत्येकं परिसमाप्तं तन्निबन्धना गोबुद्धिः, तच्च गोत्वान्यमेव सामान्यम् । तस्याऽगोऽपोहशब्देनाभिधानान्नाममात्रं भिद्येत । उक्तञ्च—

“अगोनिवृत्तिः सामान्यं वाच्यं यैः परिकल्पितम् ।

गोत्वं वस्त्वेव तैरुक्तमगोपोहगिरा स्फुटम् ॥ १ ॥

भावान्तरात्मकोऽभावो येन सर्वो व्यवस्थितः ।

तैर्भावादिनिवृत्त्यात्मा भावः क इति कथ्यताम् ॥ २ ॥ १०

नेष्टोऽसाधारणस्तावद्विशेषो निर्विकल्पनात् ।

तथा च शाबलेयादिरसौमान्यप्रसङ्गतः ॥ ३ ॥”

[मी० श्लो० अपोह० श्लो० १-३]

“तस्मात्सर्वेषु यद्वृत्तं प्रत्येकं परिनिष्ठितम् ।

गोबुद्धिस्तन्निमित्ता स्याद्गोत्वादित्यत्र नास्ति तत्त्वं ॥” १५

[मी० श्लो० अपोह० श्लो० १०]

द्वितीयपक्षे तु न किञ्चिद्वस्तु वाच्यं शब्दानामिति अतोऽप्रवृत्तिनिवृत्तिप्रसङ्गः । तुच्छरूपाभावस्य चानभ्युपगमाच्च प्रसज्यप्रतिषेधाभ्युपगमो युक्तैः; परमतप्रवेशालुचक्रात् ।

अपि च ये विभिन्नसामान्यशब्दैर्गवाद्यो ये च विशेषशब्दाः २० शाबलेयाद्यस्ते भेदमिप्रायेण पर्यायाः प्रामुख्यवन्त्यर्थभेदाभावाद्दृष्टपादपादिशब्दवत् । न खलु तुच्छरूपाभावस्य भेदो युक्तः;

१ अन्यथा । २ सामान्यस्यापोहस्याभावोऽसामान्यं तस्य प्रसङ्गात् । ३ विशेष । ४ शाबलेयादिना । ५ गो वः शब्दः स च शाबलेयावर्षवाचक इति । ६ सालादि-
न्यस्य । ७ अगोन्वावृत्तिः । ८ नावर्तः । ९ गोशब्दस्य । १० सौगतैः । ११ गोत्वं
वस्त्वेनाऽगोपोहगिरा उक्तम् । कुतस्तथा हि । १२ कारणेन । १३ पदुदात्तपक्षे ।
१४ नेष्ट इति शेषः । १५ अन्यथा । १६ असाधारणशाबलेयवर्षं न वदते यस्मात् ।
१७ सकृन्नोन्वयितुः । १८ वर्तते । १९ सामान्यम् । २० प्रसज्यपक्षे ।
२१ प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च प्रवृत्तिनिवृत्ती तयोरभावोऽप्रवृत्तिनिवृत्ती तयोः प्रसङ्गः ।
२२ सौगतैः । २३ अन्यथा युक्तभेदः । २४ नैयायिकादि । २५ सौगतस्य ।
२६ यतः । २७ अशब्दगोशब्दादि । २८ सामान्यसामिधायकाः । २९ वीदः ।
३० नगन्ति । ३१ सर्वेषां पदार्थानां तुच्छस्वरूपत्वं यतः । ३२ निःस्वभावस्य ।
३३ अपोहस्य ।

वस्तुन्येव संस्पृ(संसृ)ष्टत्वैकत्वनानात्वादिविकल्पानां प्रतीतेः ।
मेदाभ्युपगमे वा अर्थावस्य वस्तुरूपतापत्तिः, तथाहि-ये परस्परं
मिथन्ते ते वस्तुरूपा यथा खलक्षणानि, परस्परं मिथन्ते
चाऽपोहा इति ।

- ५ न चापोहलक्षणसम्बन्धिमेदादपोहानां भेदः, प्रमेयाभिधेया-
दिशब्दानामप्रवृत्तिप्रसङ्गात्, तदभिधेयापोहानामपोहलक्षणस-
म्बन्धिमेदाभावेतो भेदासम्भवात् । अत्र हि वैकिकिञ्चिद्व्यवच्छेद्य-
त्वेन कल्प्यते तत्सर्वं व्यवच्छेद्याकारेणालम्ब्यमानं प्रमेयादिसमा-
वमेवावतिष्ठते । न ह्यविषयीकृतं व्यवच्छेद्यं शक्यमतिप्रसङ्गात् ।
१० न च सम्बन्धिमेदो भेदेकः, अन्यथा बहुषु शावलेयादिव्यक्तिष्वे-
कस्याऽगोपोहस्याऽर्थावप्रसङ्गः । यस्य चान्तरङ्गः शावलेयादि-
व्यक्तिविशेषा न भेदकाः 'तस्याऽश्वादयो भेदकाः' इत्यतिसाह-
सम् ! सम्बन्धिमेदाच्च वस्तुन्यपि मेदो नोपलभ्यते किमुता-
ऽवैस्तुनि; तथाहि-देवदत्तादिकमेकमेव वस्तु युगपत्कमेण वाने-
१५ कैराभरणोदिभिरभिसम्बन्ध्यमानमनासादितभेदमेवोपलभ्यते ।

भवतु वा सम्बन्धिमेदाद्भेदः; तथापि-वैस्तुभूतसौमान्यानभ्युप-
गमे भवतां स एवापोहाभेदः सम्बन्धी न सिद्धिमासादयति यस्य
मेदात्तद्भेदः स्यात् । तथाहि-गर्वादीनां यदि वस्तुभूतं सौमन्यं
प्रसिद्धं भवेत्तदाश्वाद्यपोहाभयत्वमविशेषेणैषां प्रसिद्धोभान्नैथा ।
२० अतोऽपोहविषयत्वमेवामिच्छताऽवैदयं सारूप्यमङ्गीकर्तव्यम् ।
तदेव च सामान्यं वस्तुभूतं भविष्यतीत्यपोहकल्पना वृथैव ।

१ न वृच्छरूपाभावे । २ अन्ये सम्बन्धे । ३ आदिना प्रमेयत्वादि । ४ भेदा-
नाम् । ५ सौमन्ये । ६ अपोहस्य । ७ तल्लक्षणत्वादस्तुत्वस्य । ८ कल्पम् ।
९ अश्वादिनिवृत्तयः । १० अपोहा व्यावर्त्ता अश्वादयः । ११ अभावानाम् ।
१२ अन्यथा । १३ अप्रमेयादि । १४ स्वरूप । १५ स्वरूपेण नास्ति यता ।
१६ प्रमेयादिशब्देषु । १७ अप्रमेयादि । १८ व्यावर्त्तत्वेन । १९ व्यावर्त्ताकारेण ।
२० विषयीक्रियमाणम् । २१ वर्तते । २२ व्यवच्छेद्यमप्रमेयादि । २३ परिच्छेद्यम् ।
२४ गगनकुमुदमपि परिच्छेद्यं शक्यं स्यात् । २५ अपोहानाम् । २६ किञ्च
प्रतिष्यक्ति मिथ पव स्यात् । २७ अव्यभिचारि प्रतिनियतमन्तरङ्गम् । २८ अपोहे ।
२९ कटकुम्भलादिभिः । ३० सम्बन्धिभिः । ३१ अपोहस्य । ३२ परमावसल ।
३३ गोत्वादि । ३४ विवक्षितः । ३५ सत् । ३६ सम्बन्धिनः । ३७ अपोहस्य ।
३८ अर्थानाम् । ३९ सष्टरूपम् । ४० शावलेयादिषु । ४१ साधनम् ।
४२ गोत्वादि । ४३ साधारणेन । ४४ सारूप्याभावे । ४५ सामान्याननुपपत्ते
विवक्षितोऽपोहाभयः सम्बन्धी न सिध्यति यतः । ४६ सौमनेन । ४७ निषेधेन ।

यदि वाऽसत्यपि सारूप्ये शावलेयादिष्वंगोपोहकल्पना तदा
गवाश्वयोरपि कस्मान्न कल्पन्तेताऽसौ विशेषाभावात् ? तदुक्तम्—

“अथाऽसत्यपि सारूप्ये स्यादपोहस्य कल्पना ।

गवाश्वयोरयं कस्माद्गोपोहो न कल्पन्ते ॥ १ ॥

शार्वलेयाश्च भिन्नत्वं बाहुलेयाश्वयोः समम् ।

सामान्यं नान्यदिष्टं चेत्कागोपोहः प्रवर्त्तताम् ॥ २ ॥”

[मी० श्लो० अपोह० श्लो० ७६-७७]

यथा च स्वलक्षणैणादिषु^१ समयासम्भवात् शब्दार्थत्वं^२ तथाऽपो-
हेपि । निश्चितार्थो हि समयकृत्समयं करोति । न चापोहः केन-
चिदिन्द्रियैर्व्यवस्यते; तस्यावस्तुत्वादिन्द्रियाणां च वस्तुविषय-^३
त्वात् । नाप्यनुमानेन; वस्तुभूतसामान्यमन्तरेणानुमानस्यैवाऽ-
प्रवृत्तेः ।

अस्तु वा समयः, तथोपि—कथमश्वदीनां गोशब्दानभि-
धेयत्वम् ? ‘सम्वन्धोऽनुभवक्षणेऽश्वोदेस्ताद्विषयत्वेनादिष्टः’ इत्य-
नुचरम्; यतो यदि यज्ञोशब्दसङ्केतकाले इष्टं ततोऽन्यत्र गोशब्द-^४
प्रवृत्तिर्न भवति, तदैकस्मत्सङ्केतेन विषयीकृताच्छावलेयादिगोपि-
ण्डाद् अन्यद्बाहुलेयोदि गोशब्देनापोहं न भवेत् ।

इतिरेतराश्रयश्च—अगोव्यवच्छेदेन हि गोः प्रतिपत्तिः, स
चाऽगौर्गोनिषेधात्मा, ततश्च अगौः इत्यत्रोत्तरपदार्थो वैकल्यो यो
‘न गौः’ इत्यत्र नञा प्रतिषेध्येत । न ह्यनिर्ज्ञातसैरूपस्य निषेधो २०

१ अश्वामाव । २ पक्ष । ३ सारूप्यासत्त्वाविशेषात् । ४ यदि । ५ शावलेयादी ।
६ पक्षोः । ७ कारणात् । ८ गवाश्वयोर्भिन्नत्वादेकागोपोहाभयत्वं नेत्युक्ते आह ।
९ समानम् । १० परमार्थभूतम् । ११ भिन्नम् । १२ विशेषेषु क्षणिकनिराशादिषु ।
१३ शावलेयादिषु । १४ सङ्केत । १५ घटते इति शेषः । १६ अस्य अन्वयस्ययमर्थ
इति । १७ ना । १८ नरेण । १९ निश्चीयते । २० स्वलक्षण । २१ अपोहे ।
२२ अपोहे समयसङ्गावेपि । २३ स्यात् । २४ अनुमानमप्यन्यापोहं नावबोधयति ।
२५ गोशब्देन साक्षादिपदस्य अनुमानस्य कार्यस्वभावसम्पाद्यत्वात् । अन्यापोहस्य
निरुपास्यत्वेनानर्थक्रियाकारित्वेन च स्वभावकार्ययोरसम्भवात् । २६ काले । २७ ता ।
२८ दर्शनाभावात् । २९ इष्टं वर्जयित्वा । ३० अथे । ३१ परेण । ३२ खण्ड-
शुष्कादिवाद्या । ३३ गोशब्दस्यार्थं वाच्य इति । ३४ सौगतेन । ३५ गोपिण्डम् ।
३६ अथादि व्यावर्त्तम् । ३७ सङ्केतकाले सङ्केतेनाविषयीकृतत्वाद्बाहुलेयादेः ।
३८ दूषणान्तरमाह । ३९ कवम् । ४० गोशब्दार्थः । ४१ परेण त्वाया ।
४२ समासार्त्थे वाच्ये । ४३ पदार्थस्य ।

विधातुं शक्यः । अथाऽगोनिवृत्त्यात्मा गौरैव, नन्वेवमगोनिवृत्ति-
स्वभावत्वाद्गौरगौप्रतिपत्तिद्वारेणैव प्रतीतिः, र्थगोश्च गोप्रति-
षेधात्मकत्वाद्गोप्रतिपत्तिद्वारेणेति स्फुटमितरेतराश्रयत्वम् ।

अथाऽगोशब्देन यो गौर्निषिध्यते स विधिरूप पञ्चागोव्य-
५ वच्छेदलक्षणापोहसिद्ध्यर्थम् तेनेतरतराश्रयत्वं न भविष्यति;
यद्येवम्—‘सर्वस्य शब्दस्यापोहोऽर्थः’ इत्येवमपोहकल्पना वृथा
विधिरूपस्यापि शब्दार्थस्य भावात्, अन्यथेतरतराश्रयो दुर्नि-
वारः । तदुक्तम्—

“सिद्धेश्चागौरपोहोर्त्तं गोनिषेधात्मकश्च सः ।

१० तत्र गौरैव वक्तव्यो नञा यः प्रतिषिध्यते ॥ १ ॥

स चेद्गोनिवृत्त्यात्मा भवेदन्योन्यसंश्रयः ।

सिद्धेश्चद्वौरपोहार्थं वृथापोहप्रकल्पनम् ॥ २ ॥

गव्यसिद्धे त्वगौर्नास्ति तदभावेऽप्य(पि)गौः कुतः ।

नीधाराधेयवृत्त्यौदिसम्बन्धश्चाप्यभावेयोः ॥ ३ ॥”

१५

[मी० खो० अपोह० खो० ८३-८५]

दिशोनेन विशेषणविशेष्यभावसमर्थनार्थम् “नीलोत्पलादि-
शब्दा अर्थान्तरनिवृत्तिविशिष्टानर्थानाहुः” [] इत्युक्तम्;
तदयुक्तम्; यस्यै हि येन कश्चिद्वास्तवः सम्बन्धः सिद्धस्तत्रेन
विशिष्टमिति वक्तुं युक्तम्, न च नीलोत्पलयोरनीलानुत्पल-
२० व्यवच्छेदरूपत्वेनाभावरूपयोराधाराधेयत्वादिः सम्बन्धः सम्भ-
वति; नीरूपत्वात् । आदिग्रहणेन संयोगसमवायैकार्थसमवाया-
दिसम्बन्धग्रहणम् । न चासति वास्तवे सम्बन्धे तद्विशिष्टस्यै
प्रतिपत्तिर्युक्ताऽतिप्रसङ्गात् ।

१ पुरुषेण । २ अश्यायभावात्मा । ३ उत्तरपदार्थः । ४ भो सौगत । ५ ता ।
६ उत्तरपदार्थस्य । ७ अन्नादेः । ८ ता । ९ पव । १० प्रतीतिः । ११ पूर्वोक्त-
प्रकारेण । १२ साक्षादिमात्रभावरूप इति भावः । १३ नागोनिवृत्त्यात्मा ।
१४ स्वरूप । १५ तर्हि । १६ ज्ञातः । १७ गोशब्देन । १८ पर्व सति । १९ उच्यते
पव गौरिस्तुके आह । २० विधिरूपेण । २१ अन्नादेः । २२ ज्ञेयनोच्यते ।
२३ विशेष्यपदामिषेयोऽभावो विशेष्य आधारश्च विशेषणपदामिषेयोऽभावो विशेषण-
भावेयश्वेलनिप्रायः परस्य (सौगतस्य) नीलो वट इत्यादिवात् । २४ न केवलं संज्ञितः ।
२५ कारिकोत्तरार्थं व्याचष्टे । २६ अनील अनुत्पललक्षणम् । २७ अभावसदितान् ।
२८ कथम् । २९ विशेष्यस्य । ३० विशेषणेन । ३१ अर्थरूपयोः । ३२ प्रकार्य-
समवायः मातुलिङ्गक्षणं रूपवद्गतादेः । ३३ आदिना तादात्म्यम् । ३४ नील ।
३५ उत्पलस्य । ३६ विशेषणविशेष्यतया सङ्खविन्वयोरपि प्रतिपत्तिः सादिति ।

नासाकमनीलौदिव्यावृत्त्या विशिष्टोऽनुत्पलादिव्यवच्छेदोऽ-
भिमतो यतोयं दोषः स्यात् । किं तर्हि ? अनीलानुत्पलाभ्यां
व्यावृत्तं वस्त्वेव तथा व्यवस्थितम् । तच्चार्थान्तरव्यावृत्त्या
विशिष्टं शब्देनोच्यते; इत्यप्यपेशलम्; खलक्षणस्याऽर्थाव्यत्वात् ।
न च खलक्षणस्य व्यावृत्त्या विशिष्टत्वं सिद्ध्यति; यतो न वस्त्व-
पोहोऽसाधारणं तु वस्तु, न च वस्त्वऽवस्तुनोः सम्बन्धो
युक्तः, वस्तुद्रयाधारत्वात्तस्य ।

अस्तु वा सम्बन्धः, तथापि विशेषणत्वमपोहस्याऽयुक्तम्, न
हि सैत्तामात्रेण किञ्चिद्विशेषणम् । किं तर्हि ? ज्ञातं सचत्सा-
कारानुरक्तया बुद्ध्या विशेष्यं रक्षयति तद्विशेषणम् । न चापो-
होऽयं प्रकारः सम्भवति । न ह्यश्वादिबुद्ध्यापोहोऽध्यवसीयते ।
किं तर्हि ? वस्त्वेव । अपोहज्ञानासम्भवश्चोक्तः प्राक् । न चाज्ञा-
तोप्यपोहो विशेषणं भवति । “नागृहीतविशेषणा विशेष्ये
बुद्धिः” [] इत्यभिधानात् ।

अस्तु वाऽपोहज्ञापनम्, (ज्ञानम्,) तथापि तैर्दाकारबु-
द्ध्याभावात्तस्याऽविशेषणत्वम् । सर्वे हि विशेषणं साकारानुरक्तैर्भा-
विशेष्ये बुद्धिं जनयद्बुद्धम्, न त्वन्यादृशं विशेषणमन्यादृशीं बुद्धिं
विशेष्ये जनयति । न खलु नीलमुत्पले ‘रक्तम्’ इति प्रत्यय-
मुत्पादयति, दण्डो वा ‘कुण्डली’ इति । न चाश्वादिर्भैर्भावीनु-
रक्ता शौन्दी बुद्धिरुपजायते । किन्तर्हि ? भौवाकाराध्यवसा-
यिनी । तैर्थापि विशेषणत्वे सर्वे सर्वस्य विशेषणं स्यात् । अनु-

१ भवतामयं प्रसङ्ग इत्युक्ते सलाह । २ जेनानाम् । ३ रसादि । ४ विशेषणेन ।
५ अपवादि । ६ विशेष्यः । ७ न कुतोपि । ८ नीलोत्पलरूपेण । ९ इति जैनः ।
१० अर्थः खलक्षणरूपः । ११ अनीलाऽनुत्पलरूपः । १२ इति सौगतः । १३ कुतः ।
१४ यदस्तु तत्सखलक्षणमेवेति शब्देन । १५ सौगतमते । १६ अन्यव्यावृत्तिरुक्तं
तु सामान्यमेव । १७ अपोहोस्तीत्यस्तिवमात्रेण । १८ लोके । १९ उपलम् ।
२० सात् । २१ अज्ञातत्वाद्पोहस्य । २२ न तावत्प्रत्यक्षेणापोहमदृग्भित्तादिः ।
२३ खलक्षणरूपे । २४ सिरस्थूलाकारः खलक्षणोस्तीति ज्ञापते न त्वभावरूपापोहा-
कारः । २५ सर्तीं सद्रुशीम् । २६ अभावरूपम् । २७ भावरूपात् । २८ कनम् ।
२९ पुरपसः । ३० खलक्षणरूपेषु । ३१ अपोहासत्ता । ३२ शब्दचरित्या
सविश्वस्येत्तर्थाः । बौद्धानां मते निर्विकल्पकज्ञानानन्तरतोत्पन्नसविद्वत्प्रकृत्यानेन खलक्षणस्य
निश्चयो भवतः । ३३ सिरस्थूलाकार पदार्थाकार । ३४ साकारानुरूपद्रुग्भवनकत्वेपि ।
३५ अपोहस्य । ३६ साकारानुरूपद्रुग्भवनकत्वाविशेषात् ।

रंगे वा अभावरूपेण वैस्तुनः प्रतीतेवैस्तुत्वमेव न स्यात्, भावा-
भावयोर्विरोधात् । शब्देनाऽगम्यमानत्वाच्चाऽसाधारणवस्तुनो न
व्यावृत्त्या विशिष्टत्वं प्रत्येतुं शक्यम् । उक्तञ्च—

“न चासाधारणं वस्तु गम्यतेपोहवत्तया ।

५ कथं वा परिकल्प्येत सम्बन्धो वस्त्ववस्तुनोः ॥ १ ॥

स्वरूपसत्त्वमात्रेण न स्यात्किञ्चिद्विशेषणम् ।

स्वतुच्छा रज्यते येन विशेष्यं तद्विशेषणम् ॥ २ ॥

न चाप्यश्वदिशब्देभ्यो जायतेपोहभौसनम् ।

विशेष्ये बुद्धिरिष्टे^२ न चाक्षातविशेषणा ॥ ३ ॥

१० न चान्यैरूपमन्यादृक्^३ कुर्याज्ज्ञानं विशेषणम् ।

कथं चाऽन्यादृशे^४ ज्ञाने तदुच्येत विशेषणम् ॥ ४ ॥

अथान्यथा विशेष्येपि स्याद्विशेषणकल्पना ।

तथा सति हि यैत्किञ्चित्प्रसज्येत विशेषणम् ॥ ५ ॥

अभावगम्यरूपे च न विशेष्येस्ति वस्तुता ।

१५ विशेषितमपोहेन^५ वैस्तु वैच्यं न तेऽस्त्यतः ॥ ६ ॥”

[मी० श्लो० अपोह० श्लो० ८६-९१]

“शब्देनागम्यमानं च विशेष्यमिति साहसम् ।

तेन सामान्यमेष्टव्यं विषयो बुद्धिशब्दयोः ॥”

[मी० श्लो० अपोह० श्लो० ९४]

२० इतश्च सामान्यं वस्तुभूतं शब्दविषयः, यतो व्यक्तीनामसा-
धारणवस्तुरूपाणामशब्दवैच्यत्वाच्च व्यक्तीनामपोहोत्, अनुक्तञ्च

१ अश्वादिषु शब्दन्युद्धेरभावेन सहानुरागे सति । २ यदा भावाकारो वृत्त-
दाऽभावरूपमेव स्वरक्षणं निश्चिनुयादिति भावः । ३ स्वरक्षणस्य । ४ कुतः ।
५ स्वरक्षणस्य । ६ अपोहेन । ७ अर्थान्तरव्यावृत्त्या विशिष्टं स्वरक्षणरूपं वस्तु
शब्देनोच्यत इति वदन्तं वादिनं प्रति समर्थनमुक्तमिति ज्ञेयम् । ८ अपोहस्य ।
९ कथं तर्हि विशेषणं स्यादित्युक्ते जाह । १० स्वस्य=विशेषणस्य । ११ प्रतीतिः ।
१२ जगति । १३ अभावरूपम् । १४ भावरूपम् । १५ विशेष्ये । १६ जैनामिदं
दूषणं न जायते तेषां सर्वं वस्तु भावाभावात्मकं यतः । १७ भावरूपे । १८ अभाव-
रूपे । १९ परेण । २० यदि । २१ भावरूपे । २२ अपोहस्य । २३ अनिर्वच-
नीयम् । २४ स्वरक्षणरूपे । २५ विशेषणेन । २६ स्वरक्षणरूपम् । २७ शब्देन ।
२८ सौगतस्य । २९ अपोहस्य विशेषणस्य । ३० स्वरक्षणम् । ३१ येन करणे-
नापोहशब्दयोर्वैच्यवाचकभावो नास्ति तेन । ३२ शब्दवर्णितशुभ्रा गम्यः शब्देन
वाच्यश्च । ३३ गोत्वादि । ३४ स्वरक्षणस्यावाच्यत्वं कुतः ? सङ्केताभावात् ।
३५ शब्देनावाम्पस्य ।

निराकर्तुमशक्यत्वात्, अपोहोत सामान्यं तस्य वाच्यत्वात् ।
अपोहानां त्वभावरूपतयाऽपोहत्वासम्भवात्, अभावानामभावा-
भावात्, वस्तुविषयत्वात्प्रतिषेधस्य । अपोहत्वेऽपोहानां वस्तु-
त्वमेव स्यात् । तस्मादध्वादौ गवादेरपोहो भवेत् सामान्यभूत-
स्यैव भवेदित्येवंपोहत्वाद्बस्तुत्वं सामान्यस्य । तदुक्तम्—

“यदा चाऽशब्दवाच्यत्वात् व्यक्तीर्नामपोहता ।

तदापोहोत सामान्यं तस्यापोहाच्च वस्तुता ॥ १ ॥

नाऽपोहत्वमभावानामभावाऽभाववर्जनात् ।

व्यक्तोऽपोहोन्तरेऽपोहैस्तस्मात्सामान्यवस्तुनः ॥ २ ॥”

[मी० श्लो० अपोह० श्लो० ९५-९६] १०

किञ्च, अपोहानां परस्परतो वैलक्षण्यं वा स्यात्, अवैलक्षण्यं
वा ? तत्राद्यपक्षे [अ]भावस्यागोशब्दाभिधेयैस्याभावो गोशब्दाभि-
धेयः, स चेत्पूर्वोक्तादभौवाङ्गिलक्षणः; तदा भाव एव भवेदभाव-
निवृत्तिरूपत्वाद्भावस्य । न चेद्विलक्षणः; तदा गौर्येणैव प्रस-
ज्येत तदेवैलक्ष्येण (तद्वैलक्षण्येन) तादात्म्यप्रतिपत्तेः । तच्च १५
वाच्याभिमतापोहानां भेदसिद्धिः ।

नापि वैचकामिभैतानाम् । तथाहि-शब्दानां भिन्नसामान्य-
वाचिनां विशेषवाचिनां च परस्परतोऽपोहभेदो वासनाभेद-
निमित्तो वा स्यात्, वाच्यैःपोहभेदनिमित्तो वा ? प्रथम-
पक्षोऽयुक्तः; अवैस्तुनि वासनाया एवासम्भवात् । तदसम्भवश्च २०

१ अपोहित्वम् । २ शब्देन । ३ अन्यव्यावृत्तीनाम् (सर्वेषां पदार्थानामपोह-
रूपत्वात्सर्वे भावा अपोहाः) । ४ व्यावर्त्यत्वम् । ५ अत्र खरविषाणवदुष्टान्तः ।
६ अपोहानाम् व्यावर्तीनाम् । ७ व्यावर्त्यत्वे । ८ अङ्गीक्रियमाणे परेण । ९ अभावा-
भावात्तानाम् । १० वर्तमानः । ११ हेतोः । १२ स्वलक्षणात्तानाम् । १३ वस्तुविषयो
निवेनो यतः । १४ निषेधस्य निषेधासम्भवात् । १५ अपोहा(हो)न्तरेऽध्वादौ ।
१६ गोः । १७ व्यक्तीनामपोहानां चापोहता नास्ति यस्यात् । १८ एव । १९ साः ।
२० गोशब्दात्तद्व्यावर्त्यानामन्यव्यावृत्तीनाम् । २१ विसृष्टता । २२ अथ ।
२३ वाच्यस्य । २४ गोशब्दाभिधेयोऽभावो यतः । २५ अगोशब्दाभिधेयात् ।
२६ द्वितीयपक्षे दूषणमुक्तानयन्ति । २७ परस्पररूपः । २८ भवेत् । २९ भिन्नपदार्थः ।
३० तस्मादगोशब्दाध्यायपोहादेवैलक्षण्यं गोशब्दवाच्यसापोहस्य । ३१ परत्वात् ।
३२ गोशब्दाऽगोशब्दाध्यायपोहयोः । ३३ अर्थः । ३४ शब्दः । ३५ अपोहानाम् ।
३६ गोशब्दानामलक्षणम् । ३७ खण्डमुष्णदि । ३८ शब्दापोहभेदः । ३९ पूर्वविकल्प-
ज्ञानं शब्दनिवर्तनं वासना । ४० एव । ४१ यतः । ४२ अर्थः । ४३ वाच्यसापोहे ।

तद्धेतोर्निर्विषयप्रत्ययस्यायोगात् । नापि वाच्यापोहमेदनिमित्तः ;
तद्भेदस्य प्रागेव कृतोत्तरत्वात् ।

ननु प्रत्यक्षेणैव शब्दानां कारणमेदाद्विकेन्द्रधर्मार्थासाध् भेदः
प्रसिद्ध एव; इत्यप्यसाम्प्रतम्; यतो वाचकं शब्दमङ्गीकृत्यै-
५ वमुच्यते । न च श्रोत्रज्ञानप्रतिभासिखलक्षणात्मा शब्दो वा-
चकः; सङ्केतकालानुभूतस्य व्यवहारकालेऽचिरनिवर्द्धत्वात् इति
न खलक्षणस्य वाचकत्वं भवदभिप्रायेण । तदुक्तम्—

“नार्थशब्दविशेषेण वाच्यवाचकतेर्येते ।

तस्य पूर्वमहदृत्वात्सामान्यं तुपदिश्यते ॥ १ ॥” []

१०

“तत्र शब्दान्तरापोहे सामान्ये परिकल्पिते ।

तथैवावस्तुरूपत्वाच्छब्दमेदो न कल्प्यते ॥ २ ॥”

[मी० श्लो० अपोहो श्लो० १०४]

ततो ये अवस्तुनी न तयोर्गम्यगमकभावो यथा खपुष्प-खर-
विषाणयोः । अवस्तुनी च वाच्यवाचकापोहो भवतामिति । भव-
१५ मेघाभावाद्दृश्यभावप्रतिपत्तेरनैकान्तिकता हेतोः; इत्यप्ययुक्तम्;
तद्विवेकाकाशालोकात्मकं हि वस्तु मर्त्यक्षेत्राणि प्रयोगेस्येव,
अभावस्य भावान्तरखभावत्वप्रतिपादनात् । भवत्पक्षे तु न केव-
लमपोहैर्विवादास्पदीभूतयोर्गम्यगमकत्वाभावोऽपि तु वृष्टि-
मेघाद्यभयोरपि ।

२० किञ्च, अपोहो वाच्यैः, अर्थवाच्यैो वा? वाच्यञ्चेत्किं विधि-
रूपेण, अन्यव्याचृत्स्या वा? यदि विधिरूपेण, कथमपोहः सर्व-

१ वासनाकारणस्य । २ तुच्छरूपत्वात्रिविषयत्वमपोहस्य सविकल्पकज्ञानस्य ।
३ गवादीनाम् । ४ तास्वादि । ५ भिन्न । ६ अभ्यासो ग्रहणम् । ७ पारमार्थिक-
शेषस्य । ८ परेण सौगतेन । ९ खलक्षणरूपशब्दस्य । १० विनष्टत्वात् । ११ हेतोः ।
१२ शब्दस्वभावस्य । १३ वीर्य । १४ अखलक्षणरूपैः शब्दैरखलक्षणरूपार्थप्रति-
पादने न किञ्चित्त्वास्तिविविधैर्भवते इत्यभिप्रायः । १५ परेण । १६ सङ्केतकालात् ।
१७ ज्ञातत्वात् । १८ उत्तरकाले । १९ अर्थशब्दयोः । २० तर्हि सामान्याकारेण
वाच्यवाचकत्वास्तिवलाशङ्क्यामाह । सामान्यस्य वाच्यवाचकतयोपदेशे च ।
२१ गोशब्दादभशब्दः शब्दान्तरे तेन वाच्योऽपोहस्तत्र । २२ अभास्तने । परि-
कल्पितप्रकारेण । २३ शब्दानाम् । २४ समर्थ्यते । २५ सौगतानाम् ।
२६ अभावरूपयोरपि गम्यगमकभावोस्तीति वक्ति वीर्यः । २७ गम्यगमकभावसंज्ञा-
भावात् । २८ अवस्तुत्वादिति । २९ नेयादिभिन्न । ३० जैनः । ३१ सौगत ।
३२ वाच्यवाचकयोः । ३३ तुच्छरूपत्वात् । ३४ अन्यथा । ३५ शब्देन ।
३६ जपना । ३७ शब्देन । ३८ अस्तित्वसंज्ञानेन । ३९ पक्षः ।

शब्दार्थः ? अथान्यव्यावृत्त्या; तर्हि नापोहोऽपि शब्दाधिगम्यो मुख्यः । अनवस्था च-तद्व्यावृत्तेरपि व्यावृत्त्यन्तरेणामिधानात् । अथाऽर्थाच्यः; तर्हि 'अन्यशब्दार्थोऽपोहं शब्दः प्रतिपादयति' इत्यस्य व्याधीतः ।

किञ्च, 'नीन्यापोहः अनन्यापोहः' इत्यादौ विधिरूपादन्यै-
द्राच्यं नोपलभ्यते प्रतिषेधद्वयेन विधेरेवाध्यवसायात् ।

कञ्जायमन्यापोहशब्दवाच्योर्थो यत्रान्यापोहसंज्ञो स्यात् ? अथ विजातीयव्यावृत्तानैर्धानाभित्यानुभवदिक्रमेण यदुत्पन्नं विकल्प-
ज्ञानं तत्र यत्प्रतिभाति ज्ञानात्मभूतं विजातीयव्यावृत्तार्थाकार-
तयाध्यवसितमर्थप्रतिविम्बकं तत्रान्यापोह इति संज्ञा । ननु १०
विजातीयव्यावृत्तपदार्थानुभवद्वारेण शब्दं विहीनं तथाभूतार्था-
ध्यवसाय्युत्पद्यते इत्यत्राविर्वाद एव । किन्तु तत्तथाभूतपार-
मार्थिकार्थग्राह्यम्युपगन्तव्यमध्यवसायस्य ग्रहणरूपत्वात् । विजा-
तीयव्यावृत्तेश्च समनैपरिणामरूपवस्तुधर्मत्वेन व्यवस्थापित-
त्वान्ननिमात्रमेव भिद्येत ।

१५

यद्योक्तम्-“तैत्प्रतिविम्बकं च शब्देन जन्यमानत्वात्तस्य कार्य-
मेवेति कार्यकारणभाव एव वाच्यवाचकभावः” []

१ अपोहस्य विधिरूपेण वाच्यत्वात्सर्वशब्दार्थोऽपोह एव न भवतीत्यर्थः । २ अपोहः ।
३ न केवलं स्वलक्षणम् । ४ अन्यव्यावृत्तिरपि वाच्याऽवाच्या वा स्यात् । अवाच्या
तदाऽवाच्यवान्यव्यावृत्त्या कथमपोहो वाच्योतिप्रसङ्गात् । अथ वाच्या किं विधिरूपेणा-
न्यव्यावृत्त्या वा ? न तादृक्विधिरूपेणोक्तदोषानुबन्धात् । अथान्यव्यावृत्त्या अन्यव्या-
वृत्तिर्वाच्या चेत्तत्राप्यन्यव्यावृत्तिर्यथा वाच्या सापि वाच्याऽवाच्या वेलादिप्रका-
रेणानवस्था । ५ कृतः । ६ शब्देन । ७ अथ । ८ यतः । ९ अथलक्षण ।
१० गौरिति । ११ मतस्य । १२ अपोहस्याऽवाच्यत्वात् । १३ सर्वेषां परस्परेण
व्यावृत्तिसम्भावो यतः । १४ अविधिरूपम् । वस्तु । १५ आदौ दो नञ् च
षष्ठीपोहो द्वितीयेन तस्याप्यपोहः । द्वौ नगौ प्रकृतमर्थं गमयतः । १६ इति ।
१७ सङ्केतः । १८ कश्चिद्बौद्धविशेषः प्राह । १९ अश्वादिभ्यः । २० खण्डमुण्डा-
दिसलक्षणात् । २१ प्रथमं खण्डमुण्डाद्यनुभवो नाम निर्विकल्पकं दर्शनं, तदनु
विकल्पवानुद्बोधस्तदनु सङ्केतकालगृहीतवाच्यवाचकस्मरणं तदन्वितं वाच्यवाचकमिति
योजनं, तदनु विकल्पोयं गौरिति । २२ अश्वादिभ्यः । २३ ज्ञानादभेदरूपम् ।
२४ वेनबौद्धयोः । २५ ज्ञाने ज्ञानस्वरूपार्थाकारोऽपोह इति बौद्धविशेषस्याऽभिप्रायः ।
२६ भावणप्रत्यक्षम् । २७ निश्चयस्य । ८ सौमतेन । ९ पदार्थानां ज्ञानस्य ।
३० बौद्धमते । ३१ खण्डमुण्डादिसलक्ष्यपेक्षया । ३२ विजातीयव्यावृत्तिः समान-
परिग्रामरूपसामान्यं चेति । ३३ स्वग्रन्थे । ३४ अर्थे । ज्ञाने ।

तदप्ययुक्तम्; शब्दाद्विशिष्टसङ्केतसव्यपेक्षाद्वाह्यार्थे प्रतिपत्तिप्रवृत्तिप्राप्तिप्रतीतेः स एवास्यार्थो युक्तः, न तु विकल्पप्रतिबिम्बक-
मात्रं शब्दास्य वाच्यतयाऽप्रतीतेः ।

अतोऽयुक्तम्—“प्रतिबिम्बस्य मुख्यमन्यापोहत्वं विजातीयव्या-
५ वृत्तस्वलक्षणस्यान्यव्यावृत्तेर्भौपचारिकम्” []
इति । अन्यापोहस्य हि वाच्यत्वे मुख्योपचारकल्पना युक्तिमती,
तच्चास्य नास्तीत्युक्तम् । ततः प्रतिनियताच्छब्दात्प्रतिनियतेऽर्थे
प्राणिनां प्रवृत्तिदर्शनात्सिद्धं शब्दप्रत्ययानां वस्तुभूतार्थविवेक-
त्वम् । प्रयोगः—ये परस्परसंज्ञीर्णप्रवृत्तयस्ते वस्तुभूतार्थविषयाः
१० यथा श्रोत्रादिप्रत्ययाः, परस्परसंज्ञीर्णप्रवृत्तयश्च दण्डीत्या-
दिशाब्दप्रत्यया इति । न चायमसिद्धो हेतुः; ‘दण्डी विषाणी’
इत्यादिर्षीर्ध्वनी हि लोके द्रव्योर्षाधिकौ प्रसिद्धौ, ‘गुरुः
कृष्णो भ्रमति चलति’ इत्यादिकौ तु गुणक्रियानिमित्तौ, ‘गौरम्बः’
इत्यादी सौमान्यविशेषोर्षाधी, ‘इहात्मनि ज्ञानम्’ इत्यादिकौ
१५ सम्बन्धोर्षाधिकान्वेति प्रतीतेः ।

नैतु चाकृतसमया ध्वनयोर्षामिधायकाः, कृतसमया वा ?
प्रथमपक्षेतिप्रसङ्गः । द्वितीयपक्षे तु क तेषां सङ्केतः—स्वलक्षणे,
जातौ वा, तद्योगे वा, जातिमत्यर्थे वा, बुद्ध्याकारे वा प्रकारान्त-
रासम्भवात् ? न तावत्स्वलक्षणे; समयो हि व्यवहारार्थं क्रियमाणः
२० सङ्केतव्यवहारकालव्यापके वस्तुनि युक्तो नान्यथैव । न च स्वल-
क्षणस्य सङ्केतव्यवहारकालव्यापकत्वम्; शाबलेय्यादिव्यक्तिविशेषो-
षाणां देशादिभेदेन परस्परतोऽत्यन्तव्यावृत्ततयाऽन्यैर्षामिधायकत्वं,

१ षटपटादिलक्षणे । २ अर्थतया । ३ सम्मन्विन्याः । ४ तथा हि । ५ अन्वयेन ।
६ किञ्चापोहाव्योयेलानिना । ७ अन्वयोऽपोहो विचार्यमाणो न षट्पटे यतः ।
८ परमार्थे । ९ षटः । १० असङ्कलित । ११ लोचनादिज्ञानानि । १२ दण्डः ।
१३ ध्वनिः शब्दः । १४ उपाधिः—विशेषणं कारणमित्यर्थः । १५ धीध्वनी ।
१६ धीध्वनी । १७ गोत्वादि । १८ अन्वादेव्यावर्तमानत्वात्तदेव विशेषः ।
१९ धीध्वनी । २० संबन्धः—समवायः । २१ अत्र प्रतिविधीयते । इत्येतावतः
प्राक् सौगतः पूर्वपक्षयति । २२ षट्पटादिवाचकाः । २३ षट्पट्टः षट्पटाभिधायको
भवतु सङ्केताभावात् । २४ सङ्केतपतिगामलक्षणे संकेतोक्तिः । २५ बुद्ध्याकारे ।
२६ प्रतिबिम्बके । २७ क्षणिकादिकूपे । २८ प्रवृत्तिनिवृत्तिरूप । २९ स्थानिनि ।
३० अन्यापके क्षणिके । ३१ आदिना खण्डमुण्डशबलादीनाम् । ३२ आदिना
कालरूपसमायाः । ३३ खण्डो मुण्डादत्यन्तव्यावृत्त इति सम्बन्धमाभावात् ।
३४ यो यत्रैव स तत्रैव नो यदेव तत्रैव सः । न देसकालयोर्व्याप्तिर्जावानामिह विधते ।

तत्रानन्त्येन सङ्केतासम्भवाच्च । विकल्पवृद्धावर्थाहृत्य तेषु सङ्के-
ताभ्युपेगमे विकल्पसमारोपितार्थविषय एव शब्दसङ्केतः, न
परमार्थवस्तुविषयः स्यात् । स्थिरैकरूपत्वाद्धिमाचलादिभार्वानां
सङ्केतव्यवहारकालव्यापकत्वेन समयसम्भवोप्यसम्भाव्यः; तेषा-
मप्यनेकाग्रुप्रचयस्वभावानां प्रादुर्भावानन्तरमेवापर्वर्गितया तद-
सम्भवात् ।

किञ्च, एतेषु समयः क्रियमाणोऽनुत्पन्नेषु क्रियेत, उत्प-
न्नेषु वा ? न तावदनुत्पन्नेषु परमार्थतः समयो युक्तः; असतः
सर्वापीक्यारहितस्याधारत्वानुपपत्तेः । नाप्युत्पन्नेषु; तस्यार्थानुभ-
वशब्दस्मरणपूर्वकत्वात्, शब्दस्मरणकाले चार्थस्य प्रध्वंसात् । १०
सर्वेषां स्वलक्षणक्षणानां सादृश्यमैक्येनाध्यारोप्य सङ्केतविधाने
सिद्धं स्वलक्षणस्याऽवाच्यत्वम् बुद्ध्यारोपितसादृश्यसैवाभिधानै-
रभिधानात् । वैच्येत्वे वा शब्दबुद्धेः स्पष्टप्रतिभासप्रसङ्गः, न
चैवम् । न खलु यथेन्द्रियबुद्धिः स्पष्टप्रतिभासा प्रतिभासते तथा
शब्दबुद्धिः । प्रयोगश्च-यो यैकृते प्रत्यये न प्रतिभासते न स १५
तस्यार्थः यथा रूपशब्दप्रभवप्रत्यये रसाप्रतिभासने नैसौ तदर्थः,
न प्रतिभासते च शब्दप्रत्यये स्वलक्षणमिति । उक्तञ्च—

“अन्यथैवाग्निर्लम्बन्धादीं हं दग्धो हि मन्यते ।

अन्यथा दाहशब्देन दाहार्थः सम्प्रतीयते ॥ १ ॥”

[वाक्यप० २।४२५] २०

न चैकस्य वस्तुनो रूपद्वयमस्ति, येनास्पष्टं वस्तुर्गतमेव रूपं
शब्दैरभिधीयत एकस्य द्वित्वविरोधात् । तत्र स्वलक्षणे सङ्केतः ।

१ यो यो गोशब्दः स स मुण्डवाचक इति । २ व्यक्तिषु । ३ गोशब्दस्य ।
४ सर्वव्यक्तयो गोशब्देन वाच्या इति आरोप्य । ५ जैनादिना । ६ वसतः ।
७ वसतः । ८ पदार्थानाम् । ९ सङ्केतः । १० विनाशितया । ११ ज्ञानलेयादि-
विशेषेषु । १२ अनातेषु । १३ उपाख्या स्वभावः । १४ समयस्य । १५ अवयवस्य
शब्दस्य वाच्य इति । १६ त्रिकालत्रिलोकोदरवाचिनाम् । १७ सङ्गशापरापरोत्पत्त्या
वात्साहचर्यम् । १८ अमेदेन । १९ अङ्गीक्रियमाणे जैनादिना । २० शब्देन ।
२१ आरोपितसामान्यसैव वाच्यत्वं शब्देन यतः । २२ शब्दैः जातायाः ।
२३ स्वलक्षणस्य । २४ उपर्युक्तसमर्षनम् । २५-नेत्रादि । २६ स्वलक्षणरूपार्थः ।
२७ स्पष्टत्वेन । २८ यतः । २९ स्पष्टनेन्द्रियेण । ३० साक्षात् । ३१ (नहि)
दाहमित्युक्ते मुख्यं दग्धते । ३२ पुमान् । ३३ अस्पष्टत्वेन । ३४ स्पष्टत्वास्पष्टत्वे ।
३५ शुक्तित्वात् । ३६ स्पष्टत्वास्पष्टत्वलक्षणम् । ३७ रूपस्य । ३८ परमार्थमृतः ।

नापि जातौ; तस्याः क्षणिकत्वे स्वलक्षणस्यैवान्वयाभावात् सङ्केतः फलवान् । अक्षणिकत्वे तु क्रमेण ज्ञानोत्पादकर्त्तृभावात् । नित्यक-
स्वभावस्य परापेक्षाप्यसम्भाव्या । प्रतिषिद्धा चैवं यथास्थानम्
इत्यलमतिप्रसङ्गेन ।

५ नापि तद्योगे सङ्केतः; तस्यापि समवायादिलक्षणस्य विर-
कृतत्वात् । जातितद्योगयोश्चासम्भवे तदतोऽप्यर्थस्यासम्भवा-
त्कथं तत्रापि सङ्केतः? बुद्ध्याकारे वा; स हि बुद्धिता-
दात्म्येन स्थितत्वात्त बुद्ध्यन्तरं प्रतिपाद्यमर्थं चातुंगच्छति ।

किञ्च, 'इतः शब्दादर्थक्रियार्थी पुरुषोऽर्थक्रियाक्षमानर्थान्वि-
१० ज्ञाय प्रवर्तिष्यते' इति मन्यमानैर्व्यवहर्तृभिरभिधायकं नियु-
ज्यन्ते न व्यसनिर्तया । न चासौ विकल्पबुद्ध्याकारोऽर्थिनो-
भिप्रेतं शीतापनोदादिकार्यं सम्पादयितुं समर्थः ।

किञ्च, बुद्ध्याकारे शब्दसङ्केताभ्युपगमेऽपोहर्वादिपक्ष एवा-
भ्युपगतो भवेत्; तथाहि-अपोहर्वादिनापि बुद्ध्याकारो बाह्यरूप-
१५ तथाध्यवसितः शब्दार्थोन्नीष्ट एव, अर्थविधेक्षां च कार्यतया
शब्दो गमयति यथा धूमोग्निमिति ।

अत्र प्रतिविधीयते । कृतसमया एव चैनयोऽर्थभिधायकाः ।
समयश्च सामान्यविशेषात्मकेऽर्थेऽभिधीयते न जात्यादिभिरेव ।

१ कृतः । २ जातेः । ३ गोत्वादिसामान्ये । ४ भवेत् । ५ अनुत्पत्तये ।
६ तस्या जातेः । ७ परं-निमित्तम् । ८ जातिः । ९ जातौ सङ्केतविराकरणसङ्केतः ।
१० पक्षान्तरम् । ११ तयोः स्वलक्षणनालोऽसम्भवे । १२ आदिना संयोगता-
दात्म्यादेश्च । १३ शब्देन । १४ अर्थस्य । १५ ज्ञानेति । १६ अतः केन साकं
सङ्केतः स्यात् । १७ विवक्षितत्वात् । १८ जैनमताभिप्रायं वक्ति सौगतः । १९ अर्थः=
प्रयोजनम् । २० शब्दाः । २१ कार्यं विना प्रवृत्तिर्नसन्नम् । २२ अर्थस्य ।
२३ पुरुषस्य । २४ अर्थप्रतिबिम्बरूपे । २५ जैनेन । २६ सौगतः । २७ जैनस्य ।
२८ सौगतेन । २९ ज्ञानात्मा बुद्ध्याकार एव बाह्यार्थो नापरः कश्चिद्विद्विप्रमयो
बौद्धविशेषस्य । ३० ज्ञानतरार्थस्य वक्तुमिच्छां ज्ञानस्वभावां शब्दस्य कारणभूतात् ।
३१ कार्यरूपः । ३२ ज्ञापयति । ३३ ज्ञानस्वभावा विवक्षा एव बाह्यार्थः शब्दविषयो
नापरः कश्चिद्विद्विप्रमयो बौद्धविशेषाभिप्रायः । अन्यापोहरूपो बुद्ध्याकाररूपो विवक्षारूप
एवं विविधः शब्दविषयो बौद्धमते इति शेषम् । ३४ कार्यम् । ३५ कारणम् ।
३६ परकृतपक्षे । ३७ शब्दाः । ३८ वाचकाः । ३९ तादात्म्यस्वरूपे । ४० परार्थे ।
४१ क्रियते । ४२ केवलायां जातौ केवले विशेषे वा नाभिधीयते ।

तथाभूतकार्यो वास्तवः सङ्केतव्यवहारकालव्यापकत्वेन प्रमाण-
सिद्धः 'सामान्यविशेषात्मा तदर्थः' [परीक्षामु० ४।१] इत्यत्राति-
विस्तरेण वर्णयिष्यते । सामान्यविशेषयोर्वस्तुभूतयोस्तत्सम्य-
न्धस्य चात्र प्रमाणतः प्रसाधयिष्यमाणत्वात् । न चाद्या-
प्यानन्त्याद्भ्रकीनां परस्पराननुगमाच्च सङ्केताऽसम्भवः; समाने-
परिणामापेक्षया क्षयोपशमविशेषाविर्भूतोहाख्यप्रमाणेन तासां
प्रतिभासमानतया सङ्केतविषयतोपपत्तेः, कथमन्यथानुमानप्र-
वृत्तिः तत्राप्यानन्त्याननुगमरूपतया साध्यसाधनव्यक्तीनां सम्य-
न्धग्रहणासम्भवात् ?

अन्यव्यावृत्त्यां सम्बन्धग्रहणम्; इत्यप्यसत्; तस्या एव सँदृशप-१०
रिणामसामान्यासम्भवे असम्भाव्यमौनत्वात् । न चाऽसदृशोऽप्य-
र्थेषु सामान्यविकल्पजनकेषु तद्दर्शनद्वारेण सदृशव्यवहारे हेतुत्व-
म्; नीलादिविशेषाणामप्यभावानुपपत्तात् । यथा हि परमार्थतोऽस-
दृशा अपि तथाभूतविकल्पोत्पादकदर्शनहेतवः सदृशव्यवहारमौ-
जोभावाः तथा स्वयमनीलादिस्वभावा अपि नीलादिविकल्पोत्पाद-१५
कदर्शननिमित्ततया नीलादिव्यवहारभाक्त्वं प्रतिपत्स्यन्ते । सँद-
शपरिणामाभावे च अर्थानां सजातीयैरेव्यवस्थाऽसम्भावात्कृतः
कस्य व्यावृत्तिः ? अन्यव्यावृत्त्या सम्बन्धवैवगमेपि चैतत्सर्वं
समौनम्-तत्रानन्त्याननुगमरूपत्वस्याऽविशेषात् । ततो 'ये यत्र
मौनतः कृतसमया न भवन्ति न ते तस्याभिधायकाः यथा २०

१ सङ्केतितायो नास्तीत्युक्ते आह । २ सङ्के । ३ जैनाचार्यैः । ४ प्रलङ्कारितः ।
५ व्यवहारकाले । ६ अस्य शब्दसायमर्थे इत्येवरीत्या । ७ सङ्दृश । ८ नै दे
विकालविलोकौदरवर्तिनः सालादिमन्तस्ते ते गोशब्देन वाच्या इत्येवम् । ९ कुतः ।
१० अनुमानव्यवहारकाले । ११ परस्पर । १२ असाध्यासाधनरूपेण । १३ अवि-
नाभावलक्षणम् । १४ या गोम्यक्तयस्ता गोशब्देन वाच्या इति । १५ पूर्वं निरादृश-
त्वात् । १६ खण्डादिषु । १७ सामान्यरूपभावात् विकल्पश्च । १८ अयमनेन सङ्दृश
इति विकल्पोऽयं गौरयं गौर्वेति विकल्पः । १९ विसङ्दृशार्थम् । २० प्रवीणि । २१ कुत्रेण ।
२२ क्वम् ? तथा हि । २३ खण्डमुण्डादयः पदार्थाः । २४ सन्तः । २५ रुजः ।
२६ लक्षणेण । २७ नीललक्षणभावाः । २८ विकल्पः=दानम् । २९ सामान्यम् ।
३० साक्षादिमत्त्वादिना । ३१ गोघटपटादीनाम् । ३२ विजातीयम् । ३३ वन्मात् ।
३४ साध्यसाधनव्यक्तीनाम् । ३५ किञ्च । ३६ सङ्केतपदो दाररेणोप्युक्ते ।
३७ अन्यव्यावृत्तिविषयकम् । ३८ अन्यव्यावृत्तयोऽनन्ता इत्येवम् । ३९ म्यःकृत्पितर-
गच्छते । ४० साध्यसाधनव्यक्तीनां सन्तन्भावगमो दया वस्तुनि दम्बस्त दङ्केदर-
धानमनि तथा साधतः । ४१ वस्तुनि । ४२ परनार्थतः ।

साक्षादिमत्यर्थेऽकृतसमयोऽशब्दः, न भवन्ति च भावतः
कृतसमयाः सर्वस्मिन्वस्तुनि सर्वे ध्वनयः' इत्यत्र प्रयोगेऽसिद्धौ
हेतुः; उक्तप्रकारेणार्थे ध्वनीनां समयसम्भवात् ।

यच्च हिमाचलादिभावानामप्यनेकपरमाणुप्रचयात्मनां क्षणिक-
५ त्वेन समयासम्भव इत्युक्तम्; तदप्युक्तिमात्रम्; सर्वथा क्षणिक-
त्वस्य बाह्याध्यात्मिकार्थे प्रतिषेत्स्यमानत्वात् । तथा चोत्पन्नेष्वप्य-
र्थेषु सङ्केतसम्भवात्, अयुक्तमुक्तम्—'उत्पन्नेष्वनुत्पन्नेषु वा सङ्केता-
सम्भवः' इत्यादि ।

ननु शब्देनार्थस्याभिधेयत्वे साक्षादेवातोर्थप्रतिपत्तेरिन्द्रिय-
१० संहतेर्वैफल्यप्रसङ्गः; तत्र; अतोऽर्थस्याऽस्पष्टाकारतया प्रतिपत्तेः,
स्पष्टाकारतया तत्प्रतिपत्त्यर्थमिन्द्रियसंहतिरप्युत्पद्यते एवेति
कथं तस्या वैफल्यम्? स्पष्टाऽस्पष्टाकारतयार्थप्रतिभासनेदं
सामग्रीमेदान्न विरुध्यते, दूरसन्नार्थोपनिबद्धेन्द्रियप्रतिभासवत् ।

अथाऽसत्यप्यर्थेऽतीतानागतादौ शब्दस्य प्रवृत्ति(त्ते)र्नास्यार्था-
१५ मिधायकत्वम्; तदसत्; तस्येदानीमभावेपि स्वकाले भावात्,
अन्यथैव प्रत्यक्षस्याप्यर्थविषयत्वाभावः स्यात् तद्विषयस्यापि
तत्कालेऽभावात् । अविसंवादस्तु प्रमाणान्तरप्रवृत्तिलक्षणोऽप्य-
क्षर्वैच्छान्देप्यनुभूयत एव । 'ओसीर्द्धिः' इत्याद्यतीतविषये वाक्ये
विशिष्टमस्मादिकार्यदर्शनोद्भूतानुमानेन संवादोपलब्धेः, चन्द्रार्क-
२० ग्रहणाद्यर्थागतार्थविषये तु प्रत्यक्षप्रमाणेनैव । किंचिद्विसंवादा-
त्सर्वत्र शब्दस्याऽप्रामाण्ये प्रत्यक्षस्यापि कचिद्विसंवादात्सर्वत्रा-
प्रामाण्यप्रसङ्गः । ततो निराकृतमेतत्—

“अन्यदेवेन्द्रियग्राह्यमन्यैच्छब्दस्य गोचरः ।

१ साक्षादिमदर्थमिधायको न भवति यतः । २ परकृते । ३ भावतोऽकृतसमय-
त्वादिति । ४ समानपरिणामापेक्षयेलादिना । ५ परेण । ६ षटादौ । ७ भानादौ ।
८ परेण । ९ प्रतिपाद्यत्वे । १० अन्यवधानेन । ११ भूयमाणच्छब्दात् ।
१२ चक्षुरादिसमूहस्य । १३ सक्तम् । १४ निवक्षिताच्छब्दात् । १५ षठे ।
१६ धर्मात् । १७ धर्मात्स्य । १८ स्पष्टाऽस्पष्टतया । १९ प्रकार्यत्वे । २० शब्दो-
च्चारणसमये । २१ अर्थस्थानमिधायकत्वे । २२ क्षणिकत्वात् । २३ प्रत्यक्षोत्पत्ति-
काले इव । २४ शाने । २५ कथम् । २६ इह प्रदेये । २७ किञ्चिदुष्णताकाण्ड-
वाक्तरवारीत्वनिक्षिप्त । २८ भविष्यत् । २९ वाक्ये । ३० शब्दप्रतिपाद्ये । ३१ जने ।
३२ अज्ञीक्रियमाणे परेण । ३३ अग्निविषयत्वेति शब्दप्रत्यक्षयोः प्रतिभासनेवो-
दकितो वतः । ३४ स्वच्छणम् । ३५ सामान्यम् ।

शब्दात्मत्वेति मित्राक्षो न तु प्रत्यक्षेमीक्षते ॥ १ ॥" []

"अन्यथैवाग्निस्वल्वाद्वाहं दग्धोभिमन्यते ।

अन्यथा दाहशब्देन दाहार्थः सम्प्रतीयते ॥"

[वाक्यप० २।४।२५] इत्यादि ।

सामग्रीभेदाद्विशदेतरप्रतिभासभेदो न पुनर्विषयभेदात्, सामा-५
न्यविशेषात्मकार्यविषयतया सकलप्रमाणानां तद्भेदाभावादिर्लक्ष्ये
वक्ष्यमाणत्वात् । ततो 'यो यत्कृते प्रत्यये न प्रतिभासते' इत्यादि-
प्रयोगे हेतुरसिद्धेः; सामान्यविशेषात्कार्यलक्षणस्वलक्षणस्य शाब्द-
प्रत्यये प्रतिभासनात् ।

प्रयोगः-यद्यत्र व्यवहृतिमुपजनयति तत्तद्विषयम् यथा सामान्य-१०
विशेषात्मके वस्तुनि व्यवहृतिमुपजनयत्येवमस्य तद्विषयम्, तत्र
व्यवहृतिमुपजनयति च शब्द इति । न चासिद्धो हेतुः; धिहरन्तश्च
शाब्दव्यवहारस्य तथाभूते वस्तुन्युपलम्भात् । भवैकल्पित-
स्वलक्षणस्य तु प्रत्यक्षेऽन्यत्र वा स्वमेव्यप्रतिभासनात् ।

प्रतिज्ञापदयोश्च व्याघातः; तथाहि- 'अन्यदेवेन्द्रियग्राह्यम्' १५
इत्यनेन शब्देन कश्चिदर्थोभिधीयते वा, न वा? नामिधीयते
चेत्; कयमिन्द्रियग्राह्यस्यान्यत्वेमतः प्रतीयते? अथाभिधीयतेर्थः;
तर्हि तस्यैव तद्विषयत्वप्रसिद्धेः कथञ्च शब्दस्यार्थगोचरत्वप्रति-
ज्ञाऽतो व्याहन्येत? सौक्षादिन्द्रियग्राह्यागोचरौऽसाविति चेत्;
पारम्पर्येणासौ तद्गोचरो भवति, न वा? यदि न भवति; तर्हि २०
'साक्षात्' इति विशेषणं व्यर्थम् । अथ भवति; तर्हि तज्ज्ञा(तज्ज्ञा)

१ कृतः । २ अर्थम् । ३ जानाति । ४ उत्पाटिताक्षः जम्ब इत्यर्थः । ५ क्रिया-
विशेषणमेवम् । ६ परोक्षं जानातीत्यर्थः । ७ अर्थम् । ८ स्वर्शनेन्द्रियग्राह्यताया ।
९ स्पष्टत्वेन । १० जानाति । ११ अस्पष्टत्वेन । १२ आसन्नदूरत्वादि ।
१३ सामान्यविशेषात्मकार्यो विषयो भवतीति साम्यः, शब्दो धर्मा । १४ वसः ।
१५ विषय । १६ चतुर्थाध्याये । १७ शब्दप्रत्ययेऽर्थप्रतिभासः सिद्धो यतः ।
१८ अनुमाने । १९ शब्दकृते प्रत्ययेऽप्रतिभासमानत्वात्स्वलक्षणस्येति । २० कृतः ।
२१ वसः । २२ शब्दज्ञाननित्तज्ञाने । २३ विकल्पज्ञानम् । २४ विकल्पम् ।
२५ नापनादि । २६ तत्र व्यवहृतिजनकत्वात् । २७ यथादौ । २८ आत्मादौ ।
२९ सोमत् । ३० अनुमानादौ । ३१ खरविषाणवत् । ३२ व्याघातमेव दर्शयति ।
३३ नौदमते शब्दः कश्चिदप्यर्थं न वक्ति तर्हि । ३४ अर्थस्य । ३५ भिन्नत्वम् ।
३६ अर्थोऽगोचरो यस्य । ३७ अन्यवधानेन । ३८ वसः । ३९ स्वलक्षणं प्रत्यक्षं
शुद्धम् । प्रत्यक्षाच्च विकल्पः (नीलमिदं पीतमिदमिति) । विकल्पाच्च शब्द उत्पद्यते ।
विकल्पयोनयः शब्दः प्रत्यक्षमिदमिति । ४० स गोचरो यस्य शब्दस्य । ४१ शब्द-
प्रत्ययेन्द्रियग्राह्यगोचरो भवति शब्दः ।

प्रतीतिः किमिन्द्रियजप्रतीतितुल्या, तद्विलक्षणा वा? यदि तत्तुल्या; तदा 'शब्दात्प्रत्येति विनैष्टाक्षो न तु प्रत्यक्षमीकते' इत्यनेन विरोधः। तद्विलक्षणा चेत्; न तर्हि प्रतीतिवैलक्षण्यं विषयमेदसाधनम्, एकत्रापि विषये तदभ्युपगमात्।

५ दाहशब्देन चात्र कोथोभिप्रेतः-किमग्निः, उष्णस्पर्शः, रूप-विशेषः, स्फोटः, तदुःखं वा? अस्तु यः कश्चित्, किमेभिर्विकल्पै-र्भवतां सिद्धमिति चेत्? एतेषां मध्ये योथोभिप्रेतो भवतां तेनार्थ-नार्थवत्त्वप्रसिद्धेः तस्यानर्थविषयत्वाभावः सिद्ध इति।

नैवेवं दहनसम्बन्धाद्यया स्फोटो दुःखं वा तथा दाहशब्दावपि
१० किन्न स्यादर्थप्रतीतिरविशेषात्? तन्न; अन्यकार्यत्वात्तस्य, न खलु दहनप्रतीतिकार्यं स्फोटादि। किं तर्हि? दहनदेहसम्बन्धविशेष-कार्यम्, सुषुप्ताद्यवस्थायामप्रतीतावपि अत्रेस्तत्सम्बन्धविशेषात् स्फोटादेर्वर्शनात्, दूरस्थस्य चक्षुषा प्रतीतावप्यदर्शनात्, मन्त्रादि-बलेन त्वगिन्द्रियेणापि प्रतीतीवप्यदर्शनात्। तस्मादभिप्रेपि
१५ विषये सामग्रीमेदाद्विशदेतरप्रतिभासमेदोऽभ्युपगन्तव्यः।

तैथा चेदमप्ययुक्तम्-'न चैकस्य वस्तुनो रूपद्वयमस्त्येकस्य द्वित्वविरोधात्' इति।

यदि चोभावोभिधीयते शब्दैर्भावो नामिधीयते इति क्रिया-प्रतिषेधोन्न किञ्चित्कृतं स्यात्। तथा च कथं नदीदेशद्वीपपर्वत-
२० स्वर्गापवर्गादिभ्वात्प्रणीतवाक्यात्प्रतिपत्तिः श्रेयःसाधनानुष्ठाने प्रवृत्तिर्वा? अन्यथा सर्वस्मादपि वाक्यात्सर्वत्रार्थे प्रतिपत्ति-प्रवृत्त्यादिर्भ्रंसकः।

१ सामान्यार्थं जानाति। २ अन्धो ना। ३ क्रियाविशेषणम्। चक्षुःप्रलक्षणे यादृशमीकते न तादृशमिति भावः। ४ अर्थम्। ५ शब्दजेन्द्रियजप्रतीतयोः समान-त्वात्। ६ दूरनिकटैकपादपादौ स्वलक्षणे। ७ परेण। ८ श्लोके। ९ सौगतरस्य तव। १० जैतानाम्। ११ पदार्थानाम्। १२ सौगतरानाम्। १३ शब्दस्य। १४ वेग-नेनार्थवत्त्वसिद्धिप्रकारेण। १५ बह्विदहनसम्बन्धादर्थप्रतीतिनिषेधे शब्दादप्यर्थप्रतीति-रिति। १६ दहनस्य। १७ स्फोटादिकस्य। १८ दूरपादपादौ। १९ दूरनिकटादि। २० परेण। अनेन कथनेन चैकस्य यथा स्वलक्षणस्य प्रलक्षणे स्पष्टतया प्रतिभासत्वं तथा शब्देनाप्यस्पष्टतया प्रतिभासत्वं जातमिति। २१ सामग्रीमेदात्प्रतिभासमेदे च। २२ नैस्यथावैश्वर्यम्। २३ अपोहः। २४ भावस्य। २५ तर्हि इति श्लेषः। २६ शब्दैः। २७ शब्दैर्न किञ्चित् वार्यं स्यात्। २८ शब्देन कस्याप्यकारणत्ववै-प्रतीतिरनुष्ठाने प्रवृत्तिश्च यदि। २९ अकृतत्वाविशेषात्।

सत्येतरव्यवस्थाभावश्च तत्त्वेतरप्रतिपत्तेरभावात् । तद्यथा
 'यत्सत्तत्सर्वमक्षणिकं क्षणिकं क्रमयोगपद्याभ्यामर्थक्रियाविरो-
 धात्' इत्यादेरिव 'यत्सत्तत्सर्वं क्षणिकं नित्ये क्रमयोगपद्याभ्या-
 मर्थक्रियानुपपत्तेः' इत्यादेरप्यसत्त्वानुबन्धः । विपर्ययप्रसङ्गो वा,
 सर्वथार्थासंस्पृशित्वाविशेषात् । कस्यचिदनुमानवाक्यस्य कैथ-^५
 द्विदर्थसंस्पृशित्वे सर्वथार्थस्यानभिधेयत्वविरोधः । स्वपक्षविपक्ष-
 योश्च सत्यासत्यत्वप्रदर्शनाय शास्त्रं प्रैणयन् वस्तु सर्वथाऽनभि-
 धेयं प्रतिजानाति इत्युपेक्षणीयप्रबन्धः, सर्वथाभिधेयरहितेन तेन
 तस्य प्रणेतुमशक्तेः ।

“शोकस्य सूचकं हेतुवचोऽशर्कमपि खैयम्” [प्रमाणवा० १०
 ४।१७] इत्यभिधानात् । तत्कृतां तत्त्वसिद्धिमुपैजीवति, नार्थस्य
 तद्वाच्यतामिति किमपि महद्भ्रतम् ! वस्तुदर्शनवंशप्रभवत्वाच्चे-
 तुवचो वस्तुसूचकम्; इत्यक्षणिकवादिनोपि समानम् । मह-
 चनमेवार्थदर्शनवंशप्रभवं न पुनः परवचनम्; इत्यन्यत्रापि
 समानम् ।

१५

सकलवचसां विवक्षामात्रविपयत्वाभ्युपगमाच्च, तावन्मात्र-
 सूचकत्वेन च शब्दस्य प्रामाण्ये सर्वं शाब्दविज्ञानं प्रमाणं स्यात्,
 प्रत्यागमैस्यापि प्रतिबोधमिप्रायप्रतिपादकत्वाविशेषात् ।

किञ्च, अर्थव्यभिचारवच्छब्दानां निवक्ष्णाव्यभिचारस्यापि दर्श-
 नात्कथं ते तामपि प्रतिपादयेयुः ? गोत्रैस्त्रलनादौ ह्यन्यनिवक्ष्णाया-^{२०}
 मप्यन्यैशब्दप्रयोगो दृश्यते एव । 'सुविचेचितं कौर्यं कौरणं न
 व्यभिचरति' इति नियमोऽर्थविशेषप्रतिपादकत्वेष्यस्याऽस्तु ।

न चास्य निवक्ष्णायास्तदधिकरूढार्थस्य वा प्रतिपादकत्वं युक्तम्;
 ततो वैहिरर्थे प्रतिपत्तिप्रवृत्तिप्राप्तिप्रतीतेः प्रत्यक्षवत् । यथैव हि

१ सत्येतरव्यवस्थाऽभावे च । २ पूर्वोक्तस्य सत्यत्वग्रहणोक्तसाप्तव्यत्मित्वस्यैः ।
 ३ अभिषयत्वं शब्दानां यतः । ४ सौगतीकस्य । ५ कथञ्चित्पारम्पर्येण । कथम् ।
 प्रथमतश्चिरुपपूर्मादिसलक्षणलिङ्गदर्शनं, तदनु सम्बन्धकारणं, तदनु शब्दप्रयोग
 इति । ६ सौगतेनाङ्गीक्रियमाणे । ७ द्विभागादिः । ८ सकलक्षणम् । ९ शब्देन ।
 १० शास्त्रान्तरेपि सलक्षणसूचकं वचोस्तीति वदति शक्यस्य समर्थस्य हेतोर्पूर्मादि-
 सलक्षणस्य वाच्यस्य । ११ साम्येऽस्यक्तमपि । १२ स्वरूपेण । १३ सौगतेन ।
 १४ वचनम् । १५ अङ्गीकरोति । १६ चिरुपपूर्मादिसलक्षणलिङ्गम् । १७ वक्षः-
 भन्वयः । १८ जैनस्य । १९ ज्ञानस्य । २० परवचनस्य । २१ जैनादिः । २२ गोत्र-
 नाम । २३ देवदत्त । २४ चिनदत्त । २५ शब्दलक्षणम् । २६ निवक्ष्णालक्षणम् ।
 २७ षट्पदादौ ।

प्रत्यक्षात्प्रतिपत्तृप्रणिधानंसामग्रीसापेक्षात्प्रत्यक्षार्थप्रतिपत्तिस्तथा
सङ्केतसामग्रीसापेक्षादेव शब्दाच्छब्दार्थप्रतिपत्तिः सकलजन-
प्रसिद्धा, अन्यथाऽतो बहिरर्थे प्रतिपत्त्यादिविरोधः । न चायंऽपि-
नोऽर्थित्वादेव प्रवृत्तेः शब्दोऽप्रवर्त्तकः, अच्यक्षादेरप्येवमप्रवर्त्त-
५ कत्वप्रसङ्गात् तदर्थेऽप्यभिलाषादेव प्रवृत्तिप्रसिद्धेः । परम्परया
प्रवर्त्तकत्वं शब्देष्वस्तु विशेषाभावात् ।

का चेयं विवक्षा नाम-किं शब्दोच्चारणेच्छामात्रम्, 'अनेन
शब्देनामुमर्थे प्रतिपादयामि' इत्यभिप्रायो वा? प्रथमपक्षे वक्तु-
श्रोत्रोः शास्त्रादौ प्रवृत्तिर्न स्यात् । न खलु कश्चिदनुमंतः शब्द-
१० निमित्तेच्छामात्रप्रतिपत्त्यर्थं शास्त्रं वाक्यान्तरं वा प्रणेतुं श्रोतुं
प्रवर्त्तते । दृशदाडिमादिवाक्यैः सह सर्ववाक्यानामविशेष-
प्रसङ्गश्च, सर्वेषां स्वप्रभवेच्छामात्रानुमार्पकत्वाविशेषात् । अथ
'अनेन शब्देनामुमर्थे प्रतिपादयामि' इत्यभिप्रायो विवक्षा,
तत्त्वकत्वेन शब्दानामनुमानत्वम्, तदप्ययुक्तम्, व्यभिचारात् ।
१५ न हि शुक्रशारिकोन्मत्तादयस्तथाभिप्रायेण वाक्यमुच्चारयन्ति ।

किञ्च, सैमयानपेक्षं वाक्यं तादृशमभिप्रायं गमयेत्, तत्सापेक्षं
वा? आद्यविकल्पे सर्वेषामर्थप्रतिपत्तिप्रसङ्गाच्च कश्चिद्भाषानभिन्नः
स्यात् । सैमयापेक्षस्तु शब्दोऽर्थमेव किं न गमयति? न ह्यय-
मर्थाद्विमेति येन तत्र साक्षात्त वचनं । यथाशक्यसमयत्वादिकैरेयं
२० शब्दाप्रवृत्तौ न्यायः, सोऽभिप्रायेषि समान इत्यभिप्रायावगमोपि
शब्दाच्च स्यात् । तत्र स्वलक्षणस्योभिधानेर्नानिर्देह्यत्वम् ।

किञ्च, तच्छब्देर्नोऽप्रतिपाद्याऽनिर्देह्यत्वमस्योच्येत, प्रतिपाद्य
वा? न तावदप्रतिपाद्यः अतिप्रसङ्गात् । प्रतिपाद्य चेत्, न;

१ प्रणिधानेन सामग्री । २ शब्दात् । ३ पुरुषस्य । ४ पुरुषस्य । ५ अभिलाषेव ।
६ प्रत्यक्षमभिलाषमुत्पादयति, अभिलाषाच्चायं प्रवृत्तिरिति । ७ प्रत्यक्षस्य । ८ शब्दोप्य-
भिलाषमुत्पादयति, अभिलाषात्प्रवृत्तिरिति । ९ परम्परया प्रवर्त्तकत्वस्य । १० धीमात् ।
११ शब्दस्य निमित्तं कारणं या सा, सा चासाविच्छा च सैवेच्छा यद्वैभूता यतः शब्दो-
च्चारः पुरुषस्य । १२ लेखां वाक्यानां प्रमथ उत्पत्तिर्यस्या इच्छायाः सा चासाविच्छा
चेति । १३ विवक्षा धर्मिणी अस्यास्तीति साध्यं शब्दोच्चारणान्यथानुपपत्तेरिति ।
१४ अस्त्वैवविभोभिप्रायोस्ति तदभिप्रायकशब्दोच्चारणादिति । १५ समयः=संकेतः ।
१६ सर्वतया । १७ अविज्ञेयतः । १८ कश्चिदेवादी । १९ सकलभाषात्मकशब्दमव-
णात् । २० द्वितीयविकल्पः । २१ अर्थानामानन्त्यात् । २२ अभिप्रायावगमनन्त्यात् ।
२३ शब्दप्रवृत्तौ । २४ अशक्यसमयत्वाविशेषात् । २५ सामान्यविशेषात्प्रत्यक्ष-
त्वस्य । २६ शब्देन । २७ स्वलक्षण्येति शब्देन । २८ षडादेरप्यनिर्देह्यत्वमप्रसङ्गात् ।

स्ववचनविरोधात् । शब्देन हि स्वलक्षणं प्रतिपादयता निर्देश्य-
त्वमस्याभ्युपगतं स्यात्, पुनश्च तवेव प्रतिषिद्धमिति । कथं चानि-
र्देश्यशब्देनाप्यस्यानभिधाने अनिर्देश्यत्वसिद्धिः ? भ्रान्तिमात्रात्
ततस्तत्सिद्धौ न परमार्थतस्तदनिर्देश्यमसाधारणं वा सिञ्चेत् ।
प्रत्यक्षात्तथाभूतस्यास्य प्रसिद्धिः; इत्यपि मनोरथमात्रम् । निर्देश्य ५
योग्यस्य साधारणासाधारणरूपस्य वस्तुनस्तेन साक्षात्करणात् ।
'वस्तुव्यतिरेकेण नापरा निर्देश्यता साधारणता वा प्रतिभाति'
इत्यसाधारणतायामपि समानम् । 'वस्तुस्वरूपमेव सा' इत्यन्यत्रापि
समानम् ।

किञ्च, निकल्पप्रतिभास्यऽन्यापोह्यगता वीच्यता वस्तुनि प्रति- १०
पिध्यते, वस्तुगता वा ? आद्यविकल्पे सिद्धसाध्यता । न ह्यन्या-
पोहवाच्यतैव वस्तुवाच्यता; तत्र प्रतिषेधविरोधात् । द्वितीयपक्षे
तु स्ववचनविरोध इत्युक्तम् । ततः प्रामाणिकत्वमात्मनोऽभ्युप-
गच्छता प्रतीतिसिद्धा वीच्यतार्थस्याभ्युपगन्तव्या ।

सैत्यम्; वीच्य एवार्थः । तद्वाचकस्तु पदादिसंज्ञोऽयं एव, न १५
पुनर्वर्णाः । तं हि किं सैमस्ताः, व्यस्ता वा तद्वाचकाः ? यदि व्यस्ताः;
तदैकेनैव घर्णेन गवाद्यर्थप्रतिपत्तिरुत्पादितेति द्वितीयोदिवर्णोच्चा-
रणमनर्थकम् । अथ समुदिताः; तत्र; क्रमोत्पन्नानामन्तरे विनष्टत्वेन
समुदायस्यैवासम्भवात् । न च युगपदुत्पन्नानां तेषां समुदाय-
कल्पना; एकपुरुषापेक्षया युगपदुत्पत्त्यसम्भवात्, प्रतिनियत- २०
स्थानकरणप्रयत्नप्रभङ्गत्वात्तेषाम् । न च भिन्नपुरुषप्रयुक्तगकारौ-
कारविसर्जनीयानां समुदायेऽप्यर्थप्रतिपादकं प्रतिपन्नम्; प्रति-
नियतवर्णक्रमप्रतिपत्त्युत्तरकालभावित्वेन शब्दप्रतिपत्तेः प्रति-
भासनात् ।

१ इति । २ इदं स्वलक्षणमनिर्देश्यमिति अकथने । ३ स्वलक्षणस्य । ४ निर्दि-
कल्पनात् । ५ शब्देन । ६ स्वलक्षणव्यतिरेकेण साधारणतापि पृथक् नो भातीति ।
७ निर्देश्यतायां साधारणतायां च । ८ वस्तुस्वरूपत्वम् । ९ बुद्धिः । १० शब्देन ।
११ स्वलक्षणे । १२ स्वलक्षणमनिर्देश्यमित्यनेनोच्छेदेन । १३ बुद्धिप्रतिबिम्बरूप-
स्यान्यापोह्यगतास्य (वाच्यत्वस्य) स्वलक्षणेऽस्मादिरपि प्रतिषेधान्भ्युपगमात् । १४ वस्तुनि
न्यापोहवाच्यता विषये चेन्न तर्हि प्रतिषेधः । कथमिति विरोधः । १५ शब्देन
हीलादि । १६ शब्देन । १७ लम्भावसरो भीमांसकोऽवतिष्ठते । १८ शब्देः ।
१९ वर्णोदिवान्निमित्त्यमानो नित्यो व्यापकः पदादीनामर्थः पदादिस्कोटः । २० तदेव
भावयति । २१ गौरिल्लभ गकारौकारविसर्जनीयाः गकारादिना । २२ हेतोः ।
२३ श्रीकारादिः । २४ उत्पत्तेः । २५ तास्वादि । २६ क्रिया ।

न चान्त्यो वर्णः पूर्ववर्णानुगृहीतो वर्णानां क्रमोत्पादे सत्यर्थ-
प्रतिपादकः; पूर्ववर्णानामन्त्यवर्णं प्रत्यनुग्राहकत्वायोगात् । तद्वि-
अन्त्यवर्णं प्रति जनकत्वं तेषां स्यात्, अर्थज्ञानोत्पत्तौ सह-
कारित्वं वा? न तावज्जनकत्वम्; वर्णाद्वर्णोत्पत्तेरभावात्, प्रति-
५ नियतस्थानकरणादिप्रभवत्वात्तस्य, वर्णाभावेऽप्याद्यवर्णोत्पत्त्युपल-
म्भाच्च । नाप्यर्थज्ञानोत्पत्तौ सहकारित्वं तेषामन्त्यवर्णानुग्राह-
कत्वम्; अविद्यमानानां सहकारित्वस्यैवासम्भवात् । यथा
चान्त्यवर्णं प्रति पूर्ववर्णाः सहकारित्वं न प्रतिपर्यन्ते तथा तज्ज-
नितसंवेदनान्यपि, तत्प्रभवसंस्कारार्थं ।

- १० क्रिश्च, संवेदनप्रभवसंस्काराः स्वोत्पादकविज्ञानविषयस्मृति-
हेतवो नार्थान्तेरे ज्ञानमुत्पादयितुं समर्थाः । न खलु घटज्ञान-
प्रभवः संस्कारः पटे स्मृतिं विदधद्दृष्टः । न च तत्संस्कारप्रभव-
स्मृतीनां तत्सहायता; तासां युगपदुत्पत्त्यभावात् । अयुगपदुत्प-
न्नानां चावस्थित्यसंभवात् । न चाखिलसंस्कारप्रभवैका स्मृतिः
१५ सम्भवति; अन्योन्यविरुद्धानैकार्थानुभवप्रभवसंस्काराणामप्येक-
स्मृतिजनकत्वप्रसङ्गात् । न चान्यवर्णाऽनपेक्ष एव 'गौः' इत्यना-
न्त्यो वर्णोर्थे(र्थं) प्रतिपादकः; पूर्ववर्णां चारणवैयर्थ्यानुषङ्गात् । घट-
शब्दान्त्यव्यवस्थितस्यापि ककुदादिर्मैदर्थ्यप्रतिपादकत्वप्रसङ्गाच्च ।
तत्र वर्णाः समस्ता व्यस्ता वार्थ्यप्रतिपादकाः सम्भवन्ति । भैस्ति
२० च गघादिशब्देभ्योऽर्थप्रतीतिः; तैदन्यथानुपपत्त्या वर्णव्यति-
रिक्तोऽर्थप्रतीतिहेतुः स्फोटोऽभ्युपगन्तव्यः ।

श्रोत्रविज्ञाने चासौ निरवैयवोऽक्रमः प्रतिभासते, श्रवण-
व्यापारानन्तरं भिन्नार्थावभासिन्याः संविदोऽनुभवात् । न चासौ
वर्णविषया; वर्णानां परस्परव्यावृत्तरूपतयैकप्रतिभासजनकत्व-
२५ विरोधात् । न चैयं सामान्यविषया; धैर्णत्वैव्यतिरेकेणापरसामा-

- १ विसर्जनीयलक्षणः । २ गकारोकारान्याम् । ३ वत्पत्र विनष्टत्वात्पूर्ववर्णानाम् ।
४ जायो गकारः । ५ असता पूर्ववर्णानाम् । ६ उत्पश्यन्तरं विनष्टत्वात् ।
७ (-पूर्ववर्णानां) धारणारूपाः । ८ अन्त्यवर्णप्रवणकाले प्राक्तनवर्णसंवेदनसंस्कारा-
भावात् । ९ पूर्ववर्णानाम् । १० पूर्णवर्णज्ञान । ११ पूर्ववर्णलक्षण । १२ बहिरर्थे
गवाद्यौ । १३ पूर्ववर्णस्मृतीनाम् । १४ प्राप्ततनप्राप्तनानां विनष्टत्वात् । १५ सर्व-
धामिका स्मृतिर्भविष्यतीत्युक्ते जाह । १६ अन्त्यवर्णसहाया । १७ घटपटककुट-
शकटादि । १८ अन्त्यवर्णापेक्षया अन्त्यवर्णोऽङ्गकारोकारौ । १९ विसर्जनीयस्य ।
२० गोरूप । २१ सा भवन्तिव्युक्ते जाह । २२ स्फोटं विना । २३ निरवयः ।
२४ अभिन्नः—पदः । २५ अर्थः स्फोटः सेच । २६ पदार्थेनावभासिन्याः ।
२७ अभिन्नरूप । २८ पदज्ञानध्वजक ।

न्यस्य गकारौकारविसर्जनीयेष्वसम्भवात्, वर्णत्वस्य च प्रति-
नियेताथप्रत्ययकत्वायोगात् । न चेयं भ्रान्ता; अबाध्यमानत्वात् ।
न चाबाध्यमानप्रत्ययगोचरस्यापि स्फोटस्यासत्त्वम्; अवयविर्द्ध-
व्यादेरप्यसत्त्वप्रसङ्गात् । नित्यश्चासौ स्फोटोऽभ्युपगन्तव्यः ।
अनित्यत्वे संज्ञेतकालानुभूतस्य तदैव ध्वस्तत्वात्कालान्तरे देशा-
न्तरे च गोशब्दश्रवणात्कुदादिमदर्थप्रतीतिर्न स्यात्, असङ्केति-
ताच्छब्दादर्थप्रतिपत्तेरसम्भवात् । सम्भवे वा द्वीपान्तरादागतस्य
गोशब्दाद्भवार्थप्रतिपत्तिः स्यात्, संज्ञेतकरणवैयर्थ्यं चासज्येत ।

अत्र प्रतिविधीयते । प्रतीयमानात्पूर्ववर्णेष्वसविशिष्टादन्यवर्णा-
दर्थप्रतीतेरभ्युपगमादुक्तदोषोभावः । न चाभावस्य सहकारित्वं १०
विरुद्धम्; वृत्तफलसंयोगाभावस्य अप्रतिबन्धित्वं फलप्रपातक्रि-
याजनने तद्दर्शनात्, दृष्टं चोत्तरसंयोगं कुर्वत्प्राक्नसंयोगाभाव-
विशिष्टं कर्म, परमाण्वग्निसंयोगश्च परमाणौ तद्गतपूर्वरूपप्रध्वं-
सविशिष्टो रक्ततामुत्पादयन्प्रतीतिः ।

यद्वा, पूर्ववर्णविज्ञानाभावविशिष्टः तज्ज्ञानजनितसंस्कारसव्य- १५
पेक्षो वाऽन्त्यो वर्णोऽर्थप्रतीत्युत्पादकः । ननु संस्कारस्य कथं
विषेयान्तरे विज्ञानजनकत्वम्; इत्यप्यचोद्यम्; तद्भावभावितयार्थ-
प्रतीतेरुपलब्धेः ।

पूर्ववर्णविज्ञानप्रभवसंस्कारश्च प्रौणालिकयाऽन्त्यवर्णसहायतां
प्रतिपद्यते; तथाहि-प्रथमवर्णे तावद्विज्ञानमै, तेन च संस्कारो २०
जन्यते । ततो द्वितीयवर्णविज्ञानम्, तेन च पूर्वज्ञानाहितसंस्कार-
सहितेन विशिष्टः संस्कारो जन्यते । एवं तृतीयादावपि योजनीयं
यावदन्यः संस्कारोऽर्थप्रतिपत्तिजनकान्यवर्णसंहायः ।

अथवा, शब्दार्थोपलब्धिनिमित्तक्षयोपशमप्रतिनियमादविनष्टौ
एव पूर्ववर्णसंविदस्तत्संस्कारौश्चाऽन्त्यवर्णसंस्कारं विदधति । २५

१ गवादेः । २ स्फोट एव प्रतिनियताथप्रत्यायको वतः । ३ अर्थः-नीलक्षणः,
तस्य, कुजुदादिप्रतीत्यस्य च । ४ (घटवाचकघटशब्दे)वकारादानपि वर्णत्वस्य सत्त्वात् ।
५ भोगप्रत्यक्षज्ञानेन । ६ प्रत्यक्षज्ञानगोचरस्य घटादेः । ७ स्फोटस्य । ८ स्फोटात् ।
९ गोरद्विषात् । १० तथा च । ११ श्रुयमाणात् । १२ वाक्यपक्षे वर्णस्थाने पदं
शब्दात् । १३ जैनैः । १४ पूर्ववर्णोच्चारणादिवैयर्थ्यलक्षण उक्तदोषः । १५ शाखादिना ।
१६ वतः । १७ तस्य कारणत्वस्य । १८ इयेनादेः । १९ गमनक्रिया । २० कृष्ण-
दिरूप । २१ घटादी । २२ पक्षेऽन्यपदम् । २३ पूर्ववर्णानाम् । २४ गोविण्डे ।
२५ प्रवाहेण । २६ पक्षे प्रथमपदे । २७ समुत्पद्यते । २८ समयविषयः, धारणाऽ-
परनामकः । २९ भवति । ३० द्रव्यत्वस्वरूपापेक्षया । ३१ ये अविनष्टाः ।

तथाभूतसंस्कारप्रभवस्मृतिसव्यपेक्षो वान्त्यो वर्णः पदार्थप्रति-
पत्तिहेतुः । वाक्यार्थप्रतिपत्तावप्ययमेव न्यायोऽङ्गीकर्त्तव्यः ।
वर्णाद्वर्णात्पत्यभावप्रतिपादनं च सिद्धसौघनमेव । तदेवं यथोक्त-
सहकारिकारणसव्यपेक्षादन्यवर्णादर्थप्रतिपत्तेरन्वयव्यतिरेकाभ्यां
५ निश्चयात् स्फोटपरिकल्पनाऽसम्भव एव; तदभावेऽप्यर्थप्रतिपत्ते-
रुक्तप्रकारेण सम्भवेऽन्यथानुपपत्तेः प्रक्षयात् । न खलु दृष्टादेव
कारणात्कार्योत्पत्तावदृष्टकारणान्तरपरिकल्पना युक्तिः स(क्ति)-
ज्ञता अतिप्रसङ्गात् ।

न चैवंवादिनो वर्णभ्यः स्फोटाभिव्यक्तिर्घटते; तथाहि-न सम-
१० स्तास्ते स्फोटमभिव्यञ्जयन्ति; उक्तप्रकारेण तेषां सामस्यासम्भ-
वात् । नापि प्रत्येकम्; वर्णान्तरोच्चारणानर्थक्यप्रसङ्गात्, एकैनैव
वर्णेन सर्वात्मनाऽस्याभिव्यक्तत्वात् । पदार्थान्तरप्रतिपत्तिव्यवच्छे-
दार्थं तदुच्चारणमिति चेत्; न; तदुच्चारणेपि तत्प्रतिपत्तेरेवानुष-
ङ्गात् । यथाहि 'गौः' इति पदस्यार्थो गौकारोच्चारणात्प्रतीयते तथौ-
१५ कारोच्चारणात् 'औशनसेः' इति पदार्थोपि, तथा च 'गौः' इति
पदादेव 'गौः, औशनसः' इत्यर्थद्वयं प्रतीयेत । संशयो वा स्यात्-
'किमेकपदस्फोटाभिव्यक्तये गाद्यनेकवर्णाच्चारणं पदान्तरस्फोट-
व्यवच्छेदेन, किं वानेकपदस्फोटाभिव्यक्तयेऽनेकाद्यवर्णाच्चारणम्'
इति ।

२० न च पूर्ववर्णैः स्फोटस्य संस्कारेऽन्त्यो वर्णस्तस्याभिव्यञ्जकः
इति न वर्णान्तरोच्चारणवैयर्थ्यम्; अभिव्यक्तिव्यतिरिक्तसंस्कार-
स्वरूपानवधारणात् । न खलु तत्र तैर्वैगाव्यः संस्कारो निर्वर्त्यते;
तस्य मूर्त्तैवैव भावात् । नापि वासनारूपः; अचेतनत्वात् ।
स्फोटस्य तच्चैतन्याभ्युपगमे वा स्वशैल्यविरोधः । नापि स्थित-

१ ततः संस्कारस्य सव्यपेक्षोऽन्यवर्णोऽर्थप्रतीतिजनक इति । २ परेण । ३ जेना-
नाम् । ४ उक्तप्रकारेण । ५ तात्वादि । ६ अन्यवर्णसङ्गावेऽर्थप्रतिपत्तिरुक्तभावेऽर्थ-
प्रतिपत्यभाव इत्येवम् । ७ स्फोटसङ्गावेऽर्थप्रतिपत्तिः स्फोटाभावे च तदभावे इति
स्फोटानुभाषिकायाः । ८ दृष्टाधिकारणाद्भूतो बलकार्यं स्यात् । ९ समस्तभ्यो व्यस्तभ्यो
वा वर्णभ्योऽर्थप्रतीतिनास्तीत्येवं वादिनः । १० गौरित्यत्र गाभिव्यक्तस्फोटप्रतिपत्तार्थ-
द्वोषक्षणादन्यपदाभिव्यक्तस्फोटप्रतिपत्तार्थोऽर्थान्तरम्, प्रकृत्यापदार्थादन्यः पदार्थः
पदार्थान्तरम् । ११ घटादिपदस्फोट । १२ पदार्थप्रतिपत्तिं दर्शयन्त्याचार्याः ।
१३ एकस्य गकारस्य । १४ उशनसि शब्दे भव औशनसः छुक्त इत्यर्थः ।
१५ कृत्वा । १६ हेतोः । १७ उत्तरवर्ण । १८ कथम्? तथा हि । १९ वर्णः ।
२० पदार्थेऽपि । २१ वासनावाञ्छेतनत्वात् । २२ मीमांसक ।

स्थापकः, अस्यापि मूर्च्छद्रव्यवृत्तित्वात्, स्फोटस्य चाऽमूर्च्छत्वाभ्युपगमात् ।

किञ्च, असौ संस्कारः स्फोटस्वरूपः, तद्धर्मो वा ? तत्राद्यविकल्पोऽयुक्तः; स्फोटस्य वर्णोत्पाद्यत्वानुषङ्गात् । द्वितीयविकल्पोऽसम्भाव्यः; व्यतिरिक्ताव्यतिरिक्तविकल्पानुपपत्तेः । स्फोटात्तस्याऽव्यतिरेके तत्करणे स्फोट एव कृतो भवेत्, तथा चास्याऽनित्यत्वानुषङ्गात् स्वाभ्युपगमविरोधः । ततस्तद्धर्मस्य व्यतिरेके स्रम्बन्धानुपपत्तिः तदनुपकारकत्वात् । तस्योपकाराभ्युपगमे व्यतिरिक्ताऽव्यतिरिक्तविकल्पानुषङ्गः, तत्रापि पूर्वोक्त एव दोषोऽनवस्थाकारि । न च व्यतिरिक्तैर्धर्मसङ्गादेषु स्फोटस्यानभिव्यक्तस्वरूपापरित्यागे १० पूर्ववदर्थप्रतिपत्तिहेतुत्वम् । तस्यागे चाऽनित्यत्वप्रसक्तिः ।

किञ्च, पूर्ववर्णैः संस्कारः स्फोटस्य क्रियमाणः किमेकदेशेन क्रियते, सर्वात्मना वा ? यद्येकदेशेन; तदा तद्देशानामप्यतोथान्तरानर्थान्तरपक्षयोः पूर्वोक्तदोषानुषङ्गः । सर्वात्मना तु संस्कारे सर्वत्र सर्वेषां ततोऽर्थप्रतिपत्तिः स्यात् । १५

किञ्च, स्फोटसंस्कारः स्फोटविषयसंवेदनोत्पादनम्, आवरणापनयनं वा ? यथावरणापनयनम्; तदैकैत्रैकदर्शवराणापगमे सर्वदेशावस्थितैः सर्वदा व्यापिनित्यतयोपलभ्येत, नित्यव्यापित्वाभ्यामपगतावरणस्यास्य सर्वत्र सर्वदोषलभ्यस्वभावत्वात् । अनुपलभ्यस्वभावत्वे वा न क्वचित्कदाचित्केनचिदप्युपलभ्येत । अथैक-२० देशेनैववरणापगमः क्रियते; नन्वेवमावृतानावृतत्वेन सावयवत्वमस्यानुषङ्ग्येत । अथाऽविनिर्भागत्वैर्देकज्ञानावृतः सर्वज्ञानावृतोऽभ्युपगम्यते; तर्हि तदैवस्योऽशेषदेशैर्वस्थितैरुपलब्धिप्रसङ्गः । यथा च निरवयवत्वादेकज्ञानावृतः सर्वज्ञानावृतः तथैकज्ञानावृतः सर्वज्ञाप्यावृत इति मैनागपि नोपलभ्येत । २५

१ सितस्थापकरूपकस्य । २ मीमांसकेन । ३ तथा च स्फोटनित्यत्वव्याघातः । ४ स्फोटेन सह । ५ स्फोटधर्मलक्षणसंस्कारेण स्फोटस्योपकारः क्रियते । ६ परेण । ७ स्फोटात् । ८ धर्मैः—संस्कारः । ९ संस्कारपूर्वं यथाऽकृतसंस्कारस्य स्फोटस्यार्थप्रतिपत्तिहेतुत्वं नास्ति । १० षट्ते । ११ अन्यथा । १२ स्फोटोऽनित्यः पूर्वाकारपरित्यागात् षटाकारपरिणतवृत्तिष्ववत् । १३ स्फोटस्य । १४ प्राणिनाम् । १५ व्यापकत्वमित्यत्वात् । १६ प्रतिपत्तुणाम् । १७ एकस्थानेक । १८ स्फोटकाळे । १९ नरेण । २० नित्यव्यापिनः सदैकस्वभावत्वात् । २१ न सर्वात्मना । २२ ततश्च निरवयवव्याघातः । स्फोटो न निरवयव आवृताऽनावृतदेशत्वात् । २३ निरवयवत्वात् । २४ मीमांसकेन । २५ पूर्ववत् । २६ नृभिः । २७ ईषत् । २८ स्फोटः ।

अथ स्फोटविषयसंवेदनोत्पादस्तात्संस्कारः; सोप्ययुक्तः; वर्णा-
नामर्थप्रतिपत्तिजननवत् स्फोटप्रतिपत्तिजननेपि सामर्थ्यासम्भ-
वौत्, न्यायस्य समानत्वात् ।

अथ मत्तम्-पूर्ववर्णश्रवणज्ञानाहितैसंस्कारस्यात्मनोऽन्यवर्ण-
श्रवणज्ञानानन्तरं पदादिस्फोटस्याभिव्यक्तेरयमदोषः; तदप्यसङ्ग-
तम्; पदार्थप्रतिपत्तेरप्येवं प्रसिद्धैः स्फोटपरिकल्पनार्थनक्यात् ।
चिदात्मव्यतिरेकेण तत्त्वान्तरस्यास्यार्थप्रकाशनसामर्थ्यासम्भवाच्च
स एव हि चिदात्मा विशिष्टशक्तिः स्फोटोऽस्तु । 'स्फुटति प्रकटी-
भवत्यर्थोऽसिन्' इति स्फोटश्चिदात्मा । पदार्थज्ञानावरणवीर्यान्त-
रायक्षयोपशमविशिष्टः पदस्फोटः । वाक्यार्थज्ञानावरणवीर्यान्त-
रायक्षयोपशमविशिष्टस्तु वाक्यस्फोटः इति । भावश्रुतज्ञानपरि-
णतस्यात्मनस्तथाभिधानाऽविरोधात् ।

वार्यवैः स्फोटाभिव्यक्तकाः; इत्यप्ययुक्तम् शब्दाभिव्यक्तिव-
त्स्फोटाभिव्यक्तेस्तैर्मयोऽनुपपत्तेः । तेषां च व्यञ्जकत्वे वर्णकल्पना-
वैफल्यम्, स्फोटाभिव्यक्तावर्थप्रतिपत्तौ चामीषामनुपयोगौत् ।
स्थिते च स्फोटस्य वर्णवायूत्पादात्पूर्वं सङ्गावे वर्णानां वायूनां वा
व्यञ्जकत्वं परिकल्प्येत । न चास्य सङ्गावः कुतश्चित्प्रमाणात्प्रति-
पन्नः । यच्चोक्तम्—

“नौदेनाऽहितवीजायौमन्ये(न्ये)न ध्वनिना सह ।

२० औघृत्तिपरिर्पेकायां धुञ्जौ शब्दोऽवभासते ॥”

[वाक्यप० १।८५] इति;

तदप्येतेर्नापाकृतम्; नित्यत्वमन्तरेणामपि चार्थप्रतिपत्तिर्यथा
भवति तथा प्रतिपादितमेव ।

१ प्रथमपक्षः । २ पुरुषं प्रति । ३ समस्ता व्यस्ता वा वर्णाः स्फोटप्रतिपत्ति
जनयन्तीत्यादिप्रकारेण । ४ मीमांसकस्य तव । ५ जनित । ६ पुरुषस्य । ७ तथा
च । ८ ज्ञान । ९ कथम् । तथा हि । १० हेतोः । ११ आत्मा । १२ भवति ।
१३ कथमिदानीं द्वैविध्यमस्य स्यादित्याशङ्क्यामाह । १४ वीर्यं शक्तिः । १५ आत्मा ।
१६ तथाभिधाने विरोधो भविष्यतीत्यत्राह । १७ वर्णां या भवन्तु किन्तु । १८ कुतः ।
१९ स्फोटस्य । २० उपकारमावाप । २१ सति । २२ पूर्ववर्णेन वायुना वा ।
२३ वीजः संस्कारः । २४ अन्यवर्णेन वायुना वा । २५ आघृत्तिः सामस्थेनो-
न्धारणम् । २६ पूर्णायाम् । २७ ज्ञाने । २८ स्फोटः । २९ वायुमन्यः स्फोटाभि-
व्यक्तिनिराकरणेन । ३० अनिलेभ्यो वर्णेभ्यः क्रयं स्यादर्थप्रतिपत्तिरित्युक्ते सत्याह ।
३१ पूर्वं वर्णविचारे ।

यच्च श्रवणव्यापारानन्तरमित्याद्युक्तम्; तदप्यसारम्; घटा-
विशब्देषु परस्परव्यावृत्तकालप्रत्यासत्तिविशिष्टवर्णव्यतिरेकेण
स्फोटात्मनोऽर्थप्रकाशकस्यैकस्याव्यक्षप्रतिपत्तिविषयत्वेनाप्रति-
भासनात् । न चाभिन्नप्रतिभासमात्रादभिन्नार्थव्यवस्था, अन्यथा
दूरदविरलानेकतरुषु एकप्रतिभासादेकत्वव्यवस्था स्यात् । न ५
चास्य र्वाप्यमानेत्वात्तत्त्वव्यवस्थापकत्वम्; स्फोटप्रतिभासेपि
बाध्यमानत्वस्य प्रदर्शितत्वात् । न खलु निरवयवोऽङ्गमो नित्य-
त्वादिघर्मोपेतोऽसौ कचिदपि प्रत्ययेऽवभासते ।

कथं चैवं शब्दस्फोटवद्गन्धादिस्फोटोप्यऽर्थप्रतीतिनिमित्तं न
स्यात् ? यथैव हि शब्दः कृतसङ्केतस्य कचिदर्थे प्रतिपत्तिहेतुस्तथा १०
गन्धादिरप्यविशेषात् । 'ध्वंविधमेकं गन्धं समाधाय स्पर्शं च
संस्पृश्य रसं चास्वाद्य रूपं चालोक्य त्वयैवंविधोर्थः प्रतिपत्तव्यः'
इति समयग्राहिणां पुनः क्वचित्तादृशगन्धाद्युपलम्भात् तथै-
विधार्षिनिर्णयप्रसिद्धो गन्धादिविशेषामिव्यङ्ग्यो गन्धादिस्फोटो-
ऽस्तु [वर्ण] विशेषामिव्यङ्ग्यपदादिस्फोटवत् । १५

ध्वंतेन हस्तपादकरणमात्रिकाङ्गद्वारादिस्फोटोप्यापादितो द्र-
ष्टव्यः । पदादिस्फोट एव, न तु सौवर्ण्यवक्रियाविशेषामिव्यङ्ग्यो
हंसपक्षमादिर्हस्तस्फोटः, विकुट्टितादिलक्षणः पादस्फोटः, हस्त-
पादसर्मायोगलक्षणः करणस्फोटः, करणद्वयरूपो मात्रिकास्फोटः,
मात्रिकासमूहलक्षणोऽङ्गद्वारस्फोटो वेति मनोरथमात्रम्; तस्यापि २०
स्वस्वावयवामिव्यङ्ग्यस्य स्वाभिनेयैर्यप्रतिपत्तिहेतोरशक्यनिराक-
रणत्वात् । तन्निराकरणे वा शब्दस्फोटाभिनिवेशो दूरतः परि-

१ परेण । २ मकारात् टकारो व्यावृत्त इत्यादिप्रकारेण । ३ पूर्वकणे मकारो-
च्चारणश्रुतचरणे टकारोच्चारणमिति । ४ यद्यपि घटादिशब्देषु परस्परव्यावृत्तकाल-
प्रत्यासत्तिविशिष्टवर्णव्यतिरेकेण स्फोटः प्रत्यक्षविषयत्वेन नावभासते तथापि अभिन्न-
प्रतिभासोक्तिः । ननु ततः स्फोटव्यवस्था भविष्यतीत्याशङ्क्यामाह । ५ शब्देषु
स्फोटस्य । ६ समीपं गते सति । ७ अनेकतरुप्रतीत्या । ८ स्फोटः । ९ अवयवेन्द्रिय-
विषयभूते शब्दे शब्दस्वार्थप्रतिपादकत्वाभावादर्थेप्रतिपत्त्यर्थं स्फोटकल्पने प्रायेन्द्रियादि-
विषयेषु गन्धादिषु तदर्थं चत्वारः स्फोटाः कल्पनीयास्तेषामपि तदभावादिति भावः ।
१० गन्धादिस्फोटनिराकरणद्वारेण शब्दादिस्फोटं निराकुर्वन्तीति भावः । ११ अस्य
शब्दस्वार्थमर्थ इति । १२ जातिकुलभादीनामभ्यादीनामात्मफलादीनां कामिन्यादीनां
च प्रतिपत्तिहेतुः । १३ अर्थे कृतसंकेतस्य । १४ गन्धादिस्फोटस्य कथं सङ्केत इत्या-
शङ्क्यामाह । १५ यथाविधः पूर्वं ह्यतः । १६ गन्धादिस्फोटापादनपरिण प्रत्येन ।
१७ नर्तनसमये नृत्यकारस्य । १८ अवयवाः=हस्तपादादयोऽङ्गस्यावयवम् । १९ विकु-
ट्टितं अमपम् । २० शुगपद्व्यापारः समायोगः । २१ अभिनेयः=अनुकरणम् ।

त्याज्यः आक्षेपसमाधानानामुभयत्र समानत्वात् । ततः शब्द-
स्फोटस्वरूपस्य विचार्यमाणस्यायोगान्नासौ पदार्थप्रतिपत्तिनि-
बन्धनं प्रेक्षादक्षैः प्रतिपत्तव्यम् । किन्तु पदं वाक्यं वा तन्नि-
बन्धनत्वेन प्रतिपत्तव्यम् ।

- ५ किं पुनः पदं वाक्यं वा यन्निबन्धनाऽर्थप्रतिपत्तिरित्यभिधीयते ?
वर्णानां परस्परापेक्षाणां निरपेक्षः समुदायः पदम् । पदानां तु
तदपेक्षाणां निरपेक्षैः समुदायो वाक्यमिति । नन्वेवं कथमिदं
साधनवाक्यं घटते—'यत्सत्त्वसर्वं परिणामि यथा घटः, संश्व शब्दः'
इति ? 'तस्मात्परिणामी' इत्याकाङ्क्षणोत्साकाङ्क्षस्य वाक्यत्वोक्तिः;
३० इत्यप्यचोद्यम्, कस्यचित्प्रतिपत्तुस्तदनाकाङ्क्षत्वोपपत्तेः । निराका-
ङ्क्षत्वं हि प्रतिपत्तुधर्मो वाक्येष्वभ्यारोप्यते, न पुनः शब्दधर्म-
स्तस्याचेतनत्वात् । स चेत्प्रतिपत्ता तैवतार्थं प्रत्येति, किमित्यप-
रमाकाङ्क्षत् ? पक्षधर्मोपसंहारपर्यन्तसाधनवाक्यादर्थप्रतिपत्ता-
वपि निगमनवचनापेक्षायाम् निगमनान्तपञ्चावयववाक्यादप्यर्थ-
३५ प्रतिपत्तौ परापेक्षाप्रसङ्गाच्च कंचिन्निराकाङ्क्षत्वसिद्धिः । तथा च
वाक्याभावाच्च वाक्यार्थप्रतिपत्तिः कस्यचित्स्यात् । ततो यत्सं
प्रतिपत्तुर्वावत्सु परस्परापेक्षेषु पदेषु समुदितेषु निराकाङ्क्षत्वं
तस्य तावत्सु वाक्यत्वसिद्धिरिति प्रतिपत्तव्यम् ।

पतेनं प्रकरणौदिगम्यैपदान्तरसापेक्षश्रूयमाणसमुदायस्य नि-

१ (जैनमतानुसूया) अवयवक्रियाभिनेयार्थन्यतिरेकेणान्यार्थस्य हस्तपादादिस्फोट-
लक्षणस्याप्रतिभासनलक्षण आक्षेपस्वादि वर्णार्थन्यतिरेकेणान्यस्य स्फोटलक्षणार्थस्याप्रति-
भासनमिति समाधानम् । ननु वर्णानामनिलत्वेनार्थप्रतिपत्तकत्वायोगात्स्फोट पदार्थ-
प्रतिपत्तिहेतुरित्यनुपगन्तव्यम् । तन्न; क्रियाया अप्यनित्यत्वेनाभिनेयार्थप्रतिपादकत्वा-
योगाद्दस्तादिस्फोटोऽभ्युपगन्तव्यः (मीमांसकेन) इति । २ पदादिस्फोटहस्तादि-
स्फोटयोः । ३ अत्रे सति । ४ जैनैः । ५ पदान्तरगतवर्णनिरपेक्षः । ६ परस्पर ।
७ वाक्यान्तरपदात् । ८ निरपेक्षस्य पदसमुदायस्य वाक्यत्वप्रकारेण । ९ साध्यसिद्धौ ।
१० जैनस्य तव । ११ सर्वं परिणामि सत्त्वादिति योज्यम् । १२ आकाङ्क्षणे वाच्यार्थं
जुतो न स्यादित्युक्ते सत्याह साकाङ्क्षेति । १३ जैनस्य । १४ भ्युपगन्तव्यस्य हि
प्रतिपत्तुस्तस्मात्परिणामीत्यत्राकाङ्क्षाक्षयस्तदपेक्षया तद्वार्यं भवत्युक्तवाक्यलक्षणसंज्ञायात्,
नान्यापेक्षया । १५ चेतन । १६ शब्दोऽचेतन इति वचनात् । १७ सामनवाक्य-
मात्रेण । १८ साध्यार्थम् । १९ तर्हीति शेषः । २० वाक्ये । २१ निराकाङ्क्ष-
स्तिग्मत्वात् च । २२ कविद । २३ वाक्याभावाद्वाच्यार्थप्रतिपत्तिर्नास्ति यतः ।
२४ अर्थप्रतिपत्तिमिच्छतः पुरुषस्य । २५ वाक्यसिद्धिप्रकारेण । २६ आदिना
सामर्थ्यम् । २७ तिष्ठतिभनतीत्यादि ।

राकाङ्क्षस्य सत्यभामादिपदैवद्वाक्यत्वं प्रतिपादितं प्रतिपत्तव्यम् ।

यच्चोच्यते—

“आख्यातेशब्दः संज्ञातो जातिः संघातवर्तिनी ।

एकोऽनवयवः शब्दः क्रमो बुद्ध्यऽनुसंहती ॥ १ ॥

पदमाद्यं पदं चान्त्यं पदं सापेक्षमित्यपि ।

वाक्यं प्रति मतिर्मिथा बहुधा न्यायवेदिनाम् ॥ २ ॥”

[वाक्यप० २।१-२]

इति; तदप्युक्तिमात्रम्; यस्मादाख्यातशब्दः पदान्तरनिरपेक्षः, सापेक्षो वा वाक्यं स्यात्? न तावदाद्यः पक्षः; पदान्तरनिरपेक्ष-स्यास्य पदत्वात् । अन्यथा आख्यातपदाभावः स्यात् । द्वितीयपक्षेऽपि १० कंचिन्निरपेक्षोऽसौ, न वा? प्रथमपक्षेऽसौ नैतत्प्रसङ्गः । द्वितीयपक्ष-स्त्वयुक्तः; पदान्तरसापेक्षस्याप्यस्य कंचिन्निरपेक्षत्वाभावे प्रकृ-तार्थापरिसमाप्त्या वाक्यत्वाऽयोगादेर्द्वाक्यवत् ।

संघातो वाक्यमित्यत्रापि देशकृतः, कालकृतो वा वर्णानां संघातः स्यात्? न तावदाद्यविकल्पो युक्तः; क्रमोत्पन्नप्रध्वंसिनां १५ तेषामेकस्मिन्देशेऽवस्थित्या संबन्धित्वासम्भवात् । द्वितीयविकल्पे तु पदरूपतामापन्नैभ्यो वर्णैभ्योऽसौ भिन्नः, अभिन्नो वा? न तावदभिन्नो नैतत्; तथाविधस्यास्याऽप्रतीतिः, संघातत्वविरोधाच्च वर्णान्तरवत् । अथ तेषांभ्योऽभिन्नोऽसौ, किं सर्वथा, कथञ्चिद्वा? सर्वथा चेत्; कथमसौ संघातः संबन्धितस्वरूपवत्? अन्यथा २० प्रतिवर्णं संघातप्रसङ्गः । न चैको वर्णः संघातो नैमातिप्रसङ्गात् । कथञ्चिच्चेत्; जैनमतप्रसङ्गः—परस्परापेक्षाऽनैकाङ्कपदरूपतापन्न-

१ प्रकरणादिगम्यपदान्तरादपरवाक्यान्तरपदस्य । २ पदसमुदायस्य प्रकरणादि-गम्यतिष्ठतीलादिपदान्तरसापेक्षस्य वाक्यत्वं यथा तद्वदत्रापि विचारणीयम् । ३ वाक्यस्य लक्षणान्तरम् । ४ भवतिगच्छतीलादिः । ५ वाक्यम् । ६ वर्णानाम् । ७ वर्णत्व-लक्षणा । ८ स्कोटः । ९ वर्णानाम् । १० अनुसंहतिः—परामर्शः । ११ आख्यात-शब्दस्य वाक्यत्वे । १२ वाक्यान्तरे । १३ जैन । १४ असत्सुक्तत्वेन वाक्यलक्षणसे-च्छ्यान्त्युपपत्त्यात् । १५ निरपेक्षत्वात् । १६ पदान्तरे । १७ देवदत्त गामिलादिवत् । १८ पक्षे । १९ पदानां वा । २० वाक्यम् । २१ सकृत् । २२ खपुस्तके ‘नंश’ इति पाठो जास्तेव । पदेभ्यो भिन्न इत्यर्थः । २३ एकस्य वर्णस्य संघातत्वं विरुद्धं यथा । २४ वर्णः । २५ संघातः सर्वथा संवातिभ्यो वर्णैभ्योऽभिन्नोऽपि यदि स्यात्तर्हि । २६ अस्तु इत्युक्ते सत्यात् । २७ पदार्थम्यत्रापि जातित्वप्रसङ्गात् । २८ एकस्मिन्वर्णे निवर्तमाने (वर्णसमूहाद्ये सति) संघातो न निवर्तते इति भिन्नः । वर्णैभ्यो (पक्षे पदेभ्यः) नैदेनानुपलभ्यमानत्वादभिन्नः (संघातः) इति । २९ वाक्यान्तरपदेभ्यः ।

वर्णानां कालप्रत्यासत्तिरूपसंघातस्य कथञ्चिद्दर्शनेभ्योऽभिन्नस्य
जैनोक्तवाक्यलक्षणानतिक्रमात् । साकाङ्क्षान्योन्यानपेक्षाणां तु तेषां
वाक्यत्वे प्राक्प्रतिपादितदोषानुषङ्गः ।

यैतेन जातिः संघातवर्तिनी वाक्यम्, इत्यपि नोत्सृष्टम्; नि-
५ राकाङ्क्षान्योन्यापेक्षपदसंघातवर्तिन्याः सदृशपरिणामलक्षणायाः
कथञ्चिद्वर्तितोऽभिन्नाया जातेर्वाक्यत्वघटनात्, अन्यथा संघातप-
क्षोक्तशेषदोषानुषङ्गः ।

एकोनवर्षवः शब्दो वाक्यम्, इत्येतसु मनोरथमाश्रमः, तस्या-
प्रामाणिकत्वात्, स्फोटस्यार्थप्रतिपादकत्वेन प्रागेव प्रतिविहि-
१० तत्वात् ।

कर्मो वाक्यमित्येतसु संघातवाक्यपक्षाभातिशेते इति तद्दो-
षेणैव तद्गुह्यं द्रष्टव्यम् ।

बुद्धिर्वाक्यमित्यत्रापि भाववाक्यम्, द्रव्यवाक्यं वा सा स्यात् ?
प्रथमप्रकल्पनार्या सिद्धसाध्यता, पूर्वपूर्ववर्णानाहितसंस्कारस्या-
१५ त्मनो वाक्यार्थग्रहणपरिणतस्यान्यवर्णश्रवणाऽनन्तरं वाक्यार्थाव-
बोधहेतोर्बुद्ध्यात्मनो भाववाक्यस्याऽसौभिरभीष्टत्वात् । द्रव्यवा-
क्यरूपतां तु बुद्धेः कञ्चेतनः श्रद्धधीत प्रतीतिविरोधात् ?

यतेनानुसंहतिर्वाक्यम्, इत्यपि चिन्तितम्; यथोक्तपदानुसं-
२० ह्तिरूपस्य चेतसि परिस्फुरतो भाववाक्यस्य परामर्शात्मनोऽ-
मीष्टत्वात् ।

‘अर्थान् पदमन्त्यमन्यद्वा पदान्तरापेक्षं वाक्यम्’ इत्यपि नोक्तवै-
क्याद्भिद्यते, परस्परापेक्षपदसमुदायस्य निराकाङ्क्षस्य वाक्यत्व-
प्रसिद्धेः, अन्यथो पदासिद्धेरभावानुषङ्गः स्यात् ।

- १ पदानां परस्परपेक्षाणां निरपेक्षः समुदायो वाक्यमिति । २ वाक्यान्तरपदेभ्यः ।
३ संघातो वाक्यमित्येतन्निराकरणपरेण अन्येन । ४ सर्वेषु वर्णेषु वर्णत्वलक्षणा ।
५ श्रोत्रग्राह्यत्वेन तात्वादिभ्यापारबनितत्वेन वा, न सर्वथा । ६ पदेभ्यो वर्णमन्यम् ।
७ प्रतिवर्णं वाक्यत्वप्रसङ्गरूपः । ८ निरशः । ९ स्फोटः । १० एको वर्णः सम-
त्पद्यते पश्चात्त्रितीयः ततस्तृतीय इत्यादिप्रकारेण वर्णानां क्रमः । ११ वर्णानात् -
१२ पक्षे । १३ जैनेः । १४ अचेतनत्वाद्वाक्यानां चेतनत्वाद्बुद्धेः । १५ बुद्धि-
र्वाक्यमित्येतन्निराकरणपरेण अन्येन । १६ पदरूपतामापन्नानां वर्णानां परामर्शानु-
संहतिः । १७ प्रतिभासमानस्य । १८ ‘देवदत्तः’ इति । १९ ‘गच्छति’ इति ।
२० परस्परपेक्षादि इत्यसात् । २१ परस्परपेक्षारहितं पदं यदि वाक्यम् ।
२२ सर्वस्य पदस्य वाक्यत्वात् ।

अन्ये मन्यन्ते—‘पदान्येषु पदार्थप्रतिपादनपूर्वकं वाक्यार्थावबोधं विदधानानि वाक्यव्यपदेशं प्रतिपद्यन्ते ।

“पदार्थानां तु मूलत्वमिदं तद्भाषनावर्तः ।”

[मी० श्लो० वाक्या० श्लो० १११]

“पदार्थपूर्वकस्तस्याद्वाक्यार्थोयमवस्थितः ।”

[मी० श्लो० वाक्या० श्लो० ३३६]

इत्यभिधानात्, तेप्यन्धसंपविलप्रवेशन्यायेनोक्तं वाक्यलक्षणमे-
वानुसरन्ति; स्यून्यापेक्षानाकाङ्क्षाक्षरपदसमुदायस्य वाक्यत्वेन
तैरप्यभ्युपगमात् ।

यदि च पदान्तरार्थैरन्वितानां भेदार्थानां पदैरभिधानात्पदार्थ-१०
प्रतिपत्तेर्वाक्यार्थप्रतिपत्तिः स्यात्; तदा देवदत्तपदेनैव देवदत्ता-
र्थस्य गामभ्याजेत्यादिपदवाक्यार्थैरन्वितस्याभिधानाच्छेषपदो-
च्चारणवैयर्थ्यम् । प्रथमपदैस्यैव च वाक्यरूपताप्रसङ्गः । यावन्ति
वा पदानि तावतां वाक्यत्वं यावन्तश्च पदार्थास्तावतां वाक्यार्-
थत्वं स्यात् । अविश्वितपदार्थव्यवच्छेदार्थत्वाच्च ‘गाम्’ इत्यादि-१५
पदोच्चारणवैयर्थ्यम्; इत्यत्राप्याहुंत्या वाक्यार्थप्रतिपत्तिः स्यात्-
प्रथमपदेनाभिहितस्य द्वितीयादिपदाभिधेयैरन्वितस्यार्थस्य द्विती-
यादिपदैः पुनः पुनः प्रतिपादनौत् ।

अथ द्वितीयादिपदैः स्वार्थस्य प्रधानभावेन पूर्वोत्तरपदाभिधे-
यार्थैरन्वितस्याभिधानं नौत्पदेन अतोयमदोषः; तर्हि यावन्ति २०
पदानि तावन्तस्तदर्थः पदान्तराभिधेयार्थान्विताः प्राधान्येन
प्रतिपत्तव्या इति तावत्यो वाक्यार्थप्रतिपत्तयः कथं न स्युः ?

१ मद्गामाकारः । २ अवयवार्थप्रतिपत्तिपूर्वकत्वाद्वाक्यार्थप्रतिपत्तेः । ३ कारणत्वं
वाक्यार्थं प्रति । ४ वाक्यार्थस्य । ५ पिपीलिकासुपद्रवमयाद्रिकपरित्वागे अमिता पुनरपि
समैव प्रवेशो तथा तथाभिच्छया स्त्रीकारोन्वसर्पविक्रमवेश्चन्यायः । ६ वैकोक्त ।
७ वाक्यविचारानन्तरं वाक्यार्थं विचारयन्नाह । ८ गामित्यादिपदान्तरार्थः ।
९ सम्प्रदानाम् । १० देवदत्तलक्षणयोर्गामित्यादिपदार्थैरन्वितो गामित्यादिपदार्थाच्च
पूर्वोत्तरपदार्थैरन्विता मवन्ति । ११ सर्वथा । १२ केवलैर्देवदत्तादिकैः । १३ एकेन ।
१४ गामभ्याजं श्रुत्वा दण्डेनेति । १५ पूर्वपदार्थस्योत्तरपदार्थैः सर्वथान्वितत्वात् ।
१६ तथा च । १७ देवदत्तेति । १८ विश्वित्वात् देवदत्त इत्युक्ते गामभ्याजं श्रुत्वा
दण्डेनेत्यादिपदार्थादविश्वितो देवदत्तेत्युक्ते पठ गच्छ याहि भिनेत्यादि पदार्थः तस्य
अवच्छेदावैत्यात् । १९ पुनः पुनः मद्गतिरावृत्तिः । २० एकस्यैवार्थस्य । २१ देव-
दत्तपदापेक्षया गामभ्याजं श्रुत्वा दण्डेनेति पदैः । २२ द्वितीयादिपदार्थस्याभिधानं
प्रधानभावेन । २३ न द्वितीयादिपदार्थस्याभिधानं प्रधानभावेन यतः ।

न ह्यन्त्यपदोच्चारणात्तदर्थस्याशेषपूर्वपदाभिधेयैरन्वितस्य प्रति-
पत्तेर्वाक्यार्थावबोधो भवति, न पुनः प्रथमपदोच्चारणात् तदर्थ-
स्यावान्तरपदाभिधेयैरन्वितस्य, द्वितीयादिपदोच्चारणात्तदशेषप-
दाभिधेयैरन्वितस्य तदर्थस्य प्रतिपत्तेरित्यत्र निमित्तमुत्प्रेक्ष्यामः ।

५ अथ 'गम्यमानैस्तैस्तस्यान्वितत्वम् न पुनरभिधीयमानैः तेना-
यमदोषः; किमिदानीमभिधीयमान एव पदस्यार्थः? तथोपगमे
कथमन्विताभिधानम्-विचक्षितपदस्य गम्यमानपदान्तराभिधेया-
र्थानामविषयत्वात्?

अथ पदानां द्वौ व्यापारौ—स्वार्थाभिधानव्यापारः, पदान्तरार्थ-
१० गमकत्वव्यापारश्च । कथमेवं पदार्थप्रतिपत्तिरावृत्त्यां न स्यात्?
पदव्यापारात्प्रतीयमानस्यैव गम्यमानस्यापि पदार्थत्वात् । न च
पदव्यापारात्प्रतीयमानत्वाविशेषेपि कश्चिदभिधीयमानः कश्चि-
द्गम्यमान इति विभागो युक्तः ।

ननु पदप्रयोगः प्रेक्षावता पदार्थप्रतिपत्त्यर्थः, वाक्यार्थप्रति-
१५ पत्त्यर्थो वाभिधीयेत? न तावत्पदार्थप्रतिपत्त्यर्थः; अस्य प्रवृत्त्य-
हेतुत्वात् । अथ वाक्यार्थप्रतिपत्त्यर्थः; तदा पदप्रयोगानन्तरं
पदार्थं प्रतिपत्तिः साक्षाद्भवतीति तत्र पदस्याभिधानव्यापारः
पदार्थान्तरं तु गमकत्वव्यापारः; तदप्यसाम्प्रतम्; 'वृक्षः' इति
पदप्रयोगे शाखादिमदर्थस्यैव प्रतिपत्तेः । तदर्थान्तरं प्रतिपन्नत्वात्
२० 'तिष्ठति' इत्यादिपदवाच्यस्य स्थानाद्यर्थस्य सामर्थ्यतः प्रतीतेः,
तत्र पदस्य साक्षाद्वापाराभावतो गमकत्वायोगात् तदर्थस्यैव

१ उक्तमेव समर्थयन्ति । सर्वेभ्यः पदेभ्यो वाक्यार्थावबोधो, भवतीति परस्माभि-
प्रायं मनसि घृत्वा वक्ति जैनः । २ दण्डेनेति । ३ प्रकृतादुच्चार्यमाणत्वात्पदान्तरपदं
पदान्तरम् । ४ प्रतिपत्तेर्वाक्यार्थावबोधो, न पुनरिति । प्राक्तनं न पुनरिति पदमत्र
सम्बन्धनीयम् । ५ वाक्यार्थावबोधो, न पुनरिति सम्बन्धः । ६ एवं जैनाः ।
७ पदान्तराभिधेयैरन्वितत्वे आहृत्या वाक्यार्थप्रतिपत्तिरुपलक्षणदोषो जायते तत्रिरासार्थं
पदान्तरार्थानां गम्यमानाभिधेयमानौ द्वावर्थानिति परो वदति । ८ पदान्तरैर्वागमा-
नैर्गोचरीकृतैरित्यर्थः । ९ उच्चार्यमाणपदार्थस्य । १० उच्यमानैर्द्वितीयादिपदार्थः ।
११ आक्षेपः । १२ एवं प्रतिपादनसमये । १३ ज्ञायमानो न भवति । १४ परेणाक्षि-
कृते सति । १५ पूर्वपदार्थं उत्तरपदार्थैरन्वित इति । १६ देवदत्तादेः । १७ गामि-
त्वादि । १८ द्वितीयादि । १९ सति । २० पुनः पुनः । २१ केवलं देवदत्तपदार्थस्य
केवलमस्यावेति पदार्थस्य चेति । २२ प्रयोगनार्थिनां पुंसां प्रवृत्तिहेतुर्न भवति ।
नहि गौरिति शब्दअवगात्प्रवृत्तिर्निवृत्तिर्वा घटते । २३ पदप्रयोगः । २४ गम्ये ।
२५ तत्तद्वान्वितत्वमेव शब्दार्थः । २६ वृक्ष इत्यादेः । २७ वृक्षपदार्थस्य ।

तद्गमकत्वात् । परम्परया तत्रास्य व्यापारे लिङ्गवचनस्य लिङ्गि-
प्रतिपत्तौ व्यापारोऽस्तु, तथा च शाब्दमेवातुमानज्ञानं स्यात् ।
लिङ्गवाचकाच्छब्दाल्लिङ्गस्य प्रतिपत्तेः सैव शाब्दी, न पुनस्तत्प्रति-
पत्तिलिङ्गाल्लिङ्गिप्रतिपत्तिरतिप्रसङ्गात्, तर्हि वृक्षशब्दात्स्थानाद्यर्थ-
प्रतिपत्तिर्मवन्ती शाब्दी मा भूत्तत एव, अस्य सैवार्थप्रतिपत्तावेव
पर्यवसितत्वाल्लिङ्गशब्दवत् ।

किञ्च, विशेष्यपदं विशेष्यं विशेषणसामान्येनान्वितम्,
विशेषणविशेषेण वाऽभिघत्ते, तदुभयेन वा ? प्रथमपक्षे विशिष्ट-
वाक्यार्थप्रतिपत्तिविरोधः । द्वितीयपक्षे तु निश्चयासम्भवा-
प्रतिनियतविशेषणस्य शब्देनानिर्दिष्टस्य स्वोक्तविशेष्येऽन्वैयसं-
शङ्कितेः, विशेषणान्तराणामपि सम्भवात् । वक्तुरभिप्रायात्प्रति-
नियतविशेषणस्य तत्रान्वयश्चेत्, न; यं प्रति शब्दोच्चारणं तस्य
वक्तृभिप्रायाऽप्रत्यक्षतस्तदनिर्णयप्रसङ्गात्, आत्मानमेव प्रति वक्तुः
शब्दोच्चारणार्थक्यात् । तृतीयपक्षे तु उभयदोषानुपहङ्गः ।

एतेन क्रियासामान्येन क्रियाविशेषेण तदुभयेन वान्वितस्य
साधनस्य, साधनसामान्येन साधनविशेषेण तदुभयेन वान्वि-
तार्थैः प्रतिपादनमाख्यातेन प्रत्याख्यातम् ।

यदि च पदात्पदार्थे उत्पन्नं ज्ञानं वाक्यार्थाध्यवसायि स्यात्;
तर्हि चक्षुरादिप्रभवं रूपादिज्ञानं गन्धाध्यवसायि किञ्च स्यात् ?
अथास्य गन्धादिसाक्षात्कारित्वाभावाभावाद्यं दोषः; तर्हि पदोत्थ-
पदार्थज्ञानस्यापि वाक्यार्थाद्यभासित्वाभावात्कथं तदध्यवसायित्वं

१ सामर्थ्यात् । २ वृक्षशब्दाच्छाखादिमदर्थप्रतिपत्तिस्तस्याः सक्ताशात्स्थानाद्यर्थ-
प्रतिपत्तिरिति परम्परा । ३ वृक्षपदस्य । ४ परेणाङ्गीकृते सति । ५ वृक्षवचनस्य ।
६ लिङ्गी-मसि । ७ किंतु न लिङ्गप्रभवम् । ८ शाब्दी । ९ प्रत्यक्षप्रतीतिरिन्द्रिया-
दुत्पन्नमाना शाब्दी स्यात् । १० वृक्षशब्दस्य शाखादिमलयैः साक्षाद्यापार- स्थानाद्यर्थे तु
परम्परयेति । ११ शाखादिमदर्थे । १२ यथा लिङ्गवाचकः शब्दो धूमप्रतिपत्तौ
पर्यवसितः सन्नभिगमको न भवति, धूमस्यैव गमकस्तथा वृक्षशब्दः शाखादिमदर्थस्य
वाचको भवति, न पदार्थान्तरगमकः । १३ अन्विताभिधानपक्षे दूषणमाह ।
१४ गामिति कर्तुं । १५ गोलक्षणम् । १६ शुक्रेति । १७ प्रतिनियतविशेषविशिष्ट ।
१८ शुक्रेति शब्देन । १९ गामिति शब्देन । २० साक्षादिमदर्थे गोपिण्डे ।
२१ वा गौः सा किं शुक्रेन विशिष्टा कृष्णेन नेति । २२ कृष्णादीनाम् । २३ शब्दे-
नानिर्दिष्टत्वाविशेषात् । २४ गामित्यादिकारकपदस्य क्रियाकाङ्क्षित्वे विकल्पत्रयम् ।
२५ अन्यत्वेत्यादिक्रियापदस्य कारकपदाकाङ्क्षित्वे विकल्पत्रयम् ।

स्यात् ? चक्षुरादेर्गन्धादाविव पदस्य वाक्यार्थसम्बन्धानवधारणतः सामर्थ्यानुपपत्तेः । तन्त्रान्विताभिधानं श्रेयः ।

नाप्यभिहितान्वयैः; यतोऽभिहिताः पदैरर्थाः शब्दान्तरादन्वीयन्ते, बुद्ध्या वा ? न तावदाद्यः पक्षः; शब्दान्तरस्याशेषपदार्थ-
५ विषयस्याभिहितान्वयनिबन्धनस्याभावात् । द्वितीयपक्षे तु बुद्धि-
रेव वाक्यं ततो वाक्यार्थप्रतिपत्तेः; न पुनः पदान्येवं । ननु पदा-
र्थेभ्योऽपेक्षातुद्धिसन्निधानात्परस्परमन्वितेभ्यो वाक्यार्थप्रति-
पत्तेः परस्परया पदैभ्य एव भावान्नातो व्यतिरिक्तं वाक्यम्; तर्हि
प्रकृत्यादिव्यतिरिक्तं पदमपि मा भूत्, प्रकृत्यादीनामन्वितानामि-
१० मिधाने अभिहितानां वान्वये पदार्थप्रतिपत्तिप्रसिद्धेः ।

ननु 'पदमेव लोके वेदे वार्थप्रतिपत्तये प्रयोगार्हम् न तु केवल
प्रकृतिः प्रत्ययो वा, पदादपोद्धृत्य तद्भ्युत्पादनार्थं यथाकथञ्चि-
त्तदभिधानात् । तदुक्तम्—“अर्थं गौरित्यत्र कः शब्दः ? गकारौ-
कारविसर्जनीया इति भगवानुपैवर्षः” [शाबरभा० १।१।५]
१५ इति । यथैव हि वर्णोऽनंशः प्रकल्पितमात्रोमेदेस्तथा 'गौः' इति
पदमप्यनंशमपोद्धृताकारादिमेदं सौर्यप्रतिपत्तिनिमित्तमवसी-
यते । इत्यप्यनालोचिताभिधानम्; वाक्यस्यैवं तात्त्विकत्वप्रसिद्धेः,
तद्भ्युत्पादनार्थं ततोऽपोद्धृत्य पदानामुपदेशाद्वाक्यस्यैव लोके
शास्त्रे वार्थप्रतिपत्तये प्रयोगार्हत्वात् । तदुक्तम्—

२० “द्विधा कैश्चित्पदं भिन्नं चतुर्धा पञ्चैघामि वा ।
भौपोद्धृत्यैव वाक्येभ्यः प्रकृतिप्रत्ययादिवत् ॥”

[इति ।]

१ वाच्यवाचकलक्षण । २ पदार्थान्तरैरन्विता अर्था इति । ३ इति प्रमाकरसर्व
निरस भाद्रमतनिरासार्थमाह । ४ वाक्यार्थः । ५ देवदत्तादिकैः । ६ पकेन
शब्दान्तरेण । ७ परस्परं सम्बन्धन्ते । ८ पकेन पदान्तरेण सर्वेषां पदार्थो ज्ञातो
अवेत्तदा तेन कृत्वा सम्बन्धप्रतिपत्तिर्यतः । ९ पदपरिचयान् । १० वाक्यम् ।
११ वसः । १२ आदिपदेन प्रत्ययधात्वादिग्रहणम् । १३ परस्परं सम्बन्धानाम् ।
१४ क्रियाकारकरूपे विज्ञेयविज्ञेय्यरूपे च । १५ पृथक्त्वम् । १६ पदनिष्पत्त्यर्थम् ।
१७ अहो । १८ पदसंज्ञकः । १९ (उपवर्षनामा ऋषिः) माह । २० नामाः
वदाचार्यः । २१ वसः । २२ कल्पित । २३ साक्षादिमदर्थः । २४ उत्क्रमकारेण ।
२५ पदानि । २६ अर्थःप्रकृतिनिवृत्तिलक्षणः । २७ न तु गामिति पदेन कस
स्त्वित्प्रतिनिवृत्तिर्वा चटते यतः । २८ सुवर्णं तिरुन्तं पदमित्यादि । २९ पृथक्कृतम् ।
३० नामाःऽऽख्यापयित्वातकमेवमवचनीयमेवेन । ३१ उपसर्गाधिकम् । ३२ पदानि ।
३३ तत्रवा पदादपोद्धृत्यैव वाक्येभ्यः पदान्यपोद्धृत्यैव इति भावः ।

ततः प्रकृत्याद्यवयवेभ्यः कथञ्चिद्भिन्नमभिन्नं च पदं प्रातीति-
कमभ्युपगन्तव्यम्, न तु सर्वथाऽनंशं वर्णवैचम्राहकाभावात् ।
तद्वत्पदेभ्यः कथञ्चिद्भिन्नमभिन्नं च वाक्यं र्व्यभाववाक्यमेदभिन्नं
प्रोक्तलक्षणलक्षितं प्रातीतिपदमारूढमभ्युपगन्तव्यम् अलं प्राती-
त्यपलापेनेति ।

५

प्रामाण्यं सुंघियो घियो यदि मतं संवादतो निश्चितात्,
स्मृत्यावेरपि किञ्च तन्मतमिदं तस्याऽविशेषात्स्फुटम् ।
तत्संख्या परिकल्पितेयमधुना सन्तिष्ठतेऽतः कथम्-
तस्माज्जनमते मतिर्मतिमतां स्थेयाच्चिरं निर्मले ॥ १ ॥

इति श्रीप्रमानन्ददेवविरचिते प्रमेयकमलमार्तण्डे परीक्षामुखालङ्कारे
तृतीयः परिच्छेदः ॥ श्रीः ॥

१०

१ पदं प्रकृतिर्न भवति, पदं च प्रकृतिर्नेति व्यावृष्टिरूपेण । २ समुदायरूपेण ।
३ निरशस्य वर्णस्य यथा आहकं प्रमाणं नास्ति तथाऽनंशपदस्य च । ४ पदं वाक्यं
न भवति, वाक्यं च पदं न भवतीति व्यावृष्टिरूपेण । ५ समुदायरूपेण । ६ वच-
नात्मकं द्रव्यवाक्यं, नोपात्मकं तु भाववाक्यम् । ७ पदानां परस्परापेक्षार्थां निरपेक्षः
समुदायो वाक्यमिति । ८ सकलं परिच्छेदाद्यैमुपसंहरन्नाह । ९ पुंसः । १० प्रामा-
ण्यम् । ११ संवादस्य । १२ तस्य प्रमाणस्य । १३ स्मृत्यूहादीनां प्रामाण्यप्रति-
पादनसमये ।

श्रीः ।

अथ चतुर्थः परिच्छेदः ॥

अथोक्तप्रकारं प्रमाणं किं निर्विषयम्, सविषयं वा? यदि निर्विषयम्; कथं प्रमाणं केशोण्डुकादिज्ञानवत्? अथ सविषयम्; कोस्य विषयः? इत्याशङ्क्य विषयविप्रतिपत्तिनिराकरणार्थं 'सामान्यविशेषात्मा' इत्याद्याह—

५ सामान्यविशेषात्मा तदर्थो विषयः ॥ १ ॥

तस्य प्रतिपादितप्रकारप्रमाणस्यार्थो विषयः । किंविशिष्टः? सामान्यविशेषात्मा । कुत ऐतत्?

पूर्वोत्तराकारपरिहारावासिस्थितिलक्षणपरिणामेन अर्थक्रियोपपत्तेश्च ॥ २ ॥

१० अनुवृत्तव्यावृत्तप्रत्ययगोचरत्वात्, यो हि यदाकारोल्लेखिप्रत्ययगोचरः स तदात्मको दृष्टः यथा नीलाकारोल्लेखिप्रत्ययगोचरो नीलस्वभावोर्थः, सामान्यविशेषाकारोल्लेख्यनुवृत्तव्यावृत्तप्रत्ययगोचरश्चाखिलो बाह्याभ्यात्मिकप्रमेयोर्थः, तस्मात्सामान्यविशेषात्मेति । न केवलमतो हेतोः स तदात्मा, अपि तु पूर्वो-
१५ र्त्तराकारपरिहारावासिस्थितिलक्षणपरिणामेनाऽर्थक्रियोपपत्तेश्च । 'सामान्यविशेषात्मा तदर्थः' इत्यभिसम्बन्धः ।

कतिप्रकारं सामान्यमित्याह—

सामान्यं द्वेषा ॥ ३ ॥

कथमिति चेत्—

२० तिर्यगूर्द्ध्वताभेदात् ॥ ४ ॥

तत्र तिर्यक्सामान्यस्वरूपं व्यकिनिष्ठतया सोदाहरणं प्रदर्शयति—

१ स्थापूर्वत्वादि । २ ज्ञानं धर्मि प्रमाणं न भवतीति साध्यो धर्मो निर्विषयत्वात्के-
शोण्डुकज्ञानवत् । ३ सामान्यं च विशेषश्च सामान्यविशेषौ तादात्म्यानौ यस्य स
सबोक्तः । ४ सिद्धम् । ५ गौरीरिलादिप्रत्ययः अनुवृत्तः । इयामः सबलो न
भवतीत्यादिप्रत्ययो व्यावृत्तरूपः । ६ च्छेद्यः=प्रतिभासः । ७ पूर्वोत्तराकारौ पर्यायी=
विशेषः । ८ स्थितिलक्षणं द्रव्यमूर्द्धतासामान्यम् । औभ्यमित्यर्थः । ९ विशेषो व्यक्तिः ।

संहशपरिणामस्तिर्यक् स्वण्डमुण्डादिषु गोत्ववत् ॥ ५ ॥

ननु स्वण्डमुण्डादिव्यक्तिव्यतिरेकेणापरस्य भवत्कल्पितसामान्यस्याप्रतीतिर्गगनाम्भोरुहवदसत्त्वादसाम्प्रतमेवेदं तल्लक्षण-
प्रणयनम्; इत्यप्यसमीचीनम्; 'गौर्गौः' इत्याद्यबाधितप्रत्ययविष-
यस्य सामान्यस्याऽभावासिद्धेः । तथाविधस्याप्यस्यासत्त्वे विशेष-
स्याप्यसत्त्वप्रसङ्गः, तथाभूतप्रत्ययत्वव्यतिरेकेणापरस्य तद्व्य-
वस्थानिवन्धनस्यार्थाप्यसत्त्वात् । अबाधितप्रत्ययस्य च विषय-
व्यतिरेकेणापि सङ्गावाभ्युपगमे ततो व्यवस्थाऽभावप्रसङ्गः । न
चांनुगताकारैर्त्वं बुद्धेर्बाध्यते; सर्वत्र देशोदावनुगतप्रतिभासस्याऽ-
स्त्वलद्रूपस्य तथाभूतव्यवहारहेतोरुपलम्भात् । अतो व्यावृत्ता-
कारानुभवानधिगतमनुगताकारमवभासन्त्यऽबाधितरूपा बुद्धिः
अनुभूयमानानुगताकारं वस्तुभूतं सामान्यं व्यवस्थापयति ।

ननु विशेषव्यतिरेकेण नापरं सामान्यं बुद्धिभेदोभावात् । न च
बुद्धिभेदमन्तरेण पदार्थभेदव्यवस्थाऽतिप्रसङ्गात् । तदुक्तम्— १५

“न भेदोद्भिन्नमस्तीत्यत्सामान्यं बुद्ध्यभेदतः ।

बुद्ध्याकारस्य भेदेन पदार्थस्य विभिन्नता ॥”

[] इति;

तदप्यपेशलम्; सामान्यविशेषयोर्बुद्धिभेदस्य प्रतीतिसिद्ध-
त्वात् । रूपरसादेस्तुल्यकालस्याभिन्नाश्रयवर्तिनोर्प्येत एव भेद-
प्रसिद्धेः । एकैन्द्रियाध्यवसेयत्वाज्जातिव्यक्त्योरभेदे चातातपा-
दावप्यभेदप्रसङ्गः । तत्रापि हि प्रतिभासभेदोन्नान्यो भेदव्यव-
स्थाहेतुः । स च सामान्यविशेषयोरप्यस्ति । सामान्यप्रतिभासो
चानुगताकारः, विशेषप्रतिभासस्तु व्यावृत्ताकारोऽनुभूयते ।

१ साक्षादिभवेन । २ सीगतः । ३ जैन । ४ परेणहीक्रियमाणे सति ।
५ अबाधितप्रत्ययविषयत्वाविशेषादिति । ६ प्रमाणान्तरत्न । ७ विधिप्रसक्तिकारणं
व्यवस्था । ८ विशेषसत्त्वेति । ९ परेण । १० गौर्गौरिति । ११ विशेषणम् ।
१२ आदिना कालादी । १३ अनुगताकारत्वं बुद्धेर्न बाध्यते यतः । १४ इदं
सामान्यमयं विशेष इति । १५ विशेषात् । १६ स्वतन्त्रम् । १७ अनेदे हेतुरयम् ।
१८ यतः । १९ चीनपुरादि । २० अयं रस इदं रूपमिति बुद्धिभेदात् । २१ एकै-
न्द्रिया (स्पष्टैकेन्द्रिय) ध्यवसायस्याविशेषात् । २२ अयं चातोऽयमातप इति ।
२३ गौर्गौरित्ययम् । २४ अयमसाक्षिण इति ।

दूराद्दूर्ध्वतासामान्यमेव च प्रतिभासते न स्थाणुपुरुषविशेषौ तत्र सन्देहात् । उत्परिद्वारेण प्रतिभासनमेव च सामान्यस्य ततो व्यतिरेकस्तद्दृक्षणत्वाद्भेदस्य ।

यदन्युक्तम्—

- ५ “ताभ्यां तद्व्यतिरेकश्च किन्नाऽदूरेऽवभासनम् ।
दूरेऽवभासमानस्य सन्निधानेऽतिभासनम् ॥”

[प्रमाणवार्त्तिकालं०]

तदप्यसुन्दरम्; विशेषेपि समानत्वात्, सोपि हि यदि सामान्याव्यतिरिक्तः; तर्हि दूरे वस्तुनः स्वरूपे सामान्ये प्रतिभासमाने १० किन्नावभासते ? न हीन्द्रधनुषि नीले रूपे प्रतिभासमाने पीतदिरूपं दूरान्न प्रतिभासते । अथ निकटदेशसामग्री विशेषप्रतिभासस्य जनिका; दूरदेशवर्त्तिनां च प्रतिपत्तृणां सा नास्तीति न विशेषप्रतिभासः; तर्हि सामान्यप्रतिभासस्य जनिका दूरदेशसामग्री निकटदेशवर्त्तिनां चासौ नास्तीति न निकटे तद्व्यति- १५ भासनमिति समः समाधिः । अस्ति च निकटे सामान्यस्य प्रतिभासनं स्पष्टं विशेषस्य प्रतिभासवत्, यादृशं तु दूरे तस्यास्पष्टं प्रतिभासनं तादृशं न निकटे स्वीसामग्र्यभावात् तद्वदेव ।

न चानुगतप्रतिभासो बहिःसाधारणनिमित्तनिरपेक्षो घटते; प्रतिनियतदेशकालाकारतया तस्य प्रतिभासाभावप्रसङ्गात् । न २० चाऽसाधारणा व्यक्तय एव तन्निमित्तम्; तासां भेदरूपतयाऽऽविष्टत्वात् । तथापि तन्निमित्तत्वे कर्कादिव्यक्तीनामपि गौर्गौरिति बुद्धिनिमित्तत्वानुषङ्गः ।

न चाऽतर्त्कार्यकारणव्यावृत्तिः एकप्रत्यवमशोधैकार्यसाधन-

१ शुच्यन्तरेण सामान्यं व्यवस्थापयति जैनः । २ ऊर्ध्वताकारसदृशसामान्यम् । ३ ऊर्ध्वताकारसामान्यस्य । ४ विशेषः । ५ इन्द्रधनुषि विषमानम् । ६ दूरदेशतादि । ७ समानाकारलक्षणसामान्यपदार्थः । ८ न बहिः साधारणनिमित्तं सामान्यं तन्निमित्तम् । ९ व्यापकत्वात् । १० परेणाङ्गीकृते । ११ कर्कः—वेदाश्वः । १२ व्यक्तीनां तन्निमित्तत्वाविशेषात् । १३ या या व्यक्तयस्तासां भेदरूपाः । १४ कार्यं च कारणं च कार्यकारणे तस्य खण्डादेः कार्यकारणे न विभेदे ते अकार्यकारणे यसाऽसाधनत्वकार्यकारणः कर्कादिस्तस्याव्यावृत्तिः । दृष्टान्ते समासवृत्तिं दर्शयति । दृष्टान्ते त्वेकैन्द्रियादिरूपे तच्छब्देन विवक्षितेन्द्रियादिरन्यत्र समुदितेतरशुद्ध्यादिर्ग्राहः । बहुमीक्षितसमासकरणानन्तरं कर्कादिवदन्या विवक्षितेन्द्रियादिरन्या विवक्षितप्रयोगश्च ग्राहः । तस्याव्यावृत्तिरित्यवसातव्यः । १५ कर्कादीनामुत्तरक्षणाः कारणानि, तैस्यो व्यावृत्तिः । १६ गौर्गौरित्यादि । १७ आदिशब्देनैकव्यवहारादिर्ग्राहः ।

हेतुः अत्यन्तमेवेपीन्द्रियादिवत् समुदितेर्त्तगुह्य्यादिवैवेत्य-
भिधातव्यम्; सर्वथा समानपरिणामानाधारे वस्तुन्यतत्कार्य-
कारणव्यावृत्तेरेवासम्भवात् । अनुगतप्रत्ययाद्वस्तुनि प्रवृत्त्य-
ऽभावप्रसङ्गाच्च । गुह्य्यादिदृष्टान्तोपि साध्यविकलः; न क्लृप्त-
ज्वरोपशमनशक्तिसमानपरिणामाभावे 'गुह्य्यादयो ज्वरोपश-
मनहेतवः न पुनर्दधिन्नपुसादयोपि' इति शक्यव्यवस्थम्,
'चक्षुरादयो वा रूपज्ञानहेतवस्तज्जननशक्तिसमानपरिणामविर-
हिणोपि न पुना रसादयोपि' इति निर्निवन्धना व्यवस्थितिः ।

किञ्च, अनुगतप्रत्ययस्य सामान्यमन्तरेणैव देशादिनियमेनो-
त्पत्तौ व्यावृत्तप्रत्ययस्यापि विशेषमन्तरेणैवोत्पत्तिः स्यात् । शक्यं १.
हि वक्तुम्-अभेदाविशेषेप्येकमेव ब्रह्मादिरूपं प्रतिनियतानेकनीला-
द्याभासनिवन्धनं भविष्यतीति किमपररूपादिस्वलक्षणपरिकल्पे-
नया । ततो रूपादिप्रतिभासस्येवानुगतप्रतिभासस्याप्यालम्बनं
वस्तुभूतं परिकल्पनीयम् इत्यस्ति वस्तुभूतं सामान्यम् ।

एककार्यतासाहचर्येनैकत्वाध्यवसायो व्यक्तीनाम्; इत्यप्यचारः; १८
कार्याणामभेदासिद्धेः, बाह्यदोहादिकार्यस्य प्रतिव्यक्तिभेदात् । तत्रा-
र्ष्यैर्यैरेककार्यतासाहचर्येनैकत्वाध्यवसायेऽनवस्था । ज्ञानलक्षणमपि
कार्यं प्रतिव्यक्तिभिन्नमेव ।

अनुभवानामेकपरामर्शप्रत्ययहेतुत्वादेकत्वम्, तद्भेदुत्वाच्च व्य-
क्तीनामित्युपचरितोर्षंवारोपि श्रद्धामात्रगम्यः; अनुभवानामप्य- २८
त्यन्तवैलक्षण्येनैकपरामर्शप्रत्ययहेतुत्वायोगात्, अन्यथा कर्का-
दिव्यक्त्यनुभवेभ्योपि खण्डमुण्डादिव्यक्तौ एकपरामर्शप्रत्ययस्यो-
त्पत्तिः स्यात् । अथ प्रत्यासत्तिविशेषात्खण्डमुण्डायनुभवेभ्य
एवास्योत्पत्तिर्नान्यतः । ननु प्रत्यासत्तिविशेषः कोन्योऽन्यत्र

१ खण्डादयो विशेषा धर्मिणः समानपरिणामरहिता एव एकप्रत्ययमर्शाधिकार्य-
साधनहेतवः अतत्कार्यकारणकर्कादिव्यावृत्तित्वादिन्द्रियादिवत् । २ व्यक्तीनाम् ।
३ आदिना-अर्थात्कोन्यत्वादिग्रहणम् । ४ समुदितेर्त्तगुह्य्यादयो विशेषाः समान-
परिणामरहिता एव एकप्रत्ययमर्शाधिकार्यहेतवोऽतत्कार्यकारणविवक्षितेन्द्रियादिव्यावृत्ति-
त्वावशात् । ५ शुण्डादि । ६ खण्डादिव्यक्तौ । ७ अभावरूपाया व्यावृत्तेर्भावत्वादन-
गतप्रत्ययस्य । ८ तथा हि । ९ कर्कटी । १० निर्विकल्पस्य । ११ बाह्यनीलादि-
स्वलक्षणम् । १२ बाह्यनीलादिविशेषमन्तरेणैव । १३ सौगतेन त्वया । १४ व्यक्ती-
नामेकत्वमित्यसमर्थनार्थम् । १५ निर्विकल्पकप्रत्ययज्ञानानाम् । १६ गौर्गौरिति ।
१७ पकत्वम् । १८ विकल्पगतमेकत्वमनुभवेऽनुभवगतं चैकत्वं व्यक्तिसंभितिः ।
१९ निर्विकल्पकेभ्यः ।

समानाकारानुभवात्, एकप्रत्यवमर्शहेतुत्वेनाभिमतानां निर्विकल्पकबुद्धीनामप्रसिद्धेऽपि । अतोऽयुक्तमेतत्—

“एकप्रत्यवमर्शस्य हेतुत्वाद्धीरभेदिनी ।
एकधीहेतुभावेन व्यक्तीनामप्यभिज्ञता ॥”

५

[प्रमाणवा० १११०] इति ।
ततोऽवाद्यवोधाधिरूढत्वात्सिद्धं सदृशपरिणामरूपं वस्तुभूतं सामान्यम् । तस्याऽनभ्युपगमे—

“नो चेद्भ्रान्तिनिमित्तेन संयोज्येत गुणान्तरम् ।
शुक्लो वा रजताकारो रूपसौधर्म्यदर्शनात् ॥”

१०

[प्रमाणवा० ११४५] इत्यस्य,
“अर्थेन धैर्त्येनां न हि मुक्त्यर्थरूपताम् ।
तस्मात्प्रमेयो(या)ऽधिगतेः प्रमाणं मेर्यरूपता ॥”
[प्रमाणवा० ३३०५]

इत्यस्य च विरोधानुपपन्नः ।

१५ तच्चाऽनित्यासर्वगतस्वभावमभ्युपगन्तव्यम्, नित्यसर्वगतस्वभावेऽर्थक्रियाकारित्वायोगात् । न खलु गोत्वं बाह्यदोहादानुपयुज्यते, तत्र व्यक्तीनामेव व्यापाराभ्युपगमात् ।

स्वविषयज्ञानजनकत्वेऽपि व्यापारोऽस्य केवलस्य, व्यक्तिसहितस्य वा ? केवलस्य चेत्, व्यक्त्यन्तरालेषुपलम्भप्रसङ्गः । व्यक्तिसहितस्य चेत्, किं प्रतिपन्नाखिलव्यक्तिसहितस्य, अप्रतिपन्नाखिलव्यक्तिसहितस्य वा ? तत्राद्यपक्षोऽयुक्तः, असर्वविदोऽखिलव्यक्तिप्रतिपत्तेरसम्भवात् । द्वितीयपक्षे पुनः एकव्यकेरप्यग्रहणे

१ सौगतेन । २ उपचरितोपचारोपि अदामात्रगम्यो यतः । ३ निर्विकल्पिका बुद्धिः । ४ पक्षा । ५ परेण । ६ चेत्यक्षान्तरस्यकम् । इति हेतोः स्वलक्षणे भ्रान्तिनिमित्तेनाक्षणिकत्वं नो संयोज्येत चेत्तर्हि स्वलक्षणस्य परमार्थभूतमक्षणिकत्वं स्यात् स्वलक्षणस्य क्षणिकवृत्तिभ्यर्धं सर्वं क्षणिकं सत्त्वादित्यनुमानं च व्यर्थं स्यादिति भावः । ७ परमार्थभूतसदृशापरापरोक्षचित्तलक्षणेन । ८ पुरुषेण । ९ क्षणिके स्वलक्षणे वस्तुनि । १० अक्षणिकत्वलक्षणम् । ११ वायथार्थकः । १२ अपरमार्थभूतः । १३ परमार्थभूतरूपसादृश्यदर्शनात् । १४ अन्यस्य । १५ विषयविषयिभावं न कारयतीत्यर्थः । १६ निर्विकल्पकबुद्धिः । १७ अन्त्यसंज्ञिककर्मादि कर्तुं । १८ पदार्थसादृश्याकारभारित्वम् । १९ उभाभ्यां लोकाभ्यां परस्व सादृश्याङ्गीकारो विषय इति सन्नितम् । २० सामान्यस्य । २१ व्यक्तिरहितं केवलम् । २२ पुरुषं प्रति । २३ सामान्यस्य । न च तथा ।

सामान्यज्ञानानुषङ्गः । प्रतिपन्नकतिपयव्यक्तिसहितस्य जनकत्वे तु तस्य ताभिरुपकारः क्रियते, न वा? प्रथमपक्षे सामान्यस्य व्यक्तिकार्यता, तदभिन्नोपकारकरणात् । ततो भिन्नस्यास्य करणे 'तस्य' इतिव्यपदेशासिद्धिः । तत्कृतोपकारेणान्युपकारान्तरै-
करणेऽनवस्था । द्वितीयपक्षे तु व्यक्तिसहभाववैयर्थ्यम् सामा-
न्यस्य, अकिञ्चित्करस्य सहकारित्वासम्भवात् ।

सामान्येन सहैकज्ञानजनने व्यापाराद्ब्यक्तीनां तत्सहकारित्वेपि किमालम्बनभावेन तत्र तासां व्यापारः, अधिपतित्वेन वा? प्राक्त्यकल्पनायाम् एकमनेर्काकारं सामान्यविशेषज्ञानं सर्वदा स्यात्, खालम्बनानुरूपत्वात्सकलविज्ञानानाम् । १०

द्वितीयविकल्पे तु व्यक्तीनामनधिगमेपि सामान्यज्ञानप्रसङ्गः । न खलु रूपज्ञाने चक्षुषोधिगतस्याधिपतित्वेन व्यापारो दृष्टः अदृष्टस्य वा, सर्वथा नित्यवस्तुनः क्रमाऽक्रमाभ्यामर्थक्रियाविरो-
धाद्यास्य न कस्याञ्चिदर्थक्रियायां व्यापारः । व्यापारे वा सह-
कारिनिरपेक्षितया सदा कार्यकारित्वानुषङ्गः, तदवस्थाभाविनैः १५
कार्यजननस्वभावस्य सदा सम्भवात्, अभावे च अनित्यत्वं
स्वभावमेदलक्षणत्वात्तस्य । कार्याजननस्वभावत्वे वा अस्य सर्वदा
कार्याजनकत्वप्रसङ्गः । यो हि यदऽजनकस्वभावः सोऽन्येसहितोपि
न तज्जनयति यथा शालिबीजं क्षित्याद्यविकलसामग्रीयुक्तं कोद्र-
माङ्कुरम्, अजनकस्वभावं च सामान्यं कार्यस्य, इत्यवस्तुत्वापत्ति- २०
नित्यैकस्वभावसामान्यस्य, अर्थक्रियाकारित्वलक्षणत्वाद्बस्तुनः ।

तथा तत्सर्वसर्वगतम्, खैव्यक्तिसर्वगतं वा? न तावत्सर्व-
सर्वगतम्; व्यक्त्यन्तरालेऽनुपलभ्यमानत्वाद्ब्यक्तिसत्त्वात् ।
तत्रानुपलम्भो हि तस्याऽव्यक्तत्वात्, व्यवहितत्वात्, दूरस्थित-

१ न विशेषज्ञानानुषङ्गः, न च तथा-विशेषमन्तरेण सामान्याप्रतीतिः ।
२ अयमुपकारः सामान्यस्येति । ३ सम्बन्धसिद्ध्यर्थम् । ४ गौरीरिलादि । ५ सामा-
न्यसैकत्वादेकं सामान्यज्ञानम् । ६ व्यक्तीनामनेकत्वादेकाकारम् । ७ अपरिशावा
व्यक्तयः सामान्यज्ञानं कथं जनयन्तीत्युक्ते सत्याहाचार्यः । ८ चक्षुर्धर्मस्य ।
९ सामान्यलक्षणम् । १० स्वविषयज्ञानलक्षणम् । ११ तदवस्था-सहकारिरहि-
तत्वम् । १२ कूटस्थनित्यसामान्यस्य । १३ सामान्यं कार्यजनकं न भवति तदजन-
कत्वादित्यभ्याहृतम् । १४ सहकारिकारणम् । १५ अयो घटादिः तस्य क्रिया कार्यत्वं
जन्यत्वमिति यावत्, तां करोति यः पदार्थो मृत्पिण्डलक्षणः सोऽर्थक्रियाकारी, तस्य
भावस्तत्त्वम्, तस्मात् । १६ सर्वास्तु स्वसम्बन्धिलक्षणदुष्पुण्ड्रादिव्यक्तिषु । १७ स्वव्यक्तौ
निवृत्तैकव्यक्तौ ।

त्वात्, अदृश्यत्वात्, स्वाश्रयेन्द्रियसम्बन्धविरहात्, आश्रयसम-
वेतरूपाभावाद्वा स्याद्गत्यन्तराऽभावात्? न तावदव्यक्तत्वात्;
एकत्र व्यक्तौ सर्वत्र व्यक्तेरभिन्नत्वात् । अव्यक्तत्वाच्चान्तराले
तस्यानुपलम्भे व्यक्तिखात्मनोप्यनुपलम्भोऽत एवास्तु । तत्रास्य
५ सद्भावावेदकप्रमाणाभावात्सत्त्वादेवाऽनुपलम्भे सामान्यस्यापि
सोऽसत्त्वादेवास्तु विशेषाभावात् । न खलु प्रत्यक्षतस्तत्तत्रोपल-
भ्यते विशेषरहितत्वात् खरविषाणवत् ।

किञ्च, प्रथमव्यक्तिग्रहणवेलायां तदभिव्यक्तस्यास्य ग्रहणे
अमेदात्तस्य सर्वत्र सर्वदोषलम्भप्रसङ्गः सर्वात्मनाभिव्यक्त-
१० त्वात्, अन्यथा व्यक्ताव्यक्तस्वभावमेवेनानेकत्वानुपपन्नादसामान्य-
रूपतापत्तिः । तस्मादुपलब्धिलक्षणप्राप्तस्यानुपलम्भाद्भ्यक्त्यन्तराले
सामान्यस्यासत्त्वं व्यक्तिखात्मवत् ।

‘व्यक्त्यन्तरालेऽस्ति सामान्यं युगपद्भिन्नदेशस्वाधारवृत्तित्वे
सत्येकत्वाद्भेदादिवत्’ इत्यनुमानात्तत्र तद्भावसिद्धिः; इत्यप्यसङ्ग-
१५ तम्; हेतोः प्रतिवाच्यऽसिद्धत्वात् । न हि भिन्नदेशास्तु व्यक्तिषु
सामान्यमेकं प्रत्यक्षतः स्थूणादौ वंशादिवत्प्रतीयते, यतो युग-
पद्भिन्नदेशस्वाधारवृत्तित्वे सत्येकत्वं तस्य सिद्ध्यत्स्वाधारान्तराले-
ऽस्तित्वं साधयेत् । तन्नाव्यक्तत्वात्तत्राऽनुपलम्भः ।

नापि व्यवहितत्वाद्भिन्नत्वादेव । नापि दूरस्थितत्वात्तत्रैव ।
२० नाप्यदृश्यात्मत्वात्, स्वार्थेन्द्रियसम्बन्धविरहात्, आश्रय-
समवेतरूपाभावाद्वा; अमेदादेव । तत्र सर्वसर्वगतं सामान्यम् ।

नापि स्वव्यक्तिसर्वगतम्; प्रतिव्यक्ति परिसमाप्तत्वेनास्याऽनेक-
त्वानुपपन्नाद् व्यक्तिस्वरूपवत् । कात्स्न्यैकदेशाभ्यां वृत्त्यनुपपत्ते-
र्धोऽसत्त्वम् ।

२५ किञ्च, एकत्र व्यक्तौ सर्वात्मना वर्त्तमानस्यास्यान्यत्र वृत्तिर्न
स्यात् । तत्र हि वृत्तिस्तद्देशे गमनात्, पिण्डेन सहोत्पादात्,

१ एकस्यां व्यक्तौ । २ प्राक्त्ये सति । ३ व्यक्तियु । ४ सामान्यस्याभिव्यक्तेः ।
५ प्रकटरूपसामान्यस्यैकत्वात् । ६ व्यक्त्यन्तराले । ७ नाऽभावात् । ८ तत्रस्य सामान्य-
वद्व्यक्तेरपि व्यापकत्वाधिलाल्यप्रसङ्गः । ९ सद्भावावेदकप्रमाणाभावस्य । १० व्यापकत्व-
नित्यत्वात् । ११ विशेषरूपताप्रतिपत्तिरिति भावस्तस्याऽनेकरूपत्वात् । १२ देवदत्तेन
व्यभिचारपरिहारार्थं विशेषणद्वयम् । १३ सत्त्वादौ । १४ जैनादि । १५ व्यक्तत्व-
भिव्यक्तस्य सामान्यस्य । १६ एकत्वभावत्वात् (व्यक्त्या सह) । १७ व्यापित्वात् ।
१८ सामान्यस्याश्रयाः खण्डादयः । १९ इन्द्रियसम्बद्धत्वादिबिभ्रिष्टव्यक्तिरूपत्वात् ।
२० व्यक्तीनामानन्त्यात् । २१ अनेकत्वसाक्ष्यलक्षणं दूषणमुदेव्यतीति भावः ।

तद्देशे सद्भावात्, अंशवत्तया वा स्यात्? न तावद्गमनादन्यत्र पिण्डे तस्य वृत्तिः; निष्क्रियत्वोपैगमात् ।

किञ्च, पूर्वपिण्डपरित्यागेन तत्तत्र गच्छेत्, अपरित्यागेन वा ? न तावत्परित्यागेन; प्राक्तनपिण्डस्य गोत्वपरित्यक्तस्यागोरूपता-प्रसङ्गात् । नाप्यपरित्यागेन; अपरित्यक्तप्राक्तनपिण्डस्यास्यानंशस्य ५ रूपादेरिव गमनासम्भवात् । न ह्यपरित्यक्तपूर्वाधारणां रूपादी-नामाधारान्तरसङ्क्रान्तिर्दृष्टा ।

नापि पिण्डेन सहोत्पादात्; तस्याऽनित्यतानुपङ्गात् । नापि तद्देशे सत्त्वात्; पिण्डोत्पत्तेः प्राक् तत्र निराधारस्यास्यावस्थाना-भावात् । भावे वा स्वाश्रयमात्रवृत्तित्वविरोधः । १०

नाप्यंशवत्तया; निरंशत्वप्रतिज्ञानात् । ततो व्यक्त्यन्तरे सामा-न्यस्याभावानुषङ्गः । परेषां प्रयोगः 'ये यत्र नोत्पन्ना नापि प्राग-वस्थायिनो नापि पश्चादन्यतो देशादागतिमन्तस्ते तत्राऽसन्तः यथा खरोत्तमाङ्गे तद्विषाणम्, तथा च सामान्यं तच्छून्यदेशो-त्पादवति घटादिके वस्तुनि' इति । उक्तञ्च— १५

“न यति न च तत्रासीदस्ति पञ्चात्र चंशवत् ।
जहाति पूर्वमाधारमहो व्यसनसन्ततिः* ॥ १ ॥”

[प्रमाणवा० १।१५३]

ये तु व्यक्तिस्वभावं सामान्यमभ्युपगच्छन्ति

“तौदात्म्यमस्य कसाञ्चेत्स्वभावादिति गम्यताम् ।” [] २०

इत्यभिधानात्; तेषां व्यक्तिवत्तस्यासाधारणरूपत्वानुषङ्गाद् व्यक्त्युत्पादविनाशयोर्ज्ञेयापि तद्योगित्त्वंप्रसङ्गाच्च सामान्यरूपता । अथाऽसाधारणरूपत्वमुत्पादविनाशयोगित्वं चास्य नाभ्यु-पगम्येते, तर्हि विरुद्धधर्माभ्यांसतो व्यक्तिभ्योऽस्य भेदः स्यात् ।

१ सामान्यं निष्क्रियमिति वचनात् । २ परेण । ३ व्यक्तिदेशे । ४ जटिल-नाम् । ५ सामान्यमसत् अनुत्पद्यमानादित्वादिस्त्युपरिग्रहोऽन्यम् । ६ तच्छून्यौ च तद्देशोत्पादो वेति । ७ व्यक्त्यन्तरम् । ८ व्यक्तिदेशे । ९ व्यक्तौ गद्यायां सत्याम् । १० सामान्यस्य विशेषणम् । ११ वृथा स्थितिः । * श्लोकोपं मुद्रितपुस्तके 'व्यक्ति-भ्योऽस्य भेदः स्यात्' इत्यनन्तरं मुद्रितः । प्रकरणानुरोधेन स्थानत्रयो भावि-सम्पा० । १२ नीमांसकाः । १३ व्यक्तिरेव स्वभावो यस्य तद्योरभेदात् । १४ व्यक्त्या सह । १५ नीमांसकानाम् । १६ असाधारणरूपताया व्यक्तेरभिन्नत्वात् । १७ सामान्यस्य । १८ व्यक्ति सामान्ययोरभेदात् । १९ परेण । २० घटपटयोरिव ।

“तादात्म्यं चेन्मतं जातेर्व्यक्तिजन्मन्यजातता ।

नाशेऽनाशश्च केनेष्टस्तद्व्यञ्जानन्वयो न किम् ? ॥ २ ॥

व्यक्तिजन्मन्यजाता चेदागता नाश्रयान्तरात् ।

प्रागासीन्न च तद्देशे सा तथा सङ्गता कथम् ? ॥ ३ ॥

५ व्यक्तिनाशे न चैन्नष्टा गता व्यस्यन्तरं न च ।

तच्छून्ये न स्थिता देशे सा जातिः केति कथ्यताम् ? ॥ ४ ॥

व्यक्तेर्जात्यादियोगेपि यदि जातेः सैर्नेर्ष्यते ।

तादात्म्यं कथमिष्टं स्यादनुपप्लुतचेतसाम् ? ॥ ५ ॥” []

ततो यदुक्तं कुमारिलेन—

१० “विषयेण हि बुद्धीर्ना विना नोत्पत्तिरिष्यते ।

विशेषादन्यदिच्छन्ति सामान्यं तेन तद्बुधम् ॥ १ ॥

तौ हि तेन विनोत्पन्ना मिथ्याः स्युर्विपर्ययादते ।

न त्वेन्येन विना वृत्तिः सामान्यस्यैह दुष्यति ॥ २ ॥”

[मी० श्लो० आकृति० श्लो० ३७-३८]

१५ इति; तन्निरस्तम्; नित्यसर्वगतसामान्यस्याश्रयादेकान्ततो
भिन्नस्याभिन्नस्य वाऽनेकदोषैर्बुधत्वेन प्रतिपादितत्वात् । अनुगत-
प्रत्ययस्य च सैदृशपरिणामनिबन्धनत्वप्रसिद्धेः । स चानित्योऽ-
सर्वगतोऽनेकव्यक्त्यात्मकतयाऽनेकरूपश्च रूपादिवत्प्रत्यक्षत एव
प्रसिद्धः । ततो भट्टेनायुक्तमुक्तम्—

“पिण्डभेदेषु गौबुद्धिरेकगोत्वनिबन्धना ।

२० गवाभासैर्केरूपाभ्यामेकगोपिण्डबुद्धिवत् ॥ १ ॥”

[मी० श्लो० वनवाद श्लो० ४४]

यच्चेदमुक्तम्—

“न शावलेयाद्गोबुद्धिस्ततोऽन्यालम्बनापि वै ।

१ व्यक्त्या सह । २ तदा इति शेषः । ३ जातेः । ४ व्यक्तेः । ५ जातेः ।
६ व्यक्तिवत् । ७ असाधारणता । ८ किन्तु स्यादेव । ९ सति । १० व्यक्त्य-
न्तरात् । ११ जातिः=जन्म । १२ आदिना विनाशप्रवृत्तम् । १३ जालादियोगः ।
१४ तर्हीतिशेषः । १५ जातिव्यक्तयोः । १६ अत्रान्तचेतसाम् । १७ सामान्येन ।
१८ अनुगताकारणम् । १९ वैर्वादिभिः । २० ते । २१ नित्यमचलम् । २२ विष-
येण विनोत्पत्तिः कथमित्युक्ते आह । २३ यतः । २४ समवायेन । २५ तादा-
त्म्येन स्वभावादसैत इत्यर्थः । २६ व्यक्तेः सकाशात् । २७ एकत्वापत्तिव्यप-
देशाभावादयोनेके । २८ साक्षादिभस्वेनात्मनेन सदृश इति । २९ गौरीति ।
३० गवाभासव्येकरूपं च साम्यात् । एक (गौरीत्याध्यात्मिककारण) ज्ञानत्वादेकरूप-
(गोरूपपिण्ड साक्षात्कारण) त्वात्त्वैल्लभः । ३१ सामान्यनिबन्धनेति । ३२ ततोऽन्यत्प-
क्षणादि । ३३ नैति संबन्धः ।

तदभावेपि सैद्धान्ताद् घटे पार्थिवबुद्धिबत् ॥”

[मी० श्लो० वनवाद श्लो० ४]

तत्सिद्धसाधनम्; व्यक्तिव्यतिरिक्तसदृशपरिणामालम्बनत्वा-
त्तस्याः ।

यच्च सामान्यस्य सर्वगतत्वसाधनमुक्तम्—

५

“प्रत्येकसमवेतार्थविषया वैथ गोमतिः ।

प्रत्येकं कृत्स्नरूपत्वात्प्रत्येकं व्यक्तिबुद्धिबत् ॥ १ ॥”

[मी० श्लो० वनवाद श्लो० ४६]

प्रयोगः—येयं गोबुद्धिः सा प्रत्येकसमवेतार्थविषया प्रतिपिण्डं
कृत्स्नरूपपदार्थाकारत्वात् प्रत्येकव्यक्तिविषयबुद्धिबत् । एकत्वम- १०
व्यस्य प्रसिद्धमेव; तथाहि—यद्यपि सामान्यं प्रत्येकं सर्वात्मना
परिसमाप्तं तथापि तदेकमेवैकाकारबुद्धिग्राह्यत्वात्, यथा नञ्यु-
क्त्वाक्येषु ब्राह्मणादिनिवर्त्तनम् । न चेयं मिथ्या; कारणदोषवा-
धकप्रत्ययाभावात् । उक्तञ्च—

“प्रत्येकसमवेतापि जातिरेकैर्बुद्धितः ।

१५

नञ्युक्तेष्विव वाक्येषु ब्राह्मणादिनिवर्त्तनम् ॥ १ ॥

नैकरूपा मतिर्गोत्वे मिथ्या वक्तुं च शक्यते ।

नात्र कारणदोषोस्ति बाधकप्रत्ययोपि वा ॥ २ ॥”

[मी० श्लो० वनवाद श्लो० ४७-४९]

तदप्युक्तिमात्रम्; प्रतिपिण्डं कृत्स्नरूपपदार्थाकारत्वस्य सदृश- २
परिणामाविनाभावित्वेन सौंध्यविपरीतार्थं साधनस्य विरुद्धत्वात् ।
नित्यैकरूपप्रत्येकपरिसमाप्तसामान्यसाधने दृष्टान्तस्य सौंध्यविक-
लता । तैथाभूतस्य चास्य सर्वात्मना वैदुष्यु परिसमाप्तत्वे सर्वेषां
व्यक्तिभेदानां परस्परमेकरूपतापत्तिः एकव्यक्तिपरिनिष्ठितस्वभाव-
सामान्यपदार्थसंसृष्टत्वात् एकव्यक्तिस्वरूपवत् । सामान्यस्य २५

१ श्रावण्येयामावेपि खण्डादिगोबुद्धिसङ्गत्वात् तदभावेऽपि श्रावण्येयादेस्तत्सङ्गत्वादि-
सर्षः । २ गोबुद्धेः । ३ श्वेतपीतादिविशेषमन्तरेण यथा घटे पृथिवीत्वसामान्येन
पार्थिवबुद्धिः । ४ न केवलमेकगोत्वनिबन्धन । ५ एकामेकां व्यक्तिं प्रति । ६ गोमतेः ।
७ गौर्गौरिति प्रलयः । ८ अर्थो—गोत्वलक्षणसामान्यम् । ९ गोत्वादिसामान्यम् ।
१० अर्थं गौरवं गौरिति । ११ नायं ब्राह्मणो नायं ब्राह्मण इत्यादि । १२ एकमेव ।
१३ इन्द्रियादि । १४ गौर्गौरिति । १५ हेतोः । १६ सदृशपरिणामः—साध्यम् ।
१७ सर्वगतत्वम् । १८ असर्वगतत्वे । १९ व्यक्तीनां नित्यत्वमेकरूपत्वं च नास्ति
यतः । २० एकत्वानुमाने दूषणमाह । २१ विशेषेषु । २२ अभिन्नत्वात्, तादा-
त्म्यापन्नत्वात् ।

वानेकत्वापत्तिः, युगपदनकेवस्तुपरिसमाप्तात्मरूपत्वात् दूरतरदेशौवच्छिन्नानेकभाजनगतविल्वादिफलवत् । ततोऽयुक्तमुक्तम्—
 'नात्र बाधकप्रत्ययोस्ति' इति; प्राक्प्रतिपादितप्रकारेणानेकबाधकप्रत्ययोपनिपातात् । प्रत्येकसमवेतार्थाश्च जातेरसिद्धत्वात्
 ५ 'एकबुद्धिप्राहृतत्वात्' इत्याश्रयासिद्धो हेतुः । स्वरूपासिद्धश्च;
 अचार्थसादृश्यबोधाधिगम्यत्वेनैकाकारप्रत्ययप्राहृतत्वस्यासिद्धेः ।
 ब्राह्मणादिनिवृत्तिश्च परमार्थतो नैकरूपास्तीति साध्यविकल-
 मुदाहरणम् ।

पिण्डेन यदुक्तमुद्योतकरेण—“गवादिष्वनुवृत्तिप्रत्ययः पिण्डा-

१० दिव्यतिरिक्ताभिमित्वाद्भवति विशेषकर्त्वाञ्जीलादिप्रत्ययवत् ।
 तथा गोतोऽर्थान्तरं गोत्वं भिन्नप्रत्ययविषयत्वाद्रूपादिवत् तस्येति
 च व्यपदेशविषयत्वात्, यथा चैत्रस्याश्वश्चैत्राद्व्यपदिर्ह्यमानः”
 [न्यायवा० पृ० ३३३] इति; तन्निरस्तम्; अनुवृत्तिप्रत्ययस्य हि
 सामान्येन पिण्डादिव्यतिरिक्तनिमित्तमात्रसाधने सिद्धिसाध्यता-
 १५ नुपपन्नात्, सदृशपरिणामनिबन्धनतयाऽस्याभ्युपगमात् । नित्यै-
 कानुगामिसामान्यनिबन्धनत्वसाधने दृष्टान्तस्य साध्यविकलता ।
 न ह्येवम्भूतेन क्वचिद्वैतव्ययः सिद्धः ।

न चानुगतज्ञानोपलम्भादेव तथाभूतसामान्यसिद्धिः । यतः किं

यत्रानुगतज्ञानं तत्र सामान्यसम्भवः प्रतिपद्यते, यत्र वा सामान्य-
 २० सम्भवस्तत्रानुगतज्ञानमिति ? तत्राद्यः पक्षोऽयुक्तः; गोत्वादि-
 सामान्येषु 'सामान्यं सामान्यम्' इत्यनुगताकारप्रत्ययोपलम्भे-
 नाऽपरिसामान्यकल्पनाप्रसङ्गात् । न चात्रासौ प्रत्ययो गौणः;
 अस्खलहृत्तत्वेन गौणत्वासिद्धेः । तथा प्रागभावादिष्वप्यभावेषु

१ सन्पूर्ण । २ भिन्नभिन्न । ३ नित्याया एकरूपायाः प्रत्येकं परिसमाप्तायाश्च ।
 ४ अयं गौरयं गौरिति । ५ आश्रयभूताया जातेरभावात् । ६ अयमनेन सदृश इति ।
 ७ अनेकरूपसामान्य । ८ कृत्वा । ९ एकाकारप्रत्ययेन आद्यं सामान्यं परमत् ।
 १० सामान्यस्य । ११ नार्यं क्षत्रियो ब्राह्मणो नार्यं वैश्यो ब्राह्मण इत्यादिना
 कृत्वाऽभावानामनेकत्वात्, अभावः अभाव इति प्रत्ययसंयुक्तप्रागभावादिवत् ।
 १२ एकत्वेन साध्येन । १३ मीमांसकं प्रति नित्यसर्वगतवातिनिराकरणपरेण अन्येन ।
 १४ श्वलशावलेयादिविशेषगोपिण्डादि । १५ सर्वगनित्यत्वात् । १६ भेदकत्वात् ।
 १७ गौरिदं गोत्वमिति । १८ भेदेनाभिधीयमानः । १९ साधारणेन कृत्वा ।
 २० जैनानाम् । २१ पिण्डादिन्वतिरिक्ताभिलेकानुगामिसामान्याभिमित्वाद्भवतीति
 साध्यम् । २२ यो यो भेदकप्रत्ययः स स नित्यैकानुगामिसामान्याद्भवतीति ।
 २३ परेण । २४ गवादिभ्यक्तिनिष्ठेषु गोत्वादिसामान्येषु घटत्वमपि सामान्यं घटत्वमपि
 सामान्यमित्यनुगताकारप्रत्ययः । २५ गोत्वादिभ्यः । २६ कल्पित ।

‘मभावोऽभावः’ इत्यनुगतप्रत्ययप्रवृत्तिरस्ति, न च परैरभाव-
सामान्यमभ्युपगतम् । न खलु तत्रानुगाम्येकं निमित्तमस्त्यन्यत्र
सदृशपरिणामात् ।

ननु चापरसामान्यस्य प्रागभावादिष्वभावेऽपि सत्ताख्यं महा-
सामान्यमस्ति, तद्वलादेवाभावप्रत्ययोऽनुगतो भविष्यति ।५
उक्तञ्च—

“ननु च प्रागभावाद्दौ सामान्यं वस्तु नेष्यते ।

सैत्तैव ह्यत्र सामान्यमनुत्पत्त्यादिरूपता” ॥ १ ॥

[मी० श्लो० अपोहवाद् श्लो० ११]

अनुत्पत्त्यादिविशिष्टैत्यर्थः । तदयुक्तम् ; अभिप्रेतपदार्थव्यतिरि-१०
कानां मतान्तरीयार्थानाम् उत्पाद्यकथार्थानां वाऽभावप्रतीतिविय-
यतोपलम्भेन सत्त्वप्रसङ्गात् । तत्राभावेष्वनुवृत्तप्रतीतेरनुगाम्ये-
कसामान्यनिबन्धनत्वमस्तीत्यन्यत्राप्यस्यास्तत्रिबन्धनत्वाभावः ।
प्रयोगः—ये क्रमित्वानुगामित्ववस्तुत्वोत्पत्तिमत्त्वसत्त्वादिधर्मोपे-
तास्ते परकल्पितमित्येकसर्वगतसामान्यनिबन्धना न भवन्ति ।५
यथाऽभावेष्वभावोऽभाव इति प्रत्ययाः, सामान्येषु सामान्यं
सामान्यमिति प्रत्यया वा, तथा चामी प्रत्यया इति ।

अथ यत्र सामान्यं तत्रैवानुगतज्ञानकल्पना; न; पांचकादिषु
तदभावेऽनुगतप्रत्ययप्रवृत्तेः । न खलु तत्रानुगाम्येकं सामान्य-
मस्ति यत्प्रसादात्तत्प्रवृत्तिः स्यात् । निमित्तान्तरमस्तीति २०
चेत्तर्किकैर्म, कर्मसामान्यं वा स्यात्, व्यक्तिः, शक्तिर्वा ? न
तावत्कर्म; तस्य प्रतिव्यक्ति विभिन्नत्वात् । ‘विभिन्नं ह्यऽभिर्भेदस्य
कारणं न भवति’ इति सर्वोपमारम्भः । तच्चेद्भिन्नमपि तथाभूत-
कार्यकारणं तदैन्यत्र कः प्रद्वेषः ?

किञ्च, तत्कर्म नित्यं वा स्यात्, अनित्यं वा ? न तार्किकमित्यम् ; २५
तथानुपलम्भेरनभ्युपगमाच्च । अनित्यं तु न सर्वदा स्थितिमदिति
विनष्टे तस्मिन् तथाभूतो व्यपदेशो ज्ञानं वा स्यात्, अपचतः

१ अभावत्वस्य । २ परेण । ३ एका सर्वंगता । ४ आदिना नित्यसर्वंगतत्वादि-
ग्रहणम् । ५ सतोऽभावप्रत्ययोऽनुगतो भविष्यति । ६ अभिप्रेतानि द्रव्यगुणकर्माणि ।
७ अद्वैतप्रणानीनाम् । ८ लोके विवित्रकथार्थानाम् । ९ पुरुषेषु । १० पाचकः
पाचक इत्यादि । ११ कर्म सामान्यं नास्तीत्युक्ते आह । १२ पचनक्रियायाः पूर्वं नास्ति ।
१३ देवदत्तपद्मदत्तचैत्रनेत्रेषु पचनक्रियालक्षणं कर्म भिन्नम् । १४ अनुगताकारस्य ।
१५ जैनमतान्भ्युपगते प्रतिव्यक्ति भिन्ने सदृशपरिणामे । १६ अन्वयव्यक्तिर्भेदा त्रिकणा-
वस्थावित्त्वान्भ्युपगमात् । १७ परेण । १८ पाचक इति । १९ पाचक इति ।

क्रियाविरहात् । पचन्नेव हि तथा व्यपदिश्येत नान्यदा । तन्न कर्मैतस्य प्रत्ययस्य निबन्धनम् ।

नापि कर्मसामान्यम्; तद्धि कर्माश्रितम्, कर्माश्रयाश्रितं वा ? यदि कर्माश्रितम्; कथमन्यत्र ज्ञानं जनयेत् ? न ह्यन्यत्र वृत्ति-
५ मदन्यत्र ज्ञानकारणमतिप्रसङ्गात् ।

किञ्च, कर्मसामान्यात् 'पाकः पाकः' इति प्रत्ययः स्यान्न पुनः 'पाचकः पाचकः' इति । अथ कर्माश्रयाश्रितम्; तन्न; कर्माश्रित-
त्वात् । परम्परया कर्माश्रयाश्रितं तत्; इत्यसारम्; अपर्चतः कर्म-
विवेकात् । विविके च कर्मणि न कर्मत्वं कर्मणि तदाश्रये वाऽऽ-
१० श्रितम्, अनाश्रितं च कथं तैत्तत्र तैथाज्ञानहेतुः स्यात् ?

अथाऽपचतोऽतीतानागते कर्मणी तैथाव्यपदेशज्ञाननिबन्धनं
न कर्मत्वम्; ननु सती, असती वा ते तन्निबन्धनं स्याताम् । न
तावत्सती; अतीतस्य प्रच्युतत्वाद्नागतस्य चालम्बात्मस्वरूप-
त्वात् । असती च कथं कस्यापि निबन्धनमतिप्रसङ्गात् ? तन्न
१५ कर्मत्वमपि तैत्प्रत्ययस्य निबन्धनम् ।

नापि व्यक्तिः; अनिष्टेर्विभिन्नत्वाच्च ।

नापि शक्तिः; सा हि पाचकादन्या, अनन्या वा स्यात् ? अन-
न्यत्वे तयोरन्यतरदेव स्यात् । अन्यत्वे च अस्या एव कार्योपयोगि-
त्वेन कर्तुरकर्तृत्वानुषङ्गः । अथ पारम्पर्येणोपयोगः—कर्ता हि
२० शक्तावुपयुज्यते शक्तिश्च कार्ये । नन्वसौ शक्तावुपयुज्यते स्वरूपेण,
शक्त्यन्तरेण वा ? शक्त्यन्तरेणोपयोगोऽवस्था । स्वरूपेणोपयोगे
कार्येण्यसौ तथा किन्नोपयुज्यते किं परम्परापरिभ्रमेण ? न
चान्यन्निमित्तमस्ति ।

पाचकत्वमस्तीति चेत्; तर्हि द्वैव्योत्पत्तिकाले व्यक्तम्,
२५ अव्यक्तं वा ? व्यक्तं चेत्; तर्हि पाकक्रियायाः प्रागेव तैथा ज्ञाना-
भिधाने स्याताम् । अथाऽव्यक्तम्; तर्हि पञ्चादपि न ते स्यातां

१ पाचक इति । २ कर्मवत्प्रयामितम् । ३ कर्माश्रये देवदत्ते । ४ कर्मणि ।
५ देवदत्ते । ६ श्रुते वृत्तिमान्प्रदीपो गुहायां ज्ञानकारणं सादित्यतिप्रसङ्गः । ७ कर्मत्वं
कर्माश्रितं कर्म च देवदत्ताश्रितमिति । ८ प्रवचस्य । ९ नष्टे । १० सामान्यम् ।
११ देवदत्ते । १२ पाचक इति । १३ पाचकः पाचक इति । १४ अनुगत-
प्रत्ययस्य । १५ परेणानभ्युपगमात् । १६ अनेकत्वात् । १७ पचनलक्षणं कार्यम् ।
१८ कर्मादिभ्योऽन्यक्रिमिचं भविष्यतीत्याह । १९ पाचकः पाचक इति ज्ञानव्यपदेश-
बोर्नुगतप्रत्ययहेतुः । २० देवदत्तलक्षण । २१ पाचक इति ।

विशेषाभावात् । तथाहि-तत्पूर्वं द्रव्यसमवयवधर्मः स्याद्वा, न वा ? सत्त्वे सत्त्ववत्पूर्वमेव व्येक्तिः, तर्थाव्यपदेशश्च स्यात् । अथ न, तदा पञ्चादपि द्रव्यसमवयवधर्मत्वं न स्यादेकरूपत्वात्तस्य । तन्न पञ्चाद्व्यक्तिस्तस्य ।

अस्तु वा, तथाप्यसौ द्रव्येण, क्रियया, उभाभ्यां वाभिधीयते ? ५ न तावद्द्रव्येण, अस्य प्रागपि विद्यमानत्वात् । नापि क्रियया, तस्या अनाधेयातिशयेऽकिञ्चित्करत्वात् । नाप्युभाभ्याम्; पृथगऽसामर्थ्ये सहितयोरप्यसौमर्थ्यात् । तन्नानुगतः प्रत्ययोऽनुगाम्येकं सामान्यमालम्बते ।

किञ्च, 'गोत्वं वर्त्तते' इत्यभ्युपेतं भवता, तन्न किं गोव्देवं गोत्वं १० वर्त्तते, किं वा गोषु गोत्वंमेव, गोषु गोत्वं वर्त्तते प्वेति वा ? प्रथमपक्षेऽनेनैवयित्वाविशेषोधावत्तेषु गोत्वं वर्त्तते तावद्व्यत्रापि किञ्च वर्त्तते ? द्वितीये पक्षे तु सत्त्वद्रव्यत्वादीनां व्यवच्छेदाद्यके-रप्यभावप्रसङ्गस्तद्रूपत्वात्तस्याः । अथ 'गोषु गोत्वं वर्त्तते' एवेति पक्षः; 'तत्र चैन्यत्र गोत्वं वर्त्तते एव' इति गोव्यक्तिवत्कर्त्तृदावपि १५ 'गौर्गौः' इति ज्ञानं स्यात्तद्वत्त्वविशेषात् । तन्न व्यक्त्यात्मकात् प्रतिव्यक्तिभिन्नात्सदृशपरिणामात् अन्यद् व्यक्तिभ्यो भिन्नमेकं सामान्यं घटते ।

विभिन्नं हि प्रतिव्यक्ति सदृशपरिणामलक्षणं सामान्यं विसदृश-परिणामलक्षणविशेषवत् । यथैव हि काचिद्व्यक्तिरुपलभ्यमाना २० व्यक्त्यन्तराद्विशिष्टा विसदृशपरिणामदर्शनादवतिष्ठते तथा सदृशपरिणामदर्शनात्किञ्चित्केनचित्समानमपि 'तेनायं समानः सोऽनेन समानः' इति प्रतीतेः । न च व्यक्तिसरूपादभिन्नत्वात्सामान्य-रूपताव्याघातोऽस्य; रूपादेरप्यत एव रूपादिसंभावताव्याघात-

- १ श्रेयाभावाश्लेषत्वसैकल्यमानत्वात् । २ देवदत्तलक्षण । ३ धर्मः=स्वभावः । ४ देवदत्तस्य । ५ पाचकत्वस्य । ६ पाचकः पाचक इति । ७ द्रव्योत्पत्तिकालेति । ८ पचाकत्वस्य । ९ पञ्चाद्व्यक्तिः (प्रकटनम्) । १० द्रव्यक्रियाम्भ्याम् । ११ देव-दत्तादिना । १२ पचनलक्षणया । १३ पाचकत्वसामान्ये । १४ न च जैनानामिदं दूषणं तेषां शंकराश्रीकारात्, परेषां शंकराश्रीकारो नास्ति यतः । १५ नैयायिकेन । १६ नान्यत्रैतर्थाः । १७ न सत्त्वद्रव्यत्वादिकं गोषु वर्त्तते । इत्यन्यवाद्युक्तिः (!) । १८ अन्यत्रापि गोत्वं वर्त्तते इत्यर्थः । १९ गोषु गोत्वसम्बन्धायावाविशेषात् । २० समवायादीनां प्रागेव प्रतिक्षिप्तत्वात् । २१ अनन्वयो=विभिन्नत्वमसम्बद्धत्वं वा । २२ अभावादियु । २३ कर्त्तृदियु । २४ एवकारयोगेनान्ययोगायोगाऽऽलम्बनाऽयोगव्यव-च्छेदादिति सिद्धम् । २५ अनेकम् । २६ व्यक्त्यात्मकादिति विशेषणं समर्थवति ।

प्रसंज्ञात् । प्रत्यक्षविरोधोऽन्यत्रापि समानः-सामान्यविशेषात्म-
तयार्थस्याध्यक्षे प्रतिभासनात् ।

ननु प्रथमव्यक्तिदर्शनबेलायां सामान्यप्रत्ययस्याभावात्सदृश-
परिणामलक्षणस्यापि सामान्यस्यासम्भवः; तदप्यसाम्प्रतम्; तदा
५ सद्व्यत्वादिप्रत्ययस्योपलम्भात् । प्रथममेकां गां पश्यन्नपि हि
सदादिना सादृश्यं तत्रार्थान्तरेण व्यपदिशत्येव । अननुभूत-
व्यत्तयन्तरस्यैकव्यक्तिदर्शने कस्मान्न समानप्रत्ययोत्पत्तिः तत्र
सदृशपरिणामस्य भावादिति चेत्? तत्रापि विशिष्टप्रत्ययोत्पत्तिः
कस्मान्न स्याद्वैसादृश्यस्यापि भावात्? परापेक्षत्वात्तस्याप्रसङ्गोऽ-
१० न्यत्रापि समानः । समानप्रत्ययोपि हि परापेक्षत्वात्तन्तरेण क्वचि-
त्कदाचिदप्यभावात् द्वित्वैदिप्रत्ययवद्दृत्वादिप्रत्ययवद्वा ।

द्विविधो हि वस्तुधर्मः-परापेक्षः, परानपेक्षश्च, सौल्यादि-
चङ्घर्णादिवर्धः । अतो यथान्यापेक्षो विशेषः स्वामर्थक्रियां व्यावृत्ति-
ज्ञानलक्षणां कुर्वन्नर्थक्रियाकारी, तथा सामान्यमप्यनुगतज्ञान-
१५ लक्षणामर्थक्रियां कुर्वत्कथमर्थक्रियाकारि न स्यात्? तद्वाह्यां
पुनर्वाह्यदोहाद्यर्थक्रियां यथा न केवलं सामान्यं कर्तुमुत्सहते
तथा विशेषोपि, उभयात्मनो वस्तुनो गवादेस्तत्रोपयोगात्,
इत्यर्थक्रियाकारित्वेर्नैपि सामान्यविशेषोकारयोरभेदात्सिद्धं वास्त-
वत्वम् ।

२० ततोऽपाकृतमेतत्—

“सर्वे भावाः स्वभावेन स्वभावव्यवस्थितेः ।

स्वभावपरभावाभ्यां यस्माद्वावृत्तिभागिनः ॥ १ ॥

तस्माद्यतो यतोऽर्थानां व्यावृत्तिस्तैन्नियन्धनाः ।

१ व्यक्तिस्वरूपत्वादिभिन्नत्वाविशेषात् । २ एकगति । ३ सत्त्वादिनायं सदृश
रत्यादि । ४ पुरुषस्य । ५ विशिष्टः=विसदृशः । ६ परो=महिषादिः । ७ परा-
पेक्षाम् । ८ समानप्रत्ययस्य । ९ यथा द्वित्वमेकत्वापेक्षं दूरत्वं चासन्नत्वापेक्षम् ।
१० येतमीतादिवत् । ११ सदृशपरिणामलक्षणम् । १२ अनुगतज्ञानलक्षणार्थक्रिया
यतः । १३ विशेषनिरपेक्षम् । १४ केवलतया । १५ सामान्यविशेषात्मनः ।
१६ न केवलमवाधितप्रत्ययविषयत्वेन । १७ सामान्यविशेषावेव चाकारौ तयोरे-
भेदाद्विशेषाभावादित्यर्थः । १८ सामान्यविशेषाकारौ सिद्धौ यतः । १९ प्रतिक्षणं
ध्वंस्तिनः परस्परसंसृष्टाः परमाणुरूपा गवादिस्वलक्षणाः । २० वर्तन्ते इति
श्लेषः । २१ श्लेषो भावानां स्वरूपेण व्यवस्थितैः । २२ सजातीयविजातीयपर-
माणुरूपार्थतः । २३ विजातीयार्थात् । २४ स्वलक्षणानाम् । २५ व्यावृत्ति-
नियन्धनं येषां ते ।

जातिभेदाः प्रकल्पन्ते तद्विशेषैवगाहिनः ॥ २ ॥”

[प्रमाणवा० १।४१-४२] इति ।

ननु सादृश्ये सामान्ये 'स एवायं गौः' इति प्रत्ययः कथं शबलं दृष्ट्वा शबलं पश्यतो घटेतेति चेत् ? 'एकत्वोपचारात्' इति ब्रूमः । द्विविधं ह्येकत्वम्-मुख्यम्, उपचरितं च । मुख्यमात्मादिद्रव्ये । ३ सादृश्ये तूपचरितम् । नित्यसर्वगतस्वभावत्वे सामान्यस्यानेक-दोषदुष्टत्वप्रतिपादनात् ।

'तेन सामानोयम्' इति प्रत्ययश्च कथं स्यात् ? तयोरेकसामान्य-योगाच्चेत् ; न; 'सामान्यवन्तावेतौ' इति प्रत्ययप्रसङ्गात् । तयोरे-भेदोपचारे तु 'सामान्यम्' इति प्रत्ययः स्यात्, न पुनः 'तेन १० सामानोयम्' इति । यद्यपुरुषयोरभेदोपचाराद्यद्विसदृशचरितः पुरुषो 'यद्यिः' इति यथा ।

ननु 'व्यक्तिर्वैत्सर्भानपरिणामेष्वपि समानप्रत्ययस्यापरसमान-परिणामहेतुकत्वप्रसङ्गादनवस्था स्यात् । तमन्तरेण्यत्र समान-प्रत्ययोत्पत्तौ पर्याप्तं खण्डादिव्यक्तौ समानपरिणामकल्पनया' १५ इत्यर्थत्रापि समानम्-विसदृशपरिणामेष्वपि हि विसदृशप्रत्ययो यदि तदन्तरहेतुकोऽनवस्था । स्वभावतश्चेत् ; सर्वत्र विसदृश-परिणामकल्पनानर्थक्यम् ।

न च सदृशपरिणामानोमर्थवत्स्वात्मन्यपि समानप्रत्ययहेतुत्वे अर्थानामपि तदप्रसङ्गः; प्रतिनियतशक्तित्वाद्भावानाम्, अन्यथा २० घटादेः प्रदीपात्स्वरूपप्रकाशोपलम्भात्प्रदीपेपि तत्प्रकाशः प्रदीपा-न्तरादेव स्यात् । स्वकारणकलापादुत्पन्नाः सर्वेऽर्था विसदृशप्रत्य-यविषयाः स्वभावत एवेत्यभ्युपगमे समानप्रत्ययविषयास्ते तथा किं नाभ्युपगम्यन्ते अलं प्रतीत्यपलापेन ?

१ सामान्यभेदाः । २ वासनातः । ३ ते खण्डादिकर्कादयश्च विशेषाश्च तान-वगाहन्ते इत्येवशीलाः । ४ विशेषा एव सन्ति न सामान्यमिति भावः । ५ जैने-नाङ्गीक्रियमाणे सादृश्ये सामान्ये सति । ६ स एवामात्मादिः पदार्थ इति । ७-साक्षादिमत्त्वेन । ८ भवता मीमांसकानाम् । ९ खण्डमुण्डयोः शबलशबलयोर्वा । १० सामान्यतद्गतोः । ११ परेणाङ्गीक्रियमाणे । १२ इदं (व्यक्तिः) सामान्य-मिति । १३ कुन्ताः प्रविशन्ति अश्वा आगच्छन्तीत्यादिवद्वा । १४ व्यक्तियथा सादृश्यपरिणामाद्येन मुण्डेन सदृशः खण्ड इत्यादि । १५ समान इति परिणामेषु । १६ विसदृशपरिणामपक्षेपि । १७ अपरविसदृश । १८ तदिति शेषः । १९ विशेष-रूपानाम् । २० स्वात्मनि समानप्रत्ययहेतुत्वप्रसङ्गः । २१ प्रतिनियतशक्तित्वाभावात् । २२ सौगतेन ।

एतेन नित्यं निखिलब्राह्मणव्यक्तिव्यापकं ब्राह्मण्यमपि प्रत्याख्यातम् । न हि तत्तथाभूतं प्रत्यक्षादिप्रमाणतः प्रतीयते । ननु चं 'ब्राह्मणोयं ब्राह्मणोयम्' इति प्रत्यक्षत एवास्य प्रतिपत्तिः । न चेदं विपर्ययज्ञानम्; बाधकाभावात् । नापि संशयज्ञानम्; उभयांशा-
५ नवलम्बित्वात् । पित्रादिब्राह्मण्यज्ञानपूर्वकोपदेशसहाया चास्य व्यक्तियुक्तिः, तत्रापि तत्सहायेति । न चात्राऽनवस्था; बीजाङ्क-
रादिवदनादित्वात्तत्तद्रूपोपदेशपरम्परायाः ।

तथानुमानतोपि; तथाहि—ब्राह्मणपदं व्यक्तिव्यतिरिक्तैकनिमित्ताभिधेयसम्बद्धं पदत्वात्पटादिपदवत् । न चायमसिद्धो हेतुः;
१० धर्मिणि विद्यमानत्वात् । नापि विरुद्धः; विपक्षे एवाभावात् । नाप्यनैकान्तिकः; पक्षविपक्षयोरवृत्तेः । नापि दृष्टान्तस्य साध्यवैकल्यम्; पटादौ व्यक्तिव्यतिरिक्तैकनिमित्ताभिधेयसम्बद्धत्वाभावे व्यक्तीनामानन्त्येनाऽनन्तेनापि कालेन सम्बन्धग्रहणाघटनात् ।
१५ तथा, 'वर्णविशेषाध्ययनाचार्यज्ञोपवीतादिव्यतिरिक्तनिमित्तनि-
बन्धनं 'ब्राह्मणः इति ज्ञानम्, तन्निमित्तबुद्धिविलक्षणत्वात्, गवाश्वदिज्ञानवत्' इत्यतोपि तत्सिद्धिः । तथा 'ब्राह्मणेन यद्यद्यं ब्राह्मणो भोजयितव्यः' इत्याद्यागर्मांशेति ।

अत्रोच्यते । यत्तावदुक्तम्—प्रत्यक्षत एवास्य प्रतिपत्तिः; तत्र किं निर्विकल्पकात्, विकल्पकाद्वा ततस्तत्प्रतिपत्तिः स्यात्? न
२० तावन्निर्विकल्पकात्; तत्र जाल्यादिपरामर्शाभावात्, भावे वा सविकल्पकानुषङ्गः । अन्यथा—

“अस्ति ह्यालोचनज्ञानं प्रथमं निर्विकल्पकम् ।

बालमूकादिविज्ञानसदृशं शुद्धवस्तुजम् ॥ १ ॥

ततः परं पुनर्वस्तुधर्मैर्जात्यादिभिर्यथा ।

२५ बुद्ध्यावसीयते सापि प्रत्यक्षत्वेन सम्मता ॥ २ ॥”

[मी० श्लो० प्रत्यक्षसू० ११२, १२०] इति वचो विरुद्धयेत ।

१ विस्फारिताक्षस्य पुरुषस्य पुरो व्यवस्थितेषु क्षत्रियादिसङ्घेषु । २ इति—
अनुगतैकाकारप्रत्ययतया । ३ पित्रादिब्राह्मण्यज्ञानादस्य पुत्रस्य ब्राह्मण्यमित्युपदेशः ।
४ वठकलापादिः । ५ ब्राह्मणोयं ब्राह्मणोयमिति सामान्यस्य वाचकत्वात् ब्राह्मण इति सामान्यपदम् । ६ ब्राह्मण्यं तदेवाभिधेयं तेन सम्बद्धम् । ७ पदत्वस्य । ८ नापि दृष्टान्तस्य साधनवैकल्यं पटादिपदे पदत्वस्य विद्यमानत्वात् । ९ पदत्व ।
१० द्वितीयमनुमानम् । ११ गौरत्वादि । १२ ब्राह्मण इति ज्ञानस्य । १३ अपुरुष-
कृपात् । १४ जाल्यादिपरामर्शकत्वेपि निर्विकल्पकत्वे । १५ इन्द्रिय । १६ अक्षि-
विस्फालज्जावन्तरम् । १७ तज्ज्ञानं वस्तुं न ज्ञानयते वतः । विशेषणविशेष्यद्विर्तं शुद्धं
अद्वैतसन्मान्नात्रलक्षणवस्तुतो जातम् । १८ भेदसहितं समन्वितमिति यावत् ।

नापि स्वविकल्पकात्, कंठकलापादिव्यंकीनां मनुष्यत्वविशिष्ट-
तयेव ब्राह्मण्यविशिष्टतयापि प्रतिपत्त्यसम्भवात् । पित्रादि-
ब्राह्मण्यज्ञानपूर्वकोपदेशसहाया व्यक्तिर्व्यञ्जिकास्य; इत्यन्यसारम्;
यतः पित्रादिब्राह्मण्यज्ञानं प्रमाणम्, अप्रमाणं वा? अप्रमाणं
चेत्; कथमतोर्व्यसिद्धिरतिप्रसङ्गात्? प्रमाणं चेत्; किं प्रत्य-
क्षम्, अनुमानं वा? प्रत्यक्षं चेत्; न; अस्य तद्वाहकत्वेन प्रागेव
प्रतिषेधात् ।

किञ्च, 'ब्राह्मण्यजातेः प्रत्यक्षतासिद्धौ यथोक्तोपदेशस्य प्रत्यक्ष-
हेतुतासिद्धिः, तत्सिद्धौ च तत्प्रत्यक्षतासिद्धिः' इत्यन्योन्या-
श्रयः । यथा च ब्राह्मण्यजातेः प्रत्यक्षत्वमुपदेशेन व्यवस्थाप्यते १०
तथा ब्रह्माद्यद्वैतप्रत्यक्षत्वमपि, तत्कथमप्रतिपक्षा पक्षसिद्धिर्भवतः
स्यात्? अथाद्यद्वैताद्युपदेशस्याध्यक्षवाधितत्वाच्च प्रत्यक्षाङ्गत्वम्;
तदन्यत्रापि समानम् । ब्राह्मण्यविविक्तपिण्डग्राहिणाध्यक्षेणैव हि
तदुपदेशो बाध्यते । अथाऽहस्या ब्राह्मण्यजातिस्तेनायमदोषः;
कथं तर्हि सा 'प्रत्यक्षा' इत्युक्तं शोभेत ? १५

किञ्च, औपाधिकोयं ब्राह्मणशब्दः, तस्य च निमित्तं वाच्यम् ।
तच्च किं पित्रोरविद्युर्तत्त्वम्, ब्रह्मप्रभवत्वं वा? न तावद्विद्युर्तत्त्वम्;
अनादौ काले तस्याध्यक्षेण प्रहीतुमशक्यत्वात्, प्रायेण प्रमदानां
कामातुरतयेह जन्मन्यपि व्यभिचारोपलम्भाच्च कुतो योनिनिव-
न्धनो ब्राह्मण्यनिश्चयः? न च विद्युतेतरपित्रोऽपत्येषु वैलक्षण्यं २०
लक्ष्यते । न खलु षडवायां गर्दभाश्वप्रभवापत्येष्विव ब्राह्मण्यां
ब्राह्मणशूद्रप्रभवापत्येष्वपि वैलक्षण्यं लक्ष्यते ।

क्रियाविलोपोऽत् शूद्राभादेच्च जातिलोपः स्वयमेवाभ्युपगतः—

“शूद्राभाच्छूद्रसम्पर्काच्छूद्रेण सह भाषणात् ।

इह जन्मनि शूद्रत्वं मृतः श्वा चाभिजायते ॥”

[इत्यभिधानात् । २५]

१ कठः सुरे ऋषौ भेदः । २ ब्राह्मण्यव्यञ्जिनाम् । ३ वैशम्पैदृष्टान्तोपम् । यत्र
दृष्टान्तदार्ढ्यन्तयोक्तयोरस्तित्वं तत्रान्वयदृष्टान्तः । यत्रैकस्यास्तित्वमेकस्य नास्तित्वं
तत्र व्यतिरेकदृष्टान्तः । ४ संशयादि स्वामिमतावैतिह्यप्रसङ्गात् । ५ ब्राह्मण्य-
जाति । ६ अनन्तरमेव । ७ व्यवस्थाप्यतां शास्त्रोपदेशेन । ८ परपक्षसाविरा-
करणात् । ९ अङ्गं=कारणम् । १० विशेष्यवाच्यस्य विशेषणं (तस्य वाचकत्वात्) ।
वचः (प्रकाचकं) इत्यभिधानात् । ११ प्रवृत्तेरिति शेषः । १२ अज्ञानत्वम् ।
१३ पित्रोः । १४ ब्राह्मण्यस्य । १५ जातेः ब्राह्मण्यस्य । १६ ततो विलत्वव्याघातः ।
१७ नीमांसकेन ।

कथं 'चैवं वादिनो ब्रह्मव्यासविश्वामित्रप्रभृतीनां ब्राह्मण्यसिद्धि-
स्तेषां तज्जन्यत्वासंभवात् । तन्न पित्रोरविद्युत्त्वं तस्मिन्नित्तम् ।

नापि ब्रह्मप्रभवत्वम्; सर्वेषां तत्प्रभवत्वेन ब्राह्मणशब्दाभि-
धेयतानुषङ्गात् । 'तन्मुखाज्जातो ब्राह्मणो नान्यः' इत्यपि मेदो
५ ब्रह्मप्रभवत्वे प्रजानां दुर्लभः । न खल्वेकवृक्षप्रभवं फलं मूले मध्ये
शाखायां च भिद्यते । ननु नागवह्नीपत्राणां मूलमध्यादिदेशोत्पत्तेः
कण्ठभ्रामर्यादिमेदो दृष्ट एवमत्रापि प्रजाभेदः स्यात्; इत्यप्यसत्;
यतस्तत्पत्राणां जघन्योत्कृष्टप्रदेशोत्पादात्तत्पत्राणां तद्भेदो युक्तो
ब्रह्मणस्तु तद्देशभावात् तद्भेदः । तद्देशभावे चास्य जघन्योत्कृष्ट-
१० तादिप्रसङ्गः स्यात् ।

किञ्च, ब्रह्मणो ब्राह्मण्यमस्ति वा, न वा? नास्ति चेत्; कथमतो
ब्राह्मणोत्पत्तिः? न ह्यमनुष्यादिभ्यो मनुष्याद्युत्पत्तिर्घटते । अस्ति
चेत्किं सर्वत्र, मुखप्रदेश एव वा? सर्वत्र इति चेत्; स एव
प्रजानां भेदाभावोऽनुषज्यते । मुखप्रदेशे एव चेत्; अन्यत्र प्रदेशे
१५ तस्य शूद्रत्वानुषङ्गः, तथा च न पादादयोस्य वेन्द्या वृषलादि-
वत्, मुखमेव हि विप्रोत्पत्तिस्थानं वन्द्यं स्यात् ।

किञ्च, ब्राह्मण एव तन्मुखाज्जायते, तन्मुखादेवासौ जायेत ?
विकल्पद्वयेऽप्यन्योन्याश्रयः-सिद्धे हि ब्राह्मणत्वे तस्यैव तन्मुखादेव
जन्मसिद्धिः, तत्सिद्धेश्च ब्राह्मणत्वसिद्धिरिति । अथ जात्या
२० ब्राह्मण्यस्य सिद्धिस्तन्मुखादेव तज्जन्मनश्चायमदोषः; न; अस्याः
प्रत्यक्षतोऽप्रतीतेः । न खलु खण्डमुण्डादिषु सादृश्यलक्षण-
गोत्ववद्देवदत्तादौ ब्राह्मण्यजातिः प्रत्यक्षतः प्रतीयते, अन्यथा
'किमयं ब्राह्मणोऽन्यो वा' इति संशयो न स्यात् । तथा च
तन्निरासाय गोत्राद्युपदेशो व्यर्थः । न हि 'गौरयं मनुष्यो वा'
२५ इति निश्चयो गोत्राद्युपदेशमपेक्षते ।

ननु यथा सुवर्णादिकं परोपदेशसहायात्प्रत्यक्षात्प्रतीयते तथा
सापि; इत्यप्ययुक्तम्; यतो न पीततामात्रं सुवर्णमतिप्रसङ्गात्,
किन्तु तद्विशेषः, स च नाध्यक्षो दाहच्छेदादिवैयर्थ्यप्रसङ्गात् ।
तस्यापि सहायत्वे तज्जातौ किञ्चित्थाविधं सहायं वाच्यम्-तच्चा-

१ पित्रोरविद्युत्त्वं ब्राह्मणशब्दप्रवृत्तिनिवृत्तिनिमित्तमित्येवं वादिनः । २ जनिष्ठु-
वित् । ३ ब्राह्मणशब्दप्रवृत्तिनिमित्तम् । ४ मूले उत्पन्नानि पत्राणि कण्ठस्य जर्म
कुर्वन्ति, मध्ये उत्पन्नानि कण्ठस्य सुस्वरत्वं कुर्वन्तीति भेदः । ५ तत्र ब्राह्मण्य-
भावात् । ६ सिद्धिरिति सन्देहः । ७ रीतिकादेः सुवर्णत्वप्रसङ्गात् । ८ सुवर्णादि-
ज्ञाने । ९ ब्राह्मण्य ।

कारविशेषो वा स्यात्, अध्ययनादिकं वा ? न तावदाकारविशेषः ; तस्याब्राह्मणेपि सम्भवात् । अत एवाध्ययनं क्रियाविशेषो वा तत्सहायतां न प्रतिपद्यते । दृश्यते हि शूद्रोपि स्वजातिविलोपादेशान्तरे ब्राह्मणो भूत्वा वेदाध्ययनं तत्प्रणीतां च क्रियां कुर्वाणः । ततो ब्राह्मण्यजातेः प्रत्यक्षतोऽप्रतिभासनात्कथं व्रतवन्धवेदाध्ययनादि विशिष्टव्यक्तावेव सिद्ध्येत् ?

यदप्युक्तम्—'ब्राह्मणपदम्' इत्याद्यनुमानम्; तत्र व्यक्तियतिरिक्तैकनिमित्ताभिधेयसम्बद्धत्वं तत्पदस्याध्यक्षवाधितम्, कठकलापादिव्यक्तीनां ब्राह्मण्यविविकानां प्रत्यक्षतो निश्चयात्, अत्रार्थेणत्वविविकशब्दवत् । अप्रसिद्धविशेषणश्च पक्षः; न खलु १० व्यक्तियतिरिक्तैकनिमित्ताभिधेयाभिसम्बद्धत्वं मीमांसकस्यासाकं वा केचित्प्रसिद्धम्, व्यक्तिभ्यो व्यतिरिक्ताव्यतिरिक्तस्य सामान्यस्याभ्युपगमात् ।

हेतुश्चानैकान्तिकः; सत्ताकाशकालपदे अद्वैतादिपदे वा व्यक्तियतिरिक्तैकनिमित्ताभिधेयसम्बद्धत्वाभावेपि पदेत्वस्य भावात् । १५ सैत्रापि तत्सम्बद्धत्वकल्पनायाम् सामान्यवत्त्वेनाद्वैताश्वविषाणोर्देवैस्तुभूतत्वानुपपन्नात् कुतोऽप्रतिपक्षा पक्षसिद्धिः स्यात् ? सत्तायाश्च सामान्यवत्त्वप्रसङ्गः, गगनादीनां चैकैकव्यक्तिकत्वात्कथं सामान्यसम्भवः ? ईष्टान्तश्च साध्यविकलः; पटादिपदे व्यक्तियतिरिक्तैकनिमित्तत्वासिद्धेः ।

२०

पैतेन वर्णविशेषैत्याद्यनुमानं प्रत्युक्तम् । नैगरादौ च व्यक्तियतिरिक्तैकनिमित्तनिर्वन्धनाभावेपि तैथाभूतज्ञानस्योपलम्भोदनेकान्तः । न खलु नगरादिज्ञाने व्यतिरिक्तमनुवृत्तप्रत्ययनिबन्धनं किञ्चिदस्ति, काष्ठादीनामेव प्रत्यासत्तिविशिष्टत्वेन प्रासा-

१ ब्राह्मणे । २ ब्राह्मण्ये । ३ साध्यधर्मः । ४ अत्रानपत्त्वविविकशब्दस्याध्य-
क्षतो निश्चयाद्युपपन्नः शब्द इति पक्षः प्रत्यक्षनाशितस्येत्यर्थः । ५ दृष्टान्ते ।
६ निश्चयाननकत्वे भिन्नं व्यक्तिभ्यः, पृथक्पुंसशक्यत्वादभिन्नं सामान्यमिति ।
७ मीमांसकैर्नैक । ८ पदत्वादिति । ९ आदिना अश्वविषाणादिपदे । १० साध्या-
भावे । ११ हेतोः । १२ इदमेव विवृणोति । १३ पटादिवत् । १४ अर्थस्य ।
१५ परमते । १६ पथा भेदा उपचरिता इत्यर्थः । १७ नैकव्यक्तिकं सामान्यमिति
बचनात् । १८ गगनत्वादि । १९ इति साध्याभावो दर्शितः । २० पटादिपदव-
दिति । २१ निलसर्वगतारूपसामान्य । २२ पदत्वानुमाननिराकरणेन । २३ पदे ।
२४ साध्याभावे । २५ वर्णविशेषादिनिमित्तानुबन्धितैकव्यक्तिस्योपलम्भत्वात् । २६ नगर-
मिति शानोपक्रमत्वात् । २७ व्यक्तैः सकाशात् ।

श्रादिव्यवहारनिबन्धनानां नगरादिव्यवहारनिबन्धनत्वोपपत्तेः,
अन्यथा 'षण्णगरी' इत्यादिष्वपि वैस्त्वन्तरकल्पनालुपहः ।

'ब्राह्मणेन यष्टव्यम्' इत्याद्यागमोपि नात्र प्रमाणम्; प्रत्यक्ष-
चाधितार्थाभिधायित्वात् तृणाग्रे हस्तियूथशतमास्ते इत्यागमवत् ।

- ५ ननु ब्राह्मण्यादिजातिविलोपे कथं वैर्णाश्रमव्यवस्था तन्निबन्धनो
वा तपोदानादिव्यवहारो जैनानां घटेत? इत्यप्यसमीचीनम्;
क्रियाविशेषयज्ञोपवीतादिविन्दोपलक्षिते व्यक्तविशेषे तद्व्यवस्था-
यास्तद्व्यवहारस्य चोपपत्तेः । कथमन्यथा परशुरामेण निःक्षत्री-
कृत्य ब्राह्मणदत्तायां पृथिव्यां क्षत्रियसम्भवं? यथा चानेन निःक्ष-
१० त्रीकृतात्तौ तथा केनचिन्निर्ब्राह्मणीकृतापि सम्भाव्येत । ततः क्रिया-
विशेषादिनिबन्धन एवायं ब्राह्मणादिव्यवहारः ।

एतेर्नाविर्गानतस्रैवर्णिकोपदेशोत्रं वैर्स्तुनि प्रमाणमिति प्रत्यु-
क्तम्; तस्याप्यव्यभिचारित्वाभावात् । इत्यन्ते हि चहवस्रैर्वैर्ण-
िकैरविगानेन ब्राह्मणत्वेन व्यवहियमाणा विपर्ययभाजः । तत्र
१५ परपरिकल्पितायां जातौ प्रमाणमस्ति यतोऽस्याः सद्भावः स्यात् ।

सद्भावे वा वेद्यापाठंकादिप्रविष्टानां ब्राह्मणीनां ब्राह्मण्याभावो
निन्दा च न स्यात् जातिर्यतः पवित्रताहेतुः, सा च भवन्मते
तदवस्थैव, अन्यथा गोत्वादपि ब्राह्मण्यं निकृष्टं स्यात् । गवादीनां
हि चाण्डालादिगृहे चिरोषितानामपीष्टं शिष्टैरादानम्, न तु
२० ब्राह्मण्यादीनाम् । अथ क्रियाभ्रंशात्तत्र ब्राह्मण्यादीनां निन्द्यता,
न, तज्जात्युपलम्भे तद्विशिष्टवस्तुव्यवसाये च 'पूर्ववत्क्रियाभ्रंश-
स्याप्यऽसम्भवात्' । ब्राह्मणत्वजातिविशिष्टव्यक्तियवसायो ह्यप्रवृ-
त्ताया अपि क्रियैयाः प्रवृत्तेर्निमित्तम्, स च तदवस्था पूर्व

१ नगरपङ्क्त्यतिरिक्तं षण्णगरीशब्दवान्यवस्त्वन्तरस्य । २ ब्राह्मण्ये । ३ ब्राह्मण्ये ।
४ ब्राह्मण्ये गृहीत्वादिः । ५ वर्णाश्रमाणां तदधीनत्वात् न तु शूद्रवात्सपीनत्वत् ।
६ ब्राह्मणादी । ७ यतो ज्ञायते क्रियाविशेषादिकं निर्दिष्टं इदं पुत्रेषु क्षत्रियव्यवहारः
कृतः । ८ रावणेन । ९ पुनर्ब्राह्मणेति व्यवहारः क्रियादिनिशेषनिर्दिष्टं इदं कृतोस्तीति
ज्ञायते । १० क्षत्रियब्राह्मणयोर्निराकरणे पुनर्भवसाधने च क्रियादिनिशेष एव निब-
न्धनमित्यर्थः । ११ आगमनिराकरणपरेण । १२ अविवादात् । १३ यत्र ब्राह्मण्य-
जातिस्तत्र वैर्णिकोपदेश इति । १४ ब्राह्मण्ये । १५ वैर्णिकशास्त्रोपदेशैः ।
१६ शूद्राः । १७ गृहभासादशाब्दिस्यानमेदे पाठकशब्दः । १८ इयं ब्राह्मणीति ।
१९ वेद्यागृहादिप्रवेशात्पूर्ववत् । २० वेद्यादिगृहे । २१ नगत्कारादेः ।
२२ वेद्यादिगृहौ ।

भवद्भ्युपगमेन । क्रियाभ्रंशे तज्जातिनिवृत्तौ च ब्रौत्येप्यस्या निवृत्तिः स्यात्तद्वंशाविशेषात् ।

किञ्च, क्रियानिवृत्तौ तज्जातेर्निवृत्तिः स्याद् यदि क्रिया तस्याः कारणं व्यापिका वा स्यात्, नान्यथातिप्रसङ्गात् । न चास्याः कारणं व्यापकं वा किञ्चिदिष्टम् । न च क्रियाभ्रंशे जातेर्विकारोस्ति; ५ “भिन्नेष्वभिन्ना नित्या निरवयवा च जातिः ।” [] इत्यभिधानात् । न चाविकृताया निवृत्तिः सम्भवत्यतिप्रसङ्गात् ।

किञ्चेदं ब्राह्मणत्वं जीवस्य, शरीरस्य, उभयस्य वा स्यात्, संस्कारस्य वा, वेदाध्ययनस्य वा गत्यन्तरासम्भवात् ? न तावज्जीवस्य; क्षत्रियविद्भूरादीनामपि ब्राह्मण्यस्य प्रसङ्गात्, तेषामपि १० जीवस्य विद्यमानत्वात् ।

नापि शरीरस्य; अस्य पञ्चभूतात्मकस्यापि घटादिवद् ब्राह्मण्यासम्भवात् । न खलु भूतानां व्यस्तानां समस्तानां वा तत्सम्भवति । व्यस्तानां तत्सम्भवे क्षितिजलपवनद्भुताशनाकाशानामपि प्रत्येकं ब्राह्मण्यप्रसङ्गः । समस्तानां च तेषां तत्सम्भवे घटादीनामपि १५ तत्सम्भवः स्यात्, तत्र तेषां सामस्यसम्भवात् । नाप्युभयस्य; उभयदोषानुषङ्गात् ।

नापि संस्कारस्य; अस्य शूद्रबालके कर्तुं शक्तितस्तत्रापि तत्प्रसङ्गात् ।

किञ्च, संस्कारात्प्राग्ब्राह्मणबालस्य तदस्ति वा, न वा ? यद्यस्ति; २० संस्कारकरणं वृथा । अथ नास्ति; तथापि तद्वृथा । अब्राह्मणस्याप्यतो ब्राह्मण्यसम्भवे शूद्रबालकस्यापि तत्सम्भवः केन चार्थेत् ?

नापि वेदाध्ययनस्य; शूद्रेपि तत्सम्भवात् । शूद्रोपि हि कश्चिद्देशान्तरं गत्वा वेदं पठति पाठयति वा । न तावतास्य ब्राह्मणत्वं भवद्भिरभ्युपगम्यत इति । ततः सदृशक्रियापरिणामादिनिबन्ध- २५ नैवेद्यं ब्राह्मणक्षत्रियादिव्यवस्था इति सिद्धं सर्वत्र सदृशपरिणामलक्षणं समानप्रत्ययहेतुस्तिर्यक्सामान्यमिति ।

किं पुनरूर्ध्वतासामान्यमित्याह—

१ नित्यत्वादिरूपाया जातेः ततो नास्ति क्रियाभ्रंश इत्यर्थः । २ कदाचिन्नमस्कारहीनेषु । ३ भक्षिनिवृत्तौ भूमनिवृत्तिरतोऽपि; कारणं भूमस्य तद्वत् । ४ वृक्षनिवृत्तौ शिथिलत्वनिवृत्तिरतो वृक्षः शिथिलभावा व्यापकस्तद्वत् । ५ घटनिवृत्तौ घटनिवृत्तिः स्यात् । ६ क्रिया—सम्भवावन्दनादिः । ७ नाशरूपः । ८ आत्माकाशादेरपि निवृत्तिः स्यादिति । ९ वेदाध्ययनमात्रेण ।

पैरापरविवर्त्तव्यापिद्रव्यमूर्च्छता सृदिव स्थासादिषु ॥ ६ ॥

सामान्यमित्यभिसम्बन्धः । तदेवोदाहरणद्वारेण स्पष्टयति-
सृदिव स्थासादिषु ।

५ ननु पूर्वोत्तरविवर्त्तव्यतिरेकेणापरस्य तद्व्यापिनो द्रव्यस्याप्रती-
तितोऽसत्त्वात्कथं तल्लक्षणमूर्च्छतासामान्यं सत्त्वं ; इत्यप्यसमीची-
नम् ; प्रत्यक्षत एवार्थानामन्वैयिरूपप्रतीतेः प्रतिक्षणविशरारुतया
स्वमेपि तत्र तेषां प्रतीत्यभावात् । यथैव पूर्वोत्तरविवर्त्तयोर्व्या-
वृत्तप्रत्ययादन्योन्यमर्भावः प्रतीतेस्तथा सृदाद्यनुवृत्तप्रत्ययात्सि-
१० तिरपि ।

ननु कालत्रयानुयौचित्वमेकस्य स्थितिः, तस्याश्चाऽक्रमेण प्रतीतौ
युगपन्मरणावधि ग्रहणम्, क्रमेण प्रतीतौ न क्षणिका बुद्धिस्तथा
तां प्रत्येतुं समर्था क्षणिकत्वात् ; इत्यप्ययुक्तम् ; बुद्धेः क्षणिकत्वेपि
प्रतिपूर्वरक्षणिकत्वात् । प्रत्यक्षादिसहायो ह्यात्मैवोत्पादव्ययधौ-
१५ व्यात्मकत्वं भौवानां प्रतिपद्यते । यथैव हि घटकपालयोर्विनाशो-
त्पादौ प्रत्यक्षसहायोसौ प्रतिपद्यते तथा सृदादिरूपतया स्थिति-
मपि । न खलु घंटादिस्तुंखौदीनां भेद एवावभासते न त्वेकत्व-
मित्यभिधानं युक्तम् ; क्षणक्षयानुमानोपन्यासस्यानर्थक्यप्रसङ्गात् ।
स ह्येकत्वप्रतीतिनिरासार्थो न क्षणक्षयप्रतिपत्त्यर्थः, तस्य प्रत्यक्षे-
२० षैव प्रतीत्यभ्युपगमात् ।

१ पूर्वापरकालवृत्ति त्रिकालानुयायीत्वर्थः । २ पर्यायरूपविशेषव्याप्तित्वाद्यक्ति-
निष्ठत्वमूर्च्छतासामान्यं सिद्धम् । ३ विवर्त्तुषु । ४ तदेव जैनेरुपादानकारण प्रोक्त
नेयाधिकारिभिरक्ष समवायिकारणमुक्तमित्यर्थः । ५ सौगतः । ६ विषयानम् ।
७ सर्वविवर्त्तानुयायी-अन्वयी । ८ न केवलं जाग्रदवस्थायाम् । ९ पूर्वनिवर्त्तानुवृत्त-
विवर्त्तो व्यावृत्तः । १० भेदः । ११ गौडप्रते । १२ इदं सूक्ष्ममिदं सूक्ष्ममिति ।
१३ द्रव्यरूपपदार्थस्य । १४ सत्त्वम् । १५ यथा भवति तथा । १६ शानं स्वादात्म-
द्रव्यादेः । १७ आत्मनः । १८ अक्षणिक आत्मा स चेत्सदेव कथं न जानातीत्युक्ते
आद । १९ आदिपदेन प्रत्यभिज्ञानादि । २० सृदादिपदार्थानाम् । २१ नाशपदार्थं ।
२२ आभ्यन्तरीयपदार्थं । २३ आदिना आत्मादीनाम् । २४ घटात्कपालं भिन्नं
कपालाद्घटो विन्न इति भेदः परस्पर तथा सुखदुःखादेरात्मा भिन्नस्वस्वस्वसादि
भिन्नमिति भेदः परस्परम् । २५ अभिधीयते सौगतेन । २६ सर्वथा नास्तिरूपस्य
निषेधो न घटते अगलकुसुमवत् । २७ सौगतेन ।

न चानन्तरातीतानागतक्षणयोः प्रत्यक्षस्य प्रवृत्तौ स्मरण-
प्रत्यभिज्ञानुमानानां वैफल्यम्; तत्र तेषां साफल्यानभ्युपगमात्,
अतिव्यवहिते तदङ्गीकरणात् । न चाक्षणिकस्यात्मनोऽर्थग्राहकत्वे
खगतवालवृद्धाद्यवस्थानामतीतानागतजन्मपरम्परायाः सकल-
भावपर्यायाणां चैकदैवोपलम्भप्रसङ्गः; ज्ञानसहायस्यैवार्थग्राह-
कत्वाभ्युपगमात्, तस्यै च प्रतिवन्धकक्षयोपशमाऽनतिक्रमेण
प्रादुर्भावाभोक्तैदोपानुपङ्गः ।

न च ब्रह्मब्रह्मणेऽतीताद्यवस्थानां ततोऽभिन्नत्वाद्ब्रह्मणप्रसङ्गः;
अभिन्नत्वस्य ब्रह्मणं प्रैत्यनङ्गत्वात्, अन्यथा ज्ञानादिर्ज्ञानानुभवे
सञ्चेतनादिवत् क्षणक्षयस्वर्गप्रापणशक्त्याद्यनुभवाऽनुपङ्गः । तस्मा- १०
द्यत्रैवास्य ज्ञानपर्यायप्रतिवन्धापायस्तत्रैव ग्राहकत्वनियमो नान्य-
त्रेत्यनवद्यम्-‘आत्मा प्रत्यक्षसहायोऽनन्तरातीतानागतपर्याययोरे-
कत्वं प्रतिपद्यते’ इति, स्मरणप्रत्यभिज्ञानसहायश्चातिव्यवहित-
पर्यायेऽपि । तथैव प्रामाण्यं प्रैगेव प्रसाधितम् ।

ननु स्मरणप्रत्यभिज्ञानयोः पूर्वोपलब्धार्थविपर्ययत्वे तद्दर्शनकाल १५
एवोत्पत्तिप्रसङ्गः, तद्दर्शनवत्तद्विपर्ययत्वेनानयोरप्यविकलकारण-
त्वात्, न चैवम्, तस्माच्च ते तद्विपर्यये । प्रयोगः-यस्मिन्नविकलेपि
यन्न भवति न तत्तद्विपर्ययम् यथा रूपेऽविकले तत्राभवच्छ्रोत्र-
विज्ञानम्, न भवतोऽविकलेपि च पूर्वोपलब्धार्थं स्मृतिप्रत्यभि-
ज्ञाने इति; तदप्यपेशलम्; तद्दर्शनकाले तयोः कारणाभावे- २०
नाऽप्रादुर्भावात् । न ह्यर्थस्तयोः कारणम्; ज्ञानं प्रति कारणत्व-
स्यार्थं प्रैगेव प्रतिपेधात् । स्मरणं हि संस्कारप्रबोधकारणम्,

१ प्रत्यक्षादिसहाय इत्यत्रादिग्रहण निरर्थकमित्युक्ते आह । २ षट्कपाललक्षणयोः ।
३ जैनेन । ४ नित्य आत्मातीतानागतपर्यायानेकरैव ग्रहीष्यतीत्युक्ते आह । ५ अङ्गी-
क्रियमाणे जैनेः । ६ स्वतोऽभिज्ञाना पर्यायाणाम् । ७ जैनेः । ८ ज्ञानेन युगपद्भेदी-
ष्यतीत्युक्ते आह । ९ ज्ञानस्य । १० प्रतिवन्धकं कर्म । ११ युगपन्मरणावधि-
ग्रहणलक्षणम् । १२ ज्ञानम् । १३ अकारणत्वात् । १४ सप्तारिणः । १५ पदार्थे ।
१६ तत्र सौगतस्य । ज्ञानादिलक्षणानामिन्नसङ्गात्वात् । १७ षट्कपाललक्षणयोः ।
१८ एकत्वं प्रतिपद्यते । १९ स्मृतिप्रत्यभिज्ञानयोः प्रामाण्यं न विद्यते, तत्सहाय
आत्मातिव्यवहितपर्यायेषु कथमेकत्वं जानीयादित्युक्ते सत्याह । २० तृतीयाध्याये ।
२१ प्रलक्षणे । २२ स उपलब्धोर्षो विषयो ययोस्ते तस्मै । २३ प्रत्यक्ष ।
२४ स उपलब्धोर्षो विषयो ययोस्ते । २५ अनुत्पाद्यमानत्वात् । २६ नार्थालोकौ
कारणं परिच्छेद्यत्वात्तमोवदित्यत्र द्वितीयपरिच्छेदे । २७ तर्हि स्मरणप्रत्यभिज्ञानयोः
कारणं किमित्युक्ते आह ।

संस्कारश्च कालान्तराविसरणकारणलक्षणधारणारूपः, तद्दर्शन-
काले नास्तीति कथं तद्वैवास्थ्योत्पत्तिः प्रत्यभिज्ञानस्य वा? तदु-
त्पत्तौ हि दर्शनं पूर्वदर्शनाहितसंस्कारप्रबोधप्रभवस्मृतिसहायं
प्रवर्त्तते, तच्च प्राप्नास्तीति कथं तद्वैव तदुत्पत्तिः ?

- ५ अथ मतम्-आत्मनः कैवलस्यैवातीताद्यर्थग्रहणसामर्थ्ये सर-
णाद्यपेक्षावैयर्थ्यम्, तदसामर्थ्ये वा नितरां तद्वैयर्थ्यम्, न खलु
केवलं चक्षुर्विज्ञानं गन्धग्रहणेऽसमर्थं सत्तत्स्मृतिसहायं समर्थं
दृष्टमिति; तदप्यसङ्गतम्; यतः सरणादिरूपतया परिणतिरेवा-
त्मनोऽतीताद्यर्थग्रहणसामर्थ्यम्, तत्कथं तदपेक्षावैयर्थ्यम्? चक्षु-
१० विज्ञानस्य तु गन्धग्रहणपरिणामस्यैवाभावाच्च तत्स्मृतिसहाय-
स्यापि गन्धग्रहणे सामर्थ्यमिति युक्तमुत्पद्यमानः ।

- ततो निराकृतमेतत्-‘पूर्वोत्तरक्षणयोरग्रहणे कथं तत्र स्थासु-
ताप्रतीतिः’ इति; आत्मनो तयोर्ग्रहणसम्भवात् । भवतां तु तयोर्-
प्रतीतौ कथं मध्यक्षणस्य तत्राऽस्थासुताप्रतीतिरिति चिन्त्यताम् ?
१५ पूर्वदर्शनाहितसंस्कारस्य मध्यक्षणदर्शनात्तत्क्षणस्मृतिस्तस्यार्थं
‘स इह नास्ति’ इत्यस्थासुतावगमे स्थासुतावगमोप्येवं किञ्च
स्यात् ?

- ननु चास्थासुता पूर्वोत्तरयोर्मध्येऽभावः तस्य वा तत्रै, स च
तदात्मकत्वात्तद्ग्रहणेनैव गृह्यते; तदप्यसारम्; तदप्रतीतौ तत्रास्य
२० अत्र वा तयोर्निषेधस्याप्यसम्भवात् । न ह्यप्रतिपक्षघटस्य ‘अत्र
घटो नास्ति’ इति प्रतीतिरस्ति । कथं चैवं स्थासुता न प्रतीयेत ?
सापि हि पूर्वोत्तरयोर्मध्ये कैथञ्चित्सद्भावस्तस्य वा तत्रै, स च
तदात्मकत्वात्तद्ग्रहणेनैव गृह्येत ।

- ननु स्थासुतार्थानां नित्यतोच्यते, सा च त्रिकालापेक्षा, तद-
२५ प्रतिपत्तौ च कथं तदपेक्षानित्यताप्रतिपत्तिः? तदसाम्प्रतम्; वस्तु-
स्वभावभूतत्वेनान्यानपेक्षत्वान्नित्यतायाः, तथाभूतायाश्चास्याः
प्रत्यक्षादिप्रमाणप्रसिद्धत्वेन प्रतीतिः प्रतिपादनात् । न खलु स्वयं
नित्यतारहितस्य त्रिकालेनासौ क्रियतेऽनित्यतावत् । न हि वर्त-

१ कारणम् । २ द्वितीयम् । ३ तस्य प्रलक्षादिसहाय्यरहितस्य । ४ क्षणिकतुष्णा ।
५ अक्षणिकेन । ६ अयं मध्यक्षणस्तत्र नामुद्यमविष्यतीति प्रतीतिः । ७ परेण ।
८ क्षण । ९ दर्शनम्-अनुभवः । १० सकाशात् । ११ पूर्वदर्शनाहितसंस्कारस्य
मध्यक्षणदर्शनात्तत्क्षणस्मृतिः, तस्याश्च स इह द्रव्यरूपेणास्तीति । १२ क्षणयोः ।
१३ क्षणे । १४ अभावः । १५ पूर्वोत्तरक्षणयोरभावात्प्रकाशान्मध्यक्षणस्य ।
१६ द्रव्यरूपेण । १७ द्रव्यरूपेण । १८ द्रव्यरूपेण मध्यक्षणस्य । १९ अग्रे ।
२० पदावस्य ।

मानकालेनानित्यता क्रियते तस्याऽसत्त्वात्, सत्त्वे वा तदनित्य-
त्वस्याप्यपरेण करणेऽनवस्थाप्रसङ्गः । ततो यथा स्वभावतः
पूर्वोत्तरकोटिविच्छिन्नः क्षणो जातः क्षणिको विधीयते काल-
निरपेक्षश्च प्रतीयते तथाऽक्षणिकत्वंमपि ।

ननु चाक्षणिकत्वम् अर्थानामतीतानागतकालसम्बन्धित्वेना-
तीतानागतत्वम् । न च कालस्यातीतानागतत्वं सिद्धम्; तद्धि
किमपरातीतादिकालसम्बन्धात्, तथाभूतपदार्थक्रियासम्ब-
न्धाद्वा स्यात्, स्वतो वा ? प्रथमपक्षेऽनवस्था ।

द्वितीयपक्षेपि पदार्थक्रियाणां कुतोऽतीतानागतत्वम् ? अपराती-
तानागतपदार्थक्रियासम्बन्धाच्चेत्; अनवस्था । अतीतानागतकाल-
सम्बन्धाच्चेत्; अन्योन्याश्रयः । स्वतः कालस्यातीतानागतत्वे अर्था-
नामपि स्वत एवातीतानागतत्वमस्तु किमतीतानागतकालसम्ब-
न्धित्वकल्पनया ? इत्यप्यसमीक्षिताभिधानम्; स्वरूपत एवाती-
तादिसमयस्यातीतादित्वप्रसिद्धेः । अनुभूतवर्तमानत्वो हि सम-
योतीर्तः, अनुभवविष्यद्दर्शमानत्वैश्चानागतः, तैस्सम्बन्धित्वा-
च्चार्यानामतीतानागतत्वम् । न च कालवदर्थानामपि स्वरूपेणैवा-
तीतानागतत्वं युक्तम्; न ह्येकस्य धर्मोन्यत्राप्यासङ्गमित्तं युक्तः,
अन्यथा निम्बादेस्त्रिकतादिधर्मो गुडादेरपि स्यात्, ज्ञानधर्मो
वा स्वपरप्रकाशकत्वं घटादेरपि स्यात्, तद्धर्मो वा जडता ज्ञान-
स्यापि स्यात् । २०

ननु चानुवृत्ताकारप्रत्ययोपलम्भादक्षणिकत्वधर्मोर्थानां सा-
ध्यते, स च बाध्यमानत्वादसत्यः; तदप्यसम्यक्; यतोऽस्य
बाधको विशेषप्रतिभास एव, स चानुपपन्नः । तथाहि-अनु-
वृत्ताकारे प्रतिपन्ने, अप्रतिपन्ने वासौ तद्बाधको भवेत् ? यदि
प्रतिपन्ने; तदा किमनुवृत्तप्रतिभासात्मको विशेषप्रतिभासः, तद्व्य-
तिरिक्तो वा ? प्रथमपक्षेऽनुवृत्तप्रतिभासस्य मिथ्यात्वे विशेष-
प्रतिभासस्यापि तदात्मकत्वात्तत्प्रसक्तेः कथमसौ तद्बाधकः ?
द्वितीयपक्षेऽप्यनुवृत्ताकारप्रतिभासमन्तरेण स्यासकोशादिप्रति-
भासस्य तद्व्यतिरिक्तस्यासंबेदनात्तद्बाधकत्वायोगात् । अनुवृत्ता-
कारप्रतिपत्तौ च विशेषप्रतिभासस्यैवासम्भवात्कथं तद्बाधकता ? २०

१ सीमताभ्युपगमरीत्या । २ कालस्य । ३ कालेन । ४ कालनिरपेक्षम् । ५ अप-
रस्यापरसात्सिद्धान्त्योन्याश्रयप्रसङ्गात् । ६ कालस्यातीताऽनगत्वे सिद्धे सति पदार्थ-
क्रियाणामतीतानागतत्वसिद्धिसात्सिद्धौ च तत्सिद्धिरिति । ७ द्रव्यरूपेण पुरुषेण ।
८ अणवत् । ९ समयः । १० अतीतानागतकाल । ११ संयोगमित्युम् । १२ वाच-
कत्वेनेति शेषः । १३ मिथ्यारूपः । १४ द्वितीयविकल्पोऽयम् ।

किञ्च, विपरीतार्थव्यवस्थापकं प्रमाणं बाधकमुच्यते । प्रति-
क्षणविनाशिपदार्थव्यवस्थापकत्वेन च प्रत्यक्षम्, अनुमानं वा
प्रवर्त्ततान्यस्य प्रमाणत्वेन सौगतैरनभ्युपगमात् ? तत्र न ताव-
त्प्रत्यक्षं तद्व्यवस्थापकम्; तत्र तथार्थानामप्रतिभासनात् । न हि
५ प्रतिक्षणं त्रुट्यद्रूपतां विभ्राणास्तत्रार्थाः प्रतिभासन्ते, स्थिरस्थूल-
साधारणरूपतयैव तत्र तेषां प्रतिभासनात् । न चान्याद्ग्रभूतः
प्रतिभासोऽन्याद्ग्रभूतार्थव्यवस्थापकोऽतिप्रसङ्गात् ।

न च तत्र तथा तेषां प्रतिभासेपि सदृशापरापरोत्पत्तिविग्रह-
मूर्त्तयानुभवं व्यवसायानुपपत्तेः स्थिरस्थूलादिरूपतया व्यं-
१० सायः; इत्यभिधातव्यम्; अनुपहृतेन्द्रियस्यान्याद्ग्रभूतार्थनिश्चयो-
त्पत्तिकल्पनार्थां प्रतिनियतार्थव्यवस्थित्यभावानुपङ्गात् । नीलानु-
भवेपि पीतादिनिश्चयोत्पत्तिकल्पनाप्रसङ्गात् । तथा च “यत्रैव
र्जनयेदेनां तत्रैवास्य प्रमाणता” [] इत्यस्य विरोधः ।
ततो यथाविधार्थाध्यवसायी विकल्पस्तथाविधार्थस्यैवानुभवो

१५ प्राहकोभ्युपगन्तव्यः । न चार्थस्य प्रति[क्षण]विनाशित्वात्तत्साम-
र्थ्यबलोद्भूतेनाध्यक्षेणापि तद्रूपमेवानुकरणीयमिति वाच्यम्;
इतरेतराश्रयानुपङ्गात्-सिद्धे हि क्षणक्षयित्वेऽर्थानां तत्सामर्थ्या-
विनाभाविनोध्यक्षस्य तद्रूपानुकरणं सिद्ध्यति, तत्सिद्धौ च क्षण-
क्षयित्वं तेषां सिध्यतीति ।

२० नाप्यनुमानं तद्ग्राहकम्; तत्र प्रत्यक्षाप्रवृत्तावनुमानस्याप्रवृत्तेः ।
तथा हि-अध्यक्षाधिगतमविनाभावमाश्रित्य पक्षधर्मतावगमव-
लादनुमानमुदयमासादयति । प्रत्यक्षाविषये तु स्वर्गादाविवानु-
मानस्याप्रवृत्तिरेव ।

किञ्च, अत्र स्वभावहेतोः, कार्यहेतोर्वा व्यापारः स्यात् ? न
२५ तावत्स्वभावहेतोः; क्षणिकस्वभावतया कस्याचिदर्थस्वभावस्या-
निश्चयात्, क्षणिकत्वस्याध्यक्षागोचरत्वात् । अध्यक्षगोचरे एव
ह्यर्थे स्वभावहेतोर्व्यवहृतिप्रवर्तनफलत्वम्, यथा विशददर्शनाव-
भासिनि तरौ वृक्षत्वव्यवहारप्रवर्त्तनफलत्वं शिक्षपायाः ।

१ भागमादेः । २ विनश्यद्रूपसात् । ३ पदशानं घटव्यवस्थापकं स्यात् ।
४ क्षणिकोयं क्षणिकोयमिति । ५ जायते । ६ निर्विकल्पकप्रत्यक्षं कर्तुं । ७ सविकल्पको
बुद्धिम् । ८ निर्विकल्पकत्वम् । ९ अतिप्रसङ्गो यतः । १० तस्य विनाशयर्त्तुम् ।
११ तस्य प्रतिक्षणं विनाशयर्थस्य । १२ तथा च सति तथाविधार्थस्यैवानुभवो प्राहको
अविष्यतीत्यर्थः । १३ क्षणिकेयं । १४ दृष्टान्तधर्मिणि । १५ विनाशिपदार्थेन सह ।
१६ सत्त्वादिति । १७ दृष्टम् । १८ अयं वृक्षः शिक्षपात्वादिति ।

अथोच्यते-‘द्यो यद्भावं प्रत्यन्यानपेक्षः स तत्त्वभावनियतः यथाऽन्या कारणसामग्री स्वकार्योत्पादने, विनाशं प्रत्यन्यानपेक्षाश्च भावाः’ इति; तदप्युक्तिमात्रम्, हेतोरसिद्धेः । न खलु मुद्गराद्यनपेक्षा घटादयो भावाः प्रमाणतो विनाशमनुभवन्तोऽनुभूयन्ते प्रतीतिविरोधात् । ५

किञ्च, अत्रान्यानपेक्षत्वमात्रं हेतुः, तत्त्वभावत्वे सत्यन्यानपेक्षत्वं वा? प्रथमपक्षे यवबीजादिभिरनेकान्तौ हेतोः, शाल्यङ्कुरोत्पादनसामग्रीसन्निधानवस्थायां तदुत्पादनेऽन्यानपेक्षाणामप्येषां तद्भावनियमाभावात् । द्वितीयपक्षे तु विशेष्यासिद्धौ हेतुः, तत्त्वभावत्वे सत्यन्यानपेक्षत्वासिद्धेः । न ह्यन्या कारणसामग्री स्वकार्योत्पादनस्वभावापि द्वितीयंक्षणानपेक्षा तदुत्पादयति, वह्नस्वभावो वा घृष्टिः करतलादिसंयोगानपेक्षो दाहं विदधाति । भौणे विशेषणासिद्धं च तत्त्वभावत्वे सत्यन्यानपेक्षत्वम्; शृङ्गोत्थशरादीनां क्षणिकस्वभावाभावात् । १०

किञ्च, यदि नामाऽहेतुको विनाशस्तथापि यदैव मुद्गरादिव्यापारानन्तरमुपलभ्यते तदैवासावभ्युपगमनीयो नोदयानन्तरम्, कस्यचित्त्वा तदुपलम्भाभावात् । न च मुद्गरादिव्यापारानन्तरमस्योपलम्भात्प्रागपि संज्ञावः कल्पनीयः; प्रथमक्षणे तस्यानुपलम्भान्मुद्गरादिव्यापारानन्तरमप्यभावानुषङ्गात् । न चीन्ते क्षयोपलम्भादादावभ्युपगमन्तव्यः; संस्तानेनानेकान्तौत् । २०

किञ्च, उदयानन्तरध्वंसित्वं भावानाम् मित्रामित्रविकल्पाभ्यामन्येन ध्वंसस्यासम्भवादवसीयते, प्रमाणान्तराद्वा? तत्रोत्तरविकल्पोऽप्युक्तः; प्रत्यक्षादेरुदयानन्तरध्वंसित्वेनार्थप्राहकत्वाप्रतीतिः । प्रथमविकल्पे तु मित्रामित्रविकल्पाभ्यां मुद्गराद्यनपेक्षत्वमेवास्ति

१ ‘शवा वसिष्ठः, विनाशस्वभावनियता इति साध्यधर्मः, विनाशं प्रत्यन्यानपेक्षत्वादिति हेतुः’ इत्युपरितः । २ साध्याग्ने प्रवर्तमानत्वात् । ३ विनाशहेतुः । ४ बौद्धमतोऽपि एकस्मिन्क्षणे कारणं कार्यं न करोति यतः । ५ सर्वे भावा विनाशस्वभावनियता इति पक्षस्यैकदेशे भागासिद्धौ हेतुरित्यर्थः । ६ महिषशृगादिशृङ्गेऽन्यनिरपेक्षतयोरथशरीरावीनान् । ७ एकस्मिन्क्षणे पदार्थ उत्पन्नः द्वितीयक्षणे मुद्गरादिव्यापारानन्तरेण विनश्यतीति नाभ्युपगमनीयं स्वयां चीगतेन । ८ तस्य विनाशस्य । ९ मुद्गरादिव्यापारानन्तरं विनाशोऽस्ति मुद्गरादिव्यापारात्पूर्वं (उत्पत्तिक्षणात् द्वितीयक्षणे) मपि विनाशोऽस्तीत्युक्ते आह । १० विनाशस्य । ११ मुद्गरादिव्यापारात्पूर्वक्षणे । १२ मुद्गरादिव्यापारस्यान्ते । १३ मुद्गरादिव्यापारात्पूर्वम् । १४ निर्वाणस्यान्ते उत्तरक्षणोत्पत्तेः क्षयोऽस्ति, नादौ । १५ यद्यदन्ते क्षयि तत्त्वादौ क्षयति । १६ मुद्गरादिना । १७ सितिपक्षे उत्पादपक्षे चाग्ने बहुकमसि तत्सर्वमत्र द्रष्टव्यम् ।

स्यात् न तद्दयानन्तरं भावः । न खलु निर्हेतुकस्याश्वविषाणादेः
पदाथोदयानन्तरमेव भावितोपलब्धा ।

अथाहेतुकत्वेन ध्वंसस्य सदा सम्भवात्कालाद्यनपेक्षातः पदा-
थोदयानन्तरमेव भावः; नन्वेवमहेतुकत्वेन सर्वदा भावोत्पत्त्यमः
५ क्षणे एवास्य भावानुषङ्गो नोदयानन्तरमेव । न ह्यनपेक्षत्वाद्-
हेतुकः क्वचित्कदाचिच्च भवति, तथाभावस्य सापेक्षत्वेनाहेतुकत्व-
विरोधिना सहेतुकत्वेन व्यासत्वात्, तथा सौगतैरप्यभ्युपगमात् ।

ननु प्रथमक्षणे एव तेषां ध्वंसे सत्त्वस्यैवासम्भवात्कृतस्त-
त्प्रच्युतिलक्षणो ध्वंसः स्यात् ? ततः खंहेतोरेवार्थो ध्वंसस्यभावाः
१० प्रादुर्भवन्ति; इत्यप्यविचारितरअणीयम्; यतो यदि भावहेतोरेव
तत्प्रच्युतिः; तदा किमेकक्षणस्याधिभावहेतोस्तत्प्रच्युतिः, काला-
न्तरस्याधिभावहेतोर्वा ? प्रथमपक्षोऽयुक्तः; एव(क)क्षणस्याधि-
भावहेतुत्वस्याऽद्याप्यसिद्धेः तत्कृतत्वं तत्प्रच्युतेरसिद्धमेव ।
द्वितीयपक्षे तु क्षणिकताऽभावानुषङ्गः ।

१५ किञ्च, भावहेतोरेवं तत्प्रच्युतिहेतुत्वे किमसौ भावजनना-
त्प्राप्ततत्प्रच्युतिं जनयति, उत्तरकालम्, समकालं वा ? प्रथमपक्षे
प्रागभावः प्रच्युतिः स्यान्न प्रध्वंसाभावः । द्वितीयपक्षे तु भावो-
त्पत्तिवेषायां तत्प्रच्युतेरुत्पत्त्यभावान्न भावहेतुस्तद्धेतुः । तयो-
चोत्तरोत्तरकालभाविभावपरिणतिमपेक्ष्योत्पद्यमाना तत्प्रच्युतिः
२० कथं भावोदयानन्तरं भाविनी स्यात् ? तृतीयपक्षेपि भावोदयस-
मसमयभाविन्या तत्प्रच्युत्या सह भावस्यावस्थानाविरोधाच्च
कदाचिद्भावेन नष्टव्यम् । कथं चासौ मुद्गरादिव्यापारानन्तरमेवो-
पलभ्यमाना तदभावे चानुपलभ्यमाना तज्जन्या न स्यात् ?
अन्यत्रापि हेतुफलभावस्यान्वैयव्यतिरेकानुविधानलक्षणत्वात् ।

२५ न च मुद्गरादीनां कपालसन्तत्युत्पादे एव व्यापार इत्यभिधात-
व्यम्; घटादेः स्वरूपेणाविकृतस्यावस्थाने पूर्ववदुपलब्ध्यादि-
प्रसङ्गात् । न चास्य तदा स्वयमेवाभावाद्युपलब्ध्यादिप्रसङ्गः

१ अर्थस्य । २ नाशस्य । निर्हेतुकत्वात् । ३ अश्लक्ष्ण । ४ कालाद्यनपेक्षा-
विशेषात् । ५ किंतु सर्वदेव भवतीत्यर्थः । ६ क्वचित्कदाचिच्चवतः पदाथस्य ।
७ कालादिना । ८ अनुत्पन्नत्वात् । ९ अर्थोत्पत्तिकारणात् । १० शुभकादेः ।
११ भावस्य घटादेः । १२ घटादिभावस्य । १३ घटप्रध्वंसस्य । १४ भावोत्पत्ति-
वेषायां येन कारणेन भावोत्पत्तिर्जाता तस्मिन्नेव समये तेनैव कारणेन घटप्रध्वंसो
जायते तदा उभयोः कारणमेकं स्यादिति भावः । १५ भावहेतोर्विनाशहेतुत्वाभावे
च । १६ कपालोत्पत्तौ । १७ मुद्गरादिना सह । १८ न घटप्रच्युतौ । १९ आदिना
जलाहरणादिग्रहणम् । २० मुद्गरादिसम्भिवानकाले ।

तदभावस्यापि तद्वैचोपलभ्यमानतयाऽन्यदा चानुपलभ्यमानतया कपालादिवर्तकार्यतानुषङ्गात् ।

अथ घट एव मुद्गरादिकं विनाशकारणत्वेन प्रसिद्धमपेक्ष्य समानक्षणान्तरोत्पादनेऽसमर्थं क्षणान्तरमुत्पादयति, तदप्यपेक्ष्य अपरमसमर्थतरम्, तदप्युत्तरमसमर्थतमम्, यावद्धटसन्ततेर्नि-^५ वृत्तिरित्युच्यते; ननु चात्रापि घटक्षणस्यासमर्थक्षणान्तरोत्पादकत्वेनाभ्युपगतस्य मुद्गरादिना कश्चित्सामर्थ्यविधातो विधीयते वा, न वा? प्रथमविकल्पे कथमभावस्याहेतुकत्वम्? द्वितीयविकल्पे तु मुद्गरादिसन्निपाते तज्जनकस्वभावाऽव्याहृतौ संमर्थक्षणान्तरोत्पादप्रसङ्गः, समर्थक्षणान्तरजननस्वभावस्य भौवात्प्राक्तनक्षणवत् । १०

किञ्च, भावोत्पत्तेः प्राग्भावस्याभावनिक्षये तदुत्पादकारणोत्पादनं कुर्वन्तः प्रतीयन्ते प्रेक्षापूर्वकारिणः तदुत्पत्तौ च निवृत्तव्यापाराः, विनाशकहेतुव्यापारानन्तरं च शैत्रुमित्रध्वंसे सुखदुःखमाजोऽर्जुभ्यन्ते । न चानयोः सङ्भावः सुखदुःखहेतुः, ततस्तद्व्यतिरिक्तोऽभावस्तद्धेतुरभ्युपगन्तव्यः । १५

किञ्च, अभावस्यार्थान्तरत्वानभ्युपगमे किं घट एव प्रध्वंसोऽभिधीयते, कपालानि, तदपरं पदार्थान्तरं वा? प्रथमपक्षे घटस्वरूपेऽपरं नामान्तरं कृतम् । तत्स्वरूपस्य त्वविचलितत्वाभित्यसैवानुषङ्गः । अथैकक्षणस्यापि घटस्वरूपं प्रध्वंसः, न; एकक्षणस्यापितया तद्रूपस्याद्याप्यप्रसिद्धेः । द्वितीयपक्षेपि प्राक्पालो-^{२०}त्पत्तेः घटस्यावस्थितिः कालान्तरावस्थायितैवीस्य, न क्षणिकता ।

किञ्च, कपालकाले 'सः, न' इति शब्दयोः किं मिन्नार्थत्वम्, अभिन्नार्थत्वं वा? अभिन्नार्थत्वे कथं न नञ्शब्दवाच्यः पदार्थान्तरमभावः? अभिन्नार्थत्वे तु प्रागपि नञ्प्रयोगैर्भ्रसक्तिः । न चानुपलभ्यमाने सति नञ्प्रयोगे इत्यभिधातव्यम्; व्यवधानाद्यभावे ^{२५}

- १ घटाभावः कार्यं भवति मुद्गराद्यन्वयव्यतिरेकानुविधायित्वात् । २ सहायमात्रम् । ३ घटस्य घट एव । ४ घटमङ्गलक्षणम् । ५ मुद्गरादिकं कर्मत्वेन । ६ भवदुःखपक्षे । ७ घटस्य । ८ मुद्गरादिकारणजन्यत्वात् । ९ समानक्षणान्तरोत्पादने । १० घटस्य । ११ उपादात् । १२ मृषकादि । १३ स्वीकरणम् । १४ कसचित्पुरुषस्य घटं दृष्ट्वा कोहो जायते कसन्निपु देवो जायते इति स्वभावद्वययुक्तत्वाद्धट एव घटमिनरूपः, तस्य प्रध्वंसः । १५ अनेन वाक्येन सहेतुको विनाशोस्तीति दर्शितम् । १६ स मुद्गरादिहेतुर्गत्त सः । १७ पटादिकमित्यर्थः । १८ प्रध्वंस इति । १९ गणनादिवत् । २० बहुतरकाद्यम् । २१ यावत् कपालानि । २२ घटे सत्यापि घटो नास्तीति । २३ घटस्य । २४ कर्तव्यः । २५ देशकालादिना ।

स्वरूपादप्रच्युतार्थस्योत्पलम्मानुपपत्तेः । स्वरूपात्प्रच्युतौ वा कथं न कपालकाले मुद्गरादिहेतुकं भावान्तरं प्रच्युतिर्भवेत् ?

अथ घटकपालव्यतिरिक्तं भावान्तरं घटप्रध्वंसः; नन्वत्रापि तेन सह घटस्य युगपदवस्थानाविरोधात् कथं तत्तत्प्रध्वंसः ? अन्य-
५ थोत्पत्तिकालेपि तत्प्रध्वंसं प्रसङ्गाद्धटस्योत्पत्तिरेव न स्यात् ।

अन्यानपेक्षतया चाज्ञेरुष्णत्ववत्स्वभावतोऽभावस्य भावे स्थिते-
रपि स्वभावतो भावः किञ्च स्यात् ? शक्यते हि तत्राप्येवं वक्तुं
कालान्तरस्थायी स्वहेतोरेवोत्पन्नो भावो न तद्भावे भावान्तर-
मपेक्षते अग्निरिवोष्णत्वे । भिन्नाभिन्नविकल्पस्य चाभाववत्
१० स्थितावपि समानत्वात् तत्राप्यन्यानपेक्षया निर्हेतुकत्वानुपपन्नः ।
तथाहि-न वस्तुनो व्यतिरिक्ता स्थितिस्तद्धेतुना क्रियते; तस्या-
ऽस्थास्युत्पत्तेः । स्थितिसम्बन्धात्स्थास्युता; इत्यप्ययुक्तम् । स्थिति-
तद्वतोर्व्यतिरेकपक्षाभ्युपगमे तावत्तादात्म्यसम्बन्धोऽसङ्गतः ।
कार्यकारणभावोप्यनयोः सहभावादयुक्तः । असहभावे वा स्थितेः
१५ पूर्वं तत्कारणस्यास्थितिप्रसङ्गः । स्थितेरपि स्वकारणादुत्तरकाल-
मनाश्रयतानुपपन्नः । अन्यतिरिक्तस्थितिकरणे च हेतुवैधर्म्यम् । ततः
स्थितिस्वभावनियतार्थसंज्ञावं प्रत्यन्यानपेक्षत्वादिति स्थितम् ।

अहेतुकविनाशाभ्युपगमे च उत्पादस्याप्यऽहेतुकत्वानुपपन्नो
विनाशहेतुपक्षनिक्षिप्तविकल्पानामत्राप्यविशेषात्; तथा हि-
२० उत्पादहेतुः स्वभावत एवोत्पित्त्वं भावमुत्पादयति, अनुत्पित्त्वं
वा ? आद्यविकल्पे तद्धेतुवैर्फल्यम् । द्वितीयविकल्पेपि अनुत्पि-
त्सोर्दत्तादे गगनाम्भोजादेरुत्पादप्रसङ्गः । स्वहेतुसन्निधेरेवोत्पि-
त्सोरुत्पादाभ्युपगमे विनाशहेतुसन्निधानाद्विनश्वरस्य विनाशो-
प्यभ्युपगमनीयो न्यायस्य समानत्वात् ।

१ प्रसङ्गोदरादेः । २ घटलक्षणस्य । ३ घटात् । ४ तृतीयविकल्पः । ५ पदार्थो-
न्तरस्य सदैव सद्भावात् । ६ भिन्नाभिन्नविकल्पान्या यथाऽभावः कारणान्तरनिरपेक्ष
(बौद्धमते) तथा ताभ्यां स्थितिरपि कारणनिरपेक्षे (जैनमते) ति भावः । ७ घट-
पटयोरिव । ८ सन्धेतरगोविषाणवत् । ९ घटस्य । १० स्वकारणस्य क्षणभङ्गत्वेन
नष्टत्वादिति भावः । ११ घटात् । १२ अन्यतिरिक्तस्थितिकरणे च स्थितिमदसत्त्वेन
कृतं स्यात्, तस्य च स्वहेतुनैव कृतत्वात्सत्तेर्हेतुना कारणमनुपपन्नमित्यस्य
वैधर्म्यम् । १३ स्थितावन्यानपेक्षतया निर्हेतुकत्वं सिद्धं वतः । १४ स्थितिसम्बन्धम् ।
१५ भिन्नाऽभिन्नवक्ष्यमाणानाम् । १६ स्वभावत एव भावस्योत्पत्तिसम्भवात् ।
१७ कारणेन ।

ततः कार्यकारणयोस्तत्पादविनाशौ न सहेतुकाऽहेतुकौ कार-
णानन्तरं सहभावाद्द्रुपादिवत् । न चानयोः सहभावोऽसिद्धः;
“नाशोत्पादौ समं यद्ब्रह्मामोक्षामौ तुलान्तयोः ॥” []

इत्यभिधानात् । न चाहेतुकेन पर्यायसहभाविना द्व्येणाने-
कान्तः; ‘कारणानन्तरम्’ इति विशेषणात् । न चैवमसिद्धत्वम्; ५
मुद्गरादिव्यापारानन्तरं कार्योत्पादवत्कारणविनाशस्यापि प्रतीतिः;
‘विनष्टो घटः, उत्पन्नानि कपालानि’ इति व्यवहारद्वयदर्शनात् ।
न च साध्यविकलमुदाहरणम्; न हि कारणभूतो रूपादिकलापः
कार्यभूतस्य रूपस्यैव हेतुर्न तु रसादेरिति प्रतीतिः । नाप्यसह-
भावो रूपादीनां येन साधनविकलं स्यात् । तत्रोक्तहेतोरर्थानां १०
क्षणक्षयावसायः ।

नापि सत्त्वात्; प्रतिबन्धासिद्धेः । न च विद्युदादौ सत्त्वक्षणि-
कत्वयोः प्रत्यक्षत एव प्रतिबन्धासिद्धेर्घटादौ सत्त्वमुपलभ्यमानं
क्षणिकत्वं गमयति इत्यभिधातव्यम्; तत्राप्यनयोः प्रतिबन्धा-
सिद्धेः । विद्युदादौ हि मध्ये स्थितिदर्शनं पूर्वोत्तरपरिणामौ प्रसा- १५
धयति । न हि विद्युदादेरनुपादानोत्पत्तिर्युक्तिमती; प्रथमचैतन्य-
स्याप्यनुपादानोत्पत्तिप्रसङ्गतः परलोकाम्बानुपज्ञात्, विद्युदा-
दिवत्तत्रापि प्रागुपादानाऽदर्शनात् । न चानुमीर्यमानमत्रोपा-
दानम्; विद्युदादावपि तथात्वानुपज्ञात् ।

नाप्यस्य निरन्वया सन्तानोच्छित्तिः; चरमक्षणस्याकिञ्चित्क- २०
रत्वेनावस्तुत्वार्पित्तः पूर्वपूर्वक्षणानामर्प्यैवस्तुत्वार्पित्तेः सकल-
सन्तानाभावप्रसङ्गः । विद्युदादेः सजातीयकार्याकरणेपि योगि-
क्षौनस्य करणाभावस्तुत्वमिति चेत्; न; आस्वाद्यमानरससमान-
कालरूपोर्पादानस्य रूपाकरणेपि रससहकारित्वप्रसङ्गात् । ततो

१ यथोः सहभावस्योः सहेतुकासहेतुकत्वभावेन न जननमिति । २ रूप-
रसादीना यथा । ३ उपादानरूपः । ४ सहकारिलक्षणः । ५ इत्युदाहरणस्य ।
६ उदाहरणम् । ७ उत्सवभावत्वे सलन्यानपेक्षत्वादिति । ८ सन्दिग्धानेकान्तिकत्वे
सत्याह । ९ प्रथमचैतन्यं जन्मान्तरचैतन्यपूर्वकं चिद्विबसैत्वान्मध्यचिद्विबसैतन्यमिति ।
१० विद्युदुत्तरपरिणामाविनाभाविनी न भविष्यतीत्युक्ते आह । ११ उत्तराकारपति-
षमनविषये । १२ अकिञ्चित्करत्वाविशेषात् । १३ अन्वयिचक्षणस्यार्थक्रियाशून्य-
त्वेनासत्त्वप्रसङ्गात् तस्मात्सत्त्वे सत्पूर्वक्षणस्याप्यर्थक्रियारहितत्वेनासत्त्वम्, तत एव
सत्पूर्वक्षणानामप्यसत्त्वेन सर्वशून्यतापक्षिरेव स्यात् । १४ पूर्वोत्तरक्षणानां समूहः
सन्तानः, सन्मध्ये एकैकक्षणः सन्तानी । १५ विनातीयस्य । १६ पूर्वरूपस्य ।
१७ उत्तररूपाकरणे ।

रसाद्रूपानुमानं न स्यात् । 'तयो दृष्टत्वाद्ब दोषः' इत्यन्यत्रापि समानम्, विद्युच्छब्दादेरपि विद्युच्छब्दाद्यन्तरोपलम्भात् ।

न चैकत्र सत्त्वक्षणिकत्वयोः सहभावोपलम्भात्सर्वत्र तत्तदनुमानं युक्तम्; अन्यथा सुवर्णं सत्त्वादेव शुक्लतानुमितिसङ्गः, ५ शुक्ले शङ्खे शुक्लतया तत्सहभावोपलम्भात् । अथ सुवर्णाकारनिर्मासिप्रत्यक्षेण शुक्लतानुमानस्य बाधितत्वात् तत्र शुक्लतासिद्धिः; तर्हि घटादौ क्षणिकतानुमानस्य 'स एवायम्' इत्येकत्वप्रतिभासेन बाधितत्वात्प्रतिक्षणविनाशितासिद्धिर्न स्यात् ।

अथैकत्वप्रत्यभिज्ञा भिन्नेष्वपि लूनपुनर्जातनखकेशादिष्वभेद-
१० मुल्लिखन्ती प्रतीयत इत्येकत्वे नाऽसौ प्रमाणम्; नन्वेवं कामलोपहृताक्षाणां घवलिमामाविभ्राणेष्वपि पदार्थेषु पीताकारनिर्मासिप्रत्यक्षमुदेतीति सत्यपीताकारेपि न तत्प्रमाणम् । भ्रान्ताद्भ्रान्तस्य विशेषेण्यत्रापि समानः । प्रसाधितं च प्रत्यभिज्ञानस्याभ्रान्तत्वं प्रागित्यलमतिप्रसङ्गेन ।

१५ अथ विपक्षे बाधकप्रमाणवलात्सत्त्वक्षणिकत्वयोरविनाभावोपगम्यते । ननु तत्र सत्त्वस्य बाधकं प्रत्यक्षम्, अनुमानं वा स्यात्? न तावत्प्रत्यक्षम्; तत्र क्षणिकत्वस्याप्रतिभासनात् । न चाप्रतिभासमानक्षणक्षयस्वरूपं प्रत्यक्षं विपक्षाद्भ्यावर्त्य सत्त्वं क्षणिकत्वनियतमादर्शयितुं समर्थम् । अथानुमानेन तत्ततो व्यावर्त्य क्षणिक-
२० कनियततया साध्येत; ननु तदनुमानेष्वविनाभावस्यानुमानवलात्प्रसिद्धिः, तथा चानवस्था । न च तद्बाधकमनुमानमस्ति ।

ननु 'यत्र क्रमयौगपद्याभ्यामर्थक्रियाविरोधो न तत्सत् यथा गगनाम्भोरुहम्, अस्ति च नित्ये सः' इत्येतानुमानात्ततो व्यावर्त्तमानं सत्त्वमनित्ये एवावतिष्ठत इत्यवसीयते; तन्न; सत्त्वाऽ-
२५ क्षणिकत्वयोर्विरोधाऽसिद्धेः । विरोधो हि सहानवस्थानलक्षणः, परस्परपरिहारस्थितिलक्षणो वा स्यात्? न तावदाद्यः; स हि पदार्थस्य पूर्वमुपलम्भे पश्चात्पदार्थान्तरसङ्गात्वादभावावगतौ निश्चीयते शीतोष्णवत् । न च नित्यत्वस्योपलम्भोस्ति सत्त्वप्रसङ्गात् । नापि द्वितीयो विरोधस्तयोः सम्भवति; नित्यत्वपरि-
३० हारेण सत्त्वस्य तत्परिहारेण वा नित्यत्वस्यानवस्थानात् ।

१ अत्यत्र मातुलिके रूपं रसादिति । २ उपादानकारणाद्रूपत्वं सजातीयरूपकरण-
प्रकारेण । ३ सुतीवपरिच्छेदे । ४ प्रत्यभिज्ञानस्याभ्रान्तत्वसमर्थनेन । ५ अक्षणिकत्वे ।
६ सत्त्वस्य । ७ वसः । ८ सत्त्वं क्षणिकत्वनियतं तदन्वयव्यतिरेकानुविधानादिति ।
९ नित्यं सन्न भवति क्रमयौगपद्याभ्यामर्थक्रियाविरोधात् । १० तयः प्रकाशयोरिव वा ।

‘क्षणिकतापरिहारेण ह्यक्षणिकता व्यवस्थिता तत्परिहारेण च क्षणिकता’ इत्यनयोः परस्परपरिहारस्थितिलक्षणो विरोधः । न चार्थक्रियालक्षणसत्त्वस्य क्षणिकतया व्याप्तत्वाच्चित्त्वेन विरोधः; अन्योन्याश्रयानुषङ्गात्—अर्थक्रियालक्षणं सत्त्वं क्षणिकतया व्याप्तं नित्यताविरोधात्सिद्ध्यति, सोप्यस्य क्षणिकतया व्याप्तेरिति । ५

ननु च अर्थक्रियायाः क्रमयौगपद्याभ्यां व्याप्तत्वात्तयोश्चाक्ष-
णिकेऽसम्भवात्कुतः क्रमवत्यऽर्थक्रिया नित्ये सम्भविनी ? न च
सहकारिक्रमाच्चित्त्वे क्रमवत्यप्यसौ सम्भवति; अस्योपकारकानु-
पकारकपक्षयोः सहकार्यऽपेक्षया एवासम्भवात् । नापि यौगपद्ये-
नासौ नित्ये सम्भवति; पूर्वोत्तरकार्ययोरेकक्षण एवोत्पत्तेर्द्वितीय- १०
क्षणे तस्यानर्थक्रियाकारित्वेनावस्तुत्वप्रसङ्गात्; इत्यप्यसारम्;
एकान्तनित्यवदऽनित्येपि क्रमाक्रमाभ्यामर्थक्रियाऽसम्भवात्,
तस्याः कैथञ्चिच्चित्त्वे एव सम्भवात्, तत्र क्रमाक्रमवृत्त्यनेकस्वभाव-
त्वप्रसिद्धेः, अन्यत्र तु तत्स्वभावत्वाप्रसिद्धेः पूर्वापरस्वभावत्यागो-
पादानान्वितरूपाभावात्, सकृदनेकशक्त्यात्मकत्वाभावाच्च । न १५
खलु कूटस्थेयं पूर्वोत्तरस्वभावत्यागोपादाने स्तः, क्षणिके चान्वितं
रूपमस्ति, यतः क्रमः कालकृतो देशकृतो वा । नापि युगपदनेक-
स्वभावत्वं यतो यौगपद्यं स्यात्, कौटस्थ्यविरोधाच्चिरन्वयविना-
शित्वव्याघातोच्च ।

किञ्च, क्षणिकं घट्टु विनष्टं सत्कार्यमुत्पादयति, अघिनष्टम्, २०
उभयरूपम्, अनुभयरूपं वा ? न तावद्विनष्टम्; चिरतरनष्टत्वेवा-
नन्तरनष्टस्याप्यसत्त्वेन जनकत्वविरोधात् । नाप्यविनष्टम्; क्षण-
भङ्गभङ्गप्रसङ्गात् सकलशून्यतानुषङ्गाद्वा, सकलकार्याणामेकदैवो-
त्पद्य विनाशात् । नाप्युभयरूपम्; निरंशैकस्वभावस्य विरुद्धोभय-
रूपासम्भवात् । नाप्यनुभयरूपम्; अन्योन्यव्यवच्छेदरूपाणामेक- २५
निषेधस्यापरविधानान्तरीयकत्वेर्नानुभयरूपत्वायोगात् ।

कथं च निरन्वयनाशित्वे कारणस्योपादानसहकारित्वस्य
व्यवस्था तत्स्वरूपापरिज्ञानात् ? उपादानकारणस्य हि स्वरूपं किं

१ न तु सत्त्वाक्षणिकत्वयोः । २ प्रथममेवे दाव्यवाचकभावेन विरोधः । द्वितीय-
भेदे तु समानेनैव—यत्र क्षणिकत्वं तत्र न सत्त्वमिति विरोधः । ३ इत्यन्तरेण ।
४ सर्वथा क्षणिके । ५ अवसितस्य पदार्थसैक्यस्य हि नानादेशकालकालाभ्यापित्वं
देशक्रमः कालक्रमश्च । ६ नित्यक्षणिकान्वा कृतानां कार्याणाम् । ७ पक्षनेकात्मक-
त्वप्रसक्तैः । ८ क्षणिकत्वं । ९ युगपदनेकस्वभावत्ववत् क्रमेणापि तथा प्राप्तेः ।
१० द्वितीयक्षणे कार्याजनकत्वात् । ११ अविनाशूत्त्वेन । १२ एकं कार्यं प्रत्युपादान-
नत्वमपरं प्रति सहकारित्वमिति । १३ जैनो बौद्धं प्रति वक्ति । १४ बौद्धमते ।

स्वसन्ततिनिवृत्तौ कार्यजनकत्वम्, यथा मृत्पिण्डः स्वयं निवर्तमानो घटमुत्पादयति, आहोस्विदनेकस्मादुत्पद्यमाने कौर्ये स्वगतविशेषाधायकत्वम्, समनन्तरप्रत्ययत्वमात्रं वा स्यात्, नियमवदन्वयव्यतिरेकानुविधानं वा ? प्रथमपक्षे कथञ्चित्सन्ताननिवृत्तिः, सर्वथा वा ? कथञ्चिच्चेत्; परमतप्रसङ्गः । सर्वथा चेत्; परलोकभावानुषङ्गो ज्ञानसन्तानस्य सर्वथा निवृत्तेः ।

द्वितीयपक्षेपि किं स्वगतकतिपयविशेषाधायकत्वम्, सकलविशेषाधायकत्वं वा ? तत्राद्यविकल्पे सर्वज्ञज्ञाने स्वाकारार्पकस्यासदादिज्ञानस्य तत्प्रत्युत्पादानभावः, तथा च सन्तानसङ्करः । १० रूपस्य वा रूपज्ञानं प्रत्युत्पादानभावोऽनुषज्येत स्वगतकतिपयविशेषाधायकत्वाविशेषात् । रूपोपादानत्वे च परलोक्याय दत्तो ज्ञेयाञ्जलिः । कतिपयविशेषाधायकत्वेनोपादानत्वे च एकस्यैव ज्ञानीदिक्षणस्यानुवृत्तव्यावृत्ताऽनेकविद्वैधर्माम्ब्यासप्रसङ्गात् स एव परमतप्रसङ्गः । द्वितीयविकल्पे तु कथं निर्विकल्पकाद्विकल्पो-
१५त्पत्तिः रूपाकारात्समनन्तरप्रत्ययाद्द्रसाकारप्रत्ययोत्पत्तिर्वा, स्वगतसकलविशेषाधायकत्वाभावात् ? सन्तानवहुत्वोपागमात्सर्वस्य स्वसदृशादेवोत्पत्तिरित्यभ्युपगमे तु एकस्मिन्नापि पुरुषे प्रमाद्वहुत्वोत्पत्तिः । तथा च गवाश्वदिदर्शनयोर्मिन्नसन्तानत्वादेकेन दृष्टेयं परैस्यानुसन्धीनं न स्यादेववत्सेन दृष्टे यद्दत्तवत् ।

१ (ज्ञानं प्रति) इन्द्रियार्थलोकादिकारणकलापात् । (घटं प्रति) मृदादिकारणकलापात् । २ ज्ञानलक्षणे घटदो वा । ३ पर्यायरूपेण । ४ द्रव्यरूपेणैव । ५ तथैव जैनानामपीदृत्वात् । ६ एकचन्मदि वर्त्तमानस्य, उत्तरोत्तरज्ञानसन्तानयवात्मेति वचनात् । ७ किञ्चिद्वत्त्वं वर्जयित्वाऽन्यान् चेतनत्वादिज्ञानगतविशेषान् यवात्मेति वचनात् । ८ सहकारिकारणमूतस्य । ९ असदादिज्ञानं यदा सर्वत्रो विषयीकरोति तदा तत्स्वाकारं कतिपयं समर्पयति यतः । १० सहकारिकारणमूतस्य । ११ कार्यभूतम् । १२ कतिपयविशेषाः=रूपगतजडत्वं वर्जयित्वा स्वगतमेतपीताभाकारविशेषाः । १३ रूपज्ञानस्य । १४ अचेतनरूपादुत्पादानाच्चैतन्योत्पत्तिर्यतः । १५ रूपं रूपज्ञाने रूपं समर्पयति न तु जडत्वम् । १६ आदिना अर्थादि । १७ आपैतानपिस्तादिविशेषापेक्षयाऽनुवृत्तव्यावृत्तरूप । १८ अनेकान्तात्मकत्वाच्च ज्ञानस्य । १९ उत्तरनिर्विकल्पकज्ञानस्योपादानात्सविकल्पकस्य सहकारिकारणात् । २० रूपज्ञानादुत्तररूपज्ञानस्योपादानादुत्तररूपज्ञानस्य सहकारिकारणात् । २१ एकस्मिन्पुरुषे । २२ निर्विकल्पकस्य निर्विकल्पकमुत्पादानं सविकल्पकस्य सविकल्पकमुत्पादानमिति भावः । २३ ज्ञानसन्तानस्य बहुत्वात् । २४ गोदर्शनेन । २५ अयादिदर्शनस्य । २६ य यदाहं पूर्वं गामद्राक्षं स यदाहमिदानीमर्थं पश्यामीति क्रमेण, युगपदशगामौ पश्यामीत्यक्रमेण च ।

किञ्च, सकलखगतविशेषाघायकत्वे सर्वात्मनोपादेयैक्षण्ये एवासौपयोगात् तत्रानुपयुक्तस्वभावान्तरभावान् एकसामग्र्य-
न्तर्गतं प्रति सहकारित्वाभावः, तत्कथं रूपादेः रसतो गतिः ?
स्वभावान्तरोपगमे त्रैलोक्यान्तर्गतान्यजन्यकार्यान्तरापेक्षया तस्या-
जनकत्वमपि स्वभावान्तरमभ्युपगन्तव्यम्, इत्यायातमेकस्यैवो-
पादानसहकार्यजनकत्वाद्यनेकविद्वधर्माध्यासितत्वम् । न चैते
धर्माः काल्पनिकाः; तत्कार्याणामपि तथात्वप्रसङ्गात् ।

सैमनन्तरप्रत्ययत्वमप्युपादानलक्षणमनुपपन्नम्; कार्ये सैमत्वं
कारणस्य सर्वात्मना, एकदेशेन वा ? सर्वात्मना चेत्; यथा
कारणस्य प्राग्भावित्वं तथा कार्यस्यापि स्यात्, तथा च सन्वेतर-
गोविषाणवदेककालत्वात्तयोः कार्यकारणभावो न स्यात् । तथा
कारणाभिमतस्यापि स्वकारणकालिता, तस्यापि सेति सैकलशून्यं
जगदापद्येत । कथञ्चित्समत्वे योगिष्ठानस्याप्यसदादिज्ञानाव-
लम्बनस्य तदाकारत्वेनैकसन्तानत्वप्रसङ्गः स्यात् ।

अनन्तरत्वं च देशकृतम्, कालकृतं वा स्यात् ? न तावद्देशकृतं
तत्रोपयोगि; व्यवहितदेशस्यापि इह जन्ममरणचित्तस्य भावि-
जन्मचित्तोपादानत्वोपेक्षमात् । नापि कालानन्तर्यं तत्; व्यवहित-
कालस्यापि जाग्रच्चित्तस्य प्रबुद्धचित्तोत्पत्ताद्युपादानत्वाभ्युपग-
मात् । अव्यवधानेन प्रौढभावमात्रमनन्तरत्वम्; इत्यप्ययुक्तम्;
क्षणिकैकान्तवादिनां विवक्षितक्षणानन्तरं निखिलजगत्क्षणाना-
मुत्पत्तेः सैवमामेकसन्तानत्वप्रसङ्गात् ।

निर्यैभवदन्वयव्यतिरेकानुविधानं तल्लक्षणम्; इत्यप्यसमीची-
नम्; वृद्धेतरचित्तानामप्युपादानोपादेयभावानुषङ्गात्, तेषामव्य-
भिचारेण कार्यकारणभूतत्वाविशेषात् । निर्यैवचित्तोत्पादात्पूर्वे

१ खगतसकलविशेषाघायकत्वे दूषणान्तरमाह । २ कार्यजन्ये । ३ रूपमुपादा-
नस्य । ४ पूर्वरूपरसौ एकसामग्री । ५ उच्यतेरसत् । ६ पूर्वरूपस्य । ७ ज्ञानम् ।
८ रूपाद्युपादानस्य । ९ आदिपदेन पूर्वरूपभावित्वमुत्तरकालनाशित्वम् । १० अय-
थार्थाः । ११ द्वितीयविकल्पः । १२ प्रलय-कारणम् । १३ समकालत्वमित्यर्थः ।
१४ सर्वात्मना समानत्वात् । १५ पूर्वरूपक्षणे कार्ये पूर्वतररूपक्षणस्य कारणभूतस्य
समत्वम् । १६ कार्यकारणयोरभावात् । १७ शाकत्वेन । १८ बहुव्रीहिः ।
१९ कथञ्चित्समत्वेन सङ्गाभावात् । २० धौगतेन । २१ निद्रामात् । २२ अन्येन
पशुना तिरोधायकेन । २३ पूर्वरूपस्य कारणस्य । २४ चेतनाऽचेतनानां कार्या-
णाम् । २५ चतुर्थविकल्पः । २६ सुगत । २७ किञ्चिच्च । २८ विचिं ज्ञानम् ।
२९ असदादिज्ञानसङ्गादेः सुगतस्यासदादिज्ञानविषयकज्ञानोत्पत्तिरसदाभावे नोत्पत्ति-
रित्यन्यन्यतिरेकान्याम् । ३० आक्षेपरहितचित्त ।

बुद्धचित्तं प्रति सन्तानान्तरचित्तस्याकारणत्वाच्च तेषामव्यभि-
चारी कार्यकारणभावः इति चेत्; यतः प्रभृति तेषां कार्यकारण-
भावस्तत्प्रभृतितस्तस्याव्यभिचारात्, अन्यथाऽस्याऽसर्वज्ञत्वं
स्यात् । “नाकारणं विषयः” [] इत्यभ्युपगमात् ।

५ अव्यभिचारेण कार्यकारणभूतत्वाविशेषेषु प्रत्यासत्तिविशेष-
वशात्केर्पाञ्चिवेषोपादानोपादेयभावो न सर्वेषामिति चेत्; स
क्रोन्योन्यत्रैकैद्रव्यतादात्म्यात् ? देशप्रत्यासत्तेः रूपरसादिभिर्वाता-
तपादिभिर्वा व्यभिचारात् । कालप्रत्यासत्तेः एकसमयवर्तिभि-
रशेषार्थैरनेकान्तात् । भावप्रत्यासत्तेश्च एकार्थाद्भूतानेकपुरुष-
१० विज्ञानैरनेकान्तात् ।

न चात्रान्वयव्यतिरेकानुविधानं घटते । न खलु समर्थे
कारणे सत्यमवर्ततः स्वैयमेव पश्चाद्भवतस्तदन्वयव्यतिरेकानु-
विधानं नाम नित्यवत् । ‘स्वदेशवत्स्वकाले सति समर्थे
कारणे कार्यं जायते नासति’ इत्येतावता क्षणिकपक्षेऽन्वयव्यति-
१५ रेकानुविधिने नित्येऽपि तत्स्यात्, स्वकालेऽनाद्यनन्ते सति समर्थे
नित्ये स्वैयसमये कार्यस्योत्पत्तेरसत्यऽनुत्पत्तेश्च प्रतीयमानत्वात् ।
सर्वदा नित्ये समर्थे सति स्वकाले एव कार्यं भवत्कथं तदन्वय-
व्यतिरेकानुविधायीति चेत् ? तर्हि कारणक्षणात्पूर्वं पश्चाद्याना-
द्यनन्ते तदभावेऽविशिष्टे क्वचिदेव तदभावसमये भवत्कार्यं कथं
२० तदनुविधायीति समानम् ?

नित्यस्य प्रतिक्षणमनेककार्यकारित्वे क्रमशोनेकस्वभावत्वसिद्धेः
कथमेकत्वं स्यादिति चेत् ? क्षणिकस्य कथमिति समः पर्यनु-
योगः ? ईं हि क्षणस्थितिरैकोपि भावोऽनेकस्वभावो विचित्र-
कार्यत्वान्नानार्थक्षणवत् । ईं हि कारणशक्तिभेदमन्तरेण कार्य-
२५ नानात्वं युक्तं रूपादिज्ञानवत् । यथैव हि कर्कटिकादौ रूपादि-
ज्ञानानि रूपादिस्वभावभेदनिबन्धनानि तथा क्षणस्थितेरैकसा-

१ साक्षवत् । २ निराक्षवच्चित्तोत्पत्तेः । ३ यदैव घटस्तदैव घृतिपण्ड इति ।
४ बुद्धस्य । ५ यत्सुगतशानोत्पत्तौ कारणं तदैव विषयः । ६ सुगतनिर्वाचो
परस्परम् । ७ अत्रात्मैव एकद्रव्यम् । ८ प्रत्यासत्तिरत्रैकवयम्, यत्र यत्र देशप्रत्या-
सत्तिस्तत्र तत्रोपादानोपादेयभाव इत्युच्यमाने । ९ भावः=स्वरूपम् । १० क्षणिके ।
११ पूर्वक्षणे जाग्रद्दशान्त्वन्विते । १२ उत्तरक्षणस्य प्रबुद्धचित्तस्य । १३ कारणं
विना । १४ सौगतैनादौ क्रियमाणे । १५ कारणे । १६ अव्यापकत्वेनाभिमतं ।
१७ क्षणिकस्यानेकस्वभावत्वं नास्त्यतः कथं समः पर्यनुयोग इत्याह । १८ विचित्र-
कार्यत्वमस्तु न तत्रैकस्वभावत्वमिति सन्दिग्धानैकान्तिकत्वे सतीदम् ।

त्प्रदीपादिलक्षणाद् चर्तिकादादितैलशोषादिविचित्रकार्याणि शक्ति-
मेदनिमित्तकानि व्यवतिष्ठन्ते, अन्यथा रूपादेरपि नानात्वं न
स्यात् ।

ननु च शक्तिमैतोऽर्थान्तरानर्थान्तरपक्षयोः शक्तीनामघट-
नात्तासां परमार्थसत्त्वाभावः; तर्हि रूपादीनामपि प्रतीतिसि-५
द्भद्रव्यादर्थान्तरानर्थान्तरविकल्पयोरसम्भवात्परमार्थसत्त्वाभावः
स्यात् । प्रत्यक्षबुद्धौ प्रतिभासमानत्वाद्ब्रूपादयः परमार्थसन्तो न
पुनस्तच्छक्यस्तासामनुमानबुद्धौ प्रतिभासमानत्वात्; इत्यप्य-
शुक्तम्; क्षणक्षयस्वर्गप्रापणशक्त्यादीनामपरमार्थसत्त्वप्रसङ्गात् ।
ततो यथा क्षणिकस्य युगपदनेककार्यकारित्वेष्येकत्वाविरोधः, १०
तथाऽक्षणिकस्य क्रमशोनेककार्यकारित्वेपीत्यनवद्यम् ।

यथार्थक्रियालक्षणं सत्त्वमित्युक्तम्; तत्र लक्षणशब्दः कार-
णार्थः, स्वरूपार्थः, ज्ञापकार्थो वा स्यात् ? प्रथमपक्षे किमर्थक्रिया
लक्षणं कारणं सत्त्वस्य, तद्वार्थक्रियायाः ? तत्रार्थक्रियातः सत्त्व-
स्योत्पत्तौ प्राक् पदार्थानां सत्त्वमन्तरेणाप्यस्याः प्रादुर्भावाधि-१५
हेतुत्वं निराधारकत्वं धातुष्येत । अथ सत्त्वादर्थक्रियोत्पद्यते;
तदार्थक्रियातः प्रागपि सत्त्वसिद्धेर्भावानां स्वरूपसत्त्वमायातम् ।

अथ स्वरूपार्थोऽसौ; तत्रापि तद्धेतोरसत्त्वप्रसङ्गः, न ह्यर्थक्रिया-
काले तद्धेतुर्विद्यंते । न चान्यकालस्यास्यान्यकाला सा स्वरूपम-
तिप्रसङ्गात् ।

२०

नापि ज्ञापकार्थोऽसौ; अर्थक्रियाकालेऽर्थस्यासत्त्वादेव । असत्-
त्वास्याऽतः कथं सत्ताश्चित्तरितिप्रसङ्गात् ? न चार्थक्रियोर्दधा-
त्प्राक् कारणमासीदिति व्यवस्थापयितुं शक्यम् । यतो यदि
स्वरूपेण पूर्वं हेतुर्वगतो भवेत्तदनन्तरं चार्थक्रिया, तदार्थक्रिया
प्रतिपक्षसम्बन्धोर्पलम्ब्यमाना प्राग्धेतुसत्ता व्यवस्थापयतीति २५

१ आदिना स्वरूपकाशनादिग्रहणम् । २ अर्थात्सकाशात् । ३ भिन्नाक्षेचलेति
सम्बन्धमात्रः । सम्बन्धसिद्धयुपकारकत्वेनेऽनवस्था । अभिन्नाक्षेचलत्वं एव
शक्तिमत् एव वा स्युः । ४ तस्य प्रदीपस्य । ५ साधनं विचार्यते । ६ लक्ष्यते
गन्त्यते कार्यमनेनेति लक्षणं कारणमित्यर्थः—अनेकार्थत्वाद्भातुंजात् । ७ सत्त्वस्य ।
८ सत्त्वस्य । ९ द्वयोः पक्षयोर्मध्ये । १० कारणभूत्वात् । ११ सर्वथा क्षणिकत्वात् ।
१२ न हि स्वरूपिसरूपयोः कालभेदो यतः । १३ गगनकुसुमादेरपि ज्ञापकत्व-
प्रसङ्गात् । १४ अर्थक्रिया—ज्ञानपानादिः । १५ जलादिलक्षणः अर्थक्रियायाः
१६ कारणेन सह ।

स्यात् । न चार्थक्रियामन्तरेण हेतुः स्वरूपेण कदाचिदप्युपलब्धः
परैः स्वरूपसत्त्वप्रसङ्गात् ।

अर्थक्रियायाश्चापरार्थक्रिया यदि सत्त्वव्यवस्थापिका; तदान-
वस्था । न चार्थक्रियाऽनधिगतसत्त्वस्वरूपापि हेतुसत्त्वव्यवस्था-
पिका; अश्वविषाणादेरपि तत्सत्त्वव्यवस्थापकत्वानुषङ्गात् । न
च हेतुजन्यत्वादर्थक्रिया सती नार्थक्रियान्तरोदयात्, इत्यभि-
घातव्यम्; इतरेतराश्रयानुषङ्गात्-हेतुसत्त्वाच्चऽर्थक्रिया सती,
तत्सत्त्वाच्च हेतोः सत्त्वमिति ।

अस्तु चार्थक्रियालक्षणं सत्त्वम् । तथाप्यतोर्थानां क्षणस्थायिता
१० क्षणिकत्वं साध्येत, क्षणादूर्द्ध्वमभावो वा? प्रथमपक्षे सिद्धसा-
ध्यता, नित्यस्याप्यर्थस्य क्षणावस्थित्यभ्युपगमात् । कथमन्य-
थास्य सदावस्थितिः क्षणावस्थितिनिवन्धनत्वात् क्षणान्तराद्यव-
स्थितेः? अथ क्षणादूर्द्ध्वमभावः साध्यते; तन्न; अभावेन सदास्य
प्रतिवन्धासिद्धेः । न चाप्रतिवन्धविषयोऽश्वविषाणादिवद-
१५ नुमेयः । तन्न सत्त्वादप्यर्थानां क्षणिकत्वावगतिः ।

नापि कृतकत्वात्; उक्तप्रकारेण क्षणिके कार्यकारणभाव-
प्रतिषेधतः कृतकस्याऽसिद्धस्वरूपत्वेन तदवगतिं प्रत्यनङ्गत्वात् ।
तैतः प्रतीत्यनुरोधेन स्थिरः स्थूलः साधारणस्वभावश्च भावो-
भ्युपगन्तव्यः ।

२० ननु चार्णुनामयःशलाकाकल्पत्वेनान्योन्यं सम्बन्धाभावतः
स्थूलादिप्रतीतेर्भ्रान्तत्वात्कथं तद्वशात्तत्त्वभावो भावः स्यात्?
तथाहि-सम्बन्धोर्थानां पारतन्त्र्यलक्षणो वा स्यात्, रूपश्लेष-
लक्षणो वा स्यात्? प्रथमपक्षे किमसौ निष्पन्नयोः सम्बन्धिनोः
स्यात्, अनिष्पन्नयोर्वा? न तावदनिष्पन्नयोः स्वरूपस्यैवाऽसत्त्वात्
२५ शशाश्वविषाणवत् । निष्पन्नयोश्च पारतन्त्र्याभावादसम्बन्ध एव ।

उक्तञ्च—

“पारतन्त्र्यं हि सम्बन्धः सिद्धे का परतन्त्रता ।

तस्मात्सर्वस्य भावस्य सम्बन्धो नास्ति तत्त्वतः ॥ १ ॥”

[सम्बन्धपरी०]

३० नापि रूपश्लेषलक्षणोसौ; सम्बन्धिनोर्द्वित्वे रूपश्लेषविरो-

१ अर्थक्रियाकारणम् । २ सौगतैः । ३ अनुमानत्रयेण क्षणिकत्वं पदार्थानां न
सिद्ध्यति यतः । ४ रूपरसगन्धस्पर्शपरमाणूनां सजातीयविजातीयव्यावृत्तानां पर-
स्परसम्बन्धानाम् । ५ सम्बन्धिति । ६ सहाविन्ध्योरिव । ७ अन्योन्यस्वभावानु-
प्रवेशलक्षणः ।

धात् । तयोरेक्ये वा सुतरां सम्बन्धाभावः, सम्बन्धिनोरभावे सम्बन्धायोगात् द्विष्टत्वात्तस्य । अथ नैरन्तर्यं तयो रूपश्लेषः, नैः, अस्यान्तरालाभावरूपत्वेनाऽतास्विकत्वात् सम्बन्धरूपत्वा-योगः । निरन्तरतायाश्च सम्बन्धरूपत्वे सान्तरतापि कथं सम्बन्धो न स्यात् ?

किञ्च, असौ रूपश्लेषः सर्वात्मना, एकदेशेन वा स्यात् ? सर्वात्मना रूपश्लेषे अणूनां पिण्डः अणुमात्रः स्यात् । एकदेशेन तच्छ्लेषे किमेकदेशोस्तस्यात्मभूताः, परभूताः वा ? आत्मभूता-श्चेत्, न एकदेशेन रूपश्लेषस्तदभावात् । परभूताश्चेत्, तैरन्य-णूनां सर्वात्मनैकदेशेन वा रूपश्लेषे स एव पर्यनुयोगोऽत्रवस्था १० च स्यात् । तदुक्तम्—

“रूपश्लेषो हि सम्बन्धो द्वित्वे स च कथं भवेत् ।

तस्मात्प्रकृतिभिधानां सम्बन्धो नास्ति तत्त्वतः ॥ २ ॥”

[सम्बन्धपरी०]

किञ्च, परोपेक्षैव सम्बन्धः, तस्य द्विष्टत्वात् । तं चापेक्षते १५ माँवः स्वयं सन्, असन्वा ? न तावद्सन्; अपेक्षाधर्माश्रयत्ववि-रोधात् खरश्लेषत् । नापि सन्; सर्वनिराशंसत्वात्, अन्यथा सत्त्वविरोधात् । तन्न परापेक्षा नाम यद्रूपः सम्बन्धः सिद्ध्येत् । उक्तञ्च—

“परापेक्षा हि सम्बन्धः सोऽसन् कथमपेक्षते ।

२०

संश्च सर्वनिराशंसो भावः कथमपेक्षते ॥ ३ ॥”

[सम्बन्धपरी०]

किञ्च, असौ सम्बन्धः सम्बन्धिभ्यां भिन्नः, अभिन्नो वा ? यद्य-भिन्नः; तदा सम्बन्धिनावेव न सम्बन्धः कश्चित्, स एव वा न ताविति । भिन्नश्चेत्, सम्बन्धिनौ केर्वैलौ कथं सम्बन्धौ (द्वौ) २५ स्याताम् ?

भवतु वा सम्बन्धोर्थान्तरम्; तथापि तेनैकेन सम्बन्धेन सह द्वयोः सम्बन्धिनाः कः सम्बन्धः ? यथा सम्बन्धिना-र्थयोक्तदोषात् कश्चित्सम्बन्धस्तथात्रापि । तेनानयोः सम्बन्धा-

१ इति चेदित्युपरितः । २ अन्तरालाभावो नैरन्तर्यमिति । ३ शुच्छमावरूपत्वाद्-भावस्य । ४ निरन्तरतावत्पदाव्यवहारापेक्षत्वाविशेषात् । ५ अशाः । ६ निरशत्वात्तयोः । ७ सम्बन्धिनाः । ८ प्रकृत्या=स्वभावेन । ९ अणूनाम् । १० सम्बन्धलक्षणः । ११ सर्वेषु निराकांक्षत्वात् । १२ परमपेक्षते चेत् । १३ परत् । १४ सम्बन्ध-रहितौ । १५ सम्बन्धिभ्याम् ।

न्तराभ्युपगमे चानवस्था स्यात्तत्रापि सम्बन्धान्तरानुपपन्नात् । तत्र सम्बन्धिनोः सम्बन्धबुद्धिर्वास्तवी तद्व्यतिरेकेणान्यस्य सम्बन्धस्यासम्भवात् । तदुक्तम्—

“द्वयोरेकाभिसम्बन्धात्सम्बन्धो यदि तद्भयोः ।

५ कः सम्बन्धोर्नवस्था च न सम्बन्धमतिस्तथा ॥ ४ ॥

ततः—

तौ च भावौ तदन्यत्र सर्वे ते स्वात्मनि स्थिताः ।

इत्यमिथाः स्वयं भावास्तां मिश्रयति कल्पना ॥ ५ ॥”

[सम्बन्धपरी०]

१० तौ च भावौ सम्बन्धिनौ ताभ्यामन्यत्र सम्बन्धः सर्वे ते स्वात्मनि स्वस्वरूपे स्थिताः । तेनामिथा व्यावृत्तस्वरूपाः स्वयं भावास्तथापि तान्मिश्रयति योजयति कल्पना । अत एव तद्व्यास्तवसम्बन्धाभावेपि तामेव कल्पनामनुबन्धानैर्व्यवहर्तुभिर्भावानां भेदोऽन्यापोहस्तस्य प्रत्यायनाय क्रियाकारकादिवाचिनः शब्दाः प्रयोज्यन्ते—‘देवदत्त गामभ्याज शुद्धां दण्डेन’ इत्यादयः । न खलु कारकाणां क्रियया सम्बन्धोस्ति; क्षणिकत्वेन क्रियाकाले कारकाणामसम्भवात् । उक्तञ्च—

“तामेव चानुबन्धनैः क्रियाकारकवाचिनः ।

भावसेदप्रतीत्यर्थे संयोज्यन्तेभिधायकाः ॥ ६ ॥”

[सम्बन्धपरी०]

२० कार्यकारणभावस्तर्हि सम्बन्धो भविष्यति; इत्यप्यसमीचीनम्; कार्यकारणयोरसहभावर्तस्तस्यापि द्विष्टस्यासम्भवात् । न खलु कारणकाले कार्यं तत्काले वा कारणमस्ति, तुल्यकालं कार्यकारणभावानुपपत्तेः सव्येतरगोविषाणवत् । तत्र सम्बन्धिनौ सहभाविनौ विद्येते येनानयोर्धैर्वमानोसौ सम्बन्धः स्यात् । अद्विष्टे च भवेत् सम्बन्धतानुपपत्तैव ।

कार्ये कारणे वा क्रमेणासौ सम्बन्धो वर्तते; इत्यप्यसम्प्रतम्; यतः क्रमेणापि भावः सम्बन्धाख्य एकत्र कारणे कार्ये

१ स च सम्बन्धिनौ च । २ सम्बन्धसम्बन्धिनोः । ३ अन्यवेति शेषः । ४ सम्बन्धः । ५ वासनारूपा कर्त्री । ६ भावास्तनी । ७ कल्पनेव मिश्रयति यतः । ८ सिरस्बुलसाधारणाकाररूपः । ९ जगोभ्यावृत्तिर्गोः, जगदभ्यावृत्तिर्वत् इत्यादिः । १० कल्पनाप्रवाहनी बुद्धिः । ११ सामान्यसम्बन्धः संदूष्य सम्बन्धविशेषं दूषकञ्चाह । १२ क्षणिकत्वात् । १३ कार्यकारणत्वयोः । १४ कार्यकारणत्वयोः ।

वा वर्चमानोऽन्यनिस्पृहः=कार्यकारणयोरन्यतरानपेक्षो नैकवृ-
त्तिमान् सम्बन्धो युक्तः, तदभावेपि=कार्यकारणयोरभावेपि
तद्भावात् । यदि पुनः कार्यकारणयोरेकं कार्यं कारणं चापेक्ष्या-
न्वत्र कार्ये कारणे वासौ सम्बन्धः क्रमेण वर्त्तत इति सस्पृह-
त्वेन द्विष्ट एवेत्यते; तदानेनापेक्ष्यमाणेनोपकारिणा भवितव्यं ५
यस्माद्रूपकार्यंऽपेक्ष्यः स्यान्नान्यः । कथं चोपकरोत्यऽसन् ? यदा
कारणकाले कार्यार्थो भावोऽसन् तत्काले वा कारणान्यस्तदा
नैवोपेक्ष्यार्थादसामर्थ्यात् ।

किञ्च, यद्येकार्थाभिसम्बन्धात्कार्यकारणता तयोः कार्यकार-
णभावत्वेनाभिमतयोः; तर्हि द्वित्वसंख्यापरत्वापरत्वविभागादि-१०
सम्बन्धात्प्राप्ता सा सर्व्यतरगोविषाणयोरपि । न येन केनचिदेकेन
सम्बन्धात्सेष्यते; किं तर्हि ? सम्बन्धलक्षणेनैवेति चेत्; तन्न;
द्विष्टो हि कश्चित्पदार्थः सम्बन्धः, नातोर्थद्वयामिसम्बन्धाद-
न्यतस्य लक्षणम्, येनास्य संख्यादेर्विशेषो व्यवस्थान्येत ।

कैस्यचिद्भावे भवोऽभावे चाभावः तौत्रुपाधी विशेषणं यस्य १५
योगस्य=सम्बन्धस्य स कार्यकारणता यदि न सर्व्यसम्बन्धः;
तदा तावेव योगोपाधी भावाभावौ कार्यकारणताऽस्तु किमसत्स-
म्बन्धकल्पनया ? सेदौचेत् 'भावे हि भवोऽभावे चाभावः' इति
बहवोभिर्धेयाः कथं कार्यकारणतेत्येकार्थाभिघायिना शब्दे-
नोच्यन्ते ? नन्वयं शब्दो नियोकारं समाश्रितः । नियोक्ता हि यं २०
शब्दं यथा प्रयुङ्क्ते तथा प्रोह, इत्यनेकत्राप्येकं श्रुतिर्न विरुध्यते
इति तावेव कार्यकारणता ।

यस्मात् पश्यन्नेकं कारणमिमतमुपलब्धिलक्षणप्राप्तस्याऽदृष्टस्य
कार्यार्थस्य दर्शने सति तद्दर्शने च सत्यऽपश्यत्कार्यमन्वेति

१ 'अन्यनिस्पृहस्य' प्रत्ययः । २ प्रत्ययः । ३ अन्यतरस्य । ४ अस्य कार्यसदं
कारणमिति । ५ हेतोः । ६ कार्येण कारणेन वा । ७ सम्बन्धेन । ८ लोके । ९ कार्य-
कारणमपेक्ष्य कारणे कार्यमपेक्ष्य वा वर्त्तते सम्बन्धस्तम् । १० स्रविषाणादिवत् ।
११ सम्बन्धलक्षणम् । १२ इन्द्रः । १३ आदिना प्रयुक्तत्वादि । १४ द्वित्वसंख्यालक्षणे-
कार्याभिसम्बन्धसाविशेषात् । १५ प्रकृतं सत् । १६ कार्यस्य कारणस्य वा । १७ कार्य-
कारणतायाः स्यात् । १८ भावाभावा । १९ उपाधिः=विशेषणम् । २० सम्बन्धः ।
२१ वैनाशाशङ्काह वौक्तः । २२ भावाभावान्यां कार्यकारणभावसम्बन्धस्य । २३ सम्ब-
न्धस्य । २४ चत्वारोऽर्थाः । २५ कार्यकारणसम्बन्धप्रतिपादकः कार्यकारणलक्षणः ।
२६ प्रकार्याभिमिश्रितानेकार्यं नामिश्रितम् । २७ प्रकार्याभनेकार्यान्वा । २८ यथोदविशब्द-
उदकानि अक्षिणीयन्ते स उदधिरित्यादिः । २९ कारणमिमतपदार्थदर्शनात्पूर्वम् ।

‘इदमंतो भवति’ इति प्रतिपद्यते जनः ‘अत इदं जातम्’ इत्याख्यातुर्भिर्विनापि । तस्माद्दर्शनादर्शने-विषयिणि विषयोपचारात्-भावाभावौ मुक्त्वा कार्यबुद्धेरसम्भवार्त्तं कार्यादिश्रुतिरेष्यन्न ‘भावाभावयोर्मा लोकाः प्रतिपदमिथ्यतीं शब्दमालामभिवध्यात्’ ५ इति व्यवहारलाघवार्थं निवेशितेति ।

अन्वयव्यतिरेकाभ्यां कार्यकारणता नान्या चेत् कथं भावाभावाभ्यां सा प्रसाध्यते ? तदभावाभावात् लिङ्गात्कार्यतागतिर्याप्यनुवर्णयति ‘अस्येदं कार्यं कारणं च’ इति; सङ्केतविषयाभ्यां सा । यथा ‘गौरयं सास्त्रादिमत्त्वात्’ इत्यनेन गोव्यवहारस्य १० विषयः प्रदर्श्यते । यतश्च ‘भावे भाविनि=भवनधर्मिणि तद्भावः=कारणाभिमतस्य भाव एव कारणत्वम्, भावे एव कारणाभिमतस्य भाविता कार्याभिमतस्य कार्यत्वम्’ इति प्रसिद्धे प्रत्यक्षानुपलम्भतो हेतुफलते । ततो भावाभावान्वेव कार्यकारणता नान्या । तेनैतावन्मात्रं=भावाभावौ तावेष तैत्वं यस्यार्थस्यासावे १५ तावन्मात्रतत्त्वः, सौथो येषां विकल्पानां ते एतावन्मात्रतरत्त्वार्थाः=एतावन्मात्रधीजाः, कार्यकारणगोचराः, दर्शयन्ति घटितानिवसम्बद्धानिवाऽसम्बद्धानप्यर्थान् । एवं घटनाच्च मिथ्यार्थाः ।

किञ्च, असौ कार्यकारणभूतोर्थो भिन्नः, अभिन्नो वा स्यात् ? यदि भिन्नः, तर्हि भिन्ने का घटना स्वस्वभावव्यवस्थितेः ? अथाऽ- २० भिन्नः, तदाऽभिन्ने कार्यकारणतापि का ? नैव स्यात् ।

स्यादेतत्, न भिन्नस्याभिन्नस्य वा सम्बन्धः । किं तर्हि ? सम्बन्धाख्येनैकेन सम्बन्धात्, इत्यत्रापि भावे सत्तायामर्थस्य

१ कथम् ? तथा हि । २ स्वयम् । ३ शब्दोच्छेदमन्तरेण उपदेशकैः पुरुषैः । ४ कारणस्य । ५ कार्यस्य । ६ कार्यकारणाभिमतयोः पदार्थयोः कार्यकारणता भवत्विति । ७ दर्शनादर्शनलक्षणे ज्ञाने । ८ भावाभावान्वेष कार्यं, नान्यदिलषः । ९ श्रुतिः=शब्दः । १० न केवलं कार्यकारणश्रुतिः किन्तु । ११ भावे भावः अभावे चाऽभाव इत्येतावतीम् । १२ समर्थिता । १३ इति=सम्बन्धवादी श्रुतेः । १४ भावाभावाभ्यामनुमीयमाना यदि कार्यकारणता तान्यामन्या तदा दूषणम् । १५ सम्बन्धकादिना । १६ तस्य=कारणस्य । १७ अस्य कारणस्येदं कार्यमस्य च कार्यस्येदं कारणमिति । १८ अनुमानेन । १९ प्रकारान्तरेण तावेष कार्यकारणतेति निरूपयति । २० कार्यलक्षणे । २१ स्वरूपम् । २२ कार्यकारणस्य । २३ अर्थः=विषयः । २४ आन्तश्चानानाम् । २५ वसः । २६ विकल्पाः । २७ प्रलयैः । २८ विकल्पाः । २९ परस्परम् । ३० सम्बन्धः । ३१ कार्यकारणयोः । ३२ कार्यस्य कारणस्य वा । ३३ प्रलयोपपत्तम् । ३४ भिन्नस्य ।

सम्बन्धस्य विशिष्टौ कार्यकारणामिमतौ विशिष्टौ स्याताम् कथं च तौ संयोगिसमवायिनौ ? आदिग्रहणात्स्वस्वाम्यौदिकम्, सर्वमेतेनानन्तरोकेन सामान्यसम्बन्धप्रतिषेधेन चिन्तितम् ।

संयोग्यादीनामन्योन्यमनुपकाराच्चाऽजन्यजनकभावाच्च न सम्बन्धी च तादृशानुपकारोपकारकभूतः । ५

अथास्ति कश्चित्समवायी योऽवयविरूपं कार्यं जनयति अतो नानुपकारादसम्बन्धितेति; तन्न; यतो जननेपि कार्यस्य केनचित्समवायिनाभ्युपगम्यमाने समवायी नास्ती तदा जननकाले कार्यस्यानिर्घण्टेः । न च ततो जननात्समवायित्वं सिद्ध्यति; कुम्भकारादेरपि घटे समवायित्वप्रसङ्गात् । तैयोः समवायिनोः १० परस्परमनुपकारेपि ताभ्यां वा समवायस्य नित्यतया समवायेन वा तयोः परैत्र वा कश्चिदनुपकारेपि सम्बन्धो यदीभ्यते; तदा विश्वं परस्परसम्बद्धं समवायि परस्परं स्यात् । यदि च संयोगस्य कार्यत्वात्तस्य ताभ्यां जननात्संयोगिता तैयोः तदा संयोगजननेपीष्टौ, ततः संयोगजननाच्च तौ संयोगिनौ, कर्मणोर्पि १५ संयोगितापत्तेः । संयोगो ह्यन्यतरकर्मजः उभयकर्मजश्चेत्यते । आदिग्रहणात्संयोगस्यैवापि संयोगिता स्यात् । न संयोगजननात्संयोगिता । किन्तर्हि ? स्यापनादिति चेत्; न स्थितिर्न प्रतिवर्तिता=ग्रन्थान्तरे प्रतिक्षिप्ता, स्थाप्यस्थापकयोर्जन्यजनकत्वाभावाज्ज्ञान्या स्थितिरिति । २०

“कार्यकारणभावोपि तयोरसद्भावतः ।

प्रसिद्ध्यति कथं द्विष्टोऽद्विष्टे सम्बन्धता कथम् ॥ ७ ॥

- १ स्वरूपेण । २ कारिकायाम् । ३ स्वामिश्रणभावसम्बन्धादिकम् । ४ निराकृतम् । ५ अर्थः । ६ उपकारकः । ७ उन्वादिः । ८ सम्बन्धवादिना । ९ कार्येण समम् । १० समवायिना कारणेन कार्यस्य निष्पादनसमये कार्यस्यानिष्पन्नत्वात्कुतः कार्येण समत्वं कारणस्य ? तत्कारणे सति तस्य विनष्टत्वात् । ११ तन्दूनाम् । १२ तन्नुपपद्योः । १३ असमवायिनि कारणे कार्ये वा । १४ उपकारकत्वाभावाविशेषात् । १५ सम्बन्धस्य । १६ समवायिन्याम् । १७ संयोगिनोः । १८ क्रियायाः । १९ कर्मणः सकाशात्संयोगजननात् । २० तथा च इत्ययोरैव हि संयोगो, न कर्मणोरितेति सर्वं निषेदेत् । २१ शैलप्रवेगयोः । २२ मल्लयोः । २३ कारिकायाम् । २४ गुणरूपस्य । २५ इत्तपुस्तकसंयोगात्काष्ठपुस्तकसंयोगस्योत्पत्तेः । २६ संयोगिन्यां स्थाप्यपदायस्य संयोगवर्द्धनस्य स्थितिनिष्पादनात् । २७ संयोगिनोः संयोगस्य च । २८ निराकृतम् । २९ प्रत्ययैः । ३० जन्यजनकभावस्तु प्राक्प्रतिक्षिप्त इत्यर्थः ।

- क्रमेण भाव एकत्र वर्त्तमानोन्यनिस्पृहः ।
 तद्भावेपि तद्भावात्सम्बन्धौ नैकवृत्तिमान् ॥ ८ ॥
 यद्यपेक्ष्य तयोरेकमन्यत्रासौ प्रवर्त्तते ।
 उपकारी ह्यपेक्ष्यः स्यात्कथं चोपकरोत्यसन् ॥ ९ ॥
- ५ यद्येकार्थामिसम्बन्धात्कार्यकारणता तयोः ।
 प्राप्ता द्वित्वादिसम्बन्धात्सव्येतरविषाणयोः ॥ १० ॥
 द्विष्टो हि फञ्चित्सम्बन्धो नातो न्यत्तस्य लक्षणम् ।
 भावाभावोपधिर्योगः कार्यकारणता यदि ॥ ११ ॥
 योगोपाधी न तावैव कार्यकारणतात्र किम् ।
- १० मेदाच्चेन्नन्वऽयं शब्दो नियोक्तारं समाश्रितः ॥ १२ ॥
 पश्यन्नेकमदृष्टस्य दर्शने तद्दर्शने ।
 अपश्यत्कार्यमन्वेति विना व्याख्यातुर्भिर्जनः ॥ १३ ॥
 दर्शनादर्शने मुक्त्वा कार्यबुद्धेरसम्भवात् ।
 कार्यादिश्रुतिरप्यत्र लाघवार्यं निवेशिता ॥ १४ ॥
- १५ तद्भावाभावाच्चकार्यगतिर्याप्यनुवर्ण्यते ।
 सङ्केतविषयाख्या सा साक्षादेगौगतिर्यथा ॥ १५ ॥
 भावे भाविनि तद्भावो भाव एव च भावितौ ।
 प्रसिद्धे हेतुफलते प्रत्यक्षानुपलम्भतैः ॥ १६ ॥
 एतावन्मात्रतत्त्वार्थाः कार्यकारणगोचराः ।
- २० विकल्पा दर्शयन्त्यर्थान् मिथ्यार्था घटितानिच ॥ १७ ॥
 भिन्ने का घट्टेनाऽभिन्ने कार्यकारणतापि का ।
 भावे ह्यन्यैस्य विश्लिष्टौ श्लिष्टौ स्यातां कथं च तौ ॥ १८ ॥
 संयोगिसमवाय्यादि सर्वमेतेन चिन्तितम् ।
 अन्योन्यानुपकाराच्च न सम्बन्धी च तादृशः ॥ १९ ॥
- २५ जननेपि हि कार्यस्य केनचित्समवायिना ।
 समवायी तदा नासौ न ततोतिप्रसङ्गतः ॥ २० ॥
 तैथोरनुपकारेपि समवाये परत्र वा ।
 सम्बन्धो यदि विश्वं स्यात्समवायि परस्परम् ॥ २१ ॥
 संयोगजननेपीष्टौ ततः संयोगिनौ न तौ ।

१ कार्ये कारणे वा । २ तयोः कार्यकारणयोः । ३ तस्य=सम्बन्धस्य ।
 ४ सम्बन्धः । ५ नरम् । ६ कारणम् । ७ कार्यस्य । ८ तस्य=कारणस्य । ९ तस्य=
 कारणस्य । १० तस्य=कारणस्य । ११ साधनात् । १२ कार्यता । १३ जन्य-
 न्यतिरेकतः । १४ सम्बन्धः । १५ सम्बन्धस्य । १६ समवायिनोः । १७ तद्वैति
 शेषः । १८ कृतः । यतः ।

कर्मादियोगितापत्तेः स्थितिश्च प्रतिवर्णिता ॥ २२ ॥”

[सम्बन्धपरी०] इति ।

अस्तु वा कार्यकारणभावलक्षणः सम्बन्धः, तथाप्यस्य प्रति-
पन्नस्य, अप्रतिपन्नस्य वा सत्त्वं सिद्ध्येत्? न तावदप्रतिपन्नस्य, अति-
प्रसङ्गात् । प्रतिपन्नस्य चेत्, कुतोस्य प्रतिपत्तिः-प्रत्यक्षेण, प्रत्यक्षा-
नुपलम्भीभ्यां वा, अनुमानेन वा प्रकारान्तराऽसम्भवात्? प्रत्यक्षेण
चेत्, अग्निस्वरूपग्राहिणा, धूमस्वरूपग्राहिणा, उभयस्वरूपग्राहिणा
वा? न तावदग्निस्वरूपग्राहिणा; तद्धि तत्सद्भावमात्रमेव प्रतिपद्यते
न धूमस्वरूपम्, तदप्रतिपत्तौ च न तदपेक्षयाज्ञेः कारणत्वाव-
गमः । न हि प्रतियोगिस्वरूपाप्रतिपत्तौ तं प्रति कैस्यचित्कारण-
त्वमन्यद्वा घर्मान्तरं प्रत्येतुं शक्यमतिप्रसङ्गात् । नापि धूमस्वरूप-
ग्राहिणा प्रत्यक्षेण कार्यकारणभावावगमः; अत एव, उभयस्वरूप-
ग्रहणे खलु तन्निष्ठसम्बन्धावगमो युक्तो नान्यथा । नाप्युभयस्व-
रूपग्राहिणा; तत्रापि हि तयोः स्वरूपमात्रमेव प्रतिभासते न त्वज्ञे-
धूमं प्रति कारणत्वं तस्यैव तं प्रति कार्यत्वम् । न हि स्वस्वरूपनिष्ठ-
पदार्थद्वयस्यैकज्ञानप्रतिभासमात्रेण कार्यकारणभावप्रतिभासः,
घटपटादेरपि तत्प्रसङ्गात् । यत्प्रतिभासानन्तरमेकत्र ज्ञाने र्यस्य
प्रतिभासस्तयोस्तदवगमः; इत्यपि तादृशैः, घटप्रतिभासानन्तरं
पटस्यापि प्रतिभासनात् । न च 'क्रमभाविपदार्थद्वयप्रतिभास-
सम्बन्धव्येकं ज्ञानम्' इति वक्तुं शक्यम्; सर्वत्र प्रतिभासभेदस्य २०
भेदनिर्वन्धनत्वात् ।

अथाग्निधूमस्वरूपद्वयग्राहिज्ञानद्वयानन्तरभाविस्वरणसहकारी-
न्द्रियजनितविकल्पज्ञाने तद्वयस्य पूर्वापरकालभाविनः प्रतिभासा-
त्कार्यकारणभावनिश्चयो भविष्यतीत्युच्यते; तदप्युक्तिमात्रम् ।
चक्षुरादीनां तज्ज्ञानजननासामर्थ्ये स्वरणसव्यपेक्षणांमपि ज्ञे- २५

१ गगनाब्जादेरपि सत्त्वप्रसङ्गोऽप्रतिपन्नत्वाविशेषात् । २ अन्यव्यतिरेकज्ञाना-
न्यात् । ३ उक्तप्रकारेभ्यः प्रमाथान्तरस्य परेणानन्युपगमात् । ४ जयमग्निर्भूतस्य
कारणमिति । ५ प्रतियोगी=धूमः । ६ धूमम् । ७ मन्वादेर्वस्तुनः । ८ सादृश्या-
दिकम् । ९ स्वकुष्ठमादिकं प्रत्यपि कस्यचित्कारणत्वप्रसङ्गात् । १० अग्निधूमयोः ।
११ न त्वयमग्निर्भूतस्य कारणं धूमोऽज्ञेः कार्यमिति प्रतिभासः । १२ एव ।
१३ युक्तः । १४ तत्सम्बन्धकारणभावस्य । १५ एकज्ञानप्रतिभासभावत्वसाविशे-
षात् । १६ अर्थस्य । १७ कृतः । १८ यत् ज्ञानं परिहरति परः पदार्थद्वयप्रतिभासे ।
१९ अनुयायि । २० ज्ञाने ज्ञेये च । २१ घटपटयोरेव । २२ तौ अग्निधूममिति
मीमांसकान्युपपत्ते प्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्षे । २३ सम्बन्धवादिना । २४ अग्निधूमद्वय-
कार्यकारणभावज्ञानोरप्यद्वयतासामर्थ्ये । २५ ज्ञानस्य ।

कत्वविरोधात् । न हि परिमलस्मरणसव्यपेक्षं लोचनं 'सुरभि चन्दनम्' इति प्रत्ययमुत्पादयति । तत्सव्यपेक्षलोचनव्यापारानन्तरमेते कार्यकारणभूता इत्यवभासनात्तद्भावः सविकल्पकप्रत्यक्षप्रसिद्धः; इत्यप्यसमीचीनम्; गन्धस्यापि लोचनज्ञानविषयत्वप्रसङ्गात्, गन्धस्मरणसहकारिलोचनव्यापारानन्तरं 'सुरभि चन्दनम्' इति प्रत्ययप्रतीतेः । तत्र प्रत्यक्षेणासौ प्रतीयते ।

नापि प्रत्यक्षानुपलम्भभ्याम्; प्रत्यक्षस्येवानुपलम्भस्यापि प्रतिषेधविविक्तवस्तुमात्रविषयत्वेनात्राऽसामर्थ्यात् । अथाग्निस्त्राव एव धूमस्य भावस्तद्भावे चाभावः कार्यकारणभावः, स चैताभ्यां १० प्रतीयते इच्युच्यते; तर्हि वक्तृत्वस्यासर्वज्ञत्वादिना र्थाप्तिः स्यात् । तद्वि रागादिमत्त्वाऽसर्वज्ञत्वसद्भावे स्वात्मन्येव दृष्टम्, तद्भावे चोपलक्षकलादौ न दृष्टम् । तथा च सर्वज्ञवीतरागाद्यदत्तो जलाञ्जलिः ।

वैकृत्यस्य वक्तृकामताहेतुकत्वाभ्यां दोषः; रागादिसंज्ञावेषि १५ वक्तृकामताभावे तस्यासत्त्वात् । नन्वेवं व्यभिचारे विवक्षाप्यस्य निमित्तं न स्यात्, अनर्थविवक्षायामप्यनर्थशब्दोपलम्भात्, अन्यथा गोत्रैस्त्रलनादेरभावप्रसङ्गात् । अथार्थविवक्षाव्यभिचारेपि शब्दविवक्षायामप्यव्यभिचारः; न; स्वभावस्थायामन्यत्र गतचित्तस्य वा शब्दविवक्षाभावेपि वक्तृत्वसंवेदनात् । नै च व्यवहिता सा २० तद्धिमिचमिति वक्तव्यम्; प्रतिनियतकार्यकारणभावाभावप्रसङ्गात्, सर्वस्यै तैत्प्राप्तेः । अथ 'असर्वज्ञत्वाद्यभावे सर्वज्ञं वक्तृत्वं न सम्भवति' इत्यत्र प्रमाणाभावाच्च तस्य तेन कार्यकारणभावलक्षणः प्रतिवर्द्धः सिद्धयति; तैदग्निधूमादावपि समानम् ।

१ कर्तृपदम् । २ कर्मपदम् । ३ परिमलस्मरणसव्यपेक्षत्वेपि लोचने सति चन्दनं सुरभीति ज्ञानं प्राणेश्चिदादेव जायत इत्यर्थः । ४ अग्निधूमादयः । ५ तदपि कुत इत्याह । ६ अग्निधूमादि । ७ महाहृदादि । ८ असर्वज्ञत्वादिसद्भावे वक्तृत्वस्य सद्भावस्येव भावे चामात्र इति । ९ सर्वज्ञो वीतरागश्च नास्तीति भावः । १० सर्वज्ञास्त्रिभुवनादिना जैनादिना । ११ सर्वज्ञास्त्रिभुवनादय इत्याह । १२ साधनस्य । १३ न तु रागादि-हेतुकत्वात् । १४ असर्वज्ञत्वलक्षणः । १५ आदिना द्वेगादि । १६ वक्तृत्वकारणम् । १७ वक्तृत्वसाधनस्य । १८ अग्निदत्तम् । १९ जिनदत्तादि । २० नाम । २१ वक्तृत्वस्य । २२ कार्यान्तरे । २३ शब्दविवक्षा यदासीत्तदा वक्तृत्वस्य निमित्तं स्वात्मन्यन्तरेणाप्यव-हिता । अतोऽप्यवहिता या शब्दविवक्षा पश्चात्प्रतिमितं भवतीत्युक्ते आह । २४ व्यक-शितस्य कार्यस्य । २५ तस्य=व्यवहितकारणत्वस्य । २६ आदिना रागादिमत्तादि । २७ नृपु । २८ अविभाभावः । २९ यतो युक्तिमन्तरेण बौद्धेनोक्तमिति भावः ।

अथ 'अश्वभावे धूमस्य भावे तद्धेतुकताविरहात्सकृदप्यहेतो-
रग्रेस्तस्य भावो न स्यात्, इत्यते च महानसादावैश्रितः,
ततो नानग्रेर्धूमसद्भावः' इति प्रतिर्वन्धसिद्धिरित्यभिधीयते;
तदप्यभिधानमात्रम्; यथैव हीन्धनादेरेकदा समुद्भूतोप्यग्निः
अन्धदारणिनिर्मथनात् मर्ष्यादेर्वा भवन्नपलभ्यते, धूमो वाश्रितो ५
जायमानोपि गोपालघटिकादौ पावकोद्भूतधूमादप्युपजायते, तथा
'अश्वभावेपि कदाचिद्धूमो भविष्यति' इति कुतः प्रतिर्वन्धसिद्धिः ?
अर्थ 'यादृशोऽग्निरिन्धनादिसामग्रीतो जायमानो दृष्टो न तादृशोऽ-
रणितो मर्ष्यादेर्वा । धूमोपि यादृशोऽश्रितो न तादृशो गोपाल-
घटिकादौ वह्निप्रभवधूमात्, अन्यादृशात्तादृशभावेतिप्रसङ्गात्' १०
इति नाग्निजन्यधूमस्य तत्सदृशस्य चानग्रेर्भावः । भावे वा तादृ-
शधूमजनकस्याग्निस्वभावतैव इति न व्यभिचारः । तदुक्तम्—

“अग्निस्वभावः शक्रस्य मूर्धा यद्यग्निरेव सः ।

अथानग्निस्वभावोसौ धूमस्तत्र कथं भवेत् ॥”

[प्रमाणवा० ३३५] इत्यादि । १५

तदेतद्वृत्तेषु समानम्—'तद्धि सर्वक्षे वीतरागे वा यदि
स्यात्, असर्वक्षाद्रागादिमतो वा कदाचिदपि न स्यादेहेतोः
सकृदप्यसर्भवात्, भवति च तत्ततः, अतो न सर्वक्षे तस्य
तत्सदृशस्य वा सम्भवः' इति प्रतिर्वन्धसिद्धिः ।

किञ्च, कार्यकारणभावः सकलदेशकालावस्थिताखिलाग्निधूम- २०
व्यक्तिर्कोडीकरणेनावगतोऽनुमाननिमित्तम्, नान्यथा । न च
निर्विकल्पकसविकल्पकप्रत्यक्षस्येयति वस्तुनि व्यापारः, प्रत्यक्षा-
नुपलम्भयोर्वा ।

किञ्च, कार्योत्पादनशक्तिविशिष्टत्वं कारणत्वम् । न चासौ
शक्तिः प्रत्यक्षावसेया किन्तु कार्यदर्शनगम्या, २५

“शक्यः सर्वभावानां कार्यार्थापत्तिगोचराः”

[मी० श्लो० शून्यवाद श्लो० २५४] इत्यभिधानात् ।

१ धूमोऽग्नेः कार्यं न भवतीति भावः । २ तस्य भावः । ३ अनेन प्रकारेण ।
४ कार्यकारणयोरभिनाभावसिद्धिः । ५ जैनादिना भवता । ६ सर्वकान्तादेः ।
७ धूमाग्निलक्षणकार्यकारणयोः । ८ मतम् । ९ न दृष्ट इति सवन्धः । १० वह्नि-
प्रभवधूमः । ११ अलावधिसद्भावप्रसङ्गात् । १२ अर्थस्य । १३ धूमाग्निलक्षणकार्य-
कारणयोः । १४ तर्हि । १५ कुतः । १६ ववत्त्वस्य । १७ वक्तृत्वस्यासर्वक-
त्वादिना । १८ आशुपत्वेन यकत्वेन च ।

तत्र कार्योत्कारेणत्वावगमेऽनुमानाच्छक्त्यवगमः स्यात् । तत्रापि शक्तिकार्ययोः प्रतिबन्धप्रतीतिर्न प्रत्यक्षादेः; उक्तदोषानुषङ्गात् । अनुमानात्तदवगमेऽनवस्थेतेतराभ्रयानुषङ्गो वा स्यात् । एतेन तृतीयोपि पक्षश्चिन्तित इति ।

५ तदेतत्सर्वमसमीचीनम्; सम्बन्धस्याध्यक्षेणैवार्थानां प्रतिभासनात्; तथाहि-पटस्तन्नुसम्बद्ध एवावभासते, रूपादयश्च पटादिसम्बद्धाः । सम्बन्धाभावे तु तेषां विच्छिद्यः प्रतिभासः स्यात्, तन्मन्तरेणान्यस्य संश्लिष्टप्रतिभासहेतोरभावात् । कथं च सम्बन्धे प्रतीयमानेऽप्रतीयमानस्याप्यसम्बन्धस्य कल्पना प्रीति-
१० तिविरोधात् ? अर्थक्रियाविरोधश्च, अपूर्णोत्पन्नोत्पन्नसम्बन्धतो जलधारणाहरणाद्यर्थक्रियाकारित्वानुपपत्तेः । रज्जुवंशदण्डादीनामेकदेशाकर्षणे तदर्थोत्कर्षणं चासम्बन्धवैदिनो न स्यात् । अस्ति चैतत्सर्वम् । अतस्तदन्यथानुपपत्तिश्चासौ सिद्धः ।

यच्च-‘पारतन्त्र्यं हि’ इत्याद्युक्तम्; तदप्युक्तम्; एकत्वपरि-
१५ णतिलक्षणपारतन्त्र्यस्यार्थानां प्रतीतितः सुप्रसिद्धत्वात्, अन्यथोक्तदोषानुषङ्गः । न चार्थानां सम्बन्धः सर्वात्मनैकदेशेन वाभ्युपगम्यते येनोक्तदोषः स्यात् प्रकृष्टान्तरेणैवास्याभ्युपगमत् । सर्वाल्लैकदेशाभ्यां हि तस्यासम्भवात् प्रकारान्तरस्य वा भावात्, तत्प्रतीत्यन्यथानुपपत्तेश्च ताभ्यां जात्यन्तरतया श्लेषः
२० श्लिङ्गरूपक्षतानियन्धनो बन्धोऽभ्युपगन्तव्योऽसौ सकृतोपादि-
वत् । विश्लिष्टरूपतापरित्यागेन हि संश्लिष्टरूपतया कथञ्चि-
दन्यथात्वलक्षणैकत्वपरिणतिः सम्बन्धोऽर्थानां चित्रसंवेदने नीलाद्याकारवत् । न हि चित्रसंविदो जात्यन्तररूपतयोत्पत्त्यादा-

१ धूमादेः । २ अश्रयादेः । ३ कार्यकारणभावरूपेण । ४ अनुमानेन वासौ कार्यकारणभावः प्रतीयते इति । ५ बौद्धोक्तम् । ६ कथमर्थानां सम्बन्धसाध्यक्षेण प्रतिभासनमित्युक्ते सत्याह । ७ अवभासन्ते । ८ पटादेः सक्ताशक्तिः । ९ अन्यः कश्चित्संश्लिष्टप्रतिभासहेतुर्नविष्यतीत्युक्ते सत्याह । १० प्रत्यक्षेण । ११ अर्वाभावात् । १२ अन्ययेति शेषः । १३ असम्बन्धपक्षे । १४ अन्यस्य=श्लेषसकलभागस्य । १५ सौगतस्य । १६ परस्परसम्बद्धत्वात् । १७ मा नववित्युक्ते सत्याह । १८ अनुमानतः । १९ स्वरूपेण । २० बाह्याभ्यात्मिकानाम् । २१ तत्र सौगतस्य स्यात् । २२ जैनैः । २३ सौगतोक्तं । २४ पिण्डोगुमात्रः स्यादित्यादिः । २५ कथं इति सम्बन्ध इत्युक्ते सत्याह । २६ जैनैः । २७ अपरप्रकारस्य । २८ प्रकाशान्तरत्वेन । २९ परेण । ३० एकजलीभावात्मलक्षणया । ३१ पर्यायरूपेण । ३२ भावी दशियुद्धौ शुभकृत् तिष्ठतः पश्चात्संयोगेन कृत्वाऽन्यथासम्भवं पर्यायरूपं पानकं जातमिति । ३३ ज्ञानस्य । ३४ कथञ्चित्नीलाकारेभ्योऽश्रयविवेचनत्वेन । ३५ उत्पत्तेः ।

द्वयोः नीलाद्यनेकाकारैः सम्बन्धः, सर्वात्मनैकदेशेन वा तैस्तस्याः सम्बन्धे प्रौक्तौषधदोषानुपपन्नाविशेषात् ।

स चैवंविधः सम्बन्धोर्यानां क्वचिन्निखिलप्रदेशानामन्योन्य-प्रदेशानुप्रवेशतः-यथा सक्ततोयादीनाम्, क्वचित्तु प्रदेशसंनिष्ठतामात्रेण-यथाङ्गुल्यादीनाम् । न चान्तर्वह्निर्वा सांशवस्तुवादिनः ५ सांशत्वानुपपन्नो दोषाय; इष्टत्वात् । न चैवमनवस्था; तद्वैतस्तत्प्रदेशानामत्यन्तभेदाभावात् । तद्भेदे हि तेषामपि तद्वता प्रदेशान्तरैः सम्बन्ध इत्यनवस्था स्यात् नान्यथा, अनेकान्तात्मैकवस्तुनोऽत्यन्तभेदाभेदाभ्यां जात्यन्तरत्वाच्चित्रसंवेदनवदेव ।

नैवेवं परमाणूनामप्यंशवस्त्वप्रसङ्गः स्यात्; इत्यप्यनुत्तरम्; १० यतोऽत्रांशशब्दः स्वभावार्थः, अवयवार्थो वा स्यात् ? यदि स्वभावार्थः; न कश्चिद्दोषस्तेषां विभिन्नदिग्दिग्भागव्यवस्थितानेकाणुभिः सम्बन्धान्नैथानुपपत्त्या तावद्धा स्वभावभेदोपपत्तेः ! अवयवार्थस्तु तत्रासौ नोपपद्यते; तेषामभेदत्वेनावयवासम्भवात् । न चैवं तेषामविभागित्वं विरुध्यते, यतोऽविभागित्वं भेदयितुमशक्यत्वं १५ न पुनर्निःस्वभावत्वम् ।

यच्चूकम्-‘निष्पन्नयोरनिष्पन्नयोर्वा पारतन्त्र्यलक्षणः सम्बन्धः स्यात्’ इत्यादि; तदप्यस्यारम्; कथञ्चिन्निष्पन्नयोस्तदभ्युपगमात् । पदो हि तन्तुद्रव्यरूपतया निष्पन्न एव अन्वयिनो द्रव्यस्य पटपरिणामोत्पत्तेः प्रागपि सत्त्वात्, सैरूपेण त्वऽनिष्पन्नः, तन्तुद्रव्यमपि २० स्वरूपेण निष्पन्नं पटपरिणामरूपतयाऽनिष्पन्नम् । तथाङ्गुल्यादिद्रव्यं स्वरूपेण निष्पन्नम् संयोगपरिणामात्मकत्वेनानिष्पन्नमिति ।

किञ्च, पारतन्त्र्यस्याऽभावाद्भावानां सम्बन्धाभावे तेन व्याप्तः क्वचित्सम्बन्धः प्रसिद्धः, न वा ? प्रसिद्धश्चेत्; कथं सर्वत्र सर्वदा सम्बन्धाभावः विरोधीत् ? नो चेत्; कथमर्थोपकाभावादर्थोप्य- २५ स्याभावसिद्धिरितिप्रसङ्गोत् ?

१ मित्रः । २ सीगतेन । ३ पिण्डोणुमात्रः स्यादित्यादि । ४ सांशत्वादि । ५ इति प्रतिबन्धविधानम् । ६ सम्बन्धिति पदार्थे । ७ भवति । ८ सम्बन्धमात्रेण । ९ नैनस्य । १० पदार्थात् । ११ सर्वथा । १२ कथञ्चिद्भेदे । १३ अन्तोऽपत्तेः, कथञ्चिद्भेदाभेदरूपस्य । १४ सर्वथानेकत्वैकत्वान्याम् । १५ सांशवस्तुप्रकारेण । १६ तदि । १७ स्वभावभेदाऽभावे । १८ स्वभावभेदसम्भवे । १९ कथम् । २० तन्त्वादेः । २१ पटरूपेण । २२ पटः । २३ भावानां सम्बन्धो जातिः पारतन्त्र्य-भावात् । २४ नृद्यन्ते । २५ शक्तः । -२६ शक्तत्वस्य । २७ अथ न प्रतिबन्धसिद्धिः । २८ असाध्य । २९ असाधवस्य । ३० अन्यथा । ३१ पदाभावे पदव्यवप्रसङ्गात् ।

‘रूपश्लेषो हि’ इत्याद्यप्येकान्तवादिनामेव दूषणं नास्माकम्; कथञ्चित्सम्बन्धिनोरेकत्वापत्तिस्वभावस्य रूपश्लेषलक्षणसम्बन्धस्याभ्युपगमात् । अशक्यविवेचनत्वं हि सम्बन्धिनो रूपश्लेषः, असाधारणस्वरूपता च तदऽश्लेषः । स चानयोर्द्वित्वं न विरु-
 ५ न्ध्यात् तथा प्रतीतिश्चित्राकारैकसंवेदनवत् । न चापेक्षिकत्वात्सम्बन्धस्वभावो मिथ्याऽर्थानां सूक्ष्मत्वादिवदित्यभिघातव्यम्; असम्बन्धस्वभावस्यापि तथाभावानुषङ्गात् । सोपि ह्यापेक्षिक एव कञ्चिदर्थमपेक्ष्य कस्यचित्तद्वयवस्थित्यर्थयानुपपत्तेः स्थूलतादिवत् । ‘प्रत्यक्षेद्बुद्धौ प्रतिभासमानः सोर्नोपेक्षिक एव तत्पृष्ठभावि-
 १० विकल्पेनाध्यवसीयमानो यथापेक्षिकस्तथाऽवास्तवोपि’ इत्यन्यत्रापि समानम् । न खलु सम्बन्धोऽध्यक्षेण न प्रतिभासते यतोऽनापेक्षिको न स्यात् ।

एतेन ‘परापेक्षा हि’ इत्याद्यपि प्रत्युक्तम्; असम्बन्धेपि समानत्वात् ।

१५ ‘ह्योरेकाभिसम्बन्धात्’ इत्याद्यप्यविज्ञातपरंभिप्रायस्य विजृम्भितम्; यतो नास्माभिः सम्बन्धिनोस्तथोपरिणतिव्यतिरेकेणान्यः सम्बन्धोभ्युपगम्यते, येनानवस्था स्यात् ।

तथा च ‘तामेव चानुरुन्धानैः’ इत्याद्यप्युक्तम्; क्रियाकारकादीनां सम्बन्धिनां तत्सम्बन्धस्य च प्रतीत्यर्थं तदभि-
 २० धार्यकानां प्रयोगप्रसिद्धेः । अन्यापोहस्य च प्रागेवापास्तस्वरूपत्वाच्छब्दार्थत्वमनुपपन्नमेव । चित्रैर्ज्ञानैवञ्चानेकसम्बन्धितादात्म्येऽप्येकैतत्वं सम्बन्धस्याविरुद्धमेव ।

यदप्युक्तम्—‘कार्यकारणभावोपि’ इत्यादि; तदप्यविचारितरमणीयम्; यतो नास्माभिः सहभावित्वं क्रमभावित्वं वा कार्य-

१ अनेकान्तवादिनां जैनानाम् । २ एकलोलीयाव । ३ इदं तोयमिने सफ्न इति विभागस्य कर्तुमशक्यत्वात् । ४ सूक्ष्मतोययोर्भिन्नस्वरूपता । ५ पृथक्त्वम् । ६ इदं चित्रज्ञानमिने चित्राकारा इति । ७ परेण । ८ अर्थानाम् । ९ आपेक्षिकत्वाविशेषात् । १० आपेक्षिकत्वामात्रे । ११ निर्भिकल्पकबुद्धौ । १२ साधनमसिद्धमुद्भावयति । १३ स्वादेव । १४ भवदुक्त्या सम्बन्धस्य परानपेक्षित्वसमर्थनेन । १५ दूषणम् । १६ सौगतोक्त्यायस्य । १७ जैन । १८ सौगतस्य । १९ विहितरूपतापरित्यागेन संक्षिप्तरूपतया एकलोलीयावलक्षणपरिणतिः । २० सम्बन्धित्वौ । २१ देवदत्त गामभ्याजेल्लादीनाम् । २२ छन्दानाम् । २३ सम्बन्धिनामनेकत्वे सम्बन्धस्याप्यनेकत्वं स्यादित्युक्ते सत्यात् । २४ चित्रैर्ज्ञानवत् । २५ तन्तुलक्षणेः पक्षे नीलकारादिभिः । २६ पटस्य । २७ जैमैः ।

कारणभावनिवन्धनमिष्यते । किन्तु यद्भावे नियता यस्योत्पत्ति-
स्तस्य कार्यम्, इतरश्च कारणम् । तच्च किञ्चित्संज्ञभावि, यथा
घटस्य सुदृढ्यं दण्डादि वा । किञ्चित्तु क्रमभावि, यथा प्राक्तनः
पर्योयः । तत्प्रतिपत्तिश्च प्रत्यक्षानुपलम्भसहायेनात्मना नियते
व्यक्तिविशेषे, तर्कसहायेन वाऽनियते प्रसिद्धा । एकमेवं च ५
प्रत्यक्षं प्रत्यक्षानुपलम्भशब्दाभिधेयम् । तद्धि कार्यकारणभावाभि-
मतार्थविषयं प्रत्यक्षम्, तद्विविकान्यैवस्तुविषयमनुपलम्भशब्दा-
भिधेयम् । तथाहि-यथावद्भिः प्रकारैर्धूमोद्भिजन्यो न स्यात्-यदि
अग्निसन्निधानात्प्रागपि तत्र देशे स्यात्, अन्यतो वाऽऽगच्छेत्,
तदन्यद्हेतुको वा भवेत् । एतच्च सर्वमनुपलम्भपुरस्सरेण प्रत्य-१०
क्षेण प्रत्याख्यातम् ।

एतेन प्रागनुपलम्भस्य रासमस्य कुम्भकारसन्निधानानन्तर-
मुपलभ्यमानस्य तस्य तत्कार्यता स्यादिति प्रतिव्यूढम्; यदि हि
तस्य तत्र प्रागसत्त्वमन्यदेशादनागमन्याहेतुकत्वं च निश्चेतुं
शक्येत स्यादेव कुम्भकारकार्यता । तसु निश्चेतुमशक्यम् । १५

न च मिथैर्ग्रहादि प्रत्यक्षद्वयं द्वितीयोद्भिणे तद्विषयं कारणत्वं
कार्यत्वं वा ग्रहीतुमसमर्थमित्यभिधीतव्यम्; क्षयोपशमविशेषवैतां
धूममात्रोपलम्भेभ्यश्चासवशाद्द्विजन्यैत्वाद्यगमप्रतीतिः, अन्यथौ
वाष्पादिवैलक्षण्येनास्याऽनवधारणात्ततोऽयमुपभावात् सकलव्यव-
हारोच्छेदप्रसङ्गः । ततः कारणाभिमतपदार्थग्रहणपरिणामापरि- २०
त्यागवतात्मना कार्यस्वरूपप्रतीतिरभ्युपगम्येत्या नीलाद्याकारव्या-
प्येकज्ञाने तत्स्वरूपवत् ।

१ सद्यमनतीत्येवंशीलम् । २ यद् घटोत्पत्तिकाले भवति । ३ कुशलादिः ।
४ उत्तरपर्यायस्य कारणम् । ५ महानसे । ६ महाब्धे । ७ परिमिते । ८ श्रुत्यायोः ।
९ यावान् कश्चित्कार्यलक्षणपदार्थः स कारणे सति भवति, नान्यथेति । १० आत्मना ।
११ अनुपलम्भशब्देन किमुच्यते इत्याह । १२ नानुमानादिकम् । १३ अग्निधूम ।
१४ वसतः । १५ महाब्धदादि । १६ 'अनुपलम्भ' इति । १७ प्रत्यक्षम् ।
१८ तथा हीलादिना प्राक् प्रतिपादितार्थं व्यतिरेकद्वारेण समर्थयते । १९ प्राक्
प्रतिपादितैः प्रत्यक्षानुपलम्भादिभिः । २० तान्प्रकारानाह । २१ यममस्तु इत्युक्ते
सत्याह । २२ प्रत्यक्षानुपलम्भादिभिः कार्यकारणभावसिद्धिसमर्थनेन । २३ निराकृतम् ।
२४ कुम्भकारवसितप्रदेशे । २५ कुम्भकारसन्निधानात् । २६ कुम्भकारपेक्षया ।
२७ तर्हि । २८ रासमस । २९ अग्निधूम । ३० अग्निधूमयोर्न्येऽन्यतरस्य ।
३१ एकेन । ३२ अग्रहीतकर्तृकारणान्यतरापेक्षम् । ३३ परेण । ३४ कार्यकारण-
भावज्ञानाच्छादकत्वम् । ३५ नृणाम् । ३६ धूमस्य । ३७ पूर्वोक्ताकारणाद्धूमस्य
वर्तिजन्यत्वावगमात्वात् । ३८ दूरता । ३९ धूमोपेः कार्यमिति । ४० परेण ।

ननु नालिकेरद्वीपादिवासिनामकस्याद्भूमस्याग्नेर्वोपलम्भेऽपि कार्यकारणभावस्यानिश्चयान्नासौ वास्तवः; तदप्यपेशलम्; बाह्यान्तःकारणप्रभवत्वात्तन्निश्चयस्य । क्षयोपशमविशेषो हि तस्यान्तःकारणम्, तद्भावभावित्वाभ्यासस्तु बाह्यम्, अकार्यकारणभावा-
५ वगमस्य त्वऽतद्भावभावित्वाभ्यासः । तद्भावान्न कचित्तेषां कार्य-
कारणभावस्याऽकार्यकारणभावस्य वा निश्चय इति ।

धूमादिज्ञानजननसामैग्रीमात्रार्त्तकार्यत्वादिनिश्चयानुत्पत्तेर्न कार-
यत्वादि धूर्मादेः स्वरूपमिति चेत्; तर्हि क्षणिकत्वादिरपि
तत्स्वरूपं मा भूत्त एव । क्षणिकत्वाभावेऽवस्तुत्वम् अन्यत्रापि
१० समानम्, सर्वथाप्यकार्यकारणस्य वस्तुत्वानुपपत्तेः खरभृद्भवत् ।

न च कार्यस्यानुत्पन्नस्यैव कार्यत्वं धर्मः; असत्त्वात् । नाप्युत्प-
न्नस्यात्यन्तं भिन्नं तत्; तद्धर्मत्वात् । तत एव कारणस्यापि कार-
णत्वं धर्मो नैकान्ततो भिन्नम् । तच्च ततोऽभिन्नत्वात्तद्वाहिरप्रत्यक्षे-
णैव प्रतीयते तद्व्यक्तिस्वरूपवत् । ईदृश्यते हि पिपासाधाक्रान्तचेत-
१५ सामितरार्थव्यवच्छेदेनावलं तदपनोदसमर्थं जलौदौ प्रत्यक्षा-
त्प्रवृत्तिः । तच्छक्तिप्रधानतायां तु कार्यदर्शनार्त्तभिन्नीयते तद्व्य-
तिरेकेणास्यासम्भवात् । न च स्वरूपेणाकार्यकारणयोस्तद्भावः
सम्भवति । नाप्युत्तरकालं भिन्नेन तेनानयोः कार्यकारणताऽभिन्ना
कर्तुं शक्या; विरोधात् । नापि भिन्ना; तयोः स्वरूपेण कार्यकारणता-
२० प्रसङ्गात् । न च स्वरूपेण कार्यकारणयोरर्थान्तरभूततत्सम्बन्ध-
कल्पने किञ्चित्प्रयोजनं कार्यकारणतायाः स्वतः सिद्धत्वात् ?

ननु कार्याप्रतिपत्तौ कथं कारणस्य कारणताप्रतिपत्तिस्तदपेक्ष-
त्वात्तस्याः? कथमेवं पूर्वापरभागाप्रतिपत्तौ मध्यमैगस्यातो
व्यावृत्तिप्रतिपत्तिरपेक्षाकृतत्वाविशेषात्? तैतः “पर्यैत्रयं क्षणि-

१ कारण । २ कार्यस्य । ३ पुनः पुनर्दर्शनम् । ४ कारणम् । ५ बाह्यान्तः-
कारणयोः । ६ अग्निधूमयोदपलम्भेऽपि येषां बाह्यान्तःकारणे स्रष्टोषामेव तयोः कार्य-
कारणभावपरिच्छिन्तान्येषामिति भावः । ७ नेत्रादि । ८ वहि । ९ आदिना
कारणत्वादि । १० आदिनाग्न्यादेः । ११ धूमादिज्ञानसामग्रीमात्रात् क्षणिकत्वा-
निश्चयादेव । १२ धूमादिकं धर्म्यऽवस्तु भवतीति साध्यमकार्यकारणत्वाच्छ्रवणविधानम् ।
१३ धर्मैधर्मिणोरत्यन्तभेदाभावात् । १४ सन्दिग्धानैकान्तिकत्वेयं परिहारः ।
१५ कारणभूते । १६ कारणत्वम् । १७ कार्यस्य । १८ षट्पटयोरिव । १९ कार-
णात् । २० सम्बन्धेन । २१ अभिन्ना चेत्कथं भिन्नेन सम्बन्धेन विधीयते ?
विधीयते चेत्कथमभिन्नेति विरोधः । २२ अग्न्यादेः । २३ क्षणविशेषणम् । २४ वस्तु-
मानक्षणस्य । २५ पूर्वापरभागाद्व्यावृत्तिर्नैध्वक्षणस्येति प्रतिपत्तिः कथं षट्ते ।
२६ मध्यभागस्यातो व्यावृत्तिप्रतिपत्त्यभावतः । २७ योगी ।

क्रमेण पश्यति" इति [] वचो विरुध्येत । मध्यक्षणस्वभावत्वो-
त्तद्भाववृत्तेः तद्गाहिज्ञानेन प्रतिपत्तिश्चेत् ; तर्हि कार्योत्पादनशक्तेः
कारणस्वभावत्वात्तद्गाहिणैव ज्ञानेन प्रतिपत्तिरिष्यतां विशेषा-
र्भावात् । उक्ता च कार्यप्रतिपत्तिः प्रत्यक्षादिसहायेनात्मनेत्यु-
परम्यते । ५

किञ्च, कार्यानिश्चये शंकेरप्यनिश्चये नीलादिनिर्झयोपि मा
भूत् । यदेव हि तस्याः कार्यं तदेव नीलादेरपि, अर्नयोरभेदात् ।
वकृत्वस्य चासर्वज्ञत्वादिना व्यात्यसम्भवः सर्वज्ञसिद्धिप्रघटके
प्रतिपादितः ।

न चेन्धनादिप्रभवपावकस्य मण्यादिप्रभवपावकादभेदो येन १०
नियतः कार्यकारणभावो न स्यात् । अन्यादृशाकारो हीन्धनप्रभवः
पावकोऽन्यादृशाकारश्च मण्यादिप्रभवः । तद्विचारे च प्रतिपत्ता
निर्भुगेन भाव्यम् । यत्नतः परीक्षितं हि कार्यं कारणं नातिवर्त्तते ।
कथमन्यथा वीतरागेतरव्यवस्था तथेष्टोयाः साङ्ख्योपलम्भात् ?

— कथं वैवंवादिनो मृतेतरव्यवस्था स्यात् ? व्यापारव्याहारा-१५
कारविशेषस्य हि किञ्चित्तन्यकार्यतयोपलम्भे सत्यस्यत्र जीव-
च्छरीरे चैतन्यं व्यापारादिकार्यविशेषोपलम्भात्, मृतशरीरे तु
नास्ति तदनुपलम्भादिति कार्यविशेषस्योपलम्भानुपलम्भाभ्यां
कारणविशेषस्य भावाभावप्रसिद्धेस्तद्व्यवस्था युज्येत ।

अकार्यकारणभावेपि चैतत्सर्वं समानम्-सौपि हि द्विष्टः २०
कथमसहस्रविनोः कार्यकारणत्वाभ्यां निषेध्ययोर्वर्तेत ? न
चाद्विष्टोसौ; सम्बन्धाभावविरोधोत् । पूर्वत्र भावे वर्त्तित्वा परत्र
क्रमेणासौ वर्त्तमानोऽन्यनिस्पृहत्वेनैकवृत्तिमत्वात्कथं सम्बन्धा-
भावरूपता(तां) प्रतिपद्येते ? अथाकार्यकारणयोरेकमपेक्ष्यान्य-
शासौ क्रमेण वर्त्तत इति सस्पृहत्वेर्नास्य द्विष्टत्वात्तदभावरूपते- २५

१ वसः । २ पत्र । ३ कार्यस्य । ४ मध्यक्षणस्वभावत्वाद्वाद्युत्तेस्तद्गाहिज्ञानेन
प्रतिपत्तिर्घटते, कार्योत्पादनशक्तैः कारणभावत्वात्तद्गाहिज्ञानेन प्रतिपत्तिर्नेत्र ।
५ कारणसम्बन्धिन्याः कार्योत्पादनलक्षणायाः । ६ तत्र सौगतस्य । ७ कृतः ।
८ शक्तिनीलणोः । ९ निरञ्जवस्तुवादिमते । १० जैनैः । ११ किमु येद पत्र ।
१२ सर्वत्रेन । १३ अग्न्यादिलक्षणम् । १४ इन्धनमण्यादिकम् । १५ अपतपोध्या-
नादेः । १६ दृष्टान्तभूते । १७ कथम् । १८ गोमहिषयोः । १९ अकार्यकारणयोः ।
२० अनयोः सम्बन्धाभावो यतः । २१ अकार्यकारणभावतः सम्बन्धाभावरूपे न
भवसिद्धित्वात्तदसम्भवत् । २२ अभावात् । २३ अकारणे । २४ अकार्ये ।
२५ यथासार्कं सम्बन्धो न घटते तथा तवापीत्यर्थः । २६ असम्बन्धस्य ।

ध्यते; तदा तेनोपेक्ष्यमौणेनोपकारिणा भवितव्यम् । 'कथं चोप-
करोत्यसन्' इत्यादि सर्वमंत्राणि योजनीयम् ।

अकार्यकारणभावस्याप्यर्थानामनभ्युपगमे तु कार्यकारणभावो
वास्तवः स्यात् । उभयाभावस्तु न युक्तः विरोधात्, क्वचिन्नीले-
५ तरत्वाभाववत् । ततो यथा कुतश्चित्प्रमाणादकार्यकारणभावो
गवाश्वादीनामतद्भावभावित्वप्रतीतिः परस्परं परमार्थतो व्यव-
तिष्ठते, तथाग्निधूमादीनां तद्भावभावित्वप्रतीतिः कार्यकारण-
भावोपि बाधकाभावात् । तन्न प्रमाणतः प्रतीयमानः सैस्वन्धः
सैभिरेतत्स्वर्वाग्निहवनीयो येन स्थूलादिप्रतीतिभ्रान्तत्वात्तत्स्व-
१० भावतार्थस्य न स्यात् । चित्रज्ञानवद्युगपदेकैस्तानेकाकारसम्ब-
न्धित्ववत्कमेणापि तत्तस्यैविवद्धम् । इति सिद्धं परापरविवर्त्त-
व्याप्येकद्रव्यलक्षणमूर्च्छतासामान्यम् ।

यथा च द्वेषा सामान्यं तथा—

विशेषश्च ॥ ७ ॥

१५ चकारोऽपिशब्दार्थे । कथं तद्वैविध्यमित्याह—

पर्यायव्यतिरेकभेदात् ॥ ८ ॥

तत्र पर्यायस्वरूपं निरूपयति—

एकस्मिन्द्रव्ये क्रमभाविनः परिणामाः पर्यायाः
आत्मनि हर्षविषादादिवत् ॥ ९ ॥

२० अत्रोदाहरणमाह आत्मनि हर्षविषादादिवत् ।

ननु हर्षादि विशेषव्यतिरेकेणोत्तमनोऽसत्त्वादयुक्तमिदमुदाहरण-
मित्यनेः; सोप्यपेक्षापूर्वकारी; चित्रसंवेदनवदनेकाकारव्यापित्वे-
नात्मनः स्वसंवेदनप्रत्यक्षप्रसिद्धत्वात् । 'यद्यथा प्रतिभासते तत्त-

१ सौगतेन मया । २ असम्बन्धेन । ३ अकारणेनाऽकार्येण वा । ४ अकार्य-
मकारणं वा । ५ असम्बन्धे । ६ न केवलं कार्यकारणभावस्य । ७ परेण । ८ सक-
प्रकारेण सम्बन्धो निराकर्तुं न शक्यते-यतः । ९ असम्बन्धः । १० नरोत्थवत् ।
११ चैतन्यव्याहारादिकार्यवत् । १२ परस्पर परमार्थतो व्यवतिष्ठते । १३ उभयत्र ।
१४ कार्यकारणाविनाभावः । १५ सौगत । १६ असम्बन्धादिवत् । १७ किन्तु
स्वादेन । १८ ज्ञानस्य । १९ जीवादिपदार्थस्य । २० ज्ञानसुखवीर्यदर्शनादिव
आत्मनः सदभावित्वाद्गुणाः स्युः । क्रमभावित्वाच्च पर्यायाश्च भवन्ति—कृतो वस्तुनोऽ-
नेकपर्यायकत्वात् । २१ भेद । २२ अपरस्य । २३ सौगतः ।

यैव व्यवहर्तव्यम् यथा वेद्योद्याकापात्मसंवेदनरूपतया प्रतिभास-
मानं संवेदनम्, सुखाद्यनेकाकारैकात्मतया प्रतिभासमानश्चात्मा
इत्यनुमानप्रसिद्धत्वाच्च ।

सुखदुःखादिपर्यायाणामन्योन्यमेकान्ततो मेदे च 'प्रागहं सु-
ख्यासं सम्प्रति दुःखी वर्ते' इत्यनुसन्धानप्रत्ययो न स्यात् । तथा-^५
विश्वासनाप्रबोधादनुसन्धानप्रत्ययोत्पत्तिः, इत्यप्यसत्यम्, अनु-
सन्धानवासना हि यद्यनुसन्धीयमानसुखादिभ्यो भिन्ना; तर्हि
सन्तानान्तरसुखादिवत्सन्तानेष्वनुसन्धानप्रत्ययं नोत्पादयेद-
विशेषार्थं । तदभिन्ना चेत्, तर्वाद्भिन्नेत । न खलु भिन्नादभिन्ने-
भिन्नं नामोऽतिप्रसङ्गात् । तथा तेष्वबोधात्कथं सुखादिव्येकमनु-^{१०}
सन्धानज्ञानमुत्पद्येत ? तेभ्यस्तस्याः कथञ्चिद्भेदे नौममात्रं भिद्येत-
अहमहमिकया स्वसंवेदनप्रत्यक्षप्रसिद्धस्यात्मनः सहकर्मभाविनो
गुणपर्यायानात्सात्कुर्वतो 'वासना' इति नामान्तरकरणात् ।

कर्मवृत्तिसुखादीनामेकसन्ततिपतितत्वेनानुसन्धाननिबन्धन-
त्वम्; इत्यपि तादृगेव; आत्मनः सन्ततिशब्देनाभिधानात् । तेषां^{१५}
कथञ्चिदेकत्वाभावे नैकपुरुषसुखादिव्येकसन्ततिपतितत्वस्याप्य-
योगात् ।

आत्मनोऽनभ्युपगमे च कृतनाशाकृताभ्यागमदोषानुषङ्गः ।
कर्तृनिर्न्वयनाशे हि कृतस्य कर्मणो नाशः कर्तुः फलानभिसम्ब-
न्धात्, अकृताभ्यागमश्च अकर्तुरेव फलामिसम्बधात् । ततस्त-^{२०}
होषपरिहारमिच्छतात्मानुगमोभ्युपगन्तव्यः । न चाप्रमाणकोथम्;
तत्सद्भावावेदकयोः स्वसंवेदानुमानयोः प्रतिपादनात् ।

'अहमेव ज्ञातवीनहमेव वैशि' इत्यादेरेकप्रमादविषयप्रत्य-
भिज्ञानस्य च सद्भावात् । तथा चोक्तं भट्टेन—

१ आदिना वेदकसमिचिप्रहः । २ हर्षविषादादिप्रहः । ३ साधनमसिद्धमित्युक्ते
सत्याह । ४ सर्वथा । ५ आत्मनः सकाशात् । ६ प्रत्यभिज्ञान । ७ गन्धमान ।
८ सर्वथा । ९ सुखादिस्वरूपेण । १० उभयत्र भिन्नत्वम् । ११ तर्हि । १२ सुखादयो
यावन्तः । १३ एकम् । १४ अन्यथा । १५ वटपटादिभ्योऽभिन्नाना तत्स्वरूपाणा
भिन्नत्वप्रसङ्गात् । १६ वासनाया अचेतनत्वे च । १७ अनेकवासना । १८ अनेक-
सुखानुसन्धानज्ञानमुत्पद्येत्यर्थः । १९ कारणवद्भुत्वे कार्यवद्भुत्वमिति वचनत्वात् ।
२० आत्मा वासनेति च । २१ अहं सुखमहं दुःखीति । २२ स्वधर्मात् । २३ हर्ष-
विषादादीना च । २४ आत्मद्रव्यापेक्षया । २५ कथम् ? । २६ कर्मणः ।
२७ पुरुषस्य । २८ कर्मणः । २९ कर्मफलकाले तदभावात् । ३० सौगतेन ।
३१ पूर्वम् । ३२ इदानीम् ।

“तस्मादुभयं हानेनै व्यावृत्त्यनुर्गमात्मैकः ।

पुरुषोभ्युपगन्तव्यः कुण्डलादिर्षु संप्रवत् ॥”

[मी० श्लो० आत्मवाद श्लो० २८] इति ।

“तस्मात्प्रत्यभिज्ञानात्सर्वलोकावधारितात् ।

५ नैरात्म्यवादवाधः स्यादिति सिद्धं समीहितम् ॥”

[मी० श्लो० आत्मवाद श्लो० १३६] इति च ।

अथ कथमतः प्रत्यभिज्ञानादात्मसिद्धिरिति चेत्? उच्यते—‘प्रमा-
तृविषयं तत्’ इत्यत्र तावदावैयोरविवाद एव । स च प्रमाता भव-
न्नात्मा भवेत्, ज्ञानं वा? न तावदुत्तरः पक्षः; ‘अहं ज्ञातवानहमेव
१० च साम्प्रतं जानामि’ इत्येकप्रमातृपरामर्शेन ह्यहंबुद्धेरुपजायमा-
नाया ज्ञानक्षणो विषयत्वेन कल्प्यमानोतीतो वा कल्प्येत, वर्तमानो
वा, उभौ वा, सन्तानो वा प्रकारान्तरासम्भवात्? तत्राद्यविकल्पे
‘ज्ञातवान्’ इत्ययमेवाकारावसीयो युज्यते पूर्वं तेन ज्ञातत्वात्,
‘सम्प्रति जानामि’ इत्येतत्तु न युक्तं, न ह्यसावतीतो ज्ञानक्षणो
१५ वर्त्तमानकाले वेत्ति पूर्वमेवास्य निरुद्धत्वात् । द्वितीयपक्षे तु
‘सम्प्रति जानामि’ इत्येतद्युक्तं तस्येदानीं वेदकत्वात्, ‘ज्ञातवान्’
इत्याकारणग्रहणं तु न युक्तं प्रागस्यासम्भवात् । अत एव न
तृतीयोपि पक्षो युक्तः; न खलु वर्त्तमानातीतावुभौ ज्ञानक्षणौ
ज्ञानं(त)वन्तौ, नापि जानीतः । किं तर्हि? एको ज्ञातवान् अन्यस्तु
२० जानातीति । चतुर्थपक्षोप्ययुक्तः; अतीतवर्त्तमानज्ञानक्षणव्यति-
रेकेणान्यस्य सन्तानस्यासम्भवात् । कल्पितस्य सम्भवेपि न
ज्ञातृत्वम् । न ह्यऽसौ ज्ञान(त)वान्पूर्वं नाप्यधुना जानाति,
कल्पितत्वेनास्याऽवस्तुत्वात् । न चावस्तुनो ज्ञातृत्वं सम्भवति
वस्तुधर्मत्वात्तस्य इति अतोऽन्यस्यै प्रमातृत्वासम्भवादात्मैव
२५ प्रमाता सिद्धैति । इति सिद्धोऽतः प्रत्यभिज्ञानादात्मैति ।

ननु चात्मासुखादिपर्यायैः सम्बद्धमानः परित्यक्तपूर्वरूपो वा

१ सुखादिपर्यायाणां सर्वथात्मनः सकाशाद्भेदाभेदो, तयोः । २ परिहारेण ।
३ सुखादिस्वरूपतया । ४ चिद्रूपतया । ५ भेदाभेदात्मकः । ६ आकारेण । ७ स्वर्ण-
वदिति पाठान्तरम् । ८ ज्ञानसन्ततिरेवात्मा नान्यः कश्चिदिति हेतोर्नैरात्म्यम् । ९ जैन-
बौद्धयोः । १० प्रत्यभिज्ञानेन । ११ सौगतेन । १२ अतीतवर्त्तमानलक्षणौ ।
१३ निश्चयः । १४ अतीतज्ञानक्षणस्य । १५ अतीतज्ञानक्षणस्य । १६ कथम् ।
१७ विनष्टत्वात् । १८ एकस्य ज्ञातनस्वज्ञातृत्वासम्भवादेव । १९ इत्युल्लेखः ।
२० इत्युल्लेखः । २१ इत्युल्लेखो युक्तः । २२ अतीतज्ञानक्षणादेः । २३ अवशिष्य-
माणत्वात् ।

सम्बद्धेत, अपरित्यक्तपूर्वरूपो वा ? प्रथमपक्षे निरन्वयनाश-
प्रसङ्गः, अवस्थातुः कस्यचिदभावात् । द्वितीयपक्षे तु पूर्वोत्तरा-
वस्थयोरात्मनोऽविशेषादपरिणामित्वानुषङ्गः । प्रयोगः यत्पूर्-
वोत्तरावस्थासु न विशिष्यते न तत्परिणामि यथाकाशम्,
न विशिष्यते पूर्वोत्तरावस्थास्वात्मेति; तदपरीक्षिताभिधानम्; ५
आत्मनो भेदेन प्रसिद्धसत्ताकैः सुखादिपर्यायैः स्वस्य सम्बन्धान-
भ्युपगमात् । आत्मैव हि तत्पर्यायतया परिणमते नीलाद्याका-
रतया चित्रज्ञानवत्, स्वपरग्रहणशक्तिद्रव्यात्मकतयैकविज्ञानवद्वा ।
न खलु ययैव शक्त्यात्मनं प्रतिपद्यते विज्ञानं तयैवार्थम्, तयोर-
भेदप्रसङ्गात् । अन्यथात्मनो येन रूपेण सुखपरिणामस्तेनैव दुःख- १०
परिणामेपि अनयोरभेदो न स्यात् । न च तच्छक्तिभेदे तदात्मनो
ज्ञानस्यापि भेदः; अन्यथैकस्य स्वपरग्राहकत्वं न स्यात् । नापि
चित्रज्ञानस्य नीलाद्यनेकाकारतया परिणामेपि एकाकारताव्या-
घातः । तद्वत्सुखाद्यनेकाकारतया परिणामेपि आत्मनो नैकत्व-
व्याघातो विशेषाभावात् । न चैकत्र युगपत्, अन्यत्र तु कालभेदेन १५
परिणामाद्विशेषः; प्रतीतेर्नियामकत्वात् । यत्र हि प्रतीतिर्देश-
कालभिन्ने तदभिन्ने वा वस्तुन्येकत्वं प्रतिपद्यते तत्रैकत्वं प्रति-
पत्त्यर्थम्, यत्र तु नानात्वं प्रतिपद्यते तत्र तु नानात्वमिति ।

ततो र्यदुक्तम्-सर्वात्मनैर्वाभेदे भेदस्तद्विपरीतः कथं भवेत् ?
न ह्येकदा विधिप्रतिषेधौ परस्परविरुद्धौ युक्तौ । प्रयोगः-यत्रा- २०
भेदस्तत्र तद्विपरीतो न भेदः यथा तेषामेव पर्यायीणां द्रव्यस्य
च यत्प्रतिनियतमसाधारणमात्मस्वरूपं तस्य न स्वभावाद्भेदः,
अभेदश्च द्रव्यपर्यायैरिति । किञ्च, पर्यायैर्भ्यो द्रव्यस्याभेदः,
द्रव्यात्पर्यायाणां वा ? प्रथमपक्षे पर्यायवद्रव्यस्याप्यऽनेकत्वानुषङ्गः ।

१ पूर्वाकारपरित्यागात् । २ 'आत्मा धर्मो' परिणामी न भवतीति साध्यम्
पूर्वोत्तरावस्थास्वविशिष्टत्वात् इत्युपरिष्ठात्सयोन्यम् । ३ भिद्यते । ४ का (पञ्चमी) ।
५ जनैः । ६ कथम् ? तथा हि । ७ ज्ञानस्य शक्तिद्वयं न विद्यते इत्याशङ्क्यामाह ।
८ सस्य स्वरूपम् । ९ एकमेव शक्त्या स्वरूपाद्ययोः प्रतिपत्तौ । १० आत्मनि ।
११ आत्मनि । १२ ('प्रतीतेः' इतिखण्डिकायाः पाठः) । १३ सुखादिपर्यायैः ।
१४ परेण । १५ नीलाद्यनेकाकारैः । १६ परेण । १७ सति । १८ द्रव्यपर्याययो-
र्भेदः । १९ भेदाभेदौ । २० द्रव्यपर्यायो धर्मिनो भिन्नो न भवत्तत्सयोरभेदादिति
अनुमानं सीगतप्रबुद्धसुपरितोत्र योक्तव्यम् । २१ पक्षे नीलाद्याकाराणाम् । २२ प्रथ-
मपक्षे आत्मनः, द्वितीयपक्षे चित्रज्ञानस्य । २३ अन्योन्यम् । २४ पक्षे नीलाद्या-
कारचित्रज्ञानयोः । २५ पक्षे नीलाद्याकारेण्यः । २६ पक्षे चित्रज्ञानस्य ।

तथा हि-यद्भ्यावृत्तिस्वरूपाऽभिन्नस्वभावं तद्भ्यावृत्तिमत् यथा पर्यायाणां स्वरूपम्, व्यावृत्तिमद्रूपाव्यतिरिक्तं च द्रव्यमिति । द्वितीयपक्षे तु पर्यायाणामप्येकत्वानुषङ्गः । तथाहि-यदनुगत-स्वरूपाऽव्यतिरिक्तं तदनुगतात्मकमेव यथा द्रव्यस्वरूपम्, अनु-
५ गतात्मस्वरूपाऽभिन्नस्वभावाश्च सुखादयः पर्यायाः इत्यादि;

तन्निरस्तम्; प्रमाणप्रतिपन्ने वस्तुरूपे कुचोर्द्याऽनवकाशात् । न खलु मदोन्मत्तो हस्ती सन्निहितम् व्यवहितं वा परं मारयति, सन्निहितस्य मारणे मेण्डस्यापि मारणप्रसङ्गः । व्यवहितस्य च मारणेऽतिप्रसङ्गः, इत्यनर्थानल्पकल्पनाभयात् स्वकार्यकंरणात्पु-
१० र्मते । चित्रज्ञानादावपि चैतत्सर्वं समानम् । प्रतिक्षिप्तं च प्रतिक्षणं क्षणिकत्वं प्रागित्यलमतिप्रसङ्गेन ।

अथेदानीं व्यतिरेकलक्षणं विशेषं व्याचिख्यासुरर्थान्तरेत्याह—

अर्थान्तरगतो विसदृशपरिणामो व्यतिरेकः

गोमहिषादिवत् ॥ १० ॥

१५ एकैसादर्थत्सजातीयो विजातीयो चार्थोऽर्थान्तरम्, तद्रतो विसदृशपरिणामो व्यतिरेको गोमहिषादिवत् । यथा गोषु खण्ड-
मुण्डादिलक्षणो विसदृशपरिणामः, महिषेषु विशालविसङ्कटत्व-
लक्षणः, गोमहिषेषु चान्योन्यमसाधारणस्वरूपलक्षण इति । तावेचंप्रकारौ सामान्यविशेषावात्मा यस्यार्थस्याऽसौ तथोक्तः । स
२० प्रमाणस्य विषयः न तु केवलं सामान्यं विशेषो वा, तस्य द्वितीय-
परिच्छेदे 'विषयमेदात्प्रमाणमेदः' इति सौगतमतं प्रतिक्षिपता
प्रतिक्षिप्तत्वात् । नाप्युभयं स्वतन्त्रम्; तथाभूतस्यास्याप्यप्रति-
भासनात् ।

ननु चार्थस्य सामान्यविशेषात्मकत्वमयुक्तम्; तदात्मकत्वे-
२५ नास्य ग्राहकप्रमाणाभावात् । सामान्यविशेषाकारयोश्चान्योन्यं
प्रतिभासमेदेनार्थैर्नन्तं मेदात् । प्रयोगः—सामान्याकारविशेषाकारौ

१ व्यावृत्तयः=पर्यायाः । २ मेदवत् । ३ तस्मादनेकमिति । ४ अनुगतस्वरूपं=
द्रव्यम् । ५ द्रव्यपर्यायात्मके । ६ कुप्रश्न । ७ मदोन्मत्तो हस्ती मारयत्येवेति प्रमाण-
प्रतिपन्नः । ८ हस्तिपकल । ९ मारणात् । १० हस्ती । ११ सर्वात्मनेसादि
सौगतमते । १२ चित्रज्ञानाकारौ भिन्नौ न भवतः तयोर्मेदादिलेवम् । १३ खण्ड-
लक्षणाद्गोः सजातीयो मुण्डलक्षणो गोः, विजातीयो महिषः, खण्डापेक्षया मुण्डो
विसदृशकारो महिषापेक्षया च विसदृशकार इत्यर्थः । १४ वैद्वेतिकः । १५ सर्वथा ।

परस्परतोऽत्यन्तं भिन्नौ भिन्नप्रमाणग्राह्यत्वाद्धटपटवत् । पटादौ हि भिन्नप्रमाणग्राह्यत्वमत्यन्तमेदे सत्यवोपलब्धम्, तत् सामान्यविशेषाकारयोरुपलभ्यमानं कथं नात्यन्तमेदं प्रसाधयेत्? अन्यत्राप्यस्य तदप्रसाधकत्वप्रसङ्गात् । न खलु प्रतिभासमेदाद्विरुद्धधर्माध्यासात्तान्यत् पटादीनामप्यन्योन्यं मेदनिवन्धनमस्ति । ५ स चावयवावयविनोर्गुणगुणिनोः क्रियातद्वतोः सामान्यविशेषयोश्चास्त्येव । पटप्रतिभासो हि तन्तुप्रतिभासवैलक्षण्येनानुभूयते, तन्तुप्रतिभासश्च पटप्रतिभासवैलक्षण्येन । एवं पटप्रतिभासाद्गुणप्रतिभासवैलक्षण्यमप्यवगन्तव्यम् ।

विरुद्धधर्माध्यासोप्यनुभूयत एव, पटो हि पटत्वजातिस-१० स्वन्धी विलक्षणार्थक्रियासम्पादकोतिशयेन महत्त्वयुक्तः, तन्तवस्तु तन्तुत्वजातिसम्बन्धिनोल्पपरिमाणाश्च, इति कथं न भिद्यन्ते? तादात्म्यं चैकत्वमुच्यते, तस्मिन् सति प्रतिभासमेदो विरुद्धधर्माध्यासश्च न स्यात्, विभिन्नविषयत्वात्तत्तयोः । यदि च तन्तुभ्यो नार्थान्तरं पटः, तर्हि तन्तवोपि नांशुंभ्योर्थान्तरम्, १५ तेषु स्वावयवेभ्यः इत्येवं तावच्चिन्त्यं यावन्निरशाः परमाणवः, तेभ्यश्चामेदे सर्वस्यै कार्यस्यानुपलम्भः स्यात् । तस्मादर्थान्तरमेव पटात्तन्तवो रूपादयश्च प्रतिपत्तव्याः ।

तथै विभिन्नैककर्तृत्वात्तन्तुभ्यो भिन्नः पटो घटादिवत् । विभिन्नशक्तिकत्वाद्वा विषाऽर्गदिवत् । पूर्वोत्तरकालमावित्वाद्वा २० पितापुत्रवत् । विभिन्नपरिमाणत्वाद्वा वदरमलकवत् ।

तथा तन्तुपटादीनां तादात्म्ये 'पटः तन्तवः' इति वैचनमेदः, 'पटस्य भावः पटत्वम्' इति षष्ठी, तद्धितोत्पत्तिश्च न प्रामोतीति ।

किञ्च, 'तादात्म्यम्' इत्यत्र किं स पट आत्मा येषां तन्तूनां तेषां २५ भावस्तादात्म्यमिति विग्रहः कर्तव्यः, ते वा तन्तवः आत्मा यस्य

१ सन्दिग्धानैकान्तिकत्वे प्रतिपादिते सत्याह । २ साधनमिदम् । ३ स्वरूपम् । ४ कथम्? तथा हि । ५ आदिपदेन क्रियादिग्रहः । ६ शीतापनोदादि । ७ अवयवावयव्यादयः । ८ प्रतिभासमेदे विरुद्धधर्माध्यासे च सत्यमि तादात्म्यं मविप्यदीत्युक्ते सत्याह । ९ तन्तवयवेभ्यः । १० द्वयणुकादिलक्षणस्य । ११ परमाणुद्वयेन द्वयणुकमारभ्यते, ऋणुकात्रितयेन त्रयणुकमारभ्यते, तच्च प्रत्यक्षमेव तत् उपरितननियमानावः । १२ चैनेन । १३ प्रतिभासमेदविरुद्धधर्माध्यासप्रकारेण । १४ योषित्कुमिन्द । १५ अगदः=जोषणम् । १६ एकवचनवहुवचनत्वेन । १७ भेदाभावे सति । भेदे षष्ठीति वचनात् ।

पटस्य, स च ते आत्मा यस्येति वा? प्रथमपक्षे पटस्यैकत्वात्त-
न्तूनामप्येकैत्वप्रसङ्ग, तन्तूनां वाऽनेकत्वात्पटस्याप्यनेकत्वानु-
षङ्गः। अन्यथा तत्तादात्म्यं न स्यात्। द्वितीयविकल्पेऽप्ययमेव
दोषः। तृतीयपक्षश्चाविचारितरमणीयः; तद्व्यतिरिक्तस्य वस्तुनोऽ-
५ सम्भवात्। न हि तन्तुपटव्यतिरिक्तं वस्त्वन्तरप्रसिद्धं यत्स
तन्तुपटस्वभावतोच्येत।

न च तन्तुपटादीनां कथञ्चिद्भेदाभेदात्मकत्वमभ्युपगन्तव्यम्;
संशयादिदोषोपनिपातानुषङ्गात्। 'केन खलु स्वरूपेण तेषां भेदः
केन चामेदः' इति संशयः। तथा 'यत्रामेदस्तत्र भेदस्य विरोधो
१० यत्र च भेदस्तत्रामेदस्य शीतोष्णस्पर्शवत्' इति विरोधः। तथा—
'अमेदस्यैकत्वस्वभावस्यान्यदधिकरणं भेदस्य चानेकस्वभावस्या-
न्यत्' इति वैयधिकरण्यम्। तथा 'एकान्तेनैकात्मकत्वे यो
दोषोऽनेकस्वभावत्वाभावलक्षणोऽनेकात्मकत्वे चैकस्वभावत्वाभा-
वलक्षणः सोऽत्राप्यनुपज्यते' इत्युभयदोषः। तथा 'येन स्वभावे-
१५ नार्थस्यैकस्वभावता तेनानेकस्वभावत्वस्यापि प्रसङ्गः, येन चाने-
कस्वभावता तेनैकस्वभावत्वस्यापि' इति सङ्करप्रसङ्गः। "सर्वेषां
युगपत्प्राप्तिः सङ्करः" [] इत्यभिधानात्। तथा 'येन स्वभावे-
नानेकत्वं तेनैकत्वं प्राप्नोति येन चैकत्वं तेनानेकत्वम्' इति व्यति-
करः। "परस्परविषयगमनं व्यतिकरः" [] इति प्रसिद्धेः। तथा
२० 'येन रूपेण भेदस्तेन कथञ्चिद्भेदो येन चामेदस्तेनापि कथञ्चि-
द्भेदः' इत्यनवस्था। अतोऽप्रतिपत्तितोऽभावस्तस्वस्यानुषज्येता-
नेकान्तवादिनाम्। एवं सर्वत्राद्यनेकान्ताभ्युपगमेऽप्येतेऽहौ दोषा
द्रष्टव्याः। तत्र तदात्मार्थः प्रमाणप्रमेयः।

किन्तु परस्परतोऽत्यन्तविभिन्नां द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेष-
२५ समवायाख्याः षडेव पदार्थाः। तत्र पृथिव्यसेजोवाय्वाकाशकाल-
दिगात्ममनांसि नचैव द्रव्याणि। पृथिव्यसेजोवायुरित्येतच्चतुःसंख्यं

१ वस्तुनः। २ स तदात्मा, तस्य भावस्तादात्म्यम्। ३ एकरूपपटादिभिन्ना-
स्तन्ताव एकरूपमापन्ना इति। ४ तन्तुपटौ स्वभावौ यस्य। ५ आदिपदेन गुणगुण्या-
दीनाम्। ६ कथम्? तथा हि। ७ भेदाभेदात्मकत्वे वस्तुनोऽसाधारण्यकरण
निमित्तमशक्येः संशयः। ८ भेदाभेदात्मकत्वे। ९ अयमपि वैयधिकरण्येऽन्तर्भवति।
१० स्वभावानाम्। ११ संशयादिदोषतः। १२ अनुपलम्भः। १३ आदिना-
असत्त्वादि। १४ सामान्यविशेषात्मा। १५ प्राणाः। १६ विभिन्नप्रत्ययविषय-
त्वाद्भिन्नलक्षणलक्षितत्वाद्भिन्नकारणप्रभवत्वाद्भिन्नावर्तिकाकारित्वाच्च पटपटवत्।
१७ प्रमाणप्राणाः।

द्रव्यं नित्यानित्यविकल्पाद्भिेदम् । तत्र परमाणुरूपं नित्यं संद-
कारणवत्त्वात् । तदारब्धं तु द्रव्यणुकादि कार्यद्रव्यमनित्यम् ।
आकाशादिकं तु नित्यमेवानुत्पत्तिमत्त्वात् । येषां च द्रव्यत्वामि-
सम्बन्धाद्द्रव्यरूपता ।

एतच्चेतरद्रव्यच्छेदकमेषां लक्षणम् ; तथाहि-पृथिव्यादीनि ५
मनःपर्यन्तानीतरेभ्यो भिद्यन्ते, 'द्रव्याणि' इति व्यवहर्त्तव्यानि,
द्रव्यत्वामिसम्बन्धात्, यानि नैवं न तानि द्रव्यत्वामिसम्बन्धवन्ति
यथा गुणादीनीति । 'पृथिव्यादीनामप्यवान्तरभेदेदवतां पृथिवीत्वा-
द्यमिसम्बन्धो लक्षणम् इतरेभ्यो भेदे व्यवहारे तच्छब्दवाच्यत्वे
चा साध्ये केवलव्यतिरेकिरूपं द्रव्यम् । अमेदवतां त्वाकाश-१०
कालदिग्द्रव्याणामनादिसिद्धा तच्छब्दवाच्यता द्रष्टव्या ।

एवं रूपादयश्चतुर्विंशतिगुणाः । उत्क्षेपणादीनि पञ्च कर्माणि ।
परिपरभेदभिन्नं द्विविधं सामान्यम् अनुगतज्ञानकारणम् । नित्यद्र-
व्यव्यावृत्तयोऽन्त्या विशेषा अत्यन्तव्यावृत्तिबुद्धिहेतवः ।
अयुतसिद्धानामाधारार्थानामिहेदमितिप्रत्ययहेतुर्यः सम्ब-१५
न्धः स समवायः ।

अत्र पदार्थषट्के द्रव्यवहृणा अपि केचिन्नित्या एव केचिर्नै-
नित्या एव । कर्माऽनित्यमेव । सामान्यविशेषसमवायास्तु नित्या
एवेति ।

१ खड्गमुमादिना न्यमिचारपरिहारायं स्रदिति, तेनाभ्यापिघटादिना न्यमिचार-
साभिरासार्थमकारणवत्त्वादिति । २ अवयविरूपम् । ३ उत्पत्तिमत्त्वात् । ४ सत्त्वे
सतीति बोध्यम् । ५ नवसख्योपेतपृथिव्यादीनाम् । ६ प्रतिपत्तव्या । ७ इतरे-
गुणादयः । ८ असाधारणस्वरूपम् । ९ अत्रापि साध्याभावे साधनाभावोक्ति ।
१० द्रव्याणां गुणादिभ्यो भेदादिकं प्रसाध्येदानीं नवद्रव्याणां तत्रेदानीं च परस्परं
भेदादिकं साधयति वैशेषिकः । ११ ननु यद्यपि नवाना पृथिव्यादीनां गुणादिभ्यो
भेदस्तथा व्यवहारस्तच्छब्दवाच्यत्वं च समर्थितं तथापि तेषां तत्रेदानीं च परस्परं
भेदस्तथा व्यवहारस्तच्छब्दवाच्यत्वमिति च साध्येषु किं साधनमित्युक्ते आह ।
१२ घटपटादिबृष्टजलादिप्रतिपादिशीतवातादि इत्यादयोऽवान्तरभेदाद्य तेष्वेव सम्ब-
न्धेन, आकाशादीनां नित्यनिरक्षत्याभ्यामवान्तरभेदासम्भवात् । १३ अवादिभ्यः ।
१४ साधनम् । १५ पृथिवी भूमिणीतरेभ्यो भिद्यते पृथिवीति वा व्यवहर्त्तव्या
पृथिवीत्वामिसम्बन्धादवादिवत्, एवमवादिष्वपि द्रष्टव्यम् । १६ पृथिव्यादिप्रकारेण ।
१७ सत्ताव्य । १८ द्रव्यत्वादि । १९ हर्दं सदिदं सद्य, हर्दं द्रव्यमिदं द्रव्यमित्ये-
वम् । २० अशुभनिसिद्धानाम् । २१ गुणगुण्पादीनाम् । २२ निलद्रव्याभिरताः ।
२३ यथाकाशादौ परममहत्त्वादि । २४ अनिलद्रव्याभिरताः । २५ साभिदासादयः ।

अत्र प्रतिविधीयते । अनेकधर्मात्मकत्वेनार्थस्य ग्राहकप्रमाणा-
भावोऽसिद्धः; तथाहि—वास्तवानेकधर्मात्मकोर्थः, परस्परवि-
लक्षणानेकार्थक्रियाकारित्वात्, पिटपुत्रपौत्रभ्रातृभागिन्याद्यने-
कार्थक्रियाकारित्वेवदत्तवत् । न चायमसिद्धो हेतुः; आत्मनो
५ मनोज्ञानानिरीक्षणस्पर्शनमधुरध्वनिश्रवणताम्बूलादिरसास्वाद-
नकपूरादिगन्धाम्राणमनोश्चचनोच्चारणचङ्कमणावस्थानहर्षविषा-
दानुवृत्तव्यावृत्तज्ञानाद्यन्योन्यविलक्षणानेकार्थक्रियाकारित्वेन अ-
व्यक्षतोनुभवात् । घटादेश्च स्वान्यव्यक्तिप्रदेशौघपेक्षानुवृत्तव्यावृ-
त्तसदसत्प्रत्ययस्थानगमनेजलधारणादिपरस्परविलक्षणानेकार्थ-
१० क्रियाकारित्वेन प्रत्यक्षतः प्रतीतेरिति । इष्टान्तोपि न साध्यसाधन-
विकलः; वास्तवानेकधर्मात्मकत्वाऽन्योन्यविलक्षणानेकार्थक्रिया-
कारित्वयोस्तत्र सद्भावात् ।

ननु मित्रप्रमाणग्राह्यत्वेन धर्मधर्मिणोरत्यन्तभेदप्रसिद्धेः सिद्धेपि
धर्मिणि वास्तवानेकधर्माणां सङ्गवे तादात्म्याप्रसिद्धिः; इत्यप्य-
१५ समीचीनम्; अनैकान्तिकत्वाद्भेदोः, प्रत्यक्षानुमानाभ्यां हि मित्र-
प्रमाणग्राह्यत्वेप्यात्मादिवस्तुनो भेदाभावः, दूरेतरदेशचिन्ताम-
स्पष्टेतरप्रत्ययग्राह्यत्वेपि वा पादपस्याऽभेदः । ननु चात्र प्रत्यय-
भेदाद्विषयभेदोऽस्त्येव, प्रथमसमर्थवर्ति हि विज्ञानमूर्त्ताविषय-
मुत्तरं च शौखादिविशेषविषयम्; इत्यप्यसाम्प्रतम्; एवंविषय-
२० भेदाभ्युपगमे 'यमहमद्राक्षं दूरस्थितः पादपमेतर्हि तमेव
पश्यामि' इत्येकत्वाभ्यवसायो न स्यात्, स्पष्टेतरप्रतिभासानां सा-
मान्यविशेषविषयत्वेन घटादिप्रतिभासवद्भिन्नविषयत्वात् । अथ
पादपापेक्षया पूर्वोत्तरप्रत्ययानामेकविषयत्वं सामान्यविशेषापेक्षया
तु विषयभेदः; कथमेवमेकान्ताभ्युपगमो न विशीर्येत? गुण-

१ वाक्षार्थस्य । २ स्वक्षान्यश्च तौ व्यक्तिश्च प्रदेशादयश्च तौ स्वान्ययोर्व्यक्ति-
प्रदेशादयः तेषामपेक्षा तथा, ततश्चायमर्थः स्वन्वकल्पपेक्षया स्वप्रदेशापेक्षान्य-
व्यकल्पपेक्षयाऽन्यप्रदेशापेक्षया यथाक्रममनुवृत्तान्वावृत्तप्रत्ययः सदसत्प्रत्ययलक्षणाध-
क्रियाकारित्वादि । ३ आदिना कालभावग्रहणम् । ४ घटस्तिष्ठति । ५ घटो जले
गच्छति पत्रयाकाशे गच्छतीत्यादि । ६ सत्प्रतिपक्षत्वं हेतोः सद्भावयति परः । ७ धर्मैः
सह धर्मिनो धर्मिणा वा धर्माणात् । ८ सर्वथा भेदाभावे । ९ मित्रप्रमाणग्राह्यत्वादि-
लक्ष्य । १० अहं सुख्यहं दुःखीत्यादिसंसिद्धेनेन आत्मास्ति व्याधारादिकार्य-
दर्शनादित्वात्तनुमानेन च । ११ पुरुषाणात् । १२ यथा । १३ कुतस्तथा हि ।
१४ दूरतः । १५ समीपे शाखादिमानसि । १६ नरः । १७ तव परस्य ।
१८ यदोर्मित्रप्रमाणग्राह्यत्वं तयोः सर्वथा भेद इति ।

गुण्यादिष्वप्यतस्तद्वत्कथञ्चिद्भेदाभेदप्रसिद्धेर्भिन्नप्रमाणग्राह्यत्वस्य
विरुद्धत्वम् ।

एकान्ततोऽवयवावयव्यादीनां भिन्नप्रमाणग्राह्यत्वं चासिद्धम् ;
'पटोयम्' इत्याद्युल्लेखेनाभिन्नप्रमाणग्राह्यत्वस्यापि सम्भवात् ।
ननु 'पटोयम्' इत्याद्युल्लेखेनावयव्येव प्रतिभासते नावयवास्तत्क-^५
थमभिन्नप्रमाणग्राह्यत्वम् ; इत्यप्यपेशलम् ; तद्भेदाप्रसिद्धेः । तन्तव
एव ह्यातानवितानीभूता अवस्थाविशेषविशिष्टाः 'पटोयम्'
इत्याद्युल्लेखेन प्रतिभासन्ते नान्यस्ततोर्थान्तरं पटः । प्रमाणं हि
यथाविधं वस्तुस्वरूपं गृह्णाति तथाविधमेवाभ्युपगन्तव्यम्, यत्रा-
त्यन्तभेदग्राहकं तत्रात्यन्तभेदो यथा घटपटादौ, यत्र पुनः १०
कथञ्चिद्भेदग्राहकं तत्र कथञ्चिद्भेदो यथा तन्तुपटादाविति ।

अतः कालात्ययापदिष्टं चेदं सार्धं यथानुष्णोद्भिद्र्व्यत्वाज्जल-
वत् । न च घटादौ तथाविधभेदेनास्य व्याप्त्युपलम्भात्सर्वत्रौत्सन्त-
भेदकरूपना युक्ता; क्वचित्तार्णत्वादिविशेषाधारेणाग्निना धूमस्य
व्याप्त्युपलम्भेन सर्वत्राप्यतस्तथाविधविशेषसिद्धिप्रसङ्गात् । १५
अथ तार्णत्वादिविशेषं परित्यज्य सकलविशेषसाधारणमग्निमात्रं
धूमात्प्रसाध्यते । नन्वेवमत्यन्तभेदं परित्यज्यावयवावयव्यादिष्वपि
भिन्नप्रमाणग्राह्यत्वाद्भेदमात्रं किं न प्रसाध्यते विशेषाभावात् ?

दृष्टान्तश्च सार्धविकलत्वान्न साधनाङ्गम् ; अत्यन्तभेदस्यात्राप्य-
सिद्धेः । तदसिद्धिश्च सद्रूपतया घटादीनामभेदात् । साधनविकलश्च २०
स्फारिताक्षस्यैकस्मिन्नप्यध्यक्षे घटादीनां प्रतिभाससम्भवात् । न
च प्रतिविषयं विज्ञानभेदोऽभ्युपगन्तव्यः ; मेचकज्ञानाभावप्रसङ्गात् ।
घटादिवस्तुनोप्येकविज्ञानविषयत्वाभावानुषङ्गाच्च ; अत्राप्यूर्ध्वो-
मध्यभागेषु तद्भेदस्य करुपायितुं शक्यत्वात् । तयो चावयविप्रसि-
द्धये दत्तो जलाञ्जलिः । अतीतिविरोधोऽन्यत्रापि न काकैर्मक्षितः । २५

१ भिन्नप्रमाणग्राह्यत्वात् । २ साध्यविषयव्यत्यासो विरुद्धः । ३ साधनम् । ४ अति-
रुद्धत्वं परिहरति परः । ५ पटः । ६ पर्यायतया । ७ अभ्युपगन्तव्यम् । ८ प्रमाणेन
सर्वथा भेदस्य नावयवात् । ९ न केवलमसिद्धम् । १० भिन्नप्रमाणग्राह्यत्वादिति ।
११ घटपटयोः । १२ सर्वथा । १३ तन्तुपटादौ । १४ यथाग्निमात्रे साधिते सति
आदित्वाग्निस्तथा पाणोऽग्निरपि लभ्यते एवं भेदमात्रे साधिते भेदो लभ्यतेऽभेदोपि
(ये कथञ्चिद्भेदोऽपि) लभ्यते इति भावार्थः । १५ परेण त्वया । १६ विशेषपरि-
त्यागस्य । १७ घटपटवदिति । १८ अत्यन्तभेदः साध्यः । १९ युगपत् ।
२० सेनावनादिज्ञानवत् । २१ सर्वथा । २२ तस्य ज्ञानस्य । २३ घटादिवस्तुनो
भेदे च । २४ ज्ञानभेदेनैव सिद्धेः । २५ यकोर्यं घट इति । २६ अवयवावय-
व्यादेः सर्वथा भेदे साध्ये ।

विरुद्धधर्माध्यासोपि धूमादिनानैकान्तिकत्वाद्वावयवावयवि-
नोरात्यन्तिकं भेदं प्रसाधयति । न खलु स्वसाध्येतरयोगम-
कत्वागमकत्वलक्षणविरुद्धधर्माध्यासेपि धूमो भिद्यते । नन्वत्रापि
सामग्रीभेदोस्त्येव-धूमस्य हि पक्षधर्मत्वादिकारणोपचितस्य
५ स्वसाध्यं प्रति गर्भकत्वम्, तद्विपरीतकारणोपचितस्य सामग्र्य-
न्तरत्वात्साध्यान्तरेऽगमकत्वम्, न त्वेकस्यैव गमकत्वागम-
कत्वं सम्भवति; इत्यप्यन्धसर्पविलप्रवेशन्यायेनानैकान्तावल-
म्बनम्; धूमस्याभिन्नत्वात् । य एव हि धूमोऽविनाभावसम्ब-
न्धस्तरणादिकारणोपचितो वर्हिह प्रति गमकः स एव साध्या-
१०न्तरेऽगमक इति । अथान्यः स्वसाध्यं प्रति गमकोऽन्यश्चान्यत्रागम-
कः; तर्हि यो गमको धूमस्तस्य स्वसाध्यवत्साध्यान्तरेपि
सामर्थ्यादेकसादेव धूमान्निखिलसाध्यसिद्धिप्रसङ्गाद्देवन्तरोप-
न्यासो व्यर्थः स्यात् ।

किञ्च, अतोऽप्राप्तपटावस्थेभ्यः प्राक्तनावस्थाविशिष्टेभ्यस्त-
१५न्तुभ्यः पटस्य भेदः साध्येत, पटावस्थाभाविभ्यो वा ? प्रथमपक्षे
सिद्धसाध्यता, पूर्वात्तरावस्थयोः सकलभावानां भेदाभ्युपगमात् ।
न खलु यैवार्थस्य पूर्वावस्था सर्वोत्तरावस्था पूर्वाकारपरित्यागेनै-
वोत्तराकारोत्पत्तिप्रतीतेः । द्वितीयपक्षे तु हेतूनामसिद्धिः; न
खलु पटावस्थाभावितन्तुभ्यः पटस्य भेदाप्रसिद्धौ विरुद्धधर्मा-
२०ध्यासविभिन्नकर्तृकत्वादयो धर्माः सिद्धिर्भासादयन्ति । काला-
त्ययापदिष्टत्वं चैतेषाम्; आतानवितानीभूततन्तुव्यतिरेकेणार्था-
न्तरभूतस्य पटस्याध्यक्षेणानुपलब्धेस्तेन भेदपक्षस्य बाधितत्वात् ।

‘तन्तवः पटः’ इति संज्ञामेदोप्यवस्थामेदनिबन्धनो न पुनर्ग्र-
व्यान्तरनिमित्तः । योषिदादिकरव्यापारोत्पन्ना हि तन्तवः कुवि-
२५न्दादिव्यापारात्पूर्वं शीतापनोदाद्यर्थासमर्थास्तन्तुव्यपदेशं लभन्ते,
तद्व्यापाराच्चत्तरकालं विशिष्टावस्थाप्राप्तास्तत्समर्थाः पटव्यपदेश-
मिति ।

विभिन्नशक्तिकत्वाद्यैप्यवस्थामेदमेव तन्तूनां प्रसाधयति न
त्ववयवावयवित्वेनात्यन्तिकं भेदम् ।

१ हेतुः । २ चक्षुरादिना च । ३ ययोविरुद्धधर्माध्यासस्तयोरात्यन्तिको भेद
इत्यनुमाने । ४ उक्तमेव समर्थयन्ति । ५ महानसादौ । ६ जलदौ । ७ नादिना
पक्षधर्मत्वादिग्रहणम् । ८ विरुद्धधर्माध्यासात् । ९ जनैः । १० सात्मोपलब्धिश्च ।
११ विरुद्धधर्माध्यासादयो यदि भेदप्रसाधका न भवेयुस्तदा कथं सञ्जाभेदो भवित्य-
दीलाह । १२ साधनम् ।

यच्चोक्तम्—‘पटस्य भावः’ इत्यभेदे^१ पट्टी न प्राप्नोतीति; तदप्यप्रयुक्तम्; ‘षण्णां पदार्थानामस्तित्वम्, षण्णां पदार्थानां वैर्गः’ इत्यादौ भेदाभावेऽपि षष्ठ्याद्युत्पत्तिप्रतीतिः । न हि भवता षट्पदार्थव्यतिरिक्तमस्तित्वादीप्यते । ननु सतो क्षापकप्रमाणविषयस्य भावः सत्त्वम्—सदुपलम्भकप्रमाणविषयत्वं नाम धर्मन्तरं^५ षण्णामस्तित्वमिष्यते, अतो नानेनानेकान्तः; तदसत्; षट्पदार्थसंख्याव्याघातानुषङ्गात्, तस्य तेभ्योन्यत्वात् । ननु धर्मिरूपा एव ये भावास्ते षट्पदार्थाः प्रोक्ताः, धर्मरूपास्तु तद्व्यतिरिक्ता इष्टा एव । तथा च पदार्थप्रवेशकग्रन्थैः—“एवं धर्मैर्विना धर्मिणामेव निर्देशः कृतः” [प्रशस्तपादभा० पृ० १५] इति । १०

अस्तु वैवं तथाप्यस्तित्वादेर्धर्मस्य षट्पदार्थैः सार्धं कः सम्बन्धो येन तत्तेषां धर्मः स्यात्—संयोगः, समवायो वा ? न तावत्संयोगः; अस्य गुणत्वेन द्रव्याश्रयत्वात् । नापि समवायः; तस्यैकत्वेनेष्टत्वात् । समवायेन चास्य समवायसम्बन्धे समवायानेकत्वप्रसङ्गः । सम्बन्धमन्तरेण धर्मधर्मिभावाभ्युपगमे चातिप्रसङ्गः । १५

किञ्च, अस्तित्वादेरपरमस्तित्वाभावात्कथं तत्र व्यतिरेकनिबन्धना विभक्तिर्मवेत् ? अथ तत्राप्यपरमस्तित्वमङ्गीक्रियते तदानवस्थौ स्यात् । उत्तरोत्तरधर्मसमावेशेन च सैत्त्वादेर्धर्मिरूपत्वानुषङ्गात् ‘षडेव धर्मिणः’ इत्यस्य व्याघातः । ‘ये धर्मिरूपा एव ते षट्केनावधारिताः’ इत्यप्यसारम्; एवं हि गुणकर्मसामान्यविशेष-^{२०} समवायानामनिर्देशः स्यात् । न ह्येषां धर्मिरूपत्वमेव; द्रव्याश्रितत्वेन धर्मरूपत्वस्यापि सम्भवात् ।

१ सामान्यविशेषयोः । तन्नुपपत्त्यादीनाम् । २ षट् पदार्था एव समूहः । ३ वस्तुतः । ४ तदेव । ५ षट्पदार्थेभ्यो मिश्रम् । ६ धर्मिधर्मरूपयोः षट्पदार्थास्तित्वयोः सर्वथा भेदाभेदसङ्गात्वात् । ७ यत्र षष्ठीतद्धितोरपचित्स्त्रात्रालान्तिको भेद इत्यस्य । ८ सप्तमपदार्थापत्तेः । ९ अस्तित्वादयः । १० मम वैशेषिकस्य । ११ धर्मिभ्यो वर्माणाम् व्यतिरिक्तानेवणप्रकारेण । १२ श्रूयते । १३ परेण । १४ अन्ययेति श्रेयः । १५ समवायपदार्थैस्तित्वेन भाव्यं तत्तु तत्रापरसमवायपदार्थेन कृत्वा नचैते । एवं तत्सामान्यकत्वापत्तिर्नैव । १६ गगनकुसुमाद्यस्तित्वाद्योर्धर्मिधर्मभावः स्वादित्यतिप्रसङ्गः । १७ यत्र षष्ठी विभक्तिस्त्रात्रालान्तमेव इत्यस्मिन्पक्षेऽनेकान्तिकं दूषणमुक्त्वावयति जैनः । १८ सामान्यस्य । १९ सत्ताया अस्तित्वं गोत्वादेरस्तित्वमित्यत्र । २० अनेकान्तदोषपरिहारणं परेण । २१ अपरापरमस्तित्वसङ्गात्वात् । २२ दूषणान्तरम् । २३ पूर्वस्य पूर्वस्य । २४ अर्थात्—एकस्यैव, इत्यस्य निर्देशः स्यात् ।

तथा 'स्वस्य भावः स्वत्वम्' इत्यत्रामेदेपि तद्धितोत्पत्तेरुप-
लम्भात् सापि भेदपक्षमेवावलम्बते ।

यच्चोक्तम्—'तादात्म्यमित्यत्र कीदृशो विग्रहः कर्तव्यः' इत्यादिः ।
तत्रेत्यं विग्रहो द्रष्टव्यः—तस्य वस्तुन आत्मानौ द्रव्यपर्यायी
५ सत्त्वासत्त्वादिधर्मौ वा तदात्मानौ, तच्छब्देन वस्तुनः परामर्शात्,
तयोर्भावस्तादात्म्यम्—भेदाभेदात्मकत्वम् । वस्तुनो हि भेदः
पर्यायरूपतैव, अमेदस्तु द्रव्यरूपत्वमेव, भेदाभेदौ तु द्रव्यपर्याय-
स्वभावावैव । न खलु द्रव्यमात्रं पर्यायमात्रं वा वस्तुः, उभयात्मनः
समुदायस्य वस्तुत्वात् । द्रव्यपर्याययोस्तु न वस्तुत्वं नाप्यव-
१० स्तुताः, किन्तु वस्तुवेकदेशता । यथा समुद्रांशो न समुद्रो
नाप्यसमुद्रः, किन्तु समुद्रैकदेश इति ।

'स पट आत्मा येर्षौम्' इत्यपि विग्रहे न दोषः; अवस्थाविशेषा-
पेक्षया तन्तूनामेकत्वस्याभीष्टत्वात् ।

'ते तन्तव आत्मा यस्य इति विग्रहे तन्तूनामनेकत्वे पटस्या-
१५ प्यनेकत्वं स्यादिति चेत्; किमिदं तस्यानेकत्वं नाम—किमनेका-
वयवात्मकत्वम्, प्रतितन्तु तत्प्रसङ्गो वा? प्रथमपक्षे सिद्ध-
साध्यता; आतानवितानीभूतानेकतन्त्वाद्यवयवात्मकत्वात्तस्य ।
द्वितीयपक्षस्त्युक्तः; प्रत्येकं तेषां तत्परिणामाभावात् । समुद्रि-
तानामेव ह्यातानवितानीभूतः परिणामोऽभीषां प्रतीयते, तथा-
२० भूताश्च ते पटस्यात्मेत्युच्यते ।

वस्तुनो भेदाभेदात्मकत्वे संशयादिदोषानुपसङ्गोऽयुक्तः; भेदा-
भेदाऽप्रतीतौ हि संशयो युक्तः, क्वचित्स्थाणुपुरुषत्वाप्रतीतौ
तत्संशयवत् । तत्प्रतीतौ तु कथमसौ स्थाणुपुरुषप्रतीतौ
तत्संशयवदेव ? चक्षिता च प्रतीतिः संशयः, न चैवं तथेति ।

२५ न ज्ञानयोर्विरोधः; कथञ्चिद्विपर्ययोः सत्त्वासत्त्वयोरिव भेदा-
भेदयोर्विरोधासिद्धेः, तथाप्रतीतेश्च । प्रतीयमानयोश्च कथं विरोधो
नामास्यानुपलम्भसाध्यत्वात्? न च स्वरूपादिना वस्तुनः सत्त्वे
तदैव पररूपादिभिरसत्त्वस्यानुपलम्भोस्ति । न खलु वस्तुनः

१ पदेनोद्धृतासामान्यपर्यायलक्षणविशेषात्मकवस्तु गृहीतम् । २ पदेन तिर्यक्-
सामान्यव्यतिरेकविशेषात्मकं वस्तु सङ्गृहीतम् । ३ प्रत्येकम् । ४ तन्तूनाम् । ५ पटसै-
कत्वे तन्तूनामेकत्वानुपसङ्गलक्षणः । ६ अवस्था=पटरूपा । ७ आदिना ज्ञानप्रवणम् ।
८ अस्माभिर्जनैः । ९ द्रव्यपर्यायापेक्षया । १० विनक्षितयोः (द्रव्ययोः) ।
११ स्वपरद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया । १२ पर्यायापेक्षया भेदः । द्रव्यापेक्षया चाभेदः ।
१३ भेदाभेदप्रकारेण ।

सर्वथा भाव एव स्वरूपम्; स्वरूपेणेव पररूपेणापि भाव-
प्रसङ्गात् । नाप्यभाव एव; पररूपेणेव स्वरूपेणाप्यभावप्रसङ्गात् ।

न च स्वरूपेण भाव एव पररूपेणाभावः, परात्मना चाभाव
एव स्वरूपेण भावः; तदपेक्षणीयनिमित्तभेदात्, सैद्ध्यद्विदि-
हि निमित्तमपेक्ष्य भावप्रत्ययं जनयत्यर्थः परद्रव्यादिकं त्वपे-
क्ष्याऽभावप्रत्ययम् इति एकैकत्वद्वित्वादिसंख्यावदेव वस्तुनि
भावाभावयोर्भेदः । न ह्येकत्र द्रव्ये द्रव्यान्तरमपेक्ष्य द्वित्वादि-
संख्या प्रकाशमाना स्वात्ममात्रापेक्षैकत्वसंख्यातो नान्या प्रती-
यते । नापि सोमयी तद्वतो मित्रैव; अस्याऽसंख्येयत्वप्रसङ्गात् ।
संख्यासमवायात्तत्त्वम्; इत्यप्यसुन्दरम्; कथञ्चित्तादात्म्यव्यति-
रिक्तस्य समवायस्यासत्त्वप्रतिपादनात् । तत्सिद्धोऽपेक्षणीयभे-
दात्संख्यावत्सत्त्वासत्त्वयोर्भेदः । तथाभूतयोश्चान्योरेकवस्तुनि
प्रतीयमानत्वात्कथं विरोधः द्रव्यपर्यायरूपत्वादिना भेदाभेद-
योर्वा? मिथ्येयं प्रतीतिः; इत्यप्यसङ्गतम्; बाधकाभावात् ।
विरोधो बाधकः; इत्यप्ययुक्तम्; इतरेतराश्रयानुपङ्गात्-सति १५
हि विरोधे तेनास्याबाध्यमानत्वान्मिथ्यात्वसिद्धिः, ततश्च तद्वि-
रोधसिद्धिरिति ।

- विरोधश्च अविकलकारणस्यैकस्य भवेतो द्वितीयसन्निधानेऽ-
भावादवसीयते । न च भेदसन्निधानेऽभेदस्याऽभेदसन्निधाने वा
भेदस्याभावोऽनुभूयते ।

२०

किञ्च, अत्र विरोधः सहानवस्थानलक्षणः, परस्परपरिहार-
स्थितिसमावो वा, बध्यघातकरूपो वा स्यात्? न तावत्सहान-
वस्थानलक्षणः; अन्योन्याव्यवच्छेदेनैकस्मिन्नाधारे भेदाभेदयो-
र्धर्मयोः सत्त्वासत्त्वयोर्वा प्रतिभासमानत्वाद् । परस्परपरिहार-
स्थितिलक्षणस्तु विरोधः सहैकत्रासत्त्वादी रूपरसयोरिवावयवयोः २५
सम्भवतोरेव स्यान्न त्वसम्भवेतोः सम्भवदसम्भवेतोर्वा ।

किञ्च, अयं विरोधो धर्मयोः, [धर्म] धर्मिणोर्वा? प्रथमपक्षे
सिद्धसाधनम्; यत्तल्लक्षणत्वाद् धर्माणाम् । ऐकाधिकारण्यं तु

१ भावः=अस्तित्वम् । २ तयोः=भावाभावयोः । ३ कथम्? तथा हि ।
४ सापेक्षया यत्कलं यथा तथा परापेक्षया द्वित्वं च । ५ विशेषः । ६ संख्येयत्वम् ।
७ भ्रमे । ८ मित्रयोः । ९ सत्त्वासत्त्वयोः । १० शीतल । ११ जायमानल ।
१२ उष्ण । १३ ययोस्तथा प्रतिभासमानत्वं न तयोस्तथा विरोधो यथा रूपरसयोः,
तथा प्रतिभासमानत्वं च भेदाभेदयोरेति । १४ विद्यमानयोः । १५ असिन्विरोधे सति
दोषो नास्तीत्यर्थः । १६ अज्ञानविषाणयोरेव । १७ द्रव्याऽव्यवस्थानव्ययोरिव ।

तेषां न विरुध्यन्ते मातुलिङ्गद्रव्ये रूपादिवत् । धर्मधर्मिणोस्तु
विरोधे धर्मिणि धर्माणां प्रतीतिरेव न स्यात्, न चैवम्, अबाध-
बोधाधिरूढप्रतिभासत्वात्तत्र तेषाम् । बध्यघातकभावोपि
विरोधः फणिनकुलयोरिव बलवदवलवतोः प्रतीतः सत्त्वा-
५ सत्त्वयोर्भेदाभेदयोर्वा नाशङ्कनीयः; तयोः समानबलत्वात् ।

अस्तु वा कश्चिद्विरोधः; तथाप्यसौ सर्वथा, कथञ्चिद्वा स्यात् ?
न तावत्सर्वथा; शीतोष्णस्पर्शादीनामपि सत्त्वादिना विरोधा-
सिद्धेः । एकाधारतया चैकस्मिन्नपि हि धूपदहनादिभाजने कचित्प्र-
देशे शीतस्पर्शः क्वचिन्वोष्णस्पर्शः प्रतीयत एव । अथानयोः
१० प्रदेशयोर्भेद एवेष्यते; अस्तु नामानयोर्भेदः, धूपदहनाद्यवयवि-
नस्तु न भेदः । न चास्य शीतोष्णस्पर्शाधारता नास्तीत्यभिघात-
व्यम्; प्रत्यक्षविरोधात् । तत्र सर्वथा विरोधः । कथञ्चिद्विरोधस्तु
सर्वत्र समानः ।

किञ्च, भावेभ्योऽभिन्नः, भिन्नो वा विरोधः स्यात् ? न
१५ तावत्सेभ्योऽभिन्नो विरोधो विरोधको युक्तः; स्वात्मभूतत्वात्त-
त्स्वरूपवत्, विपर्ययानुषङ्गो वा । अथ भिन्नः; तथापि न
विरोधकः; अनात्मभूतत्वादर्थान्तरवत् । अथार्थान्तरभूतोपि
विरोधो विरोधको भावानां विशेषणभूतत्वात्, न पुनर्भावान्तरं
तस्य तद्विशेषणत्वाभावात्; तदप्यसमीचीनम्; विरोधो हि
२० तुच्छरूपोऽभावः, स यदि शीतोष्णद्रव्ययोर्विशेषणं तर्हि तयोर्द-
र्शनापत्तिस्तत्सम्बद्धरूपत्वात् । असम्बद्धस्य च विशेषणत्वेऽति-
प्रसङ्गात् ।

अन्यैतरविशेषणत्वेऽप्येतदेव दूषणम् । तदेव च विरोधि स्याद्य-

१ जैनमते । २ प्रदीपादौ । ३ स्वपरप्रकाशादीनाम् । ४ सत्त्वादिरूपान्वय-
च्छेदतः । ५ शीतस्पर्शः सन्नोष्णस्पर्शः सखिलादिना धर्मेण । ६ शीतोष्णस्पर्शादयो
न विरुद्धा एकाधारतया प्रतीयमानत्वात्, यत्तथा प्रतीयते न तत्सर्वथा विरुद्धं यथा
रूपरसादि, एकद्रव्याणां नामोन्नामादिर्वा, एकाधारतया प्रतीयन्ते च धूपदहनादौ
शीतोष्णस्पर्शादय इति । ७ परेण । ८ भावानामसाधारणस्वरूपप्रकारेण । ९ घटा-
कारस्य पटेऽभावात् । १० घटपटादौ घटपटरूपादौ वा । ११ भावा अपि विरोधस्य
विरोधकाः कुतो न अनेयुर्विरोधादभिन्नत्वाविशेष्यत् ? । १२ भावा विशेष्याविरोधो
विशेषणमनयोर्भावयोर्विरोध इति । १३ घटपटादिरूपः । १४ विवादापधे शीतोष्ण-
द्रव्ये धर्मिणी न दृश्येते इति साध्यो धर्मः, अभावसम्बद्धरूपत्वात् कचित्प्रदेशे
घटवत् । १५ शीतोष्णद्रव्ययोर्मध्ये शीतद्रव्यसोष्णद्रव्यस्य वा । १६ शीतोष्ण-
द्रव्ययोर्मध्ये । १७ विरोधस्य । १८ अदर्शनापत्तिरुक्तम् । १९ द्वितीयम् ।

स्यासौ विशेषणं नान्यत् । न चैकत्र विरोधो नामास्य द्विष्टत्वात्,
अन्यथा सर्वत्र सर्वदा तत्प्रसङ्गः ।

अथ विरुध्यमानत्वविरोधकर्तृत्वापेक्षया कर्मकर्तृस्थो विरोधः,
विरोधसामान्यापेक्षयोभयविशेषणत्वाद्द्विष्टोभिधीयते । नन्वेवं
रूपादेरपि द्विष्टत्वापत्तिः किञ्च स्यात् तत्सामान्यस्यापि द्विष्टत्वा-^५
विशेषात् ? विरोधस्याभावरूपत्वे सामान्यविशेषणत्वाभावानुपप-
त्तिश्च । गुणरूपत्वे गुणविशेषणत्वाभावानुपपत्तिः ।

अथ पदप्रदार्थव्यतिरिक्तत्वात् पदार्थविशेषो विरोधोऽनेकस्थो
विरोध्यविरोधकप्रत्ययविशेषप्रसिद्धः समाधीयते; तदाप्यस्या-
सम्बन्धस्य द्रव्यादौ विशेषणत्वम्, सम्बन्धस्य वा ? न तावदसम्ब-^{१०}
न्धस्य; अतिप्रसङ्गात्, दण्डादौ तथाऽप्रतीतिश्च । न खलु पुरुषेणा-
सम्बन्धो दण्डस्तस्य विशेषणं प्रतीतो येनात्रापि तथाभावः । अथ
सम्बन्धः; किं संयोगेन, समवायेन, विशेषणभावेन वा ? न ताव
त्संयोगेन; अस्याद्रव्यत्वेन संयोगानाश्रयत्वात् । नापि समवायेन;
अस्य द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषव्यतिरिक्तत्वेनासमवायित्वात् ।^{१५}
नापि विशेषणभावेन; सम्बन्धान्तरेणासम्बन्धे वस्तुनि विशेषण-
भावस्याप्यसम्भवात्, अन्यथा दण्डपुरुषादौ संयोगादिसम्बन्धा-
भावेपि स स्यात् इत्यलं संयोगादिसम्बन्धकल्पनाप्रयासेन ।
'विरुध्यविरोधकप्रत्ययविशेषस्तु विशिष्टं वस्तुधर्ममेवालम्बते'
इति वक्ष्यते समवायसम्बन्धनिराकरणप्रक्रमे । ततो विरोधस्य ^{२०}
विचार्यमाणस्यायोगान्नानैथोरसौ घटते ।

नापि वैयधिकरण्यम्; निर्वाचवोधे भेदाभेदयोः सत्त्वासत्त्व-
योर्वा एकाचारतया प्रतीयमानत्वात् ।

१ शीतद्रव्यस्योष्णद्रव्यस्य वा । २ उष्णद्रव्यं शीतद्रव्यं वा । ३ उष्णद्रव्ये शीतद्रव्ये
वा । ४ तथा च घटस्य सद्रूपतावत् (सत्तासम्बन्धात्सद्रूपानीति भावो वैशेषिकमते)
रूपादिसमावतापि न स्यात्, न चैतद्युक्तं प्रतीतिविरोधात् । ५ विरुध्यमानः=शीतः ।
६ विरोधकः=उष्णः । ७ विरोध्यविरोधकभावसम्बन्धापेक्षया । ८ ननु विशेषापेक्षया
यतः कर्तृस्थो विरोधो हि कर्मणि नास्ति कर्मस्थः कर्तारि नास्तीत्यद्विष्टो विशेषापेक्षयेति
भावः । ९ विरोधप्रकारेण । १० भावानां विरोधकत्वापत्तिः । ११ विरोधस्या-
भावरूपत्वं मा भूद्गुणरूपत्वं स्यादित्युक्ते आहार्त्वायः । १२ गुणा निर्गुणा इति
वचनाच्छ्रीतोष्णत्परश्चोगुणरूपयोर्विरोधो गुणरूप इति विशेषणत्वमस्य न घटतेऽन्यथा ।
१३ सप्तो विन्ध्यं प्रति विशेषणं स्यादसम्बन्धत्वाविशेषात् । १४ असम्बन्धविशेषणत्व-
प्रकारेण । १५ असम्बन्धत्वप्रकारेण । १६ पञ्चसु पदार्थेषु समवायोक्ति यतः ।
१७ प्रलयो=वानम् । १८ वस्तुनोऽन्यतिरिक्तमभावरूपं विरोधमवलम्बते न ह्य-
न्यतिरिक्तम् । १९ भेदाभेदयोः सत्त्वासत्त्वयोर्वा ।

नाप्युभयदोषः; चौर[पार]दारिकाभ्यामचौरपारदारिकवत्
जैनाभ्युपगतवस्तुनो जात्यन्तरत्वात् । न खलु भेदाभेदयोः
सत्त्वासत्त्वयोर्वाऽन्योन्यनिरपेक्षयोरेकत्वं जैनैरभ्युपगम्यते येनायं
दोषः, तत्सापेक्षयोरेव तदभ्युपगमात्, तथाप्रतीतिश्च ।

५ नापि सङ्करव्यतिकरौ; स्वरूपेणैवार्थे तयोः प्रतीतेः ।

नाप्यनवस्था; 'धर्मिणो ह्यनेकरूपत्वं न धर्माणां कथञ्चन'
इति, वस्तुनो ह्यभेदो धर्म्येव, भेदस्तु धर्मा एव, तत्कथमनवस्था?
अभावदोषस्तु दूरोत्सारित एव; अशेषप्राणिनामनेकान्तात्म-
कार्यस्यानुभवसम्भवात् ।

१० ननु शरीरेन्द्रियबुद्धिव्यतिरिक्तात्मद्रव्यस्येच्छादिशुणाश्रयस्य
नित्यैकरूपत्वात्कथं सर्वस्यानेकान्तात्मकत्वम्? न च नित्यैक-
रूपत्वे कर्तृत्वभोक्तृत्वजन्ममरणजीवनहिंसकत्वादिव्यपदेशा-
भावः; ज्ञानचिकीर्षाप्रयत्नानां समर्थायो हि कर्तृत्वम्, सुखादि-
संवित्समवायस्तु भोक्तृत्वम्, अपूर्वैः शरीरेन्द्रियबुद्ध्यादिभि-

१५ आभिसम्वन्धो जन्म, प्राणान्तैस्तैस्तु वियोगो मरणम्, जीवनं
तु सदेहस्यात्मनो धर्माधर्मापेक्षो मनसा सम्बन्धः, हिंसकत्वं च
शरीरचक्षुरादीनां वर्धात्र पुनरात्मनो विनाशात् । तथा च सूत्रम्-
"कार्याश्रयकर्तृवधादिसा" [न्यायसू० ३।१।६] इति । कार्या-
श्रयः शरीरं सुखादेः कार्याश्रयत्वात् । कर्तृणीन्द्रियाणि विषयो-
२० पलब्धेः कर्तृत्वादिति ।

तदप्यसमीक्षिताभिधानम्; सर्वथाऽपरित्यक्तपूर्वरूपत्वेनासौ-
काशकुशेशयवत् ज्ञानादिसमवायस्यैवासम्भवात् कथं तदपेक्षया
कर्तृत्वादिस्वरूपसम्भवः? पूर्वरूपपरित्यागे वा कथं नानेकान्ता-
त्मकत्वम्; व्यौत्थत्यनुगमात्मकस्यैऽत्मनः स्वसंवेदनप्रत्यक्षतः
२५ प्रसिद्धेः । व्यावृत्तिः खलु सुखदुःखादिस्वरूपापेक्षया आत्मनः
अनुगमश्च चैतन्यद्रव्यत्वसत्त्वादिस्वरूपापेक्षया । तदात्मकत्वं
चाध्यक्षत एव प्रसिद्धम् ।

१ आत्मादिवस्तुनः । २ इत्थं पर्यायमपेक्ष्य कर्तृते पर्यायो द्रव्यमपेक्ष्य कर्तृते ।
३ परस्परपेक्षया । ४ भेदकरत्वाद्वा । ५ धर्माणामपरधर्माऽसम्भवात् । ६ प्रत्यक्षादि-
अभ्यागतः । ७ येषां वादिनां शरीरमेवात्मा इन्द्रियाण्येवात्मा बुद्धिरेवात्मा वा तेषां
मतनिरासार्थमिदं विशेषणम् । ८ आत्मना सह । ९ आदिना चिकीर्षामवस्था ।
१० घटते । ११ आत्मनः । १२ व्यापित्वाभ्यापित्वरूपे । १३ घटपटादौ ।
१४ पर्यायापेक्षया व्यावृत्त्यात्मकस्य चैतन्यापेक्षयानुगमात्मकस्य । १५ काकारै-
कद्रव्याविशेषात् । १६ आत्मसुखादिवत् ।

ननु चानुवृत्तव्यावृत्तस्वरूपयोः परस्परं विरोधात्कथं तदात्म-
कत्वमात्मनो युक्तम् ? इत्यप्यसत् ; प्रमाणप्रतिपक्षे वस्तुस्वरूपे
विरोधानवकाशात् । न खलु सर्पस्य कुण्डलेतरावस्थापेक्षया
अङ्गुल्यादेर्वा सङ्कोचितेतरस्वभावापेक्षया व्यावृत्त्यनुगमात्मकत्वं
प्रत्यक्षप्रतिपक्षं विरोधमध्यास्ते । ५

ननु सुखाद्यवस्थानामात्मनोऽत्यन्तभेदाच्च द्रव्यावृत्तावप्यात्मनः
किमायातं येनास्यापि व्यावृत्त्यात्मकत्वं स्यात् ? इत्यप्यपेशलम् ;
सुखाद्यात्मनोरत्यन्तभेदस्य प्रथमपरिच्छेदे प्रतिविहितत्वात् । ननु
चाकारवैलक्षण्येऽप्यात्मसुखादीनामनानात्वे अन्यत्राप्यन्यतोऽन्यै-
स्यान्यत्वं न स्यात् ; तदप्यविचारितरमणीयम् ; तद्वत्तादात्म्येना- १०
न्यत्रान्यस्य प्रमाणतोऽप्रतीतेः । प्रतीतौ तु भवत्येवाकारानात्वे-
प्यनानात्वम् प्रत्यभिज्ञाज्ञानवत्, सामान्यविशेषवत्, संशयज्ञान-
वत्, मेचकज्ञानवद्वेति ।

यद्योक्तम्—'द्रव्यादयः षडेव पदार्थाः प्रमाणप्रमेयाः' इत्यादि;
तदप्युक्तिमात्रम् । द्रव्यादिपदार्थषट्कस्य विचारसहत्वात् ; १५
तथाहि—यत्तावच्चतुःसंख्यं पृथिव्यादिनित्यानित्यविकल्पाद्भिर्भेद-
मित्युक्तम् ; तदयुक्तम् ; एकान्तनित्ये क्रमयोगपद्याभ्यामर्थ-
क्रियाविरोधात् । तल्लक्षणसत्त्वस्यातो व्यावृत्त्याऽसत्त्वंप्रसङ्गात् ।
यदि हि परमाण्वो द्रव्यणुकादिकार्यद्रव्यजननैकस्वभावाः ; तर्हि
तत्प्रभवकार्याणां सङ्घवेवोत्पत्तिप्रसङ्गोऽविकलकारणत्वात् । २०
प्रयोगः—येऽविकलकारणास्ते सङ्घवेवोत्पद्यन्ते यथा समान-
समयोत्पादा बहवोऽङ्कुराः, अविकलकारणाश्चाणुकार्यत्वेना-
भिमता भावा इति । तथाभूतानामप्यनुत्पत्तौ सर्वदानुत्पत्ति-
प्रसक्तिर्विशेषाभीवात् ।

ननु समवाय्यऽसमवायिनिमित्तभेदात्रिविधं कारणम् । यत्र हि २५
कार्यं समवेति तत्समवायिकारणम्, यथा द्यणुकस्याणुद्वयम् ।
यच्च कार्यकार्यसमवेतं कार्यकारणैकार्यसमवेतं वा कार्यमुत्पाद-
यति तदसमवायिकारणम्, यथा पटारम्भे तन्तुसंयोगः, पट-

१ घटे । २ पटस्य । ३ तादात्म्ये । ४ पूर्वोत्तरपर्यायज्ञानद्वयाकारवत् ।
५ वदादौ । ६ पदादेः । ७ यथा गोत्वं सामान्यमश्वत्सामान्यापेक्षया विशेषः ।
८ एकान्तनित्यस्य । ९ एकान्तनित्याः । १० अविकलकारणत्वस्य । ११ साधनम-
सिद्धमिति परः सम्भावयति । १२ पृथग्रूपत्वेनोत्पद्यते । १३ कार्यं=पटः तेनैकार्यं
तन्तुलक्षणे समवेतं पटम् । १४ कार्यकारणं पटगतरूपादि (देः कार्यस्य कारणं पटः)
तेन सद्य एकार्यसमवेतं तन्तुगतरूपम् ।

समवेतरूपाधारम्मे पटोत्पादकतन्तुरूपादि च । शेषं तूत्पादकं निमित्तकारणम्, यथाऽदृष्टाकाशादिकम् । तत्र संयोगस्याऽपेक्षणीर्यस्याभावादविकलकारणत्वमसिद्धम्; तदप्यसाम्प्रतम्; संयोगादिनाऽनाधेयातिशयत्वेनाऽणूनां तदपेक्षया अयोगात् ।

- ५ अथ संयोग एवामीषामतिशयः; स किं नित्यः, अनित्यो वा? नित्यश्चेत्; सर्वदा कार्योत्पत्तिः स्यात् । अनित्यश्चेत्; तदुत्पत्तौ कोऽतिशयः स्यात्संयोगः, क्रिया वा? संयोगश्चेत्किं स एव, संयोगान्तरं वा? न तावत्स एव; अस्याद्याप्यसिद्धेः, खोत्पत्तौ स्वस्यैव व्यापारविरोधाच्च । नापि संयोगान्तरम्; तस्यानभ्युपगमात् । अभ्युपगमे वा तदुत्पत्तावप्यपरसंयोगातिशयकल्पनायामनवस्था । नापि क्रियातिशयः; तदुत्पत्तावपि पूर्वोक्तदोषानुषङ्गात् । किञ्च, अदृष्टापेक्षादीन्माणुसंयोगात्परमाणुषु क्रियोत्पद्यते इत्यभ्युपगमोत् आत्मपरमाणुसंयोगोत्पत्तावप्यपरोतिशयो वाच्यस्तत्र च तदेवैव दूषणम् ।
- १५ किञ्च, असौ संयोगो ब्रह्मणुकादिनिर्वर्तकः किं परमाण्वाद्याश्रितः, तदैन्याश्रितः, अनाश्रितो वा? प्रथमपक्षे तदुत्पत्तौवाश्रयं उत्पद्यते, न वा? यद्युत्पद्यते; तदाणूनामपि कार्यतानुषङ्गैः । अथ नोत्पद्यते; तर्हि संयोगस्तदैश्रितो न स्यात्, सैमवायप्रतिषेधात्, तेषां च तं प्रत्यकारकत्वात् । तदकार-
- २० कत्वं चाऽनतिशयत्वेत् । अनतिशयानामपि कार्यजनकत्वे सर्वदा कार्यजनकत्वप्रसङ्गोऽविशेषोत् । अतिशयान्तरकल्पने च अनवस्था-तदुत्पत्तावप्यपरतिशयान्तरपरिकल्पनात् । तैर्त-

१ आदिना कुविन्दादि । २ कारणत्रयमध्ये । ३ द्वयणुकादिकार्योत्पादने । ४ परमाणुभिः । ५ परमाणूनां परमाणुभिः सह संयोगः । ६ नित्यत्वात् । ७ सर्वदा नित्यसंयोगलक्षणातिशयसङ्गात्वात् । ८ कारणम् । ९ परमाण्वोः । १० परमाण्वोः । ११ स्वयमनुत्पन्नस्य स्वात्मनि व्यापारः कथमिति विरोधः । १२ परेण । १३ द्वयणुकादीनि कार्याण्यारमनोऽदृष्टवशाज्जायन्ते आरमनो व्यापकत्वादिति हेतोः । १४ ब्रह्मणुकादिकार्योत्पादकलक्षणा । १५ परेण । १६ अनवसालक्षणम् । १७ ततोऽन्यत्-अदृष्टाकाशादि निमित्तकारणम् । १८ तस्य संयोगस्य । १९ द्वयणुकोत्पादकः संयोगः परमाण्वाश्रितः, त्र्यणुकोत्पादकसंयोगो द्वयणुकाश्रितः, स्कन्धोत्पादकः संयोग-रूप्यणुकाश्रित इति । २० परमाण्वादिः । २१ उत्पद्यमानत्वाद्दृष्टवत् । २२ तस्य परमाणोः । २३ समवायाद्भविष्यतीत्युक्ते सत्याह । २४ अग्रे । २५ कार्यकारणभाव-सम्बन्धेन तदाश्रितो भविष्यतीत्युक्ते सत्याहान्वार्यः । २६ संयोगजनकत्वभावातिशया-भावात् । २७ अनतिशयत्वस्य । २८ संयोगाश्रयस्यानुत्पद्यमानत्वेन संयोगस्तदाश्रितो न स्यादतः ।

स्तेषामसंयोगरूपतापरित्यागेन संयोगरूपतया परिणतिरभ्युपग-
न्तव्या इति सिद्धं तेषां कथञ्चिदनित्यत्वम् । अन्याश्रितत्वेपि
पूर्वोक्तदोषप्रसङ्गः । अनाश्रितत्वे तु निर्हेतुकोत्पत्तिप्रसङ्गेः सदा
सत्त्वप्रसङ्गतेः कार्यस्यापि सर्वदा भावानुपसङ्गः । कथं चासौ गुणः
स्यादनाश्रितत्वादाकाशादिवत् ?

किञ्च, असौ संयोगः सर्वात्मना, एकदेशेन वा तेषां स्यात् ?
सर्वात्मना चेत्; पिण्डोणुमौत्रः स्यात् । एकदेशेन चेत्; सांश-
त्वप्रसङ्गोऽमीषाम् । तदेवं संयोगस्य विचार्यमाणस्यायोगात्कथ-
मसौ तेषामतिशयः स्यात् ? निरतिशयानां च कार्यजनकत्वे तु
सकृन्निखिलकार्याणामुत्पादः स्यात् । न चैवम् । ततोमीपां प्राक्त- १०
नाजनकस्वभावपरित्यागेन विशिष्टसंयोगपरिणामपरिणतानां जन-
कस्वभावसम्भवात्सिद्धं कथञ्चिदनित्यत्वम् । प्रयोगः-ये क्रमव-
त्कार्यहेतवस्तेऽनित्या यथा क्रमवदङ्कुरादिनिर्धैतका बीजादयः,
तथा च परमाणव इति ।

ततोऽयुक्तमुक्तम्-“नित्याः परमाणवः सदकारणवत्त्वादाका- १५
शावत् । न चेदमसिद्धंभावयोः परमाणुसत्त्वेऽविवादात् । अकार-
णवत्त्वं चातोऽल्पपरिमाणकारणभावात्तेषां सिद्धम् । कारणं हि
कार्यादल्पपरिमाणोपेतमेव; तथाहि-द्व्यणुकाद्यवयविद्रव्यं स्वप-
रिमाणादल्पपरिमाणोपेतकारणारब्धं कार्यत्वात्पटवैत्, इति;
अकारणवत्त्वाऽसिद्धिः(ऋः); परमाणवो हि स्कन्धावयविद्रव्य- २०
विनाशकारणकाः तद्भावभावित्वाद् घटविनाशपूर्वकफपालवत् ।
न चेदमसिद्धं साधनम्; द्यणुकाद्यवयविद्रव्यविनाशे सत्येव पर-
माणुसद्भावप्रतीतेः । सर्वदा स्वतन्त्रं परमाणूनां तद्विनाशमन्तरेणा-
प्यर्थं सम्भवाद् भागासिद्धो हेतुः; इत्यप्यसुन्दरम्; तेषामसिद्धेः ।
तथाहि-विर्वादापन्नाः परमाणवः स्कन्धमेदपूर्वका एव तत्त्वाद् २५
द्यणुकादिमेदपूर्वकपरमाणुवत् ।

ननु पटोत्तरकालभावितन्तूनां पटमेदपूर्वकत्वेपि पटपूर्वका-
लभाविनां तेषामतत्पूर्वकत्ववत् परमाणूनामप्यस्कन्धमेदपूर्व-

१ पूर्वरूप । २ सतो हेतुरहितस्य सर्वदा न्यवस्थितेः । ३ द्व्यणुकादेः ।
४ अनाश्रितपक्षे रूपणान्तरमाहाचार्यः । ५ अवयविविधेष्वथ भवेत् । ६ कथञ्चिदेकव-
लक्षणम् । ७ आदिना क्षितिजलघातात्तपादयः । ८ परमाणूना कथञ्चिदनित्यत्वं यतः ।
९ आश्रयासिद्ध स्वरूपासिद्धं वा । १० जैनवैशेषिकयोः । ११ द्वितीयविवेचणम् ।
१२ इष्टान्ये तन्तवः । १३ कथम् ? तथा हि । १४ अवयवविद्रव्यमार्त्तं पूर्वमप्राप्ताना-
मित्यर्थः । १५ अगति । १६ स्वतन्त्रत्वेन । १७ मेदो=विनाशः । १८ साधन-
सामिकान्तिस्त्वमुक्त्वाभवति परः । १९ निष्पन्नपटासिध्वासिष्ठानाम् ।

कत्वं केषाञ्चित्स्यात्; इत्यप्यनुपपन्नम्; तेषामपि प्रवेणीभेद-
पूर्वकत्वेन प्रतीत्या स्कन्धभेदपूर्वकत्वसिद्धेः । 'बैलवत्पुरुषप्रेरित-
मुद्रराद्यभिघातादवयवक्रियोत्पत्तेः अवयवविभागात्संयोगविना-
शाद्विनाशोर्थानाम्' इत्यादि विनाशोत्पादप्रक्रियोद्धोषणं तु प्रागेव
५ कृतोत्तरम् । ततो नित्यैकत्वस्वभावाणानां जनकत्वासम्भवा-
त्तद्वारब्धं तु ह्यणुकाद्यवयविद्रव्यमनित्यमित्यप्ययुक्तमुक्तम् ।

तन्त्वाद्यवयवेषु भिन्नस्य च पटाद्यवयविद्रव्यस्योपलब्धिल-
क्षणप्राप्तस्यानुपलम्भेनासत्त्वात् । न चास्योपलब्धिलक्षणप्रार्तत्व-
मसिद्धम्; "महत्येकद्रव्यत्वाद्द्रूपविशेषाच्च रूपोपलब्धिः"
१० [वैशे० सू० ४।१।६] इत्यभ्युपगमात् । न च संमानदेशत्वादवय-
विनोऽवयवेषु भेदेनानुपलब्धिः; चातातपादिभौ रूपरसादिभि-
श्चानेकान्तात्, तेषां समानदेशत्वेपि भेदेनोपलम्भसम्भवात् ।

किञ्च, अवयवावयविनोः शास्त्रीयदेशापेक्षया समानदेश-
त्वम्, लौकिकदेशापेक्षया वा? प्रथमपक्षेऽसिद्धो हेतुः; पटावय-
१५ विनो ह्यन्ये एवारम्भकास्तन्त्वादयो देशास्तेषां चान्ये भवेन्निर-
भ्युपगम्यन्ते । द्वितीयपक्षेऽन्येकान्तः; लोके हि समानदेशत्व-
मेकभाजनवृत्तिलक्षणं भेदेनार्थानामुपलम्भेऽप्युपलब्धम्, यथा
कुण्डे बदरादीनाम् ।

किञ्च, कतिपयावयवप्रतिभासे सत्यवयविनः प्रतिभासे,
२० निखिलावयवप्रतिभासे वा? तत्राद्यविकल्पोऽयुक्तः; जलनिम-
ग्नमहाकायगजादेरुपरितनकतिपयावयवप्रतिभासेऽप्यखिलावयव-
व्यापिनो गजाद्यवयविनोऽप्रतिभासनात् । नापि द्वितीयविकल्पो
युक्तः; मध्यपरभागवर्तिसकलावयवप्रतिभासासम्भवेनावयवि-
नोऽप्रतिभासप्रसङ्गात् । भूयोऽवयवग्रहणे सत्यवयविनो ग्रहण-
२५ मित्यप्ययुक्तम्; यतोऽर्वाग्भागभाव्यवयवग्राहिणा प्रत्यक्षेण पर-
भागभाव्यवयवग्राहणात् तेन तद्ग्राहिरवयविनो ग्रहीतुं शक्या,

१ स्कन्धभेदपूर्वकत्वेऽस्कन्धभेदपूर्वकत्वे च तत्त्वादिति हेतोर्वर्तनात् । २ घटविनाश-
पूर्वककपालवदिति वृष्टान्तं साध्यसाधनविकलं दर्शयन्नाह परः । ३ एवं प्रवेणीरूप-
स्वावैल्य विनाशो वेद्यः, तन्तवरतु स्वारम्भकावयवेषुः समुत्पद्यन्ते, ततः प्रवेणी-
भेदपूर्वकत्वं पदपूर्वकाद्यविनाशमपि तन्तुर्ना नास्तीति भावः । ४ उक्तम्यायात् ।
५ योगपरिकल्पितं द्रव्यलवयविद्रव्यं निराकुर्वन्नाह जैनः । ६ सर्वथा । ७ भेदेन ।
८ विशेषणम् । ९ परमाणुनाऽन्यभिचारार्थमेतत् । १० आकाशेनान्यभिचारपरि-
हारार्थं रूपविशेष इति । ११ भेदे सत्यपि । १२ अन्तःक्षीरवत् । १३ पदस्य ।
१४ अन्यथा समानदेशत्वाद्भेदेनानुपलब्धिर्भेदि तर्हि । १५ कथम्? तथा हि ।
१६ प्रवेणिकासम्बन्धिनीशाः । १७ वैशेषिकैः । १८ सर्वथा तयोर्भेदात् । १९ षट् ।

व्याप्याग्रहणे तद्व्यापकस्यापि ग्रहीतुमशक्येः। प्रयोगैः—यद्येन रूपेण प्रतिभासते तत्तथैव तद्व्यवहारविषयः यथा नीलं नीलरूपतया प्रतिभासमानं तद्रूपतयैव तद्व्यवहारविषयः, अर्वाग्भागभाव्यवयवसम्बन्धितया प्रतिभासते चावयवीति । न च परभागभाव्यव्यवहित्वावयवाप्रतिभासनेप्यव्यवहितोऽवयवी प्रतिभाती-^५त्यभिधातव्यम्; तदप्रतिभासने तद्गतत्वेनास्याऽप्रतिभासनात् । तथाहि—यस्मिन्प्रतिभासमाने यद्रूपं न प्रतिभाति तत्ततो भिन्नम् यथा घटे प्रतिभासमानेऽप्रतिभासमानं पटस्वरूपम्, न प्रतिभासते चार्वाग्भागभाव्यवयवसम्बन्धवयविस्वरूपे प्रतिभासमाने परभागभाव्यवयवसम्बन्धवयविस्वरूपम्, इति कथं निर्देशकाव-^{१०}यविसिद्धिः? अर्वाग्भागपरभागभाव्यवयवसम्बन्धित्वलक्षणविषयैर्द्वैधर्माध्यासेप्यस्याभेदे सर्वत्र भेदोपरतिप्रसङ्गः, अन्यस्य भेदनिबन्धनस्यासम्भवात् । प्रतिभासभेदो भेदनिबन्धनमित्यप्यपेशलम्; विरुद्धधर्माध्यासं भेदकमन्तरेण प्रतिभासस्यापि भेदकत्वासम्भवात् ।

१५

नापि परभागभाव्यवयवावयविप्राहिणा प्रत्यक्षेणार्वाग्भागभाव्यवयवसम्बन्धित्वं तस्यै ग्रहीतुं शक्यम्; उक्तदोषानुषङ्गात् । नापि स्मरणेनार्वाक्परभागभाव्यवयवसम्बन्धवयविस्वरूपग्रहः; प्रत्यक्षानुसारेणस्य प्रवृत्तेः, प्रत्यक्षस्य च तद्ग्राहकत्वप्रतिषेधात् । नाप्यात्मा अर्वाक्परभागवयवव्यापित्वमवयविनो ग्रहीतुं समर्थः;^{२०} उक्ततया तस्य तद्ग्राहकत्वानुपपत्तेः, अन्यथा स्वापमदमूर्च्छाद्यवस्थास्यपि तद्ग्राहित्वानुषङ्गः । प्रत्यक्षादिसंहायस्याप्यात्मनोवयविस्वरूपप्राहित्वायोगः; अवयविनो निखिलावयवव्याप्तिप्राहित्वेनाध्यक्षादेः प्रतिषेधात् ।

१ दण्डाग्रहणे तत्सम्बन्धवान्दण्डी पुमान् ग्रहीतुं न शक्यते यथा । २ अवयवी धर्मी अर्वाग्भागभाव्यवयवसम्बन्धितया तद्व्यवहारविषयत्वयैव प्रतिभासमानत्वादित्युपरिष्टाद्येन्यत् । ३ परभागभाव्यव्यवहित्वावयवाप्रतिभासमानेपि अव्यवहितोऽवयवी भाति, तत्तत्तयैव प्रतिभासमानत्वमसिद्धमित्युक्ते सत्याह । ४ अवयवी परभागभाव्यवयवगतत्वेन न प्रतिभासतेऽगुहीतापारत्वात्सन्नेयमूर्तिं मोदकराश्लिषत् । ५ भिन्नम् । ६ यस्मिन्प्रतिभासमानेऽप्रतिभासमानत्वादिति हेतोः । ७ तस्माद्भिन्नमेव । ८ भागद्वये सति । ९ तन्नुल्लङ्घनेरशोः कृत्वा पटोऽनी प्रतिपाद्यते तस्मात्सर्वथा भिन्ना अतो निरवयववी ते तस्मात्सर्वथा भिन्ना अतस्तेषां विनाशेपि अस्य विनाशो नातो निरवयवमिति शेषः । १० तव परस्व । ११ व्यवहित्वाऽव्यवहितलक्षणम् । १२ पटपटादौ । १३ विषयधर्माध्यासादपरस्व । १४ अवयविनः । १५ व्याप्याग्रहणे तद्व्यापकस्यापि ग्रहीतुमशक्येति भाति । १६ परमते जड भात्मा । १७ भादिना स्मरणग्रहणम् ।

प्र० क० भा० ४६

ननु चार्वागभागदर्शने सत्युत्तरकालं परभागदर्शनानन्तरस्मरण-
सहकारीन्द्रियजनितं 'स एवायम्' इति प्रत्यभिज्ञाज्ञानमध्यक्षम-
वयविनः पूर्वापरावयवव्याप्तिग्राहकम्; तदप्यसाम्प्रतम्; प्रत्य-
भिज्ञाज्ञानेऽध्यक्षरूपत्वस्यैवासिद्धेः । अक्षाश्रितं विशदस्वभावं हि
५ प्रत्यक्षम्, न चास्यैतल्लक्षणमस्तीति । अक्षाश्रितत्वे चास्याखिला-
वयवव्याप्यवयवविस्वरूपग्राहकत्वासम्भवः; अक्षाणां सकलावयव-
ग्रहणे व्यापारासम्भवात् । न च स्मरणसहायस्यापीन्द्रियस्या-
विषये व्यापारः सम्भवति । यद्यस्याविषयो न तत्तत्र स्मरणसहा-
यमपि प्रवर्त्तते यथा परिमलस्मरणसहायमपि लोचनं गन्धे,
१० अविषयश्च व्यवहितोऽक्षाणां परभागभाव्यवयवसम्बन्धित्वलक्ष-
णोऽवयविनः स्वभाव इति ।

नै चानेकावयवव्यापित्वमेकस्वभावंस्यावयविनो घटते; तथा
हि-यन्निरंशैकस्वभावं द्रव्यं तत्र सकृदनेकद्रव्याश्रितम् यथा पर-
माणु, निरंशैकस्वभावं चावयविद्रव्यमिति । यद्वा, यदनेकं द्रव्यं
१५ तत्र सकृन्निरंशैकद्रव्यान्वितम् यथा कुटकुड्यादि, अनेकद्रव्याणि
चावयवा इति ।

अस्तु घानेकत्रावयविनो वृत्तिः; तथाप्यस्यासौ सर्वात्मना,
एकदेशेन वा स्यात्? यदि सर्वात्मना प्रत्येकमवयवेष्ववयवी
वर्तेत; तदा यावन्तोऽवयवास्तावन्त एवावयविनः स्युः; तथा
२० चानेककुण्डादिव्यवस्थितविल्वादिवदनेकावयव्युपलम्भानुषङ्गः ।

अथैकदेशेन; अत्राप्यस्यानेकत्र वृत्तिः किमेकावयवक्रोडीकृतेन
स्वभावेन, स्वभावान्तरेण वा स्यात्? तत्राद्यविकल्पोऽयुक्तः; तस्य
तेनैवावयवेन क्रोडीकृतत्वेनान्यत्र वृत्त्ययोगात् । प्रयोगः-यदैक-
क्रोडीकृतं वस्तुस्वरूपं न तदेवान्यत्र वर्त्तते यथैकभाजनक्रोडी-
२५ कृतमाद्वादि न तदेव भाजेनान्तरमध्यमध्यास्ते, एकावयवक्रोडी-
कृतं चावयवविस्वरूपमिति । वृत्तौ वान्यत्र अत्रावयवे वृत्त्यनुपपत्ति-
रपरस्वभावाभावात् । एकावयवसम्बद्धस्वभावस्याऽतद्देशावयवान्-
न्तरसम्बन्धाभ्युपगमे च तदैवयवानामेकदेशतार्पत्तिः, एकदेशो-
तायां चैकात्म्यमविभक्तरूपत्वात् । विभक्तरूपावस्थितौ चैकदेशत्वं

१ स्मरणं हि पूर्वाभागस्य । २ तदविषयत्वात् । ३ परपरिकल्पितमवयविनः
स्वरूपमऽवयवप्रधानतया निराकुर्वन्नाह । ४ एकस्वभावत्वं च नित्यनिरंशैकस्वभाव-
त्वात् । ५ अवयवान्तरे । ६ विवक्षितावयवे । ७ तेषां-विवक्षिताविषयिणानाम् ।
८ विवादापत्रा अवयवा एकदेशत्वभाजो भवन्त्येकस्वभावेनावयविना व्याप्यत्वादेक-
वयवत्वात् । ९ अवयवानाम् । १० अविभक्तरूपत्वमसिद्धमित्युक्ते सत्याह ।

न स्यात् । अथ स्वभावान्तरेणासाववयवान्तरे वर्तते; तदास्य निरंशताव्याघातः, कथञ्चिदनेकत्वप्रसङ्गश्च, स्वभावभेदात्मकत्वाद्भ्रुस्तुभेदस्य । ते च स्वभावा यद्यतोऽर्थान्तरभूताः; तदा तेष्वप्यसौ स्वभावान्तरेण घर्तेतैत्यनवस्था । अथानैर्थान्तरभूताः; तर्ह्यवयवैः किमपराद्धं येनैते तथा नैष्यन्ते ? तदिष्टौ चावयविनोऽने-^५कत्वमनित्यत्वं च स्वशिरस्ताडं पूत्कुर्वतोप्यायातम् ।

यदि चावयव्यविभागः स्यात्तदैकदेशस्यावरणे रागे च अखिल-स्यावरणं रागश्चानुपज्यते, रकारकयोरावृतानावृतयोश्चावयविरूपयोरेकत्वेनाभ्युपगमात् । न चैवं प्रतीतिः, प्रत्यक्षविरोधात् । न चान्योन्यं विरुद्धधर्माध्यासेष्येकं युक्तम्, अत एव, अनुमान-१० विरोधाच्च । तथाहि-यद्विरुद्धधर्माध्यासितं तन्नैकम् यथा कुट-कुड्याद्युपलभ्यानुपलभ्यस्वभावम्, आवृतानावृतादिस्वरूपेण विरुद्धधर्माध्यासितं चावयविस्वरूपमिति । तथाप्येकत्वे विश्व-स्यैकद्रव्यत्वानुपङ्गः ।

ननु र्वंखादे रागः कुङ्कुमादिद्रव्येण संयोगः, स चाव्याप्यवृत्ति-^{१५}स्तत्कथमेकैत्र रागे सर्वैत्र राग एकदेशावरणे सर्वस्योवरणम् ? तदप्यसारम्; यतो यदि पटादि निरंशमेकं द्रव्यम्, तदा कुङ्कुमादिना किं तत्राव्यातं येनाऽव्याप्यवृत्तिः संयोगो भवेत् ? अव्यातौ वा भेदप्रसङ्गो व्याप्ताव्याप्तस्वरूपयोर्विरुद्धधर्माध्यासेनैकत्वायोगात् ।

किञ्च, अस्याव्याप्यवृत्तित्वं सर्वद्रव्याव्यापकत्वम्, एकदेश-^{२०}वृत्तित्वं वा ? न तावत्प्रथमः पक्षः; द्रव्यस्यैकस्य सर्वशब्दविषयत्वानभ्युपगमात् । अनेकत्र हि सर्वशब्दप्रवृत्तिरिष्टा । नापि द्वितीयः; तस्यैकदेशासम्भवात्, अन्यथा सावयवत्वप्रसङ्गात् । ततो नास्त्यवयवी वृत्तिविकल्पाद्यनुपपत्तेरिति ।

ननु चावयविनो निरासे यत्साधनं तत्किं स्वर्तन्त्रम्, प्रसङ्गसा-^{२५}

- १ किञ्च साशरप्रसङ्गः । २ अवयविनः सकाशादभिज्ञाः । ३ तन्मुलक्षणैः । ४ अवयवी धर्मोऽनेको भवतीति साध्यो धर्मोऽवयवेष्वन्योऽनर्थान्तरत्वात्तरस्वरूपवत् । अवयवी धर्मोऽनित्यो भवति अवयवेष्वन्योऽनर्थान्तरत्वात्तरस्वरूपवत् । अवयवाना बहुत्वादनित्यत्वाच्चेति उभयत्र हेतुः । ५ वैशेषिकस्य । ६ निरस्य । ७ तस्यात्रैक्यं । ८ एकदेशे । ९ अन्याप्यवृत्तिर्गुणः सयोगलक्षण इति वचनात् । १० एकदेशे । ११ देशे । १२ देशस्य । १३ परेण । १४ तथा च निरसराव्याघातः स्यात् । १५ शशविभाषणवत् । १६ पक्षहेतुदृष्टान्तादयो यत्र विद्यन्ते तत्सतत्रम् ।

धनं वा ? स्वतन्त्रं चेत् ; धर्मिसाध्यपदयोर्व्याघातः, यथा-‘इदं च नास्ति च’ इति । हेतोरश्रयासिद्धत्वञ्च, अवयविनोऽप्रसिद्धेः । न च वृत्त्या सत्त्वं व्याप्तम् ; समवायवृत्त्यनभ्युपगमेपि भवतीरूपादेः सत्त्वाभ्युपगमात् । एकदेशेन सर्वात्मना वावयविनो वृत्तिप्रतिषेधे विशेषप्रतिषेधस्य शेषाभ्यनुज्ञाविषयत्वात् प्रकारान्तरेण वृत्तिरभ्युपगता स्यात्, अन्यथा ‘न वर्तते’ इत्येवाभिधातव्यम् । वृत्तिश्च समवायः, तस्य सर्वत्रैकत्वात्त्रिरवयवत्वाच्च कात्स्न्यैकदेशशब्दाविषयत्वम् । अथ प्रसङ्गसाधनं परस्त्रेष्वौऽनिष्टापादनात् । ननु परेष्टिः प्रमाणम्, अप्रमाणं वा ? यदि प्रमाणम् ; १० तर्हि तथैव बाध्यमानत्वादनुत्थानं विपरीतानुमानस्य । न चानेनैवास्या बाधा; तामन्तरेणास्योऽपक्षधर्मत्वात् । अथाप्रमाणम् ; तर्हि प्रमाणं विना प्रमेयस्यासिद्धिरित्यभिधीतव्यम्, किमनुमानोपन्यासेनास्याऽपक्षधर्मतयाऽप्रमाणत्वात् ?

इत्यप्यपरीक्षिताभिधानम् ; यतः प्रसङ्गसाधनमेवेदम् । तच्च १५ ‘साध्यसाधनयोर्व्याप्यव्यापकभावसिद्धौ व्याप्याभ्युपगमो व्यापकाभ्युपगमनान्तरीर्यकः, व्यापकाभावो वा व्याप्याभावाविनाभावी’ इत्येतत्प्रदर्शनफलम् । [व्याप्य] व्यापकभावसिद्धिश्चात्र लोकप्रसिद्धैव । लोको हि कस्यचित्कचित्सर्वात्मना वृत्तिमभ्युपगच्छति यथा विल्वादेः कुण्डादौ, कस्यचित्त्वेकदेशेन यथानेक- २० पीठादिशयितस्य चैत्रादेः । यत्र च प्रकारद्वयं व्यावृत्तं तत्र वृत्ते-

१ परेष्ट्यानिष्टापादनं यत्र तत्प्रसङ्गसाधनम् । २ अवयवी धर्मा, नास्तीति साध्यपदम् । ३ स्वमत्तापेक्षया वक्ति वैशेषिकः । लोकप्रसिद्धोऽस्ति नास्तीति प्रतिपाद्यते जैनैरिति विरोध इति भावः । परस्पर विरोध इत्यर्थः । ४ वादिनो जैनस्यापेक्षयाऽवयविनो धर्मिणः । ५ समवायवृत्त्यावयवेष्ववयवी वर्तते यतः । ६ जैनेन । ७ तादात्म्येन, न तु समवायेनेति भावः । ८ किञ्च । ९ शेषाभ्यनुज्ञा—सामान्याभ्युपगमः । १० समवायेन । ११ विशेषप्रतिषेधस्य शेषाभ्यनुज्ञाविषयत्वाभावे । १२ न तु सर्वात्मनैकदेशेनेत्याभिधातव्यम् । १३ अवयवेष्ववयविनः । १४ अवयवेषु । १५ अवयवेष्ववयविनः समवायः कात्स्न्यैकदेशेन वेति शब्दः । १६ प्रतिवादिनो वैशेषिकस्य । १७ पराभ्युपगमेन परस्त्रैवानिष्टापादनात् । १८ अवयवेष्वो चित्तोऽवयवी सर्वथा निवर्तते इति परेष्टिः । १९ अवयवी नास्ति वृत्तिविकल्पाद्यनुपपत्तेरिति । २० अवयवी नास्ति वृत्तिविकल्पाद्यनुपपत्तेरित्यस्य । २१ विपरीतानुमानेन परेष्टेः पराभ्युपगमस्य यदा बाधा स्यात्तदा परेष्टिविषयस्यावयविनोऽसत्त्वात्तदसत्त्वं हेतोर्नास्तीति भावः । २२ अवयविरूपस्य । २३ जैनेन । २४ पवकारः स्वतन्त्रसाधननिरासार्थः । २५ क्वचिदुत्पन्ते । २६ क्वचिनाभूतः । २७ धर्मिणि । २८ प्रसङ्गसाधनं भवति । २९ कात्स्न्यैकदेशवृत्तिस्थयोः । ३० अवयवेषु । ३१ अवयवेष्ववयविनः सर्वात्मनैकदेशेन वा वृत्ते ।

रभाव एव इति कथं न व्याप्तिर्यतोऽत्र प्रसङ्गसाधनस्यावकाशो न स्यात् ? निरस्ता चानेकस्मिन्नेकस्य वृत्तिः प्रागेव ।

यच्चोक्तम्—‘परेष्टिः प्रमाणमप्रमाणं वा’ इत्यादि; तदप्ययुक्तम् । यतः प्रमाणाप्रमाणचिन्ता संवादविसंवादाधीना । परेष्टिमात्रेण च प्रतिपन्नैवयविनि संवादकप्रमाणाभावादप्रामाण्यं स्वयमेव^१ भविष्यति । ननु च ‘इहेदम्’ इति प्रत्ययप्रतीतेः प्रत्यक्षेणैवावयविनो वृत्तिसिद्धेः कथं संवादकप्रमाणाभावो यतोऽस्याः प्रामाण्यं न स्यात् ? इत्यप्यसङ्गतम् ; तन्त्वाद्यवयवेषु व्यतिरिक्तस्य पटाद्यवयविनः समवायवृत्तेः स्वमेव्यप्रतीतेः । न च भेदेनाप्रतिभासमानस्य ‘इहेदं वर्त्तते’ इति प्रतीतिर्युक्ता । न हि भेदेनाप्रतिभासमाने^{१०} कुण्डे ‘इह कुण्डे वदराणि’ इति प्रत्ययो दृष्टः ।

यद्य(द)न्युक्तम्—वृत्तिश्च समवायस्तस्य सर्वत्रैकत्वाच्चिरवयवत्वाच्च कात्स्न्यैकदेशशब्दाविधयत्वमिति; तदपि स्वमनोरथमात्रम् ; समवायस्याग्रे प्रवन्द्येन प्रतिषेधात् । ननु तथाप्येकस्मिन्नवयविनि कात्स्न्यैकदेशशब्दाप्रवृत्तेरयुक्तोर्यं प्रश्नः—‘किमेकदेशेन^{१५} प्रवर्त्तते कात्स्न्येन वा’ इति । कृत्वमिति ह्येकस्याशेषाभिधानम्, ‘एकदेशः’ इति चानेकत्वे सति कस्याचिदभिधानम् । ताविमौ कात्स्न्यैकदेशशब्दावेकस्मिन्नवयविन्यनुपपन्नौ; इत्यप्यसमीचीनम् ; परं त्रैकत्वेनावयविनोऽप्रतिभासमानात् प्रकारान्तरेण च वृत्तेरसम्भवात् । न खलु कुण्डादौ वदरादेः स्तम्भादौ वा वंशादेः^{२०} कात्स्न्यैकदेशं परित्यज्य प्रकारान्तरेण वृत्तिः प्रतीयते । ततोऽवयवभ्यो भिन्नैस्यावयविनो विचार्यमाणस्यायोगात्सासौ तथाभूतोभ्युपगन्तव्यः । किं तर्हि ? तन्त्वाद्यवयवानामेवावस्थाविशेषैः स्वात्मभूतैः शीतापनोदाद्यर्थक्रियाकारी प्रमाणतः प्रतीयमानः पटाद्यवयवीति प्रेक्षादक्षैः प्रतिपत्तव्यम् ।

२५

नैतु रूपादिव्यतिरेकेणापरस्यावस्थातुः शीताद्यपनोद्समर्थस्याप्रतीतितोऽसत्त्वात् कस्यावयवित्वं भवतापि प्रसाध्यते ? वैश्वः-

१ एकदेशेन सर्वात्मना वेति प्रकारद्वयेन वृत्तिव्याप्ता, तथा वाऽवयवविसृत्त व्याप्तमिति हेतोः । २ एकस्यावयविनोऽनेकेष्ववयवेषु वृत्तिर्भविष्यति नन्वित्याशङ्क्यायावाचार्यः । ३ सत्ताद्यात् । ४ वदरेभ्यः । ५ विस्तरेण । ६ अज्ञेयाना स्वभावानाम् । ७ देशानाम् । ८ देशस्य । ९ सर्वथा । १० अवयवेषु । ११ परमज्ञापेक्षया । १२ वर्त्तनस्य । १३ सर्वथा । १४ व्यातानवितानीभूतपरिणामविशेषः । १५ अवयवभ्यः कस्यचिदभिधानः । १६ रूपप्रतिषेधकः सौगतः । १७ आदिना रसगन्धवर्णशब्दाः । १८ अवयविरूपपदार्थस्य । १९ हेतोरसिद्धत्वं परिहरति परः ।

प्रभवप्रत्यये हि रूपमेवावभासते नापरस्तद्वान्, एवं रसनादिप्रत्ययेषु वाच्यम्; इत्यविचारितरमणीयम्; यतः किमेकस्य रूपादिमतोऽसम्भवो विरुद्धधर्माध्यासेनैकत्रैकत्वानैकत्वयोस्तादात्म्यविरोधात्, तद्ग्रहणोपायासम्भवाद्वा? प्रथमपक्षे तत्र तयोः कथञ्चित्तादात्म्यं विरुद्ध्यते, सर्वथा वा? सर्वथा चेत्; सिद्धसाध्यता। कथञ्चिद्वेदकत्वं तु रूपादिभिर्विरुद्धधर्माध्यासेष्वेकस्याऽविरुद्धमचित्रज्ञानस्येव नीलाद्याकारैर्विकल्पज्ञानस्येव वा विकल्पेतराकारैरिति। यथा च रूपादिरहितं प्रत्यक्षे न प्रतिभासते तथा तद्ग्रहिता रूपादयोपि। न खलु मातुलिङ्गद्रव्यरहितास्तद्रूपादयः स्वमेव्युपलभ्यन्ते। वस्तुनश्चेदमेवाध्यक्षत्वं यदनात्मस्वरूपपरिहारेण बुद्धौ स्वरूपसमर्पणं नाम। इमे तु रूपादयो द्रव्यरहितास्तत्र स्वरूपं न समर्पयन्ति प्रत्यक्षतां च स्वीकर्तुमिच्छन्तीत्यमूल्यदानक्रयिणीः।

किञ्च, इदं स्तम्भादिव्यपदेशार्हे रूपम्-किमेकं प्रत्येकम्, अनेकानंशपरमाणुसञ्चयमात्रं वा? प्रथमपक्षे अद्योमध्योर्ज्ञात्मकैकरूपवत् रसाद्यात्मकैकस्तम्भद्रव्यप्रसङ्गः। द्वितीयपक्षे तु किमेकमनेकपरमाण्वाकारं ज्ञानं तद्ग्राहकम्, एकैकपरमाण्वाकारमनेकं वा? प्रथमविकल्पे चित्रैकज्ञानवद्रूपाद्यात्मकैकद्रव्यप्रसिद्धिरनियेभ्या स्यात्। द्वितीयविकल्पे तु परस्परविविक्तज्ञानपरमाणुप्रति-
२० भासंस्यासंवेदनात्सकलशून्यतानुपङ्गः।

अथ तद्ग्रहणोपायासम्भवाद्रूपादिमतो द्रव्यस्याभावः; तच्च, 'यमहमद्राक्षं तमेतर्हि स्पृशामि' इत्यनुसन्धानप्रत्ययस्य तद्ग्राहिणः सद्भावात्। न च द्वाभ्यामिन्द्रियाभ्यां रूपस्पर्शाधारैकार्यग्रहणं विना प्रतिसन्धानं न्यार्थ्यम्। रूपस्पर्शयोश्च प्रतिनियतेन्द्रियग्राह-
२५ त्वादेतन्न सम्भवति। चेत्तन्त्वाच्चात्मनः स्मरणोदियोर्यायसहायस्य

१ एकस्मिन्स्तुति। २ अवयविनः। ३ रूपादीनाम्। ४ द्रव्यरूपतया। ५ साहित्ये। ६ अवयविनः। ७ इतरो=निर्विकल्पकः पूर्वसविकल्पकादुपादानमूला-
ञ्चिर्विकल्पकात्सहकारिभूतात्सविकल्पकमुत्पद्यते तदा तदुभयोरकारं निवृत्तिः। ८ इदमेव सम्भावयति। ९ तर्हि रूपादयो द्रव्यरहिता बुद्धौ स्वरूपसमर्पका भविष्यन्तीति। १० द्रव्यरहितत्वादिति प्रथमान्तोपि हेतुशेषः। ११ मूल्यं स्वरूपसमर्पणलक्षणमदस्ता-
क्रयिण इति भावः। १२ सौगतमते चित्रैकज्ञानं स्वीकृतम्। १३ एकस्मिन्स्तुति। १४ लोके। १५ श्लेषग्राहकज्ञानाभावात् श्लेषस्याप्यभावात्। १६ अनुसन्धानं=
प्रलभिज्ञानम्। १७ चक्षुःस्पर्शनाम्नाम्। १८ अनेन प्रत्यक्षमपि तद्ग्राहकमुक्तम्, स्वतश्चात्मसिद्धिरिति। १९ वैशेषिकमतनिरासार्थम्। २० नौदमतनिरासार्थम्।

अर्वाक्षपरभागावयवव्यापित्वग्रहणमप्यवयवविद्रव्यस्योपपन्नम् । प्रसाधितं चानुसन्धानस्य सविपर्यत्वमित्यलमतिप्रसङ्गेन । तन्न तेषां चतुःसंख्यं द्रव्यं यथोपवर्णितस्वरूपं घटते, सर्वथा नित्यस्वभावाणामनर्थक्रियाकारित्वेनासम्भवतः तदारब्धद्वयणुकावयवविद्रव्यस्याप्यसम्भवात् । न हि कारणाभावे कार्यं प्रभव-^५त्यतिप्रसङ्गात् । स्वावयवभ्योर्धान्तरस्यावयविनो ग्राहकप्रमाणाभावाच्चासत्त्वम् ।

जातिभेदेनैव पृथिव्यादिद्रव्याणां भेदोपवर्णनं चानुपपन्नम्; स्वरूपासिद्धौ शशशृङ्गवद्भेदोपवर्णनासम्भवात् । जातिभेदेनात्यन्तं तेषां भेदे चान्योन्यमुपादानोपादेयभावो न स्यात् । येषां हि १० जातिभेदेनात्यन्तिको भेदो न तेषां तद्भावः यथात्मपृथिव्यादीनाम्, तथा तद्भेदश्च पृथिव्यादिद्रव्याणामिति । तन्तुपटाद्युपादानोपादेयभावेन व्यभिचारपरिहारार्थम् आत्यन्तिकविशेषणम् । न हि तत्रात्यन्तिकस्ताद्भेदः, पृथिवीत्वादिसामान्यस्याभिन्नस्यापीष्टः । नन्वेवं द्रव्यत्वादिना पृथिव्यादीनामप्यभेदात्तद्भावोऽस्तु; १५ तन्न; आत्मपृथिव्यादीनामप्येवं तद्भेदाभावाद्दुपादानोपादेयभावः स्यात्, तथा चात्माद्यैतत्प्रसङ्गात्कुतः पृथिव्यादिभेदः स्यात् ? तत्रात्यन्तिकभेदे पृथिव्यादीनां तद्भावो घटते । अस्ति चासौ चन्द्रकान्ताजलस्य, जलान्मुकाफलादेः, काष्ठान्दलस्य, व्यजनादेः आनिलस्योत्पत्तिप्रतीतेः । चन्द्रकान्ताद्यन्तर्भूताजलादेरेव द्रव्या-^{२०}जलाद्युत्पत्तिः; इत्यप्यनुपपन्नम्; तत्र तत्सद्भाववेदकप्रमाणाभावात् । तथापि चन्द्रकान्तादौ जलाद्यभ्युपगमे सृत्पिण्डादौ घटाद्यभ्युपगमोपि कर्तव्यं इति सांख्यदर्शनमेव स्यात् । ततो सृत्पिण्डादौ घटादिद्यच्चन्द्रकान्तादौ जलादेरप्यप्रतीतितोऽभावात्, आत्यन्तिकभेदे चोपादानोपादेयभावासम्भवात्, 'पर्यायभेदेना-^{२५}न्योन्यं पृथिव्यादीनां भेदो रूपरसगन्धस्पर्शात्मकपुद्गलद्रव्यरूपतया चाभेदः' इत्यनवद्यम् । रूपादिसमन्वयश्च शुणपदार्थ-

१ रूपस्पर्श । २ प्रत्यभिज्ञानसमर्थनसमये । ३ अनुसन्धानसमर्थनेन । ४ वैशेषिकाणाम् । ५ सर्वथा नित्यानित्यतया । ६ पृथिवीत्वादिना । ७ यथोपवर्णितेन भेदेन न तयोपपादानोपादेयभावोऽस्ति कुतः तदसत्तुपटादौ व्यभिचारो भवति । ८ तन्तुलपटत्प्रातिभेदे सहाह । ९ तन्तुपटादिषु । १० अवयवभेदे पृथिव्यादय इति । ११ भा भवति कुतः सहाह । १२ पृथिवीरूपात् । १३ सर्वं सर्वत्र विद्यते इति वचनात् । १४ पृथिव्यामेव गन्धोऽप्येव रस इति वचनात्कर्तव्यं चतुर्णामविशेषेण रूपात्मात्मकत्वमित्याह । १५ समन्वयः सन्नन्धः ।

परीक्षायां चतुर्णामपि समर्थयिष्यते । तन्न नित्यादिस्वभावमा-
त्यन्तिकभेदभिन्नं च पृथिव्यादिद्रव्यं घटते ।

नाप्याकाशादिः सर्वथा नित्यनिरंशत्वादिधर्मोपेतस्यास्याप्य
प्रतीतेः । ननु चाकाशस्य तद्धर्मोपेतत्वं शब्दादेव लिङ्गात्प्रतीयते;
५ तथाहि-ये विनाशित्वोत्पत्तिमत्त्वादिधर्माभ्यासितास्ते क्वचिदा-
श्रिता यथा घटादयः, तथा च शब्दा इति । गुणत्वौच ते क्वचिदा-
श्रिता यथा रूपादयः । न च गुणत्वमसिद्धम्; तथाहि-शब्दो
गुणः प्रतिविध्यमानद्रव्यकर्मभावत्वे सति सत्तासम्बन्धित्वाद्-
पादिवत् । न चेदं साधनमसिद्धम्; तथाहि-शब्दो द्रव्यं न भव-
१० त्येकद्रव्यत्वाद्द्रूपादिवत् । न चेदमप्यसिद्धम्; तथाहि-एकद्रव्यः
शब्दः सामान्यविशेषवत्त्वे सति बाह्यैकेन्द्रियप्रत्यक्षत्वात्तद्धदेव ।
'सामान्यविशेषवत्त्वात्' इत्युच्यमाने हि परमाणुभिर्व्यभिचारः,
तन्निवृत्त्यर्थम् 'इन्द्रियप्रत्यक्षत्वात्' इत्युक्तम् । तथापि घटादिना
व्यभिचारः, तन्निरासार्थमेकविशेषणम् । 'एकेन्द्रियप्रत्यक्षत्वात्'
१५ इत्युच्यमाने आत्मैना व्यभिचारः, तन्निवृत्त्यर्थं बाह्यविशेषणम् ।
रूपत्वादिना व्यभिचारपरिहारार्थं च 'सामान्यविशेषवत्त्वे सति'
इति विशेषणम् ।

तथा, कर्मापि न भवत्यसौ संयोगविभागाकारणत्वाद्द्रूपादि-
वदेवेति । तस्मात्सिद्धं-प्रतिविध्यमानद्रव्यकर्मभौर्वत्त्वं शब्दस्य ।
२० 'सत्तासम्बन्धित्वात्' इत्युच्यमाने च द्रव्यकर्मभ्यामनेकान्तः,
तन्निवृत्त्यर्थं 'प्रतिविध्यमानद्रव्यकर्मभावत्वे सति' इति विशे-
षणम् । 'प्रतिविध्यमानद्रव्यकर्मभावत्वात्' इत्युच्यमानेपि सामा-
न्यादिना व्यभिचारः, तन्निवृत्त्यर्थं 'सत्तासम्बन्धित्वात्' इत्यभिधा-
नम् । तत्सिद्धं गुणत्वेन क्वचिदाश्रितत्वं शब्दानाम् ।

१ जैनैः । २ गगने । ३ स्वापयवेपु । ४ तस्य क्वचिदाश्रिता भवत्येव ।
५ आकाशविशेषगुणः शब्द इति वचनात् । ६ रूपिद्रव्ये । ७ शब्दो द्रव्यं न
भवति कर्म च नेति । ८ त्रयः पदार्थाः स्वरूपेणासन्तः सत्तासम्बन्धासन्त इति
वचनात् । ९ गगनलक्षणमेकं द्रव्यं यस्य स एकद्रव्यस्तास्य भाद्रः, इष्टान्तपक्षे
घटाधिकद्रव्यं यस्य रूपादेः । १० सामान्यशब्देनात्रापरसामान्यं गृह्यते । ११ एक-
द्रव्यत्वाभावात् । १२ घटादीनामेकद्रव्यत्वाभावात् । १३ घटस्य स्पर्शनचक्षुरि-
न्द्रियान्यां आद्यात्वात् । १४ यतो मनोलक्षणेन्द्रियप्रत्यक्ष आत्मा । १५ अनेक-
द्रव्याश्रितत्वात् । १६ विशेषणम् । १७ हदानीं विद्येभ्यं विचारयति । १८ सत्ता-
सम्बन्धित्वे द्रव्यकर्मणोर्युगत्वाभावात् । १९ आदिना विशेषसमवाययोर्महणम् ।
२० गुणत्वाभावात् । २१ सामान्यविशेषसमवायाः स्वरूपेण सन्तो न तु सत्ता-
सम्बन्धादित्यभिधानात् ।

यत्रैषामाश्रयस्तत्पारिशेष्यादाकाशम्; तथाहि-न तावत्संश्लेषतां परमाणूनां विशेषगुणं; शब्दोऽसदादिप्रत्यक्षत्वात्कार्यद्रव्यरूपाविवत् । नापि कार्यद्रव्याणां पृथिव्यादीनां विशेषगुणोसौ; कार्यद्रव्यान्तरात्प्रादुर्भावेऽप्युपजायमानत्वात्सुखादिवत्, अकारणगुणपूर्वकत्वादिच्छादिर्वत्, अयावद्द्रव्यभावित्वात्, असादादिपुरुषान्तरप्रत्यक्षत्वे सति पुरुषान्तराप्रत्यक्षत्वाच्च तद्वत्, आश्रयान्नेर्यादेरन्यत्रोपलब्धेच्च । संश्लेषतां हि पृथिव्यादीनां यथोक्तविपरीती गुणाः प्रतीयन्ते । नाप्यात्मविशेषगुणः; अहङ्कारेण विभक्तप्रहणात्, बाह्येन्द्रियप्रत्यक्षत्वात्, आत्मान्तरप्राह्यत्वाच्च । बुद्ध्यादीनां चात्मगुणानां तैर्द्विपरीत्योपलब्धेः । नापि मनोगुणः; असादा-^{१०}दिप्रत्यक्षत्वाद्द्रुपादिवत् । नापि दिक्कालविशेषगुणः; तयोः पूर्वापरदिप्रत्ययहेतुत्वात् । अतः पारिशेष्याहुणो भूत्वाकाशस्यैव लिङ्गम् ।

तच्च शब्दलिङ्गाविशेषोद्विशेषलिङ्गाभावाच्चैकम् । विभु च सर्वत्रोपलभ्यमानगुणत्वात्, नित्यत्वे सत्यसादार्थ्युपलभ्यमानगुणोद्घिष्ठानत्वाच्चात्मादिवत् । नित्यं शब्दाधिकरणं द्रव्यं सामान्य-^{१५}विशेषैवस्त्वे सत्यनाश्रितत्वादात्मादिवत् । अनाश्रितं शब्दाधिकरणं द्रव्यं गुणवत्त्वे सत्यस्पर्शवत्त्वात्तद्वत् । असमवैवायवत्त्वे सत्यऽनाश्रितत्वाच्चास्य द्रव्यत्वमिति ।

१ पृथिव्यादिचतुर्णां । २ योगिप्रलक्षणे व्यभिचारपरिहारार्थम् । ३ तेषामतीन्द्रितत्वात्तद्गुणोप्यतीन्द्रिय एवेति भावः । ४ कार्यद्रव्यगुणादि । ५ कारणस्य गगनस्य गुणः कारणगुणः न विद्यते कारणगुणः पूर्वं यस्य शब्दसासावकारणगुणपूर्वकस्य भावस्तस्मात्, प्रथिव्यादिविशेषगुणे परमाणुरूपस्य कारणस्य गुणपूर्वकत्वमस्तीति । ६ ब्रह्मन्तपक्षे आत्मा कारणम् । ७ गगने सर्वत्र न विद्यते यतः । ८ इच्छादिवदेव । ९ शोभित्तयेन दूरान्तरितः । १० सर्वत्र सन्दिग्धानैकान्तिकत्वे सत्याह । ११ कार्यद्रव्यान्तरप्रादुर्भावे समुपजायमानलक्षणाः । १२ अर्हं सुखयर्हं दुःखीत्यादिवदहंशब्दान् ब्रह्मकारेण विभक्तस्य रहितस्य शब्दस्य ग्रहणात् । १३ सन्दिग्धानैकान्तिकत्वे सत्याह । १४ हेतोरसिद्धत्वपरिहारार्थमिदम् । १५ दिगाकाशकालादि सर्वगतं परमते शब्दस्य दिक्कालविशेषगुणत्वे शब्द एव तयोस्तद्भावे लिङ्गं स्यादिति भावः । १६ अविशेषः एकत्वम् । १७ पटेन व्यभिचारपरिहारार्थम् । १८ परमाणुसर्वव्यभिचारपरिहारार्थम् । १९ स गुणः शब्दः । २० नित्यत्वमसिद्धमित्युक्ते सत्याह । २१ अभावेन वा व्यभिचारपरिहारार्थम् । २२ पटेन व्यभिचारपरिहारार्थम् । २३ असिद्धत्वे सत्याह । २४ गुणेन व्यभिचारपरिहारार्थं गुणवत्त्वमिति विशेषणं गुणानां निर्गुणात्वात् । २५ समवायेनाभावेन वा व्यभिचारपरिहारार्थम् ।

अत्र प्रतिविधीयते । शब्दानां सामान्येनाश्रितत्वं किमेतः साध्यते, निलैकामूर्तविभुद्रव्याश्रितत्वं वा? प्रथमपक्षे सिद्धसाध्यता; तेषां पुद्गलकार्यतया तदाश्रितत्वाभ्युपगमात् । द्वितीयपक्षे तु सन्दिग्धविपक्षव्यावृत्तिकत्वेनानैकान्तिको हेतुः; तथाभूतसा-

५ ध्यान्वितत्वेनास्य कचिद्दृष्टान्तेऽप्रसिद्धेः । प्रतिषिध्यमानकर्मभावत्वे सत्यपि च प्रतिषिध्यमानद्रव्यभावत्वमसिद्धम्; द्रव्यत्वाच्छब्दस्य । तथा हि-द्रव्यं शब्दः, स्पर्शाल्पत्वमहत्त्वपरिमाणसंख्यासंयोगगुणांश्रयत्वात्, यद्यदेवंविधं तत्तद्रव्यम् यथा वदरामलकविल्वादि, तथा चायं शब्दः, तस्माद्रव्यम् ।

१० तत्र न तावत्स्पर्शाश्रयत्वमस्यासिद्धम्; तथाहि-स्पर्शवाञ्छब्दः स्वसम्बन्धार्थान्तराभिघातहेतुत्वात् मुद्ररादिवत् । सुप्रतीतो हि कंसपात्र्यादिध्वानामिसम्बन्धेन श्रोत्राद्यभिघातस्तत्कार्यस्य वाधिर्योदेः प्रतीतेः । स चास्याऽस्पर्शवत्त्वे न स्यात् । न ह्यस्पर्शवता कालादिनामिसम्बन्धेऽसौ दृष्टः । न च शब्दसहचरितेन वायुना

१५ तदभिघातः इत्यभिघातव्यम्; शब्दाभिसम्बन्धान्वयव्यतिरेकानुविधायित्वात्तस्य, तथाभूतेपि तदभिघातेऽन्यस्यैव हेतुकल्पने तत्रापि कः समाश्वासः? शक्यं हि वक्तुम्-न घाट्याद्यभिसम्बन्धात्तदभिघातः किन्त्वंन्येन, इत्यनवस्थानं हेतूनाम् । गुणत्वेनास्य निर्गुणत्वात्स्पर्शाभावात्तदभिघाताहेतुत्वे चक्रकप्रसङ्गः—गुणत्वं

२० ह्यद्रव्यत्वे, तदप्यस्पर्शवत्त्वे, तदपि गुणत्वे इति । स्पर्शवतार्थेनाभिहन्यमानत्वाच्च स्पर्शवानसौ । न चानेनाभिहन्यमानत्वमस्यासिद्धम्; प्रतिघातमित्यादिभिः शब्दस्याभिहन्यमानतया सकलजनसाक्षिकत्वात् मूर्तेन चामूर्त्तस्याविरोधेनाऽप्रतिघाताद्गगनमित्यादिवत् । तत्रास्य स्पर्शाश्रयत्वमसिद्धम् ।

२५ नाप्यल्पमहत्त्वपरिमाणाश्रयत्वम्; अल्पमहत्त्वप्रतीतिविषयत्वाद्वदरादिवत् । ननु च 'अल्पः शब्दो मन्दः' इत्यादिप्रतीत्या मन्द-

१ गुणत्वादिति हेतोः । २ इति विशेषणम् । ३ अतोनुमानाद्यमसौ द्रव्यसिद्धिराश्रयमात्रस्यैव सिद्धिप्रसङ्गात् । ४ जैनानाम् । ५ विपक्षः अनित्यानेकमूर्त्ताऽविभुद्रव्याश्रितम् । ६ रूपादयो वृष्टान्तभूता अनित्यादिविशिष्टपक्षे वर्तन्तेऽतोऽयमपि हेतुस्तादृशे पक्षे वर्तते अन्यादृशे वेति सन्दिग्धः । ७ गुणत्वात् । ८ निलैकव्याप्याश्रयत्वात् साध्यविकलो वृष्टान्तो रूपादीनां तद्विपरीताश्रयाश्रितत्वात् । ९ ते च ते गुणाश्च । १० अनिर्वचनीयेन । ११ आदौ यत्प्रतिपादितं तदेवान्ते स्यादिति चक्रकदोष इति भावः । १२ सन्दिग्धानैकान्तिकत्वे इदम् । १३ स्वर्णवक्त्रिः । १४ अस्तिमिति संबन्धः । १५ शब्दस्य । १६ अल्पत्वमहत्त्वपरिमाणम् ।

त्वमेव धर्मो गृह्यते, 'महान् पट्टस्तीव्रः' इत्यादिप्रतीत्या च तीव्र-
त्वम्, न पुनः परिमाणमित्युक्तानवधारणात् । नहि 'अयं महा-
च्छब्दः' इति व्यवस्यन् 'इयान्' इत्यवधारयति, यथा द्रव्याणि वद-
रामलकविल्वादीनि । मन्दतीव्रता चावान्तरो जातिविशेषो गुण-
वृत्तित्वाच्छब्दत्ववत्, तदप्यपेशलम्, यतः कथं शब्दस्य गुणत्वं^५
सिद्धं यतस्तद्वृत्तित्वान्मन्दत्वादेर्जातिविशेषत्वं सिद्धयेत् ? अद्रव्य-
त्वाच्चेत्, तदपि कथम् ? अल्पमहत्त्वपरिमाणानधिकरणत्वाच्चेत्,
तदपि कुतः ? गुणत्वात्, चक्रकप्रसङ्गः ।

द्रव्यान्तरवदियुक्तानवधारणाच्चेत्, न; वायुनानेकान्तात् । न
खलु विल्ववदरादेरिव वायोरियत्तावधार्यते । वायोरप्रत्यक्षत्वा-^{१०}
वियत्ता सत्यपि नावधार्यते, न शब्दस्य विपर्ययात्, इत्यप्य-
युक्तम्; गुणगुणिनोः कथञ्चिदेकत्वे गुणप्रतिभासे गुणिनोपि
प्रतिभाससम्भवात् । वायुगतस्पर्शविशेषस्यैवाध्यक्षत्वाभ्युपगमे
च 'स्पर्शोत्र शीतः खरो वा' इति प्रतीतिः स्याच्च वायुरिति । न
खलु रूपावभासिनि प्रत्यये सौवभासते । स्पर्शविशेषपरिणामस्यैव^{१५}
च वायुत्वात्कथं नास्य प्रत्यक्षत्वम् ?

इयत्ता चेयं यदि परिमाणवर्त्या; कथमन्यस्यानवधारणेऽन्यस्या-
भावः ? न खलु घटानवधारणे पटाभावो युक्तः । परिमाणं चेत्,
तर्हि 'इयत्तानवधारणात्परिमाणं नास्ति' इत्येव 'परिमाणं नास्ति
परिमाणानवधारणात्' इत्येतावधेवोक्तं स्यात् । अल्पत्वमहत्त्व-^{२०}
प्रत्ययतस्तत्परिमाणानवधारणे च कथं तदनवधारणं नामामल-
कादावपि तत्प्रसङ्गात् ? मन्दतीव्रताभिसम्बन्धात्तत्प्रत्ययसम्भवे
च मन्दवाहिनि नर्मदादीरे 'अल्पमेतत्' तीव्रवाहिनि च कुल्याजले

१ इयन्ति अवधारयति जनः । २ तीव्रत्व मन्दत्वं च परिमाणविशेषोऽस्त्वित्युक्ते
सत्याह । ३ शब्दे । ४ चक्रकपरिहारार्थं गुणत्वादिति हेतुसत्के इयत्तानवधारणादिति
हेतुं योजयति परः । ५ अल्पत्वमहत्त्वपरिमाणानधिकरणत्वेपि वायोरियत्ता नावधार्यते
इति भावः । ६ अनैकान्तिकत्वं हेतोः परिहरन्नाह । ७ प्रत्यक्षत्वात् । ८ इयत्तावाच्योः ।
९ प्रदेशभेदाभावात् । १० उक्तस्य वायुगणस्य स्पर्शस्य प्रत्यक्षत्वादाद्योरेपि प्रत्यक्षत्वं
स्यात्, तथा च वायोरप्रत्यक्षत्वं वक्तुमशक्यं तत्र परस्य । ११ न वायुः शीतः खरो वेति
प्रतीतिः । १२ रूपी वायुः । १३ तथा च वायोरभावः स्यात् । १४ कथञ्चिदेक-
त्वेन । १५ त्वगिन्द्रियग्राह्यत्वम् । १६ इयत्ताया अनवधारणे शब्दस्याल्पत्वमहत्त्व-
परिमाणस्याभावः इत्यासिन्पक्षे दूषणान्तरम् । १७ इयत्ता परिमाणान्निष्ठाभिन्ना वेति
विकल्पद्वयम् । १८ इयत्तालक्षणस्य । १९ परिमाणलक्षणस्य । २० अन्येति विकल्पे ।
२१ द्वितीयपक्षे । २२ परिणाहीक्रियमाणे । २३ जलम् । २४ अस्या सरित् कुल्या :

‘महदेतत्’ इति प्रत्ययः स्यात् । नै चैवम् । तस्माच्च मन्वतीवृता-
निबन्धनोयं प्रत्ययः, अपि त्वल्पमहत्त्वपरिमाणनिबन्धनः, अन्यथा
वदरामलकादावपि तन्निबन्धनोसौ न स्यात् । वदरादीनां द्रव्य-
त्वेन तत्परिमाणसम्भवात्तस्यै तन्निबन्धनत्वे शब्देऽप्यत एवासौ
५ तन्निबन्धनोस्तु विशेषाभावात् । कारणगतस्य चाल्पमहत्त्वपरि-
माणस्य शब्दे उपचारात्तथा प्रत्यये वदरादावप्यसौ तथातुष-
ज्येत । तन्नाल्पमहत्त्वपरिमाणाश्रयत्वमप्यस्यासिद्धम् ।

नापि सङ्ख्याश्रयत्वम्; ‘एकः शब्दो द्वौ शब्दो बहवः शब्दाः’
इति संख्यावस्त्वप्रतीतेर्घटादिवत् । अथोपचाराच्छब्दे संख्याव-
१० त्वप्रतीतिः; ननु किं कारणगता, विषयगता वा शब्दे संख्योप-
चर्येत? कारणगता चेत्; किं समवायिकारणगता, कारणमात्र-
गता वा? आद्यपक्षे ‘एकः शब्दः’ इति सर्वदा व्यपदेशप्रसङ्गस्त-
स्यैकत्वात् । द्वितीयपक्षे तु ‘बहवः शब्दाः’ इति व्यपदेशः स्यात्स्य
बहुत्वात् । विषयसंख्योपचारे तु गगनाकाशव्योमादिशब्दा बहु-
१५ व्यपदेशभाजो न स्युर्गगनलक्षणविषयस्यैकत्वात् । पश्वादीनां च
बहुत्वात् ‘एको गोशब्दः’ इति स्वप्नेषु दुर्लभम् । यथाऽविरोधं
संख्योपचारः; इत्यप्ययुक्तम्; स्वयं संख्यावस्त्वमन्तरेणाविरोधाऽ-
सम्भवात् ।

किञ्च, विपरीतोपलम्भस्य बाधकस्य सङ्गावे सत्युपचारकल्पना
२० स्यात्, न चाश्रित्वरहितपुरुषस्यैकत्वादिसंख्यारहितस्य शब्द-
स्योपलम्भोस्तीति कथमुपचारकल्पना? तथापि तत्कल्पने अनुप-
चरितमेव न किञ्चित्स्यात् । तन्न संख्याश्रयत्वमप्यसिद्धम् ।

नापि संयोगोश्रयत्वम्; वाय्वादिनामिहन्यमानत्वात्, पांश्वादि-
वत् । संयुक्ता एव हि पांश्वाद्यो वायुनान्येन वाऽमिहन्यमाना
२५ दृष्टाः । तेनै तदभिघातश्च देवदत्तं प्रत्यागच्छतः प्रतिवातेन प्रति-

१ जलम् । २ भवत्विद्युके सलाहानार्थः । ३ अल्पत्वमहत्त्वलक्षणः । ४ वद-
रादिभ्रष्टत्वमहत्त्वप्रत्ययस्य । ५ अल्पत्वमहत्त्वप्रत्ययः । ६ द्रव्यत्वेनाल्पत्वमहत्त्वपरि-
माणसम्भवनस्य । ७ शब्दस्य कारणमाकाशम् । ८ द्रव्यस्य । ९ कार्यरूपे ।
१० तात्वादिभेदादिकारणमात्रस्य । ११ विषयः=शब्दस्य बाधकः । १२ वातिदम्भू-
रश्मिधारिनाणाद्यस्वर्गाणां ग्रहणमादिशब्देन । १३ किन्तु गोशब्दा बहवो भवेद्युति
भावः, न तु गोशब्दो बहुप्रकारः । १४ एकस्मिन्घटे एकः शब्द इत्यादिवत् ।
१५ यदावर्तमानम् । १६ शब्दलक्षणार्थानाम् । १७ असंख्यावस्त्वस्य । १८ यत्कत्वादि-
संख्यारहितस्योपलम्भाभावेति । १९ संयोगो गुणः । २० शब्दस्य । २१ सन्दिग्धत्वे
सलाह । २२ साधनमसिद्धमित्युक्ते सलाह । २३ शब्दस्य ।

निवर्त्तनात्पांश्वादिब्रह्मदेवावसीयते, तद्वैप्यन्यदिगवस्थितेन श्रवणात् । ननु गन्धादयो देवदत्तं प्रत्यागच्छन्तस्तेन निवर्त्त्यन्ते, न च तेषां तेन संयोगो निर्गुणत्वाद्गुणानाम्; तन्न; तद्वतो द्रव्यस्यैवानेन प्रतिनिवर्त्तनात्, केवलानां तेषां निष्क्रियत्वेनागमननिवर्त्तनायोगात् । ततः सिद्धं गुणवत्त्वाद्द्रव्यत्वं शब्दस्य । ५

क्रियावत्त्वाच्च वाणादिवत् । निष्क्रियत्वे तस्य श्रोत्रेणाऽग्रहणमभिसम्बन्धात् । तथापि ग्रहणे श्रोत्रस्याप्राप्यकारित्वं स्यात् । तथा च, 'प्राप्यकारि चक्षुर्बाह्येन्द्रियत्वात्त्वग्निन्द्रियवत्' इत्यस्यानैकान्तिकत्वम् । सम्बन्धकल्पने श्रोत्रं वा शब्दोत्पत्तिप्रदेशं गत्वा शब्देनाभिसम्बन्धेत, शब्दो वा खोत्पत्तिदेशादागत्य श्रोत्रेणाभिसम्बन्धेत? न तावद्धर्माधर्माभ्यां संस्कृतकर्णशङ्कुस्यवरुद्धनभोदेशलक्षणश्रोत्रस्य शब्दोत्पत्तिदेशे गतिः; तथा प्रतीत्यभावात्, निष्क्रियत्वाच्च । गतौ वा विवक्षितशब्दान्तरालवर्त्तिनामर्लेपशब्दानामपि ग्रहणप्रसङ्गः; सम्बन्धाविशेषात् । अनुवातप्रतिवाततिर्यग्वातेषु प्रतिपत्स्यप्रतिपत्तीषत्प्रतिपत्तिभेदाभावश्च, श्रोत्रस्य गच्छत्तस्तत्त्वं १५ तोपकारार्थयोगात् । नापि शब्दस्य श्रोत्रप्रदेशागमनम्; निष्क्रियत्वोपगर्मात् । आगमने वा सक्रियत्वम् ।

ननु नाद्य एवाकाशतच्छब्दसुखसंयोगेश्वरदिः समवाय्यसमवायिनिमित्तकारणाज्जातः शब्दः श्रोत्रेणागत्य सम्बन्धते येनायं दोषः, अपि तु वीचीतरङ्गन्यायेनापरापर एवाकाशशब्दोदिलक्षण २० णात् समवाय्यसमवायिनिमित्तकारणाज्जातः तेनाभिसम्बन्धते; तद्वैप्यसमीचीनम्; सर्वत्र क्रियोच्छेदानुपपन्नात् । 'वाणादयोपि हि पूर्वपूर्वसमानजातीयलक्षणप्रभवा लक्ष्यप्रदेशव्यापिनो न पुनस्ते एव' इति कल्पयितुं शक्यत्वात् । तत्र प्रत्यभिज्ञानाभित्यत्वसिद्धेर्नैव

१ निश्चीयते । २ न चैदमसिद्धम् । ३ पुरुषेणावसीयते । ४ जनैकान्तिकहेतुमुद्धानयति परः । ५ द्रव्यरहितानाम् । ६ व्यभिचारो नास्ति प्रतिनिवर्त्तनादिलस्य हेतोर्वतः । ७ शब्दस्य । ८ तात्वादिक्त्वं । ९ निष्क्रियत्वमसिद्धमित्याह । १० जन्यरालं भेदादिसम्बन्धे । ११ अविवक्षितानां नरादिशब्दानाम् । १२ श्रोत्रेण । १३ सत्यम् । १४ शब्दोत्पत्तिदेशं प्रति । १५ आदिना अनुपकारेणुपकारग्रहणम् । १६ परेण । १७ तथा च द्रव्यं शब्द इत्यापातम् क्वचः क्रियावान्पूर्वदेशलागेन देशान्तरे समुपलभ्यमानत्वात्, यदित्यं तदित्यं यथा वाणादि, न चैदमसिद्धं वक्तृसुखप्रदेशलागेन श्रोत्रप्रदेशे समुपलभ्यमानत्वात् । १८ आदिनानुपलब्धत्वादिग्रहः । १९ आदिना ईश्वरादिग्रहः । २० जन्यः शब्दः । २१ प्रथममुक्ताः ।

कल्पना चेत्; नन्विदं प्रत्यभिज्ञानं शब्देपि समानम् 'उपाध्यायोक्तं श्रुणोमि शिष्योक्तं वा श्रुणोमि' इति प्रतीतिः ।

ननु प्रत्यभिज्ञानस्य भैवदर्शने दर्शनस्वरूपकारणकत्वाद्वा च तदभावात्कथं तदुत्पत्तिः ? न खलूपाध्यायोक्ते शब्दे दर्शनवत्स्वरूपं भवति; अस्य पूर्वदर्शनाद्याहितसंस्कारप्रबोधनिबन्धनत्वात् । न च कारणाभावे कार्यं भवत्यतिप्रसङ्गात्; इत्यप्यनुपपन्नम्; सम्बन्धिताप्रतिपत्तिद्वारेणात्रैकत्वस्य प्रतीतिः । सम्बन्धितायां च दर्शनस्वरणयोः सद्भावसम्भवात्प्रत्यभिज्ञानस्योत्पत्तिरविरुद्धा । तथाहि- प्रत्यक्षानुपूर्वमभूतोऽनुमानतो वा तत्कार्यतया तत्संबन्धिनं शब्दं प्रतिपद्येदानीं तैस्सृष्ट्युपलम्भोद्भूतं प्रत्यभिज्ञानं तत्सम्बन्धितया तं प्रतिपद्यमानमेकत्वविशिष्टमेव प्रतिपद्येते, अन्यथा 'उपाध्यायोक्तं श्रुणोमि' इति प्रतीतिर्न स्यात्, किन्तु 'तदुक्तोद्भूतं तत्सदृशं शब्दान्तरं श्रुणोमि' इति प्रतीतिः स्यात् । वीचीतरङ्गन्यायेन तदुत्पत्तिश्चात्रैव निषेत्स्यते ।

१५ यदि पुनर्लूनपुनर्जातनखकेशादिवत्सदृशापरापरोत्पत्तिनिबन्धनमेतत्प्रत्यभिज्ञानं न कालान्तरस्थाधित्वनिबन्धनम्; तद्वाणादावपि समानम् । न समानमत्रैवाधकसद्भावात् तर्था कल्पना, नान्यत्र विपर्ययीत् । नन्वेत्र प्रत्यक्षम्, अनुमानं वा बाधकं कल्प्येत ? प्रत्यक्षं चेत्; किमेकत्वविषयम्, क्षणिकत्वविषयं वा ? २० न तावदेकत्वविषयम्; समविषयत्वेन तदुक्तकूलत्वात् । नपि क्षणिकत्वविषयम्; शब्देऽन्यत्र वा तस्य विवादगोचरार्थत्वात् । नाप्यनुमानम्; प्रत्यभिज्ञानं हि मानसप्रत्यक्षं भैवन्मते तस्य कथमनुमानं बाधकम् ? प्रत्यक्षमेव हि बाधकम् आमताग्राह्यैर्केशाखाप्रभवत्वानुमानस्य, न पुनस्तदनुमानं प्रत्यक्षस्य । अथाध्यक्षा-

१ पूर्वक्षणे । २ उत्तरक्षणे । ३ अर्हं शुकः । ४ एकत्वप्राप्तिः । ५ जैनमते । ६ ओष्ठेन्द्रियव्यवधानवत् । ७ अयमुपाध्यायोक्तः शब्द इति । ८ मया यः शब्दः श्रूयते स उपाध्यायेनोक्त इति । ९ अन्वयव्यतिरेकतः । १० श्रुयमाणम् । ११ उपाध्यायसम्बन्धित्वेन तस्य शब्दस्य । १२ दर्शनसृष्टिप्रभवम् । १३ तेन उपाध्यायोक्तेन शब्देन । १४ व्यजनानिष्ठवत् । १५ न चैवम् । १६ तथा चाशेषार्थानां क्षणिकत्वप्रसङ्गात्सौगतमवसिद्धिः स्यात् । १७ शब्दे । १८ क्षणिकत्वेन । १९ नेने ते बाणादय इत्यत्र बाधकाभावात् । २० शब्दाक्षणिकत्वप्रत्यभिज्ञाने । २१ प्रत्यभिज्ञानस्यैकविषयत्वं प्रत्यक्षस्याप्येकविषयत्वम् । २२ तेन=प्रत्यभिज्ञानेन । २३ क्षणिकत्वविषयस्य प्रत्यक्षस्य । २४ अस्तिदत्त्वादिति भावः । २५ वैशेषिकमते । २६ पक्षा-न्येतानि फलानि पक्षशाखाप्रभवत्वादित्यनुमानस्याऽऽमताग्राह्ये प्रत्यक्षं बाधकम् ।

भासत्वादस्यानुमानं बाधकम्, यथा स्थिरचन्द्रार्कादिविज्ञानस्य
द्वैशान्तरप्राप्तिसिद्धिजनितं गत्यनुमानम्; कथं पुनरस्याध्यक्षाभास-
त्वम् ? अनुमानेन बाधनाच्चेत्; अनेनानुमानस्य बाधनादनुमाना-
भासता किञ्च स्यात् ? अथानुमानबाधितविषयत्वाच्चेदमनुमानस्य
बाधकम्; अनुमानमप्येतद्बाधितविषयत्वान्नास्य बाधकं स्यात् । न ५
च तदनुमानमस्ति ।

नन्विदमस्ति-क्षणिकः शब्दोऽस्मदादिप्रत्यक्षत्वे सति विमुद्द्रव्य-
विशेषगुणत्वात् सुखादिवत् । सत्यमस्ति, किन्त्वेकशास्त्राप्रभव-
त्ववदेतत्साधनं प्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्षबाधितकर्मनिर्देशानन्तरं प्रयुक्त-
त्वात् साध्यसिद्धिनिबन्धनम् । विमुद्द्रव्यविशेषगुणत्वं चासिद्धम्; १०
शब्दस्य द्रव्यत्वप्रसाधनात् । धर्मादिना व्यभिचारश्च; अस्य विमु-
द्द्रव्यविशेषगुणत्वेऽपि क्षणिकत्वाभावात् । तस्यापि पक्षीकरणौद-
व्यभिचारे न कश्चिद्धेतुर्व्यभिचारी, सर्वत्र व्यभिचारविषयस्य
पक्षीकरणात् । 'अस्मदादिप्रत्यक्षत्वे सति' इति च विशेषणमर्थ-
कम्; व्यवच्छेद्यभावात् । धर्मादिश्च क्षणिकत्वे स्वोत्पत्तिसमया- १५
न्तरमेव विनष्टत्वात्ततो जन्मान्तरे फलं न स्यात् ।

शब्दाच्छब्दोत्पत्तिवद्धर्मादेर्धर्माद्युत्पत्तिः; इत्यप्ययुक्तम्; तथा-
भ्युपगमाभावात्, तद्वदपरापरतत्कार्योत्पत्तिप्रसङ्गाच्च । 'परस्परानु-
कूलेष्वनुकूलाभिमानजनितोभिलाषः अभिलषितुरर्थोभिमुक्तिक्रिया-
कारणमौत्तमविशेषगुणमाराध्नोति' अनुकूलेष्वनुकूलाभिमानजनि- २०

१ शब्देकत्वविषयसाध्यक्षस्य । २ शब्दस्य क्षणिकत्वसाधनेन । ३ यत्नेन-
मानसप्रलक्षणेन । ४ शब्दक्षणिकत्वानुमानस्य । ५ परममहापरिभागेन व्यभिचार-
परिहारार्थमिव विशेषणम् । ६ विमुद्द्रव्य आकाशमात्रा च । ७ षडादिगतरूपादिना
व्यभिचारनिरासार्थं विशेषेति । ८ उपहासे । ९ कर्म-प्रतिज्ञा । १० प्रत्यभिज्ञाप्रलक्षणेन
पूर्वं शब्दसाध्यक्षित्वं साधितं यतः । ११ विमुद्द्रव्यविशेषगुणत्वादिलेदोष्ययाने ।
१२ क्षणिकत्वं-साध्यम् । १३ अनेकान्तपरिहारार्थं, पक्षान्तःपातित्वाद्धर्मादेः क्षणि-
कत्वभावात्तमिति भावः । १४ व्यवच्छेदकफलं हि विशेषणमिति वचनात् । १५ अस्म-
दादिप्रत्यक्षत्वे सतीति विशेषणेन किञ्चास्मदाद्यप्रत्यक्षो धर्मादिव्यवच्छेदः, तस्यापि
पक्षीकरणे व्यवच्छेदकत्वस्य विशेषणस्य नास्तीति भावः, सर्वत्र पक्षीकरणादिविशेषणेन
परिहरणीयत्वाभावात् । १६ परेण । १७ धर्माधर्मयोः क्षणिकत्वे । १८ अस्तु, न
चैवम्, न खलु धर्माद्युत्पत्तिवदपरापरवनिताद्यङ्गाद्युत्पत्तिः प्रतीयते । १९ प्रकृतसाध्ये
हेतुन्तरमिदम् । २० अनुकूलवैशेषिकस्य । २१ इत्यावागादिपूर्वादिषु धर्मोत्पादन-
कारणभूतेषु । २२ धर्मजनकत्वेन । २३ इमान्यनुकूलानीत्यभिमानस्येन जनितः ।
२४ अर्थ-सक्रुचन्दनादिकं प्रति । २५ क्रिया-कार्यम् । २६ उत्तरजन्मनि ।
२७ धर्मलक्षणं दृष्टान्तपक्षे प्रयत्नलक्षणं च । २८ उत्पादयति, साधयति ।

ताभिलाषत्वात् 'आत्मनोर्दुःकूलेष्वनुकूलाभिमानजनिताभिलाष-
वत्' इत्यस्य च विरोधः, यस्माद्योऽसौ परस्यानुकूलेष्वनुकूला-
भिमानजनिताभिलाषजनित आत्मविशेषगुणो नासावभिलाषितु-
रर्थाभिमुखक्रियाकारणम्, तत्समानस्य तत्कारणत्वात्, यच्च
५ तत्क्रियाकारणं नासौ यथोक्ताभिलाषजनित इति ।

'इच्छाद्वेषनिर्मितौ प्रवर्त्तकनिवर्त्तकौ धर्माधर्मौ, अव्यवधानेन
हिताहितविषयप्राप्तिपरिहारहेतोः कर्मणः कारणत्वे सत्यात्म-
विशेषगुणत्वात्, प्रवर्त्तकनिवर्त्तकप्रयत्नवत्' इत्यत्र हेतोर्व्यभिर्वा-
रश्च-जन्मान्तरफलोदययोर्धर्माधर्मयोः अव्यवधानेन हिताहित-
१० विषयप्राप्तिपरिहारहेतोः कर्मणः कारणत्वे सत्यात्मविशेषगुणत्वे-
पीच्छाद्वेषजनितत्वाभावात् । ततः शब्दाच्छब्दोत्पत्तिवद्धर्माध-
र्माद्युत्पत्त्यभावात् । क्षणिकत्वे चातो जन्मान्तरे फलासम्भ-
वादक्षणिकत्वं तस्याभ्युपगन्तव्यमित्यनेनानैकान्तिको हेतुः ।

यथासदादिप्रत्यक्षत्वविशेषणविशिष्टस्य विमुद्रव्यविशेषगुण-
१५ त्वस्योन्नतसम्भवाच्च व्यभिचारः । ननु मा भूद्वाभिचारः, तथापि
साकल्येन हेतोर्विपक्षोद्भवात्प्रत्यक्षसिद्धिः । विपक्षविरुद्धं हि विशेषणं
ततो हेतुं निवर्त्तयति । यथा सहेतुकत्वमहेतुकत्वविरुद्धं ततः

१ सामान्यं हेतुं नुवतां दोषाभावात् । २ जीवस्य स्वस वा । ३ वज्रादिषु सङ्घ-
चन्दनादिषु च । ४ अनुमानस्य । ५ धर्माधर्मोपपत्तौ सत्त्वात् । ६ धर्मोद्घरणः ।
७ अनुष्ठानवैचैभिकस्य । ८ परापरोत्पत्त्या तस्मादन्यत्वात् । ९ अन्तो धर्मः ।
१० इच्छाद्वेषौ निमित्तं कारणं ययोर्धर्माधर्मयोरिति भावः । ११ कार्यस्य निष्पन्नका-
निष्पादकौ । १२ कारणत्वादित्युच्यमाने चक्षुरादिना व्यभिचारस्तत्रित्यर्थमात्म-
विशेषगुणत्वादित्युक्तम्, तावत्युक्ते सुखादिनानेकान्तस्तरिपरिहारार्थं कर्मणः कारणत्वे
सतीति विशेषणम्, तावत्युक्ते दुःखादिनानेकान्तस्तरिपरिहारार्थं हिताहितविषयप्राप्ति-
परिहारहेतोर्नित्युपात्तम्, तावत्युक्ते इच्छाद्वेषाभ्यामनेकान्तस्तरिपरिहारार्थमव्यवधानेनेति
विशेषणमुपादीयते । १३ धर्माद्विषयप्राप्त्यहितविषयपरिहारो भवतः, अधर्माद्विषय-
विषयप्राप्तिविषयपरिहारो स्त इति सन्बन्धः । १४ धर्माधर्मयोः । १५ अनुमाने ।
१६ धर्मादेः क्षणिकत्वे । १७ पूर्वधर्माधर्मसदृशयोः । १८ धर्मादेः क्षणिकत्वे साधोः ।
१९ धर्मादेः क्षणिकत्वाभावात् । २० असादादिप्रत्यक्षत्वे सतीति विशेषणं त्यक्त्वा
विमुद्रव्यविशेषगुणत्वात्तदित्यर्थं हेतुः । २१ व्यभिचारपरिहारार्थम् । २२ साधनस्य ।
२३ धर्मादौ । २४ शब्दे यथा सम्भवस्तथा धर्मादौ नास्ति यतः । २५ अक्षणिक्त्वात् ।
२६ कथम् ? तथा हि । २७ हेतोर्विपक्षे शक्तिं धारयति यत्तदेव हेतुविशेषणम् ।
२८ अनित्यः शब्दः कादाचित्कत्वात् षट्पदित्युक्ते खननोत्सेचनादिना कादाचित्केन
नभसानैकान्तिकत्वम्, तद्रथचच्छेदार्थं सहेतुकत्वे सति कादाचित्कत्वादिति साधनं
प्रयोक्तव्यम् । २९ विशेषणम् । ३० अहेतुकत्वव्याक्यशाब्दि ।

कादाचित्कत्वम् । न चासदादिप्रत्यक्षत्वमक्षणिकत्वविरुद्धम् ; अक्षणिकेष्वपि सामान्यादिषु भावात् । ततो यथासदादिप्रत्यक्षा अपि केचित्प्रदीपादयो भावाः क्षणिकाः सामान्यादयस्त्वक्षणिकास्तथासदादिप्रत्यक्षा अपि विमुद्रव्यविशेषगुणाः 'केचित्स्रणिकाः केचिदक्षणिका भविष्यन्ति' इति सन्दिग्धो व्यतिरेकः । ५ अथाक्षणिके कंचिदसदादिप्रत्यक्षत्वविशेषणविशिष्टस्य विमुद्रव्यविशेषगुणत्वस्यादर्शनात्ततो व्यावृत्तिसिद्धिः ; न ; भवदीयादर्शनस्य साकल्येन भावाभावाप्रसाधकत्वात्, अन्यथा परलोकादेरप्यभावानुषङ्गः । सर्वस्यादर्शनं चासिद्धम् ; संतोऽपि निश्चेतुमशक्यत्वात् ।

१०

विपक्षेऽदर्शनमौत्राह्णोवृत्तिसिद्धौ—

“यद्देवाध्ययनं किञ्चित्तदध्ययनपूर्वकम् ।

वेदाध्ययनवाच्यत्वादधुनाध्ययनं यथा ॥”

[मी० श्लो० पृ० ९४९]

इत्थंस्यापि गमकत्वप्रसङ्गः । न खलु वेदाध्ययनमतदध्ययन-पूर्वकं दृश्यम् । तथा चास्यानादित्वसिद्धेरीश्वरपूर्वकत्वेन प्रामाण्यं न स्यात् । न च कृतकत्वादावप्ययं दोषः समानः ; तत्र विपक्षे हेतोः सद्भाववाचकप्रमाणसम्भवात् ।

धर्मादेःआसदाद्यप्रत्यक्षत्वे 'देवदत्तं प्रत्युपसर्पन्तः पश्वाद्यो देवदत्तगुणाकृष्टास्तं प्रत्युपसर्पणवत्त्वाद्देवादिषु' इत्यनुमानं न स्यात् ; व्याप्तेरग्रहणात् । मानसप्रत्यक्षेण व्याप्तिग्रहणे सिद्धं धर्मादेरसदादिप्रत्यक्षत्वम् । अथ 'बाह्येन्द्रियेणासदादिप्रत्यक्षत्वे सति'

१ हेतुं निवर्तयति । २ असदादिप्रत्यक्षत्वविशेषणस्य । ३ पदार्थाः । ४ सुखादयः । ५ धर्मादयः । ६ हेतोर्विपक्षव्यावृत्तिः । ७ धर्मादी । ८ बाह्येना परमाण्वेभ्यः । ९ भवदीयादर्शनस्य परलोकादी सद्भावविशेषात्, तथा च भावाकृतप्रसङ्गः । १० नरस्य । ११ सर्वेषां हेतोर्विपक्षेऽदर्शनं विद्यते तस्मात् तस्य । १२ सर्वेषां प्राणिनां प्रहणायानात्, अन्यथाऽशेषकत्वप्रसङ्गः । १३ अक्षणिके । १४ अदर्शने-साग्रान्नात् । १५ विपक्षत्वात् । १६ अपौरुषेयत्वलक्षणसाध्यस्य । १७ अवेदाध्ययनपूर्वके लोकचक्षुषे निपक्षे हेतोर्दर्शनमात्राद्येतोर्विपक्षव्यावृत्तिसिद्धेः सद्भावत्वात् । १८ ईश्वरकर्तृत्वेन । १९ भवन्मते । २० हेतौ । २१ नित्ये गगनादी, यत्कृतकं न भवति तदनिर्लं न भवति यथा गगनमिति । २२ यद्यत् प्रत्युपसर्पणवत्तदेवदत्तगुणाकृष्टमिति प्रत्यक्षेण धर्मादेरप्रत्यक्षत्वात् । २३ तदस्य धर्मादिना व्यभिचारः पूर्ववदस्य यत् । २४ इति विशेषणेन ।

इति हेतुर्विशेष्यते तदा साधनवैकल्यं दृष्टान्तस्य, सुखादेस्तथा प्रत्यक्षत्वाभावात् ।

यदि च वीचीतरङ्गन्यायेन शब्दोत्पत्तिरिष्यते तदा प्रथमतो वक्तृव्यापारादेकैः शब्दः प्रादुर्भवति, अनेको वा ? यथेकः; कथं ५ नानादिकानेकशब्दोत्पत्तिः सकृदिति चिन्त्यम् । सर्वदिकताल्वा-
दिव्यापारजनितवाष्वाकाशसंयोगानामसमवायिकारणानां सम-
वायिकारणस्य चाकाशस्य सर्वगतस्य भावात् सकृत्सर्वदिकनाना-
नाशब्दोत्पत्त्यविरोधैः शब्दस्यारम्भकर्त्वायोगः । यथैवाद्यः शब्दो न
शब्देनारब्धस्ताल्वाद्याकाशसंयोगादेवासमवायिकारणादुत्पत्तेः,
१० तथा सर्वदिकशब्दान्तराण्यपि ताल्वादिव्यापारजनितवाष्वाकाश-
संयोगेभ्य एवासमवायिकारणेभ्यस्तदुत्पत्तिसम्भवात् । तथा च
“संयोगोद्भिर्भागाच्छब्दाश्च शब्दोत्पत्तिः” [वैशे० सू० २।२।३१]
इति सिद्धान्तव्याधीतः ।

अथ शब्दान्तराणां प्रथमः शब्दोऽसमवायिकारणं तत्सदृश-
१५ त्वात्, अन्यथा तद्विसदृशशब्दान्तरौत्पत्तिप्रसङ्गो नियामकान्ना-
वात् । नन्वेवं प्रथमस्यापि शब्दस्य शब्दान्तरसदृशस्यान्यशब्दाद्-
समवायिकारणादुत्पत्तिः स्यात् तस्याप्यपरपूर्वशब्दादित्यनादित्वा-
पत्तिः शब्दसन्तानस्य स्यात् । यदि पुनः प्रथमः शब्दः प्रतिनिर्यतः
प्रतिनियताद्वक्तृव्यापारादेवोत्पन्नः स्वसदृशानि शब्दान्तराण्यार-
२० भेत; तर्हि किमाद्येन शब्देनासंमवायिकारणेन ? प्रतिनियतवक्तृ-
व्यापारात्जनितप्रतिनियतवाष्वाकाशसंयोगेभ्यश्च सदृशपरा-
परशब्दोत्पत्तिसम्भवात् । तन्नैकः शब्दः शब्दान्तरारम्भकः ।

नाप्यनेकः; तस्यैकसात्ताल्वाद्याकाशसंयोगादुत्पत्त्यसम्भवात् ।
न चानेकस्ताल्वाद्याकाशसंयोगः सकृदेकस्य वक्तुः सम्भवति,
२५ प्रथमस्यैकत्वात् । न च प्रथममन्तरेण ताल्वादिक्रियापूर्वकोऽन्यै-
तरकर्मजस्ताल्वाद्याकाशसंयोगः प्रसूते यतोऽनेकशब्दः स्यात् ।

अस्तु वा कुतश्चिदाद्यः शब्दोऽनेकः; तथाप्यसौ खंडिशे शब्दा-
न्तराण्यारभते, देशान्तरे वा ? न तावत्खंडेशे; देशान्तरे शब्दो-

१ विशुद्रव्यविशेषगुणत्वादित्यवम् । २ बहोन्निद्रयेण सुखादिवदिति दृष्टान्तः प्रत्यक्षो
न भवतीति भावः । ३ शब्दादेव । ४ सर्वदिकः—सर्वगतः । ५ उपादानसेत्सर्षः ।
६ भवन्मते । ७ प्रथमस्य । ८ शब्दान्तरं प्रति । ९ शब्दान्तरेणारब्धानि । १० शब्द-
स्वारम्भकत्वायोगे च । ११ मेरीदण्डयोः । १२ बंधादिविभागात् । १३ वैशेषिकस्य
तत्र । १४ प्रतिनियतस्वरूपः विशिष्टः । १५ कल्पितेन । १६ न चेदमसिद्धम् ।
१७ ताल्वादियु । १८ स्तोत्पत्तिदेशे ताल्वादी । १९ स्तोत्पत्तिदेशादन्यदेशेऽपि ।

पलम्भामावप्रसङ्गात् । अथ देशान्तरे; तत्रापि किं तद्देशे गत्वा, स्वदेशस्थ एव वा देशान्तरे तान्यसौ जनयेत् ? यदि स्वदेशस्थ एव; तर्हि लोकान्तेपि तज्जनकत्वप्रसङ्गः । अदृष्टमपि च शरीरदेशस्थ-मेव देशान्तरवर्तिमणिमुक्ताफलाद्याकर्षणं कुर्यात् । तथा च “धर्माधर्मौ स्वाश्रयसंयुक्ते आश्रयान्तरे कर्मारमेते” [५] इत्यादिविरोधः । न च वीचीतरङ्गादावप्यप्राप्तकार्यदेशत्वे सत्या-रम्भकत्वं दृष्टं येनात्रापि तथा तत्कल्प्येताव्यक्षविरोधात् । अथ तद्देशे गत्वा; तर्हि सिद्धं शब्दस्य क्रियावत्त्वं द्रव्यत्वप्रसाधकम् ।

किञ्च, आकाशगुणत्वे शब्दस्यासदादिप्रत्यक्षता न स्यादाकाश-स्यात्यन्तपरोक्षत्वात्; तथाहि—येऽत्यन्तपरोक्षगुणिगुणा न तेऽस-१० दादिप्रत्यक्षाः यथा परमाणुरूपादयः, तथा च परेणाभ्युपगतः शब्द इति । न च वायुरूपेण व्यभिचारः; तस्य प्रत्यक्षत्व-प्रसाधनात् ।

किञ्च, आकाशगुणत्वेऽसदादिप्रत्यक्षत्वे चास्यात्यन्तपरोक्षा-काशविशेषगुणत्वायोगः । प्रयोगः—यदसदादिप्रत्यक्षं तत्रात्यन्त-१५ परोक्षगुणिगुणः यथा घटरूपादयः, तथा च शब्द इति ।

यच्चोक्तम्—‘सत्तासम्बन्धित्वात्’ इति; तत्र किं स्वरूपभूतया सत्तया सम्बन्धित्वं विवक्षितम्, अर्थान्तरभूतयोर्वा ? प्रथम-पक्षे सामान्यादिभिर्व्यभिचारः; तेषां प्रतिविध्यमानद्रव्यकर्म-भावत्वे सति तथाभूतया सत्तया सम्बन्धित्वेपि गुणत्वसिद्धेः । २० द्वितीयपक्षस्त्वयुक्तः; न हि शब्दादयः स्वयमसन्त एवाथान्तर-भूतया सत्तया सम्बन्धयमानाः सन्तो नामाश्वविषाणादेरपि तथाभावानुषङ्गात् । प्रतिपेत्यते चार्थान्तरभूतसत्तासम्बन्धे-नार्थानां सत्त्वमित्यलमिति प्रसङ्गेन ।

यच्चोक्तम्—शब्दो द्रव्यं न भवत्येकद्रव्यत्वात्; तत्रैकद्रव्यत्वं २५ साधनमसिद्धम्; यतो गुणत्वे, गगने एवैकद्रव्ये समवायेन वर्तने च सिद्धे, तत्सिद्ध्येत्, तच्चोक्तया रीत्याऽपास्तमिति कथं तत्सिद्धिः ?

१ आणोऽनेकः शब्दः । २ स्वामयाः आत्मा आत्मनो व्यापकत्वात् । ३ मणिमुक्ता-फलादौ, शरीरापेक्षया । ४ आकर्षणादिलक्षणम् । ५ कार्यम्—उचरवीचीलक्षणम् । ६ उचरउरङ्गणम् । ७ वायुरूपेण अत्यन्तपरोक्षगुणिगुणो भवत्सदादिप्रत्यक्षो न भवतीति न । ८ आकाशगुणः शब्दः । ९ सामान्यविशेषसमवायवत् (सामान्य-विशेषसमवायाः स्वतः सन्त इति वचनात्) । १० शब्दस्य । ११ द्रव्यगुणकर्मवत् । १२ समपथा सत्तासम्बन्धित्वस्य दृष्टत्वात्प्रकारान्तरसम्भवात् । १३ आदिना विशेषे-समवाययोर्महणम् । १४ रूपादिवत् । १५ शब्दस्य ।

यदप्येकद्रव्यत्वे साधनमुक्तम्—‘एकद्रव्यः शब्दः सामान्य-
विशेषवत्त्वे सति बाह्यैकेन्द्रियप्रत्यक्षत्वात्’ इति; तदपि प्रत्य-
नुमानबाधितम्; तथाहि—अनेकद्रव्यः शब्दोऽसदादिप्रत्यक्षत्वे
सत्यपि स्पर्शवत्त्वाद् घटादिवत् । वायुनानेकान्तश्च; स हि बाह्यैके-
न्द्रियप्रत्यक्षोपि नैकद्रव्यः, चक्षुषैकेनाऽसदादिभिः प्रतीयमानैश्च-
न्द्रार्कादिभिश्च । असदादिविलक्षणैर्बाह्यैर्निर्द्रयान्तरेण तत्प्रतीती
शब्देपि तथा प्रतीतिः किञ्च स्यात् ? अत्र तथानुपलम्भोऽन्यत्रापि
समानः ।

पतेर्नैदमपि प्रत्युक्तम्—‘गुणः शब्दः सामान्यविशेषवत्त्वे सति
१० बाह्यैकेन्द्रियप्रत्यक्षत्वादूपादिवत्’ इति; वाष्वादिभिर्व्यभिचारात्,
ते हि सामान्यविशेषवत्त्वे सति बाह्यैकेन्द्रियप्रत्यक्षा न च गुणाः,
अन्यथा द्रव्यसंख्याव्याघातः स्यात् । ततः शब्दानां गुणत्वानिर्दे-
रयुक्तमुक्तम्—‘यश्चैषामाश्रयस्तत्पारिशेष्यादाकाशम्’ इति ।

यश्चोक्तम्—‘न तावत्स्पर्शवतां परमाणूनाम्’ इत्यादि; तत्सिद्ध-
१५ साधनम्; तद्गुणत्वस्य तत्रानभ्युपगमात् । यथा चासदादिप्रत्य-
क्षत्वे शब्दस्य परमाणुविशेषगुणत्वस्य विरोधस्तथाकाशविशेष-
गुणत्वस्यैव । तथा हि—शब्दोऽत्यन्तपरोक्षाकाशविशेषगुणो
न भवत्यसदादिप्रत्यक्षत्वात्कार्यद्रव्यरूपादिवत् । न ह्यसदादि-
प्रत्यक्षत्वं परमाणुविशेषगुणत्वमेव निराकरोति शब्दस्य नाकाश-
२० विशेषगुणत्वम् उभयत्राविशेषात् । यथैव हि परमाणुगुणो
रूपादिरसदाद्यप्रत्यक्षस्तथाकाशगुणो महत्त्वादिरपि ।

यथाप्युक्तम्—‘नापि कार्यद्रव्याणाम्’ इत्यादि; तदप्युक्तम्;
शब्दस्याकाशगुणत्वनिषेधे कार्यद्रव्यान्तरात्प्रतुर्भावेऽप्युत्पत्त्यभ्युप-
गमे शब्दो निराधारो गुणः स्यात् । तथा च ‘बुद्ध्यादयः कचिद्-

१ अनेकानि द्रव्याणि यस्य परमाणुद्रव्यावपेक्षया । २ योगिप्रत्यक्षेण परमाणुना
व्यभिचारपरिहारायम् । ३ एकैव बाह्यपरमाणुना व्यभिचारपरिहारायम् । ४ पर-
माणवपेक्षया । ५ परमाणवपेक्षया । ६ अनेकान्त इति संबन्धः एकद्रव्यलक्षणसाध्या-
भावात् । ७ योगिभिः । ८ चक्षुषोपेक्षयान्येन स्पर्शनलक्षणेन । ९ तथा ज्ञानै-
कात्मिकं पदं हेतुः सादिति भावः । १० एकद्रव्यः शब्द इत्यादिनिराकरणेन ।
११ आदिना शुभिम्येतेनसां प्रदः । १२ तत्रद्रव्याणां पञ्चद्रव्यत्वप्रसङ्ग इत्यनेन ।
१३ शब्दो विशेषगुणो न भवत्यसदादिप्रत्यक्षत्वात्कार्यद्रव्यरूपादिवत् । १४ जैनैः ।
१५ विशेषणे । १६ भवन्मते । १७ असन्मते । १८ असदादिप्रत्यक्षत्वम् ।
१९ शुभिव्यादीनाम् । २० जैनैः । २१ परेण ।

तन्ते गुणत्वात्' इत्यस्य व्यभिचारः । ततः कार्यद्रव्यान्तरोत्पत्ति-
स्तत्राभ्युपगन्तव्येत्यसिद्धो हेतुः ।

अकारणगुणपूर्वकत्वं चासिद्धम्; तथा हि-नाकारणगुणपूर्वकः
शब्दोऽस्मदादिबाह्येन्द्रियग्राह्यत्वे सति गुणत्वात्पटरूपादिवत् । न
चाणुरूपादिना सुखादिना वा हेतोर्व्यभिचारः; 'बाह्येन्द्रियग्राह्यत्वे ५
सति' इति विशेषणात् । नापि योगिबाह्येन्द्रियग्राह्येणाणुरूपादिना;
अस्मदादिग्रहणात् । नापि सामान्यादिना; गुणग्रहणात् ।

अथावद्रव्यभावित्वं च विरुद्धम्; साध्यविपरीतार्थप्रसाधन-
त्वात् । तथाहि-स्पर्शवद्रव्यगुणः शब्दोऽस्मदादिबाह्येन्द्रियप्रत्य-
क्षत्वे सत्यथावद्रव्यभावित्वात्पटरूपादिवत् । 'अस्मदादिपुरुषान्तर- १०
प्रत्यक्षत्वे सति पुरुषान्तराप्रत्यक्षत्वात्' इति वाखाद्यमानेन रसा-
दिनानैकान्तिकः । 'अश्रयाद्भेदादेरन्यत्रोपलब्धेः' इति चासङ्गतम्;
भेदादेः शब्दाश्रयत्वासिद्धेस्तस्य तन्निमित्तकारणत्वात् । आत्मादि-
गुणत्वात्त्वप्रतिषेधस्तु सिद्धसाधनाच्च समाधानमर्हति ।

यच्च 'शब्दलिङ्गाविशेषात्' इत्याद्युक्तम्; तद्वन्व्याप्तसौभाग्य- १५
व्यावर्णनप्रैक्ष्यम्; कार्यद्रव्यस्य व्यापित्वादिधर्मासम्भवात् ।

पतेनेदमपि निरस्तम्-^{१५} 'दिवि भुव्यऽन्तरिक्षे च शब्दाः श्रूयमाणे-
नैकार्थसमर्थाधिः शब्दत्वात् श्रूयमाणायशब्दवत् । श्रूयमाणः
शब्दः समानजातीयासमवायिकारणः सामान्यविशेषैवैव सति
नियमेनासंदादिबाह्येन्द्रियप्रत्यक्षत्वात् कार्यद्रव्यरूपादिवत्' २०

१ शब्दस्य गुणरूपस्य क्वचिद्वर्तमानत्वात् । २ कार्यद्रव्यान्तरात्पराणाणुरूपाच्छब्द-
ननक्यत् । ३ अकारणं=गगनम्, तस्य गुणो महत्त्वादिः । ४ किंतु स्पर्शरसगन्धवर्णव-
सुद्रच्छब्दव्यहेतुक इति भावः । ५ पटगतरूपगुणो यथा तन्तुगतरूपगुणपूर्वकः । ६ असङ्ग-
साधनमेतत् । ७ आत्मनः स्वभावत्वात् । ८ नीचीतरङ्गन्यायेन शब्दाच्छब्दोत्पत्ते-
र्विमिद्धत्वात् । ९ असङ्गसाधनमेतत् । १० विशेषगुणो न भवतीति साध्याभावात् ।
११ शब्दस्यान्तर्बलरूपस्य । १२ आदिना मनोदिङ्गला गृह्यन्ते । १३ भेदाभावादेक-
मित्यर्थः । १४ सट्टशब्दः । १५ शब्दस्य आकाशविशेषगुणत्वनिराकरणेन कार्यद्रव्यविशेष-
गुणत्वसाधनेन वा । १६ शब्देन । १७ प्रकार्यः=आकाशलक्षणार्थः । १८ गगनसम-
वायिकारणकाः । १९ नीचीतरङ्गन्यायागतेन श्रूयमाणेन षट्शब्देन आद्या षट्शब्दाः
श्रूयमाणा षट्शब्दसासमवायिकारणत्वेनाभिमतता प्रकार्यसमवायिनो यथा । २० सामा-
न्यादिना व्यभिचारपरिहारार्थम् । २१ न चाकाशेन व्यभिचार इन्द्रियग्रहणात्, नापि
यदादिना एकपदोपादानात्, नापि सुखादिना बाह्यपदोपादानात्, नापि योगिबाह्य-
केन्द्रियप्रत्यक्षेण परमाणुना सद्रूपादिना वाऽस्मदादिपटग्रहणात्, नापि पिङ्गाचादिना
नियमेनेति पदोपादानात् । २२ पटसमवेतरूपाधारण्ये पटोरपादकतन्तुरूपादिवत् ।

इति; प्रतिशब्दं पुद्गलद्रव्यस्य तत्समवायिकारणस्य भेदात्। शब्दस्य क्षणिकत्वनिषेधोच्च कथं समानजातीयासमवायिकारणत्वम् ?

यदि चाकाशमनवयवं शब्दस्य समवायिकारणं स्यात्; तर्हि शब्दस्य नित्यत्वं सर्वगतत्वं च स्यादाकाशगुणत्वात्तन्महत्त्ववत्।
५ क्षणिकैकदेशवृत्तिविशेषगुणत्वस्य शब्दे प्रमाणतः प्रतिषेधोच्च। तत्त्वे वा कथं न शब्दाधारस्याकाशस्य सावयवत्वम् ? न हि निरवयवत्वे 'तस्यैकदेशे एव शब्दो वर्तते न सर्वत्र' इति विभागो घटते।

किञ्च, सावयवमाकाशं हिमवद्विन्ध्यावरुद्धविभिन्नदेशत्वाद्-
१० मिवत्। अन्यथा तयो रूपरसयोरिवैकदेशाकाशावस्थितिप्रसक्तिः। न चैतद् दृष्टमिष्टं वा।

कथं वा तदाद्येयस्य शब्दस्य विनाशः ? स हि न तावदाश्रय-
विनाशाद्घटते; तस्य नित्यत्वाभ्युपगमात्। नापि विरोधिगुणसद्भा-
वात्; तन्महत्त्वादेरेकार्थसमवेतत्वेन रूपरसयोरिव विरोधित्वा-
१५ सिद्धेः। सिद्धौ वा श्रवणसमयेपि तदभावप्रसङ्गः; तदा तन्मह-
त्त्वस्य भावात्। नापि संयोगादिविरोधिगुणः; तस्य तत्कारण-
त्वात्। नापि संस्कारः; तस्याकाशेऽसम्भवात्। सम्भवे वा
तस्याभावे आकाशस्याप्यभावानुषङ्गस्तस्य तदव्यतिरेकात्। व्यति-
२० रेके वा 'तस्य' इति सम्बन्धो न स्यात्। नापि शब्दोपलब्धिप्राप-
कादृष्टाभावात्तदभावः; तुच्छाभावस्यासामर्थ्यतो विनाशाहेतुत्वात्
खरविषाणवत्। तन्न शब्दस्याकाशप्रभवत्वमभ्युपगन्तव्यम्।

ननु चाऽस्य पौद्गलिकत्वेऽसदाद्यनुपलभ्यमानरूपाद्याश्रयत्वं
न स्यात्पटादिवत्; तन्न; व्युत्क्रादिना हेतोर्व्यभिचारात्। नाय-
नरश्मिषु जलसंयुक्तानले चानुद्भूतरूपस्पर्शवत् शब्दाश्रयद्रव्ये-
३५ ऽसदाद्यनुपलभ्यमानानामप्यनुद्भूततया रूपादीनां वृत्त्यविरोधः।
यथा च प्राणैन्द्रियेणोपलभ्यमाने गन्धद्रव्येऽनुद्भूतानां रूपादीनां
वृत्तिस्तथात्रापि। यथा च तैजसत्वात्पार्थिवत्वाच्चात्रैतानुपलभ्येपि

१ अनेकात्। २ पर्यायरूपेण वस्तुनो विनाशात्। ३ जैनेन। ४ तन्महत्त्ववत्।
५ तथा च हिमवद्विन्ध्ययोः सहचरभाव इति भावः। ६ परेण। ७ विरोधिगुण-
रूपस्य। ८ शब्दं प्रति। ९ संयोगादिः शब्दकारणमिति वचनात्। १० कार्यरूपेण।
११ वत्पौद्गलिकं तदसदाद्यनुपलभ्यमानरूपाद्याश्रयमित्युक्ते इयणुकादिना पौद्गलिकेन
व्यभिचारोऽसदाद्यनुपलभ्यमानरूपाश्रयत्वलक्षणसाध्याभावात्। १२ उष्णस्पर्शः। १३ अन्न
रूपं भावुरत्। १४ परमते। १५ परमते। १६ नायनरश्म्यादिषु (जलसंयुक्तानले
गन्धद्रव्ये) त्रिषु।

रूपादीनामनुद्भूततयास्तित्वसम्भावना तथा शब्देऽपि पौद्गलिक-
त्वात् । न च पौद्गलिकत्वमसिद्धम्; तथाहि-पौद्गलिकः शब्दो-
ऽस्मदादिप्रत्यक्षत्वेऽचेतनत्वे च सति क्रियावत्त्वाद्वाणादिवत् ।
न च मनसा व्यभिचारः; 'अस्मदादिप्रत्यक्षत्वे सति' इति विशे-
षणत्वात् । नाप्यात्मना; 'अचेतनत्वे सति' इति विशेषणात् । ५
नापि सामान्येन; अस्य क्रियावत्त्वाभावात् । ये च 'अस्मदादि-
प्रत्यक्षत्वे सति स्पर्शवत्त्वात्' इत्यादयो हेतवः प्रागुपन्यस्तास्ते
सर्वे पौद्गलिकत्वप्रसाधका द्रष्टव्याः । ततः शब्दस्याकाशगुणत्वा-
सिद्धेर्नासौ तल्लिङ्गम् ।

कुतस्तर्हि तत्सिद्धिरिति चेद्? 'युगपन्निखिलद्रव्यावगाह-१०
कार्यात्' इति ब्रूमः; तथाहि-युगपन्निखिलद्रव्यावगाहः साधारण-
कारणापेक्षः तथावगाहत्वान्यथाऽनुपपत्तेः । ननु सर्पिषो मधुन्यव-
गाहो भस्मनि जलस्य जलेऽश्वादेर्यथा तथैवालोक्तमसोरशेषार्था-
वगाहघटनात्तत्काशप्रसिद्धिः; तन्न; अनयोरप्याकाशाभावेऽवगा-
हानुपपत्तेः । १५

ननु निखिलार्थानां यथाकाशेवगाहः तथाकाशस्याप्यन्यसि-
द्धधिकरणेऽवगाहेन भवितव्यमित्यनवस्था, तस्य स्वरूपेवगाहे
सर्वार्थानां स्वात्मन्येवावगाहप्रसङ्गात्कथमाकाशस्यातः प्रसिद्धिः?
इत्यप्यपेशलम्; आकाशस्य व्यापित्वेन स्वावगाहित्वोपपत्तितोऽ-
नवस्थाऽसम्भवात्, अन्येषामव्यापित्वेन स्वावगाहित्वायोगाच्च । २०
न हि किञ्चिदल्पपरिमाणं वस्तु स्वाधिकरणं द्रष्टम्; अश्वादेर्जला-
द्यधिकरणोपलब्धेः । कथमेवं दिक्कालात्मनामाकाशेवगाहो व्यापि-
त्वात्; इत्यप्यसाम्प्रतम्; हेतोरसिद्धेः । तदसिद्धिश्च दिग्द्रव्यस्या-
सत्त्वात्, कालात्मनोश्चासर्वगतद्रव्यत्वेनाग्रे समर्थनात्प्रसिद्धेति ।
ननु तथाप्यमूर्त्तत्वेन कालात्मनोः पाताभावात्कथं तदाधेयता? २५
इत्यप्ययुक्तम्; अमूर्त्तस्यापि ज्ञानसुखादेरात्मन्याधेयत्वप्रसिद्धेः ।

पतेनामूर्त्तत्वात्तत्काशं कस्यचिदधिकरणमित्यपि प्रत्युक्तम्;
अमूर्त्तस्याप्यात्मनो ज्ञानाद्यधिकरणत्वप्रतीतिः । समानसमयवर्ति-
त्वाभिखिलार्थानां नाधाराधेयभावः, अन्यथाकाशादुत्तरकालं
भावस्तेषां स्यात्; इत्यप्यसमीचीनम्; समसमयवर्तिनामप्यात्मा- ३०
मूर्त्तत्वादीनां तद्भावप्रतीतिः । न खलु परेणाप्यत्र पौर्वापरीभावोऽ-

१ परस्य त्वम् । २ पौद्गलिकत्वाभावाद्भावमनसः । ३ जैनैः । ४ वयं जैनाः ।
५ सकलद्रव्याणां साधारणमात्रकारणमाकाशम् । ६ साधारणकारणमन्तरेण ।
आत्माशाभावे । ७ मुह्यन्मिलयैः । ८ जैनापेक्षया । ९ आत्मादीनाम् । १० वैशेषिकेभ्यः ।

भीष्टो नित्यं त्वविरोधानुषङ्गात् । क्षणविशारक्तया निखिलार्थानां
नाधारधेयभावः, इत्यपि मनोरथमात्रम्, क्षणविशारक्तत्वस्या-
र्थानां प्रागेव प्रतिषेधात् । 'खे पतत्री' इत्याद्यऽवाधितप्रत्ययाच्च
तद्भावप्रसिद्धेः । ततः परेषां निरवयलिङ्गाऽभावात्तत्काशद्रव्यस्य
५ प्रसिद्धिः ।

नापि कालद्रव्यस्य । यच्चोच्यते—कालद्रव्यं च परापरादिप्रत्य-
यादेव लिङ्गात्प्रसिद्धम् । कालद्रव्यस्य च इतरस्माद्भेदे 'कालः' इति
व्यवहारे वा साध्ये स एव लिङ्गम् । तथा हि—काल इतरस्माद्भिद्यते
'काल' इति वा व्यतहर्त्तव्यः, परापरव्यतिकरयोगपद्यायौगपद्यन्धि-
१० रक्षिप्रप्रत्ययलिङ्गत्वात्, यस्तु नेतरस्माद्भिद्यते 'काल' इति वा न
व्यवहियते नासाद्बुक्तलिङ्गः यथा क्षित्यादिः, तथा च कालः,
तस्मात्तथेति । विशिष्टकार्यतया चैते प्रत्ययाः काले एव प्रतिबद्धाः ।
यद्विशिष्टकार्यं तद्विशिष्टकारणाद्बुत्पद्यते यथा घट इति प्रत्ययाः,
विशिष्टकार्यं च परापरव्यतिकरयोगपद्यायौगपद्यन्धिरक्षिप्रप्रत्यया
१५ इति । परापरयोः खलु दिग्देशकृतयोः व्यतिकरो विपर्ययः—यत्रैव
हि दिग्विभागे पितर्युत्पन्नं परत्वं तत्रैव स्थिते पुत्रेऽपरत्वम्, यत्र
चापरत्वं तत्रैव स्थिते पितरि परत्वमुत्पद्यमानं दृष्टमिति दिग्देशा-
भ्यामन्यन्निमित्तान्तरं सिद्धम्; निमित्तान्तरमन्तरेण व्यतिकरा-
सम्भवात् । न च परापरादिप्रत्ययस्य आदित्यादिक्रिया द्रव्यं वलि-
२० पलितादिकं वा निमित्तम्; तत्प्रत्ययविलक्षणत्वात्पटादिप्रत्यय-
वत् । तथा च सूत्रम् "अपरस्मिन्परं युगपदयुगपच्चिरं क्षिप्रमिति
काललिङ्गानि" [वैशे० सू० २।२।६] आकाशवच्चास्यापि विमुक्त-
नित्यैकत्वादयो घर्माः प्रतिपत्तव्यौ इति ।

अत्रोच्यते—परापरादिप्रत्ययलिङ्गानुमेयः कालः किमेकद्र-
२५ व्यम्, अनेकद्रव्यं वा ? न तावदेकद्रव्यम्; मुख्येतरकालभेदेनास्य
द्वैविध्यात् । न हि समयावलिकादिव्यवहारकालो मुख्यकालद्रव्य-
मन्तरेणोपपद्यते यथा मुख्यसत्त्वमन्तरेण कैचिद्बुपचरितं सत्त्वम् ।

१ आत्मनः । २ लौगतमत्तमालम्ब्य । ३ आदिपदेन यौगपद्यायौगपद्यन्धिरक्षि-
प्रादिग्रहः । ४ मसः । ५ तद्येते प्रत्यया भविष्यन्तिमित्तका भविष्यन्तीत्युक्ते सत्याह ।
६ षटे सत्त्वेव प्रसिद्धाः । ७ कथम् ? तथा हि । ८ प्रत्ययः । ९ सन्निहितदिग्देशे ।
१० कालापेक्षया दूरत्वम् । ११ कालापेक्षया सन्निहितत्वम् । १२ कालद्रव्यम् ।
१३ कालद्रव्यम् विनाऽन्यन्निमित्तं परापरादिप्रत्ययस्य भविष्यतीत्याशङ्क्यामाह ।
१४ प्रत्ययः=प्रतीतिः । १५ जैनादिभिः । १६ जैनेः । १७ व्यवहारः । १८ आदिना
कालनिषेधवदिकामुहूर्त्तग्रहरादिग्रहणम् । १९ अस्यादेरस्तित्वम् । २० माणवके ।
२१ अश्वेः ।

स च मुख्यः कालोऽनेकद्रव्यम्, प्रत्याकाशप्रदेशं व्यवहारकालमे-
दान्यथानुपपत्तेः । प्रत्याकाशप्रदेशं विभिन्नो हि व्यवहारकालः
कुक्षेत्रलङ्काकाशदेशयोर्विषसादिमेदान्यथानुपपत्तेः । ततः प्रति-
लोकाकाशप्रदेशं कालस्याणुरूपतया भेदसिद्धिः ।

तदुक्तम्—

“लोयैयासपपसे एकेके जे द्विया इ एकेका ।

रणयाणं रासीविव ते कालाणू मुणेयन्वा ॥ १ ॥”

[द्रव्यसं० गा० २२ (?)]

योगपद्यादिप्रत्ययाविशेषात्तस्यैकत्वम्; इत्यप्यसत्; तत्प्रत्यया-
विशेषासिद्धेः । तेषां परस्परं विशिष्टत्वात्कालस्याप्यतो विशिष्टत्व-१०
सिद्धिः । सहकारिणामेव विशिष्टत्वं न कालस्य; इत्यप्यनुत्तरम्;
स्वरूपमभेदयतां सहकारित्वप्रतिक्षेपात् ।

यदि चास्य निरवयवैकद्रव्यरूपताभ्युपगम्यते कथं तर्ह्यती-
तादिकालव्यवहारः? स हि किमतीताद्यर्थक्रियासम्बन्धात्,
स्वतो वा स्यात्? अतीताद्यर्थक्रियासम्बन्धाच्चेत्; कुतस्तासाम-१५
तीतादित्वम्? अपरातीताद्यर्थक्रियासम्बन्धाच्चेत्; अनवस्था ।
अतीतादिकालसम्बन्धाच्चेत्; अन्योन्यार्थः । स्वतस्तस्यातीतादि-
रूपता चायुक्ता, निरंशत्वमेदरूपत्वयोर्विरोधात् ।

योगपद्यादिप्रत्ययाभावश्चैवंवादिनः स्यात्; तथाहि-यत्कार्य-
जातमेकस्मिन्काले कृतं तद्युगपत्कृतमित्युच्यते । कालैकत्वे चाखि-२०
लकार्याणामेककालोत्पाद्यत्वेनैकदैवोत्पत्तिप्रसङ्गाच्च किञ्चिदयुगप-
त्कृतं स्यात् ।

विरक्षिप्रव्यवहारभावश्चैवंवादिनः । यत्त्रल्लु बहुना कालेन
कृतं तद्विरेण कृतम् । यच्च स्वल्पेन कृतं तत्क्षिप्रं कृतमित्युच्यते ।
तच्चैतदुभयं कालैकत्वे दुर्बटम् ।

२५

१ कालपरमाणुलक्षणम् । २ मुख्यकालद्रव्यानेकत्वानाम् । ३ हेतुरसिद्ध इत्युक्ते
सलाह । ४ चन्द्रार्कदिदक्षिणायनोत्तरायणयोः सप्तोः । ५ लोकाकाशप्रदेशे एकैके
ये सिद्धाः सङ्घे एकैके । रत्नानां राक्षिरेव ते काजणवो शतम्बाः । ६ सिद्धे हि
क्रियाणामतीतादित्त्वे तत्सम्बन्धात्कालस्यातीतादित्वसिद्धिसिद्धिस्तद्वै व तत्सम्बन्धात्तसं
सत्सिद्धिरिति । ७ निरंशस्य कालस्यातीतत्ववर्तमानत्वमविष्यत्तल्लक्षणधर्माणां सद्भावो
न धरते इति भावः । ८ कार्यसमूहः । ९ कालस्य नितैकत्वादिरूपत्वे । १० अयोग-
पद्याभावे तदपेक्षया चापमानस्य योगपद्यस्याप्यभाव इति भावः ।

प्र० क० मा० ४८

ननु चैकत्वेपि कालस्योपाधिभेदाद्भेदोपपत्तेर्न यौगपद्यादि-
प्रत्ययाभावः । तदुक्तम्—“मणिवत्पाचकवद्भोपाधिभेदात्कालभेदः”
[] इति; तदप्ययुक्तम्; यतोऽत्रोपाधिभेदः
कार्यभेद एव । स च ‘युगपत्कृतम्’ इत्यत्राप्यस्त्येवेति किमित्य-
५ युगपत्प्रत्ययो न स्यात् ? अथ क्रमभावी कार्यभेदः कालभेदव्यव-
हारहेतुः । ननु कोस्य क्रमभावः ? युगपदनुत्पादश्चेत्; ‘युगपद-
नुत्पादः’ इत्यस्य भाषितस्य कार्यः ? एकस्मिन्कालेऽनुत्पादः;
सोयमितरेतराश्रयः—यावद्धि कालस्य भेदो न सिद्ध्यति न ताव-
त्कार्याणां भिन्नकालोत्पादलक्षणः क्रमः सिद्ध्यति, यावच्च कार्याणां
१० क्रमभावो न सिद्ध्यति न तावत्कालस्योपाधिभेदाद्भेदः सिद्ध्यतीति ।
ततः प्रतिक्षणं क्षणपर्यायैः कालो भिन्नस्तत्समुदायात्मको लव-
निभेषादिकालश्च । तथा चैककालमिदं चिरोत्पन्नमनन्तरोत्पन्न-
मित्येवमादिव्यवहारः स्यादुपपन्नो नान्यथा ।

एतेन परापरव्यतिकरः कालैकत्वे प्रत्युक्तः; तथाहि—भूम्यवय-
१५ वैरालोकावयवैर्वा बहुभिरन्तरितं वस्तु विप्रकृष्टं परमिति चोच्यते
स्वल्पैस्त्वन्तरितं सन्निकृष्टमपरमिति च । तथा बहुभिः क्षणैरहो-
रात्रादिभिर्वान्तरितं विप्रकृष्टं परमिति चोच्यते स्वल्पैस्त्वन्तरितं
सन्निकृष्टमपरमिति च । बह्वर्त्यभावश्च शुद्धत्वपरिमाणौदिवदपेक्षा-
निबन्धनः कालैकत्वे दुर्घट इति ।

२० यौगपद्यादिप्रत्ययाविशेषात् कालस्यैकत्वे च शुद्धत्वपरिमाणौ-
देरप्येकत्वप्रसङ्गस्तुल्याक्षेपसमाधानत्वात् । ततो शुद्धत्वपरिमाणा-
देरनेकगुणरूपतावत्कालस्यानेकद्रव्यरूपताभ्युपगन्तव्यता ।

ये तु वास्तवं कालद्रव्यं नाभ्युपगच्छन्ति तेषां परापरयौगपद्या-

१ यथा स्फटिकमणौ पावके च यथाक्रमं जपाकुमुमादिखादिरादिलक्षणोपाधिभेदाद्भेद-
स्तथा कार्यलक्षणोपाधिभेदाद्भेदः कालस्यापीत्यर्थः; ततश्च व्यतिक्रान्तो न स्यादिति भावः ।
२ कालक्रमेणोत्पाद इत्यर्थः । ३ कालस्यैकत्वे यौगपद्याभावो यतः । ४ वसः ।
५ विपर्ययः । ६ कालस्य । ७ असादर्यं गुरुरस्माच्छ्रुतिरिति व्यवहारो वस्तुन धक्तने
दुर्घटो यथा । ८ स्वपरापेक्षा । ९ शुद्धत्वादिप्रत्ययाविशेषात् । १० अल्पपरिमाणस्वाभि ।
११ शुद्धत्वपरिमाणमल्पत्वपरिमाणं च प्रतिपदार्थं भिद्येत इत्याक्षेपः; समाधानं—यदि
यौगपद्यादिप्रत्ययोपि प्रतिपदार्थं भिद्यते इति समाधानम् । १२ नित्यनिरनैकद्रव्यरूपत्वे
न्यायानां भूतमविविध्यदत्तमानत्वं दुर्घटमतीतानागतवर्तमानकालभेदाभावात्, सिद्धे हि
तद्भेदे तत्सम्बन्धादर्थानां तथा व्यपदेशः स्यान्नान्यथातिप्रसङ्गात् । न चास्य तस्मिन्निर्घटते
नित्यनिरनैकरूपत्वात् । यदेवंविधं न तत्रादीत्यादिसरूपभेदाः । यथा परमाणौ ।
नित्यनिरनैकरूपस्य भवद्भिः परिकल्पितः कालः । १३ भीमासक्तरीपतद्रव्याः ।

यौगपद्यच्चिरक्षिप्रप्रत्ययानामभावः स्यात् । न खलु ते निर्निमित्ताः; कादाचित्कत्वाद्वादादिवत् । नाप्यविशिष्टनिमित्ताः; विशिष्टप्रत्ययत्वात् । न च दिग्गुणजातिनिमित्तास्ते; तज्जातप्रत्ययवैलक्षण्येनोपर्यन्तेः । तथा हि—अपरदिग्व्यवस्थितेऽप्रशस्तेऽर्धमजातीये स्थविरपिण्डे 'परोयम्' इति प्रत्ययो दृश्यते । परदिग्व्यवस्थिते चोत्तम-^१जातीये प्रशस्ते यूनि पिण्डे 'अपरोयम्' इति प्रत्ययो दृश्यते ।

अथादित्यादिक्रिया तन्निमित्तम्; जन्मतो हि प्रभृत्येकस्य प्राणिन आदित्यवर्तनानि भूयांसीति परत्वमन्यस्य चालपीयांसीत्यपरत्वम् । नन्वेवं कथं यौगपद्यादिप्रत्ययप्रादुर्भावः एकस्मिन्नेवादित्यपरिवर्तने सर्वेषामुत्पादात्? तथाव्यपदेशाभावाच्च; ^{१०}'युगपत्कालः' इति हि व्यपदेशो न पुनः 'युगपदादित्यपरिवर्तनम्' इति ।

न च क्रियैव कालः; अस्याः क्रियोरूपतयाऽविशेषतो युगपदादिप्रत्ययभावाद्युपपन्नात् । तस्य चोक्तकार्यनिर्घर्तकस्य कालस्य 'क्रिया' इति नामान्तरकरणे नाममात्रं भिद्येत । ^{१५}

न च कर्तृकर्मणी एव यौगपद्यादिप्रत्ययस्य निमित्तम्; यतो यौगपद्यं बहूनां कर्तॄणां कार्ये व्यापारो 'युगपदेते कुर्वन्ति' इति प्रत्ययसमधिगम्यः । बहूनां च कार्याणामात्मैलामो 'युगपदेतानि कृतानि' इति प्रत्ययसमधिगम्यः । न चोत्र कर्तॄमात्रं कार्यमात्रं बाल्मर्षेणमतिप्रसङ्गात् । यत्र हि क्रमेण कार्यं तत्रापि कर्तृकर्मणोः ^{२०}सङ्गावात्स्यादेतद्विज्ञानम्, न चैवम् । यथाऽ(तथाऽ)यौगपद्यप्रत्ययोप्ययुगपदेते कुर्वन्तीति, अयुगपदेतत्कृतमिति नाविशिष्टं कर्तृ-

१ किं तु कालरक्षणकारणोत्पत्त्या इत्यर्थः । २ अविशिष्ट—साधारणम् । ३ पर-प्रत्ययः, अपरप्रत्यय इत्यादिरूपेण । ४ परापरदिप्रत्ययानाम् । ५ विकटदिक् । ६ युगापेक्षया । ७ भातज्ञादौ । ८ असद्वृणसविज्ञानोय वसः; यौगपद्यमादियेषाम-यौगपद्यादीनां ते यौगपद्यादय इति, तेनायौगपद्यादिप्रत्ययप्रादुर्भावः कथमित्यर्थः संपन्नः । ९ युगपदादित्यपरिवर्तनमिति । १० अमुना हेतुना यौगपद्यस्याभावः कृतः । ११ कालन्यतिरिक्तस्य निमित्तस्य यौगपद्यादिप्रत्यये विचार्यमाणस्यानुपपद्यमानत्वाच्च-दित्यपरिवर्तनं स्यात्क्रियाविशेषो वा? न तावदादित्यपरिवर्तनेकेकस्मिन्नप्यादित्यपरिवर्तने सर्वेषामुत्पादादिति, अस्य परिवर्तनं नेकप्रादक्षिण्येन परिब्रमणमद्वैरात्रमभिधीयते, तस्मिन्नेकस्मिन्पि यौगपद्यादिप्रतीतिविषयभूतार्थानामुत्पादः प्रतीयते एव तथा व्यपदेश-भवाच्चेति । १२ क्रिया कालो भविष्यतीत्याह । १३ कालरूपतया यौगपद्यादिप्रत्ययो, न पुनः क्रियारूपतया । १४ नेदाभावतः । १५ तर्हि कर्तृकर्मणी यौगपद्यादिप्रत्ययस्य निमित्तं भविष्यतीत्युक्तेः सत्याह । १६ यौगपद्यम् । १७ यौगपद्यप्रत्यये । १८ निषयः, कारणमित्यर्थः ।

कर्ममात्रमालम्ब्यतेऽतिप्रसङ्गादेव । अतस्तद्विशेषणं कालोऽभ्यु-
पगन्तव्यः । कथमन्यथा चिरक्षिप्रव्यवहारोपि स्यात्? एक एव
हि कर्त्ता किञ्चित्कार्यं चिरेण करोति व्यासङ्गादनर्थित्वाद्वा,
किञ्चित्तु क्षिप्रमर्थितया । तत्र 'चिरेण कृतं क्षिप्रं कृतम्' इति
५ प्रत्ययौ विशिष्टत्वाद्धिशिष्टं निमित्तमाक्षिपत इति कालसिद्धिः ।

लोकव्यवहाराच्च; प्रतीयन्ते हि प्रतिनियत एव काले प्रति-
नियता वनस्पतयः पुष्प्यन्तीत्यादिव्यवहारं कुर्वन्तो व्यवहारिणः ।
यथा वसन्तसमये एव पाटलादिकुसुमानामुद्भवा न कालान्तरे ।
इत्येवं कार्यान्तरेष्वप्यभ्यूह्यम् 'प्रसवनकालमपेक्षते' इति व्यव-
१० हारात् । समयमुद्भूतयामाहोरात्रार्द्धमासत्वेयनसंवत्सरादिव्यव-
हाराच्च तत्सिद्धिः । तत्र परपरिकल्पितं कालद्रव्यमपि घटते ।

नापि दिग्द्रव्यम्; तत्सद्भावे प्रमाणाभावात् । यच्च दिशः
सद्भावे प्रमाणमुक्तम्—“मूर्तेष्वेव द्रव्येषु मूर्त्तद्रव्यमवधिं कृत्वेद-
मतः पूर्वेण दक्षिणेन पश्चिमेनोत्तरेण पूर्वेदक्षिणेन दक्षिणापरे-
१५ णाऽपरोत्तरेणोत्तरपूर्वेणाधस्तादुपरिष्ठादित्यमी दश प्रत्यया यतो
भवन्ति सा दिग्” [प्रश० भा० पृ० ६६] इति । तथा च
सूत्रम्—“अत ईदमिति यतस्तद्विशो लिङ्गम्” [वैशे० सू०
२।२।१०] तेषां च दिग्द्रव्यमितरेभ्यो भिद्यते दिगिति व्यवहर्त्त-
व्यम्, पूर्वादिप्रत्ययलिङ्गत्वात्, यत्तु न तथा न तत्पूर्वादि-
२० प्रत्ययलिङ्गम् यथा क्षित्यादि, तथा च्चेदम्, तस्मात्तथेति । न चैते
प्रत्यया निर्निमित्ताः; कादाचित्कत्वात् । नाप्यविशिष्टनिमित्ताः;
विशिष्टप्रत्ययत्वाद्दण्डीतिप्रत्ययवत् । न चान्योन्यापेक्षमूर्त्तद्रव्यनि-
मित्ताः; परस्परार्थयत्वेनोभयप्रत्ययाभावानुषङ्गात् । ततोऽन्य-
निमित्तोत्पाद्यत्वासम्भवादेते दिश एवांनुमापकाः । प्रयोगः—
२५ यदेतत्पूर्वापरदिज्ञानं तन्मूर्त्तद्रव्यव्यतिरिक्तपदार्थनिवन्धनं तत्र-
त्ययविलक्षणत्वात्सुखादिप्रत्ययवत् । विमुक्तैकत्वनित्यत्वादय-
श्चास्या घर्माः कालवदवगन्तव्याः । तस्याश्चैकत्वेपि प्राच्यादिमेद-
व्यवहारो भगवतः सवितुर्महं प्रदक्षिणभावर्त्तमानस्य लोकपाल-
गृहीतदिकप्रदेशैः संयोगाद्घटते ।

१ युगपदेते कुर्वन्ति युगपदेतानि कृतानीति तयोः कर्त्तृकर्मणोः । २ पुरुषाः ।
३ पुत्रोत्पत्त्यादिलक्षणेषु । ४ ज्ञानं भवतीति शेषः । ५ लिङ्गसिद्धौ । ६ वसः ।
७ पदादिवत् । ८ साधारणाऽऽकाशादिकारणका न भवन्तीति भावः । ९ एकस्य
वस्तुनः पूर्वत्वसिद्धौ सत्यां तदपेक्षया इतरस्यापरत्वसिद्धिरितरस्यापरत्वसिद्धौ सत्यां
च तदपेक्षयाऽपरत्वसिद्धिः (प्रथमस्य पूर्वत्वसिद्धिः) रिति । १० नान्यस्याकाशादेः ।
११ अत्रादि ।

तद्व्यसमीचीनम्; प्रोक्तप्रत्ययानामाकाशहेतुकत्वैनाकाशादि-
शोऽर्थान्तरत्वासिद्धिः। तत्रदेशश्रेणिष्वेव ह्यादित्योदयादिवशात्प्रा-
च्यादिदिग्द्रव्यवहारोपपत्तेर्न तेषां निर्हेतुकत्वं नाप्यविशिष्टपदार्थ-
हेतुकत्वम्। तथाभूतंप्राच्यादिदिक्संबन्धाच्च मूर्च्छद्रव्येषु पूर्वापरा-
दिप्रत्ययविशेषस्योत्पत्तेर्न परस्परापेक्षया मूर्च्छद्रव्याण्येव तद्धेतवो ५
येनैकतरस्य पूर्वत्वासिद्धावैत्यतरस्यापरत्वासिद्धिः; तदसिद्धौ
चैकतरस्य पूर्वत्वायोगादितरेतराश्रयत्वेनोभयाभावः स्यात्।

नन्वेवमाकाशप्रदेशश्रेणिष्वपि कुर्वन्तत्सिद्धिः? स्वरूपत एव
तत्सिद्धौ तस्य परावृत्त्यभावप्रसङ्गः; अन्योन्यापेक्षया तत्सिद्धौ
अन्योन्याश्रयणादुभयाभावः; तद्धेतविकप्रदेशेष्वपि पूर्वापरादि-१०
प्रत्ययोत्पत्तौ समानम्। यथैव हि मूर्च्छद्रव्यमवधिं कृत्वा मूर्च्छेष्वेव
'इवमतः पूर्वेण' इत्यादिप्रत्यया दिग्द्रव्यहेतुं कस्तथा दिग्भेदमवधिं
कृत्वा दिग्भेदेष्वेव 'इयैमतेः पूर्वा' इत्यादिप्रत्यया द्रव्यान्तरहेतुकाः
सन्तु विशिष्टप्रत्ययत्वाविशेषात्, तथा चानर्धस्था। परस्परापेक्षया
तत्सिद्धावितरेतराश्रयणादुभयाभावः। स्वरूपतस्तत्प्रत्ययप्रसिद्धौ १५
तेनैवानेकान्तात् कुतो दिग्द्रव्यसिद्धिस्तत्प्रत्ययपरावृत्त्यभावश्चा-
नुषज्यः।

सवितुर्महं प्रदक्षिणमावर्त्तमानस्येत्यादिन्यायेन दिग्द्रव्ये प्राच्या-
दिव्यवहारोपपत्तौ तत्रदेशपङ्क्तिष्वऽप्यत एव तद्व्यवहारोपपत्ते-
रलं दिग्द्रव्यकल्पनया, देशद्रव्यस्यापि कल्पनाप्रसङ्गात् 'अयमतः २०
पूर्वादेशः' इत्यादिप्रत्ययस्य देशद्रव्यमन्तरेणानुपपत्तेः। पृथिव्यादि-
रेव देशद्रव्यम्; इत्यसत्; तत्र पृथिव्यादिप्रत्ययोत्पत्तेः। पूर्वादि-

१ आकाशस्यैकत्वादिग्न्यवहारः कथं सादिलाह। २ आकाशप्रदेशलक्षण।
३ पूर्वादिः। ४ पश्चिमादिः। ५ मूर्च्छद्रव्येषु पूर्वापरादिप्रत्ययविशेषोत्पत्तिक्रमोपपत्तेः।
६ तस्य=पूर्वापरत्वस्य। ७ पूर्वापरादिः। ८ परावृत्तिः=निवृत्तिः। ९ न च तथा
पूर्वादिदिशामपि कस्यचिद्देशस्यापेक्षया पश्चिमादिव्यवहारोत्पत्तिरिति। १० पूर्वापेक्षयाऽपरः,
अपरापेक्षया पूर्व इति। ११ चोच्यते। १२ भवन्मते। १३ दिक्। १४ दिशः
सकशात्। १५ जैनमते। १६ अन्यदिग्द्रव्यापेक्षयाऽनवसा तत्रापि तत्प्रत्यय-
हेतुत्वस्यापरदिग्द्रव्यहेतुत्वप्रसङ्गात्। १७ दिग्भेदेषु दिग्द्रव्यव्यतिरिक्तद्रव्यान्तराभावोपि
पूर्वापरादिप्रत्ययस्य स्वतो जायमानत्वात्। १८ पूर्वापरोति। १९ पूर्वापरादिप्रत्ययेन।
२० तत्प्रत्ययविकल्पनादित्यस्य हेतोः। २१ दिग्द्रव्यं पूर्वापरादिप्रत्ययस्य कारणं
न भवतीति भावः। २२ पूर्वापर। २३ तस्य=आकाशस्य। २४ मान्यादि।
२५ तथा च नव द्रव्याणीति द्रव्यसंख्यान्यायात्तः स्यात्। २६ तस्य पृथिव्यादि-
प्रत्ययहेतुत्वेनायमतः पूर्वा देश इति प्रत्ययहेतुत्वाऽनुपपत्तेः।

दिकृतः पृथिव्यादिषु पूर्वदेशादिप्रत्ययञ्चेत्; तर्हि पूर्वाद्याकाश-
कृतस्तत्रैव पूर्वादिदिक्प्रत्ययोस्त्वऽलं दिक्कल्पनाप्रयासेन ।

नन्वेवमादित्योदयादिवशादेवाकाशप्रदेशपङ्क्तिष्विव पृथिव्या-
दिष्वपि पूर्वापरादिप्रत्ययसिद्धेराकाशप्रदेशश्रेणिकल्पनाप्यनर्थिका
५ भवत्विति चेत्; न; 'पूर्वस्यां दिशि पृथिव्यादयः' इत्याद्याधारा-
धेयव्यवहारोपलम्भात् पृथिव्याद्यधिकरणभूतायास्तैत्प्रदेशपङ्क्तेः
परिकल्पनस्य सार्थकत्वात् । आकाशस्य च प्रमाणात्तरतः
प्रसाधितत्वात् । तन्न परपरिकल्पितं दिग्द्रव्यमप्युपपद्यते ।

नाप्यात्मद्रव्यम् । तद्धि सर्वगतत्वादिधर्मोपेतं परैरभ्युपेयते ।
१० न चास्य तदुपेतत्वमुपपद्यते; प्रत्यक्षविरोधात् । प्रत्यक्षेण ह्यात्मा
'सुख्यहं दुःख्यहं घटादिकमहं वेभि' इत्यहमहमिकया स्वदेह
एव सुखादिस्वभावतया प्रतीयते, न देहान्तरे परसम्बन्धिनि,
नाप्यन्तराले । इतरथा सर्वस्य सर्वत्र तथा प्रतीतिरिति सर्व-
दर्शित्वं भोजनादिव्यवहारसङ्करश्च स्यात् ।

१५ अनुमानविरोधाच्चास्य तद्धर्मोपेतत्वायोगः; तथाहि-नात्मा
परममहापरिमाणाधिकरणो द्रव्यान्तराऽसाधारणसामान्यवत्त्वे
सत्यनेकत्वाद्घटादिवत् । 'अनेकत्वात्' इत्युच्यमाने हि सामान्ये-
नानेकान्तः, तत्परिहारार्थं 'सामान्यवत्त्वे सति' इति विशेषणम् ।
तथाकाशादिना व्यभिचारः, तत्परिहारार्थं 'द्रव्यान्तरासाधारण-
२० सामान्यवत्त्वे सति' इत्युच्यते । एकसौद्धि द्रव्यादन्यद्रव्यं
द्रव्यान्तरम्, तदसाधारणसामान्यवत्त्वे सत्यनेकत्वमाकाशादी
नास्तीति । अत एव परममहापरिमाणलक्षणगुणेनापि नानेकान्तः ।

तथा, नात्मा तत्परिमाणाधिकरणो दिक्कालाकाशान्यत्वे सति
द्रव्यत्वाद्घटादिवत् । न सामान्येन परममहापरिमाणेन वाने-
२५ कान्तः, तयोरद्रव्यत्वात् । नापि दिगादिना, 'तदन्यत्वे सति'
इति विशेषणात् ।

तथा, नात्मा तत्परिमाणाधिकरणः क्रियावत्त्वाद्वाणादिवत् ।
न चेदमसिद्धम्; 'योजनमहमागतः क्रोशं वा' इत्यादिप्रतीति-
तस्तत्सिद्धेः । न च मनः शरीरं वागतमित्यभिधातव्यम्; तस्याहं-

१ व्योम । २ निखिलद्रव्यावगाहान्यथानुपपत्तेः । ३ आत्मनः सर्वैरात्मभिः सम्ब-
न्धात् । ४ गोत्वाश्वत्वमहिपत्वादिना । ५ सामान्यवत्त्वादित्युच्यमाने । ६ यतो द्रव्यत्वं
सत्त्वं ना सामान्यमाकाशादिषु । ७ आत्मलक्षणात् । ८ आकाशश्च । ९ गुणत्वसामा-
न्यसद्भावाद्नेकत्वाभावाच्च । १० तत्-परममहत् ।

प्रत्ययाऽवेद्यत्वात्, अन्यथा चार्वाकमतप्रसङ्गः स्यात् । प्रसाध-
यिष्यते चाग्रे विस्तरतोस्य क्रियावत्त्वमित्यलमतिप्रसङ्गेन ।

तथा, आत्माऽणुपरममहत्त्वपरिमाणानधिकरणः, चेतनत्वात्,
ये तु तत्परिमाणाधिकरणा न ते चेतनाः यथाकाशपरमाण्वा-
द्यः, चेतनश्चात्मा, तस्माच्च तत्परिमाणाधिकरण इति । ५

ननु चात्मा परममहापरिमाणाधिकरणो न भवतीति प्रति-
ज्ञाऽनुमानवाधिता । तच्चानुमानम्-आत्मा व्यापकोऽणुपरिमाणा-
नधिकरणत्वे सति नित्यद्रव्यत्वादाकाशवत् । अणुपरिमाणान-
धिकरणोसौ अस्मदादिप्रत्यक्षविशेषगुणाधिकरणत्वाद्वदादिवत् ।
तथा नित्यद्रव्यमात्माऽस्पर्शवद्द्रव्यत्वादाकाशवदेवेति । १०

अत्रोच्यते-अणुपरिमाणप्रतिषेधोत्र पर्युदासः, प्रसज्यो चाभि-
प्रेतः ? यदि पर्युदासः, तदासौ भावान्तरस्वीकारेण प्रवर्त्तते ।
भावान्तरं च किं परममहापरिमाणम्, अवान्तरपरिमाणं वा
स्यात् ? प्रथमपक्षे साध्याविशिष्टत्वं हेतुविशेषणस्य । यथा
'अनित्यः शब्दोऽनित्यत्वे सति बाह्येन्द्रियप्रत्यक्षत्वात्' इति । १५
द्वितीयपक्षे तु विरुद्धत्वम्, यथा 'नित्यः शब्दोऽनित्यत्वे सति
बाह्येन्द्रियप्रत्यक्षत्वात्' इति ।

प्रसज्यपक्षेऽप्यसिद्धत्वम्, तुच्छस्वभावाभावस्य प्रमाणाविषयत्वेन
प्रतिपादनात् । सिद्धौ वा किमसौ साध्यस्यै स्वभावः, कार्यं वा ?
यदि स्वभावः, तर्हि साध्यस्यापि तद्वत्तुच्छरूपतानुषङ्गः । अथ २०
कार्यम्, तच्च, तुच्छस्वभावाभावस्य कार्यत्वायोगात् । कार्यत्वं हि
किं स्वकारणसत्तासमवायः, कृतमिति बुद्धिविषयत्वं वा ? न
तावदाद्यः पक्षः, अभावस्य स्वकारणसत्तासमवायानभ्युपगमात्,
अन्यथा भावरूपतैवास्य स्यात् । नापि द्वितीयः, तुच्छस्वभावा-
भावस्य तद्विषयत्वासम्भवात् । तस्य हि प्रमाणागोचरत्वे कथं २५
कृतबुद्धिविषयत्वं सम्भवेत् ? अनैकान्तिकं चैतत्, खननोत्सेच-
नानन्तरमकार्येऽप्याकाशे कृतबुद्धिविषयत्वसम्भवात् ।

१ अनैकान्तिकत्वनिराकरणे । २ काठालयापदिष्टेन हेतुना । ३ परमाणु-
भिरनेकान्तपरिहारार्थमेतत्, परमाणुषु नित्यत्वमस्ति व्यापकत्वं च नास्तीति भावः ।
४ हेतोर्विशेषणसमर्थनार्थमेतत् । ५ योनिप्रत्यक्षविशेषगुणाधिकरणैः परमाणुभिर्व्यभि-
चारत्वात्परिहारार्थमस्मादादिपदम् । ६ प्रत्यक्षाश्च ते विशेषगुणाश्च तेषामधिकरणम् ।
७ हेतोर्विशेष्यदलसमर्थनार्थम् । ८ क्रियाऽनेकान्तपरिहारार्थं द्रव्येति । ९ हेतो-
र्विशेषणं निरसति जैनः । १० साध्यसमत्वम्, महापरिमाणस्त्वार्थं हि व्यापकत्वम्,
यस्य सति आत्मा व्यापकः व्यापकत्वादित्यापार्तं महापरिमाणव्यापकत्वयोः समानार्थ-
त्वात् । ११ व्यापकत्वविहितसात्मनः ।

नित्यद्रव्यत्वं च किं कथञ्चित्, सर्वथा वा विवक्षितम्? कथञ्चिद्वेत्, घटादिनानेकान्तः, तस्याणुपरिमाणानधिकरणत्वे कथञ्चिन्नित्यद्रव्यत्वे च सत्यपि व्यापित्वाभावात् । सर्वथा चैत्, असिद्धत्वम्, सर्वथा नित्यस्य वस्तुनोऽर्थक्रियाकारित्वेनाश्ववि-
 ५ षाणप्रत्यत्वप्रतिपादनात् । असदादिप्रत्यक्षविशेषगुणाधिकरण-
 त्वाच्चाणुपरिमाणप्रतिषेधमात्रमेव स्याद् घटादिवत्, तस्य चेष्ट-
 त्वात्सिद्धसाध्यता । अस्पर्शवद्रव्यत्वाच्चात्मनो यदि कथञ्चि-
 न्नित्यत्वं साध्यते; तदा सिद्धसाध्यता । अथ सर्वथा; तर्हि हेतो-
 रनन्वयत्वमाकाशादीनामपि सर्वथा नित्यत्वस्य प्रतिषिद्धत्वात् ।

- १० ननु 'देहान्तरे परसम्बन्धिन्यन्तराले चात्मा न प्रतीयते'
 इत्ययुक्तमुक्तम्; अनुमानात्तत्रास्य सङ्गावप्रतीतेः; तथाहि-देव-
 दत्ताङ्गनाथं देवदत्तगुणपूर्वकं कार्यत्वे तदुपकारकत्वाङ्गासा-
 दिवत् । कार्यदेशे च सन्निहितं कारणं तज्जन्मनि व्याप्रियते
 नान्यथा, अतस्तदङ्गादिकार्यप्रादुर्भावदेशे तत्कारणवत्तदुप-
 १५ सिद्धिः । यत्र च गुणाः प्रतीयन्ते तत्र तदुपप्यनुमीयते एव,
 तमन्तरेण तेषामसम्भवात्; इत्यप्यसाम्प्रतम्; यतो देवदत्ता-
 ङ्गनाथङ्गादिकार्यस्य कारणत्वेनाभिप्रेता ज्ञानदर्शनादयो देवदत्ता-
 त्मगुणाः, धर्माधर्मौ वा? न तावज्ज्ञानदर्शनसुखादयः स्वसंवेदन-
 स्वभावास्तज्जन्मनि व्याप्रियमाणाः प्रतीयन्ते । वीर्यं तु शक्तिः,
 २० सापि तद्देह एवानुमीयते, तत्रैव तर्ल्लिङ्गभूतक्रियायाः प्रतीतेः ।
 तज्ज्ञानादेस्तद्देह एव तत्कार्यकारणविमुखस्याध्यक्षादिनां प्रतीतेः
 तद्वाधितकर्मनिर्देशानन्तरप्रयुक्तत्वेन कालात्ययापदिष्टः 'कार्यत्वे
 सति तदुपकारकत्वात्' इति हेतुः ।

अथ धर्माधर्मौ; तदङ्गादिकार्यं तन्निमित्तंमस्माभिरपीष्यते एव ।
 २५ तदात्मगुणत्वं तु तयोरसिद्धम्; तथाहि-न धर्माधर्मौ आत्मगुणौ
 अचेतनत्वाच्छब्दादिवत् । न सुखादिना व्यभिचारः; अत्र हेतो-
 रवर्चनात्, तद्विरुद्धेन स्वसंवेदनलक्षणचैतन्येनास्याऽव्याप्तत्वा-
 साधनात् । नाप्यसिद्धता; अचेतनौ तौ स्वग्रहणविधुरत्वात्पटा-
 दिवत् । न च बुद्ध्यास्य व्यभिचारः; अस्याः स्वग्रहणात्मकत्व-
 ३० प्रसाधनात् । प्रसाधितं च पौद्गलिकत्वं कर्मणां सर्वज्ञसिद्धि-

१ हेतोर्विशेष्यं निरसति । २ न तु परममहापरिमाणभवान्तरपरिमाणं वा सिध्येत् ।

३ तथाविषयाध्येव व्याप्तस्य हेतोर्दृष्टान्ते सत्त्वं नास्तीति भावः । ४ मद्देशेणाने-
 कान्तपरिहारार्थमेतत् । ५ व्याप्तादिना व्यभिचारपरिहारार्थं तदुपकारकेति । ६ लिङ्ग-
 शापकम् । ७ भारवाहादिकायाः । ८ देवदत्ताङ्गनाथङ्गादि । ९ नीर्यानुमान ।

१० पक्ष । ११ वसः । १२ धर्माधर्मरूपाणाम् ।

प्रस्तावे तदलमतिप्रसङ्गेन । तदेवं धर्माधर्मयोस्तदात्मगुणत्व-
निषेधात् तन्निषेधानुमानवाधितमेतत्-‘देवदत्ताङ्गनाद्यङ्गं देवदत्त-
गुणपूर्वकम्’ इति ।

अस्तु वा तयोर्गुणत्वम्; तथापि न तदङ्गनाङ्गादिप्रादुर्भावदेशे
तत्सङ्गावसिद्धिः । न खलु सर्वं कारणं कार्यदेशे सदेव तज्जन्मनि ५
व्याप्रियते, अङ्गनतिलकमन्त्राऽयस्कान्तावेराकृष्यमाणाङ्गनादि-
देशेऽसतोप्याकर्षणादिकार्यकर्तृत्वोपलम्भात् । ‘कार्यत्वे सति’
इति च विशेषणमनर्थकम्; यदि हि तद्गुणपूर्वकत्वाभावेऽपि तदुप-
कारकत्वं ईदृं स्यात् तदा ‘कार्यत्वे सति’ इति विशेषणं युज्येत,
‘सति सम्भवे व्यभिचारे च विशेषणमुपादीयमानमर्थवद्भवति’ १०
इति न्यायात् । कालेश्वरादौ ईदृमिति चेत्; तर्हि कालेश्वरादिक-
मतद्गुणपूर्वकमपि यदि तदुपकारकम् कार्यमपि किञ्चिदन्यपूर्वक-
मपि तदुपकारकं भविष्यतीति सन्दिग्धविपक्षव्यावृत्तिकत्वादनै-
कान्तिको हेतुः, कश्चित्सर्वज्ञत्वाभावे साध्ये वागादिवत् । न च
नित्यैकत्वभावात्कालेश्वरादेः कस्यचिदुपकारः सम्भवतीत्युक्तम् । १५

न च(ननु च) नकुलशरीरप्रध्वंसभावोऽहेरुपकारकोऽस्ति तस्मि-
न्सति सुखावासभ्रमणादिभावादतः सोऽपि तद्गुणपूर्वकः स्यात्,
तथा च कार्यत्वासम्भवेन सविशेषणस्य हेतोरवर्त्तमानाङ्गाणा-
सिद्धौ हेतुः । प्रत्युक्तं चाभावस्थानन्तरमेव कार्यत्वम् । अथाऽत-
द्गुणपूर्वकः; अन्येदप्यतद्गुणपूर्वकमपि तदुपकारकं किन्न स्यात् ? २०

साध्यविकलं चेदं निदर्शनं प्रासादिवदिति । तत्र ह्यात्मनः को
गुणो धर्मादिः, प्रयत्नो वा स्यात् ? धर्मादिश्चेत्; साध्यवत्प्रसङ्गः ।
प्रयत्नश्चेत्; कोऽयं प्रयत्नो नाम ? आत्मनः तदवयवानां वा हस्ता-
द्यवयवप्रविष्टानां परिस्पन्दः; स तर्हि चलनलक्षणा क्रिया, कथं
गुणः ? अन्यथा गमनादेरपि गुणत्वानुषङ्गात्क्रियावात्तोच्छेदः । २५
तथा चायुक्तम्-क्रियावत्त्वं द्रव्यलक्षणम् ।

यदप्युक्तम्-‘अदृष्टं स्वीश्रयसंयुक्ते आश्रयान्तरे कर्मारभते

१ तदश्वाचेतनत्वं कर्मणाम् । २ कर्मणा पौद्गलिकत्वसमर्थनस्य । ३ आदिना
लोहादिदेशे । ४ हेतोर्विपक्षे वृत्तिनिवृत्त्यर्थं हेतौ विशेषणं योजयन्त्याचार्या इति
वचनात् । ५ विपक्षे । ६ कुनचित्प्रदर्शने । ७ विशेष्यस्य । ८ हेतोः । ९ अकार्य-
रूपे । १० अकार्यत्वे सति तदुपकारकत्वम् । ११ तस्य=देवदत्तादेः । १२ अभावस्य
कार्यत्वासम्भवेन । १३ अणुपरिमाणानविकरणत्वस्य प्रसङ्गपक्षे । १४ देवदत्ताङ्गना-
वृत्तमपि । १५ साध्यमसिद्धं यथा तथा धर्मादिगुणत्वमप्यसिद्धम् । १६ स्वामयः=
आत्मा । १७ दीपान्तरवात्पिपदायै ।

एकद्रव्यत्वे सति क्रियाहेतुगुणत्वात्प्रयत्नवत् । न चास्य क्रिया-
हेतुत्वमसिद्धम् ; तथाहि—अग्नेरूर्ध्वज्वलनं वायोस्तिर्यक्पवणमणु-
मनसोश्चाद्यं कर्म देवदत्तविशेषगुणकारितं कार्यत्वे सति तदुप-
कारकत्वात् पाण्यादिपरिस्पन्दवत् । नाप्येकद्रव्यत्वम् ; तथाहि—
५ एकद्रव्यमदृष्टं विशेषगुणत्वाच्छब्दवत् । 'एकद्रव्यगुणत्वात्' इत्यु-
च्यमाने रूपादिभिव्यभिचारः, तत्रिवृत्त्यर्थं 'क्रियाहेतुगुणत्वात्'
इति विशेषणम् । 'क्रियाहेतुगुणत्वात्' इत्युच्यमाने हस्तमुसल-
संयोगेन स्वाश्रयासंयुक्तस्तम्भादिक्रियाहेतुनानेकान्तः, तत्रिवृत्त्य-
र्थम् 'एकद्रव्यत्वे सति' इति । 'एकद्रव्यत्वे सति क्रियाहेतुत्वात्'
१० इत्युच्यमाने स्वाश्रयासंयुक्तलोहादिक्रियाहेतुनाऽयस्कान्तेर्नाने-
कान्तः, तत्परिहारार्थं 'गुणत्वात्' इत्युक्तम् ।

तदेतदप्यविचारितरमणीयम् ; अदृष्टस्य गुणत्वप्रतिषेधात्,
अतो विशेष्यासिद्धो हेतुः । विशेषणासिद्धश्च ; एकद्रव्यत्वात्प्र-
सिद्धेः । तद्धि किमेकस्मिन्द्रव्ये संयुक्तत्वात्, समवायेन वर्त्तमा-
१५ नात्, अन्यतो वा स्यात् ? न तावत्संयुक्तत्वात् ; संयोगस्य गुणत्वेन
द्रव्याश्रयत्वात्, अदृष्टस्य चाद्रव्यत्वात् । अन्यथा गुणवत्वेनास्य
द्रव्यत्वानुपपन्नात् 'क्रियाहेतुगुणत्वात्' इत्येतद्विघटते । समवायेन
वर्त्तनं च समवाये सिद्धे सिद्धेत्, स चासिद्धः, अग्रे निषेधात् ।
तृतीयपक्षस्त्वनभ्युपगमादेव न युक्तः ।

२० क्रियाहेतुत्वं चास्याऽनुपपन्नम् । तथा हि—देवदत्तशरीरसंयुक्ता-
त्मप्रदेशे वर्त्तमानमदृष्टं द्वीपान्तरवर्त्तिषु मणिमुक्ताफलप्रवालादिषु
देवदत्तं प्रत्युपसर्पणवत्सु क्रियाहेतुः, उत द्वीपान्तरवर्त्तिद्रव्यसं-
युक्तात्मप्रदेशे, किं वा सर्वत्र ? तत्राद्यपक्षस्यानभ्युपगम एव
श्रयान्, अतिव्यवहितत्वेन द्वीपान्तरवर्त्तिद्रव्यैस्तस्यानभिसम्बन्धेन
२५ तत्र क्रियाहेतुत्वायोगात् । ननु स्वाश्रयसंयोगसम्बन्धसंभवात्ते-
र्पौमनमिर्लम्बन्धोऽसिद्धः, अमुमेव ह्यात्मानमाश्रित्यादृष्टं वर्त्तते,
तेन संयुक्तानि सर्वाण्यव्याकृष्यमाणद्रव्याणि ; इत्यप्युक्तम् ; तस्य

१ एकद्रव्यमात्मा, यतः । २ यतः । ३ आत्ममनसोः सर्वथा भेदात् । ४ अणु-
मनसोः शरीरोत्पत्तिदेशं प्रति गमनक्रिया । ५ अस्तिक्रमिति संबन्धः । ६ पुद्गल-
लक्षणेकद्रव्यं रूपं यतः । ७ क्रिया—इहनलक्षणा । ८ हस्तमुसलद्रव्यद्वयसङ्घावात् ।
उल्लङ्घले धान्यादिके खण्ड्यमाने सति दूरतोऽसंयुक्तस्तम्भादिः पततीति भावः ।
९ स्वाश्रयो=भूम्यादि । १० क्रिया=आकर्षणम् । ११ भूम्यादौ स्थितोऽयस्कान्त
कर्षस्थितयसंयुक्तं लोहादिकमाकर्षतीति भावः । १२ परस्य तव । १३ तस्यादृष्ट-
स्वाश्रय आत्मा तेन संयोगः । १४ अदृष्टस्य । १५ द्रव्याणां । १६ अदृष्टेन
सह । १७ कथम् ? तथा हि ।

सर्वत्राविशेषेण सर्वस्याकर्षणानुपपत्तात् । अथ यद्वहनेन यज्जन्यते तद्वहनेन तदेवाकृष्यते न सर्वम् ; तर्हि देवदत्तशरीरारम्भकारणां परमात्मानां नित्यत्वेन तद्वहद्यजन्यत्वात् कथं तद्वहनेनाकर्षणम् ? तथाप्याकर्षणेऽतिप्रसङ्गः । तत्राद्यः पक्षो युक्तः ।

नापि द्वितीयः ; तथाहि-यथा वायुः स्वयं देवदत्तं प्रत्युपसर्पण-५
वान्त्येषां गुणादीनां तं प्रत्युपसर्पणहेतुस्तथाऽदृष्टमपि तं प्रत्युप-
सर्पत्स्वयमन्त्येषां तं प्रत्युपसर्पतां हेतुः, द्वीपान्तरवर्षिद्रव्यसंयु-
क्तात्मप्रदेशस्थमेव वा ? प्रथमपक्षे स्वयमेवादृष्टं तं प्रत्युपसर्पति,
अदृष्टान्तराद्वा ? स्वयमेवास्त्य तं प्रत्युपसर्पणे द्वीपान्तरवर्षिद्रव्या-
णामपि सत्यैव तत् इत्यदृष्टपरिकल्पनमनर्थकम् । 'यदेवदत्तं प्रत्यु-१०
पसर्पति तदेवदत्तगुणाकृतं तं प्रत्युपसर्पणात्' इति हेतुश्चानैकान-
र्तिकः स्यात् । वायुवच्चादृष्टस्य सक्रियत्वम् गुणत्वं चावेत । शब्द-
वच्चापरापरस्योत्पत्तौ अपरमदृष्टं निमित्तकारणं बाध्यम्, तत्राप्य-
परमित्सनवस्था । अन्यथा शब्देऽप्यदृष्टस्य निमित्तत्वकल्पना न
स्यात् । अदृष्टान्तरात्तस्य तं प्रत्युपसर्पणे तदप्यदृष्टान्तरं तं प्रत्युप-१५
सर्पत्यदृष्टान्तरात्तदपि तदन्तरादिति तदवस्थमनवस्थानम् ।

अथ द्वीपान्तरवर्षिद्रव्यसंयुक्तात्मप्रदेशस्थमेव तत्तेषां तं प्रत्यु-
पसर्पणहेतुः ; न ; अन्यत्र प्रयत्नादावात्मगुणे तथानभ्युपगमात् । न
कालु प्रयत्नो आसादिसंयुक्तात्मप्रदेशस्थ एव हस्तादिसञ्चलनहेतु-
प्रासादिकं देवदत्तसुखं प्रापयति, अन्तरालप्रयत्नवैफल्यप्रसङ्गात् । २०

ननु प्रयत्नस्य विचित्रतोपलभ्यते, कश्चिद्वि प्रयत्नः स्वयम-
परापरदेशवान्त्यैत्र कियाहेतुर्यथानन्तरोदितः । अन्यश्चान्यथा
यथा शरासनाव्यासंपदसंयुक्तात्मप्रदेशस्थ एव शरीरा(शरा)
दीनां लक्ष्यप्रदेशप्राप्तिक्रियाहेतुरिति । सेयं चित्रता एकद्रव्याणां
क्रियाहेतुगुणानां स्वाभ्यसंयुक्तासंयुक्तद्रव्यक्रियाहेतुत्वेन किन्ने-२५
व्यते विचित्रशक्तित्वाद्भावानाम् ? दृश्यते हि आमकास्यस्याय-
स्कान्तस्य स्पर्शो गुण एकद्रव्यः स्वाभ्यसंयुक्तलोहद्रव्यक्रियाहेतुः,
आकर्षकास्यस्य तु स्वाभ्यसंयुक्तलोहद्रव्यक्रियाहेतुरिति ।

१ अनाकृष्यमाणेषामि । २ संयोगस । ३ सर्वस्याप्याकर्षणप्रसङ्गः । ४ स्वयमुप-
सर्पतादृष्टेन । ५ शब्दवदपरापरादृष्टसोत्पत्तेः कथं सक्रियत्वमिलासाद्भावमाह ।
६ 'इति वैप' इत्युपरिद्वेषोक्तम् । ७ हस्तादिगतोत्पदेशसः । ८ येन प्रयत्नेन
आसो गुणदे स प्रथमः प्रयत्नः, अन्तरालप्रयत्नस्तु येन प्रासादिकमूर्धं कृत्वा सुखं
प्राप्ति नीयते स इति । ९ यः प्रयत्नो निर्दिष्टं निर्दिष्टं प्रवेसं युक्तातीत्यर्थः । १० आसात् ।
११ शरासनस्य धनुषोऽप्यासः शक्तिस्तस्य पदं सानं हस्तकर्म तत्र संयुक्तत्वात्तानाम-
प्रदेशस्य तत्र शिथीति विपरिवाक्यम् । १२ अदृष्टद्रव्यगणनाम् ।

अथात्र द्रव्यं क्रियाहेतुर्न स्पर्शादिगुणः; कुत एतत् ? द्रव्यरहितस्यास्य तद्धेतुत्वादर्शनाच्चेत्; तर्हि वेगस्य क्रियाहेतुत्वं क्रियायाश्च संयोगहेतुत्वं संयोगस्य च द्रव्यहेतुत्वं न स्यात्, किन्तु द्रव्यमेवात्रापि तैत्कारणम् । ननु द्रव्यस्य तत्कारणत्वे वेगादिरहितस्यापि ५ तत्स्यात्; तर्हि स्पर्शस्य तदकारणत्वे तद्गहितस्यैवायस्कात्तादेस्तद्धेतुत्वं किन्न स्यात् ? तथाविधस्यास्यादर्शनाच्चेति चेत्; तर्हि लोहद्रव्यक्रियोत्पत्ताबुभयं दृश्यते उभयं कारणमस्तु विशेषाभावात् । तथाच 'एकद्रव्यत्वे सति क्रियाहेतुगुणत्वात्' इत्यस्यानेकांतः ।

सर्वत्र चादृष्टस्य वृत्तौ सर्वद्रव्यक्रियाहेतुत्वं स्यात् । 'यददृष्टं १० यद्रव्यमुत्पादयति तददृष्टं तत्रैव क्रियां करोति' इत्यत्रापि शरीरारम्भकाणुषु क्रिया न स्यादित्युक्तम् । अदृष्टस्य चाश्रय आत्मा, स च हर्षविषादादिविचर्तात्मको ह्रीपान्तरवर्तिद्रव्यैर्वियुक्तमेवात्मानं स्वसंवेदनप्रत्यक्षतः प्रतिपद्यते इति प्रत्यक्षवाधितकर्मनिर्देशानन्तरप्रयुक्तत्वेन कालात्ययापदिष्टो हेतुः । तद्वियुक्तत्वेनाऽतस्तत्प्रती- १५ तावप्यात्मनस्तद्रव्यैः संयोगाभ्युपगमे पटादीनां मेवादिभित्तेषां वा पटादिभिः संयोगः किन्नेष्यते यतः साङ्ख्यदर्शनं न स्यात् ? प्रमाणवाधनमुभयत्र समानम् ।

किञ्च, धर्माधर्मयोर्द्रव्यान्तरसंयोगस्य चाल्मैक आश्रयः, स च भवन्मते निरंशः । तथा च धर्माधर्माभ्यां सर्वात्मनास्याल्लिङ्गितत- २० तुत्वाच्च तत्संयोगस्य तत्रावकाशस्तेन वा न तयोरिति । अथ धर्माधर्माल्लिङ्गिततत्स्वरूपपरिहारेण तत्संयोगस्तत्स्वरूपान्तरे वर्त्तते; तर्हि घटादिवदात्मनः सावयवत्वं स्वारम्भकावयवारभ्यत्वमनित्यत्वं च स्यात् ।

एतेनैतन्निरस्तम्- 'देवदत्तं प्रत्युपसर्पन्तः पश्वादयो देवदत्त- २५ गुणाकृष्टास्तं प्रत्युपसर्पणवत्त्वाद्भासादिवत्' इति । यथैव हि तद्विशेषगुणेन प्रयत्नाख्येन समाकृष्टास्तं प्रत्युपसर्पन्तः समुपलभ्यन्ते आसादयः, तथा नयनास्रनादिना द्रव्यविशेषेणाप्याकृष्टाः स्यादयस्तं प्रत्युपसर्पन्तः समुपलभ्यन्ते एव, अतः 'किं प्रयत्नसंघर्षमणा

१ अवयवाभितस । २ अवयवेष्वेव । ३ अवयवलक्षणतन्त्राभितस संयोगस्य । ४ अवयविलक्षणपटस । ५ अवयविद्रव्यम् । ६ क्रियासंयोगद्रव्येष्वेव । ७ तस्य- क्रियायाः संयोगस्य द्रव्यस्य च । ८ स्पर्शादिरस्कान्तौ । ९ स्पष्टेन । १० 'किं वा सर्वत्र' इति सूचीयो विकल्पोऽयम् । ११ पूर्वम् । १२ सर्वं सर्वत्र निघते इति वचनात् । १३ असदुक्ते भवदुक्ते च । १४ द्रव्यस्यापि क्रियाहेतुत्वसमर्पणपरेण ग्रन्थेन एकद्रव्यत्वे सति क्रियाहेतुगुणत्वानुमाननिराकरणेन वा । १५ प्रयत्नसदृशेनेत्यर्थः ।

केनचिदाकृष्टाः पश्वादयः किं वाञ्जनादिसधर्मणा' इति सन्देहः । शक्यं हि परेणाप्येवं वक्तुम्-विवादापेक्षाः पश्वादयोऽञ्जनादिसधर्मणा समारुष्टास्तं प्रत्युपसर्पणवत्त्वात् कथादिवत् । अथ तदभावेपि प्रयत्नादपि तद्दृष्टेरनेकान्तः; तर्हि प्रयत्नसधर्मणो गुणस्याभावेप्यञ्जनादेरपि तद्दृष्टेर्मवदीयहेतोरप्यनैकान्तिकत्वं स्यात् । अत्रा-५ नुमीयमानस्य प्रयत्नसधर्मणो हेतुत्वादव्यभिचारे अन्यत्राप्यञ्जनादिसधर्मणोऽनुमीयमानस्य हेतुत्वादव्यभिचारः स्यात् । तत्र प्रयत्नस्यैव सामर्थ्यादस्य वैफल्ये अत्राप्यञ्जनादेरेव सामर्थ्यात्तद्वैफल्यं किं न स्यात् ? अथाञ्जनादेरेव तद्वेतुत्वे सर्वस्य तद्वतः कथाद्याकर्षणं स्यात्, न चाञ्जनादौ सत्यप्यविशिष्टे तद्वतः सर्वान्प्रति १० कथाद्याकर्षणम्, ततोऽवसीयते तदविशेषेपि यद्वैकल्यात्तत्र स्यात्तदपि तत्कारणं नाञ्जनादिमात्रम्; इत्यप्यपेशलम्; प्रयत्नकारणेपि समानत्वात् । न खलु सर्वे प्रयत्नवन्तं प्रति प्रासादयः समुपसर्पन्ति तदपहारादिद्रव्यात् । ततोऽत्राप्यन्यत्कारणमनुमीयताम्, अन्यथा न प्रकृतेःप्यविशेषात् । १५

अञ्जनादेश्च कथाद्याकर्षणं प्रत्यकारणत्वे घटादिवत्तदर्थिनां तदुपादानं न स्यात् । उपादाने वा सिकतासमुद्गात्तैलवन्न कदाचित्तत्स्तत्स्यात् । न च दृष्टसामर्थ्यस्याञ्जनादेः कारणत्वपरिहारेणात्रान्यकारणत्वकल्पने भवेतोऽनैवस्यैतो मुक्तिः स्यात् । अथाञ्जनादिकमदृष्टसहकारि तत्कारणं न कैवल्यम्; हन्तैव सिद्धमदृष्ट-२० वदञ्जनादेरपि तत्कारणत्वम् । ततः सन्देह एव-किं प्रासादिवत्प्रयत्नसधर्मणाकृष्टाः पश्वादयः किं वा कथादिवदञ्जनादिसधर्मणा तत्संयुक्तेन द्रव्येण' इति । परिस्पन्दमानात्मप्रदेशव्यतिरेकेण प्रासाद्याकर्षणहेतोः प्रयत्नस्यापि तद्विशेषगुणस्य परं प्रत्यसिद्धेः साध्यविकलता दृष्टान्तस्य । २५

यच्चोक्तम्-दिवदत्तं प्रत्युपसर्पन्तः' इति; तत्र देवदत्तशब्द-वाच्यः कौथं-शरीरम्, आत्मा, तत्संयोगो वा, आत्मसंयोगविशिष्टं शरीरं वा, शरीरसंयोगविशष्ट आत्मा वा, शरीरसंयुक्त

१ गुणेन । २ अदृष्टलक्षणेन द्रव्यविशेषेण । ३ जैनेनापि । ४ गुणेन समारुष्टा द्रव्येण वेति । ५ अञ्जनादिसधर्मद्रव्यविशेषाभावेपि । ६ तस्य=प्रासाद्याकर्षणस्य । ७ तस्य=कथाद्याकर्षणस्य । ८ उपसर्पणकारणत्वात् । ९ अदृष्टलक्षणद्रव्यविशेषस्य । १० कथाद्याकर्षणे । ११ प्रासाद्याकर्षणे । १२ द्रव्यस्य । १३ कथाद्याकर्षणेपि । १४ प्राणिनः । १५ अदृष्ट । १६ यतः । १७ वैज्ञेयिकस्य । १८ दृष्टसामर्थ्य-सान्ध्यकारणस्य परिहारेणैवादिप्रकारेण । १९ कारणानां पूर्वपूर्वकारणपरिवागेनाऽपरा-परकारणपरिकल्पनात् । २० अदृष्ट । २१ आत्मना । २२ द्रव्यमित्यन् ।

आत्मप्रदेशो वा ? यदि शरीरम्, तर्हि शरीरं प्रत्युपसर्पणाच्छरीरगुणाकृष्टाः पश्वादय इत्यात्मविशेषगुणाकृष्टत्वे साध्ये शरीरगुणाकृष्टत्वसाधनाद्विरुद्धो हेतुः ।

अथात्मा; तस्य समाकृष्यमाणार्थदेशकालाभ्यां संदामिसम्बन्धात् तं प्रति किञ्चिदुपसर्पेत् । न ह्यत्यन्तान्निष्ठकण्ठकामिनी कामुकमुपसर्पति । अन्यदेशो ह्यर्थोऽन्यदेशं प्रत्युपसर्पति, यथा लक्ष्यदेशार्थं प्रति बाणादिः । अन्यकालं वा प्रत्यन्यकालः, यथाह्वरं प्रत्युपसर्पति शक्तिपरिणामलाभेन बीजादिः । न चैतदुभयं नित्यव्यापित्वाभ्यामात्मनि सर्वत्र सर्वदा सन्निहिते सम्भवति, अतो १० 'देवदत्तं प्रत्युपसर्पन्तः' इति धर्मविशेषणं 'देवदत्तगुणाकृष्टाः' इति साध्यधर्मः 'तं प्रत्युपसर्पणवत्त्वात्' इति साधनधर्मः परस्य स्वरुचिविरचित एव स्यात् ।

अथ शरीरात्मसंयोगो देवदत्तशब्दवाच्यः; न; अस्य तच्छब्दवाच्यत्वे तं प्रति चैषामुपसर्पणे 'तद्गुणाकृष्टास्ते' इत्यायातम् । न १५ च गुणेषु गुणाः सन्ति, निर्गुणत्वाच्चेषाम् ।

'आत्मसंयोगविशिष्टं शरीरं तच्छब्दवाच्यम्' इत्यत्रापि पूर्ववद्विरुद्धत्वं द्रष्टव्यम् ।

'शरीरसंयोगविशिष्ट आत्मा तच्छब्दवाच्यः' इत्यत्रापि प्राकन एव दोषः नित्यव्यापित्वेनास्य सर्वत्र सर्वदा सन्निधाननिवारणात् २० नात् । न खलु घटसंयुक्तमाकाशं मेवादौ न सन्निहितम् ।

अथ शरीरसंयुक्त आत्मप्रदेशस्तच्छब्देनोच्यते; स कल्पनिकः, पारमार्थिको वा ? कल्पनिकत्वे कल्पनिकात्मप्रदेशगुणाकृष्टाः पश्वादयस्तथाभूतात्मप्रदेशं प्रत्युपसर्पणवत्त्वादिति तद्गुणानामपि कल्पनिकत्वं साधयेत् । तथा च सौगतस्येव तद्गुणकृतः २५ प्रेयभावोपि न पारमार्थिकः स्यात् । न हि कल्पितस्य पावकस्य रूपादयस्तत्कार्यं वा दाहादिकं पारमार्थिकं दृष्टम् ।

पारमार्थिकाश्चेदात्मप्रदेशाः; ते ततोऽभिज्ञाः, भिज्ञा वा ? यद्यभिज्ञाः; तदात्मैव ते, इति नोक्तदोषपरिहारः । भिज्ञाश्चेत्; तद्विशेषगुणाकृष्टाः पश्वादय इत्येतत्तेषामेवात्मत्वं प्रसाधयतीत्यन्यात्म- ३० कल्पनानर्थक्यम् । कल्पने वा सावयवत्वेन कार्यत्वमनित्यत्वं चास्य स्यादित्युक्तम् ।

१ नित्यसर्वगतत्वादात्मनः । २ देशकालकृतोपसर्पणम् । ३ वैश्वेनिकस्य । ४ इति चेदिति योज्यम् । ५ पश्वादीनाम् । ६ अभिर्माणवक इत्यादौ । ७ आत्मनः समाकृष्यमाणार्थदेशकालाभ्यामित्यादिना । ८ तस्य=आत्मनः । ९ आत्मप्रदेशानाम् । १० घटवत् ।

यथान्यदुक्तम्—‘सर्वगत आत्मा सर्वत्रोपलभ्यमानगुणत्वादा-
काशवत्’ इति; तत्र किं स्वशरीर एव सर्वत्रोपलभ्यमानगुणत्वं
हेतुः, उत स्वशरीरवत्परशरीरेऽन्यत्र च? तत्र प्रथमपक्षे विरुद्धो
हेतुः, तत्रैव ततस्तस्य सर्वगतत्वसिद्धेः। द्वितीयपक्षे त्वसिद्धः,
तथोपलम्भाभावात्। न खलु बुद्ध्यादयस्तद्गुणाः सर्वत्रोपलभ्यन्ते, ५
अन्यथा प्रतिप्राणि सर्वज्ञत्वादिप्रसङ्गः।

अथ मन्याखेटवत्खेटान्तरे मनुष्यजन्मवज्जन्मान्तरे चोपलभ्य-
मानगुणत्वं विवक्षितम्; तर्हि युगपत्, क्रमेण वा? युगपच्चेत्,
असिद्धो हेतुः। क्रमेण चेत्; सर्वे सर्वगताः स्युः, घटादीनामपि
तथा सर्वत्रोपलभ्यमानगुणत्वसम्भवात्। तेषां देशान्तरगमना- १०
त्सम्भवे आत्मनोपि ततस्तत्सम्भवोस्तु तद्वत्तस्यापि सक्रिय-
त्वात्। प्रत्यक्षेण हि सर्वां देशादेशान्तरमायातमात्मानं प्रतिपद्यते,
तथा च वदत्यहमद्य योजनमेकमागतः। मनः शरीरं वागतमिति
चेत्; किं पुनस्तद्दृष्टमत्ययवेद्यम्? तथा चेत्; चार्वाकमतानुषङ्गः।

ननु चास्य सक्रियत्वे लोष्टादिवन्मूर्त्तिभिः सम्बन्धैः स्यात्। १५
तत्र कैयं मूर्त्तिर्नाम-असर्वगतद्रव्यपरिमाणम्, रूपादिमत्त्वं वा
स्यात्? तत्राद्यपक्षो न दोषावहः; अभीष्टत्वात्। न हीष्टमेव दोषाय
जायते। रूपादिमती मूर्त्तिः स्यादिति चेत्; न; व्योस्यभावात्। रूपा-
दिमन्मूर्त्तिमानात्मा सक्रियत्वाद्वाणादिवत्; इत्यप्यसुन्दरम्; मन-
साऽनैकान्तिकत्वात्। न चास्य पक्षीकरणम्, ‘रूपादिविशेषगुणा- २०
नधिकरणं सन्मनोरथं प्रकाशयति शरीरादर्थान्तरत्वे सति सर्वत्र
ज्ञानकारणत्वादात्मवत्’ इत्यनुमानविरोधानुषङ्गात्।

ननु सक्रियत्वे सत्यात्मनोऽनित्यत्वं स्याद्वदादिवत्; इत्यपि
वार्त्तम्; परमाणुभिर्मनसा चानेकान्तात्।

किञ्च, अस्यातः कथञ्चिदनित्यत्वं साध्येत, सर्वथा वा? कथ- २५
ञ्चिच्चैत्; सिद्धसाधनम्। सर्वथा चानित्यत्वस्य घटादावप्यसिद्ध-
त्वात्साध्यविकलता दृष्टान्तस्य।

१ अन्तराले। २ परचरीरादौ। ३ आदिना दुःखित्वादिप्रदः। ४ द्वितीयपक्षे
दूषणान्तररूपणार्थं परमाद्यङ्गाह। ५ अयं शब्दो ग्रामभेदे। ६ तथा प्रतीतेर-
भावात्। ७ तत आत्मना मूर्त्तिमत्ता भाव्यमिति भावः। ८ शरीरमसर्वगतद्रव्यमत्र।
९ यद्यत्सक्रियं तच्छ्रूपादिमन्मूर्त्तिमदिति। १० मनसः सक्रियत्वेपि रूपादिमन्मूर्त्ति-
मत्ताभावात्। ११ एवं निरूपणे घटेन व्यभिचारः। १२ इष्टानिष्ठार्थेषु। १३ ज्ञान-
कारणत्वादित्युभयमाने चक्षुषा व्यभिचारस्त्रिदृश्यर्थं सर्वत्रेति विशेषणम्, तस्मात्
शरीरेण व्यभिचारपरिहारार्थं शरीरादित्यादि। १४ कारणमत्र सहकारि।

किञ्च, आत्मनो निष्क्रियत्वे संसाराभावो भवेत् । संसारो हि शरीरस्य, मनसः, आत्मनो वा स्यात् ? न तावच्छरीरस्य, मनुष्य-
लोके मस्मीभूतस्यामरपुराऽगमनात् ।

नापि मनसः, निष्क्रियस्यास्यापि तद्विरहात् । सक्रियत्वेपि
५ तत्क्रियायास्ततोऽभेदे तद्वचदनित्यत्वप्रसङ्गात्तस्य क्वचित्क्षण-
मात्रमवस्थानं स्यात् । भेदे सम्बन्धासिद्धिः, समवायनिषेधात् ।

अचेतनं च तदनिष्टनरकादिपरिहारेणेष्टे स्वर्गादौ कथं प्रवर्त्त-
स्वभावतः, ईश्वरात्, तदात्मनः, अहद्याद्वा ? प्रथमपक्षे दत्तः
सर्वत्र ज्ञानाय जलाञ्जलिः । अथेश्वरप्रेरणात्, न; तन्निषेधात् ।
१० को वायमीश्वरस्याग्रहो यतस्तत्प्रेरयति, न तदात्मानम् ? अस्य
प्रेरणे चेदमनुगृहीतं भवति—

“अज्ञो जन्तुरनीशोयमात्मनः सुखदुःखयोः ।

ईश्वरप्रेरितो गच्छेत्स्वर्गं वा श्वभ्रमेव वा ॥”

[महाभा० वनपर्व० ३०।२८] इति ।

१५ ‘तदात्मप्रेरणात्’ इत्यत्रापि ज्ञातम्, अज्ञातं वा तच्चेन प्रेर्यते ? न
तावदाद्यो विकल्पः, जन्तुमात्रस्य तत्परिज्ञानाभावात् । नापि
द्वितीयः, अज्ञातस्य ज्ञानादिवत्प्रेरणासम्भवात् । ननु स्वप्ने स्वह-
स्तादयोऽज्ञाता एव प्रेर्यन्ते; न; अहितपरिहारेण हिते प्रेरणा(ऽ)-
सम्भवात्, ज्वलज्वलनज्वालाज्जालेपि तत्प्रेरणोपलम्भात् ।

२० ईदृष्टप्रेरणात्, इत्यप्यसारम्; अचेतनस्यापि(स्यास्यापि) तत्प्रे-
रकत्वायोगात् । तत्प्रेरितस्यात्मन एव वरं प्रवृत्तिरस्तु चेतनत्वा-
त्तस्य । इर्ष्यते हि वशीकरणौषधसंयुक्तस्य चेतनस्यानिष्टगृह-
गमनपरिहारेण विशिष्टगृहगमनम् । तन्न मनसोपि संसारः ।

१ पर्यायापेक्षया । २ क्रियामनसोः समवायेन सम्बन्धो भविष्यतीत्युक्ते सत्याह-
चार्यः । ३ परमतेऽचेतनं मनः । ४ मनःसम्बन्धिजीवात् । ५ इष्टानिष्टवस्तु ।
६ ज्ञानाभावेऽप्यचेतनस्य मनस इष्टानिष्टवस्तु प्रवृत्तिनिवृत्तिदर्शनात् । ७ मन एव
प्रेरयति नात्मानमयमेवाग्रह इत्याशङ्क्याह । ८ अग्रे वक्ष्यमाणं भवच्छास्त्रोक्तम् ।
९ भवता स्वीकृतम् । १० मनसः प्रेरणे चेदमनुगृहीतं न भवतीति भावः । ११ तदा-
त्मना । १२ अणुरूपमचेतनमतीन्द्रियं मनस्वस्य । १३ अनैकान्तिकलं भावयति ।
१४ ‘इति चेत्’ इत्युपरितः । १५ त्रयो विकल्पः । १६ मन एव । १७ न मनसः ।
१८ अनिष्टनरकादिपरिहारेणेष्टस्वर्गादौ । १९ चेतनत्वादात्मनः प्रवृत्तिरितिभ्युक्ते
सत्याहान्चार्यः ।

आत्मनस्तु स्यात् यद्येकदेहपरित्यागेन देहान्तरमसौ ब्रजेत्,
तथा च घटादिवत्तस्य सर्वत्रोपलभ्यमानगुणत्वमित्युभयोः सर्व-
गतत्वं न वा कस्यचिद्विशेषात् ।

यथाकाशवदित्युक्तम्; तत्राकाशस्य को गुणः सर्वत्रोपल-
भ्यते-शब्दः, महत्त्वं वा? न तावच्छब्दः; अस्याकाशगुणत्वनिषे-
धात् । नापि महत्त्वम्; अस्यातीन्द्रियत्वेनोपलम्भासम्भवात् ।

एतेन 'बुद्ध्यधिकरणं द्रव्यं विभु नित्यत्वे सत्यस्मदाद्युपलभ्य-
मानगुणाधिष्ठानत्वादाकाशवत्' इत्यपि प्रत्युक्तम्; साधनविकल-
त्वाद्बुद्धान्तस्य । हेतोश्चानैकान्तिकत्वम्, परमाणूनां नित्यत्वे सत्य-
स्मदाद्युपलभ्यमानपाकजगुणाधिष्ठानत्वेऽपि विभुत्वाभावात् । तत्पा-
कजगुणानामस्मदाद्यप्रत्यक्षत्वे हि 'विधादाध्यासितं क्षित्यादिक-
मुपलब्धिमत्कारणं कार्यत्वाद्घटादिवत्' इत्यत्र प्रयोगे र्थातिर्न
स्यात् । अथ 'नित्यत्वे सत्यस्मदादिवाह्येन्द्रियोपलभ्यमानगुणत्वात्'
इत्युच्यते; तर्हि बाह्येन्द्रियोपलभ्यमानत्वस्य बुद्ध्यावसिद्धेर्विशेषणा-
सिद्धो हेतुः ।

१५

नित्यत्वं च सर्वथा, कथञ्चिद्वा विवक्षितम्? सर्वथा चेत्;
पुनरपि विशेषणासिद्धत्वम् । कथञ्चिच्चेत्; घटादिनानेकान्तः,
तस्य कथञ्चिन्नित्यत्वे सत्यस्मदाद्युपलभ्यमानगुणाधिष्ठानत्वेऽपि
विभुत्वाभावात् ।

यदप्युक्तम्-सर्वगत आत्मा द्रव्यत्वे सत्यमूर्त्तत्वादाकाशवत् । २०
'द्रव्यात्' (द्रव्यत्वात्) इत्युच्यमाने हि घटादिना व्यभिचारः,
तत्परिहारार्थम् 'अमूर्त्तत्वात्' इत्युक्तम् । 'अमूर्त्तत्वात्' इत्यु-
च्यमाने च रूपादिगुणेन गमनादिकर्मणा वानेकान्तः, तद्वि-
वृत्त्यर्थं 'द्रव्यत्वे सति' इत्युक्तम् ।

१ घटपक्षे देहान्तरपरित्यागेन देहान्तरमसौ ब्रजेत् । २ लोकत्रये । ३ आत्म-
घटयोः । ४ आत्मनोपीत्यर्थः । ५ समयोगमनसः । ६ अतः साधनविकलो वृद्धान्तः ।
७ सर्वत्रोपलभ्यमानगुणत्वादित्यस्य निराकरणपरेण प्रथमेन । ८ परमाणुभिर्भ्रमिच्चार-
परिहारार्थम् । ९ घटादिना व्यभिचारनिराकरणार्थम् । १० परेणातीक्रियमाणे ।
११ ईश्वरस्य । १२ तत्पाकजगुणानामस्मदाद्यप्रत्यक्षत्वे यद्यत्त्वं तत्तद्दीमहेतुकमिति
मानसप्रत्यक्षेण साक्ष्येन व्याप्तिग्रहणं न स्यादिति भावः । कार्यप्रत्यक्षत्वे कार्य-
कारणयोर्व्याप्त्यसम्भवात् । १३ गुणरूपायाम् । १४ द्रव्यापेक्षया । १५ असर्वगत-
द्रव्यपरिमाणलक्षणमूर्त्तत्वस्य रूपादिव्यभावद्रूपादीनाममूर्त्तत्वम्, रूपादीनां तत्परि-
भाषाभावः कुतः? निर्गुण्य गुणा इत्यभिधानात् ।

तदप्यसमीचीनम्; यतोऽमूर्त्तत्वं मूर्त्तत्वाभावः, तत्र किमिदं मूर्त्तत्वं नाम यत्प्रतिषेधोऽमूर्त्तत्वं स्यात्? रूपादिमत्त्वम्, असर्वगतद्रव्यपरिमाणं वा? प्रथमपक्षे मनसानेकान्तः; तस्य द्रव्यत्वे सत्यमूर्त्तत्वेऽपि सर्वगतत्वाभावात् । द्वितीयपक्षे तु किमसर्वगत-
 ५ द्रव्यं भवेतां प्रसिद्धं यत्परिमाणं मूर्त्तिर्वर्ण्यते? घटादिकमिति चेत्; कुतस्तत्तथा? तथोपलम्भाच्चेत्; किं पुनरसौ भवतः प्रमाणम्? तथा चेत्; तद्वदात्मनोऽपि स एवासर्वगतत्वं प्रसाधयतीति मूर्त्तत्वम्, अतः 'अमूर्त्तत्वात्' इत्यसिद्धो हेतुः । तदसाधने न प्रमाणम्—'लक्षणयुक्ते चाघासंभवे तल्लक्षणमेव दूषितं स्यात्'
 १० [प्रमाणवार्तिकालं०] इति न्यायात् । तथा चातो घटादावप्यसर्वगतत्वमिति दुर्लभम् । शक्यं हि वक्तुम्—'घटादयः सर्वगता द्रव्यत्वे सत्यमूर्त्तत्वादाकाशवत्' इति । पक्षस्य प्रत्यक्षवाधनं हेतोश्चासिद्धिः उभयत्र समाना ।

ननु चात्मनः सर्वगतत्वात्तत्रास्त्यमूर्त्तत्वमसर्वगतद्रव्यपरिमाण-
 १५ सम्बन्धाभावलक्षणं न घटादौ विपर्ययात् । ननु चास्य कुतः सर्वगतत्वं सिद्धम्—साधनान्तरात्, अत एव वा? साधनान्तराच्चेत्; तदेव (तत एव) समीहितसिद्धेः 'द्रव्यत्वे सत्यमूर्त्तत्वात्' इत्यस्य वैयर्थ्यम् । अत एव चेदन्योन्याश्रयः—सिद्धे हि तस्य सर्वगतत्वेऽसर्वगतद्रव्या(व्य)परिमाणसम्बन्धरूपमूर्त्तत्वाभावोऽमूर्त्तत्वं
 २० सिध्यति, अतश्च तत्सर्वगतत्वमिति ।

किञ्च 'अमूर्त्तत्वात्' इति किमयं प्रसज्यप्रतिषेधो मूर्त्तत्वाभावमात्रममूर्त्तत्वम्, पर्युदासो वा मूर्त्तत्वादन्यद्भावान्तरमिति? तत्राद्यविकल्पोऽयुक्तः; तुच्छाभावस्य प्रीकप्रबन्धेन प्रतिषेधात् । सतोऽपि चास्य ग्रहणोपायाभावादज्ञातासिद्धो हेतुः । न हि प्रत्यक्ष-
 २५ स्तद्ग्रहणोपायः; तस्येन्द्रियार्थसन्निकर्षजत्वात्, तुच्छाभावेन सह मनसोऽन्यस्य चेन्द्रियस्य सन्निकर्षाभावात् ।

ननु मन आत्मना सम्बद्धमात्मविशेषणं च तदेवभावः, ततः सम्बद्धविशेषणीभावस्तेन मनस इति । युक्तमिदं यद्यसावात्मनो विशेषणं भवेत् । न चास्यैतदुपपन्नम् । विशेष्ये हि विशिष्टप्रत्यय-

१ वैशेषिकाणाम् । २ असर्वगतत्वेन । ३ उपलम्भः । ४ असर्वगतद्रव्यपरिमाणोपलम्भः प्रमाणस्य लक्षणम् । ५ प्रमाणे । ६ प्रमाणसाधन्यसर्वगतत्वासाधनलक्षणे वाचासम्भवे । ७ तस्य=प्रमाणस्य । ८ आत्मन्यसर्वगतत्वोपलम्भसाधनप्रमाणत्वे च । ९ आत्मनि घटादौ च । १० असर्वगतत्वात् । ११ अमूर्त्तत्वम् । १२ अभावनिराकरणवसरे । १३ तुच्छाभावेन सह मनसः सन्निकर्षं दर्शयति परः । १४ अमूर्त्तत्वाभावः । १५ सम्बन्धः । १६ परेणोक्तं यत् । १७ मूर्त्तत्वाभावलक्षणं विशेषणम् ।

हेतुर्विशेषणं यथा दण्डः पुंरुषे । न च तुच्छाभावस्तत्प्रत्ययहेतु-
र्धत्ते; सकलशक्तिविरहलक्षणत्वादस्य, अन्यथा भाव एव स्यादर्थ-
क्रियाकारित्वलक्षणत्वात् परमार्थसतो लक्षणांतराभावात् ।
सत्तासम्बन्धस्य तल्लक्षणस्य कृतोत्तरत्वात् ।

किञ्च, गृहीतं विशेषणं भवति, “नाऽगृहीतविशेषणा विशेष्ये ५
बुद्धिः” [] इत्यभिधानात् । ग्रहणे चेतरेतराश्रयः ।
तथाहि-आत्मसम्बन्धेनेन्द्रियेणासौ गृहीतः सिद्धः सन्नात्मनो
विशेषणं लिप्यति, तत आत्मसम्बन्धेनेन्द्रियेण ग्रहणमिति । यदि
चात्मा स्वयंसर्वगतद्रव्यपरिमाणसम्बन्धविकलः सिद्धस्तर्हि
तावतैव समीहितार्थसिद्धेः किमपरेण तदभावेनेति कथं विशेष- १०
णम् ? अयं विपरीतः; कथं तदभावो यतो विशेषणम् ?

किञ्च, आत्मतदभावाभ्यां सह विशेषणीभावः सम्बद्धः, अस-
म्बद्धो वा ? सम्बद्धश्चेत्, तर्हि यथात्मनि विशिष्टविक्रानविधाना-
दात्मवृत्तदर्भावो विशेषणम्, तथा विशेषणीभावोपि ‘आत्मा
विशेष्यस्तदभावो विशेषणम्’ इति विशिष्टप्रत्ययजननात् विशेषणं १५
समवायवत्प्रसक्तम्, तथा च तत्राप्यपरेण तत्सम्बन्धेन भवितव्य-
मित्यनवस्था । अथासम्बद्धः; कथं विशेषणविशेष्याभिमतयोः स
भवेत् यतस्तत्र विशिष्टप्रत्ययप्रादुर्भावः सम्बन्धो वा ? विशिष्टप्रत्य-
यहेतुत्वाच्चेत्, ईश्वरादौ प्रसङ्गः । तथापि स ‘तयोः’ इति कल्पने
भावस्याभावः समवायिनोऽस(नोः स)मवायस्तथैव स्यादित्यलं २०
तत्र विशेषणीभावसम्बन्धकल्पनया । तत्र प्रत्यक्षं तद्ग्रहणोपायः ।

नाप्यनुमानम्; परस्य प्रत्यक्षाभावे तदभावात्, तन्मूलत्वा-
त्तस्य । नन्विदमस्ति-आत्माऽमूर्त्त इति बुद्धिभिन्नाभावनिमित्तो,
अभावविशेषणभावविषयबुद्धिर्त्वात्, अघटं भूतलमित्यादिवुद्धि-
वत्; इत्यप्यसारम्, तथाविधामावस्य विशेषणत्वासिद्धिप्रतिपा- २५
दनात् । अभावविचारे चानयोर्हेतुदाहरणयोः प्रतिद्वन्द्वत्वाच्च
साध्यसाधकत्वम् ।

१ दण्डीति विशिष्टप्रत्ययहेतुः । २ शातर्य । ३ मनसा । ४ मूर्त्तत्वाभावः ।
५ असर्वगतद्रव्यं-शरीर्य । ६ असर्वगतद्रव्यपरिमाणसंबन्धरहितः । ७ आत्मा अमूर्त्त
इति । ८ मूर्त्तत्वाभावः । ९ गुणगुणिनोः समवाय इति । १० विशेषणीभावस्य
विशेषणत्वे च । ११ स्वयं संबन्धरूपोपि नैव । १२ ईश्वरकाणकाशादयोपि विशिष्ट-
प्रत्ययोत्पत्तौ निमित्तकारणकालेभामपि विशेषणीभावः सम्बन्धो भवतीति शेषः ।
१३ संबन्धस्य । १४ सम्बन्धाभावेपि । १५ अभावो विशेषणमस्य, स चासौ
भावश्च स विषयो यस्यास्तस्या भाव इति वाक्यम् । १६ द्रव्यत्वे सत्यमूर्त्तत्वादिलेख-
निरासेन । १७ तुच्छरूपस्य ।

पर्युदासपक्षेऽप्यसर्वगतद्रव्यपरिमाणसम्बन्धभावान्मूर्त्तत्वाद्द्रव्य-
दमूर्त्तत्वं सर्वगतद्रव्यपरिमाणेन परममहत्त्वेन सम्बन्धा(न्ध)-
भावः, स च न कुतश्चित्प्रमाणात्प्रसिद्ध इति हेतोरसिद्धिः ।

यच्चान्यदुक्तम्-आत्मा व्यापको मनोन्यत्वे सत्यस्पर्शवद्द्रव्यत्वा-
५ दाकाशवदिति; तदप्येतेनैव प्रत्युक्तम्; स्पर्शवद्द्रव्यप्रतिषेधेऽत्रापि
प्राशुक्ताशेषदोषानुपपन्नात् । सन्दिग्धानैकान्तिकश्चायं हेतुः; तथाहि-
अस्पर्शवद्द्रव्यत्वमाकाशादौ व्यापित्वे सत्युपलब्धं मनसि चाऽव्या-
पित्वे, तदिदानीमात्मन्युपलभ्यमानं किं 'व्यापित्वं प्रसाध्यत्व-
व्यापित्वं वा' इति सन्देहः । ननु मनोद्रव्यत्व(मनोऽन्यत्व)वि-
१० शिष्टस्यास्पर्शवद्द्रव्यत्वस्य मनस्यनुपलम्भात्कथं सन्देहोऽत्रेति
चेत्? अत एव । यदि हि तद्विशिष्टं तत्तत्रोपलभ्येत तदा निश्चि-
तानैकान्तिकत्वमेवास्य स्यान्न तु सन्दिग्धानैकान्तिकत्वमिति ।
तत्रात्मनः कुतश्चित्प्रमाणात्सर्वगतत्वसिद्धिरित्यसर्वगत एवासौ
यथाप्रतीत्यभ्युपगन्तव्यः ।

१५ ननु चात्मनोऽसर्वगतत्वे दिग्देशान्तरवर्तिभिः परमाणुभिर्यु-
गपत्संयोगाभावोऽतश्चाद्यैककर्माभावः, तदभावादन्त्यसंयोगस्य
तन्निमित्तशरीरस्य तेन तत्सम्बन्धस्य चाभावादनुपायसिद्धः
सर्वदात्मनो मोक्षः स्यात्; स्यादेवं यदि 'यद्येन संयुक्तं तं प्रति
तदेवोपसर्पति' इत्ययं नियमः स्यात् । न चास्ति-अयस्कान्तं
२० प्रत्ययसस्तेनाऽसंयुक्तस्याप्युपसर्पणोपलम्भात् ।

यस्य चात्मा सर्वगतः तस्यारब्धकार्यैरन्यैश्च परमाणुभिर्युगप-
त्संयोगात्तथैव तच्छरीरारम्भं प्रत्येकमभिमुखीभूतानां तेषामुप-
सर्पणमिति न जाने कियत्परिमाणं तच्छरीरं स्यात् ।

ननु ये तत्संयोगास्तदऽदृष्टापेक्षास्त एव स्वसंयोगिनां परमाणू-
२५ नामार्थं कैर्म रचर्यन्तीति चेत्; अथ कैथं तददृष्टापेक्षा नैम-
र्थाकार्यसमवायः, उपकारो वा, सहायकर्मजननं वा? तत्राद्यः
पक्षोऽयुक्तः; सर्वपरमाणुसंयोगानां तददृष्टैर्कार्यसमवायसङ्गा-

१ अस्पर्शवद्द्रव्यत्वादित्यत्र नष् पर्युदासः, प्रसज्यो वेत्यादि । २ विषये नापके
प्रमाणं नैदस्ति तदा सन्देहो निवर्त्ततेऽनुपलम्भमात्रेण तु परचेतोऽपि विषयेष्वपि सन्देहो
भवेदेवेति भावः । ३ शरीरारम्भकाणूनां शरीरोत्पत्तिदेशं प्रति गमनमार्थं कर्म ।
४ शरीरनिष्पत्त्यवसानकालमावस्य । ५ शरीरारम्भकाणूनां शरीरोत्पत्तिदेशं प्रति
गमनम् । ६ अत एव महच्छरीरं न स्यात् । ७ परमाणुसंयोगानाम् । ८ एक-
सिद्धात्मलक्षणेऽर्थे समवायोऽदृष्टस्य । ९ तस्मात्पनोऽदृष्टं तेन सहैकमित्यर्थे आत्मलक्षणे
समवायस्य सङ्गात्वात् ।

वात् । उपकारः; इत्यप्ययुक्तम्; अपेक्ष्यादपेक्षकस्यासम्बन्धान्न-
वस्थानुपपत्तेरुपकारस्यैवासम्भवात् । सहाद्यकर्मजननम्; इत्यप्य-
सत्; तयोरन्यतरस्यापि केवलस्य तज्जननसामर्थ्ये परापेक्षा-
योगात् । यदि पुनः स्वहेतोरेवाददृष्टसंयोग्योः सहितयोरेव कार्य-
जननसामर्थ्यमिष्यते; तर्हि तत् पदाददृष्टस्यैव तत्संयोगनिरपेक्षस्य ५
तत्सामर्थ्यमस्तु । दृश्यते हि हस्ताभ्येर्णायस्कान्तादिना स्वाश्रया-
संयुक्तस्य भूभागस्थितस्य लोहादेराकर्षणमित्यलमतिप्रसङ्गं ।

यदप्युक्तम्—सावयवं शरीरं प्रत्यवयवमनुप्रविशंस्तदात्मा
सावयवः स्यात्, तथा च घटादिवत्समीनजातीयावयवारभ्यत्वम्,
समानजातीयत्वं चावयवानामात्मत्वाभिसम्बन्धादित्येकत्रात्म- १०
न्यन्तात्मसिद्धिः, यथा चावयवक्रियातो विभागात्संयोगविना-
शाद्दृढविनाशः तथात्मविनाशोपि स्यात्; इत्यप्यपरीक्षितामिधा-
नम् । सावयवत्वेन मित्रावयवारब्धत्वस्य घटादावप्यसन्देः । न
खलु घटादिः सावयवोपि प्राक्प्रसिद्धसमानजातीयकपालसंयो-
गपूर्वको दृष्टः, सृष्टिर्घटात् प्रथममेव सावयवरूपाध्यात्मनोऽस्य १५
प्रादुर्भावप्रतीतिः । न चैकत्र पटादौ सावयवतन्तुसंयोगपूर्वकत्वो-
पलम्भात्सर्वत्र तैङ्गावो युक्तः, अन्यथा काष्ठे लोहलेख्यत्वोपल-
म्भाद्भजेपि तथाभावः स्यात् । प्रमाणवाचनमुभयत्र समानम् ।

किञ्च, अस्य तथैर्भूतावयवारब्धत्वम्—आदौ, मध्यावस्थायां वा
साध्येत ? न तार्वदादौ; स्तनादौ प्रवृत्त्यभावाजुपपन्नात्, तद्वैत्वमि- २०
लापप्रत्यभिधानस्तरणदर्शनादिरप्राचात् । तैद्वारम्भकावयवानां
प्राक् सतां विषयदर्शनादिसम्भवे तेषामेवाहर्जातवैलायां सत्त्वा-
न्तरणामिव प्रवृत्तिः स्यात् । मध्यावस्थायां तु तत्साधने प्रत्यक्ष-

१ व्यापित्वादात्मनः । २ अपेक्षेणादृष्टेनापेक्षकस्याणुसंयोगस्य किमयाण उपकार-
सात्त्वादमित्रो मित्रो वा स्यात् ? अनेदे सोमि तन्न्यः स्यात् । नेदे संन्यत्सिद्धिः ।
अथापकारमुपकार कृत्वा तत्सम्बन्धीत्यादिपरिकल्पने चानवस्था । अयं संयोगस्योपकार
इति च वदते अन्यथातिप्रसङ्गः । यथा संयोगस्य तथाभ्यस्यापि । तथा चात्मपरमाणु-
संयोगस्य नित्यत्वव्याघातः स्यात् । ३ अदृष्टाणुसंयोगयोर्मध्येऽदृष्टस्य परमाणुसंयोगस्य
वा । ४ अनिशेषतः सर्वत्र तज्जननस्यापि प्रसङ्गात् । ५ आत्मनः । ६ अदृष्टाणु-
संयोगयोः । ७ परेण । ८ तत्तस्याणुसंयोगपरिकल्पनेन किम् । ९ वदतः । १० तत्तस्य
स्वाश्रयासंयुक्तमेव परमाण्वादिकयाकल्प्यते आत्मना । तत्तस्य सर्वगतत्परिकल्पनेचाल-
मात्मनः । ११ आत्मत्वेन । १२ आत्मनः । १३ उपादानकारणात् । १४ आत्मा-
दिषु । १५ सावयवसंयोगपूर्वकत्वम् । १६ वदते आत्मनि च । १७ समानजातीय-
मित्रावयवम् । १८ गर्भावस्थायाम् । १९ संस्कारस्य । २० तस्य आत्मनः ।

विरोधः । अन्त्यावस्थायां चास्यात्यन्तविनाशे स्मरणाद्यभावात्स्त-
नादौ प्रवृत्त्यभाव एव स्यात् । न चैयं विनाशोत्पादप्रक्रिया कचिद्
दृश्यते । न खलु कटकस्य केयूरीभावे कृतस्त्रिङ्गाणेषु क्रिया
विभागः संयोगविनाशो द्रव्यविनाशः पुनस्तदवयवाः केवलास्तद-
५ नन्तरं तेषु कर्मसंयोगक्रमेण केयूरीर्भाव इति, केवलं सुवर्णकार-
का(कारकरा)दिव्यापारे कटकस्य केयूरीभावं पश्यामः । अन्यथा
कल्पने च प्रत्यक्षविरोधः ।

न च सावयवशरीरव्यापित्वे सत्यात्मनस्तच्छेदे छेदप्रसङ्गो
दोषाय; कथञ्चित्तच्छेदस्येष्टत्वात् । शरीरसम्बन्धात्मप्रदेशेभ्यो
१० हि तत्प्रदेशानां छिन्नशरीरप्रदेशोऽवस्थानमात्मनश्छेदः, स चात्रै-
स्त्वेव, अन्यथा शरीरात्पृथग्भूतावयवस्य कस्योपलब्धिर्न स्यात् ।
न च छिन्नभावप्रतिष्ठस्यात्मप्रदेशस्य पृथगात्मत्वानुपपन्नः; तत्रै-
वानुप्रवेशात् । कथमन्यथा छिन्ने हस्तादौ कम्पादितैस्त्रिङ्गोपलम्भा-
भावः स्यात् ?

१५ ननु कथं छिन्नैस्त्रिङ्गयोः संघटनं पश्चात् ? न; एकान्तेन
छेदानभ्युपगमात्, पश्चानालतन्तुवद्विच्छेदस्याभ्युपगमात् ।
तैर्नाभूतादृष्टवशाच्च तदविरुद्धमेव । ततो यद्यथा निर्वाचनोपे-
प्रतिभाति तत्तथैव सद्भवहारमवतरति यथा स्मरन्मकतन्तुषु
प्रतिनियतदेशकालाकारतया प्रतिभासमानः पटः, शरीरे एव
२० प्रतिनियतदेशकालाकारतया निर्वाचनोपे प्रतिभासते चात्मेति ।
न चायमसिद्धो हेतुः; शरीराद्बहिस्तत्प्रतिभासाभावस्य प्रतिपादि-
तत्वात् । उक्तप्रकारेण चानवयवस्य वाद्यकप्रमाणस्य कस्यचिद्-
सम्भवाच्च विशेषणासिद्धत्वमिति । तन्न परेषां यथाभ्युपगत-
स्वभावमात्मद्रव्यमपि घटते ।

२५ नापि मनोद्रव्यम्; तस्य प्रागेव स्वसंवेदनसिद्धिप्रस्तावे निर-
कृतत्वात् । ततः पृथिव्यादेर्द्रव्यस्य यैथोपवर्णितस्वरूपस्य प्रमाण-
तोऽप्रसिद्धेः 'पृथिव्यादीनि द्रव्याणीतरेभ्यो भिद्यन्ते द्रव्यत्वाभि-
सम्बन्धात्' इत्यादिहेतूपन्यासोऽविचारितरमणीयः, तत्स्वरूपा
सिद्धौ हेतोराभ्यासिद्धत्वात् । स्वरूपासिद्धत्वाच्च; द्रव्यत्वाभिस-

१ समानजातीयमिन्नावयवारन्त्यत्वं प्रलक्षणेन न ज्ञायते यतः । २ अग्रे बह्व्यमाणा ।
३ कारणात् । ४ अवयवेषु । ५ क्रिया । ६ केयूरोत्पादः । ७ वयं जैनाः ।
८ अवयवपेक्षया । ९ जैनस्य । १० आत्मनि । ११ आत्मन्येव । १२ तस्य-
आत्मनः । १३ प्रदेशयोः । १४ सङ्घटनकारिकर्मवशात् । १५ शरीरे एव प्रति-
नियतदेशकालाकारतया निर्वाचनोपे प्रतिभासमानत्वादिति । १६ वैशेषिकद्वारा ।

म्बन्धो हि समवायलक्षणो भवताभ्युपगम्यते, न चासौ प्रमाणतः प्रसिद्ध इति । विशेषणासिद्धत्वं च; द्रव्यत्वसामान्यस्य यथाभ्युपगम्यत्वसमावस्यासम्भवात् । तन्न परपरिकल्पितो द्रव्यपदार्थो घटते ।

नापि गुणपदार्थः । स हि चतुर्विंशतिप्रकारः परैरिष्टः । तथाहि—
“रूपरसगन्धस्पर्शाः संख्या परिमाणानि पृथक्त्वं संयोगविभागौ ५
परत्वापरत्वे बुद्ध्यः सुखदुःखे इच्छाद्वेषौ प्रयत्नश्च तु गुणाः”
[वैशे० सू० १।१।६] इति सूत्रसङ्गृहीताः सप्तदश, वैशब्दसमु-
च्चिताः गुरुत्वद्रवत्वज्वलसंस्कारधर्माधर्मशब्दाश्च सप्तेति । तत्र
रूपं चक्षुर्ग्राह्यं पृथिव्युदकज्वलनवृत्तिः । रसो रसनेन्द्रियग्राह्यः
पृथिव्युदकवृत्तिः । गन्धो घ्राणग्राह्यः पृथिवीवृत्तिः । स्पर्शस्त्व- १०
गिन्द्रियग्राह्यः पृथिव्युदकज्वलनपवनवृत्तिः ।

संख्या त्वेकादिव्यवहारहेतुरेकत्वादिर्लक्षणा, एकद्रव्या चाने-
कद्रव्या च । तत्रैकसंख्या एकद्रव्या । अनेकद्रव्या तु द्वित्वादि-
संख्या । सा च प्रत्यक्षत एव सिद्धा, विशेषद्वेषश्च निमित्तान्त-
रापेक्षत्वादानुमानतोपि ।

१५

परिमाणव्यवहारकारणं परिमाणम्, महदणु दीर्घं ह्रस्वमिति
चतुर्विधम् । तत्र महद्विचिं नित्यमनित्यं च । नित्यमाकाशकाल-
दिगात्मसु परममहत्त्वम् । अनित्यं ह्यणुकादिद्रव्येषु । अण्वपि
नित्यानित्यमेवाद्विविधम् । परिमाणमनस्तु परिमाणद्वयलक्षणं
नित्यम् । अनित्यं ह्यणुके एव । बंदरामलकविच्चादिषु तु मह- २०
त्वपि तत्रैकपर्याभावमपेक्ष्य भौकोऽणुव्यवहारः ।

ननु महदीर्घत्वयोरुपणुकादिषु प्रवर्त्तमानयोर्ह्यणुके चाणुत्व-
ह्रस्वत्वयोः को विशेषः ? ‘मैहस्तु दीर्घमानीयतां दीर्घेषु महदानीय-
ताम्’ इति व्यवहारमेदप्रतीतेरस्त्यनयोः परस्परतो मेदः । अणुत्व-
ह्रस्वत्वयोस्तु विशेषो योगिनां तद्दर्शिनां प्रत्यक्ष एव । मैहदादि २५

१ वैशेषिकेय । २ नित्यनिरयत्वेन । ३ च इति कपुस्तके नास्ति । ख, ग,
घपुस्तकेभ्यः संयोजितः । ४ यव । ५ विशेषः=मेदः । ६ एकादिप्रत्यया विशेष[ण]
ग्रहणापेक्षा विशिष्टप्रत्ययत्वाद्दृष्टीत्यादिप्रत्ययवदिति । ७ तत्रैकत्वसंख्या नित्यद्रव्येषु
नित्या कार्यद्रव्येष्वनित्या । द्वित्वादि संख्या तु परास्मिन्ता अपेक्षापुत्रिकान्या सर्वत्रानित्या ।
८ वृत्तौकारमित्यर्थः । ९ नन्वणु द्रव्यणुके एव यदि वर्त्तते तां बंदरामलकादिषु-
परिमाणव्यवहारः कथमित्याशङ्क्यामाह । १० तस्य=अतिशयस्य । ११ उपचरितः ।
१२ परिमाणयोः । १३ वस्तुषु । १४ वस्तु । १५ महदादिपरिमाणस्य रूपादि-
न्योऽपेक्षो भविष्यतीत्युक्ते सत्याह ।

च परिमाणं रूपादिभ्योऽर्थान्तरं तत्प्रत्ययविलक्षणबुद्धिग्राह्यत्वात्सुखादिवत् ।

संयुक्तमपि द्रव्यं यद्दशात् 'अभेदं पृथक्' इत्यपोद्भिद्यते तदपोद्धारव्यवहारकारणं पृथक्त्वं घटादिभ्योऽर्थान्तरं तत्प्रत्ययविलक्षणज्ञानग्राह्यत्वात्सुखादिवत् ।

अप्राप्तिपूर्विका प्राप्तिः संयोगः । प्राप्तिपूर्विका चाप्राप्तिर्विभागः । तौ च द्रव्येषु यथाक्रमं संयुक्तविभक्तप्रत्ययहेतुः ।

'इदं परमिदमपरम्' इति यतोऽभिधानप्रत्ययौ भवतस्तद्यथाक्रमं परत्वमपरत्वं च । बुद्ध्यादयः प्रयत्नान्ताश्च गुणाः सुप्रसिद्धा एव ।

१० शुकत्वं च पृथिव्युदकवृत्ति पतनक्रियानिबन्धनम् । द्रवत्वं तु पृथिव्युदकज्वलनवृत्तिः स्प(स्य)न्दनहेतुः । पृथिव्येनलयोनैमित्तिकम् । अपां सांसिद्धिकम् । जेहस्त्वऽम्भस्येव क्षिप्रप्रत्ययहेतुः ।

संस्कारस्तु त्रिविधो वेगो भावना स्थितस्थापकश्चेति । तत्र वेगाख्यः पृथिव्यतेजोवायुमनस्सु मूर्त्तद्रव्येषु प्रयत्नाभिघातविशेषः १५ षापेक्षात्कर्मणः समुत्पद्यते । नियतदिक्क्रियाप्रतिब(प्रब)न्धहेतुः स्पर्शवद्द्रव्यसंयोगविरोधी च । भावनाख्यः पुनरात्मगुणो ज्ञानजो ज्ञानहेतुश्च, दृष्टानुभूतश्रुतेष्वप्यर्थेषु स्मृतिप्रत्यभिज्ञाकार्योन्नीयमानसद्भावः । मूर्त्तिमद्द्रव्यगुणः स्थितस्थापकः, घनावयवसन्निवेशविशिष्टं समाश्रयं कालान्तरस्थापिनमन्यथाव्यवस्थितमपि प्रयत्नतः २० पूर्ववद्यथावस्थितं स्थापयतीति कृत्वा, दृश्यते च तालपत्रादेः प्रभूततरकालसंवेष्टितस्य प्रसार्यमुक्तस्य पुनस्तथैवावस्थानं संस्कारवशात् । एवं घनुःशास्त्राशृङ्गदन्तादिषु भर्त्सापवर्तितेषु वस्त्रादौ चास्य कार्यं परिस्फुटमुपलभ्यत एव । घर्मादर्थस्तु सुप्रसिद्धा एवेति ।

१ विभागात्प्रयत्नस्य भेदाभावात्प्रयत्नप्रतिपादनं किमर्थमित्युक्ते सत्याह । २ एवम् कथिते । ३ अस्तु विभागात्प्रयत्नस्य भेदस्तथापि घटादिभ्योऽभेदोऽभिव्यतीत्युक्ते चकि । ४ अनित्यत्वैव । ५ अनित्यत्वैव । ६ अनित्यत्वैव । ७ अनित्यता एव । ८ तत्र पार्थिवान्याणुषु नित्यं द्रव्यगुणादिभिनित्यम् । ९ लाक्षाद्योहादिषु । १० सर्पिःसुवर्णयोः । ११ अनित्यमित्यर्थः । १२ नित्यमित्यर्थः । १३ आख्याणुषु नित्यमाप्यद्द्रव्यगुणादिषु त्वनित्यम् । १४ असर्वगतद्रव्यपरिमाणवर्तित्यर्थः । १५ कर्मचारयः । १६ घटादिकेन स्पर्शवता द्रव्येण सह वेगाख्यस्य वाणादेः संयोगे सति वेगाख्यः संस्कारः सर्वं निनदयतीत्यर्थः । १७ आकृष्ट्युक्तेषु । १८ स त्रिविधोऽप्ययं संस्कारो अनित्य एव, यर्माभर्त्सात्मविशेषगुणावनित्यादेव, शब्दस्वाकाशविशेषगुणोऽनित्य एव ।

तदेतत्स्वरूढमान्यं परैषाम्; रूपादिगुणानां यथोपवर्णितस्वरू-
पेणावस्थानासम्भवात् । न खलु रूपं पृथिव्युदकज्वलनवृत्त्येव,
वायोरपि तद्वत्सासम्भवात् । तथाहि-रूपादिमान्वायुः पौद्गलिक-
त्वात् स्पर्शवत्त्वाद्वा पृथिव्यादिवत् । एवं जलानलयोरपि गन्धर-
खादिमत्ता प्रतिपत्तव्या । रूपरसगन्धस्पर्शमन्तो हि पुद्गलास्तत्कथं ५
तद्विकाराणां प्रतिनिर्यमः ? रूपाद्याविर्भावतिरोभावमात्रं तु तत्रा-
विरुद्धम्, जलकनकौदिसंप्रयुक्तानले भासुररूपोष्णस्पर्शयोस्ति-
रोभावाविर्भाववत् ।

संख्यापि संख्येयार्थव्यतिरेकेणोपलब्धिलक्षणप्राप्ता नोपल-
भ्यते इत्यसती खरविषाणवत् । न च विशेषणमसिद्धम्; तस्या १०
इत्यर्थेनेष्टेः । तथा च सूत्रम्-“संख्या परिमाणानि पृथक्त्वं
संयोगविभागौ परत्वापरत्वे कर्म च रूपिसमवायाच्चाक्षुषाणि”
[वेशे० सू० ४।१।११] इति ।

‘एकादिप्रत्यया विशेष[ण]ग्रहणापेक्षा विशिष्टप्रत्ययत्वाद्दण्डी-१५
स्यौदिप्रत्ययवत्’ इत्यनुमानतोपि न संख्यासिद्धिः; यतो यथा
‘एको गुणोपि(णः) बहवो गुणाः’ इत्यादौ संख्यामन्तरेणाप्येकादि-
बुद्धिस्तथा घटादिष्वन्यसहायादिस्वभावेष्वेकादिवुद्धिर्भविष्यती-
त्यलमर्थान्तरभूतयैकादिसंख्यया । न च गुणेषु संख्या सम्भ-
वति; अद्रव्यत्वात्तेषां तस्याश्च गुणत्वेन द्रव्याश्रितत्वात् । न च २०
गुणेषूपचरितमेकत्वादिज्ञानम्, अस्वलहृत्तित्वात् । यदि चाश्रय-
गता संख्येकार्थसमवायाद्गुणेषूपचर्येत; तर्हि ‘एकस्मिन्द्रव्ये रूपा-
द्यो बहवो गुणाः’ इति प्रत्ययोत्पत्तिर्न स्यात्, तदाश्रयद्रव्ये
बहुत्वसंख्याया अभावात् । ‘बद् पदार्थाः’ इत्यादिव्यपदेशे च
किं निमित्तमित्यभिघातव्यम् ? न ह्यत्रैकार्थसमवायिनी संख्या २५
सम्भवति; तथा सह बद्पदार्थानां कैचित्समवायाभावात् । अस्तु
चा संख्या, तथाप्यस्याः कथं गुणत्वसिद्धिः सत्त्वादिवत् पदस्वपि
पदार्थेषु प्रवृत्तेः ?

१ पृथिव्यादीनाम् । २ पृथिव्यामेव गन्ध इत्यादिः । ३ तर्हि सर्वत्र तेषामविर्भावः
कुपो न स्यादित्युक्तं सत्याह । ४ उष्ण । ५ अग्नेरपलं प्रथमं मुगर्णमिलागमत्तः
प्रसिद्धतैमसत्त्वं कनकादीनां ततः क्रथमुक्तं कनकादिसंयुक्तानल इत्यारिकायामाह कनकेपि
पृथिव्यंशोस्तीति । ६ परस । ७ अत्र दण्डपुरूपयोः संयोगो विशेषः । ८ निर्गुणा
[गुणा] इति वचनात् । ९ संख्यारहितेभित्थः । १० अभाविव । ११ भाग्य-
गतद्रव्यसैकत्वात् । १२ कैवल्यद्रव्यसमवेता । १३ इत्यलक्षणोऽर्थः ।

ननु यदि संख्या गुणो न स्यात्तर्हानित्यत्वमसमवाधिकारणत्वं चास्या न स्यात् । अस्ति च तदुभयम् । तथा चोक्तम्—“एकादिव्यवहारहेतुः संख्याः । सा पुनरेकद्रव्या चानेकद्रव्या च । तत्रैकद्रव्यायाः सल्लिहादिपरमाणुरूपादीनामिव नित्यानित्यत्वनिष्पत्तयः ।
 ५ सल्लिहाद्यभ्रादिपरमाणवश्चेति विग्रहः । अनेकद्रव्या तु द्वित्वादिका परार्थान्ता । तस्याः अल्पेकत्वेभ्योऽनेकविषयबुद्धिसहितेभ्यो निष्पत्तिः, अपेक्षाबुद्धिनाशाच्च विनाशाः क्वचिदार्थविनाशादुभयविनाशाश्चेति चार्थः । असमवाधिकारणत्वं च द्वित्वबहुत्वसंख्यायाः इत्यणुकादिपरिमाणं प्रति” [ग्रन्थ० भा० पृ० १११-११३]
 १० इति, एतदपि मनोरथभाष्यम्, भेदवदस्याः कारणत्वभावात् । यथैव हि कार्यभिन्नतायां कारणभिन्नताया असमवाधिकारणत्वं भवता नेष्यते तथैकत्वस्यापि तत्रेष्ट्वं तस्याऽभेदपर्यायत्वात् । अत्रेभेदमेवौ च स्वात्मपरात्मापेक्षौ रूपादिभ्येपि भेदतः । यथा चैकमभिन्नमिति पर्यायस्तथानेकं भिन्नमित्यपि । तथा च द्वित्वा-
 १५ दिरप्यनेकत्वपर्यायः, तस्योत्पत्त्यादिकल्पना न कार्या ।

नन्वेवं सर्वत्र ‘त्रे त्रीणि’ इत्यादिप्रतिभासप्रसङ्गात् प्रतिभासप्रवि-

१ उत्तरसंख्योत्पत्तौ प्राक्तनसंख्याऽसमवाधिकारणं, इत्थं समवाधिकारणमपेक्षा-
 विनिमित्तकारणमिति । २ आदिशब्देन इत्यो इत्यर्थः । ३ सल्लिहादि (कार्यकल्पन)
 रूपादीनामित्यत्वनिष्पत्तिर्नया तथाऽनिलैकद्रव्यगताना एकसंख्याया नित्यत्वनि-
 ष्पत्तिः, यथा च अणुदिपरमाणुरूपादीनां (कारणरूपाणां) तथा निलै-
 कद्रव्यगताना एकसंख्याया नित्यत्वमिति भावः । ४ कार्यरूपाः । ५ कारणरूपप-
 रमाणवः । ६ द्वित्वादिसंख्यां प्रलपेक्षापुत्रेः कारणत्वनेकत्वसंख्यानात्समवाधि-
 कारणत्वमिति भावः । ७ इमौ द्वावपी बर्धनः । ८ संख्येय भाष्यः ।
 ९ संख्येयश्च । १० संख्यात् । ११ उत्तरगुणं प्रति प्राक्तनगुणस्यसमवाधि-
 कारणत्वानुपपत्त्यात् । १२ द्वित्वादिसंख्यां प्रति । १३ द्वित्वादिसंख्यां प्रति । १४ अने-
 वपर्यायत्वेनसमवाधिकारणत्वं कुतो न भवतीत्युक्ते सलाह । १५ एकत्वानात्पत् ।
 १६ रूपस्य स्वरूपापेक्षयाऽभेदः, परापेक्षया भेदः, परं रसादिषु वाच्यम् ।
 १७ अनेदोऽसमवाधिकारणं न भवति इत्यादन्वयं वृत्तिमत्याभेदवत्सरादिर्भेदोति ।
 १८ अमिश्रणभेदेन इत्थं प्राक्तं तत्रापि स्वपररूपापेक्षयाऽभेदमेवौ । १९ आदिशब्देन
 चाहसिदिसंग्रहः । २० द्वित्वादेरनेकपर्यायत्वे वस्तुसंरूपवेवापत्तय, तस्य च
 स्वकारणकलापादुत्पत्तेरनेकविषयबुद्धिसहितेभ्यो निष्पत्तिरित्यादि विरुक्तमिति भावः ।
 २१ द्वित्वादेरनेकत्वपर्यायत्वप्रकारेण । २२ विष्णुःपञ्चब्रह्मादिवस्तुषु । २३ द्वित्वादेर-
 नेकत्वपर्यायत्वात् ।

भाषो न स्यादऽनेकत्वस्याविशिष्टत्वात्, तन्न, अपेक्षाबुद्धिविशेष-
वस्तुसिद्धेरप्रतिबन्धात् । यथैव ह्यनेकविषयत्वाविशेषेपि काचि-
दपेक्षाबुद्धिः द्वित्वस्योत्पादिका काचिन्नित्वस्य । न ह्यपेक्षाबुद्धेः पूर्वं
द्वित्वादिगुणोक्तिः अनवस्थाप्रसङ्गात्, अपेक्षाबुद्धिजनितस्य वा
द्वित्वादेरनर्थक्यानुपङ्गात् । तथा द्वित्वादिप्रत्ययविभागोपि भवि-
ष्यति । यत एव चाभिन्नभिन्नत्वलक्षणाद्विशेषादपेक्षाबुद्धिविशेष-
स्तत एवैकत्वादिव्यवहारभेदोपि भविष्यति इत्यलमन्तर्गद्भुनैक-
त्वादिगुणेन ।

एवं च शुभेष्वापेकत्वादिव्यवहारोऽकष्टकल्पनः स्यात् । गणि-
तव्यवहारश्च 'पदपञ्चविंशतिभिः सार्धं शतम्' इत्यादिः १०
सुगमः । तस्मादभिन्नं तावदेकमित्युच्यते, तदपरेणामिच्छेर्न
सह द्वे इति, ते त्वपरेणामिच्छेन सह त्रीणीत्येवमादिः र्त्तमयो
लोकै प्रसिद्धो गणितप्रसिद्धश्चैकत्वादिव्यवहारहेतुर्गृह्यव्य इति ।

अथ द्वित्वबहुत्वसंख्याया ह्यणुकादिपरिमाणं प्रत्यसमवायि-
कारणत्वोपपत्तेः सङ्गावसिद्धिः, तन्न, अस्यास्तदसमवायिका- १५
रणत्वे प्रमाणाभावात् । परिशेषोस्तीति चेत्, न; कारणपरिमा-
णस्यैवासमवायिकारणत्वसम्भवाद्दूर्पाविवत् ।

ननु परमाणुपरिमाणजन्यत्वे ह्यणुकेपि परमाणुत्वप्रसङ्गः
स्यात्, तन्न, कार्यकारणयोस्तुल्यपरिमाणत्वे इष्टान्ताभावात् ।
सर्वत्र हि कारणपरिमाणादधिकमेव कार्यपरिमाणं दृश्यते । २०
परिमाणवच्च कैर्मध्यम्यसमवायिकारणत्वमस्याः स्यात् । इत्यते
हि द्वौर्म्यां बहुभिर्वा पापाणाद्युत्थापनम् । न चात्र संख्यायाः
कारणत्वं भवद्भिरिष्टम् । अथास्यास्तत्रापि निमित्तत्वमिष्यते;
को वै निमित्तत्वे विप्रतिर्षद्यते ? सौमान्यादीनामपि तदभ्युपग-
मात् । असमवायिकारणत्वं तु तस्याः परिमाणबहुत्वापनादि- २५
कर्त्तव्यभ्युपगन्तव्यम्, न चान्यत्रौपीत्यलमतिप्रसङ्गेन ।

१ उच्यते-द्वित्वादि संख्या प्रति कारणत्वेनाभिमताया अपेक्षाबुद्धेरनेकत्वा-
विशेषेति भेदो यथा तथा द्वित्वादिप्रत्ययविभागोपीति । २ अपेक्षाबुद्धेः पूर्वमेव
द्वित्वादिगुणोत्पत्त्युक्ते सत्यात् । ३ द्वित्वादिगुणस्यापि द्वित्वादिजन्यत्वात्तद्वि-
शेषात्सत्यात्परसामिति । ४ मिथानिबन्धलक्षणाद्विशेषादेकत्वादिजननप्रकारेण ।
५ संख्येनात् । ६ पर्येन । ७ अपरसंख्येनात् । ८ सङ्केतः । ९ ह्यणुकादिप-
रिमाणसमवायिकारणत्वं सद्रूपकार्यत्वात्तदवदित्तनुमानत् । १० कारणरूपादेर्यथा
कार्यरूपादिकं प्रसन्नमवायिकारणत्वम् । ११ ह्यणुकादिपरिमाणत्वं । १२ परमाणुपरि-
माणरूपत्वम् । १३ पापाणाद्युत्थापनलक्षणे । १४ नदन्त्यात् । १५ परैः ।
१६ निवार्त्त करोति । १७ प्रवृत्त्यादीनात् । १८ अभ्युपगन्तव्यं देति सम्बन्धः ।
१९ परिमाणे । २० सख्यायाः परिमाणं प्रसन्नमवायिकारणत्वपरिष्कारणेन ।

यदप्युक्तम्—महदादिपरिमाणं रूपादिभ्योर्थान्तरं तत्प्रत्ययवि-
लक्षणबुद्धिप्राप्तत्वात्सुखादिवत्, तदप्युक्तम्, हेतोरसिद्धे,
घटाद्यर्थव्यतिरेकेण महदादिपरिमाणस्याभ्यक्षप्रत्ययप्राप्तत्वेनासं-
वेदनात् ।

- ५ असत्यपि महदादौ प्रासादमालादिषु महदादिप्रत्ययप्राप्तुर्मा-
वप्रतीतेरनैकान्तिकश्र्मायम् । न च यत्रैव प्रासादादौ समवेतो
मालाभ्यो गुणस्तत्रैव महत्त्वादिक्मपि इत्येकार्थसमवायवशात्
'महती प्रासादमाला' इतिप्रत्ययोत्पत्तेर्नैकान्तिकत्वम्, सैसम-
यविरोधात् । न खलु प्रासादो भवद्विरवयविद्रव्यमभ्युपगम्यते
• विजातीयानां द्रव्यानारम्भकत्वात् । किं तर्हि? संयोगात्मको
गुणः । न च गुणः परिमाणवान्, "निर्गुणा गुणाः" []
इत्यभिधानात् । ततो मालाभ्यस्य गुणस्य प्रासादादिष्वभावात्
'प्रासादमाला' इत्ययमेव प्रत्ययस्तावदुक्तः, कुरत एव सा
'महती इत्था वा' इति प्रत्ययः, मालायाः संख्यात्वेन प्रासादानां
• संयोगत्वेन महदादेश्च परिमाणत्वेन परैरभ्युपगमात् ।

- अथ माला द्रव्यस्वभावेभ्यते; तथापि द्रव्यस्य द्रव्याभ्यत्वा-
ज्ञात्याः संयोगस्वरूपप्रासादाभ्यर्थत्वं युक्तम् । अथासौ जातिस्व-
भावेभ्यते; तर्हि प्रत्याभ्यर्थं जातेः समवेतत्वादेकस्मिन्नपि प्रासादे
'माला' इति प्रत्ययोत्पत्तिः स्यात् । 'एका प्रासादमाला महती
२० दीर्घा इत्था वा' इत्यादिप्रत्ययानुपपत्तिश्च तदवस्थैव; मालायां
तदाभ्ये च प्रासादादावेकत्वादेर्गुणस्याऽसम्भवात् । बह्वीषु च
प्रासादमालीषु 'माला माला' इत्यनुगतप्रत्ययोत्पत्तिर्न स्यात्,
जातावऽपरापरजातेरनुपपत्तेः । न चौपचारिकोयं प्रत्ययोऽस्व-
लक्षितत्वात् । न हि मुख्यप्रत्ययाविशिष्टस्यौपचारिकत्वं युक्तमति-
• प्रसङ्गात् । अत एव मालादिषु महत्त्वादिप्रत्ययोपि नौपचारिकः ।
ततो यथा स्वकारणकलापात्प्रासादादयो महदादिरूपतयोत्पत्ता-

१ गुणरूपे । २ जादिना पर्वतमालादिषु । ३ अन्यथा । ४ गुणे गुणसङ्गा-
नान्युपगमात् । ५ वैज्ञेयिकैः । ६ काष्ठादीनाम् ७ प्रासादलक्षणावयविद्रव्यम् ।
वस्तु । ८ तन्त्वादिना सभादीना ये तन्त्वादपस्त एव घटाद्यवयविद्रव्यारम्भका
इति भावः । ९ बहुत्वलक्षणेन । १० काष्ठादिभिः । ११ वैज्ञेयिकैः । १२ वसः ।
१३ एकस्मिन्नपि प्रासादे मालायाः सङ्गात्वात् । १४ महत्त्वगुणमुक्तम् । १५ द्वि-
वहुत्वादेः । १६ जातिरूपमाह । १७ निस्सामान्यानि सामान्यानीति वचनात् ।
१८ मुख्यभासो प्रत्ययश्च लक्ष्यमुष्ठादिषु गीर्वाणित्वादिप्रत्ययानामिच्छित्तोऽनुपपत्तेन
समानास्त । १९ मुख्यस्याप्यौपचारिकत्वप्रसङ्गात् ।

स्तत्प्रत्ययगोचरस्तथा घटादयोपीत्यलमर्थान्तरभूतपरिमाणपरि-
कल्पनया ।

यदप्युक्तम्-‘वदरामलकादिषु भाकोऽणुव्यवहारः’ इत्यादि; तद-
प्युक्तिमात्रम्; मुख्यगौणप्रविभागस्यात्राप्रमाणत्वात् । न खलु यथा
सिद्धमाणवकादिषु मुख्यगौणविधेकप्रतिपत्तिः सर्वेषामभिगाने-
नास्ति तथा ‘अणुके पचाणुत्वहस्तत्वे मुख्येऽन्यत्र भाके’ इति
कस्यचित्प्रतिपत्तिः । प्रक्रियामात्रस्य च सर्वशाब्देषु सुलभत्वा-
च्चातो विवादनिवृत्तिः ।

भाषेक्षिकर्त्वाच्च परिमाणस्यागुणत्वम् । न हि रूपादेः सुखादेर्वा
गुणस्यापेक्षिकी सिद्धिः । योपि नीलबीलतरादेः सुखसुखतरादे-
र्वाऽऽपेक्षिको व्यवहारः सोऽपि तत्प्रकर्षापकर्षनिवन्धनो न
पुनर्गुणस्वरूपनिवन्धनः । ततो ह्रस्वदीर्घत्वादेः संस्थानविशेषाद्भ्य-
तिरेकामावात्कथं गुणरूपता ? तद्विशेषस्यापि कथञ्चिद्भेदाभिधाने
अस्यचतुरस्रादेरपि भेदेनाभिधानालुपङ्गात्कथं तत्रतुर्विधत्वोप-
वर्णनं संशोभेतेति ?

यद्योक्तम्-पृथक्त्वं घटादिभ्योर्यान्तरं तत्प्रत्ययविलक्षणहीन-
प्राकृतात्सुखादिवत्; तदप्युक्तिमात्रम्; हेतोरसिद्धत्वात् । न
खलु सहेतोरुत्पन्नाऽन्योन्यध्वीवृत्तार्थव्यतिरेकेणार्यान्तरभूतस्य
पृथक्त्वस्याप्यस्य प्रतिभासोस्ति, अत एवोपलब्धिलक्षणप्रात-
स्यास्यानुपलम्भादसत्त्वम् ।

रूपादिगुणेषु च ‘पृथक्’ इतिप्रत्ययप्रतीतिरेकान्तरः । न हि
तत्र पृथक्त्वमस्ति गुणेषु गुणासम्भवात् । न च गुणेषु
‘पृथक्’ इति प्रत्ययो भाकः; मुख्यप्रत्ययावितिष्ठत्वात् ।
न च स्वरूपेणा (ण) व्यावृत्तानभिधानां पृथक्त्वादिविधेयात्पृथ-
क्युपता घटते; भिन्नाभिन्नपृथग्रूपताकरणेऽकिञ्चित्करत्वात् । भेदे-
र्वा हि सम्बन्धासिद्धिः । नभेदपक्षे तु पृथग्रूपस्यार्थस्यैवोत्पत्तेर्या-
न्तरभूतपृथक्त्वगुणकल्पनावैयर्थ्यम् । प्रयोगः-ये परस्परव्यावृ-

१ परिमाणे । २ नविप्रतिपत्त्या । ३ इत्यणुके पचाणुत्वहस्तत्वे मुख्येऽन्यत्रा-
न्येति प्रक्रियातो मुख्यगौणविधेकप्रतिपत्तिर्मिथ्यातीत्युक्ते सत्याह । ४ नपेक्षावनि-
तत्वात् । ५ भाषाङ्गीया । ६ भाषेक्षिकत्वात्परिमाणस्य गुणत्वं नास्ति मतः ।
७ परिमाणस्य । ८ व्यतिरेको भेदः । ९ तस्य=परिमाणस्य । १० पूर्वत्वमिति ।
११ यद्यत्पदो व्यावृत्त इति । १२ तद्व्यतिरेकेणार्यान्तरभूतस्य पृथक्त्वस्याप्यस्य
प्रतीत्यातो नास्ति मतः । १३ गगनकल्पत्वात् । १४ घटपदादीनाम् । १५ आदि-
शब्देन विभागपरिग्रहः । १६ कनक् इत्यादि ।

त्तात्मानस्ते स्वव्यतिरिक्तपृथक्त्वानाघाराः यथा रूपादयः, पर-
स्परव्यावृत्तात्मानश्च घटादयोऽर्था इति ।

ततो विभिन्नस्वभावतयोत्पन्नार्थस्यैव 'पृथक्' इतिप्रत्ययविषय-
त्वप्रसिद्धेरलं पृथक्त्वगुणकल्पनया । पृथक्प्रत्ययस्याप्यसाधारण-
५ धर्मादिषोपपत्तेः, यदा ह्येकं वस्तुवतरेभ्यो भिन्नं पश्यति प्रतिपत्ता
तदा 'एकं पृथक्' इति प्रतिपद्यते । यदा तु द्वे वस्तुवीतरेभ्यो
विलक्षणैकधर्मयोगाद्विभिन्ने पश्यति तदा 'द्वे पृथक्' इति मन्यते ।
यदा त्वैकदेशत्वादिना धर्मणेतरेभ्यो बहूनि भिन्नानि पश्यति
तदा 'एतान्येतेभ्यः पृथक्' इति प्रतिपद्यते, यथा रूपादयो ब्रह्मा-
१० त्पृथगिति ।

संयोगस्तु समवायनिराकरणप्रबन्धके प्रतिपेत्यते । तदभावात्
'प्राप्तिपूर्विका अप्राप्तिर्विभागः' इत्यपि निरस्तम् । न हि प्राग्भावि-
सान्तरैरूपतापरित्यागेन निरन्तररूपतयोत्पन्नवस्तुव्यतिरेके-
णान्यः संयोगः संयुक्तप्रत्ययविषयोलुभ्यते । भ्रैविच्छिन्नोत्पत्ति-
१५ कमेव हि वस्तु निरन्तरप्रत्ययविषयः निरन्तरोपरचितदेवदत्त-
यद्दत्तगृहवत् । न खलु गृहयोः परेणार्थि संयोगगुणाश्रयत्व-
मिष्टम्, निर्गुणत्वाद्गुणानाम्, तयोश्च संयोगात्मकत्वेन गुणत्वाद् ।
नापि विच्छिन्नोत्पन्नवस्तुव्यतिरेकेणान्यो विभागो विभक्तप्रत्यय-
विषयो हिमवद्विन्ध्यवत् । न हि तयोर्विभागाश्रयत्वं प्राप्तिपूर्वि-
२० काया अप्राप्तेर्विभागलक्षणायास्तयोरभावात् ।

प्रयोगः—या संयुक्ताकारा बुद्धिः सा भवत्परिकल्पितसंयोगा-
नास्पदवस्तुविशेषमात्रप्रभवा यथा 'संयुक्तौ प्रासादौ' इति
बुद्धिः, संयुक्ताकारा च 'चैत्रः कुण्डली' इत्यादिबुद्धिरिति ।
यद्वा, याऽनेकवस्तुसन्निपाते सति संयुत्पद्यते सा भवत्परिक-
२५ ल्पितसंयोगविकलानेकवस्तुविशेषमात्रभाविनी यथाऽविरलाऽव-
स्थिताऽनेकतन्तुविषया बुद्धिः, तथा च विभक्त्यनिराकरणभावापत्ता
संयुक्तबुद्धिरिति ।

तथा मेवादिषु विभक्त्युच्चिर्विभागरहितपदार्थमात्रनिबन्धना

१ स्वव्यतिरिक्तपृथक्त्वानाघारा घटादयो यतः । २ वस्तुव्यतिरिक्तपृथक्त्वानाघार-
त्कर्म पृथक्त्वप्रत्ययोत्पत्तिरित्युक्ते सत्याह । ३ असाधारणः—सामान्यवृत्तिः । ४ भाविना
काकत्वस्वरूपत्वग्रहः । ५ भिन्नरूपतेलवः । ६ भिन्नरूपततेलवः । ७ वदुपह ।
८ न कैवल्यमसाभिः । ९ गृहस्य गुणत्वमसिद्धमित्याह । १० इन्द्रियाणामनेकवस्तुभिः
सुह सन्निपाते सन्निकर्तः संयुत्पद्यते इत्यर्थः । ११ अयमस्यान्वेषात्त्रिषो देव कलादि-
प्रकारेण ।

विभक्तत्वाद्नेकपदार्थसंविधानार्थसोदयत्वाद्वा देवदत्तस्यदत्त-
पृथ्विमात्रपृथिव्यद् द्विभवद्विन्व्यविभागपृथिव्यद्वा ।

सत्यापि वा संयोगे विभागस्य तदभावलक्षणत्वाच्च शुणरूपता ।
कथमन्यथा पुत्रादौ विरुचिबुधेऽपि संयोगे विभक्तप्रत्ययः स्यात् ?
न सन्न तत्र विभागः संभवति, नैस्य कियत्कालस्यापिशुणत्वेना-
शुणपगमात् । कथं वा द्विभवद्विन्व्यादौ संयोगेऽनुत्पद्येऽपि विभक्त-
प्रत्ययः स्यात् संयोगात्मात् ? व्यतिरिक्तविभागस्वरूपस्य कविद-
शुणपलम्भाद्योपचारकल्पनापि संशयी ।

विभागाभावे कुतः 'संयोगनिवृत्तिरिति' चेत् ? 'कर्मण एव'
इति श्रौतः । 'कर्ममार्थादपि तद्विवृत्तिः स्यात्' इत्यन्यद्वाच्यः १०
संयोगमात्रनिवृत्तेरित्यात् । संयोगविशेषनिवृत्तिस्तु कर्मविशेष-
त्वात्, तस्मैते ततो विभागविशेषोत्पत्तिवत् । कर्मणः संयो-
गोत्पादकत्वात्कथं तद्विवर्तकत्वमिति चेत् ? तर्हि हस्तबाणादि-
संयोगस्य कर्मोत्पादकत्वोपलम्भात् कथं वृक्षादौ बाणादिसंयो-
गस्य तद्विवर्तकत्वं स्यात् ? अन्यस्य तद्विवर्तकत्वमन्यथापि १५
समानम् । न सन्न येनैव कर्मणा यः संयोगो जनिताः स
तेनैव निवर्त्यन्ते इति ।

एतेन विभागजविभागोपि चिन्तितः । तस्यापि संयोगाभावरू-
पस्य क्रियात् एवोत्पत्तिप्रसिद्धेः । ननु यदि विभागजविभागो न
स्यात्तर्हि हस्तकुण्डलसंयोगविनाशेऽपि शरीरकुण्डलसंयोगविनाशो न २०
प्राप्नोति, तत्र हस्तकुण्डलसंयोगव्यतिरेकेण शरीरकुण्डलसंयोगस्यै-
वासंभवात् । हस्तकुण्डलसंयोगादेवासौ कल्प्यते इति चेत्, तर्हि
हस्तकर्मवर्धनाच्छरीरेऽपि कर्म कसाच्च कल्प्यते तुल्याक्षेपसमा-
धानत्वात् ?

१. नवेकपदार्थैः सह तद्विकर्तुं हन्त्रिणाणात्, तस्यावत् उदयो वला इति
कारणम् । २. विभागस्य । ३. ततो यत्र संयोगपूर्वको विभक्तप्रत्ययवत्तत्रैव
विभागव्यवहारो युज्यते, न चानयोः प्राक् संयोगः पश्चाद्विभाग इति । ४. व्यति-
रिक्तत्वस्यतुः सहाकारित्वरूपस्य । ५. कविदशुणपत्वेनापिशुणत्वेऽस्योपचारभावात्,
सति संयोगेऽपि विभक्तिप्रत्ययानुत्पत्त्यात् । ६. कियत्कालः । ७. कियत्कालः ।
८. वैना. । ९. कसाच्च कर्मण इत्यर्थः । १०. तस्य=संयोगस्य । ११. वैना-
कारः । १२. यथा. प्रत्यात्मस्य (परमात्मा) संयोगविशेषनिवृत्तिविशेषात्तत्रैववि-
भक्तप्रत्ययव्यतिरेकता इति संकल्पः । १३. तत्र=नैवेदिकस्य । १४. यत्र देहादेःकात्तर-
व्यातिरेकत्वमेव कर्म युज्यते । १५. वृक्षादौ संशुण्य बाणादिः पुनर्न ततोपदेष्टं
प्राप्नोति । १६. संयोगनिवृत्तेः कर्मत्वप्रसिद्धादनेन ।

यस्योच्यते तस्मात्सिद्धयेऽनुमानम्—विबंक्षितावयवक्रियाऽऽकाशादिदेशेभ्यो विभागं न करोति, इन्द्रियारम्भकसंयोगविरोधिबिभागोत्पादकत्वात्, या पुनराकाशादिदेशविभागकरी सा संयोगविशेषनिवर्त्तकविभागजनिकापि न भवति यथाङ्गुलि-
 ५ क्रियेति । यदि मिथ्यमानवंशाद्यवयवविद्रव्यस्यावयवक्रिया आकाशादिदेशेभ्यो विभागं कुर्यात् तर्हि वंशादिद्रव्यारम्भकसंयोगविरोधिबिभागोत्पादकमेवास्या न स्पष्टद्रव्यस्यावयवविद्रव्यक्रियावत् । ततोऽवयवविद्रव्यस्याकाशादिदेशविभागोत्पादकोऽविभागोऽर्भुपगन्तव्यः, इत्यप्यसाम्प्रतम्, बह्व्यं विभागोत्पा-
 १० दकत्वस्यासिद्धत्वात् । क्रियात् एव संयोगनिवृत्तेरकत्वात् । अथ 'अवयविनस्तत्क्रियाऽऽकाशादिदेशसंयोगं न निवर्त्तयति इन्द्रियारम्भकसंयोगनिवर्त्तकत्वात्' इतीदमत्र विवक्षितम्, तथा-
 र्थसाधारणो हेतुः, सपक्षेप्याकाशादिदेशसंयोगानिवर्त्तके रूपादी
 वृत्तेरभावात् । न चावयवसंयोगादवयविनः संयोगोन्मः, तैर्दे-
 ५ कान्तस्य प्रागेव प्रतिक्षेपात्, विनीशोत्पादप्रक्रियायाश्च कृतो-
 चरत्वात् । तैश्च विभागो घटते ।

नापि परत्वापरत्वे, परापरप्रत्ययामिधानयोस्तदन्तरेणापि
 रूपादी सम्भवात् । तथाहि—क्रमोत्पन्ननीलादिगुणेषु 'परं नीलम-
 परं च' इति प्रत्ययोत्पत्तिः असत्यपि परत्वापरत्वलक्षणे गुणे दृष्टा
 २० गुणानां निर्गुणतयोपगमात्, तथा घटादिष्वपि स्यात् । अथात्र
 दिक्कालकृतः परापरप्रत्ययैः, ननु घटादिष्वप्यसौ तत्कृतोस्तु
 विशेषाभावात् । तथा च प्रयोगः—थोर्यं परापरदिप्रत्ययः स पर-
 परिरकल्पितगुणैरहितैर्धमाञ्जकृतक्रमोत्पादव्यवस्थानिवन्धनः, पर-
 परप्रत्ययत्वात्, रूपादिषु परापरप्रत्ययवत् । 'विरुद्धं परं संनि-
 ५ कृष्टमपरम्' इति चीनयोरैकार्थत्वाच्च मेवं पश्यामः । ततश्चायुक्त-

१ मिथ्यमानवंशाद्यवयवविद्रव्यस्य । २ मिथ्यमानवंशाद्यवयवविन इति शेषः । ३ इन्द्रियं
 र्बंक्षति । ४ परमायुः । ५ अकारणसङ्कोचनकथा । ६ इन्द्रियारम्भकसंयोगविरोधिबि-
 भागोत्पादकत्वं च सादाकाशादिदेशेभ्यो विभागं च कुर्यादिति सन्दिग्धानैकान्तिकत्वे
 सत्त्वात् । ७ विभागादिभागो जात धर्तव्यः । ८ वैवादिना । ९ तर्हि विभागानादेव संयोग-
 निवृत्तिः कथमिति शङ्क्यामाह । १० जनैकान्तिकः । ११ तयोः अवयववयवविनोः ।
 १२ अवयवेषु क्रिया क्रियासु संयोगः संयोगादवयविन उत्पत्तिरिति प्रक्रियात्सर्वोभेद
 इत्युक्ते सत्त्वात् । १३ इन्द्रियारम्भकसंयोगविरोधिबिभागोत्पादकत्वसाधनमिति चेत् यथा ।
 १४ न ननु सामानिकः । १५ गुणो परत्वापरत्वबन्धनो । १६ नवो दिक्कालकृतः ।
 १७ गुणकृतेषु । १८ परमिन्द्रियोरपरसमिन्द्रियोश्च ।

युक्तम्—‘विप्रकृतसधिकृतबुद्धिभ्यां परत्वापरत्वयोरुत्पत्तिः’ इति ।
न हि बटबुद्धिमपेक्ष्य कुम्भ उत्पद्यते इति युक्तम् । नापि
पर्यायवाच्यमेवादर्थो भिद्यते इति ।

किञ्च, सामान्येषु महापरिमाणाल्परिमाणगुणेषु च महद्व्या-
धारस्वबुद्ध्यपेक्षयोः परत्वापरत्वयोरुत्पत्तिः कल्प्यतामविशेषात् ।^५

किञ्च, परत्वापरत्वयोरुणत्वमभ्युपगच्छता मध्यत्वं च गुणो-
भ्युपगन्तव्यः, कालविकृतमव्यव्यवहारस्याप्यत्र समानत्वात् ।

सुखदुःखेच्छादीनां चाबुद्धिरूपत्वे रूपादिबन्धात्मगुणता युक्ता,
बुद्धिरूपत्वे चातो मेदेनाभिधानमयुक्तम् । कंचिद्विशेषमादाय
बुद्ध्यात्मकानामप्यतो मेदेनाभिधाने अभिधाना(घादी)दीनामपि^{१०}
मेदेनाभिधानं कार्यम् । इत्यलमतिप्रसङ्गेन ।

शुक्त्वादीनां तु पुत्रलगुणत्वं युक्तमेव । ‘अतीन्द्रियं शुक्त्वं
पातोपलम्भेनानुमेयत्वात्’ इत्येतन्न युक्तम्, करतलौघुपरिस्थिते
द्रव्यविशेषे पातानुपलम्भेपि शुक्त्वस्य प्रतिभासनात् । रजःप्रभृ-
तीनामपि शुक्त्वं कस्मात् न गृह्यते इति चेत् ? प्रहणायोग्यत्वात् ।^{१५}
तावतैवातीन्द्रियत्वे गन्धरसादीनामप्यतीन्द्रियत्वं स्यात् । कचिद्दूरे
तदाभयस्यान्नफलादेः प्रत्यक्षत्वेपि तेषां प्रहणाभावादिति ।

पृथिव्यनलयोरप्यस्ति द्रवत्वम्; इत्यनुपपन्नम्; सुवर्णादीनाम्
“अग्नेरपत्यं प्रथमं सुवर्णम्” [] इत्यागमतः प्रसिद्ध-
तैजसत्वानां अनुप्रभृतिपार्थिवद्रव्याणां चाप्यस्यैव द्रवत्वस्य संयु-^{२०}
क्तमवायवघात्प्रतीतिसम्भवात् ।

अथ ‘सर्वं पार्थिवं तैजसं च द्रव्यं द्रवत्वसंयुक्तं रूपित्वात्तो-
यवत्’ इत्यनुमानात्तस्य द्रवत्वसिद्धिः; तन्न; प्रत्यक्षेण स्य (स्य)
न्दनकर्मानुपलम्भेन च बाधितविषयत्वात् । अद्येत्यन्धर्मकं तत्र
द्रवत्वं जातं यत्प्रत्यक्षं न भवति स्य (स्य) न्दनक्रियां च न^{२५}
करोतीत्युच्यते; तर्हि शुक्त्वरसावप्येवंधर्मकौ रूपित्वादेव किञ्च
तैजसोभ्युपगम्येते हुल्याक्षेपसमाधानत्वात् ? तथा चाऽस्योद्दे-
गतिस्वभावता न स्यात्, ‘रसः पृथिव्युत्कृष्टवृत्तिः’ इत्यस्य च
विरोध इति ।

१ परपररूपेषु इलर्षः । २ समयन अपेक्षानुदेः । ३ आदिना मलकत्क-
न्वादिप्रसङ्गम् । ४ आदिपदेन हरित्वात्प्रतीतिकप्रसङ्गम् । ५ जलीयस्य । ६ प्रलाडी
न भवतः पतनादिक्रियां च न कुर्वत इति । ७ प्रलक्षेण पतनादिकर्मानुपलम्भेन
च बाधितविषयत्वात् तेजसो शुक्त्वं रसत्वमिलाक्षेपः, जमेत्यद्वर्णकं तेजसि शुक्त्वं
रसत्वं च जातं यत्प्रत्यक्षं न भवति तत्पतनादिक्रियां च न करोतीति समाधानम् ।
८ तैजोद्रव्यस्य शुक्त्वरसत्वोपगमे च । ९ तेजसपि रसस्य नाभात् ।

‘ज्ञेहोऽम्मस्येव’ इत्यप्ययुक्तम्, घृतादेरपि लोके वैद्यकादिशास्त्रे च क्षिग्धत्वेन प्रसिद्धत्वात् । घृतादावन्यनिमित्तत्वेनौपचारिकः क्षिग्धप्रत्ययः, इत्यप्यसाम्प्रतम्, विपर्ययस्यापि कल्पयितुं शक्यत्वात् । तथा हि—तोयसम्पर्केऽप्योदनादौ च क्षिग्धप्रत्ययो नास्ति ५ घृतादिसम्पर्के तु क्षिग्धप्रत्ययः सर्वेषामस्येवेति । कषिकादौ तोयस्य बन्धहेतुत्वोपलम्भात्तस्यैव ज्ञेहो विशेषगुणः, इत्यप्यसाम्प्रतम्, भवता ज्ञेहरहितत्वेनाभ्युपगतस्यापि क्षीरजतुप्रसृतेर्वन्धहेतुत्वेन प्रतीतेः ।

ज्ञेहस्य गुणत्वाभ्युपगमे च काठिन्यमार्दवादेरपि गुणत्वाभ्युपगमः कर्तव्यः, तथा च तत्संख्याव्याघातः स्यात् । ननु काठिन्यादेः संयोगविशेषरूपत्वात्कथं गुणसंख्याव्याघातहेतुत्वम् ? तथा चोक्तम्—“भवयवानां प्रक्षिथिलसंयोगो मृदुत्वम्” [] इत्यादि, तदप्यसङ्गतम्, चक्षुषा संयोगेषु प्रतीयमानेष्वपि मार्दवादेरप्रतिभासनात् । यो हि यद्विशेषः स तस्मिन्प्रतीयमाने प्रतीयत एव यथा रूपे प्रतीयमाने तद्विशेषो नीलादिः, न प्रतीयते च संयोगेषु प्रतीयमानेष्वपि काठिन्यादिः, तस्मान्नासौ तद्विशेष इति । कटाद्यवयवानां प्रक्षिथिलसंयोगेऽपि मृदुत्वाप्रतीक्षेऽत्र, विशिष्टचर्माद्यवयवानामप्यप्रक्षिथिलसंयोगित्वेऽपि मृदुत्वोपलब्धेऽत्रेति

१० ननु काठिन्यादेः संयोगविशेषरूपत्वाभावे कथं कठिनमेव कणिकादिद्रव्यं मर्दनादिना मृदुत्वमापाद्यते ? इत्यप्यसुन्दरम्, न हि तदेव द्रव्यं मृदु भवति । किं तर्हि ? पूर्वकठिनपर्यायनिवृत्तौ मृदुपर्यायोपेतं द्रव्यान्तरमुत्पद्यते । संयोगविशेषमृदुत्ववादिनापि पूर्वद्रव्यनिवृत्तिरघाम्युपगतैव । ततः स्पर्शविशेषो मृदुत्वादिरे- २५ भ्युपगन्तव्यः ‘कठिनः स्पर्शां मृदुः स्पर्शः’ इति प्रतीतिदर्शनात् । तथा च पाकजत्वमपि स्पर्शस्योपपन्नं घटादिषु रूपादिवत् विलक्षणस्पर्शोपलम्भार्त् नान्यथा । न च काठिन्यादिव्यतिरेकेण स्पर्शस्यान्यद्वैलक्षण्यं व्यवस्थापयितुं शक्यमिति ।

वेगाख्यस्तु संस्कारो न केवलं पृथिव्यादावेवास्ति आत्मन्यप्यस्य सम्भवात्, तस्यापि सक्रियत्वेन प्रसाधितत्वात् । न च

१ अन्यत्-वक्तम् । २ मृदुरूपोऽपि संयोगगुणविशेषः । ३ मृदुत्वादेः स्पर्शविशेषत्वे च । ४ मृदुत्वादेः स्पर्शविशेषत्वाभावे स्पर्शस्य न पाककर्त्तृ विलक्षणस्पर्शाभावादिमि भावः । ५ काठिन्यादेः स्पर्शविशेषत्वाभावेऽपि स्पर्शसाम्यद्वैलक्षण्यं सम्प्रतिपत्ति तदत्र विलक्षणस्पर्शोपलब्धेन पाकजननमप्यविरुद्धं स्पर्शसैसाद्युपगमात् । ६ आत्मनो निष्क्रियत्वात्कथं वेगाख्यस्य संस्कारस्य सम्भव इत्युक्तेः सत्त्वात् ।

क्रियातोऽर्थान्तरं वेगः, अस्याः शीघ्रोत्पादमात्रे वेगव्यवहारप्र-
सिद्धेः । 'वेगेन गच्छति' इति प्रतीतेः क्रियातोर्थान्तरं वेगः, इत्य-
प्ययुक्तम्, 'वेगेन गच्छति, शीघ्रं गच्छति' इत्यनयोरेकत्वात् ।
न च कर्मणः कर्मारम्भकत्वेऽनुपरमप्रसङ्गः, शब्दवचदुपरमोप-
पत्तेः । यथैव हि शब्दस्य शब्दान्तरारम्भकत्वेऽप्युपरमस्तथात्रापि । ५
“कर्म कर्मसाध्यं न विद्यते” [वेशे० सू० १।१।११] इत्यपि
वचनमात्रत्वाद्बिरोधकम् ।

न च विभिन्नः संस्कारो घाणादीनामपातहेतुः प्रतीयते, अन्य-
था कदाचिदपि तेषां पातो न स्यात्, तत्प्रतिबन्धकस्य वेगस्य
सर्वैवावस्थानात् । न च मूर्त्तिमहात्वादिस्वयंगोपहतशक्तित्वाद्- १०
गस्य तेषां पतनम्, प्रथममेव पातप्रसङ्गेः, तत्संयोगस्य तद्विरो-
धिनस्तदापि सम्भवात् । न च प्राग्वेगस्य बलीयस्त्वाद्बिरोधिन-
मपि मूर्त्तद्रव्यसंयोगमपास्य शरं देशान्तरं प्रापयति, इत्यभिघात-
व्यम्, पश्चादप्यस्य बलीयस्त्वात्तथैव तत्प्रापकत्वप्रसङ्गेः । न
खलु वेगस्य पश्चादन्यथात्वम्, तथोत्पत्तिकारणाभावात्, तत्स- १५
मवाधिकारणत्वस्येवादेः सर्वैदाऽविशिष्टत्वात् । न च कर्माख्यं
कारणं पश्चाद्बिधिष्यते, तस्यापि तुल्यपर्यनुयोगत्वात् । न च
प्रभूताकाशप्रवेशसंयोगोत्पादनात् संस्कारप्रक्षयादिषोः पातः,
संस्कारस्यैकैस्रभावत्वेनावस्थितस्य प्रागिव पश्चादपि प्रक्षयानुप-
पत्तेः । न चाकाशस्य प्रवेशाः परेजेभ्यन्ते, येन तत्संयोगानां २०
भूयस्त्वं संस्कारप्रक्षयहेतुत्वं वा युक्तियुक्तं भवेत् । कल्पनाधि-
ल्पिकल्पितानां संयोगमेदं कत्वं तदायत्तमेदानां च संयोगानां
संस्कारप्रक्षयहेतुत्वं दूरोत्सारितमेव ।

भावनास्यस्तु संस्कारो धारणापरनामा नानिष्टः, पूर्वपूर्वाङ्ग-
मवाहितसामर्थ्यलक्षणस्यात्मनोऽनर्थान्तरमृतस्य स्पृष्ट्यादिहेतुत्वे- २५
नास्यास्माभिरपीष्टत्वात् ।

स्थितस्थापकरूपस्तु संस्कारोऽसम्भाव्य एव । स हि किं
स्वयमस्थिरस्वभावं भावं स्थापयति, स्थिरस्वभावं वा ? न तावद्-
स्थिरस्वभावम्, तत्सम्भावनातिक्रमात् । तथाविधस्यापि स्थापनेऽ-

१ शीघ्रत्वं च क्रियासकृत् परमदे समते च । २ वेगस्य क्रियात्वे क्रियातः
क्रियोत्पन्न इति भावः । ३ यद्यपि समवायिकारणमविशिष्टं तथापि कर्माख्यं
कारणं निश्चितं इत्युक्ते सत्याह । ४ न खलु कर्माख्यस्य पश्चादन्यथात्वं तथोत्पत्ति-
कारणाद्यनादिकारिरूपेण । ५ निजत्वाद्गुणत्वात् । ६ आकाशप्रवेशानात् ।
७ संयोगानां नानाकारत्वम्

तिप्रसङ्गः । क्षणादूर्ध्वं चार्थस्य स्वयमेवाभावात्कस्यासौ स्थापकः स्यात् ? भावे चाऽस्थिरस्वभावताविरोधः । अथ द्वितीयः पक्षः ; तदा स्थिरस्वभावेऽवस्थितानामर्थानां स्वयमेवावस्थानात्किमस्ति-
 ५ तिरेवार्थानां स्थितस्थापकः संस्कारो नान्यः ।

धर्माधर्मशब्दानां तु गुणत्वं प्रागेव प्रतिविहितमित्यलमतिप्र-
 सङ्गेन । ततः “कर्तुः फलदाय्यात्मगुण आत्ममनःसंयोगजः स्वका-
 र्यविरोधी धर्माधर्मरूपतया मेववानदृष्टाख्यो गुणः” []
 इत्ययुक्तमुक्तम् । इदं तु युक्तम् “कर्तुः प्रियहितैर्भोक्षहेतुर्धर्मः,
 १० अधर्मस्त्वप्रियप्रत्ययहेतुः” [प्रश्न० भा० पृ० २७२-२८०] इति ।
 तत्र गुणपदार्थोपि श्रेयान् ।

नापि कर्मपदार्थः । स हि पञ्चप्रकारः परैः प्रतिपाद्यते- “उत्क्षे-
 पणमवक्षेपणमाकुञ्चनं प्रसारणं गमनमिति कर्माणि” [वैशे० सू०
 १।१।७] इत्यभिधानात् । तत्रोत्क्षेपणं यदूर्ध्वाधःप्रदेशान्यां संयोग-
 १५ विभागकारणं कर्मात्पद्यते, यथा शरीरावयवे तत्सम्बद्धे वा मूर्ति-
 मद्भवे ऊर्ध्वदिग्भाविभिराकाशदेशाद्यैः संयोगकारणमधोदिग्भा-
 गावच्छिन्नैश्च तैर्विभागकारणम् । तद्विपरीतसंयोगकारणं च कर्मा-
 वक्षेपणम् । ऋजुद्रव्यस्य कुटिलत्वकारणं च कर्माकुञ्चनम्, यथा
 २० ऋजुनोक्त्यादिद्रव्यस्य येऽप्रावयवास्तेषामाकाशादिभिः स्वयंयो-
 गिभिर्विभागे सति मूलप्रदेशैश्च संयोगे सति येन कर्मणाकुल्या-
 दिरवयवी कुटिलः संपद्यते तदाकुञ्चनम् । तद्विपर्ययेण संयोग-
 विभागोत्पत्तौ येनावयवी ऋजुः संपद्यते तत्कर्म प्रसारणम् ।
 अनिर्यतदिग्देशैर्यत्संयोगविभागकारणं तद्गमनम् । उत्क्षेपणादिकं
 तु चतुःप्रकारमपि कर्म नियतदिग्देशसंयोगविभागकारणमिति ।
 २५ तदेतत्पञ्चप्रकारतोपवर्णनं कर्मपदार्थस्याविचारितरमणीयम् ;
 देशादेशान्तरप्राप्तिहेतुः परिस्पन्दात्मको हि परिणामोऽर्थस्य
 कर्माच्यते । उत्क्षेपणादीनां चात्रैवान्तर्भावः । अत्रान्तर्भूतानामपि
 कश्चिद्विशेषमादाय मेदेनाभिधाने भ्रमणरूप(स्य)न्दनादीनामर्प्यतो
 मेदेनाभिधानानुपपन्नात्कथं पञ्चप्रकारतैवास्य ?

१ विद्युदादीनामपि स्थापकः सादिलतिप्रसङ्गः । २ स्वकार्ये क्रियमाणे सति
 विरोधोऽभावो यस्य सः । ३ सुसजादिर्यथा । ४ प्रियः सुखदा । ५ हितः परिणा-
 मपथ्यः । ६ दुःखकारणम् । ७ ऊर्ध्वाधःप्रदेशान्यां विपरीतौ अवकर्त्तमदेशौ ।
 ८ ऊर्ध्वाः । ९ ऊर्ध्वाधःप्रदेशयोः । १० गमनस्य यथाऽनियतदिग्देशैः संयोगविभा-
 गकारणत्वं तत्रोत्क्षेपणादेरनियतदिग्देशान्यां संयोगविभागकारणत्वं ततश्च कथमुत्क्षेप-
 णादीनां भेद इत्युक्ते सत्याह । ११ पञ्चप्रकारात्मकैः ।

न चैकरूपस्यार्थस्य क्रियासमावेशो युक्तः; सर्वदाऽविशिष्ट-
त्वात् । यत्सर्वदाऽविशिष्टं न तस्य क्रियासम्भवो यथाकाशस्य,
अविशिष्टं चैकरूपं वदन्ति । न चैकरूपत्वेऽप्यर्थानां गन्तव्यमा-
वता युक्ता; निश्चलत्वाभावात्प्रसङ्गात्, सर्वदा गन्तव्यैकरूपत्वात् ।
अथाऽगन्तव्यरूपताप्येवामङ्गीक्रियते; तथा सत्याकाशवद्गन्तव्यैव ५
स्यात् । एवं च गत्यवस्थायामप्यचलत्वमेवां प्रसक्तं तदपरित्य-
क्ताऽगतिरूपत्वाभिश्चलावस्थावत् । न चोभयरूपत्वादेवार्थम-
दोषः; गन्तव्यागन्तव्यविरुद्धमर्थमप्यासेनैकत्वव्याघातानुपपन्नादच-
लाऽनिलचत् ।

यथा चाक्षणिकैकरूपस्यार्थस्य क्रिया नोपपद्यते तथा क्षणिकैक- १०
रूपस्यापि; उत्पत्तिप्रदेश एवास्य प्रध्वंसेन प्रदेशान्तरप्राप्त्यसम्भ-
वात् । यो ह्युत्पत्तिप्रदेश एव ध्वंसमुपगच्छति न सौम्यदेशमाप्ता-
मति यथा प्रदीर्घः, उत्पत्तिप्रदेश(शि)ध्वंसमुपगच्छति च क्षणिको
भाव इति । न चार्थस्य क्षणिकत्वादेशादेशान्तरप्राप्तिर्भ्रान्ता;
क्षणिकत्वादेव प्रतिबिद्धत्वात् । ततः परिणामिन्येवार्थे यथोक्तं १५
कर्मोपपद्यते ।

न चेदमर्थादर्थान्तरम्; तथाभूतस्यास्योपलब्धिबलक्षणप्राप्तस्या-
नुपलम्भेनासत्त्वात् । प्रयोगः—यदुपलब्धिबलक्षणप्राप्तं सन्नोप-
लभ्यते तन्नास्ति यथा क्वचित्प्रदेशे घटः, नोपलभ्यते च विशिष्टा-
र्थस्वरूपव्यतिरेकेण कर्मेति । न चोपलब्धिबलक्षणप्राप्तत्वमस्याऽ- २०
सिद्धम्; “संख्या परिमाणानि पृथक्त्वं संयोगविभागी परत्वाप-
रत्वे कर्म च रूपिसमवायाच्चाक्षुषाणि” [वैशे० सू० ४।१।११]
इत्यभिधानात् । तन्न कर्मपदार्थोपि परेषां घटते ।

नापि सामान्यपदार्थः; तस्य पराभ्युपगतसभावस्य प्रागेव^३
प्रतिबिद्धत्वादिति । २५

विशेषपदार्थोऽप्यनुपपन्नः । विशेषां हि नित्यद्रव्यवृत्तयः परमा-

१ निरस्यसाऽविचलितस जीवादेः । २ सर्वदाऽविशिष्टस सात्क्रियासमवेतस्य
सादिति सन्दिग्धानैकान्तिकत्वे सत्याह । ३ गन्तव्यमेवागन्तव्यमेवैकान्तप्रसङ्ग-
लक्षणः । ४ सर्वदाऽनुवत् । ५ लम्बावसरो हि सौगतो भूते—अर्थसाक्षणिकैकरूपत्वे
क्रिया न घटते यदि क्षणिकैकरूपत्वे घटित्यत्र इत्याशङ्क्यामाह । ६ बौद्धमतानुसारेण-
दाहरणम् । ७ सर्वदाऽक्षणिके क्षणिके वार्थैर्भवति न घटते मतः । ८ कर्मरूपतया
परिणतो विशिष्टः । ९ विशेषणमस्तिमित्युक्ते सत्याह । १० सामान्यलिप्युपगतमेव ।
११ नित्यद्रव्यवृत्तयोऽसन्त्यावृत्तयोऽप्येवो विशेषाः, विशेषा इति यदुपपन्नानान्तं
विशेषितम् । १२ सामान्यरहितनित्यद्रव्यवृत्तयोऽस्या विशेषाः ।

ष्वाकाशकालदिगात्ममनस्सु वृत्तेरत्यन्तव्यावृत्तिबुद्धिहेतवः । ते च जगद्विनाशारम्भकोटिभूतेषु परमाणुषु मुक्तात्मसु मुक्तमनस्सु चान्तेषु भवा 'अन्त्याः' इत्युच्यन्ते, तेषु स्फुटतरमालक्ष्यमाणत्वात् । वृत्तिस्तेषां सर्वसिद्धेव परमाण्वादी नित्ये द्रव्ये विद्यते ५ एव । अत एव 'नित्यद्रव्यवृत्तयोऽन्त्याः' इत्युभयपदोपादानम् ।

व्यावृत्तिबुद्धिविषयत्वं च विशेषाणां सद्भावसाधकं प्रमाणम् । यथा ह्यस्सदादीनां गैवादिषु आकृतिगुणक्रियावयवैसंयोगनिमित्तोऽभ्वादिभ्यो व्यावृत्तः प्रत्ययो दृष्टः, तथाथा- 'गौः, शुक्लः, शीघ्रगतिः, पीनककुदः, महाघण्टः' इति यथाक्रमम् । तथासद्विशिष्टानां १० योगिनां नित्येषु तुल्याकृतिगुणक्रियेषु परमाणुषु मुक्तात्ममनस्सु चान्यनिमित्तभावे प्रत्याधारं यद्बलात् 'विलक्षणोयं विलक्षणो-यम्' इति प्रत्ययप्रवृत्तिस्ते योगिनां विशेषप्रत्ययोन्नीतसत्त्वा अन्त्या विशेषाः सिद्धाः ।

इत्यपि सामिप्रायप्रकाशनमात्रम्, तेषां लक्षणासम्भवतोऽस- १५ त्वात् । तथाहि-यवेतेषां नित्यद्रव्यवृत्तित्वादिकं लक्षणमभिहितं तदसम्भवदोषदुष्टत्वादलक्षणमेव; यतो न किञ्चित्सर्वथा नित्यं द्रव्यमस्ति, तस्य पूर्वमेव निरस्तत्वात् । तद्भावे च तद्वृत्तित्वं लक्षणमेषां दूरोत्सारितमेव ।

यथायो (अ-यो) विप्रभवविशेषप्रत्ययबलादेषां सत्त्वं साध्यते; २० तदप्ययुक्तम्; यतोऽण्वादीनां स्वस्वभावव्यवस्थितं स्वरूपं परस्परसङ्कीर्णरूपं वा भवेत्, सङ्कीर्णस्वभावं वा? प्रथमे विकल्पे स्वत एवासङ्कीर्णाण्वादिरूपोपलम्भाद्योगिनां तेषु वैलक्षण्यप्रति-पत्तिर्भविष्यतीति व्यर्थमपरविशेषपदार्थपरिकल्पनम् । द्वितीये विशेषाख्यपदार्थान्तरसन्निधानेपि परस्परानिमित्तिषु परमाण्वा- २५ दिषु तद्बलाद्वावृत्तप्रत्ययो योगिनां प्रवर्त्तमानः कथमभ्रान्तः? स्वरूपतोऽव्यावृत्तरूपेष्वण्वादिषु व्यावृत्ताकारतया प्रवर्त्तमान-स्यास्याऽतासिंस्तद्ब्रह्मणरूपतया भ्रान्तत्वानतिक्रमात्? तथा वैत-त्प्रत्यययोगिनस्तेऽयोगिन एव स्युः ।

१ जसादयं सर्वथा व्यावृत्त इत्यादिरूपेण । २ अन्तेऽजसाने भवन्ति सन्धीति यावत्, वेभ्योऽपरे विशेषा न सन्धीलभ्यः, सामान्यरूपेभ्यो विशेषेभ्योऽपरे गुणावयो विशेषाः सन्ति, यस्मिन् नापरे किन्नेवेव वैशिष्ट्यं समाप्यते । ३ लब्धगुणादिरूपेषु विशेषेषु । ४ आकृतिः=जातिः । ५ गुणः=वेत्तादिः । ६ क्रिया गच्छसादिः । ७ भवयवः ककुदादिः । ८ घण्टादिभिः । ९ सन्नीतं=जातम् । १० द्रव्यपरीक्षाप्रवृत्तेः । ११ सङ्कीर्णरूपे । १२ तत्सासङ्कीर्णस्य । १३ भ्रान्तप्रत्ययसम्बन्धिन इत्यर्थः ।

यदि च विशेषाख्यपदार्थान्तरव्यतिरेकेण विलक्षणप्रत्ययो-
त्पत्तिर्न स्यात्, कथं तर्हि विशेषेषु तस्योत्पत्तिस्तत्रापरविशेषा-
भावात् ? भावे वा अनवस्था, 'नित्यप्रव्यवृत्तयः' इत्यभ्युपगमस्त-
तिश्च स्यात् । अथ सत एवात्रान्योन्यवैलक्षण्यप्रतिपत्तिः, तर्हि
परमाणादीनामप्यत एव तत्प्रत्ययप्रवृत्तिर्मविष्यतीति कृतं विशेषे-
षाख्यपदार्थपरिकल्पनया ।

अथ विशेषेष्वपरविशेषयोगाद्भावुत्तद्विपरिकल्पनायामनव-
स्थादियौघकोपपत्तेरुपचारात्तेषु तद्गुणैः । ननु कोयं तद्गुणैरुप-
चारे नाम ? असतो वस्तुस्वभावस्य विषयत्वेनाक्षेपश्चेत्, कथं
नास्या मित्यात्वं तद्योगिनां आयोगित्वम् ? १०

किञ्च, असौ वस्तुस्वभावो विषयत्वेनाक्षिप्यमाणः संशयत्वेना-
क्षिप्यते, विपर्यस्तत्वेन वा ? तत्राप्ये पक्षे व्यावृत्तरूपतया चलित-
प्रतिपत्तिविषयाणां विशेषाणां यथावत्प्रतिपत्त्यसम्भवात्तद्योगि-
नोऽयोगित्वमेव । द्वितीयेष्वेतदेव दूषणम्, विशेषरूपविकलानपि
तान् विशेषरूपतया प्रतिपद्यमानस्याऽयोगित्वप्रसङ्गविशेषात् । १५

यदि च बाँधकोपपत्तेर्विशेषेषु व्यावृत्तद्विनिर्नापरविशेषनिव-
न्धना, तर्हि परमाणादिष्वसौ तन्निवन्धना नाभ्युपगन्तव्या तद्-
विशेषात् । परमाणादौ हि विशेषेष्वन्योन्यं व्यावृत्तद्व्युत्पत्तौ
सकलविशेषैर्भ्यः परमाणूनां व्यावृत्तद्विनिर्घोषान्तरात्स्यादित्यन-
वस्थी । सतस्तेषां ततो व्यावृत्तद्विहेतुत्वेऽन्योन्यमपि तद्देतुत्वं २०
सत एव स्यादिति व्यर्थमर्थान्तरविशेषपरिकल्पनम् ।

ननु यथाऽमेभ्यादीनां सत एवाद्युचित्वमन्वेषां तु भावानां
तद्योगात्तद्येहापि तत्त्वभावत्वाद्द्विशेषेषु सत एव व्यावृत्तप्रत्य-
यहेतुत्वं परमाणादिषु तु तद्योगात् ।

किञ्च, अतदात्मिकेष्वन्यैर्निमित्तः प्रत्ययो भवत्येव, यथा २५
प्रदीपौत्पत्त्यादिषु, न पुनः पट्यादिभ्यः प्रदीपे, एवं विशेषैर्भ्यः
एवाण्वादी विशिष्टः प्रत्ययो नाण्वादिभ्यस्तत्र, इत्यन्यसमीचीनम् ;

१ विशेषेषु विशेषाणां प्रवृत्तेः । २ आदिना नित्यप्रवृत्तय एतदभ्युपगमस्तद्विशेषेति ।
३ विशेषेषु । ४ तस्य=व्यावृत्तस्य । ५ अपरविशेषा उपचारवृत्तास्तस्योणात्तेषु भावोपि
प्रत्यय उपचाररूप इत्यर्थः । ६ असतो वैलक्षण्यस्य । ७ अन्योन्यव्यावृत्तरूपस्य ।
८ वैलक्षण्यरूपः । ९ उपचाररूपः । १० अनवस्थादिक्रमो वाचकः । ११ पर-
माणादिभ्यः सर्वेषां भिद्येभ्यः । १२ विशेषान्तराणामन्येभ्य इत्यादिप्रकारेण ।
१३ अण्वादिषु अणुस्य मुक्तमनस्तु च । १४ अन्यो=विशेषः । १५ अन्यनिमित्तात् ।
१६ इमे पट्यादय इति प्रत्ययः । १७ सर्ववाग्भित्तेभ्यः ।

यतोऽमेव्याद्यशुचिद्रव्यसंसर्गान्भोदकादयो भावा प्रच्युतप्राक्तन-
शुचिस्वभावा अन्ये एवाऽशुचिरूपतयोत्पद्यन्ते इति युक्तमेवामन्य-
संसर्गादशुचित्वम् । न चाण्वादिष्वेतैत्सम्भवति, तेषां नित्यत्वादेव
प्राक्तनाविवेकरूपपरित्यागेनापरविवेकरूपतयात्रुपप(त्रुत्प)त्तेः ।
५ प्रदीपदृष्टान्तोप्येत एवासङ्गतः; पटादीनां प्रदीपादिपदार्थान्तरो-
पाधिकस्य रूपान्तरस्योत्पत्तेः, प्रकृते च तदसम्भवात् ।

अनुमानवाधितश्च विशेषसङ्गावाभ्युपगमः; तथाहि-विवादा-
धिकरणेषु भावेषु निलक्षणप्रत्ययस्तादृशतिरिक्विशेषनिबन्धनो
न भवति, व्यावृत्तप्रत्ययत्वात्, विशेषेषु व्यावृत्तप्रत्ययवदिति ।
१० तत्र विशेषपदार्थापि श्रेयान् साधकामावाद्वाधकोपपत्तेश्च ।

नापि समवायपदार्थोऽनवद्यतल्लक्षणाभावात् । ननु च “अयुत-
सिद्धानामाचार्याचारभूतानामिद्देदम्प्रत्ययहेतुयैः सम्बन्धः स सम-
वायः ।” [प्रश्न० भा० पृ० १४] इत्यनवद्यतल्लक्षणसङ्गावात्तद-
भावोऽसिद्धः । न चान्तरालाभावेन ‘इह ग्रामे वृक्षाः’ इतीद्देद-
१५ म्प्रत्ययहेतुना व्यभिचारः; सम्बन्धग्रहणात् । न चासौ सम्ब-
न्धोऽभावरूपत्वात् । नापि ‘इहाकाशे शकुनिः’ इति प्रत्ययहेतुना
संयोगेन, ‘आधाराधेयभूतानाम्’ इत्युक्तेः । न ह्याकाशस्य व्यापि-
त्वेनाधस्तादेव भावोस्ति शकुनेरुपर्यपि भावात् । नापि ‘इह कुण्डे
वृधि’ इतिप्रत्ययहेतुना; ‘अयुतसिद्धानाम्’ इत्यभिधानात् । न खलु
२० तन्नुपटादिवदधिकुण्डादयोऽयुतसिद्धाः, तेषां युतसिद्धेः सङ्गा-
वात् । युतसिद्धिश्च पृथगाभयवृत्तित्वं पृथगेतिमत्त्वं चोच्यते ।
न चासौ तन्नुपटादिव्यव्यस्ति; तन्तून्विहाय पटस्यान्यत्रावृत्तेः ।

तथापि ‘इहाकाशे वाच्ये वाचक आकाशशब्दः’ इति वाच्यवा-
चकभावेन ‘इहात्मनि ज्ञानम्’ इति विषयविषयिर्भावेन वा व्यभि-
२५ चारोऽर्थायुतसिद्धेराधाराधेयभावस्य च भावात्; इत्यप्यसाम्य-
तम्; उभयार्थवधारणोऽऽश्रयणात् । एतयोश्च युतसिद्धेष्वन्यना-

१ परमते । २ विशेषेभ्यो व्यावृत्तरूपत्वेनोत्पत्तिमत्त्वम् । ३ परमाण्वादीना
नित्यत्वादेव । ४ प्रकाशकक्षणम् । ५ प्रादकप्रमाणान्भावात् । ६ गुणगुण्वादीनाम् ।
७ आकाशपरमाण्वादीनां युतसिद्धत्वम्यवसापनार्थमिदं कक्षणम् । ८ न इदोत्पत्त्य-
हेतुः स समवाय इत्युच्यमाने । ९ कारणभूतेन । १० कारणभूतेन । ११ अयुतः-
अणुवत् । १२ पटः, मह्योर्वथा । १३ जैष्वोर्वथा वा । १४ अयुतसिद्धानाम-
पार्थाधारभूतानामित्युक्तपदोपादानेति । १५ सम्बन्धेन । १६ आकाशतत्रावृत्त-
योरेतत्प्रधानयोश्च । १७ आपार्थाधारभूतानामयुतसिद्धानां समवाय इत्येति न निबन्ध
इति भावः । १८ अयुतसिद्धानामापार्थाधारभूतानामिलम् । १९ अनपारण्य-
यमकारः, अयुतसिद्धानामेवापार्थाधारभूतानामेव समवाय इति ।

धाराधेयभूतेष्वपि च भावात्, घटतच्छब्दज्ञानवत् । नन्वेवम्
 'अयुतसिद्धानामेव' इत्यवधारणेप्यव्यभिचारात् 'आधाराधेयभूता-
 नाम्' इति वचनमनर्थकम्, 'आधाराधेयभूतानामेव' इत्यवधारणे
 'अयुतसिद्धानाम्' इतिवचनवत्, ताभ्यामव्यभिचारात्, इत्यप्य-
 सारम्, एकद्रव्यसमवायिनां रूपरसादीनामयुतसिद्धानामेव पर-
 स्परं समवायाभावात् एकार्थसमवायसम्बन्धव्यभिचारनिवृत्त्यर्थ-
 मुत्तरावधारणम् । न ह्ययं वाच्यवाचकभावादिबुधुतसिद्धानामपि
 सम्भवति । तयोत्तरावधारणे सत्यपि आधाराधेयभावेन संयो-
 गविशेषेण सर्वदाऽनाधाराधेयभूतानामसम्भवात् व्यभिचारे
 मा भूदित्येवमर्थं पूर्वार्धधारणम् । १०

इति मेदकलक्षणस्याशेषदोषरहितत्वादिर्दुभ्यते-तन्तुपटा-
 द्यः सामान्यतर्हदाद्यो वा 'संयुक्ता न भवन्ति' इति व्यवहर्त-
 व्यम्, नियमेनायुतसिद्धत्वादाधाराधेयभूतत्वाच्च, ये तु संयुक्ता
 न ते तथा तथा कुण्डवदराद्यः, तथा चैते, तस्मात्संयोगिनो न
 भवन्तीति । यद्वा तन्तुपटादिसम्बन्धः संयोगो न भवति, निय- १५
 मेनायुतसिद्धसम्बन्धत्वाद्, ज्ञानात्मनोर्विषयविषयिभाववदिति ।

अत्र समवायस्य प्रमाणतः प्रतीतौ संयोगाद्वैकल्यणसाधनं
 युक्तम्, न चासौ तस्यास्ति, इत्यप्यसत्, प्रत्यक्षत एवास्य प्रतीतेः ।
 तथाहि-तन्तुसम्बन्ध एव पटः प्रतिमौसते तद्रूपाद्यम् पटादि-
 सम्बन्धाः, सम्बन्धाभावे सद्भाविग्न्यवहित्सेर्पप्रतिमासः स्यात् । २०

अनुमानाच्चासौ प्रतीयते; तथाहि-'इह तन्तुषु पटः' इत्यादी-
 प्रत्ययः सम्बन्धकार्योऽर्थाप्यमानेहप्रत्ययत्वात् इह कुण्डे दधीत्य-
 दिप्रत्ययवत् । न तावदयं प्रत्ययो निर्हेतुकः, कादाचित्कत्वात् ।

१ शब्दज्ञानं वाच्यं च शब्दज्ञाने, तस्य घटस्य शब्दज्ञाने तच्छब्दज्ञाने, घटस्य
 तच्छब्दज्ञाने चैति इन्द्रः । २ मूल्याच्चासौ घटतच्छब्दाधारेण चैति तस्य सिद्धौ,
 घटतच्छब्दाने ज्ञानममूल्याधारेण चैति तस्य सिद्धि इति । ३ आधाराधेयभूतानामिति वचनमनर्थक-
 मर्थमिदम् । आधाराधेयभावस्य रूपरसादायभावात् । ४ रूपरसादय एकार्थाः ।
 ५ आधाराधेयभूतानामेति । ६ मयमानधारणेनेव तदवधिवाच्यमित्युच्यतेः कुतो न
 मनवीत्याशङ्क्यात् । ७ अस्तिमर्थेति शङ्का इति । ८ अयुतसिद्धानामेति । ९ जनेन
 प्रकारेणधेयोपरहितमयुतसिद्धेतामिदमेदकलक्षणम्, इतरेभ्यो इत्यादिभ्यः समवायस्य
 भेदकत्वात्कलक्षणं भेदकमयुतसिद्धेत्यादि । १० अमेतन्नं प्रसक्त्यतिशेवात्तन्नुमानम् ।
 संयोगात् प्रतिषेधसम्भवात्सिद्धिर्वती भवति ततः परिषेधात्तुमानमित्यर्थः ।
 ११ भादिपदेन युग्मयुग्मिनः किनात्कलक्षणम् । १२ प्रत्ययवत् । १३ पटवद्रूपादीनाम् ।
 १४ इत्यात्मनि कृपात्वं इत्यादीहप्रत्ययेन वाच्यमानेन व्यभिचारपरिहारार्थमिदम् ।

नापि तन्नुहेतुकः पटहेतुको वा; तत्र 'तन्त्वः, पटः' इति वा प्रत्ययप्रसङ्गात् । नापि वासनाहेतुकः; तस्याः कारणरहितायाः सम्भवाभावात् । पूर्वज्ञानस्य तत्कारणत्वे तदपि कृतः स्यात् ? तत्पूर्ववासनातश्चेत्; अनवस्था । ज्ञानवासनयोरनावित्वादयमदोषश्चेत्; ५ न; एवं नीलादिसन्तानान्तरससन्तानसंविदद्वैतादिसिद्धेरप्यभावात्पुष्पात्, अनादिवासनीवशादेव नीलादिप्रत्ययस्य सैतोऽवभासस्य च सम्भवात् । नापि तादात्म्यहेतुकोऽयम्; तादात्म्यं ह्येकत्वम्, तत्र च सम्बन्धाभाव एव स्यात् द्विष्ट(ष्ट)त्वात्तस्य । न च तन्नुपटयोरेकत्वम्; प्रतिभासमेवाद्विरुद्धधर्माध्यासात् परिमाणसंख्या-
 १० जातिभेदाच्च षटपटवत् । नापि संयोगहेतुकः; युतसिद्धेर्वैधायैषु संयोगस्य सम्भवात् । न चात्र समवायपूर्वकत्वं साध्यते येन ह्यन्तः साध्यविकलो हेतुश्च विरुद्धः स्यात् । नापि संयोगपूर्वकत्वं येनाभ्युपगमविरोधः स्यात् । किं तर्हि ? सम्बन्धमात्रपूर्वकत्वम् । तस्मिन् सिद्धे परिशेषात्समवाय एव तज्जनको भविष्यति ।

१५ त(य)श्चेदम्- 'विवादास्पदमिदमिहेति ज्ञानं न समर्थायपूर्वकमवाधितेहज्ञानत्वात् इह कुण्डे दधीतिज्ञानवत्' इति विशेषे(ष) विरुद्धानुमानम्; तत्सकलानुमानोच्चेद्वैकत्वादनुमानवादिनां न प्रयोक्तव्यम् ।

यच्चोच्यते-इदमिहेति ज्ञानं न समवायालम्बनम्; तत्सत्यम्;
 २० विशिष्टाधारविषयत्वात् । न हि 'इह तन्नुषु पटः' इत्यादीहप्रत्ययः केवलं समवायमालम्बते; समवायविशिष्टतन्नुपटालम्बनत्वात् । वैशिष्ट्यं चानयोः सम्बन्ध इति ।

१ तन्वादी । २ सौम्यं प्रलाह । ३ निरूप्यज्ञानाद्वासना वासनातो निरूप्य-
 ज्ञानमिति बीबाहुरण । ४ सन्तानान्तरं च स्वसन्तानस्य तो नीलादीनां प्रादुर्भा-
 नीकसन्तानान्तरससन्तानी च स्वसंविदद्वैतादिस्य ज्ञानादेतादिमेलनः; तेषां सिद्धिरिति
 वाच्यम् । ५ नीलादेः समुत्पन्नमानो नीलं नीलमिति प्रत्ययः सत्रैव समुत्पन्नतो
 विषयमानाभीलादेः समुत्पन्नमानत्वात् । ६ कल्पनाश्लिष्टिपकस्वितवासानात् समुत्पन्नमानः
 सन्समुत्पन्नवत् । ७ ततोनादिवासनाहेतुकत्वमस्य प्रलयस्य नैलमैः । ८ कृतः ।
 ८ न तु नीलादेः । ९ जादिना सन्तानसंमहः । १० अन्यतोपवासाने द्वेष-
 प्रसक्तिस्त्रिपटावर्ष सतो विशेषणम् । ११ संविदद्वैतस्य । १२ जैनमतमात्रज्ञात् ।
 १३ सम्बन्धमात्रे साध्ये सम्बन्धविशेषसाधनात् । १४ किन्तु संयोगपूर्वकम् ।
 १५ विशेषणसमवायपूर्वकत्वेन विरुद्धसमवायपूर्वकत्वं तस्यानुमानम्, विशेषविद्व्या-
 नुमाने इदमुदाहरणं पर्वतः पर्वतलेवाग्निनाशिमात्र भवति दूयवत्सामान्यज्ञानस्यैविति ।
 १६ पर्वतोभित्ताभ्युत्पन्नत्वादित्यादेः सम्बन्धानुमानस्य बहुच्चेद्व्याजानं तस्य बहुगुण-
 धन्यत्वादिति भावः । १७ जैनादिना । १८ जैनादिना । १९ तस्य ज्ञानस्य ।

न चास्य संयोगवज्जानात्वम्, इहेति प्रत्ययाविशेषाद्विशेषलिङ्गाभावाच्च सप्रत्ययाविशेषाद्विशेषलिङ्गाभावाच्च संचावत् । न च सम्बन्धत्वमेव विशेषलिङ्गम्, अस्यान्यथासिद्धत्वात् । न हि संयोगस्य सम्बन्धत्वेन नानात्वं साध्यतेऽपि तु प्रत्यक्षेण भिन्नाश्रयसमवेतस्य क्रमेणोत्पादोपलब्धेः । समवायस्य चानेकत्वे सति अनुगतप्रत्ययोत्पत्तिर्न स्यात् । संयोगे तु संयोगत्वबलाजानात्वेपि स्यात् । न चैतत्समवाये सम्भवति; समवायत्वस्य समवाये समवायाभावात्, अन्यथानवस्था स्यात् । संयोगस्य गुणत्वेन द्रव्यवृत्तित्वात्, संयोगत्वं पुनः संयोगे समवेतमिति ।

न वैकत्वे समवायस्य द्रव्यत्वबहुणत्वस्यार्थमिव्यञ्जकं द्रव्यं क्रुतो न भवतीति वैच्यम् ? आधारशक्तिर्निर्यामकत्वात् । द्रव्याणां हि द्रव्यत्वाधारशक्तिरेव, गुणादेस्तु गुणत्वाधारशक्तिरिति । न चानुगतप्रत्ययजनकत्वेन सामान्यादस्याऽनेदः, भिन्नलक्षणयोगित्वात् ।

यद्वा, 'समवायीनि द्रव्याणि' इत्यादिप्रत्ययो विशेषणपूर्वको विशेष्यप्रत्ययत्वाद्दण्डीत्यादिप्रत्ययवत् इत्यतः समवायसिद्धिः । न चैन्येषामत्रैवानुपगः सम्भवति । किन्तर्हि ? समवायसंबन्ध । अतः स एव विशेषणम् । अप्रतिपन्नसमयस्य 'समवायी' इतिप्रतिमासाभावाद्स्याद्विशेषणत्वम्, दृष्टादावपि समानं तस्य

१ सप्रत्ययाविशेषाद्विशेषलिङ्गाभावाच्च संचाया नानात्वं नास्ति यथा । २ समवायो नाना सम्बन्धत्वात्संयोगवदिति । ३ संयोगस्य । ४ कर्त्तुं समवायोऽर्त्तं समवाय इति । ५ ननु समवायेपि समवायत्वबलाजानात्वेप्यनुगतप्रत्ययोत्पत्तिः स्यादिति कङ्कणासाह । ६ सामान्यस्य । ७ समवायत्वस्य समवाये सङ्गावेऽपरः समवायः समवायत्वलापि समवायत्वसमवायेऽपरः समवायः समवाय इति । ८ तर्हि संयोगस्याप्यपरसंयोगपूर्वकत्वेनानवस्था क्रुतो न स्यादित्याह । ९ कर्त्तुं तदि संयोगत्वमित्याह । १० संयोगान्तरपक्षेवा वासीति भावः । ११ येन समवायेन द्रव्ये द्रव्यत्वं समवेतं तेनैव समवायेन शुभे शुभत्वमपि समवेतं समवायसैकत्वात्, तदव्याप्तनि समवेतस्य द्रव्यत्वस्य द्रव्यं यथाभिव्यञ्जकं भवति तथा शुभत्वस्याभिव्यञ्जकं क्रुतो न भवति एकसमवायसमवेतत्वमित्येवादिति भावः । १२ कैनादिना । १३ द्रव्यस्वरूपाणाः । १४ द्रव्यस्य । १५ षट्पादीनाम् । १६ द्रव्यत्वमेव स्वरूपशक्तिरिति भावः, निजा हि शक्तिः प्रविश्यादीना एविशीलादिकमेव । १७ शुभत्वादिकमेव स्वरूपं शक्तिः । १८ स्वाभिव्यसैकभिव्यञ्जकं नान्ययेति भावः । १९ अवाधिरानुगतप्रत्ययवहेदुः सामान्यमिति कङ्कणं सामान्यस्य, समवायस्य त्वनुगतसिद्धेस्तादि । २० दृष्टकङ्कणमित्येवमपूर्वकत्वमन । २१ तादात्म्यसंयोगादीनाम् । २२ समवायीनि द्रव्याणीति वचने । २३ विशेषणत्वम् । २४ अप्रतिपन्नत्वम् ।

दण्डाद्युल्लेखेन 'दण्डी' इत्यादिप्रत्ययानुत्पत्तेः । दण्डादेरभिधान-
नयोजनाभावेऽपि 'अनेन वस्तुना तद्वानयम्' इत्यनुपगमप्रतीतिः
'संसृष्टा एते तन्नुपटादयः' इति सम्बन्धमात्रेऽपि तुल्या । केषुच
सङ्केताभावात् 'अयं समवायः' इति व्यपदेशाभावः । प्रतिपद्यस-
५ मयस्तु दण्डादेरिव समवायस्यापि विशेषणतामभिधाननयोजना-
द्वारेण प्रतिपद्यते ।

यच्चान्यत्समवाये बाधकमुच्यते—'नानिष्पन्नयोः समवायः
सम्बन्धिनोरनुत्पादे सम्बन्धाभावात् । निष्पन्नयोश्च संयोग
एव । असम्बन्धे चास्य 'समवायिनोः समवायः' इति व्यपदेशा-
१० नुपपत्तिः । सम्बन्धे वा न स्वतोऽसौ, संयोगादीनामपि तथा
तत्प्रसङ्गात् । परतन्नेदनवस्था । न च शुणादीनामाधेयत्वं निष्क्रिय-
त्वात् । गतिप्रतिबन्धकध्याहारो जलादेर्घटादिवत् । तथा न
स्वरूपसंश्लेषः समवायो यतस्तस्मिन्सत्येकत्वमेव न सम्बन्धः ।
नापि पारतन्त्र्यम्; अनिष्पन्नयोराधारस्यैवासत्त्वात् । स्वतन्त्रेण
१५ निष्पन्नयोश्च न पारतन्त्र्यम्; इत्यप्यसमीचीनम्; यतो न निष्पन्न-
योरनिष्पन्नयोर्वा समवायः, स्वकारणसत्तासम्बन्धस्यैव निष्पत्ति-
रूपत्वात् । न हि निष्पत्तिरन्या समवायस्यान्यो येन पौर्वापर्यम् ।

एतेनै 'रूपसंश्लेषः पारतन्त्र्यं वा' इत्याद्यपास्तम् । नापि समवा-
यस्य सम्बन्धान्तरेण सम्बन्धो युक्तो येनानवस्था स्यात्, सम्ब-
२० न्धस्य समानलक्षणसम्बन्धेन सम्बन्धस्यान्यत्रादृष्टेः संयोगैवत् ।
अन्नेरुष्णतावस्तु स्वत एवास्य सम्बन्धो युक्तः स्वत एव सम्बन्ध-
रूपत्वात्, न संयोगादीनां तदभावात् । न श्लोकस्य स्वभावोऽन्यै-
स्यापि, अन्यथा स्वतोऽन्नेरुष्णत्वदर्शनाज्जलादीनामपि तत्स्यात् ।

यच्चोक्तम्—'निष्क्रियत्वात्तेषां नाधेयत्वम्' इति, तदप्यसत् ।
२५ संयोगिद्रव्यविलक्षणत्वाद्गुणादीनाम्, संयोगिनां सक्रियत्वेनैव
तेषां निष्क्रियत्वेऽप्याधाराधेयभावस्य प्रत्यक्षेण प्रतीतेऽप्येति ।

१ समवायस्याभिधाननयोजनाभावेऽपि संसृष्टा एते तन्नुपटादय इति सम्बन्धमात्रेऽपि
अनुपगमप्रतीतिः । २ नैनादिना । ३ अतो समवायः सम्बन्धिनोरनिष्पन्नयोः साधि-
प्यन्नोर्धेति विकल्पद्वयं इति निषाय दूषयति । ४ किञ्चित्तौ समवायः समवायिन्वा-
मसम्बन्धः सम्बन्धो वेति विकल्पद्वयं निषाय अथमविकल्पे दूषयति । ५ सम्बन्धेऽस्त्वताः
परतो वेति विकल्पद्वयमत्रापि भोज्यम् । ६ स्वरूपयोः स्वभावयोः संयोगः सम्बन्धः ।
७ स्वकारणसत्तासम्बन्धस्यैव निष्पत्तिरूपत्वादित्यनेन अन्नेन । ८ समवायिना उच्यते ।
९ अपरसमवायेन । १० संयोगिनोः संयोगस्त च समवायेन सम्बन्धसत्तात्वात् ।
११ कथं तर्ह्यस्य सम्बन्ध इत्याद्युक्तवानामाह । १२ संयोगस्य । १३ शुण्डीनाम् ।
१४ इत्युक्तवान् । १५ संयोगिनां सक्रियत्वादेव तेषामाधेयत्वमिति भावः ।

अत्र प्रतिविधीयते । यथावदुक्तमयुतसिद्धेत्यादि; तत्रेदमयुत-
सिद्धत्वं शास्त्रीयम्, लौकिकं वा ? तत्राद्यः पक्षोऽयुक्तः, तन्नुप-
टादीनां शास्त्रीयायुतसिद्धत्वस्यासम्भवात् । वैशेषिकशास्त्रे हि
प्रसिद्धम्-अपृथगाभयवृत्तित्वमयुतसिद्धत्वम्, तत्रेह नास्त्येव,
'तन्तूनां स्थावयवांशुषु वृत्तेः पटस्य च तन्तुषु' इति पृथगाभय- ५
वृत्तित्वसिद्धेरपृथगाभयवृत्तित्वमसदेव । यत् गुणकर्मसामान्या-
नामप्यपृथगाभयवृत्तित्वाभावेः प्रतिपस्य्यः । लोकाप्रसिद्धैकमात्र-
नवृत्तिरूपं त्वयुतसिद्धत्वम् दुग्धाम्भसोर्युतसिद्धयोरप्यस्तीति ।

ननु यथा कुण्डद्वयवयवाभ्यां पृथग्भूतावाभ्यां तयोर्भ्रं
कुण्डस्य द्वाभ्यां वृत्तिर्न तथात्र चत्वारोर्थाः प्रतीर्यन्ते-^{१०} 'द्वावाभ्यां १०
पृथग्भूतौ द्वौ र्वाभ्यपिनौ, तन्तोरेव स्थावयवापेक्षयाभयित्वात्
पटापेक्षया चाभयत्वात्त्रयाणामेवार्थानां प्रसिद्धेः, 'पृथगाभयाभ-
यित्वं युतसिद्धिः' इत्यस्य युतसिद्धिलक्षणस्यामीवाद्युतसिद्धत्वं
तेषामिति चेत्, कथमेवमाकौशादीनां युतसिद्धिः स्यात् ? तेषाम-
न्याभयविवेकतः पृथगाभयाभयित्वाभावात् । १५

'नित्यानां च पृथग्गतिमत्त्वं' इत्यपि तत्रासम्भाव्यम्; न खलु
विमुद्भव्यपरमाणुवद्विमुद्भवीणामन्यतरपृथग्गतिमत्त्वं परमाणुद्व-
यवतुभयपृथग्गतिमत्त्वं वा सम्भवति, अविमुत्त्वप्रसङ्गात् । तथैकै-
द्रव्याभर्याणां गुणकर्मसामान्यानां परस्परं पृथगाभयवृत्तेरभावाद-
युतसिद्धिप्रसङ्गतोऽन्वोन्यं समवायः स्यात् । स च जैष्ठस्तेषामा- २०
भयाभयिसमवाय (विभाषा) भावात् । इतरेतराभयभावा (यश्च-
समवाय) सिद्धौ हि पृथगाभयसमवायित्वलक्षणा युतसिद्धिः,
तत्सिद्धौ च तन्निषेधेन समवायसिद्धिरिति ।

ननु लक्षणं विद्यमानस्यार्थस्यान्यतो जेदेनावस्थापकं न ह
सङ्गावकारकम्, तेनायमवोच्येत्, ननु ज्ञापकपक्षे सुतरामितरे- २५
तराभयत्वम् । तथाहि-नाऽज्ञातया युतसिद्ध्या समवायो ज्ञातुं
शक्यते, अनभिगतञ्चासौ न युतसिद्धिमवस्थापयितुमुत्सहते इति ।

१ गुणादीनां गुणवदादिषु वृत्तिरेवा च स्थावयवेत्याजवृत्तेषु वृत्तिरिति भावः ।
२ अतिव्याप्तिदूषणसिद्धम् । ३ कुण्डं च दधि च घनोक्ते तयोरेवयौ । ४ अतिकर-
मृतयोः । ५ तन्नुपटादिषु । ६ ते के चत्वारोर्थां वस्तुके सत्ताह । ७ कुण्डद्वयवयवौ ।
८ आभयो दधिकुण्डावयवलक्षणी विधेते ययोर्दधिकुण्डबोलावामयिनौ । ९ समवाये ।
१० ततश्च । ११ ततश्च तेषां समवायसिद्धिरिति भावः । १२ आदिना जात्यसङ्-
क्षिप्तं च । १३ विवेकः=जयावः, व्यापकत्वात्तेषामेकमववृत्तेः । १४ पृथगामया-
मयित्वं युतसिद्धिलक्षणं निलेषु यवपि नास्ति तथापि पृथग्गतिमत्त्वं अभिप्रेतयित्वाह ।
१५ लक्षणम् । १६ मन्वे । १७ यकद्रव्यं=विद्रु जात्याकादादि । १८ वचः ।

न चातो लक्षणात्समवायः सिद्ध्यति व्यभिचारात् । तथाहि-निय-
मेनायुतसिद्धसम्बन्धत्वमाधारधेयभूतसम्बन्धत्वं च 'आकाशे
वाच्ये वाचकस्तच्छब्दः' इति वाच्यवाचकभावे 'आत्मनि विषय-
भूते अहमिति ज्ञानं विषयि' इति विषयविषयिभावे च विद्यते
५ इति । ननु सर्वस्य वाच्यवाचकवर्गस्य विषयविषयिवर्गस्य च
नियमेनायुतसिद्धसम्बन्धत्वासम्भवो युतसिद्धेष्वप्यस्य सम्भ-
वाद्दृष्टतच्छब्दज्ञानवत्, अतो न व्यभिचारः, इत्यप्यसारम्,
वर्गापेक्षयापि लक्षणस्य विपक्षकदेशाच्चैर्व्यभिचारित्वात् । इदं च
विपक्षकदेशाद्व्यावृत्तस्य सर्वैरप्यनैकान्तिकत्वम् ।

१० यच्चोक्तम्-तन्तुपटादयः संयोगिनो न भवन्तीत्यादि, तत्स-
त्यम्; तत्र तादात्म्योपगमात् ।

यत्तूक्तम्-प्रत्यक्षत एव समवायः प्रतीयत इत्यादि, तद्युक्तम्;
असाधारणस्वरूपत्वे हि सिद्धे सिध्येदर्थानां प्रत्यक्षता पृथुबुधो-
दराद्याकारघटादिवत् । न चास्य तत्सिद्धम् । तद्धि किमयुतसिद्ध-
१५ सम्बन्धत्वम्, सम्बन्धमात्रं वा ? न तावदयुतसिद्धसम्बन्धत्वम्,
सर्वैरप्रतीयमानत्वात् । यत्पुनर्यस्य स्वरूपं तत्तेनैव स्वरूपेण सर्व-
स्यापि प्रतिभासते यथा पृथुबुधोदराद्याकारतया घट इति ।
न चैकस्य सामान्यात्मकं स्वरूपं युक्तम्; समानानामभावे सामा-
न्याभावोद्भूतगने गगनत्ववत् । नापि सम्बन्धमात्रं समवायस्यासा-
२० धारणं स्वरूपम्; संयोगादावपि सम्भवात् ।

किञ्च, तद्रूपतयासी सम्बन्धबुद्धौ प्रतिभासेत, इहेति प्रत्यये
वा, समवाय इत्यनुभवे वा ? यदि सम्बन्धबुद्धौ, कोर्यं सम्बन्धो
नाम-किं सम्बन्धत्वजातियुक्तः सम्बन्धः, अनेकोपादानजनितो
वा, अनेकाश्रितो वा, सम्बन्धबुद्ध्युत्पादको वा, सम्बन्धबुद्धिवि-
२५ षयो वा ? न तावत्सम्बन्धत्वजातियुक्तः; समवायस्यासम्बन्धत्व-
प्रसङ्गात् । द्रव्यादित्रयान्यतरूपत्वाभावेन समवायान्तरासत्त्वेन
चात्र सम्बन्धत्वजातेरप्रवर्तनात् । अथ संयोगवदनेकोपादानज-
नितः; तर्हि घटादेरपि सम्बन्धत्वंप्रसङ्गः । नाप्यनेकाश्रितः; घट-

१ विषये । २ शब्दश्च ज्ञानं च शब्दज्ञाने, तस्य घटस्य शब्दज्ञाने तच्छब्दज्ञाने
इति इन्द्रः । ३ वाच्यवाचकभावविषयविषयिभावसमूहे विषये नास्ति तथापि तल्लैक-
देशाद्भूतित्वादनैकान्तिकः । ४ असाधारणस्वरूपम् । ५ समवायस्य । ६ समवायेन
सह समानानां वस्तुनाम् । ७ तल्लैकत्वात्सामान्यज्ञानेकभूतित्वात् । ८ अयं सम्बन्ध
इति ज्ञाने । ९ समवायस्य । १० सम्बन्धत्वजातेरुत्सर्वं समवाये । ११ समवायान्तर-
रासत्वं च समवायसैकत्वात्प्रवृत्तत्वम् । १२ अनेकोपादानजनितत्वाविशेषात् ।

त्वादेः सम्बन्धत्वानुपङ्गात् । नापि सम्बन्धबुद्ध्युत्पादकः, लोचनो-
देरपि तत्त्वप्रसक्तेः । नापि सम्बन्धबुद्धिविषयः, सम्बन्धसम्बन्धि-
नोरेकज्ञानविषयत्वे सम्बन्धिनोपि तद्रूपत्वानुपङ्गात् । न च प्रति-
विषयं ज्ञानमेदः, मैत्रकज्ञानाभावप्रसङ्गात् ।

अथेहबुद्धौ समवायः प्रतिभासते, नैः इहबुद्धेरधिकरणाध्य-
वसायरूपत्वात् । न धान्यस्त्रिणाकारे प्रतीयमानेऽन्याकारोर्थः
कल्पयितुं युक्तोतिप्रसङ्गात् ।

अथ समवायबुद्ध्यासौ प्रतीयते; तन्न; समवायबुद्धेरसम्भवात् ।
नहि 'पटे तन्तवः, अयं पटः, अयं च समवायः' इत्यन्योन्यवि-
विकं भित्तयं बहिर्भाष्याकारतया कस्याञ्चित्प्रतीतौ प्रतीयते तथाजु-
१० भवामावात् ।

सर्वसमवाय्यनुगतैकस्वभावो ह्यसौ तत्र प्रतिभासेत, तद्भा-
वृत्तस्वभावो वा ? न तावत्तद्भाष्यवृत्तस्वभावः; सर्वतो व्यावृ-
त्तस्वभावस्यान्यासम्बन्धित्वेन गगनाम्भोजवत्समवायत्वानुपपत्तेः ।
नापि तदनुगतैकस्वभावः; सामान्यादेरपि समवायत्वानुपङ्गात् । १५
न चाखिलसमवाय्यऽप्रतिभासे तदनुगतस्वभावतयासौ प्रत्यक्षेण
प्रत्येतुं शक्यः । अथानुगतव्यावृत्तरूपव्यतिरेकेण सम्बन्धरूपत-
यासौ प्रतीयते; तन्न; सम्बन्धरूपतायाः प्रागेव कृतोत्तरत्वात् ।

यदप्युक्तम्-'इह तन्तुपु पटः' इत्यादीहप्रत्ययः सम्बन्धकार्यो-
ऽवाध्यमानेहप्रत्ययत्वादिह कुण्डे वृषीत्यादिप्रत्ययवदित्यनुमाना-
२० ष्चासौ प्रतीयते' इत्यादि; तदप्यसमीक्षिताभिधानम्; हेतोरप्यथा-
सिद्धत्वात् । तदसिद्धत्वं च 'इह तन्तुपु पटः' इत्यादिप्रत्ययस्य
धर्मिणोऽसिद्धेः । अप्रसिद्धविशेषणञ्चायं हेतुः; 'पटे तन्तवो धुंसे
शाखाः' इत्यादिरूपतया प्रतीयमानप्रत्ययेन 'इह तन्तुपु पटः' इति
प्रत्ययस्य बाध्यमानत्वात् । स्वरूपासिद्धञ्चायम्; तन्तुपटप्रत्यये २५

१ आदिपदेन प्रकाशादेव, लोचनद्वारेण वस्तु सम्बन्धबुद्धिं भवति । २ प्रति-
विषयं ज्ञानमेवात्कर्म सम्बन्धिनोरेकज्ञानविषयत्वं यतः सम्बन्धिनोऽपि सम्बन्धरूपता
स्यादित्याशङ्क्यामाह । ३ इति चेदिति शेषः । ४ समवायस्यावाप्येवभावकक्षण-
सम्बन्धाकारोहेखित्वात्समाधान इति न वदते । ५ इति बुद्धेरपि सम्बन्धप्रत्ययत्वं कृतो
न स्यादित्युक्ते सलाह । ६ अधिकरणकक्षणे । ७ सम्बन्धकक्षणः । ८ वदप्रतिभासे
पटप्रतिभासप्रसङ्गात् । ९ कोऽयं सम्बन्धो नाम ? किं सम्बन्धत्वव्यतिरुक्तः इत्यादि-
रीला । १० प्रतिवादिनं प्रति । ११ भववनिनि । १२ इह तन्तुपु पट इति ध्वन-
नेष्ववविनो वृत्तिद्वारेण प्रत्ययव्यतिरेकतया तदेव पटे तन्तवो इति शब्दा इत्यवविनि-
वचनानां वृत्तिद्वारेणापि प्रत्ययव्यतिरेकप्रसिद्धेन यतः ।

इह प्रत्ययत्वस्यानुभवाभावात्, 'पटोयम्' इत्यादिरूपतया हि प्रत्य-
यानुभूयते ।

अनैकान्तिकम्; 'इह प्रागभावेऽनादित्वम्, इह प्रध्वंसाभावे
प्रध्वंसाभावाभावः' इत्यवाच्यमानेह प्रत्ययस्य सम्बन्धपूर्वकत्वा-
५ भावात् । न चात्र विशेषणविशेष्यभावः सम्बन्धो वाच्यः; सम्ब-
न्धमन्तरेण विशेषणविशेष्यभावस्याऽसम्भवात्, अन्यथा सर्वे
सर्वस्य विशेषणं विशेष्यं च स्यात् । सम्बन्धे सत्येव हि द्व्यवगुण-
कर्मादावेकस्य विशेषणत्वमपरस्य विशेष्यत्वं दृश्यम् । तदभावेपि
विशेषणविशेष्यभावकल्पनायामतिप्रसङ्गः स्यात् ।

- १० न चात्रादृष्टलक्षणः सम्बन्धो विशेषणविशेष्यभावनिबन्धनम्
इत्यभिधातव्यम्; षोढासम्बन्धवादित्वव्याघातानुपपन्नात् । न
चास्य सम्बन्धरूपता । सम्बन्धो हि द्विष्टो भवताम्युपेतः । अदृष्ट-
आत्मवृत्तितया प्रागभावाऽनादित्वयोरतिर्द्वन्द्वकथं द्विष्टो भवतीति
चिन्त्यमेतत् ? यदि चात्रादृष्टः सम्बन्धः; तर्हि गुणगुण्यादयोव्यत
१५ एव सम्बन्धा भविष्यन्तीत्यलं समवायादिसम्बन्धकल्पनया ।

किञ्च, अतोऽनुमानात्सम्बन्धमात्रं साध्यते, तद्विशेषो वा ?
प्रथमपक्षे सिद्धसाध्यता, तादात्म्यलक्षणसम्बन्धस्येष्टत्वात्तन्तु-
पटादीनाम् । ननु तेषां तादात्म्ये सति तन्तवः पटो वा स्यात्,
तथा च सम्यग्निनोरेकत्वे कथं सम्बन्धो नामास्य द्विष्टत्वात् ?
२० तदप्ययुक्तम्, यो हि द्विष्टः सम्बन्धस्तस्यैतैमभावो युक्तः, यस्तु
तत्सर्भावतालक्षणः कथं तस्याभावो युक्तः ? तन्तुसर्भाव एव हि
पटो नार्थान्तरम्, आतानवितानीभूततन्तुव्यतिरेकेण देशभेदा-
दिना पटस्यानुपलभ्यमानत्वात् ।

अथ सम्बन्धविशेषः साध्यते; स किं संयोगः, समवायो वा ?
२५ संयोगश्चेत्, अन्युपगमवाधा । समवायश्चेत्, दृष्टान्तस्य साध्य-
विकलता ।

अथोच्यते-न संयोगः समवायो वा साध्यते किन्तु सम्बन्ध-
मात्रम्, तत्सिद्धौ च परिशेषात् समवायः सिध्यतीति; तदप्युक्ति-
मात्रम्; परिशेषन्यायेन समवायस्य सिद्धेरसंभवात्, तस्यावेक-

१ वतः । २ सहासिन्धयोरपि विशेषणविशेष्यभावप्रसङ्गः सम्बन्धाभावाविशेषात् ।
३ प्रागभावे । ४ नमवर्तमानः सन् । ५ इह तन्तुपु पट इत्यादीह प्रत्ययः सम्बन्ध-
कर्मोऽभाव्यानेह प्रत्ययवलादित्यतः । ६ जनानाम् । ७ सम्बन्धिनोरेकत्वप्रकारेण ।
८ तन्तव एव सर्भावो यस्य पटस्योत्पत्तौ तयोक्तत्वात् भावस्यैतत्त्वभावता सैव उच्यते यस्य
सम्बन्धस्येति वतः । ९ इह कुण्डे दधीलादिप्रत्ययविलसत् ।

दोषदुष्टत्वेन प्रतिपादितत्वात् । यदि हि सर्वान्तरमनेकदोष-
दुष्टं समवायस्तु निर्दोषः स्यात्, तदासौ तज्यायात् सिञ्चेत् । न
चैवमित्युक्तम् ।

कश्चायं परिशेषो नाम ? प्रसक्तप्रतिषेधे विशि(धे शि)ष्यमाण-
संप्रत्ययहेतुः सै इति चेत्; स किं प्रमाणम्, अप्रमाणं वा ? न ५
तावदप्रमाणमभिप्रेतसिद्धौ समर्थम्, अतिप्रसङ्गात् । प्रमाणं चैतिक
प्रत्यक्षम्, अनुमानं वा ? न तावत्प्रत्यक्षम्, तस्य प्रसक्तप्रतिषेध-
द्वारेणाभिप्रेतसिद्धावैसमर्थत्वात् । अथ केवलव्यतिरेक्यनुमानं
परिशेषः; तर्हि प्रकृतानुमानोपन्यासवैयर्थ्यम्, तस्योपन्यासेपि
परिशेषमन्तरेणाभिप्रेतसिद्धेरभावात् । परिशेषस्तु प्रमाणान्तर-१०
मन्तरेणापि तत्सिद्धौ समर्थ इति स एवोच्यताम्, न चासावुक्तः,
तत् कथं समवायः सिञ्चेत् ?

ननु चेद्दप्रत्ययस्य समवायाहेतुकत्वे निर्हेतुकत्वप्रसङ्गात् कादा-
चित्कत्वविरोधः; तदसत्; तादात्म्यहेतुकतयास्य प्रतिपादित-
त्वात् । महेश्वरहेतुकत्वाद्वा कादाचित्कत्वाविरोधः । तस्य तदहेतु-१५
कत्वे वा तेनैव कार्यत्वादिहेतोर्व्यभिचारः । ननु महेश्वरोऽसम्बन्ध-
त्वात्कथं सम्बन्धवृद्धेः कारणमिति चेत् ? प्रमुशकेरधिन्यत्वात् ।
यो हीश्वरस्यैलोक्यकार्यकरणसमर्थः स कथं 'पदे रूपाद्यः' इति
बुद्धिं न विदध्यात् ? प्रमुः सल्लु यदेवेच्छति तत्करोति, अन्यथा
प्रमुत्वमेवास्य हीयते । नच 'इह कुण्डे दधि' इत्यादिप्रत्यये २०
सम्बन्धपूर्वकत्वोपलम्भादत्रापि तत्पूर्वकत्वस्यैव सिद्धिः; तत्रापी-
श्वरहेतुकत्वं कार्यस्येच्छतस्तद्योर्धोनिवृत्तेः । संयोगात्पार्थोत्तर-
भूतस्तेभिर्मित्तत्वेर्नाप्यसिद्धः; तस्यासिद्धस्वरूपत्वात् ।

“ननु संयोगो नामार्थान्तरं न स्यात्तदा क्षेत्रे बीजादयो निर्वि-
शिष्टत्वात् सर्वदैवाङ्गुरादिकार्ये कुर्युः, न चैवम् । तस्मात्सर्वदा २५

१ संयोगतादात्म्यादिरूपम् । २ प्रसक्तः=प्रसङ्गप्र,तः सर्वजनप्रसिद्धो वा संयोग-
तादात्म्यरूपः, तस्य प्रतिषेधे सति निश्चिष्यमाणः समवायरूपस्य सन्वद् प्रतीतिहेतु-
रित्यर्थः । ३ परिशेषः । ४ प्रत्यक्षस्य सन्निहितरूपादिष्वेव प्रवर्तमानत्वात् । ५ परि-
शेषोपि प्रमाणान्तरमन्तरेण तत्सिद्धावसमर्थो नविष्यतीत्युक्ते संसाह । ६,७ इहेदमिति
प्रत्ययस्य । ८ इहेदमिति प्रत्ययस्य । ९ इह तन्मुमु पद इत्यादीहमन्वयेति । १० इह
कुण्डे दधीत्यादिप्रत्यये । ११ दधीत्यादिप्रत्ययस्य । १२ वैश्वेतिकस्य । १३ तद्योर्ध
दि महेश्वरहेतुकत्वाद्वा कादाचित्कत्वाविरोध इत्यादि । १४ अर्थो संयोगक्रियापारो
चात्मामन्वः संयोग इत्यर्थः । १५ इहेति प्रत्ययनिमित्तत्वेन । १६ इह कुण्डेति ।
१७ संयोगे सल्लुपपूर्वसामर्थ्योद्भावनायावादित्यर्थः । १८ गृहे स्थापिताः सन्धोपीत्यर्थः ।
प्र० क० मा० ५३

कार्यानारम्भात् तेऽङ्कुरादिकार्योत्पत्तौ कारणान्तरसापेक्षाः, यथा मृत्पिण्डवृण्डादयो घटकरणे कुम्भकारादिसापेक्षाः । योसाव-
पेक्ष्यः स संयोग इति ।

किञ्च, द्रव्ययोर्विशेषणभावेनाध्यक्षत एवासौ प्रतीयते; तथाहि-
१ कैश्चित्केनचित् 'संयुक्ते द्रव्ये आहर' इत्युक्ते ययोरेव द्रव्ययोः
संयोगमुपलभते ते एवाहरति, न द्रव्यमात्रम् ।

किञ्च, 'कुण्डली देवदत्तः' इत्यादिमतिरूपजायमाना किञ्चिद्व-
न्धनेत्यभिधातव्यम्? न तावत्पुरुषकुण्डलमात्रनिवन्धना; सर्वदा
तस्याः सद्भावप्रसङ्गात् ।

१० किञ्च, यदेव केनचित्कचिदुपलब्धसत्त्वं तस्यैवान्यत्र विधि-
प्रतिषेधमुखेन लोके व्यवहारप्रवृत्तिर्दृष्टा । यदि तु संयोगो न
कदाचिदुपलब्धस्तत्कथमस्य 'चैत्रोऽकुण्डली कुण्डली' वा इत्येवं
विभागेन व्यवहारो भवेत्? 'चैत्रोऽकुण्डली' इत्यत्र हि न कुण्डलं
चैत्रो वा प्रतिषिध्यते देशादिभेदेनानयोः सतोः प्रतिषेधायोगात् ।

१५ तस्माच्चैत्रस्य कुण्डलसंयोगः प्रतिषिध्यते । तथा 'चैत्रः कुण्डली'
इत्यनेनापि विधिवाक्येन चैत्रकुण्डलयोर्नान्यतरस्य विधानं तयोः
सिद्धत्वात् । पारिशेष्यात्संयोगस्यैव विधिर्विज्ञायते ।" [न्यायवा०
पृ० २१८-२२२]

इत्यप्युद्योतकरस्य मनोरथमात्रम्; तथाहि-यत्सावदुक्तम्-
२० निर्विशिष्टत्वाद्बीजादयः सर्वदैवाङ्कुरं कुर्युः; तदयुक्तम्; तेषां
निर्विशिष्टत्वासिद्धेः, सकलभावानां परिणामित्वात् । ततो विशि-
ष्टपरिणामापन्नानामेव तेषां जनकत्वं नान्यथा ।

यच्चोक्तम्-'सर्वदा कार्यानारम्भात्' इत्यादि; तत्रापि कारण-
मात्रसापेक्षत्वसाधने सिद्धसाध्यता, अस्माभिरपि विशिष्टपरिणा-
२५ मापेक्षाणां तेषां कार्यकारित्वाभ्युपगमात् । अथाभिमतसंयोगा-
ख्यपदार्थान्तरसापेक्षत्वं साध्यते; तदानेन हेतोरन्वय्यासिद्धेरनै-
कान्तिकता, तमन्तरेणापि संभवाविरोधात् । इष्टान्तस्य च साध्य-
विकलता । यदि च संयोगमात्रसापेक्षा एव ते तज्जनकाः; तर्हि
प्रथमोपनिपाते एव क्षित्यादिभ्योऽङ्कुरादिकार्योदयप्रसङ्गः पञ्चा-

१ कारणान्तरं=संयोगः । २ द्रव्ये संयोगवती इति । ३ पुमान् । ४ पुंसा ।
५ संयोगरूपापूर्वसत्त्वमात्राद्गोभानपेक्षा । ६ पुरुषकुण्डलयोः पार्ष्णेन सिदा-
वस्त्रायामपीलवैः । ७ चैत्रोऽकुण्डलीति निषेधवाक्येन । ८ अन्वयः=अविनाभावः ।
९ मृत्पिण्डादयः कुम्भकारापेक्षा घटकरणे प्रभवन्ति तथापि नासौ कुम्भकारः
संयोगस्वरूप इति ।

विधाविकलकारणत्वात् । तदा तदनुत्पत्तौ वा पश्चादप्यनुत्पत्ति-
प्रसङ्गो विशेषाम्भावात् ।

यदप्युक्तम्—द्रव्ययोर्विशेषणभावेनेत्यादि; तदप्युक्तम्; यतो न
द्रव्याभ्यामर्थान्तरभूतः संयोगः प्रतिपत्तुः प्रत्यक्षे प्रतिभाति यत्-
स्तदर्शनाद्विशेषे द्रव्ये आहरेत् । किं तर्हि ? प्राग्भाविस्तान्तराव-^५
स्थापरित्यागेन निरन्तरावस्थारूपतयोत्पन्ने वस्तुनी एव संयुक्त-
शब्दवाच्ये, अवस्थाविशेषे प्रभाविर्तत्वात् संयोगशब्दस्य । तेन
यत्र तथाविधे वस्तुनी संयोगशब्दविषयभावापत्ते पश्यति ते
एवाहरति, नान्ये ।

यदप्युक्तम्—कुण्डलीत्यादि; तदप्युक्तिमात्रम्; यतो यथैव हि ^{१०}
चैत्रकुण्डलयोर्विशेषिणावस्थाप्राप्तिः संयोगः सर्वदा न भवति,
तद्वत् 'कुण्डली' इति मतिरप्यवस्थैविशेषनिबन्धना कथं तद-
भावे भवेत् ? विधिप्रतिषेधावपि न केवलयोश्चैत्रकुण्डलयोः,
किन्त्ववस्थाविशेषस्यैवेत्युक्तदोषानवकाशः । ततो ये अनेकव-
स्तुसञ्चिपते सत्युपजायन्ते प्रत्यया न ते परपरिकल्पित-^{१५}
संयोगविषयाः यथा प्रविरलावस्थितानेकतन्तुविषयाः प्रत्ययाः,
तथा चैते संयुक्तप्रत्यया इति ।

यथान्यदुक्तम्—'विशेषविरुद्धानुमानं सकलानुमानोच्छेदक-
त्वाच्च चकव्यमिति; तत्किमनुमानामासोच्छेदकत्वाच्च वाच्यम्,
सम्यगनुमानोच्छेदकत्वाद्वा ? तत्राद्यः पक्षोऽयुक्तः; न हि काला-^{२०}
लयापदिप्रहेतुस्थानुमानोच्छेदकस्य प्रत्यक्षादेरनुमानवादिनोप-
न्यासो न कर्तव्योऽतिप्रसङ्गे । द्वितीयपक्षोप्ययुक्तः; न हि घृमा-
दिसम्यगनुमानस्य विशेषविरुद्धानुमानसहस्रेणापि प्रत्यक्षादि-
भिरपहृतविषयेण वाचा विघातुं पार्यते । न च विशेषविरुद्धानु-
मानत्वादेवेदमवाच्यम्; यतो न विशेषविरुद्धानुमानत्वम-^{२५}
सिद्धत्वादिष्वेत्वाभासनिरूपणप्रकरणे दोषो निरूपितो येनानु-
मानवादिभिस्तदसिद्धत्वादिष्वच प्रयुज्यते । ततो यहुष्टमनुमानं
तदेव विशेषविघाताय न प्रयोक्तव्यम्—यथा 'अयं प्रदेशोत्रत्ये-
नाग्निनाग्निमात्रं भवति घूमवस्थाम्बद्धानसवत्' इत्यादिकम् ।
यतस्तेन यो विशेषो निराक्रियते स प्रत्यक्षेणैव तद्विशेषसर्पणे ^{३०}

१ कुम्भकारस्य सवीगरूपत्वाभावादेव । २ उच्चारितत्वात् । ३ अवस्थानु सञ्चक-
रुपा । ४ चैत्रकुण्डलयोर्विधिप्रतिषेधकत्वात् सकलयोगः । ५ इन्द्रियाणां सञ्चिकर्त्तव्यं ।
६ अत्र प्रकरणे विशेषेण समवायः । ७ कालालयापदिप्रहेतुत्वाभासत्वेन प्रत्यक्षादेर-
नुच्छेदानुप्रसङ्गात् । ८ जैनायैः । ९ तस्य=जघेः ।

सति प्रतीयते । न चैतत् समवाये संभवति; प्रत्यक्षाद्यगोचर-
त्वेनास्य प्रतिपादितत्वात् । न चातद्विषयं वाचकमतिप्रसङ्गात् ।

यत्पुनरुक्तम्-न चास्य संयोगवन्नातात्वमित्यादि; तदप्यसमी-
चीनम्; तदेकत्वस्यानुमानवाधितत्वात् । तथाहि-अनेकः सम-
५ वायो विभिन्नदेशकालाकारार्थेषु सम्बन्धबुद्धिहेतुत्वात् । यो य
इत्थंभूतः स सोनेकः यथा संयोगः, तथा च समवायः, तस्मादनैक
इति । प्रसिद्धो हि दण्डपुरुषसंयोगात् कटकुक्यादिसंयोगस्य भेदः ।
'निविडः संयोगः क्षिथिलः संयोगः' इति प्रत्ययभेदात्संयोगस्य
भेदाभ्युपगमे 'निर्यं समवायः कदाचित्समवायः' इति प्रत्यय-
१० भेदात्समवायस्यापि भेदोऽस्तु । समवायिनोर्निर्यकादाचित्क-
त्वाभ्यां समवाये तत्प्रत्ययोत्पत्तौ संयोगिनोर्निविडत्वक्षिथिल-
त्वाभ्यां संयोगे तथा प्रत्ययोत्पत्तिः स्यान्न पुनः संयोगस्य निवि-
डत्वादिसम्भावभेदात्, इत्येकं संघित्सोरन्यत् प्रच्यवते ।

तथा, 'नाना समवायोऽयुतसिद्धान्वयविद्रव्याश्रितत्वात् संख्या-
१५ वत्' इत्यतोप्यस्यानेकत्वसिद्धिः । न चैदमसिद्धम्; अनाश्रितत्वे हि
समवायस्य "वर्णनामाश्रितत्वमन्यत्र नित्यद्रव्येभ्यः" [प्रश० भा०
पृ १६] इत्यस्य विरोधः । अथ न परमार्थतः समवायस्याश्रितत्वं
नाम धर्मो येनानैकत्वं स्यात् किन्तूपचारात् । निमित्तं तूपचारस्य
समवायिषु सत्सु समवायज्ञानम् । तत्त्वतो ह्याश्रितत्वेस्य स्वाश्र-
२० यविनाशे विनाशप्रसङ्गो गुणादिषु; इत्यप्ययुक्तम्; विशेषपरि-
त्यागेनाश्रितत्वसामान्यस्य हेतुत्वात्, दिगादीनामाश्रितत्वापत्तेः,
मूर्च्छद्रव्येषूपलब्धिलक्षणप्राप्तेषु दिग्लिङ्गस्य 'इदमतः पूर्वेण' इत्या-
दिप्रत्ययस्य काललिङ्गस्य च परत्वापरत्वादिप्रत्ययस्य सद्भावात् ।
तथा च 'अन्यत्र नित्यद्रव्येभ्यः' इति विद्विष्यते । सामान्यस्या-
२५ नाश्रितत्वप्रसङ्गः; आश्रयविनाशेऽप्यविनाशात् समवायवत् ।

अस्तु चानाश्रितत्वं समवायस्य, तथाप्यनेकत्वमनिवार्यम्;
तथाहि-अनेकः समवायोऽनाश्रितत्वात्परमाणुवत् । नाकाशादि-

१ गगनकुसुमस्यापि वाचकत्वप्रसङ्गात् । २ संन्य इति बुद्धिः सवन्बुद्धिः,
तस्याः । ३ इत्यन्तं समवति । ४ परमाणुवद्द्रव्ययोः । ५ तन्तुपटयोः । ६ सम-
वायस्य । ७ वैशेषिकस्य । ८ द्रव्यगुणकर्मासामान्यविशेषसमवायानाम् । ९ प्रत्ययस्य ।
१० स्वरूपम् । ११ तन्तुपट्यादिषु । १२ समवाय इति ज्ञानम् । १३ स्वाश्रयाद-
भिन्नत्वात् । १४ शुभो शुण्याश्रितः, अवयवोवयव्याश्रित इति विशेषपरित्यागेन ।
१५ आश्रयविनाशेऽप्याश्रितत्वसामान्यस्याविनाशे पत्र तस्य निलत्वात् । १६ दिगा-
दीनामाश्रितत्वे च सति । १७ निलद्रव्याणामाश्रितत्वात् ।

भिर्व्यभिचारः; तेषामपि कथंचिन्नानात्वसाधनात् । तैतोऽयुक्-
मुक्तम्— 'इहेति प्रत्ययाविशेषाद्विशेषलिङ्गाभावाच्चैकः समवायः'
इति । विशेषलिङ्गाभावस्यानन्तरप्रतिपादितलिङ्गसद्भावतोऽसि-
द्धत्वात् । इहेति प्रत्ययाविशेषोप्यसिद्धः; 'इहात्मनि ज्ञानमिह पटे
रूपादिकम्' इतीहेति प्रत्ययस्य विशेषात् । विशेषणानुरागो
हि प्रत्ययस्य विशिष्टत्वम् । न चानुगतप्रत्ययप्रतीतितः समवाय-
स्यैकत्वं सिध्यति; गोर्त्वादि सामान्येषु पदपदार्थेषु चानुगतस्यै-
कत्वस्याभावेऽप्यनुगतप्रत्ययप्रतीतेः ।

'सत्तावत्' इति दृष्टान्तोपि साध्यसाधनविकलः; सर्वैकत्वस्य
सत्प्रत्ययाविशेषस्य चासिद्धत्वात् । सर्वैकत्वे हि सत्तायाः १०
'पदः सन्' इति प्रत्ययोत्पत्तौ सर्वथा सत्तायाः प्रतीत्यनुपपत्तात्
कश्चित् सत्तासर्वदेहो न स्यात् । तस्याः सर्वथा प्रतीतावपि तद्वि-
शेषार्थानामप्रतीतेः कश्चित्सत्तासर्वदेहे पदविशेषणत्वं तस्या अन्य-
दन्यदर्थानन्तरविशेषणत्वम् इत्यायातमनेकरूपत्वं तस्याः ।

यदप्युक्तम्—समवायीनि द्रव्याणीत्यादिप्रत्ययो विशेषणपूर्वको १५
विशेष्यप्रत्ययत्वादित्यादि; तदप्यनस्पतमोविलसितम् । हेतो-
र्विशेषणासिद्धत्वात् । तदसिद्धत्वं च समवायानुरागस्याप्रतीतेः ।
प्रतीतौ चानुमानानर्थक्यम् । को हि नाम समवायानुरक्तं द्रव्या-
दिकं मन्यमानः समवायं न मन्येत ? तदनुरागमावैपि तेनासौ
विशेष्यत्वे खरभृङ्गेषामपि तत्स्यादविशेषात् । ननु सम्बन्धानुरक्तं २०
द्रव्यादिकं प्रतिभाति । सत्यं प्रतिभाति, समवाये तु किमायातम् ?
न च स एव स इति वाच्यम् । तादात्म्यादपि तर्तसमवात् संयो-
गवत् । तथाप्यत्रैवाग्रहे खरविपाणेष्याग्रहः किन्न स्यात् ? 'खर-
विपाणी पट इति प्रत्ययो विशेषणपूर्वको विशेष्यप्रत्ययत्वात्'
इति । अग्राभयासिद्धतान्यत्रापि समाना । न खलु 'समवायी २५
पटः' इति प्रत्ययः केनाप्यनुमूयते ।

अथाप्रतिपक्षसमयस्य संश्लेषमात्रं प्रतिपक्षसमयस्य तु 'सम-
वायी' इति प्रतिभातीति चेत्, न; ज्ञानाद्वैयादेः प्रसङ्गात् ।
शक्यते हि तत्राप्येवं बहुम्—अप्रतिपक्षसमयस्य वस्तुमात्रम-

१ अवेस्येदापेक्षया । २ समवायस्य नानात्वं सिद्धं पटः । ३ निह्नमिन्नविशे-
षणसंभवः । ४ इहेतिप्रत्ययस्य । ५ मिन्नत्वत् । ६ गोत्वमनि सामान्यं वटत्वमनि
सामान्यमिति, अयमनि पदाथोयमनि पदार्थं इत्येवं उकारेण । ७ दण्डमाने दण्डीति
प्रत्ययो यथा न स्यात्तथा समवायकण्वणविशेषणानामेति विशेष्यप्रत्ययो न स्यादिति
भावः । ८ समवाय पदानुरागः सम्बन्धत्वस्य । ९ समवायेन । १० इत्यादेः ।
११ तस्य—अनुरागस्य । १२ भाविना महाद्विप्रादेव ।

मिथोनयोजनारहितं प्रतिभाति, संकेतवशाच्चैतत्सर्वं ज्ञानाद्-
यादि । स्वशास्त्रजनितसंस्कारवशाद्धिज्ञानाद्वयादिप्रतिभासोऽप्र-
माणम् ; इत्यन्यत्रापि समानम् । न हि तत्रापि स्वशास्त्रसंस्कारवद्वे
'समवायी' इति ज्ञानमनुभवत्यन्यजनः । न चैतच्छास्त्रमप्रमाण-
५मेतच्च प्रमाणमिति प्रेक्षावतां वक्तुं युक्तमविशेषात् ।

समवाय इति प्रत्ययेनानैकान्तिकश्चायं हेतुः ; स हि विशेष्य-
प्रत्ययो न च विशेषणमपेक्षते । अथात्र समवायिनो विशेषणम् ।
नन्वस्तु तेषां विशेषणत्वं यत्र 'समवायिनां समवायः' इति प्रति-
भासते, यत्र तु 'समवायः' इत्येतावाननुभवस्तत्र किं विशेषणमिति
१० चिन्त्यताम् ? अथ विशेषणाभावात्तदं विशेष्यज्ञानम् ; तर्ह्यन्यस्य
विशेष्यस्यात्रासंभवाद्धिशेषणज्ञानमपि तन्मा भूत् । न चैतद्युक्तम् ।
कथं चैवं 'पटः' इति प्रत्ययो विशेष्यः स्यात् विशेषणाभावा-
विशेषात् ? अथात्र पटत्वं विशेषणम्, तर्हि 'समवायः' इति
प्रत्यये किं विशेषणम् ? न तावत्समवायत्वम् ; अनभ्युपगमात् ।

१५ अथ येन सत्ता विशिष्टः प्रत्ययो जायते तद्धिशेषणम्, तत्र
'समवायः' इति प्रत्ययोत्पादे समवायत्वसामान्यस्यानभ्युपग-
मात्, द्रव्यादेर्भाप्रतिभासनाददृष्टस्यैव विशेषणत्वमिति ; तच्च ;
यतः किं येन सत्ता विशेष्यज्ञानैमुत्पद्यते तद्धिशेषणम्, किं वा
यस्यांनुरागः प्रतिभासते तदिति ? प्रथमपक्षे चक्षुरालोकादेरपि
२० तदनिवार्यम् । अथ यस्यानुरागस्तद्धिशेषणम् ; न तर्हि 'दण्डी'
इति प्रत्यये दण्डवद्दण्डशब्दोच्छेदेन 'समवायः' इति प्रत्ययेप्य-
दृष्टस्य तच्छब्दयोजनाद्वारेणानुरागं जनो मन्यते । तथैवाप्यदृष्टस्य
विशेषणत्वकल्पनयाम् 'दण्डी' इत्यादिप्रत्ययेप्यस्यैव तत्कल्प-
नास्तु किं द्रव्यादेर्विशेषणभावकल्पनया ?

२५ यच्चोक्तम्-स्वकारणसत्तासंबन्ध एवार्त्तलाभ इत्यादि ; तच्च ;
आत्मलाभस्य स्वकारणसत्तासमवायपर्यायतायां नित्यत्वप्रसङ्गात्,
तन्नित्यत्वे च कार्यस्याविनाशित्वं स्यात् ।

१ अभिधानः शब्दः । २ समवाये । ३ वैधेयिकः । ४ विशेषणपूर्वकच्छब्दसाम्या-
भावात् । ५ विशेष्यप्रत्ययत्वादिति । ६ तन्नुपपादवः । ७ समवायिन्या भिन्नस्य ।
८ समवायिप्रकरणे । ९ उभयं मा भूदिति । १० समवायः प्रतिभासते इति प्रत्यये
विशेषणसूत्रस्य तन्नुपपादेः । ११ अदर्शनीयूतस्य (पुण्य-पापरूपस्य) । १२ इदं
विशेष्यमिति ज्ञानम् । १३ संबन्धः । १४ विशेष्ये । १५ दण्डीति प्रत्यये दण्डशब्दो-
च्छेदेन दण्डस्य यथा नुरागं मन्यते जनो न तथा प्रकृतेऽदृष्टशब्दयोजनाद्वारेणादृष्टस्यानु-
रागमिति संबन्धः । १६ अदृष्टानुरागस्युपगमाभावेऽपि । १७ दण्डादेस्तन्नुपपादेर्वा ।
१८ कार्यरूपस्य वस्तुनः स्वरूपोद्भवः । १९ सत्तासमवायपर्यायित्वात् ।

किञ्च, असौ सत्तासमवायः, असतां वा स्यात्? न तावदसताम्; व्योमोत्पलादीनामपि तत्प्रसङ्गात् । अथात्यन्तास-
त्वात्तेषां न तत्प्रसङ्गः; शुण्णगुण्यादीनामत्यन्तासत्त्वाभावः कुतः ?
समवायाश्चेत् । इतरेतराश्रयः-सिद्धे हि समवाये तेषामत्यन्तास-
त्त्वाभावः, तदभावाच्च समवायः । नापि सताम्; समवायात्पूर्व^५
हि सत्त्वं तेषां समवायान्तरात्, स्वतो वा ? समवायान्तराश्चेत्,
न अस्यैकत्वाभ्युपगमात् । अनेकत्वेपि अतोपि पूर्व(वै)समवा-
यान्तरात्तेषां सत्त्वमित्यनवस्था । स्वतः सत्त्वाभ्युपगमे तु सम-
वायपरिकल्पनानर्थक्यम् । नतु न समवायात् पूर्व तेषां सत्त्वम-
सत्त्वं वा, सत्तासमवायात्सत्त्वाभ्युपगमात्; इत्यप्यसङ्गतम्; १०
परस्परव्यवच्छेदरूपाणामेकनिषेधस्यापरविधाननान्तरीयकत्वेनो-
भयनिषेधविरोधात् । न चालुपर्कारिणोः सत्तासमवाययोः
परस्परसम्बन्धो युक्तोतिप्रसङ्गात् ।

अव्यापि चेदं सत्त्वलक्षणम् सत्तासमवायान्त्यविशेषेषु तस्या-
संभवात् । “त्रिषु पदार्थेषु सत्करी सत्ता” [] इत्यभिधा-१५
नात् । अतिव्यापि चाकाशकुशेशयादिष्वपि भावात् । न च तेषाम-
सत्त्वाच्च सत्तासमवायः; अन्योन्याश्रयानुपङ्गात्-असत्त्वे हि तेषां
सत्तासमवायविरहः, तद्विरहाच्चासत्त्वमिति । न च सत्तासम-
वायः सत्त्वलक्षणं युक्तमर्थान्तरत्वात् । न ह्यर्थान्तरमर्थान्तरस्य
स्वरूपम्; अतिप्रसङ्गादर्थान्तरत्वहानिप्रसङ्गाच्च । २०

किञ्च, सत्तासमवायात्पदार्थानां सत्त्वे तयोः कुतः सत्त्वम् ?
असत्संबन्धात्सत्त्वे अतिप्रसङ्गात् । सत्तासमवायान्तराश्चेत्;
अनवस्था । स्वतःश्चेत्; पदार्थानामपि तत्स्वत पदास्तु किं सत्ता-
समवायेन ?

यदप्यमिहितम्-अज्ञेरुष्णतावदित्यादि; तदप्यभिधानमात्रम्; २५
यतः प्रत्यक्षसिद्धे पदार्थस्वभावे स्वभावैवत्तरं वक्तुं युक्तम् । न च
‘समवायस्य स्वतः सम्बन्धत्वं संयोगादीनां तु तस्मात्’ इत्यप्यक्ष-

१ व्योमोत्पलादीनां सर्वेषां असत्त्वे प्रतिपादिते नाश्रयः प्राङ् । २ अस-
समवायस्य । ३ अतोपि-विवक्षितसमवायान्तरादपि । ४ सत्तात् । ५ व्यवच्छेदो हि
परस्पर निरुद्धमर्थो गिनानेव स्यात् । ६ परस्परत् । ७ इन्द्रो ज्ञेयः । ८ तेषां
स्वरूपैव सत्त्वस्वभावत्वात् । ९ तेषां हि सत्तासंबन्धादेव सत्त्वं सर्वं तत्सत्त्वमेवेति
भावः । १० वदन्न पदस्वरूपत्वप्रसङ्गात् । ११ सत्ता सत्तासमवायान्ता सत्त्वः
सत्त्वसंबन्धः, न सत्त्वसंबन्धोऽसत्त्वसंबन्धः । १२ पगवत्कुसुमादिषु । १३ अपरसत्तासम-
वायान्ता संबन्धाभावेपीत्यर्थः ।

प्रसिद्धम्, तत्स्वरूपस्याप्यक्षाद्यगोचरत्वप्रतिपादनात् । 'समवा-
योन्मेनै संवध्यमानो न स्वतः संवध्यते संवध्यमानात्वाद्द्रुपादि-
वत्' इत्यनुमानविरोधाच्च । यदि चाग्निप्रदीपगङ्गोदकादीनामुष्ण-
प्रकाशपवित्रतावत्समवायः स्वपरयोः सम्बन्धहेतुः, तर्हि तद्द्रुपा-
१५ न्तावर्ण्येनैव ज्ञानं स्वपरयोः प्रकाशहेतुः किञ्च स्यात् ? तथाच
"ज्ञानं ज्ञानान्तरवेद्यं प्रमेयत्वात्" [] इति भ्रुवते ।

यद्योच्यते--'समवायः सम्बन्धान्तरं नापेक्षते, स्वतः सम्बन्ध-
त्वात्, ये तु सम्बन्धान्तरमपेक्षन्ते न ते स्वतः सम्बन्धाः यथा घटा-
दयः, न चायं न स्वतः सम्बन्धः, तस्मात्सम्बन्धान्तरं नापेक्षते इति;
१० तदपि मनोरथमात्रम्; हेतोरसिद्धेः । न हि समवायस्य स्वरूपा-
सिद्धौ स्वतः सम्बन्धत्वं तत्र सिध्यति । संयोगेनानेकान्ताच्च; स
हि स्वतः सम्बन्धः सम्बन्धान्तरं चापेक्षते । न हि स्वतोऽसम्बन्ध-
स्वभावत्वे संयोगादेः परतस्तद्युक्तम्; अतिप्रसङ्गात् । घंटादीनां च
सम्बन्धित्वाच्च परंतोपि सम्बन्धत्वम् । इत्ययुक्तमुक्तम्--'न ते
१५ स्वतःसम्बन्धाः' इति । तन्नास्य स्वतः सम्बन्धो युक्तः ।

परंतश्चेत्किं संयोगात्, समवायान्तरात्, विशेषणभावात्,
अद्वयाद्वा ? न तावत्संयोगात्; तस्य गुणत्वेन द्रव्याश्रयत्वात्,
समवायस्य चाद्रव्यत्वात् । नापि समवायान्तरात्, तस्यैकरूप-
तयाम्युपगमात्, "तत्त्वं भवेन" व्याख्यातम् [विशेष० सू०
२० ७।२।२८] इत्यभिधानात् ।

नापि विशेषणभावात्; सम्बन्धान्तरं तन्मिसम्बन्धाद्यैर्बोस्य प्रवृ-
त्तिप्रतीतेर्दण्डविशिष्टः पुरुष इत्यादिवत्, अन्यथा सर्वे सर्वस्य
विशेषणं विशेष्यं च स्यात् । समवायादिसम्बन्धानर्थक्यं च, तद-
भावेपि गुणगुण्यादिभावोपपत्तेः । समवायस्य समवायिविशे-
२५ षणतानुपपत्तिश्च, अत्यन्तमर्थान्तरत्वेनातद्धर्मत्वादाकाशवत् ।
न खलु 'संयुक्ताविमौ' इत्यत्र संयोगिधर्मतामन्तरेण संयोगस्य

१ तस्य=समवायस्य । २ तन्नुपपत्तिरुक्तगुणसंबन्धित्वात् सद्यः । ३ समवायसम-
वायिनोः । ४ अवदन्मोऽवकल्पः साहाय्यं वा । ५ स्वतःसंबन्धत्वादिति हेतोः । ६ न
केवलं हेतोरसिद्धेरेव । ७ आदिना संयुक्तमवायादिसंबन्धप्रदर्शनम् । ८ समवायात् ।
९ तत्=समवायस्य । १० इष्टान्तमूतानाम् । ११ संयोगात् । १२ 'समवायस्य
संबन्धः स्वसमवायिषु' इति शेषः । १३ समवायस्य । १४ परेण । १५ यत्कल्पम् ।
१६ सत्तया । १७ संबन्धान्तरं=तादात्म्यसंयोगादि । समवायसमवायिषुःसंबन्धित्वात्
दिव्यनी । १८ विशेषणभावात् । १९ अतद्धर्मत्वं च स्यात्समवायिनां विशेषणत्वं च
सादिति सन्दिग्धानैकान्तिकत्वपरिघातार्थमिदमाह ।

तद्विशेषणता दृष्टा । न च समवायसमवायिनां सम्बन्धान्तरा-
भिसम्बद्धत्वम्; अनभ्युपगमात् ।

किञ्च, विशेषणभावोप्येतेभ्योऽन्यन्तं भिन्नस्तत्रैव कृतो निया-
म्येत ? समवायाच्चेत्; इतरेतराभ्यः—समवायस्य नियमसिद्धौ हि
ततो विशेषणभावस्य नियमसिद्धिः, तत्सिद्धेश्च समवायस्य
तत्सिद्धिरिति ।

किञ्च, अयं विशेषणभावः षट्पदार्थेभ्यो भिन्नः, अभिन्नो वा ?
भिन्नश्चेत्; किं भावरूपः, अभावरूपो वा ? न तावद्भावरूपः; 'षडेष
पदार्थाः' इति नियमविरोधात् । नाप्यभावरूपः; अनभ्युपगमात् ।
अमेदेपि न तावद्भव्यम्; गुणाभितत्वाभावप्रसङ्गात् । अत एव १०
न गुणोपि । नापि कर्म; कर्माभितत्वाभावात्प्रसङ्गात् । "अकर्म
कर्म" [] इत्यभिधानात् । नापि सामान्यम्; समवाये
तदनुपपत्तेः, पदार्थत्रयवृत्तित्वात्तस्य । नापि विशेषः; विशेषणां
नित्यद्रव्याभितत्वात् । अनित्यद्रव्ये चास्योर्षेण्यत्वात् समवाये
व्याभावानुपपत्तात् । युगपदनेकसमवायिविशेषणत्वे चास्यानेकत्व-
१५ प्राप्तिः । यदिह युगपदनेकार्थविशेषणं तदनेकं प्रतिपन्नम् यथा
दण्डकुण्डलादि, तथा च समवायः, तस्मादनेक इति । न च
सत्त्वादिनाऽनेकान्तः; तस्यानेकत्वभावत्वप्रसौघनात् । तत्र
विशेषणभावेनाप्यसौ सम्बद्धः ।

नाप्यऽदृष्टेन; अस्य सम्बन्धरूपत्वासम्भवात् । सम्बन्धो हि २०
द्विष्टो भवताम्युपगतः, अदृष्टत्वात्प्रवृत्तितया समवायसमवायि-
नोरतिष्ठन् कथं द्विष्टो भवेत् ? योहा सम्बन्धवादित्वव्याघातश्च ।
यदि चाऽदृष्टेन समवायः सम्बन्ध्यते; तर्हि गुणगुण्यादयोप्यत
एव सम्बद्धा भविष्यन्तीत्यलं समवायादिकल्पनया । न चादृष्टो-
प्यसम्बद्धः समवायसम्बन्धहेतुः अतिप्रसङ्गात् । सम्बद्धश्चेत्; २५
कृतोऽस्य सम्बन्धः ? समवायाच्चेत्; अन्योन्यसंबन्धः । अन्यतश्चेत्;
अभ्युपगमव्याघातः । तत्र सम्बद्धः समवायः ।

नाप्यसम्बद्धः; 'षण्णामाभितत्त्वम्' इति विरोधानुपपत्तात् ।
कथं चासम्बद्धस्य सम्बन्धरूपतार्थान्तरवत् ? सम्बन्धवृद्धिहेतु-
त्वाच्चेत्; महेश्वरदेवपि तत्प्रसङ्गः । कथं चासम्बद्धोऽसौ सम- ३०

१ समवायस्य । २ समवायिभ्यः । ३ विशेषा नित्यद्रव्यवृत्तव इति वचनात् ।
४ विशेषणभावस्य । ५ पूर्वत् । ६ समवायसिद्धौ हि समवायेचादृष्टस्य सम्बन्धस्य
सिद्ध्यति तत्सिद्धौ चाऽदृष्टस्य सम्बन्धस्य समवायहेतुत्वं सिद्ध्यति । ७ समवायः सत
एव सम्बद्ध इत्यभ्युपगमः । ८ मतस्य ।

वायिनोः सम्बन्धबुद्धिनिबन्धनम् ? न ह्यङ्गुर्व्योः संयोगो घट-
पटयोरप्रवर्त्तमानस्तयोः सम्बन्धबुद्धिनिबन्धनं दृष्टः । तथा,
'इहात्मनि ज्ञानमित्यादिसम्बन्धबुद्धिर्न सम्बन्ध्यऽसम्बन्धसम्ब-
न्धपूर्विका सम्बन्धबुद्धित्वात् दण्डपुरुषसम्बन्धबुद्धिवत्' इत्यनु-
५ मानविरोधश्च ।

किञ्च, अयं समवायः समवायिनोः परिकल्प्यते, असमवायि-
नोर्वा ? यद्यसमवायिनोः, घटपटयोरप्येतत्प्रसङ्गः । अथ सम-
वायिनोः, कुतस्तयोः समवायित्वम्-समवायात्, स्वतो वा ?
समवायाच्चेत्, अन्योन्याश्रयः-सिद्धे हि समवायित्वे तयोः सम-
१० वायः, तस्माच्च तत्त्वमिति ।

किञ्च, अभिन्नं तेनानयोः समवायित्वं विधीयते, भिन्नं वा ? न
तावदभिन्नम्, तद्विधाने गगनादीनां विधानानुषङ्गात् । भिन्नं
चेत्, तयोस्तत्सम्बन्धित्वानुपपत्तिः । सम्बन्धान्तरकर्त्तव्ये ज्ञान-
वस्था । तत एव तन्नियमे चैतरेतराश्रयः-सिद्धे हि समवायिनोः
१५ समवायित्वनियमे समवायनियमसिद्धिः, ततश्च तन्नियमसिद्धि-
रिति । स्वत एव तु समवायिनोः समवायित्वे किं समवायेन ?

ननु संयोगेप्येतत्सर्वं समानम्, इत्यप्यवाच्यम्, संश्लिष्टतयो-
त्पन्नवस्तुस्वरूपव्यतिरेकेणास्याप्यसम्भवात् । भिन्नसंयोगवशात्
संयोगिनोर्नियमे समानमेवैतत् ।

२० यथान्यदुक्तम्-संयोगिद्रव्यविकक्षणत्वाद्गुणत्वादीनामित्यादि;
तदप्यनुक्तसमम्; यतो निष्क्रियत्वेष्वेवामाधेयत्वमल्पपरिमाण-
त्वात्, तत्कार्यत्वात्, तथाप्रतिभासाद्वा ? तत्राद्यः पक्षोऽयुक्तः;
सामान्यस्य महापरिमार्णगुणस्य ज्ञानाधेयत्वप्रसङ्गात् । द्वितीय-
पक्षोऽप्यत एवायुक्तः ।

२५ तृतीयपक्षोऽप्यविचारितरमणीयः; तेषामाधेयतया प्रतिभासा-
भावात् । तदभावश्च रूपादीनां लोभाधारेष्वन्तर्वह्निश्च सत्त्वादे ।
न ह्यन्यत्र कुण्डादावधिकरणे घटरादीनामाधेयानां तथा सत्त्व-
मस्ति । अथ रूपादीनामाधेयत्वे सत्यपि युतसिद्धेरभावाद्गुण-
परि-

१ सम्बन्धी । २ घटपट्याभ्यां पृथग्भूतः । ३ शब्दगगनाभ्यां समवाय्यभिन्नस्य
समवायित्वस्य समवायेन विधानात्पटयोरपि विधानमित्यर्थः, यदं ज्ञानात्मादिष्वपि ।
४ समवायिनोरेदं समवायित्वमिति सम्बन्धाभावात् इति भावः । ५ तत्सम्बन्धित्व-
सिद्ध्यर्थम् । ६ तस्य-गुण्यादेः । ७ आधेयतया । ८ गगनवर्तिनः । ९ अल्पपरि-
माणत्वाभावात् । १० घटादिषु । ११ आधेयस्य बहिरेव सत्त्वसङ्गनादिति भावः ।
१२ अन्तर्वह्निःप्रकारेण ।

सनतया प्रतिभासाभावः; नै, युतसिद्धत्वस्योपरितनत्वप्रतीत्य-
हेतुत्वात्, अन्यथोक्तावस्थितवंशादेः क्षीरनीरयोश्च सम्बन्धे
तैत्प्रसङ्गात् । ततः परपरिकल्पितपदार्थानां विचार्यमाणानां
स्वरूपाव्यवस्थितैः कथं 'पदेव पदार्थाः' इत्यवधारणं घटते
स्वरूपासिद्धौ संख्यासिद्धेरभावात्? ५

प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनद्वयान्तसिद्धान्तावयवचर्कनिर्णयदा-
दजल्पवितण्डाहेत्वाभासच्छल[जाति]निग्रहस्थानानां नैयायिका-
भ्युपगतषोडशपदार्थानां पदपदार्थाधिक्येन व्यवस्थानाच्च । न
च पदार्थषोडशकस्य पदस्वेवान्तर्भावाच्चातोधिकपदार्थव्यवस्थे-
त्यभिघातव्यम्; द्रव्यादीनामपि पण्णां प्रमाणप्रमेयरूपपदार्थद्वये- १०
ऽन्तर्भावात्पदार्थपदकस्याप्यनुपपत्तेः । अथ तदन्तर्भावप्यवान्तर-
विभिन्नलक्षणवशात् प्रयोजनवशाच्च द्रव्यादिपद्व्यवस्था; तर्हि
तत एव प्रमाणादिषोडशव्यवस्थाप्यस्तु विशेषार्भावात् । न च
सापि युक्ता; परोपगतस्वरूपाणां प्रमाणादीनां यथास्थानं प्रति-
वेधात्, विपर्ययानव्यवसाययोश्च प्रमाणादिषोडशपदार्थभ्यो- १५
ऽर्थान्तरभूतयोः प्रतीतेः ।

धर्माधर्मद्रव्ययोश्च । कुतः प्रमाणात्तत्सिद्धिरिति चेत्? अनुमा-
नात्; तथाहि-विवादापन्नाः सकलजीवपुद्गलक्षयाः सकलतयः
साधारणवैद्यनिमित्तापेक्षाः, युगपद्भाविगतित्वात्, एकसरःस-
ल्लिख्य भ्रयानेकमत्स्यगतिवत् । तथा सकलजीवपुद्गलस्थितयः २०
साधारणवैद्यनिमित्तापेक्षाः, युगपद्भाविस्थितित्वात्, एककु-
ण्डाक्षयानेकवदरादिस्थितिवत् । यस्तु साधारणं निमित्तं स
धर्मोऽधर्मश्च, ताभ्यां विना तद्गतिस्थितिकार्यस्यासम्भवात् ।

गतिस्थितिपरिणामिन एवार्थाः परस्परं तद्भेदवञ्चेत्; न;
अन्योन्याक्षयानुपङ्गात्—सिद्धायां हि तिष्ठत्पदार्थभ्यो गच्छत्पदा- २५
र्थानां गतौ तेभ्यस्तिष्ठत्पदार्थानां स्थितिसिद्धिः, तत्सिद्धौ च
गच्छत्पदार्थानां गतिसिद्धिरिति । साधारणनिमित्तरहिता एवा-
खिलार्थगतिस्थितयः प्रतिनियतस्वकारणपूर्वकत्वादिति चेत्;
कथमिदानीं नर्त्तकीर्क्ष्णो निखिलप्रेक्षकजनानां मौनातद्भेदो-

१ इति चेन्न इत्यर्थः । २ कुतसिद्धयोः । ३ उपरितननना प्रतिभासस्य ।
४ प्रमाणप्रमेयपदार्थद्वयेन्तर्भावः पण्णा विनतत्समकामिकायात् । ५ निनिवृत्तव्य-
वशात्प्रयोजनवशाच्च द्रव्यादिपद्व्यवस्था भवति प्रमाणादिषोडशव्यवस्था च न भवतीति
विशेषं नोत्पद्यमानः । ६ वसतः । ७ वाद्य निमित्तं धर्मः । ८ अत्र निमित्तमधर्मः ।
९ तस्य=सकलजीवादेः । १० नर्त्तकी एव क्षण. पर्यायः । ११ यामोदन्दरपरि ।

त्पक्षौ साधारणं निमित्तम्? सहकारिमात्रत्वेन चेत्; तर्हि सकलार्थगतिस्थितीनां सकलद्रुवां धर्माधर्मौ सहकारिमात्रत्वेन साधारणं निमित्तं किञ्चेष्यते?

पृथिव्यादिरेव साधारणं निमित्तं तासाम्; इत्यप्यसङ्गतम्; ५ गगनवार्त्तिपदार्थगतिस्थितीनां तदसम्भवात् । तर्हि नमः साधारणं निमित्तं तासामस्तु सर्वत्र भावात्; इत्यप्यपेशलम्; तस्यावगाह-निमित्तत्वप्रतिपादनात् । तस्यैकस्यैवानेककार्यनिमित्ततायाम् अनेकसर्वगतपदार्थपरिकल्पनानर्थक्यप्रसङ्गात्, कालात्मदि-क्खसामान्यसमवायकार्यस्यापि यौगपद्यादिप्रत्ययस्य द्रुद्ध्यादेः १० 'इदमतः पूर्वेण' इत्यादिप्रत्ययस्य अन्वयज्ञानस्य 'इहेदम्' इति प्रत्ययस्य च नमोनिमित्तस्योपपत्तेस्तस्य सर्वत्र सर्वदा सङ्गावात् । कार्यविशेषात्कालादिनिमित्तमेदव्यवस्थायाम् तत एव धर्मादि-निमित्तमेदव्यवस्थाप्यस्तु सर्वथा विशेषाभावात् ।

एतेनौदृष्टनिमित्तत्वमप्यासां प्रत्याख्यातम्; पुद्गलानामदृष्टा- १५ सम्भवाच्च । ये यदात्मोपभोग्याः पुद्गलास्तद्गतिस्थितयस्तीदान्माऽदृष्टनिमित्ताश्चेत्; तर्ह्यसाधारणं निमित्तमदृष्टं तासां प्रति-नियतात्मादृष्टस्य प्रतिनियतद्रव्यगतिस्थितिहेतुत्वप्रसिद्धेः । न च तदनिष्टं तासां क्षमादेरिवासाधारणकारणस्यादृष्टस्यापीदृष्टत्वात् । साधारणं तु कारणं तासां धर्माधर्मादिवेति सिद्धः कार्यविशेषा- २० तयोः सङ्गाव इति* ।

भेदेदानीं फलविप्रतिपत्तिनिराकरणार्थमज्ञाननिवृत्तिरित्या-
द्याह—

अज्ञाननिवृत्तिः हानोपादानोपेक्षाश्च

फलम् ॥ ५११ ॥

२५

प्रमाणादभिन्नं भिन्नं च ॥ ५१२ ॥

१ तस्याः । २ अनेकानि=गतिस्थित्यवगाहलक्षणानि । ३ कार्यविशेषत्वस्य । ४ सकलद्रुवा सकलार्थगतिस्थितीनां नमोनिमित्तत्वनिराकरणेन । ५ तेषां पुद्गलानाम् । ६ येनात्मना ते पुद्गला अप्युपगन्ते तस्य । ७ गलादीनाम् । ८ पृथिव्यादेः । ९ जनानाम् । १० विषयविप्रतिपत्तिनिराकरणान्तरम् । ११ प्रमाणादभिन्नमेव फलमिति शोभाः अभिन्नमेवेति शौचत्वा इति निश्चाभिन्नत्वान्यां फले विप्रतिपत्तिः । * (परीक्षाशुद्धे—प्रनेवरत्नमाळायां च अत्रैव चतुर्थपरिच्छेदस्य सप्तमिः 'अज्ञान-निवृत्तिः' इत्यादिचर्चं तु पंचमाध्याये संगमितम्)

द्विविधं हि प्रमाणस्य फलं ततो भिन्नम्, अभिन्नं च । तत्राज्ञान-
निवृत्तिः प्रमाणादभिन्नं फलम् । ननु चाज्ञाननिवृत्तिः प्रमाणभूत-
ज्ञानमेव, न तदेव तस्यैव कार्यं युक्तं विरोधात्, तत्कृतोसौ प्रमा-
णफलम् ? इत्यनुपपन्नम्, यतोऽज्ञानमज्ञप्तिः स्वपररूपयोर्व्यामोहः,
तस्य निवृत्तिर्यथावत्तद्रूपयोर्ज्ञप्तिः, प्रमाणधर्मत्वात् तत्कार्यतया
न विरोधमध्यास्ते । स्वैविषये हि स्वार्थस्वरूपे प्रमाणस्य व्यामोह-
विच्छेदाभावे निर्विकल्पकदर्शनात् सन्निकर्षाद्याविशेषप्रसङ्गतः
प्रामाण्यं न स्यात् । न च धर्मधर्मिणोः सर्वथा भेदोऽभेदो वा;
तद्भावविरोधादनुपपन्नात् तदन्यतरवदर्थान्तरवच्च ।

अथाज्ञाननिवृत्तिर्ज्ञानमेवेत्यनयोः सामर्थ्यसिद्धत्वादन्यथानुपप- १०
त्तेरभेदः; तन्न, अस्याऽविरुद्धत्वात् । सामर्थ्यसिद्धत्वं हि भेदे
सत्येवोपलब्धं निमग्नये आकारणवत् । कथं चैवं वादिनो हेताव-
न्वयव्यतिरेकधर्मयोर्भेदः सिध्येत् ? 'साध्यसद्भावेऽस्तित्वमेव हि
साध्याभावे हेतोर्नास्तित्वम्' इत्यनयोरपि सामर्थ्यसिद्धत्वा-
विशेषात् । १५

न चानयोरभेदे कार्यकारणभावो निरुध्यते; अभेदस्य तद्भावा-
विरोधकत्वाज्जीवसुखादिवत् । साधकतमस्वभावं हि प्रमाणम् स्वप-
ररूपयोर्ज्ञप्तिः लक्षणामज्ञाननिवृत्तिं निर्वर्त्तयति तत्रान्येनास्या निर्व-
र्त्तनाभावात् । साधकतमस्वभावत्वं चास्य स्वपरग्रहणव्यापार एव
तद्ग्रहणामिमुख्यलक्षणः । तद्धि स्वकारणकलापाद्रूपजायमानं २०
स्वपरग्रहणव्यापारलक्षणोपयोगीरूपं सत्सार्थव्यवसायरूपतया
परिणमते इत्यभेदेऽर्धनयोः कार्यकारणभावाऽविरोधः ।

नन्वेवमज्ञाननिवृत्तिरूपतयेव हीनादिरूपतयाप्यस्य परिणम-
सम्भवात् तदप्यस्याऽभिन्नमेव फलं स्यात्, इत्यप्यसुन्दरम्; अज्ञान-
निवृत्तिलक्षणफलहेतौ व्यवर्धनसम्भवतो भिन्नत्वाविरोधात् । २५

१ शौचतः प्राह । २ अज्ञाननिवृत्तेः । ३ प्रमाणविषये । ४ प्रमाणधर्मत्वादित्ये-
तस्मादस्तिद्वयविरास्यभिदवत् । ५ ज्ञानाज्ञाननिवृत्तयोः सामर्थ्यमतिं तत्राभेदमन्तरेण
नोपपद्यते तस्मादन्योरेभेद इति भावः । ६ अभेदमन्तरेण । ७ भेदस्य ।
८ आज्ञानवत् । ९ अज्ञाननिवृत्तिर्ज्ञानमेवेत्यनयोः सामर्थ्यसिद्धत्वान्यथानुपपत्तेरभेद-
इत्येवंवादिनः । १० नन्वज्ञाननिवृत्तिः प्रमाणादभिन्नं फलमित्यनेन प्रकारेण
प्रमाणफलवोरभेदे स्वार्थकारणभावो विवक्ष्यत इत्युक्ते तस्मात् । ११ प्रमाणाज्ञान-
निवृत्तयोः । १२ सन्निकर्षादिना । १३ अर्थग्रहणे व्यापारो द्रुपयोग इति वचनात् ।
१४ प्रमाणफलयोः । १५ साक्षात्फलमेतत् । १६ परस्परफलमेतत् । १७ हानादेः ।
१८ प्रमाणादज्ञाननिवृत्तिः फलं स्यात्, अज्ञाननिवृत्तिफलत्वस्यादानोपादानोपेक्षाच्च
फलं स्यादिति भावः ।

अत आह-दानोपादानोपेक्षाश्च प्रमाणाङ्गिणं फलम् । अत्रापि कथञ्चिद्भेदो द्रष्टव्यः । सर्वथा भेदे प्रमाणफलव्यवहारविरोधात् । अनुमेवार्थं स्पष्टयन् यः प्रमिमीते इत्यादिना लौकिकैर्तत्प्रतिपत्तिप्रसिद्धां प्रतीतिं दर्शयति—

५ यः प्रमिमीते स एव निवृत्ताज्ञानो जहात्यादत्त उपेक्षते चेति प्रतीतेः ॥ ५३ ॥

यः प्रतिपत्ता प्रमिमीते स्वार्थग्रहणपरिणामेन परिणमते स एव निवृत्ताज्ञानः स्वविषये व्यामोहविरहितो जहात्यभिप्रेतप्रयोजनाप्रसाधकमर्थम्, तत्प्रसाधकं त्वादत्ते, उभयप्रयोजनाऽप्र-
१० साधकं तूपेक्षणीयमुपेक्षते चेति प्रतीतेः प्रमाणफलयोः कथञ्चिद्भेदाभेदव्यवस्था प्रतिपत्तव्या ।

नैन्नेवं प्रमाद्यप्रमाणफलानां भेदाभावात्प्रतीतिप्रसिद्धस्तद्व्यवस्थाविलोपः स्यात्, तदस्मान्मतम्, कथञ्चिद्भक्षणभेदवत्तेषां भेदात् । आत्मनो हि पदार्थपरिच्छिन्नौ साधकतमत्वेन व्याभि-
१५ यमाणं स्वरूपं प्रमाणं निर्व्यापारम्, व्यापारं तु क्रियोच्यते, स्वातन्त्र्येण पुनर्व्यापियमाणं प्रमाता, इति कथञ्चित्तद्भेदः । प्राक्तनपर्यायविशिष्टस्य कथञ्चिद्व्यवस्थितस्यैव बोधेस्य परिच्छि-
२० त्तिविशेषरूपतयोत्पत्तेरभेद इति । साधनभेदाच्च तद्भेदः, कर्तृणसाधनं हि प्रमाणं साधकतमस्वभावम्, कर्तृसाधनस्तु प्रमाता स्वतन्त्रस्वरूपः, भौवसाधना तु क्रिया स्वार्थनिर्णी-
तिस्वभावा इति कथञ्चिद्भेदाभ्युपगमादेव कायकारणभावस्याप्यविरोधः ।

यद्योच्यते-मौल्यव्यतिरिक्तक्रियाकारि प्रमाणं कारकत्वाद्वा-
स्यादिवत्, तत्र कथञ्चिद्भेदे साध्ये सिद्धसाध्यता, अज्ञाननिवृत्ते-
२५ स्तद्धर्मतया हानादेश्च तत्कार्यतया प्रमाणात्कथञ्चिद्भेदाभ्युपग-
मात् । सर्वथा भेदे तु साध्ये साध्यविकलो दृष्टान्तः, वास्यादिना

१ इतरः शाब्दः । २ यः प्रतिपत्ता प्रमिमीते इत्यादिप्रकारेण । ३ आत्मस्वरूपम् । ४ परिच्छिन्नरूपा । ५ प्रमाणम् । ६ फलरूपतया । ७ साधनं करण-
कर्मादि । ८ प्रमाद्यप्रमाणपरिच्छिन्नभेदः । ९ करणे साधनं व्युत्पादनं वस्तु,
प्रमीयते वस्तुत्वं वेनेति तत्करणसाधनं प्रमाणम् । १० कर्तृ साधनं व्युत्पादनं
वस्तु प्रमाणम्, प्रमिमीते इति लोकोक्तम् । ११ प्रमितिः प्रमाणम् । १२ यः प्रतिपत्ता
प्रमिमीते इत्यनेन प्रकारेण प्रमाणफलबोधभेदे कार्यकारणव्यवहारविरोध इत्युक्ते सत्ताह ।
१३ आत्मस्वरूपम् ।

हि काष्ठादेदिच्छदा निरूप्यमाणा छेद्यद्रव्यानुप्रवेशलक्षणैवावति-
 ष्टते । स चानुप्रवेशो चास्यादेरात्मगत एव धर्मो नार्थान्तरम् ।
 ननु छिदा काष्ठस्या चास्यादिस्तु देवदत्तस्य इत्यनयोर्मेद एव,
 इत्यप्यसुन्दरम् ; सर्वथा मेदस्यैवैतत्सिद्धेः, सत्त्वादिनाऽमेदस्यापि
 प्रतीतेः । न च 'सर्वथा करणाद्भिन्नैव क्रिया' इति नियमोस्तिः, ५
 'प्रदीपः स्वात्मनात्मानं प्रकाशयति' इत्यत्रामेदेनाप्यस्याः प्रतीतेः ।
 न खलु प्रदीपात्मा प्रदीपाद्भिन्नः; तस्याऽप्रदीपत्वप्रसङ्गात् पटवत् ।
 प्रदीपे प्रदीपात्मनो भिन्नस्यापि समवायात्प्रदीपत्वसिद्धिरिति
 चेत्, न; अप्रदीपेपि घटादौ प्रदीपत्वसमवायानुपङ्गात् । प्रत्यास-
 त्तिविशेषात्प्रदीपात्मनः प्रदीप एव समवायो नान्यत्रेति चेत्, स १०
 कोऽन्योन्यत्र कथञ्चित्सादात्म्यात् ।

एतेन प्रकाशनक्रियाया अपि प्रदीपात्मकत्वं प्रतिपादितं प्रति-
 पत्तव्यम् । तस्मात्ततो मेदे प्रदीपस्याऽप्रकाशकद्रव्यत्वानुपङ्गात् ।
 तत्रास्याः समवायात्त्रायं दोषः, इत्यप्यसमीचीनम्, अनन्तरो-
 काऽशेषदोषानुपङ्गात् । तन्नान्योरात्यन्तिको मेदः । १५

नाप्यमेदः, तदऽव्यवस्थानुपङ्गात् । न खलु 'सौकर्यमर्थे
 प्रमाणमधिगतिः फलम्' इति सर्वथा तादात्म्ये व्यवस्थापयितुं
 शक्यं विरोधात् ।

ननु सर्वथाऽमेदेऽप्यनयोर्वावृत्तिमेदात्प्रमाणफलव्यवस्था घटते
 एव, अप्रमाणव्यावृत्त्या हि ज्ञानं प्रमाणमफलव्यावृत्त्या च फलम्, २०
 इत्यप्यविचारितरमणीयम्; परमार्थतः स्नेहसिद्धिविरोधात् । न
 च स्वभावमेदमन्तरेणान्यव्यावृत्तिमेदोप्युपपद्यते इत्युक्तं सा-
 र्वप्यविचारे । कथं चास्याऽप्रमाणफलव्यावृत्त्या प्रमाणफलव्यव-
 स्थावत् प्रमाणफलान्तरव्यावृत्त्याऽप्रमाणफलव्यवस्थापि न स्यात् ?
 ततः पारमार्थिके प्रमाणफले प्रतीतिसिद्धे कथञ्चिद्भिन्ने प्रतिपत्तव्ये २५
 प्रमाणफलव्यवस्थार्थेयानुपपत्तेरिति स्थितम् ।

१ इत्यमाना क्रियमाण वा । २ निष्ठापिकरणत्वेन । ३ लोके । ४ भात्या=
 स्वरूपं प्रदीपत्वमिति यावत् । ५ अन्यथा । ६ प्रदीपप्रदीपात्मनोरमेदमति-
 प्रादनेन । ७ प्रमाणफलम् । ८ सौगतमात्रज्ञोप्यते । ९ कर्मेन सादृश्यं
 प्रमाणम् । १० निर्विकल्पकज्ञानम् । ११ स्नेहः प्रमाणफलमोदः । १२ पारमा-
 थिकत्वमिदं चित्तमप्यतिरेकेण ।

योऽनेकान्तपदं प्रवृद्धमतुलं खेद्यार्थसिद्धिप्रदम्,
 प्राप्तोऽनन्तगुणोद्यं निखिलविशिःशेषतो निर्मलम् ।
 स श्रीमानखिलप्रमाणविषयो जीवाञ्जनानन्दनः,
 मिथ्यैकान्तमहान्घकाररहितः श्रीवर्द्धमानोदितः ॥

५ इति श्रीप्रभावन्विरचिते प्रमेयकमलमार्तण्डे परीक्षामुखालङ्कारे
 चतुर्थः परिच्छेदः ॥ श्रीः ॥

१ अखिलप्रमाणविषयपक्षे निखिलमिदं केवलज्ञानं यसादनैकान्तपदाप्रसिद्धि-
 विदनेकान्तपदम् । सर्ववपक्षे तु निखिलं वेरीति निखिलमिदं । यत्पर्यं सर्वेष्वपर-
 मात्मकं विशेष्यसपरानि विशेष्यगानि । तत्रस्य निखिलमित्सर्वेषु जीवात् । विषयप-
 क्षेऽखिलार्था प्रमाणानां विषयोऽर्थ इति यत्पूर्वकस्तातः । सर्ववपक्षे तु निखिलमि-
 दं यत्पूर्वकः अखिलप्रमाणविषयः सर्वप्रमाणमात्र इत्यर्थः ।

श्रीः ।

अथ पञ्चमः परिच्छेदः ॥

अथेदानीं तदाभासस्वरूपनिरूपणाय—

ततोऽन्यत्तदाभासम् ॥ १ ॥

इत्याद्याह ।

प्रतिपादितस्वरूपत्रमाणसंबन्धाप्रमेयफलाद्यद्वयत्तदाभास-
मिति । तदेव तथाहीत्यादिना यथाकर्म व्याचष्टे । तत्र प्रतिपादि- ५
तस्वरूपात्स्वार्थव्यवसायात्मकप्रमाणादन्ये—

अस्वैसंविदितग्रहीतार्थदर्शनसंशयादयः

प्रमाणाभासाः ॥ २ ॥

प्रवृत्तिविषयोपदर्शकत्वाभावात् ॥ ३ ॥

पुरुषान्तरपूर्वार्थगच्छत्तृणस्पर्शस्थाणुपु- १०

रुधादिज्ञानवत् ॥ ४ ॥

चक्षुरसयोर्द्रव्ये संयुक्तसमवायवच्च ॥ ५ ॥

एतच्च सर्वं प्रमाणसामान्यलक्षणपरिच्छेदे विस्तरतोऽभिहित-
मिति पुनर्नेहामिधीयते । तथा

अवैशये प्रत्यक्षं तदाभासं बौद्धस्याकस्मा- १५

द्धूमदर्शनाद् वह्निविज्ञानवत् ॥ ६ ॥

विशदं प्रत्यक्षमित्युक्तं ततोऽन्यस्मिन्नवैशये सति प्रत्यक्षं तदा-

१ तैर्ना—प्रमाणसंख्याविषयफलानाम् । २ अस्वसमिदितस्य स्वमाहकस्याभावेना-
र्थप्रतिपत्त्यनोपाध्यायविषयोपदर्शकत्वाभावात् । ३ निर्विकल्पकं दर्शनम्, तस्य प्रवृत्ति-
विषयोपदर्शकत्वात्प्रत्यक्षमित्युक्तस्यसौत्रेण तदुपदर्शकत्वात् । ४ आदिना विपर्ययानव्य-
वसायी । ५ अत्रोदाहरणानि यथाक्रममाह । ६ सन्निकर्षादिर्न प्रत्यक्षं च प्रमाणं तथा चक्षुरप-
योरेति । तस्मादप्यनपि प्रमाणाभास इति ।

भासं बौद्धस्याकस्मिकधूमदर्शनाद्वह्निविज्ञानवत् इत्यप्युक्तं प्रपञ्चतः प्रत्यक्षपरिच्छेदे ।

वैशद्येपि परोक्षं तदाभासं मीमांसकस्य
करणज्ञानवत् ॥ ७ ॥

५ न हि करणज्ञानेऽव्यवधानेन प्रतिभासलक्षणं वैशद्यमस्ति च्छास्यर्थोः प्रतीत्यन्तरनिरपेक्षतया तत्र प्रतिभासनादित्युक्तं तत्रैव । तथाऽनुभूतेर्था तदित्याकारा सृष्टिरित्युक्तम् । अननुभूते—

अतस्मिंस्तदिति ज्ञानं स्मरणाभासं जिनदत्ते
स देवदत्तो यथेति ॥ ८ ॥

१० तथैकत्वादिनिबन्धनं तदेवेदमित्यादि प्रत्यभिज्ञानमित्युक्तम् । तद्विपरीतं तु—

सदृशे तदेवेदं तस्मिन्नेव तेन सदृशं यमल-
कवदित्यादि प्रत्यभिज्ञानाभासम् ॥ ९ ॥

असम्बन्धे तज्ज्ञानं तर्काभासम्, यावाँस्त-

१५ त्युन्नः स श्यामः इति यथा ॥ १० ॥

व्याप्तिज्ञानं तर्क इत्युक्तम् । ततोऽन्यत्युन्नः असम्बन्धे—अव्याप्तौ तज्ज्ञानं=व्याप्तिज्ञानं तर्काभासम् । यावाँस्तत्युन्नः स श्याम इति यथा ।

इदमनुमानाभासम् ॥ ११ ॥

२० साधनात्साध्यविज्ञानमनुमानमित्युक्तम् । तद्विपरीतं त्विदं वक्ष्यमाणमनुमानाभासम् । पक्षहेतुदृष्टान्तपूर्वकञ्चानुमानप्रयोगः प्रतिपादित इति । तत्रेत्यादिना यथाक्रमं पक्षाभासादीनुदाहरति ।

तत्र अनिष्टादिः पक्षाभासः ॥ १२ ॥

१ यथा धूमवाष्पादिविवेकनिश्चयाभावाद्दवाग्निग्रहणाभासदकसाधुमदर्शनाच्चातं पक्ष-
द्विविज्ञानं तत्तदाभासं भवति कसादनिश्चयात्, तथा बौद्धपरिकल्पितं परिनिर्कल्पक-
प्रत्यक्षं तत् प्रत्यक्षाभासं भवति कसादनिश्चयात् । २ पक्षत्वप्रत्यभिज्ञानाभासम् ।
३ साहचर्यप्रत्यभिज्ञानाभासम्, समं क्षेत्रं सद्युत्तमिलवै । ४ धूमकर्क=धुमकम् ।
५ भविनाभासाभावे ।

लोकै हि प्राण्यङ्गत्वाविशेषेपि किञ्चिदपवित्रं किञ्चित्पवित्रं च वस्तुस्वभावात्प्रसिद्धम् । यथा गोपिण्डोत्पन्नत्वाविशेषेपि वस्तुस्वभावंतः किञ्चिद्गुहादि शुद्धं न गोमांसम् । यथा वा मणित्वाविशेषेपि कञ्चिद्विषापहारादिप्रयोजनविधायी महामूल्योऽन्यस्तु ५ तद्विपरीतो वस्तुस्वभाव इति ।

स्ववचनवाधितो यथा—

माता मे वन्ध्या पुरुषसंयोगेप्यगर्भत्वा-
त्प्रसिद्धवन्ध्यावत् ॥ २० ॥

अथेदानीं पक्षामासानन्तरं हेत्वाभासेत्यादिना हेत्वाभासानाह—
१० हेत्वाभासा असिद्धविरुद्धानैकान्ति-
काऽकिञ्चित्कराः ॥ २१ ॥

साध्याविनाभावित्वेन निश्चितो हेतुरित्युक्तं प्राक् । तद्विपरी-
तास्तु हेत्वाभासाः । के ते ? असिद्धविरुद्धानैकान्तिकाऽकिञ्चि-
त्कराः ।

१५ तत्रासिद्धस्य स्वरूपं निरूपयति—

असत्सत्तानिश्चयोऽसिद्धः इति ॥ २२ ॥

सत्ता च निश्चयश्च [सत्तानिश्चयौ] असन्तौ सत्तानिश्चयौ
यस्य स तथोक्तः । तत्र—

अविद्यमानसत्ताकः परिणामी शब्दश्चाधु-
२० षत्वादिति ॥ २३ ॥

कथमस्याऽसिद्धत्वमित्याह—

स्वरूपेणासिद्धत्वात् इति ॥ २४ ॥

चक्षुर्ज्ञानग्राह्यत्वं हि चाधुषत्वम्, तच्च शब्दे स्वरूपेणासत्त्वाद्-
सिद्धम् । पौत्रलिकत्वात्तत्सिद्धिः, इत्यप्यपेशलम्; तद्विशेषेप्यनु-
२५ द्रूतस्वभावस्यानुपलम्भसम्भवाज्जलकनकादिसंयुक्तानले भाद्रुर-
रूपोष्णरूपवदित्युक्तं तत्पौत्रलिकत्वसिद्धिप्रयत्नकै ।

ये च विशेष्यासिद्धादयोऽसिद्धप्रकाराः परैरिष्टान्तेऽसत्सत्ता-

कत्वलक्षणासिद्धप्रकारान्तरान्तरम्, तल्लक्षणमेदाभावात् । यथैव हि स्वरूपासिद्धस्य स्वरूपतोऽसत्त्वाद्सत्सत्ताकत्वलक्षणमसिद्धत्वं तथा विशेष्यासिद्धादीनामपि विशेष्यत्वादिस्वरूपतोऽसत्त्वात्तल्लक्षणमेवासिद्धत्वम् ।

तत्र विशेष्यासिद्धो यथा-अनित्यः शब्दः सामान्यवत्त्वे सति ५ चाश्रुयत्वात् ।

विशेषणासिद्धो यथा-अनित्यः शब्दश्चाश्रुयत्वे सति सामान्यवत्त्वात् ।

आश्रयासिद्धो यथा-अस्ति प्रधानं विश्वपरिणामित्वात् ।

आश्रयैकदेशासिद्धो यथा-नित्याः परमाणुप्रधानात्मेश्वरा १० अकृतकत्वात् ।

व्यर्थविशेष्यासिद्धो यथा-अनित्याः परमाणवः कृतकत्वे सति सामान्यवत्त्वात् ।

व्यर्थविशेषणासिद्धो यथा-अनित्याः परमाणवः सामान्यवत्त्वे सति कृतकत्वात् । व्यर्थविशेष्यविशेषणञ्चासावसिद्धश्चेति । १५

व्यर्थिकरणासिद्धो यथा-अनित्यः शब्दः पटस्य कृतकत्वात् । व्यधिकरणञ्चासावसिद्धश्चेति । ननु शब्दे कृतकत्वमस्ति तत्कथमस्यासिद्धत्वम् ? तदयुक्तम् ; तस्य हेतुत्वेनाप्रतिपादितत्वात् । न चान्यत्र प्रतिपादितमन्यत्र सिद्धं भवत्यतिप्रसङ्गात् ।

भागासिद्धो यथा-[अ]नित्यः शब्दः प्रयत्नानन्तरीयकत्वात् । २० व्यधिकरणासिद्धत्वं भागासिद्धत्वं च परैःप्रक्रियाप्रदर्शनमात्रं न यस्तुतो हेतुदोषः ; व्यधिकरणस्यापि 'उदेप्यति शकटं कृत्तिकोदयात्, उपरि वृष्टो देवोऽधः पूरदर्शनात्' इत्यादेर्गमकत्वप्र-

१ परमार्थतः प्रधानं नास्तीति भावः । २ अयमाश्रयस्तत्र प्रधानेश्वरो न स एव । ३ कृतकत्वेनाऽनित्यत्वसिद्धिर्यतः । ४ व्यर्थं विशेषण मस्य स तथोक्तः, स चासावसिद्धश्चेति विग्रहः । ५ विशेष्यं च विशेषणं च विशेष्यविशेषणे, व्यर्थं विशेष्यविशेषणे मत्सेति विग्रहः । ६ विभिन्नमधिकरणमस्तीति विग्रहः । ७ शब्दव्यस्य कृतकत्वस्य । ८ तथा प्रतिपादितमपि कृतकत्वं शब्दे सिद्धं भविष्यतीत्युक्ते सत्यात् । ९ एकत्र हेतुपन्यासे सर्वत्र साध्यसिद्धिप्रसङ्गात् । १० पक्षेकभागे असिद्धः, आश्रयैकदेशसिद्धभागासिद्धयोरयं विशेषः-तत्राश्रयैकदेशोऽसिद्धो हेतुश्च सिद्ध एव, अत्र त्वाश्रयैकदेशे हेतुरसिद्ध आश्रयैकदेशस्तु सिद्ध एव । ११ प्रयत्नानन्तरीयकत्वं पुरुषव्यापारोत्पत्ते शब्दे न तु नेवादिशब्दे इति भावः । १२ परे नैयायिकादयः । १३ जैानान् ।

तीतेः । अविनाभावनिबन्धनो हि गम्यगमकभावः, न तु व्यधिकरणव्यधिकरणनिबन्धनः 'स श्यामस्तत्पुत्रत्वात्, धवलः प्रासादः काकस्य काष्ण्यात्' इत्यादिर्वत् ।

नै च व्यधिकरणस्यापि गमकत्वे अविद्यमानसत्ताकत्वलक्षण-
५ मसिद्धत्वं विरुध्यते; न हि पक्षेऽविद्यमानसत्ताकोऽसिद्धोऽभि-
प्रेतो गुरुणाम् । किं तर्हि? अविद्यमाना साध्येनासाध्येनोभयेन
वाऽविनाभाविनी सत्ता यस्यासावसिद्ध इति ।

भागासिद्धस्याप्यविनाभावसद्भावाद्गमकत्वमेव । न खलु प्रय-
ज्ञानन्तरीयकत्वेमनित्यत्वमन्तरेण क्वापि दृश्यते । यावति च
१० तत्प्रवर्त्तते तावतः शब्दस्यानित्यत्वं ततः प्रसिद्धयति, अन्यस्य
त्वन्वयतः कृतकत्वादेरिति । यद्वा—'प्रयत्नानन्तरीयकत्वहेतूपादान-
सामर्थ्यात्' प्रयत्नानन्तरीयक एव शब्दोत्र पक्षः । तत्र चास्य
सर्वत्र प्रवृत्तेः कथं भागासिद्धत्वमिति ?

अथेदानीं द्वितीयमसिद्धप्रकारं व्याचष्टे—

१५ अविद्यमाननिश्चयो मुग्धबुद्धिं प्रत्यग्निरत्र
धूमादिति ॥ २५ ॥

कुतोस्याविद्यमाननियततेत्याह—

तस्य बाष्पादिभावेन भूतसंघाते
सन्देहात् ॥ २६ ॥

२० मुग्धबुद्धेर्बाष्पादिभावेन भूतसंघाते सन्देहात् । न खलु साध्य-
साधनयोरन्युत्पन्नप्रसङ्गः 'धूमादिरीदृशो बाष्पादिश्चेदृशः' इति
विवेचयितुं समर्थः ।

साङ्ख्यं प्रति परिणामी शब्दः
कृतकत्वादिति ॥ २७ ॥

२५ चाविद्यमाननिश्चयः । कुत एतत् ?

तेनाज्ञातत्वात् ॥ २८ ॥

१ अव्यधिकरणव्यधिकरणत्वमुभयत्रास्ति तथाप्यविनाभावभावेनासन्देहत्वमिति
भावः । २ न चाशङ्कनीयम् । ३ वृष्टान्तेन । ४ हेतोः । ५ साधनम् ।
६ पुरुषस्यापारोक्ष्ये शब्दे । ७ जेपादिशब्दस्य धर्मरूपस्य । ८ पृथिव्यादिलक्षणानां
भूतानां संघातो धूमस्तस्मिन् धूमे । ९ विद्यमानधूमेति ।

न ह्यस्याविर्भावादन्यत् कारणव्यापारादसतो रूपस्यात्मलाभलक्षणं कृतकत्वं प्रसिद्धम् ।

सन्दिग्धविशेष्यादयोप्यविद्यमाननिश्चयतालक्षणातिक्रमाभावाद्भार्थान्तरम् । तत्र सन्दिग्धविशेष्यासिद्धो यथा-अद्यापि रागादियुक्तः कपिलः पुरुषत्वे सत्यद्याप्यनुत्पन्नतत्त्वज्ञानत्वात् । सन्दिग्धविशेषणासिद्धो यथा-अद्यापि रागादियुक्तः कपिलः सर्वदा तत्त्वज्ञानरहितत्वे सति पुरुषत्वात् । एते एवासिद्धभेदाः केचिदन्यतरासिद्धाः केचिदुभयासिद्धाः प्रतिपत्तव्याः ।

ननु नास्त्यन्यतरासिद्धो हेत्वाभासः; तथाहि-परेणासिद्ध इत्युद्भाविते यदि घादी तत्साधकं प्रमाणं न प्रतिपादयति, तदा प्रमाणाभासवदुभयोरसिद्धः । अथ प्रमाणं प्रतिपादयेत्; तर्हि प्रमाणस्यापक्षपातित्वादुभयोरप्यसौ सिद्धः । अन्यथा साध्यमप्यन्यतरासिद्धं न कदाचित्सिद्धेदिति व्यर्थः प्रमाणोपन्यासः स्यात्; इत्यप्यसमीचीनम्; यतो घादिना प्रतिवादिना वा सभ्यसमक्षं स्वोपन्यस्तो हेतुः प्रमाणतो यावन्न परं प्रति साध्यते तावत् प्रत्यस्य प्रसिद्धेरभावात्कथं नान्यतरासिद्धता? नन्वेवमप्यस्यासिद्धत्वं गौणमेव स्यादिति चेत्; एवमेतत्, प्रमाणतो हि सिद्धेरभावादसिद्धोसौ न तु स्वरूपतः । न खलु रत्नादिपदार्थस्तत्त्वतोऽप्रतीयमानस्तावत्कालं मुख्यतस्तदाभासो भवतीति ।

अथेदानीं विरुद्धहेत्वाभासस्य विपरीतस्येत्यादिना स्वरूपं दर्शयति—

विपरीतनिश्चिताविनाभावो विरुद्धः अपरि-

गामी शब्दः कृतकत्वात् ॥ २९ ॥

साध्यस्वरूपाद्विपरीतेन प्रत्येकीकेन निश्चितोऽविनाभावो यस्यासौ विरुद्धः । यथाऽपरिणीमी शब्दः कृतकत्वादिति । कृतकत्वं हि पूर्वोत्तराकारपरिहारावासिस्थितिलक्षणपरिणामेनैवावि-

१ यत्तत्सर्वं सर्वस्य वस्तुनः सद्भावः सदेति वचः । २ साध्यशुद्धः । ३ साध्यने-
नोक्तं भवता नैवाना विशेष्यासिद्धो हेतुरिति भावः । ४ वादिप्रतिवादिनोर्नये
एकस्य । ५ वादिप्रतिवादिनोः । ६ किन्तार्हि । उभयासिद्ध एव । ७ प्रतिवा-
दिना । ८ उपन्यस्तेषु निर्दुष्टे हेतुसाधके प्रमाणे यद्यसौ नोभयोः सिद्धः स्याद्यदि ।
९ साध्यस्यान्यतरासिद्धत्वात् । १० यावत्प्रमाणतः सिद्धेरेवाभावस्यावस्वरूपतोप्यसिद्धः
कृपो न स्यादियुक्ते सत्याह । ११ सत् । १२ हेतोः । १३ एकत्वमाभ्यङ्गि-
कलक्षणो निलैकलक्षणः । १४ साध्यविपरीतेन ।

नाभूतं घहिरन्तर्वा प्रतीतिविषयः सर्वथा नित्ये क्षणिके वा तदभावप्रतिपादनात् ।

ये चाष्टौ विरुद्धमेदाः परैरिष्टास्तेष्वेतल्लक्षणलक्षितत्वाविशेषतोऽत्रैवान्तर्भवन्तीत्युदाह्रियन्ते । सति सपक्षे चत्वारो विरुद्धाः ।
५ पक्षविपक्षव्यापकः सपक्षावृत्तिर्यथा-नित्यः शब्द उत्पत्तिधर्मकत्वात् । उत्पत्तिधर्मकत्वं हि पक्षीकृते शब्दे प्रवर्तते, नित्यविपरीते चानित्ये घटादौ विपक्षे, नाकाशादौ सत्यपि सपक्षे इति ।

विपक्षैकदेशवृत्तिः पक्षव्यापकः सपक्षावृत्तिश्च यथा-नित्यः शब्दः सामान्यवत्त्वे सत्यस्मदादिबाह्येन्द्रियप्रत्यक्षत्वात् । बाह्येन्द्रियग्रहणयोग्यतामात्रं हि बाह्येन्द्रियप्रत्यक्षत्वमत्र विवक्षितम्, तेनास्य पक्षव्यापकत्वम् । विपक्षैकदेशव्यापकत्वं चानित्ये घटादौ भावात्सुखादौ चाभावात् सिद्धम् । सपक्षावृत्तित्वं चाकाशादौ नित्येऽवृत्तेः । सामान्ये वृत्तिस्तु 'सामान्यवत्त्वे सति' इति विशेषणाद्भवच्छिन्ना ।

१५ पक्षविपक्षैकदेशवृत्तिः सपक्षावृत्तिश्च यथा-सामान्यविशेषवती अस्मदादिबाह्यकरणप्रत्यक्षे वाग्मनसे नित्यत्वात् । नित्यत्वं हि पक्षैकदेशे मनसि वर्तते न वाचि, विपक्षे चास्मदादिबाह्यकरणाप्रत्यक्षे गगनादौ नित्यत्वं वर्तते न सुखादौ । सपक्षे च घटादावस्याऽवृत्तेः सपक्षावृत्तित्वम् । सामान्यस्य च सपक्षत्वं सामान्या(न्य) विशेषवत्त्वविशेषणाद्भवच्छिन्नम् । योगिबाह्यकरणप्रत्यक्षस्य चाकाशादेरस्मदाद्यऽग्रहणादसपक्षत्वम् ।

पक्षैकदेशवृत्तिः सपक्षावृत्तिर्विपक्षव्यापको यथा-नित्ये वाग्मनसे उत्पत्तिधर्मकत्वात् । उत्पत्तिधर्मकत्वं हि पक्षैकदेशे वाचि वर्तते न मनसि, सपक्षे चाकाशादौ नित्ये न वर्तते, विपक्षे च घटादौ सर्वत्र वर्तते इति ।

तथाऽसति सपक्षे चत्वारो विरुद्धाः । पक्षविपक्षव्यापकोऽविद्यमानसपक्षो यथा-आकाशविशेषगुणः शब्दः प्रमेयत्वात् । प्रमेयत्वं हि पक्षे शब्दे वर्तते । विपक्षे चानाकाशविशेषगुणे घटादौ, न तु सपक्षे तस्यैवाभावात् । न ह्याकाशे शब्दादन्यो विशेषगुणः
३० कश्चिदस्ति यः सपक्षः स्यात् । परममहापरिमार्गादेरन्यत्रापि प्रवृत्तितः साधारणगुणत्वात् ।

१ नैयायिकादिभिः । २ परतत्त्व=विपरीतनिश्चिताविनाभावता । ३ सपक्षे अङ्ग-
तिरवर्तनं यस्य स तथोक्तः । ४ नित्यरूपे सपक्षे ५ नित्यत्वस्य हेतोः । ६ सामान्यस्य सपक्षत्वं भविष्यतीत्युक्ते सत्याह । ७ अनित्यत्वेन । ८ भादिना संख्यादेशः ।
९ आत्मादावपि ।

पक्षविपक्षैकदेशवृत्तिरविद्यमानसपक्षो यथा-सत्तासम्बन्धिः
बहु पदार्था उत्पत्तिमत्त्वात् । अत्र हि हेतुः पक्षीकृतपदपदार्थैकदेशे
अनित्यद्रव्यगुणकर्मण्येव वर्तते न नित्यद्रव्यादौ । विपक्षे
चासत्तासम्बन्धिनि प्रागभावाद्येकदेशे प्रध्वंसाभावे वर्तते न तु
प्रागभावादौ । सपक्षस्य चासम्भवादेव तत्रास्यावृत्तिः सिद्धा । ५

पक्षव्यापको विपक्षैकदेशवृत्तिरविद्यमानसपक्षो यथा-आका-
शविशेषगुणः शब्दो बाह्येन्द्रियग्राह्यत्वात् । अयं हि हेतुः
पक्षीकृते शब्दे वर्तते । विपक्षस्य चानाकाशविशेषगुणस्यैकदेशे
रूपादौ वर्तते, न तु सुखादौ । सपक्षस्य चासम्भवादेव तत्रा-
स्याऽवृत्तिः सिद्धा । १०

पक्षैकदेशवृत्तिर्विपक्षव्यापकोऽविद्यमानसपक्षो यथा-नित्ये
वाङ्मनसे कार्यत्वात् । कार्यत्वं हि पक्षस्यैकदेशे वाचि वर्तते
न मनसि । विपक्षे चानित्ये घटादौ सर्वत्र प्रवर्तते सपक्षे चावृ-
त्तिस्तस्याभावात्सुप्रसिद्धा ।

अथानैकान्तिकः कीदृश इत्याह—

१५

विपक्षेऽप्यविरुद्धवृत्तिरनैकान्तिकः ॥ ३० ॥

न केवलं पक्षसपक्षेऽपि तु विपक्षेऽप्यपिशब्दार्थः । एकसि-
द्धन्ते नियतो द्वैकान्तिकस्ताद्विपरीतोऽनैकान्तिकः सव्यभिचार
इत्यर्थः । कः पुनरयं व्यभिचारो नाम ? पक्षसपक्षान्यवृत्तित्वम् ।
यः खलु पक्षसपक्षवृत्तित्वे सत्यन्यत्र वर्तते स व्यभिचारी २०
प्रसिद्धः । यथा लोके पक्षसपक्षविपक्षवर्ती कश्चित्पुरुषस्तथा चाय-
मनैकान्तिकत्वेनाभिमतो हेतुरिति । स च द्वेषा निश्चितवृत्तिः
शङ्कितवृत्तिश्चेति । तत्र—

निश्चितवृत्तिर्यथाऽनित्यः शब्दः प्रमेयत्वाद्

घटवदिति ॥ ३१ ॥

२५

कथमित्याह—

आकाशे नित्येऽप्यस्य सम्भवादिति ॥ ३२ ॥

शङ्कितवृत्तिस्तु नास्ति सर्वज्ञो

वक्तृत्वादिति ॥ ३३ ॥

कुतोऽयं शङ्कितवृत्तिरित्याह—

सर्वज्ञत्वेन वक्तृत्वाविरोधात् ॥ ३४ ॥

एतच्च सर्वज्ञसिद्धिप्रस्तावे प्रपञ्चितमिति नेहोच्यते । पराम्युप-
गतञ्च पक्षत्रयव्यापकाद्यनैकान्तिकप्रपञ्च एतल्लक्षणलक्षितत्वावि-
५ शेपान्नातोऽर्थान्तरम्, सर्वत्र विपक्षस्यैकदेशे सर्वत्र वा विपक्षे
वृत्त्या विपक्षेऽप्यविरुद्धवृत्तित्वलक्षणसम्भवादित्युदाह्रियते । पक्ष-
त्रयव्यापको यथा-अनित्यः शब्दः प्रमेयत्वात् । पक्षे सपक्षे विपक्षे
चास्य सर्वत्र प्रवृत्तेः पक्षत्रयव्यापकः ।

सपक्षविपक्षैकदेशवृत्तिर्यथा-नित्यः शब्दोऽमूर्तत्वात् । अमू-
१० र्तत्वं हि पक्षीकृते शब्दे सर्वत्र वर्तते । सपक्षैकदेशे चाका-
शादौ वर्तते, न परमाणुषु । विपक्षैकदेशे च सुखादौ वर्तते
न घटादाविति ।

पक्षसपक्षव्यापको विपक्षैकदेशवृत्तिर्यथा-गौरयं विषाणि-
त्वात् । विषाणित्वं हि पक्षीकृते पिण्डे वर्तते, सपक्षे च गोत्व-
१५ धर्माध्यासिते सर्वत्र व्यक्तिविशेषे, विपक्षस्य चागोरूपस्यैकदेशे
महिष्यादौ वर्तते न तु मनुष्यादाविति ।

पक्षविपक्षव्यापकः सपक्षैकदेशवृत्तिर्यथा-अगौरयं विषाणि-
त्वात् । अयं हि हेतुः पक्षीकृतेऽगोपिण्डे वर्तते । अगोत्ववि-
पक्षे च गोव्यक्तिविशेषे सर्वत्र, सपक्षस्य चागोरूपस्यैकदेशे महि-
२० ष्यादौ वर्तते न तु मनुष्यादाविति ।

पक्षत्रयैकदेशवृत्तिर्यथा-अनित्ये चागमनसेऽमूर्तत्वात् । अमू-
र्तत्वं हि पक्षस्यैकदेशे चाग्निं वर्तते न मनसि, सपक्षस्य चैकदेशे
सुखादौ न घटादौ, विपक्षस्य चाकाशादेर्नित्यस्यैकदेशे गगनादौ न
परमाणुष्विति ।

२५ पक्षसपक्षैकदेशवृत्तिर्विपक्षव्यापको यथा-द्रव्याणि दिक्काल-
मनांस्यमूर्तत्वात् । अमूर्तत्वं हि पक्षस्यैकदेशे दिक्काले वर्तते न
मनसि, सपक्षस्य च द्रव्यरूपस्यैकदेशे आत्मादौ वर्तते न घटादौ,
विपक्षे चाद्रव्यरूपे गुणोदौ सर्वत्रेति ।

१ सर्वत्रे वक्तृत्वस्य बाधकप्रमाणाभावात्किं वक्तृत्वं तत्र वर्तते न वेति संदेहः ।
२ परेः नैयायिकादिभिः । ३ पक्षसपक्षविपक्षाः पक्षत्रयम् । ४ विपक्षेऽप्यविरुद्धेति ।
५ इयत्तावच्छिन्नपरिमाण्योगित्वं मूर्तिमत्त्वम् । निर्गुणा गुणा इति वचनादियत्ताव-
च्छिन्नपरिमाण्यभावः ।

पक्षविपक्षैकदेशवृत्तिः सपक्षव्यापको यथा-अद्रव्याणि दिक्कालमनान्त्यमूर्तत्वात् । अत्रापि प्राक्तनमेव व्याख्यानम् अद्रव्यरूपस्य गुणादेस्तु सपक्षतेति विशेषः ।

सपक्षविपक्षव्यापकः पक्षैकदेशवृत्तिर्यथा-पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशान्यानित्यान्यगन्धवत्त्वात् । अगन्धवत्त्वं हि पृथिवीतोऽन्यत्र ५ पक्षैकदेशे वर्तते न तु पृथिव्याम्, सपक्षे चानित्ये गुणे कर्मणि च, विपक्षे चात्मादौ नित्ये सर्वत्र वर्तत इति ।

अथेदानीमकिञ्चित्करस्वरूपं सिद्ध इत्यादिना व्याचष्टे—

सिद्धे प्रत्यक्षादिवाधिते च साध्ये

हेतुरकिञ्चित्करः ॥ ३५ ॥

१०

सिद्धे निर्णयति प्रमाणान्तरात्साध्ये प्रत्यक्षादिवाधिते च हेतुर्न किञ्चित्करोतीत्यकिञ्चित्करोऽनर्थकः ।

यथा श्रावणः शब्दः शब्दत्वादिति ॥ ३६ ॥

न ह्यसौ स्वसाध्यं साधयति, तस्याध्यक्षादेव प्रसिद्धेः । नापि साध्यान्तरम्; तत्रावृत्तेरित्यत आह—

१५

किञ्चिदकरणात् ॥ ३७ ॥

प्रत्यक्षादिवाधिते च साध्येऽकिञ्चित्करोसौ—

अनुष्णोग्निर्द्रव्यत्वादित्यादौ यथा

किञ्चित्कर्तुमशक्यत्वात् ॥ ३८ ॥

कृतोस्याऽकिञ्चित्करत्वमित्याह-किञ्चित्कर्तुमशक्यत्वात् । २०

ननु प्रसिद्धः प्रत्यक्षानुमानागमलोकस्ववचनैश्च धाधितः पदाभासः प्रतिपादितः । तद्दोषेणैव चास्य दुष्टत्वात् पृथगकिञ्चित्कराभिधानमनर्थकमित्याशङ्क्य लक्षण एवेत्यादिना प्रतिविधत्ते—

लक्षण एवासौ दोषो व्युत्पन्नप्रयोगस्य

पक्षदोषेणैव दुष्टत्वात् ॥ ३९ ॥

२५

लक्षणे लक्षणव्युत्पादनशास्त्रे एवासावकिञ्चित्करत्वलक्षणो दोषो विनेयव्युत्पत्त्यर्थं व्युत्पाद्यते, न तु व्युत्पन्नानां प्रयोगफाले । कृत एतदित्याह-व्युत्पन्नप्रयोगस्य पक्षदोषेणैव दुष्टत्वात् ।

अथेदानीं दृष्टान्ताभासप्रतिपादनार्थं दृष्टान्तेत्याद्युपक्रमते ।
दृष्टान्तो ह्यन्वयव्यतिरेकभेदाद्भिधैत्युक्तम् । तद्विपरीतस्तदाभा-
सोपि तद्भेदाद्भिधैव द्रष्टव्यः । तत्र—

दृष्टान्ताभासा अन्वये असिद्धसाध्य-

५

साधनोभयाः ॥ ४० ॥

अपौरुषेयः शब्दोऽमूर्तत्वादिन्द्रियसुख-पर-
माणु-घटवदिति ॥ ४१ ॥

इन्द्रियसुखे हि साधनममूर्तत्वमस्ति, साध्यं त्वपौरुषेयत्वं
नास्ति पौरुषेयत्वात्तस्य । परमाणुषु तु साध्यमपौरुषेयत्वमस्ति,
१० साधनं त्वमूर्तत्वं नास्ति मूर्तत्वात्तेषाम् । घटे तुभयमपि पौरुषे-
यत्वान्मूर्तत्वाच्चास्येति । न केवलमेत एवान्वये दृष्टान्ताभासाः
किन्तु—

विपरीतान्वयश्च यदपौरुषेयं तदमूर्तम् ॥ ४२ ॥

विपरीतोऽन्वयो व्याप्तिप्रदर्शनं यस्मिन्निति । यथा यदपौरुषेयं
१५ तदमूर्तमिति । 'यदमूर्तं तदपौरुषेयम्' इति हि साध्येन व्याप्ते
साधने प्रदर्शनीये कुतश्चिद्भ्रामोहात् 'यदपौरुषेयं तदमूर्तम्' इति
प्रदर्शयति । न चैवं प्रदर्शनीयम्—

विद्युदादिनाऽतिप्रसङ्गादिति ॥ ४३ ॥

विद्युद्भ्रनकुसुमादौ ह्यऽपौरुषेयत्वेऽप्यमूर्तत्वं नास्तीति ।
२० व्यतिरेके दृष्टान्ताभासाः—

व्यतिरेके असिद्धतद्व्यतिरेकाः परमा-
पिविन्द्रियसुखाकाशवत् ॥ ४४ ॥

असिद्धतद्व्यतिरेकाः—असिद्धस्तेषां साध्यसाधनोभयानां व्यति-
रेको [व्या]वृत्तिर्येषु ते तथोक्ताः । यथाऽपौरुषेयः शब्दोऽमू-
२५ र्तत्वादित्युक्त्वा यन्नापौरुषेयं तन्नामूर्तं परमाण्विन्द्रियसुखाका-
शवदिति व्यतिरेकमाह । परमाणुभ्यो ह्यमूर्तत्वव्यावृत्तावप्यऽपौ-
रुषेयत्वं न व्यावृत्तमपौरुषेयत्वात्तेषाम् । इन्द्रियसुखे त्वपौरुषेय-
त्वव्यावृत्तावप्यमूर्तत्वं न व्यावृत्तममूर्तत्वात्तस्य । आकाशे तुभयं

न व्यावृत्तमपौरुषेयत्वादमूर्त्तत्वाच्चास्येति । न केवलमेत एव व्यतिरेके दृष्टान्ताभासाः किंतु—

**विपरीतव्यतिरेकश्च यन्नामूर्त्तं तन्ना-
पौरुषेयम् ॥ ४५ ॥**

विपरीतो व्यतिरेको व्यावृत्तिप्रदर्शनं यस्येति । यथा यन्नामूर्त्तं ५ तन्नापौरुषेयमिति । 'यन्नापौरुषेयं तन्नामूर्त्तम्' इति हि साध्यव्यतिरेके साधनव्यतिरेकः प्रदर्शनीयस्तथैव प्रतिवन्धादिति ।

अव्युत्पन्नव्युत्पादनार्थं पञ्चावयवोपि प्रयोगः प्राक् प्रतिपादितस्तत्प्रयोगाभासः कीदृश इत्याह—

वालप्रयोगाभासः पञ्चावयवेषु कियद्धीनता ॥४६॥ १०

यथाग्निमानयं देशो धूमवत्त्वात्, यदित्थं

तदित्थं यथा महानस इति ॥ ४७ ॥

धूमवांश्चायमिति वा ॥ ४८ ॥

यो ह्यव्युत्पन्नप्रज्ञोऽनुमानप्रयोगे पञ्चावयवे गृहीतसङ्केतः स उपनयनिगमनरहितस्य निगमनरहितस्य वातुमानप्रयोगस्य तदा-१५ भासतां मन्यते । न केवलं कियद्धीनतैव वालप्रयोगाभासः किंतु तद्विपर्ययश्च—तेषामवयवानां विपर्ययस्तत्प्रयोगाभासो यथा—

तस्मादग्निमान् धूमवांश्चार्यमिति ॥ ४९ ॥

सं ह्युपनयपूर्वकं निगमनप्रयोगं साध्यप्रतिपत्त्यङ्गं मन्यते, नान्यथा । कृत एतदित्याह— २०

स्पष्टतया प्रकृतप्रतिपत्तेरयोगात् ॥ ५० ॥

स्पष्टतया प्रकृतस्य साध्यस्य प्रतिपत्तेरयोगात् । यो हि यथा गृहीतसङ्केतः स तथैव वाक्प्रयोगात्प्रकृतमर्थं प्रतिपद्येत नान्यथा लोकवत् । यस्तु सर्वप्रकारेण वाक्प्रयोगे व्युत्पन्नप्रज्ञः स यथा यथा वाक्प्रयुज्यते तथा तथा प्रकृतमर्थं प्रतिपद्येत २५ लोके सर्वभाषाप्रवीणपुरुषवत् । तथा च न तं प्रत्यनन्तरोक्तं कश्चित्प्रयोगाभास इति ।

१ कृत इत्याह । २ अविनाभावात् । ३ अनुमानप्रयोगः । ४ वालव्युत्पत्त्यर्थमेव । ५ पञ्चावयववातुमानवादी वालो वा । ६ विगमनपूर्वकमुपनयप्रयोगं न मन्यते ।

अथेदानीमागमाभासप्ररूपणार्थमाह—

रागद्वेषमोहाक्रान्तपुरुषवचनाज्जातमा-
गमाभासम् ॥ ५१ ॥

रागाक्रान्तो हि पुरुषः क्रीडावशीकृतचित्तो विनोदार्थं वंस्तु
५ किञ्चिदप्राभुवन्माणवकैरपि सह क्रीडाभिलाषेणेदं वाक्यमुच्चार-
यति—

यथा नद्यास्तीरे मोदकराशयः सन्ति

धावध्वं माणवका इति ॥ ५२ ॥

तथा क्वचित्कार्ये व्यासक्तचित्तो माणवकैः कदर्थितो द्वेषाक्रा-
१० न्तोऽप्यात्मीयस्थानात्तदुच्चाटनाभिलाषेणेदमेव वाक्यमुच्चारयति ।
मोहाक्रान्तस्तु सांख्यादिः—

अङ्गुल्यग्रे हस्तियूथशतमास्ते इति च ॥ ५३ ॥

उच्चारयति । न खल्वज्ञानमहामहीधराक्रान्तः पुरुषो यथाव-
द्वस्तु विवेचयितुं समर्थः ।

१५ ननु चैवंविधपुरुषवचनोद्भूतं ज्ञानं कस्मादागमाभासमित्याह—

विसंवादात् ॥ ५४ ॥

प्रतिपन्नार्थविवचनं हि विसंवादो विपरीतार्थोपस्थापकप्रमाणा-
वसेयः । स चात्रास्तीत्यागमाभासता ।

अथेदानीं संख्याभासोपदर्शनार्थमाह—

२० प्रत्यक्षमेवैकं प्रमाणमित्यादि संख्याभासम् ॥ ५५ ॥

कस्मादित्याह—

लौकायतिकस्य प्रत्यक्षतः परलोकादिनिषेधस्य

परबुद्ध्यादेश्चासिद्धेः अतद्विषयत्वात् ॥ ५६ ॥

कुतोऽसिद्धिरित्याह—अतद्विषयत्वात् । यथा चाध्यक्षस्य परलो-
२५ कादिनिषेधादिरविषयस्तथा विस्तरतो द्वितीयपरिच्छेदे प्रति-
पादितम् ।

१ क्रीडाकारणम् । २ वक्ष्यमाणव्यतिरिक्तम् । ३ सांख्यमते सर्वं सर्वत्र विद्यते
यतः । ४ रजते नेदं रजतमिति यथा । ५ रागाधक्रान्तपुरुषवचनाज्जाते ज्ञाने ।
६ आदिना परबुद्ध्यादिग्रहः ।

अमुमेवार्थं समर्थयमानः सौगततादिपरिकल्पितां च संख्यां निराकुर्वाणः सौगतेत्याद्याह—

सौगतसांख्ययौगप्राभाकरजैमिनीयानां प्रत्यक्षानुमानागमोपमानार्थापत्त्यभावैः एकैकाधिकैः

व्याप्तिवत् ॥ ५७ ॥

५

यथैव हि सौगतसांख्ययौगप्राभाकरजैमिनीयानां मते प्रत्यक्षानुमानागमोपमानार्थापत्त्यभावैः प्रमाणैरेकैकाधिकैर्व्याप्तिर्न सिध्यत्यतद्विषयत्वात् तथा प्रकृतमपि । प्रयोगः—यद्यस्याऽविषयो न ततस्तत्सिद्धिः यथा प्रत्यक्षानुमानाद्यविषयो व्याप्तिर्न ततः सिद्धिसौषशिखरमारोहति, अविषयश्च परलोकनिषेधादिः प्रत्यक्षस्येति । १०

मा भूत्प्रत्यक्षस्य तद्विषयत्वमनुमानावेस्तु भविष्यतीत्याह—

अनुमानादेस्तद्विषयत्वे प्रमाणान्तरत्वम् ॥ ५८ ॥

चार्वाकं प्रति । सौगतादीन्प्रति—

तर्कस्येव व्याप्तिगोचरत्वे प्रमाणान्तरत्वम्

अप्रमाणस्य अव्यवस्थापकत्वात् ॥ ५९ ॥ १५

कृत एतदित्याह अप्रमाणस्याव्यवस्थापकत्वात् ।

प्रतिभासादिभेदस्य च भेदकत्वादिति ॥ ६० ॥

प्रतिपादितश्चायं प्रतिभासभेदः सामग्रीभेदश्चाव्यक्षादीनां प्रपञ्चतस्तद्भेदेत्यत्रेत्युपरम्यते ।

अथेदानीं विषयाभासप्ररूपणार्थं विषयेत्याहुपक्रमते—

२०

विषयाभासः सामान्यं विशेषो द्वयं वा

स्वतन्त्रम् ॥ ६१ ॥

विषयाभासाः—सामान्यं यथा सत्ताद्वैतवादिनः । केवलं विशेषो वा यथा सौगतस्य । द्वयं वा स्वतन्त्रं यथा यौगस्य । कुतोस्य विषयाभासतैत्याह—

२५

१ अनुमानस्य । २ परलोकनिषेधादेः । ३ अस्तु प्रामाण्यमनुमानस्य किन्तु तत्प्रत्यक्षे परान्तर्भविष्यतीत्युक्ते सत्याह । ४ ततः प्रत्यक्षेऽनुमानस्यान्तर्भावोवाभाव इत्यर्थः । ५ अन्योन्यनिरपेक्षम् ।

तथाऽप्रतिभासनात् कार्याऽकरणाच्च ॥ ६२ ॥

स ह्येवंविधोर्थः स्वयमसमर्थः समर्थो वा कार्यं कुर्यात्? न तावत्प्रथमः पक्षः;

स्वयमसमर्थस्याऽकारकत्वात्पूर्ववत् ॥ ६३ ॥

५ एतच्च सर्वं विषयपरिच्छेदे विस्तारतोभिहितमिति नेहाभिधीयते ।

नापि द्वितीयः पक्षः;

समर्थस्य करणे सर्वदोत्पत्तिरनपेक्षत्वात् ॥ ६४ ॥

परापेक्षणे परिणामित्वमन्यथा

१० तदभावादिति ॥ ६५ ॥

अथेदानीं फलाभासं प्ररूपयन्नाह—

फलाभासं प्रमाणादभिन्नं भिन्नमेव वा ॥ ६६ ॥

कुतोस्य फलाभासतेत्याह—

अभेदे तद्व्यवहारानुपपत्तेः ॥ ६७ ॥

१५ न खलु सर्वथा तयोरभेदे 'इदं प्रमाणमिदं फलम्' इति व्यवहारः शक्यः प्रवर्त्तयितुम् ।

ननु व्यावृत्त्या तयोः कल्पना भविष्यतीत्याह—

व्यावृत्त्यापि न तत्कल्पना फलान्तराद्व्यावृत्त्याऽ-
फलत्वप्रसङ्गात् ॥ ६८ ॥

२० प्रमाणान्तराद्व्यावृत्तौ वाऽप्रमाणत्वस्येति ॥ ६९ ॥

एतच्च फलपरीक्षायां प्रपञ्चितमिति पुनर्नेह प्रपञ्चयते ।

तस्माद्वास्तवो भेदः ॥ ७० ॥

१ केवलसामान्यतया केवलविशेषतया इत्यस्य स्वतन्त्रतया वा । २ केवलसामान्य-
रूपः केवलविशेषरूपश्च । ३ पक्षादपि । ४ परस्य । ५ अनपेक्षाकारपरित्यागेना-
पेक्षाकारेण परिणमनात् । ६ सर्वथा । ७ तयोः प्रमाणफलयोः । ८ अफलादव्यावृत्तिः
यथा तथा फलान्तराद्व्यावृत्त्या भाष्यम्, तथा सति फलान्तराद्व्यावृत्तिः फलविशेषा-
द्व्यावृत्तिरित्यर्थः, अफलत्वप्रसङ्गः गोर्व्यावृत्त्याऽगोत्वं भवति यच्च ।

प्रमाणफलयोस्तद्व्यवहारान्यथानुपपत्तेरिति प्रेक्षादक्षैः प्रतिप-
त्तव्यम् ।

अस्तु तर्हि सर्वथा तयोर्भेद इत्याशङ्कानोदार्थमाह—

भेदे त्वात्मान्तरवत्तदनुपपत्तिः (त्तेः) ॥ ७१ ॥

समवायेऽतिप्रसङ्गः ॥ ७२ ॥

५

इत्यप्युक्तं तत्रैव ।

अथेदानीं प्रतिपन्नप्रमाणतदाभासस्वरूपाणां विनयेानां प्रमाण-
तदामासावित्यादिना फलमादर्शयति—

प्रमाण-तदाभासौ दुष्टतयोद्भाविताौ परिहृता-ऽपरि-

हृतदोषौ वादिनः साधन-तदाभासौ प्रतिवा- १०

दिनो दूषण-भूषणे च ॥ ७३ ॥

प्रतिपादितस्वरूपौ हि प्रमाणतदाभासौ यथावत्प्रतिपन्नाप्रति-
पन्नस्वरूपौ जयेतरव्यवस्थाया निवन्धनं भवतः । तथाहि-चतुर-
ङ्गवादमुररीकृत्य विज्ञातप्रमाणतदाभासस्वरूपेण वादिना सम्य-
कप्रमाणे स्वपक्षसाधनायोपन्यस्ते अविज्ञाततत्स्वरूपेण तु तदा-१५
भासे । प्रतिवादिना वाऽनिश्चिततत्स्वरूपेण दुष्टतया सम्यकप्रमा-
णेपि तदाभासतोद्भाविता । निश्चिततत्स्वरूपेण तु तदाभासे
तदाभासतोद्भाविता । एवं तौ प्रमाणतदाभासौ दुष्टतयोद्भाविताौ
परिहृतापरिहृतदोषौ वादिनः साधनतदाभासौ प्रतिवादिनो
दूषणभूषणे च भवतः ।

२०

ननु चतुरङ्गवादमुररीकृत्येत्याद्युक्तमुक्तम् ; वादस्याविजिगी-
षुविपयत्वेन चतुरङ्गत्वासम्भवात् । न खलु वादो विजिगीषतोर्वै-
र्त्तते तत्स्वाभ्यवसायसंरक्षणार्थरहितत्वात् । यस्तु विजिगीषतो-
र्नासौ तथा सिद्धः यथा जल्पो विर्तण्डा च, तथा च वादः,

१ वास्तवभेदाभावे । २ वादिना प्रतिपन्नाप्रतिपन्नस्वरूपौ प्रतिवादिनापि तथैतन्नः ।
३ सम्यक्समाप्तिवादिप्रतिवादीति चत्वार्यङ्गानि यस्य स तयोक्तः । ४ अन्यवादिना ।
५ उपन्यस्ते । ६ अन्यप्रतिवादिना । ७ प्रतिवादिना । ८ वादिनेति शेषः ।
९ स्वपक्षस्य । १० यौगः प्राह । ११ जनैः । १२ नीतपगकथा वादो यौगमये
यतः । १३ जयेच्छाऽभावात्तेषां सन्धादीना प्रयोजनाभावो वादे इति भावः ।
१४ जल्पो वितण्डा च विजिगीषतोरतो न वादरूपः, व्यतिरेकी वृष्टान्तः ।

तस्मान्न विजिगीषतोरिति । न हि वादस्तत्त्वाध्यवसायसंरक्षणार्थो भवति; जल्पवितण्डयोरेव तत्त्वात् । तदुक्तम्—

“तत्त्वाध्यवसायसंरक्षणार्थं जल्पवितर्कण्डे वीजप्ररोहसंरक्षणार्थं कंटकशाखावरणवत्” [न्यायसू० ४।२।५०] इति । तदप्यसमीची-
५ नम्; वादस्याविजिगीषुविषयत्वासिद्धेः । तथाहि—वादो नाविजि-
गीषुविषयो निग्रहस्थानवत्त्वात् जल्पवितण्डावत् । न चास्य निग्रह-
स्थानवत्त्वमसिद्धम्; ‘सिद्धान्ताविरुद्धः’ इत्यनेनापसिद्धान्तः, ‘पञ्चा-
वयवोपपन्नः’ इत्यत्र पञ्चग्रहणात् न्यूनाधिके, अवयवोपपन्नग्रहणा-
द्धेत्वाभासपञ्चकं चेत्यष्टनिग्रहस्थानानां वादे नियमप्रतिपादनात् ।

- १० ननु वादे सतामप्येषां निग्रहबुद्ध्योद्भावनाभावान्न विजिगी-
पास्ति । तदुक्तम्—“तर्कशब्देन भूतपूर्वगतिन्यायेन वीतरागकथा-
त्वज्ञापनादुद्भावननिर्यमोपलभ्यते” [] तेन सिद्धान्ता-
विरुद्धः पञ्चावयवोपपन्न इति चोत्तरपदयोः समस्तनिग्रह-
स्थानाद्युपलक्षणार्थत्वाद्वादेऽप्रमाणबुद्ध्या परेण छलजातिनिग्रह-
१५ स्थानानि प्रयुक्तानि न निग्रहबुद्ध्योद्भाव्यन्ते किन्तु निवारणबुद्ध्या ।
तत्त्वज्ञानायावयोः प्रवृत्तिर्न च साधनाभासो दूषणाभासो वा
तद्धेतुः । अतो न तत्प्रयोगो युक्त इति । तदप्यसाम्प्रतम्; जल्प-
वितण्डयोरपि तथोद्भावननियमप्रसङ्गात् । तयोस्तत्त्वाध्यवसाय-
संरक्षणाय स्वयमभ्युपगमात् । तस्य च छलजातिनिग्रहस्थानैः
२० कर्तुमशक्यत्वात् । परस्य तूष्णींभावार्थं जल्पवितण्डयोश्छलाद्यु-

१ वादो न विजिगीषतोर्वर्ततां तत्त्वाध्यवसायसंरक्षणार्थं भवदिति सिद्धवानैकान्-
तिक्रान्ते सत्याह । २ सः । ३ प्रमाणतर्क (विचार) साधनो (स्वपक्षस्य) पालम्भः
(परपक्षस्य दूषणं) सिद्धान्ताविरुद्धः पञ्चावयवोपपन्नः पञ्चप्रतिपक्षपरिग्रहो वाद इति
परकीयं वादलक्षणघट्टम् । जैनमते तु समर्थं (वादिप्रतिवादिनोर्जयपरानजयार्थं) वचनं
वाद इति वादलक्षणम् । ४ प्रतिशोपपन्न इत्यनेनाभयासिद्धहेत्वाभासग्रहणं, हेतूपपन्न
इत्यनेन स्वरूपासिद्धहेत्वाभासस्य, अन्वयदृष्टान्तोपपन्न इत्यनेन विरुद्धहेत्वाभासस्य
व्यतिरेकदृष्टान्तोपपन्न इत्यनेनैकान्तिकहेत्वाभासस्योपनयोपपन्न इत्यनेन कालाल-
यापदिष्टस्य, निगमोपपन्न इत्यनेन सत्यतिपक्षस्य च ग्रहणम् । ५ अनेनात्र भवितव्यं
नान्येनेति सम्भावनाप्रत्ययस्तर्को विचार इति यावत्, वादलक्षणे गृहीतेन ।
६ व्याख्यानकाले क्रियमाणे विचारे वीतरागत्वं वादिप्रतिवादिनोस्तथा वादकालेपि
तत्समात् । कुत पतत् ? वादलक्षणे तर्कशब्दोपादानाद् शक्यते । ७ व्याख्यानकाले
विचारो वीतरागत्वस्य हेतुस्तथा वादेपीति चारपर्यम् । ८ अपसिद्धान्तादिक निग्रहबुद्ध्या
नोद्धाननीयमिति । ९ प्रमाणतर्कसाधनोपालम्भ इति प्रथमपदापेक्षयोत्तरपदत्वमनयोः ।
१० तत्रश्च छलजात्यादीनां निवारणबुद्ध्योद्भावनमिति भावः, निग्रहस्थानैः प्रति-
वादिनो निराकरणं न तु तत्त्वनिर्णय इति भावः ।

ज्ञानमिति चेत्, न; तथा परस्य तूर्णीभावाभावाद्ऽसदुत्तरा-
णामानन्यात् ।

[न च] तत्त्वाध्यवसायसंरक्षणार्थत्वरहितत्वं च वादेऽ-
सिद्धम्; तस्यैव तत्संरक्षणार्थत्वोपपत्तेः । तथाहि-चाद एव
तत्त्वाध्यवसायसंरक्षणार्थः, प्रमाणतर्कसाधनोपालम्भत्वे सिद्धा-
न्ताविरुद्धत्वे पञ्चावयवोपपन्नत्वे च सति पक्षप्रतिपक्षपरिग्रहव-
त्त्वात्, यस्तु न तथा स न तथा यथाक्रोशादिः, तथा च चादः,
तस्मात्तत्त्वाध्यवसायसंरक्षणार्थं इति । न चायमसिद्धो हेतुः;

“प्रमाणतर्कसाधनोपालम्भः सिद्धान्ताविरुद्धः पञ्चावयवोप-
पन्नः पक्षप्रतिपक्षपरिग्रहो चादः ।” [न्यायसू० १।२।१] इत्यभि- १०
धानात् । ‘पक्षप्रतिपक्षपरिग्रहवत्त्वात्’ इत्युच्यमाने जल्पोपि
तथा स्यादित्यवधारणविरोधः, तत्परिहारार्थं प्रमाणतर्कसाधनो-
पालम्भत्वविशेषणम् । न हि जल्पे तदस्ति, “यथोक्तोपपन्नदुल्ल-
जातिनिग्रहस्थानसाधनोपालम्भो जल्पः ।” [न्यायसू० १।२।२]
इत्यभिधानात् । नापि वितण्डा तथानुषज्यते; जल्पस्यैव वितण्डा- १५
रूपत्वात्, “स प्रतिपक्षस्थापनाहीनो वितण्डा ।” [न्यायसू०
१।२।३] इति वचनात् । स यथोक्तो जल्पः प्रतिपक्षस्थापना-
हीनतया विशेषितो वितण्डात्वं प्रतिपद्यते । वैतण्डिकस्य च
स्वपक्ष एव साधनैवादिपक्षापेक्षया प्रतिपक्षो ह्यस्तिप्रतिहस्ति-
न्यायेन । तस्मिन्प्रतिपक्षे वैतण्डिको हि न साधनं वक्ति । केवलं २०
परपक्षनिराकरणायैव प्रवर्तते इति व्याख्यानात् ।

पक्षप्रतिपक्षौ च वस्तुधर्माविकाधिकरणौ विरुद्धावैककालावन
वसितौ । वस्तुधर्माविति वस्तुविशेषौ वस्तुनः । सामान्येनाधिग-
तत्वाद्दिशेषतोऽनधिगतत्वाच्च विशेषावगमनिमित्तो विचारः ।

१ हेतुः । २ न जल्पवितण्डे इत्यर्थः । ३ पञ्चकारेण । ४ केवलम् । ५ यथो-
क्तेन वादलक्षणेनोपपन्नः, यथोक्तोपपन्नग्रहणेन प्रमाणतर्कसाधनोपालम्भमात्रमुपलक्ष्यते
न समस्तं वादलक्षणं सिद्धान्ताविरुद्धः पञ्चावयवोपपन्न इत्युत्तरपदद्वयस्य निग्रहस्थान-
नियमनिबन्धनस्यात्र सन्ध्याऽभावात् जल्पे समस्तनिग्रहस्थानासम्भवात् । ६ तत्त्वान्य-
वसायसंरक्षणार्थत्वेन । ७ प्रतिवादि । ८ इत्येव प्रतिहस्ती इत्यन्तरापेक्षया, तस्य
न्यायेन । ९ स्वपक्षसाधनाय हेतुम् । १० प्रतिवादी यं कन्नन सिद्धान्तमव-
लम्ब्यावस्थितः प्रतिपक्षभङ्गमात्रेण विजयी भवति न तु जल्पवत्त्वपक्षसाधनेनेति
भावः । ११ पक्षप्रतिपक्षयोर्लक्षणं कृत्वा जल्पवितण्डयोः पक्षप्रतिपक्षपरिग्रहत्वं निरा-
करोति जैनः । १२ शब्दाथाश्रितनित्यानित्यत्वादिलक्षणौ । १३ शब्दादिलक्षणस्य ।
१४ भवतीति शेषः ।

एकाधिकरणविति, नानाधिकरणौ विचारं न प्रयोज्यत उभयोः प्रमाणोपपत्तेः; तद्यथा-अनित्या बुद्धिर्नित्य आत्मेति । अविशुद्धा वैष्येवं विचारं न प्रयोज्यतः, तद्यथा-क्रियावद्द्रव्यं गुणवच्चेति । एककालाविति, भिन्नकालयोर्विचाराप्रयोजकत्वं प्रमाणोपपत्तेः,

५ यथा क्रियावद्द्रव्यं निष्क्रियं च कालमेदे सति । तथाऽवसितौ विचारं न प्रयोज्यतः; निश्चयोत्तरकालं विवादाभावादित्यनवसितौ तौ निर्दिष्टौ । एवंविशेषणौ धर्मौ पक्षप्रतिपक्षौ । तयोः परिग्रह इत्थंभावनियमः 'एवंधर्मयं धर्मो नैवंधर्मो' इति च । ततः प्रमाणतर्कसाधनोपालम्भत्वविशेषणस्य पक्षप्रतिपक्षपरि-
३० ग्रहस्य जल्पवितण्डयोरसम्भवात् सिद्धं वादस्यैव तत्त्वाध्यवसायसंरक्षणार्थत्वं लाभपूजाख्यातिवैत् ।

तत्त्वस्याध्यवसायो हि निश्चयस्तस्य संरक्षणं न्यायवलाच्चिखिल-
वार्धकनिराकरणम्, न पुनस्तत्र बाधकमुद्भावयतो यथाकथञ्चि-
न्निर्मुखीकरणं लकुटचपेटादिभिस्तद्व्यकरणस्यापि तत्त्वाध्यवसाय-
३५ संरक्षणार्थत्वानुपह्नात् । न च जल्पवितण्डाभ्यां निखिलबाधक-
निराकरणम्; छलजात्युपकर्म्मपरतया ताभ्यां संशयस्य विपर्ययस्य वा जननात् । तत्त्वाध्यवसाये सत्यपि हि परिनिर्मुखीकरणे प्रवृत्तौ प्राशिकास्तत्र संशेरते विपर्ययस्यन्ति वा- 'किमस्य तत्त्वाध्यवसायोस्ति किं वा नास्तीति, नास्त्येवेति वा' परिनिर्मुखीकरणमात्रे
२० तत्त्वाध्यवसायरहितस्यापि प्रवृत्त्युपलम्भात् तत्त्वोपलब्धवादिवत् । तथैवाख्यातिरेवास्यं प्रेक्षावत्सु स्यादिति कुतः पूजा लाभो वा ? तैतः सिद्धश्चतुरङ्गो वादः स्वामिप्रेतार्थव्यवस्थापनफलत्वाद्वाद्-
त्वाद्वा लोकाप्रख्यातवादवत् । एकाङ्गस्यापि वैकल्ये प्रस्तुतार्थाऽप-

१ एकाग्रयौ नित्यानित्यलक्षणौ यथा । २ प्रवर्चयते यत इत्यध्याहार्यम् । ३ प्रति । ४ वादिप्रतिवादिनी । ५ नानाधिकरणयोर्वस्तुधर्मयोः । ६ वस्तुधर्मद्वयसैकाधिकरणत्वे सति विचारो भवति, न तु नानाधिकरणे सतीति भावः । ७ अनित्यस्य द्रव्यधिकरणं नित्यस्य त्वात्माधिकरणम्, अत्र यथा प्रमाणोपपत्तेर्विचारो न स्यात् । ८ वादिप्रतिवादिनौ । ९ वादिप्रतिवादिनोः । १० प्रति । ११ अनित्यलक्षणः । १२ शब्दादिः । १३ नित्यलक्षणः । १४ प्रमाणतर्कान्या पक्षप्रतिपक्षौ साधनोपालम्भस्वरूपौ जल्पवितण्डयोर्न भवतस्तत्र तयोर्विचारत्वात् । १५ लाभपूजाख्यातयो यथा वादस्यैव । १६ बाधकं विशुद्धप्रमाणम् । १७ तस्य परस्य । १८ जल्पवितण्डाभ्यां निखिलबाधकनिराकरणं भविष्यतीत्युक्ते सत्याह । १९ उपक्रमः प्रस्तावः । २० परः प्रतिवादी । २१ सत्याम् । २२ सन्देहं कुर्वन्ति । २३ तत्त्वाध्यवसायाभावेन । २४ अप्रसिद्धिः । २५ नादिनः । २६ हेतोः । २७ चतुरङ्गत्वाभासपानमविजिगीषुविषयत्वसाधनं तत्त्वाध्यवसायसंरक्षणार्थरहितत्वसाधनमसिद्धं यतः । २८ सन्दिग्धानैकान्तिकत्वपरिहारमाह ।

रिसमाप्तेः । तथा हि । अहङ्कारग्रहग्रस्तानां मर्यादातिक्रमेण प्रवर्तमानानां शक्तित्रयसमन्वितौदासीन्यादिगुणोपेतसमापतिमन्तरेण

“अपक्षपतिताः प्राज्ञाः सिद्धान्तद्वयैवेदिनः ।

असद्वादनिषेद्धारः प्राश्निकाः प्रग्रहा इव ।” इत्येवंविधप्राश्निकांश्च विना को नाम नियामकः स्यात् ? प्रमाणतदाभासपति-^५ज्ञानसामर्थ्योपेतवादिप्रतिवादिभ्यां च विना कथं वादः प्रवर्तते ?

ननु चास्तु चतुरङ्गता वादस्य । जयेतरव्यवस्था तु छलजातिनिग्रहस्थानैरेव न पुनः प्रमाणतदाभासयोर्दुष्टतयोद्भावितयोः परिहृतापरिहृतदोषमात्रेण, इत्यप्यपेशलम् ; छलादीनामसद्गुणत्वेन स्वपरपक्षयोः साधनदूषणत्वासम्भवतो जयेतरव्यवस्थानि-^{१०}यन्धनत्वायोगात् । ततः परेषां सामान्यतो विशेषतश्च छलादीनां लक्षणप्रणयनमयुक्तमेव ।

तत्र सामान्यतश्छललक्षणम्—

“वचनविधातोर्थविकल्पोपपत्त्या छलम्” [न्यायसू० १।२।१०] इति । “तद्विधिं वाक्छलं सामान्यच्छलमुपचारच्छलं च”^{१५} [न्यायसू० १।२।११] इति ।

तत्र वाक्छललक्षणं तेषाम्—“अविशेषाभिहितेयं चक्षुरभिप्रायादर्थान्तरकल्पना वाक्छलम्” [न्यायसू० १।२।१२] इति । अस्योदाहरणम्—‘आढ्यो वै वैधवेयोयं वर्तते नवकम्बलाः’ इत्युक्ते प्रत्यवस्थानम् कुतोस्य नव कम्बलाः ? नवकम्बलशब्दे हि सामा-^{२०}न्यवाचिन्यत्र प्रयुक्ते ‘नवोस्य कम्बलो जीर्णो नैव’ इत्यभिप्रायो चक्षुः, तस्मादन्यस्यासम्भाव्यमानार्थस्य कल्पना ‘नव अस्य कम्बला नाष्टौ’ इति । एवं प्रत्यवस्थानुरन्यायवादित्वात्पराजयः । न खलु प्रेक्षावतां तत्त्वपरीक्षायां छलेन प्रत्यवस्थानं युक्तमिति यौगीः; तेप्यतत्त्वज्ञाः; यतो यद्येतावतैव जिगीषुर्निगृह्येत तर्हि पत्रवाक्य-^{२५}मनेकार्थं व्याचक्षाणोपि निगृह्यताम् । न चैवम् । यत्र हि पक्षे वादिप्रतिवादिनोर्विप्रतिपत्त्या प्रवृत्तिस्तत्सिद्धेरेवैकस्य जयोन्यस्य पराजयः न त्वनेकार्थत्वप्रतिपादनमात्रम् । एवं च ‘आढ्यो वै

१ प्रमूसाहमन्त्रभेदात् । २ उदासीनःपक्षपातरहितः । ३ आदिना पापनीरतादिसमग्रः । ४ वादिप्रतिवादिनोः । ५ अक्षटोपयुक्तवलीवर्द्धन्द्वयपरणराशय (वलीवर्द्धनरोपकरञ्जनः) इव । ६ इति चक्षुरङ्गत्वं सिद्धं वादस्य । ७ इति चातुरिन्धयम् । ८ छलवात्सादिवादिनाम् । ९ न युक्तमिषानेन । १० प्रतिवादिना । ११ दूषणदातुः प्रतिवादिनः । १२ शुकस्तिष्णान् । १३ नृवन्ति । १४ अनेकार्थप्रतिपादनमात्रेण । १५ छलवादी ।

वैधवेयो नवकम्बलत्वाद्देवदत्तवत्' इति प्रयोगे यदि चक्रे: 'नवः
कम्बलोऽस्येति, नवास्य कम्बलाः' इति चार्थद्वयं 'नवकम्बलः' इति
शब्दस्याभिप्रेतं भवति तदा- 'कुतोऽस्य नव कम्बलाः' इति प्रत्यव-
तिष्ठमानो हेतोरसिद्धतामेवोद्गावयति । अन्येऽस्तु तदुभयार्थसम-
५ र्थनेन तदेकतरार्थसमर्थनेन वा हेतुसिद्धिं प्रदर्शयति । नवस्ताव-
देकः कम्बलोऽस्य प्रतीतो भवता, अन्येऽप्येष्टौ कम्बला गृहे तिष्ठ-
न्तीत्युभयथा नवकम्बलत्वस्य सिद्धेर्नासिद्धतोद्गावनीया । नव-
कम्बलयोगित्वस्य वा हेतुत्वेनोपादानात्सिद्ध एव हेतुः । इति
स्वपक्षसिद्धौ सत्यामेव धादिनो जयः परस्य च पराजयो
१० नान्यथा । तन्न वाक्छलं युक्तम् ।

नापि सामान्यच्छलम् । तस्य हि लक्षणम्- "सम्भवेतोर्यस्या-
तिसामान्ययोगादसद्भूतार्थकल्पना सामान्यच्छलम्" [न्यायसू०
१।२।१३] इति । तथा हि- 'विद्याचरणसम्पत्तिर्ब्राह्मणे सम्भवेत्'
इत्युक्तेऽस्य वाक्यस्य विघातोऽर्थविकल्पोपपत्त्याऽसद्भूतार्थकल्प-
१५ नया क्रियते । यदि ब्राह्मणे विद्याचरणसम्पत्सम्भवेति भौत्येपि
सम्भवेद्ब्राह्मणत्वस्य तत्रापि सम्भवात् । तदिदं ब्राह्मणत्वं विव-
क्षितमर्थं विद्याचरणसम्पल्लक्षणं 'कचिद्ब्राह्मणे तौदयेति' कचित्तु
र्भौत्येऽत्येति' तदभावेपि भौवात्' इत्यतिसामान्यम्, तेन योगा-
२० द्धकुरभिप्रेतादर्थोत्सद्भूतादन्यस्यासद्भूतार्थस्य कल्पना सामान्य-
च्छलम् । तच्चायुक्तम्; हेतुदोषस्यानैकान्तिकत्वस्यात्रोपरेणो-
द्गावनात् । न चानैकान्तिकत्वोद्गावनमेव सामान्यच्छलम्;
'अनित्यः शब्दः प्रमेयत्वाद्दटवत्' इत्यादेरपि सामान्यच्छलत्वाजु-
पह्नात् । अत्रापि हि प्रमेयत्वं कचिद्दटादावनित्यत्वमेति, आका-
शादौ तदभावेपि भावादत्येतीति । तैथाप्यस्यानैकान्तिकत्वेपि
२५ प्रकृतेपि तदस्तु विशेषाभावात् । तन्न सामान्यच्छलमप्युपपन्नम् ।

१ प्रतिवादी । २ वादी । ३ प्रतिवादिना । ४ अन्येऽप्येष्टौ गृहे तिष्ठन्तीति, नवक-
म्बलयोगित्वस्य वा हेतुत्वेनोपादानात्सिद्ध एव हेतुस्त्वुभयथा नवकम्बलत्वस्य सिद्धेर्ना-
सिद्धतोद्गावनीया, इति स्वपक्षसिद्धौ सत्यामेव धादिनो जयः परस्य च पराजयो
नान्यथेति वाक्यरचना द्रष्टव्या । ५ नवो नूतनः । ६ स्वपक्षसिद्धभावे जयपराजयौ
न भवतो वादिप्रतिवादिनोरिति । ७ जायमानस्य । ८ अर्थं विद्याचरणसम्पत्तिमान्भ-
वति ब्राह्मणत्वात्साद्ब्राह्मणत्वमिति । ९ वादिना । १० अर्थस्य विकल्पो नेदस्त्वोप-
पत्त्या कृत्वा । ११ तर्हि । १२ अष्टे ब्राह्मणे । १३ कर्तुं । १४ व्यक्त्यन्तरे सपक्षे ।
१५ प्राप्तोति । १६ विपक्षरूपे । १७ विद्याचरणसम्पल्लक्षणमर्थं ब्राह्मणत्वं अतिक्रम्य
वर्तते इत्यर्थः । १८ ब्राह्मणत्वस्य । १९ अतिशयेन ब्राह्मणत्वस्य । २० अनुमाने ।
२१ अन्यथा । २२ अनुमाने । २३ अतिसामान्ययोगेपि ।

नाप्युपचारच्छलम् । तस्य हि लक्षणम्—“धर्मविकल्पनिर्देशेऽ-
र्थसंज्ञावप्रतिषेध उपचारच्छलम्” [न्यायसू० १।२।१४] इति ।
धर्मस्य हि क्रोशनादेर्विकल्पोऽध्वारोपस्तस्य निर्देशे ‘मञ्चाः क्रोशन्ति
गायन्ति’ इत्यादौ तात्स्थ्यात्तच्छब्दोपचारेणासङ्गतार्थस्य तु परि-
कल्पनं कृत्वा परेण प्रतिषेधो विधीयते—‘न मञ्चाः क्रोशन्ति किन्तु
मञ्चस्थाः पुरुषाः क्रोशन्ति’ इति । तच्च परस्य पराजयाय जायते
यथावच्छरमिप्रायमप्रतिषेधात् । शब्दप्रयोगो हि लोके प्रधान-
भावेन गुणभावेन च प्रसिद्धः । ततो यदि वक्तृगौणोर्थोभिप्रेतः, तदा
तस्यानुष्ठानं प्रतिषेधो वा विधातव्यः । अथ प्रधानभूतः; तदा तस्य
तैविति । यदा तु वक्ता गौणमर्थमभिप्रेति प्रधानभूतं परिकल्प्य १०
परः प्रतिषेधति तदा तेन स्वमनीषा प्रतिषिद्धा स्यात् परस्योभि-
प्रेतस्य इति नैयायमुपालम्भः स्यात्, तदनुपालम्भाच्चौ परजी-
यते; इत्यप्यविचारितरमणीयम्; यतो यद्येतौवतैवासौ निगृह्येत
तर्हि यौगोपि सकलशून्यवादिनं प्रति मुख्यरूपतया प्रमाणादि-
प्रतिषेधं कुर्वन्निगृह्येत, संव्यवहारेण प्रमाणादेस्तेनाभ्युपगमात् । १५
तैतः स्वपक्षसिद्धैव परस्य पराजयो न पुनश्छलमात्रेण ।

नापि जातिमात्रेण । तथाहि—तस्याः सामान्यलक्षणम्—“साध-
र्म्यवैधर्म्याभ्यां प्रत्यवस्थानं जातिः” [न्यायसू० १।२।१८] इति ।
तस्याश्चानेकत्वं साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां प्रत्यवस्थानस्य भेदात् ।
तथा च न्यायभाष्यकारः—“साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां प्रत्यवस्थानस्य २०
विकल्पौजातिवद्भूत्वमिति” [न्यायभा० ५।१।१] । ताश्च खल्विमा-
जातयः स्यापनाहेतौ प्रत्युक्ते चतुर्विंशतिः प्रतिषेधहेतवः—
“साधर्म्यवैधर्म्योत्कर्षापकर्षवर्ण्यवर्ण्यविकल्पसाध्यप्राप्त्यऽप्राप्ति-
प्रसङ्गप्रतिदृष्टान्तानुपपत्तिसंशयप्रकरणाहेत्वर्थापत्त्यविशेषोपप-
त्त्युपलब्ध्यनुपलब्धिनिवृत्तानित्यकार्यसैमाः” [न्यायसू० ५।१।१] २५
इति सूत्रकारवचनात् ।

१ मुख्यार्थप्रतिषेधः । २ उपचारः । ३ प्रयोगे कृते । ४ प्रतिवादिना । ५ वक्तृ-
मिप्रायानतिक्रमेण प्रतिषेधः स्यादिति भावः । ६ अनुष्ठानप्रतिषेधो विधातव्यो, इयं
व्यवस्था भवतु । ७ सा व्यवस्थात्रापि भविष्यतीत्युक्ते सत्याह । ८ प्रतिवादिना ।
९ वादिनः । १० प्रतिषिद्धः । ११ वादिनः । १२ पराजयः । १३ तस्य-
वादिनः । १४ प्रतिवादी । १५ गौणोर्थोभिप्रेते मुख्यार्थप्रतिषेधमात्रेण । १६ ननु
सकलशून्यवादिनाऽभ्युपगमपत्त्याभ्युपगतस्य प्रमाणादेर्मुख्यरूपतयैव प्रतिषेधं विदधानः
कर्म यौगो निगृह्येतत्याशङ्क्यानाह । १७ उपचारेण । १८ नैदानता प्रतिवादिनः
पराजयो यतः । १९ रूपम् । २० भेदात् । २१ विधिसाम्यस्य । २२ कार्याणि,
• तैः समाः ।

तत्र साधर्म्यसमां जातिं न्यायभाष्यकारो व्याचष्टे-साधर्म्ये-
णोपसंहारे कृते साध्यधर्मविपर्ययोपपत्तेः साधर्म्येण प्रत्यवस्थानं
साधर्म्यसमः प्रतिषेधः । निदर्शनम्-‘क्रियावानात्मा, क्रियाहेतु-
गुणाश्रयत्वात्, यो यः क्रियाहेतुगुणाश्रयः स स क्रियावान् यथा
५ लोष्टः, तथा चात्मा, तस्मात्क्रियावान्’ इति साधर्म्योदाहरणेनोप-
संहारे कृते परं: साध्यधर्मविपर्ययोपपत्तितः साधर्म्योदाहरणेनैव
प्रत्यवतिष्ठते-‘निष्क्रिय आत्मा विभुद्रव्यत्वादाकाशवत्’ इति । न
चास्ति विशेषः-‘क्रियावत्साधर्म्यात्क्रियावता भवितव्यं न पुनर्नि-
ष्क्रियत्वसाधर्म्यान्निष्क्रियेण’ इति साधर्म्यसमो द्रूपणामासः । न
१० ह्यात्मनः क्रियावत्त्वे साध्ये क्रियाहेतुगुणाश्रयत्वस्य हेतोः स्वसा-
ध्येन व्याप्तिः विभुत्वाद्भिष्क्रियत्वसिद्धौ विच्छिद्यते । न च तद-
विच्छेदे तद्दूषणत्वम्, साध्यसाधनयोर्व्याप्तिविच्छेदसमर्थस्यैव
दोषत्वेनोपवर्णनात् ।

वार्तिककारस्त्वेवमाह-साधर्म्येणोपसंहारे कृते तद्विपरीतसा-
१५ धर्म्येण प्रत्यवस्थानं वैधर्म्येणोपसंहारे तत्साधर्म्येण प्रत्यवस्थानं
साधर्म्यसमः । यथा ‘अनित्यः शब्द उत्पत्तिधर्मकत्वात्कुम्भादि-
वत्’ इत्युपसंहृते परं: प्रत्यवतिष्ठते-यद्यऽनित्यघटसाधर्म्यादय-
मनित्यो नित्येनाप्याकाशेनास्य साधर्म्यमूर्त्तत्वमस्तीति नित्यः
प्राप्तः । तथा ‘अनित्यः शब्द उत्पत्तिधर्मकत्वात्, यत्पुनरनित्यं
२० न भवति तन्नोत्पत्तिधर्मकम् यथाकाशम्’ इति प्रतिषेधिते परं:
प्रत्यवतिष्ठते-यदि नित्याकाशवैधर्म्यादनित्यः शब्दस्तदा साधर्म्य-
मप्यस्याकाशेनास्त्यमूर्त्तत्वम्, अतो नित्यः प्राप्तः । अथ सत्यप्ये-
तस्मिन्साधर्म्ये नित्यो न भवति, न तर्हि वक्तव्यम्-‘अनित्यघट-
साधर्म्यान्नित्याकाशवैधर्म्याच्चाऽनित्यः शब्दः’ इति ।

२५ वैधर्म्यसमायास्तु जातेः-वैधर्म्येणोपसंहारे कृते साध्यधर्म-
विपर्ययाद्वैधर्म्येण साधर्म्येण वा प्रत्यवस्थानं लक्षणम् । ‘यथात्मा

१ जातिपु मध्ये । २ साध्यस्य । ३ साधनवादिना । ४ सक्रियत्वलक्षणान्निष्क्रियत्वं
यथा विपर्ययः । ५ जातिवादिना । ६ गमनादि । ७ प्रयत्नोत्र गुणः । ८ अन्वयेन ।
९ वादिना । १० प्रतिषेधो । ११ क्रियावत्साधर्म्यात्क्रियावान्भवतु निष्क्रियत्वसाध-
र्म्यान्निष्क्रियो न भविष्यतीत्युक्तं सत्याह । १२ आत्मना । १३ निराक्रियते ।
१४ व्याप्तिविच्छेदो भा भवतु तद्दूषणत्वं च भवत्वित्युक्तं सत्याह । १५ साध्यसम
इति । १६ उक्तसाधर्म्यात् । १७ वैधर्म्यस्य । १८ वादिना । १९ जातिवादी ।
२० प्रतिश्लेषतया परिवर्तते । २१ तर्हि । २२ वादिना । २३ जातिवादी ।
२४ उक्तवैधर्म्यात् । २५ यदि । २६ आकाशेन सह शब्दस्य । २७ घटेन सह
शब्दस्य साधर्म्यात् । २८ शब्दस्य ।

निष्क्रियो विभुत्वात्, यत्पुनः सक्रियं तन्न विभु यथा लोघ्रादि,
विभुश्चात्मा, तस्मान्निष्क्रियः' इत्युक्ते परः प्राह—निष्क्रियत्वे
सत्यात्मनः क्रियाहेतुगुणाश्रयत्वं न स्यादाकाशवत्, अस्ति
चैतत्, ततो नायं निष्क्रिय इति । साधर्म्येण तु प्रत्यवस्थानम्—
'क्रियावानेवात्मा क्रियाहेतुगुणाश्रयत्वात्, य ईदृशः स ईदृशो ५
दृष्टः यथा लोघ्रादिः, तथा चात्मा, तस्मात्क्रियावानेव' इति ।

उत्कर्षसमादीनां लक्ष्णम्—“साध्यदृष्टान्तयोर्धर्मविकल्पोपादुभय-
साध्यत्वाच्चोत्कर्षोपकर्षवर्ण्यवर्ण्यविकल्पसाध्यसमः” [न्यायसू०
५।१।४] इति ।

तत्रोत्कर्षसमायास्तावल्लक्षणम्—दृष्टान्तधर्मं साध्ये समासङ्ग-१०
यतो मतोत्कर्षसमा जातिः । तद्यथा—'क्रियावानात्मा क्रिया-
हेतुगुणाश्रयत्वाल्लोघ्रवत्' इत्युक्ते परः प्रत्यवतिष्ठते—यदि क्रिया-
हेतुगुणाश्रयो जीवो लोघ्रवत्क्रियावाँस्तदा तद्भवेव स्पर्शवान्भवेत् ।
अथ न स्पर्शचाँस्तर्हि क्रियावानपि न स्याद्विशेषात् ।

यस्तु तत्रैव क्रियावज्जीवसाधने प्रयुक्ते साध्ये साध्यधर्मिणि १५
धर्मस्याभावं दृष्टान्तात्समासङ्गयन्वकि सोऽपकर्षसमां जातिं
वक्ति । यथा लोघ्रः क्रियाश्रयोऽसर्वगतो दृष्टस्तद्भदात्माप्यसर्वग-
तोस्तु, विपर्यये विशेषो वा वौच्य इति ।

ख्यापनीयो वर्ण्योऽख्यापनीयोऽवर्ण्यः । तेन वर्ण्येनावर्ण्येन च
समा जातिः । तद्यथात्रैव साधने प्रयुक्ते परः प्रत्यवतिष्ठते—यथा-२०
त्मा क्रियावान् वर्ण्यः साध्यस्तदा लोघ्रादिरपि साध्योस्तु । अथ
लोघ्रादिरवर्ण्यस्तर्ह्यात्माप्यवर्ण्योस्तु विशेषाभावादिति ।

विकल्पो विशेषः, साध्यधर्मस्य विकल्पं धर्मान्तरविकल्पात्प्र-
सङ्गयंतो विकल्पसमा जातिः । यथात्रैव साधने प्रयुक्ते परः
प्रत्यवतिष्ठते—क्रियाहेतुगुणोपेतं किञ्चिद्द्रुह दृश्यते यथा लोघ्रादि, २५
किञ्चित्तु लघूपलभ्यते यथा वायुः, तथा क्रियाहेतुगुणोपेतमपि
किञ्चिद्विक्रियाश्रयं युज्येत यथा लोघ्रादि, किञ्चित्तु निष्क्रियं
यथात्मेति ।

१ वादिना । २ आत्मा । ३ सामान्यलक्षणम् । ४ साध्यः=पक्षः । ५ विकल्पः=
समारोपः । ६ समारोपवत्तः । ७ क्रियाहेतुगुणाश्रयत्वस्य । ८ पक्षे । ९ सर्वगतत्व-
लक्षणस्य । १० सर्वगतत्वे । ११ वादिना त्वया । १२ साध्यवर्ण्यधर्मः । १३ पक्षः ।
१४ दृष्टान्तोपि । १५ पक्षोस्तु । १६ क्रियाश्रयत्वस्य । १७ भेदम् । १८ धर्मान्तर-
विकल्पेन प्रत्यवस्थानं विकल्पसमा जातिः । १९ प्रतिवादिनः ।

हेत्वार्थवयवयोगी धर्मः साध्यः, तमेव दृष्टान्ते प्रसङ्गयतः साध्यसमा जातिः । यथात्रैव साधने प्रयुक्ते परः प्राह-यदि यथा लोष्टस्तथात्मा तदा यथात्मायं तथा लोष्टः स्यात् । 'सक्रियः' इति साध्यश्चात्मा लोष्टोपि तथा साध्योस्तु । अथ लोष्टः क्रियावाच ५ साध्यः; तदात्मापि क्रियावान्साध्यो मा भूद्विशेषो वा वाच्य इति ।

दूषणाभासता चासाम्-सत्साधने दृष्टान्तादिसामर्थ्ययुक्ते सति साध्यदृष्टान्तयोर्धर्मविकल्पमात्रात्प्रतिषेधस्य कर्तुमशक्यत्वात् । यत्र हि लौकिकेतरयोर्बुद्धिसाम्यं तस्य दृष्टान्तत्वान्न साध्यत्वमिति ।

सम्यक्साधने प्रयुक्ते प्राप्त्या यत्प्रत्यवस्थानं सा प्राप्तिसमा १० जातिः । अप्राप्त्या तु प्रत्यवस्थानमप्राप्तिसमेति । तद्यथा-हेतुः साध्यं प्राप्य, अप्राप्य वा साधयेत्? 'प्राप्य चेत्, हेतुसाध्ययोः प्राप्तयोर्गुणपत्सम्भवात्कथमेकस्य हेतुतान्यस्य साध्यता युज्येत्' इति प्रत्यवस्थानं प्राप्तिसमा जातिः । अथ 'अप्राप्य हेतुः साध्यं साधयेत्; तर्हि सर्वसाध्यमसौ साधयेत् । न चाप्राप्तः प्रदीपः १५ पदार्थानां प्रकाशको दृष्टः' इति प्रत्यवस्थानमप्राप्तिसमेति ।

ताविमौ दूषणाभासौ प्राप्तस्यापि धूमादेरश्यादिसाधकत्वोपलम्भात्, कृत्तिकोदयादेस्त्वप्राप्तस्य शकटोदयादौ गमकत्वप्रतीतेरिति ।

दृष्टान्तस्यापि साध्यविशिष्टतया प्रतिपत्तौ साधनं वक्तव्यमिति २० प्रसङ्गेन प्रत्यवस्थानं प्रसङ्गसमा जातिः । यथात्रैव साधने प्रयुक्ते परः प्रत्यवतिष्ठते-'क्रियाहेतुगुणयोगात्क्रियावालोष्टः' इति हेतुनोक्तः । न व हेतुमन्तरेण साध्यसिद्धिः ।

अस्याश्च दूषणाभासत्वम्-यथैव हि रूपं दिदक्षूणां प्रदीपोपादानं प्रतीयते न पुनः स्वयं प्रकाशमानं प्रदीपं दिदक्षूणाम् । २५ तथा साध्यस्यात्मनः क्रियावत्त्वस्य प्रसिद्ध्यर्थं लोष्टस्य दृष्टान्तस्य ग्रहणमभिप्रेतं न पुनस्तस्यैव सिद्ध्यर्थं साधनान्तरस्योपादानम्, वादिप्रतिवादिनोरविवादविषयस्य दृष्टान्तस्य दृष्टान्तत्वोपपत्तेस्तत्र साधनान्तरस्याफलत्वादिति ।

प्रतिदृष्टान्तरूपेण प्रत्यवस्थानं प्रतिदृष्टान्तसमा जातिः । यथा- ३० त्रैव साधने प्रयुक्ते प्रतिदृष्टान्तेन परः प्रत्यवतिष्ठते-क्रिया-

१ जातिना प्रतिषाहेतुदृष्टान्तोपनयनिगमनानि । २ उभयोरपि दृष्टान्तसाध्ययोः साध्यत्वापादनेन प्रत्यवस्थानं साध्यसमा जातिः । ३ प्राकनवाक्यं विदूषोति । ४ सक्रिय इति । ५ अस्ति चेत्तर्हि । ६ त्वया वादिना । ७ उत्तरसमादिगणाय । ८ विकल्प आरोपः । ९ विशेषाभावात् । १० हेतुमन्तरेण साध्यसिद्धिर्नविष्यतीत्युक्ते सत्यात् । ११ कथम्? तथा हि ।

हेतुगुणाश्रयमाकाशं निष्क्रियं दृष्टमिति^१ । कः पुनराकाशस्य क्रियाहेतुगुणः ? संयोगो वायुना सह । कालत्रयेष्वसम्भवादाकाशे क्रियायाः । न क्रियाहेतुर्वायुना संयोगः; इत्यप्यसारम्; वायुसंयोगेन वनस्पतौ क्रियाकारणेन समानधर्मत्वादाकाशे वायुसंयोगस्य । यत्त्वसौ तत्र क्रियां न करोति तन्नाकारणत्वात्, ५ किन्तु परममहापरिमाणेन प्रतिवद्धत्वात् । अथ क्रियाकारणवायुवनस्पतिसंयोगसदृशो वाय्वाकाशसंयोगो न पुनः क्रियाकारणम्; न कश्चिदप्येवं हेतुरनैकान्तिकः स्यात्—‘अनित्यः शब्दोऽमूर्त्तत्वात्सुखादिवत्’ इत्यत्राप्यमूर्त्तत्वं हेतुः शब्दोऽन्योन्यश्चाकाशे तत्सदृश इति कथमस्याकाशेनानैकान्तिकत्वम् ? सकलानुमानो- १० च्छेदश्च, अनुमानस्य सादृश्यादेव प्रवर्त्तनात् । न खलु ये धूमधर्माः कैचिद्धर्मे दृष्टास्त एवान्यत्र दृश्यन्ते तत्सदृशानामेव दर्शनात् । ततोनेनै कस्यचिद्धेतोरनैकान्तिकत्वं कैचिदनुमानात्प्रवृत्तिचेच्छता तद्धर्मसदृशस्तद्धर्मोऽनुमन्तव्य इति क्रियाकारणवायुवनस्पतिसंयोगसदृशो वाय्वाकाशसंयोगोपि क्रियाकारणमेव । तथा १५ च प्रतिदृष्टान्तेनाकाशेन प्रत्यवस्थानं प्रतिदृष्टान्तसमः प्रतिपेधः ।

स चायुक्तः; अस्य दूषणाभासत्वात् । तथाहि—यदि तावदर्थं ऋते—‘यथायं त्वदीयो दृष्टान्तो लोष्टादिस्तथा मदीयोप्याकाशादिः’ इति, तदा व्याघातः—एकस्य हि दृष्टान्तत्वेन्यस्यादृष्टान्तत्वमेव, उभयोस्तु दृष्टान्तत्वविरोधः । अथैवं ऋते—‘यथायं मदीयो न २० दृष्टान्तस्तथा त्वदीयोपि’ इति । तथापि व्याघातः—प्रतिदृष्टान्तस्य ह्यदृष्टान्तत्वे दृष्टान्तस्यादृष्टान्तत्वव्याघातः, प्रतिदृष्टान्ताभावे तस्य दृष्टान्तत्वोपपत्तेः । दृष्टान्तस्य चाऽदृष्टान्तत्वे प्रतिदृष्टान्तस्यादृष्टान्तत्वव्याघातः, दृष्टान्ताभावे तस्य तत्त्वोपपत्तेरिति ।

“प्रागुत्पत्तेः कारणभावाद्या प्रत्यवस्थितिः सानुत्पत्तिसमा २५ जातिः” [न्यायसू० ५।१।१२] तद्यथा—‘विनश्वरः शब्दः प्रयत्नानन्तरीयकत्वात्कडकादिवत्’ इत्युक्ते परः प्राह—‘प्रागुत्पत्तेरनुत्पत्तेः शब्दे विनश्वरत्वस्य यत्कारणं प्रयत्नानन्तरीयकत्वं तन्नास्ति ततोऽयमविनश्वरः, शाश्वतस्य च शब्दस्य न प्रयत्नानन्तरं जन्म इति ।

सेयमनुत्पत्त्या प्रत्यवस्था दूषणाभासो न्यायातिलहनात् । उँत्पन्न- ३० स्यैव हि शब्दस्य धर्मिणः प्रयत्नानन्तरीयकत्वमुत्पत्तिधर्मकत्वं वा

१ तद्वदात्मापि निष्क्रियो भवति । २ ताण्त्वादयः । ३ महानसादी । ४ नादिना । ५ पर्वतादौ । ६ जातिवादी । ७ दृष्टान्तः । ८ व्याघातं भावयति । ९ शब्दस्य । १० कारणं तात्वादि । ११ प्रतिकूलता । १२ लिङ्गम् । १३ न्यायातिलहनमेव भावयति ।

भजति नानुत्पन्नस्य । प्राशुत्पत्तेः शब्दस्याऽसत्त्वे किमाश्रयोयमु-
पालम्भः ? न ह्ययमनुत्पन्नोऽसत्त्वेव 'शब्दः' इति 'प्रयत्नानन्तरी-
यकः' इति 'अनित्यः' इति वा व्यपदेशं शक्यः । सत्त्वे तु सिद्ध-
मेव प्रयत्नानन्तरीयकत्वकारणं नश्वरत्वे साध्ये, अतः कथमस्य
५ प्रतिषेध इति ?

“सामान्यघटयोरैन्द्रियिकत्वे समाने नित्यानित्यसाधर्म्यात्सं-
शयसमा जातिः ।” [न्यायसू० ५।१।१४] यथा 'अनित्यः शब्दः
प्रयत्नानन्तरीयकत्वाद् घटवत्' इत्युक्ते परः सहस्रमपश्यन्
संशयेन प्रत्यवतिष्ठते-प्रयत्नानन्तरीयकेपि शब्दे सामान्येन साध-
१० र्म्यैन्द्रियिकत्वं नित्येनास्ति घटेन चानित्येनास्ति, संशयः शब्दे
नित्यत्वानित्यत्वधर्मयोरिति ।

अस्याश्च दूषणाभासत्वम्-शब्दाऽनित्यत्वाऽप्रतिबन्धित्वात् ।
यथैव हि पुरुषे शिरःसंयमनादिनां विशेषेण निश्चिते सति न
स्थाणुपुरुषसाधर्म्योद्बन्धित्वात् संशयस्तथा प्रयत्नानन्तरीयकत्वेन
१५ विशेषेणानित्ये शब्दे निश्चिते न घटसामान्यसाधर्म्यादैन्द्रियि-
कत्वात् संशयो युक्त इति ।

“उभयसाधर्म्यात्प्रक्रियासिद्धेः प्रकरणसमा जातिः ।” [न्याय-
सू० ५।१।१६] 'यथा अनित्यः शब्दः प्रयत्नानन्तरीयकत्वाद् घटवत्'
इत्यनित्यसाधर्म्यात्प्रयत्नानन्तरीयकत्वाच्छब्दस्यानित्यतां कश्चि-
२० त्साधयति । अपरः पुनर्गोत्वादिना सामान्येन साधर्म्यात्तस्य
नित्यताम् इति, अतः पक्षे विपक्षे च प्रक्रिया समानेति ।

- ईदृश्यं च प्रक्रियाऽनतिवृत्त्या प्रत्यवस्थानमयुक्तम्; विरोधात् ।
प्रतिपक्षप्रक्रियासिद्धौ हि प्रतिषेधो विरुध्यते । प्रतिषेधोपपत्तौ तु
प्रतिपक्षप्रक्रियासिद्धिर्वाहन्यते इति ।

२५ “त्रैकाल्यासिद्धेर्हेतोरहेतुसमा जातिः ।” [न्यायसू० ५।१।१८]
यथा सत्साधने दूषणमपश्यन्परः प्राह-'साध्यात्पूर्वं वा साधनम्,
उत्तरं वा, सहभावि वा स्यात् ? न तावत्पूर्वम्; असत्यर्थे तस्य
साधनत्वानुपपत्तेः । नाप्युत्तरम्; असति साधने पूर्वं साध्यस्य
साध्यस्वरूपत्वासम्भवात् । नापि सहभावि; स्वतन्त्रतया प्रतिद्वयोः

१ श्रुयोद्देशेनाभिहितव्याप्तेः साधर्म्यवैषम्यापाधिप्रतिकूलतर्कादिना पक्षे सन्देहो-
पादानं संशयसमा जातिः । २ शब्दत्वलक्षणेन । ३ साधर्म्यम् । ४ केशवनादिना ।
५ अनित्यनित्यान्यां घटसामान्याभ्यां । ६ प्रत्यक्षमानेन प्रत्यवस्थानं प्रकरणसमा
जातिः । ७ ऐन्द्रियिकत्वात् । ८ प्रक्रिया कर्तृभावप्रवृत्तौ । ९ साध्यस्य प्राप्तेन
सिद्धत्वात्क्रियनेन हेतुनेति भावः ।

साध्यसाधनभावासम्भवात्सह्यविन्ध्यवत्' इत्यहेतुसमत्वेन प्रत्य-
वस्थानमयुक्तम्; हेतोः प्रत्यक्षतो धूमादेर्वन्ध्यादौ प्रसिद्धेरिति ।

“अर्थापत्तितः प्रतिपक्षसिद्धेरर्थापत्तिसमा जातिः ।” [न्यायसू०
५।१।२१] यथात्रैव साधने प्रयुक्ते परः प्राह-‘यदि प्रयत्नानन्तरी-
यकत्वेनानित्यः शब्दो घटवत्तदार्थापत्तितो नित्याकाशसाधर्म्या-
५ नित्योस्तु । यथैव ह्यस्पर्शवत्त्वं खे नित्ये दृष्टं तथा शब्देपि’ इति ।

अस्याश्च दूषणाभासत्वम्; सुखादिनानैकान्तिकत्वात् । नचानै-
कान्तिकाद्धेतोः प्रतिपक्षसिद्धिरिति ।

“एकधर्मोपपत्तेरविशेषे सर्वाविशेषप्रसङ्गात् सत्त्वोपपत्तितो-
ऽविशेषसमा जातिः ।” [न्यायसू० ५।१।२३] यथात्रैव साधने १०
प्रयुक्ते परः प्रत्यवतिष्ठते-प्रयत्नानन्तरीयकत्वलक्षणैकधर्मोपपत्ते-
र्घटशब्दयोरनित्यत्वाविशेषे सत्त्वधर्मस्याप्यखिलाथैर्दूषणपत्तेरनि-
त्यत्वाविशेषः स्यात् ।

तस्याश्च दूषणाभासता; तथा साधयितुमशक्यत्वात् । न खलु
यथा प्रयत्नानन्तरीयकत्वं साधनधर्मः साध्यमनित्यत्वं शब्दे १५
साधयति तथा सर्वार्थे सत्त्वम्, धर्मान्तरस्यापि नित्यत्वस्याका-
शादौ सत्त्वे सत्युपलम्भात्, प्रयत्नानन्तरीयकत्वे च सत्यऽनित्य-
त्वस्यैवोपलम्भादिति ।

“उभयकारणोपपत्तेरुपपत्तिसमा जातिः ।” [न्यायसू० ५।१।
२५] यथात्रैव साधने प्रयुक्ते परः प्राह-‘यद्यनित्यत्वे कारणं २०
प्रयत्नानन्तरीयकत्वं शब्दस्यास्तीत्यनित्योसौ तदा नित्यत्वेष्यस्य
कारणमस्पर्शवत्त्वमस्तीति नित्योप्यस्तु’ इत्युभयस्य नित्यत्व-
स्यानित्यत्वस्य च कारणोपपत्त्या प्रत्यवस्थानमुपपत्तिसमो दूषणा-
भासः । एवं नृवता स्वयमेवानित्यत्वकारणं प्रयत्नानन्तरीयकत्वं
तावदभ्युपगतम् । एवं तदभ्युपगमाच्चानुपपन्नस्तत्प्रतिषेध इति । २५

“निर्दिष्टकारणाभावेप्युपलम्भादुपलब्धिसमा जातिः ।” [न्याय-
सू० ५।१।२७] यथात्रैव साधने प्रयुक्ते परः प्रत्यवतिष्ठते-‘शाखा-
दिभङ्गजे शब्दे प्रयत्नानन्तरीयकत्वाभावेप्यनित्यत्वमस्ति’ इति ।

दूषणाभासत्वं चास्याः; प्रकृतसाधनाप्रतिबन्धित्वात् । न खलु ३०
‘साधनमन्तरेण साध्यं न भवति इति’ नियमोस्ति, साधनस्यैव

१ अर्थापत्त्या प्रत्यवस्थानम् । २ घटसाधन्येण । ३ अनित्येन । ४ अस्पर्शवत्त्वा-
दिति । ५ परेणाङ्गीक्रियमाणे । ६ यथा सर्वार्थेषु साधनधर्मैः सत्त्वमनित्यत्वं न साधयति
तथा प्रयत्नानन्तरीयकत्वसाधनधर्मोऽनित्यत्वं न साधयतीत्युक्ते सत्याह । ७ निर्दिष्टस्य
साध्यधर्मैस्त्रिकारणसाधनेषु साध्यधर्मोपलम्भात् प्रत्यवस्थानम् । ८ साध्यम् ।

साध्याभावेऽभावनियमव्यवस्थितेः । न चानित्यत्वे प्रयत्नानन्तरीयकत्वमेव गमकम्; उत्पत्तिमत्त्वादेरपि तद्गमकत्वात् ।

“तदनुपलब्धेरनुपलम्भादभावसिद्धौ तद्विपरीतोपपत्तेरनुपलब्धिसमाजातिः ।” [न्यायसू० ५।१।२९] ‘यथा अविद्यमानः शब्द उच्चारणात्पूर्वमनुपलब्धेरुत्पत्तेः पूर्वं घटादिवत् । न खल्वुच्चारणात्प्राग्विद्यमानस्य शब्दस्यानुपलब्धिः तदावरणानुपलब्धेः, उत्पत्तेः प्राग्घटादेरिव । यस्य तु दर्शनात् प्राग्विद्यमानस्यानुपलब्धिस्तस्य नावरणानुपलब्धिः, यथा भूम्याद्यावृतस्योदकादेः, आवरणानुपलब्धिश्च श्रवणात्प्राक् शब्दस्य ।’ इत्युक्ते परः प्राह—तस्य शब्दस्यानुपलब्धेरप्यनुपलम्भादभावसिद्धौ सत्यां शब्दस्याभावविपरीतत्वेन भावस्योपपत्तेरनुपलब्धिसमाजातिः ।

अस्याश्च दूषणाभासत्वम्; अनुपलब्धेरनुपलब्धिस्वभावतयोपलब्धिविषयत्वात् । यथैव ह्युपलब्धिरुपलब्धेर्विषयस्तथानुपलब्धिरपि । कथमन्यथा ‘अस्ति मे घटोपलब्धिः तदनुपलब्धिस्तु १५ नास्ति’ इति संवेदनमुपपद्यते ?

“साधर्म्यात्तुल्यधर्मोपपत्तेः सर्वानित्यत्वप्रसङ्गादनित्यसमाजातिः ।” [न्यायसू० ५।१।३३] यथा ‘अनित्यः शब्दः कृतकत्वाद् घटवत्’ इत्युक्ते परः प्रत्यवतिष्ठते—यदि शब्दस्य घटेन साधर्म्यं कृतकत्वादिनाऽनित्यत्वं साधयेत्, तदा सर्वं वस्त्वनित्यं प्रसज्येत घटादिनाऽनित्येन सत्त्वेन कृत्वा साधर्म्यमात्रस्य सर्वत्राऽविशेषात् ।

तस्यांश्च दूषणाभासत्वम्; प्रतिषेधकस्याप्यसिद्धिप्रसङ्गात् । पक्षो हि प्रतिषेध्यः प्रतिषेधकस्तु प्रतिपक्षः । तयोश्च साधर्म्यं प्रतिज्ञादियोगः तेन विना तयोरसम्भवात् । ततः प्रतिज्ञादियोगाद्यथा २५ पक्षस्यासिद्धिस्तथा प्रतिपक्षस्यापि । अथ सत्यपि साधर्म्यं प्रतिपक्षयोः पक्षस्यैवासिद्धिर्न प्रतिपक्षस्य; तर्हि घटेन साधर्म्यात्कृतकत्वाच्छब्दस्याऽनित्यतास्तु, सकलार्थानां त्वनित्यना तेन साधर्म्यमात्रात् मा भूदिति ।

१ तस्य=शब्दस्य । २ सन्दिग्धानैकान्तिकत्वपरिहारमाह । ३ व्यतिरेकनिर्देशनमाह । ४ जातिवादी । ५ अनुपलब्धेरप्यभावसिद्धिः कथमित्युक्ते सत्याह । ६ द्वितीयानुमानमाभिलषति नदति । ७ कृतः । ८ अनुपलब्धेरुपलब्धिविषयत्वं यदि न स्यात् । ९ पक्षस्यानित्यत्वे सर्वस्यानित्यत्वापादनमनित्यसमाजातिः । १० धर्मैव । ११ पूर्वोक्ताया जातेः । १२ अन्यथा । १३ प्रतिपक्षस्य । १४ कथम् । १५ प्रतिज्ञादिभोगेन ।

“शब्दाऽनित्यत्वोक्तौ नित्यत्वप्रत्यवस्थितिर्नित्यसमा जातिः ।”
[न्यायसू० ५।१।३५?] यद्यथा-‘अनित्यः शब्दः’ इत्युक्ते परः
प्रत्यवस्थितिद्वये-शब्दाश्रयमनित्यत्वं किं नित्यम्, अनित्यं वा? यदि
नित्यम्; तर्हि शब्दोपि नित्यः स्यात्, अन्यथास्य तदाधारत्वं
न स्यात् । अथानित्यम्; तथाप्ययमेव दोषः-अनित्यत्वस्याऽ-
नित्यत्वे हि शब्दस्य नित्यत्वमेव स्यात् ।

दूषणाभासत्वं चास्याः; प्रकृतसाधनाऽप्रतिबन्धित्वात् । प्रादु-
र्भूतस्य हि पदार्थस्य प्रध्वंसोऽनित्यत्वमुच्यते, तस्य प्रतिबन्धने
प्रतिषेधविरोधः । स्वयं तदप्रतिज्ञाने च प्रतिषेधो निराश्रयः
स्यात् । तन्नानित्यता शब्दे नित्यत्वप्रत्यवस्थितेर्निराकर्तुं शक्येति । १०

“प्रयत्नानेकार्क्यत्वात्कार्यसमा जातिः ।” [न्यायसू० ५।१।३७]
यथा ‘अनित्यः शब्दः प्रयत्नानन्तरीयकत्वात्’ इत्युक्ते परः प्रत्यव-
स्थितिद्वये-प्रयत्नानन्तरं घटादीनां प्रागऽसतामात्मलाभोपि प्रतीतः,
आवारकापनयनात् प्राक्सतामेवाभिव्यक्तिश्च । तत्कथमतः शब्द-
स्यानित्यतेति ? १५

दूषणाभासता चास्याः; प्रकृतसाधनाप्रतिबन्धित्वादेव । शब्दस्य
हि प्रागसतः स्वरूपलाभलक्षणं जन्मैव प्रयत्नानन्तरीयकत्व-
मुपपद्यते प्रागनुपलब्धिनिमित्तस्याभावेऽप्यनुपलब्धितः सत्त्वास-
म्भवादिति ।

तदेतद्यौगकल्पितं जातीनां सामान्यविशेषलक्षणप्रणयनमयुक्तं २०
मेव; साधनाभासेपि साधर्म्यादिना प्रत्यवस्थानस्य जातित्वप्रस-
ङ्गात् । तथेष्टत्वात् दोषः; तथा हि-असाद्यौ साधने प्रयुक्ते यो
जातीनां प्रयोगः सोनभिन्नतया वा साधनदोषस्य स्यात्, तद्दोष-
प्रदर्शनार्थं वा प्रसङ्गव्याजेन; इत्यप्यसमीचीनम्; साधनाभासे-
प्रयोगे जातिप्रयोगस्य उद्योतकरेण निराकरणम् । २५

जातिवादी च साधनाभासमेतदिति प्रतिपद्यते वा, न वा? यदि
प्रतिपद्यते; तर्हि य एवार्थं साधनाभासत्वं हेतुदोषोऽनेन प्रतिपन्नः
स एव चक्यो न जातिः, प्रयोजनाभावात् । प्रसङ्गव्याजेन दोष-
प्रदर्शनार्थं सा; इत्यप्ययुक्तम्; अर्थसंज्ञायात् । यदि हि परप्रयु-

१ पक्षस्थानित्यत्वधर्मस्य नित्यत्वापादनेन सूतीयासः प्रत्यवस्थानं नित्यसमा जातिः ।
२ अङ्गीकारे । ३ उत्पत्तेः । ४ प्रयत्नेन । ५ उच्चारणात् । ६ शब्दस्यानुपलब्धेर्निमित्त-
भावत्वात् । ७ दूषणस्य । ८ मम यौगस्य । ९ पूर्वपक्षवादिना । १० जातिवादिना
प्रयुक्ते । ११ पूर्वपक्षवादिना प्रयुक्ते । १२ प्रतिवादिप्रयुक्तस्य । १३ नैयायिक-
वायेन । १४ यादिनः । १५ अनर्थः दोषः ।

क्तायां जातौ साधनाभासवादी स्वप्रयुक्तसाधनदोषं पश्यन् सभा-
यामेवं ब्रूयात् 'मया प्रयुक्ते साधनेऽयं दोषः स चानेन नोद्भावितः,
जातिस्तु प्रयुक्ता' इति तदा तावज्जातिवादिनो न जयः प्रयोज-
नम्; उभयोरज्ञानसिद्धेः । नापि साम्यम्; सर्वथा जयस्यासम्भवे
५ तस्याभिप्रेतत्वात् "ऐकान्तिकं पराजयाद्हरं सन्देहः" []
इत्यभिधानात् । तदप्रयोगेपि चैतत्समानम्-पूर्वपक्षवादिनो हि
साधनाभासाभिधाने प्रतिवादिनश्च तूष्णींभावे यत्किञ्चिदभिधाने
वा द्वयोरज्ञानप्रसिद्धितः प्राश्निकैः साम्यव्यवस्थापनात् । यदा च
साधनाभासवादी स्वसाधने दोषं प्रच्छाद्य परप्रयुक्तां जातिमेवो-
१० द्भावयति तदा न तद्वादिनो जयः साम्यं वा प्रयोजनम्; पराजय-
स्यैव सम्भवात् ।

अथ साधनाभासमेतदित्यप्रतिपाद्यं जातिं प्रयुङ्क्ते; तथाप्यफल-
स्तत्प्रयोगः प्रोक्तदोषानुपह्नात् । सम्यक्साधने तु प्रयुक्ते तत्प्रयोगः
पराजयस्यैव । अथ तूष्णींभावे पराजयोऽवश्यंभावी, तत्प्रयोगे तु
१५ कदाचिदसदुत्तरेणापि निरुत्तरः स्यात् इत्यैकान्तिकपराजयाद्हरं
सन्देह इत्यसौ युक्त एवेति चेत्; न; तथाप्यैकान्तिकपराजयस्था-
निवार्यत्वात् । यथैव ह्युत्तरपक्षवादिनस्तूष्णींभावे सत्युत्तराऽ-
प्रतिपत्त्या पराजयः प्राश्निकैर्व्यवस्थाप्यते तथा जातिप्रयोगेषु-
त्तरप्रतिपत्तेरविशेषात्, तत्प्रयोगस्यासदुत्तरत्वेनानुत्तरत्वात् ।

२० ननु चास्य पराजयस्यैर्व्यवस्थाप्येत यद्युत्तराभासत्वं पूर्वपक्षवा-
द्युद्भावयेत्, अन्यथा पर्यनुयोज्योपेक्षणात्तस्यैव पराजयः स्यात् ।
नन्वेवमुत्तराभासस्योत्तरपक्षवादिनोपन्यासेपि अपरस्योद्भावनश-
क्त्यशक्त्यपेक्षया जयपराजयव्यवस्थायामनवस्था स्यात् । न खलु
जातिवादिवदस्यापि तूष्णींभावः सम्भवति, सम्यगुत्तराप्रतिपत्ता-
२५ वपि उत्तराभासस्योपन्याससम्भवात् । ततश्चोपन्यस्तजातिस्वरूप-
स्यातोऽन्यस्य चोद्भावनपि उत्तरपक्षवादिनस्तत्परिहारे शक्ति-
मशक्तिं चापेक्ष्यैव पूर्वपक्षवादिनो जयः पराजयो वा व्यव-
स्थाप्येत जातिवादिन इवैतरस्योद्भावनशक्त्यशक्त्यपेक्ष इति ।
जातिलक्षणासदुत्तरप्रयोगादेव तत्परिहाराशक्तिनिश्चयात् पुनरु-
३० पन्यासवैफल्ये सत्साधनाभिधानादेवोत्तराभासत्वोद्भावनशक्तेर-
प्यवसायाद् इतरस्यापि कथं तद्वैफल्यं न स्यात् ? सत्साधनाभि-
धानात्तदभिधानसामर्थ्यमेवास्यावसीयते न परोपन्यस्तजात्युद्भा-

१ पराजयायैव न जयायेति । २ वादिना । ३ प्रतिवादिनः । ४ जातिवादिनः ।
५ स्वयां जातिः प्रयुक्तेति वचनीयं तस्योपेक्षणात् । ६ तस्य उद्भावितस्य । ७ उपन्यासो
हि जातेः । ८ निश्चयात् । ९ तस्य=जात्युद्भावनस्य ।

वनसामर्थ्यम्; तर्हि जातिप्रयोगेऽप्युत्तराभासवादिनः सम्यगु-
त्तराभिधानासामर्थ्यमेवावसीयेत न परोद्भावितजातिपरिहारा-
सामर्थ्यम् । ननु सदुत्तराभिधानासामर्थ्यादेव तत्परिहारासाम-
र्थ्यनिश्चयः, तत्सद्भावे हि न सदुत्तराभिधानासामर्थ्यं स्यात्;
एवं तर्हि सत्साधनाभिधानसामर्थ्यादेवास्य परोपन्यस्तजात्युद्भाव-
नशक्त्यवसायोऽस्तु, तदभावे तदभिधानसामर्थ्यायोगात् । सत्सा-
धनाभिधानसामर्थ्यापि कदाचिद्ऽसदुत्तरेण व्यामोहसम्भवात्
तदुद्भावनसामर्थ्यमवश्यंभावीति चेत्; तर्हि जातिवादिनः सदुत्त-
राभिधानासामर्थ्यापि स्वोपन्यस्तपरोद्भावितोत्तराभासपरिहार-
सामर्थ्यसम्भवात्पुनरुपन्यासश्चतुर्थोऽपेक्षणीयः स्यात् । साधन-
वादिनोपि तत्परिहारनिराकरणाय पञ्चमः । पुनर्जातिवादिनस्त-
न्निराकरणयोग्यतावबोधार्थं षष्ठ इत्यनवस्थानं स्यात् ।

ननु नायं दोषः पर्यनुयोज्योपेक्षणस्य प्रतिवादिनाऽनुद्भावेनात्,
'कस्य पराजयः' इत्यनुर्थुकाः प्राश्निका एव हि पूर्वपक्षवादिनः पर्य-
नुयोज्योपेक्षणमुद्भावयन्ति । न खलु निग्रहप्राप्तौ जातिवादी सं-
क्रीपीनं विवृणुयात् । तर्हि जात्यादिप्रयोगमपि तं एवोद्भावयन्तु
न पुनः पूर्वपक्षवादी । पर्यनुयोज्योपेक्षणं ते पूर्वपक्षवादिन एवो-
द्भावयन्ति न जात्यादिवादिनो जात्यादिप्रयोगमिति महामा-
ध्यस्थ्यं तेषां येनैकस्य दोषमुद्भावयन्ति नापरस्येति । ततः पूर्वप-
क्षवादिनं तूर्णोभावादिकमारचयन्तमुत्तराप्रतिपत्तिमुद्भावयन्नेव
जातिवादी निगृह्यतीत्यभ्युपगन्तव्यम् ।

तत्रापि कथम्भूतेनोत्तराप्रतिपत्त्युद्भावनेनासौ विज्ञेयते ? किं
स्वोपन्यस्तजात्यपरिहानोद्भावनरूपेण, परोद्भावितजात्यन्तरनिरा-
करणलक्षणेन चो(वा, उ)त्तराप्रतिपत्तिमात्रोद्भावनाऽऽकारेण
वा ? तत्राप्यविकल्पे 'अपकर्षसमाऽन्या वा जातिर्मया प्रयुक्तापि
न ज्ञातानेन' इत्येवं स्वोपन्यस्तजात्यपरिहानमुद्भावयन्नैतन्नः
सम्यगुत्तराप्रतिपत्तिमसम्बद्धाभिधायित्वं परकीयसाधनसम्य-
क्तत्वं चोद्भावयतीति जात्युपन्यासवैयर्थ्यम्, अवश्यम्भावित्वात्प-

- १ प्राश्निकानाम् । २ भावपक्षवादिनः । ३ तत्र च तृतीया जातिरुद्भावनीयत्वमेव ।
४ पृथः । ५ जातिवाच्यं जातिमुक्तवान् स्वभावादिना न सम्भावितेति न प्रतिपाद-
यतीति भावः । ६ शुभेन्द्रियम् । ७ प्राश्निकाः । ८ नोद्भावयन्तीति संबन्धः । ९ उप-
हासपचनमिदम् । १० प्राश्निकानाम् । ११ प्राश्निकाना माध्यस्थ्याभावो यतः ।
१२ जानम् । १३ परेण । १४ पक्षे । १५ वादिनम् । १६ पूर्वपक्षवादिनः ।
१७ परोद्भावादी । १८ ज्ञानान्तरं जातिविशेषः । १९ त्रिषु विकल्पेषु मध्ये ।
२० अपकर्षसमा वा जातिः । २१ पूर्वपक्षवादिना । २२ जातिवादी ।

राज्यस्य । परेणाविज्ञातमात्मनो दोषं स्वयमुद्गावयन्नपि न परा-
जयमास्कन्दतीति चेत् ; परेणाविज्ञातः स दोष इति कुतोऽवसि-
तम् ? तूर्णीभावादन्वयस्य चोद्गावनादिति चेत् ; न ; वादविस्तरपदि-
हारार्थत्वात्तस्य । स्वान्यन्त्रिता हि वादिनो न विचलिष्यन्तीति
५ स्वयमुद्गावनीयं दोषं परेणोद्गावयितुं तूर्णीभावोऽन्वयस्य चोद्गा-
वनं नाज्ञानात् । स्वयमुद्गाविते हि दोषे जात्यादिवादी तत्परिहा-
रार्थं किञ्चिदन्यद्भूयादिति न वादावसानं स्यात् । परस्याऽज्ञान-
माहात्म्यख्यापनार्थं वा ; पर्ययैवंविधमस्याज्ञानमाहात्म्यं येन
स्वयमेव स्वदोषकलापमसत्साधनस्य सम्यक्त्वं चोद्गावयतीति ।
१० एवं सौध्येन पूर्वपक्षवादिना प्रत्यर्वस्थिते किमत्र जातिवादी
ब्रूयात्—‘जातिर्मया प्रयुक्तापि न ज्ञातानेनेति वचनादुत्तरकाल-
मनेनैवावसितो दोषकलापो न प्राक्, अतोऽज्ञानेनैव प्रतिवादिना
तूर्णीभूतमन्यद्दोद्गावितम्’ इति । अत्रापि शपथः शरणम् । ननु
यदि नाम ज्ञानैव पूर्वपक्षवादिना तूर्णीभूतमन्यद्दोद्गावितं
१५ तथापि तेन सदुत्तरानभिधानात्कथं नास्य पराजयः स्यात् ? तदे-
तज्जातिवादिनो जात्युपन्यासेपि समानं जातीनां दूषणाभास-
त्वात् । तस्मान्न खोपन्यस्तजात्यपरिज्ञानोद्गावनरूपेणोत्तराऽप्रति-
पत्युद्गावनेन तूर्णीभूतमन्यद्दोद्गावयन्तमितरं निर्गृह्णति ।

द्वितीयविकल्पे खोपन्यस्ता जातिः कथं परोद्गावितजात्यन्त-
२० ररूपा न भवतीति वादिनेतरः प्रतिपाद्यते ? न तावत्खोपन्यस्त-
जातिस्वरूपानुवादेन, यथा नेयमुत्कर्षसमा जातिरपकर्षसमत्वा-
दस्या इति; प्रथमपक्षोदितदोषप्रसङ्गात् । नाप्यनुपलम्भात् ; अनु-
पलम्भमात्रस्याप्रमाणत्वात् । अनुपलम्भविशेषस्यापि खोपन्यस्त-
जातिस्वरूपोपलम्भलक्षणत्वात्, तत्र चोक्तदोषप्रसङ्गात् । तन्न
२५ जातिवादी जात्यन्तरमुद्गावयन्तं प्रतिवादिनं तदुद्गावितजात्यन्त-
रनिराकरणलक्षणेनोत्तराप्रतिपत्युद्गावनेन विजयते ।

नाप्युत्तराप्रतिपत्तिमात्रोद्गावनरूपेण; ‘त्वया न ज्ञातमुत्तरम्’
इत्युत्तराप्रतिपत्तिमात्रोद्गावने हि पूर्वपक्षवादिनस्तद्विशेषविषयः
प्रश्नोऽवश्यंभावी ‘मया तावदुत्तरमुपन्यस्तमेतच्च कथमुत्तरम्’
३० इति । जातिवादिना चास्योत्तराप्रतिपत्तिविशेषेणोद्गावनीया

१ वादिना । २ तूर्णीभावादेः । ३ प्रतिवादिना । ४ वादिना जात्युद्गावनेपि
वादावसानं न भविष्यति ततश्च तूर्णीभावोऽन्योद्गावनं च वादावसानाय व्यर्थमित्युक्ते
सत्याह । ५ प्रयोजनान्तरं तूर्णीभावादेराह । ६ निरीक्षणं ययं सत्याः । ७ वसः ।
८ पर्यनुक्ते सति । ९ सकाशात् । १० पूर्वपक्षवादिना । ११ दोषम् । १२ पूर्व-
पक्षवादी । १३ दोषः=उत्तराप्रतिपत्तिः । १४ जातिवादी ।

‘मयोपन्यस्ताप्येषा जातिस्त्वया न ज्ञाता जात्यन्तरं चोद्भाषितम्’ इति । अत्र च प्रागुक्ताशेषदोषानुपपन्नः । तदेवमुत्तराऽप्रतिपत्त्युद्भावनत्रयेऽपि जातिवादिनः पराजयस्यैकान्तिकत्वात् ‘ऐकान्तिक-पराजयाद्वरं सन्देहः’ इति जानन्नपि जात्यादिकं प्रयुक्ते इत्येतद्वचो नैयायिकस्यानैयायिकतामाविर्भावयेत् । ततः स्वपक्षसिद्धयै ५ जयस्तदसिद्ध्या तु पराजयः, न तु मिथ्योत्तरलक्षणजातिशतैरपीति ।

नापि निग्रहस्थानैः । तेषां हि “विप्रतिपत्तिरप्रतिपत्तिश्च निग्रहस्थानम्” [न्यायसू० १।२।१९] इति सामान्यलक्षणम् । विपरीता कुत्सिता वा प्रतिपत्तिर्विप्रतिपत्तिः । अप्रतिपत्तिस्त्वा- १० रम्भविषयेऽनारम्भः, पक्षमभ्युपगम्य तस्याऽस्थापना, परेण स्थापितस्य वाऽप्रतिषेधः, प्रतिषेधस्य चाऽर्जुन्द्वार इति । प्रतिज्ञा-हान्यादिव्यकिगतं तु विशेषलक्षणम् ।

तत्र प्रतिज्ञाहानेस्तावल्लक्षणम्—“प्रतिदृष्टान्तधर्म्यं(मां)र्जुना स्व-दृष्टान्ते प्रतिज्ञाहानिः” [न्यायसू० ५।२।२] “साध्यधर्मप्रत्यनीकेन १५ धर्मेण प्रत्यवस्थितः प्रतिदृष्टान्तधर्मं स्वदृष्टान्तेऽनुजानन् प्रतिज्ञां जहातीति प्रतिज्ञाहानिः । यथा ‘अनित्यः शब्द ऐन्द्रियिकत्वाद् घटवत्’ इत्युक्ते परं प्रत्यवतिष्ठते-सामान्यमैन्द्रियिकं नित्यं दृष्टम्, कस्मान्न तथा शब्दोपि ? इत्येवं स्वप्रयुक्तस्य हेतुराभास-तामवस्थैन्नपि कथावसानमकृत्वा प्रतिज्ञात्यागं कुरोति-यद्यै- २० न्द्रियिकं सामान्यं नित्यं कामं घटोपि नित्योस्त्विति । न (स) स्वैव्यं ससाधनस्य दृष्टान्तस्य नित्यत्वं असंज्ञिगमनान्तमेव पक्षं जहाति । पक्षं च परित्यजन्प्रतिज्ञां जहातीत्युच्यते प्रतिज्ञा-श्रयत्वात्पक्षस्य” [न्यायभा० ५।२।२] ।

इति भाष्यकारमतमसङ्गतमेव; साक्षाद्दृष्टान्तहानिरूपत्वात्- २५ स्यात्सत्रैव साध्यधर्मपरित्यागात् । परम्परया तु हेतूपनयनिगम-

१ प्रागुक्तः=उत्तराप्रतिपत्तिलक्षणादिः । २ परावचो न भवतीति । ३ तत्त्वप्रति-पत्तेरभावो विप्रतिपत्तिः । ४ कथम् ? तथा हि । ५ वादिपक्षस्य । ६ अपरिहारः । ७ उक्ते हेतौ दूषणोद्भावेन सति पक्षाभ्युपगमः प्रतिज्ञा । ८ अभ्युपगमः । ९ धर्म-धर्मिसमुदायः प्रतिज्ञा तस्या हानिः । १० प्रतिवादिना पर्यनुयुक्तो वादी । ११ पर-कीयोदाहरणवचनम् । १२ वादिनः । १३ इन्द्रियग्राह्यत्वात् । १४ वादिना । १५ प्रतिवादी । १६ जानन् । १७ कया वादः । १८ साधनवादी । १९ वादी । २० अभ्युपगच्छन् । २१ घटादिदृष्टान्तः । २२ प्रतिज्ञाहानिः । २३ शब्दानिलसं साम्यधर्मः ।

नानां त्यागः, दृष्टान्तासाधुत्वे तेषामप्यसाधुत्वात् । तथा च 'प्रतिज्ञाहानिरेव' इत्यसङ्गतम् ।

वार्त्तिककारस्त्वेवमाचष्टे—“दृष्टश्चासार्वन्ते स्थितश्चेति दृष्टान्तः पक्षः स्वपक्षः, प्रतिदृष्टान्तः प्रतिपक्षः । प्रतिपक्षस्य धर्मं स्वपक्षेऽभ्यनुजानन् प्रतिज्ञां जहाति । यदि सामान्यमैन्द्रियिकं नित्यं शब्दोप्येवंमस्त्विति ।” [न्यायवा० ५।२।२]

तदेतदप्युद्धोतकरस्य जाड्यमाविष्करोति; इत्थमेव प्रतिज्ञाहानेरवधारयितुमशक्यत्वात् । प्रतिपक्षसिद्धिमन्तरेण च कस्यचिन्निग्रहाधिकरणत्वायोगात् । न खलु प्रतिपक्षस्य धर्मं स्वपक्षेऽभ्यनुजानन् एव प्रतिज्ञात्यागो येनार्यमेक एव प्रकारः प्रतिज्ञाहानौ स्यात् । अधिक्षेपादिभिराकुलीभावात् प्रकृत्या सभाभीस्त्वाद्ऽन्यमनस्कत्वादेर्वा निमिच्चार्त्तिकञ्चित्साध्यत्वेन प्रतिज्ञाय तद्विपरीतं प्रतिजानतोऽप्युपलम्भात् पुरुषभ्रान्तेरनेककारणत्वोपपत्तेरिति ।

तथा “प्रतिज्ञातार्थप्रतिषेधे धर्मविकल्पात्तदर्थनिर्देशः प्रतिज्ञान्तरम् ।” [न्यायसू० ५।२।३] प्रतिज्ञातार्थस्याऽनित्यः शब्द इत्यादेरैन्द्रियिकत्वाख्यस्य हेतोर्व्यभिचारोपदर्शनेन प्रतिषेधे कृते तं दोषमनुद्धरन् धर्मविकल्पं करोति ‘किमयं शब्दोऽसर्वगतो घटवत्, किं वा सर्वगतः सामान्यवत्’ इति । यद्यसर्वगतो घटवत्; तर्हि तद्भेदेवानित्योस्त्वित्येतत्प्रतिज्ञान्तरं नाम निर्ग्रहस्थानं सामर्थ्याऽपरिज्ञानात् । स हि पूर्वस्याः ‘अनित्यः शब्दः’ इति प्रतिज्ञायाः साधनायोत्तराम् ‘असर्वगतः शब्दोऽनित्यः’ इति प्रतिज्ञामाह । न च प्रतिज्ञा प्रतिज्ञान्तरसाधने समर्थाऽतिप्रसङ्गात् ।

इत्यप्येतेनैव प्रत्युक्तम्; प्रतिज्ञाहानिवत्तस्याप्यनेकनिमित्तत्वोपपत्तेः । प्रतिज्ञाहानितश्चास्य कथं भेदः पक्षत्यागस्योभयत्राऽविशेषात्? यथैव हि प्रतिदृष्टान्तधर्मस्य स्वदृष्टान्तेऽभ्यनुज्ञानात्पक्षत्यागस्तथा प्रतिज्ञान्तरादपि । यथा च स्वपक्षसिद्ध्यर्थं प्रतिज्ञान्तरं विधीयते तथा शब्दाऽनित्यत्वसिद्ध्यर्थम्, भ्रान्तिवशात्तद्ब्रह्मशब्दोऽपि नित्योस्त्वित्यभ्यनुज्ञानम् । यथा चाभ्रान्तस्येदं विरुद्ध्यते तथा प्रतिज्ञान्तरमपि । निमित्तभेदाच्च तद्भेदेऽनिष्टनिग्रहस्थानान्तरा-

१ विचारान्ते । २ नित्यत्वलक्षणम् । ३ अनित्ये । ४ वादी । ५ ऐन्द्रियिकत्वविशेषात् । ६ प्रतिपक्षस्य स्वपक्षेऽभ्युपगमनेनैव । ७ वादिनः पक्षिवादिनो वा । ८ प्रतिदृष्टान्तधर्मस्य स्वपक्षेऽभ्युपगमः । ९ अपिक्षेपस्तिरस्कारः । १० सामान्येन । ११ भेदम् । १२ वादी । १३ वादिनः । १४ ननु प्रतिज्ञान्तरात्पक्षत्यागस्य स्वपक्षसिद्ध्यर्थं विधीयमानत्वादित्युक्ते सलाह ।

णामप्यनुषङ्गः स्यात् । तेषां तत्रान्तर्भावे वा प्रतिज्ञान्तरस्यापि प्रतिज्ञाहानावन्तर्भावः स्यादिति ।

“प्रतिज्ञाहेत्वोर्विरोधः प्रतिज्ञाविरोधः” [न्यायसू० ५।२।४] यथा गुणव्यतिरिक्तं द्रव्यं रूपादिभ्यो भेदेनानुपलब्धेः । इत्यप्य-सुन्दरम् ; यतो हेतुना प्रतिज्ञायाः प्रतिज्ञात्वे निरस्ते प्रकारान्तरतः ५ प्रतिज्ञाहानिरेवेयमुक्ता स्यात्, हेतुर्दोषो वात्र विरुद्धतालक्षणः, न प्रतिज्ञादोष इति ।

“पक्षप्रतिषेधे प्रतिज्ञातार्थापनयनं प्रतिज्ञासंन्यासः ।” [न्याय-सू० ५।२।५] यथा ‘अनित्यः शब्द ऐन्द्रियिकत्वाद् घटवत्’ इत्युक्ते पूर्ववत्सामान्येनानैकान्तिकत्वे हेतोरुद्गाहिते प्रतिज्ञा-१० संन्यासं करोति-क एवमाह ‘नित्यः(अनित्यः)शब्दः’ ? इत्यपि प्रतिज्ञाहानितो न भिद्येत हेतोरनैकान्तिकत्वोपलम्भेनात्रापि प्रतिज्ञायाः परित्यागाविशेषादिति ।

“अविशेषोक्ते हेतौ प्रतिषेधे विशेषमिच्छतो हेत्वन्तरम् ।” [न्यायसू० ५।२।६] निदर्शनम्-‘एकप्रकृतीदं व्यक्तं विकाराणां १५ परिमाणान्मृतपूर्वकघटशराबोदञ्चनादिवत्’ इत्यस्य व्यभिचारेण प्रत्यवस्थानम्-नानाप्रकृतीनामेकप्रकृतीनां ह्येवं परिमाणमित्यस्य हेतोरहेतुत्वं निश्चित्य ‘एकप्रकृतिसंमन्वये विकाराणां परि-माणात्’ इत्याह । तदिदमविशेषोक्ते हेतौ प्रतिषेधे विशेषं ब्रुवतो हेत्वन्तरं नाम निग्रहस्थानम् । २०

इत्यप्यसुन्दरम् ; एवं सत्यविशेषोक्ते ह्यन्तोपनयनिगमने प्रतिषेधे विशेषमिच्छतो ह्यन्ताद्यन्तैरमपि निग्रहस्थानान्तर-मनुष्येत तत्राक्षेपसमाधानानां समानत्वादिति ।

“प्रकृतादर्थ्यादप्रतिसम्बन्धार्थमर्थान्तरम् ।” [न्यायसू० ५।२।७] यथोक्तलक्षणे पक्षप्रतिपक्षपरिग्रहे हेतुतः साध्यसिद्धौ प्रकृतायां २५

१ प्रतिज्ञाहान्यादौ । २ यत्र प्रतिज्ञा विरुध्यते हेतुना हेतुना प्रतिषेधा विरुध्यते स प्रतिज्ञाविरोधः । ३ उक्तहेतौ दूषणोद्भावने स्वसाध्यपरित्यागः प्रतिज्ञासंन्यासः । ४ नादिना । ५ त्यागम् । ६ अविशेषोक्ते हेतौ व्यभिचारेण प्रतिषेधे पश्चादि-शेषणोपादानं हेत्वन्तरम् । ७ प्रतिवादिना । ८ प्रधानम् । ९ महदादिकार्यम् । १० वस्तुमैदानाम् । ११ नादिनोक्तानुमानस्य । १२ घटमुकुटपटलकुटशक्यदीनाम् । १३ एककारणानुस्यूतत्वे सवील्यर्थः । १४ वादी । १५ ह्यन्ताद्यन्तर निग्रहस्थानं न साधेद्वेत्वन्तरमपि निग्रहस्थानं मा भूदिति । १६ प्रकृतप्रमेयानुपयोगिवचनमर्थान्तर-नाम निग्रहस्थानम् । १७ वस्तुषर्मावेकाधिकरणावित्यादि ।

प्रकृतं हेतुं^१ प्रमाणसामर्थ्येनौहमसमर्थः समर्थयितुमित्यवस्यन्नपि कथामपरित्यजन्नर्थान्तरमुपन्यस्यति-नित्यः शब्दोऽस्पर्शवत्त्वादिति हेतुः । हेतुश्च हिनोतेर्घातोस्तुप्रत्यये कृदन्तं पदम्, [पदं]च नामाख्यातोपसर्गनिपाता इति प्रस्तुत्य नामादीनि व्याचष्टे ।

- ५ तदेतदप्यर्थान्तरं निग्रहस्थानं समर्थं साधने दूषणे वा प्रोक्ते निग्रहाय कल्प्येत, असमर्थं वा ? न तावत्समर्थं; स्वसाध्यं प्रसाध्य नृत्यतोपि दोषाभावालोकोक्तम् । असमर्थेपि प्रतिवादिनः पक्षसिद्धौ तन्ननिग्रहाय स्यात्, असिद्धौ वा ? प्रथमपक्षे तत्पक्षसिद्धैवास्व निग्रहो न त्वतो निग्रहस्थानात् । द्वितीयपक्षेप्यतो न निग्रहः पक्ष-
१० सिद्धेरुर्मयोरप्यभावादिति ।

“वर्णक्रमनिर्देशवन्निरर्थकम् ।” [न्यायसू० ५।२।८] यथाऽ-
नित्यः शब्दो जवगडदृशत्वात् क्षमघटधत्वत् । इत्यपि सर्वथास्य-
शून्यत्वान्निग्रहाय कल्प्येत, साध्यानुपयोगाद्वा ? तत्राद्यविकल्पोऽ-
शुक्तः; सर्वथार्थशून्यस्य शब्दस्यैवास्मभवात् । वर्णक्रमनिर्देशस्या-
१५ प्यनुकार्येणार्थेनार्थवत्त्वोपपत्तेः । द्वितीयविकल्पे तु सर्वत्रैव निग्रह-
स्थानं निरर्थकं स्यात्; साध्यसिद्धावतुपयोगित्वाविशेषात् । केन-
चिद्विशेषमात्रेण भेदे वा खात्कृताकम्पहस्तास्फालनकक्षापिष्टिका-
देरपि साध्यसिद्धानुपयोगिनो निग्रहस्थानान्तरत्वानुपपन्न इति ।

“परिपत्प्रतिवादिभ्यां त्रिरभिहितमप्यविज्ञातमविज्ञातार्थम् ।”
२० [न्यायसू० ५।२।९] अत्रेदंमुच्यते-चादिना त्रिरभिहितमपि वाक्यं
परिपत्प्रतिवादिभ्यां मन्दमतित्वाद्दविज्ञातम्, गूढाभिधानतो वा,
दुतोच्चारद्वा ? प्रथमपक्षे सत्साधनवादिनोप्येतन्ननिग्रहस्थानं स्यात्,
तत्राप्यनयोर्मन्दमतित्वेनाविज्ञातत्वसम्भवात् । द्वितीयपक्षे तु
पञ्चवाक्यप्रयोगेपि तत्प्रसङ्गो गूढाभिधानतया परिपत्प्रतिवादि-
२५ नोर्महाप्राज्ञयोरप्यविज्ञातत्वोपलम्भात् । अथाभ्यामविज्ञातमप्येत-
द्वादी व्याचष्टे; गूढोपन्यासमप्यात्मनः स एव व्याचष्टाम् ।
अव्याख्याने तु जयाभाव एवास्य न पुनर्निग्रहः; परस्य पक्षसिद्धे-
रभावात् । दूतोच्चारपि अनयोः कथञ्चित् ज्ञानं सम्भवत्येव
सिद्धान्तद्वयवेदित्वात् । साध्यानुपयोगिनि तु चादिनः प्रक्षापमात्रे

१ अस्यस्यैवत्वादिति । २ वादी । ३ वादम् । ४ प्रकृतार्थं परित्यज्यन्यमर्थं श्रुते
इत्यर्थः । ५ तस्य वादिनः । ६ वादिप्रतिवादिनोः । ७ अर्थरहितवाच्योच्चारणं निरर्थकं
नाम निग्रहस्थानम् । ८ पक्षात्क्रियमाणेन । ९ निरर्थकत्वाविग्रहस्थानानाम् ।
१० वादिना । ११ वादिना त्रिरुपन्यस्तमपि परिपत्प्रतिवादिभ्यामविज्ञातमविज्ञातार्थं
नाम निग्रहस्थानं वादिनः । प्रतिवादिनोप्येवम् । १२ तन्मर्मस्य ।

तयोरज्ञानं नाविज्ञातार्थं वर्णक्रमनिर्देशवत् । ततो नेदमभि(वि)
ज्ञातार्थं निरर्थकान्निघते इति ।

“पौर्वापर्यायोगादप्रतिसम्बन्धार्थमपार्थक्यम् ।” [न्यायसू० ५।
२।१०] यथा दश दाडिमानि षड्पूपाः कुण्डमजाऽजिनं पल्ल-
पिण्डः । ५

इत्यापि निरर्थकान्न मिद्यते-यथैव हि जवगडदशुवादौ वर्णानां
नैरर्थक्यं तथात्र पदानामिति । यदि पुनः पदनैरर्थक्यं वर्णनैरर्थ-
क्यादन्यत्वाग्निग्रहस्थानान्तरमभ्युपगम्यते; तर्हि वाक्यनैरर्थक्य-
स्याप्याभ्यामन्यत्वाग्निग्रहस्थानान्तरत्वं स्यात् । पदवत् पौर्वापर्ये-
णा(ष)प्रयुज्यमानानां वाक्यानामप्यनेकधोपलम्भात् । १०

“शङ्खः कदल्यां कदली च मेर्यां तस्यां च मेर्यां सुमहद्विमानम् ।

तच्छङ्खमेरीकदलीविमानमुन्मैत्तगङ्गप्रतिमं बभूव ॥” []
इत्यादिवत् । यदि पुनः पदनैरर्थक्यमेव वाक्यनैरर्थक्यं पद-
समुदायात्मकत्वात्तस्य; तर्हि वर्णनैरर्थक्यमेव पदनैरर्थक्यं स्याद्-
र्णसमुदायात्मकत्वात्तस्य । वर्णानां सर्वत्र निरर्थकत्वात्पद-१५
स्यापि तत्प्रसङ्गश्चेत्; तर्हि पदस्यापि निरर्थकत्वात् तत्समुदाया-
त्मनो वाक्यस्यापि नैरर्थक्यानुपगमः । पदार्थापेक्षया पदस्यार्थवत्त्वे
वर्णार्थापेक्षया वर्णस्यापि तदस्तु प्रकृतिप्रत्ययादिवर्णवत् । न खलु
प्रकृतिः केवला पदं प्रत्ययो वा, नाप्यनयोरनर्थकत्वम् । अभि-
व्यक्तार्थाभावादनेर्थकत्वे पदस्यापि तत्स्यात् । यथैव हि प्रकृत्यर्थः २०
प्रत्ययेनाभिव्यज्यते प्रत्ययार्थश्च प्रकृत्या तयोः केवलयोरप्रयोगात्,
तथा ‘देवदत्तस्तिष्ठति’ इत्यादिप्रयोगे सुवन्तपदार्थस्य तिङन्त-
पदेन तिङन्तपदार्थस्य च सुवन्तपदेनाभिव्यक्तेः केवलस्याप्र-
योगः । पदान्तरापेक्षस्य पदस्य सार्थकत्वं प्रकृत्यपेक्षस्य प्रत्ययस्य
तदपेक्षस्य च प्रकृत्यादिवर्णस्य समानमिति । २५

“अवयवविपर्यासवचनमप्राप्तकालम् ।” [न्यायसू० ५।२।११]
अवयवानां प्रतिज्ञादीनां विपर्यासेनाभिधानमप्राप्तकालं नाम निग्रह-
स्थानम् । इत्यप्यपेशलम्; प्रेक्षावतां प्रतिपत्तृणामवयवक्रमनियमं
विनाप्यर्थप्रतिपत्त्युपलम्भाद्देवदत्तादिवाक्यवत् । ननु यथापशब्दा-

१ पूर्वापराऽसङ्गतपदकदम्बकोच्चारणादप्रतिष्ठितवाक्यार्थमपार्थक्यं नाम निग्रहस्थानम् ।
२ उन्मत्ता गङ्गा यसिन्धुदेवेऽसावुन्मत्तगङ्गाः । ३ वाक्ये पदे च । ४ प्रकृत्यादावपि
पदानामेवार्थवत्त्वं न पुनर्वर्णानां येन दृष्टान्तः सिद्धः स्यादित्युक्ते सत्साध ।
५ वर्णस्य । ६ पदस्य । ७ सार्थकत्वम् । ८ यथाक्रमोच्छ्रवणेन प्रयुज्यमानमनुमान-
वाक्यम् । ९ अप्राप्तवसरम् । १० देवदत्त गामभ्यां शृङ्गां दण्डेनेत्यादिवत् ।

च्छ्रुताच्छब्दस्मरणं ततोऽर्थप्रत्यय इति शब्दादेवार्थप्रत्ययः परम्पर्या तथा प्रतिज्ञायवयवव्युत्क्रमात् तत्क्रमस्मरणं ततो वाक्यार्थप्रत्ययो न तद्भुत्क्रमात्; इत्यप्यसारम्; एवंविधप्रतीत्यभावात् । यस्माद्धि शब्दादुच्चरिताद्यत्रार्थे प्रतीतिः स एव तस्य वाचकोऽनान्यः, अन्यथा 'शब्दात्तत्क्रमाद्वापशब्दे तद्भुत्क्रमे च स्मरणं ततोऽर्थप्रतीतिः' इत्यपि वक्तुं शक्येत । एवं शब्दाद्यन्वाख्यानवैयर्थ्यं चेत्; न; एवं वादिनोऽनिष्टमात्रापादनात्, अपशब्देपि चान्वाख्यानस्योपलम्भात् । 'संस्कृताच्छब्दात्सत्याद्धर्मोऽन्यथाऽऽद्यः' इति नियमे चान्यधर्माधर्मोपायानुष्ठानवैयर्थ्यम् । धर्मोद्यमयोश्चाप्रति-
१० नियमप्रसङ्गः; अधार्मिके धार्मिके च तच्छब्दोपलम्भात् । भवतु वा तत्क्रमादर्थप्रतीतिः, तथाप्यर्थप्रत्ययः क्रमेण स्थितो येन वाक्येन व्युत्क्रमयते तन्निरर्थकं न त्वऽप्राप्तकालमिति ।

“शब्दार्थयोः पुनर्वचनं पुनरुक्तमन्यत्रानुवादात् ।” [न्यायसू. ५।२।१४] तत्रार्थपुनरुक्तमेवोपपन्नं न शब्दपुनरुक्तम्; अर्थमेवेदं १५ शब्दसाम्येप्यस्याऽसम्भवात्

“हसति हसति स्वामिन्युच्चैरुदत्यतिरोदिति,
कूर्तपरिकरं खेदोद्गिरि प्रधावति धावति ।
गुणसमुदितं दोषापेतं प्रणिन्दति निन्दति,
धनलक्षपरिकीर्तं श्रेष्ठं प्रनृत्यति नृत्यति ।”

२०

[वादन्यायपृ० १११]

इत्यादिषत् । ततः स्वैष्टार्थवाचकैस्तेरेवान्यैर्वा शब्दैः सत्याः प्रतिपादनीयाः । तत्प्रतिपादकशब्दानां तु संकल्पुनः पुनर्वाभिधानं निरर्थकं न तु पुनरुक्तम् । यद्य(व)प्यर्थादापन्नस्य स्वशब्देन पुनर्वचनं पुनरुक्तमुक्तम् । यथा 'उत्पत्तिधर्मकमनित्यम्'
२५ इत्युक्त्वाऽर्थादापन्नस्यार्थस्य योऽभिधायकः शब्दस्तेन स्वशब्देन नृयात् 'नित्यमनुत्पत्तिधर्मकम्' इति । तदपि प्रतिपन्नार्थप्रतिपादकत्वेन वैयर्थ्याभिप्रहस्थानं नान्यथा । तथा चेदं निरर्थकप्रतिशेषेतेति ।

१ सत्यशब्दस्य । २ स्मृतशब्दात् । ३ निर्वर्णयात् । ४ स्मृतक्रमात् । ५ स्मृतापशब्दात्स्मृतापक्रमात् । ६ शब्दादेरपशब्दादिसंस्मरणप्रकारेण । ७ पुनः पुनः कथनमन्वाख्यानम् । ८ संस्कृताच्छब्दाद्धर्मोऽन्यथाऽऽद्यः इति नियमात्पशब्देऽन्वाख्यानमस्तीत्युक्ते सत्याह । ९ इत्याऽध्ययनादिरन्वः । १० सति । ११ क्रियाविशेषणम् । १२ क्रियाविशेषणम् । १३ शौल्येन समुद्धीतम् । १४ यत्रमिव यत्र=मूलः । १५ शब्दपीनरुक्तस्युपपन्नं न भवेत्ततः । १६ प्रथमोच्चारितैः । १७ कथनानन्तरनेकतारम् । १८ अर्थस्य । १९ पुनरुक्तप्रकारेण ।

“विज्ञातस्य परिषदा त्रिरभिहितस्याऽप्रत्युच्चारणमननुभाषणम् ।” [न्यायसू० ५।२।१६] अप्रत्युच्चारणमन्नुभाषणं परपक्षप्रतिषेधं ज्ञेयात्? इत्यत्रापि किं सर्वस्य वादिनोक्तस्थाननुभाषणम्, किं वा यच्चान्तरीयिका साध्यसिद्धिस्तैस्येति? तत्रायः पक्षोऽयुक्तः; परोक्तमशेषमप्रत्युच्चारयतोपि दूषणवचनाऽव्याघातात् । यथा १ ‘सर्वमनित्यं सत्त्वात्’ इत्युक्ते ‘सत्त्वात् इत्ययं हेतुर्विसद्ः’ इति हेतुमेवोच्चार्य विरुद्धतोद्भाव्यते-‘क्षणक्षयाद्येकान्ते सर्वार्थार्थक्रियाविरोधात्सत्त्वानुपपत्तेः’ इति, समर्थ्यते च, तावता च परोक्तहेतोर्दूषणात्किमन्योच्चारणेन? अतो यच्चान्तरीयिका साध्यसिद्धिस्तस्यैवाऽप्रत्युच्चारणमननुभाषणं प्रतिपत्तव्यम् । अथैवं दूषयितुम्-१० समर्थः शास्त्रार्थपरिज्ञानविशेषविकलत्वात्; तदाऽयंमुत्तराऽप्रतिपत्तेरेव तिरस्कियते न पुनरननुभाषणादिति ।

“अविज्ञातं चाज्ञानम् ।” [न्यायसू० ५।२।१७] विज्ञातार्थस्य परिषदा प्रतिवादिना यदविज्ञातं(नं)तदज्ञानं नाम निग्रहस्थानम् । अज्ञानं कस्य प्रतिषेधं ज्ञेयात्? इत्यप्यसारम्; प्रतिज्ञाहान्यादि-१५ निग्रहस्थानानां मेदाभावलुपङ्गात् तत्राप्यज्ञानस्यैव सम्भवात् । तेषां तत्रमेदत्वे वा निग्रहस्थानप्रतिनियमाभावप्रसङ्गः परोक्त-^{१६}साक्षात्ज्ञानादिभेदेन निग्रहस्थानानैकत्वसम्भवात् ।

“उत्तरस्याप्रतिपत्तिरप्रतिभा ।” [न्यायसू० ५।२।१८] साध्य-^{२०}ज्ञानाच्च भिद्यत एव ।

“निग्रहं प्राप्तस्योनिग्रहः पर्यनुयोज्योपेक्षणम् ।” [न्यायसू० ५।२।२१] पर्यनुयोज्यो हि निग्रहोपपत्त्या चोदनीयस्तस्योपेक्षणं ‘निग्रहं प्राप्तोसि’ इत्यननुयोग एव । एतच्च ‘कस्य पराजयः’ इत्यनुयुक्त्या परिषदा वचनीयम् । न खलु निग्रहप्राप्तः स्वं कौपीनं विवृणुयात् । इत्यप्यज्ञानाच्च व्यतिरिच्यत एव ।^{२५}

“अनिग्रहस्थाने निग्रहस्थानानुयोगो निरनुयोज्यानुयोगः ।” [न्यायसू० ५।२।२२] तस्याप्यज्ञानात्पृथग्भावोनुपपन्न एव ।

१ वादिना । २ प्रतिवादिना । ३ प्रतिवापुक्तस्य । ४ प्रतिवादिना । ५ अन्यत् परिषदाद्यादि । ६ सर्वस्य वादिनोक्तस्थाननुभाषणं न वदते वक्तः । ७ परेण । ८ हेतु-
चारणं कृत्या । ९ प्रतिवादी । १० प्रतिवादी । ११ परिषदा विज्ञातस्यापि वादिवाक्यस्य
प्रतिवादिना यदविज्ञातं तदज्ञानं नाम । १२ प्रतिवादी । १३ वादिना अदोऽदो-
महः । १४ प्राप्तदोषानुद्भावनं पर्यनुयोज्योपेक्षणं नाम निग्रहस्थानम् । १५ प्रति-
वादिनः । १६ इदं च निग्रहस्थानमायावतस्यो निग्रहीतोसीति वचनीयः । १७ पृथ्या ।
१८ शब्दम् । १९ कोपरहिते दोषोद्भावनं निरनुयोज्यानुयोगो नाम निग्रहस्थानम् ।

“कार्यव्यासङ्गात्कथाविच्छेदो विक्षेपः ।” [न्यायसू० ५।२।१९]
सिद्धाद्यधिषितस्यार्थस्याऽशक्यसाध्यतामवसीर्य कालयापनार्थं
यत्कर्तव्यं व्यासज्य कथां विच्छिनत्ति-इदं मे करणीयं परिहीयते,
तस्मिन्नवसिते पश्चात्कथयिष्यामि । इत्यप्यज्ञानतो नाथान्तरमिति
५ प्रतिपत्तव्यम् ।

“स्वपक्षे दोषाभ्युपगमात् परपक्षे दोषप्रसङ्गो मतानुज्ञा ।”
[न्यायसू० ५।२।२०] यैः परेण चोदितं दोषंमनुज्ज्वल्य ब्रवीति-“भव-
त्पक्षेऽप्ययं दोषः समानः” इति, स स्वपक्षे दोषाभ्युपगमात्परपक्षे
दोषं प्रसजन् परमतमनुजानातीति मतानुज्ञा नाम निग्रहस्थान-
१० मापद्यते । इत्यप्यज्ञानान्न भिद्यते एव । अनैकान्तिकता चात्र
हेतोः; तथाहि-‘तस्करोर्यं पुरुषत्वात्प्रसिद्धतस्करवत्’ इत्युक्ते
‘त्वमपि तस्करः स्यात्’ इति हेतोरनैकान्तिकत्वमेवोक्तं स्यात् ।
सै चाल्मीयहेतोरार्त्मानैवानैकान्तिकत्वं दृष्ट्वा प्राह-भवत्पक्षेऽप्ययं
दोषः समानः-त्वमपि पुरुषोसि इत्यनैकान्तिकत्वमेवोद्भाव-
१५ यतीति ।

“हीनमन्यतमेनाप्यवयवेन न्यूनम् ।” [न्यायसू० ५।२।१२] यस्मि-
न्वाक्ये प्रतिज्ञादीनामन्यतमोऽवयवो न भवति तद्वाक्यं हीनं नाम
निग्रहस्थानम् । साधनाभावे साध्यसिद्धेरभावात्, प्रतिज्ञादीनां च
पञ्चानामपि साधनत्वात्; इत्यप्यसमीचीनम्; पञ्चावयवप्रयोग-
२० मन्तरेणापि साध्यसिद्धेः प्रतिपादितत्वात्, पक्षहेतुवचनमन्तरे-
णैव तत्सिद्धेरभावात् अतस्तद्धीनमेव न्यूनं निग्रहस्थानमिति ।

“हेतुदाहरणाधिकमधिकम् ।” [न्यायसू० ५।२।१३] यस्मिन्वाक्ये
द्वौ हेतु द्वौ वा दृष्टान्तौ तदधिकं निग्रहस्थानम्; इत्यपि वार्त्तम्;
तथाविधाद्वाक्यात्पक्षप्रसिद्धौ पराजयायोगात् । कथं चैवं प्रमा-
२५ णसंज्ञोभ्युपगम्यते? अभ्युपगमे वाधिकत्वाभिग्रहाय जायेत ।
‘प्रतिपत्तिदार्ढ्य-संवादसिद्धिप्रयोजनसङ्गात्वात् निग्रहः’ इत्यन्य-
त्रापि समानम् । हेतुना दृष्टान्तेन वैकेन प्रसाधितेष्वर्थे द्वितीयस्य
हेतोर्दृष्टान्तस्य वा नानर्थक्यम्, तत्प्रयोजनसङ्गात्वात् । न चैवंम-
नवस्था; कस्यचित्कञ्चिन्निराकाक्षतोपपत्तेः प्रमाणान्तरवत् । कथं
३० चास्यै कृतकर्त्तव्यौ स्वार्थिककप्रत्ययवचनम्, ‘यत्कृतकं तदनि-

१ ज्ञात्वा । २ स्वपक्षोक्तदोषमपरिहृत्य परपक्षेऽपि दूषणमुद्भावयतो मतानुज्ञा नाम
निग्रहस्थानम् । ३ वादी । ४ प्रतिवादिना । ५ स्वपक्षे । ६ सम्बन्धयत् । ७ वादी ।
८ स्वयम् । ९ अनुमानस्य । १० अधिकस्य निग्रहस्थानत्वप्रकारेण । ११ एकसि-
न्प्रमाणविषये प्रमाणान्तरवर्तनं प्रमाणसंज्ञकः । १२ परेण । १३ हेतुदृष्टान्तान्तर-
न्येषणप्रकारेण । १४ अनुमाने । १५ अधिकनिग्रहस्थानवादिनः । १६ साधने ।

स्यम्' इति व्याप्तौ यत्तद्भवन्मू, वृत्तिपदप्रयोगादेव चार्थप्रति-
पत्तौ वाक्यप्रयोगः अधिकत्वाग्निग्रहस्थानं न स्यात्? तथाविध-
स्याप्यस्य प्रतिपत्तिविशेषोपायत्वात्तत्रेति चेत्; कथमनेकस्य हेतो-
र्द्वैघान्तस्य वा तदुपायभूतस्य वचनं निग्रहाधिकरणम्? निरर्थकस्य
तु वचनं निरर्थकत्वादेव निग्रहस्थानं नाधिकत्वादिति । ५

“सिद्धान्तमभ्युपेत्यानियमात्कथाप्रसङ्गोऽपसिद्धान्तः।” [न्याय-
सू० ५।२।२३] प्रतिज्ञातार्थपरित्यागाग्निग्रहस्थानम् । यथा नित्या-
नऽभ्युपेत्य शब्दादीन् पुनरनित्यान् ब्रूते । इत्यपि प्रतिवादिनः
प्रतिपक्षसाधने सत्येव निग्रहस्थानं नान्यथा ।

“हेत्वाभासाश्च यथोक्ताः।” [न्यायसू० ५।२।२४] असिद्धवि-१०
रुद्धानैकान्तिककालालययापदिष्टप्रकरणसमा निग्रहस्थानम् । इत्य-
त्रापि विरुद्धहेतुद्भावने प्रतिपक्षसिद्धेर्निग्रहाधिकरणत्वं युक्तम् ।
असिद्धाद्युद्भावने तु प्रतिवादिना प्रतिपक्षसाधने कृते तद्युक्तं
नान्यथेति ।

एतेनासाधनाङ्गवचनानादि निग्रहस्थानं प्रत्युक्तम्; एकस्य स्वप-१५
क्षसिद्धैवान्यस्य निग्रहप्रसिद्धेः । ततः स्थितमेतत्—

“स्वपक्षसिद्धेरेकस्य निग्रहोन्यस्य वादिनः ।

नासाधनाङ्गवचनमदोषोद्भावनं द्वयोः ॥” [] इति ।

इदं चानवस्थितम्—

“असाधनाङ्गवचनमदोषोद्भावनं द्वयोः । २०

निग्रहस्थानमन्यसु न युक्तमिति नेष्यते ॥” [वादन्यापु० १]

इति । अत्र हि स्वपक्षं साधयन् वादिप्रतिवादिनोरन्यतरोऽसाधना-
ङ्गवचनाद्ऽदोषोद्भावनाद्वा परं निगृह्णाति, असाधयन्वा? प्रथम-
पक्षे स्वपक्षसिद्धैवास्य पराजयादन्योद्भावनं व्यर्थम् । द्वितीयपक्षे तु
असाधनाङ्गवचनाद्युद्भावनेपि न कस्यचिज्जयः पक्षसिद्धेरुभयोर-२५
भावात् ।

यच्चास्य व्याख्यानम्—“साधनं सिद्धिः तदङ्गं त्रिरूपं लिङ्गम्,
तस्याऽवचनं तूर्णभावात् यत्किञ्चिद्भाषणं वा । साधनस्य वा

१ समासोत्र वृत्तिः । २ स्यादेव । ३ अधिकत्वाग्निग्रहस्थानत्वं कः कारयेत्-
दचनस्य । ४ निरर्थकत्वाग्निग्रहस्थानं अविश्वतीत्युक्ते सत्याह । ५ स्त्रीकृतागमविरुद्ध-
प्रसाधनमपसिद्धान्तो नाम निग्रहस्थानम् । ६ प्रतिपक्षसिद्धभावे । ७ सौगतमतमेतत् ।
८ वादिना अदोषोद्भावनादि । ९ वादिप्रतिवादिनोः । १० पदवीर्यं व्याख्यान-
मत्स्ये । ११ असाधनाङ्गवचनं वादिन एव निग्रहस्थानमदोषोद्भावनं तु प्रतिवादिन
पवेति द्वयोरिति पदमुक्तम् । १२ हेतोः । १३ अन्यस्य दोषस्य ।

त्रिरूपलिङ्गस्याङ्गं समर्थनम् विपक्षे वाधकप्रमाणदर्शनरूपम्, तस्याऽवचनं वादिनो निग्रहस्थानम्” [वादन्यायपृ० ५-६] इति । तत्पञ्चावयवप्रयोगवादिनोपि समानम्-शक्यं हि तेनाप्येवं वक्तुम्-सिद्ध्यङ्गस्य पञ्चावयवप्रयोगस्यावचनात्सौगतस्य वादिनो ५ निग्रहः । ननु चास्य तदवचनेपि न निग्रहः, प्रतिज्ञानिगमनयोः पक्षधर्मोपसंहारस्य सामर्थ्याद्गम्यमानत्वात् । गम्यमानयोश्च वचने पुनरुक्तत्वानुषङ्गात् । ननु तत्प्रयोगोपि हेतुप्रयोगमन्तरेण साध्यार्था-प्रसिद्धिः; इत्यप्यपेशलम्; पक्षधर्मोपसंहारस्याप्येवमवचनानुप- ३० ङ्गात् । अथ सामर्थ्याद्गम्यमानस्यापि ‘यत्सत्तत्सर्वं क्षणिकं यथा घटः संश्च शब्दः’ इति पक्षधर्मोपसंहारस्य वचनं हेतोरपक्षध-र्मत्वेनासिद्धत्वव्यवच्छेदार्थम्; तर्हि साध्याधारसन्देहापनोदार्थं गम्यमानस्यापि पक्षस्य निगमनस्य च पक्षहेतुदाहरणोपनयाना-मेकार्थत्वप्रदर्शनार्थं वचनं किन्न स्यात्? न हि पक्षादीनामेकार्थ-त्वोपदर्शनमन्तरेण सङ्गतत्वं घटते; भिन्नविषयपक्षादिवत् ।

१५ ननु प्रतिज्ञातः साध्यसिद्धौ हेत्वादिवचनमनर्थकमेव स्यात्, अन्यथा नास्याः साधनाङ्गतेति चेत्; तर्हि भवतोपि हेतुतः साध्य-सिद्धौ दृष्टान्तोनर्थकः स्यात्, अन्यथा नास्य साधनाङ्गतेति समा- २० नम् । ननु साध्यसाधनयोर्व्याप्तिप्रदर्शनार्थत्वाद् दृष्टान्तो नानर्थकः तत्र तदप्रदर्शने हेतोरगमकत्वात्; इत्यप्यसङ्गतम्; सर्वानित्यत्व- २० साधने सत्त्वादेर्दृष्टान्ताऽसम्भवतोऽगमकत्वानुपङ्गात् । विपक्षव्या-वृत्त्या सत्त्वादेर्गमकत्वे वा सर्वत्रापि हेतौ तथैव गमकत्वप्रसङ्गाद् दृष्टान्तोनर्थक एव स्यात् । विपक्षव्यावृत्त्या च हेतुं समर्थयन् कथं प्रतिज्ञां प्रतिक्षिपेत्? तस्याश्चानभिधाने क्व हेतुः साध्यं वा वचते? गम्यमाने प्रतिज्ञाविषये एवेति चेत्; तर्हि गम्यमानस्यैव २५ हेतोरपि समर्थनं स्यान्न तूक्तस्य । अथ गम्यमानस्यापि हेतोर्म-न्दमतिप्रतिपत्त्यर्थं वचनम्; तथा प्रतिज्ञावचने कोऽपरितोषः?

यच्चेदम्-‘असाधनाङ्गम्’ इत्यस्य व्याख्यान्तरम्-“साधर्म्येण हेतोर्वचने वैधर्म्यवचनं वैधर्म्येण वा प्रयोगे साधर्म्यवचनं गम्य-मानत्वात् पुनरुक्तम् । अतो न साधनाङ्गम् ।” [वादन्यायपृ० ३० ६५] इत्यप्यसाम्प्रतम्; यतः सम्यक्साधनसामर्थ्येन स्वपक्षं साधयतो वादिनो निग्रहः स्यात्, अप्रसाधयतो वा? प्रथमपक्षे कथं

१ व्याख्यानम् । २ यौगल । ३ सौगतमतमालम्ब्याचार्येणोच्यते । ४ प्रतिज्ञा-निगमनप्रकारेण । ५ व्यतिरेकेण । ६ सौगतस्य । ७ हेतुतः साध्यसिद्धिर्न भवतीति चेत् । ८ साध्यस्याऽङ्गापको भवति हेतुरिति भावः । ९ विपक्षोत्र निलः । १० सौगतः । ११ प्रतिपादनम् । १२ हेतोर्वचने । १३ प्रतिपादनम् ।

साध्यसिद्धयऽप्रतिबन्धिवचनाधिक्योपलम्भमात्रेणास्य निग्रहो विरोधात् ? नन्वेवं नाटकादिघोषणातोप्यस्य निग्रहो न स्यात् ; सत्यमेवैतत् ; स्वसाध्यं प्रसाध्यं नृत्यतोपि दोषाभावाल्लोकवत् । अन्यथा ताम्बूलभक्षणभ्रूक्षेपखात्कृताकम्पद्वस्तास्फालनादिभ्योपि सत्यसाधनवादिनो निग्रहः स्यात् । अथ स्वपक्षमप्रसाधयतोऽस्य ५ निग्रहः ; नन्वत्रापि किं प्रतिवादिना स्वपक्षे साधिते वादिनो वचनाधिक्योपलम्भाच्चिग्रहो लक्ष्येत, असाधिते वा ? प्रथमविकल्पे स्वपक्षसिद्धैवास्या निग्रहाद्वचनाधिक्योद्भावनमनर्थकम्, तस्मिन् सत्यपि स्वपक्षसिद्धिमन्तरेण जयायोगात् । द्वितीयपक्षे तु युगपद्वादिप्रतिवादिनोः पराजयप्रसङ्गो जयप्रसङ्गो वा स्यात्स्व-१० पक्षसिद्धेरभावाविशेषात् ।

ननु न स्वपक्षसिद्धयसिद्धिनिबन्धनौ जयपराजयौ तयोर्ज्ञानाज्ञाननियन्धनत्वात् । साधनवादिना हि साधु साधनं ज्ञात्वा वक्तव्यं दूषणवादिना च तद्दूषणम् । तत्र साधर्म्यवचनाद्वैधर्म्यवचनाद्वाऽर्थस्य प्रतिपत्तौ तद्बुभयवचने वादिनः प्रतिवादिना सभायामसा-१५ धनाङ्गवचनस्योद्भावेनात् साधुसाधनाभिधानाज्ञानसिद्धेः पराजयः, प्रतिवादिनस्तु तद्दूषणज्ञाननिर्णयाज्जयः स्यात् ; इत्यप्यविचारितरमणीयम् ; विकल्पानुपपत्तेः । स हि प्रतिवादी निर्दोषसाधनवादिनो वचनाधिक्यमुद्भावयेत्, साधनाभासवादिनो वा ? तत्राद्यविकल्पे वादिनः कथं साधुसाधनाभिधानाऽज्ञानम्, २० तद्वचनेयत्तौज्ञानस्यैवासम्भवात् ? द्वितीयविकल्पे तु न प्रतिवादिनो दूषणज्ञानमवतिष्ठते साधनाभासस्यानुद्भावेनात् । तद्वचनाधिक्यदोषस्य ज्ञानादूषणज्ञोसाविति चेत् ; साधनाभासाज्ञानाददूषणज्ञोपीति नैकार्न्ततो वादिनं जयेत्, तद्दोषोद्भावनलक्षणस्य पराजयस्यापि निवारयितुमशक्ये । अथ वचनाधिक्यदोषोद्भाव-२५ नादेव प्रतिवादिनो जयसिद्धौ साधनाभासोद्भावनमनर्थकम् ; नन्वेवं साधनाभासानुद्भावेनात्तस्य पराजयसिद्धौ वचनाधिक्योद्भावनं कथं जयाय प्रकल्प्येत ? अथ वचनाधिक्यं साधनाभासं चोद्भावयतः प्रतिवादिनो जयः ; कथमेवं साधर्म्यवचने वैधर्म्यवचनं तद्वचने वा साधर्म्यवचनं जयाय प्रभवेत् ? ३०

१ सत्यसाध्यसिद्धिश्चेन्निग्रहः कथं निग्रहश्चेत्ता कथमिति विरोधः । २ साध्यसिद्धप्रतिबन्धिवचनाधिक्यमात्रतोपि न निग्रह इति प्रकारेण । ३ साधनदूषणं ज्ञात्वा वक्तव्यम् । ४ साध्यलक्षणस्य । ५ पदान्तपरिमाणेन साधुसाधनं वाच्यमिति ज्ञानस्य । ६ सर्वथा । ७ तत्रश्च जयावैधोमयवचनम् ।

कथं चैवं वादिप्रतिवादिनोः पक्षप्रतिपक्षपरिग्रहवैयर्थ्यं न स्यात्? कचिदेकत्रापि पक्षे साधनसामर्थ्यज्ञानज्ञानयोः सम्भवात् । न खलु शब्दादौ नित्यत्वस्यानित्यत्वस्य वा परीक्षायाम् एकस्य साधनसामर्थ्यं ज्ञानमन्यस्य चाज्ञानं जयस्य पराजयस्य वा ५ निबन्धनं न सम्भवति । युगपत्साधनसामर्थ्यस्य ज्ञानेन वादिप्रतिवादिनोः कस्य जयः पराजयो वा स्यात्तद्विशेषात्? न कस्यचिदिति चेत्; तर्हि साधनवादिनो वचनाधिक्यकारिणः साधनसामर्थ्याऽज्ञानसिद्धेः प्रतिवादिनश्च वचनाधिक्यदोषोद्भावनात्तदोपमात्रे ज्ञानसिद्धेर्न कस्यचिज्जयः पराजयो वा १० स्यात् । न हि यो यदोषं वेत्ति स तद्गुणमपि, कुतश्चिन्मारणशक्तिवैदनेपि विषद्रव्यस्य कुष्टापनयनशक्तौ संवेदानुदयात् । तन्न तत्सामर्थ्यज्ञानाज्ञाननिबन्धनौ जयपराजयौ शक्यव्यवस्थौ यथोक्तदोषानुपपन्नात् । स्वपक्षसिद्धिसिद्धिनिबन्धनौ तु तौ निरवद्यौ पक्षप्रतिपक्षपरिग्रहवैयर्थ्याभावात् । कस्यचित्कृतश्चित्स्वपक्षसिद्धौ १५ सुनिश्चितायां परस्य तत्सिद्ध्यभावतः सकृज्जयपराजयाप्रसङ्गात् ।

यच्चेदम्—‘अदोषोद्भावनम्’ इत्यस्य व्याख्यानम्—‘प्रसज्यप्रतिषेधे दोषोद्भावनाऽभावमौप्रमदोषोद्भावनम्, पर्युदासे तु दोषाभासानामन्यदोषाणां चोद्भावनं प्रतिवादिनो निग्रहस्थानम्” [इति; तद्भादिना दोषवति साधने प्रयुक्ते २० सत्यनुमत्तमेव, यदि वादी स्वपक्षं साधयेत्, नान्यथा । वचनाधिक्यं तु दोषः प्रागेव प्रतिविहितः । यथैव हि पञ्चावयवप्रयोगे वचनाधिक्यं निग्रहस्थानम्, तथा त्र्यवयवप्रयोगे न्यूनतापि र्थाद्विशेषाभावात् । प्रतिज्ञादीनि हि पञ्चाप्यनुमानाङ्गम्—“प्रतिज्ञाहेतुदाहरणोपनयनिगमनान्यवयवाः” [न्यायसू० १।१।३२] इत्य- २५ भिधानात् । तेषां मध्येऽन्यतमस्याप्यनभिधाने न्यूनताख्यो दोषोऽनुपपद्यत एव । “हीनमन्यतमेनापि न्यूनम्” [न्यायसू० ५।२।१२] इति वचनात् । ततो जयेतरव्यवस्थायाः ‘प्रमाणतदाभासौ’ इत्यादितो नान्यनिबन्धनं व्यवतिष्ठते, इत्येतच्छलादौ तन्निबन्धनत्वेनाग्रहग्रहं परित्यज्य विचारकभावमाद्याऽमलमनसि प्रामाणिकाः ३० स्वयमेव सम्प्रधारयन्तु, कृतमतिप्रसङ्गेन ।

१ वादिनः । २ प्रतिवादिनः । ३ अत्यन्ताभावभावम् । ४ प्रतिवादिना । ५ वचनाधिक्यदोषनिराकरणसमये । ६ यौगल्य । ७ सौगतस्य । ८ निग्रहस्थानम् ।

साभासं गदितं प्रमाणमखिलं संख्याफलस्वार्थतः,
 सुव्यक्तैः सकलार्थसार्थविषयैः स्वल्पैः प्रसक्तैः पदैः ।
 येनासौ निखिलप्रबोधजननो जीयाहुणाम्मोनिधिः,
 वाक्कीर्त्योः परमालयोऽत्र सततं माणिक्यनन्दिप्रभुः ॥ १ ॥

इति श्रीप्रभाचन्द्रनिरचिते प्रमेयकमलमार्तण्डे परीक्षामुखालङ्कारे
 पञ्चमः परिच्छेदः समाप्तः ॥

(परीक्षामुखसूत्रपाठपेक्षया तु 'सम्भवनदन्यद्विचारणीयम्'
 इति सूत्रान्तं षष्ठपरिच्छेदसमाप्तिः)

श्रीः ।

अथ षष्ठः परिच्छेदः ॥

प्राचां वाचाममृततटिनीपूरकपूरकल्पान्,
बन्धान(न्म)न्दा नवकुक्कवयो नूतनीकुर्वते ये ।
तेऽयस्काराः सुभटमुकुटोत्पाटिपाण्डित्यभाजम्,
मित्वा खड्गं विदधति नवं पश्य कुण्डं कुठारम् ॥

- ५ ननूकं प्रमाणेतरयोर्लक्षणमक्षणं नयेतरयोस्तु लक्षणं नोक्तम्,
तच्चावश्यं वक्तव्यम्, तदवचने विनेयानां नाऽविकला व्युत्पत्तिः
स्यात् इत्याशङ्कमानं प्रत्याह—

सम्भवदन्यद्विचारणीयम् ॥ ६।७४ ॥

इति ।

- १० सम्भवद्विद्यमानं कथितात्प्रमाणतदाभासलक्षणादन्यत् नय-
नयाभासयोर्लक्षणं विचारणीयं नयनिष्ठैर्दिग्मात्रप्रदर्शनपरत्वादस्य
प्रयासस्येति । तल्लक्षणं च सामान्यतो विशेषतश्च सम्भवतीति
तथैव तद्व्युत्पाद्यते । तत्राऽनिराकृतप्रतिपक्षो वस्त्वंशग्राही ज्ञातु-
रभिप्रायो नयः । निराकृतप्रतिपक्षस्तु नयाभासः । इत्यनयोः
१५ सामान्यलक्षणम् । स च द्वेषा द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिकविकल्पात् ।
द्रव्यमेवार्थो विषयो यस्यास्ति स द्रव्यार्थिकः । पर्याय एवार्थो
यस्यास्त्यसौ पर्यायार्थिकः । इति नयविशेषलक्षणम् । तत्राद्यो
नैगमसङ्गहव्यवहारविकल्पात् त्रिविधः । द्वितीयस्तु क्रजुसूत्र-
शब्दसमभिरूढैवंभूतविकल्पाच्चतुर्विधः ।
२० तत्रानिष्पन्नार्थसङ्कल्पमात्रग्राही नैगमः । निगमो हि सङ्कल्पः,
तत्र भवस्तत्प्रयोजनो वा नैगमः । यथा कश्चित्पुरुषो गृहीतकु-
ठारो गच्छन् 'किमर्थं भवान्गच्छति' इति पृष्ठः सन्नाह—'प्रस्थमा-
नेतुम्' इति । यैधोदकाद्याहरणे वा व्याप्रियमाणः 'किं करोति
भवान्' इति पृष्ठः प्राह—'शोदनं पचामि' इति । न चासौ प्रस्थप-

१ कल्पः सङ्कल्पः । २ 'बन्धान्' इति विशेष्यपदमध्याहार्यम् । ३ परीक्षामुल्लस ।
४ प्रकरणस्य । ५ विकलादेशविशेषमाश्रित्य प्रवृत्तो ज्ञातुरभिप्रायो (ज्ञानस्वरूपः)
नयः । ६ सामान्यलक्षणलक्षितो नयः । ७ द्रवति द्रोष्यस्यऽनुदुवचेति द्रव्यं जीवादि ।
८ जीवस्य यथा नरनारकादिः सुखदुःखादिर्वा । ९ प्रस्यो मानविशेषः । १० यथ-
काष्ठम् । दकमुदकम् ।

र्याय ओदनपर्यायो वा निष्पन्नस्तन्निष्पत्तये सङ्कल्पमात्रे प्रस्थादि-
व्यवहारात् । यद्वा नैकङ्गमो नैगमो धर्मधर्मिणोर्गुणप्रधानभावेन
विषयीकरणात् । 'जीवगुणः सुखम्' इत्यत्र हि जीवस्याप्राधान्यं
विशेषणत्वात्, सुखस्य तु प्राधान्यं विशेष(व्य)त्वात् । 'सुखी जीवः'
इत्यादौ तु जीवस्य प्राधान्यं न सुखादेर्विपर्ययात् । न चास्यैवं १
प्रमाणात्मकत्वानुषङ्गः, धर्मधर्मिणोः प्राधान्येनात्र ह्येतेरसम्भ-
वात् । तयोरन्यतैर एव हि नैगमनयेन प्रधानतयानुभूयते । प्राधा-
न्येन द्रव्यपर्यायद्वयात्मकं चार्थमनुभवद्विज्ञानं प्रमाणं प्रतिपत्तव्यं
नान्यदिति ।

सर्वथानयोरर्थान्तरत्वाभिर्सन्धिस्तु नैगमाभासः । धर्मधर्मिणोः १०
सर्वथार्थान्तरत्वे धर्मिणि धर्माणां वृत्तिविरोधस्य प्रतिपादि-
तत्वादिति ।

स्वर्जात्यविरोधेनैकंध्यमुपनीयार्थानाक्रान्तमेदान् समस्तग्रहणा-
त्संग्रहः । स च परोऽपरश्च । तत्र परः सकलभार्यानां सदात्मनै-
कत्वमभिप्रैति । 'सर्वमेकं सद्विशेषात्' इत्युक्ते हि 'सत्' इति- १५
वाङ्मिवज्ञानान्तुवृत्तिलिङ्गांस्तुमितसत्तात्मकत्वेनैकत्वमशेषार्थानां सं-
गृह्यते । निराकृताऽशेषविशेषस्तु सत्ताऽद्वैताभिप्रायसंज्ञाभासो
दृष्टेर्द्वैवाधनात् । तथाऽपरः संग्रहो द्रव्यत्वेनाशेषद्रव्याणामेकत्व-
मभिप्रैति । 'द्रव्यम्' इत्युक्ते ह्यतीतानागतवर्तमानकालवर्तिविष-
क्षिताविषक्षितपर्यायद्रव्यशीलानां जीवाजीवतद्भेदप्रमेदानामेक- २०
त्वेन संग्रहः । तथा 'घटः' इत्युक्ते निखिलघटव्यकीनां घटत्वेनै-
कत्वसंग्रहः ।

सामान्यविशेषाणां सर्वथार्थान्तरत्वैर्वाभिप्रायोऽनैर्र्थान्तरत्वाभि-
प्रायो वाऽपरसङ्गहाभासः, प्रतीतिविरोधादिति ।

सङ्गहगृहीतार्थानां विधिपूर्वकमबहरणं विभजनं भेदेन प्ररूपणं २५
व्यवहारः । परसंग्रहेण हि सङ्गर्माधारतया सर्वमेकत्वेन 'सत्'
इति संगृहीतम् । व्यवहारस्तु तद्विभागमभिप्रैति । यत्सत्तद्भ्रव्यं

१ अन्योन्यगुणप्रधानभूतभेदभेदप्ररूपणो नैगमः । २ गौणसुखरूपेण । ३ धर्मो
धर्मो वा । ४ अभिप्रायः । ५ भिन्नत्वे । ६ स्वस्यार्थस्य जातिः सदात्त्विक ।
७ एकप्रकारम् । ८ अन्तर्लीनविशेषात् । ९ प्रति । १० वस्तुनाम् । ११ विषयी-
करोति । १२ द्रव्यम् । १३ इदं सदिदं सदिदि । १४ यवा यव लिङ्गं येन ।
१५ महावादः । १६ सङ्गहाभासः । १७ दृष्टेन प्रत्यक्षेणैतेनानुमानेन च । १८ परि-
णमनस्वभावात्तम् । १९ विशेषस्य सव्यपेक्षः सम्प्राप्तग्राही सङ्गहः । २० भेदरूपेण ।
२१ अनेदरूपेण । २२ गौणस्य मीमांसकस्य च ।

पर्यायो वा । तथैवापरः सद्ब्रह्मः सर्वद्रव्याणि 'द्रव्यम्' इति, सर्व-
पर्यायांश्च 'पर्यायः' इति संगृह्णाति । व्यवहारस्तु तद्विभागमभि-
प्रैति-यद्रव्यं तज्जीवादि र्पद्विधम्, यः पर्यायः स द्विविधः सह-
भावी क्रमभावी च । इत्यपरसद्ब्रह्मव्यवहारप्रपञ्चः प्राग्जुसुभ्रात्य-
५ परसद्ब्रह्मादुत्तरः प्रतिपत्तव्यः, सर्वस्य वस्तुनः कैथञ्चित्सामान्य-
विशेषात्मकत्वसम्भवात् । न चास्यैवं नैगमत्वानुषङ्गः; सद्ब्रह्मविषय-
प्रविभागपरत्वात्, नैगमस्य तु शुणप्रधानभूतोभयविषयत्वात् ।

यः पुनः कल्पनारोपितद्रव्यपर्यायप्रविभागमभिप्रैति स व्यवहा-
राभासः, प्रमाणवाधितत्वात् । न हि कल्पनारोपित एव द्रव्यादि-
२० प्रविभागः; स्वार्थक्रियाहेतुत्वाभावप्रसङ्गाद्गनाम्भोजवत् । व्यव-
हारस्य चाऽसत्यत्वे तदानुकूल्येन प्रमाणानां प्रमाणता न स्यात् ।
अन्यथा स्वभादिविभ्रमानुकूल्येनापि तेषां तत्प्रसङ्गः । उक्तं च—

“व्यवहारानुकूल्यास्तु प्रमाणानां प्रमाणता ।

नान्यथा वाध्यमानानां ज्ञानानां तत्प्रसङ्गतः ॥” [लघी० का०
१५७०] इति ।

ऋजु प्रौञ्जलं चर्तमानक्षणमात्रं सूर्खयतीत्युजुसूत्रः 'सुखक्षेणः
सम्प्रत्यस्ति' इत्यादि । द्रव्यस्य सतोप्यनर्पणात्, अतीतानागतक्षण-
योश्च विनष्टानुत्पन्नत्वेनासम्भवात् । न चैवं लोकव्यवहारविभो-
पप्रसङ्गः; नयस्याऽस्यैवं विषयमात्ररूपणात् । लोकव्यवहारस्तु
२० सकलनयसमूहसाध्य इति ।

यस्तु बहिरन्तर्वा द्रव्यं सर्वथा प्रैतिक्षिपत्यखिलार्थानां प्रतिक्षणं
क्षणिकत्वाभिमानात् स तदाभासः, प्रतीत्यतिक्रमात् । बाधविधुरा
हि प्रत्यभिज्ञानादिप्रतीतिर्बहिरन्तश्चैकं द्रव्यं पूर्वोत्तरविवर्तवर्ति
प्रसाधयतीत्युक्तं मूर्च्छितासामान्यसिद्धिप्रस्तावे । प्रतिक्षणं क्षणिकत्वं
२५ च तत्रैव प्रतिच्युतमिति ।

कालकारकलिङ्गसंख्यैसाधेनोपर्यहमेदाङ्गिभमर्थं शपतीति

१ जीवाऽजीवधर्माऽधर्मनभःकालभेदात् । २ यथा चैतन्यम् । ३ सुखादिवर्षा ।
४ द्रव्यपर्यायविभिन्नत्वप्रकारेण । ५ नैगमोऽपि संग्रहनयप्रविभागपरो भविष्यतीत्युक्ते
सत्याह । ६ व्यवहारानुकूल्याभावेन । ७ व्यक्तम् । ८ बोधयति । ९ शुद्धपर्याय-
ग्राही प्रतिपक्षसापेक्ष ऋजुसूत्रः । क्षणिकैकान्तनयस्तु तदाभासः । १० क्षणः पर्यायः ।
११ द्रव्यस्वातीतानागतक्षणयोश्च सत्त्वकः कुतो न स्यादित्युक्ते सत्याह । १२ विवक्षाऽ-
भावात् । १३ सुखक्षणः सम्प्रदीत्यादिप्रकारेण । १४ निराकरोति । १५ नैऋः ।
१६ संख्या=पकवचनादिः । १७ सापनो शुष्पदसरसभेदाभिधा । १८ उपग्रहः=
उपसर्गः ।

शब्दो नयः शब्दप्रधानत्वात् । ततोऽपास्तं वैयाकरणानां मतम् । ते हि “धातुसम्बन्धे प्रत्ययाः” [पाणिनिव्या० ३।४।१] इति सूत्रमारभ्य ‘विश्वदृश्याऽस्य पुत्रो भविता’ इत्यत्र कालमेदेप्येकं पदार्थ-माहृताः—‘यो विश्वं द्रक्ष्यति सोऽस्य पुत्रो भविता’ इति, भविष्यत्कालेनातीतकालस्याऽभेदाभिधानात् तथा व्यवहारोपलम्भात् । ५ तच्चानुपपन्नम्; कालमेदेप्यर्थस्याऽभेदेऽतिप्रसङ्गात्, रावणशहूचक्रवर्तिशब्दयोरप्यतीतानागतार्थगोचरयोरेकार्थतापत्तेः । अथानयोभिन्नविषयत्वान्नैकार्थता; ‘विश्वदृश्या भविता’ इत्यनयोरप्यसौ मा भूत्त एव । न खलु ‘विश्वं दृष्टवान्=विश्वदृश्या’ इति शब्दस्य योऽर्थोतीतकालः, स ‘भविता’ इति शब्दस्यानागतकालो १० युक्तः; पुत्रस्य भाविनोऽतीतत्वविरोधात् । अतीतकालस्याप्यनागतत्वाभ्यारोपादेकार्थत्वे तु न परमार्थतः कालमेदेप्यभिन्नार्थव्यवस्था स्यात् ।

तथा ‘करोति क्रियते’ इति कर्तृकर्मकारकमेदेप्यभिन्नमर्थं तं एवाद्विन्यन्ते । ‘यः करोति किञ्चित् स एव क्रियते केनचित्’ इति १५ प्रतीतेः । तदप्यसाम्प्रतम्; ‘देवदत्तः कटं करोति’ इत्यत्रापि कर्तृकर्मणोर्देवदत्तकटयोरभेदप्रसङ्गात् ।

तथा, ‘पुष्यस्तारका’ इत्यत्र लिङ्गमेदेपि नक्षत्रार्थमेकमेवाद्विन्यन्ते, लिङ्गमशिव्यं लोकाश्रयत्वात्तस्य; इत्यसङ्गतम्; ‘पटः कुटी’ इत्यत्राप्येकत्वानुषङ्गात् । २०

तथा, ‘आपोऽम्भः’ इत्यत्र संख्यामेदेप्येकमर्थं जलाख्यं मन्यन्ते, संख्यामेदस्याऽभेदकत्वाद्दुर्वादिषत् । तदप्ययुक्तम्; ‘पटस्तन्तवः’ इत्यत्राप्येकत्वानुषङ्गात् ।

तथा ‘एहि मन्ये रथेन यास्यसि न हि यास्यसि यातस्ते पिता’ इति साधनमेदेप्यर्थोऽभेदमाद्विन्यन्ते “प्रहृत्से मन्यवाचि युष्मन्म- २५ न्यतेऽस्यदेकवचनम्” [जैनेन्द्रव्या० १।२।१५३] इत्यभिधानात् । तदप्यपेशलम्; ‘अहं पचामि त्वं पचसि’ इत्यत्राप्येकार्थत्वप्रसङ्गात् ।

तथा, ‘सन्तिष्ठते प्रतिष्ठते’ इत्यत्रोपग्रहमेदेप्यर्थाभेदं प्रतिपद्यन्ते उपसर्गस्य धात्वर्थमात्रोद्घोतकत्वात् । तदप्यचारु; ‘सन्तिष्ठते प्रतिष्ठते’ इत्यत्रापि स्थितिगतिक्रिययोरभेदप्रसङ्गात् । ततः ३०

१ काणादिभेदाङ्गिभ्रमर्थं प्रतिपादयति शब्दो नयो मतः । २ शब्दभेदादर्थभेदमकुर्वताम् । ३ प्रसिद्धवन्तः । ४ अत एवातीतार्थको विश्वदृश्याशब्दो द्रक्ष्यतीति नारसील्लेखेन विगृह्यते । ५ वैयाकरणाः । ६ वैयाकरणाः । ७ आदिना रथनादिनहः । ८ जैनेन्द्रव्याकरणस्य सूत्रम् । मूल‘क’पुस्तके ‘प्रहसे’ इति पाठोऽस्ति । ९ वैयाकरणाः ।

कालादिभेदाङ्गिष्वप्यवार्थः शब्दस्य । तथाहि-विवादापन्नो विभिन्न-
कालादिशब्दो विभिन्नार्थप्रतिपादको विभिन्नकालादिशब्दत्वात्
तथाविधान्यशब्दवत् । नन्वेवं लोकव्यवहारविरोधः स्यादिति
चेत्; विरुध्यतामसौ तत्त्वं तु मीमांस्यते, न हि भेदप्रजमतुरे-
५ च्छानुवर्ति ।

नानार्थान्समेत्यामिमुख्येन रूढः समभिरूढः । शब्दनयो हि
पर्यायशब्दभेदान्नार्थभेदमभिप्रैति कालादिभेदत एवार्थभेदाभि-
प्रायात् । अयं तु पर्यायभेदेनाप्यर्थभेदमभिप्रैति । तथा हि-‘इन्द्रः
शक्रः पुरन्दरः’ इत्याद्याः शब्दा विभिन्नार्थगोचरा विभिन्नशब्द-
१० त्वाद्वाजिवारणशब्दवदिति ।

एवमित्थं विवक्षितक्रियापरिणामप्रकारेण भूतं परिणतमर्थं
योभिप्रैति स एवम्भूतो नयः । समभिरूढो हि शकनक्रियायां
सत्यामसत्यां च देवराजार्थस्य शक्यव्यपदेशमभिप्रैति, पशोर्गमन-
क्रियायां सत्यामसत्यां च गोव्यपदेशवत्, तथा रूढेः सद्भावात्,
१५ अयं तु शकनक्रियापरिणतिक्षणे एव शक्यमभिप्रैति न पूजनाभिवे-
चनक्षणे, अतिप्रसङ्गात् । न चैवंभूतनयामिप्रायेण कश्चिदक्रिया-
शब्दोस्ति, ‘गौरश्वः’ इति जातिशब्दाभिमतानामपि क्रियाशब्द-
त्वात्, ‘गच्छतीति गौरशुगाम्यश्वः’ इति । ‘शुक्लो नीलः’ इति
गुणशब्दा अपि क्रियाशब्दा एव, ‘शुचिभवनाच्छुद्धो नीलना-
२० शीलः’ इति । ‘देवदत्तो यज्ञदत्तः’ इति यदृच्छाशब्दा अपि क्रिया-
शब्दा एव, ‘देवा एनं देयासुः’ इति देवदत्तः, ‘यज्ञे एनं देयात्’
इति यज्ञदत्तः । तथा संयोगिसमवायिद्रव्यशब्दाः क्रियाशब्दाः
एव, दण्डोस्यास्तीति दण्डी, विषाणमस्यास्तीति विषाणीति ।
पञ्चतंयी तु शब्दानां प्रवृत्तिर्व्यवहारमात्राश्च निश्चयात् ।

२५ एवमेते शब्दसमभिरूढैवम्भूतनयाः सापेक्षाः सम्यग्, अन्यो-
न्यमनपेक्षास्तु मिथ्यैति प्रतिपत्तव्यम् ।

एतेषु च नयेषु ऋजुसूत्रान्ताश्चत्वारोर्थप्रधानाः शेषास्तु त्रयः
शब्दप्रधानाः प्रत्येतव्याः ।

१ विश्वदृशा भविता करोति क्रियते इत्यादिः । २ रावणशङ्खचक्रबलोदिशब्दवत् ।
३ लिङ्गवचनादिभेदेनार्थभेदप्रकारेण । ४ समाहित । ५ पर्यायभेदात्पदार्थनामाल-
प्ररूपकः समभिरूढः । ६ क्रियाक्रमेण भेदप्ररूपणमित्यन्भावोत्र । ७ यथा नमन-
क्रियां कुर्वतोषि पाचकव्यप्रसङ्गः स्यात् । ८ क्रियाप्रधानतया । ९ अस्तीति क्रियात्र ।
१० जातिक्रियाशुण्यवृच्छासम्बन्धवाचकप्रकारेण ।

कः पुनरत्र बहुविषयो नयः को बाल्पविषयः कश्चात्र कारण-
भूतः कार्यभूतो वेति चेत् ? 'पूर्वः पूर्वा बहुविषयः कारणभूतश्च
परः परोल्पविषयः कार्यभूतश्च' इति ब्रूमः । संग्रहाद्धि नैगमो
बहुविषयो भावाऽभावविषयत्वात्, यथैव हि सति सङ्कल्प-
स्तथाऽसंत्यपि, सङ्ग्रहस्तु ततोऽल्पविषयः सन्मात्रगोचरत्वात्, ५
तत्पूर्वकत्वाच्च तत्कार्यः । संग्रहाद्ध्यवहारोपि तत्पूर्वकः सद्भिरो-
धावबोधकत्वादेऽल्पविषय एव । व्यवहारात्कालत्रितयवृत्त्यर्थगो-
चरात् क्रजुसूत्रोपि तत्पूर्वको वर्तमानार्थगोचरतयाऽल्पविषय
एव । कारकादिभेदेनाऽभिन्नमर्थे प्रतिपद्यमानाद्जुसूत्रतः तत्पू-
र्वकः शब्दनयोऽल्पविषय एव तद्विपरीतार्थगोचरत्वात् । शब्द- १०
नयात्पर्यायभेदेनार्थाभेदं प्रतिपद्यमानात् तद्विपर्ययात् तत्पूर्वकः
समभिरूढोऽल्पविषय एव । समभिरूढतश्च क्रियाभेदेनाऽभिन्न-
मर्थे प्रतीयतः तद्विपर्ययात् तत्पूर्वक एवभूतोऽल्पविषय एवेति ।

नन्वेते नयाः किमेकस्मिन्विषयेऽविशेषेण प्रवर्त्तन्ते, किं वा
विशेषोस्तीति ? अत्रोच्यते—यत्रोत्तरोत्तरो नयोऽर्थांशे प्रवर्त्तते १५
तत्र पूर्वः पूर्वोपि नयो वर्त्तते एव, यथा सहस्रेऽष्टशती तस्यां वा
पञ्चशतीत्यादौ पूर्वसंख्योत्तरसंख्यायामविरोधतो वर्त्तते । यत्र
तु पूर्वः पूर्वो नयः प्रवर्त्तते तत्रोत्तरोत्तरो नयो न प्रवर्त्तते; पञ्च-
शत्यादावऽष्टशत्यादिवत् । एवं नयार्थे प्रमाणस्यापि सांशवस्तु-
वेदिनो वृत्तिरविरुद्धा, न तु प्रमाणार्थे नयानां वस्त्वंशमात्रवेदि- २०
नामिति ।

कथं पुनर्नयसप्तमङ्गलाः प्रवृत्तिरिति चेत् ? 'प्रतिपर्यायं वैस्तुन्ये-
कत्राविरोधेन विधिप्रतिषेधकल्पनायाः' इति ब्रूमः । तथाहि—सङ्क-
ल्पमात्रग्राहिणो नैगमस्याश्रयणाद्विधिकल्पना, प्रस्थादिकं कल्पना-
मात्रम्—'प्रस्थादि स्यादस्ति' इति । संग्रहाश्रयणात् प्रतिषेधक- २५
ल्पना; न प्रस्थादि सङ्कल्पमात्रम्—प्रस्थादिसन्मात्रस्य तथाप्रतीतेर-
सत्तः प्रतीतिविरोधादिति । व्यवहाराश्रयणाद्वा ब्रह्मस्य पर्यायस्य

१ विद्यमाने वस्तुनि । २ अतीतेऽनागते च । ३ पर्यायभेदेन भिन्नार्थगोचरत्वा-
दित्यर्थः । ४ प्राप्नुवतः प्रकृत्यतो वा । ५ उत्तरोत्तरनयविषये पूर्वपूर्वनयप्रवर्तनप्र-
कारेण उत्तरोत्तरसख्यायां पूर्वपूर्वसख्याप्रवर्तनप्रकारेण वा पञ्चशत्यादावष्टशत्याऽप्रव-
र्तनप्रकारेण वा । ६ अविरोधेनेत्यभिधानात्प्रत्यक्षादिविरुद्धविधिप्रतिषेधकल्पनायाः, परञ्च
वस्तुनीत्यभिधानादनेकवस्तुशाश्रयविधिप्रतिषेधकल्पनायाश्च सप्तमहीरुपात् प्रत्युक्तं ।
७ विधिप्रतिषेधो अस्तिवनास्तिवने । ८ संग्रहो नयः । ९ प्रत्यादित्वेन । १० गगन-
क्रमवत् ।

वा प्रस्थादिप्रतीतिः; तद्विपरीतस्याऽसतः सतो वा प्रत्येतुमशक्येः । क्रान्तिसूत्राश्रयणाद्वा पर्यायमानस्य प्रस्थादित्वेन प्रतीतिः, अन्यथा प्रतीत्यनुपपत्तेः । शब्दाश्रयणाद्वा कालादिभिन्नस्यार्थस्य प्रस्थादिवचम्, अन्यथातिप्रसङ्गात् । समभिरूढाश्रयणाद्वा पर्यायभेदेन ५ भिन्नस्यार्थस्य प्रस्थादित्वम्; अन्यथाऽतिप्रसङ्गात् । एवंभूताश्रयणाद्वा प्रस्थादिक्रियापरिणतस्यैवार्थस्य प्रस्थादित्वं नान्यस्य अतिप्रसङ्गादिति । तथा स्यादुभयं क्रमार्पितोभयनयार्पणात् । स्यादवक्तव्यं संहार्षितोभयनयाश्रयणात् । एवमवक्तव्योत्तराः शेषार्थयो भङ्गा यथायोगमुदाहार्याः ।

१० ननु चोदाहृता नयसप्तभङ्गी । प्रमाणसप्तभङ्गीतस्तु तस्याः किङ्कतो विशेष इति चेत् ? 'सकलविकलादेशकृतः' इति ब्रूमः । विकलादेशस्वभावा हि नयसप्तभङ्गी वस्त्वंशमात्रप्ररूपकत्वात् । सकलादेशस्वभावा तु प्रमाणसप्तभङ्गी यथावद्वस्तुरूपप्ररूपकत्वात् । तर्था हि-स्यादस्ति जीवादिवस्तु स्वद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया । स्यान्नास्ति परद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया । स्यादुभयं क्रमार्पितद्वयापेक्षया । स्यादवक्तव्यं संहार्षितद्वयापेक्षया । एवमवक्तव्योत्तराख्यो भङ्गाः प्रतिपत्तव्याः ।

कस्मात्पुनर्नयवाक्ये प्रमाणवाक्ये वा सप्तैव भङ्गाः सम्भवन्तीति चेत् ? प्रतिपाद्यप्रश्नानां तावतामेव सम्भवात् । प्रश्नवशात् २० देव हि सप्तभङ्गीनियमः । सप्तविध एव प्रश्नोपि कुत इति चेत् ? सप्तविधजिज्ञांसासम्भवात् । सापि सप्तधा कुत इति चेत् ? सप्तधा संशयोत्पत्तेः । सोपि सप्तधा कथमिति चेत् ? तद्विषयवस्तुर्धर्मस्य सप्तविधत्वात् । तथा हि-सत्त्वं तावद्वस्तुधर्मः; तदनभ्युपगमे वस्तुनो वस्तुत्वायोगात् खरशृङ्गवत् । तथा कथञ्चिद- २५ सत्त्वं तद्धर्म एव; स्वरूपादिभिरिव पररूपादिभिरप्यस्याऽसत्त्वा-

१ सङ्कल्पमात्रस्य प्रस्थादित्वेन ज्ञातुम् । २ प्रतिषेधकल्पना स्यात् । ३ सङ्कल्पमात्रेण । ४ प्रतिषेधकल्पनेति सम्बन्धः । ५ पटादेरपि प्रस्थादित्वं स्यात् । ६ प्रतिषेधकल्पना । ७ संकल्पमात्रेण । ८ सङ्कल्पमात्रेण । ९ प्रतिषेधकल्पना । १० सङ्कल्पमात्रस्य । ११ यथावता स्यादस्ति स्यान्नास्तीति भङ्गद्वयं सिद्धम् । १२ प्रस्थादिः स्यादस्ति नास्ति च । १३ सह=युगपत् । १४ अप्रतिपत्तः=विवक्षितः । १५ प्रस्थादिः स्यादस्त्यवक्तव्यः, स्यान्नास्त्यवक्तव्यः, स्यादस्तिनास्त्यवक्तव्यश्चेति । १६ कथनम् । १७ नयप्रमाणसप्तभङ्गा यथाक्रमं भेदज्ञानार्थमुल्लेखः कथ्यते स्यादस्ति स्यान्नास्तीत्यादिः । तथा च स्यादस्ति जीवादिवस्तु स्यान्नास्ति जीवादिवस्तु इत्यादि । १८ आदिना क्षेत्रकालभावग्रहः । १९ ज्ञातुमिच्छा जिज्ञासा । २० स्वरूपस्य । २१ परेणाङ्गीक्रियमाणे । २२ जीवादिपदार्थस्य । २३ अन्यथा ।

निष्ठौ प्रतिनियतस्वरूपाऽसंभवाद्भस्तुप्रतिनियमविरोधः स्यात् । एतेन क्रमार्पितोभयत्वादीनां वस्तुधर्मत्वं प्रतिपादितं प्रतिपत्त-
व्यम् । तदभावे क्रमेण सदसत्त्वविकल्पेशब्दव्यवहारविरोधात्,
सहाऽवक्तव्यत्वोपलक्षितोत्तरधर्मत्रयविकल्पस्य शब्दव्यवहारस्य
चासत्त्वप्रसङ्गात् । न चामी व्यवहारा निर्विषया एव; वस्तुप्र- ५
तिपत्तिप्रवृत्तिप्राप्तिनिश्चयात् तथाविधरूपादिव्यवहारवत् ।

ननु च प्रथमद्वितीयधर्मवत् प्रथमवृत्तीयादिधर्माणां क्रमेतरा-
र्पितानां धर्मान्तरत्वसिद्धेर्न सप्तविधधर्मनियमः सिद्ध्येत्; इत्यप्य-
सुन्दरम्; क्रमार्पितयोः प्रथमवृत्तीयधर्मयोः धर्मान्तरत्वेनाऽप्र-
तीतेः, सत्त्वद्वयस्यासम्भवाद्द्विवक्षितस्वरूपादिना सत्त्वस्यैकत्वात् । १०
तदर्थ्यस्वरूपादिना सत्त्वस्य द्वितीयस्य सम्भवे विशेषादेशात् तदप्र-
तिपक्षभूतासत्त्वस्याप्यपरस्य सम्भवाद्परधर्मसत्कर्कसिद्धिः(द्वेः)
सप्तमङ्गन्तरसिद्धितो न कश्चिदुपालम्भः । एतेन द्वितीयवृत्तीय-
धर्मयोः क्रमार्पितयोर्धर्मान्तरत्वमप्रतीतिकं व्याख्यातम् । कथमेवं
प्रथमचतुर्थयोर्द्वितीयचतुर्थयोस्तृतीयचतुर्थयोश्च सहितयोर्धर्मा- १५
न्तरत्वं स्यादिति चेत्? चतुर्थेऽवक्तव्यत्वधर्मे सत्त्वासत्त्वयोरप-
रामर्शात् । न खलु सहार्पितयोस्तयोरवक्तव्यशब्देनाभिधानम् ।
किं तर्हि? तथार्पितयोस्तयोः सर्वथा वक्तुमशक्तेरवक्तव्यत्वस्य
धर्मान्तरस्य तेन प्रतिपादनमिष्यते । न च तेन सहितस्य सत्त्व-
स्यासत्त्वस्योभयस्य चाऽप्रतीतिर्धर्मान्तरत्वासिद्धिर्वा; प्रथमे भङ्गे २०
सत्त्वस्य प्रधानभावेन प्रतीतेः, द्वितीये त्वसत्त्वस्य, तृतीये
क्रमार्पितयोः सत्त्वासत्त्वयोः, चतुर्थे त्ववक्तव्यत्वस्य, पञ्चमे

१ परेण । २ पृथुमुहोदगाभाकारः साक्षादिमत्त्वादिर्वा प्रतिनियतरूपः ।
३ सत्त्वासत्त्वयोर्वस्तुधर्मत्वसमर्धनपरेण ग्रन्थेन । ४ सहार्पितोभयत्वादीना च ।
५ अवक्तव्यं सदवक्तव्यमऽसदवक्तव्यमुभयाऽवक्तव्यं चेति । ६ ननु येन्यः शब्द-
व्यवहारोऽन्यथानुपपत्त्या क्रमार्पितोभयत्वाद्द्वयः पञ्च धर्मा अवस्थाप्यन्ते ते निर्विषया
पनातः कथं तेभ्यस्तिसिद्धिरित्यारेकायामाह । ७ तथाविधः प्रतिपत्तिप्रवृत्तिप्राप्ति-
निश्चयहेतुभूतः । ८ तस्यापि निर्विषयत्वे सकलप्रत्यक्षादिव्यवहारापह्नवान्न कस्यचिद्वि-
तत्त्वव्यवसा स्यात् । ९ आदिना द्वितीयवृत्तीयादिग्रहः । १० युगपत् । ११ मनुष्य-
स्वरूपे स्वद्रव्यक्षेत्रकालमावाः स्वरूपम्, आदिना पररूपसमग्रः, ते च वतः
परमीया द्रव्यादयः । १२ पकनीवस्य । १३ तस्मात् । १४ अन्यस्य देवादेः ।
१५ भवान्तरापेक्षया । १६ पर्यायकथनात् । १७ स. = द्वितीयसत्त्वः । १८ वचः ।
१९ प्रथमवृत्तीयधर्मयोर्धर्मान्तरत्वनिराकरणेन । २० इति । २१ प्रथमवृत्तीयादि-
प्रकारेण । २२ स्यादस्यवक्तव्यमिति । २३ स्यान्नास्यवक्तव्यमिति । २४ स्यादिति
नास्यवक्तव्यमिति । २५ अप्रतीतेः ।

सत्त्वसहितस्य, पष्ठे पुनरसत्त्वोपेतस्य, सप्तमे क्रमे क्रमवत्सदुभ-
ययुक्तस्य सकलजनैः सुप्रतीतत्वात् ।

ननु चावक्तव्यत्वस्य धर्मान्तरत्वे वस्तुनि वक्तव्यत्वस्याष्टमस्य
धर्मान्तरस्य भावात्कथं सप्तविध एव धर्मः सप्तभङ्गीविषयः
५ स्यात् ? इत्यप्यपेशलम् ; सत्त्वादिभिरभिधीयमानतया वक्तव्य-
त्वस्य प्रसिद्धेः, सामान्येन वक्तव्यत्वस्यापि विशेषेण वक्तव्यताया-
मवस्थानात् । भवतु वा वक्तव्यत्वावक्तव्यत्वयोर्धर्मयोः प्रसिद्धिः ;
तथाप्याभ्यां विधिप्रतिषेधकल्पनाविषयाभ्यां सत्त्वासत्त्वाभ्या-
मिव सप्तभङ्गान्तरस्य प्रवृत्तेर्न तद्विषयसप्तविधधर्मनियमव्या-
१० घातः, यतस्तद्विषयः संशयः सप्तधैव न स्यात् तद्धेतुर्जिज्ञासा वा
तन्निमित्तः प्रश्नो वा वस्तुन्येकत्र सप्तविधवाक्यनियमहेतुः ।
इत्युपपन्नेयम्-प्रश्नवशादेकवस्तुन्यविरोधेन विधिप्रतिषेधकल्पना
सप्तभङ्गी । 'अविरोधेन' इत्यभिधानात् प्रत्यक्षादिविरुद्धविधिप्र-
तिषेधकल्पनायाः सप्तभङ्गीरूपता प्रत्युक्ता, 'एकवस्तुनि' इत्यभि-
१५ धानाच्च अनेकवस्तुवाश्रयविधिप्रतिषेधकल्पनाया इति ।

अथवा प्रागुक्तश्चतुरङ्गो वादः पत्रावलम्बनमप्यपेक्षते, अतस्त-
ल्लक्षणमत्रैव इयमभिघातव्यम् यतो नास्याऽविज्ञातस्वरूपस्यावल-
म्बनं जयाय प्रभवतीति नृवाणं प्रति सम्भवदित्याह । सम्भव-
द्विद्यमानमन्यत् पत्रलक्षणं विचारणीयं तद्विचारचतुरैः । तथाहि-
२० स्वाभिप्रेतार्थसाधनानवद्यगूढपदसमूहात्मकं प्रसिद्धावयवलक्षणं
वाक्यं पत्रमित्यवगन्तव्यं तथाभूतस्यैवास्यं निर्दोषतोपपत्तेः । न
खलु स्वाभिप्रेतार्थासाधकं दुर्दुष्टं सुस्पष्टपदात्मकं वा वाक्यं निर्दोषं
पत्रं युक्तमतिप्रसङ्गात् । न च क्रियापदादिगूढं काव्यमप्येवं
पत्रं प्रसज्यते; प्रसिद्धावयवत्वविशिष्टस्यास्य पत्रत्वाभिधानात् ।
२५ न हि पदगूढादिकाव्यं प्रमाणप्रसिद्धप्रतिज्ञाद्यवयवविशेषणतया
किञ्चित्प्रसिद्धम्, तस्य तथा प्रसिद्धौ पत्रव्यपदेशसिद्धेरवाधनात् ।
तदुक्तम्—

“प्रसिद्धावयवं वाक्यं स्वेष्टस्यार्थस्य साधकम् ।

साधु गूढपदप्रार्थं पत्रमाहुरनाकुलम् ॥” [पत्रप० पृ० १]

१ तदुभयं सत्त्वासत्त्वम् । २ आदिना हास्यं सत्त्वासत्त्वे च संगृह्यते ।
३ वस्तुनः । ४ सदादिमहत्प्रयत्नेण संवदते इत्यादिप्रकारेण । ५ कल्पना भेदः ।
६ यथा स्यादस्ति स्यान्नास्तीत्यादि तथा स्याद्वक्तव्यं स्यादवक्तव्यं स्याद्वक्तव्यवक्तव्यमि-
त्यादिप्रकारेण । ७ वसः । ८ परीक्षाशुभे । ९ पत्रस्य । १० अपश्यद्भवदुक्तम् ।
११ काव्यादिरपि पत्रत्वप्रसङ्गात् । १२ अवापितम् ।

कथं प्रागुक्तविशेषणविशिष्टं वाक्यं पत्रं नाम, तस्य श्रोत्रसमधि-
गम्यपदसमुद्भवविशेषरूपत्वात्, पत्रस्य च तद्विपरीताकारत्वात् ?
न च यद्यतोऽन्यत्तत्तेन व्यपदेशं शक्यमतिप्रसङ्गादिति चेत्,
'उपचरितोपचारात्' इति ब्रूमः । 'श्रोत्रपथप्रस्थायिनो हि वर्णा-
त्मकपदसमूहविशेषस्वभाववाक्यस्य लिप्यामुपचारस्तत्रास्य जनै-
रारोप्यमाणत्वात्, लिप्युपचरितवाक्यस्यापि पत्रे, तत्र लिखितस्य
तत्रस्थत्वात्' इत्युपचरितोपचारात्पत्रव्यपदेशः सिद्धः । न च
यद्यतोऽन्यत्तत्तेनोपचारादुपचरितोपचाराद्वा व्यपदेशमशक्यम्,
शक्रादन्यत्र व्यवहर्तृजनाभिप्राये शक्रोपचारोपलम्भात्, तस्मा-
च्चान्यत्र काष्ठादाद्युपचरितोपचाराच्छक्यव्यपदेशसिद्धेः । अथवा १०
प्रकृतस्य वाक्यस्य मुख्य एव पत्रव्यपदेशः—'पदानि ज्ञायन्ते
गोप्यन्ते रक्ष्यन्ते परेभ्यः स्वयं विजिगीषुणा यस्मिन्वाक्ये
तत्पत्रम्' इति व्युत्पत्तेः । प्रकृतिप्रत्ययादिगोपनाद्धि पदानां
गोपनं विनिश्चितपदस्वरूपतदभिधेयतत्त्वेभ्योपि परेभ्यः सम्भव-
त्येव । तस्योक्तप्रकारस्य पत्रस्यावयवौ कंचिद्भावेव प्रयुज्येते १५
तावतैव साध्यसिद्धेः । तद्यथा—

“स्वान्तभासितभूत्याद्यज्यन्तात्मतदुभान्तैवाक् ।

परान्तघोतितोद्दीप्तमितीतस्वात्मकर्त्तवः ॥” [

इति । अन्त एव ह्यान्तः, स्वार्थिकोऽप्य वानप्रस्थादिवत् । प्रौढि-
पाठापेक्षया सोरान्तः स्वान्तः उच्, तेन भासिता घोतिता भूति- २०
रुद्धृतिरित्यर्थः । सा आद्या येषां ते स्वान्तभासितभूत्याद्याः ते
च ते ज्यन्ताश्च उद्धृतिव्ययभ्रौव्यधर्मा इत्यर्थः । ते एवात्मानः
तांस्तनोतीति स्वान्तभासितभूत्याद्यज्यन्तात्मतत् इति साध्यधर्मः ।
उभान्ता चाग्यस्य तदुभान्तवाक्=विश्वम्, इति धर्मि । तस्य
साध्यधर्मविशिष्टस्य निर्देशः । उत्पादादित्रिस्वभावव्यापि सर्व- २५
मित्यर्थः । परान्तो यस्यासौ परान्तः प्रः, स एव घोतितं घोतनमुप-
सर्ग इत्यर्थः । तैनोद्दीप्ता चासौ मितिश्च तथा ईतः स्वात्मा यस्य
तत्परान्तघोतितोद्दीप्तमितीतस्वात्मकं 'प्रमितिप्राप्तस्वरूपम्' इत्य-
र्थः । तस्य भावस्तत्त्वं 'प्रमेयत्वम्' इत्यर्थः, प्रमाणविषयस्य
प्रमेयत्वव्यवस्थितेः इति साधनधर्मनिर्देशः । दृष्टान्ताद्यभावेऽपि ३०
च हेतोर्गमकर्त्तव्यम् “पतङ्गयमेवानुमानाङ्गम्” [परीक्षामु० ३।३७]

१ पदस्य पठ्यपदेशप्रसङ्गात् । २ प्रुप्ति । ३ प्रतिवादिन्यः । ४ अनुमानवाक्ये ।

५ विषयम् । ६ प्रमेयत्वात् । ७ अपराऽपसमन्वादिः प्रादिः । ८ न्याप्तौति ।

९ परान्तघोतितेन । १० प्राप्तः । ११ स्वसाध्यप्रतिपादकत्वम् ।

प्र० क० मा० ५८

इत्यत्र समर्थितम् । अन्यथात्रुपपत्तिचलेनैव हि हेतोरगमकत्वम्, सा चात्रास्त्येव एकान्तस्य प्रमाणागोचरतया विषयपरिच्छेदे समर्थनात् । एवं प्रतिपाद्याशयवशात्प्रभृतयोप्यवयवाः पत्रवाक्ये द्रष्टव्याः । तथाहि—

- ५ “चित्राद्यदन्तराणीयमारेकान्तात्मकत्वतः ।
यदित्थं न तदित्थं न यथाऽकिञ्चिदिति त्रयः ॥ १ ॥
तथा चेदमिति प्रोक्तौ चत्वारोऽवयवा मताः ।
तस्मात्तथेति निर्देशे पञ्च पत्रस्य कस्यचित् ॥ २ ॥”
[पत्रप० पृ० १०]

- १० चित्रमेकानेकरूपम्, तद्वत्तीति चित्रात्-एकानेकरूपव्यापि
अनेकान्तात्मकमित्यर्थः । सर्वविश्वयदित्यादिसर्वनामपाठापेक्षया
यदन्तो विश्वशब्दो ‘यत् अन्ते यस्य’ इति व्युत्पत्तेः । तेन राणीयं
शब्दनीयं विश्वमित्यर्थः । तदनेकान्तात्मकं विश्वमिति पक्ष-
निर्देशः । आरेका संशयः, सा अन्ते यस्येत्यारेकान्तः प्रमेयः
१५ “प्रमाणप्रमेयसंशय” [न्यायसू० १।१।१] इत्यादिपाठापेक्षया, स
आत्मा यस्य तदारेकान्तात्मकम्, तस्य भावस्तत्त्वं तस्मात्, इति
साधनधर्मनिर्देशः । यदित्थं न भवति यच्चित्रान्न भवति तदित्थं
न भवति आरेकान्तात्मकं न भवति यथाऽकिञ्चित्—न किञ्चित्
अथवा अकिञ्चित् सर्वथैकान्तवाद्यभ्युपगतं तत्त्वम् । इति त्रयोऽ-
२० वयवाः पत्रे क्वचित्प्रयुज्यन्ते । तथा चेदमिति पक्षधर्मोपसंहार-
वचने चत्वारः । तस्मात्तथाऽनेकान्तव्यापीति निर्देशे पञ्चेति ।

यच्चेदं यौगैः स्वपक्षसिद्ध्यर्थं पत्रवाक्यमुपन्यस्तम्— सैन्यलह-
र्माणं नाऽनन्तरानर्थार्थप्रस्वापह्णंदाऽऽशैर्दृश्यतोऽनीङ्गोनेनलङ्घ्यं
कुलोङ्गवो वैषोप्यनैश्यतापेक्षतन्नाऽचरद्दलहृद्द परापरतत्त्ववित्त-
२५ दन्योऽनादिरवायनीयत्वत एवं यदीदृक्तत्सकलविद्वर्गवदेतच्चैव-
मेवं तदिति पत्रम् । अस्यायमर्थः—इह आत्मा सकलस्यैहिकपार-
लौकिकव्यवहारस्य प्रभुत्वात्, सह तेन वर्तते इति सेनैः । स
एव चातुर्वर्ण्योदिवत्स्वार्थिके ध्यणि कृते ‘सैन्यम्’ इति भवति ।
तस्य लह=विर्लोसः, तं भजते सेवते इति सैन्यलङ्गाक्=‘देहः’

- १ जैनैः । २ सर्वथा नित्यस्य क्षणिकस्य वा वस्तुनः । ३ अत सातत्यगमने ।
४ खरविपाणवत् । ५ आरेकान्तात्मकम् । ६ देहः । ७ प्रयोषकारीन्द्रियादिकारण-
कलापः । ८ आसमुद्रात् । ९ गिरिनिकरो भुवनसन्निवेशश्च । १० इनलङ्घ्यं=
सर्वाचन्द्रमसौ । ११ प्रविश्यादिकार्यद्रव्यसमूहः । १२ वक्ष्यते स्वयमेवापेक्षार्थः ।
१३ ज्ञानयोगादिपदार्थः । १४ लह विनासे ।

इति यावत् । अर्थः प्रयोजनं तस्मै अर्थार्थः, न अर्थार्थोऽनर्थार्थः । प्रकृतो लौकिकस्वापाद्विलक्षणः स्वापः प्रस्वापः=बुद्ध्यादिगुणवियुक्तस्यात्मनोऽवस्थाविशेषः मोक्ष इति यावत् । न हि तत्स्वाध्यं किञ्चित्प्रयोजनमस्ति; तस्य सकलपुरुषप्रयोजनानामन्ते व्यवस्थानात् । अनर्थार्थश्चासौ प्रस्वापश्च । नन्वेवं सौगतस्वापस्यापि ग्रहणं ५ स्यात्, सोपि ह्यनर्थार्थप्रस्वापो भवति सकलसन्ताननिवृत्तिलक्षणस्य मोक्षस्य सौगतैरभ्युपगमात् । तदुक्तम्—

“दीपो यथा निर्वृतिमभ्युपेतो नैवावर्ति गच्छति नान्तरिक्षम् ।
दिशं न काञ्चिद्विदिशं न काञ्चित्क्लेशक्षयात्केवलमेति शान्तिम् ॥
जीवस्तथा निर्वृतिमभ्युपेतो नैवावर्ति गच्छति नान्तरिक्षम् । १०
दिशं न काञ्चिद्विदिशं न काञ्चित्क्लेशक्षयात्केवलमेति शान्तिम् ॥”
[सौन्दरनन्द १६।२८, २९]

अत्राह—नानन्तरेति । अन्तो विनाशस्तं रैति पुरुषाय ददातीत्यन्तरः । नान्तरोऽनन्तरः पुरुषस्य विनाशदायको नेत्यर्थः । अनन्तरश्चास्वावनर्थार्थप्रस्वापश्चानन्तराऽनर्थार्थप्रस्वापः । नेति निपातः १५ प्रतिषेधवाची । नानन्तरानर्थार्थप्रस्वापो लौकिको निद्राकृतः स्वाप इत्यर्थः । तं कृन्तति छिनत्तीति नानन्तरानर्थार्थप्रस्वापकृत्—‘प्रवोचकारिन्द्रियादिकारणकलापः’ इति यावत् । शिपु इत्ययं घातुर्भावादिकः सेचनार्थः, “जिपु छिपु शिपु विपु उक्ष पृपु वृपु सेचने” [] इत्यभिधानात् । तस्माच्छेपणं भावे घञि कृते २० ‘शेषः’ इति भवति । तस्मात्स्वार्थिकेऽणि कृते ‘शैर्षः’ इति जायते । शैर्षं करोति “तत्करोति तदाचष्टे, तेनातिक्रामति धुरूपं च” [] इति णिचि कृते षेः “क्षे च कृते शैपीति भवति । “तदन्ता घवः” [जैनेन्द्रव्या० २।१।३९] इति ध्रुसंज्ञायां सत्यां “प्राग्घोस्ते” [जैनेन्द्रव्या० १।२।१४८] इत्याङ्गयोगः । आशेष-२५ यति समन्ताद्भवः सेकं करोतीति किपि तस्य च सर्वापहारेण लोपे डत्वे च कृते आशैडिति भवति । आशैह चासौ स्याच्चाशैहस्यत् लोकप्रसिद्धः समुद्रः । तस्मादाशैहस्यतः—आ समुद्रादिति यावत् । निपूर्वं इप् इत्ययं घातुर्गत्यर्थः परिशृङ्घते—“इप् गतिर्हिंसनयोश्च” [] इति वचनात् । नीपते ३० गच्छतीति नीह, न नीडऽनीह । तस्मात्स्वार्थिके के प्रत्ययेऽनीह इति भवति । अचलो गिरिनिकर इत्यर्थः । यदि वा अं विष्णुं भीषति गच्छति समाश्रयतीत्यनीह=भुवनसन्निवेशः । तदुक्तम्—

१ अजयोर्ध्रुस्वापः । २ परममोक्षस्य न तु जीवन्मोक्षस्य । ३ रा दाने । ४ शेष एव शैषः । ५ लोपे । ६ ‘पु’ इति घातुसंज्ञा । ७ (भावे) ।

“युगान्तकालप्रतिसंहृतात्मनो जगन्ति यस्यां सविकासमासेते ।
तनौ ममुस्तत्र न कैटभद्विषैस्तपोधैनाभ्यागमसम्भवा मुदः ॥”

[शिशुपालव० १।२३]

न विद्यते ना समवाधिकारणभूतो यस्यासावऽना, “ऋणमोः”
५ (न्मोः) [जैनेन्द्रव्या० ४।२।१५३] इति कप् सान्तो न भवति
“सान्तो विधिरनित्यः” [] इति परिभाषाश्रयणात् । इतो
भानुः । लपणं लट् कान्तिः—“लप् कान्तौ” []
इति वचनात् । लषा युक् योगो यस्यासौ लड्युक् चन्द्रः । इनश्च
लड्युक् चैनलड्युक् सूर्याचन्द्रमसौ । कुलमिव कुलं सजातीयार-
१० म्भकावयवसमूहः । तस्मादुद्भव आत्मलाभो यस्यासौ कुलोद्भवः
पृथिव्यादिकार्यद्रव्यसमूहः । ‘वा’ इत्यनुक्तसमुच्चये, तेनानित्यस्य
शुणस्य कर्मणश्च ग्रहणम् । एषः प्रतीयमानः । अतो नाश्रयासिद्धिः ।
अद्भ्यो हितोऽप्यः—समुद्रादिः । निशायाः कर्म नैश्यमन्धकारादि ।
ताप औष्ण्यम् । स्तनतीति स्तन् मेघः । एतेषां द्वन्द्वैकवद्भावः ।
१५ किम्भूतः स तैश्च । न विद्यते ना पुरुषो निमित्तकारणमस्येति ।
रटनं परिभाषणं तस्य लड् विलासः, तं जुषते सेवते इति—“जुषी
प्रीतिसेवनयोः” [] इत्यभिधानात् । अनुरह-
लहजुद् । अत्रापि कचऽभावे निमित्तमुक्तम् ।

अत्र साध्यधर्ममाह । परापरतत्त्ववित्तदन्य इति । परं पार्थिवा-
२० दिपरमाण्वादिकारणभूतं वस्तु, अपरं पृथिव्यादिकार्यद्रव्यम्,
तयोस्तत्त्वं स्वरूपम्, तस्मिन्विद् बुद्धिर्यस्यासौ परापरतत्त्ववित्त-
कार्यकारणविषयबुद्धिमान् पुरुष इत्यर्थः । तस्मात्परैरेकादन्यः
परापरतत्त्ववित्तदन्यो बुद्धिमत्कारण इत्यर्थः । यदा नपुंसकेन
सम्बन्धस्तदा परापरतत्त्ववित्तदन्यदिति व्याख्येयम् । कुत एत-
२५ दित्याह—अनादिरवायनीयत्वत इति । कार्यस्य हेतुरादिस्ततः
प्रागेव तस्य भावात् । तस्मादन्योऽनादिः कार्यसन्दोहः । तस्य
रवस्तत्प्रतिपादकं कार्यमिति वचनम् । तेनायनीयं प्रतिपाद्यं तस्य
भावस्तत्त्वम्, तस्मादनादिरवायनीयत्वतः—‘कार्यत्वात्’ इत्यर्थः ।
एवं यदनादिरवायनीयं तदीदृशं बुद्धिमत्कारणम् । तत्कला अव-
३० यवा भागा इत्यर्थः, सह कलाभिर्वर्तते इति सकला । वित् आत्म-

१ तिष्ठन्ति । २ नारायणस्य । ३ प्रकारणात्तपोधनोत्र नारदः । ४ सन्तोषाः ।
५ समासान्त इत्यर्थः । ६ हेतोः । ७ अन्यादीनाम् । ८ पुष्टिनिर्दिष्टः सर्वः
नपुंसकलिङ्गनिर्दिष्टं सर्वम् । ९ सामान्यनरः । १० धर्मिणि । ११ अनुदि-
मत्कारणात् ।

लाभो-“विदुः लाभे” [] इति वचनात् । यस्य सकला वित्तं धृणोति प्रच्छादयतीत्यौणादिके षे वर्ग इति भवति । सकलविश्वासौ वर्गश्चेति सकलविद्वर्गः-पट इत्यर्थः । तेन तुल्यं वर्तते इति सकलविद्वर्गवत् । एतच्च तन्वादि एवमनादिरवा-यनीयप्रकारं तच्चसाद्बुद्धिमत्कारणमिति । तदेतदसमीचीनम्; ५ अनुमानाभासत्वादस्य । तदाभासत्वं च तदवयवानां प्रतिज्ञाहेतू-दाहरणानां कालात्ययापदिष्टत्वाद्यनेकदोषदुष्टत्वेन तदाभासत्वा-त्सिद्धम् । एतच्चेत्स्वरनिराकरणप्रकरणाद्विशेषतोवगन्तव्यम् ।

ननु चोक्तलक्षणे पत्रे केनचित्कर्मण्युद्दिश्यावलम्बिते तेन च शृङ्खीते भिन्ने च यदा पत्रस्य दातैवं ज्ञ्यात् ‘नाथं मदीयपत्रस्यार्थः’ १० इति, तदा किं कर्तव्यमिति चेत् । तदासौ विकल्प्य प्रष्टव्यः-कोयं भवत्पत्रस्यार्थो नाम-किं यो भवन्मनसि वर्तते सोस्यार्थः, वाक्यरूपात्पत्रात्प्रतीयमानो वा स्यात्, भवन्मनसि वर्तमानः ततोपि च प्रतीयमानो वा प्रकारान्तरासम्भवात् ? तत्र प्रथमपक्षे पत्रावलम्बनमनर्थकम् । तद्वि(द्धि)प्रतिवादी समादाय विद्वा-१५ तार्थस्वरूपस्तत्र दूषणं वदतु विपरीतस्तु निर्जितो भवत्वित्यवर्ल-म्ब्यते । यश्च तस्मादर्थः प्रतीयते नासौ तदर्थ इति न तत्र केनचित्साधनं दूषणं वा चकव्यमनुपयोगात् । यस्तु तदर्थो भवच्चेतसि वर्तमानो नासौ कुतश्चित्प्रतीयते परचेतोवृत्तीनां दुरन्वयत्वौदिति ? तत्रापि न साधनं दूषणं वा सम्भवति । न २० ह्यप्रतीयमानं वस्तु साधनं दूषणं चाहृत्यऽतिप्रसङ्गात् । यदि पुनरन्यतः कुतश्चित् प्रतिपद्य प्रतिवादी तत्र साधनादिकं ज्ञ्यात्; तर्हि पत्रावलम्बनानर्थक्यम् । तत एव तर्हि तिपत्ति-श्चेच्चिन्मेतत्-‘तस्यासार्थो न भवति ततश्च प्रतीयते’ इति, गोशब्दादप्यश्वादिप्रतीतिप्रसङ्गात् । संज्ञिते सति भवतीति चेत्कः २५ संज्ञेतं कुर्यात् ? पत्रदातेति चेत्; किं पत्रदानकाले, वादकाले वा, तथा प्रतिवादिनि, अन्यत्र वा ? तद्दानकाले प्रतिवादिनीति चेत्; न; तथा व्यवहाराभावात् । न खलु कैश्चिद् ‘अयं मम चेत-

१ अनुमानस्य । २ वादिना । ३ प्रतिवादिनम् । ४ प्रतिवादिना । ५ ज्ञातार्थे । ६ अर्थ विचार्य पत्रे खण्डीकृते । ७ प्रतिवादिना । ८ कथम् ? । ९ तत् पत्रम् । १० व्यवहर्तृभिः । ११ प्रमाणात् । १२ अन्वयो=निश्चयः । १३ चेतसि वर्तमाने-येषु । १४ चेतोवर्तमानपत्रार्थम् । १५ चेतोवर्तमानपत्रार्थे । १६ तस्य चेतसि वर्तमानपत्रार्थस्य । १७ चेतसि वर्तमानः । १८ पत्रादप्रतीयमानोऽपि चेतसि वर्तमा-नपत्रार्थः संज्ञेतकाले तदर्थो भविष्यतीत्याशङ्काह । १९ पुरुषान्तरे । २० पत्रदानकाले प्रतिवादिनि संज्ञेतप्रकारेण । २१ वादी ।

- स्यथो वर्त्ततेऽस्येदं पत्रं वाचकमस्मात्त्वयायमथो वादकाले प्रति-
पत्तव्यः' इति सङ्केतं विदधाति । तथा तद्विधाने वा किं पत्रदान-
नेन ? केवलमेवं वक्तव्यम्—'अथो मम चेतसि वर्त्तते, अत्र त्वया
साधनं दूषणं वा वक्तव्यम्' इति । दृश्यन्ते साम्प्रतमप्यऽमत्सराः
५ सन्त एवं वदन्तः—'शब्दो नित्योऽनित्य इति वाऽस्माकं मनसि
प्रतिभाति, तत्र यदि भवतां दूषणाद्यभिधाने सामर्थ्यमस्ति यामः
सम्भ्यान्तिकम्' इति । कालान्तरेऽविस्मरणार्थं तद्दानं चेत्; तर्ह्य-
गूढं पत्रं दातव्यम्, इतरथा तद्दानेपि विस्मरणसम्भवे किं कर्त्त-
व्यम् ? विस्मर्तुर्निग्रहश्चेत्; न; पूर्वसङ्केतविधानवैयर्थ्यप्रसङ्गात् । न
१० तत्प्रसङ्गः प्रतिवादिनः पत्रार्थपरिज्ञानार्थत्वात्तस्येति चेत्, तर्हि
तत्परिज्ञानार्थं विस्मृतसङ्केतस्य पुनस्तद्विधानमेवास्तु, न तु
निग्रहः । यदि च भवच्चित्ते वर्त्तमानोप्यर्थः सङ्केतवलेन पत्रा-
देव प्रतीयते; तर्हि ततो यः प्रतीयते स तदर्थो न मनस्येव वर्त-
मानः । यदि पुनः सङ्केतसहायात्पत्रात्तस्य प्रतीतेर्न तदर्थत्वम्;
१५ तर्हि न कश्चित्कस्यचिदर्थः स्यात् सङ्केतमन्तरेण कुतश्चिच्छब्दा-
दर्थोऽप्रतीतेः । तन्न तद्दानकाले प्रतिवादिनि सङ्केतः । नापि
वादकाले; तथाव्यवहारविरहादेव । किं च वादकालेपि चेद्वादी
प्रतिवादिने स्वयं पत्रार्थं निवेदयति; तर्हि प्रथमं पत्रग्रहीतुरुपन्या-
सोऽनवसरः स्यात् । तन्नायमपि पक्षः श्रेयान् ।
- २० अथान्यत्र; तर्हि स एव तदर्थज्ञः, इति कथं प्रतिवादी साधना-
दिकं वदेत् तस्य तदर्थोऽपरिज्ञानात् ? प्रतिवादिनस्तदर्थपरिज्ञानं
वादिनोभीष्टमेव तदर्थत्वात्पत्रदानस्येति चेत्; तर्हि पत्रमनक्षरं
दातव्यमतः सुतरां तदपरिज्ञानसम्भवात् । अशिष्टचेष्टाप्रसङ्गोऽन्य-
त्रापि समानः । इति न किञ्चित्प्रागुक्तलक्षणपत्रदानेन प्रयोजनम् ।
- २५ ननु वादप्रवृत्तिः प्रयोजनमस्त्येव-तद्दाने हि वादः प्रवर्त्तते,
साधनाद्यभिधानं तु मानसार्थं वचनान्तरात्प्रतीयमान इत्यभि-
धाने तु पराक्रोशमात्रं लिखित्वा दातव्यं ततोपि वादप्रवृत्तेः
सम्भवात् किमितिगूढपत्रविरचनप्रयासेन ? तन्नाद्यपक्षे पत्राव-
लम्बनं फलवत् ।

अथ तच्छब्दाद्यः प्रतीयते स तदर्थः; तर्हि ज्ञातपतिता नो
३० रत्नवृष्टिः प्रकृतिप्रत्ययादिप्रपञ्चार्थप्रविभागेन प्रतीयमानस्य पत्रा-
र्थत्वव्यवस्थितेः । अथ नायं तदर्थः; कथमन्यस्तदर्थः स्यात् ?

१ प्रतिवादिना । २ तर्हिहि शेषः । ३ सङ्केतितार्थस्य । ४ कर्त्तव्य इति शेषः ।
५ पुरुषान्तरे । ६ अन्यः । ७ स्वमनसि व्यवस्थितार्थे । ८ नसाकम् । ९ तिडोऽ-
सदीयः पक्ष इत्यर्थः ।

अथान्यार्थसम्भवेपि यस्तदवर्त्मनेष्वनेष्यते स एव तदर्थः । कुत
एतत् ? ततः प्रतीतिश्चेत् ; अन्योप्यत एव स्यात् । अथ ततः
प्रतीयमानत्वाविशेषेपि यस्तेनेष्यते स एव तदर्थो नान्यः, ननु
शब्दः प्रमाणम्, अप्रमाणं वा ? प्रमाणं चेत् ; तर्हि तेन यावानर्थः
प्रदर्श्यते स सर्वोपि तदर्थ एव । न खलु चक्षुषानेकस्मिन्नर्थे ५
घटादिके प्रदर्श्यमाने 'तद्धता य इष्यते स एव तदर्थो नान्यः'
इति युक्तम् । अथाप्रमाणम् ; तर्हि तेनेष्यमाणोपि नार्थः । न हि
द्विचन्द्रादिकस्तद्दर्शनेष्यमाणोर्थो भवितुमर्हति, अन्यथा परेणे-
ष्यमाणोप्यर्थो किं न स्यात् । तन्नायमपि पक्षो युक्तः ।

ततो यः प्रतीयते तद्वातुश्चेतसि च वर्तते स तदर्थः, इत्यत्रापि- १०
केनेदमवगम्यताम् वादिना, प्रतिवादिना, प्राश्निकैर्वा ? तत्राद्यवि-
कल्पे प्रतिवादिना वादिमनोर्यायुक्त्व्येन पत्रे व्याख्याते वादिना
तथावधारितेपि स वैर्यात्याद्यदैवं वदति 'नायमस्यार्थो मम चेत-
स्यन्यस्य वर्त्तनात्, विपरीतप्रतिपत्तेर्निगृहीतोसि' इति तदा किं
कर्तव्यं प्राश्निकैः ? तथाभ्युपगमश्चेत् ; महामध्यस्थास्ते यत्सदर्थ- १५
प्रतिपादकस्यापि प्रतिवादिनो निग्रहं व्यवस्थापयन्ति वाद्यभ्युपग-
ममात्रेण । न तावन्मात्रेणास्य निग्रहोऽपि तु यदा वादी स्वमनोग-
तमर्थान्तरं निवेदयतीति चेत् ; ननु 'तेन निवेद्यमानमर्थान्तरं
पत्रस्याभिधेयम्' इति कुतोऽवगम्यताम् ? तदप्रतिकूल्येन निवे-
दनाच्चेत् ; तत एव प्रतिवादिप्रतिपाद्यमानोप्यर्थस्तदभिधेयोस्तु २०
विशेषाभावात् । वादिचेतस्यऽस्फुरणाच्चेति चेत् ; इदमपि कुतो-
ऽवगम्यताम् ? तत्रार्थदर्शनाच्चेत् ; किं पुनस्तच्चेतः प्राश्निकानां
प्रत्यक्षं येनैवं स्यात् ? तथा चेत् ; अतीन्द्रियार्थदर्शिभिस्तर्हि प्राश्नि-
कैर्भवितव्यं नेतरपण्डितैः । तथा च प्रत्यक्षत एव वादिप्रतिवा-
दिनोः सारेतरविभागं विज्ञायोपन्यासमन्तरेणैव जयेतरव्यवस्थां २५
रचयेयुः । नो चेत्कथं तत्र कस्यचित्स्फुरणमस्फुरणं वा ते
प्रतियन्तु ? न ह्यप्रतिपन्नभूतलस्य 'अत्र भूतले घटोस्ति नास्ति'
इति वा प्रतीतिरस्ति । अथ स्वयमेव यदासौ वदति- 'ममायमर्थो
मनसि वर्तते नायम्' इति तदा ते तथा प्रतिपद्यन्ते ; न ; तदापि
संदेहात्- 'किं प्रतिवादिना योर्थो निश्चितः स एवास्य मनसि ३०
वर्तते शब्देन तु वदति नायमर्थो मम मनसीति किन्त्वन्य एव-यो
मया प्रतिपाद्यते, उतायमेव, इति न निश्चयहेतुः । इश्यन्ते ह्यने-

१ वादिना । २ पत्रं गृहीत्वा । ३ पत्रात् । ४ भाष्यात् । ५ पत्रस्य ।
६ स्वीकर्तव्यः । ७ वादी । ८ प्रतिवादिनियन्तमानार्थस्य वादिचेतसि स्फुरण-
स्फुरणप्रकारेण । ९ इति चेदिति शेषः ।

कार्थं पत्रं विरचय्य, 'यदीदमस्यार्थतत्त्वं प्रतिवादी ज्ञास्यति तद्धोवं वदिष्यामः, नैवमर्थतत्त्वमस्य किन्त्विदमिति, अथेदं ज्ञास्यति तत्राप्यन्यथा गदिष्यामः' इति सम्प्रधारयन्तो वादिनः । अथ गुर्वादिरभ्यः पूर्वमसौ तन्निकेदयति, तैतस्तेभ्यः प्राश्निकानां तन्निके-
 ५ श्यः, नैः, अत्राप्यारेकाऽनिवृत्तेः, स्वशिष्यपक्षपातेनान्यथापि तेषां वचनसम्भवात् । यदि पुनर्वादी वादप्रवृत्तेः प्राक् प्राश्निकेभ्यः प्रतिपादयति—'मदीयपत्रस्यायमर्थः, अत्रार्थान्तरं भुवन् प्रतिवादी भवद्भिर्निवारणीयः' इति । अत्रापि प्रागप्रतिपन्नपत्रार्थानां महामध्यस्थानामुभयाभिमतानामकस्मादाहृतानां सभ्यानां
 १० मध्ये निवादकरणे का वार्त्ता? 'पत्राद्यः प्रतीयते स एव तत्र तदर्थः' इति चेत्; अन्यत्रापि स एवास्त्वविशेषात् । तत्राद्यः पक्षो युक्तः ।

नापि द्वितीयः । न खलु प्रतिवादी वादिमनो जानाति येन 'योस्य मनसि वर्त्तते स एव मयार्थो निश्चितः, इति जानीयात् ।
 १५ एतेन' तृतीयोपि पक्षश्चिन्तितः; सभ्यानामपि तन्निकेभ्योपायाभावात् । किञ्चेदं पत्रं तदातुः स्वपक्षसाधनवचनम् परपक्षदूषणवचनम्, उभयवचनम्, अनुभयवचनं वा? तत्राद्यविकल्पत्रये सभ्यानामग्रे त्रिरुच्चारणीयमेव तत्रापि नैपम्यात् । तथोच्चारितमपि यदा प्राश्निकैः प्रतिवादिना च न ज्ञायते वाद्यऽभिप्रेतार्था-
 २० लुकूल्येन तदा तदातुः किं भविष्यति? निग्रहः, "त्रिरभिहितस्यापि कष्टप्रयोगदुतोच्चारदिभिः परिपदा प्रतिवादिना चाज्ञातमज्ञातं नाम निग्रहस्थानम्" [न्यायसू० ५।२।९] इत्यभिधानात्, इति चेत्; तस्य तर्हि स्वधाय कृत्योत्थापनम् उक्तविधिना सर्वत्र तदज्ञानसम्भवात् । तैवन्मात्रप्रयोगाच्च स्वपरपक्षसाधनदूषणमावे
 २५ प्रतिवाद्युपन्यासमनपेक्ष्यैव सभ्याः वादिप्रतिवादिनोर्जयेतरव्यवस्थां कुर्युः । चतुर्थपक्षे तु तन्निग्रहः सुप्रसिद्ध एव; स्वपरपक्षयोः साधनदूषणाऽप्रतिपादनात् । इत्यलमतिप्रसङ्गेन ।

अथेदानीमात्मनः प्रारब्धनिर्वहणमौद्धत्यपरिहारं च सूचयन् परीक्षामुखेत्याद्याह—

१ निवेदनयोगे चतुर्थां । २ वादी । ३ पत्रार्थम् । ४ निवेदनात् । ५ पत्रार्थं । ६ इति चेदिति शेषः । ७ पक्षे । ८ न कापि । ९ अकस्मादाहृतेषु । १० पूर्व-प्राश्निकेभ्यः । ११ उभयपक्षनिराकरणेन । १२ स्वपरपक्षसाधनदूषणकारकपत्रम् । १३ राक्षसी । १४ परिपदि । १५ तस्य=पत्रार्थस्य । १६ स्वपरपक्षसाधन-दूषणकारकपत्रम् । १७ पत्रपरीक्षायाः ।

परीक्षामुखमादर्शं हेयोपादेयतत्त्वयोः
संविदे मादृशो बालः परीक्षादक्षवद्भव्यधाम् ॥१॥

परीक्षा तर्कः, परि समन्तादशेषविशेषत ईक्षणं यत्रार्थानामिति न्युत्पत्तेः । तस्या मुखं तद्भ्युत्पत्तौ प्रवेशार्थिनां प्रवेशद्वारं शास्त्रमिदं व्यधामहं विहितवानस्मि । पुनस्तद्विशेष-
णमादर्शमित्याद्याह । आदर्शधर्मसद्भावादिदमप्यादर्शः । यथैव
ह्यादर्शः शरीरालङ्कारार्थिनां तन्मुखमण्डनादिकं विरूपकं हेयत्वेन
सुरूपकं चोपादेयत्वेन सुस्पष्टमादर्शयति तथेदमपि शास्त्रं हेयो-
पादेयतत्त्वे तथात्वेन प्रस्पष्टमादर्शयतीत्यादर्श इत्यभिधीयते ।
तदीदृशं शास्त्रं किमर्थं विहितवान् भवानित्याह । संविदे । कस्ये-
त्याह मादृशः । कीदृशो भवान् यत्सदृशस्य संवित्त्वर्थं शास्त्रमि-
दमारभ्यते इत्याह-बालः । परतदुक्तं भवति-यो मत्सदृशोऽल्प-
प्रज्ञस्तस्य हेयोपादेयतत्त्वसंविदे शास्त्रमिदमारभ्यते इति ।
किंचत् ? परीक्षादक्षवत् । यथा परीक्षादक्षो महाप्रज्ञः स्वसदृश-
क्षिप्यव्युत्पादनार्थं विशिष्टं शास्त्रं विदधाति तथाहमपीदं विहि-
तवानिति । ननु चाल्पप्रज्ञस्य कथं परीक्षादक्षवत् प्रारब्धैवविध-
विशिष्टशास्त्रनिर्वहणं तस्मिन्वा कथमल्पप्रज्ञत्वं परस्परविरोधात् ?
इत्यप्यचोद्यम्, औद्धत्यपरिहारमात्रस्यैवैवमात्मनो ग्रन्थकृता
प्रदर्शनात् । विशिष्टप्रज्ञासद्भावस्तु विशिष्टशास्त्रलक्षणकार्योपल-
म्भादेवास्याऽवसीयते । न खलु विशिष्टं कार्यमविशिष्टादेव कार-
णात् प्रादुर्भावमर्हत्यतिप्रसङ्गात् । मादृशोऽवाल इत्यत्र नञ् वा
द्रष्टव्यः । तेनायमर्थः-यो मत्सदृशोऽवालोऽनल्पप्रज्ञस्तस्य हेयो-
पादेयतत्त्वसंविदे शास्त्रमिदमहं विहितवान् । यथा परीक्षादक्षः
परीक्षादक्षार्थं विशिष्टशास्त्रं विदधातीति । ननु चानल्पप्रज्ञस्य
तत्संविद्येर्भवत इव स्वतः सम्भवाच्चं प्रति शास्त्रविधानं व्यर्थमेव; २५
इत्यप्यसुन्दरम्, तद्ग्रहणेऽनल्पप्रज्ञासद्भावस्य विशिष्य विवक्षि-
तत्वात् । यथा ह्यहं तत्करणेऽनल्पप्रज्ञस्तज्ज्ञस्तथा तद्ग्रहणे योऽन-
ल्पप्रज्ञस्तं प्रतीदं शास्त्रं विहितम् । यस्तु शास्त्रान्तरद्वारेणा-
वगतहेयोपादेयस्वरूपो न तं प्रतीत्यर्थं इति ।

इति श्रीप्रभाचन्द्रविरचिते प्रमेयकमलमार्तण्डे परीक्षामुखालङ्कारे

३०

षष्ठः परिच्छेदः समाप्तः ॥ छ ॥

- गम्भीरं निखिलार्थगोचरमलं शिष्यप्रबोधप्रदम्,
 यद्भक्तं पद्मद्वितीयमखिलं माणिक्यनन्दिप्रभोः ।
 तद्दद्याख्यातमदो यथावगततः किञ्चिन्मया लेशतः,
 श्लेष्याच्छुद्धधियां मनोरतिगृहे चन्द्रार्कतारावधि ॥ १ ॥
- ५ मोहैध्वान्तविनाशनो निखिलतो विज्ञानशुद्धिप्रदः,
 मेयानन्तनभोविसर्पणपटुर्वस्तुकिभाभासुरः ।
 शिष्याब्जप्रतिबोधनः समुदितो योऽद्रेः परीक्षामुखात्,
 जीयात्सोत्र निबन्ध एष सुचिरं मार्त्तण्डतुल्योऽमलः ॥ २ ॥
- शुद्धः श्रीनन्दिमाणिक्यो नन्दिताशेषसज्जनः ।
 नन्दताहुरितैकान्तरजाजैनमतार्णवः ॥ ३ ॥
- १० श्रीपद्मनन्दिसेद्धान्तशिष्योऽनेकगुणालयः ।
 प्रभाचन्द्रश्चिरं जीयाद्भक्तनन्दिपदे रतः ॥ ४ ॥
- श्रीभोजदेवराज्ये श्रीमद्धारानिवासिना परापरपरमेष्ठिपदप्र-
 णामार्जितामलपुण्यनिराकृतनिखिलमलकलङ्केन श्रीमत्प्रभाचन्द्र-
 १५ पण्डितेन निखिलप्रमाणप्रमेयस्वरूपोद्घोतपरीक्षामुखपदमिदं
 विवृतमिति ॥

(इति श्रीप्रभाचन्द्रविरचितः प्रमेयकमलमार्त्तण्डः समाप्तः)

॥ शुभं भूयात् ॥

१ अयेदानीं माणिक्यनन्दिपदव्यावर्जनपूर्वकं तत्पदाशीर्वादपूर्वकं चात्मनः प्रारब्ध-
 निर्वाहणमौद्दल्यपरिहारं च सूचयन्नाह गम्भीरिलादि । २ अप्रमितम् । ३ मार्त्तण्ड
 इत्यस्योपपत्तिं दर्शयति । ४ इत्यम् । ५ माणिक्यनन्दी ।

प्रमेयकमलमार्तण्डस्य

॥ परिशिष्टानि ॥

प्रथमं परिशिष्टम् ।

परीक्षामुखसूत्रपाठः ।

॥ प्रथमः परिच्छेदः ॥

अमाणादर्थसिद्धिस्वदाभासाद्विपर्ययः ।	४०
इति वक्ष्ये तयोर्लक्ष्म सिद्धमल्पं लघीयसः ॥ १ ॥	२
१ स्वापूर्वार्थव्यवसायात्मकं ज्ञानं प्रमाणम् ।	७
२ हिताहितप्रातिपरिहारसमर्थं हि प्रमाणं ततो ज्ञानमेव तत् ।	२५
३ तद्विश्वयात्मकं समारोपविरुद्धत्वादनुमानवत् ।	२७
४ अनिश्चितोऽपूर्वार्थः ।	५९
५ दृष्टोऽपि समारोपात्तादृक् ।	५९
६ खोन्मुखतया प्रतिभासनं स्वस्य व्यवसायः ।	९८
७ अर्थस्यैव तदुन्मुखतया ।	९८
८ घटमहमात्मना वेधि ।	१२१
९ कर्मवत्कर्तृकरणक्रियाप्रतीतेः ।	१२१
१० वाब्दानुच्चारणेऽपि स्वस्याज्ञभङ्गवत् ।	१२८
११ को वा तत्प्रतिभासः, स्वस्वदेव तथा चेच्छेत् ।	१४९
१२ प्रदीपवत् ।	१४९
१३ तत्प्रामाण्यं स्वतः परतश्चेति ।	१४९

॥ द्वितीयः परिच्छेदः ॥

१ तद्वेषा ।	१७७
२ प्रत्यक्षेतरभेदात् ।	१८०
३ विशदं प्रत्यक्षम् ।	२१६
४ प्रतीत्यन्तराव्यवधानेन विशेषवत्तया वा प्रतिभासनं वैगयम् ।	२१९
५ इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तं देशतः साव्यवहारिकम् ।	२२९
६ नार्थालोको कारणं परिच्छेद्यत्वात्तमोवत् ।	२३१
७ तदन्वयव्यतिरेकानुविधानाभावाच्च केशोण्डुकज्ञानवधकवरज्ञानवध ।	२३३
८ अतन्नान्यमपि तत्प्रकाशकं प्रदीपवत् ।	२३९
९ खावरणक्षयोपशमलक्षणयोग्यतया हि प्रतिनियतमर्थं व्यवस्थापयति ।	२४०
१० कारणस्य च परिच्छेद्यत्वे करणादिना व्यभिचारः ।	२४०
११ सामग्रीविशेषविच्छेधिताखिलावरणमतीन्द्रियमशेषतो मुरह्यम् ।	२४१
१२ सावरणत्वे कारणजन्यत्वे च प्रतिषन्धसम्भवात् ।	२४

॥ तृतीयः परिच्छेदः ॥

५०

- १ परोक्षमितरत् । ३३५
 २ प्रत्यक्षादिनिमित्तं स्मृतिप्रत्यभिज्ञानतर्कानुमानागमभेदम् । ”
 ३ संस्कारोद्बोधनिबन्धना तदित्याकाश स्मृतिः । —”
 ४ स देवदत्तो यथा । ”
 ५ दर्शनस्मरणकारणकं सङ्कलनं प्रत्यभिज्ञानम् । तदेवेदं तत्सदृशं
 तद्विलक्षणं तत्प्रतियोगीत्यादि । ३३८
 ६ यथा स एवार्यं देवदत्तः । ७ गोसदृशो गवयः । ३४०
 ८ गोविलक्षणो महिषः । ९ इदमस्माद् वरम् । ”
 १० धृष्टोऽयमित्यादि । ”
 ११ उपलम्भानुपलम्भनिमित्तं व्याप्तिज्ञानमूहः । ३४८
 १२ इदमस्मिन्सत्येव भवत्यसति न भवत्येवेति च । ३४९
 १३ यथाऽभावे च धूमस्तदभावे न भवत्येवेति च । ”
 १४ साधनात्साध्यविज्ञानमनुमानम् । ३५४
 १५ साध्याविनाभावित्वेन निश्चितो हेतुः । ”
 १६ सहक्रमभावनियमोऽविनाभावः । ३६९
 १७ सहचारिणोर्व्याप्यव्यापकयोश्च सहभावः । ”
 १८ पूर्वोत्तरचारिणोः कार्यकारणयोश्च क्रमभावः । ”
 १९ तर्कात्तन्निर्णयः । ”
 २० इष्टमबाधितमसिद्धं साध्यम् । ”
 २१ सन्दिग्धविपर्यस्ताव्युत्पन्नानां साध्यत्वं यथा स्यादित्यसिद्धपदम् । ”
 २२ अनिष्टाध्यक्षादिबाधितयोः साध्यत्वं माभूदतीष्टाबाधितवचनम् । ३७०
 २३ न चासिद्धवदिष्टं प्रतिवादिनः । ”
 २४ प्रत्यायनाय हीन्त्वा वस्तुरेव । ”
 २५ साध्यं धर्मः क्वचित्द्विषिष्टो वा धर्मो । ३७१
 २६ पक्ष इति यावत् । ”
 २७ प्रसिद्धो धर्मो । ”
 २८ विकल्पसिद्धे तस्मिन्सत्तरे साध्ये । ”
 २९ अस्ति सर्वज्ञो नास्ति खरविषाणम् । ”
 ३० प्रमाणोभयसिद्धे तु साध्यधर्मविशिष्टता । ३७२
 ३१ अभिमानयं देशः परिणामी शब्द इति यथा । ”
 ३२ व्याप्तौ तु साध्यं धर्म एव । ”
 ३३ अन्यथा तदघटनात् । ”
 ३४ साध्यधर्मोधारसन्दिहापनोदाय गम्यमानस्यापि पक्षस्य वचनम् । ३७३
 ३५ साध्यधर्मिणि साधनधर्मोद्बोधनाय पक्षधर्मोपसंहारवत् । ”
 ३६ को वा त्रिषा हेतुमुक्त्वा समर्थयमानो न पक्षयति । ”

	पृ०
३७ एतद्भयमेवानुमानात् नोदाहरणम् ।	३७४
३८ न हि तत्साध्यप्रतिपत्त्यङ्गं तत्र यथोक्तहेतोरेव व्यापारात् ।	”
३९ तदविनाभावनिश्चयार्थं वा विपक्षे बाधकादेव तत्सिद्धेः ।	३७५
४० व्यक्तिरूपं च निर्दर्शनं सामान्येन तु व्याप्तिस्तत्रापि तद्विप्रतिपत्ताव- नवस्थानं स्यात् दृष्टान्तान्तरापेक्षणात् ।	”
४१ नापि व्याप्तिस्मरणार्थं तथाविधहेतुप्रयोगादेव तत्स्मृतेः ।	”
४२ तत्परमभिधीयमानं साध्यधर्मिणि साध्यसाधने सन्देहयति ।	३७६
४३ कृतोऽन्यथोपनयनिगमने ।	”
४४ न च ते तदङ्गे । साध्यधर्मिणि हेतुसाध्ययोर्वचनावदेवासंशयात् ।	”
४५ समर्थनं वा वरं हेतुरूपमनुमानावयवो वाऽस्तु साध्ये तदुपयोगात् ।	”
४६ बालव्युत्पत्त्यर्थं तत्रयोपगमे शाल्म एवाती न वादेऽनुपयोगात् ।	”
४७ दृष्टान्तो द्वेषा । अन्वयव्यतिरेकभेदात् ।	३७७
४८ साध्यव्याप्तं साधनं यत्र प्रदर्श्यते सोऽन्वयदृष्टान्तः ।	”
४९ साध्याभावो साधनाभावो यत्र कथ्यते स व्यतिरेकदृष्टान्तः ।	”
५० हेतोः संपसंहार उपनयः ।	”
५१ प्रतिज्ञायास्तु निगमनम् ।	”
५२ तदनुमानं द्वेषा ।	३७८
५३ स्वार्थपरार्थमेदात् ।	”
५४ स्वार्थमुक्तलक्षणम् ।	”
५५ परार्थं तु तदर्थपरमार्थवचनात्प्राप्तम् ।	”
५६ तद्वचनमपि तद्वेतुत्वात् ।	”
५७ स हेतुर्हेतोः पलञ्च्यनुपलब्धिभेदात् ।	”
५८ उपलब्धिर्विधिप्रतिषेधयोरनुपलब्धिश्च ।	३७९
५९ अविरोधोपलब्धिर्विधौ षोडश व्याप्यकार्यकारणपूर्वोत्तरसहचरभेदात् ।	”
६० रसादेकसामग्र्यनुमानेन रूपानुमानमिच्छद्भिरिष्टमेव किञ्चित्कारणं हेतुर्यत्र सामर्थ्याप्रतिबन्धकारणान्तरावैकल्ये ।	”
६१ न च पूर्वोत्तरचरिणोऽस्वादात्म्यं तदुत्पत्तिर्वा कालव्यवधाने तदनुपलब्धेः ।	३८०
६२ भाव्यतीतयोर्भरणजाग्रद्वोधयोरपि नारिष्टोद्वेषो प्रति हेतुत्वम् ।	३८१
६३ तद्भाषापराम्भितं हि तद्भावभाविलम् ।	”
६४ सहचारिणोरपि परस्परपरिहारेणावस्थानात्सहोत्पादाच्च ।	३८३
६५ परिणामी शब्दः, कृतकत्वात्, य एवं स एवं दृष्टो यथा घटः, कृतकध्वानम्, तस्मात्परिणामी, यस्तु न परिणामी स न कृतको दृष्टो यथा मन्ध्यास्त्रनन्धयः, कृतकध्वानम्, तस्मात्परिणामी ।	”
६६ अस्सत्र देहिनि बुद्धिर्व्याहारादेः ।	३८४
६७ अस्सत्र छाया छत्रात् ।	”
६८ उदेष्यति शकटं कृत्तिकोदयात् ।	”

६९ उदगाद्भरणिः प्राक्त एव ।	४८
७० अस्त्रत्र मानुलिङ्गे रूपं रसात् ।	३८४
७१ विरुद्धतद्गुणलब्धिः प्रतिषेधे तथा ।	"
७२ नास्त्रत्र शीतस्पर्शं औष्ण्यात् ।	३८५
७३ नास्त्रत्र शीतस्पर्शो धूमात् ।	"
७४ नास्त्रिन् शरीरिणि सुखमस्ति हृदयशल्यात् ।	"
७५ नोदेष्यति सुहृर्तान्ते शकटं रेवत्युदयात् ।	"
७६ नोदगाद्भरणिर्मुहूर्तात्पूर्वं पुष्योदयात् ।	"
७७ नास्त्रत्र भित्तौ परभागाभावोऽर्वाग्रभागदर्शनात् ।	"
७८ अविरुद्धानुपलब्धिः प्रतिषेधे सप्तधा स्वभावव्यापककार्यकारणपूर्वो- त्तरसहचरानुपलम्भमेदात् ।	३८६
७९ नास्त्रत्र भूतले घटोऽनुपलब्धेः ।	"
८० नास्त्रत्र शिखाया वृक्षानुपलब्धेः ।	३८८
८१ नास्त्रत्राप्रतिबद्धसामर्थ्योऽभिर्धूमानुपलब्धेः ।	"
८२ नास्त्रत्र धूमोऽग्नेः ।	"
८३ न भविष्यति सुहृर्तान्ते शकटं कृत्तिकोदयानुपलब्धेः ।	"
८४ नोदगाद्भरणिर्मुहूर्तात्प्राक् तत एत ।	"
८५ नास्त्रत्र समतुलायामुन्नामो नामानुपलब्धेः ।	"
८६ विरुद्धानुपलब्धिर्विधौ त्रेधा । विरुद्धकार्यकारणस्वभावानुपलब्धिमेदात् ।	"
८७ यथाऽस्त्रिणाग्निनि व्याधिविशेषोऽस्ति निरामयचेष्टानुपलब्धेः ।	"
८८ अस्त्रत्र देहिनि दुःखमिष्टसंयोगभावात् ।	"
८९ अनेकान्तात्मकं वस्त्वैकान्तस्वरूपानुपलब्धेः ।	३८९
९० परम्परया सम्भवत्साधनमत्रैवान्तर्भावनीयम् ।	"
९१ अभूदत्र चक्रे शिवकः स्थासात् ।	"
९२ कार्यकार्यमविरुद्धकार्योपलब्धौ ।	"
९३ नास्त्रत्र शुद्धायां शृगक्रीडनं सुगारिसंशब्दनात् कारणविरुद्धकार्यं विरुद्धकार्योपलब्धौ यथा ।	"
९४ व्युत्पन्नप्रयोगस्तु तथोपपत्त्याऽन्यथानुपपत्त्यैव वा ।	३९०
९५ अग्निमानयं देशस्तथैव धूमवत्त्वोपपत्तेर्धूमवत्त्वान्यथानुपपत्तेर्वा ।	"
९६ हेतुप्रयोगो हि यथाव्याप्तिग्रहणं विधीयते सा च तावन्मात्रेण व्युत्पन्नैरवधार्यते ।	"
९७ तावता च साध्यसिद्धिः ।	"
९८ तेन पक्षस्तदाधारसूचनायोक्तः ।	"
९९ आप्तवचनादिनिबन्धनमर्थज्ञानमागमः ।	३९१
१०० सङ्ख्ययोग्यतासङ्केतवशादि शब्दादयो वस्तुप्रतिपत्तिहेतवः ।	४२७
१०१ यथा मेवादयः सन्ति ।	४२८

॥ चतुर्थः परिच्छेदः ॥

- १ सामान्यविशेषात्मा तदर्थो विषयः । ४६६
- २ अनुवृत्तव्यावृत्तप्रत्ययगोचरज्ञात्पूर्वोत्तराकारपरिहारावाप्तिस्थितिलक्षण-
परिणामेनार्थक्रियोपपत्तेश्च । ”
- ३ सामान्यं द्वेषा, तिर्यगूर्ध्वतामेदात् । ”
- ४ सदृशपरिणामस्तिर्यक्, खण्डमुण्डादिषु गोलवत् । ४६७
- ५ परापरविवर्तव्यापिद्रव्यमूर्ध्वता मृदिव स्थासादिषु । ४८८
- ६ विशेषश्च । ५२०
- ७ पर्यायव्यतिरेकमेदात् । ”
- ८ एकस्मिन्द्रव्ये क्रमभाविनः परिणामाः पर्याया आत्मनि हर्षविषादादिवत् । ”
- ९ अर्थान्तरगतो विसदृशपरिणामो व्यतिरेको गोमहिषादिवत् । ५२४

॥ पञ्चमः परिच्छेदः ॥

- १ अज्ञाननिवृत्तिर्हानोपादानोपेक्षाश्च फलम् । ६२४
- २ प्रमाणादभिर्षं भिक्षश्च । ६२४
- ३ यः प्रसिमीते स एव निवृत्ताज्ञानो जहास्यादत्त उपेक्षते चेति प्रसीतेः । ६२८

॥ षष्ठः परिच्छेदः ॥

- १ ततोऽन्यत्तदाभासम् । ६२९
- २ अस्मत्संविदितगृहीतार्थदर्शनसंशयादयः प्रमाणाभासाः । ”
- ३ स्वविषयोपदर्शकत्वाभावात् । ”
- ४ पुरुषान्तरपूर्वार्थगच्छत्तृणस्पर्शस्थाणुपुरुषादिज्ञानवत् । ”
- ५ चक्षुरसयोर्द्रव्ये संयुक्तसमवायवच्च । ”
- ६ अवैषाद्ये प्रत्यक्षं तदाभासं बौद्धस्याकस्माद्बुद्धमदर्शनाद्बह्विज्ञानवत् । ६२९
- ७ वैशद्येऽपि परोक्षं तदाभासं भीमांसकस्य करणज्ञानवत् । ६३०
- ८ अतस्मिन्सदिति ज्ञानं स्मरणाभासम्, जिनदत्ते स देवदत्तो यथा । ”
- ९ सदृशो तदेवेदं तस्मिन्नेव तेन सदृशं यमलकवदित्यादि
प्रत्यभिज्ञानाभासम् । ”
- १० असम्बन्धे तज्ज्ञानं तर्काभासम्, यावोस्तरपुत्रः स इयामो रंध्रा । ”
- ११ इदमनुमानाभासम् । ”
- १२ तन्नानिष्टादिः पक्षाभासः । ”
- १३ अनिष्टो भीमांसकस्यानित्यः शब्दः । ६३१
- १४ सिद्धः आवयः शब्दः । ”
- १५ बाधितः प्रत्यक्षानुमानागमलोकस्ववचनैः । ”
- १६ अनुष्णोऽभिद्रव्यत्वाच्चलवत् । ”
- १७ अपरिणामी शब्दः कृतकत्वात् घटवत् । ”

१८	प्रेत्यासुखप्रदो धर्मः पुरुषाभित्लादधर्मवत् ।	५०
१९	शुचि नरशिरःकपालं प्राण्यङ्गलाच्छङ्खशुफिवत् ।	६३१
२०	माता मे वन्ध्या पुरुषसंयोगेऽप्यगर्भलाहप्रसिद्धवन्ध्यावत् ।	६३२
२१	हेलाभासा असिद्धविरुद्धानैकान्तिकाकिञ्चित्करः ।	६३३
२२	असत्प्रतानिश्चयोऽसिद्धः ।	६३४
२३	अविद्यमानसत्ताकः परिणामी शब्दश्चाक्षुषत्वात् ।	६३५
२४	स्वरूपेणासत्त्वात् ।	६३६
२५	अविद्यमाननिश्चयो भुग्धवृद्धिं प्रत्यभिरत्र धूमात् ।	६३७
२६	तस्य चाष्पादिभावेन भूतसङ्घाते सन्देहात् ।	६३८
२७	सांख्यं प्रति परिणामी शब्दः कृतकत्वात् ।	६३९
२८	तेनाज्ञातत्वात् ।	६४०
२९	विपरीतनिश्चिताविनाभावो विरुद्धोऽपरिणामी शब्दः कृतकत्वात् ।	६४१
३०	विपक्षेऽप्यविरुद्धवृत्तिरनैकान्तिकः ।	६४२
३१	निश्चितवृत्तिरनित्यः शब्दः प्रमेयत्वात् घटवत् ।	६४३
३२	आकाशे नित्येऽप्यस्य निश्चयात् ।	६४४
३३	शङ्कितवृत्तिस्तु नास्ति सर्वज्ञो वक्त्रत्वात् ।	६४५
३४	सर्वज्ञत्वेन वक्तृत्वाविरोधात् ।	६४६
३५	सिद्धे प्रत्यक्षादिबाधिते च साध्ये हेतुरकिञ्चित्करः ।	६४७
३६	सिद्धः श्रावणः शब्दः शब्दत्वात् ।	६४८
३७	किञ्चिदकरणात् ।	६४९
३८	यथाऽनुष्णोऽग्निर्द्रव्यत्वादित्यादौ किञ्चित्कर्तुमशक्यत्वात् ।	६५०
३९	लक्षण एवासौ दोषो व्युत्पन्नप्रयोगस्य पक्षदोषेणैव दुष्टत्वात् ।	६५१
४०	दृष्टान्ताभासा अन्वयेऽसिद्धसाध्यसाधनोभयाः ।	६५२
४१	अपौरुषेयः शब्दोऽमूर्तत्वादिन्द्रियसुखपरमाणुघटनवत् ।	६५३
४२	विपरीतान्वयश्च यदपौरुषेयं तदमूर्तम् ।	६५४
४३	विद्युदादिनाऽतिप्रसङ्गात् ।	६५५
४४	व्यतिरेकेऽसिद्धतद्यतिरेकाः परमाण्विन्द्रियसुखाकाशवत् ।	६५६
४५	विपरीतव्यतिरेकश्च यन्नामूर्तं तन्नापौरुषेयम् ।	६५७
४६	बालप्रयोगाभासः पञ्चान्वयवैषु कियद्दीनता ।	६५८
४७	अभिमानयं देशो धूमवत्त्वात् यदित्यं तदित्यं यथा महानस इति ।	६५९
४८	धूमवांश्चायमिति वा ।	६६०
४९	तस्मादभिमानं धूमवांश्चायमिति ।	६६१
५०	स्पष्टतया प्रकृतप्रतिपत्तरयोगात् ।	६६२
५१	रुग्द्वेषमोहाक्रान्तपुरुषवचनाज्जातभागमाभासम् ।	६६३
५२	यथा नद्यास्तीरे मोदकराशयः सन्ति धावर्षं माणवक्षः ।	६६४
५३	अङ्गुल्यग्रे हस्तियूयशतमास इति च ।	६६५

	पृ०
५४ विसंवादात् ।	६४२
५५ प्रत्यक्षमेवैकं प्रमाणमित्यादि संख्याभासम् ।	”
५६ लौक्यातिक्रम्य प्रत्यक्षतः परलोकादिनिषेधस्य परबुद्ध्यादेश्चास्ति- द्वैरतद्विषयत्वात् ।	६४३
५७ सौगतसंख्ययौगप्राभाकरजैमिनीयानां प्रत्यक्षानुमानागमोपमा- नार्थापत्त्यभावेरेकैकाधिकैर्व्याप्तिवत् ।	”
५८ अनुमानादेस्तद्विषयत्वे प्रमाणान्तरत्वम् ।	”
५९ तर्कस्यैव व्याप्तिगोचरत्वे प्रमाणान्तरत्वम् अप्रमाणस्याव्यवस्थापकत्वात् ।	”
६० प्रतिभासभेदस्य च भेदकत्वात् ।	”
६१ विषयाभासः सामान्यं विशेषो द्वयं वा स्वतन्त्रम् ।	”
६२ तथाऽप्रतिभासनात्कार्याकरणाच्च ।	६४४
६३ समर्थस्य करणे सर्वदोत्पत्तिरनपेक्षत्वात् ।	”
६४ परापेक्षणे परिणामिलमन्यथा तदभावात् ।	”
६५ स्वयमसमर्थस्य अकारकत्वात्पूर्ववत् ।	”
६६ फलाभासं प्रमाणादभिन्नं भिन्नमेव वा ।	”
६७ अभेदे तद्व्यवहारानुपपत्तेः ।	”
६८ व्यावृत्त्याऽपि न तत्कल्पना फलान्तराव्यावृत्त्याऽफलत्वप्रसङ्गात् ।	”
६९ प्रमाणाव्यावृत्त्येवाप्रमाणत्वस्य ।	”
७० तस्माद्वास्तवो भेदः ।	”
७१ भेदे त्वात्मान्तरवत्तदनुपपत्तेः ।	६४५
७२ समवायेऽतिप्रसङ्गः ।	”
७३ प्रमाणतदाभासौ बुद्धतयोद्भाषितौ परिहृतापरिहृतदोषौ चादिनः साधनतदाभासौ प्रतिवादिनो दूषणभूषणे च ।	”
७४ समवदन्यद्विचारणीयम् ।	६७६
परीक्षामुखमादर्शं हेयोपादेयतत्त्वयोः । संविदे माहथो बालः परीक्षादक्षवद्वधाम् ॥ १ ॥	६६३
इति परीक्षामुखसूत्रं समाप्तम् ।	

द्वितीयं परिशिष्टम् ।

प्रमेयकमलमार्त्तण्डगतानामवतरणानां सूचिः ।

अवतरणम्	पृष्ठं पङ्क्तिः
अकथितम् [जैनेन्द्र व्या० १।२।१२०]	७ १
अकर्म कर्म []	६२१ ११
अकुर्वन् विहितं कर्म []	३०९ २१
अभिस्वभावः शाकस्य [प्रमाणवा० ३।३५]	५१३ १३
अभिरपत्यं प्रथमं [रामता० उ० ६।५]	५९७ १९
अमेरुध्वज्वलनं [प्रश्न० न्यो० पृ० ४११]	२७४ २
अगोनिवृत्तिः सामान्यं [मी० श्लो० अपोह० श्लो० १]	४३३ ७
अज्ञो जन्तुरनीघोऽयं [महाभा० धनपर्व ३०।२८]	५८० १२
अत इदमिति यत- [वैश्वे० सू० २।२।१०]	५९८ १७
अतद्भेदपरावृत्त- []	१८१ १७
अतीतानागतौ कालौ [तत्त्वसं० पृ० ६४३ पूर्वपक्षे]	३९८ २८
अतीतकालानां [प्रमाणवा० स्रष्ट० १।१३]	३८१ २
अत्र द्वौ वस्तुसाधनौ [न्यायनि० पृ० ३९]	७८ १५
अत्र द्रूमो यदा [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १८०]	४०८ ७
अथ तद्वचनेनैव [तत्त्वसं० पृ० ८३२ पूर्वपक्षे]	२५० १३
अथ ताम्रूप्यविज्ञानं [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २१३]	४१६ २३
अथ शब्दोऽर्थवत्त्वेन [मी० श्लो० शब्दपरि० श्लो० ६२-६३]	१८४ ४
अथ स्थगितमप्येतद्- [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ३३]	४२२ २१
अथान्यथा विद्योभ्येपि [मी० श्लो० अपोह० श्लो० ९०]	४३८ १२
अथान्यदप्रयत्नेन []	१७५ ३
अथापीन्द्रियसंस्कारः [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ६९]	४३४ ६
अथाऽसस्यपि साहच्ये [मी० श्लो० अपोह० श्लो० ७६]	४३५ ३
अर्थवत्प्रमाणम् [न्यायभा० पृ० १]	२३७ १४
अर्थसहकारितया- []	२३५ १७
अर्थादापन्नस्य स्वशब्देन- [न्यायसू० ५।२।१५]	३७२ २६
अर्थापसितः प्रतिपक्ष- [न्यायसू० ५।१।२१]	६५७ ३
अर्थापतिरियं चोष्ठा [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २३७]	४०५ २०
अर्थापरयावगम्यैव [मी० श्लो० अर्था० श्लो० ७]	१८८ २०
अर्थेन घटयत्नेनां [प्रमाणवा० ३।३०५]	१०७-१, ४७० ११
अदृष्टसंगतत्वेन [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २४९]	४१० १४

अवतरणम्	पृष्ठं	पङ्क्तिः
अधिष्ठानादृजुलाच्च [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १८७]	४०८	२५
अज्ञादिनिधनं शब्द- [वाक्यप० १११]	३९	१३
अनादेरागमस्यार्थो- []	२५०	११
अनिग्रहस्थाने निग्रह- [न्यायसू० ५१२।११]	६६९	२६
अनिर्दिष्टफलं []	३	७
अनेकदेशवृत्तौ च [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १९०]	४०९	५
अनैकान्तिकता तावद्धे- [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १९]	४२२	१४
अन्यैवाग्निसम्बन्धा- [वाक्यप० २।४२५]	४४३-१८, ४४७	२
अन्यदेवेन्द्रियग्राह्य- []	४४६	२३
अन्यधियो गतेः []	३२५	९
अन्यार्थं प्रेरितो वायुर्य- [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ८०]	४२३	७
अन्ये तु चोदयन्त्यत्र [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ८३]	४०८	१५
अन्यैस्त्वादिर्संयोगै- [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ८१]	४२३	९
अन्वयेन विना तावद्- []	१८५	७
अन्वयो न च शब्दस्य [मी० श्लो० शब्दपरि० श्लो० ८५]	१८४	१९
अपरस्मिन् परं [वैश्वे० सू० २।२।६]	५६४	२१
अपूर्वकर्मणामाश्रवनिरोधः [तत्त्वार्थसू० ९।१]	२४५	७
अप्रत्यक्षोपलम्भस्य []	२९	२०
अप्राप्तकर्णदेशलाद्- [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ७०]	४२४	८
अप्रामाण्यं त्रिधा भिन्नं [मी० श्लो० सू० २ श्लो० ५४]	१६१	९
अप्सु गन्धो रसस्वाप्तौ [मी० श्लो० अभाव० श्लो० ६]	१९१	१
अप्सुर्यदधिनां नित्यं [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १८६]	४०८	२३
अभावगम्यरूपे च [मी० श्लो० अपोह० श्लो० ९१]	४३८	१४
अभ्यासात्पक्वविज्ञानः [प्रश्न० व्यो० पृ० २० ख०]	३१०	३
अयमर्थो नायमर्थ [प्रमाणवा० २।३।१२]	४३१	५
अयमेवेति यो ह्येष [मी० श्लो० अभावपरि० श्लो० २०]	७७	१५
अयुतसिद्धानामाचार्या- [प्रश्न० भा० पृ० १४]	६०४	११
अवयवविपर्ययोसवचन- [न्यायसू० ५।२।११]	६६७	२६
अवयवानां प्रक्षिपिल- []	५९८	१२
अविज्ञातं चाज्ञानम् [न्यायसू० ५।२।१७]	६६९	१३
अविनाभावित्वात्तत्र [मी० श्लो० अर्थो० श्लो० ३०]	१९३	१७
अविशेषामिहितेऽर्थे [न्यायसू० १।२।१२]	६४९	१७
अविशेषोक्तं हेतौ [न्यायसू० ५।२।६]	६६५	१४
असंस्मर्यतया पुंभिः [प्रमाणवा० १।२।३२]	१६६	८

अवतरणम्	पृष्ठं	पङ्क्तिः
असदकरणाहुपादान- [सांख्यका० ९]	२८७	१८
असर्वज्ञप्रणीतास्तु [तत्त्वसं० पृ० ८३२ पूर्वपक्षे]	२५०	१७
असाधनाज्ञवचन- [वादन्याय० पृ० १]	६७१	२०
अस्ति ध्यालोचनाज्ञानम् [भी० श्लो० प्रत्यक्षसू० श्लो० १२०]	४८२	२२
आकाशमपि निर्लं [भी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ३०-३१]	४२२	१७
आख्यातशब्दः सहातो [वाक्यप० २।२]	४५९	२
आगच्छतो च विश्लेषो [भी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ११०]	४२७	५
आचेल्लक्ष्मणस्य [जीतकल्पभा० गा० १९७२ भग० आ० गा० ४२७]	३३१	६
आत्मलाभे हि भावानां [भी० श्लो० सू० २ श्लो० ४८]	१५३	२१
आनन्दं ब्रह्मणो रूपं []	३१०	१६
आप्तवचनादिनिबन्ध- [परीक्षामु० ३।१००]	३५५	२३
आशङ्केत हि यो [तत्त्वसं० पृ० ७६० पूर्वपक्षे]	१५७	१०
आसर्गप्रलयादेका []	२९४	४
आहुर्विधानु प्रत्यक्षं []	६५	६
आहिकेन निमित्तेन [भी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १७९]	४०८	३
इदानीन्तनमस्ति त्वं [भी० श्लो० सू० ४ श्लो० २३४]	३३९	१४
इन्द्रियार्थसामिकर्षो- [न्यायसू० १।१।४]	२२०-१८, ३६५	१४
इष्टं गतिर्हिंसनयोश्च []	६८७	२९
ईषत्सम्मिलितेऽङ्गुल्या [भी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १८२]	४०८	१३
उत्क्षेपणमवक्षेपण- [वैशेषो० सू० १।१।७]	६००	१२
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः [भगवद्गी० १।५।१७]	२६८	१७
उत्तरस्याप्रतिपत्ति- [न्यायसू० ५।२।१८]	६६९	१९
उत्पादव्ययप्रौढ्ययुक्तं [तत्त्वार्थसू० ५।३०]	२५९	१०
उपदेशो हि बुद्धादेर्धर्मा- [तत्त्वसं० पृ० ८३८ पूर्वपक्षे]	२५०	२१
उभयकारणोपपत्तेरुपपत्तिसमा [न्यायसू० ५।१।२५]	६५७	१९
उभयसाधन्यात् [न्यायसू० ५।१।१६]	६५६	१७
ऊर्णनाभ इवांशुर्ला []	६५	९
ऊर्ध्ववृत्तितदेकलाद् [भी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १८८]	४०९	१
ऋन्मोः [जैनैन्द्रव्या० ४।२।१५३]	६८८	४
एकधर्मोपपत्तेरविशेषे [न्यायसू० ५।१।२३]	६५७	९
एकप्रत्ययमर्षस्य हेतु- [प्रमाणवा० १।१।१०]	४७०	३
एकशास्त्रनिर्भारेषु [तत्त्वसं० पृ० ८३६ पूर्वपक्षे]	२५२	८
एकसिद्धमपि दृष्टेऽयं [भी० श्लो० उपमानपरि० श्लो० ४६]	१८७	७
[ए] कसांवाक्यमावस्य [प्रमाणवा० १।४४]	२३६	२

अवतरणम्	पृष्ठं	पङ्क्तिः
एकादिव्यवहारहेतुः [प्रशा० भा० पृ० १११]	५९०	२
एतद्भवमेवानुमा- [परीक्षासु० ३।३७]	६८५	३१
एतावन्मात्रतत्त्वार्थाः [सम्बन्धपरी०]	५१०	१९
एवं त्रिचतुरज्ञान- [मी० श्लो० सू० २ श्लो० ६१]	१५७	५
एवं धर्मैर्विना धर्मिणामेव [प्रशास्त्रपादभा० पृ० १५]	५३१	९
एवं परीक्षकज्ञानं [तत्त्वसं० पृ० ७६० पूर्वपक्षे]	१७५	७
एवं परोक्तसम्बन्ध- []	२१	५
एवं प्रागतया वृत्त्या [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १८९]	४०९	३
एवं यत्पक्षधर्मिलं []	१९५	७
ऐकान्तिकं पराजयाद्दरं []	६६०	५
कर्तुः प्रियहितमोक्षहेतुर्ध- [प्रशा० भा० पृ० २७२-२८०]	६००	९
कर्तुः फलदाभ्यात्मगुण- []	६००	७
कल्पनीयाश्च सर्वज्ञा [मी० श्लो० चोदनासू० श्लो० १३५]	२५४	२५
कस्यचिन्नु यदीष्येत [मी० श्लो० सू० २ श्लो० ७६]	१५५	७
कारणानुविधायिलं [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २१०-२११]	४१५	३४
कार्यं धूमो हुतपुञ्जः [प्रमाणवा० १।३५]	३५०	७
कार्यकारणभावादि- []	२१-१, ३८२	१६
कार्यकारणभावोपि [सम्बन्धपरी०]	५०९	२१
कार्येनान्यलक्ष्येन []	२७५	६
कार्यव्यासप्रात् [न्यायसू० ५।२।१९]	६७०	१
कार्याध्यकर्तृवधादिसा [न्यायसू० ३।१।६]	५३६	१८
किं स्यात्सा चित्रतैक- [प्रमाणवा० ३।२।१०]	९६	१३
किन्तु गौर्यवगो हस्ती [तत्त्वसं० का० ९११ पूर्वपक्षे]	४३२	८
कीदृशाद्दचनामेदाह- [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १०९]	४२७	३
कुल्यादिप्रतिबन्धोपि [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १२९]	४१८	२४
कृपादिषु क्रुतोऽवस्तात् [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १८४]	४०८	१७
क्रमेण भाव एकत्र [सम्बन्धपरी०]	५१०	१
क्षयिका हि सा न [शाबरभा० १।१।५]	२३	११
क्षीरे वधि भवेदेवं [मी० श्लो० अभाव० श्लो० ५]	१९०	२६
गत्वा गत्वा तु तान्देशान् [मी० श्लो० का० अर्था० श्लो० ३८]	२२	१७
गवयश्चाप्यसम्बन्धात् [मी० श्लो० उपमानपरि० श्लो० ४५]	१८७	५
गवये गृह्यमाणं च [मी० श्लो० उपमानपरि० श्लो० ४४]	१८७	३
गवयोपमितया गोस्त- [मी० श्लो० अर्था० श्लो० ४-५]	१८८	१६
गवादिभ्यनुवृत्तिप्रत्ययः [न्यायवा० पृ० ३२३]	४७६	९

श्वतरणम्	पृष्ठं	पङ्क्तिः
गव्यसिद्धे लग्नौर्नास्ति [मी० श्लो० अपो० श्लो० ८५]	४३६	१३
गेहाभैत्रजहिर्भाव- [मी० श्लो० अर्था० श्लो० ७-८]	१८९	३
गोशब्दे ज्ञातसम्बन्धे [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २४४]	४०६	१४
गृहीतमपि गोलादि [मी० श्लो० सू० ४ श्लो० ३२]	३३९	१०
गृहीत्वा वस्तुसद्भावं [मी० श्लो० अभावप० श्लो० २७]	१८९-९, २६५	२६
चित्रप्रतिभासाप्येकैव [प्रमाणवार्तिकालं०]	९५	१
चित्राद्यदन्तराणीय- [पत्रप० पृ० १०]	६८६	५
चैत्रः कुण्डली [न्यायवा० पृ० २१८]	६१४	१५
चोदनाजनिता बुद्धिः [मी० श्लो० सू० ५ श्लो० १८४]	१५८	३
चोदना हि भूतं भवन्तं [शावरभा० १११२]	२५३-२०, २५५	१३
जननेपि हि कार्यस्य [सम्बन्धपरीक्षा]	५१०	२५
जलपात्रेषु चैकेन [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १७८]	४०७	२२
जातेपि यदि विज्ञाने [मी० श्लो० सू० २ श्लो० ४९]	१५८	२३
जिषु डिषु शिषु []	६८७	१९
जीवस्तथा निर्वृति- [सौन्दरनन्द १६-२९]	६८७	१०
क्षुपी प्रीतिस्त्रेवनयोः [पा० घातुपा०]	६६८	१६
जैनकापिलनिर्दिष्टं [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १०६]	४३६	१७
ज्ञातसम्बन्धस्यैक- [शावरभा० १११५]	३०	१५
ज्ञातैकलो यथा चासौ [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १९९]	४०९	१३
ज्ञात्वा व्याकरणं दूरं [तत्त्वसं० पृ० ८२६ पूर्वपक्षे]	२५२	१०
ज्ञानं ज्ञानान्तरवेद्यं []	६२०	६
ज्योतिर्विष्व प्रकृत्येपि [तत्त्वसं० पृ० ८२६ पूर्वपक्षे]	२५२	१२
णोकम्म कम्महारो []	३००	२१
ततो निरपवादत्वात्- [तत्त्वसं० पृ० ७६० पूर्वपक्षे]	१७५	५
ततः परं पुनर्वस्तुधर्मै- [मी० श्लो० प्रत्यक्ष० सू० ११२]	४८२	२४
तत्करोति तदाचष्टे []	६८७	२२
तत्प्रतिबिम्बकं च []	४४१	१६
तन्निविधं वाक्छर्कं [न्यायसू० ११२।११]	६४९	१५
तत्त्वं भावेन व्याख्यातं [वैशे० सू० ७।२।२८]	६२०	१९
तत्त्वाध्यवसायसंरक्ष- [न्यायसू० ४।२।५०]	६४६	३
तत्र ज्ञानान्तरोत्पादः [मी० श्लो० सू० २ श्लो० ५०]	१५९	१
तत्र प्रत्यक्षतो ज्ञाताद् [मी० श्लो० अर्था० श्लो० ३]	१८८	१०
तत्र शब्दान्तरापोहे [मी० श्लो० अपोह० श्लो० १०४]	४४०	१०
तत्रापवादनिर्मुक्तिर्वि- [मी० श्लो० सू० २ श्लो० ६८]	१७५	१८
तत्रापूर्वार्थविज्ञानं []	६१	१०

अवतरणम्	पृष्ठं	पङ्क्तिः
तत्रैव बोधयेदर्थं [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १८५]	४०८	१९
तथा (यथा) घटादेर्दीपा- [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ४२]	४२४	२०
तथा च स्यादपूर्वोपि [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २४२]	४०६	१०
तथाचेदमिति प्रोक्तौ [पत्रप० पृ० १०]	६८६	७
तथा मिश्रममिच्छं वा [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २७१]	४११	३
तथा वेदेतिहासादि- [तत्त्वसं० पृ० ८२६ पूर्वपक्षे]	२५२	१४
तथेदममलं ब्रह्म [बृहदा० मा० वा० ३।५।४४]	४५	१
तथैव यत्समीपस्थैर्नादैः [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ८५-८६]	४२०	१९
तथैवाभावमेदेपि न [मी० श्लो० अभाव० श्लो० ४६]	१९२	१२
तदनुपलब्धेरनुपलम्भा- [न्यायसू० ५।१।२९]	२५८	३
तदन्ता घव- [जैनेन्द्रव्या० २।१।३९]	६८७	२४
तद्गुणेरपकृष्टाना शब्दे [मी० श्लो० सू० २ श्लो० ६३] १७५-१४ ३९७	१७	१७
तद्भावमाविता चात्र [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १२७-१२८]	४१८	२२
तद्भाषामावात्तकार्य- [सम्बन्धपरीक्षा]	५१०	१५
तथोरनुपकारेपि [सम्बन्धपरीक्षा]	५१०	२७
तर्कशब्देन भूतपूर्वगतिन्यायेन []	६४६	११
तस्मात्तत्प्रसङ्गमिज्ञानात् [मी० श्लो० आत्म० श्लो० १३६]	५२२	४
तस्मात्सर्वेषु यद्रूपं [मी० श्लो० अपोह० श्लो० १०]	४३३	१४
तस्मात्स्रतः प्रमाणत्वं [तत्त्वसं० पृ० ७५८ पूर्वपक्षे]	१७४	८
तस्मादननुमानत्वं [मी० श्लो० शब्दप० श्लो० १८]	१८३	१०
तस्माद्दुत्पत्त्यभि- [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ८२]	४२३	११
तस्माद्बुभयहानेन [मी० श्लो० आत्मवाद० श्लो० २८]	५२२	१
तस्माद्गुणेभ्यो दोषाणाम- [मी० श्लो० सू० २ श्लो० ६५]	१६१	१४
तस्माद्यतो यतोऽर्थानां [प्रमाणवा० १।४२]	१८०	२३
तस्माद्यत्स्मर्यते तत्स्यात् [मी० श्लो० उपमानपरि० श्लो० ३७] १८६-१, २४५	१३	१३
तस्माद् व्याख्याज्ञमि- [मी० श्लो० प्रति० सू० श्लो० २५]	३	१६
तस्यापि कारणे शुद्धे [मी० श्लो० सू० २ श्लो० ५१]	१५९	३
तस्योपकारकत्वेन [मी० श्लो० अभाव० श्लो० १४]	१९१	१४
तां ब्राह्मलक्षणप्राप्तामास- [प्रमाणवा० ३।५।१३]	८४	४
तादात्म्यं चेन्मतं []	४७४	१
तादात्म्यमस्य कस्माच्चेत् []	४७३	२०
तामेव चानुबन्धानैः [सम्बन्धपरी०]	५०६	१८
ताभ्यां तद्यतिरेकत्वे [प्रमाणवार्तिकल०]	४६८	५
ता हि तेन विनोत्पन्ना [मी० श्लो० आकृति० श्लो० ३८]	४७४	१२

श्वतरणम्	पृष्ठं	पङ्क्तिः
विष्टन्त्येव पराधीना [प्रमाणवा० २।१९९]	९५	१६
तेन जन्मैव बुद्धेर्विषये [मी० श्लो० सू० २ श्लो० ५६]	१६४	१६
तेन सम्बन्धवैलायां [मी० श्लो० अर्थ्या० श्लो० ३३]	१९३	२०
तेन सर्वत्र दृष्टत्वाद्वा- [मी० श्लो० शब्दपरि० श्लो० ८८]	१८५	३
तेनात्रैव परोपाधिः [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २१८-१९]	४१७	१७
तेनेन्द्रियार्थसम्बन्धात् [मी० श्लो० सू० ४ श्लो० २३६-२३७]	३३९	५
तेषां चाल्पकदेशत्वाद् [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १७३]	४०७	९
तेषामनुपलब्धेश्च [मी० श्लो० स्फोटवा० श्लो० १२]	४१७	२८
तौ च भावौ तदन्यश्च [सम्बन्धपरी०]	५०६	७
त्रिगुणमविवेकि विषयः [सांख्यका० ११]	२८६	७
त्रिरभिहितस्यापि [न्यायसू० ५।२।९]	६९२	२०
त्रिषु पदार्थेषु सत्करी []	६१९	१५
त्रैकाल्यासिद्धेर्हेतोरहेतु- [न्यायसू० ५।१।१८]	६५६	२५
लग्नप्राणलमन्ये [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १०८]	४२७	१
दर्शनस्य परार्थत्वाद् [जैमिनिसू० १।१।१८]	६२-१, ४०४	२४
दर्शनस्य परार्थत्वादित्य- [मी० श्लो० अर्थ्या० श्लो० ७-८]	१८९	१
दर्शनादर्शने मुक्त्वा [सम्बन्धपरी०]	५१०	१३
दशहस्तान्तरं व्योम्नि [तत्त्वसं० पृ० ८२६ पूर्वपक्षे]	२५२	१६
दीपो यथा निर्धृतिम- [सौन्दरनन्द १६-२८]	६८७	८
दृष्टत्वासावन्ते स्थितश्चेति [न्यायसू० ५।२।२]	६६४	३
देशकालादिभेदेन [मी० श्लो० प्रत्यक्ष सू० श्लो० २३३-३४]	२५८	७
देशभेदेन भिन्नत्वं [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १९७]	४०९	९
दृश्यमानाद्यदन्यत्र []	१८५	१०
दृष्टो न चैकदेशोस्ति लिङ्गं [तत्त्वसं० पृ० ८३० पूर्वपक्षे]	२५०	६
द्वयसंस्कारपक्षे तु [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ८६]	४२४	३१
द्वयोरेकामिसम्बन्धात् [सम्बन्धपरी०]	५०६	४
द्वाविमौ पुरुषौ लोके [भगवद्गी० १।५।१६]	२६८	१५
द्विधा कैश्चित्पदं भिन्नं []	४६४	२०
द्विष्टसम्बन्धसंवित्तिः []	९१	४
द्विष्टो हि कश्चित्सम्बन्धो [सम्बन्धपरी०]	५१०	७
द्विस्तावानुपलब्धो हि [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २५०]	४१०	१६
द्वीन्द्रियग्राह्यग्राह्यं []	२६९	२६
धर्तृरकपुष्पवदादौ सूक्ष्मा- []	२२७	१
धर्मं चोदनैव प्रमाणम् []	४०१	७

अवतरणम्	पृष्ठं	पङ्क्तिः
धर्मयोर्भेद इष्टो हि [मी० श्लो० अभाव० श्लो० २०]	१९२	७
धर्मविकल्पनिर्देशेऽर्थ- [न्यायसू० १।२।१४]	६५१	१
धर्माधर्मौ स्वाश्रयसंयुक्ते []	५५९	५
धर्मज्ञलनिषेधस्तु [तत्त्वसं० पृ० ८१७ पूर्वपक्षे]	२५३	५
धातुसम्बन्धे प्रत्ययाः [पाणिनिव्या० ३।४।१]	६७९	२
धियो (योऽ) नीलादिरूप- [प्रमाण वा० ३।४३१]	८४	१६
ध्वनीनां भिन्नदेशत्वं [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १७३]	४०७	७
न च ध्वनीनां सामर्थ्यं [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १७२]	४०७	५
न च स्थाव्यवहारोऽयं [मी० श्लो० अभाव० श्लो० ७]	१९०	३
न चागमविधिः कश्चिन्नि- [तत्त्वसं० पृ० ८३१ पूर्वपक्षे]	२५०	७
न चान्यरूपमन्यादहक् [मी० श्लो० अपोह० श्लो० ८९]	४३८	१०
न चान्यार्थप्रधानैस्त्वैस्त्व- []	२५०	९
न चा (च) पर्ययुयोगोत्र [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ४३]	४२४	२२
न चापि स्मरणात्पश्चादि- [मी० श्लो० सू० ४ श्लो० ३५-३६]	३३९	३
न चाप्यश्वादिशब्देभ्यो- [मी० श्लो० अपोह० श्लो० ८८]	४३८	८
न चावस्तुन एते स्युर्मे- [मी० श्लो० अभाव० श्लो० ८]	१८०	८
न चावान्तरवर्णानां [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ११२]	४२७	९
न चासाधारणं वस्तु [मी० श्लो० अपोह० श्लो० ८६]	४३८	४
न चास्यावयवाः सन्ति []	४१४	३
न चैतस्यानुमानत्वं [मी० श्लो० उपमानप० श्लो० ४३]	१८७	१
न तावदनुमानं हि [मी० श्लो० शब्दप० श्लो० ५६]	१८४	२
न तावदिन्द्रियेणैषा [मी० श्लो० अभाव० श्लो० १८]	१८९	२०
न तावद्यत्र देखेऽसौ न [मी० श्लो० शब्दप० श्लो० ८७]	१८५	१
न तु (ननु) भावादभिन्न- [मी० श्लो० अभाव० श्लो० १८]	१९२	५
नवीपूरोप्यघोदेशे []	१९५	३
ननु च प्रागभाषादौ [मी० श्लो० अपोह० श्लो० ११]	४७७	७
ननु ज्ञानफलाः शब्दा [भामहर्ल० ६।१८]	४३२	१३
नन्वन्यापोहकृच्छन्दो [तत्त्वसं० का० ९१० पूर्वपक्षे]	४३२	६
न मेदाग्निज्ञमस्त्यान्यत्सामा- []	४६७	१६
न याति न च तत्रासीद्- [प्रमाणवा० १।१।५३]	४७३	१६
नवानां गुणानामत्यन्तो- []	२७९	६
न शाबलेयाहोबुद्धिस्त्वतोऽ- [मी० श्लो० वनवाद श्लो० ४]	१७४	२३
न सोस्ति प्रत्ययो लोके [धातुप० १।१।२४]	३९	७
न स्यादव्यङ्ग्यता तस्मिन्- [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ११६-१७]	४१६	३४

अवतरणम्	पृष्ठं पङ्क्तिः
न हि तत्क्षणमप्यास्ते [मी० श्लो० सू० २ श्लो० ५५]	१६४ १४
न हि स्मरणतो यथाक् [मी० श्लो० सू० ४ श्लो० ३३४-३५]	३३९ १
नाकारणं विषयः []	३५५-११, ५०२ ४
नाऽक्रमात्क्रमिणो भावाः [प्रमाणवा० ११४५]	३२५ १६
नागृहीतविशेषणा विशेष्ये []	२१०-७१, ३८३-५, ४३७ १३
नाज्ञातं ज्ञापकं नाम []	१२४-१९, २०६ ७
नार्थशब्दविशेषेण वाच्य- []	३४० ८
नार्थालोकौ कारणं [परी० २१६]	२२५ १७
नादेनाऽहितवीजाया- [वाक्यप० ११८५]	४५६ १९
नान्योऽनुभाव्यो बुद्ध्यास्ति [प्रमाणवा० ३१३२७]	९० १०
नाऽपोल्लस्यमभावानाम- [मी० श्लो० अपोह० श्लो० ९६]	४३९ ८
नाश्रुकं क्षीयते कर्म []	३०८ १५
नाशोत्पादौ समं []	४९७ ३
नास्तित्ता पयसो दग्धि [मी० श्लो० अभाव० श्लो० ३]	१९० १९
निग्रहप्राप्तस्थानिग्रहः [न्यायसू० ५१२१२१]	६६९ २१
निखलं व्यापकत्वं च []	४०६ २०
नित्यनैमित्तिके कुर्यात् [मी० श्लो० सम्बन्ध० श्लो० ११०]	३०९ २३
नित्यनैमित्तिकैरेव [प्रश्न० व्यो० पृ० २० ख०]	३१० १
नित्याः शब्दार्थसम्बन्धास्त- [वाक्यप० ११२३]	४२९ ५
निर्गुणा गुणाः []	५९२ ११
निर्दिष्टकारणाभावेऽप्युपल- [न्यायसू० ५११२७]	५२७ २६
निष्फलत्वेन शब्दस्य [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १३९]	४०६ ४
नीलोत्पलादिशब्दा []	४३६ १६
नूनं स चक्षुषा सर्वान् [मी० श्लो० चोद० सू० श्लो० ११२]	४४९ ३
नेष्टोऽसाधारणस्तावद्वि- [मी० श्लो० अपोह० श्लो० ३]	४३३ ११
नो चेद्भ्रान्तिनिमित्तेन [प्रमाणवा० ११४५]	४७० ८
नेकरूपा भतिर्गोत्वे [मी० श्लो० वनवा० श्लो० ४९]	४७५ १७
पक्षप्रतिषेधे प्रतिज्ञातार्था- [न्यायसू० ५१२१५]	६६५ ८
पक्षहेतुदृष्टान्तोपनयनिगमनान्य- [न्यायसू० १११३२]	३७४ १२
पदमाथं पदं चान्तं पदं [वाक्यप० ११२]	४५९ ५
पदार्थपूर्वकस्तस्माद्वाक्या- [मी० श्लो० वाक्या० श्लो० ३३६]	४६१ ५
पदार्थानां तु मूलसमिष्टं [मी० श्लो० वाक्या० श्लो० १११]	५६१ ३
परलोकिनोऽभावात्परलोका- []	११६ ९
परस्परविषयगमनं व्यतिकर []	५२६ १९

अवतरणम्	पृष्ठं पङ्क्तिः
पराधीनेपि वै तस्मात्तान्- [तत्त्वसं० पृ० ७५८ पूर्वपक्षे]	१७४ १०
परापेक्षा हि सम्बन्ध- [सम्बन्धप०]	५०५ २०
परिषत्प्रतिष्ठादिभ्यां त्रिरभि- [न्या० सू० ५१२१९]	६६६ १९
पर्यायादविरोधश्चेद्यापि- [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २००]	४०९ १५
पर्यायेण यथा चैको [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १९८]	४०९ ११
पदयत्त्रयं क्षणिकमेव []	५१८ २४
पदयत्त्रयमदृष्टस्य दर्शने [सम्बन्धपरी०]	५१० ११
पारतन्त्र्यं हि सम्बन्धः [सम्बन्धपरी०]	५०४ २७
पिण्डभेदेषु गोबुद्धिरेक- [मी० श्लो० वन० श्लो० ४४]	४७४ १९
पित्रोश्च ब्राह्मणत्वेन []	१९५-५, २५५ ५
पीनो दिवा न मुञ्जे [मी० श्लो० अर्या० श्लो० ५१]	१८८ १२
पुंवेदं वेदंता जे पुरिसा []	३३३ १२
पुरुष एवैतत्सर्वं यद्भूतं [ऋक्सं० मण्ड० १० सू० ९० ऋ० २]	६४ २१
पृथग् न चोपलभ्यन्ते [मी० श्लो० स्फोटवा० श्लो० ११]	४१७ २६
पृथिव्य (न्या) पक्षेजोवायुरिति []	११६ १
पृथिव्येजोवायुभ्यो []	२३० ४
पूर्वापर्यायोगादप्रति- [न्यायसू० ५१२१०]	६६७ ३
प्रकृतादर्थादप्रतिसम्बन्धा- [न्या० सू० ५१२१७]	६६५ २४
प्रकृतेर्महास्ततोऽहङ्कारस्त- [साख्यका० २१]	२८५ २६
प्रक्षालनाद्धि पङ्क्तस्य []	२८१ २३
प्रतिज्ञातार्थप्रतिषेधे धर्म- [न्या० सू० ५१२१३]	६६४ १४
प्रतिज्ञाहेतुदाहरणोपनय- [न्यायसू० ५१२१३२]	६७४ २३
प्रतिज्ञाहेत्वोर्विरोधो [न्यायसू० ५१२१४]	६६५ ३
प्रतिद्वयान्तधर्म्या (मी) बुद्ध्या [न्या० सू० ५१२१२]	६६३ १४
प्रतिनियतदेशा वृत्तिरभिव्य- []	१९ १३
प्रतिबिम्बस्य मुख्यमन्यापो- []	४४२ ४
प्रतिमन्वन्तरं चैव श्रुतिरन्या [मत्स्यपु० १४५१५८]	३९२ १८
प्रत्यक्षं कल्पनापोढं [प्रमाणवा० ३११२३]	३२ १०
प्रत्यक्षनिराकृतो न पक्षः []	७८ ८
प्रत्यक्षपूर्वकं त्रिविधमनु- [न्यायसू० ११११५]	३६२ १८
प्रत्यक्षाद्वैरनुत्पत्तिः [मी० श्लो० अभाव० श्लो० ११] १८९-१२, २६५	१७
प्रत्यक्षाद्यवतारश्च [मी० श्लो० अभाव० श्लो० ९७] १९१-१७, २०६	१२
प्रत्यक्षेणावबुद्धश्च [मी० श्लो० स्फोट० श्लो० १४]	४१७ ३२
प्रत्यक्षेणावबुद्धेऽपि [मी० श्लो० उपमान० श्लो० ३८] १८६-३, ३४५	१५

अवतरणम्	पृष्ठं	पङ्क्तिः
प्रत्यक्षेपि यथा देशे [मी० श्लो० उपमानप० ३९]	१८६	५
प्रत्येकसमवेताथ विपया [मी० श्लो० वन० श्लो० ४६]	४७५	६
प्रत्येकसमवेतापि [मी० श्लो० वन० श्लो० ४७-४८]	४७५	१५
प्रधानपरिणामः शुक्लं कृष्णं []	२४४-३, २८५	२०
प्रमाणं ग्रहणात्पूर्वं स्वरूपे [मी० श्लो० सू० २ श्लो० ८३]	१५६	९
प्रमाणप्रमेयसंघाय- [न्या० सू० १११११]	६८६	१५
प्रमाणं हि प्रमाणेन- [तत्त्वसं० पृ० ७५९ पूर्वपक्षे]	१७४	१२
प्रमाणतर्कसाधनोपालम्भः [न्यायसू० ११२११]	६४७	९
प्रमाणपञ्चकं यत्र [मी० श्लो० अभाव० श्लो०]	१८९-१५, २६५-२२, २९८	१
प्रमाणभूताय [प्रमाणसमुच्चय श्लो० १]	८०-८, ९५	१४
प्रमाणमविसंवादि ज्ञानं [प्रमाण वा० २११]	३४१	१३
प्रमाणपङ्क्तिविज्ञातो [मी० श्लो० अर्थ्या० परि० श्लो० १]	१८७	१३
प्रमाणस्यागौणत्वादनुमाना- []	१८०	१
प्रमाणेतरसामान्यस्थितेर- []	१८०-५, ३२४	४
प्रमाता प्रमाणं प्रमेयं [न्यायभा० पृ० २]	१६	१८
प्रमातृप्रमेयाभ्यामर्थान्तरं []	२३७	१५
प्रयत्नानेककर्तृत्वात्कार्यसमा [न्यायसू० ५११३७]	६५९	११
प्रयत्नानन्तरं ज्ञानं [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ३१-३२]	४२२	१९
प्रयोगपरिपाटी तु प्रति- []	३७३	१७
प्रसज्यप्रतिषेधे दोषोद्भावना- []	६७४	१६
प्रसिद्धसाधन्यात्साध्य- [न्यायसू० ११११६]	३४७-८, ३७४	१८
प्रसिद्धावयवं वाक्यं [पत्रपरी० पृ० १]	६८४	२८
ग्रहासे मन्यवाचि युष्मन्मन्यते- [जैनेन्द्र० २/१११५३]	६७९	२५
प्रागगौरिति विज्ञानं [आमहाल० ६११९]	४३२	१५
प्रागुत्पत्तेः कारणभावा- [न्यायसू० ५१११२]	६५५	२५
प्रागघोस्ते [जैनेन्द्र० ११२१४८]	६८७	२५
प्राज्ञोपि हि नरः सङ्गमानर्था- [तत्त्वसं० पृ० ८२५ पूर्वपक्षे]	२५२	६
प्राणशक्तिमितिकम्य मध्यमा [वाक्यप० टी० १११४४]	४२	३
प्राभाष्यं व्यवहारेण [प्रमाणवा० ३१५]	२१७-८, ३८३	१४
वाचकप्रत्ययस्त्वावदर्था- [तत्त्वसं० पृ० ७५९ पूर्वपक्षे]	१७४	१४
वाचकान्तरमुत्पन्नं [तत्त्वसं० पृ० ७६० पूर्वपक्षे]	१७५	१
शुद्धव्यवहितमर्थं पुरुषधेतयते []	१००-१०, ३२७	२३
शुद्धादयो ह्यवेदज्ञाः [तत्त्वसं० पृ० ८४० पूर्वपक्षे]	२५०	२३

अवतरणम्	पृष्ठं	पङ्क्तिः
बुद्धितीव्रत्नमन्दत्वे [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २१९]	४१४	१४
बुद्धिरैवातदाकारा [प्रमाणवार्तिकालं० प्रथमपरि०]	२१८	५
बोधोद् बोधरूपता []	३४३	२३
भावान्तरविनिर्मुक्तो []	१६०	१२
भावान्तरात्मकोऽभावो [मी० श्लो० अपोह० श्लो० २]	४३३	९
भावभावयोस्तद्गता [न्यायवा० पृ० ६]	१४	९
भावे भाविनि तद्भावो [सम्बन्धपरी०]	५१०	१७
भिजे का घटनाऽभिजे [सम्बन्धपरी०]	५१०	२१
भिजे चैकलनित्यत्वे [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २७२]	४११	४
भुवनहेतवः प्रधानपरमाण्व- [न्यायवा० पृ० ४५७]	२७०	११
भेदानां परिणामात्समन्वया- [सांख्यका० १५]	२८८	१३
मणिवत्पाचकवद्वोपाधि- [प्रश्न० भा० पृ० ६४]	५६६	२
मन्दप्रकाशिते मन्दा [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २२०]	४१४	१६
महत्सनेकद्रव्यत्वात्प- [वैशो० सू० ४११६]	२७०-५,	५४० ९
महाभूतादि व्यक्तं [न्यायवा० पृ० ४६७]	२६९	२०
मिथ्याधारोपहानार्थं [प्रमाणवा० २१९२]	३२१	१२
मूर्तेष्वेव ब्रह्मेषु [प्रश्न० भा० पृ० ६६]	५६८	१३
मूलप्रकृतिरविकृतिर्मे- [सांख्यका० ३]	२८९	२४
मेयो यद्ब्रह्मभावो हि [मी० श्लो० अभाव० ४५]	१९२	१०
मृत्पिण्डदण्डचक्रादि [तत्त्वसं० पृ० ७५७ पूर्वपक्षे]	१५३	२४
मृत्योः स मृत्युमामोति [बृहदा० स० ४।४।१९, कठ० ४।१०]	६५	३
यज्जातीयैः प्रमाणैस्तु [मी० श्लो० चोदनासू० श्लो० ११३]	२५१	८
यत्र धूमोस्ति तत्राग्निरस्ति- [मी० श्लो० शब्दपरि० श्लो० ८६]	१८४	२१
यत्रापि स्वप्नादस्य [तत्त्वसं० पृ० ७५९ पूर्वपक्षे]	१७४	१६
यत्राप्यतिशयो दृष्टः स [मी० श्लो० चोदनासू० श्लो० ११४]	२५२	१
यत्रैव जनयेदेनां तत्रैवास्य []	३५-१५,	४९२ १२
यथा महत्सं खातायां [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २१७]	४१७	१५
यथा निशुद्धमाकार्षं [बृहदा० भा० वा० ३।५।४३]	४४	१९
यथैवास्ति समिद्धोभिर्भस्म- [भगवद्गी० ४।३।७]	३०९	३
यथैव प्रथमज्ञानं [मी० श्लो० सू० २ श्लो० ७६]	१५५	५
यथैवोत्पद्यमानोऽयं [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ८४-८५]	४२०	१७
यथोचोपपन्नश्छलजाति- [न्यायसू० १।२।१२]	६४७	१३
यदा चाऽशब्दवाच्यत्वात् [मी० श्लो० अपोह० श्लो० ९५]	४३९	६
यदा स्वतःप्रमाणत्वं [मी० श्लो० सू० २ श्लो० ५२]	१७३	२०

अवतरणम्	पृष्ठं	पङ्क्तिः
यदि गौरिलयं शब्दः [भामहार्त्तं ६११७]	४३२	११
यदि पदभिः प्रमाणैः [मी० श्लो० चोदनासू० श्लो० १११]	२४९	१
यद्यपि व्यापि चैकं [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ६८]	४२४	११
यद्यपेक्ष्य तयोरेकमन्यत्रा- [संबन्धपरी०]	५१०	३
यद्येकार्याभिसम्बन्धात्कार्य- [सम्बन्धपरी०]	५१०	५
यद्वास्तुचित्तुव्यावृत्ति- [मी० श्लो० अभाव० श्लो० ९]	१९०	१२
यद्वेदाध्ययनं किञ्चित्तद- [मी० श्लो० पृ० ९४९]	५५७	१२
यस्मात् प्रकरणचिन्ता स [न्यायसू० १।२।७]	३५७	९
यस्य यत्र यदोद्भूतिर्जि- [मी० श्लो० अभाव० श्लो० १३]	१९१	१२
यावत् प्रयोजनेनास्य [मी० श्लो० प्रति० सू० श्लो० २०]	३	१३
युगपञ्ज ज्ञानानुत्पत्तिर्मेनसो [न्यायसू० १।१।१६]	१८	८
युगान्तकालप्रतिसंहता- [शिशुपालव० १।२३]	६८८	१
युज्यते नाधिपक्षे च [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २४१]	४०६	८
ये तु मन्त्रादयः सिद्धाः [तत्त्वसं० पृ० ८४० पूर्वपक्षे]	२५१	१
येऽपि सातिशया दृष्टाः [तत्त्वसं० पृ० ८२५ पूर्वपक्षे]	२५२	४
योगोपाधी न तावेव [सम्बन्धपरी०]	५१०	९
यो यो गृहीतः सर्वस्मिन्देसे [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १७१]	४०७	१
यो चेदाश्च ग्रह्णिोति [श्वेता० ६।१८]	३९२	१९
रजोऽनुपे जन्मनि सत्त्व- [कादम्बरी पृ० १]	२९८	१७
रूपरसगन्धस्पर्शाः संख्या [वैशे० सू० १।१।६]	५८७	५
रूपश्लेषो हि सम्बन्धो [सम्बन्धपरी०]	५०५	१२
लक्षणयुक्ते बाधासम्भवे [प्रमाणवार्तिकार्त्तं]	५८२	९
रूपं कान्तौ [पा० बाहु पा० भ्वा० ८८८]	६८८	७
लिखितं साक्षिणो शुक्तिः [याज्ञव० स्मृ० २।२२]	८	१८
स्रोत्यायासपपसे एकैके [द्वयसं० गा० २२ (१)]	५६५	६
चक्रत्रेभ्यो वेदास्तस्य []	३९२	१७
वचनविघातोर्थविकल्पोपपत्त्या [न्यायसू० १।२।१०]	६४९	१४
वटे वटे वैश्रवणः []	३९२	१४
वरिससयदिविख्याए []	३३०	२४
वर्णक्रमनिर्देशवधिरर्थ- [न्या० सू० ५।२।८]	६६६	११
वर्णान्तरजनी तावत्तत्पदत्वं [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २१२]	४१६	१
वर्णोऽनवयवत्वानु [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २१३]	४१६	३
वस्तुत्वे सति चार्थ्यं [मी० श्लो० उप० श्लो० ३४]	३४६	३
वस्तुऽसङ्करसिद्धिश्च [मी० श्लो० अभाव० श्लो० २]	१९०	१७

अवतरणम्	पृष्ठ	ङ्किः
भाभूपता चेटुक्कमेदवबोधस्य [वाक्यप० १।१२५]	३९	१०
वादिप्रतिवादिनोर्यत्र []	३७४	१५
विकल्पोऽवस्तुनिर्भासः []	३१	१७
विग्गहगड्भावण्णा केवळिणो [जीवकाण्डगा० ६६५ आवकप्रज्ञ० गा० ६८]	३००	२६
विज्ञातस्य परिषदा त्रिरभि- [न्यायसू० ५।२।१६]	६६९	१
विदु लामे [पा० घातु पा०]	६८९	१
विघृतकलनजाजल [प्रमाणवा० ३-२८१]	३४	१३
विप्रतिपत्तिरप्रतिपत्ति- [न्यायसू० १।२।३९]	६६३	८
विशेषेऽनुगमामावः सामान्ये []	१७७	१६
विश्वतश्चक्षुरत विश्वतो [श्वेताश्वत० ३।३]	२६४-२०, २६८	१३
विषयस्यापि संस्कारे [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ८३]	४२०	१५
विषयेण हि बुद्धीनां [मी० श्लो० लाङ्कति० श्लो० ३७]	४७४	१०
वेदाभ्ययनं सर्वं गुर्व- [मी० श्लो० अ० ७ श्लो० ३५५]	३९६	१९
वृक्षाद्यभिहतानां च [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १११]	४२७	७
व्यक्तिनन्मन्यजाता चेदागता []	४७४	३
व्यक्तिनाशे न चेन्नष्टा []	४७४	५
व्यक्तिनित्यत्वमापन्नं तथा [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २७३]	४११	६
व्यक्तेर्जात्यादियोगेपि []	४७४	७
व्यत्यल्पत्वमहत्त्वे [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २१४]	४१६	२५
व्यङ्ग्यानां चैतदस्तीति [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २१५-२१६]	४१६	३२
व्यञ्जकानां हि वायूनां [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० ७९]	४२३	५
व्यवहारानुकृत्यास्तु प्रमा- [लघी० का० १५]	६७८	१३
शक्यः सर्वभावानां कार्या- [मी० श्लो० शून्य० श्लो० २५४]	५१३	२६
शक्यस्य सूचकं हेतुवचो- [प्रमाणवा० ४।१७]	४४९	१०
शङ्कः कदल्यां कदली च []	६६७	११
शब्दं तावदनुच्चार्ये [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २५६]	४१०	२३
शब्दः स्वसमानजातीय- []	२३०	२६
शब्दत्वं गमकं नात्र [मी० श्लो० शब्दपरि० श्लो० ६४]	१८४	७
शब्दस्यागमनं तावददृष्टं [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १०७]	४२६	२४
शब्दाद्बुदेति यज्ज्ञानमप्र- []	१८३	५
शब्दानित्यत्वोक्तौ नित्यत्व- [न्यायसू० ५।१।३५]	६५९	१
शब्दाङ्गिभ्राद्वा विशेषप्रतिपत्तौ []	२१७	३
शब्दे दोषोद्भवत्त्वावद्- [मी० श्लो० सू० २ श्लो० ६२] १७५-१२, ३९७	१५	

अवतरणम्	पृष्ठं	पङ्क्तिः
शब्देनागम्यमानं च [मी० श्लो० अपो० श्लो० ९४]	४३८	१७
शब्दे वाचकसामर्थ्यं ततो [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २३९]	४०६	२
शब्दे वाचकसामर्थ्यात्तन्विलस- [मी० श्लो० अर्था० श्लो० ५६]	१८८	१८
शब्दोत्पत्तेर्निषिद्धत्वाद- [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १२६-१२७]	४१८	२०
शब्दो वर्तत इत्येव तत्र [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १७२]	४०७	३
शावलेयाश्च भिन्नत्वं [मी० श्लो० अपोह० श्लो० ७७]	४३५	५
शाकस्य तु फले ज्ञाते []	३	१०
शिरसोऽवयवा निम्ना [मी० श्लो० अपो० श्लो० ४]	१९०	२१
शुद्धाच्छूद्रसम्पर्काच्छू- []	४८३	२४
श्रोता ततस्ततः शब्द- [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० १७५]	४०७	११
श्रोत्रधीक्षाप्रमाणं [मी० श्लो० सू० २ श्लो० ७७]	१७०	७
वण्णामाभितलम् [प्रश्न० भा० पृ० १६]	६१६-१६, ६२१	२८
संख्या परिमाणानि पृथक्त्वं [वैश्वे० सू० ४१११११]	५८९-११, ६०१	२१
संयोगजननेपीथौ ततः [सम्बन्धपरि०]	५१०	२९
संयोगिसमवाद्यादिसर्वेभे- [सम्बन्धपरि०]	५१०	२३
संवादस्याय पूर्वैण []	१५५	१०
संख्या सर्वतश्चिन्तां स्तिमिते- [प्रमाणवा० ३११२४]	३२	७
स एवेति मतिर्नापि [मी० श्लो० स्फोटवा० श्लो० १८]	४२६	१०
स चेदगोनिवृत्त्यात्मा [मी० श्लो० अपोह० श्लो० ८४]	४३६	११
सत्त्वं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म [तैत्ति० २११]	६६	८
सदृशालात्प्रतीतिश्चे- [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २४८-४९]	४१०	१२
स घर्मोऽभ्युपगन्तव्यो [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २४०]	४०६	६
सम्बद्धं वर्तमानम् [मी० श्लो० प्रत्यक्ष० श्लो० ८४]	५३	८
सम्बन्धज्ञानसिद्धिक्षेपुर्वं [मी० श्लो० शब्दनि० श्लो० २४३]	४०६	१२
सम्भवतोर्थस्यातिसामान्य- [न्यायसू० ११२१३३]	६५०	११
सम्यग्ज्ञानपूर्विका सर्वपुरुषार्थ- [न्यायलि० ७११]	७	९
सरागा अपि वीतरागवन्ने- []	३२४	३१
सर्गादौ पुरुषाणां व्यवहारो- []	२७०	७
सर्वं खलिवदं ब्रह्म [भैरव्यु०]	४६-१७, ६४	१९
सर्वचित्तचैतानामात्म- [न्यायलि० पृ० १९]	२९	११
सर्वज्ञसदृशं कश्चिद्यदि [तत्त्वसं० पृ० ८३८ पूर्वपक्षे]	२५०	१९
सर्वज्ञोक्ततया वाक्यं [तत्त्वसं० पृ० ८३२ पूर्वपक्षे]	२५०	१५
सर्वज्ञो हृदयते तावच्चेदा- [मी० श्लो० चोदनासू० श्लो० ११७]	२५०	४
सर्वज्ञो नावबुद्धश्च येनैव [मी० श्लो० चोदनासू० श्लो० १३६]	२५४	२७

अवतरणम्	पृष्ठं	पङ्क्तिः
सर्वज्ञोऽयमिति ह्येतत्तत्काले- [मी० श्लो० चोदनासू० १३४]	२५४	२३
सर्वप्रमातृसम्बन्धिप्रत्यक्षा- [तत्त्वसं० पृ० ८२० पूर्वपक्षे]	२५३	३
सर्वस्यैव हि शास्त्रस्य [मी० श्लो० प्रतिज्ञासू० श्लो० १२]	३	४
सविज्ञेयैव हेतुध्वस्त- [मी० श्लो० शब्दानि० श्लो० १७७]	४०७	२०
सर्वेऽप्यनियमा ह्येते []	२१-३, ३८२	१८
सर्वे भावाः स्वभावेन [प्रमाणवा० १।४१]	४८०	२१
सर्वेषां युगपत्प्राप्तिः []	५२६	१६
स वेत्ति विश्वं न हि तस्य [श्वेताश्वत० ३।३]	२६४	२२
सा ते भवतु सुप्रतीता []	३९५	१६
सादृश्यस्य च वस्तुत्वं [मी० श्लो० उपमानपरि० श्लो० १८]	१८५	१७
साधनं सिद्धिः तदङ्गं [वादन्या० पृ० ५]	६७१	२७
साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां प्रत्यवस्थानं [न्यायसू० १।२।१८]	६५१	१७
साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां प्रत्यवस्थानस्य [न्यायभा० ५।१।१]	६५१	२०
साधर्म्यवैधर्म्यात्कर्षोपकर्ष- [न्यायसू० ५।१।१]	६५१	२३
साधर्म्यांस्तुल्यधर्मोपपत्तेः [न्यायसू० ५।१।३३]	६५८	१६
साधर्म्येण हेतोर्वचने [वादन्या० पृ० ६५]	६७२	२७
साध्यदृष्टान्तयोर्धर्म- [न्यायसू० ५।१।४]	६५३	७
साध्यधर्मप्रत्यनीकेऽत्र [न्याय० सू० ५।२।२]	६६३	१५
सान्तो विधिरनित्यः []	६८८	५
सामान्यघटयोरिन्द्रियकत्वे [न्यायसू० ५।१।१४]	६५६	६
सामान्यप्रत्याक्षाद्विशेषाप्रत्य- [वैशेष० सू० २।२।१७]	२३४	५
सामान्यवच्च सादृश्यमेकै- [मी० श्लो० उपमा० श्लो० ३५]	३४६	५
सामान्यविज्ञेयात्मा तदर्थः [परीक्षासू० ४-१]	१७८-२०, ४४५	२
सामान्यविषयत्वं हि [मी० श्लो० शब्दपरि० श्लो० ५५]	१८३	२३
सिद्धक्षानौरपोद्धत गोनिषेध- [मी० श्लो० अपोह० श्लो० ८३]	४३६	९
सिद्धान्तमभ्युपेक्षा- [न्या० सू० ५।२।२३]	६७१	६
सिद्धार्थं सिद्धसम्बन्धं [मी० श्लो० प्रतिज्ञासू० श्लो० १७]	३	१
सूर्यस्य देशभिन्नत्वं न [मी० श्लो० शब्दानि० श्लो० १७६]	४०७	१८
स्थानेषु विद्यते वायौ [वाक्यप० टी० १।१।४४]	४२	१
स्थिरवाच्यवपनीत्या च [मी० श्लो० शब्दानि० श्लो० ६२]	३१९	३
स्याच्छब्दस्य हि संस्कारा- [मी० श्लो० शब्दानि० श्लो० ५२]	४१९	१
स्वतः सर्वप्रमाणानां [मी० श्लो० सू० २ श्लो० ४७]	१५३	१०
स्वदेशमेव गृह्णाति [मी० श्लो० शब्दानि० श्लो० १८१]	४०८	९
स्वपक्षसिद्धेरेकस्य []	६७१	१७

अवतरणम्	पृष्ठं पङ्क्तिः
स्वप्ने दोषाभ्युपगमात् [न्यायसू० ५।२।२०]	६७० १
कामावेप्यभिनाभावो [प्रमाणवा० १।४०]	३५० १०
स्वरूपव्योक्तिरेवान्तः [वाक्यप० टी० १।१४४]	४२ ५
स्वरूपसंरचनान्नेन न [मी० श्लो० अपोह० श्लो० ८७]	४३८ ६
स्वप्नवेतानन्तरज्ञानवेद्य- []	१८३ ३
स्वान्तभासितभूलाद्यभ्य- []	६८५ १७
हसति हसति [वादन्या० पृ० १११]	६६८ १६
हिरण्यगर्भं [ऋग्वेद अष्ट० ८ मं० १० सू० १२१]	२६४ २३
हिरण्यगर्भः समवर्त्ततामि [ऋग्वेद अष्ट० ८ मं० १० सू० १२१]	३९९ १८
हीनमन्यतमेनाप्यवयवेन [न्यायसू० ५।२।१२]	६७०--१६; ६७४ २६
हेतुमदनिस्समव्यापि [सांख्यका० १०]	२८६ २२
हेतुदाहरणाधिकमधिकम् [न्यायसू० ५।२।१३]	६७० २३
हेतोस्त्रिष्वपि रूपेषु [प्रमाणवा० १।१६]	३५४ १३
हेलाभासाश्च यथोक्ताः [न्यायसू० ५।२।२४]	६७१ १०



३ परीक्षासुखगतानां लाक्षणिकशब्दानां सूचिः ।

अकिञ्चित्कर	६१३५	पर्याय (विशेष)	४८
अनुमान	३११४	प्रत्यक्ष	२१३
अचैकान्तिक	६१३०	प्रत्यभिज्ञान	३१५
अन्वयदृष्टान्त	३१४८	प्रत्यभिज्ञानाभास	६१९
अपूर्वार्थ	११४,५	प्रमाण	१११
अविनाभाव	३११६	प्रमाणाभास	६१२
असिद्ध (हेलाभास)	६१२२	फलाभास	६१६६
आगम	३१९९	वालप्रयोगाभास	६१४६
आराभास	६१५१	मुख्य (प्रत्यक्ष)	३१११
उपनय	३१५०	योग्यता	३१९
ऊर्ध्वता (सामान्य)	४१५	विरुद्ध (हेलाभास)	६१२९
ऊर्ध्व	३१११	विषय	४११
कमभाव	३११८	विषयाभास	६१६१
तदाभास (प्रमाणाभास)	६११	वैशद्य	३१४
तदाभास (प्रत्यक्षाभास)	६१६	व्यतिरेक	४१९
तदाभास (परोक्षाभास)	६१७	व्यतिरेकदृष्टान्त	३१४९
सर्कोभास	६१०	सहभाव	३११७
तिर्बन्ध (सामान्य)	४१४	साध्य	३१२०
धर्मा	३१२७	संख्याभास	६१५५
निगमन	३१५१	सांख्यव्यवहारिक	३१५
पक्षाभास	६११२	स्मरणाभास	६१८
परार्थ (अनुमान)	३१५५	स्पृष्टि	३१३
परोक्ष	३११	हेतु	३११५

४ प्रमेयकमलमार्त्तण्डगतानां लाक्षणिक-
शब्दानां सूचिः ।

अंगहारस्फोट	४५७	२०	नयामास	६७६	१४
अतीत	४९१	१५	निश्चय	२७	१८
अनागत	४८१	१५	नैगम	६७६	२०
अनुपक्रम	२४४	२६	नैगमाभास	६७७	१०
अनैकान्तिक	६३७	१७	पत्र	६०४।११,१९	
अध्यक्ष	५४६	१०	पद	४५८	६
अवक्षेपण	६००	१८	पदस्फोट	४५६	१०
अद्विष्टपरिहार	२७	४	पर्यायार्थिक	६७६	१७
आकुञ्चन	६००	२१	परिशेष	६१३	४
इष्ट	३७०	२५	पद्यन्ती	४१	१६
उत्क्षेपण	६००	१४	पादस्फोट	४५७	१८
ऋजुसूत्र	६७८	१६	प्रध्वंसभाव	२१५	१
औपक्रमिकी	२४४	२५	प्रमाण	२७	२०
करणल	९	१५	प्रमाणसप्तभंगी	६८२	१०
करणस्फोट	४५७	१९	प्रसारण	६००	२२
कर्तृता	९।१३; ११३।४;		प्रागभाव	२१४	१६
	२६७।२७; २७६।१		प्राप्ति	२५	१८
कर्तृत्व	५३६	१३	प्रामाण्य	१६३	१२
कर्मत्व	९	१४	वाचक	७६	१
कारक	११६	१३	वाच्य	७६	१७
गमन	६००	२३	भावनाज्ञान	३३७	२
चिन्तामयी	२४६	२८	भावेन्द्रिय	१५।२५; २२९।२८	
जन्म	५३६	१५	भोक्तृत्व	५३६	१४
जाति	६५१	१८	सध्यमा	४१	१५
जीवन	५३६	१५	मरण	५३६	१५
तदाभास (ऋजुसूत्र)	६७८	२२	मात्रिकास्फोट	४५७	१९
द्रव्यार्थिक	६७६	१६	मोक्ष	३३४	५
द्रव्येन्द्रिय	२२९	२४	लब्धि	१२२।५; २१९	२९
नय	६७६	१६	वाक्य	४५८	७
नयसप्तभंगी	६८२	१२	वाक्यस्फोट	४५६	११

१ परिशिष्टेष्वेषु प्रथमोऽङ्कः पृष्ठसंख्यां द्वितीयश्च पङ्क्तिसंख्यां सूचयति ।

लाक्षणिकशब्दसूचिः

७२३

विरोध	२२	९	संशय	४७१२३; ४९११०; ५२६१९;	
विसंवाद	६४२	१७		५३२१२८	
वैखरी	४१	१३	सप्तमंगी	६८४	१३
व्यञ्जक	११६	१२	समभिरूढ	६८०	६
व्यवहार	६७७	२६	समर्थन	३७६	१६
व्यवहाराभास	६७	९	समवायिकारण	५३७	२६
शब्दनय	६७९	१	समारोप	२७	१५
श्रुतमयी	२४६	२५	संवाद	६०	७
संकर	५२६	१६	सांव्यवहारिक	२२९	१७
संमह	६७७	१४	साधकतम	१४	८
संमहाभास	६७७	२४	सूक्ष्मा	४१	१६
			हस्तस्फोट	४५७	१८

५ प्रमेयकमलमार्तण्डनिर्दिष्टाः ग्रन्था ग्रन्थकृतश्च ।

अकलहृदेव	६११४	प्रमेन्दु	११४
अद्वैतादिप्रकरण	८०१९	प्रशास्त्रमति	२७०१७
अविद्वक्त्र	२६९१२४	भट्ट	२५१११; ४७४११८;
उद्योतकर	२७०१११; ४७६१९;	भारतादि	५२११२४
६१४११९; ६५९१२५; ६६४१७		भाष्य	३९६१२५
सपनर्ष	४६४११४	भाष्य (न्याय)	४२९१६
कादम्बर्यादि	३९३	भाष्यकार	२३७११५
कुमारिल	१८७११२; ४०८१६;	मन्वादि	१८७११२
	४७४१९	माणिक्यनन्दिन्	४०१
जीवसिद्धिप्रघटक	७३११		११७; ६७४१४;
जैमिनि	२५११२५; २६२१८	रत्ननन्दिन्	६९४१२, ९
सारवोपल्लववादिन्	६४८१२०	रामायणादि	६९४११२
दिग्गज	८०१९; ४३६११६	मार्तिककार	२५८१२
द्विसन्धानादि	४०२१९		२६९११९; २८३११९;
धर्मकीर्ति	७१८		६५२११४; ६३४१३
न्यायभाष्यकार	६५११२०; ६५२११९;	विद्यानन्द	१७६१६
	६६३१२५	वेद	२६२१२
पदार्थप्रवेशकग्रन्थ	१३११९	वैद्यकादिशास्त्र	५९८११
पद्मनन्दसैदान्त	६९४१११	वैशेषिकशास्त्र	६०९१३
परीक्षामुख	३९३११; ६९४१७	व्यास	२६८१२०
पाणिन्यादि	३९५	समन्तभद्र	१७६१४
प्रज्ञाकर	३८०११७	सूत्र	४२९१६; ५८९१११
प्रभाकर	२०१४; ५६१२, ७;	सूत्रकार	६५११२६
	१२८११	स्मृतिपुराणादि	३९२१२१
प्रभाचन्द्र	६९४११२		

६ प्रमेयकमलमार्त्तण्डगताः कैचिद्विशिष्टाः शब्दाः ।

अंगुल्यभ्रे हस्तियूयशतमास्त्रे १२८	८	अञ्च वै प्राणाः	८ १२
अजनतिलकमन्त्रायस्का-		अन्यापोह	४३१; ४४१।१०
न्तादि	५७३ ६	अपमृत्युरहित	३०६ २३
अकलद्वायं	२।७; १७६।३	अप्रमत्त	३०६ १३
अक्षर	२९।१६; २६८।१५	अप्रामाण्य	१६३ १३
अक्षिपद्मनिमेष	३०२ १३	अवाधितविषयल	३५८ २६
अभिपाषाणादिशब्दश्रवण	४६ १५	अभावदोष	५३६ ८
अभिप्रवीपगङ्गोदकादि	६२० ३	अभेदवादिन्	७० ६
अभिहोत्रादि	२६२ ९	अमूल्यदानकर्मिन्	५४६ १३
अचेलसयम	३३० १७	अयःशलाकाकल्प	५०४ २०
अजाजिन	६६७ ४	अयस्कान्त	५८५ ६
अक्षीन्द्रियार्थवेदिन्	५८ २	अयोगोलकादिवाम्नेः	१०१ १
अत्यन्तोपकारकमृत्य	११२ ६	अर्थक्रियाकारिस्त्वन्माद्युप-	
अद्वैत	७० ९	लब्धि	७९ ७
अद्वैतप्रतिपादकागम	७२ ११	अर्थतयालपरिच्छेदरूपा-	
अधीतानभ्यस्तशास्त्रवत्	५९ १३	धाक्ति	१५३ ७
अनन्तपर्यायचेतनद्रव्य	७० १४	अर्थप्रधाननय	६८० २७
अनन्तप्रमात्मान्नाप्रसक्तिः	१७ ६	अर्थवाद	७० १७
अनन्तमुखवीर्यं	३०६ २४	अर्धजरतीयन्याय १०४।१६; १०५।४	
अनन्तानुबन्धिकोषादि-		अर्हत्प्रणीतागमाश्रयणप्रसंग २४८ १४	
परमप्रकर्ष	२४५ २५	अर्हदादि	३३१ ४
अनवस्था	५२६ २१	अर्हन्	२५६ ११
अन्तरंगप्रन्थ	३३२ २०	अवग्रहेहावायधारणास्मृत्या-	
अन्तरङ्गचहिरप्रानन्तज्ञान-		दिचित्रस्वभावता	३३६ २५
प्रातिहार्यादिभ्री	७ १२	अविद्या	६६ ११
अन्तरामवशरीर	३१४ ४	अज्ञाक्यनिवैचनल	८२ ४
अन्तरायविषये	३०६ ४	अज्ञुमप्रकृति	३०३ २५
अन्तर्गडुना	१४।१६, ३३।१०	अज्ञुतकाव्यादि	४०२ ५
अन्तर्गडुना पीडाकारिणा	७१ १२	अश्वविषाण	५०४ ५
अन्तर्व्योमिः	१९४ १६	अ छ क	३९३ २०
अन्ध	२३ ६	असंयतसम्यग्दृष्ट्यादि	२४५ २२
अन्धपरम्परा	२१६ ४	असत्कार्यदर्शनसमाश्रयण	१५३ १३
अन्धसर्पबिलप्रवेशन्याय	४६।१७;	असमवायिकारण	५३७ २८
	५३०।७	असातवेदनीयोदय	३०३ १

असाधारणनैकान्तिक	३५५	५	उपचार	११२	१०
अहमदमिकया प्रतीयमान	७२	१७	ऊर्णनाम	६५११;	७२
आकलङ्क	६	१०	ऊहापोहविकल्पज्ञान	३५२	८
आकर्षकाख्यायस्कान्त	५७५	२८	ऋद्धिविशेषहेतु	३३०	८
आगम	६३१	२१	एकं सन्धित्सोरन्यत् प्रच्य-		
आगमप्रामाण्यवादिन्	७०	१७	वते	६१६	१३
आचार्य	२१०;	७३;	एकाकारता	६८	६
	३६७।२२		एकान्तवादिन्	६३।२२;	१४८।९;
आत्मश्रवणमननध्यान	६६	१९		५१६।१	
आत्माद्वैत	६४।१५;	७०।७	एकेन्द्रियाण्डजत्रिदशादि	३००	२४
	३१६	२	एवम्भूत	६८०	१२
आदर्शादि	१०२	११	औदारिकशरीरस्थिति	३०१	२
आयुःकर्म	३०२	९	औशनस	४५४	१५
आर्यो	३३०	२४	कंसपाण्यादिध्यान	५५०	१२
आशुवृत्त्या यौगपथाभिमान	१३९	१४	कठकलापादि	४८३	१
आसयोगकेवलिन्	३००	१८	क पि ल	६३५	
आहार	३००	२१	करणकुशलादि	६३	१८
आहारकथा	३०६	१३	करतलरेखादिक ३८१।१०;	३८२।२०	
आहारिन्	३००	२७	कर्कटिकादि	२०२।१;	५०२।२५
इक्षुक्षीरादिमासुर्यतारतम्य	१७४	१३	कर्कादिव्यक्ति	४६९	२१
इन्द्रधनुष	४६८	१०	कर्मकर्तृकरणकिया	८५	१९
इन्द्रियसंस्कार	४२४	५	कवलाहार	३००	९
ईश्वर	५७३	१५	काकदन्तपरीक्षा	२	१८
उत्कलितत्वमात्र	१३१	११	काकस्य	काष्ण्याद्धवलः	
उत्कृष्टध्यान	३३४	३	प्रासादः	२१७	२१
उत्तन्मकमणि	१९८	४	काकैर्मक्षितम्	२१४।११;	२३५।१;
उत्पेतननिपतनव्यापार	१३८	१९		५२९।२५	
उत्पादकिका	४७७	११	काचकामलादिदोषलक्षणवि-		
उद्वेगशक्तिः	१५३।१८;		शिष्टचक्षुरादि	१५०	१३
	६५९।२९;	६६४।७	काचाश्रकादिब्यवहितार्थ	३७	१
उन्मत्तकरिजनितोन्माद	२४३	१०	काण्वमाष्यन्दिनतैत्तिरीया-		
उपचरितोपचार	६८५	४	दयः शंखानेदाः	३९२	२१
उभयसंस्कार	४२४	३०	कात्यायनाथनुमानातिशय	३५१	२४
उभयदोष	५२६	१४	कापिल	२८।१३;	२८५।२५;
उपयोग	२३०	१	कामलाद्युपहतचक्षुषः श्ले-		
उपाध्यायज्ञान	३१४	६	शंखे पीतज्ञानम्	१०९	९

काव्यनिबिद्धकर्म	३०९ २४	शुद्धवराहपिपीलिकादिप्रत्यय	२५१।२२; २५८।३
कायाकारपरिणतभूत	११८ १४	शुद्धस्य	३३१ ५
कालप्रत्यासत्तिः	५०२ ८	गोत्रस्वल्पन	४४९ २०
कुण्डलादिषु सर्पवत्	५२२ २	गोमयादि	११८ ९
कुर्वेक्षेत्रलंकाकाश	५६५ ३	गोमांस	६३२ ३
कुल्याजल	५५१ २३	गोलकायामय	२२२ ९
कुष्ठिनीक्रीवत्	३१६ ८	घटप्रामारमादि	७३ १३
कुसुल	२८३ ३	घटाथवच्छेदकमेद	६७ २
कुर्मरोमादि	७५ १०	घातिकर्मचतुष्टय	२५९ ६
कुतनावाकृतान्भ्यागंभदोष	५२१ १८	घृतादिना च पादयोः	
कृत्तिकोदय	३२९।६; ६५४।१७	संस्कारे	२२२ १०
कृषीबलादि	१६७ १४	चतुरङ्गवाद	६४५ १३
कैवल्यिन्	२९९।३०; ३०१।१४	चन्द्रकान्त	६५१; ५४७।१९
केशीण्डुकक्षान	२३३।८; २४०।१९	चन्द्रार्कादिविषय	२६ ७
केशीण्डुकादिकादि	६३ ७	चाण्डालादि	४८६ १९
कैटभद्रिष्	६८८ २	चार्याक	१८० १
कौपीन	६६१।१६; ६६९।२४	चार्याकमत	५७१।१; ५७९।१४
क्रियाविशेषयज्ञोपवीतादि	४८६ ७	चित्रकूट	२१३ १५
क्षणक्षयस्वर्गप्रापणशक्ति	५०३ ९	चित्रज्ञान	९२ ३
क्षत्रियमिहृशुद्ध	४८७ १०	चित्रपठ्याविज्ञान	६९ १४
क्षर	२६८ १५	चित्रसवेदन	५१४।२२; ५१६।५९
क्षायिक	२४५ २७		५२०।२२
क्षान्योपधामिक	२४५ २६	चित्राद्वैत	९५ ३
क्षररदित	२८ ११	चित्रैकज्ञान	५४६ १८
क्षरनिषाण	६१७	चोदना	२५३ २०
क्षरशृंग	५०५ १७	चोदनाञ्जलिताडुद्धि	१७५ २१
खात्पतिता नो रजदृष्टिः	६९० ३०	अपादुष्यसन्निधानोपनीत-	
खै पुष्पसंसर्ग	५४ २	स्फटिकरकिमा	१०१ ११
गजज्ञान	१६६ ६	जलनिमग्नमहाकायगजादि	५४० २१
गण्डक	३४७ २०	जलादेर्मुष्पाफलादिपरिणाम	२३० ६
गतसर्पस्य दृष्टिकुहनन्याय	६३।६; ७६।१२	जाततैमिरिक	१५९ १८
गर्दभाश्वप्रमंवापस्य	४८३ २१	जाततैमिरिकप्रतिभासविषय	५७ ६
गिरितसपुरल्लादि	४३।८	जिन	३०५ १८
शुभब्यतिरिक्त शुभी	१६८ १३	जिनपतिमंत	२९२ ९
शुद्ध	६३४ ६	जिनपतिमताद्गुचारिन्	३७७ ५

जैन	१११३; ९३१६; ३७०१३;	दूरे पर्वतः निकटो महीषो	
	४२६११७,२०; ४८६१६; ६८५१६	बाहुः	१०३ १४
जैनमत	१४५१६; ४५९१२२; ४६५१९	देवमनुष्य	७१ ६
ज्ञानाग्नि	३०९ ४	देशप्रत्यासक्तिः	५०२ ७
ज्ञानाद्वयादि	६१७ २८	देशसंनमिन्	३३० १८
तत्त्वचतुष्टय	१११ ४	देवरक्षा हि किञ्चुका केन रक्ष्यन्ते	
तद्धितोत्पत्ति	५२५ २३	दोष	७५ २
तन्त्राद्युपयोगजनितविशिष्टा-		द्विचन्द्रादि	१६३ ८
मिरति	२४२ ११	द्विचन्द्रादिप्रत्यय	५७ ६
तपोदानादिव्यवहार	४८६ ६	द्विचन्द्रादिवेदन	२८५; ३०११७
तिमिर	४५ १३	द्विचन्द्रादिवेदन	५८११; ६२११०;
तिमिराद्युपहतचक्षुष्	३७ १७	७९; १०२३	
तिमिरोपहत	४४ १९	द्वैतिम्	६७ ४
तिर्यग्दृष्ट्यादिसंयम	३३ ११	धत्तृकाद्युपयोगिन्	२४२ २७
तुरग्नोत्तमाग्ने श्मश्रू	४ १८	धनुःशास्त्रप्रदन्तादि	५८८ २२
तुलान्त	४९७ ३	धर्माधर्मद्वय	६३३ १७
दुद्धिच्छेदादि	१६९ ४	धूपदहनादिभाजन	५३४ ८
तमिरिकप्रतिभास	७८ १	धूमपटिका	२७७ ४
तमिरिकस द्विचन्द्रदर्शन	८६११;	ध्यामलितवृष्ट्यादिवेदन	२२० १.
	९३११२	नखकेनाद्युष्ट्यादि	३०२ १३.
तोयशीतस्पर्शव्यञ्जनकथात्म-		नङ्गलोदक पादरोगः	८ १६
वयमिवत्	२३० १७	नयुंसक	३३३ २८
त्रयीमय	२९८ १९	नवीद्वीपदेशखर्गापवर्गादि	४४८ १९
त्रिगुणात्मन्	२९८ १९	नराक्षरःकपालं	६३१ २४
त्रिचक्षुरपिच्छग्रहण	३३२ १४	नर्तकीक्षण	६३३ २९
त्रैक्य	३५४	नर्मदागीर्	५५१ २३
दण्डकवाटप्रतरादि	३०३ २९	नागकर्णिकाभिसर्दकरत-	
दधित्रयुसादयः	४६९ ६	स्वत्	२३० ९
दशदाडियादि	४५०११; ६६७४	नागवल्लीपत्र	४८४ ६
दिवोच्छ्वादिवेदन	२१८ २१	नाटकदिशेषणा	६७३ २
दिव्यपरमाद्यु	३०२ ११	नारकादिदुःखितप्राग्नि	७१ ३
शीर्षशाकुलीमक्षण	१८१६; २८१६;	नारिकेलद्वीप	५१८ १
	१२६११८	निग्रहस्थान	६६३ ९
शीर्षस्त्रापवात्	१०४ १	निसानिरंशान्यापिन्	७२ ९
शुग्धादि	६३२ ३	निस्यवैमित्तिक कर्म	३०९ २३
		निन्दावाद्:	७९ ५

निमग्नये आकरणवद	६२५	१२	पुथिव्यादिभूतचतुष्टय	११७	१
निराश्रवन्वित	५०१	२४	पौराणिक	३९२	१७
निरुपाख्य	२०५	१५	प्रकरणसम	३५७	
निर्जीविकादिचक्षुष्	२५८	२४	प्रकालिताशुचिमोदकपरि-		
निम्नकीटोद्भादि	५	६	त्यागन्याय	२८१	२४
नीलकुवलयसूक्ष्मांश	९७	६	प्रक्रियोद्घोषण	२१६	३
नीलोत्पलादि	१६५	१२	प्रतिकर्मव्यवस्था	८६	२०
नृपत्यादेरतिभोगिनः	३१९	२२	प्रतिबन्धकमणि	१९८	६
नैयायिकमत	३४७	१	प्रतीतिभूधरसिखरारूढप्रामा-		
नैयायिकादि	९२	१२	रामादिप्रतिभास	९७	१४
नैयायिकाभ्युपगतषोडशप-			प्रवीप	१३५	७
दार्थ	६२३	७	प्रधान	९९	१
नैयायिकसानैयायिकता	६६३	५	प्रभाकरमत	५६	१७
न्यायवेदिन्	४५९	६	प्रमतगुणस्थान	३००	४
पथिकाभि	११८	१३	प्रमाणसम्बन्ध	६७०	२४
पद्मनालतन्दु	५८६	१६	प्रमाणसम्बन्धवादिता	५९	४
परधातकर्म	३०३		प्रमाणान्तरवादिन्	१८३	६
परमचारित्रपद	३०५	२८	प्रमेयद्वैविध्य	१८०	१४
परमनैर्ग्रन्थ	३३२	१७	प्ररोह	६५	२
परमोदारिकशारीरस्थिति	३०१	७	प्रश्नमन्त्रादिसंस्कृतचक्षुष्	२५८	२३
प र छ रा म	४८६	८	प्रसङ्गविपर्यय	२५२	१९
परस्परपरिहारस्थिति	५३३	२१	प्रसङ्गसाधन	५४४	१४
परीषद्	३०६	२६	प्राणिभक्षणलम्पव्य	७२	३
पल्लपिण्ड	६६७	४	प्रातिभज्ञान	२५८	११
पशु	२७	२	प्रागण्य	१६३	
पाटलादिकुसुम	५६८	८	प्राशिक	६४९४; ६६०	
पाटलिपुत्र	२१३	१५	फणिककुलयोरिव	५३४४	
पारदारिकनदीनवद्या	३०७	१२	जडवा	४८३	२१
पारिमाण्डल्य	५८७	१९	नदरासकवद	५२५	२१
पिच्छौषवादि	३३३	१३	बधिर	४३	१७
पिण्डखर्जूर	१८४	१४	बलनत्सुक्यप्रेरितसुहृदाद्यभि-		
पितापुत्रवद	५२५	२१	घात	२१५	२६
पिशाचादि	२७७		बन्धुघातक	५३३	२२
पिष्टोदकगुणघातक्यादि	११५१४; ११७१२		बह्वलतमःपदलपदावगुणित-		
	३३८	२२	- विग्रह	११२१८; ११९१९	
पुंवेद			बहिरहमन्य	३३२	२०

भाषककारणदोषहानं	१५६ १४	मदसाजितव्	११५११४; ११७१२
बा हु ब लि प्रद्युति	३०२ ८	मनुष्यपारावतमलीवर्द	२२५१८
बीजाङ्कुरमव्	४४२ ६	मनोःज्ञानादि विषयोपनीता-	
बीजाङ्कुरसन्तान	२४५ १५	रमस्तुत्यादि	१०१ १२
बीजाङ्कुरादि	२८३ १३	मनोरज्यादिकल्प	३३३३;
बुद्ध	२४८११८; २५६११५;		३५११८
	३५४१२३	मन्त्रादिसंस्कृतलोचन	२६१ १६
बुद्धचित्त	५०२ १	मन्याखेट	५७९ ७
बुद्धेतरचित्त	५०१ २३	मरीचिक	४८१२०; ७६१५
बौद्ध	१८१२६; १०३१५;	महती प्रासादमाल	५५२ ८
	६३०११	महर्षि	४२९ ५
ब्रह्म	४५११; ४६११८; ६४११५;	महेश्वर ७१४; १८११४; १३३११३;	
	६५१६; ६५१५	१४१११२; १४२१५; १४४११०;	
ब्रह्मकर्तृकवेद	३९२ १७	१४६११०; २८२; २८३; २९६;	
ब्रह्मन्	४०१ २७	३१९१२; ६१३	
ब्रह्मवाद	९५ १२	महेश्वरज्ञान १३२१५; १३४; १३८	
ब्र ह्य व्या स वि श्वा सि त्र ४८४ १		महेश्वरखुदितव्	३७४ ११
ब्रह्मादिपिशाचान्त	२८४ १८	माणवके सिंहाद्युपचार	७० ५
ब्रह्माद्यैत	४८३ ११	माता ये वन्त्या	२०६ १९
ब्रह्माद्वैतग्रन्थक	७८ ६	मातुलिप्रभ्रम्य	५३४ १
ब्रह्मणश्चित्रियादिव्यवस्था	४८७ २६	मातृविवाहोपदेश	२ १९
आतु	१३५ ५	माध्यमिक	९७ ३
आतुना तारानिकरसामिभवः २९ ४		माया	६६ १८
आवनामिनोगाद्यर्थ	१६५ १४	मायापरमप्रकमे	३२९ २१
आवप्रत्यासक्ति	५०२ १३	मायपाक	३३३ ८
आवस्तुतज्ञान	४५६ ११	सिध्यालक्षणोदय	४८ ८
विद्याद्वि	३०५ १९	सिध्यास्वाराधना	३३० १६
नितानिवि चित्रम्	१५३ ४	सिध्यादृष्टि	२४५ २५
शुभगरक्षोयेलप्रद्युति	२८४ २१	मीमांसक	३९३ २८
भूतसंप्राप्त	६३४ २०	मीमांसकमत	१३८१४; १४३१५
मेघज्यमातुरेच्छाजुवर्ति	६८० ४	मीमांसकमतानुसङ्ग	१०३१०; ३०११२७
आमकश्चान्यस्कन्त	५७५ २६	मुखाभ्रवत्	३७७ १४
अग्निप्रभावा मणितुदिः	१७० १५	मुखाफलः	५४७ १९
अग्निमुखाफलप्रवाल	५७४ २१	मूलकीजोदक	२४२ ३
अग्निज्ञान	३०४ १०	शुष्ककले कायनज्ञान	२४२ २७
अस्यादि	३०५ ३०		

सुतिपङ्कदण्डचक्रादि	१५३ २४	खनपुनर्जातनखकेचादि	३४२।२४;
मेचकज्ञान	५२९ २३		४९८।९; ५५४।१५
मेचकज्ञानवत् सामान्यविशेष-		लोकपालग्रहीतविक्रमदेश	५६८ २८
वषष	२०१ १४	लौकायतिक	६४२ २२
मेण्ड	५२४ ८	वर्णाश्रमव्यवस्था	४९६ ५
मेध्या आपः	२६९ ४	वर्तिकादाहृतैलशोषादि	२०१।२;
मेधादि	२४२ १		५०३।१
मोहनीयकर्म	३०३ ३	वन्ध्यासुतावीन	९५ १७
महालुघानागम	३३०।२; ३३१।१६	वन्ध्यासुतसौमन्यव्यावर्णन-	
मशोपवीतादिनिष्ठोपलक्षित	४८६ ७	अख्य	५६१ १५
मथाख्यातसंयम	३०६ २१	वलातैलादि	४२४ १६
मुगपहृति	२८ ७	व र्धे भा व जि न	१७६ ७
मुग्निन्	३४।१२; ४५	वल्मीकि	२७५ ३
मुग्ग	१८।२६; ६४३।२४; ६५१।१४;	वशीकरणौषध	५८० २२
	६८६।२२	वसन्तसमय	५६८ ८
मुग्गकल्पित	६५९ २०	वाद	६४५ २२
रजःसम्पर्ककलुषोदक	६६ २०	वालाग्रमपि खण्डयितुं	
रजोशुष्प	२९८ १८	शक्यते	४८ १
रजोनीहाराद्यन्तरिततश्नि-		वासीकर्त्तर्यादि	१४० ३
कर	२४२ १९	विग्रहगति	३०० २६
रक्षुर्वशदण्डादि	५१४ ११	विह्वलित्वात्र	७७ ७
रत्नप्रयाराधन	३३२ १९	विनाशोत्पादप्रक्रियोद्धोषण	५०० ४
रत्नादिपदार्थ	६३५ १९	विदग्धधर्माध्यास	५३० १
रा न ण	३८० १२	विरोध	५२६ १०
रा व ण शं ख च क्र व र्त्त्या दि		विशेषतोदृश्यानुमान	३५० १७
	१८४।१६; ६७९।६	विषं विशान्तरं क्षमयति	६६ २२
रा व णा दि	२४२ १	विषयापहारश्च राज्ञां धर्मः	७५ २०
रूपश्लेष	५१६ ३	विषागदवत्	५२५ २०
रुक्मन्वपेठादि	६४८ १४	विषापहारादि	६३२ ४
रुद्रहृति	२८ १२	विष्टिकर्मकरादिषट्	२७९ १९
रुभान्तराय	३०२।११; ३०६।१८	वीचीतरङ्गन्याय	४२६।२२;
रुक्मवत्	२३० १२		५५८।३
रुक्मकादिपल्लविक	३३१ २६	वीणादिरूपविशेष	१७० ९
रुक्मिणोपयस्यशुद्धिवत्	१५८. ४	शुक्लशास्त्रासंग	२७२ १३
रुक्मनादिक्रिया	३३१ १२	शुद्धो भ्यग्रोच इति	५९ ७
		शुद्धो हस्ती पल्लवकूटादिर्वा	२२० ५

शुभिकादि	११८	शुद्ध	
शुभलादि	४८४ १६	शुभोत्पत्त्यादि	४८५ ३
वेद्य (वेदनीयकर्म)	३०३ ३०४	श्री व र्द्ध मान	४९३ १३
वेद्यापाठक	४८६ १६	श्रेणि	६२८ ४
वेद्योपदेशः	३१९ २२	श्रोत्रिय	३०६ १५
वेद्यवेद्य	६४९ १९	षड्रूपाः	२६० २७
वैनतेयप्रत्यक्ष	२५८ २	योढासम्बन्धवादिन	६६७ ४
वैयधिकरण	५२६ १२	संकेतस्मरणविवक्षाप्रत्यक्ष	६१२/११;
वैयाकरण	६७९ १	ताल्वदिपरिस्पन्दक्रमेणो-	६२१/२२
व्यक्त	९९ १२	पञ्चायमानशब्द	६९ १६
व्यतिकर	५२६ १९	संविभ्रिष्टलाद्भावव्यवस्थितेः	१६ १६
व्यभिचार	६३७ १९	संसर्गविशेषवशाद्भिन्नप्रलब्धः	१०० १६
व्याघ्रलुब्धकप्रवृत्ति	३०५ २०	सकलव्याप्ति	३६५ ९
व्योमोत्पल	६१९ २	सकलशून्यता	९७
व्रतबन्धवेदाभ्ययनादि	४८५ ५	सकलशून्यवादिन्	६५१ १४
व्रात्य	६५० १५	सङ्करव्यतिकरौ	५३६ ५
शंखः कदल्याम्	६६७ ११	सचेतसंयम	३३० १३
शं ख च क व र्ति	३८० १२	सत्ताद्वैतवादिन्	६४३ २३
शाकटोदय'	६५४ १७	स ख भा मा	४५९ १
शाकटोदयाद्यर्थ	८६ ६	सखेतरव्यवस्थासंकर	७६ ९
शाकादि	२८४ २६	सन्तानान्तर	८० ५
शात्रुमिश्रध्वंस	४९५ १३	संक्षिर्कर्मप्रमाणवादिन्	१७ ११
शाब्दप्रधाननय	६८० २८	सप्तमवरकभूमि	२४५ २३
शाब्दप्रधान	३९; ४४; ४५; ४६	सप्तमपृथिवी	३२८/१६; ३३४/३
शाब्दसंस्कार	४१९ ६	सप्तमिधादिरूपता	८६ १३
शाब्दाद्वैत	३१६ १	समानकालयावद्भव्यभावि-	१३३ ४
शाब्दाद्वैतवादिन्	३९ १	समुदितेतरगुह्यव्यादि	४६९ १
शाब्दाद्युनिदल	४६ १९	सम्बन्ध	५१४ २२
शरम	३४७ २१	सम्यग्दर्शनाद्यन्तरप्रसामग्री	२४१ ८
शास्त्राका	२२२ १४	सम्यग्दर्शनादायक	३३३ २०
शाशास्यगादि	७३ ११	सर्पस्य कुण्डलेतरावस्था	५३७ ३
शास्त्रकार	३७३ २२	सर्वज्वरहरतक्षक चूडारत्न-	
शाकशास्त्रिकोन्मत्तादि	४५० १५	लङ्कारोपदेश	६ २०
शास्त्राभ्यासः	३०३ ९	सर्वज्ञ	८० ५
शास्त्रार्थेषु पीतज्ञान	१३९ २२		
शास्त्रमन्त्रादि	३०३ २२		

सविकल्पकप्रत्यक्षवादिन्	३४ १९
सन्धेतरगोविषाण	२१४।१७; ५०१।
	१०; ५०६।२४
सहस्रकिरण	१३८ ५
सहानवस्थान	५३३ २१
सहोपलम्भनियम	७९।२; ८०।१४
सांख्य	१९ ३
सांख्यदर्शन	५७६ १६
सांख्यादि	६४२ ११
सांसारिककल्मष	३३० ६
साकारवादप्रतिक्रम	८६ २०
साधननिर्मासिज्ञान	१५५ १५
साञ्जुतञ्ज	४२९ ६
सार्वभौमनरपति	२८४ २०
सिंह	३४७ २१
सिद्ध	३७० २७
सिद्धि	५ १
सुगत	८०।७; ९५; २३५।२५;
	२३६।४; २४७।७
सुगतज्ञान	२६।७; ९५।९
सुगतसत्ताकारक	९५।१३; ९६।२
सुतीक्ष्णोऽपि खड्गः	१३६ १५
सुबिज्ञितोऽपि वा नटवदुः	१३६ १६
सूच्यप्र	१३९ १३
सूर्याचन्द्रमसौ	६८८ ९
सृष्टि	७१ ४
सेश्वरसांख्य	२९७ १७
सौगत	७७।१२; ९०।९; १८०।१२;
	३८२।१; ६४३; ६७२।४; ६८७
सौमहम्रत	५२४ २१
सौगतवज्रनैरिष्टं	१७८ ११

सौगतसांख्य	योगश्रामाकर-
जैमिनीयानाम्	६४३ ६
सौगतादि	३९३।२७; ६४३।१
सौगती गति	९६ १
स्त्रीविद	३२९ ३
स्थानरादि	२६७ १४
स्थितिकल्प	३३१ ७
ज्ञानपानावगाहन	७५ २०
स्पष्टज्ञानावरणवीर्यान्तराय-	
स्रयोपशम	२१८ १७
स्फटिकादि	२२८ ५
स्याद्वादिन्	३६७ २२
सद्य	७१ ६
स्वपरप्रकाश	१४७ १२
स्वप्नावस्था	७५ ८
स्वर्गपटल	२१९ ११
स्वर्गादि	३३० १८
स्वर्गापूर्वदेवतादि	१७९ १९
स्ववधाय क्लृप्तोत्थापन	६९२ २३
स्वशिरसाहं पृच्छवतः	५४३ ६
स्वसाध्यं प्रसाध्य नृत्त्यतोऽपि	
दोषाभावात्	६६६।६; ३७३।३
स्वापमदमूर्च्छावस्था	२८० ३
हर्षनिषादाद्यनेकाकारसंश्लिष्टप	१०० १२
इत्सुपादकारणमानिकान्त-	
ह्यरादिस्फोट	४५७ १६
हस्तिप्रतिहस्तिन्याय	६४७ १९
हिमवद्विन्ध्यादि	५६२।९; ५९४।९
हिरण्यगर्भ	३९३।२०; ३९८।१८
हीरीतादिनिवृत्त्यर्थ	३३१ २३

७ आरानगरस्य-श्रीजैनसिद्धान्तभवनसत्कायाः
प्रतेः पाठान्तराणि ।

पृ०	पं०	सुधितपाठः	पाठान्तरम्
१	५	सुधियः	सततम्
१	९	विस्फुरिताद्-	विस्फुरितैर्ग-
२	४	तदपहृति-	तदपहृति-
२	११	प्रयोजनवस्वव्यु-	प्रयोजनव्यु-
२	१२	-सक्षुण्ण-	-सक्षुण्ण-
२	१३	-शास्त्रार्थसं-	-शास्त्रार्थ-
३	१४	असम्बन्ध-	असम्बन्ध-
५	१	ज्ञापक-	ज्ञायक-
६	९	-हृतं तदेव-	-हृतं सिद्धं तदेव
६	१५	-व्युत्पादनार्थ-	-व्युत्पत्त्यर्थ-
८	१७	-स्वामिघानकं	-स्वामिघानं
९	२१	-चेत्स-	-चेत्तस-
१०	१९	दृष्टस्य पृथि-	दृष्टपृथि-
१०	२०	निलयस्वाम-	निलयकस्वाम-
११	८	चामि-	चामि-
१३	८	-शोपलम्बि-	-शैःपिलम्बि-
१४	३	-दिना (संयुक्तसमवायः रूपलादिना) सं-	-दिना संयुक्तसमवायः रूपलादिना सं-
१४	७	चामाव-	चामाव-
१५	२१	यस्तस्य तत्र	-यस्तत्र तस्य
१६	२	कुठर (काष्ठ) च्छे-	काष्ठच्छे-
१६	९	च	वा
१६	१८	भावे तद्-	भावे वा तद्-
१८	१	-भास्य योगजघर्मसह-	-भास्य सह-
१८	३	-करणं (योगजघर्मालु) पृष्टीतं	-करणं योगजघर्मालुपृष्टीतं
१८	२३	पृष्टते	पृष्टेत
१९	१३	-रभिव्यज्यते	-रभिव्यज्यते
२०	६	-देव प्रसिद्धेः	-देव प्रमाणप्रसिद्धेः
२०	१०	बाशोन्द्रियजमिन्द्रियाणां	बाशोन्द्रियाणां
२१	१५	तदनन्तरम्-	तदनन्तरं प्र-
२१	१९	वास	वास

पृ०	पं०	मुद्रितपाठः	पाठान्तरम्
२२	९	-हि को (एको)	हि एको
२३	१२	वापार्थ-	चापार्थ-
२३	२०	क्रिया परिस्प-	क्रिया स्प-
२४	१६	-वाकित्वेन	-वाकित्वेन
२६	२	-योमि(लं)तद्धि-	-योमि तद्धि-
२६	३	-ला रूपदे-	-ला चारूपदे-
२७	८	-घणमसा-	-घणलमसा-
२८	३	ह्यन्यत्रान्य-	ह्यत्रान्य-
२८	५	-स्वरूपं वै (पमवैशर्यं)परि-	-स्वरूपं परि-
२८	७	तदिति	तदिव
२९	३	-ता साह-	-ताकृत्साह-
३०	१५	-धयलम् अन्य-	-धयलमध्ये अन्य-
३०	२३	विकल्पधर्मा-	विकल्पकधर्मा-
३२	१३	चात्रव-	चाव-
३३	६	-कल्लं घटते स्व-	-कल्लं स्व-
३३	९	-ध्यामि(वि)रो-	-ध्यामिरो-
३४	१०	अन्योत्सा-	अन्योपपा-
३४	१९	सविकल्पा(स्प)क-	सविकल्पक-
३५	१७	प्रभवत्त (वात् त) तो	प्रभवात्ततो
३६	४	-लाम्रूपादिवत् । रूपाम्रू-	-लाम्रूपाद्यु-
३६	६	भीषेत	भीषते
३६	१७	शब्दप्रभवत्वात् (प्राणार्थं विना- तन्मात्रप्रभवत्वाद्वा) ग-	शब्दप्रभवत्वाद्वा ग-
३७	१	काचान्यका	काचान्यका
३७	११	-सतस्वद्वेद-	-सतस्वतस्वद्वेद-
३७	१५	-पत्तिप्रवृत्ति-	-पत्तिवृत्ति-
३८	२	शाब्दाध्य-	शाब्दाध्य-
३८	५	-शार्था-	-शार्था-
३९	२	तत्स्पर्श-	तत्स्पर्श-
४०	८	-वैशोऽसौ	-वैशोऽसौ
४०	१५	-तापचाः	-तापचाः
४१	१३	लोचनाध्य-	लोचनाध्य-
४४	१३	घटते	घटेत
४४	१६	-ब्रह्मणि	-ब्रह्मणा

पृ०	पं०	मुद्रितपाठः	पाठान्तरम्
४६	१८	द्वैतप्र-	द्वैतसिद्धिप्र-
४७	१४	-रेवसं-	-रेव स सं-
४८	४	-प्रभवेतुक-	-प्रभे हेतुक-
४८	१६	-नाभिप्र-	-नाभिप्र-
५१	१	अवहिष्ठाऽस्थि-	अवहिरस्थि-
५१	१२	सत्त्वेनासत्त्वेनान्येन	सत्त्वेनान्येन
५४	२	खे खपुष्प-	खलपुष्प-
५७	४	सामान्यमात्रप्र-	सामान्यभावप्र-
५७	६	निषये सह-	निषयेषु सह-
५८	४	सर्वस्यास्तत्प्र-	सर्वस्याः स्पृतेस्तत्प्र-
६२	१	मेदे अजु-	मेदाजु-
६३	२२	नचानेकान्त-	नचैकान्त-
६५	९	मेदाजुप-	तदजुप-
६६	७	चासल-	चासल-
६६	२२	खच्छां	खस्थां
६६	२४	मेदे समु-	मेदसमु-
६७	७	मेदातयव-	मेदायव-
६७	१३	-य पक्षोप्य-	-य विकल्पोप्य-
६८	१२	तथा तद्व्यक्ति-	तथा व्यक्ति-
६९	२०	-साञ्चन्दे(न्दे)स्तीसंभ्यु-	-साञ्चन्दोत्पत्त्यभ्यु-
७०	४	-चाररूपं कल्प-	-चाररूपकल्प-
७०	६	मुख्यं मेदा-	मुख्यमेदा-
७०	८	असिद्धिः	असिद्धः
७१	५	प्रवर्तते	प्रवर्तत
७१	१४	परदुःखं	परत्र दुःखं
७१	१४	-न्ति पर-	-न्ति-तेषां पर-
७१	१५	प्रवृत्तेः	प्रवृत्तौ
७२	११	कथञ्चद्वैत-	कथं द्वैत-
७५	१३	तस्याभाष्यमानत्वात्	तस्याभाषात्
७५	१७	-सलमभ्यु-	-सलमित्यभ्यु-
७७	१०	यथायः पक्षस्त-	यथायः सपक्षस्त-
७८	१३	अनुपलब्धि-	अपलब्धि-
८३	१४	साक्षरो वा (भिन्नकालः समकालो वा) नै-	साक्षरो वा भिन्नकालः समकालो वा नै-

साक्षरो वा भिन्नकालः समकालो वा नै-

पृ०	पं०	मुद्रितपाठः	पाठान्तरम्
८६	१३	सप्रतिधादि-	प्रतिधातादि-
९१	७	-स्याभ्यक्तेणसि-	-स्याभ्यसक्ति-
९१	१३	जडस्यापि पर-	जडस्यापर-
९२	२१	व्याप्तौ तौ प्रति-	व्याप्नोति प्रति-
९३	७	प्रसिद्ध-	सिद्ध-
९३	७	यत्तः स्वतः प्र-	यत्तः प्र-
९६	९	-व्यापित्-	-व्यापित्-
९६	१२	-व्यापित्वं	-व्यापित्वं
९९	९	ज्ञानस्वभावतावि-	ज्ञानस्वभाववि-
१०१	१३	निवर्तन-	निवर्तन-
१०३	१६	आकाराभावक-	आकाराभ्यापक-
१०४	५	-दुत्तरार्थक्षण-	-दुत्तरौत्तरार्थक्षण-
१०४	१२	स्वात्मनोऽर्था-	आत्मनार्था-
१११	१३	पुनस्तत्त्वलक्षणं	पुनस्तत्त्वलक्षणं
१११	१८	तत्सद्भावेदकं	तत्सद्भावेदकं
११४	४	चैतन्यम्,	चैतन्यस्येन्द्रियं
११९	१२	सर्वं	सर्वत्र
१३४	४	यथात्मायज्ञानमा-	यथात्मार्यं ज्ञानमा-
१३५	१९	चास्य संयुक्त-	चास्य सन्निकर्षो वा संयुक्त-
१४१	२	संयोगोऽवि-	संयोगावि-
१४१	११	-स्यानिष्टवेद्यादि-	-स्यानिष्टदद्यादि-
१४१	११	-गोष्टदेसा-	-गोष्टदसा-
१४२	१	चादृष्ट-	न चादृष्ट-
१४२	१७	-मस्तु ज्ञाना-	-मस्तु किं ज्ञानान्तरेण ज्ञाना-
१४८	१	वार्थ	वार्थ
१४८	२	-तौ तर्हि तावेव	-तौ तावेव
१४८	१३	न	वा
१४९	१७	ज्ञानं	विज्ञानं
१५०	५	-श्रीतो वा ग-	-श्रीतो ग-
१५२	२१	न चात्र	न चासी
१५३	३	येन तदुत्प-	येन प्रमाण्यं तदु-
१५४	१७	श्रुतिक्रमकले	श्रुतिक्रमकले
१५४	२१	प्रवृत्त्याभावे-	प्रवृत्त्याभावे-

पृ०	पं०	मुद्रितपाठः	पाठान्तरम्
१५७	६	तावतैवेयं	तावतैवायं
१५८	११	प्रवर्तते	प्रवर्तते
१५८	२३	तावत्कार्योवधार्यते	तावत्कार्योऽभिधीयते
१५९	३	कारणे शुद्धे तज्ज्ञा-	कारणाशुद्धेर्ज्ञा-
१५९	४	न्व	तु
१५९	७	-न्द्रिये शक्ति-	-न्द्रियशक्ति-
१५९	१४	-क्षेण तेनो-	-क्षेण ततेनो-
१६०	१३	समस्त(सम्मतस्त)स्य	संयतस्तस्य
१६१	१२	चेन्द्रिये	चेन्द्रिये
१६२	३	कथन्तस्तसतः	कथन्न स्ततः
१६२	५	प्रमाणपक्षकामाव-	प्रमाणिकामाव-
१६२	६	चामावप्रमाणोत्पत्तौ	चामावप्रमाणोत्पत्तौ
१६३	३	नैर्मल्यादियुक्तस्य	नैर्मल्ययुक्तस्य
१६३	७	तथापि	तथापि
१६४	१६	जन्मैव	यत्रैव
१६५	३	प्रमाणस्य किं	प्रमाणस्य तु किं
१६५	९	-विनाभावस्य	-विनाभावत्वस्य
१६५	१०	हेतोः स्व-	हेतुत्व-
१६८	११	-क्रियाज्ञानस्याप्य-	-क्रियासाधनस्याप्य-
१६९	४	वृद्धिच्छेदा-	वृद्धिच्छेदा-
१६९	७	स्वप्रायिक्रिया-	स्वप्रेप्यर्थिक्रिया-
१७१	२	अपर (अपवर) कान्तर्देश-	
		सम्बन्धे तु मणा-	-अपवरकान्तर्देशसम्बन्धमणा-
१७१	१२	-निश्चयात्मकं	-निश्चायकं
१७२	६	-ताशंकाः	-तशंकाः
१७२	११	कश्चित्का-	किश्चित्का-
१७२	१२	कश्चित्का-	किश्चित्का-
१७४	३	प्रागेव	इत्यपि प्रागेव
१७४	१०	चैतस्मि-	चैतस्मि-
१७५	११	नेक्ष्यते	नेक्ष्यते
१७५	१४	शब्दे स्व-	शब्दस्व-
१७६	७	सिद्धं सर्वजनप्रयोगेत्यादिश्लोकस्य	व्याख्यानं ब्रा० प्रतौ नास्ति ।
१७७	३	-सद्भिप्रामर्शात्-	-सद्भ्युत्पादनाभिप्रामर्शात्-
१७७	७	-तैकद्विभ्यादिप्रमाण-	-तैकत्वादिप्रमाण-

पृ०	पं०	शुद्धितपाठः	पाठान्तरम्
१७७	१६	-साधनम् इति-	साधनं तद्वतोऽनुपपन्नत्वं- शुभानकथा कृतः ॥ इति कुतो गौणत्वम्
१७८	७	कुतो (गौणत्वम्)	
१७८	११	-षयत्वा-	-षयत्वा-
१८१	१५	-विरोधी	-विरोधी
१८१	२०	ज्ञापक-	ज्ञापक-
१८१	२२	-ज्ञातसह-	-ज्ञातस्य सह-
१८२	१३	-न्यस्य विज्ञे-	-न्यविज्ञे-
१८२	२१	सम्बद्धं	सम्बद्धे
१८३	१९	शब्दो	शब्दो
१८४	७	नात्र	तत्र
१८४	१०	हि सद्भावेन सत्तया	हि सत्तया
१८४	१२	बहिरस्तीत्यस्ति-	बहिरस्ति-
१८४	२२	न त्वैवं	न चैवं
१८५	३	चागतेः	चागमे
१८५	११	-तत्त्वज्ञे-	-तत्त्वज्ञे-
१८६	१२	न तद्-	न तस्य तद्-
१८७	१	न चैत-	न चैत-
१८७	३	च	वा
१८७	५	-भ्वन्वाञ्च गो-	-भ्वन्वो न गो-
१८७	१३	भवन्	भवैद
१९०	३	-विभागतः	-वियोगतः
१९०	९	को	यो
१९०	९	-दिनः	-दितः
१९१	५	चापरस्या-	च परस्या-
१९१	१२	चोप-	चोप-
१९२	३	-च्छेद्यत इति	-च्छेद्य इति
१९२	८	-चात्परवाङ्-	-चात्परवाङ्-
१९२	८	नाव-	नाव-
१९३	६	विना नो-	विना भन्वैनो-
१९४	१९	सपञ्चाजुपमानजुगमभेदः	सपञ्चाजुपमभेदः
१९५	३	स्थिताम्	स्थिता
१९४	४	नियामिकाम्	नियामिका
१९८	८	च तत्सभिधाने	न तावत्समभिधाने

पृ०	पं०	मुद्रितपाठः	पाठान्तरम्
१९८	१२	सहस्ररी	सहस्ररिणोः
१९८	१८	-राभावात्	-रासंभवात्
१९९	३	-प्येतच्चौर्यं समानम्	-प्येतयोः सृष्टं मानम्
२००	११	अनादिनिघन-	अनाद्यनिघन-
२०५	२	-लब्धिनिघोषतः प्रति-	-लब्धेर्विघोषतः विप्रति-
२०७	१७	अनुष्णामि-	अनुष्णोऽमि-
२०८	५	-लपात्स्वभाव-	-लपात्स्वभाव-
२०९	२६	-भावग्रहणस्य	-भावस्य
२१०	६	-भावग्रहणस्य-	-भावस्य
२१०	१३	-पटादिव्यक्त्यभ्यो-	-पटादिभ्यो-
२१०	१५	न निखिल-	नाखिल-
२१०	१७	-तराश्रयत्वं च	-तराश्रयत्वाच्च
२१३	४	विनाशेभ्युत्प-	विनाशिन्युत्प-
२१५	२	-दिव्यापारवैय-	-दिवैय-
२१५	११	घटादे-	पटादे-
२१५	१३	भाषान्तर-	भाषोत्तर-
२१५	१९	-रेव तेन वि-	-रेव वि-
२१८	२३	-स्योपपातः	-स्योपपातः
२१९	१७	चेदं	चेदं
२१९	२३	-नाव्याप्यस-	-नाव्याप्यस-
२२०	७	-विशेषवि-	-विशेषैर्वि
२२१	१२	तथा चेन्द्रि-	यथा चेन्द्रि-
२२१	१४	-वात्तन्नेष्यते	-वास्तु नेष्यते
२२१	१९	रूपं चक्षुः	रूपचक्षुः
२२२	१४	-बलमं शला-	-बलमशला-
२२३	१०	अन्यथा-	नान्य
२२८	११	-कं तद्-	-कं दृष्टं तद्-
२३०	२३	रसाभिव्य-	रसव्य-
२३१	८	तन्न	तन्न
२३२	१६	कार्यकारणभा-	कारणकार्यभा-
२३३	१२	भवति	भवेत्
२३३	१४	पुरःस्थितया	पुरःस्थिततः
२३४	१४	तदसतो	तदसतो
२३४	१५	-र्थजत्वे	-र्थजन्यत्वे

पृ०	पं०	मुद्रितपाठः	पाठान्तरम्
२३४	२२	कारणकल्प-	कारणकल्प-
२३५	१	तत्तौनोपलभ्यते न	तत्तौनार्थोभावैऽपि उपलभ्यते। अत्रान्तं तु तद्भावं एवोपलभ्यते न
२३५	३	-मतज्ञानं	-मतं ज्ञानं
२३५	१५	लब्धा-	तल्लब्धा-
२३५	१६	-नाप्यतत्का-	-नाप्यका-
२३५	१९	-दे तस्यापि-	-देऽपि तस्यापि
२३५	२४	मैत्रे	मित्रे
२३६	५	प्रतीयते	प्रतीयते
२३६	१६	सान्यस्यापि	सामान्यस्यापि
२३७	३	तदन्यज्जात-	तदन्यज्जात-
२३९	२६	निखिलार्था-	निखिलज्ञानेनाखिलार्था-
२४०	१५	वा	च
२४३	१५	-त्वेतत्पार-	-जातत्पार-
२४४	२८	-कर्मणा नि-	-कर्मणो नि-
२४६	२१	-त्राशेषज्ञान-	-त्राशेषज्ञान-
२४७	१३	-र्थज्ञानस्य (ज्ञानस्य त) ज्ञान-	-र्थज्ञानस्य तज्ज्ञान-
२५०	९	-र्थप्रधानैस्त्रै-	-र्थप्रमाणैस्त्रै-
२५३	४	लभ्यते	लभ्यते
२५३	८	-प्रभवं चानुमाना-	-प्रभवज्ञानुमाना-
२५३	९	-व्ययत्वेन तत्प्र-	-व्ययत्वे तत्प्र-
२५५	१०	यद्धि यद्धि-	यद् यद्धि-
२५५	२९	इति तत्सर्वा-	इति च सर्वा-
२५७	६	-ज्ञानं वक्तव्यम्	ज्ञानं वक्तुं शक्यम्
२५७	१०	प्रत्यक्षज्ञान-	प्रत्यक्षान-
२५८	५	-सम्बन्धिलस्यातीतदर्शन-	
		सम्बन्धिलस्य च ग्राहि	-सम्बन्धिलस्य च ग्राहि
२५८	१८	भाविघर्मादेरतीतकालदेरिवावि-	भाविघर्मादेरिवातीतकालदेरिवा-
			भाविघर्मादेरिवातीतकालदेरिवा-
२५८	१९	-लोकोपभो-	-लोकोभो-
२५९	२	-स्यानालो-	-स्याप्यनालो-
२६१	३	प्रक्षीण-	क्षीण-
२६२	६	यथोक्तं	यथोक्तं
२६२	९	तद्भाष्यात्तार्थाभ-	तद्भाष्यानाभ-

पृ०	पं०	मुद्रितपाठः	पाठान्तरम्
२६५	२	वार्ये	चार्ये
२६६	५	प्रपञ्चनो-	प्रसङ्गनो-
२६८	१	जानतो-	ज्ञानतो-
२७२	२२	-न्तिकं च	-न्तिकस्ताश्च
२७३	६-९	तत्सम-	सम-
२७३	१०	-कान्ते व्य-	-कान्तेप्यव्य-
२७३	१५	-भूतत्वादि-	-भूतत्वादि-
२७३	२४	-शुद्धिवै-	-शुद्ध्यादिवै-
२७४	२३	व्याप्येत	व्याप्यताम्
२७५	१३	बाधकप्रमाणव-	बाधकव-
२७७	१६	-क्षप्र-	-क्षसंप्र-
२८१	१५	-गयापि	-गया हि
२८२	३	सेषामेदाजु-	सेषाजु-
२८३	२६	-सङ्गः स्यादि-	-सङ्गत्वादि-
२८३	२७	तेनैवा-	अनेनैवा-
२८६	१७	-धर्मिवत्	-धर्मि च
२८९	१७	-कत्वे	-कत्वेन
२८९	२०	-कीर्येत	-कीर्यते
२९३	२८	निश्चयस्योत्पा-	निश्चयोत्पा-
२९४	३	हि भव-	हि ज्ञानं भव-
२९४	१६	जु	च
२९५	२	-गादिस्या-	-गादिनियमस्य घटनाहुपादान- ग्रहणादिस्या-
३९५	५	सिष्यति	सिष्येत
३०१	१४	प्रसाध्य-	साध्य-
३०२	२८	-वति तन्निमित्तकर्मसद्भावे तत्फल- सिद्धिस्तस्याश्च तन्निमि- त्तकर्मसद्भावसिद्धिरिति	-वति क्षुधादिफलसद्भावे तन्नि- मित्तकर्मसिद्धावसिद्धिः तत्सिद्धौ च क्षुधादिफलसद्भावसिद्धिरिति
३०३	१३	-तद्दुदयेऽपि	-तद्दुत्तरं तद्दुदयेऽपि
३०४	२	-मानं क्रियते	-मानं कर्म क्रियते
३०४	१३	विरतव्यागो-	व्याहृतव्यागो-
३०५	१२	घटेत	घटते
३०९	२४	भोक्षार्थी	भोक्षार्थ

पृ०	पं०	मुद्रितपाठः	पाठान्तरम्
३१४	२०	-वनाभ्यासात्	वनावशात्
३१५	९	-यां प्रहो	-यां हि प्रहो
३१५	१४	न प्रति-	न च प्रति-
३१८	३०	इन्द्रियजहा-	इन्द्रियादिजन्यज्ञा-
३२०	२४	-न [स] भा-	-न स्वभा
३२३	२२	नास्ति तत्र तत्	नास्ति तत्
३२६	७	-धरूपतया	-धतया
३२६	२४	एवेदानीं मुक्तः	एव मुक्तः
३२७	६	-न्यात्मनिष्ठ-	-न्यात्मनः क्ष-
३२७	२७	-तनप्र(ल)सं-	-तनसं-
३२९	१३	-गतौनैव चा-	-गतेन च वा
३३०	२४	दिविखल्लो	दिविखल्ल
३३१	६	-कम्म इत्यादेः	-कम्मे वदजिह्व-
			पडिक्कमणे भासं पज्जोसम-
			णकप्पे इत्यादेः
३३२	८	तस्य मतो	तन्मतो
३३२	९	-नं साहुं दह्या क्ष-	-नं दह्या यति क्ष-
३३६	२४	-विवेचनत्वादद्यु-	-विवेचनाद्द्यु-
३३६	३०	-[प] रि-	-यति-
३३७	२३	स्मृत्यावपि	स्मृतार्थावपि
३३९	२२	तं	तत्
३४०	२०	-ज्ञानक्ष-	-ज्ञाक्ष-
३४१	२१	तस्य चास-	तस्यैवाक्ष-
३४२	६	इत्यप्यसा-	इत्यसा-
३४२	२०	-स्यापि अन्य-	-स्याप्यस्त्यान्य-
३४४	५	-धयप्रवृ-	-धये प्रवृ-
३४५	८	लिङ्गजाम्यु-	लिङ्गिनाम्यु-
३५०	४	-कारेण बोप-	-कारेणैवोप-
३५०	१०	-नुबन्धनि	-नुलम्बिनि
३५१	२१	तत्प्रत्य-	तत्प्रभवप्रत्य-
३५५	२०	लोके प्रसि-	लोकप्रसि-
३५६	१९	-धितं सा-	-धितसा-
३६१	५	सु	च
३६६	३	ज्ञाप्यते	ज्ञायते

पृ०	पं०	मुद्रितपाठः	पुस्तान्तरम्
३६६	१६	-व्याप्तेरभा-	-व्यापारामा-
३६९	२१	चलितप्र-	भिन्नप्र-
३६९	२५	-रीतस्य	-रीतार्थस्य
३७१	२३	-न्द्रियप्र-	-न्द्रियार्थप्र-
३७३	१०	-नं सा-	-नं हि सा-
३७५	९	गौरपि तस्युत्रे तस्यु-	गौरेऽपि तस्यु-
३८६	१९	-लभ्येत	-लभ्यते
३८७	५	-भाववतो यो-	-भाववात्सिनो यो-
३८७	१४	यो व्याप्तु-	यो मु-
३९४	१९	-मानं स्वविद्ये-	-मानं विद्ये-
३९५	५	-इयन्तया	-इयन्तया
३९८	२	-द्विरित्त (रितीत)रे-	-द्विरितीतरे-
४०२	९	-नेकप्रवृ-	-नेकधा प्रवृ-
४०२	१८	संकेते(त्वा)न-	संकेतान-
४०२	२१	यत्र पु-	यत्र यत्र पु-
४०७	११	-यान्तमिष	-यातमिष
४०८	७	यावज्ज-	तावज्ज-
५०९	२६	सम्बन्धावधारणम्	सम्बन्धावयमः
४११	१४	-तो लक्षितलक्षणया-	-तो लक्षणया
४१२	१३	चेत्किं यु-	चेत्किं पुनः यु-
४१३	१७	-पत्तिः	-पत्तिः
४१४	३०	प्रथमे वि-	प्रथमवि-
४१५	१	-त्वेऽल्पतानि-	-त्वे कल्पनानि-
४१५	३२	ननु चासि-	न चासि-
५१६	२१	चापह्ववायो-	चासङ्गवायो-
४१७	२९	-दृश्ये चो-	-दृष्टे चो-
४१८	८	तान्प्रति-	तावत्प्रति-
४१८	१०	-न्तरं कर्मांशा-	-न्तरं तत्र कर्मांशा-
४१८	२४	कुल्यादि-	कुम्भादि-
४१९	६	तस्यात्म-	स्वस्यात्म-
४१९	२६	नास्यैव	नास्यैव
४२०	५	-रे सर्वदो-	-रे सर्वत्र सर्वदो-
४२०	६	इत्यप्यच-	इत्यच-
४२०	१९	संस्कृतिः	सन्ततिः

पृ०	पं०	मुद्रितपाठः	पाठान्तरम्
४२१	९	नित्यस्यास्यानाद्येया-	नित्यस्यानादेया-
४२१	२७	स्वदेशे तद्वावारकाः तर्धन्तरा-	स्वदेशेन वावारकाः सूर्यान्तरा-
४२२	५	शक्यम्	शक्यसे
४२२	२८	-घातः । प्रत्य-	-घातः स्यात् । प्रत्य-
४२२	३०	तथा च व्यञ्ज-	तथा व्यञ्जयत् व्यञ्ज-
४२३	९	हि	च
४३४	१	संस्पृ (संसृ)ष्ट-	संसृष्ट-
४३४	११	-प्रसंगः	-प्रसङ्गात्
४३६	१३	-भावेऽपि(भावेऽपि)गौः	-भावेऽपि गौः
४३७	४	-वाच्यत्वात्	-व्याप्तत्वात्
४३७	१५	-ज्ञापनं (ज्ञानम् ;)	-ज्ञानम्
४३८	२१	-मपोष्यत	-मपोष्यत
४३९	११	किञ्च	किञ्चा
४३९	१५	-लक्षणेण(तद्वैलक्षण्येन)	-लक्षण्येन
४४१	३	परापेक्षा-	परीक्षा-
४४७	२१	तज्ज्ञा (तज्जा)	तज्जा
४५३	२४	-तक्षयो-	-तक्षानक्षयो-
४५६	१९	-मन्थे (म्थे)न	-मन्थेन
४५६	२०	शुद्धौ शब्दोऽव-	शब्दो शुद्धाव-
४५८	१९	-णादिगम्य-	-णाभियम्य-
४६०	२३	पदासि-	पदासि-
४६७	९	-णापिसद्भावा-	-णाविनामावा-
४६७	९	ततो व्यथ-	ततो वस्तुव्य-
४६७	१६	शुद्धमेद-	शुद्धिमेद-
५६८	१६	प्रतिभासवत्	प्रतिभासनवत्
४७२	१५	भिन्नदेशास्तु	भिन्नदेशेषु
४७४	६	जातिः केति	जातिराकृतिः
४८१	९	-पचारे तु	-पचाएत्
४८४	१४	अन्यत्र प्र-	अन्यत्र-
४८५	७	-तिरिक्तैकनिमि-	-तिरिक्तैकनिबन्धननिमि-
४८६	६	घटेत्	घटते
४८६	२१	न तज्जा-	ननु तज्जा-
४८९	८	-स्थानां त-	-स्थानानां त-
४९२	१५	प्रति [क्षण]वि-	प्रतिक्षणवि-

पृ०	पं०	मुद्रितपाठः	पाठान्तरम्
४९२	२६	-णिकलस्याध्य-	-णिकार्यस्याध्य-
५०४	२०	-न्यं सम्बन्धा-	-न्यं बन्धा-
५०७	१७	-नेव यो-	-नेव न यो-
५०७	१७	-नौ का-	-नौ द्वौ का-
५०७	२१	अयुक्ते	अयुक्ते
५०८	११	एव कारणाभि-	एव च कारणाभि-
५११	१७	घटप्र-	पटप्र-
५११	१९	पटस्यापि	घटस्यापि
५१२	२२	-न तस्य	-न चात्र तस्य
५१२	२३	तद्भि-	तदेतद्भि-
५१९	२४	-रूपता(तां)	रूपतां
५२१	४	सुखमासं	सुखमासे
५२१	१०	तथा त-	तथाच त-
५२१	११	-त्पथेत	-त्पाथते
५२२	९	-स्याम-	-त्मा वा भ-
५२३	६	स्वस्य	तस्य
५२७	१४	-व्यव्यावृ (व्यवृ) त-	-व्यवृत्त-
५२८	२४	तु वि-	लसि वि-
५३१	१६	-नात्कथं तत्र	-नात्का तत्र
५३२	२१	-घज्ञोऽयु-	-घज्ञोप्य-
५३६	६	-वदेव वस्तु-	वदेकवस्तु-
५३३	२७	[घर्मे] घ-	घर्मघ-
५३६	१	चौर [पार]	चौरपार-
५३८	९	-घाव	-धः
५३९	२०	-दिः [देः]	-देः
५४४	१७	[व्याप्य] व्या-	व्याप्यव्या-
५४५	१८	युष्ठा	युक्तिमती
५४५	२२	-यवयवानामेवाव-	-यवयवाव-
५४८	१०	एकद्रव्यः	एकद्रव्यं
५६१	५	रूपादिना सु-	रूपादिसु-
५६१	१४	-त्वा (ल) प्र-	-ल प्र-
५६७	२१	मयाऽ(तथाऽ)-	तथाऽ-
५७३	१६	नच	किंच
५७९	३	-वत्परशरीरेन्य-	-वदन्य-

पृ० पं०	मुद्रितपाठः	पाठान्तरम्
५८२ १७	तदेव (तत् एव)	तत् एव
५८२ १९	-व्या (व्य) प-	-व्यप-
५८४ ९	मनोद्रव्यत्वं (मनोऽन्यत्वं)	मनोऽन्यत्वं-
५८४ १५	द्विदेशा-	द्वि देशा-
५८५ २०	-भिलाषप्रसामिहानम-	-भिहानम-
५८६ १२	-प्रतिष्ठ-	-प्रविष्ट-
५८८ ११	-स्प(स)	-स
५८८ १५	प्रतिव (प्रव)-	प्रव-
५८९ ५	-मन्तो	-वन्तो
५९० ७	-द्विनाशा-	द्विविना-
५९० ८	द्विस्वबहु-	द्विबहु-
६०१ ६	-र्षं तदपरि-	-कर्मपरि-
६०१ १३	-वा(शे)र्व-	-शेषं-
६०१ २६	द्वि नि-	द्वि तन्नि-
६०२ १८	लक्षणमेषां	लक्षणं तेषां
६०३ १४	-तीयेत्येतदेव	-तीयोऽन्यसदेव
६०३ १५	-योगिलप्र-	योगिवत्प्र-
६०४ ३	-जुपप(स्प)तोः	जुत्पतोः
६०४ १४	-द्वः नचान्तराख्यामा-	-द्वः भावान्तराभा-
६०६ १६	-शेषे(व)वि-	शेषवि-
६०७ १८	समवायी इति	समवायीनि इति
६०८ २४	तद्व्यसत्	तदसत्
६०९ ४	अपृथगाभयवृत्ति-	अपृथग्वृत्ति-
६०९ १६	तत्रासंभाव्यम्	तत्रासम्भावत्
६०९ २१	-यिसमवाय (यिभावा) भावात्	-यिभावाभावात्
६०९ २१	-राभयभावा (यथ समवाय) सिद्धौ द्वि	-राभयस्य समवायसिद्धे द्वि
६१० २५	सम्बन्धलक्षा-	सम्बन्धजा-
६११ १७	-तयासौ प्र-	-तया प्र-
६१२ १८	पदो	पदो
६१५ १५	परपरिक-	परिक-
६१७ १८	-नर्थक्यम्	-नर्थक्यम्
६१७ २२	स एव स इति	स एवमिति
६२१ ४	समवायस्य नि-	समवायनि-

पृ०	पं०	शुद्धितपाठः	पाठान्तरम्
६२१	९	इति वि-	प्रतिनि-
६२२	२०	-द्वणस्त्रयी-	-द्वुपायी-
६२४	१३	-था वि-	-थापि वि-
६२५	२४	-प्यसुन्दरम्	-प्ययुक्तम्
६२६	१७	बोध-	अवबोध-
६२८	६	-दः	-दः समाप्तः
६३४	१७	-नियतये-	-निश्चयये-
६३५	११	-भासवद्-	-भावादु-
६३६	१	निले	निलत्वे
६४०	१४	-रीतोऽन्व-	-रीतोऽन्व-
६४८	४	-ल्योः वि-	ल्योः विवादापक्षयोः वि-
६५३	८	-सप्तमः	-सप्ताः
६५६	६	-न्निश्चिकत्वे	-न्निश्चयत्वे
६६०	९	खसा-	खेष्टसा-
६६४	१९	साम-	साधनसाम-
६६५	१७	-र्ना ह-	र्ना ह-
६६७	१	त्रेदममि(वि)ज्ञा-	त्रेदमविज्ञा-
६६८	२१	सस्याः	सभ्याः
६६९	२०	-न्त एव	-न्ते
६७०	३०	-र्यिकप्र-	र्यिकप्र-
६७१	१८	-न्मदो-	-न्नादो-
६७४	५	ज्ञानेन वा-	ज्ञाने च वा-
६७४	७	-चिदिति चेतर्हि	-चिदेव तर्हि
६७६-		'शाचां वाचाम्' इत्यादिभ्योश्चो ध्या० प्रती नास्ति ।	
६७७	१३	-कव्यमु-	-कव्यमु-
६७८	८	यः पुनः	यत्पुनः
६७८	१९	विषयमात्रप्र-	विषयभावप्र-
६८९	१५	तद्धि (द्धि) प्र-	तद्धिषं प्र-
६९४	१२	'श्रीभोजदेवराज्ये' इत्यादि प्रधास्तिः ध्या० प्रती नास्ति ।	

८. मूलटिप्पण्युपयुक्तग्रन्थसूचिः सङ्केतविवरणञ्च ।

अभिसमयालोकालं० अभिसमयालोकालङ्कारः (गायकवाढ सीरिज बढौदा) ९५,
अष्टश० अष्टशती अष्टसहस्र्यां मुद्रिता (निर्णयसागर प्रेस बम्बई) ३५, ३८
७७, ८१, ८३, ९४, १०९।

अष्टसह० अष्टसहस्री (निर्णयसागर बम्बई) ३५, ३८, ५९, ६२, ६३, ७७, ८१,
९४, ९६-९८, १००, १०९, १११, ११७, ११८।

आप्तप० आप्तपरीक्षा (जैनसाहित्यप्रसारक का० बम्बई) ८३, ९३, ९४, ९९,
१३६, १३७।

आप्तमी० आप्तमीमांसा (जैनसिद्धान्तप्रकाशिकी संस्था कलकत्ता) ७७, ९४,

ऋग्वेद० } ऋग्वेद संहिता ६४, २६४, ३९९।
ऋक्सं० }

कठोप० कठोपनिषद् (निर्णयसागर बम्बई) ६४।

कादम्बरी० कादम्बरी (निर्णयसागर बम्बई) २९८।

कुमारसं० टी० कुमारसंभवटीका (" ") ४२।

कण्टर० कण्टरोपनिषद् (" ") ६५।

चित्तसुखी० तत्त्वप्रदीपिका चित्तसुखी (" ") ५३।

छान्दोग्योप० छान्दोग्योपनिषद् (" ") ६४।

जीतकल्पमा० जीतकल्पमाध्यम् (जैनसाहित्यसंशोधकग्रन्थमाला पूना) ३३१।

जीवकाण्डगो० जीवकाण्डम् गोम्मटसारस्य (रायचन्द्रशास्त्रमाला बम्बई) ३००।

जैनेन्द्रव्या० जैनेन्द्रव्याकरणम् (जैनसिद्धान्त प्र० संस्था कलकत्ता) ७, १७६,
६७९, ६८७, ६८८।

जैमिनिस्० जैमिनिस्त्रयम् (आनन्दाश्रम सीरिज पूना) ६२, ४०४।

तत्त्ववै० योगभाष्यतत्त्ववैशारथी (चौखम्बा सीरिज बनारस) ९४।

तत्त्वसं० तत्त्वसङ्ग्रहः (गायकवाढ सीरिज बढौदा) २९, ३२, ३९, ४४, ४५, ६५,
७१, ७२, ७७, ७९, ८३, ८४, १००, १५०, १५२, १५४, १५७, १६२, १६४-
१७१, १७४, २५०, २५२, २५३, ३९२, ४३९।

तत्त्वसं० पं० तत्त्वसंप्रहपत्रिका (गायकवाढ सीरिज बढौदा) ४३, ४५, ६५,
७९, ८१, ११६, ११७, १५७, १६१, १६३, १६५-१७१,

तत्त्वार्थश्लो० तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकम् (निर्णयसागर बम्बई) १९, २०, ४२, ४६,
६१, ६२, ९३, ९४, ११०, ११६, ११८, १२०-१२३, १२३, १२७, १४८, १५०।

तत्त्वार्थसू० तत्त्वार्थसूत्रम् (जैनसाहित्यप्रसारकका० बम्बई) २४५, २५१।

तत्त्वोपप्लव० } तत्त्वोपप्लवसिंहस्य सूक्ष्मसूक्तम् (पं. सुखलालसूक्तम्
तत्त्वो० सिंहः } B. H. U. काशी) ४७, ४८, ५६, ५९, ६२, ६३, ७५, ७६,
११६, १०२।

- तैत्ति० तैत्तिरीयोपनिषत् (निर्णयसागर बम्बई) ६६।
 द्रव्यसं० द्रव्यसंग्रहः (रायचन्द्रशास्त्रमाला बम्बई) ५६५।
 न्यायकुसुमदत्तं० न्यायकुसुमदत्तः (माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला बम्बई) २०, २५,
 ३१, ३८, ३९, ४२, ४३-४६, ४९, ५०-५३, ५५, ५६, ५९, ७२, ७७, ८३, ९४, ९५,
 ९७, ९९, १००-१०४, १०६, १०७, ११०, ११२-११९, १२१-१२५, १२७,
 १३२, १३५-१३७, १४०-१४२, १४५, १४७, १४८, १५०, १६१, १६२, १६७,
 १६९, १७०।
 न्यायमा० न्यायभाष्यम् (चौखम्बा सीरिज काशी) १६, ५९, ९८, १६७, २३७,
 ६५१, ६६३।
 न्यायवा० न्यायवार्तिकम् (चौखम्बा सीरिज काशी) १४, १६, ७५, १३२,
 २६९, २७०, ४७६, ६१४, ६६४।
 न्यायवा० ता० टी० न्यायवार्तिकतात्पर्यटीका (चौखम्बा सीरिज काशी) १४,
 २०, ४९, ५१, ५३, ५९, ९५, १३२।
 न्यायमं० न्यायमञ्जरी (विजयनगरम् सीरिज काशी) १३, १४, २०, २५, ४६,
 ४९-५१, ५३, ५४, ५९, ६१, ६२, ६७, ७२-७४, ७७, ७९, ९४, १००, ११४,
 ११८, १६७।
 न्यायवि० न्यायविन्दुः (चौखम्बा सीरिज काशी) ७, २२, ७८, ९३, १०३।
 न्यायवि० टी० न्यायविन्दुटीका० (,, ,) २५, २८।
 न्यायविनि० न्यायविनिश्चयः (सिंघीजैन सीरिज कलकत्ता) ११९।
 न्यायलील० न्यायलीलावती (निर्णयसागर बम्बई) ५९।
 न्यायसू० न्यायसूत्रम् (चौखम्बा सीरिज काशी) १८, ९७, १००, ११४,
 ११५, ११८, २२०, २५७, २५८, ३४७, ३५७, ३६२, ३६५, ३७२, ३७४, ५३६,
 ६४६, ६४७, ६४९-६५१, ६५३, ६५५-६५९, ६६३-६७१, ६७४, ६८६, ६९३।
 पत्रप० पत्रपरीक्षा (जैनसिद्धान्तप्रकाशिनीसंस्था कलकत्ता) ६८४, ६८६,
 परीक्षामु० परीक्षामुखम् (जैनसाहित्यप्रसारक का० बम्बई) १७८, २२५,
 ३५५, ४४५, ६८५।
 पाणिनिधातुपा० पाणिनिधातुपाठः (सिद्धान्तकौमुद्यन्तर्गतः) ७, ६८८।
 पा० महाभा० पातञ्जलमहाभाष्यम् (निर्णयसागर बम्बई) १०४।
 पाणिनिव्या० पाणिनिव्याकरणम् (निर्णयसागर बम्बई) ६७९।
 प्रकरणपं० प्रकरणपत्रिका (चौखम्बा सीरिज काशी) ५३, ५४, १२८।
 प्रमाण० } प्रमाणपरीक्षा (जैनसिद्धान्तप्रकाशिनीसंस्था कलकत्ता) १५,
 प्रमाण प० } १९, ३१, ३३, ३८, ६३, १२१, १२५, १२७, १२८, १३३-१३४,
 १५०।
 प्रमाणवा० प्रमाणवार्तिकम् (मिश्र राहुकसांस्कृत्यायनसत्कं भूकपुस्तकम्) २८,
 ३२, ३४, ३८, ८३, ८४, ९०, ९५, ९६, १०३, १०४, १०७, १०८, १६६, १८०,

११७, ३२१, ३२५, ३३१, ३४१, ३५०, ३५४, ३८१, ३८३, ४३१, ४४५, ४७०,
४७३, ४८१, ५१३।

प्रमाणवा० स्वहृ० प्रमाणवार्तिकसोपज्ञवृत्तिः (भिक्षु राहुलसांख्यानयनसत्कं
श्रूफपुस्तकम्) ३८१।

प्रमाणवार्तिककालं० प्रमाणवार्तिककालद्वारः (भिक्षु राहुलसांख्यानयनसत्कं सुदणीय-
पुस्तकम्) ५८, ९५, ८३, ९०, १०६, २१८, ४६८, ५८२।

प्रमाणसमु० प्रमाणसमुच्चयः (मैसूर यूनि० सीरिज) ८०, ९५, १०३।

प्रश्न० भा० प्रश्नस्तपादभाष्यम् (विजयनगरम् सीरिज काशी) १७, १००,
१०३, ११३-११५, ५३१, ५६६, ५६८, ५९०, ६००, ६०४, ६१६, ६२१।

प्रश्न० कन्द० प्रश्नस्तपादभाष्यकन्दलीटीका (विजयनगरम् सीरिज काशी)
१४, ३१, ५९, ११५, १४०, १५०।

प्रश्न० किरणावली प्रश्नस्तपादभाष्यकिरणावलीटीका (चौखम्बा सीरिज काशी)
१३३, १५०,

प्रश्न० व्यो० } प्रश्नस्तपादभाष्यव्योमवतीटीका (चौखम्बा सीरिज काशी)
व्योमव० } ८०-८२, ८४-८६, ९३, ९८, १११-११५, १३३, १४०, १४७,
२७४, ३१०।

प्रमेयरत्नमा० प्रमेयरत्नमाला (विद्याविलास प्रेस काशी स० पं० फूलचन्द्रजी)
७०-७२, ८०-८३, ८५

बृहती शाररभाष्यबृहतीटीका (मद्रास यूनि० सीरिज) ५३, ५४, ९५।

पक्षिका बृहतीपक्षिकाश्रुविमला (" ") ९५।

बृहदा० बृहदारण्यकोपनिषद् (निर्णयसागर बम्बई) ६४, ६५,

बृहदा० भा० वा० बृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यवार्तिकम् (आनन्दाश्रम पूना) ४४,
४५, ६४, ६५।

ब्रह्म० ब्रह्मोपनिषद् (निर्णयसागर बम्बई) ६५, ६६, ८०, ९४,

ब्रह्मसू० शार्० भा० रत्नप्रभा ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्यरत्नप्रभा (निर्णयसागर बम्बई)
१०४।

ब्रह्मसू० शार्० भा० ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्यम् (निर्णयसागर बम्बई) ११४।

भामती ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्यस्य भामतीटीका (,, ,,) ५१-५३, ५९, ६६, ८०,
९४, ११६।

भगवद्गीता भगवद्गीतोपनिषद् (" ") २६८, ३०९।

भामहार्क० भामहविरचितः काव्यालद्वारः (चौखम्बा सीरिज काशी) ४३१।

मत्स्यपु० मत्स्यपुराणम् (मुम्बई) ३९२।

मग० व्या० भगवतीं आराधना (सोलपुर) ३३१।

महाभा० वन० महाभारतम् वनपर्व (चित्रशाल प्रेस पूना) ५८०।

मुष्ककोप० मुष्ककोपनिषत् (निर्णयसागर बम्बई) ६५।

मी० श्लो० मीमांसाश्लोकवार्तिकम् (चौखम्बा सीरिज काशी) ३, २०, २२, ५३,
५९, ७०-७२, ७७, ९४, ९५, ११२, १३७, १५३, १५५-१५९, १६१, १६५,
१७४, १७५, १८०, १८३-१९३, २०६, २४९-२५२, २५४, २५८, २६५,
३०९, ३३९, ३४५, ३४६, ३९६, ४०६-४११, ४१४-४२०, ४२२-४२४,
४२६, ४२७, ४३३, ४३५, ४३६, ४३८-४४०, ४६१, ४७४, ४७५, ४७६,
४८२, ५१३, ५२२, ५५७।

मी० श्लो० व्यायरत्ना० मीमांसाश्लोकवार्तिकव्यायरत्नाकरव्याख्या (चौखम्बा
सीरिज काशी) १५१, १५२, १५४, १५६, १५७।

मैत्र्यु० मैत्र्युपनिषत् (निर्णयसागर बम्बई) ४६, ६४।

युत्तयनु० युत्तयनुशासनम् (भाणिकचन्द्रजैनग्रन्थमाला बम्बई) ९४, ११६,
११७, १२७, १३२, १४३-१४५।

योगकारिका साङ्ख्ययोगदर्शनान्तर्गता (चौखम्बा सीरिज काशी) १९।

योगद० व्यासभा० योगसूत्रव्यासभाष्यम् (" ") १९, ९४।

योगसू० योगसूत्रम् (" ") ९४।

रत्नाकरवता० रत्नाकरवतारिका (यशोविजयग्रन्थमाला काशी) ९८, १२०।

रामता० उ० रामतापिन्युपनिषत् (निर्णयसागर बम्बई) ५९७।

लघी० लघीयल्लयम् (सिंधी जैन सीरिज कलकत्ता) ६७८।

लघी० ख० लघीयल्लयस्त्विवृत्तिः (" ") १२२।

वाक्यप० वाक्यपदीयम् (चौखम्बा सीरिज काशी) ३९, ४२९, ४४३।

वाक्यप० टी० वाक्यपदीयटीका पुण्यराजीया (" ") ४२, ४४७,
४५६, ४५९।

वादन्या० वादन्यायः (महानोधि सोसाइटी सारनाथ) ६६८, ६७१, ६७२।

विधिवि० विधिविवेकः (लाजोरसकम्पनी काशी) ७९, ९४, १३२,

विधिवि० न्यायक० विधिविवेकन्यायकणिकाटीका (लाजोरसकम्पनी काशी)
७९, ९४।

विवरणप्रमेयसं० विवरणप्रमेयसंग्रहः (विजयनगरम् सीरिज काशी) ५९।

वैशे० सू० वैशेषिकसूत्रम् (निर्णयसागर बम्बई) २३४, २७०, ५४०, ५६४, ५६८,
५८७, ५८९, ६००, ६०१, ६२०।

शाबरभा० शाबरभाष्यम् (आनन्दाश्रम पूना) २०, २१, २३, ९४, ११२, २५२,
२५५,

शिष्टपालव० शिष्टपालवकाव्यम् (निर्णयसागर बम्बई) ६८८।

शास्त्री० शास्त्रीपीपिका (चौखम्बा सीरिज काशी) २०, ६०, ९४।

शास्त्र बा० टी० } शास्त्रवार्तासमुच्चयस्य यशोविजयविरचिता टीका
शास्त्र बा० समु० टी० } (जैनधर्मप्र० सभा भावनगर) ४५, ४६, १०४।

श्रावक प्रज्ञ० श्रावकप्रज्ञप्तिः (जैनधर्म प्र० " ") ३००।

श्रेताश्रत० श्रेताश्रतरोपनिषद् (निर्णयसागर बम्बई) ६५, २६४, २६८, ३१२।

सम्बन्धपरी० सम्बन्धपरीक्षा धर्मकीर्तिविरचिता तिव्वतीयभाषोपलब्धा १

५०४-५०६, ५०९-५११।

सन्मति० टी० सन्मतितर्कटीका (गुजरात पुरातत्त्वमन्दिर अहमदाबाद) १४,

२५, २९, ३१, ३८, ३९, ४२, ४४, ४६, ५६, ५९, ६०-६३, ६५, ६७, ७०-७४,

७७-८०, ८२, ९०-९२, ९४, ९८, १००, १०७, १०८, ११२, ११६, १२६,

१२७, १२९, १३०, १३२, १३५, १३६, १३९-१४२, १४४, १४६, १४७,

१६०-१६९, १७२-१७४।

सांख्यका० सांख्यकारिका (चौखम्बा सीरिज काशी) ८८, ८९, ९८-१००,

२८५-२८९।

सांख्यका० गौडपादभा० सांख्यकारिकागौडपादभाष्यम् (,, ,,) २८, १०१।

सांख्यका० भाठरहृति सांख्यकारिकामाठरहृतिः (,, ,,) ९८, १०१।

सांख्यप्र० भा० सांख्यप्रवचनभाष्यम् (चौखम्बा सीरिज काशी) १९।

सांख्यसं० सांख्यसंग्रहः (,, ,,) ९८।

सौन्दरनन्द० सौन्दरनन्दमहाकाव्यम् (पंजाब युनि० सीरिज) ६८७।

स्फुटार्थ० स्फुटार्थ-अभिधर्मकोशव्याख्या (विज्जोयिका बुद्धिका सीरिज रशिया)

१३६।

स्या० मं० स्याद्वादमञ्जरी (रायचन्द्रशास्त्रमाला बम्बई) ९४, ९८, ११३, १३७।

स्या० रत्ना० स्याद्वादरत्नाकरः (आर्हट्प्रभाकरकार्यालय पूना) १४, १९, २०,

२८-३०, ३३, ३५, ३६, ३८-४०, ४२-५२, ५६, ५९, ६२, ६५, ६७-७५, ७७,

७९, ८०-८३, ८५-८७, ८९, ९१, ९२, ९४, ९६, ९८-१०२, १२०-१२३,

१२५, १३२, १३३, १३५-१३९, १४७, १४८, १५७, १५९, १६१, १६२, १६७,

१६८, १७१।

हेतुबिन्दुटीका अर्चटकृता लिखिता (पं० सुखलालसत्का B.H.U. काशी) १७।

मीमांसाभाष्यपरि० मीमांसाभाष्यपरिशिष्टम् (मद्रास युनि० सीरिज) १५६।

शुद्धिवृद्धिपत्रम्

पृ० पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
६- १२	कारण-	करण-
९ १७	आस्या-	आस्या-
९ १८	-रूपपता	रूपपता
१९ १३	-रभिव्यज्येत्	रभिव्यज्येत
२२ ३४	न्यायवि०	न्यायवि०
२३ ३	विरोधे वा	अविरोधे वा
२९ ३१	पृ० ५०	पृ० ८०
३० ३५	पृ० ५०	पृ० ८०
३१ ३२	पृ० ५२	पृ० ८२
३३ ३४	पृ० ५४	पृ० ८४
३४ ३	कणाक्षयादि-	कणाक्षयादि-
३५ ३४	पृ० ५६	पृ० ८६
३६-१३	अग्रहीत-	अग्रहीत-
३६ ३३	पृ० ५७	पृ० ८७
८४ १६	धियो (योऽ) लादि-	धियो(योऽ)नीलादि-
१०५ २०	सर्वत्रा-	सर्वत्रा-
१११ १६	-धारलक्षण-	धारलक्षण-
११८ ७	-तत्साहचर्यो-	तत्साहचर्यो-
१२० ३४	स्या० रमा०	रमाकराव०
१४१ १०	-स्यादृष्टास्या-	स्यादृष्टास्या-
१४२ १	चादृष्ट-	न चादृष्ट-
१४८ १३	-कयोस्त्वोरप्र-	कयोस्त्वोरप्र-
१५४ २१	प्रवृत्त्यामा-	प्रवृत्त्यामा-
१५६ १	-तद् विषयम्	तद् विषयम्
१५८ ८	-यक्ष	यक्षे
१९७ ४	मेदः	मेदः
२३७ १४	न्यायमा०	न्यायमा०
२४५ २७	हाने-वासं	हानेरेवासं-
२६० ६	करणक्रम-	करणक्रम-
२६३ २	-भावात्	भावात्
२६४ २४	न न	न
३०० १०	कण्ठोष्ठ-	कण्ठोष्ठ-

४०	१०	अशुद्धम्	शुद्धम्
३४९	२-	भवसेवेति	भवसेवेति वा
३५७	५	आत्मता-	आमता-
३७३	१९	-ले नि-	लेऽनि-
३९५	१	समानम् । 'न च' इति	समानं नवेति
४०४	२४	[१११८]	[११११८]
४०८	२६	-मर्वावद्-	मर्वावद्-
४४५	१७	-सम्भावात्	सम्भावात्
४६०	२३	पदादि-	पदादिति-
४६७	७	एतद् ? पूर्वो-	एतद् ? अजु-
			[इत्तव्यावृत्तप्रत्ययगोचरत्वात् पूर्वो-
५८६	१२	छिछ्वा-	छिछ्वा-
५९६	८	कोऽ वि-	कोऽवश्यं वि-
५९६	९	-तम्; वश्यं वि-	तम्; वि-
६२६	२१	कार्यकारण-	कार्यकारण-
६०६	१२	नियमोपलभ्य-	नियमो लभ्य-
	२२	प्रस्युक्ते	प्रस्युक्ते
	१८	-धर्म्यम्-	धर्म्यमम्-
६५४	१२	शुज्येत्	शुज्येत
६५८	२७	-स्यता	-स्यता
६७३	३०	जयाय	पराजयाय

विषयसूच्याम्

२५	२३	सदभावे	यद्भावे
----	----	--------	---------

परिशिष्टेषु

७०४	८	अभेदपक्षं प्रथमं	[रामता० ड० ६१५] ५९७।१९
		” ”	[” ” अत्रिस्त्युतिः ६१६]
७१८	१०	अप्राधाच्छ्रसम्पर्काच्छ्र-	[] ४८३।२४
		” ”	[आपस्तम्बस्त्युतिः ८।७]